भारतीय-चरिताम्बुधि

अर्थात्

वैदिक, पौराणिक ऋषि, मुनि, राजा, रानी, स्थान तथा ऐतिहासिक पुरुषों कवियों आदि का हिन्दी भाषा में संक्षिप्त विवरण ।

संग्रहकर्ता

चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्मा

"श्रीराघवेन्द्र," "श्रीयादवेन्द्र" के सम्पादक, "हिन्दीशब्दार्थ पारिजात," "बालकोपयोगी पुस्तकमाला" तथा "स्त्रीशिक्षा पुस्तकमाला" के संग्रहकर्त्ता

A Dictionary of Indian Classical Characters

PERTAINING TO

Mythology, Philosophy, Literature, Antiquities, Arts, Manners, Customs, Etc. of the Hindus

BY

CHATURVEDI DWARKA PRASAD SHARMA,

Editor of "Raghavendra" and "Yadvendra," Compiler of "Balkopayogi" and "Stri Shiksha" Series,

Hindi "Shabdarth Parijat," &c., &c.

LUCKNOW:

PRINTED AND PUBLISHED BY K. D. SETH, AT THE NEWUL KISHORE PRESS.

First Edition.] 1919. [Price Rs. 5-8-0.

श्रीहरिः

हमारा आरम्भिक वक्तव्य।

यस्माच्च येन च यथा च यदा च यच्च, यावच्च यत्र च शुभाशुभमात्मकर्म।
तस्माच्च तेन च तथा च तदा च तच्च, तावच्च तत्र च विधातृवशादुपैति॥

जिन दिनों में "हिन्दी-शब्दार्थपारिजात" का सङ्कलन कर रहा था, उन दिनों मन में यह इच्छा उत्पन्न हुई कि हिन्दी भाषा में भी यदि "बीटनस् डिक्शनरी आव यूनिवर्सल इन्फ़रमेशन" के ढंग पर एक कोश हो जाय, तो हिन्दी पढ़ने वालों को हिन्दी भाषा के अध्ययन में अनेक अंशों में पर्याप्त सहायता प्राप्त हो सकती है। यह इच्छा उत्पन्न हुई और सौभाग्यवश जीती जागती बनी रही। संयोगवश मुझे एक बार लखनऊ जाना पड़ा और वहाँ के प्रसिद्ध मुंशी नवलकिशोर प्रेस के स्वर्गवासी अध्यक्ष राय बहादुर मुंशी प्रयागनारायण भार्गव से भेंट हुई। यद्यपि मुंशीजी हिन्दी भाषा से जानकारी नहीं रखते थे, तथापि यह नहीं कहा जासकता कि आपके मन में हिन्दी का प्रेम अन्य हिन्दी-प्रेमियों की अपेक्षा कम था। हिन्दी-प्रेम की प्रेरणा से ही प्रेरित हो आपने मुझसे कोई ग्रन्थ लिखने का अनुरोध किया और जब मैंने अपनी इच्छा एक चरित-कोश लिखने के विषय में प्रकट की, तब आपने मेरे प्रस्ताव का अनुमोदन कर ऐसे एक कोश को तैयार करने की अनुमति तुरन्त दे दी। इस प्रकार मन में छिपी हुई कई वर्ष की मेरी इच्छा को कार्यरूप में परिणत होने का सुअवसर अनायास ही प्राप्त हो गया।

जिस समय यह कार्य आरम्भ किया गया, उस समय अनुभव द्वारा मालूम हुआ कि यह कार्य जितना सहज समझ रखा था, उतना सहज नहीं है। फिर जिस उठान से कार्य आरम्भ किया गया था, यदि उसी उठान पर यह कार्य आरम्भ रखा जाता तो यह ग्रन्थ कम से कम १००० पृष्ठों के सात आठ भागों में पूर्ण होता। साथ ही पुस्तक के छपने और प्रकाशन करने में कई वर्ष लगते और मूल्य भी अधिक हो जाता, अतः मुझे आरम्भ किये हुए क्रम को बदलना पड़ा। साथ ही यहाँ यह कह देना भी आवश्यक है कि यह गहत्व का कार्य यदि मुझसे किसी अधिक योग्य व्यक्ति ने किया होता, तो बहुत सम्भव था कि यह कार्य कहीं अधिक अच्छा होता। क्योंकि एक कवि का कथन है:—

तुङ्गात्मनां तुङ्गतराः समर्था मनोरथान् पूरयितुं न अल्पाः।
धाराधरा एव धराधराणां निदाघदाहं शमितुं न नद्यः॥

तथापि जब इस ओर किसी भी हिन्दी भाषा के महारथी का ध्यान जाते न देखा, तब यह समझ कर कि पूरा मकान न हो तो न सही, उसका ठाठ ही खड़ा कर दिया जाय, जिससे आगे चल कर विद्वान् लोग उस ठाठ को सजा कर इसे एक सुरम्य भवन का रूप प्रदान करने की कृपा करें। अतः एक चरित-कोश का यह ठाठमात्र है। अगर हिन्दी भाषा के किसी महारथी का ध्यान इस ठाठ को देख इसकी ओर आकर्षित हो गया तो आशा है, इस विषय का एक अच्छा ग्रन्थ हिन्दी साहित्य में बन सकेगा, किन्तु जब तक इस विषय पर हिन्दी भाषा में एक भी ग्रन्थ नहीं है तब तक मेरे इस "चरिताम्बुधि" ही को उस अभाव का पूरक समझ, लोगों को सन्तोष करना पड़ेगा।

इस ग्रन्थ के सङ्कलन में किन किन ग्रन्थों से मसाला लिया गया है, उनकी नामावली अन्यत्र प्रकाशित कर दी गयी है। साथ ही यह भी कह देना आवश्यक है कि इसमें सब श्रेणी के और सब जाति के विशिष्ट व्यक्तियों के विषय में, जितना पुस्तकों द्वारा अवगत हो सका है, लिखा गया है। अतः यह कहा जा नहीं

सकता कि जितना इस ग्रन्थ में किसी व्यक्ति विशेष, अथवा स्थान विशेष अथवा ग्रन्थ विशेष के विषय में लिखा गया है, उससे अधिक उस विषय में लिखा नहीं जा सकता। अवश्य ही इस ग्रन्थ में संगृहीत अधिकांश विषय ऐसे हैं, जिनके विषय में बहुत कुछ लिखा जा सकता है, किन्तु विस्तारभय से वैसा किया जाना उचित नहीं समझा गया। किसी किसी विषय को विस्तार से लिखने की इच्छा रहते हुए भी, आवश्यक जानकारी का कोई साधन न रहने से, उस विषय को विवश हो अति संक्षिप्तरूप से लिख, सन्तोष करना पड़ा है।

यद्यपि इस ग्रन्थ के नाम के अनुसार इस ग्रन्थ में केवल विशिष्ट व्यक्तियों के चरित्रों ही का संग्रह होना चाहिये था, तथापि यह समझ कर कि उन स्थानों और उन ग्रन्थों का वर्णन, (जिनसे कई एक व्यक्तियों के जीवन से सम्बन्ध है।) ग्रन्थ में न रहने से, ग्रन्थ में एक बड़ी त्रुटि रह जायगी, अतः विशिष्ट स्थानों और विशिष्ट ग्रन्थों का भी वर्णन दे दिया गया है। जो विषय जिस ग्रन्थ से चुना गया है, उस ग्रन्थ का नाम भी उस विषय के नीचे दे दिया गया है। प्रमादवश एक दो स्थलों पर इस नियम के पालन में शिथिलता भी हुई है: जिसके लिये मैं क्षमा का प्रार्थी हूँ। जहाँ तक हुआ है संग्रहकर्त्ता ने किसी विषय में भी अपना व्यक्तिगत मत प्रकट करने का आग्रह नहीं किया और दूसरे विद्वानों के मत उनके नामों के सहित ही प्रकाशित कर दिये गये हैं। राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक अथवा साहित्य सम्बन्धी विषयों में किसी मत विशेष का पक्षपात तिल भर भी नहीं किया गया। ग्रन्थ सर्वोपयोगी बने, इस ओर संग्रहकर्त्ता का ध्यान विशेषरूप से आकृष्ट रहा है।

मूलग्रन्थ में नाम नागरी वर्णमाला के अक्षरक्रम से संग्रह किये गये हैं। परिशिष्ट नं० १ में अवश्य ही अंगरेज़ी की वर्णमाला के अक्षरक्रम से काम लिया गया है। यह इस लिये कि इस परिशिष्ट में अंगरेज़ों और मुसलमानों ही के नाम अधिक हैं। ग्रन्थ के अन्त में इस ग्रन्थ में व्यवहृत नामों की एक अनुक्रमणिका भी जोड़ दी गयी है। इससे अवगत हो सकेगा कि इस ग्रन्थ में २९९० के ऊपर नामों का परिचय दिया गया है। अनेक नाम ऐसे इसमें छूट गये हैं जिनका होना आवश्यक था किन्तु उनके विषय में किसी छपे ग्रन्थ में कुछ वर्णन न रहने के कारण, उन नामों को जानबूझ कर छोड़ देना पड़ा है और कुछ नाम ऐसे भी हैं जिनके बारे में ग्रन्थ लिखे जाने के बाद मुझे बहुत कुछ वृत्तान्त मिला और वे नाम मैंने दूसरे संस्करण में सम्मिलित करने के लिये टीप रखे हैं।

अन्त में निवेदन है कि यह ग्रन्थ अपने विषय का हिन्दी भाषा में प्रथम है और इस विषय में मेरा यह प्रथम ही प्रयास है। मनुष्य-स्वभाव-सुलभ भ्रान्ति के वशवर्त्ती हो, इस ग्रन्थ में अनेक प्रकार की त्रुटियों का रह जाना कोई अनहोनी बात नहीं—किन्तु उनका न रहना ही आश्चर्य की बात होगी। अतः सहृदय पाठकों और समालोचकों को इस ग्रन्थ का अवलोकन करते समय इस बात को भूलना न चाहिये:—

धर्मे तत्परता मुखे मधुरता दाने समुत्साहिता
मित्रेऽवञ्चकता गुरौ विनयिता चित्तेऽतिगम्भीरता।
आचारे शुचिता गुणे रसिकता शास्त्रेऽतिविज्ञानिता
रूपे सुन्दरता हरौ भजनिता सत्स्वेव संदृश्यते॥
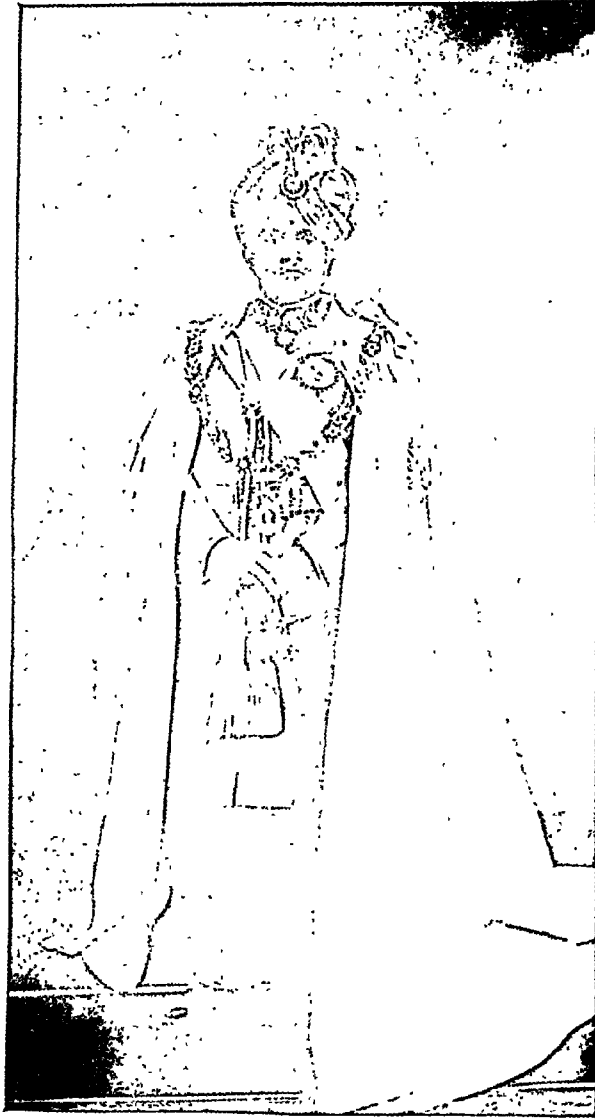
हिज-हाईनेस महाराज श्रीकृष्णराज वाड़ियार बहादुर
जी. सी. यस. आई. मैसूर नरेश

धन्यवाद

मैसूर-नरेश, एक आदर्श हिन्दू नरेश हैं, जो गुणग्राहकता में बहुत चढ़े बढ़े हैं और विद्वानों के लिये उनके मन में बहुत विस्तृत स्थान है। विद्यादेवी के आप परम अनुरक्त भक्त हैं, अतः किसी भी भाषा का ज्ञाता विद्वान् क्यों न हो, आप उसका यथोचित सम्मान करना अपने लिये गौरव की बात समझते हैं। सम्मान से हमारा अभिप्राय किसी ग्रन्थकार को दस पाँच हज़ार रुपये दे देने से नहीं है-किन्तु आजकल की दशा देखते हुए, किसी विद्वान् का किसी राजा द्वारा वाणी से भी सत्कार होना हम बड़ी बात समझते हैं। कारण, विद्वानों को धन की उतनी चाह नहीं जितनी सम्मान की हुआ करती है। इसके प्रमाण में हम श्रीहर्ष कवि का नाम लेंगे जो अपना परिचय देते समय बड़े दर्प के साथ लिखते हैं-"ताम्बूलद्वयमासनं च लभते यः कान्यकुब्जेश्वरात्"। अतः हम इसीको अपने परिश्रम का साफल्य समझते हैं कि मैसूर-नरेश ने हमारे इस ग्रन्थ की भेंट को स्वीकार कर हमारा उत्साह बढ़ाया है। आपका पत्र हम नीचे ज्यों का त्यों उद्धृत किये देते हैं और साथ ही श्रीमान् को धन्यवाद भी देते हैं।

ट्रिवेंड्रम्
२१-६-१६१६

चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्मा

No. C. 92.

THE PALACE, BANGALORE,
15th August 1919.

To

C. D. P. SHARMA, Esq.,
Editor, "Vaidic Sarwasva,"
C/o The Post Master,
TRIVANDRUM.

Dear Sir,

With reference to your letter dated the 20th July 1919, I write to inform you that you may dedicate to His Highness, your new book called "Hindi Charitambudhi."

Yours faithfully,
Sd. MIRZA M. ISMAIL,
Huzur Secretary,
to H. H. the Maharaja of Mysore.

भेंट

काशी हिन्दू-विश्वविद्यालय

के

प्रथम चाँसलर, हिज़ हाइनेस,

महाराज

श्रीकृष्णाराज वड़ियार बहादुर

जी. सी. एस. आई., जी. बी. ई.,

मैसूर-नरेश

की

अनुमत्यनुसार यह ग्रन्थ

श्रीमान् के

करकमलों में संग्रहकर्त्ता

की

ओर से सहर्ष भेंट किया जाता है।

चरिताम्बुधि में व्यवहृत शब्दों की
वर्णानुक्रमणिका।

घ

च

परिशिष्ट नं० १

परिशिष्ट नं० २

॥ श्रीः ॥

हिन्दी चरिताम्बुधि

अ

अ=भगवान् विष्णु. व्यापक होने के कारण विष्णु को अकार कहते हैं। गीता में भगवान् कृष्ण ने कहा है कि "अक्षराणामकारोऽस्मि" अर्थात् अक्षरों में, मैं अकार हूँ। वर्णमाला में ऐसा कोई अक्षर नहीं है जिसमें अकार किसी रूप में न पाया जाता हो।

अंशुमती=एक नदी का नाम, जिसका उल्लेख ऋग्वेद में है, और जिसके तट पर दस्युराज कृष्ण को राजा ऋगवान ने पराजित किया था। सुव्रत मुनि की स्त्री का नाम।

अंशुमान्=सूर्यवंशी राजा सगर का पौत्र और असमञ्जस का पुत्र। एक समय राजा सगर ने अश्वमेध नामक यज्ञ करने के लिये घोड़ा छोड़ा था, उस घोड़े को ढूँढने के लिये उनके साठ हज़ार पुत्र गये थे। इन्द्र ने चालाकी कर के कपिलमुनि के पास घोड़ा बाँध दिया था। सगर के पुत्र ढूँढ़ते ढूँढ़ते पाताल पहुँचे। चोर समझ कर, उन लोगों ने कपिल मुनि का अपमान किया, इसीसे वे मुनि के क्रोधाग्नि में पड़ कर भस्म हो गये। सगर ने अपने पुत्रों के आने में विलम्ब देख कर, अपने पौत्र अंशुमान् को उन्हें ढूँढ़ने के लिये भेजा। पितामह की आज्ञा से अंशुमान् पाताल पहुँचे, और स्तुति से मुनि को प्रसन्न कर, वे घोड़ा ले आये और अपने पितृव्यों का उद्धार किस प्रकार होगा, इसकी भी शिक्षा उन्होंने गरुड़ से ग्रहण की।

(हरिवंश)

अकम्पन=(१) रावण के एक सेनापति का नाम। लङ्का के युद्ध में यह महावीर हनुमान् के हाथ मारा गया था। इसके दो और भाई थे, जिनका नाम प्रहस्त और धूम्राक्ष था। यह लङ्कापति रावण का मामा था। इसके पिता का नाम सुमाली और माता का नाम केतुमाली था। रावण की माता केकसी इसकी बहिन थी और इसकी दूसरी बहिन का नाम कुम्भीनसी था।

(वाल्मीकीय रामायण)

(२) बहुत पुराना राजा। इसके पुत्र का नाम हरि था। हरि महाबली योद्धा था। एक समय शत्रुओं ने चढ़ाई की, दोनों ओर के योद्धा लड़ने लगे। राजा अकम्पन को शत्रुओं ने पकड़ लिया। इनकी सेना में हाहाकार मचगया। सेना तितर बितर होने लगी। अपनी सेना की और पिता की ऐसी दशा देख कर, हरि ने बड़े साहस और धैर्यपूर्वक शत्रु-सेना का सामना किया। उसने अपनी वीरता और कौशल से अपने पिता को छुड़ा लिया। (महाभारत)

अकाली=अमर, धर्म के लिये प्राणों को तुच्छ समझने वाले वे सिक्ख योद्धा, जो अपनेको गुरु गोविन्दसिंह की स्थापित सेना के योद्धा बतलाते हैं। इन लोगों का बाना काला रहता और ये हाथ में फौलाद का कड़ा पहनते थे। ये वैरागी होते थे, किन्तु युद्धविद्या में निपुण होना अपना कर्तव्य समझते थे। असल में इन्होंने ही अमरसर को मुसलमानों के आक्रमण से बचाया। पीछे से ये इतने उजड्ड होगये कि महाराज रणजीतसिंह को अकालियों के उत्पातों से प्रजा को बचाने के लिये केवल चिन्तित ही नहीं होना पड़ा; किन्तु बहुत सा धन भी उठाना पड़ा।

अकूती=यह स्वायम्भुव मनु की दूसरी कन्या थी और उसकी माता का नाम शतरूपा था। अकूती बड़ी रूपवती और गुणवती थी। उसका विवाह रुचि के साथ हुआ था। यज्ञ और दक्षिणा इसीकी यमज सन्तान थे, जो पीछे से विवाह कर पति पत्नी बन गये। इन्हींसे द्वादश यमों की उत्पत्ति हुई।

अकृतव्रण=प्रसिद्ध क्षत्रिय-नाश-कारी परशुराम का अनुचर। यह बड़ा वीर था और परशुराम के प्रिय शिष्यों में से था। महेन्द्र पर्वत पर इसका वासस्थान था। युधिष्ठिर के वनवास के समय इनसे उसकी भेंट हुई थी और युधिष्ठिर से इसने परशुराम के गुणों का वर्णन किया। (महाभारत)

अक्रूर=ये श्रीकृष्ण के चाचा थे, लोक में ऐसी प्रसिद्धि है। इनके पिता का नाम स्वफल्क और माता का नाम गान्दिनी था। इनका दूसरा नाम गान्दिनीसुत भी है। इन्हींकी सम्मति से सत्यभामा के पिता सत्राजित् को मार कर, शतधन्वा ने स्यमन्तकमणि ले ली थी। जब श्रीकृष्ण उसे मारने लगे, तब उसने स्यमन्तकमणि अक्रूर को दे कर, भागने की चेष्टा की थी; परन्तु वह भाग न सका। श्रीकृष्ण ने उसे पकड़ कर मार डाला। स्यमन्तकमणि का यह गुण था कि जिसके पास वह रहती, उसे प्रतिदिन सुवर्णराशि प्राप्त होती, और उस देश में अनावृष्टि नहीं होती थी। इसी मणि के प्रभाव से अक्रूर सर्वदा याग उत्सव आदि में बहुत सा धन उठाया करते थे। एक समय किसी कारणवश अक्रूर द्वारका से बाहर गये। उनके जाते ही द्वारका में वृष्टि होना बन्द हो गया; जिससे अनेक मनुष्य मर गये। अक्रूर मथुरा में कंस के यहाँ रहते थे। श्रीकृष्ण और बलराम को मारने के लिये कंस ने यज्ञ करने का ढोंग रचा था और उनको मथुरा लाने के लिये उसने अक्रूर को वृन्दावन भेजा था। यदुवंशी अक्रूर ने, कंस के अत्याचारों से, यादवों को बचाने के लिये, उसके षड्यन्त्र की सभी बातें श्रीकृष्ण से कह दीं और कंस को मारने के लिये उनसे अनुरोध किया। श्रीकृष्ण अक्रूर के साथ मथुरा गये और वहाँ उन्होंने कंस को मार डाला। (श्रीमद्भागवत)

अक्ष=कश्मीर के एक राजा का नाम, ये द्वितीय नर के पुत्र थे। इन्होंने अक्षवाल नामक एक शिवमन्दिर बनवाया था और साठ वर्ष तक काश्मीर का शासन किया था। (राजतरङ्गिणी)

अक्षपाद=प्रसिद्ध न्याय-दर्शन-कर्ता ऋषि, इनका दूसरा नाम गौतम था। न्यायदर्शन इन्हीं ही ने बनाया था। इस कारण न्यायदर्शन को अक्षपाददर्शन भी कहते हैं। आर्षदर्शन सूत्रों में लिखे गये हैं। न्यायदर्शन भी सूत्रों ही में लिखा गया है। इस कारण न्यायदर्शन के निर्माण का भी वही समय मानना पड़ेगा, जो अन्यान्य दर्शनों का है। अध्यापक मैक्समूलर कहते हैं कि खी० ई० ६०० से ई० २०० पर्यन्त सूत्रों का समय है। इससे न्यायदर्शनकार भी उसी समय के हैं यह अवश्य मानना पड़ेगा। न्यायदर्शन में ५२८ सूत्र हैं, ये सूत्र पाँच अध्यायों में विभक्त हैं। प्रत्येक अध्याय में दो आह्निक हैं। इससे महर्षि अक्षपाद ने इस दर्शन को दस दिनों में बनाया था यह बात मालूम होती है। इस दर्शन में ईश्वर और परलोक की सत्ता मानी जाती है, दुःखों का आत्यन्तिक-समूल नाश ही मुक्ति है—मुक्ति की यही परिभाषा इस दर्शन में मानी जाती है। मुक्ति प्राप्त करना ही इस दर्शन का उद्देश्य है। शरीर और इन्द्रियों के सम्बन्ध रहने पर दुःखों का समूल नाश नहीं हो सकता, अतएव आत्मा को शरीर और इन्द्रियों से पृथक् करना पड़ेगा। आत्मा की इस अवस्था ही का नाम मुक्ति है न्यायदर्शन की मुक्ति को बहुत लोग जड़मुक्ति समझते हैं, परन्तु है ऐसा नहीं। इनके मत से मुक्ति सुखस्वरूप है। दुःखाभाव ही सुख है, जिस प्रकार अन्धकार का अभाव प्रकाश। इस दर्शन के मत से परमात्मा जगत् के निमित्तकारण माने जाते हैं। इस दर्शन में सोलह पदार्थ माने गये हैं; जिनके तत्त्वज्ञान से निःश्रेयस–मुक्ति की प्राप्ति होती है। इस दर्शन को आन्वीक्षिकी भी कहते हैं। "अन्वीक्षा" का अर्थ है सुनी बातों की आलोचना। यह दर्शन अन्वीक्षासंयुक्त है, इसी कारण इस दर्शन को आन्वीक्षिकी कहते हैं। इस दर्शन की आलोचना से तर्कशक्ति बढ़ती है, अतएव इसे तर्कशास्त्र भी कहते हैं। इसमें चार प्रमाण माने जाते हैं; यथा प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शाब्द।

अक्षयकुमार=रावण का छोटा लड़का । यह मेघनाद से छोटा था । मन्दोदरी के गर्भ से इसका जन्म हुआ था । सीता का पता लगाने के लिये हनुमान् जब लङ्का गये और वहाँ जाकर जब उन्होंने रावण के प्रमोदवन का नाश करना प्रारम्भ किया, तब अक्षयकुमार को रावण ने हनुमान् का सामना करने के लिये भेजा था । उसी युद्ध में हनुमान् ने उसको मार डाला था ।

(वाल्मीकीय रामायण)

अक्षयसिंह=जैसलमेर का राजा, इनके पितामह का नाम जसवन्तसिंह और पिता का नाम जगत्सिंह था । जगत्सिंह ने आत्महत्या कर ली थी । इनके पितामह जसवन्तसिंह भी इनकी छोटी अवस्था ही में परलोकवासी हुए । जसवन्तसिंह के मरने के बाद अक्षयसिंह का राज्याभिषेक हुआ सही; परन्तु उनको अनाथ बालक समझ कर उनके चाचा तेजसिंह ने राज्य को अपने हाथ में कर लिया। अक्षयसिंह और ज़ोरावरसिंह प्राण बचाने के लिये दिल्ली भाग गये । वहाँ जा कर इन लोगों ने अपने पितामह के छोटे भाई हरिसिंह की शरण ली, उन दिनों हरिसिंह दिल्ली के बादशाह के यहाँ राजकार्य करते थे । हरिसिंह अपने पोतों को राज्य दिलाने की चिन्ता में जैसलमेर गये । उन दिनों वहाँ एहासा नामक एक प्रकार का खेल होता था । हरिसिंह ने सोचा था कि जब महाराज इस खेल में प्रवृत्त होंगे, उस समय उन पर आक्रमण करने से कार्य सिद्ध होगा । परन्तु उनका सोचा ठीक न निकला । उनका आक्रमण निष्फल तो नहीं हुआ, परन्तु सफल भी नहीं हुआ । तेजसिंह घायल हो गया, कुछ दिनों के बाद उसी आघात से उसकी मृत्यु हुई । उसके बाद तेजसिंह का तीन वर्ष का पुत्र सवाईसिंह जैसलमेर की गद्दी पर बैठा । अक्षयसिंह उचित समय जान कर बड़े बड़े सरदारों को मिला कर, जैसलमेर पर चढ़ गये । सवाईसिंह की जीवनलीला समाप्त हुई और अक्षयसिंह राजगद्दी पर बैठे । इन्होंने ४० वर्ष तक राज्य किया था । इनकी मृत्यु संवत् १८१८ (सन् १७६२ई०) में हुई थी ।

(टाडूस राजस्थान)

अगस्त्य=महर्षि मित्रावरुण के पुत्र, इनका पहला नाम मान था । परन्तु विन्ध्यपर्वत के अहङ्कार चूर करने पर अगस्त्य नाम से इनकी प्रसिद्धि हुई । महर्षि, वरुण आदित्य के यज्ञ में निमन्त्रित हो कर गये थे । वहाँ उर्वशी को देख कर उनका रेतःपात हुआ । रेत का जो भाग कुम्भ में पड़ा उससे अगस्त्य और जो स्थल में पड़ा उससे वशिष्ठ उत्पन्न हुए । अगस्त्य का आकार परिमित था, इस कारण उनका नाम मान पड़ा था । इस ऋषि का महान् तपोबल था । कालकेय नामक असुरगण वृत्रासुरवध के पश्चात् देवताओं के भय से समुद्र में लुक कर प्राणरक्षा करते थे और रात्रि को निकल कर मुनियों को मारते तथा उनके तपोवन नष्ट भ्रष्ट कर देते थे । इनके अत्याचारों से रक्षा पाने के लिये मुनियों ने पर्वत की गुहाओं में शरण ली, इससे यज्ञकर्म लुप्त हो गये । देवताओं के अनुरोध से महर्षि अगस्त्य ने समुद्र पान किया । इससे कालकेय भाग तो सके नहीं और देवताओं ने उन्हें मार डाला । अभिमान से विन्ध्यपर्वत ने सूर्य का मार्ग रोक लिया, देवताओं के कहने से अगस्त्य विन्ध्यपर्वत के पास गये । विन्ध्य ने अपने गुरु को आते देख प्रणाम किया । मुनि ने कहा, जब तक मैं न लौटूँ तब तक तुम ऐसे ही रहो । यह कह कर अगस्त्य दक्षिण दिशा में चले गये और तब से फिर न लौटे ।

एक दिन अगस्त्य ने अपने पितरों को एक गड़े में लटकते और कष्ट भोगते देखा । अगस्त्य के पुत्र उत्पन्न होने पर उनका यह कष्ट दूर होगा, पितरों की इस आज्ञा को सुन कर, उन्होंने विवाह करना स्थिर किया । परन्तु उपयुक्त कन्या के अभाव से उन्होंने एक स्त्री की सृष्टि की । ऋषि की आज्ञा से विदर्भराज ने उस कन्या के पालन पोषण का भार ग्रहण किया । विदर्भराज ने उस कन्या का नाम लोपामुद्रा रक्खा । लोपामुद्रा के वयस्का होने पर अगस्त्य ने विदर्भराज से प्रार्थना की । विदर्भराज ने लोपामुद्रा का अगस्त्य से विवाह कर दिया । एक समय लोपामुद्रा ने भूषण पहनने की पति से प्रार्थना की; अगस्त्य धन

ढूँढ़ने के लिये निकले । वे कई राजाओं के पास गये, परन्तु उनके आय व्यय का हिसाब देख कर उन्होंने उनसे लेना स्वीकार नहीं किया । पुनः अगस्त्य प्रह्लाद के वंशज इल्वल के निकट गये । इल्वल का छोटा भाई वातापि ब्राह्मणों से चिढ़ा हुआ था । वे दोनों भाई बड़े मायावी थे । वातापि भेड़ा बन जाता था और उसका माँस ब्राह्मण को दिया जाता । जब ब्राह्मण उस माँस को खा जाते, तब इल्वल अपने भाई वातापि को पुकारता और वह झट ब्राह्मण का पेट फाड़ कर निकल आता । अगस्त्य से भी उन लोगों ने यही चाल चली । उसने अपने भाई को पुकारा । उस समय अगस्त्य ने कहा—"उसको तो मैंने पचा लिया ।" इससे इल्वल डर गया, और अगस्त्य को उसने बहुत धन दिया । अगस्त्य भी घर लौट आये और लोपामुद्रा को गहने बनवा दिये ।

रामचन्द्र वनवास के समय अगस्त्य-आश्रम में गये थे । मुनि ने उनको धनु अक्षय तूणीर और खड्ग दिये थे । अगस्त्य को नहुष ने इन्द्रत्व पाकर अपनी पालकी ढोने के लिये लगाया और उनके लात मारी । इससे अगस्त्य को क्रोध आया और उन्होंने शाप दिया "तुम दश हज़ार वर्ष तक साँप की योनि में पड़े रहो ।"

(महाभारत)

अग्नि=ऋग्वेद के सभी मण्डलों में प्रायः इस देवता की उपासना लिखी है । ऋग्वेद में लिखा है कि ये परमात्मा के मुख से उत्पन्न हुए थे । कहीं कहीं यह भी लिखा मिलता है कि ये धर्म के औरस और वसुभार्या के गर्भ से उत्पन्न हुए थे । किसी किसी पुराण में यह भी लिखा है कि कश्यप के औरस और अदिति के गर्भ से ये उत्पन्न हुए थे । ये एक दिक्पाल हैं, दक्षिण और पूर्व का कोण इनके रहने का स्थान है । शक्ति और अक्षसूत्र इनके अस्त्र हैं, छाग इनका वाहन है । किन्तु कहीं कहीं इनका वाहन मेढ़ा भी पाया जाता है । इनकी स्त्री का नाम स्वाहा है जो कश्यप की कन्या है ।

अग्निपुराण=अग्नि ने इसके द्वारा मुनि वशिष्ठ को ब्रह्मज्ञान का उपदेश दिया, इस कारण इसका नाम अग्निपुराण पड़ा । मुनि वशिष्ठ ने व्यास को और व्यास ने सूत को और सूत ने नैमिषारण्य में ऋषियों को यह पुराण सुनाया । इसकी कई प्रतियां इकट्ठी की गयीं, तो उनमें परस्पर भेद पाया गया । किसी में १४ सौ किसी में १५ सौ और किसी में १६ सौ तक श्लोकों की संख्या मिली । इस पुराण के आरम्भिक अध्यायों में अवतारों का वर्णन है । श्रीराम और श्रीकृष्ण का चरित क्रमशः श्रीरामायण और श्रीमहाभारत से मिलता है । अन्य अध्यायों में धार्मिक अनुष्ठानों का विधान लिखा गया है । विशेष कर शिव की उपासना का विधान है । अन्य अध्यायों में पृथिवी, नक्षत्र तथा राजाओं के कर्तव्यों का वैसा ही वर्णन है जैसा विष्णुपुराण में पाया जाता है ।

(विष्णुपुराण)

अग्निबाहु=ये प्रियव्रत और काम्य के दश प्रसिद्ध पुत्रों में से एक थे । ये साहस और शारीरिक बल के लिये प्रसिद्ध थे । विष्णुपुराण में इनके विषय में लिखा है कि इनको अपने पूर्वजन्म के कर्मों की स्मृति बनी हुई थी । इसीसे राज्य मिलने पर भी इन्होंने उसे परित्याग किया और निष्काम ईश्वरोपासना में अपना सारा जीवन व्यतीत किया । (विष्णुपुराण)

अग्निष्टोम=चाक्षुष मनु के एक पुत्र का नाम, वैदिक यज्ञ का नाम, जो कि ब्रह्मा के पूर्व दिशा वाले मुँह से गायत्री और ऋग्वेद के साथ उत्पन्न हुआ । (विष्णुपुराण)

अग्निष्वात्ता=ये एक प्रकार के पितृगण हैं जो पितृलोक में रहते हैं । इस लोक में वे गृहस्थ जाते हैं जो अग्निहोत्र नहीं करते । (विष्णुपुराण)

अग्निवर्चे=पौराणिक सूत के एक शिष्य का नाम, जो पीछे से प्रसिद्ध पुराणाचार्य हुए हैं ।

अग्निवर्ण=सूर्यवंशीय राजा सुदर्शन का पुत्र । ये इन्द्रिय-परायण विलासी राजा थे । सुदर्शन राज्य का भार जब इनको देकर और वानप्रस्थाश्रम

ग्रहण कर, नैमिषारण्य को चले गये, तब इनके जाने के बाद, अग्निवर्ण की विलासिता और भी बढ़ गयी। प्रजाओं को इनका दर्शन दुर्लभ हो गया। मन्त्रियों को राज्यभार दे कर ये सर्वदा अन्तःपुर में ही रहते थे। अन्त में यक्ष्मारोग से पीड़ित होकर अकाल ही में इन्होंने अपनी लीला समेट ली। (रघुवंश)

अग्निवेश्मन्=गोत्र-प्रवर्तक एक ऋषि जो वैदिक काल में विद्यमान था।

अग्निवेश्य=(१) ये अग्नि के पुत्र थे और ये धनुर्विद्या में बड़े निपुण थे। द्रोणाचार्य के पिता भरद्वाज से इन्होंने धनुर्विद्या सीखी थी। गुरु भरद्वाज ने सन्तुष्ट हो कर इन्हें एक आग्नेयास्त्र दिया था। प्रसिद्ध कुरु-पाण्डव के गुरु द्रोणाचार्य ने इन्हीं से धनुर्विद्या की शिक्षा पायी थी। अग्निवेश्य ने गुरुदत्त आग्नेयास्त्र गुरुपुत्र और निज शिष्य द्रोण को दे दिया था।

(२) एक आधुनिक पण्डित जिन्होंने वैद्यक का एक निदान बनाया था और चरक का प्रतिसंस्कार भी किया था।

अग्नीन्ध्र=ये अग्निबाहु के एक भाई थे। अपने पिता के कहने से जम्बुद्वीप के राजा बने थे। इन के नौ बेटे हुए, जिनकी कथा पुराणों में पायी जाती है। (विष्णुपुराण)

अग्निशर्मन्=क्रोधी एक प्राचीन ऋषि। ये अपने क्रोध के लिये प्रसिद्ध हैं। अभी तक भी बड़े क्रोधी की तुलना इन्हींसे की जाती है।

अग्नेयी=उसकी स्त्री का नाम। यह ध्रुववंश की थी। इसके छः पुत्र उत्पन्न हुए जिनके नाम ये हैं; अङ्ग, सुमनस, क्रत, स्वांती, अङ्गिरा और शिव।

अघासुर=दानव बकासुर का यह छोटा भाई था। इसकी बड़ी बहिन का नाम पूतना है। पूतना के मारे जाने पर, कंस ने कृष्ण को मारने के लिये इसे भेजा था। जब श्रीकृष्ण गोप-बालकों के साथ गौ चराते थे,तब अघासुर अजगर बन कर वहाँ बैठा था। इसके नीचे का ओठ भूमि में और ऊपर का ओठ आकाश में लगाहुआ था। गोप बालक और गौ बछड़े सभी उसके पेट में बिना जाने चले गये। यह देख कर,श्रीकृष्ण भी चले गये और उसके पेट में जा कर अपना शरीर फैलाया जिससे अघासुर का पेट फट गया और वह भी मर गया। पुनः श्रीकृष्ण गोपबालक और गौ बछड़ों के साथ निकल आये। (श्रीमद्भागवत)

अघोर=शिव का दूसरा नाम, अघोरपन्थी या अघोरी नामक एक शैवसम्प्रदाय है। इनके उपासनीय अघोर हैं। घृणायोग्य पदार्थों से प्रेम करना ही इनका उद्देश्य है, कच्चा माँस आदि खाना इनका आचार है।

अङ्ग=बलिराज का क्षेत्रज पुत्र। अङ्ग का राज्य भी इन्हीं के नाम से परिचित होता है। जन्मान्धमहर्षि दीर्घतमा के औरस और महारानी सुदेष्णा के गर्भ से पाँच पुत्र उत्पन्न हुए थे, जिनके नाम ये हैं। अङ्ग, वङ्ग, कलिङ्ग, पुण्ड्र और सूक्ष्म। गङ्गा और सरयू का सङ्गम स्थान अङ्गदेश कहा जाता है। जिस स्थान पर आज गङ्गा के उत्तर छपरा ज़िला और दक्षिण आरा ज़िला है। रामायण के समय में आरा ज़िला बीहड़ जङ्गल था। इसी वन में ताड़का नाम की राक्षसी अपने परिवार के साथ रहती थी। महाभारत में इसीको अङ्गदेश लिखा है। दुर्योधन ने कर्ण को इसी देश का राजा बनाया था, अङ्ग का जन्मविवरण महाभारत में इस प्रकार लिखा है—उतथ्यकुमार वेदज्ञ महर्षि दीर्घतमा ने प्रद्वेषी नाम की एक रूपवती ब्राह्मणकन्या को ब्याहा था। प्रद्वेषी के गर्भ से गौतम आदि कई एक पुत्र उत्पन्न हुए। अन्धे पति और पुत्रों के पालन में असमर्थ होने के कारण उसने उधर से मुँह मोड़ लिया। उसी समय से दीर्घतमा ने नियम किया कि अब से स्त्रियों को पति की अधीनता में रहना पड़ेगा। जीवित या मृत पति के प्रति यदि कोई स्त्री अनादरबुद्धि करेगी, तो उसे पतित होना पड़ेगा। ऐश्वर्य भोग करने का अधिकार विधवाओं को नहीं रहेगा। पति के वाक्यों से क्रुद्ध हो कर प्रद्वेषी ने अपने पुत्रों को आदेश किया कि इन्हें गङ्गा में छोड़ दो। क्रूर और मूर्ख पुत्रों ने अपने पिता को बाँध कर गङ्गा में छोड़ दिया। दीर्घतमा

बहते बहते बलिराज की राजधानी के पास पहुँचे, भाग्य से बलिराज गङ्गा स्नान करने गये थे। ऋषि को उन्होंने निकलवाया, और उनकी सब बातें सुनीं। उनकी सब बातें सुन कर बलिराज बड़े आदर से उनको अपने घर ले आये। महारानी सुदेष्णा के कोई सन्तति नहीं थी। राजा ने अपनी रानी में धर्मकार्यों में कुशल पुत्र उत्पन्न करने की प्रार्थना की। ऋषि ने स्वीकार किया, बलि ने भी अपनी रानी को महर्षि के पास जाने की आज्ञा दी। ऋषि को अन्धा और बूढ़ा देख रानी स्वयं तो उनके पास नहीं गयी, किन्तु अपनी दासी को उनके पास भेज दिया। दासी के गर्भ से काक्षीवत् आदि ग्यारह पुत्र ऋषि ने उत्पन्न किये। लड़कों के बड़े होने पर बलि उन्हें अपना पुत्र समझ उनकी शिक्षा का वैसा ही प्रबन्ध करने लगे। उस समय मुनि ने कहा कि महाराज ये आपके पुत्र नहीं हैं, ये महारानी की दासी के पुत्र हैं। यह सुन कर राजा ने रानी को मुनि के पास जाने के लिये बाध्य किया। महर्षि ने सुदेष्णा के गर्भ से पाँच पुत्र उत्पन्न किये, जिनका नाम ऊपर लिखा है। महर्षि ने सुदेष्णा से कहा कि तुम्हारे पुत्रों का राज्य भी उन्हींके नाम से प्रसिद्ध होगा।

(महाभारत, आ. प.)

अङ्गद=(१) वानरराज बालि का पुत्र। बालि को मार कर रामचन्द्र ने उसके छोटे भाई सुग्रीव को राजगद्दी पर बैठाया, अङ्गद युवराज बनाये गये। अङ्गद की माता का नाम तारा था। सुग्रीव की सेना के साथ लङ्का में आ कर, इन्होंने अपनी वीरता का परिचय दिया था। एक दिन युद्ध में अङ्गद ने इन्द्रजीत को भी हराया था।

(रामायण)

अङ्गद गुरु=(२) ये गुरु नानक के शिष्य थे और उनके पश्चात् उनकी गद्दी पर बैठे थे। ये जाति के पञ्जाबी खत्री थे। इनके पिता का नाम फेरूमल था और माता का नाम केशभराई था। फ़ीरोज़पुर में संवत् १५६१ में इनका जन्म हुआ था। इनके दो पुत्र और दो कन्यायें थीं। ये पहले कुलप्रथा के अनुसार वैष्णवी देवी के उपासक थे। घटनावश गुरु नानक से इनकी भेंट हुई और ये सिखधर्म में दीक्षित हो गये। संवत् १६०६ में इनका शरीरपात हुआ। मरते समय इनकी उम्र ४५ वर्ष की थी।

अङ्गनलाल=हिन्दी के कवि, इनका उपनाम रसाल है। ये बिलग्राम ज़िला हरदोई के रहने वाले थे, इनका जन्म सन् १८२३ ई० में हुआ था।

अङ्गराज=अङ्गदेश का अधिपति कर्ण, अङ्गदेश गङ्गा और सरयू के संगम तीर पर है, जो आरा ज़िला इस समय कहा जाता है। किसी किसी का कहना है कि वैद्यनाथ से लेकर उड़ीसा-भुवनेश्वर तक अङ्गदेश है। मैं समझता हूँ कि भागलपुर का ज़िला अङ्गदेश है। कर्ण की राजधानी भागलपुर ही में थी। दुर्योधन ने कर्ण को अङ्गदेश का राजा बनाया था।

अङ्गारपर्ण=एक गन्धर्व, वनवास के समय सोमाश्रयन स्थान से जब पाण्डव गङ्गापार उतरने लगे, तब उनकी इस गन्धर्व से भेंट हुई थी। उस समय गन्धर्व भी गङ्गा में स्त्रियों के साथ जलक्रीड़ा करता था। उसने इनको वहाँ आने के लिये मना किया। अर्जुन से इसका विवाद हो गया। बातों ही बातों में बात बढ़ गई। दोनों ओर से बाणवर्षा होने लगी। अर्जुन के बाणों से वह गन्धर्व अचेत हो कर गिर पड़ा। अर्जुन उसे घसीट कर अपने भाइयों के पास लाये और उसकी स्त्री की प्रार्थना से सन्तुष्ट हो कर युधिष्ठिर ने उसे छुड़वा दिया।

अङ्गिरा=ब्रह्मा का मानस पुत्र, इसके दो पुत्र थे। उतथ्य और बृहस्पति, बृहस्पति छोटे थे। अङ्गिरा एक बड़े तेजस्वी ब्राह्मण थे। इनका तेज अग्नि से भी बढ़ गया। इनके तेज से भयभीत हो कर, अग्नि जल में छिप गये थे। अग्नि आंङ्गिरा के तेज से अत्यन्त भीत और ग्लानियुक्त हुए थे, परन्तु अपनी ऐसी दशा का कारण जान नहीं सकते थे। उस समय वे यही सोचते थे कि क्या ब्रह्मा ने संसार के लिये दूसरे अग्नि की सृष्टि की है। क्योंकि बहुत दिनों तक तपस्या करने से मेरा अग्नित्व नष्ट

होगया है । इस समय क्या करना चाहिये, किस प्रकार पुनः मुझे अग्नित्व मिलेगा । अग्नि इसी प्रकार की और अनेक चिन्ता कर रहे थे कि उसी समय महर्षि अङ्गिरा वहाँ उपस्थित हुए और बोले "भगवन्! आप शीघ्र ही अपना तेज प्रकाशित कर लोक का कल्याण करें । अन्धकार दूर करने के लिये ही विधाता ने आपकी सृष्टि की है । अतएव आप अपने अधिकार का उपभोग करें ।" अग्नि ने कहा—"हमारा तेज इस समय नष्ट हो गया है, इस समय आप ही ने अग्नित्व प्राप्त कर लिया है । अब संसार आप ही को अग्नि मानेगा, हमको कोई पहचान भी नहीं सकता । अतएव मैं अब अपना अधिकार छोड़ता हूँ । पहले अग्नि आप ही बनें और मैं दूसरा अग्नि बनूँगा ।" इसके उत्तर में अङ्गिरा ने कहा—"मैं आपका अधिकार लेना नहीं चाहता । अपने अधिकार का आप ही उपभोग करें और हविष्य को वहन कर संसार के लिये स्वर्ग का मार्ग साफ़ करें और कृपा कर हमको एक पुत्र दें ।" अग्नि ने प्रसन्नतापूर्वक अपने तेज को ग्रहण किया और महर्षि अङ्गिरा को पुत्र उत्पन्न होने के लिये वरप्रदान किया । अग्नि के वर से उत्पन्न पुत्र का नाम अङ्गिरा ने बृहस्पति रखा । (महाभारत, वन. प.)

(२) ये एक धर्मशास्त्रप्रवर्तक ऋषि थे, इनके बनाये धर्म शास्त्र का नाम "अङ्गिरा" संहिता है, ये सप्त ऋषियों के अन्तर्गत अन्यतम ऋषि हैं ।

अच्छर अनन्य=हिन्दी के एक कवि, इनका जन्म सन् १६२३ ई० में हुआ था, इनकी रचना विशेष कर शान्तरस की ओर झुकी हुई होती थी ।

अज=अयोध्या के सूर्यवंशी राजा । ये महाराज रघु के पुत्र थे । विदर्भराज की कन्या इन्दुमती ने स्वयंवरप्रथा के अनुसार अज को अपना पति बनाया था । विवाह के पश्चात् अज इन्दुमती को ले कर जा रहे थे । स्वयंवरसभा में विफल-मनोरथ राजाओं ने मार्ग में बलपूर्वक अज से इन्दुमती को छीनना चाहा । दोनों दलों में युद्ध होने लगा । अज सम्मोहन नामक अस्त्र से राजाओं को अचेत कर, इन्दुमती के सहित अयोध्या पहुँचे । पुत्र के विजय की बात सुन, राजा रघु ने अपने पुत्र और पुत्रवधू का आदर के साथ स्वागत किया । अज के वयस्क होने पर रघु ने उनको राज्यभार दे कर वानप्रस्थाश्रम ले लिया । इन्दुमती के गर्भ से राजा दशरथ का जन्म हुआ था, दशरथ की बाल्यावस्था ही में इन्दुमती का परलोक-वास हो गया । राजा अज ने दशरथ के योग्य होने तक, राज्यशासन किया था; परन्तु पुनः विवाह नहीं किया था । दशरथ के वयस्क होने पर राजा अज राज्यभार उनको दे कर, गङ्गा सरयू के किनारे चले गये और वहाँ उन्होंने अनशनव्रत करके देह त्याग दी । (रघुवंश)

अजया=कर्दममुनि के पुत्रगण । ये वैश्यों के पितृगण हैं ।

अजवेश (प्राचीन)=हिन्दी के कवि, इनका जन्म सन् १५११ ई० में हुआ था । कहा जाता है ये बान्धवेश वीरभानुसिंह की राजसभा के राजकवि थे और उस प्रान्त में उस समय, इन का बहुत आदर था । (भारतीय प्रचलित साहित्य)

अजवेश (नवीन)=ये रींवाँ नरेश महाराज विश्वनाथसिंह की राजसभा के राजकवि थे । इनका समय लगभग सन् १८३० ई० कहा जाता है ।

अजगव=महादेव का धनुष, जो राजा पृथु के जन्म के समय आकाश से गिरा था । इसके साथ दैवीबाण और एक राजछत्र भी गिरा था ।

अजक=(१) पुरुरवा के वंशज एक राजा । इनके पिता का नाम सुमन्त और पितामह का नाम जन्हु था ।

(२) मगध देश के एक राजा का नाम । ये राजा प्रद्योत के वंशज थे ।

अजमध=(१) ये सुहोत्र के पुत्र थे, और अनेक वैदिक ऋचायें इनके द्वारा प्रादुर्भूत हुईं ।

(२) युधिष्ठिर की एक उपाधि ।

(३) चन्द्रवंशीय २६ वाँ राजा ।

अजमीढ=राजा हस्तिन के पुत्र । इन्हीं राजा ने वह प्रसिद्ध हस्तिनापुर बसाया था, जो गङ्गा की बाढ़

से नष्ट हो गया। गङ्गा के उतरने पर जब उस नगर की खोज की गयी, तब वर्त्तमान दिल्ली से ६० मील पूर्व की ओर इसका खंडहर मिला।

अजमुख=दक्षप्रजापति का दूसरा नाम। इन्होंने अपने जामाता शिव का अपमान करने के लिये एक यज्ञ किया था, जिसमें शिव और सती के अतिरिक्त सभी निमन्त्रित हुए थे। जब पिता के यज्ञ का समाचार सती ने सुना, तब वे किसी प्रकार पति की आज्ञा लेकर पिता के यज्ञ में उपस्थित हुईं; परन्तु वहाँ जा कर पिता के मुख से अपने पति की उन्हें निन्दा सुननी पड़ी। इससे उनको बड़ा कष्ट हुआ! उनका कष्ट यहाँ तक बढ़ा कि यज्ञकुण्ड में गिर कर, उन्होंने अपना शरीर छोड़ दिया। इससे क्रुद्ध हो कर महादेवजी ने वीरभद्र की सृष्टि की। वीरभद्र ने दक्ष का यज्ञ नष्ट भ्रष्ट कर डाला। महादेवजी ने दक्ष का सिर काट कर अलग कर दिया। फिर दक्ष की स्त्री की स्तुति से प्रसन्न हो कर महादेवजी ने कहा कि दक्ष के शरीर से बकरे का मूँड़ जोड़ दो। ब्रह्मा ने वैसा ही किया। तब से दक्षप्रजापति की अजमुख नाम से प्रसिद्धि हुई।

अजन्ता=एक नदी का नाम, जो बम्बई प्रदेश में तापती नदी के पास है।

अजयसिंह=चितौर के महाराणा। ये राणा लक्ष्मणसिंह के पुत्र थे। अलाउद्दीन की उद्दण्डता से चितौर की स्वर्गीय शोभा और रणबांकुरे सिसोदिया क्षत्रियों के नाश होने पर, एकमात्र अवशिष्ट कुमार अजयसिंह मेवाड़ की राजगद्दी पर बैठे। महाराणा अजयसिंह के राज्यभार लेने के समय, मेवाड़ की दशा विलक्षण थी। मेवाड़ की पुरानी शोभा एवं सम्पत्ति कुछ भी नहीं रह गई थी। किन्तु ऐसी अवस्था में भी राजपूत कुल का स्वच्छ गौरव, वीरता, आत्माभिमान और धर्मप्रेम का अङ्कुर वर्त्तमान था। इसी कारण अजय हताश नहीं हुए। उन्होंने अपने कुल का गौरव बढ़ाने के लिये प्राणपण से चेष्टा की और वे अपने उद्योग में सफल भी हुए थे। इनका जन्म १३वीं शताब्दी में हुआ था।

अजातशत्रु=(१) युधिष्ठिर का दूसरा नाम, क्योंकि वे किसी को अपना शत्रु नहीं समझते थे।

(२) उपनिषद्वर्णित एक राजा का नाम। इस राजा की राजधानी वाराणसी में थी। ये वेदशास्त्र में बड़े निपुण थे। इन राजा को ब्रह्मज्ञान की शिक्षा देने के लिये महर्षि गार्ग्य गये थे। राजा अजातशत्रु ने महर्षि गार्ग्य का बड़े आदर के साथ स्वागत किया और तत्त्वज्ञान की शिक्षा प्राप्त करने के लिये, एक हज़ार गौओं को पारितोषिक में देना चाहा, परन्तु शास्त्रों में अजातशत्रु की इतनी निपुणता थी कि गार्ग्य उनको उपदेश तो क्या देते, स्वयं उनसे अनेक विषयों का उपदेश ले कर वे वहाँ से लौटे।

(३) मगध के एक प्राचीन राजा। इनके पिता का नाम राजा बिम्बिसार था। राजा अजातशत्रु का ४८९ ख़ी. के पूर्व मगध में शासन था, ५३० ख़ी. के पूर्व मगध के राजासन पर बिम्बिसार बैठे थे।

अजामिल=एक दुराचारी ब्राह्मण का नाम। यह पहले साधु था, परन्तु पीछे सङ्गदोष से यह बेजोड़ दुराचारी बन गया। रखनी के गर्भ से इसके दस पुत्र हुए थे, जिनमें एक का नाम नारायण था, वह इसका प्रिय पुत्र था। मरने के समय इसने अपने पुत्र नारायण को पुकारा। इसको लेने के लिये यमदूत और विष्णुदूत दोनों पहुँचे, दोनों में तर्क वितर्क होने लगा। यमदूत कहते थे कि इसको अपने पापों का फल भोगना पड़ेगा। विष्णुदूत कहते थे कि इसने नारायण का नाम स्मरण किया है। अतएव हमलोग इसको वैकुण्ठ ले जाँयगे। लोग कहते हैं कि विष्णुदूत ही इसे वैकुण्ठ ले गये। परन्तु श्रीमद्भागवत में लिखा है कि यमदूत और विष्णुदूत की बातें सुन कर अजामिल को ज्ञान हो आया, उसने सोचा कि यदि अन्य अभिप्राय से भी नारायण के नाम स्मरण करने का यह फल है तो भक्तिपूर्वक भगवत्सेवा का कितना फल होगा। यही सोच कर वह हरिद्वार चला गया और अनन्य चित्त से भगवान् की उपासना करने लगा। अन्त में विष्णुदूत उसे वैकुण्ठ ले गये।

अजित=राठौरवीर राजा यशवन्तसिंह का पुत्र, महाराजा यशवन्तसिंह के स्वर्ग सिधारने पर सभी उनकी रानियाँ उनके साथ जलने को उद्यत हुईं। उनमें दो रानियाँ गर्भवती थीं। लोगों के बहुत समझाने पर उन दोनों गर्भवती रानियों ने प्रसव तक जीना उचित समझा। यथासमय उन दोनों में से एक रानी के पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम अजित रखा गया। पुत्र के कुछ बड़े होने पर, राठौरवीर राजकुमार तथा राजपरिवार के और लोगों को साथ ले, अपने देश की ओर चले। परन्तु औरङ्गज़ेब से यह बात देखी नहीं गयी। राठौरों से कुमार अजित को छीन लेने का वह प्रयत्न करने लगा। उसने राठौर सर्दारों को मारवाड़ का राज्य देने का लोभ दिखाया। राठौरों की राजभक्ति का उसे ज्ञान नहीं था। उसे यह मालूम नहीं था कि भारतवासी इन्द्रपुरी के समान ऐश्वर्यशाली नगर का अधिकार दे कर राजा का अपकार करना नहीं चाहते। इसीसे उसने सामान्य लोभ दिखा कर राठौरों को अपने वश में करना चाहा था। अतएव राठौरों का कोरा उत्तर पा कर, उसे बड़ा क्रोध उपजा; उसने उसी समय अपनी सेना को, राठौरों का वध करने की आज्ञा दी। यह समय राठौरों के लिये बड़ा ही भयङ्कर था, उन लोगों ने उस समय बड़ी धीरता और विचार से काम लिया। राजकुमार अजित को राठौरवीर दुर्गादास ने मिठाइयों के टोकरे में रख कर एक विश्वासी मनुष्य के यहाँ भेज दिया। अब वे निश्चिन्त हुए। अब वे अपनी तेज़ तलवारों का प्रभाव यवनसेना को दिखलाने लगे। जिस प्रभुभक्त वीर ने कुमार अजित की रक्षा का भार ले रखा था, वह खीची वंश का एक सर्दार था। उसका नाम मुकुन्द था। जिस समय दुर्गादास दक्षिण में लड़ने को गये थे, उस समय अन्य सर्दारों ने मुकुन्द के यहाँ दूत भेजा कि अब हमें अपने राजकुमार का दर्शन करा दो। पहले तो उसने दुर्गादास के आजाने तक ठहरने के लिये उनसे अनुरोध किया, परन्तु उनकी अधीरता देख कर उसने राजकुमार को सर्दारों से मिला दिया। दुर्गादास की महानुभावता से कुमार अजित राजगद्दी पर बैठे। अजितसिंह का व्याह राना के चाचा की लड़की से हुआ था। इन्होंने मुसल्मानों से बड़ी लड़ाइयाँ लड़ीं। कई बार इन्हें मारवाड़ की राजगद्दी छोड़ कर भागना भी पड़ा था, परन्तु पुनः वे मारवाड़ का सिंहासन पागये। सांभर के युद्ध में इनका विजय हुआ था। बीकानेर पर भी इन्होंने चढ़ाई की थी। अजित ने राजा जयसिंह को अजमेर के सिंहासन पर बैठाने का उद्योग किया था। वृद्धावस्था में इन्होंने कुरुक्षेत्र आदि की तीर्थयात्रा की थी। (टाड्स राजस्थान)

अजितापीड=कश्मीर के राजा। इन्होंने चिप्पट जयापीड के अनन्तर ३६ वर्षों तक कश्मीर का राज्य किया था। पुनः यस्म आदिकों ने इन्हें राज्यच्युत करदिया। (राजतरङ्गिणी)

अजीगर्त=ऐतरेय ब्राह्मण में इनका नाम पाया जाता है। इनके तीन लड़के थे, शुनःशेप, शुनःपुच्छ और शुनोलाङ्गूल। ये लड़कों के साथ वन में रहा करते थे। इन्होंने ही अपने पुत्र को यज्ञ में बलि देने के लिये बेंचा था। (ऐतरेयब्राह्मण)

अजीतसिंह=बूँदी के राजा। ये उम्मेदसिंह के पुत्र थे। जब उम्मेदसिंह सांसारिक झगड़ों से निवृत्त हो कर बदरीनाथ की ओर तीर्थयात्रा के लिये चले गये, तब अजीतसिंह अपने पिता का अन्त्येष्टि सत्कार कर के राज्यारूढ़ हुए। राज्यारूढ़ होने के पश्चात् कुछ समय बीत गया। बीलहठा नामक एक गाँव में आम के वृक्ष थे, और उनके फल बहुत ही मीठे होते थे। बूँदी के रावराजा ने उन वृक्षों को अपने राज्य में मिला लेने के लिये वहाँ एक क़िला बनवा दिया और उसकी रक्षा के लिये कुछ सेना भेज दी। राणा को ये समाचार विदित हुए। वे अपनी सेना और सर्दारों को अपने साथ ले कर वहाँ गये और वहाँ जा कर उन्होंने रावराजा को अपने डेरे में बुलवाया। अजीतसिंह आये और उन्होंने आ कर ऐसी नम्रतापूर्वक उनसे बात की कि राणा का क्रोध बिलकुल शान्त हो गया। दोनों में प्रेमभाव स्थापित हुआ। अजीतसिंह ने राणा को

अपने यहाँ गौरी उत्सव में सम्मिलित होने के लिये निमन्त्रण दिया। उन्होंने भी सहर्ष स्वीकार किया। उसी समय सूअर का अहेर खेलने की भी ठहरी थी। उम्मेदसिंह उस समय बदरीनाथ से लौटे आ रहे थे। उन्होंने अजीतसिंह को कहला भेजा कि तुम राणा के साथ शिकार में सम्मिलित न हो, नहीं तो अमङ्गल होगा, परन्तु अजीतसिंह ने पिता की आज्ञा न मानी। उन्होंने पिता को उत्तर भेजा कि—"मैं कायर पुरुषों के समान कभी आचरण नहीं कर सकता"। दोनों अहेर खेलने चले, परन्तु अजीतसिंह का भाव राणा की ओर से बदला हुआ था। क्योंकि राणा के मंत्री ने उनको कुछ अपमानजनक बातें कही थीं। शिकार खेलने के अनन्तर राणा ने अजीत को बिदा किया। वह भी कुछ दूर तक चला आया। इकाएक उसको अपने अपमान की बात स्मरण हो आयी। वह लौट कर राणा के पास गया। राणा ने इसे आते देख हँस कर उसे पुनः बिदा कर दिया। अब की बार यह थोड़ी दूर लौट तो आया, परन्तु शीघ्र ही घूम कर इसने राणा के एक भाला मारा। इस भाले से आहत हो कर राणा का काम समाप्त हो गया। अजित अपने घर लौट आये। दो ही महीने के भीतर अजीत का भी परलोकवास हो गया। क्योंकि इन पर एक सती का शाप पड़ा था। कहते हैं कि बम्बावादा की सती रानी ने प्रज्वलित चिता में जलते समय दोनों राजकुल को शाप दिया था। सती ने कहा था कि वासन्ती उत्सव होने के पहले, यदि राव और राणा मिलेंगे तो अवश्य ही दोनों की मृत्यु होगी। उसी शाप से दोनों को प्राण खोने पड़े।

(टाड्स राजस्थान)

अञ्जना=रामायण के प्रसिद्ध वानरेन्द्र हनुमान् की माता। इनके पति का नाम कपिराज केशरी था। हनुमान् केशरी के क्षेत्रज पुत्र थे। वायु के औरस और अञ्जना के गर्भ से हनुमान् उत्पन्न हुए थे। (रामायण)

अणीमाण्डव्य=ये एक सत्यवादी जितेन्द्रिय, तपस्वी, मौनी और धार्मिक ब्राह्मण थे। एक समय ये मौनी ब्राह्मण अपने आश्रम के बाहर किसी वृक्ष की छाया में योगाभ्यास करते थे। उसी समय चोरों का एक झुण्ड इनके आश्रम में जा कर छिप गया। उन चोरों का पीछा करने वाला राजदल वहाँ आया और महर्षि से चोरों का पता पूँछने लगा, परन्तु अणीमाण्डव्य मौनी थे, इस कारण उन्होंने कुछ भी उत्तर न दिया। इतने में चोरी की वस्तु वहाँ ही छोड़ कर चोर भी भाग गये। उन लोगों ने चोरी की वस्तु वहाँ देख कर महर्षि को भी चोरों के साथ पकड़ लिया और उन्हें राजा के सामने उपस्थित किया। नगरपाल आदि से सब बातें सुन कर चोरों के साथ राजा ने महर्षि का भी वध किये जाने की आज्ञा दी। राजपुरुषों ने राजा की आज्ञा से माण्डव्य को शूली पर लटका दिया। ध्यानमग्न मौनी मुनि अपनी इस विपत्ति का कुछ भी कारण नहीं जानते थे, परन्तु शूलविद्ध हो कर भी बिना खाये पिये बहुत दिनों तक जीवित रहे। राजा को इसकी खबर मिली, वे स्वयं वहाँ आये, और मुनि को शूली से उन्होंने उतरवाया। राजा ने शूली निकलवाने की बड़ी चेष्टा की, परन्तु वह न निकल सकी। तब राजा ने उसे यों ही छोड़ कर इधर उधर की रस्सियाँ कटवा दीं। माण्डव्य उसी प्रकार शूल से विद्ध हो कर भी अनेक तीर्थों की यात्रा करते रहे। तभी से उनका नाम अणीमाण्डव्य पड़ा। एक समय इन्होंने यमराज के पास जा कर पूछा था कि मेरी ऐसी दशा क्यों हुई। यमराज ने उत्तर दिया, आपने एक पतङ्ग की पूँछ में एक बार लकड़ी घुसेड़ी थी। इसी कारण आपको यह कष्ट हो रहा है। मुनि ने कहा आपने मेरे छोटे अपराध के कारण गुरुतर दण्ड दिया है। इस कारण आपको शूद्रयोनि में जन्म लेना पड़ेगा।

(महाभारत)

अण्ड=ययाति के पुत्र। ये पुरु से छोटे थे, ययाति ने अपने ज्येष्ठ पुत्र अणु को अपना राज्य दिया था, और पुरु ने अणु को राजप्रतिनिधि बना कर दक्षिण दिशा का शासन करने के लिये भेजा था।

(महाभारत)

अतिकाय=लङ्केश्वर रावण का पुत्र, ब्रह्मा ने इस पर प्रसन्न हो कर एक कवच दिया था। इस कवच के प्रभाव से यह देवताओं का भी अवध्य हो गया था, इसका लक्ष्मण के साथ घोर युद्ध हुआ था। और उसी युद्ध में यह मारा भी गया था। (रामायण)

अतिथि=कुश का पुत्र, और रामचन्द्र का पौत्र, इनके राज्यकाल की किसी विशेष घटना का कहीं पता नहीं चलता।

अत्रि=ब्रह्मा के मानस पुत्र। ये सप्तर्षियों में से एक हैं। कर्दम प्रजापति की कन्या अनसूया इनकी स्त्री थी। महर्षि दुर्वासा और चन्द्रमा इनके पुत्र थे। मनुस्मृति में लिखा है कि मनु से दश प्रजापति उत्पन्न हुए थे, जिनमें से अत्रि एक हैं। ये धर्मशास्त्रप्रवर्त्तक थे। इनके बनाये धर्मशास्त्र का नाम अत्रिसंहिता है।

अथर्ववेद=चौथे वेद का नाम। यह ब्रह्मा के उत्तरीय मुँह से उत्पन्न हुआ था। सुमन्त ने इस वेद को अपने शिष्य कबन्ध को पढ़ाया था। इसका अधिक सङ्कलन वेदव्यास ने किया है। इसके पाँच कल्प हैं। इसमें अनुष्ठान विधान का वर्णन है। यह प्रधानतः नौ भागों में विभक्त है। पहले अथर्ववेद की बहुत सी शाखाएँ थीं। परन्तु इस समय एक शौनक शाखा के अतिरिक्त दूसरी संख्या नहीं पाई जाती है। चरणव्यूह के मत से अथर्ववेद के बारह हज़ार तीन सौ मंत्र थे, परन्तु इस समय पाँच हज़ार आठ सौ तीस मंत्र हैं। अथर्ववेद के ब्राह्मण का नाम गोपथ ब्राह्मण है। इस समय अथर्ववेद बीस काण्डों में विभक्त है। अथर्ववेद के सङ्कलन करने वालों के विषय में तीन मत प्रचलित हैं, किसी किसी के मत से अथर्व और अङ्गिरा ऋषि के वंशज इसके सङ्कलनकर्ता हैं। कोई भृगुवंशियों को अथर्ववेद का सङ्कलनकर्ता मानते हैं। कुछ लोग कहते हैं कि यज्ञ करने के समय अथर्व ऋषि ने अथर्ववेद का सङ्कलन किया था।

अथर्वा=(१) ब्रह्मा के ज्येष्ठ पुत्र। ब्रह्मा ने अथर्वा को ब्रह्मविद्या का उपदेश दिया था। इन्हीं ही ने सब से पहले अग्नि की सृष्टि की थी और यज्ञ का प्रचार किया था। पहले गद्य पद्य और रीति सभी प्रकार के वेद मंत्र मिले हुए थे। उस समय वेदों का नाम त्रयी था। प्रत्यक्ष फलप्रद शत्रुमारण, उच्चाटन आदि यज्ञ के उपयोगी विषयों को इन्होंने पृथक् किया था। उस समय से वेद के दो भाग हुए। बड़े भाग का नाम त्रयी और छोटे भाग का नाम अथर्ववेद हुआ। महर्षि कृष्णद्वैपायन ने इस त्रयीवेद को भी रचना के अनुसार तीन भागों में विभक्त किया; जिनका नाम ऋक्, यजुः और साम पड़ा।

(२) एक जाति का नाम, इस जाति के नेता अथर्वा थे, और अथर्वा ही का वंशज उस जाति का नेता होता था। पारसी जाति में यह प्रथा आज तक प्रचलित है।

अदिति=महर्षि कश्यप की पत्नी। ये दक्षप्रजापति की कन्या थीं। वामन अवतार में विष्णु ने इन्हींके गर्भ से जन्म ग्रहण किया था। ये देवताओं की माता थीं। नरकासुर के मारने पर श्रीकृष्ण को जो दो कुण्डल मिले थे, उन्हें श्रीकृष्ण ने अदिति को समर्पित किया था। पारिजात को ले कर श्रीकृष्ण और इन्द्र में जो कलह उत्पन्न हुआ था उसका निपटारा अदिति ने किया था। ब्राह्मण ग्रन्थों में अदिति को विष्णु की स्त्री लिखा है।

अदीन=सहदेव के पुत्र थे। देवासुर संग्राम में इनकी प्रसिद्धि हुई।

अदृश्यन्ती=महर्षि वशिष्ठ के ज्येष्ठ पुत्र शक्ति की स्त्री। इसीके गर्भ से प्रसिद्ध महर्षि पराशर का जन्म हुआ था। (महाभारत)

अद्भुत=नवें मन्वन्तर का इन्द्र।

अद्रिका=व्यास की माता। इसीका दूसरा नाम मत्स्यगन्धा या योजनगन्धा था, जिससे व्यासदेव पराशर मुनि के औरस से उत्पन्न हुए थे।

अद्वैत=वेदान्त का एक सिद्धान्त (देखो शङ्कराचार्य)।

अधर्म=ब्रह्मा के पृष्ठदेश से इसकी उत्पत्ति हुई थी। इसके वामभाग से दरिद्रा उत्पन्न हुई थी और इसने उसीसे अपना व्याह किया था।

अधिरथ=अङ्गदेश के रहने वाले एक क्षत्रिय। ये यद्यपि क्षत्रिय जाति के थे, तथापि ये जीविका के लिये सूत (रथवाह) का काम करते थे। इनकी स्त्री का नाम राधा था। एक समय ये दोनों पतिपत्नी स्नान करने के लिये गङ्गा के तट पर गये हुए थे। वहाँ इन लोगों ने एक काठ का सन्दूक बहते देखा। पतिपत्नी ने विचार कर उस सन्दूक का निकालना स्थिर किया। बड़े परिश्रम से उसे गङ्गा की धारा से निकाल कर, वे उसे अपने घर ले आये। सन्दूक तोड़ कर देखा गया, तो उसमें सुन्दर और सुलक्षण कुण्डल कवच सहित एक बालक मिला। इन दोनों ने बड़े प्रेम से उस बालक का लालन पालन किया, उस बालक का नाम इन लोगों ने वसुषेण रखा था। यही बालक वयस्क होने पर कर्ण नाम से एक प्रसिद्ध वीर हुआ था। (महाभारत)

अनङ्ग=कामदेव का दूसरा नाम। पुराने समय में तारकासुर के अत्याचार से पीड़ित हो कर देवता ब्रह्मा की शरण में गये। ब्रह्मा बोले, महादेव के औरस से कार्त्तिकेय जब उत्पन्न होंगे, तब वे ही देवसेनापति हो कर तारकासुर का विनाश कर सकते हैं। महादेव को पुत्र उत्पन्न करने में प्रवृत्त कराने की इच्छा से कामदेव को साथ ले कर देवता हिमालय पर गये। उस समय महादेव हिमालय पर योगमग्न थे। पार्वती को आगे रख कर कामदेव ने महादेव पर पुष्पबाण छोड़ा। उससे महादेव का चित्त चञ्चल हुआ। इसका कारण जानने के लिये उन्होंने नेत्र खोले, तो सामने कामदेव को बैठा देखा। कामदेव ही को उन्होंने अपने योगभङ्ग का कारण समझा। उनकी आँखों से अग्नि की चिनगारियाँ निकलने लगीं। उसीमें पड़ कर कामदेव भी भस्म हो गया। उसी समय से मदन का नाम अनङ्ग हुआ। शिव की क्रोधाग्नि में भस्म होने पर कामदेव कृष्ण के औरस से उत्पन्न हुए उनका नाम प्रद्युम्न पड़ा था और मदन की स्त्री रति भी पति से मिलने की इच्छा से मायावती रूप से उत्पन्न हुई थी।

अनङ्गभीम=उड़ीसा के एक प्राचीन राजा का नाम। कहते हैं कि पुरी का वर्तमान जगन्नाथ का मन्दिर इन ही का बनवाया है। सन् १७६७ ई० में इनका राज्याभिषेक हुआ था। अनेक पुण्य-कार्यों को कर इन्होंने प्रसिद्धि प्राप्त की थी। इन्होंने ६० देवमन्दिर ४० कुए और १५२ पत्थर के घाट बनवाये थे और सौ से अधिक ग्राम इन्होंने ब्राह्मणों को दान में दिये थे।

अनङ्गापीड=ये काश्मीर के राजा थे। इनके पिता का नाम संग्रामपीड था। उस समय के उच्च-राजकर्मचारियों ने अजितापीड को राज्यच्युत कर के अनङ्गापीड को काश्मीर का राजा बनाया था। उत्पल का पुत्र सुखवर्मा इनके सहायक मम्म आदियों की प्रधानता से भीतर ही भीतर जलता रहता था। अतएव इनके राज्यलोभ से सुखवर्मा को बड़ा दुःख हुआ। अनङ्गापीड के राज्याभिषेक के तीन वर्ष के बाद उत्पल मारा गया। सुखवर्मा ने षड्यंत्र रच कर अनङ्गापीड को राज्य से उतार दिया। इन्होंने केवल तीन वर्ष राज्य किया था। (राजतरङ्गिणी)

अनन्त=(१) नागराज। इनका दूसरा नाम शेष, वासुकी, गोनस आदि है। ये महर्षि कश्यप के औरस और कद्रू के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। वयस्क होने पर इन्होंने जटा वल्कल धारण कर बदरिकाश्रम आदि तीर्थों में तपस्या की। इनकी तपस्या से सन्तुष्ट हो कर ब्रह्मा ने इन्हें वर दिया, और ब्रह्मा ने सानुरोध प्रार्थना की कि "भूमि को अपने सिर पर इस प्रकार धारण करो जिस में यह विचलित न होसके" अनन्त ने ब्रह्मा की आज्ञा मान ली। (हरिवंश)

(२) हिन्दी के एक कवि का नाम, ये सन् १६३५ ई० में उत्पन्न हुए थे। इनका रचा "अनन्तानन्द" नामक एक ग्रन्थ है; जिसकी रचना प्रेमियों की बातों को ले कर की गई है।

अनन्तदेव=काश्मीर के राजा। ये हरिराज के पुत्र थे, पिता की मृत्यु के अनन्तर, ये काश्मीर के राजसिंहासन पर बैठे थे। इनकी छोटी अवस्था ही में इनका पितृवियोग हुआ था, अतएव पिता के न रहने से जो राजपुत्रों में दोष पाये जाते हैं, उन दोषों से अनन्तदेव भी बचे

नहीं थे। ख़र्च करने में उनका हाथ खुला हुआ था। चाटुकारों की उनके यहाँ कमी नहीं थी। शाहितनय, रुद्रपाल आदि उनके अत्यन्त प्रिय हो गये थे। उन्हें राजकोष से अधिक वेतन दिया जाता था, परन्तु वे तो भी अधिक धन पाने की इच्छा से सर्वदा अपनी दरिद्रता ही दिखाया करते थे। अनन्तदेव स्वयं विलासी थे, और उनका अपने चाटुकारों पर बड़ा विश्वास था, अतएव वे राज्य में मनमाने कार्य करते थे। रुद्रपाल डाकुओं की रक्षा किया करता था। अतः डाँकू उसे अपना आश्रयदाता समझते थे। राजा का रुद्रपाल अत्यन्त प्रिय था। इसका कारण यह है कि, जालन्धर के राजा इन्दूचन्द्र की छोटी कन्या और उसकी छोटी साली सूर्यमती का ब्याह राजा से करा दिया गया था। सूर्यमती एक सुन्दरी स्त्री थी। जिस प्रकार कर्ण के परामर्श से दुर्योधन अन्यायी हो गया था, उसी प्रकार रुद्रपाल के परामर्श से राजा अनन्तदेव भी दुर्नीतिपरायण हो गये थे।

राजा की ऐसी दशा देख कर कम्पन के राजा ने उनके राज्य पर चढ़ाई की। अनन्तदेव की सेना भी उसके पक्ष में मिल गई थी। परन्तु एकाङ्ग और घुड़सवारों ने इनका पक्ष नहीं छोड़ा था। काश्मीरराज ने उनका सामना किया। दोनों ओर से घोर युद्ध होने लगा। अनन्तदेव ने बड़ी वीरता और बुद्धिमानी से कम्पनराज त्रिभुवन के भालों को बचा कर उन पर तलवार का वार किया। त्रिभुवन बख्तर पहने हुए था। इस कारण उसका सिर तो नहीं कट सका, परन्तु वह रुधिर उगलने लगा, मानों वह अपना प्रताप उगल रहा है। उस समय भी अनन्तदेव प्रौढ़ नहीं हुए थे। बालक का पराक्रम देख त्रिभुवन भयभीत हो कर भाग गया। इस विजय से प्रसन्न हो कर अनन्तदेव ने बहुत दान किया। कहते हैं कि अनन्तदेव की मुट्ठी इस युद्ध में इस प्रकार बँध गई थी कि तीन दिनों तक नहीं खुली।

राज्य का कोपाध्यक्ष अश्वराज रुद्रपाल की प्रधानता से डाह रखता था। इनको नीचा दिखाने की इच्छा से दरदराज अचलमङ्गल और सात म्लेच्छ राजाओं को काश्मीर पर वह चढ़ा ले आया, दरदराज के साथ विशाल डामरों की सेना आई थी। जब वे क्षीरपृष्ठनामक गाँव में आये, तब पराक्रमी रुद्रपाल ने उनकी सेना का सामना किया। उस दिन दोनों ओर से यह निश्चित हुआ कि कल से युद्ध होगा। परन्तु पुनः किसी कारणवश, उसी दिन युद्ध प्रारम्भ हो गया। दोनों ओर के वीर कट कट कर गिरने लगे। देखते देखते दरदराज का भी अन्त हो गया। म्लेच्छ राजाओं में से कितने ही मारे गये और कितने ही क़ैद कर लिये गये। इस प्रकार राजा अनन्तदेव ने इस युद्ध में भी विजय प्राप्त किया। इस युद्ध के समाप्त होने के दो महीने के भीतर ही में रुद्रपाल भी लूतारोग से पीड़ित हो कर मृत्युमुख में पतित हुआ। इसी प्रकार और भी शाहिपुत्र एक एक कर के मर गये।

अनन्तदेव का स्वभाव पुनः परिवर्तित हुआ। वह सूर्यमती के साथ रहने लगा। सूर्यमती के प्रति उसका अनुराग बहुत बढ़ गया। यह कहना भी अनुचित नहीं होगा कि वह स्त्री के वशीभूत हो गया। सूर्यमती ने अपने पुत्र कलश को राजगद्दी देने का उससे अनुरोध किया। राजा उसके कहने को टाल भी नहीं सके। यद्यपि अनन्तदेव को ऐसा करने से मंत्रियों ने रोका था तथापि सूर्यमती की आज्ञा का लंघन वे न कर सके। काश्मीर के राज्यासन पर कलश का अभिषेक हुआ। अनन्तदेव का राज्यसम्बन्ध छूट गया। एक दिन अनन्तदेव के गले में हाथ डाल कर कलश ने कहा कि जब इतने बड़े बड़े राजा मेरे सामने हाथ जोड़ कर खड़े रहते और मुझे देव कहते हैं; तब आपको भी वैसा ही करना उचित है। इससे अनन्तदेव को क्रोध आया, यह देख कर कलश कुछ हँसा और बोला, जब आपके हाथ में कुछ भी शक्ति नहीं है तब आपका क्रोध करना व्यर्थ और हानिकारी है। राजमन्त्री को जब इसकी ख़बर लगी

तब उन्होंने एक कौशल रचा । एक दिन कलश को अनन्तदेव के समीप ले जा कर राजमन्त्री कहने लगे, "महाराज, आपने वृद्धावस्था में राज के झंझटों से पीछा छुड़ा कर अच्छा काम नहीं किया" । क्योंकि हमारे नये महाराज का यह तरुण वय खेलने कूदने और सुख करने के लिये है, सो आपने इनके सिर पर राज्य का भार दे कर इनका सुख छीन लिया । इस बात का कलश के ऊपर बड़ा प्रभाव पड़ा । इसी प्रकार अन्य कौशलों से भी मन्त्री ने पुनः अनन्तदेव को राज्यासन पर बैठाया । अनन्त पुनः राज्य पालन करने लगे । इधर कलश भी बड़ा हुआ। साथ साथ उसकी दुश्चरित्रता भी बढ़ती गयी। पिता पुत्र के बीच का कलह कभी शान्त होता था, कभी बढ़ता था । दो तीन बार अनन्तदेव को राज्य छोड़ कर भागना भी पड़ा था । अन्त में इनकी स्त्री ने भी इनका साथ छोड़ दिया। इन्हीं सब कारणों से अनन्तदेव ने आत्महत्या कर ली । ५३ वर्ष ४ महीना ७ दिन इन्होंने राज्य किया था ।

अनन्दसिंह=ये अहवानदी ज़िला सुलताँपुर के रहने वाले थे और सन् १८७३ ई० में वर्तमान थे ।

अनन्य=हिन्दी के कवि थे । सन् १७३३ ई० में ये जन्मे थे। इनके रचे वेदान्तसम्बन्धी पद प्रायः पाये जाते हैं और इनके बहुत से पद चेतावनी के भी पाये जाते हैं ।

अनन्यदास=हिन्दी कवि । गोंडा के अन्तर्गत चाकेदवा के ये रहने वाले थे और सन् १५४८ ई० में उत्पन्न हुए थे । ये अनन्ययोग नामक ग्रन्थ के रचयिता हैं ।

अनरण्य=अयोध्या के राजा । जिस समय रावण दिग्विजय करने निकला था उस समय ये अयोध्या में राज्य करते थे । अन्यान्य राजाओं के समान रावण अयोध्या पहुँचा, और अनरण्य से लड़ने के लिये या पराजय स्वीकार करने के लिये कहा । इक्ष्वाकुवंशी राजा अनरण्य की सेना लड़ने को तैयार हुई । उनकी सेना में १० हज़ार हाथी, १ लाख घोड़े, और हज़ारों रथ तथा अगणित पैदल थे । दोनों ओर की सेनाओं में युद्ध प्रारम्भ हुआ । अनरण्य की सेना कुछ देर तक तो वीरता के साथ लड़ती रही, परन्तु मनुष्यभक्षी राक्षसों का तेज उससे नहीं अँगेजा गया । अपनी सेना की विकलता और नाश देख कर अनरण्य क्रोधपूर्वक गर्ज कर रावण की ओर आगे बढ़े । इन्होंने रणकुशलता और वीरता दिखाई । रावण के पराक्रमी प्रहस्त आदि सेनापति रणभूमि में नहीं ठहर सके । इन्होंने रावण के सिर में अनेक बाण मारे; परन्तु वे बाण रावण का कुछ बिगाड़ नहीं कर सके । इनका साहस और अधिक बढ़ते देख रावण ने एक चपत जमाया । जिससे ये रथ से गिर पड़े । अन्त में रावण को दशरथपुत्र रामचन्द्रजी के द्वारा मारे जाने का शाप दे कर ये परलोक सिधारे । (रामायण)

अनवरखाँ=इनका जन्म सन् १७२३ ई० में हुआ । ये हिन्दी के कवि थे । इन्होंने बिहारी की सतसई की टीका बनायी है, जिसका नाम अनवार चन्द्रिका है ।

अनसूया=अत्रि मुनि की पत्नी और दक्षप्रजापति की कन्या थी । दक्षप्रजापति के औरस और प्रसूति के गर्भ से उनका जन्म हुआ था ।

(२) महाकवि कालिदास ने अपने शकुन्तला नाटक में भी एक अनसूया को नाटक की पात्री बनाया है । वह शकुन्तला की सखी थी ।

अनाथदास=इनका जन्म सन् १६५६ ई० में हुआ था । इनकी रचना शान्त रसप्रधान होती थी। इनका बनाया एक ग्रन्थ है, जिसका नाम है "विचारमाला" ये हिन्दी के कवि थे ।

अनिरुद्ध=श्रीकृष्ण के पौत्र और प्रद्युम्न के पुत्र । इन्होंने दैत्यराज बाण की कन्या ऊषा को ब्याहा था । पार्वती के वर से ऊषा ने इनको स्वप्न ही में अपना पति बना लिया था और द्वारका से अनिरुद्ध को ले आने के लिये अपनी सखी चित्रलेखा को भेजा था । द्वारका पहुँच कर चित्रलेखा अनिरुद्ध को लेने का उपाय सोच रही थी । उसी समय नारदमुनि वहाँ पहुँच गये । नारद की सम्मति के अनुसार चित्रलेखा श्रीकृष्ण के अन्तःपुर में गई और उसने नारद की बताई

तामसी विद्या के प्रभाव से सब को मोहित कर और अनिरुद्ध को ले कर प्रस्थान किया । मार्ग में उसने सब बातें अनिरुद्ध से कह सुनायीं और उनके साथ ही साथ बाण की राजधानी शोणितपुर में पहुँच कर, वह अपनी सखी ऊषा के मकान में उपस्थित हुई । ऊषा ने अनिरुद्ध से गन्धर्व विवाह कर लिया । इसकी ख़बर जब बाण को लगी, तब उसने अनिरुद्ध को पकड़ने के लिये सेना भेजी । अनिरुद्ध वीर थे । उन्होंने बाण की सेना को मार गिराया । इससे बाण का क्रोध और बढ़ गया । वह स्वयं बाण को पकड़ने के लिये आया । अनिरुद्ध ने भी उसका सामना किया और ये बहुत देर तक लड़ते रहे । परन्तु अन्त में मायायुद्ध में उसने अनिरुद्ध को बाँध लिया । अनिरुद्ध की दशा का समाचार द्वारका में पहुँचा । श्रीकृष्ण बलराम प्रद्युम्न आदि वीरों ने बाण की राजधानी शोणितपुर को घेर लिया और भयङ्कर युद्ध में बाण को पराजित कर, अनिरुद्ध और ऊषा को साथ ले कर वे द्वारका लौट आये । (हरिवंश)

अनु=शर्मिष्ठा के गर्भ से उत्पन्न नहुष पुत्र राजा ययाति का पुत्र । (देखो अणु)

अनुलैन कवि=हिन्दी का एक कवि । इसका जन्म सन् १६९६ ई० में हुआ था । इसका "नखशिख" नामक ग्रन्थ अच्छा बताया जाता है ।

अनुविन्द=ये अवन्ति के राजा थे । इन्होंने महाभारत के युद्ध में दुर्योधन की ओर से लड़ाई लड़ी थी । इनके बड़े भाई का नाम विन्द था । इन दोनों ने अर्जुन से बड़ी लड़ाई की थी । अन्त में दोनों अर्जुन के हाथ से मारे गये ।

अनुमति=अङ्गिरा की चार लड़कियों में से एक लड़की । विष्णुपुराण में लिखा है कि ये चारों लड़कियाँ चन्द्रमा की चार कलाएँ थीं । उस दिन की अधिष्ठात्री देवी, जब कि चन्द्रमा तीसरी और चौथी कला में पहुँचता है ।

(विष्णुपुराण)

अनुह्लाद=हिरण्यकशिपु का छोटा पुत्र, बुद्धिमान् प्रह्लाद का छोटा भाई । (विष्णुपुराण)

अनूपदास=हिन्दी के कवि । इनका जन्म सन् १७४४ ई० में हुआ था । ये शान्त रस के उपासक कवि थे । इनके बनाये शान्त रस के दोहे और कवित्त अनेक पाये जाते हैं ।

अनूपसिंह=बीकानेर के महाराज । ये महाराज करणसिंह के छोटे पुत्र थे । दिल्ली के बादशाह की ओर से रणभूमि में लड़ कर करणसिंह तीन बड़े लड़कों सहित अपने प्राण समर्पण कर चुके थे । करणसिंह के तीसरे पुत्र मोहनसिंह के जीवन के वियोगान्त नाटक का अभिनय फरिस्ता ने दक्षिण के इतिहास में रुलाने वाली भाषा में लिखा है । उस वर्णन से क्षत्रिय जाति की कर्त्तव्य-पालन की दृढ़ता और सम्मान रक्षा की ओर झुकाव का अच्छा पता लगता है ।

राजा करणसिंह के स्वर्गवास होने पर उनके छोटे पुत्र अनूपसिंह सन् १६७४ ई० में बीकानेर के सिंहासन पर बैठे । महाराज अनूपसिंह वीर और साहसी राजा थे । बादशाह ने पाँच हज़ार घोड़ों का मनसब दे कर, इन्हें सम्मानित किया था और औरङ्गाबाद तथा बीजापुर के शासन का भार भी बादशाह की ओर से इन्हींको दिया गया । अनूपसिंह अपने कार्य को योग्यतापूर्वक सम्पादन कर, बादशाह के दरबार में एक प्रभावशाली व्यक्ति हो गये थे । जिस समय काबुल के अफ़गानों ने दिल्ली के बादशाह के विरुद्ध विद्रोह मचा रखा था, उस विद्रोह का दमन करने के लिये अनूपसिंह ही को बादशाह ने भेजा था । ये और इनकी सेना अपने कार्य में सफल हुई थी । वहाँ से विद्रोह शान्त कर ये अपने राज्य में लौट आये । और भी अनेक युद्धों में इन्होंने प्रसिद्धिपूर्वक जय प्राप्त किया था । राजा अनूपसिंह दक्षिण में बादशाही सेना के साथ गये थे । वहाँ उनसे और सेनापति से कुछ मनोमालिन्य हो गया, जिससे वे लौट आये और कुछ दिनों के बाद उनका स्वर्गवास हो गया ।

(टाडस राजस्थान)

अन्ध=अयोध्या में सरयूतीर पर रहने वाला वैश्य जाति का मुनिविशेष । ये शूद्रकन्या को व्याह कर, स्त्री के साथ वन में एक कुटी बना कर रहते थे । एक समय अयोध्या के महाराज दशरथ वन

में अहेर खेलने गये थे । उसी समय अन्धमुनि का केवल एकमात्र पुत्र जल भर रहा था। दशरथ ने हस्ति के भ्रम से शब्दभेदी बाण के द्वारा उसे मार डाला था । बाणविद्ध पुत्र को देख, अन्धमुनि ने अग्नि में जल कर अपने प्राण छोड़ दिये थे। मृत्यु के पूर्व मुनि ने अपने पुत्र को मारने वाले को शाप दिया था कि "मेरे समान तुमको भी पुत्रशोक ही से प्राण त्याग करना पड़ेगा"। अन्धमुनि का यह शाप सफल हुआ था। (रघुवंश)

अन्धक=(१) क्रोष्टा का नाती और युधाजित् का पुत्र। यह प्रसिद्ध अन्धक वृष्णिवंश का पूर्व पुरुष था। वृष्णि का नाती, गांधिनी से श्वफल्क का पुत्र, सात्वत का पुत्र, भीम का पुत्र और रेवत का पिता। (हरिवंश)

नहुष का पुत्र जो क्रोष्टा का पूर्वपुरुष था। यह लिङ्गपुराण में लिखा है। कूर्मपुराण में अन्धक को अंश का पुत्र और सात्वत का पिता लिखा है, किन्तु विष्णुपुराण अन्धक को सात्वत का पुत्र बतलाता है और यही ठीक भी मालूम पड़ता है। क्योंकि हरिवंश भी इस कथन की पुष्टि करता है। पद्मपुराण में अन्धक नाम के एक मुनि का भी उल्लेख पाया जाता है।

(२) दैत्य विशेष, कश्यप के औरस और दिति के गर्भ से यह उत्पन्न हुआ था। देवताओं ने जब दिति के समस्त पुत्रों को मार डाला, तब दिति ने देवों से अवध्य एक पुत्र होने की प्रार्थना की। कश्यप ने स्वीकार किया, और यथासमय दिति के गर्भ से एक पुत्र उत्पन्न हुआ। इस पुत्र के हज़ार बाहु हज़ार सिर और दो हज़ार नेत्र थे। यह यद्यपि अन्धा नहीं था तथापि मार्ग में अन्धों के समान झूम झूम कर चलता था इस कारण इसकी प्रसिद्धि अन्धक नाम से हुई थी। यह दैत्य बड़ा बलवान् और अत्याचारी था। इसने त्रिलोक के प्राणियों को कष्ट देना प्रारम्भ किया। अन्त में महादेव ने मन्दर पर्वत पर जा कर इसका वध किया था। (हरिवंश) और जगह अन्धकासुर के मारे जाने का वृत्तान्त दूसरे रूप से लिखा मिलता है।

(३) एक राजा, एक देश, जिसे आज तैलङ्ग कहते हैं। तैलङ्ग की भाषा।

अपदेव=भारतीय दार्शनिक पण्डित। ये पूर्व मीमांसा के पण्डित थे। इन्होंने मीमांसा दर्शन का एक ग्रन्थ लिखा है जिसका नाम है "मीमांसा न्याय प्रकाश"।

अप्रतिरथ=चन्द्रवंशी राजा। इनके दो और भाई थे जिनके नाम तेसु और ध्रुव थे। अप्रतिरथ के पुत्र का नाम कण्व था। (विष्णुपुराण)

अप्सरा=कल्प के प्रारम्भ में देवताओं ने जिन देवाङ्गनाओं की सृष्टि की थी, वे अप्सरा कही जाती हैं। किसी किसी पुराण में अप्सराओं को कश्यपमुनि की कन्या बताया है। इनके दो भेद हैं लौकिक और दैविक। लौकिक ३ हैं और दैविक १० हैं। दैवी अप्सरायें जब पृथ्वी पर कोई अच्छा काम करता है तब आ कर विघ्न डालती हैं।

अन्त=ये विशाल के पिता थे जो पीछे से नारायण के अवतार हुए हैं।

अभय=विष्णुपुराण में लिखा है कि धर्म के कई लड़के उत्पन्न हुए। उन लड़कों में एक का नाम अभय पड़ा। अभय का अर्थ निर्भीक है। इसका अर्थ यह है कि धर्म का आश्रय करनेवालों को भय नहीं होता।

अब्दुलजलील=बिलग्राम ज़िला हरदोई में सन् १६८२ ई० में ये जन्मे। ये असल में औरङ्गज़ेब के दरबारी कवि थे और अरबी तथा फ़ारसी में कविता करते थे। परन्तु पीछे से इन्होंने हिन्दी पढ़ी और उसीमें इनकी कविता प्रसिद्ध हुई।

अबुलफ़ैज=इनका उपनाम फ़ैजी था और सन् १५४७ ई० में ये जन्मे थे। ये शेख मुबारक के प्रसिद्ध पुत्र अबुलफ़ज़ल के भाई और अकबर के मित्र थे। ये संस्कृत के अच्छे विद्वान् थे और इनके बनाये अनेक दोहरे हैं।

अबदुल रहिमान=ये दिल्ली के रहने वाले थे और सन् १६८१ ई० में उत्पन्न हुए थे। ये मुअज़्ज़म-शाह और बहादुरशाह के दरबारी थे और इन्होंने यमक शतक रचा है।

अबदुल रहीम=इनका प्रसिद्ध नाम अबदुररहीम

खानखाना था, और लोग इन्हें "खानखाना" भी कहा करते थे। ये बैरामखां के लड़के थे और सन् १५५६ ई० में जन्मे थे। ये केवल अरबी, फारसी, तुर्की आदि भाषाओं ही के विद्वान् न थे; किन्तु संस्कृत और व्रजभाषा में भी इनकी अच्छी गति थी। कविता में ये अपना नाम "रहीम" डालते थे। शिवसिंह ने लिखा है कि ये केवल कवियों के आश्रयदाता ही नहीं थे; किन्तु स्वयं एक मर्मज्ञ कवि थे। इनके बनाये श्लोक बड़े गम्भीर और सरस होते थे। इनके बनाये कवित्त और दोहों में बड़ी बुद्धिमानी की बातें भरी हुई हैं। इनकी रचनाओं में इनके बनाये नीति के दोहे बड़े प्रसिद्ध हैं।

अभयसिंह=मारवाड़ के राजा। ये महाराज अजीतसिंह के पुत्र थे और महाराज यशवन्तसिंह के पौत्र थे। ये साहसी पराक्रमी योद्धा तो अवश्य थे, परन्तु पितृहत्यारूपी भयङ्कर दोष ने इनके सब गुणों पर कालिमा लगा दी थी, इनके वीर पिता अजितसिंह सर्वदा युद्धों में इनको अपने साथ रखा करते थे जिसमें इनकी अभिज्ञता बढ़े। दिल्ली के बादशाह का निमन्त्रण पा कर जब अजितसिंह दिल्ली जाने लगे, तब उन्होंने जोधपुर की रक्षा करने के लिये, अभयसिंह को वहाँ भेज दिया था। सन् १७७८ में मुगलसम्राट् ने अजमेर पर फिर अपना अधिकार जमाने की इच्छा से मुज़फ़्फ़रखाँ के सेनापतित्व में एक सेना भेजी। इसका समाचार पा कर अजीत ने अपने वीर और साहसी पुत्र अभयसिंह को उनका सामना करने के लिये भेजा। कुमार के साथ मारवाड़ के आठ सामन्त और तीस हज़ार घुड़सवार सेना थी। आमेर में राठौर और यवनसेना की मुठभेड़ हुई। मुज़फ़्फ़रखाँ राठौर वीरों की संहार मूर्ति देख कर बिना समय आये ही भाग गया, अभयसिंह के पराक्रम से यवनसेना भस्म हो गयी। इससे उनका उत्साह और भी बढ़ गया। वे अनेक स्थानों में जा कर, युद्ध में विजयी हुए। तदनन्तर इन्होंने नरूकापति की एक कन्या को ब्याह लिया था। इसके बाद अभयसिंह ने साँभर में रह कर वहाँ के क़िले को अभेद्य बनाया। इसी वर्ष अजमेर से आ कर अपने पुत्र अभयसिंह से अजितसिंह मिले। इससे यवनसेना में एक प्रकार का आतङ्क जम गया। मुहम्मदशाह यद्यपि इस अशान्ति के समय भारत का राजमुकुट छोड़ कर मक्का जाना चाहता था, तथापि नाहरखाँ की हत्या का बदला लेना वह नहीं भूल सकता था। इसी कारण बड़ी धूमधाम से अजमेर पर उसने चढ़ाई की। श्रावण के महीने में उस सेना ने तारागढ़ पर चढ़ाई की। इस कारण अजितसिंह उस क़िले की रक्षा का भार अभयसिंह को दे कर, स्वयं सेना ले कर चले। दोनों ओर से लड़ाई प्रारम्भ हुई, परन्तु जयसिंह के सलाह से अजितसिंह ने बादशाह से सन्धि कर ली। यवनों ने सन्धि की रक्षा करने के लिये हाथ में कुरान ले कर शपथ की, इसके बाद अभयसिंह जयसिंह के साथ बादशाह के डेरे में गये। बादशाह ने कहा कि ये यदि मेरी अधीनता स्वीकार करेंगे तो इसका प्रमाणस्वरूप मेरे दरबार में इनको आना पड़ेगा। यद्यपि जयसिंह इसके साक्षी हो गये थे, तथापि निर्भीक अभयसिंह ने तलवार उठा कर कहा कि यह हमारे जीवन का साक्षी है। अभयसिंह बादशाह के दरबार में गये। उन्होंने सोचा था कि जिस प्रकार अजितसिंह का सम्मान होता है उसी प्रकार हमारा भी सम्मान होगा। यही सोच कर वे सब अमीर उमरावों को छोड़ कर आगे बढ़े, यहाँ तक कि बादशाह के सिंहासन की पहली सीढ़ी पर उन्होंने ज्यों ही पैर दिया कि एक सरदार ने रोका, बस अभयसिंह ने झट तलवार निकाल ली, सम्राट् मुहम्मदशाह बड़ी विपत्ति में फसा, परन्तु उसने बड़ी बुद्धिमानी से अपने गले से एक माला निकाल कर अभयसिंह को पहना दी। इसीसे उस समय एक बड़े परिवर्तन का काण्ड निपट गया।

अभयसिंह यद्यपि वीर योद्धा थे तथापि पिता की हत्या के दोष से कलङ्कित होना और इसी प्रकार का एक और दोष उनकी पराधीनता के कारण हुए। यद्यपि अभयसिंह ने पिता अजित-

सिंह की अपने हाथों हत्या नहीं की थी, तथापि इस कार्य में उनका भी लगाव था, इसमें सन्देह नहीं। इनका दूसरा दोष अन्याय और प्रभुभक्ति चलाने की इच्छा थी। सम्राट् मुहम्मदशाह ने इनका राज्याभिषेक कराया, सम्मान सूचक अनेक प्रकार के उपहार भी बादशाह ने इनको दिये थे। अजित ने मारवाड़ के आकाश में जिस स्वाधीनता के सूर्य को चमकाया था, आज वह अभय के कुकृत्य से आच्छादित हो गया।

अभयसिंह दिल्ली गये, बादशाह ने इनका बड़ा आदर किया, इनको सामन्तों में सब से बड़ा पद और सम्मान प्रदान किया। इसी समय दक्षिण का सरबुलन्दखाँ विद्रोही हो गया था। शाहजादे जंगली को दमन करने के लिये, बादशाह ने सरबुलन्दखाँ को सेनापति बना कर भेजा था; परन्तु वहाँ जा कर उसने विद्रोहियों से सन्धि कर ली। इसकी ख़बर बादशाह के दरबार में पहुँची, सभी अमीर उमराव बैठे थे, परन्तु किसी ने सरबुलन्दखाँ को दमन करने का भार नहीं लिया। बादशाह चिन्ता में डूब गये। बादशाह की ऐसी दशा देख कर अभयसिंह ने हाथ में तलवार ले कर कहा, जगत् के सम्राट्! आप चिन्ता न कीजिये, मैं सरबुलन्दशाह को आपके अधीन कर दूँगा, नहीं तो उसका सिर आपको उपहार में दूँगा। बादशाह से अत्यन्त सम्मानित हो कर अभयसिंह जोधपुर आये और यहाँ से अपने छोटे भाई बख्तसिंह तथा राठौर सेना को ले कर वे सरबुलन्दखाँ की ओर बढ़े, वहाँ जा कर इन्होंने उससे सन्धि करने को कहलाया था। परन्तु उसका ध्यान उधर नहीं गया। फिर लड़ाई प्रारम्भ हुई। सरबुलन्दखाँ घायल हो कर भाग गया। उसकी सेना छिन्न भिन्न हो गयी। अभयसिंह विजयी हुए। वहाँ से बहुत से रत्न आदि एकत्रित कर, ये अपनी राजधानी में लौट आये। मालूम पड़ता है वहाँ से लौट कर ये दिल्ली के बादशाह के पास नहीं गये; क्योंकि उस समय उसके शासन का दीप टिमटिमा रहा था। यहाँ आने पर इनके भाई बख्तसिंह की वीरता से भय हुआ था; परन्तु उसका ये कोई उपाय नहीं करसके। आमेरपति के साथ इसी प्रकार इनकी कभी सन्धि और कभी युद्ध चलता रहा। इनका परलोक वास संवत् १८०६ या सन् १७५० ई० में हुआ। (टाड्स राजस्थान)

अभिजित्=चन्द्रवंशीय प्राचीन राजा, ये राजा पुरु के पुत्र थे, इनके पुत्र का नाम आहुक और कन्या का नाम आहुकी था। इन्हीं आहुक के पुत्र देवक थे। (हरिवंश)

अभिनवगुप्त=ये एक प्रसिद्ध आलङ्कारिक संस्कृत के विद्वान् थे। ये शैव मत के थे। क्योंकि इनके बनाये ग्रन्थों में से शैवदर्शन का एक ग्रन्थ है। इनका निवासस्थान काश्मीर में था और काव्यप्रकाशकार मम्मटभट्ट के ये गुरु थे। यह बात काव्यप्रकाश के रसनिरूपण प्रकरण पढ़ने से झलकती है। काव्यप्रकाशकार ने रसविषय में और और विद्वानों का मत उद्धृत करके एकवचन का प्रयोग किया है और इनका स्मरण आदरपूर्वक किया है इसी कारण यह अनुमान किया जाता है। परन्तु यह कारण प्रबल नहीं मालूम पड़ता है। इनके बनाये ग्रन्थ ये हैं। "भैरवस्तोत्र" "प्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी" "बृहतीवृत्ति" "तन्त्रालोक" "बोधपञ्चक" और "लोचन"। लोचन आनन्दवर्धनकृत प्रसिद्ध ध्वनि ग्रन्थ ध्वन्यालोक की टीका है, इस ग्रन्थ में अभिनव गुप्त अपने गुरु काव्यकौतुक रचयिता भट्ट का उल्लेख करते हैं। यह कवि अनुमान सन् ९९३ ई० से १०१२ ई०के बीच में थे।

अभिमन्यु=(१) अर्जुन का पुत्र और श्रीकृष्ण का भानजा, सुभद्रा के गर्भ से यह उत्पन्न हुआ था। कुरुक्षेत्र के युद्ध में कौरवों के प्रधान प्रधान वीर सामने के युद्ध में जब इस सोलह वर्ष के वीर बालक से हार गये; तब वीरता के नाम पर धब्बा लगाने वाले सात अधर्मी कुलाङ्गारों ने मिल कर अधर्म युद्ध से इस वीर बालक को मारा। मत्स्यदेश के राजा विराट की कन्या से इनका विवाह हुआ था। अभिमन्यु की मृत्यु के समय उत्तरा गर्भवती थी। उनके मरने के पश्चात् राजा परीक्षित् का जन्म हुआ था। भारत के

युद्ध में पाण्डवों के समस्त लड़के मारे गये थे केवल परीक्षित् ही से इनका वंश चला । अभिमन्यु का मारा जाना महाभारत युद्ध का एक कलङ्क है । अर्जुन नारायणी सेना के साथ युद्ध में लगे हुए थे । अभिमन्यु द्रोणाचार्य का बनाया व्यूह भेद कर भीतर गये । व्यूह के द्वार-रक्षक जयद्रथ को पराजित कर कोई भी पाण्डव पक्ष का वीर अभिमन्य की सहायता करने के लिये उनके पास नहीं जा सका । अभिमन्यु ने अपनी वीरता से बहुतों को धराशायी बना दिया । अन्त में नीचों ने अन्याय से इन्हें मार डाला । (महाभारत)

(२) काश्मीर के राजा । ये खृष्टाब्द के प्रायः दो हजार पूर्व काश्मीर का शासन करते थे । इनके समय में बौद्धधर्म की अत्यन्त प्रबलता थी । काश्मीर में इनका बसाया एक गाँव है जिसका नाम अभिमन्युपुर है । (महाभारत)

अभिमन्युगुप्त=काश्मीर के राजा । इनके पिता का नाम क्षेमगुप्त था । पिता के मरने के अनन्तर अभिमन्युगुप्त काश्मीर राज्य के राजा हुए । ये उस समय बालक थे, इस कारण इनकी माता ही ने राज्यशासन का भार अपने हाथ में लिया । वह बड़ी दुराचारिणी थी; रोज़ नये नये पुरुष बुलाती थी । अभिमन्यु के राज्य काल में नङ्केश्वर के बाज़ार में आग लग गयी । राजमाता का स्वभाव अत्यन्त कर्कश और निर्दय था । इस कारण कर्मचारी उनसे अप्रसन्न रहा करते थे । महारानी में सब से बड़ा दोष यह था कि वह कान की सुनी बातों पर विश्वास मानती थी । विवेक से काम लेने की रीति उसे मालूम नहीं थी । इसी कारण उसके प्रबन्ध के समय लड़ाई झगड़ों की चर्चा ख़ूब रही । इन बातों को देख कर, अभिमन्युगुप्त को बड़ा दुःख होता था, परन्तु वह बेचारा करता हो क्या । अन्त में मारे चिन्ता के उसको क्षय की बीमारी हो गयी और उसी बीमारी से काश्मीर का एक विद्वान् राजा चल बसा । १३ वर्ष १० महीने इसने काश्मीर का शासन किया था । (राजत. ष. त.)

अभीर=भारतवर्ष के उत्तर पश्चिम प्रान्त में रहनेवाली जाति । महाभारत रामायण और विष्णुपुराण में इनकी चर्चा पायी जाती है । परन्तु इनका शृङ्खलित कोई इतिहास नहीं मिलता ।

अभूतरजस=एक देवगण का नाम, जो पाँचवें मन्वन्तर में थे ।

अमर=(बलेचा) यह एक तेजस्वी राजपूत था । जिस समय अकबर का प्रतापसूर्य भारत के मध्य गगन में चमक रहा था, उस समय यह अपनी तेजस्विता के बल पर दक्षिण में नर्मदा के तीर पर स्वाधीनतापूर्वक वास करता था । इसको दमन करने तथा इसकी स्वाधीनता नष्ट करने के लिये राठौरराज शूरसिंह को अकबर बादशाह ने भेजा था । शूरसिंह के साथ अगणित सेना थी । इस अगणित सेना का सामना अमर बलेचा ने पाँच हज़ार सिपाहियों को साथ ले कर स्वाधीनता की रक्षा के लिये बड़े उत्साह से किया, बड़ी बड़ी तीन लड़ाइयाँ हुई । पहली दो लड़ाइयों में तो हार जीत का पता न लगा, परन्तु अन्तिम युद्ध में अमर ने सुख से अपने प्राणों को दे कर अपनी स्वाधीनता की रक्षा की ।

अमरसिंह=(१) संस्कृत में नाम लिङ्गानुशासन नामक जो कोश है उसीका दूसरा नाम अमरकोश है, उसके कर्ता ये ही अमरसिंह हैं । ये उज्जयिनी के राजा विक्रमादित्य की सभा के नव रत्नों में से एक रत्न थे । अमरसिंह को इनका बनाया अमरकोश ही अमर किये हुए है । कोई इनको बौद्ध और कोई कोई जैनी कहते हैं । पाश्चात्त्य पण्डितों का अनुमान है कि गया का बौद्ध मन्दिर इन्हींका बनवाया हुआ है । यदि इस अनुमान को ठीक मान लिया जाय तो इनको खृष्टीय पाँचवीं शताब्दी का माना जा सकता है । क्योंकि कनिंहम आदि पुरातत्त्ववेत्ता पण्डित गया के बौद्ध मन्दिर बनने का समय पाँचवीं शताब्दी बताते हैं । एक श्लोक में इनका नाम अमरु कवि आया है । अतएव इनमें और अमरु कवि में उतना ही अन्तर होना स्वाभाविक है जितना कालिदास और भारवि में था ।

(२) जैसलमेर के राजा । ये रावल सबलसिंह के पुत्र थे । पिता का परलोकवास होने पर इन्होंने बलचों के साथ युद्ध किया था, और ये उस युद्ध में विजयी भी हुए थे । उसी समय इनका राज्याभिषेक भी हुआ था । अमरसिंह ने राजसिंहासन पर बैठ कर अपनी कन्या का विवाह करने के लिये प्रजाओं से द्रव्य की सहायता माँगी । रावल के इस कार्य से राजमन्त्री अप्रसन्न हुआ और उसने राजा के इस कार्य में बाधा डाली । इस कारण राजा ने राजमन्त्री को मरवा डाला । कुछ दिनों के बाद चन्ना राजपूतों ने अत्याचार करना प्रारम्भ किया, तब रावल अमरसिंह ने सेना ले कर उन पर आक्रमण किया, और उनको ऐसा दबाया कि उनके सचरित्र होने का यश अमरसिंह ही को प्राप्त हुआ ।

जैसलमेर और बीकानेर के सामन्तों में आपसी विरोध हो गया था । उसी विरोध से प्रेरित हो कर दोनों ओर के वीर रणभूमि में आ कर खड़े हो गये । इस युद्ध में जैसलमेर के सामन्तों का विजय हुआ, इससे रावल अमरसिंह को बड़ा आनन्द हुआ । इसकी खबर बीकानेर के राजा अनूपसिंह को मिली । उस समय वह बादशाह की ओर से दक्षिण भेजे गये थे । उन्होंने अपने मन्त्री को एक पत्र भेजा कि सब राठौर जो रण में जा सकते हों शीघ्र ही जैसलमेर पर धावा कर दें । यहाँ राठौर बड़े उत्साह से युद्ध के लिये तैयार होने लगे । रावल ने भी राठौरों के युद्ध के लिये तैयार होने का समाचार सुना । अमरसिंह बड़े कुशल थे, उन्होंने सोचा कि इस समय उत्साहित राठौरों का सामना करना उचित नहीं है । यह सोच कर उन्होंने राठौरों की सीमा पर के गाँवों पर आक्रमण करना प्रारम्भ कर दिया । इसी प्रकार कुशलता से रावलजी इस युद्ध में भी विजयी हुए । रावल अमरसिंह बड़ी वीरता से लड़ भिड़ कर, सन् १७०२ ई० में परलोकवासी हुए ।

(३) उदयपुर के महाराणा, ये महाराणा प्रताप के बड़े पुत्र थे । उनके बाद ये ही मेवाड़ की गद्दी पर बैठे थे । इन्होंने राणा प्रतापसिंह के साथ रह कर, उद्देश्य साधन की अच्छी शिक्षा पायी थी । परन्तु इनके विषय में जो आशङ्का कर महाराणा प्रताप के प्राण नहीं निकलते थे; वह आशङ्का ठीक निकली । अमरसिंह सुखार्थी हो गये । उन्होंने रहने के लिये महल आदि बनवाना प्रारम्भ कर दिया । जिस पवित्र स्थान पर रह कर महाराणा प्रताप स्वर्गीय स्वाधीनता का अनुष्ठान करते थे; वहां अब "अमर महल" बनाये जाने लगे ।

दिल्ली में जहाँगीर बादशाह था, भारत भर के राजा उसकी अधीनता में थे, परन्तु एक सिसोदिया सरदार हमारे अधीन नहीं, इतना दर्प ! यह सोच कर बादशाह ने मेवाड़ पर सेना भेजी । इधर अमरसिंह की सुखेच्छा बढ़ गयी थी, बादशाही सेना के आने का समाचार पा कर ये बड़ी विपत् में पड़े । इनकी ऐसी कापुरुषता देख कर शालूम्ब्रा सरदार ने बहुत समझाया । आखिर थे तो महाराणा प्रताप ही के पुत्र । वीरता की ज्वाला निकल पड़ी । सत्रह युद्धों में इन्होंने विजय पाया था । (टाड्स राजस्थान)

(४) जोधपुराधीश महाराज सूरसिंह के ये पुत्र और गजसिंह के पौत्र थे । सन् १६३४ ई० में ये वर्तमान थे; इन्होंने एक दिन ६ कवीश्वरों को ६ लाख रुपये दे डाले थे । ये कवियों का बड़ा आदर करते थे । पिता ने इन्हें अपने राज्य से किसी कारणवश निकाल दिया था । तब ये शाहजहाँ के दरबार के दरबारी हुए । परन्तु किसी कारणवश शाहजहाँ से अप्रसन्न हो कर इन्होंने उसको मारने की चेष्टा की थी, परन्तु सैनिकों ने पकड़ कर इनको मार डाला ।

(५) गोर्खा सेनापति । इन्होंने १८१४ ई० में नैपाल के युद्ध में अंग्रेज सेनापति अक्टारलोनी के नाकों दम कर दिया था । बिलासपुर के राजा ने जब अंग्रेज सेनापति की सहायता की तब ये नैपाल की राजधानी काठमाण्डू चले गये और युद्ध भी समाप्त हो गया ।

(६) उदयपुर के महाराणा, ये जयसिंह के पुत्र थे । जयसिंह के स्वर्गवासी होने पर इनका

बड़ा पुत्र दूसरा अमरसिंह १७०० ई० में मेवाड़ का अधीश्वर हुआ । जयसिंह के अनेक गुण अमरसिंह में वर्तमान थे। ये वीर और उदाराशय थे। पिता के साथ इनके भीतरी झगड़े से इनकी बड़ी हानि हुई थी। उस झगड़े ने इनको निर्बल बना दिया था, यदि उस समय इनमें कुछ भी बल होता तो मेवाड़ का गया हुआ गौरव इनके अधीन हो जाता। राजसिंहासन पर बैठने के कुछ दिनों के बाद इन्होंने दिल्ली के बादशाह आलमशाह से सन्धि कर ली थी, इनका अन्तिम समय लड़ाई झगड़ों में बीता। (टाड्स राजस्थान)

अमरावती=(१) इन्द्र की राजधानी, इसे विश्वकर्मा ने बनाया था, यह ४० मील ऊंची है और ८ सौ मील के घिराव में बसी हुई है। इसमें हीरे के खम्भे हैं, तथा सिंहासन सुवर्ण के बने रखे हैं। इसके चारो ओर सुन्दर रमणीय उपवन हैं, तथा जलस्रोत बह रहे हैं और सर्वदा वहाँ बाजे बजते रहते हैं।

(२) कृष्णानदी के तीर पर यह नगरी थी, इस समय यह ऊजड़ हो गयी है। अभी भी प्राचीन बौद्ध समय की कारीगरी के चिह्न यहाँ पाये जाते हैं। सर वाल्टर इलियट और मि. फरग्यूसन ने यहाँ पर पुरातत्त्वसम्बन्धी बहुत सी वस्तुओं का अनुसन्धान किया है। जहाँ पर पुरातन स्मृति चिह्न मिले, वह एक टीला एक सौ ५० फीट ऊंचा था, खोदते खोदते अब वहाँ पर एक तालाब बन गया है।

अमरुकवि=इनका रचित "अमरुशतक" नामक शृङ्गाररस का एक ग्रन्थ देखने में आता है। इसके श्लोक सरस और मनोहर हैं। अमरु कवि के विषय में एक कथानक प्रसिद्ध है कि जब श्रीशङ्कराचार्य कश्मीर गये, तब वहाँ वालों ने इन्हें संन्यासी समझ इनसे शृङ्गार रस की कविता बनाने के लिये कहा। तब वे योगशक्ति द्वारा अमरुनामक राजा के शरीर में पैठे और उन्होंने अमरुशतक बनाया। यदि शङ्कराचार्य और अमरु कवि दोनों एक भी न माने जायँ, तो भी अमरुकवि उनके समकालीन अवश्य ही रहे होंगे। "आर्यविद्या सुधाकर" के अनुसार शङ्कराचार्य का समय सन् ७८८ ई० से ८२० ई० तक प्रमाणित होता है। के. टी. तैलङ्ग का मत है कि शङ्कराचार्य ५६० ई० में वर्तमान थे, अतएव अमरुकवि भी खृष्टीय सातवीं और आठवीं सदी के बीच किसी समय काश्मीर में हुए होंगे। पं० ईश्वरचन्द्र विद्यासागर लिखते हैं कि संस्कृत के खण्डकाव्यों में "अमरुशतक" ही सर्वोत्तम है। इसकी रचना से इसका प्राचीनत्व मालूम होता है। "काव्यप्रकाश" "कुवलयानन्द" आदि अलङ्कार ग्रन्थों में "अमरुशतक" के श्लोक उद्धृत पाये जाते हैं।

अमरेश=हिन्दी के एक कवि, इनका जन्म १५७८ ई० में बतलाया जाता है। ये बड़े मार्मिक कवि हो गये हैं।

अमोघवर्ष=काञ्ची के एक जैन राजा का नाम, इसने ईसा की नवीं सदी के अन्त में राज्य किया था, इसके गुरु का नाम जिनसेनाचार्य था, कहा जाता है कि इसी अमोघवर्ष के राजत्व काल में जिनसेनाचार्य ने जैनियों के मुख्य पुराणों की रचना की।

अम्बरीष=सूर्यवंशी एक प्रसिद्ध राजा, अयोध्या इनकी राजधानी थी। इनके पिता का नाम नाभाग था, अमितपराक्रमी राजा अम्बरीष ने अकेले १० लाख राजाओं के साथ युद्ध किया था, और समस्त पृथिवी पर अपना आधिपत्य फैलाया था। इन्होंने अनेक यज्ञ भी किये थे। इन्हीं पुण्यों के प्रभाव से इनको स्वर्ग प्राप्त हुआ था। (महाभारत)

महाराज अम्बरीष अत्यन्त विष्णुभक्त थे, राज्यभार मन्त्रियों को दे कर उन्हों ने बहुत दिनों तक विष्णुभगवान् की आराधना की, भगवान् विष्णु उनकी भक्ति की परीक्षा और वर देने के लिये इन्द्र का रूप धारण कर उनके समीप उपस्थित हुए। परन्तु विष्णुभक्त अम्बरीष ने इन्द्र से कोई भी वर नहीं माँगा और वे बोले, मैं न तो आपको प्रसन्न करने के लिये तपस्या करता हूँ और न मैं आपका दिया हुआ

वर ही चाहता हूँ आप अपने स्थान को जाइये । मेरे प्रभु नारायण हैं और उन्हींको मैं नमस्कार करता हूँ। इससे विष्णु प्रसन्न हुए और अपने रूप से उनके सामने प्रकट हुए । (लिङ्गपुराण)

महाराज अम्बरीष की अत्यन्त सुन्दरी एक कन्या थी, जिसका नाम सुन्दरी था । यह कन्या विवाह के योग्य हो गयी थी। एक समय देवर्षि नारद और पर्वत किसी कार्यवश अम्बरीष के यहाँ आये थे, उन दोनों ने अम्बरीष की कन्या से विवाह करने की अपनी अपनी अभिलाषा प्रकट की। अम्बरीष बोले, आप दोनों महामुनि हैं, कन्या का अर्पण करना हमारे वश की बात नहीं है, अतएव आप लोग और किसी दिन आवें, कन्या जिसके वरमाला डाल दे, वही उससे व्याह कर ले । नारद ने अम्बरीष को विष्णुभक्त जान कर और विष्णु के समीप जा कर सब बातें कहीं, और पर्वत का मुख वानर के समान बनाने के लिये भी कहा। विष्णु ने नारद की प्रार्थना स्वीकृत की, परन्तु पर्वत को इस विषय में कुछ कहने के लिये मना किया, थोड़ी देर के बाद पर्वत भी विष्णुभगवान् के समीप पहुँचे और उन्होंने भी नारद के समान ही विनती की। विष्णु ने इनकी भी बातें मान लीं, और कह दिया कि इस विषय में नारद से कुछ न कहना। समय आ पहुँचा, दोनों मुनि विवाह की इच्छा से अम्बरीष के यहाँ पहुँचे, अम्बरीष ने अपनी कन्या से कहा कि तुम जा कर इनमें से पति वरण कर लो। श्रीमती अम्बरीष की आज्ञा से वरमाला ले कर उनके सामने गयीं, श्रीमती स्वयं राधा थीं । उन्हों-ने श्रीकृष्ण से व्याह करने के लिये तपस्या कर के, अम्बरीष के यहाँ जन्म ग्रहण किया था। श्रीमती मुनियों के पास जा कर अत्यन्त डर गयीं, अम्बरीष के कारण पूँछने पर श्रीमती बोलीं यहाँ न तो नारद हैं और न पर्वत ही हैं, दो आदमी देखे तो जाते हैं परन्तु उनका मुँह वानरों का सा है । यह सुन कर राजा को अत्यन्त विस्मय हुआ। उन दोनों के बीच एक तीसरा सुन्दर पुरुष बैठा था । श्रीमती ने उसीको वर-माला पहना दी । वरमाला पहनाने पर श्रीमती अदृश्य हो गयीं, ये तीसरे पुरुष साक्षात् भगवान् थे, भगवान् ने साक्षात् श्रीमती को अन्तर्द्धान कर दिया । इससे दोनों मुनियों को बड़ा क्रोध हुआ । वे कहने लगे अम्बरीष ने माया रच कर हम लोगों को धोखा दिया अतएव अम्बरीष, तुम अन्धकार से घिर जाओगे, तुम अपने शरीर को भी नहीं देख सकोगे । अम्बरीष की रक्षा करने के लिये विष्णु का सुदर्शन चक्र उपस्थित हुआ, विष्णुचक्र अन्धकार को दूर कर मुनियों के पीछे दौड़ा । मुनि चारो ओर घूमते फिरे परन्तु विष्णुचक्र से रक्षा पाने का कोई उपाय उन्हें नहीं सूझा । अन्त में विष्णु के समीप उपस्थित हो कर, उन्होंने क्षमा प्रार्थना की, तब विष्णु ने सुदर्शन को निवृत्त किया । उन दोनों मुनियों ने प्रतिज्ञा की कि अब हम लोग कभी विवाह नहीं करेंगे । (लिङ्गपुराण)

अम्बा=काशिराज की ज्येष्ठा कन्या । यह दूसरे जन्म में शिखण्डी का रूप धारण कर के, भीष्म-पितामह के वध का कारण हुई थी । इसको भीष्मपितामह काशी से हर कर ले आये थे । अम्बा ने भीष्म ही से व्याह करना चाहा था, परन्तु भीष्म ने स्वीकार नहीं किया, इसी कारण उसने तपस्या कर के शिखण्डी का रूप धारण किया था।

अम्बालिका=काशिराज की छोटी कन्या । ये विचित्रवीर्य की स्त्री थीं और पाण्डु की माता थी। पाण्डु की मृत्यु के बाद यह अपनी सास सत्यवती के साथ वन में गयी, और उन्होंने कठोर तपस्या कर प्राण त्याग किया ।

अम्बिका=काशीराज की मझली कन्या, ये विचित्रवीर्य की स्त्री और धृतराष्ट्र की माता थी । ये भी पाण्डु की मृत्यु के पश्चात् सत्यवती के साथ वन में गयी थी और वहाँ तपस्या के द्वारा प्राण त्याग किया था ।

अम्बिकादत्त व्यास=इनके पूर्वज राजपूताने के रहने वाले थे; किन्तु इनके पितामह पण्डित राजारामजी काशी में आ बसे थे । इनके

पिता का नाम पं० दुर्गादत्तजी था । और वे स्वयं कवि थे, पं० अम्बिकादत्तजी का जन्म सं० १८१४ में हुआ था । ये बाबू हरिश्चन्द्र के समकालीन थे । इनकी कविता बड़ी अच्छी होती थी । विद्वानों ने इन्हें "घटिकाशतक" "भारतरत्न" आदि की उपाधियां दी थीं । इनका उपनाम "सुकवि" था । इनका सम्पादित "पीयूषप्रवाह" हिन्दी का एक अच्छा मासिकपत्र था । ये हरेक रस की कविता बड़ी आसानी से बना सकते थे, ये "साहित्याचार्य" की परीक्षा में उत्तीर्ण थे । इनका रचा "विहारीविहार" अनूठा ग्रन्थ है । ये संस्कृत के जैसे कवि थे वैसे ही हिन्दी के भी । इनके बनाये संस्कृत और हिन्दी के सब मिला कर ७८ ग्रन्थ हैं । इनमें कई एक अधूरे भी हैं । ये सन् १९०० ई० में परलोकवासी हुए ।

अम्बुज=हिन्दी के कवि, इनका जन्म सन् १८१८ ई० में हुआ था, इनकी नखसिख वर्णन की कविता रोचक कही जाती है ।

अयोध्या=भारतवर्ष की पुरानी राजधानी, सूर्यवंशियों की राजधानी बहुत दिनों तक अयोध्या रही है । सूर्यवंश के आदि राजा इक्ष्वाकु ने इसे अपनी राजधानी बनाया था । जब तक आर्यों का प्रतापसूर्य भारत के आकाश में चमकता रहा; तब तक अयोध्या की उपमा इन्द्र की अमरावती से दी जाती थी, परन्तु आज उस अयोध्या का पता नहीं, प्राचीन अयोध्या जहाँ थी, वहाँ आज ऊजड़ खँडहर पड़े हुए हैं ।

अयोध्यानाथ=काश्मीरी पण्डित, इनके पिता का नाम पण्डित केदारनाथ था । इनका जन्म सन् १८४० ई० में आगरे में हुआ था । इन के पिता पण्डित केदारनाथ जी स्वयं विद्वान् धनाढ्य और प्रतिभाशाली थे । ये झज्झर के नवाब के मन्त्री थे । मन्त्री के पद को छोड़ कर आपने स्वयं एक बैङ्क स्थापित की थी ।

पं०केदारनाथजी ने अपने पुत्र पं०अयोध्यानाथ जी को इस उत्तमता से फारसी और अरबी पढ़ाई कि ये थोड़े ही दिनों में उक्त भाषाओं में प्रवीण हो गये । बड़े बड़े मौलवी इनकी प्रवीणता से चकित होते थे । कुरानशरीफ के गूढ़ तत्त्व और मुसलमानों के क्रूर क़ानून समझने में तो पण्डितजी ऐसे प्रवीण थे कि उनका सामना करने वाले का मिलना कठिन था । इन भाषाओं में आपने अपने पिता से शिक्षा पाई थी । अंग्रेजी का ज्ञान प्राप्त करने के लिये आप आगरा कालेज में भर्ती कराये गये । कालेज में आप अपने सहपाठियों में सबसे पहले गिने जाते थे । कालेज में कोई ऐसा सर्वोत्तम पारितोषिक न था, जिसे आपने न पाया हो । इन की छात्रावस्था में परीक्षार्थियों को पदवियाँ प्रदान करने की प्रथा प्रचलित नहीं हुई थी । जब कलकत्ता विश्वविद्यालय स्थापित हुआ तब आपने एफ्. ए. परीक्षा पास की ।

एफ्. ए. पास कर चुकने पर उनके पिता की यह इच्छा थी कि पं० अयोध्यानाथ उनके बैङ्क का काम करें, परन्तु पण्डितजी का मन उस कार्य में नहीं लगा । इनका मन वकालत की परीक्षा देने का था । पिता ने भी अपने होनहार पुत्र की इच्छा को रोकना उचित नहीं समझा । निदान सन् १८६२ ई० में आप वकालत की परीक्षा में सर्वप्रथम उत्तीर्ण हुए । उस समय संयुक्त प्रान्त की हाईकोर्ट आगरे में थी, आप वहीं वकालत करने लगे, केवल दो तीन बार की बहस ही से जज साहब केवल आपको पहचानने ही नहीं लगे; किन्तु मानने भी लगे । थोड़े ही दिनों में ये वकीलों के मुखिया बन गये । सन् १८६८ ई० में आगरे से उठ कर हाईकोर्ट प्रयाग में गयी, पण्डितजी भी प्रयाग गये । वहाँ भी इनकी वकालत धड़ाके से चलने लगी । इलाहाबाद आने के थोड़े ही दिनों के बाद पण्डितजी के पिता का स्वर्गवास हुआ । इनके पिता के पास पूरी सम्पत्ति थी, आप उसके अधिकारी हुए । पिता की सम्पत्ति को अटूट रखने की आपकी इच्छा हुई । अतः आपने उसका उत्तम प्रबन्ध कर दिया । इस बीच में आप प्रयाग कालेज में कानून के अध्यापक नियुक्त हुए । इस नियुक्ति का यही कारण था कि इनके जैसा प्रयाग में कानून जानने वाला

दूसरा कोई नहीं था। इनको कानून की किताबें कण्ठस्थ थीं।

पं० अयोध्यानाथ जी स्वाधीनचेता थे। सन् १८८१ ई०में इलाहाबाद हाईकोर्ट के चीफजस्टिस राबर्ट स्टुपर साहब ने गवर्नमेण्ट को पण्डित जी के हाईकोर्ट में जज नियुक्त करने के लिये लिखा। परन्तु पण्डितजी ने जवाब दिया कि मैं स्वाधीन रहना चाहता हूँ। आप अंग्रेजी में एक दैनिक पत्र भी निकालते थे। इस पत्र का नाम था (Indian Herald) अंग्रेज लोगों की दृष्टि इस पत्र पर बड़ी कड़ी पड़ने लगी। उस समय भी पायोनियर की खूब चलती थी, उसकी शान में किसी पत्र को निकालना और वैसा ही चला लेना, सहज काम न था। परन्तु पण्डितजी ने अपने पत्र को चला कर, कार्यकारिणी सामर्थ्य दिखा दी। इस पत्र के चलाने में पण्डितजी ने विपुल धन और परिश्रम लगाया।

सन् १८८७ ई० में इस प्रान्त में छोटे लाट की व्यवस्थापक सभा स्थापित हुई। सर्व, प्रथम उसके सदस्य पण्डितजी ही चुने गये। इस सभा में रह कर, आपने अपने कर्तव्य का ऐसी योग्यता से सम्पादन किया कि प्रजा ने दूसरी बार भी आप ही को अपना प्रतिनिधि चुना। युक्तप्रान्तवासियों को जितनी ऊंची पदवियां मिल सकती हैं, आपको वे सब मिली थीं। आप प्रयाग विश्वविद्यालय के सिण्डिकेट के सदस्य भी थे। म्युनिसपलिटी का प्रबन्ध भी आपके हाथ में था। इलाहाबाद की स्वास्थ्योन्नति का प्रधान कारण पण्डित अयोध्यानाथ जी ही थे। पं० जी की जैसी विशाल बुद्धि थी, वैसा ही शरीर भी विशाल था। विद्या, बुद्धि, मान, विचार जो कुछ था सब में विशालता वर्तमान थी। देशसेवा में भी आप खूब चढ़े बढ़े थे। आप धन की सहायता देने में बड़े बड़े राजाओं को भी मात करते थे और परिश्रम करने में आप बड़े बड़े परिश्रमी पुरुषों के कान काटते थे। इनके शारीरक परिश्रम को देख इनके साथ वाले आश्चर्य करते थे। किसी परोपकार के काम में जब ये हाथ डालते, तब उसे बिना पूरा किये नहीं छोड़ते थे।

पण्डितजी दबङ्ग थे, न्याय के पूर्ण पक्षपाती और अन्याय के पूर्ण विरोधी थे। आपके दबङ्गपने की बहुत सी आख्यायिका प्रयाग में प्रचलित हैं। आप नेशनल कॉंग्रेस के सच्चे सहायक थे। किसी निर्बल पर अन्याय होते देख अथवा सुन कर, इनका मन प्राण विचलित हो जाता था। आगरे के ईसाइयों ने एक बार एक मेहतर को ईसाई बनाया और ईसाई कर के उसे अपने स्कूल में उच्च जाति के हिन्दू लड़कों के साथ बिठला कर, पढ़ाना चाहा। इस पर हिन्दू लड़कों ने स्कूल जाना बन्द कर दिया। धनहीन हिन्दू बालकों की इस विपत्ति का समाचार सुन कर पण्डितजी का मन द्रवीभूत हुआ। आपने अपने धन से आगरे में एक स्कूल खोल दिया, असहाय हिन्दू लड़के सुखपूर्वक पढ़ने लगे। इस स्कूल का इतना आदर हुआ कि वह कालेज हो गया। पं० जी ने उसका नाम "विक्टोरिया स्कूल" रखा था, आज भी वह स्कूल पण्डितजी का यश गा रहा है।

अयोध्याप्रसाद वाजपेयी=ये सन्तान पुरवा ज़िला रायबरेली के रहने वाले थे और १८८३ई० में विद्यमान थे। ये हिन्दी और संस्कृत के अच्छे विद्वान् थे। इनके रचे तीन ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। "छन्दानन्द" "साहित्य सुधासागर" और "राम कवितावली"। ये अयोध्या के महन्त रघुनाथदासजी के और चन्द्रापुर के राजा जगमोहनसिंह के साथ प्रायः रहा करते थे। ये कविता में अपना नाम "औध" लिखा करते थे।

अयोध्यासिंह उपाध्याय=इनके पिता का नाम पंडित भोलासिंह है, और ये सनाढ्य ब्राह्मण हैं। इनका जन्म संवत् १६१२ में हुआ था, ये कसबा निजामाबाद जि० आज़मगढ़ के रहने वाले हैं इनकी पद्य रचनाएँ उर्दू के ढङ्ग पर होती हैं, पर होती बहुत अच्छी हैं। इनके बनाये ग्रन्थ २३ हैं। इनमें से "ठेठ हिन्दी का ठाठ"

सिविल सर्विस परीक्षा में नियत है । इनकी कविताएँ हिन्दी के मासिक पत्रों में प्रायः निकला करती हैं और पाठकों का मनोरञ्जन करती हैं ।

अरिष्ट=वृषभाकृति असुर विशेष, कृष्ण का वध करने के लिये कंस ने इसको व्रज में भेजा था । इसका भयङ्कर शरीर तथा नाद सुन कर व्रज के गोप-गोपी-गण डर गये थे । डर कर पशुओं ने गोकुल छोड़ दिया । अन्त में श्रीकृष्ण ने इसे मार डाला था ।

(श्रीमद्भागवत)

अरिष्टनेमि=प्रजापति विशेष, इन्होंने दक्ष प्रजापति की चार कन्याओं से विवाह किया था ।

अरुण=गरुड़ के जेठे भाई । महर्षि कश्यप और विनता से इनका जन्म हुआ था । विनता ने दो अण्डे और उनकी सपत्नी कद्रू ने हज़ार अण्डे उत्पन्न किये थे । कद्रू के प्रसूत अण्डों में से एक अण्डा फूट गया और उसमें से एक सर्प निकला । यह देख विनता बहुत लज्जित हुई और उसने भी अपना एक अण्डा फोड़ा, फोड़ने पर देखा कि उसमें के गर्भ का आधा अङ्ग तो पुष्ट हुआ है और आधा अङ्ग अभी अपुष्ट है । उस सद्यःप्रसूत ने अपनी माता को शाप दिया "सपत्नी की स्पर्द्धा से तुम ने जो यह दुष्कर्म किया है, इस कारण ५० वर्ष तक तुमको उसकी दासी बन कर रहना पड़ेगा । पुनः अरुण बोले, इस दूसरे अण्डे में जो पुत्र है यदि इसको असमय में नहीं फोड़ोगी, तो इसीके द्वारा तुम्हारा दासत्व छूट जायगा । यह कह कर अरुण आकाश मार्ग में जा कर सूर्य के सारथि बनगये । इनकी स्त्री का नाम श्येनी था । सम्पाति और जटायु नाम के इनके दो पुत्र थे । (महाभारत आ०५०)

अरुन्धती=महर्षि वशिष्ठ की स्त्री और प्रजापति कर्दम मुनि की कन्या, वशिष्ठ के साथ इनको भी सप्त ऋषियों में स्थान मिला है । कहते हैं कि जिनका मरण-समय समीप आ जाता है वे अरुन्धती को नहीं देख सकते ।

अर्जुन=(१) पाण्डु के क्षेत्रज पुत्र । देवराज इन्द्र के औरस और कुन्ती के गर्भ से ये उत्पन्न हुए थे। ये तीसरे पाण्डव थे, इनके समान धनुर्विद्या के पण्डित उस समय कम ही लोग थे । ये द्रोणाचार्य के प्रिय शिष्य थे । महाभारत के युद्ध में स्वयं श्रीकृष्ण इनके सारथि बने थे । अर्जुन ने द्रुपद राजा के यहाँ द्रौपदी के स्वयम्वर में जा कर मत्स्यवेध किया और द्रौपदी को ले आये । इन्होंने श्रीकृष्ण की सहायता से खाण्डव वन जला कर अग्नि को परितृप्त किया था । वनवास के समय अर्जुन ने इन्द्रकील पर्वत पर महादेव की आराधना की थी, महादेव ने प्रसन्न हो कर इनको पाशुपत अस्त्र दिया था । ये अस्त्रशिक्षा प्राप्त करने के लिये इन्द्र के समीप स्वर्ग में गये थे । वहां एक दिन उर्वशी मदनातुर हो कर इनके समीप गयी, और इनसे अपना अभिलाष प्रकट किया । अर्जुन ने उर्वशी की प्रार्थना अस्वीकार की, इससे क्रुद्ध हो कर उसने अर्जुन को शाप दिया "तुम नपुंसक हो कर स्त्रियों के बीच नाचोगे ।" विराट के यहां रहने के समय यह शाप अर्जुन के लिये वर के समान हुआ था । उन्होंने बृहन्नला अपना नाम रखा, और छिप कर अपने अज्ञात वास एक वर्ष का समय विराट की राजधानी में उन्होंने बिताया । अर्जुन की तीन स्त्री थीं, द्रौपदी, सुभद्रा और चित्राङ्गदा । इनको छोड़ कर कौरव्यनामक नाग की कन्या उलूपी को भी उन्होंने व्याहा था । द्रौपदी के गर्भ से उत्पन्न अर्जुन का पुत्र महाभारत युद्ध के अन्तिम दिन अश्वत्थामा द्वारा मारा गया । सुभद्रा के गर्भ से उत्पन्न अर्जुन का सोलह वर्ष का पुत्र अभिमन्यु उसी युद्ध में सप्त रथियों द्वारा अन्याय से मारा गया था । तीसरी स्त्री उलूपी के गर्भ से कोई सन्तान नहीं उत्पन्न हुई थी । इनकी चौथी पत्नी चित्राङ्गदा मनिपुर के राजा चित्रभानु की कन्या थी । इसके गर्भ से बभ्रूवाहन नाम का एक पुत्र उत्पन्न हुआ था । नाना के परलोकवास होने के पश्चात् बभ्रूवाहन मनीपुर के राजा हुए थे । अर्जुन के एक पुत्र का नाम इरावान था । यह इरावत नाग की विधवा कन्या के गर्भ से उत्पन्न हुआ था । (महाभारत)

(२) (यमल) कुबेर के पुत्र नल कूबर और मणिग्रीव ने देवर्षि नारद के शाप से व्रज में यमल अर्जुन वृक्ष का रूप धारण किया था, इनकी प्रार्थना करने पर मुनि नारद ने कहा था "वृक्ष होने पर भी तुमको अपने पूर्व जन्म की बातें स्मरण रहेंगी, और श्रीकृष्ण का संसर्ग प्राप्त करने ही से तुम्हारी मुक्ति हो जायगी"। यशोदा ने श्रीकृष्ण को ऊखल में एक दिन बाँध रखा था। यशोदा निश्चिन्त हो कर दूसरे काम में लगी हुई थी, समय पा कर ऊखल को घसीटते घसीटते श्रीकृष्ण निकल गये, और वे वहाँ पहुँचे जहाँ यमल अर्जुन के वृक्ष थे। श्रीकृष्ण का सम्पर्क होने से वे वृक्ष टूट गये, और उनमें से दो सिद्ध पुरुष उत्पन्न हो कर श्रीकृष्ण को प्रणाम और स्तवपूर्वक उत्तर दिशा की ओर प्रस्थित हुए। (श्रीमद्भागवत)

अर्जुन राव=कोटा राज्य के राजा, इनका विवाह कोटा राज्य के भावी मन्त्री ज़ालिमसिंह झाला के पूर्वपुरुष माधोसिंह की बहिन के साथ हुआ था। चार वर्ष तक अर्जुन राव कोटे का राज्य कर के परलोकवासी हुए थे।

अलक=मेघदूत में लिखा है कि हिमालय पर्वत पर के एक नगर का नाम, जिसे भाग्यवानों का नगर भी कहते हैं। यहां के वासी स्त्री पुरुष दोनों बहुत सुन्दर होते हैं।

अवधेश=ये बुन्देलखण्ड चरखारी के राजा रतन सिंह के दरबारी कवि थे और जाति के ब्राह्मण थे। सन् १८४० ई० में ये विद्यमान थे। इनकी रची कविताएँ रोचक होती थीं। परन्तु इस समय इनका कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं होता।

अलकनन्दा=गङ्गा की चार प्रधान धाराओं में से एक धारा, जिसको शिव ने अपनी जटाओं में सौ वर्षों तक रखा था। इसीने सगर के पुत्रों का उद्धार किया था।

अलक्ष्मी=लक्ष्मी की जेठी बहिन, ये भी लक्ष्मी के समान समुद्र-मन्थन से उत्पन्न हुई थीं। लिङ्ग-पुराण में लिखा है कि भगवान् विष्णु ने अलक्ष्मी की सृष्टि कर के पुनः लक्ष्मी की सृष्टि की, अतएव अलक्ष्मी को ज्येष्ठा कहते हैं। अमृत निकालने के समय सब से पहले विष उत्पन्न हुआ उसके बाद अलक्ष्मी और तदनन्तर लक्ष्मी उत्पन्न हुई थीं। लक्ष्मी को विष्णु ने ग्रहण किया, परन्तु अलक्ष्मी को लेना किसी देवता ने स्वीकार नहीं किया, अतएव दुःसह नामक ब्राह्मण के गले ये लगायी गयीं। यद्यपि अलक्ष्मी का विवाह दुःसह के साथ हुआ था, तथापि वह केवल उन्हींके पास रहना उचित नहीं समझती थी, इससे मुनि बड़े दुःखी रहा करते थे। एक समय महामुनि मार्कण्डेय उनके पास गये। दुःसह मार्कण्डेय मुनि से कहने लगे, यह मेरी स्त्री मेरे पास रहना पसन्द नहीं करती, ऐसी स्त्री को ले कर मैं क्या करूंगा, ? आप इस विषय में मुझे उपदेश दें। मार्कण्डेय मुनि बोलेः—"तुम्हारी यह स्त्री अमङ्गल और अकीर्तिकारिणी है अर्थात् अलक्ष्मी है। जिन स्थानों में विष्णुभक्त अथवा शिवभक्त रहते हों, वहाँ तुम इसको साथ ले कर न जाना। जो वर्ण शिव या विष्णु का नाम सर्वदा उच्चारण करते हों, उनके नगर घर उपवन आदि में तुम अलक्ष्मी के साथ कभी नहीं जाना। जो ब्राह्मण वेद पढ़ते हों, सन्ध्या-वन्दन आदि नित्यकर्म करते हों, उनकी ओर तुम देखना भी नहीं, जिनके यहाँ हवन देवार्चन आदि होते हों, वहाँ तुम अपनी स्त्री के साथ नहीं जाना। जहाँ देवता, अतिथि, गौ आदि की पूजा नहीं होती हो, जो स्थान मङ्गल उत्सव आदि से शून्य हो, वहीं तुम अपनी स्त्री के साथ जाना।" ऐसा कह कर मार्कण्डेय मुनि अन्तर्हित हुए। उन्हींके कहने के अनुसार दुःसह अपनी स्त्री के साथ उन उन स्थानों में घूमते थे। एक दिन दुःसह ने अपनी स्त्री ज्येष्ठा से कहा "तब तक तुम इस तालाब वाले आश्रम में रहो, जब तक हम पाताल में जा कर अपने रहने का स्थान न ढूंढ़ लें।" यह कह कर दुःसह पाताल गये; परन्तु फिर न लौटे। एक दिन ज्येष्ठा ने कहीं विष्णु को देख लिया। वह बोली, मेरे पति ने मुझे छोड़ दिया है, अब अपने भरण पोषण के लिये धन कहाँ पाऊँ। विष्णु बोले—जो हमारी और शिव

की निन्दा करें उनका धन तुम ले लेना, जो लोग हमको छोड़ कर शिव की उपासना करेंगे अथवा शिव को छोड़ हमारी उपासना करेंगे, उनकी सम्पत्ति तुम्हारी सम्पत्ति कही जायगी। अलक्ष्मी को इस प्रकार समझा कर विष्णु और लक्ष्मी दोनों ने इस लिये रुद्र मन्त्र का जप किया कि अलक्ष्मी का दृष्टिदोष दूर होजाय। (लिङ्गपुराण)

अलम्बल=जटासुर का पुत्र। पाण्डवों ने जटासुर को मार डाला था। इस कारण उसका पुत्र अलम्बल उनसे द्वेष रखता था। दुर्योधन की आज्ञा से इस असुर ने कुरुक्षेत्र में घटोत्कच से युद्ध किया था। बहुत देर तक युद्ध होने के पश्चात् घटोत्कच ने माया से इसे परास्त किया और इसका सिर भी काट दिया।

(महाभारत)

अलम्बूषा=अप्सरा विशेष। कश्यप के औरस और प्रधी के गर्भ से यह उत्पन्न हुई थी। राजा तृणविन्दु के साथ इसका विवाह हुआ था। इसके गर्भ से एक पुत्र उत्पन्न हुआ था, जिसका नाम विशालराज था।

अलर्क=(१) सत्ययुग में दंश नामक असुर भृगु मुनि के शाप से इसी कीट के रूप में परिणत हुआ था और परशुराम के द्वारा मारे जाने पर इसकी मुक्ति हुई थी। यह कीट शूकर के समान था, इसके आठ पैर थे। दाँत तीक्ष्ण और शरीर बालों से आच्छादित था। एक समय परशुराम थक कर अपने शिष्य कर्ण के अङ्क में शिर रख कर सोये थे, उसी समय मांस-लोलुप अलर्क कीट कर्ण की जाँघ का मांस काटने लगा, महावीर कर्ण गुरु की निद्रा भङ्ग न हो इस कारण चुपचाप उसके काटने की व्यथा सहते रहे। जब कर्ण की जाँघ से निकला हुआ रुधिर परशुराम के शरीर में लगा, तब परशुराम की निद्रा खुल गयी; उठ कर परशुराम ने रुधिर निकलने का कारण पूछा। कर्ण की बातें सुन कर उन्होंने कीट की ओर लाल लाल आँखें कर के देखा जिससे वह कीट मर गया। पुनः असुर मूर्ति धारणपूर्वक परशुराम को प्रणाम कर वह बोला, भृगुवंशावतंस, आपका कल्याण हो, आपके अनुग्रह से मैं मुक्त हुआ, सतयुग में मैं असुर नामक दैत्य था। आपके पूर्व पितामह भृगु से मेरी अवस्था कम नहीं थी। मैंने बलपूर्वक उनकी स्त्री का हरण किया था। इस कारण उन्होंने मुझे शाप दिया, श्लेष्मा, मूत्र-भोजी कीट हो जाओ। पुनः मेरी प्रार्थना से सन्तुष्ट हो कर वे बोले "मेरे वंश में उत्पन्न राम के द्वारा तुम्हारी मुक्ति होगी" उन्हीं महर्षि के शाप से मेरी यह दुर्गति हुई थी; आज आपके प्रताप से मैंने मुक्ति पायी यह कह कर वह असुर अपने स्थान को चला गया। (महाभारत)

(२) राजा कुवलयाश्व का पुत्र, इनका जन्म मदालसा के गर्भ से हुआ था। इनकी माता मदालसा अति विदुषी और सर्वशास्त्रार्थ-दर्शिनी स्त्री थी। पुत्र अलर्क को मदालसा ने धर्मतत्त्व बतला दिये थे। कुवलयाश्व ने पुत्र को राज्य का भार सौंप कर स्त्री के साथ वान-प्रस्थ आश्रम ग्रहण किया। राजा अलर्क ने दुष्टों का शासन और शिष्टों का पालन करते हुए बहुत दिनों तक राज्य का प्रबन्ध किया। इनके साथ काशीराज सुबाहु का युद्ध हुआ, काशीराज ने सेना के साथ इनको घेर लिया। शत्रु से आक्रान्त हो कर बहुत दिनों तक ये नगर ही में घिरे रहे। तत्त्वदर्शी राजा अलर्क राज्य के निकट असंख्य प्राणियों की हत्या करने को पाप समझ कर उन्होंने काशिराज को राज्य दे देने की इच्छा की। परन्तु काशि-राज अलर्क से शिक्षा ग्रहण कर और युद्ध से निवृत्त हो कर अपनी राजधानी को लौट गये। बहुत दिनों तक राज्य कर के अलर्क ने वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण किया। (मार्कण्डेयपुराण)

अलायुध=राक्षस विशेष, भीम के द्वारा इसकी जाति के बक और किर्मीर तथा मित्र हिडिम्ब मारे गये थे। बदला चुकाने की इच्छा से यह राक्षस महाभारत के युद्ध में बहुत सेना के साथ दुर्योधन से मिला था और घोर युद्ध कर के भीम के पुत्र घटोत्कच द्वारा मारा गया।

(महाभारत, द्रोण.)

अवन्तिवर्मा=काश्मीर के राजा। ये सुखवर्मा के पुत्र थे। इनके राज्यारूढ़ होने के पहले काश्मीर का राजसिंहासन विपद संकुल था, एक राजा उतारे जाते, और उस स्थान पर दूसरे अपना अभिषेक करवाते थे। इनके पहले उत्पलापीड़ काश्मीर के सिंहासन पर बैठा था। वहाँ के वृद्ध और अनुभवशील मन्त्री ने अवन्तिवर्मा को राज्य प्रबन्ध करने में सर्वथा उपयुक्त समझ कर उत्पलापीड़ को राज्यच्युत कर दिया और अवन्तिवर्मा का काश्मीर के सिंहासन पर अभिषेक हुआ।

अवन्तिवर्मा राज्य पा कर पहले विपद में पड़ गये। इनकी राज्यप्राप्ति से ईर्ष्या करने वाले ऊधम मचाने लगे, अतएव इन्हें युद्ध और कौशल के अवलम्बन द्वारा इन क्षुद्र शत्रुओं को दमन करना पड़ा था। सो सब इन्हों ने अपने विद्वान् और अनुभवी मन्त्रियों की सहायता से सम्पादित किया। अपने राज्य का इन्होंने उत्तम प्रबन्ध भी कर लिया।

काश्मीर में विद्या-चर्चा भी लुप्त होगयी थी। बुद्धिमान् मन्त्री शूर ने नाना स्थानों से सम्मानपूर्वक पण्डितों को बुलाया। अवन्तिवर्मा के राज्यकाल में मुक्ताकण, शिवस्वामी, आनन्दवर्द्धन और रत्नाकर ये पण्डित काश्मीर में थे। अवन्तिवर्मा यद्यपि वैष्णव थे, तथापि इनके मन्त्री शूर के शैव होने के कारण ये भी शैवों ही के समान रहते थे। इन्होंने अपने नाम से काश्मीर में अवन्तीपुर नामक एक नगर बनाया था। कल्लट भट्ट आदि प्रसिद्ध विद्वान् इन्हींके समय में काश्मीर की शोभा बढ़ा रहे थे। इन्होंने २७ वर्ष २ महीना १८ दिन राज्य किया था। (राजतरङ्गिणी)

अवन्ती=एक देश का नाम। एक नगर, जिसका दूसरा नाम विशाला है। क्षिप्रानदी के किनारे उज्जैन नाम से इस समय इसकी प्रसिद्धि है। यही प्रसिद्ध राजा विक्रमादित्य की राजधानी है। नर्मदा नदी के उत्तर और पश्चिमभाग में यह अवस्थित है। महाभारत के समय में इस देश का विस्तार दक्षिण की ओर नर्मदा तक और पश्चिम की ओर माहीनदी तक था।

अशोक=(१) विख्यात मौर्य सम्राट्, ये विन्दुसार के पुत्र और चन्द्रगुप्त के पौत्र थे। विन्दुसार के मरने पर राज्य के लिये उनके पुत्रों में विरोध हुआ। प्रतिद्वन्द्वियों को पराजित कर के २५ वर्ष की अवस्था में अशोक सिंहासनारूढ़ हुए। अशोक का दूसरा नाम प्रियदर्शी था। राज्याभिषेक के आठवें वर्ष में इन्होंने कलिङ्ग देश को जीता। इस युद्ध में प्रायः १॥ लाख सेना वन्दी और १ लाख सेना हत हुई थी। अशोक राज्य पाने के समय हिन्दू थे और समय समय पर उन्होंने बौद्धों को पीड़ा पहुँचायी थी। कहते हैं कि इन्हींकी आज्ञा से बोध गया का बोधिद्रुम काटा गया था और कपिल वस्तु के समीप वाले बुद्ध के ८ स्मारक स्तम्भों में से सात को इन्होंने तुड़वा दिया था। अशोक २६४ खृष्टाब्द के पूर्व पटना में सिंहासन पर बैठे थे और राज्य पाने के सातवें वर्ष उन्होंने बौद्ध धर्म ग्रहण किया था। अशोक ने १४ वर्ष के मध्य ही में भारत के दस भागों पर अपना अधिकार जमा लिया था। उनके पहले के किसी राजा ने अपने राज्य का इतना विस्तार नहीं किया था। इनका राज्य उत्तर में हिमालय पर्वत के समीपस्थ तराई प्रदेश तक, दक्षिण में गोदावरी नदी, पूर्व में ब्रह्मपुत्र और पश्चिम में अरब सागर तक फैला था। इतने बड़े राज्य को इन्होंने कई भागों में बाँट दिया था, उन प्रत्येक प्रदेशों के एक एक शासक नियत थे। उज्जयिनी और तक्षशिला प्रदेश का शासन एक राजकुमार के हाथ में था। इन्होंने अनेक स्थानों में कुए और धर्मशालाएँ बनवायीं थीं। अनेक स्थानों में धर्ममन्दिर और विहार भी इन्होंने बनवाये थे, इसी कारण इनका राज्य आज भी विहार कहा जाता है। कहा जाता है कि ये ६० हज़ार बौद्धों का भरण पोषण कर उनके द्वारा बौद्ध धर्म का प्रचार करवाते थे। समस्त संसार को बौद्ध बना देना ये अपने जीवन का प्रधान कार्य समझते थे। इनके समय में बौद्ध महासभा का द्वितीय

अधिवेशन हुआ था। ये पत्थरों में धर्मांश खुदवा कर अपने राज्य में उसको फैलाते थे। २३३ खृष्टाब्द के पूर्व तक इन्होंने राज्य करके मानव लीला समाप्त की थी।

(२) काश्मीर के राजा, शकुनि का प्रपौत्र और शचीनर के पितृव्य के ये पुत्र थे। शचीनर के मरने पर ये कश्मीर के सिंहासन पर बैठे थे, ये धार्मिक और सत्यवादी थे। इन्होंने बौद्ध धर्म ग्रहण किया था। इन्होंने वितस्ता पर्वत पर बहुत से बौद्ध मठ बनवाये थे। इनके बनवाये बौद्धमन्दिर इतने ऊँचे थे कि इनका शिखर नहीं दीख पड़ता था। इन्होंने ६६ लाख सुन्दर गृहों से सुशोभित श्रीनगरी नाम का एक नगर बसाया था। अशोकेश्वर नामक एक महल भी इन्होंने अपने नाम से बनाया था। जब इनके देश पर म्लेच्छों ने चढ़ाई की तब दूसरा उपाय न देख कर ये उनको जीतने के लिये महादेव की आराधना करने लगे। महादेव के वर से इनके एक पुत्र उत्पन्न हुआ था जिसका नाम जलौक था।

अश्मक=(१) सूर्यवंशी राजा, अयोध्या के राजा कल्माषपाद की स्त्री के गर्भ और महर्षि वशिष्ठ के औरस से ये उत्पन्न हुए थे।

(२) ट्रावनकोर या भिवांकोडू का पुराना नाम।

अश्वकेतु=महाभारत का एक वीर योद्धा, यह दुर्योधन की ओर से लड़ता था और अभिमन्यु के हाथ से यह मारा गया था।

अश्वत्थामा=प्रसिद्ध कौरव-पाण्डव-गुरु द्रोणाचार्य का पुत्र, द्रोणाचार्य ने अपने पिता की आज्ञा से शरद्वान की कन्या कृपी से अपना विवाह किया था। कृपी के गर्भ से द्रोणाचार्य के अश्वत्थामा नामक एक पुत्र हुआ था। इस पुत्र ने उत्पन्न होते ही उच्चैःश्रवा नामक घोड़े के समान शब्द किया था, ध्वनि होने के पश्चात् देववाणी हुई कि इस पुत्र ने जन्म लेते ही घोड़े के समान गंभीर शब्द से दिशाओं को प्रतिध्वनित कर दिया इस कारण इसका नाम अश्वत्थामा होगा। अश्वत्थामा ने पिता से धनुर्विद्या सीखी थी, कुरुक्षेत्र युद्ध के अन्तिम दिन अश्वत्थामा भग्नोरु दुर्योधन को देखने गया था, और उसके सामने पाण्डवों का विनाश करने की प्रतिज्ञा कर आया था। दुर्योधन को उसी अवस्था में छोड़ कर कृपाचार्य और कृतवर्मा के साथ अश्वत्थामा मध्य रात्रि में पाण्डवों के शिविर में घुस गया। वहाँ जा कर धृष्टद्युम्न शिखण्डी द्रौपदी के पाँच पुत्र तथा पाण्डव पक्ष के बचे हुए अन्यान्य वीरों का भी वध कर, इसने अपने ब्राह्मणपने का परिचय दिया था। पंच पाण्डव श्रीकृष्ण और सात्यकि उस समय वहाँ नहीं थे, इसी कारण वे बचगये। अपने पुत्रों के वध से द्रौपदी विलाप करने लगी, भीम अश्वत्थामा को मारने के लिये दौड़े, श्रीकृष्ण ने सोचा कि अब तो अनर्थ होना चाहता है, क्योंकि अश्वत्थामा को अमर होने का वर दिया गया है। अतएव अर्जुन को साथ ले कर वे भी गये। भीम और अर्जुन के अस्त्रों से रक्षा पाने के लिये अश्वत्थामा ने ऐशिकास्त्र का प्रयोग किया था। इस अस्त्र को नष्ट करने के लिये अर्जुन ने ब्रह्मशिर नामक अस्त्र चलाया। महर्षि व्यास और नारद ने दोनों को अपने अपने अस्त्र खींच लेने की आज्ञा दी। अर्जुन तो ब्रह्मचारी थे, उन्होंने अपना तो अस्त्र खींच लिया, परन्तु अश्वत्थामा अपना अस्त्र नहीं खींच सका। क्योंकि वह ब्रह्मचारी नहीं था। अन्त में अर्जुन उसे पकड़ कर ले आये और उसका वध करना ही चाहते थे कि द्रौपदी ने निषेध किया। पुनः श्रीकृष्ण की सम्मति से उसके शिर की मणि काट कर अर्जुन ने उसे छोड़ दिया। (महाभारत)

अश्वपति=(१) केकय देश के राजा थे, महाराज दशरथ की रानी कैकयी के पिता।

(२) सावित्री के पिता।

अश्वमेध=एक प्रकार का यज्ञ, इस यज्ञ में धार्मिक और राजकीय दोनों भाव मिले हुए हैं। विजयी राजालोग इस यज्ञ को करते थे। जो अश्वमेध यज्ञ करना चाहते थे, वे एक घोड़ा छोड़ते थे, घोड़े के मस्तक पर एक पत्र लटका दिया जाता था, उस पत्र पर राजा का नाम,

प्रताप आदि लिखे जाते थे। जो उस राजा का प्रताप अर्थात् अधीनता स्वीकार करते थे, वे उसको नहीं पकड़ते थे, परन्तु जिन्हें अधीनता स्वीकृत नहीं होती वे लड़ने के लिये तैयार हो जाते। उस घोड़े की रक्षा करने के लिये, राजपरिवार के वीर जाते थे। उस घोड़े के चारों ओर से लौट आने पर बड़ा आनन्द मनाया जाता था। अन्त में उसी घोड़े के मांस से हवन आदि किया जाता था।

अश्वलायन=ये एक प्राचीन प्रसिद्ध ग्रन्थकार हैं जो कि अनुमान से ईसा के ३५० वर्ष पूर्व विद्यमान थे। ये शौनक के शिष्य थे और कात्यायन के पूर्वज। कल्पसूत्र के लेखकों में एक ये भी हैं। इन कल्पसूत्रों में यज्ञ आदि के अनुष्ठान का वर्णन किया है, जिनके करने की आज्ञा वेदों में दी गई है। ये गृह्यसूत्र के भी कर्ता हैं। गृह्यसूत्रों में संस्कार आदि के विधान का निरूपण किया गया है।

अश्वसेन=तक्षक का पुत्र, खाण्डव दाह के समय तक्षक कहीं बाहर गया था, उसके पुत्र अश्वसेन ने अपनी रक्षा के लिये अनेक चेष्टा की, किन्तु अर्जुन के बाणों से रुद्ध होने के कारण उसके सभी प्रयत्न निष्फल हुए। उसकी माता अपने पुत्र की रक्षा के लिये दौड़ी। अश्वसेन का सिर और पूँछ जल गयी थी। नागपत्नी पुत्र की रक्षा करने जा कर स्वयं मृत हुई, अर्जुन ने तीक्ष्ण बाण से उसका सिर काट दिया। देवराज इन्द्र ने यह देखा, वातवर्षण से अर्जुन को अचेत कर दिया, इसी समय भाग कर अर्जुन ने अपने प्राणों की रक्षा की। मातृहन्ता अर्जुन को मारने के लिये कुरुक्षेत्र के युद्ध में अश्वसेन कर्ण का बाण बना था, कर्ण ने इस बाण को छोड़ा। इस बात को जान कर श्रीकृष्ण ने अर्जुन को सावधान कर दिया, अर्जुन ने सिर नीचा कर दिया सर्पबाण अर्जुन के किरीट को छेद कर निकल गया अश्वसेन ने विफल मनोरथ होकर कर्ण के समीप जा कर अपना परिचय बताया और अपने को बाण में लगाने की उन से प्रार्थना की, कर्ण वीर था उसने एक बाण को दो बार चलाने में अपनी असम्मति प्रकाशित की, इस कारण वह स्वयं अर्जुन की ओर दौड़ा और मारा गया। (महाभारत)

अश्विनी=दक्षप्रजापति की कन्या और चन्द्रमा की स्त्री। इस नक्षत्र का आकार अश्वमुख के समान है। इसी कारण इसका नाम अश्विनी है। आश्विन मास की पूर्णमासी तिथि को इसी नक्षत्र में चन्द्रमा रहते हैं। इसी कारण उक्त महीने का नाम आश्विन पड़ा है।

अश्विनीकुमार=अश्वरूपी सूर्य के औरस और वड़वा रूपधारिणी संज्ञा के गर्भ से इन स्वर्गीय यमज वैद्यों की उत्पत्ति हुई थी। कहा जाता है कि सूर्य का तेज न सह सकने के कारण सूर्य की स्त्री संज्ञा ने अपने समान एक स्त्री को बना कर सूर्य के पास रख दिया और वह स्वयं अपने पिता त्वष्टा के घर चली गयी। त्वष्टा ने अपने पति के साथ दुर्व्यवहार करने के कारण पुत्री संज्ञा को बहुत डांटा और पुनः पति के पास जाने के लिये उससे अनुरोध किया। पुत्री ने पिता के कहने पर ध्यान न दे कर अश्विनी का रूप धारण किया और उत्तर कुरु वर्ष की ओर वह चली गयी। यह जान कर सूर्य अश्वरूप धारण करके अपनी स्त्री के साथ रहने लगे, इसी समय अश्विनीकुमार उत्पन्न हुए थे। ये दोनों साथ रहते हैं, और स्वर्गीय वैद्य कहे जाते हैं। पहले इनको देवता यज्ञों में भाग नहीं देते थे। परन्तु महर्षि च्यवन का औषधोपचार द्वारा वृद्धत्व दूर करने पर च्यवन ने इन्हें भी यज्ञभाग में सम्मिलित करने का देवताओं से अनुरोध किया, तब से इन स्वर्गीय वैद्यों को भी यज्ञ का भाग मिलने लगा। (हरिवंश)

ऋग्वेद में भी यह उपाख्यान इसी प्रकार लिखा गया है, परन्तु वहां सूर्य की पत्नी का नाम सरण्यू लिखा मिलता है।

अष्टक=महाराज ययाति का दौहित्र, महर्षि विश्वामित्र के औरस और ययाति की कन्या माधवी के गर्भ से इनका जन्म हुआ था। ये एक पुण्यवान् राजा थे। नहुष पुत्र ययाति ने

अपने पुत्र पुरु को राज्य दे कर वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण किया। अनन्तर ब्राह्मणों के साथ कुछ दिनों तक वास कर ये परलोकवासी हुए। एक दिन देवराज इन्द्र ने उनसे पूछा, तुम किस तपस्या के बल से स्वर्ग आये हो, ययाति बोले, देवराज, देवता मनुष्य गन्धर्व और महर्षियों में भी किसी ने आज तक मेरे समान तपस्या नहीं की थी। देवराज बोले, तुमने दूसरे का तपःप्रभाव न जान कर जो सब का अपमान किया है इस कारण तुम इसी समय नष्टपुण्य हो कर स्वर्ग से निकल जाओ। ययाति बोले कि यदि इनके तिरस्कार करने से मुझे स्वर्गलोक से जाना ही होगा तो आप ऐसी व्यवस्था कर दें कि मैं यहाँ से गिराये जाने पर भी सज्जनों के साथ रह सकूँ। देवराज ने कहा कि तुम सज्जनों के साथ ही रहोगे, परन्तु सावधान फिर इस प्रकार किसी का अपमान मत करना, इस प्रकार बातचीत होने पर वे इन्द्र की आज्ञा से स्वर्ग से गिरा दिये गये। आकाश मार्ग में अपने दौहित्र अष्टक उसके साथी प्रतर्दन हर्यश्व के पुत्र वसुमान और उशीनर के पुत्र शिवि से इनकी भेंट हुई। इनके साथ परिचय होने पर अष्टक बोले, महाराज, स्वर्ग या अन्तरिक्ष में जो कोई मेरा स्थान हो वह मैंने आपको दिया। प्रतर्दन ने कहा, महाराज आप ज्ञानी हैं, अतएव अन्तरिक्ष या स्वर्ग में मेरे लिये कोई स्थान रक्षित हो वह मैंने आपको दिया। वसुमान् बोले, महाराज स्वर्ग या अन्तरिक्ष में मेरे लिये कोई स्थान हो उसका अधिकार मैंने आपको दिया, यदि आप दान लेना उचित नहीं समझते हों, तो मुझसे तृण द्वारा खरीद लीजिये। शिवि ने भी इसी प्रकार कहा। ययाति बोले, मैं तुम लोगों को छोड़ कर एकाकी स्वर्ग में रहना नहीं चाहता, हम सब लोगों ने अपने कर्म फल से स्वर्ग जीत लिया है; अतएव हम सब लोग साथ ही मिल कर चलें। इसी प्रकार महाराज ययाति, अष्टक, प्रतर्दन, वसुमान् और शिवि को साथ ले कर, स्वर्ग में पुनः गये। (महाभारत)

अष्टावक्र=महर्षि असित के पुत्र देवल, रम्भा के शाप से कृष्णवर्ण और वक्राङ्ग हो गये, तब उन का नाम अष्टावक्र हुआ। कहते हैं कि मुनिश्रेष्ठ देवल, बहुत वर्ष तक गन्धमादन पर्वत पर तपस्या करते थे। एक दिन दैववश स्वर्गीय अप्सरा रम्भा मुनिवर को कामदेव के समान सुन्दर देख कर उनके समीप उपभोग करने की इच्छा से गयी। महर्षि के बहुत समझाने पर भी रम्भा अपने विचार से नहीं डिगी, और अनेक प्रकार के प्रलोभनों को दिखा कर उन से प्रार्थना करने लगी। तब देवल बहुत क्रुद्ध हुए और वे पूर्ववत् ध्यान लगाकर बैठ गये तब इससे रम्भा ने अपमान समझ कर, देवल को शाप दिया,—हे वक्रधिम्र! तुम्हारा सीधा और सुन्दर शरीर वक्र और काला हो जायगा, तुम रूप-यौवन-हीन हो कर अतीव निन्दित रूप धारण करोगे और अनेक वर्षों का अर्जित तुम्हारा तप नष्ट हो जायगा, यह कह रम्भा वहाँ से चली गयी। मुनिश्रेष्ठ देवल ने पहले के समान भगवान् के चरणारविन्द को अपने सामने नहीं देखा, इससे वे बहुत व्यथित हुए और अपने शरीर को पूर्व पुण्यविवर्जित देख कर अग्निकुण्ड में अपने प्राण विसर्जन करने के लिये उद्यत हुए। तब भगवान् का वहाँ आविर्भाव हुआ। अनेक प्रकार के उपदेशों से उनको भगवान् ने शान्त किया और इनके आठों अङ्ग वक्र देख कर भगवान् ने इनका अष्टावक्र नाम रखा। (ब्रह्मवैवर्त पुराण)

महाभारत में अष्टावक्र की कथा इस प्रकार लिखी है। महर्षि उद्दालक ने अपने शिष्य कहोड़ को अपनी कन्या सुजाता व्याह दी थी। सुजाता के गर्भवती होने पर उनके गर्भस्थ बालक ने समस्त वेदों का ज्ञान प्राप्त किया था। एक दिन शिष्यों के साथ वेदपाठ करते हुए अपने पिता का भ्रम देख कर गर्भस्थ बालक ने कहा, मैंने आपके प्रसाद से गर्भ ही में चारों वेदों का ज्ञान प्राप्त कर लिया है और उसी प्राप्तज्ञान के द्वारा मैं देखता हूँ कि आप वेदपाठ अशुद्ध कर रहे हैं। महर्षि कहोड़ ने

अपने शिष्यों के सामने इस प्रकार अपमानित हो कर गर्भस्थ बालक को शाप दिया, तुमने गर्भ में रह कर ही मेरी निन्दा की, इस कारण तुम्हारा शरीर वक्र हो जायगा । गर्भस्थ बालक यथासमय उत्पन्न हुआ, उसका अष्टावक्र नाम रखा गया । कहोड़ दरिद्र थे । अतएव गर्भवती सुजाता के कहने से धन के लिये कहोड़ जनकराज के निकट गये । परन्तु वहाँ सभापण्डित बन्दी के द्वारा परास्त होने से ये जल में डुबो दिये गये । महर्षि उद्दालक ने अपनी कन्या सुजाता को अष्टावक्र से कहोड़ की बातें न कहने के लिये अनुरोध किया था । अष्टावक्र उद्दालक को अपना पिता और मामा श्वेतकेतु को भाई समझते थे । अष्टावक्र और श्वेतकेतु दोनों समान वय के थे । एक दिन अष्टावक्र को पिता की गोद में बैठे देख श्वेतकेतु ने कहा कि यह तुम्हारे पिता की गोद नहीं है । अष्टावक्र दौड़े दौड़े माता के समीप गये और उनसे अनेक प्रश्न करने लगे । इनके पूँछने से दिक् होकर सुजाता ने कहोड़ सम्बन्धी बातें अपने पुत्र से कह दीं । पिता की दुर्गति सुन कर अष्टावक्र ने अपने पिता के उद्धार करने का संकल्प किया । वे अपने मामा श्वेतकेतु को जनक के यज्ञ में उत्तम भोजन मिलने का लोभ दिखा कर अपने साथ ले कर मिथिला में जनकराज के यहाँ उपस्थित हुए । उनको बालक देख कर पहरे वाले ने यज्ञमण्डप में जाने नहीं दिया । उसी समय जनकराज भी वहाँ उपस्थित हुए । अष्टावक्र ने अपना अभिप्राय निवेदन किया । यह बालक सभापण्डित को जीतने आया है यह देख कर जनक को बड़ा आश्चर्य हुआ, और वे ज्ञान की परीक्षा लेने के लिये अष्टावक्र से अनेक प्रश्न करने लगे । जब उन्होंने देखा कि यह मेरे प्रश्नों का यथार्थ उत्तर देता है; तब उन्होंने सभा में जाने की अनुमति दी और जा कर स्वयं मध्यस्थ बने । शास्त्रार्थ में सभापण्डित बन्दी परास्त हुआ, जल में उसके डुबाये हुए सभी पण्डित निकाले गये और इनके स्थान में बन्दी डुबा दिया गया । अष्टावक्र अपने पिता कहोड़ को और प्रभूत धन ले कर घर लौट आये । पुनः पिता की आज्ञा से अष्टावक्र ने समाङ्गा नामक नदी में स्नान किया, जिसके फल से अष्टावक्र का शरीर सुन्दर हो गया । अष्टावक्र और जनक में जो उत्तर प्रत्युत्तर हुए थे वे अष्टावक्रसंहिता के नाम से प्रसिद्ध है । (महाभारत वन.)

असमञ्जस=सूर्यवंशी राजा सगर के ज्येष्ठ पुत्र । असमञ्जस अत्यन्त प्रजापीड़क राजा थे, इस कारण सगर ने इनको अपनी राजधानी से निकाल दिया था । इनकी माता का नाम केशिनी था, इनका अंशुमान् नामक एक प्रसिद्ध पुत्र था ।

असिक्नी=दक्ष की स्त्री वीरणा की कन्या ।

असित=सूर्यवंशी राजा ध्रुवसन्धि के ये पुत्र थे । रामायण में लिखा है कि ये बड़े युद्धप्रिय और क्रोधी थे । इसीसे इनके बहुत से शत्रु होगये थे । हैहय तालजङ्घों ने इन पर आक्रमण किया, बहुत दिनों तक लड़ाई होती रही । अन्त में असित पराजित हो कर दो स्त्रियों के साथ हिमालय पर भाग गये । (रामायण)

अस्कन्दगिरि=ये बाँदा के रहने वाले थे और सन् १८५६ में विद्यमान थे । ये नायिका भेद की कविता बनाने में पटु थे । इनका बनाया "अस्कन्द विनोद" ग्रन्थ प्रसिद्ध है ।

अस्ती=कंस की स्त्री और जरासन्ध की कन्या । अस्ती की छोटी बहिन का नाम प्राप्ति था और वह भी कंस को ब्याही थी ।

अहमद=मुसल्मान हिन्दी कवि, इसका जन्म सन् १६१३ ई० में हुआ था । यह सूफी सम्प्रदाय का बतलाया जाता है । परन्तु इसकी रचनाओं से मालूम पड़ता है कि यह वैष्णव था । इसके बनाये दोहे और सोरठे बहुत पायेजाते हैं ।

अहल्या=महर्षि गौतम की स्त्री । इनके पिता का नाम वृद्धाश्व था । ये अत्यन्त रूपवती थीं; देवराज इन्द्र ने गौतम का रूप धर कर इनका धर्म नष्ट करना चाहा था । गौतम के शाप से इन्द्र नपुंसक होगये थे, परन्तु देवताओं ने बड़े परिश्रम से मेष का पुरुषत्व ले कर इन्द्र को प्रदान

किया, तभी से इन्द्र का एक नाम मेषवृषण हुआ। गौतम ने अहल्या को भी शाप दिया। गौतम के शाप से अहल्या निराहार केवल वायु के आधार पर रहने लगी, सर्वदा वह पश्चात्ताप करती रहती थी, उसका शरीर भस्म से पूर्ण था, और वह समस्त प्राणियों से अदृश्य होगयी।

"वातभक्षा निराहारा तपन्ती भस्मशायिनी।
अदृश्या सर्वभूतानामाश्रमेऽस्मिन्निवसिष्यसि॥"
(रामायण)

पुनः अहल्या के प्रार्थना करने पर गौतम प्रसन्न हो कर बोले, "हमारा शाप व्यर्थ नहीं हो सकता, किन्तु विष्णुरूपी रामचन्द्र जब इस आश्रम में आवेंगे, तब तुम उनके चरण वन्दन कर, मुक्त हो सकोगी।" विश्वामित्र के साथ जब रामचन्द्र आये, तब उन लोगों ने भी अहल्या को तपस्विनी के रूप में देखा था। राम और लक्ष्मण दोनों भाइयों ने अहल्या को प्रणाम किया था और अहल्या ने भी अपने पति गौतम का वचन स्मरण कर के रामचन्द्रजी का चरण वन्दन किया था।

"राघवौ तु तदा तस्याः पादौ जगृहतुर्मुदा।
स्मरन्ती गौतमवचः प्रतिजग्राह सा हि तौ॥"
(रामायण)

पद्मपुराण में लिखा है कि गौतम के शाप से अहल्या पत्थर होगयी थी और इन्द्र के शरीर में अनन्त भग के चिह्न होगये थे। कुमारिल भट्ट के मत से अहल्या और इन्द्र विषयक उपाख्यान केवल रूपक है। अहल्या शब्द का अर्थ रात्रि है, और इन्द्र शब्द का अर्थ है सूर्य। दिन में सूर्योदय होने से रात्रि नष्ट होती है इसी घटना को ले कर उक्त उपाख्यान कल्पित हुआ है।

अहल्याबाई=मालव देश के अन्तर्गत एक छोटे गाँव में सन् १७३५ ई० में इन्होंने जन्म ग्रहण किया था। मल्हारराव होल्कर के एकलौते पुत्र कुन्दराव के साथ छोटी अवस्था ही में इनका विवाह हुआ था। इनके एक पुत्र और एक कन्या उत्पन्न हुई, पुत्र का नाम मल्हारराव और कन्या का नाम मुक्ताबाई था। अहल्याबाई की १९ वर्ष की अवस्था में इनके पति कुन्दराव किसी शत्रु के दुर्ग अवरोध करने के लिये जा कर वहाँ ही मारे गये। पति के जीवनकाल में अहल्याबाई राज्य संबन्धी किसी भी काम में हाथ नहीं डालती थीं। वे हिन्दु स्त्रियों के समान सदा अन्तःपुर में रह कर सन्तानों का लालन पालन किया करती थीं। उन की ३० वर्ष की अवस्था में उनके श्वशुर मल्हारराव का परलोकवास हुआ। इनके बाद अहल्याबाई के पुत्र मल्हारराव का राज्यसिंहासन पर अभिषेक हुआ। किन्तु महीने के बाद ही मल्हारराव का भी परलोकवास हो गया। पुत्र के मरने पर राज्य का समस्त भार अहल्याबाई के सिर पड़ा। राज्य का भार ग्रहण करने पर ये सभीके सामने आने जाने लगीं। वे सूर्योदय के पहले ही स्नान आदि समाप्त कर अपने हाथों से ब्राह्मण भोजन कराती थीं और तदनन्तर स्वयं कुछ आहार कर के रानी के वेष से राजसभा में जाती थीं। मन्त्री और सभासदों के साथ सन्ध्या तक वे राजकार्य करती थीं। तदनन्तर सायङ्कालिक कृत्य समाप्त कर के रात्रि में भी दरबार करती थीं। राजपुरोहित गङ्गाधर यशवन्त की इच्छा थी कि अहल्याबाई एक दत्तक पुत्र ले लें, और स्वयं उसका मन्त्री बन कर राज्य शासन करें। इसी अपने उद्देश्य को सिद्ध करने के लिये गङ्गाधर ने कई बार षड्यन्त्र भी रचा, परन्तु अहल्याबाई की तीक्ष्ण बुद्धि से उसके सब यत्न व्यर्थ हो गये। अन्त में महारानी अहल्याबाई ने राजपुरोहित के अपराध क्षमा कर के, उन्हें अपना मन्त्री बनाया और तुकाजी होल्कर नामक एक बुद्धिमान् व्यक्ति को सेनापति बनाया। हुल्कर वंश के आश्रित सामन्तों के प्रति इनका व्यवहार दयायुक्त था। पहले इन्दौर एक सामान्य छोटा सा गाँव था, परन्तु अहल्याबाई ने राज्य भार ले कर उस स्थान को एक समृद्धिशाली नगर बना दिया, वे दानशीला अतिथि-परायणा और देव-द्विज भक्तिपरायणा थीं। भारतवर्ष के प्रसिद्ध तीर्थ स्थानों में अहल्याबाई की कीर्ति आज भी

वर्तमान है। महीशूर और मालवा प्रदेश में उनके बनाये अनेक देवमन्दिर, धर्मशाला और कूप आदि आज भी वर्तमान हैं। गया में उनके बनाये अनेक देवालय वर्तमान हैं। गया में उनके बनवाये विष्णुपद मन्दिर की कारीगरी देखते ही बन आती है।

अहल्याबाई की निर्भीकता देख कर आश्चर्यान्वित होना पड़ता है। उनके सेनापति तुकाजी होलकर, जयपुर के राजा के पास कर लेने के लिये गये। किन्तु माधोजी सिन्धिया के सेनापति जिड़वा दादा के बहकाने से जयपुर-राज देयधन देने में विलम्ब करने लगे। इधर जिड़वा दादा ने तुकाजी पर सहसा आक्रमण कर दिया। अकस्मात् आक्रमण से तुकाजी पराजित हुए। उन्होंने एक दुर्ग में छिप कर अहल्याबाई से सहायता माँगी। अहल्याबाई ने १५ हज़ार सैनिक भेज दिये। फिर युद्ध हुआ और इस युद्ध में पराजित हो कर जिड़वा दादा ने तुकाजी से क्षमा माँगी और यह युद्ध भी समाप्त हुआ। अहल्याबाई ने दान-ध्यान-तप-परायण हो कर ३० वर्ष तक बड़े सुख से राज्य का प्रबन्ध किया था। मृत्यु के कुछ दिन पहले एक दुःखद घटना होगयी थी। उनकी कन्या मुक्ताबाई विधवा होगयी, और माता का कहना न मान कर उसने अपने पति का साथ दिया। इस घटना से अहल्याबाई का हृदय टूट गया। कन्या की चिता पर उन्होंने कन्या का स्मारक स्वरूप एक मठ बनवा दिया था। इस घटना के कुछ ही दिनों के बाद अहल्याबाई अपने नश्वर शरीर और चिरस्थायी यश को पृथ्वी पर छोड़ कर परलोकवासिनी हुईं।

अहिःक्षेत्र=पाञ्चाल देश के उत्तरी भाग की यह राजधानी था।

आ

आगम=एक प्रकार के दैवी वचनों की व्याख्या, तन्त्रशास्त्र, शिवप्रोक्त तन्त्रविद्या।

आचार्य=धर्मोपदेष्टा गुरु, वेदाध्यापक।

"उपनीय तु यः शिष्यं महाव्याहृतिपूर्वकम्।
संकल्पं सरहस्यञ्च तमाचार्यं प्रचक्षते॥"
(मनुस्मृति)

आज़म=मुसलमान हिन्दी कवि, सन् १८०८ ई० में जन्मा। ये अन्य कवियों का मित्र था और स्वयं कविता भी रचा करता था। इसकी सर्वोत्तम कविता "नख सिख" और षट्ऋतु वर्णन है।

आदि=ब्रह्मपुराण, जिसमें दस हज़ार श्लोक हैं।

आदित्य=सबसे प्राचीन देवताओं में इनकी गणना है। प्रति संक्रान्ति को बदलने वाली सूर्य की कला को आदित्य कहते हैं। ये अदिति के पुत्र थे। पहले इनकी संख्या आठ या नौ थी, परन्तु पीछे से संस्कृत साहित्य में इनकी १२ संख्या मानी जाने लगी। चाक्षुष मन्वन्तर में इनका नाम तुषित था। किन्तु वैवस्वत मन्वन्तर में वे आदित्य कहलाये।

आदिशूर=बङ्ग के सेन राजाओं में से प्रथम राजा। इनका असली नाम शूरसेन या वीरसेन था। इनकी राजधानी गौरनगर में थी, बङ्गाल के विक्रमपुर परगने के अन्तर्गत रामपाल नामक स्थान में इन्होंने अपनी दूसरी राजधानी बनवायी थी। आदिशूर दशम शताब्दि के अन्त में बङ्गाल का शासन करते थे। उस समय बङ्ग देश में बौद्ध धर्म का अत्यन्त विस्तार था, अतएव वहां उस समय याज्ञिक ब्राह्मणों का मिलना असम्भव हो गया था। राजा आदिशूर पुत्रेष्टि याग कराना चाहते थे। इसी कारण इन्होंने कन्नौज से पाँच वेदज्ञ ब्राह्मण बुलवाये थे। इनके विषय में बङ्गाल के मिश्र ग्रन्थों में लिखा मिलता है—

"भट्टनारायणो दक्षो वेदगर्भोऽथ छान्दडः,
अथ श्रीहर्षनामा च कान्यकुब्जात् समागताः।
शाण्डिल्यगोत्रजः श्रेष्ठो भट्टनारायणः कविः,
दक्षोऽथ काश्यपश्रेष्ठो वात्स्यश्रेष्ठोऽथ छान्दडः।
भरद्वाजकुलश्रेष्ठः श्रीहर्षो हर्षवर्द्धनः,
वेदगर्भोऽथ सावर्णो यथावेद इति स्मृतः॥"

इन्हीं पाँच ब्राह्मणों से बङ्गाल के प्रसिद्ध ब्राह्मणों की उत्पत्ति हुई है।

आनन्दगिरि=विख्यात दार्शनिक पण्डित, ये शङ्कराचार्य के शिष्य थे। खृष्टीय नवीं शताब्दी में ये उत्पन्न हुए थे। इन्होंने अनेक ग्रन्थ बनाये हैं, जिनमें शङ्कराचार्य का दिग्विजय प्रसिद्ध है। इसमें स्वामी शङ्कराचार्य का जीवनचरित लिखा गया है। शङ्कराचार्य के शारीरकभाष्य की इन्होंने टीका भी लिखी है। इसके अतिरिक्त उपनिषदों का भाष्य और श्रीमद्भगवद्गीता की टीका इनकी बनायी इस समय मिलती है।

आनन्दवर्द्धन=ये कवि कश्मीरनिवासी और प्रसिद्ध अलङ्कार शास्त्रज्ञ थे। इनके रचे मुख्य ग्रन्थ ये हैं। "काव्यालोक", "ध्वन्यालोक" और "सहृदयालोक"। ये कश्मीर के राजा अवन्तिवर्मा के सभापण्डित थे। कल्हण ने राजतरङ्गिणी में लिखा है:—

"मुक्ताकणः शिवस्वामी कविरानन्दवर्धनः
प्रथां रत्नाकरश्चागात् साम्राज्येऽवन्तिवर्मणः"

अवन्तिवर्मा का समय सन् ८५५ से ८८४ तक माना गया है। अतएव इनका भी वही समय मानना उचित है। आलङ्कारिक कल्लट और रुद्रट इनके समसामयिक थे।

आनन्दघन=ये दिल्ली के वासी थे, और सन् १७२६ ई० में वर्तमान थे। "साहित्यभूषण" के मतानुसार ये कायस्थ थे, और मुहम्मदशाह के मुंशी थे। ये मरने के पूर्व वृन्दावन चले गये थे। नादिरशाह ने जब मथुरा पर चढ़ाई की, तब ये मारे गये। इनका बनाया "सुजनसागर" ग्रन्थ प्रसिद्ध है। इनकी छाप "घन आनन्द" है।

आपस्तम्ब=प्रसिद्ध ग्रन्थकार महर्षि। इनका धर्मसूत्र बहुत प्रसिद्ध है। पाश्चात्य पण्डितों का मत है कि इनका धर्मसूत्र दक्षिण भारत के आन्ध्र राजाओं के अभ्युदय काल में बना था। कृष्णानदी के तीर पर इस समय जहाँ अमरावती नगरी वर्तमान है; उसीके समीप आन्ध्र राजाओं की पहले राजधानी थी। वहीं आपस्तम्ब का जन्म हुआ था। खृष्ट के जन्म से तीन सदी पहले आपस्तम्ब का जन्म हुआ था। आपस्तम्ब के ग्रन्थों में वेदाङ्ग, वेदान्त और पूर्व मीमांसा का उल्लेख पाया जाता है अतएव इन ग्रन्थों के परवर्ती आपस्तम्ब का होना निश्चित होता है। संस्कृत ग्रन्थों में आपस्तम्ब नाम से अनेक ऋषियों का पता चलता है। एक आपस्तम्ब सूत्रकार थे, एक आपस्तम्ब स्मृतिकार भी थे और यजुर्वेद में भी आपस्तम्ब का नाम पाया जाता है, अतएव यह सभी आपस्तम्ब एक ही नहीं होसकते, मैं तो समझता हूँ कि पहले आपस्तम्ब के वंशज अन्य आपस्तम्ब होंगे। क्योंकि भारत में पहले यह रीति थी कि कुलप्रवर्तक का नाम वंशधर अपने नाम के साथ लगाते थे। अभी भी यह रीति कहीं कहीं प्रचलित है। वैदिक समय के आपस्तम्ब और आन्ध्र राजाओं के राजधानी स्थित आपस्तम्ब दोनों एक व्यक्ति कभी हो नहीं सकते। आपस्तम्ब के बनाये ग्रन्थों में आपस्तम्ब संहिता प्रसिद्ध है। इसमें हीन जातियों के प्रायश्चित्तों का निर्णय किया गया है। यह संहिता किन आपस्तम्ब की बनायी हुई है; इसका लिखना कठिन है। कारण कि संस्कृत साहित्य में अनेक आपस्तम्बों के नाम पाये जाते हैं। तथापि विचार की सहायता से इतना कहा जा सक्ता है कि सूत्रकाल के पश्चात् इसका निर्माण हुआ है। आपस्तम्ब-संहिता में प्रधानतः प्रायश्चित्त की व्याख्या की गयी है। इस संहिता के मत से क्षमा ही सर्वश्रेष्ठ गुण है। केवल एक क्षमा ही से ऐहिक तथा पारत्रिक कल्याण होता है।

आभीर=देश विशेष, पुराणों में इस देश की स्थिति उत्तर की ओर मानी गयी है। परन्तु महाभारत और रामायण पश्चिम में इसकी स्थिति बतलाते हैं।

आयु=चन्द्रवंशी राजा, ये महाराज पुरूरवा के ज्येष्ठ पुत्र थे। बाहु नामक राजा की कन्या से इनका विवाह हुआ था। उसके गर्भ से आयु के पाँच पुत्र हुए थे। (विष्णुपुराण)

आयोदधौम्य=एक विख्यात प्राचीन ऋषि, इन के प्रसिद्ध शिष्य तीन थे, जिनका नाम उपमन्यु, आरुणि और वेद था। (महाभारत आ० प०)

आरुणि=महर्षि आयोदधौम्य के शिष्य। पाञ्चाल

देश में वे रहते थे। एक दिन महर्षि ने आरुणि को बुला कर खेत का बाँध बाँधने के लिये कहा। आरुणि गुरु की आज्ञा पा कर खेत में गये, परन्तु अनेक कष्ट उठाने पर भी जब वे बाँध नहीं बाँध सके, तब वे स्वयं वहाँ सोगये, जिससे खेत से जल निकलना बन्द होगया। थोड़ी देर के बाद महर्षि ने आरुणि के लिये अपने अन्य शिष्यों से पूँछा कि वह कहाँ गया? शिष्यों ने कहा आपने उसे खेत में बाँध बाँधने के लिये भेजा था, वहाँ से अभी तक वह नहीं लौटा। यह सुन गुरु शिष्यों के साथ खेत पर गये, और वहाँ आरुणि को न देख कर वे उसे पुकारने लगे। वहाँ से निकल कर आरुणि गुरु के समीप उपस्थित हुए। गुरु के प्रश्न के उत्तर में उन्होंने कहा,—"खेत से जल निकलना जब किसी प्रकार बन्द नहीं हुआ; तब हम वहीं सो गये थे। आपकी पुकार सुन कर अभी वहाँ से निकल कर हम आ रहे हैं।" गुरु प्रसन्न हो कर बोले, आज से तुम्हारा उद्दालक नाम प्रसिद्ध होगा और मेरी आज्ञा पालन करने के कारण सम्पूर्ण कल्याण तुम्हें प्राप्त होगा। समस्त वेद का ज्ञान तुम्हें प्रतिभात हो जायगा। अनन्तर आरुणि गुरु की आज्ञा से अपने इष्ट स्थान को गये।

(महाभारत आ. प.)

आर्यक्षेमीश्वर=संस्कृत के कवि। इनका बनाया "चण्डकौशिक" नाम का नाटक प्रसिद्ध है। इस नाटक का नामोल्लेख "साहित्यदर्पण" के अतिरिक्त और किसी अलङ्कार ग्रन्थ में नहीं पाया जाता है। अतएव इनका समय १४ वीं सदी के कुछ ही पूर्व माना जा सक्ता है। "चण्डकौशिक" की प्रस्तावना में लिखा है कि राजा महीपाल की आज्ञा से इसका अभिनय किया जाता है और नाटक के अन्त में कवि ने अपने को राजा कार्त्तिकेय का सभासद बतलाया है। बङ्गाल के पालवंशियों में से एक का नाम महीपाल लिखा मिलता है। जिसके पिता का नाम विग्रहपाल (दूसरा) और पुत्र का नैपाल था। सम्भव है कार्त्तिकेय इसी महीपाल का वंशज हो। महीपाल देव का समय सन् १०२६–१०४० ई० तक है। अतएव आर्यक्षेमीश्वर का भी इसीके लगभग समय मानना चाहिये।

आर्यभट्ट=विख्यात भारतीय ज्योतिर्विद् पण्डित। इन्होंने एक ज्योतिष् का ग्रन्थ बनाया है; जिसका नाम "आर्यसिद्धान्त" है। ये कुसुमपुर नामक स्थान में सन् ४७५ ई० में उत्पन्न हुए थे। इन्होंने एक बीजगणित भी बनाया है और केन्द्रिक मत को इन्होंने भी पुष्ट किया है। इन्होंने अपने आर्यसिद्धान्त नामक ग्रन्थ में लिखा है:—

"अनुलोमगतिर्नौस्थःपश्यत्यचलं विलोमगं यद्वत्, अचलानि भानि तद्वत् समपश्चिमगानि लङ्कायाम्"

साधारण दृष्टि से देखा जाता है कि सूर्य अथवा राशिचक्र पूर्व की ओर से पश्चिम की ओर जा रहे हैं ऐसा विश्वास क्यों होता है। इसका कारण आर्यभट्ट बतलाते हैं कि अनुलोम गति अर्थात् नदी की धारा के साथ चलने वाले जिस प्रकार नदी तीरस्थ वृक्ष आदिकों को अपने विपरीतगामी समझते हैं उसी प्रकार लङ्का में अर्थात् विषवद्वृत्त प्रदेश में अचल नक्षत्र आदि भी गमनशील मालुम पड़ते हैं। पूर्वाभिमुख पृथिवी के घूमने के कारण अचल राशिचक्र पश्चिमाभिमुख जा रहे हैं ऐसा मालुम पड़ता है। लङ्का या विषवद्वृत्त का नाम इस लिये लिया गया है कि यह पृथिवी का मध्य स्थान है वहाँ से राशिचक्र समान भाव से देखे जाते हैं।

आर्यराज=काश्मीर के एक राजा का नाम। ये पहले काश्मीर के राजा गयेन्द्र के मन्त्री थे; परन्तु पीछे घटनाचक्र से ये राजा हो गये। इन के विषय में काश्मीर के इतिहास राजतरङ्गिणी में एक अद्भुत कथा लिखी है।

सन्धिमती राजा गयेन्द्र के मन्त्री थे। स्वार्थियों ने राजा को समझा दिया कि यह बड़ा बुद्धिमान् है। समय पा कर यह राज्य पर अपना अधिकार जमा लेगा। उनकी बातों में आ कर राजा ने सन्धिमती को निकाल दिया। तब वह अपने घर में रहने लगा और अहर्निश शिवपूजन में बिताया करता था। इसी बीच

में नगर में यह बात फैल गयी कि सन्धिमति राजा होने के लिये प्रयत्न कर रहा है। राजा ने यह सुन कर उसे क़ैद कर लिया। आज उसे दश वर्ष क़ैदी बने हो गये, अब राजा का भी अन्त समय आ गया, राजा मृत्युशय्या पर पड़े हुए हैं, परन्तु हृदय से मत्सरता की ज्वाला निकल रही है। अन्त में सन्धिमति का वध करा देना ही उन्होंने निश्चित किया। इधर राजा भी कालवश हुए और उधर सन्धिमति को भी वधिकों ने मार डाला। सन्धिमति के गुरु का नाम था ईशान। वह सवेरे अपने शिष्य की अन्तिम क्रिया करने के लिये वहाँ गये। उन्होंने चिता बनायी, शव रखने के समय ईशान ने उसकी ललाट लिपि पढ़ी। उसमें लिखा था यावज्जीवन दरिद्रता, दश वर्ष का राजदण्ड, उद्बन्धन मृत्यु और राज्य प्राप्ति। इसे पढ़ उनको बड़ा आश्चर्य हुआ, वे सोचने लगे कि तीन घटनायें तो सत्य निकली हैं, परन्तु चौथी घटना कैसे सत्य निकलेगी ? अन्त में विधि के विचित्र विधान पर भरोसा रख कर उन्होंने उस शव को वहीं छोड़ दिया और यत्नपूर्वक वे उसकी रक्षा करने लगे। दो पहर रात बीतने पर योगिनीमण्डल वहाँ उपस्थित हुआ और उस शव को बीच में रख कर, उसके कटे अङ्गों को पहले उन लोगों ने जोड़ दिया और पश्चात् योगबल से उसकी आत्मा का आवाहन कर, उसे जीवित कर दिया और उसका नाम आर्यराज रखा। बड़ी प्रसन्नता से ईशान अपने शिष्य को ले आये। नगरवासियों ने बड़े आदर से उनका अभिषेक कर उन्हें अपना राजा बनाया। ये राजा होने पर सभी से सद्व्यवहार किया करते थे। इनका विशेष काल शिव पूजन ही में बीतता था। इन्होंने ४७ वर्षों तक राज्य किया था। अन्त में जब इन्हें मालूम हुआ कि प्रजा मुझसे अप्रसन्न है; क्योंकि मेरा अधिक समय पूजा ही में जाता है; तब इन्होंने स्वयं राज्य छोड़ दिया।

(राजतरङ्गिणी, तृ. त.)

आर्ष्टिषेण=राजर्षि विशेष, वनवास के समय पाण्डव इनके आश्रम में गये थे।

(महाभारत, वनपर्व)

आलम=सन् १७०० ई० में इसका जन्म हुआ था। यह पहले सनाढ्य ब्राह्मण था, परन्तु एक रङ्गरेज़िन के प्रेम में फँस कर, मुसल्मान हो गया था। यह मुअज़्ज़मशाह की नौकरी करता था। इसकी कविता बड़ी सुन्दर हुआ करती थी।

आलवार=श्रीवैष्णव सम्प्रदाय के बारह नेता। ये भिन्न भिन्न समय में और भिन्न भिन्न गाँवों में उत्पन्न हुए और भिन्न भिन्न काल में रहे। इन लोगों ने बहुत से निबन्ध लिखे हैं। इन लोगों को श्रीवैष्णवलोग भगवान् के आयुधों के अवतार मानते हैं। इनके नाम ये हैं। पोयालवार, पुत्थालवार, पेयालवार, तिरुमल पेयालवार, नमालवार, कुलशेखरालवार, पिरिआलवार, तिरुपनालवार, तिरुमङ्गआलवार, टोण्डामालवार, यम्पेमानार, आर्यपतिराज या रामानुजाचार्य, कुरुआलवार।

आस्तीक=जरत्कारु मुनि के पुत्र इनके माता का भी नाम जरत्कारु था। इनकी माता सर्पराज वासुकी की बहिन थीं। आस्तीक ने पितृकुल और मातृकुल को जलने से बचाया था। पाण्डुकुलोद्भव राजा जनमेजय ने सर्पसत्र यज्ञ किया था। उस यज्ञ में सर्पों की आहुति दी जाती थी। आस्तीक ने अपने मामा तथा भाई आदि की उस विपत्ति से रक्षा की थी।

(महाभारत)

आहुक=प्राचीन समय में मृत्तिकावत् नगरी में जो राजवंश रहता था उसका भोज नाम था। इसी भोजवंश में अभिजित् नामक एक राजा उत्पन्न हुए थे। राजा अभिजित् के यमज सन्तान हुई, जिसमें एक पुत्र और एक कन्या थी। पुत्र का नाम आहुक और कन्या का नाम आहुकी था। महाराज आहुक भोजवंशी राजाओं में ऐश्वर्यशाली और प्रतापी राजा थे। भोजगण इनकी आज्ञा मानते थे। आहुक ने अपनी भगिनी का विवाह अवन्तिनाथ के साथ किया था। आहुक की स्त्री का नाम था

काश्या। इसके गर्भ से देवक और उग्रसेन नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए थे। (हरिवंश)

इ

इक्ष्वाकु=(१) वैवस्वत मनु के पुत्र, ये सूर्यवंश के प्रथम राजा हैं। इन्होंने अयोध्या में कोसल राज्य के नाम से राज्य स्थापन किया। इनके सौ पुत्र हुए थे। ये रामचन्द्र के पूर्वपुरुषों में से हैं। मनु की छींक से ये उत्पन्न हुए थे। इक्ष्वाकु के सौ पुत्रों में से विकुक्षि निमि और दण्ड, ये तीन श्रेष्ठ थे। इनके शकुनि आदि पचास पुत्र उत्तरापथ के राजा हुए थे और अन्य अड़तालीस पुत्र दक्षिण के राजा हुए। (विष्णुपुराण)

(२) वाराणसी के राजा, इनके पिता का नाम सुबन्धु था। ये इक्षुदण्ड फोड़ कर उत्पन्न हुए थे इस कारण इनका नाम इक्ष्वाकु था।

इच्छाराम=ये पंचरुआ जिला बाराबङ्की के रहनेवाले थे और सन् १७९८ ई० में विद्यमान थे। ये बड़े सुकवि थे और इनकी रचनाएँ पवित्र होती थीं। इनका बनाया वेदान्तसम्बन्धी एक ग्रन्थ है, जिसका नाम है ब्रह्मविलास।

इडा=वैवस्वत मनु की कन्या। वैवस्वत मनु, प्रजा सृष्टि करने की इच्छा से यज्ञ के लिये लाये हुए जल में घृत, नवनीत और आमीक्षा डाले हुए थे। इसी जल में से एक वर्ष के बाद इडा नाम की एक कन्या उत्पन्न हुई। यह कन्या बुध को ब्याही गयी थी। इसीके गर्भ से पुरूरवा-नामक बुध का एक पुत्र उत्पन्न हुआ था। (शतपथ ब्राह्मण)

इतिहास=पुरावृत्त। किसी देश के सामाजिक धार्मिक और नैतिक आदि वृत्तान्तों का संग्रह शास्त्र। भारतीय इतिहास के कर्ता महर्षि वेदव्यास हैं। महाभारत इतिहास है, जिसके कर्ता व्यास ही हैं। राजतरङ्गिणी आदि इतिहास ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं।

इध्मजिह्व=प्रियव्रत के दस पुत्रों में से एक पुत्र, भागवत में लिखा है कि ये धार्मिक और उदारचरित थे। (भागवत)

इन्दुमती=विदर्भराज की कन्या, इन्होंने स्वयम्बर सभा में अन्यान्य राजाओं की उपेक्षा कर के अयोध्या के राजा रघु के पुत्र अज को अपना पति बनाया था। इससे अन्य राजाओं ने ईर्षावश अयोध्या को लौटते अज पर आक्रमण किया। अज सम्मोहन अस्त्र से उन राजाओं को अचेत कर अयोध्या में आ कर राज्य करने लगे। इन्होंने अपने राज्यकाल में प्रजा के साथ बहुत ही सद्व्यवहार किया था। इन्दुमती के गर्भ से अज को दशरथ नाम का एक पुत्र उत्पन्न हुआ था। एक समय अज इन्दुमती के साथ बगीचे में घूमते थे। उसी समय आकाश मार्ग से जाते हुए नारद की वीणा से पारिजात कुसुम की माला इन्दुमती के शरीर पर गिरी। उस माला के देखने से इन्दुमती ने प्राण त्याग किया और अप्सरा मूर्ति धारण कर के वह स्वर्ग को चली गयी।

पहले तृणविन्दु नामक ऋषि की कठोर तपस्या से भीत हो कर, इन्द्र ने हरिणी नामक अप्सरा को उनकी तपस्या में विघ्न डालने के लिये भेजा था। अप्सरा हरिणी उनकी तपस्या में विघ्न डालने जा कर स्वयं उनके क्रोध में पड़ गयी। मुनि ने मानुषी होने के लिये इसे शापित किया। पुनः हरिणी के अनुनय विनय करने पर प्रसन्न हो कर महर्षि बोले "स्वर्गीय पुष्प के देखने से तुम्हारी मुक्ति होगी"। वही हरिणी महर्षि के शाप से विदर्भराज के यहाँ उत्पन्न हुई थी और पारिजात पुष्प को देखने से पुनः स्वर्ग चली गयी। (रघुवंश)

इन्द्र=(१) वेदोक्त देवता, भारतवर्षीय आर्य ऋषिगण जिन देवताओं की उपासना करते थे उनमें एक इन्द्र भी थे। ऋग्वेद में लिखा है कि इनकी माता ने इन्हें बहुत दिनों तक अपने गर्भ में धारण किया था, जन्म लेने के पश्चात् इन्होंने अपने पिता को पैर पकड़ कर मार डाला था।

(२) पौराणिक देवता, ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर से इनकी पदमर्यादा नीची है। अन्यान्य देवताओं पर इनका अधिकार है। इस कारण

इनको देवराज भी कहते हैं। पुलोमा नामक दानव की कन्या शची को इन्होंने ब्याहा था। तीसरा पाण्डव अर्जुन इनके औरस और कुन्ती के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। महर्षि काश्यप के औरस और अदिति के गर्भ से इन्द्र उत्पन्न हुए थे। वृत्रासुर को मारने के लिये दधीचि मुनि की अस्थि से देवशिल्पी विश्वकर्मा ने इन्द्र का वज्र बना दिया था। समुद्र मन्थन में इन को ऐरावत हाथी, उच्चैःश्रवा घोड़ा और पारिजात वृक्ष मिले थे। (महाभारत)

इनके आवासगृह का नाम वैजयन्त और पुत्र का नाम जयन्त था। रावण के पुत्र मेघनाद ने युद्ध में इन्हें पराजित कर दिया था। एक समय सुन्द और उपसुन्द नामक दानवों ने स्वर्गराज्य पर आक्रमण किया, उनको मारने के लिये ब्रह्मा के आदेश से अपूर्व सुन्दरी एक स्त्री विश्वकर्मा ने बनायी। उसका नाम तिलोत्तमा था। तिलोत्तमा के कारण वे दोनों आपस में लड़ कर मर गये। गौतम की स्त्री अहल्या का सतीत्व नाश करने के लिये ये गये थे, और स्वयं अण्डहीन हुए। (ब्रह्मवैवर्त पुराण)

इन्द्रकील=विष्णुपुराण में एक पहाड़ का नाम इन्द्रकील लिखा है। इसी पर्वत पर अर्जुन ने तपस्या की थी, और अर्जुन से किरातरूपी महादेव का यहीं युद्ध हुआ था। आज यह प्रचलित पहाड़ों में से कौन सा इन्द्रकील पहाड़ है इसका पता नहीं चलता है।

इन्द्रजित्=लङ्केश्वर रावण का पुत्र। इसका दूसरा नाम मेघनाद था। देवराज इन्द्र को परास्त कर के मेघनाद ने इन्द्रजित् नाम पाया था।

इन्द्रद्युम्न=(१) ये कृतयुग में उत्पन्न हुए थे। एक समय इस राजा ने विष्णुपूजा करने की इच्छा की, परन्तु कहाँ जा कर ये विष्णु की आराधना करें, इस बात की चिन्ता करने लगे। समस्त तीर्थ स्थानों का इन्हें स्मरण हुआ; परन्तु किसी भी स्थान को इन्होंने पसन्द नहीं किया। अन्त में ये पुरुषोत्तम क्षेत्र में आये, और वहाँ आ कर इन्होंने अश्वमेध यज्ञ किया, और यज्ञ के अन्त में ब्राह्मणों को भूमि दान में दी। वहीं पुरुषोत्तम क्षेत्र में इन्होंने एक विष्णुमन्दिर बनवाया था। इस मन्दिर में किस प्रकार की मूर्ति स्थापित की जायगी यह सोचते सोचते इन्द्रद्युम्न निद्रित हो गये। विष्णु स्वप्न में दर्शन दे कर बोले, "तुम मेरी सनातनी मूर्ति की प्रतिष्ठा करो, आज प्रातःकाल समुद्र के किनारे जाने से तुम्हें एक काष्ठ-खण्ड मिलेगा। उस काष्ठ को अपने हाथों से काट कर उसीकी मूर्ति बनवाना। विष्णु की आज्ञा से इन्द्रद्युम्न समुद्र किनारे गये, और अपने हाथ से उस लकड़ी को काटने लगे। उसी समय विष्णु और विश्वकर्मा ब्राह्मणरूप धारण कर वहाँ उपस्थित हुए। ब्राह्मणरूपी विष्णु के लकड़ी काटने का कारण पूँछने पर, राजा ने उत्तर दिया। ब्राह्मणरूपी विष्णु ने कहा, आपका उद्देश्य बहुत अच्छा है। परन्तु आप इस कठिन काम को कर सकेंगे कि नहीं इस में सन्देह है। मेरे साथ विश्वकर्मा के समान एक शिल्पी है, यदि आप कहें तो ये प्रतिमूर्ति बना सकते हैं। इन्द्रद्युम्न ने उनका कहना मान लिया, और कृष्ण बलराम तथा सुभद्रा की मूर्ति बनाने के लिये शिल्पी से कहा, विश्वकर्मारूपी शिल्पी ने भी मूर्तियाँ बना दीं। (नारदपुराण)

(२) महाभारत के वनपर्व में भी एक इन्द्रद्युम्न का नाम मिलता है। ये मार्कण्डेय मुनि से भी प्राचीन थे। ये पुण्य नष्ट होने के कारण स्वर्ग से गिरा दिये गये थे और पुनः स्वर्ग नहीं जा सके।

इन्द्रप्रमिता=ये महर्षि पैल के शिष्य थे, और ऋग्वेदसंहिता के पढ़ाने वाले थे। ऋक्संहिता इन्होंने अपने पुत्र माण्डूक्य को पढ़ायी थी, और क्रमशः इनके शिष्यों ने इसका विस्तार किया।

इन्द्रप्रस्थ=पाण्डवों का नगर जो कि आधुनिक दिल्ली और कुतुब के बीच में अवस्थित है। भारत में जिस समय राजा युधिष्ठिर का शासन था, उस समय के इन्द्रप्रस्थ का विशद रूप से वर्णन लिखा है। जब पाण्डव राज्य छोड़

हिमालय पर गलने के लिये गये; उस समय महाराज युधिष्ठिर ने हस्तिनापुर का राज्य अभिमन्यु के पुत्र परीक्षित् को और इन्द्रप्रस्थ का राज्य धृतराष्ट्र के एकमात्र बचे हुए पुत्र युयुत्सु को दिया था।

इन्द्रलोक=इन्द्र और क्षत्रियों की निवासभूमि का नाम अमरावती या स्वर्ग है और इसीको स्वर्ग भी कहते हैं। ब्रह्मा के पुत्र देवताओं के राजमिस्त्री विश्वकर्मा ने इसे बनाया। यहाँ की नृत्यशाला इतनी लम्बी चौड़ी है कि उस में तेंतीस करोड़ देवता और अड़तालीस हज़ार ऋषि तथा उनके अनेक अनुचर भी वहाँ एक साथ बैठ सकते हैं।

इन्द्रसावर्णी=भागवत के अनुसार चौदहवें मन्वन्तर के मनु।

इन्द्रसिंह=खण्डेला प्रान्त के एक भाग के अधीश्वर। ये फतेसिंह के पुत्र और धीरसिंह के पौत्र थे। उन दिनों खण्डेला प्रदेश दो भागों में बँटा हुआ था। एक भाग के अधीश्वर इन्द्रसिंह थे और दूसरे भाग के अधीश्वर वृन्दावनदास। तत्कालिक आमेरराज माधवसिंह की सहायता से वृन्दावनदास ने इन्द्रसिंह पर आक्रमण किया, परन्तु इन्द्रसिंह ने बुद्धि और पराक्रम पर भरोसा रख अनेक कष्ट सहन कर अन्त में सम्पूर्ण खण्डेला राज्य पर अपना आधिपत्य जमाया। (टाड्स राजस्थान)

इन्द्रसेन=महाराज युधिष्ठिर का सारथि। जब महाराज युधिष्ठिर अपने भाइयों और द्रौपदी के साथ एक वर्ष अज्ञात वास करने के लिये राजा विराट् के यहाँ जाने लगे, तब उन्होंने अपने सारथि इन्द्रसेन को खाली रथ द्वारका को ले जाने की आज्ञा दी थी। (महाभारत, वि. प.)

इन्द्राणी=इन्द्र की स्त्री, इनका दूसरा नाम शची है। इन्द्र के साथ इन्हींका इन्द्रत्व पद पर अभिषेक किया जाता है। ये सदा कुमारी कही जाती हैं, एक इन्द्र का राज्य बदलने पर दूसरे इन्द्र के साथ पुनः इन्हींका अभिषेक होता है। इन्द्राणी कभी स्वयं पुत्र उत्पन्न नहीं करतीं, तो भी उनके एक पुत्र हुआ, जो कि गौ से उत्पन्न हुआ था। क्योंकि उन्होंने पुत्र के लिये ईश्वर की बहुत सी आराधना की थी। जब चित्रपुत्र गौ के पेट से उत्पन्न हुआ, तब इन्द्राणी की छातियों में दूध भर आया। जिससे कि वे उस नवजात बालक को पाल पोस सकें।

ऋग्वेद में एक वक्ता कहते हैं—"मैंने सुना है कि सारी स्त्रियों में इन्द्राणी ही भाग्यवती हैं, क्योंकि उनके पति वृद्धावस्था को प्राप्त हो कर कभी, नहीं मरेंगे"। ऐतरेय ब्राह्मण में इन्द्र की स्त्री का नाम प्रासहा लिखा है। शतपथ ब्राह्मण कहता है कि इन्द्राणी इन्द्र की सब से प्रिय महिषी है और उसके शिर पर अनेक प्रकार की बनी टोपी लगी है।

इन्द्रियात्मा=विष्णु का नाम।

इद्वत्सर=तीसरे युग का नाम।

इमूशा=उस वराह का नाम, जिसके अङ्ग से प्रजापति ने जन्म लिया था। उन्होंने पृथ्वी को उठाया और बढ़ाया।

इब्राहीम=इनका छाप नाम रसखान था और ये पिहानी ज़िला हरदोई के रहने वाले मुसलमान् थे। इनका जन्म सन् १५७३ ई० में हुआ था। मुसलमान होने पर भी ये वैष्णव धर्म के अनुयायी हो वृन्दावन में जा बसे थे। इनका नाम भक्तमाल में भी पाया जाता है। इनकी रची कविता बड़ी मधुर होती है। इनके एक शिष्य का नाम कादिरबख़्श था।

इरावती=भागवत में लिखा हुआ है कि ये रुद्र की स्त्री थी।

इरावान=तृतीय पाण्डव अर्जुन का पुत्र, अर्जुन के औरस और ऐरावत नाग की विधवा कन्या के गर्भ से इसकी उत्पत्ति हुई थी। पक्षिराज गरुड़ ने जब ऐरावत के जामाता को मार डाला तब नागराज ने अपनी दुःखिनी विधवा कन्या अर्जुन को समर्पित कर दी। अर्जुन ने भी कामवशवर्तिनी उस स्त्री को ग्रहण कर लिया। उसीके गर्भ से अर्जुन को एक पुत्र हुआ था जिसका नाम था "इरावान"। कुरुक्षेत्र के युद्ध में इसने पाण्डवों की ओर से युद्ध किया

था, और कौरव सेना के बहुत से सैनिकों का विनाश किया था, परन्तु अन्त में उसी युद्ध में दुर्योधन के पक्षीय आर्यश्रृङ्गनामक राक्षस द्वारा यह मारा गया। (महाभारत भी. प.)

इलराज=प्राचीन राजा, ये कर्दम प्रजापति के पुत्र थे। ये वाह्लीक देश पर राज्य करते थे। उस समय वाह्लीकराज का प्रताप देश विदेशों में फैला हुआ था। एक समय वह राजा सेना के साथ वन में गया, वहाँ उसने अनेक हरिण आदि मारे, परन्तु तो भी वह मृगया से तृप्त नहीं हुआ। वन में घूम घूम कर वह शिकार करने लगा। अकस्मात् वह कुमार वन में चला गया, उस वन में चाहे जो जाय वह अवश्य स्त्री होजायगा, यह उस वन का स्वभाव था। वहाँ जाकर इलराज अपने को तथा अपनी समस्त सेना को स्त्री देख बड़े चकित हुए। उन्होंने शिव की बड़ी स्तुति की परन्तु जब शिव ने कहा कि स्त्रीत्व दूर करने के अतिरिक्त और जो वर माँगो वही दूँ, तब हताश हो और शिव की स्तुति करना छोड़, ये पार्वती की स्तुति करने लगे। पार्वती के वर से ये एक महीना पुरुष और एक महीना स्त्री रहा करते थे। (रामायण)

इलवृत=(१) अग्नीध्र के नौ पुत्रों में से एक पुत्र, ये जंम्बूद्वीप के राजा थे।

(२) मेरु पर्वत का मध्य प्रदेश जिसे इलावृत खण्ड कहते हैं।

इलविला=यक्षराज कुबेर की माता, और विश्रवा मुनि की पत्नी। कुबेर इलविला के पुत्र हैं इस कारण कुबेर का नाम ऐलविल भी प्रसिद्ध है।

इलोरा=औरङ्गाबाद प्रान्त में दौलताबाद के पास के एक नगर का नाम। इसी नगर में वस्ती से एक मील पूर्व की ओर एक पहाड़ है जिस को काट कर मन्दिर बनाया गया है। बीचोबीच में जो मन्दिर है, उसका नाम कैलास है। इसका शिखर ८०-९० फ़ीट ऊँचा है और मन्दिर के जगमोहन में सोलह खम्भे हैं। और भी इसमें पत्थर की अनेक प्रकार की कारीगरी वर्तमान है।

इल्लम्मा=दक्षिणी भारत में एक ग्रामदेवता का नाम। असल में ये रेणुका हैं जो जमदग्नि की स्त्री और परशुराम की माता थीं। इल्लम्मा की मूर्ति बैठी हुई है। उसका लाल रङ्ग और दमकता हुआ चेहरा है। चार बाहें हैं। जब किसीको सांप काट खाता है अथवा मनुष्य किसी विपद् में होता है तो इल्लम्मा की स्तुति और मनौती करता है।

इल्वल=यह प्रसिद्ध राक्षस था और ह्लाद का पुत्र था। इसकी शूरता पुराणों में अनेक स्थानों में वर्णित हुई है। इसके एक चचेरा भाई था जिसका नाम विप्रचित्त था। यह भी प्रसिद्ध दानवों में से एक था। (देखो अगस्त्य.)

इविलाक=अंध्र राजाओं का एक राजा, यह लम्बोदर का पुत्र था।

ई

ईश=हिन्दी के कवि, इनका जन्म सन् १७३९ ई० में हुआ था। ये श्रृङ्गार और शान्तरस की बढ़िया कविता बनाते थे।

ईश्वर=हिन्दी के एक कवि का नाम, इनका जन्म सन् १६७३ में हुआ था। ये औरङ्गज़ेब के दरबारियों में थे और इनकी रचना बड़ी रोचक होती थी।

ईश्वरसिंह=जयपुर के महाराज जयसिंह का ज्येष्ठ पुत्र। जयसिंह के परलोक चले जाने पर सन् १७४७ ई० में ये जयपुर की गद्दी पर बैठे। गद्दी पर बैठने के कुछ ही दिनों के बाद ये दुर्रानियों के साथ युद्ध करने के लिये सतलज नदी के किनारे गये थे, उस युद्ध में इन्होंने बड़ी भीरुता दिखायी। सेनापति कमरुद्दीनख़ां के मारे जाने पर ये युद्ध से भाग आये। कहते हैं कि युद्ध से भागना राजनैतिक चाल थी। परन्तु इनके युद्ध से भाग आने पर, इनकी रानियां इन पर बहुत अप्रसन्न हुई थीं। कुछ दिनों तक राज्य करने के पश्चात् इनकी नपुंसकता के कारण राज्यलक्ष्मी इन पर अप्रसन्न होगयी। सामन्तों ने इनको राज्य से हटा कर इनके छोटे भाई माधवसिंह को राज्य देने का षड्यन्त्र रचा। माधवसिंह जयसिंह के छोटे पुत्र थे। महाराणा

संग्रामसिंह की पुत्री से इनका जन्म हुआ था। पिता और नाना के दिये राज्य का ये शासन कर रहे थे। जयपुर के सामन्तों ने जगत्सिंह महाराणा (माधवसिंह के मामा) को पत्र लिखा। वहाँ की स्थिति जानकर जगत्सिंह ने एक पत्र ईश्वरीसिंह के पास भेजा। जिसमें इन्होंने लिखा था "आप गद्दी से अपना सम्बन्ध छोड़ दें, इस राज्य का अधिकारी माधवसिंह है। महाराणा का सामना करने में अपने को असमर्थ देख कर, इन्हों ने महाराष्ट्रनेता अयाजी से सन्धि कर ली। राणा ने जब अपनी सेना ले कर इन पर चढ़ाई की, तब ईश्वरीसिंह अयाजी की सहायता से इस युद्ध में विजयी हुए। इस युद्ध में हारने से राणा को बड़ा कष्ट हुआ। उन्होंने अपनी सेना को क्षीणबल जान कर, होलकर से सन्धि कर ली। सन्धि इस ठहराव पर हुई थी कि ४६-लाख रुपये होलकर को तब दिये जायँगे, जब वे सेना की सहायता से माधवसिंह को जयपुर की गद्दी पर बैठा देंगे। ईश्वरीसिंह ने अपने को इस विपत्ति से उबारने का कोई उचित उपाय न देख कर आत्महत्या कर ली।

(टाड्स राजस्थान)

ईश्वरीप्रसाद त्रिपाठी=ये वीरनगर ज़ि० सीतापुर के रहनेवाले थे, और सन् १८८३ ई० में विद्यमान थे। इन्होंने वाल्मीकिरामायण का पद्य में अनेक छन्दों में भाषानुवाद रचा है और उसका नाम "रामविलास" है।

ईसा=एक महीने का नाम, यह महीना पहले होता था। अब इस महीने का पता नहीं है। विष्णुपुराण और रामायण में लिखा है कि ईसा उस महीने का नाम है जिसमें सूर्य दक्षिणायन रहता है।

उ

उक्थ्य=(१) सामवेद का एक भाग, जो ब्रह्मा के दक्षिण मुख से उत्पन्न हुआ था।

(२) कुशवंशी छलराजा का युवराज।

उग्र=शिवजी की वायुमूर्ति। शिव की आठ मूर्ति हैं। क्षितिमूर्ति सर्व, जलमूर्ति भव, तेजमूर्ति रुद्र, वायुमूर्ति उग्र, व्योममूर्ति भीम, यजमानमूर्ति पशुपति, चन्द्रमूर्ति महादेव और सूर्यमूर्ति ईशान।

उग्रचण्डा=भगवती की मूर्तिविशेष। इनकी अठारह भुजा हैं। आश्विनमास की कृष्णानवमी के दिन हिन्दुओं के घर घर इनकी पूजा होती है। सती ने इसी मूर्ति से अपने पिता दक्ष का यज्ञ ध्वंस किया था। आषाढ़ मास की पूर्णिमा को दक्ष ने बारह वर्ष का यज्ञ प्रारम्भ किया था। इस यज्ञ में दक्ष ने अपने जामाता शिव और तनया सती को निमन्त्रण नहीं दिया था। तथापि सती अपने पति का आदेश किसी प्रकार ले कर पिता के यज्ञ में उपस्थित हुईं। सती के सामने ही दक्ष ने शिव की निन्दा की। सती पति की निन्दा सहन न कर सकीं, उन्होंने अपने प्राण वहीं छोड़ दिये। इसका समाचार शिव के पास पहुँचा, शिवजी अपने अनुचरों के साथ वहाँ उपस्थित हुए। सती ने उग्रचण्डा का रूप धारण कर के और शिव के अनुचरों की सहायता पा कर, दक्ष के यज्ञ का विनाश किया। (कालिकापुराण)

उग्रतारा=भगवती की मूर्तिविशेष। इनका दूसरा नाम मातङ्गी है। शुम्भ निशुम्भ के उत्पात से पीड़ित होकर देवतागण हिमालय के समीपस्थ मातङ्ग मुनि के आश्रम में उपस्थित हुए और वहाँ वे भगवती की आराधना करने लगे। भगवती मातङ्ग मुनि की स्त्री का रूप धारण कर के देवताओं के सामने उपस्थित हुईं और देवताओं की स्तुति से प्रसन्न उनके शरीर से एक दिव्य तेज निकला जो शीघ्र ही दिव्यमूर्ति के रूप में परिणत हुआ। वह मूर्ति चतुर्भुज कृष्णवर्ण और अस्थिमालाधारिणी थी। ऋषि इस मूर्ति को उग्रतारा कहने लगे। मातङ्गी के शरीर से उत्पन्न होने के कारण इनका भी दूसरा नाम मातङ्गी पड़ा।

उग्रदेव=पितृविशेष, ऋग्वेद की एक ऋचा में इनके नाम का उल्लेख हुआ है।

उग्रजीत, उग्रस्पश्या=स्वर्ग की दो अप्सराएँ,

अथर्ववेद' के एक मन्त्र में इन दोनों से प्रार्थना की गयी है कि तुम जुआ खेलने के पापों से मुझे बचाओ ।

उग्रश्रवा=एक मुनि का नाम, ये नैमिषारण्य में रहते थे, शौनक के यज्ञ में आये हुए महर्षियों को इन्होंने जनमेजय के भाइयों की कथा सुनायी थी । (महाभारत)

उग्रसेन=(१) यदुवंशीय राजा आहुक के पुत्र और कंस के पिता । आहुक की काश्या नामक महिषी के गर्भ से देवक और उग्रसेन नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए थे । उग्रसेन के नौ पुत्र और पांच कन्याएँ थीं । पुत्रों में सब से बड़ा कंस था । कंस उग्रसेन का क्षेत्रज पुत्र था । अपने ससुर जरासन्ध की सहायता से कंस ने अपने पिता उग्रसेन को राज्य से हटा कर क़ैद कर लिया था, और वह स्वयं राजा हो गया था । (हरिवंश)

(२) राजा परीक्षित् के एक पुत्र का नाम । (महाभारत)

उग्रायुध=पौरव-राजकुमार, ये महाराज कृत के पुत्र थे । ये वीर और साहसी थे, क्षत्रियों की नीपनामक शाखा का इसीने विनाश किया था । भीष्मपितामह ने इसे मार डाला था, क्योंकि उनके पिता शन्तनु की विधवा स्त्री से बलात्कार-पूर्वक इसने अपना ब्याह करना चाहा था ।

उच्चल=काश्मीर के राजा । हर्षदेव के अनन्तर ये काश्मीर राज्य के सिंहासन पर बैठे थे । इनके राज्यारोहण के समय काश्मीर राज्य की दशा विचित्र थी । उच्च कर्मचारियों के परस्पर द्वेषानल से राज्य दिनोंदिन हानि उठा रहा था । अतएव एकाएक ऐसे राज्य का प्रबन्ध करना कठिन जान कर उच्चल एक बार तो घबड़ा गये, परन्तु धीरे धीरे किसी को उच्चपद दे कर एक को दूसरे के द्वारा अपमानित करा कर, किसी किसी को लड़ा कर इन्होंने राज्य को अपने अधिकार में कर लिया, । इन्होंने १०वर्ष ४ महीना १ दिन काश्मीर का राज्य किया था । (राजतरङ्गिणी)

उच्चैःश्रवा=देवराज इन्द्र के घोड़े का नाम, यह समुद्रमन्थन से निकला था और इन्द्र को दिया गया । यह श्वेत वर्ण का था, तथा इसके कान लम्बे लम्बे थे । इसकी कीर्ति चारों ओर फैली थी इससे भी इसे उच्चैःश्रवा कहते हैं । (महाभारत)

उडा=उदयपुर का महाराणा । जन साधारण इसको राणा उडा हत्यारा कहते हैं, क्योंकि इसने अपने पिता की हत्या की थी । मेवाड़ के प्रसिद्ध राणा कुम्भ इसके पिता थे । इस दुष्टाशय पुत्र ने अपने पिता का दीर्घ जीवन न सह कर, राज्य पाने की इच्छा से सन् १४६८ ई० में पिता की हत्या कर के इतिहास को काला बनाया है । "पुत्रादपि धनभाजां भीतिः" इस वाक्य को इसने सत्य कर दिखाया है । राज्य पा कर उसने देखा कि जो लोग उसे राज्य पाने के कार्य में सहायता देते थे, वे सभी राज्यलोभी हैं । उस मूर्ख ने सामन्तों को राज्यभाग न दे कर दिल्ली के बादशाह को कन्या देना ही उचित समझा । इस प्रकार इसने अपने कलङ्कित जीवन को कलङ्कमय कर दिया । परन्तु इतना करने पर भी इसने राज्य का सुख न पाया जिस दिन इसने दिल्ली के बादशाह को कन्या दी उसी दिन वज्र के गिरने से यह मर गया । पाप की डोंगी डूब गयी । (टाड्स राजस्थान)

उतङ्क=महर्षि वेद के शिष्य । महर्षि आयोदधौम्य के तीन विख्यात शिष्य थे । आरुणि, उपमन्यु और वेद । उपाध्याय की आज्ञा से वेद ने गृहस्थाश्रम ग्रहण किया । कुछ दिनों के बाद राजा जनमेजय तथा पौष्यनामक एक राजा दोनों ने वेद को अपना गुरु बनाया । एक समय वेद किसी कार्यवश कहीं अन्यत्र गये, और जाते समय उन्होंने समस्त गृहभार उतङ्क को सम्भला दिया । एक दिन उतङ्क के चरित्र की परीक्षा करने के लिये एक उपाध्याय की स्त्री ने कहा । तुम्हारी गुरुपत्नी ऋतुमती हुई हैं इस समय तुम्हारे गुरु जी भी यहाँ नहीं हैं अतएव गुरुपत्नी का ऋतुनिष्फल न हो, इसका प्रबन्ध तुम्हें करना पड़ेगा । उतङ्क ने इस अनुचित प्रबन्ध करने की अपनी असम्मति प्रकाशित की । घर लौट आने पर महर्षि वेद ने अपनी स्त्रियों से ये

बातें सुनीं, और वे प्रसन्न हो कर बोले कि "वत्स उतङ्क" तुम्हारे समस्त मनोरथ पूर्ण होंगे। अब तुम गृहस्थाश्रम में प्रवेश करो। उतङ्क ने जब गुरुदक्षिणा देने की इच्छा प्रकट की तब गुरु ने कहा, वत्स! इस विषय में तुम अपनी गुरुपत्नी से पूँछो, जो वे कहें सो ले आना। अनन्तर उतङ्क ने गुरुपत्नी के समीप जा कर अपनी इच्छा प्रकाशित की, गुरुपत्नी बोलीं, आगामी चतुर्थी के दिन व्रत के उपलक्ष में निमन्त्रित प्रतिष्ठित मनुष्यों को हम परोस कर भोजन करावेंगी, अतएव उस समय मुझे एक कुण्डल की आवश्यकता पड़ेगी इसके लिये यदि जोड़ी के पौष्य राजा की महिषी का कुण्डल तुम ला सको तो अवश्य ही तुम्हारा कल्याण होगा। यह सुन कर उतङ्क वहाँ से चले। मार्ग में उन्होंने एक बड़े वृषभ पर चढ़े हुए मनुष्य को देखा। उस पुरुष ने कहा–उतङ्क! तुम इस बैल का गोबर खा जाओ, तुम्हारा कल्याण होगा, तुम्हारे गुरु ने भी इसे खाया था। यह सुन कर उतङ्क ने गोबर खा लिया, और वे आचमन करते करते महाराज पौष्य के समीप उपस्थित हुए। उतङ्क ने अपने आने का कारण महाराज को बतलाया। महाराज ने उतङ्क को अन्तःपुर में महारानी के पास भेज दिया। उतङ्क भीतर जा कर महारानी को न देख सके, अतएव वह बाहर आ कर राजा को इस चालाकी के लिये भला बुरा कहने लगे। राजा ने कहा मालूम होता है आप अशुद्ध हैं क्योंकि अशुद्ध मनुष्य मेरी स्त्री को नहीं देख सकता, अपने अशुद्ध होने का दूसरा कारण न देख कर, मार्ग में चलते चलते आचमन करने की बात उन्होंने कही। राजा ने कहा "हाँ, अवश्य ही आप अशुद्ध हैं।" अतः उतङ्क पुनः आचमन करके अन्तःपुर में गये। तब उन्होंने राजमहिषी को देखा। उनके आने का कारण जान कर, राजमहिषी ने अपने कुण्डल उतार कर महर्षि को देदिये, और चलते समय रानी ने कहा कि, इनको बड़ी सावधानी से लेजाइयेगा, क्योंकि तक्षक सर्प सर्वदा इनको हरण करने का अवसर देखा करता है। महर्षि उतङ्क कुण्डल लेकर वहाँ से चले, मार्ग में उन्होंने एक नङ्गे संन्यासी को देखा। वह संन्यासी रह रह कर अदृश्य हो जाता था। महर्षि उतङ्क रानी के दिये हुए कुण्डलों को भूमि पर रख कर एक सरोवर में स्नान करने लगे। इसी समय वह नङ्गा संन्यासी धीरे धीरे आया और कुण्डल ले कर चलता बना। उतङ्क भी स्नान सन्ध्या आदि कर के, उसके पीछे दौड़े। उसके समीप पहुँचने के पहले ही वह तक्षकरूप धारण कर, पाताल चला गया। उतङ्क भी उसके पीछे जाने के लिये अपनी लाठी से भूमि खोदने लगे। परन्तु वे सफलमनोरथ नहीं हुए। ब्राह्मण का कष्ट देख कर इन्द्र ने वज्र को सहायता देने के लिये कहा। वज्र की सहायता से उन्होंने अपने जाने का मार्ग बनाया, और नागलोक में जा कर उपस्थित हुए। वहाँ जा कर ये नागों की स्तुति करने लगे, परन्तु उसका कुछ फल नहीं हुआ। तब ये चिन्तित हो कर इधर उधर देखने लगे। उन्होंने सामने देखा कि दो स्त्रियाँ कपड़े बिनती हैं। उसके सूत श्वेत और काले हैं। बारह आरा युक्त एक चक्र है जिसे छः लड़के घुमा रहे हैं। इनके अतिरिक्त उन्होंने एक अन्य मनुष्य और एक घोड़ा देखा। उतङ्क की स्तुति से प्रसन्न हो कर उस पुरुष ने उनसे पूँछा क्या मैं तुम्हारा कुछ उपकार कर सकता हूँ। उतङ्क ने अपना अभिप्राय कहा। उस पुरुष ने एक युक्ति बतलायी जिससे नागलोक में आग लग गयी, धाँय धाँय कर के आग सर्व ग्रास करने को प्रस्तुत हुई। तब तक्षक ने डर कर कुण्डल उतङ्क को दे दिये। उतङ्क सोचने लगे, आज ही इन कुण्डलों की आवश्यकता है और मैं इतनी दूर हूँ। उस पुरुष ने इनको चिन्तित देख कर कहा तुम इस घोड़े पर चढ़ो अभी वहाँ पहुँच जावोगे। उतङ्क ने गुरुपत्नी को कुण्डल दे दिये। गुरु ने उतङ्क से विलम्ब का कारण पूँछा। उन्होंने सब बातें बतला दीं तब गुरु कहने लगे। तुमने जिन दो स्त्रियों को देखा है वे जीवात्मा और परमात्मा थे, द्वादश आरायुक्त चक्र संवत्सर है, शुक्ल और कृष्ण वर्ण के सूत्र दिन रात हैं, वे छः लड़के छः ऋतु हैं। वह पुरुष इन्द्र और अश्व अग्नि थे। जिस वृष का गोबर तुमने

खाया है वह नागराज ऐरावत हैं और वह गोवर अमृत है। (महाभारत, आ. प.)

उतथ्य=एक बुद्धिमान् प्राचीन ऋषि। इनकी स्त्री का नाम ममता है। एक समय इनके छोटे भाई देवगुरु बृहस्पति कामातुर हो कर, इनकी स्त्री ममता देवी के पास गये। उस समय ममता गर्भवती थी। उन्होंने अपने देवर को प्रकृतिस्थ होने के लिये कहा—मैं तुम्हारे ज्येष्ठ भ्राता से गर्भवती हुई हूँ। मेरे गर्भ में उतथ्य नन्द षडङ्ग वेद पढ़ रहा है। एक गर्भ में दो का वीर्य नहीं रह सकता। अतएव तुम इस दुष्ट इच्छा को छोड़ दो। परन्तु मदनातुर बृहस्पति ने अपना विचार नहीं बदला। गर्भस्थ बालक ने भी बृहस्पति को बहुत कुछ कहा परन्तु उस पर भी बृहस्पति ने कुछ ध्यान नहीं दिया और क्रुद्ध हो कर उन्होंने गर्भस्थ ऋषिकुमार को शापित किया। तुमने इस समय जो मेरा विरोधाचरण किया है, इस कारण तुम अन्धे हो जावो। बृहस्पति के शाप से उतथ्य कुमार जन्मान्ध हुए, और उनका दीर्घतमा नाम जगत् में प्रसिद्ध हुआ। (महाभारत, आ. प.)

उत्कर्ष=काश्मीर के राजा। कलश के अनन्तर ये राज्यासन पर बैठे थे। इन्होंने केवल २२ दिन ही राज्य किया था। (राजतरङ्गिणी)

उत्कल=सुद्युम्न राजा के पुत्र का नाम, इन्होंने अपने नाम से एक प्रदेश बसाया था जिसे अब उड़ीसा कहते हैं।

उत्तम=राजा उत्तानपाद के पुत्र। स्वायम्भुव मनु के दो पुत्र थे, प्रियव्रत और उत्तानपाद। उत्तानपाद की दो महारानी थीं, सुनीति और सुरुचि। सुनीति के गर्भ से ध्रुव और राजा की प्रियतमा सुरुचि के गर्भ से उत्तम उत्पन्न हुए थे। ध्रुव अपनी विमाता के द्वारा तिरस्कृत हो कर वन चले गये थे और कठोर तपस्या द्वारा जगत् में धन्य हुए थे। उत्तम छोटी उमर में बिन ब्याहे एक दिन अहेर खेलने वन में गये वहाँ एक यक्ष ने उन्हें पकड़ कर मार दिया। उत्तम की माता भी पुत्र को ढूँढ़ने के लिये वन में गयी और वहाँ वह भी मर गयी। (विष्णुपुराण)

उत्तमौजा=पाञ्चाल राजपुत्र, इनके दूसरे भाई का नाम युधामन्यु था। महाभारत के युद्ध में इन्होंने बड़ा पराक्रम दिखाया था। जिस दिन द्रोणाचार्य ने जयद्रथ की रक्षा करने की प्रतिज्ञा की थी, और अर्जुन ने उसे मारने की, उस दिन ये दोनों भाई अर्जुन के पृष्ठरक्षक बने थे। ये दोनों उस दिन दुर्योधन से बड़ी वीरता से लड़े थे। (महाभारत, द्रो. प.)

उत्तर=मत्स्य देश के राजा विराट का पुत्र। विराट राजा के साले और सेनापति की मृत्यु का समाचार सुन कर, राजा दुर्योधन ने विराटराज के दक्षिण गोगृह पर आक्रमण करने के लिये सेना के सहित सुशर्मा को वहाँ भेजा था, और उत्तर गोगृह पर आक्रमण करने के लिये स्वयं भीष्म द्रोण कर्ण आदि महारथियों के साथ वे प्रस्थित हुए थे। जब सुशर्मा दक्षिण गोगृह पर आक्रमण कर के बलपूर्वक गौओं को हरण कर रहा था, तब स्वयं विराट ने उसका सामना किया, परन्तु वे पराजित हो कर उसके द्वारा बन्दी हुए। युधिष्ठिर आदि अज्ञात वास में विराट के यहाँ ही वर्तमान थे। अवधि पूर्ण होने के कुछ ही दिन बाकी रहगये थे। युधिष्ठिर ने देखा कि हमारे आश्रयदाता बन्दी होगये, इस कारण उनका उद्धार करने के लिये उन्होंने भीम को भेजा। भीम ने जा कर सुशर्मा को परास्त किया और विराट तथा गौओं का उद्धार किया। सुशर्मा के परास्त होने की बात सुन कर दुर्योधन ने भीष्म द्रोण के साथ विराट के उत्तर गोगृह पर आक्रमण किया। विराट ने अपने पुत्र उत्तर को उनका सामना करने के लिये भेजा। बृहन्नलानामक क्लीबरूपधारी अर्जुन उनके सारथी बनें। कुरुसेना की अधिक सेना देख कर उत्तर डर गया और वह भागना चाहता ही था कि अर्जुन ने अपना परिचय दे कर उसे आश्वस्त किया। अर्जुन स्वयं रथी बने और उत्तर को उन्होंने सारथि बनाया। अर्जुन युद्ध में कुरुसेना को ध्वस्त कर भीष्म द्रोण कर्ण आदि महारथियों के साथ दुर्योधन को परास्त कर और गायों का उद्धार कर जय ध्वनि के साथ विराट नगर में उपस्थित हुए।

इसी दिन पाण्डवों के अज्ञात वास की अवधि समाप्त हुई थी, उत्तर ने विराट के साथ अर्जुन का परिचय करा दिया, अनन्तर युधिष्ठिर आदि से भी विराट का परिचय हुआ। राजभवन में आनन्दोत्सव होने लगा। अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु के साथ विराटराज की कन्या उत्तरा ब्याह दी गयी। (महाभारत, वि. प.)

उत्तरकुरु=वर्ष या देश। जो शृङ्गीनामक माला से उस पार और मेरुपर्वत के उत्तर में है।

उत्तरा=मत्स्यराज विराट की कन्या, और अर्जुन पुत्र अभिमन्यु की स्त्री। इनके बड़े भाई का नाम उत्तर था। पाण्डवों ने विराट नगर में अज्ञात वास किया था। बृहन्नला नामधारी अर्जुन ने उत्तरा को सङ्गीत नाट्य आदि कलाओं की शिक्षा दी थी। युधिष्ठिर आदि के साथ विराट के परिचय होने पर विराट ने अपनी कन्या का विवाह अर्जुनपुत्र अभिमन्यु से कर दिया। महाभारत के युद्ध में अभिमन्यु की मृत्यु के समय ये गर्भवती थीं। इस युद्ध के अन्त में अर्जुन ने अश्वत्थामा के शिर की मणि काटली। इससे क्रुद्ध हो कर अश्वत्थामा ने अर्जुन का वंशलोप करने की इच्छा से उत्तरा के गर्भ पर इषिकास्त्र का प्रयोग किया। जिससे गर्भस्थ बालक परीक्षित् मृतक हो कर उत्पन्न हुए। तदनन्तर श्रीकृष्ण ने सञ्जीवनी मन्त्र के प्रभाव से परीक्षित् को जीवित किया। (महाभारत)

उत्तानपाद=स्वायम्भुव मनु के पुत्र। इनकी माता का नाम शतरूपा था। इनके छोटे भाई का नाम प्रियव्रत था। राजा उत्तानपाद की दो महारानी थीं सुनीति और सुरुचि। राजा सुरुचि को अधिक चाहते थे। सुनीति के गर्भ से विख्यात ध्रुव और सुरुचि के गर्भ से उत्तम उत्पन्न हुए थे। (विष्णुपुराण)

उत्पलाक्ष=काश्मीर के राजा, ये राजा सिद्ध के पुत्र थे, इनकी आंखें बड़ी सुन्दर थीं। इस कारण इनका नाम उत्पलाक्ष प्रसिद्ध हुआ। इनके राजत्वकाल में कुछ विशेष ऐतिहासिक घटना नहीं हुई, क्योंकि ये राजा सिद्ध (महात्मा) के पुत्र थे, इनसे विरोध करने वाले नष्ट होजायँगे इनके विषयमें ऐसी प्रसिद्धि थी। इनके पुत्र का नाम हिरण्याक्ष था। तीस वर्ष ६ महीने इन्होंने काश्मीर का राज्य किया था। (राजतरङ्गिणी)

उत्पलापीड़=काश्मीर के राजा ये अजितापीड़ के पुत्र थे, सुखवर्मा ने अनङ्गापीड़ को राज्य च्युत कर के उत्पलापीड़ को राजा बनाया था। इस समय से पुनः उत्पलवंशियों का अधिकार काश्मीर में फैलने लगा। तदनन्तर शूर नामक मन्त्री ने उत्पलापीड़ को राज्यच्युत कर दिया। इन्होंने तीन वर्ष काश्मीर का शासन किया था। (राजतरङ्गिणी)

उदकसेन=हस्तिनापुर के राजा, इनके पिता का नाम विष्वक्सेन था।

उदयनाथ त्रिवेदी कवीन्द्र=ये बानपुरा दुआब के वासी थे, और सन् १७२० ई० में विद्यमान थे। पं० कालिदास त्रिवेदी (हज़ारा के रचयिता) के पुत्र और पिता के समान प्रसिद्ध कवि थे। ये अमेठी के राजा हिम्मतसिंह के दरबारी कवि थे। इनका छाप नाम "उदयनाथ" था। पीछे से राजा ने इन्हें "कवीन्द्र" उपाधि दी थी, तबसे ये अपनी छाप "कवीन्द्र" की लिखने लगे थे। यह उपाधि इन्हें "रसचन्द्रोदय" या "रतिविनोद" या "चन्द्रोदय" या "रसचन्द्रिका" नामक ग्रन्थ बनाने के उपलक्ष में मिली थी। यह भाषा साहित्य सम्बन्धी ग्रन्थ है। सन् १७४७ ई० में यह रचा गया था।

उदयनाचार्य=ये प्रसिद्ध नैयायिक पण्डित थे। मिथिला के निवासी थे। इनका शास्त्रार्थ नैषध चरित के रचयिता श्रीहर्ष के पिता के साथ हुआ था। श्रीहर्ष का होना सन् ११६३ ई० से ११७७ ई० के लगभग माना जाता है। अतः उदयन का समय उसके कुछ थोड़ा पहले मानना असङ्गत न होगा। इनके बनाये ग्रन्थ ये हैं। किरणावली, न्यायकुसुमाञ्जलि, आत्मतत्त्वविवेक, न्यायपरिशिष्ट, न्यायवार्तिकतात्पर्यपरिशुद्धि। नैयायिक श्रीधर ने उदयन की किरणावली देखकर सन् ९९१ ई० में प्रशस्तपादभाष्य पर न्यायकन्दली नाम की टीका लिखी है। अतएव इससे लोगों का अनुमान

है कि उदयनाचार्य सन् ६६१ ई० के पूर्व रहे होंगे । उदयनाचार्य ही ने बौद्धधर्म को ऐसा धक्का दिया कि फिर उसका विशेष प्रचार इस देश में न हो सका । यदि श्रीहर्ष के पिता के साथ उदयनाचार्य के शास्त्रार्थ की बात सच हो तो उनका समय न्यायकन्दलीकार के पूर्व कभी नहीं हो सकता ।

उदयसिंह=१ मेवाड़ के प्रसिद्ध महाराणा, चित्तौर में इनकी राजधानी थी । ये राणा सांगा के कनिष्ठ पुत्र थे । महाराणा सांगा की मृत्यु के पश्चात् उनके दो पुत्र राणारत्न और राणा विक्रमजित् क्रमशः चित्तौर के राजा हुए । विक्रमजित् के व्यवहार से असन्तुष्ट हो कर मन्त्रियों ने उनको राज्यच्युत करके बनवीरसिंह नामक एक व्यक्ति को चित्तौर के सिंहासन पर बैठाया । उस समय राणा सांगा के कनिष्ठ पुत्र उदयसिंह की अवस्था ६ वर्ष की थी । मन्त्रियों की इच्छा थी कि उदयसिंह के प्राप्तवयस्क होने पर बनवीर के स्थान पर राणा सांगा का पुत्र उदय बैठाया जाय । मन्त्रियों का यह अभिप्राय बनवीर को मालूम हो गया । एक दिन तलवार ले कर वह महल में गया और उनकी धात्री पन्ना से वह उदयसिंह को पूछने लगा । पन्ना ने बनवीर के षड्यन्त्र की बातें सुन रक्खी थीं और उदयसिंह को एक विश्वस्त नापित के हाथ वहाँ से हटा दिया था । और उदय के स्थान पर अपने बेटे को रख दिया था । जब बनवीर ने पन्ना से उदयसिंह को पूँछा, उस समय उसने सङ्केत कर अपने ही पुत्र को बतला दिया था । बनवीर ने उस लड़के को काट डाला । इस अलौकिक स्वार्थत्याग और अलौकिक प्रभुभक्ति के कारण सिसोदिया राजवंश के साथ पन्ना का नाम चिरस्मरणीय हो गया । धाय पन्ना राजमहल से निकलकर निर्द्धारित स्थान पर उस नापित से जा मिली । उदयसिंह को लेकर पन्ना सभी सर्दारों के पास आश्रय के लिये गयी, परन्तु बनवीर के भय से किसी ने भी आश्रय देना स्वीकार नहीं किया, तब पन्ना अर्वली पहाड़ को डाँक कर कमलमीर के सामन्त राजा आशासाह के आश्रय में उदयसिंह को रख कर निश्चिन्त हुई । शाहजी जैनी थे, उन्होंने दोनों की रक्षा करने की प्रतिज्ञा की । शाहजी उदयसिंह को अपना भानजा कहकर पालन करने लगे । कुछ दिनों के बाद यह खबर चारो ओर फैल गयी । मेवाड़ के सभी सामन्त धाय पन्ना और उस नापित को साथ ले कर कमलमीर पहुँचे । उदयसिंह महाराणा उदय के पुत्र थे इस में तो किसीको सन्देह था ही नहीं । मन्त्रियों की एक सभा हुई । उन्होंने उदयसिंह को अपना राणा माना, तथा बनवीर को, धन सम्पत्ति छीन कर मेवाड़ से निकाल दिया । बनवीर वहाँ से निकल कर दक्षिण चला गया । सन् १५४२ ई० में उदयसिंह का बड़े समारोह के साथ चित्तौर के सिंहासन पर अभिषेक हुआ । उदयसिंह के राज्यकाल में दिल्ली के बादशाह अकबर ने मेवाड़ पर चढ़ाई की । पहले तो उदयसिंह लड़े, पर पीछे से चित्तौर छोड़ कर वे भाग गये । अर्वली पर्वत के बीच में उन्होंने वर्तमान उदयपुर बसाया और उसीको अपनी राजधानी बनाया । तब से उदयपुर मेवाड़ की राजधानी हुआ । सन् १५७२ ई० में उदयसिंह का परलोक वास हुआ । इन्हींके पुत्र प्रसिद्ध महाराणा प्रतापसिंह थे । (टाड्स राजस्थान)

(२) राठौर राजा, ये मालदेव के मध्यम पुत्र थे, मालदेव ने अपने मध्यम पुत्र उदयसिंह को मारवाड़ का राजा बनाया था । इन्होंने अकबर की अधीनता स्वीकार की थी, मालदेव ने अपने जीवन में जो प्रताप का प्रकाश फैलाया था, उदयसिंह ने उसे बुझा दिया । राजपुताने में कहा जाता है कि उदयसिंह नाम वाले राजा स्वाधीनता बेचने वाले होते हैं ।

(टाड्स राजस्थान)

उदयन=शतानीक के पुत्र, ये पुरु के वंश के थे ।

उदयिन=देवकी के गर्भ से उत्पन्न वासुदेव के पुत्र ।

उद्राधि=पुष्टि के पुत्र और ध्रुव के पौत्र ।

उदवसु=मिथिला के एक राजा का नाम, जो जनक के पुत्र थे ।

उद्गातृ=वह पुरोहित, जो यज्ञीय बलिदान कर्म में वेद मन्त्र पढ़ता है ।

उद्गीथ=भारतवर्ष के एक राजा का नाम, ये भव के पुत्र थे।

उद्दालक=प्राचीन आर्य ऋषि। इनका नाम आरुणि था। गुरु आयोदधौम्य के आशीर्वाद से इनका उद्दालक नाम हुआ था। इनके पुत्र का नाम श्वेतकेतु था। श्वेतकेतु ब्रह्मविद्या में बड़े निपुण थे। इन्होंने अनेक नये नये सामाजिक नियम बनाये हैं। (महाभारत)

उद्दालिन=शुक्ल यजुर्वेद के पन्द्रह आचार्यों में से एक।

उद्धव=श्रीकृष्ण के भक्त और उनके मित्र। भारत युद्ध के अन्त में एक दिन ब्रह्मा आदि श्रीकृष्ण को वैकुण्ठ ले जाने के लिये आये थे। उद्धव ने भी श्री कृष्ण के साथ वैकुण्ठ जाने की अपनी इच्छा प्रकट की। श्रीकृष्ण ने ब्रह्मा से कहा—आपने जो कहा है, उसके लिये मैंने पहले ही से प्रबन्ध कर रक्खा है। मैंने आपके सभी काम कर के पृथ्वी का भार उतार दिया है। आज पृथ्वी पर पापियों की संख्या नहीं है। परन्तु बलवान् यदुकुल का विना विनाश किये, मेरे जाने से, ये लोग पुनः संसार में ऊधम मचावेंगे। और ब्राह्मण शाप से बहुत शीघ्र ही इस वंश के नाश होने की भी सम्भावना है। अतएव आप लोग जायँ, मैं भी यदुकुल का नाश कर के शीघ्र ही आता हूँ। उद्धव की प्रार्थना के उत्तर में उन्होंने तत्त्वज्ञान, बद्ध और मुक्तजीव, साधुलक्षण और मुक्त लक्षण का उपदेश दे कर कहा—"हे उद्धव! तुम अभी बदरिकाश्रम नामक हमारे आश्रम में जाओ, वहाँ जा कर वल्कल वस्त्र पहन कर फल मूल के आहार से अपनी जीविका निर्वाह करो। तदनन्तर अलकनन्दा दर्शन करने से तुम्हारे पाप छूट जायँगे। तब तुम अनन्य भक्तियोग से मुक्ति लाभ कर के मेरे पास आओगे। इतना उपदेश सुन कर उद्धव ने श्रीकृष्ण की प्रदक्षिणा की। और भगवान् का ध्यान करते करते वे बदरिकाश्रम पहुँचे। (श्रीमद्भागवत)

उदयश्व=मगध के एक राजा का नाम, जो दर्भक के पुत्र थे।

उन्नति=पुराण में एक रूपक इस नाम से लिखा है। जिसमें इसे दक्षप्रजापति की कन्या होना लिखा है, जिसका व्याह धर्म से किया गया था।

उन्मत्तावन्ती=काश्मीर का एक राजा, ये पार्थ के पुत्र थे। ये बड़े ही चरित्र भ्रष्ट और अधम प्रकृति के राजा थे। इनके साथी इनको काठ के उल्लू समझते थे। अतएव ये नाच गा कर तथा अन्य बीभत्स अभिनय उसे दिखाया करते थे। उसका एक साथी नङ्गा नाचा करता था, अतएव वह सब से राजा का अधिक प्रिय था। इसने अपने पिता माता और छोटे छोटे बच्चों को मरवा डाला था। अन्त में क्षयरोग से इसकी मृत्यु हुई। दो वर्ष सात महीना एक दिन इसने काश्मीर का राज्य किया था।

(राजतरङ्गिणी)

उपगु=मिथिला के एक राजा का नाम, ये सत्यार्थी के पुत्र थे।

उपदानवी=दैत्यराज वृषपर्वा की पुत्री, और हिरण्याक्ष की पत्नी।

उपनन्द, उपनिधि=ये वसुदेव के पुत्र थे और उनकी स्त्री मदिरा और भद्रा के गर्भ से ये उत्पन्न हुए थे।

उपदेव=अक्रूर के पुत्र का नाम, और देवक के पुत्र का नाम।

उपनिषत्=उन संस्कृत ग्रन्थों का नाम जिनका वेदों से बहुत निकट सम्बन्ध है। उपनिषत् शब्द का धात्वर्थ यह है कि समीप गमन, अर्थात् जिसके द्वारा ब्रह्म का सामीप्य प्राप्त हो, आत्मा की उपलब्धि हो वही उपनिषत् है। आरण्यक भाग में जो ब्रह्मतत्त्व सूत्ररूप से लिखे गये हैं उपनिषदों में उन्हींका विशद विवरण है। इसी कारण ऋषियों ने उपनिषदों को वेदान्त या वेद का शिरोभाग कहा है। ईश्वर का सामीप्य प्राप्त कराना ही उपनिषदों का उद्देश्य है। जो संसार में निमग्न हैं, जिनका चित्त ब्रह्म की ओर कभी नहीं जाता उनको ब्रह्म साक्षात्कार करने का उपदेश उपनिषत् से प्राप्त होता है। जीवात्मा और परमात्मा का अभेद भाव उपनिषदों ने ही बतलाया है। प्रवृत्ति और निवृत्ति ये ही धर्म साधन के दो अङ्ग हैं। ऐहलौकिक तथा पारलौकिक सुखसाधन की इच्छा से जो

साधन किया जाता है वह प्रवृत्ति धर्म का अङ्ग है और जिसके द्वारा संसार का माया मोह छोड़ कर परमात्मा में लीन होते हैं वह निवृत्ति अङ्ग है। उपनिषत् में इस धर्म के दोनों अङ्गों का वर्णन है। उपनिषत् की संख्या कहीं एक सौ आठ लिखी मिलती है, कहीं कहीं दो सौ पैंतीस उपनिषदों का पता चलता है। विद्यारण्य स्वामी के मत से १२ ही उपनिषत् प्रधान हैं। कुछ लोग ३२ उपनिषदों की प्रधानता स्वीकार करते हैं। पहले उपनिषत् के नाम से बड़े अनर्थ हुए हैं, अधिक क्या कहा जाय, जो कोई अपना मत चलाना चाहता था वही एक उपनिषत् गढ़ डालता था। इसमें प्रमाण अल्लोपनिषत् है। बादशाह अकबर के समय मुसलमान धर्म की प्रधानता बतलाने के लिये अल्लोपनिषत् की रचना की गयी थी। मन्तिखूबत् तवारीख़ में अल्लोपनिषत् के विषय में लिखा है—हिजरी ९८३, सन् १५७५ ई० में सम्राट् अकबर ने बदौनि नामक एक मुसलमान को अथर्ववेद का अनुवाद करने की आज्ञा दी थी। क्योंकि बादशाह ने किसी से सुना था कि अथर्ववेद के अनेक उपदेश इसलाम धर्म के अनुकूल हैं। बदौनी अथर्ववेद का अर्थ नहीं समझ सके इस कारण बादशाह ने फैज़ी और इब्राहीम को अनुवाद करने का भार सौंपा। परन्तु वे भी क्या कर सकते थे। उसी समय भावन नामक एक दक्षिणी ब्राह्मण मुसलमान हो गया था जिसकी सहायता से अथर्ववेद का पारसी में अनुवाद होने लगा। बदौनी और इब्राहीम, शेख़ भावन जैसा बतला दिया करता था वे वैसा ही अनुवाद भी करते थे। उसी अनुवाद के समय कुरान के अल्लाह शब्द के समान वेद में शब्द देख कर शेख़ भावन ने उसके रूपान्तर की रचना की। उस समय शेख़जी की चालाकी न समझ कर बहुतों ने यह जान लिया था कि वेदों में अल्ला की बातें लिखी गयी हैं। वेद के जिन मन्त्रों के द्वारा भावन ने अपना उद्देश्य सिद्ध किया था वे मन्त्र ये हैं। "आदलाबुकमेककम्, अलाबुकनिखातम्" इनके समान भावन ने ये मन्त्र बनाये थे, "आदल्लाबुकमेककम्, अल्लाबुकम्"। इसीके बाद अल्लोपनिषत् बनाया गया था। अल्लोपनिषत् के अन्त में लिखा है "इल्लाकबर इल्लाकबर इल्लेति इल्लल्लाः इल्ला इल्लाल्ला अनादि स्वरूपा अथर्वणी शाखां हूं ह्रीं जनान् पशून् सिद्धान् जलचरान् अदृष्टं कुरु कुरु फट्"। अकबर बादशाह तक का नाम उपनिषदों में पाया जाता है इससे बढ़ कर आश्चर्य और दुःख का विषय क्या होगा? और इससे अधिक शास्त्रों की दुर्दशा भी क्या हो सकती है? बड़े दुःख के साथ लिखना पड़ता है कि अभी भी उपनिषदों का गढ़ा जाना बन्द नहीं हुआ है बीच बीच में नानकोपनिषत् जैसे उपनिषत् दिखायी पड़ ही जाते हैं।

उपनिषदों में ब्रह्मतत्त्वनिरूपण करने के प्रसङ्ग से जो विषय आलोचित हुए हैं वे प्रधानतः चार ही हैं। १म, आत्मा की व्यापकता, २य, आत्मा का देहान्तर ग्रहण, ३य, सृष्टि तत्त्व, और ४र्थ प्रलय रहस्य। यथाक्रम हम इन विषयों का संक्षिप्त विवरण लिखते हैं।

१म, उपनिषत् का यह मत है-परमात्मा सब भूतों में समानरूप से विद्यमान है। संसार की प्रत्येक वस्तु में इनकी अबाधित सत्ता वर्तमान है। "एकमेवाद्वितीयं" या एकेश्वर वाद से जो भाव समझा जाता है वह उपनिषदों ही का है। इस समय एकेश्वर से यही अर्थ समझा जाता है "एकमात्र परमात्मा ही जगत् के कर्ता हैं और संसार उनका बनाया पदार्थ है।" परन्तु उपनिषत् के एकेश्वर का यह अर्थ नहीं है। उपनिषत् कहता है कि ईश्वर एक अवश्य है, परमात्मा अद्वितीय हैं, परन्तु सृष्टि पदार्थ उनसे भिन्न नहीं हैं अर्थात् परमात्मा अभिन्नरूप से इस जगत् में मिले हुए हैं। यह विश्व उनका प्रकाशरूप है। यह तत्त्व अनेक उपमा और उदाहरणों से उपनिषत् में समझाया गया है। छान्दोग्य केन और ईश उपनिषदों के एक दो स्थानों का मर्म नीचे उद्धृत किया जाता है, जिससे आत्मा की व्यापकता स्पष्ट मालूम होगी। छान्दोग्योपनिषत् के तीसरे प्रपाठक के १४-वें खण्ड में लिखा है-"सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्त

उपासीत" अर्थात् यह संसार ही ब्रह्म है, इस परिदृश्यमान विश्व के ब्रह्म ही आदि अन्त और प्राणभूत हैं। यह समझ कर मनुष्य उसकी उपासना करें, इसके बाद लिखा है—वह प्राणमय मनोमय और ज्योतिर्मय हैं। वह सर्वकाम सर्वगन्ध और सर्वरस हैं। वह सत्य सङ्कल्प आकाशात्मा और सब में विराजमान हैं। जिस प्रकार वह एक ओर अणोरणीयान् हैं उसी प्रकार दूसरी ओर महतो महीयान् हैं। वह समस्त कार्यों को कराता है और उसकी इच्छा से समस्त कार्य हो रहे हैं। वही समस्त का मूलभूत है। परब्रह्म का व्यापक भाव उपमा द्वारा किस प्रकार समझाया गया है—यह भी हमलोग छान्दोग्योपनिषत् के छठवें प्रपाठक के नवम खण्ड में देख पाते हैं। ऋषि उद्दालक अपने पुत्र श्वेतकेतु को परमात्मा का विषय समझाते हैं—वत्स, मधुमक्षिका समूह वृक्षों पर से मधु एकत्रित करके मधुचक्र बनाती हैं। उस मधुचक्र में अनेक वृक्षों के अनेक पुष्पों के रस एकत्रित हुए हैं। किस वृक्ष का या पुष्प का रस उस चक्र में कहाँ है? इसका निर्णय नहीं किया जा सकता है। प्राणिसमूह की भी यही अवस्था है। प्राणी भी जब परमात्मा में विलीन होता है, तब वह अपना पृथक् अस्तित्व अनुभव नहीं करता। और भी देखो, ये नदियाँ, कोई तो पर्वत की ओर जा रही हैं, कोई पश्चिमाभिमुख जा रही हैं, परन्तु वे सभी सागर में जा कर सम्मिलित होती हैं। उनकी उत्पत्ति भी सागर ही से होती है, सागर से उत्पन्न वाष्पों ही से नदियाँ पुष्ट होती हैं, तथापि क्या कोई कह सकता है कि अमुक नदी सागर के किस भाग में वर्तमान थी, नहीं, इसी प्रकार प्राणियों को भी जानना, वे भी परमात्मा ही से उत्पन्न हुए हैं सही, परन्तु वे जानते नहीं कि मैं कहाँ से आया हूँ। इस विषय को खूब समझाने के लिये मुनि ने फिर कहा, पुत्र, इस लवणखण्ड को जल में रख दो, कल सबेरे पुनः इस विषय पर बात चीत होगी। पुत्र श्वेतकेतु ने पिता की आज्ञा का पालन किया। दूसरे प्रातःकाल ही महर्षि उद्दालक पुत्र से कहने लगे कल रात को जल में जो लवणखण्ड तुमने रखा था उसे ले आओ। पुत्र ने देखा जल में लवणखण्ड का चिह्न भी नहीं है, सभी गल गया है। पिता ने कहा, ठीक ऊपर से थोड़ा जल ले कर देखो तो उसका स्वादु कैसा है? पुत्र ने कहा, नमकीन। पुनः पिता ने कहा बीच से तो जल निकाल कर चखो, पुनः पुत्र ने कहा नमकीन। पुनः पिता ने कहा नीचे का जल तो चखो। फिर वही उत्तर मिला नमकीन। जल फेंक दो, जो मैं कहता हूँ उसे समझो। पुत्र एकाग्रचित्त होकर पिता का आदेश सुनने लगा। पिता कहने लगे, परमात्मा भी इसी प्रकार का है। जल में लवण की विद्यमानता जिस प्रकार अदृश्य रूप से मानी जा सकती है; उसी प्रकार परमात्मा भी इस विश्व में अदृश्य भाव से वर्तमान हैं। छान्दोग्योपनिषत् का यही अभिप्राय है। ईश और केन उपनिषदों में यह विषय कैसा वर्णित है, सो भी देख लीजिये। केन उपनिषत् में पहले ही प्रश्न किया गया है कि मन किस की प्रेरणा से कार्य करता है? किसकी आज्ञा से प्राणवायु गमनागमन कर रहा है? किसकी इच्छा से हम लोग बात करते हैं। चक्षु अथवा कर्ण ही को कौन देवता परिचालित करता है? इसका उत्तर यहाँ ही दिया गया है।

> श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनो यद्,
> वाचो ह वाचं स उ प्राणस्य प्राणः।
> यद्वाचानभ्युदितं येन वागभ्युद्यते,
> तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते।
> यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम्,
> तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते।
> यच्चक्षुषा न पश्यति येन चक्षूंषि पश्यति,
> तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते।
> यच्छ्रोत्रेण न शृणोति येन श्रोत्रमिदं श्रुतम्,
> तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते।
> यत्प्राणेन न प्राणिति येन प्राणः प्रणीयते,
> तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते।

अर्थात् जो कानों के भी कान हैं, मन का भी मन हैं, वाक्यों के भी वाक्य हैं, प्राणों के भी जो प्राण हैं और नेत्रों के भी जो नेत्र हैं वेही समस्त कर्म करते और कराते हैं। जिनको वचन द्वारा नहीं कहसकते, परन्तु जिनसे वाक्य

उत्पन्न होते हैं। मन के द्वारा उनकी चिन्ता नहीं हो सकती, किन्तु मन ही उनके द्वारा चिन्तित होता है। नेत्रों के द्वारा जिनको देख नहीं सकते, परन्तु जिनसे आँखें देखती हैं। कानों के द्वारा जिनकी उपलब्धि नहीं होती, परन्तु कर्ण उन्हींके द्वारा परिचालित होते हैं। प्राण वायु जिनका अस्तित्व नहीं जान सकते, परन्तु उनके द्वारा प्राण वायु प्रवाहित होता है वही ब्रह्म है, उन्हींको ब्रह्म समझो, उनको छोड़ अन्य की उपासना मङ्गलकारिणी नहीं है। वही आनन्द है। उस आनन्द का उपभोग करने वाले का आनन्द कैसा अनुपम है इसका निरूपण ईशोपनिषत् कैसा करता है।

"यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति,
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते।
यस्मिन् सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः,
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः"।

जो परमात्मा में सब भूतों को देखते हैं और सब भूतों में परमात्मा को देखते हैं; वे कदापि उनसे विमुख नहीं होते; जिसने एक बार समझ लिया है कि-द्रष्टा और दृष्टिपदार्थ में कुछ भेद नहीं है, परमात्मा ही सब भूतों में सब अवस्थाओं में वर्तमान है; उसको न तो कुछ कष्ट है और न दुःख है। आत्मा की व्यापकता इसी प्रकार उपनिषदों में विशदरूप से वर्णित है। देहान्तर ग्रहण की बातें बृहदारण्यक उपनिषद् के चौथे अध्याय में लिखी हैं, जिसका मर्म नीचे लिखा जाता है। जिस प्रकार तृणजलौका शनैः शनैः एक तृण के किनारे पहुँच कर दूसरे तृण की ओर जाती है, तदनन्तर दूसरे तृण को पकड़ कर पहले तृण को छोड़ देती, उसी प्रकार आत्मा की भी गति है। आत्मा भी एक शरीर को छोड़ कर इसी प्रकार दूसरा शरीर धारण करता है। और सुवर्णकार जिस प्रकार पुराने सुवर्णखण्डों को साफ़ कर उसके मुलम्में से नया नया और सुन्दर वस्तु बनाता है, आत्मा भी उसी प्रकार एक शरीर छोड़ कर दूसरा नया शरीर धारण करता है। कामना के अनुसार ही यह देहान्तर ग्रहण होता है। परन्तु जो कामनाशून्य हैं अथवा जिनकी कामना का विषय केवल परमात्मा ही हैं उनको अन्यत्र कहीं भटकना नहीं पड़ता है। उनका ब्रह्मभूत आत्मा ब्रह्मही में लीन होता है। जिस प्रकार सर्प केंचुल छोड़ कर सुन्दर रूप धारण करता है और यथास्थान चला जाता है उसी प्रकार आत्मा भी परमात्मा में लीन हो जाता है। आत्मा का देहान्तर ग्रहण या परमात्मा में लीन होने के विषय में उपनिषत् का मत है-ज्ञान और कर्म के अनुसार आत्मा को दूसरे स्थान में जाना पड़ता है। संसार में जो जैसा कर्म करेंगे उनके आत्मा की भी वैसी ही गति होगी। छान्दोग्योपनिषत् अष्टम प्रपाठक प्रथम खण्ड के छठवें सूत्र में यही बात बतलायी गयी है जिसका अर्थ यह है। पृथिवी में मनुष्य कर्म द्वारा जो प्राप्त करता है, वह सब विनाशी है। याग यज्ञ आदि के द्वारा जो कुछ प्राप्त किया जाता है उसका भी दूसरे जन्म में नाश हो जाता है। जो परमात्मा को नहीं पहचानते, अथवा आत्मतत्त्व प्राप्त करने में असमर्थ होकर काम्यकर्मों का अनुष्ठान कर के इस लोक से विदा होते हैं उन्हें पुनः इस लोक में लौटना पड़ता है। कर्मभोग शेष रहने के कारण कभी उनका आत्मा स्वाधीन नहीं होता। उपनिषदों में इसी प्रकार आत्मा का देहान्तर वाद या पुनर्जन्म वाद वर्णित है। सृष्टितत्त्व के विषय में उपनिषदों में अनेक मत देखे जाते हैं। एक स्थान पर लिखा है-पहले कुछ भी नहीं था, एक अण्डा उत्पन्न हुआ, उस अण्डे के दो टुकड़े कर दिये गये। एक भाग से चाँदी की पृथ्वी और दूसरे भाग से सुवर्ण का आकाश उत्पन्न हुआ। दूसरे स्थान पर लिखा मिलता है- प्रथम एकमात्र परब्रह्म ही विराजमान थे। उनके अतिरिक्त और किसीका अस्तित्व नहीं था, लय या मृत्यु के विषय में उपनिषत् का एक ही मत है। उपनिषत् कहते हैं कि जिसने आत्मा और परमात्मा का अभेद ज्ञान प्राप्त किया है, जिसने सब प्राणियों में परमात्मा का दर्शन प्राप्त किया है और परमात्मा में सब प्राणियों को देखा है, जो स्पृहा, आकांक्षा, पाप, संशय, कलङ्क

आदि से रहित हैं, वेही पाप को पराजित कर सकते हैं परन्तु उन्हें पाप छू भी नहीं सकता, वे पाप को भस्म कर सकते हैं परन्तु पाप उनका कुछ भी नहीं कर सकता, वे परब्रह्म के स्वरूप में लीन हो जाते हैं। सांसारिक सुख दुःख उन्हें नहीं सताते, कठोपनिषत् में नचिकेता और यमराज के कथोपकथन रूप में इसका विशदरूप से विवरण किया गया है। नचिकेता के प्रश्न के उत्तर में यम ने कहा था जिसने परमात्मा का स्वरूप तत्त्व जान लिया है वह मृत्यु के अधीन नहीं है क्योंकि वह जानता है कि आत्मा न तो कभी मरता है और न वह जन्मता ही है। यद्यपि शरीर का नाश हो जाता है; तथापि आत्मा का नाश नहीं होता। अतएव उपनिषत् का यही सिद्धान्त हुआ कि विश्व का न तो आदि है और न अन्त है, परब्रह्म ही अनादि काल से इस संसार के रूप में विराजमान हैं।

उपनिषत् के विषय में पाश्चात्य पण्डितों का मत यह है वे कहते हैं–"जिस समय वैदिक याग यज्ञ आदि से सर्वसाधारण का मन कर्मकाण्ड की ओर झुका हुआ था, कर्मकाण्ड को छोड़ कर अन्य विषयों की ओर साधारण मनुष्य मनोयोग देना अनुचित समझते थे, उस समय कितने ही लोकहितैषी महर्षियों का हृदय संशयित हो रहा था। वे सोचते थे–कर्म क्या है? वह किया ही क्यों जाता है? इसी विचार के साथ उनके हृदय में एक नवीन दार्शनिक विचार का अंकुर उत्पन्न हुआ। वे सोचने लगे, विश्व क्या है? परब्रह्म क्या है? आत्मा और परमात्मा में क्या सम्बन्ध है? इसी विचार से उपनिषदों की सृष्टि हुई है। उपनिषदों ने मनुष्यों के मन्तव्य मार्ग का निर्देश किया है, उपनिषदों ही ने मनुष्यों को चिन्ता करना सिखाया है। उपनिषदों ने मनुष्यों की विवेक-शक्ति को प्रकाशित किया है। कर्मकाण्ड की असारता बता कर, उपनिषदों ने मानव समाज में ज्ञान का प्रचार किया है। अन्धविश्वासी के समान मनुष्य कर्मपथ पर न दौड़े, इसके लिये उपनिषदों ने ज्ञान प्रकाश कर के मनुष्यों को सन्मार्ग बता दिया है, समस्त दर्शनशास्त्रों के मूलभूत उपनिषत् ही हैं।" पाश्चात्य पण्डितों का उपनिषत् के विषय में यही मत है। इसके साथ हम लोगों को सहमत होने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्ड इनका मूल वेद ही है। हो सकता है कि उपनिषदों में एक प्रकार का अंकुर हो, यह भी हो सकता है कि उपनिषदों में ज्ञानबीज अंकुरित हुआ हो, परन्तु उपनिषत् वेदों का विरोध करेगा इसकी आशा कभी नहीं की जा सकती है। उपनिषत् वेदों के एक अङ्ग की व्याख्यामात्र हैं। जर्मनी के प्रसिद्ध दार्शनिक विद्वान् शोपेनहार उपनिषदों के विषय में कहते हैं "पृथिवी में उपनिषदों के समान उच्च भावपूर्ण शान्तिप्रद ग्रन्थ दूसरे नहीं हैं, उपनिषत् हमारे जीवन के अवलम्बन हैं।"

ये उपनिषत्समूह किस समय में रचित हुए थे इसका पता नहीं चलता, इसी कारण इनकी रचना का काल निरूपण करने में अनेक प्रकार के मत उपलब्ध होते हैं। पाश्चात्य पण्डितों का मत है कि ईसा के जन्म के ११ सौ वर्ष पहले उपनिषत् बनाये गये थे। परन्तु महाभारत युद्ध के बहुत पहले उपनिषत् वर्तमान थे। इसके अनेक प्रमाण हैं।

(भारतवर्षीय इतिहास)

उपपुराण=महर्षि वेदव्यास से भिन्न ऋषियों के बनाये पुराण। इनकी संख्या अठारह है और कहीं कहीं इनकी अनेक संख्या पायी जाती है। वेदोक्त धर्म कर्मों का दृष्टान्त और उपदेश द्वारा सर्वसाधारण को समझाना ही इनका उद्देश्य है। इनमें समय समय के आचार व्यवहार तथा क्रियाकलाप का भी वर्णन है। अठारह उपपुराण ये हैं, सनत्कुमारोक्त आद्य, नारसिंह, कुमारोक्त स्कन्द, नान्दीशभाषित शिवधर्म, दुर्वासा, नारदीय, कापिल, वामन, उशना, ब्रह्माण्ड, वारुण, कालिका, माहेश्वर, साम्ब, सौर, पराशर, मारीच और भार्गव। किसी किसी ग्रन्थ में वायवीय, नान्दिकेश्वर, पाद्म, देवी और भास्कर ये पांच पुराण उपपुराणों ही में गिने गये हैं। पण्डित लोग कहते हैं कि कल्पभेद के अनुसार किसी कल्प में जो

पुराण कहा जाता है वही दूसरे कल्प में उप-पुराण समझा जाने लगता है।

उपमद्गु=एक राजकुमार। ये राजा श्वफल्क के पुत्र थे। गान्धिनी के गर्भ से इनका जन्म हुआ था।

उपमन्यु=महर्षि आयोदधौम्य के शिष्य। ये अत्यन्त गुरुभक्त थे। एक दिन इनके उपाध्याय ने सावधानी से गौ चराने के लिये इन्हें वन में भेजा। उपमन्यु दिन भर गौ चरा कर सन्ध्या को गुरु के समीप जा कर उपस्थित होते थे। उपमन्यु को हृष्ट पुष्ट देख कर, एक दिन गुरु ने पूछा-"तुम क्या खाते हो उपमन्यु ने कहा भिक्षा से जो अन्न प्राप्त होता है वही खा कर मैं रहता हूँ।" गुरु ने कहा "बिना मेरी आज्ञा के तुम को ऐसा करना उचित नहीं है।" भक्त शिष्य ने जो कुछ भिक्षा मिली थी सभी गुरु को समर्पित कर दी। तदनन्तर उसको मोटा ताज़ा देख कर गुरु ने उसके आहार के लिये पूछा। उपमन्यु ने उत्तर दिया "पहली भिक्षा गुरुजी को अर्पण करता हूँ और दूसरी भिक्षा स्वयं खाता हूँ।" गुरुजी महाराज ने इसको भी अनुचित बतलाया। गुरुजी ने कहा-"ऐसा करने से भिक्षा देनेवालों को कष्ट पहुँचने की सम्भावना है। पुनः कुछ दिन बीतने के बाद गुरुजी ने उपमन्यु से उस के आहार के विषय में पूछा। उसने कहा-"बछड़े जब दूध पी लेते हैं, तब उनके मुख में जो दूध का फेन लगा रहता है उसीसे मैं अपनी तृप्ति निर्वाह करलेता हूँ।" गुरुजी बोले-"तुम्हें ऐसा करना उचित नहीं है क्योंकि शान्त स्वभाव बछड़े तुम्हारे प्रेम से अपने भोजन से अधिक भाग तुम्हारे लिये छोड़ देते होंगे, जिस से उनको कष्ट होने की सम्भावना है। इस प्रकार गुरुजी के परिणामदर्शी हृदय ने प्रिय शिष्य के भोजन के सभी मार्ग बन्द कर दिये। उपमन्यु गोचारण करने वन में गया, भूख की ज्वाला उससे न सही गयी, उसने अकवन के पत्ते खा लिये, जिससे वह शीघ्र ही अन्धा हो कर वन में चारों ओर घूमने लगा। अकस्मात् बिचारा अन्धा उपमन्यु एक कुएँ में गिर गया। रात्रि हो गयी, परन्तु उपमन्यु अभी तक नहीं आया, दूसरे दिन तो वह अभी तक आ जाया करता था। गुरु ने एक शिष्य से कहा, उपमन्यु को सभी प्रकार से भोजन का मैंने निषेध कर दिया इसी कारण क्रोध से वह अभी तक यहाँ नहीं आया अतएव चलो हम लोग उसे ढूँढ़ लावें। शिष्यों को साथ ले कर महर्षि आयोदधौम्य वन में गये और वहाँ उपमन्यु को पुकारने लगे, उपमन्यु ने कुएँ में से गुरु को उत्तर दिया और अपने कुएँ में गिरने का हाल भी बता दिया, स्वर्गवैद्य अश्विनीकुमारों की स्तुति करने के लिये गुरु ने उसे उपदेश दिया। उपमन्यु के स्तव से अश्विनीकुमारद्वय प्रसन्न हुए उन्होंने एक औषध खाने के लिये दी। परन्तु बिना गुरु की आज्ञा उपमन्यु ने औषध खाने की अपनी असम्मति प्रकाशित की। अश्विनीकुमारों ने उसकी गुरुभक्ति से प्रसन्न हो कर उसे वर दिया, तुम्हारे दाँत सुवर्ण के हों, तुम नेत्रवान् हो, स्वर्गवैद्यों के प्रभाव से उपमन्यु के नेत्र खुल गये। गुरु आयोदधौम्य ने वर दिया-समस्त वेद और समस्त धर्मशास्त्र तुमको स्मरण हो जायँ। पुनः उपमन्यु गुरु की आज्ञा से अपने गृह लौट आये। (महाभारत)

उपरिचर=चन्द्रवंशी राजा, ये च्यवन के पौत्र और कृतक के पुत्र थे। उपरिचर सुधनु के वंश में उत्पन्न हुए थे। ये चेदिप्रदेश के अधिपति थे। ये उस समय सम्राट् कहे जाते थे। इनके पाँच पुत्र थे, प्रत्यग्र, कुशाम्ब, बृहद्रथ, मावेल्ल और मत्स्य। उपरिचर ने अपने पाँचों पुत्रों में अपना राज्य बाँट दिया था। बृहद्रथ को मगधदेश का राजा बनाया था, मत्स्य (यदु) को मत्स्यदेश दिया था। इन पाँच पुत्रों से पाँच राजवंश उत्पन्न हुए थे। बृहद्रथ के दो पुत्र थे जिनमें जरासन्ध उनके बाद राजा हुआ था। महाभारत में लिखा है कि ये बड़े मृगयाप्रेमी थे। परन्तु पीछे से इनका स्वभाव बदल गया। जीवहिंसा छोड़ कर ये तपस्या करने में लगे। इनकी कठोर तपस्या देख कर देवों को भय हुआ, वे सोचने लगे, शायद यह इन्द्रपद न लेलें। इसी चिन्ता से देवता उपरिचर के समीप आये, और कह सुन कर उनको तपस्या से

निवृत्त किया। इन्द्र ने एक माला और लाठी इनको दी थी। (महाभारत)

उपसुन्द=दैत्यविशेष । इसके जेठे भाई का नाम सुन्द था, ये दोनों निकुम्भ नामक दैत्य के बेटे थे। महासुर हिरण्यकशिपु के वंश में निकुम्भ का जन्म हुआ था। सुन्द और उपसुन्द दोनों भाई त्रिलोक जीतने की इच्छा से विन्ध्याचल पर्वत पर कठोर तपस्या करते थे। प्रसन्न हो कर ब्रह्मा ने वर दिया था, त्रिलोक में तुम लोगों को कोई भी नहीं मार सकेगा, यदि तुम आपस में लड़ कर एक दूसरे को नहीं मारोगे, तो दूसरा तुमको कोई नहीं मार सकता। यह वर पा कर वे अत्याचार करने लगे, ब्राह्मणों का यज्ञ विध्वंस करना ही उन दोनों ने ठान लिया। उनके अत्याचारों से पीड़ित हो कर ब्राह्मणों ने शाप दिया सही, परन्तु ब्रह्मा के वर के सामने उनके शाप से हो ही क्या सकता था। इन दोनों ने इन्द्र पर भी आक्रमण किया था। अनेक रूप धारण कर वे तपस्वियों का वध करने लगे, जिससे देवकार्य और पितृकार्य लुप्त हो गये। अनन्तर देवता ऋषि आदि मिल कर ब्रह्मा के समीप गये और सुन्द उपसुन्द के अत्याचारों से बचाने के लिये प्रार्थना करने लगे। ब्रह्मा की आज्ञा से विश्वकर्मा ने तिलोत्तमानामक एक सुन्दरी रमणी की सृष्टि की। ब्रह्मा ने तिलोत्तमा को सुन्द उपसुन्द के समीप भेजा। तिलोत्तमा के रूप पर मुग्ध हो कर सुन्द और उपसुन्द दोनों में कलह प्रारम्भ हुआ और परस्पर के आघात से दोनों मर गये।

(महाभारत)

उमा=महादेव की पत्नी पार्वती। ये हिमालयराज की कन्या हैं। मेनका के गर्भ से इनका जन्म हुआ था। पिछले जन्म में ये प्रजापति दक्ष की कन्या थीं, दक्ष के मुँह से पति-निन्दा सुन कर इन्होंने शरीरत्यागपूर्वक हिमालयराज के यहाँ जन्म ग्रहण किया था और तपस्या द्वारा महादेव को प्राप्त करने की चेष्टा की थी। पार्वती की कठोर तपस्या देख कर इनकी माता मेनका ने उ, मा, अर्थात् अधिक कठोर तपस्या मत करो, कह कर निषेध किया था तभीसे इनका नाम उमा पड़ा है। यह कालिदास की उक्ति है, मालूम नहीं इसमें सत्य का भाग कितना है।

"उमेति मात्रा तपसो निषिद्धा,
पश्चादुमाख्यां सुमुखी जगाम"

(कुमारसम्भव)

उमापति त्रिपाठी=ये अयोध्या के रहने वाले ब्राह्मण थे। सन् १८७४ ई० में इनकी मृत्यु हुई। इनका छाप नाम "कोविद" था। संस्कृत में इनके बनाये कई एक प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं और भाषा में इनकी रची "दोहावली" "रत्नावली" आदि पुस्तकें हैं।

उमापतिधर=संस्कृत के कवि। गीतगोविन्दकार जयदेव ने इनका अपने प्रसिद्ध गीतगोविन्द में सादर उल्लेख किया है। इससे जयदेव के ये समकालीन थे ऐसा पाया जाता है। जयदेव बङ्गाल के राजा लक्ष्मणसेन के समकालीन थे यह बात निश्चित हो चुकी है। राजा लक्ष्मणसेन का समय ११११ ई० माना गया है। अतएव ख़ृष्टीय १२वीं शताब्दी के आरम्भ और मध्य में सम्भवतः कवि उमापतिधर विद्यमान रहे होंगे। श्रीमद्भागवत की भावार्थदीपिका टीका पर जो वैष्णवतोषिणी टीका लिखी गयी है, उसमें लिखा है—

"श्रीजयदेवसहचरेण महाराजलक्ष्मणसेनमन्त्रिवरेणोमापतिधरेण"

इससे भी विदित होता है कि उमापतिधर नामक कवि बङ्गाल के सेनवंशीय राजा बल्लालसेन के पुत्र लक्ष्मणसेन के मन्त्री थे। इन्हीं लक्ष्मणसेन ने सन् १११६ में लक्ष्मणसेन संवत् चलाया था।

यद्यपि इनका रचा कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ सुनने में नहीं आया, तथापि इनके रचे और शिला पर खुदे ३६ श्लोक एशियाटिक सोसाइटी में रखे हुए हैं।

उमेद=ये सन् १७६६ में जन्मे, और शाहजहाँपुर के पास के रहने वाले थे। इनका बनाया नखशिखवर्णन प्रसिद्ध है।

उमेदसिंह=(१) बूँदी के राजा। ये रावबुधसिंह के बड़े पुत्र थे। इनके छोटे भाई का नाम दीपसिंह था। इनके पिता के पर-

लोकवास होने पर जयसिंह की सम्मति से उदयपुर के महाराणा ने इनके राज्य को अपने राज्य में मिला लिया । इन असहाय बालकों ने कहीं आश्रय न पा कर एक जङ्गल में जा कर शरण ली । कुछ ही दिनों के बाद कोटे में दुर्जनशाल का अभिषेक हुआ । दुर्जनशाल एक उदार दयालु राजा थे, उन्होंने इन दोनों अनाथ बालकों को आश्रय दिया, और वे इसकी भी चेष्टा करने लगे कि इन्हें इनका राज्य भी प्राप्त हो जाय। सन् १७४४ ई० में इनके स्वाभाविक शत्रु जयसिंह मर गये । आमेर के राज्यसिंहासन पर ईश्वर-सिंह बैठे । उमेदसिंह सुयोग समझ कर, सेना एकत्रित करने लगे । हाड़ा का दलदल आ कर इनसे मिलने लगा । कोटे के राजा ने जब देखा कि १३ वर्ष का एक वीर बालक वीर क्षत्रिय के समान रणशय्या साज रहा है तब उन्होंने भी सहायता देने को अपनी सेना भेज दी । ईश्वरीसिंह ने इसकी ख़बर पा कर अपनी सेना भेज दी । दोनों सेना में लड़ाई हुई । ईश्वरीसिंह की सेना लौट गयी । इससे ईश्वरीसिंह बहुत मर्माहत हुए, उन्होंने एक बड़ी सेना भेजी । हाड़ा की भी सेना एकत्रित हुई । हाड़ाओं ने अपनी बड़ी वीरता प्रकाशित की, तीन बार इन हाड़ा वीरों ने विजय पाया, परन्तु इनकी सेना क्षत विक्षत हो गयी थी, तथापि ये लोग लड़ते रहे, अन्त में उमेदसिंह की घोड़ी के गोली लगी । अन्यान्य सामन्तों के अनुरोध से उमेदसिंह युद्धभूमि से चले गये । इस घटना से दुःखी हो कर उमेदसिंह ने बूँदी राज्य के सामन्त इन्द्रगढ़ के अधिप के पास गये, परन्तु इस नीच से आदर सत्कार की तो आशा कौन करता, उसनें उमेदसिंह को उसी समय इन्द्रगढ़ से चले जाने के लिये कहा । तदनन्तर वे करवान गये । इतना कष्ट उठाने पर भी उमेदसिंह का धैर्य नहीं छूटा, उन्होंने पुनः सेना एकत्रित की । अब की बार उमेदसिंह का श्रम सफल हुआ, उन्होंने बूँदी पर अधिकार कर लिया । (टाड्स राजस्थान)

उर्वशी=विख्यात स्वर्गवेश्या । इसका जन्म नारायण के ऊरू से हुआ था । एक समय यह इन्द्र की सभा में नाच रही थी, पुरूरवा भी वहाँ बैठे थे । उनके ऊपर मोहित होने से उर्वशी का ताल भङ्ग हुआ । इस कारण देवराज ने उर्वशी को कुछ दिनों तक मर्त्यलोक में रहने का शाप दिया । हरिवंश में लिखा है कि ब्रह्मा के शाप से उर्वशी ने मनुष्ययोनि में जन्म-ग्रहण किया था । शाप पा कर उर्वशी यशस्वी राजा पुरूरवा की पत्नी बन कर मर्त्यलोक में रहने लगी। उर्वशी ने कहा, महाराज, जबतक मैं आपको नग्न नहीं देखूँगी, और जब तक मेरी इच्छा के विरुद्ध तुम मुझसे सङ्गम नहीं करोगे और जब तक मेरे ये दोनों मेष यहाँ से नहीं चले जायँगे, तब तक मैं आपकी स्त्री बन कर रहूँगी । पुरूरवा ने इन ठहरावों को स्वीकार किया। उर्वशी के गर्भ से नौ पुत्र उत्पन्न हुए थे। बहुत वर्ष बीतने से उर्वशी के बिना गन्धर्वों को बड़ा कष्ट होने लगा। उन लोगों ने विश्वावसु नामक गन्धर्व को उर्वशी का मेष हरण करने के लिये नियुक्त किया । रात को विश्वावसु मेषों को चुरा कर लिये जाता था, उस समय उर्वशी ने पुरूरवा को उठाया, उस समय पुरूरवा नङ्गे थे, वे अकचका कर वैसे ही विश्वावसु गन्धर्व के पीछे दौड़े । अवसर जान कर गन्धर्वों ने राजभवन के चारों ओर प्रकाश फैला दिया। उर्वशी राजा को देख कर उसी समय शापमुक्त हो गयी तथा स्वर्ग को चली गयी । (हरिवंश)

उलूक=(१) ये महाभारत युद्ध के कुछ पहले कौरवों के दूत बनकर युधिष्ठिर के समीप गये थे । शकुनि की सम्मति से दुर्योधन ने पाण्डव पक्षीय कृष्ण युधिष्ठिर आदि को युद्ध के लिये इनके द्वारा बुलाया था । उलूक ने दुर्योधन का अभिप्राय युधिष्ठिर से कह दिया था । महा-भारत युद्ध के अट्ठारहवें दिन ये सहदेव के द्वारा मारे गये । सहदेव ने भाले से इनका सिर काट लिया था । (महाभारत)

(२) वैशेषिक दर्शनकार का दूसरा नाम, इनका असली नाम उलूक था । अत एव इनका

दर्शन औलूक्य दर्शन कहा जाता है । इनका जन्म काश्यपवंश में हुआ था । अत एव इनको काश्यप भी कहते हैं । ये विशेषनामक एक अतिरिक्त पदार्थ मानते हैं, इस कारण इन्हें वैशेषिक भी कहते हैं । कहा जाता है कि ये महर्षि बहुत ही पुराने हैं । इनका बनाया दर्शन, साङ्ख्यदर्शन से भी प्राचीन है ।

उलूकी=उलूकों की माता जिससे उलूक उत्पन्न हुए हैं ।

उलूपी=ऐरावत कुल में उत्पन्न कौरव्यनामक नाग की कन्या । युधिष्ठिर की आज्ञा से अर्जुन को बारह वर्ष वन में रहना पड़ा था । इसी वनवास के समय अर्जुन गङ्गाद्वार गये और वहाँ ही आश्रम बना कर रहने लगे । एक दिन तर्पण करने के लिये, गङ्गा स्नान करके अर्जुन लौटे आते थे, उसी समय उलूपी वहाँ आयी और अर्जुन को पाताल में ले जा कर अपनी अभिलाषा उसने प्रकट की । अर्जुन बोले मैं अपने बड़े भाई की आज्ञा के अनुसार ब्रह्मचर्य अवलम्बन कर के रहता हूँ । अत एव मैं स्वाधीन नहीं हूँ । तुम्हारी अभिलाषा पूरी करने की मेरी इच्छा है, परन्तु जिससे धर्महानि न हो और तुम्हारी इच्छा भी पूर्ण हो, इसके लिये कुछ उपाय सोचो । उलूपी बोली—"तुम्हारे ब्रह्मचर्य ग्रहण करने का कारण हमें मालूम है । तुम लोगों ने प्रतिज्ञा की थी कि जब तुममें से कोई द्रौपदी के पास रहे उस समय दूसरा वहाँ नहीं जा सकेगा, यदि चला जाय, तो उसे बारह वर्ष तक वनवास करना पड़ेगा । अब आप सोच कर देखें कि द्रौपदी के लिये तुम लोग कठोर नियम में बँधे हुए थे, अत एव मेरी अभिलाषा पूर्ण करने से, तुम्हें धर्म-भ्रष्ट नहीं होना पड़ेगा और यदि तुम मेरा मनोरथ पूर्ण नहीं करोगे; तो मैं प्राण त्याग करूँगी; इससे तुम्हें हत्या का पाप भी लगेगा ही । इतना सुन कर अर्जुन ने उसकी इच्छा पूर्ण की और उस दिन वहाँ ही रह कर, वे दूसरे दिन उलूपी के साथ गङ्गाद्वार में लौट आये । उलूपी अर्जुन को वहाँ पहुँचा कर अपने घर लौट गयी ।

(महाभारत)

उल्मुक=बलभद्र के पुत्र । ये रेवती के गर्भ से उत्पन्न हुए थे । ये दो भाई थे । इनके बड़े भाई का नाम निशठ था ।

उल्वण=तीसरे मन्वन्तर के सप्त-ऋषियों में से एक ऋषि । ये वशिष्ठ के पुत्र थे ।

उवट=वेदभाष्यकर्ता, संस्कृत के प्रसिद्ध पण्डित । ये काश्मीर के रहने वाले थे । व्याकरण महाभाष्य के टीकाकार कैयट, औयट या उवट "काव्यप्रकाश" कार मम्मट के छोटे भाई थे । इनके पिता का नाम जैयट था । उवट ने वाजसनेयी संहिता के भाष्य में लिखा है—

"ऋष्यादींश्च गुरूंश्चैव अवन्त्यामुवटो वसन् ।
मन्त्रभाष्यमिदं चक्रे भोजे राष्ट्रं प्रशासति"

इससे स्पष्ट है कि उवट अवन्ती में राजा भोज के राज्यकाल में विद्यमान थे । किन्तु ये अपने पिता का नाम वज्रट बतलाते हैं, और मम्मट के पिता का नाम जैयट था । इससे सन्देह होता है । क्योंकि मम्मट ने भोजरचित सरस्वतीकण्ठाभरण के श्लोक अपने "काव्यप्रकाश" में उद्धृत किये हैं । इससे मम्मट का भोज के पीछे उत्पन्न होना सिद्ध होता है, इस अवस्था में भोज के समकालीन उवट को मम्मट का छोटा भाई कैसे मान सकते हैं । सम्भव है उवट भोज के समकालीन हों और ये मम्मट के सहोदर भाई न हों । अथवा यह भी कहा जा सकता है कि मम्मट से ये छोटे ही थे, सरस्वतीकण्ठाभरण उस समय तक बन गया होगा, जब मम्मट "काव्यप्रकाश" बनाते थे । भोज के यहाँ रहने से उवट के द्वारा सरस्वतीकण्ठाभरण का पता लगना भी मम्मट को आसान था । भोज का समय सन् ६६६ ई० से ११५३ ई० तक माना गया है अत एव उवट का भी यही समय मानना उचित है ।

उशना=दैत्यपुरोहित । ये भृगु के पुत्र थे । ये द्वापर के व्यास थे । कोई कोई इन्हींको वाल्मीकि भी कहते हैं ।

उशीनर=चन्द्रवंशीय विख्यात राजा । महाराज

ययाति की कन्या माधवी के गर्भ से राजा उशीनर के एक पुत्र उत्पन्न हुआ था, जिसका नाम शिबि था । जहाँ यमुना नदी की जला और उपजला नामक दो शाखायें हैं वहीं राजा उशीनर ने यज्ञ किया था, उस यज्ञ से इनकी श्रेष्ठता इन्द्र से भी बढ़ गयी थी । इनके धर्म की परीक्षा लेने के लिये, बाज पक्षी का रूप धारण कर, इन्द्र और कपोत रूप धारण कर अग्नि उनकी सभा में गये । कपोत बाज के भय से डर कर उशीनर के जङ्घे पर गिरा, और उनकी शरण उसने चाही । कपोत के पीछे पीछे बाज भी वहाँ उपस्थित हुआ, और उसने उशीनर से कहा–" महाराज, सभी आपको धर्मात्मा जानते हैं, भूखे मुझको हटा कर मेरे भक्ष्य कपोत को आश्रय देना आपके लिये अनुचित और अधर्म का कार्य होगा ।" राजा बोले–"मैंने भीत और शरणागत को आश्रय दिया है इससे हम को अधर्म नहीं होगा, प्रत्युत धर्म ही होगा, और यदि हम इसको तुम्हारे लिये छोड़ देंगे; तो हमारे इस कार्य की सभी निन्दा करेंगे । ब्राह्मण और गौ की हत्या तथा शरणागत का त्याग इन दोनों का तुल्य पाप होता है ।" बाज बोला–" महाराज, सभी प्राणी आहार करने के लिये उत्पन्न होते हैं, वे आहार ही से बढ़ते और जीवन धारण करते हैं । आज यदि आप मुझे आहार करने न देंगे, तो इससे मेरे प्राण निकल जायँगे; और मेरे न रहने से मेरे पुत्र कलत्र आदि भी आहार न मिलने के कारण मर जायँगे । अतएव आप एक प्राणी की रक्षा करके अनेक प्राणियों की हत्या करना चाहते हैं, इससे आपको अधर्म ही होगा । जो धर्म-कार्य एक दूसरे धर्मकार्य का विघातक होता है वह धर्म नहीं है । उसको अपधर्म कहते हैं । जो धर्म किसी का विरोधी नहीं, वही प्राकृत धर्म है ।" राजा बोले–"तुम एक धर्मज्ञ के समान बातें कर रहे हो; तुम्हारी बातें सुन कर, मालूम होता है कि तुम धर्म के तत्त्व अच्छी तरह जानते हो । तब तुम शरणागत को छोड़ने के लिये कहते हो इसीका हमें आश्चर्य है । इस कपोत को छोड़ कर अन्य भी तो बहुतसी तुम्हारे भोजन की वस्तु हैं । इनमें जो तुम चाहो वही मैं देने को तैयार हूँ ।" बाज बोला–" मुझे अन्य भोजनों की आवश्यकता नहीं है ।" राजा बोले–"कपोत को छोड़ कर और जो तुम माँगो वही मैं देने को तैयार हूँ । जिस उपाय से तुम इस कपोत को छोड़ सकते हो वह मुझे बताओ वह मैं करने को तैयार हूँ ।" बाज बोला–"यदि कपोत पर आपकी इतनी ममता है, तो आप कपोत के बराबर अपने शरीर का मांस दें, इससे मेरी प्रसन्नता होगी ।" राजा ने मान लिया और कहा–"मैं अभी अपने शरीर से कपोत के बराबर मांस निकाल कर देता हूँ ।" यह कह कर धर्मपरायण राजा अपने शरीर से मांस निकाल कपोत के बराबर तौलने लगे, मांस काट काट कर राजा तुला पर रखने लगे, परन्तु कपोत के बराबर नहीं हुआ, जब राजा ने देखा कि शरीर में अब मांस नहीं रहा, तब वे स्वयं तुला पर चढ़ गये । राजा के तुला पर चढ़ते ही आकाश से पुष्पवृष्टि होने लगी, बाज और कपोत ने अपना रूप ग्रहण किया । इन दोनों ने राजा को सम्बोधन करके कहा " हम लोग आपकी धर्मपरीक्षा के लिये आये हुए थे । " पुनः उन दोनों ने राजा को आशीर्वाद देकर कहा–" संसार में आपकी कीर्ति चिरस्थायिनी होगी," और वे स्वर्ग को चले गये । राजा ने और भी अनेक धर्मकार्य करके यथासमय स्वर्गारोहण किया ।

(महाभारत, आ.)

ऊ

ऊधो=हिन्दी कवि, इनका जन्म सन् १७१६ में हुआ था, ये श्रृङ्गाररस की राग रागिनियाँ रचा करते थे ।

ऊरु=चाक्षुष मनु के दस पुत्रों में से एक पुत्र । चाक्षुष मनु की पत्नी नड्वला के गर्भ से दस पुत्र उत्पन्न हुए थे, जिनमें ऊरु भी एक थे ।

ऊर्ज=(१) सप्तर्षियों के अन्तर्गत एक ऋषि । ये द्वितीय मन्वन्तर में थे ।

(२) चन्द्रवंशी एक राजा, ये बृहद्रथ के वंश में उत्पन्न हुए थे । इनके पिता का नाम सत्यहित

था । ये मगध के राजा थे । प्रसिद्ध मगधराज जरासन्ध इन्हींका पौत्र था ।
(हरिवंश)

ऊर्जवहा=मिथिला के एक राजा । ये महाराज शुचि के पुत्र थे ।

ऊर्जस्वती=(१) यह दक्षप्रजापति की कन्या थी । धर्म से इसका विवाह हुआ था ।
(२) राजा प्रियव्रत की कन्या का नाम ।

ऊर्मिला=सीरध्वज जनक की औरसजात कन्या । यह लक्ष्मण को व्याही गयी थी ।

ऊषा=दैत्यराज बाण की कन्या । इसने अनिरुद्ध से अपना व्याह किया था । (देखो अनिरुद्ध)

ऋ

ऋक्ष=(१) भृगु के वंशज, और चौबीसवें द्वापर के व्यास । कोई कोई इन्हें वाल्मीकि भी कहते हैं।
(२) अजमीढ के पुत्र ।
(३) कुरुवंशज अक्रोधन के पुत्र ।
(४) गोंडवाना पर्वतमाला का नाम ।

ऋग्वेद=चार वेदों के अन्तर्गत एक वेद का नाम । आधुनिक पण्डितों के मत से ऋग्वेद ही प्रथम वेद है । इसके दस मण्डल हैं । उन दस मण्डलों में पचासी अनुवाक हैं । इन अनुवाकों में एक हज़ार अट्ठाईस सूक्त हैं । ऋग्वेद के प्रथम मण्डल में चौबीस, द्वितीय मण्डल में चार, तृतीय और चतुर्थ मण्डल में पाँच पाँच कर के दस, पञ्चम, षष्ठ और सप्तम मण्डल में छः छः कर के अट्ठारह, अष्टम मण्डल में दस, नवम मण्डल में सात, और दशम मण्डल में बारह अनुवाक हैं । एक एक मण्डल में सूक्त इस प्रकार हैं । प्रथम मण्डल में १९१, द्वितीय में ४३, तृतीय में ६२, चतुर्थ में ५८, पञ्चम में ८७, छठवें में ७५, सातवें में १०४, अष्टम में १०३, नवम में ११४, और दशम में १९१ सूक्त हैं । इसी प्रकार ऋग्वेद के श्लोक पाद शब्द यहाँ तक कि अकारान्त और नकारान्त हलन्त आदि शब्द भी गिन डाले गये हैं । श्रीमद्भागवत में लिखा है कि महर्षि वेदव्यास ने वेदों का विभाग करके अपने शिष्य पैल को ऋग्वेद प्रदान किया था । पैल ने ऋग्वेद को दो भागों में विभक्त कर के अपने शिष्य इन्द्रप्रमिति और वाष्कलि को दिया था । वाष्कलि ने अपनी पढ़ी संहिता को चार भागों में बाँटा था और उन चार भागों को अपने चार शिष्यों को दे दिया था, इन्द्रप्रमिति ने अपनी पढ़ी संहिता को अपने पुत्र माण्डूकेय को पढ़ाया । माण्डूकेय ने उस संहिता को अपने पुत्र शाकल्य और शिष्य वेदमित्र तथा सौभरि को पढ़ाया । शाकल्य ने और पाँच संहिताओं का सङ्कलन किया, और मुद्गल, गालव, वात्स्य, शालीय और शिशिर नामक पाँच शिष्यों में इसका प्रचार किया । इसी प्रकार ऋग्वेद अनेक शाखाओं में विभक्त हुआ । शौनक मुनि ने अपने चरण-व्यूह नामक ग्रन्थ में लिखा है, ऋग्वेद में आठ भेद या स्थान हैं । उनके नाम ये हैं चर्चा, श्रावक—चर्चक, श्रवणीय, पार, क्रमपाठ, क्रम-जटा, क्रमरथ, क्रमशट और क्रमदण्ड । ऋग्वेद की पाँच शाखाएँ हैं । आश्वलायनी, साङ्ख्यायनी शाकल्या, वाष्कला और माण्डूका । इसी प्रकार उसके मण्डल अध्याय सूक्त आदि का भी विवरण वहाँ किया गया है । चरणव्यूह के मत से ऋग्वेद के अनेक अध्याय इस समय प्राप्त नहीं होते । यद्यपि चरणव्यूह में ऋग्वेद की पाँच शाखाओं ही का उल्लेख पाया जाता है, तथापि अन्यान्य पुस्तकों से ऋग्वेद की २१ शाखाएँ होने का पता लगता है । हो सकता है कि प्रधान प्रधान शाखाएँ पाँच ही हों, और अन्यान्य उपशाखाएँ हों; किन्तु इस समय उन पाँच शाखाओं का भी पता नहीं चलता । इस समय शाकल ही की शाखाएं प्रचलित हैं । आज इसका पता लगाना बड़ा कठिन हो गया है कि प्रथम में ऋग्वेद का क्या आकार था, बीच में परिवर्तन होने पर उसका आकार कैसा हुआ और इस समय आकार कैसा है । यज्ञ की नियमावली और क्रिया-प्रणाली का विवरण कर, ऋग्वेद की दो शाखाएँ प्रणीत हुई थीं । वे ब्राह्मण नाम से प्रसिद्ध हैं । एक का नाम ऐतरेय और दूसरे का नाम कौषी-तकी या साङ्ख्यायन है । ऐतरेय ऋषि ने ऐतरेय ब्राह्मण का, और कुषीतक ऋषि ने कौषीतक ब्राह्मण का सङ्कलन किया था ।

अधिकांश आधुनिक पण्डितों का मत है कि

वैदिक युग (Vedic Age) नामक एक समय था, उसी समय वैदिक सूक्त बनाये गये हैं। उसी समय सुदास, यदु, तुर्वसु आदि ऋग्वेदोक्त राजा वर्तमान थे। उसी समय आर्य और अनार्यों में युद्ध हुआ था। उसी समय यज्ञों की सृष्टि हुई तथा उसी समय से वैदिक ऋचाएँ बनायी जाने लगीं। परन्तु शास्त्रों की आलोचना या स्वतन्त्र विचार करने से वैदिक युग का कहीं पता नहीं चलता। एक मन्वन्तर में कितने वेदव्यास उत्पन्न हुए हैं, कितने बार वेदों का सङ्कलन हुआ है, कितने इन्द्र, उपेन्द्र, सुदास, यदु, तुर्वसु आदि उत्पन्न और विलीन हुए, इसका पता लगाना बड़ा कठिन है। वेदव्यास ने वेद का विभाग या सङ्कलन किया, इसका तात्पर्य यही है कि वेदव्यास के पहले देव-उपासना के जो मन्त्र जहाँ प्रचलित थे, उन मन्त्रों का वेदव्यास ने संग्रहमात्र किया था। ऋग्वेद के ऋषियों में अगस्त्य और अत्रि का नाम पाया जाता है और विश्वामित्र तथा दिवोदास का भी नाम पाया जाता है। वैवस्वतमनु, विवस्वान्, आदित्य, प्रजापति, भर्ग, सोम प्रभृति भी मन्त्रद्रष्टा माने ही जाते हैं और प्रतर्दन, परुच्छद, शुनःशेफ, देवरात अष्टक आदि भी मन्त्रद्रष्टा ही हैं। प्रथमोक्त ऋषि और शेषोक्त ऋषियों में बहुत काल का व्यवधान है। ये एक समय के नहीं हैं। अधिक क्या कहा जाय, इनमें बहुत से ऋषि दूसरे मन्वन्तर में उत्पन्न हुए थे। फिर अब वैदिक युग किसको कहा जाय। वेदव्यास के बहुत पहले के युग को वैदिक युग कैसे कहें?

(भारतवर्षीय इतिहास)

ऋच=एक राजकुमार, ये पुरुवंशज सुनीत के वंशज थे।

ऋचा=ऋग्वेद का मन्त्र, जो दीक्षित होता के द्वारा यज्ञों में पढ़ी जाती हैं।

ऋचीक=और्व नामक विख्यात ऋषि के पुत्र। इन की स्त्री का नाम सत्यवती था। इसी सत्यवती के गर्भ से ऋचिक के तीन पुत्र उत्पन्न हुए थे। उनके नाम ये हैं जमदग्नि, शुनःशेफ और शुनःपुच्छ। क्षत्रियों का नाश करने के लिये इन्होंने बड़ी चेष्टा से समग्र धनुर्वेद का अध्ययन किया था। ऋचीक ने अपने वंश की रक्षा के लिये महाराज कुशिक के पुत्र गाधिराज की कन्या को व्याहा था। किसी वंशज के उत्पन्न न होने के कारण गाधिराज की पत्नी बहुत चिन्तित रहा करती थीं। ऋचीक ने अपनी स्त्री तथा अपने ससुर की स्त्री को पुत्र उत्पन्न होने के लिये ब्राह्म और क्षात्र नामक दो चरु प्रस्तुत किये थे। गाधिराज की स्त्री ने उत्तम पुत्र उत्पन्न होने की इच्छा से अपनी कन्या की सम्मति ले कर ब्राह्म चरु खा लिया और उनकी कन्या—ऋचीक की स्त्री ने क्षात्र चरु खा लिया था। पीछे जब ऋचीक की स्त्री को क्षात्र चरु का प्रभाव मालूम हुआ, तब उन्होंने अपने पति से प्रार्थना की कि हमारे पुत्र में क्षत्रियोचित गुण न हो कर पौत्र में हों। इसी चरु के प्रभाव से ऋचीक की स्त्री ने जमदग्नि नामक एक तेजस्वी पुत्र जना था। जमदग्नि के पुत्र परशुराम थे। अपनी पितामही के वर के अनुसार राम ने क्षात्रधर्म का अवलम्बन कर समग्र धनुर्वेद का अध्ययन किया था। जामाता के चरु के प्रभाव से गाधिराज की स्त्री ने ब्रह्मतेजयुक्त विश्वामित्र नामक पुत्र उत्पन्न किया था और पीछे से विश्वामित्र ने कठोर तपस्या द्वारा ब्राह्मणत्व लाभ किया था।

(महाभारत, अनु. प.)

ऋचीय=पुरुवंशज रौद्रश्व के पुत्रों में से एक।

ऋजिस्वान्=एक राजा का नाम। इनका उल्लेख ऋग्वेद में हुआ है। ये इन्द्र के मित्र थे और इन्होंने दस्यु कृष्ण को अंशुमती नदी के तीर पर जीता था।

ऋजुदेश=देवकी के गर्भ से उत्पन्न वसुदेव के एक पुत्र का नाम।

ऋज्रस्व=यह नाम ऋग्वेद में एक पुरुष का मिलता है। इसके निठुर पिता ने इसे अन्धा कर दिया था क्योंकि इसने एक सौ एक भेड़ियों को मार कर एक मादा भेड़िया को खाने को दे दिया था। तब उस कृतज्ञ मादा भेड़िये ने अश्विनी कुमारों की प्रार्थना कर उसे आँखें दिलायी थीं।

ऋण=अट्ठारहवें द्वापर के व्यास।

ऋत=(१) सत्य, (२) धर्म के पुत्र का नाम, दक्ष की एक पुत्री के गर्भ से इनकी उत्पत्ति हुई थी (३) मिथिला के एक राजा का नाम, जो विजय के पुत्र थे।

ऋतध्वज=(१) भागवत में लिखी गणना के अनुसार एकादश रुद्रों में से एक रुद्र।

(२) प्रतर्दन राजा की एक उपाधि, जिसका अर्थ "सत्य की ध्वजा वाला" है। राजा प्रतर्दन सत्य के अत्यन्त पक्षपाती थे।

ऋतिधामा=मत्स्यपुराण की गणना के अनुसार तेरहवें मन्वन्तर के मनु।

ऋतु=बारहवें मन्वन्तर के मनु।

ऋतुजित्=मिथिला के अज्ञात नामक एक राजा के पुत्र का नाम।

ऋतुधामन=बारहवें मन्वन्तर के इन्द्र का नाम।

ऋतुपर्ण=इक्ष्वाकुवंशोद्भव प्रसिद्ध राजा। ऋतुपर्ण की राजधानी अयोध्या में थी और ये अयुताश्व के पुत्र थे। कलि के कोप से राज्य भ्रष्ट होकर राजा नल ने इन्हीं के यहाँ अश्वाध्यक्ष का काम कर के अपने दुर्दिन काटे थे। ऋतुपर्ण के यहाँ अपना असली नाम छिपा कर नल ने अपना वाहुक नाम बताया था। वाहुक को राजा ऋतुपर्ण मासिक १० हज़ार रुपये देते थे। वाहुक राजा ऋतुपर्ण को अश्वविद्या की शिक्षा देते थे, और उनसे स्वयं जूए की शिक्षा ग्रहण करते थे। द्यूतशिक्षा में निपुणता प्राप्त करने से राजा नल के शरीर से कलि निकल कर भाग गया। जिस प्रकार द्यूतविद्या में ऋतुपर्ण निपुण थे उसी प्रकार अश्वविद्या में नल थे। अतएव परस्पर ये दोनों बहुत ही शीघ्र दोनों शिक्षणीय विद्याओं में निपुण हो गये। नल के राज्यच्युत होने पर विदर्भराज ने उनकी विपत्ति की ख़बर पा कर जामाता और कन्या को ढूँढ़ने के लिये चारों ओर दूत भेजे थे। उनके भेजे हुए दूतों में से सुदेव नामक ब्राह्मण ने चेदिराज के राजभवन में राजकन्या सुनन्दा की दासी के रूप में दमयन्ती को देखा। दमयन्ती का परिचय पा कर चेदिराज ने अपनी कन्या के समान दमयन्ती को राजा भीम के समीप भेज दिया। दमयन्ती ने भी पिता के घर जा कर, नल को ढूँढ़ने के लिये दूत भेजे। उनमें से एक ने आ कर समाचार दिया कि अयोध्या में राजा ऋतुपर्ण के यहाँ नल अश्वाध्यक्ष के काम पर नियुक्त हैं। दमयन्ती ने पिता से छिप कर माता की सम्मति से, दमयन्ती के पुनः स्वयम्बर होने की बात राजा ऋतुपर्ण को लिख कर भेज दी और उस स्वयम्बर में ऋतुपर्ण को आने के लिये निमन्त्रण भी भेजा। ऋतुपर्ण अश्वाध्यक्ष बाहुक की सहायता से बहुत शीघ्र विदर्भराज भवन में उपस्थित हुए। विदर्भराज भीम ने ऋतुपर्ण का यथोचित सत्कार किया। विदर्भराज भीम दमयन्ती के पुनः स्वयम्बर अथवा ऋतुपर्ण को निमन्त्रण भेजने की कुछ भी बात नहीं जानते थे। ऋतुपर्ण स्वयम्बर का कुछ भी सामान न देख कर, विस्मित और चिन्तित हुए। भीम ने राजा ऋतुपर्ण से उनके आने का कारण पूँछा, ऋतुपर्ण ने अपने मन के असली भाव को छिपा कर कहा कि आपसे भेंट करने ही को मैं आया हूँ। इस उत्तर से भीम का चित्त सन्तुष्ट नहीं हुआ तथापि ऋतुपर्ण के रहने भोजन आदि के प्रबन्ध में वे लग गये। उधर दमयन्ती ने केशिनी नामक दासी के द्वारा नल को भीतर बुलवाया। उसी समय राजा नल का भीम और ऋतुपर्ण के साथ परिचय हुआ। राजभवन में आनन्द की तरङ्गें उठने लगीं। ऋतुपर्ण अपने राज्य को लौट आये। राजा नल भी अपनी स्त्री दमयन्ती को साथ लेकर अपने राज्य में गये और वहाँ अपने राज्य पर प्रतिष्ठित हुए। (महाभारत)

ऋतेय=पुरुवंशी राजा रौद्रश्व के दस पुत्रों में से ज्येष्ठ पुत्र का नाम।

ऋभु=(१) एक प्राचीन वैदिक देवता। इनकी अब पूजा नहीं होती।

(२) ब्रह्मा की नवीं या कौमार सृष्टि में से एक। ब्रह्मा ने इनसे सृष्टि करने के लिये कहा था परन्तु इन्होंने सृष्टि नहीं की अतएव इनकी कुमार संज्ञा है। ये ब्रह्मा के पुत्र होने के कारण पवित्र और सच्चरित्र थे और इनको सत्य ज्ञान प्राप्त था। पुलस्त्य पुत्र निदाघ इनके शिष्य थे और ऋभु ने

इनको सत्य ज्ञान का उपदेश दिया था। पुलस्त्य का आश्रम देविका नदी के तट पर, बसे हुए वीर-नगर नामक नगर में था और निदाघ भी वहीं नदी के समीप एक उपवन में रहते थे। जब एक हज़ार वर्ष बीत गये, तब ऋभु पुलस्त्य से मिलने के लिये वीर नगर गये और वहाँ पर उन्होंने अपने शिष्य को अद्वैत सिद्धान्त का तत्त्व समझाया। एक हज़ार वर्ष के बाद फिर ऋभु अपने शिष्य के पास गये और उन्होंने अपने शिष्य को ईश्वरीय ज्ञान का उपदेश दिया।

ऋभुगण=(१) सुधन्वा के पुत्रों का नाम, जो अपनी कारीगरी के कारण प्रसिद्ध हुए और इनका देवताओं ने सम्मान किया। कहते हैं-इन्होंने इन्द्र के रथ और घोड़े बनाये थे और अपने पिता को वृद्ध से युवा किया था। यह भी कहा जाता है कि इनके बनाये कुछ कल्पित मन्त्र भी हैं। ये मनुष्य होकर अपनी बुद्धिमत्ता से देवता हो गये थे।

(२) छठवें मन्वन्तर के देवताओं की एक श्रेणि।

ऋषभ=(१) इनके पिता का नाम राजा नाभि था और इनकी माता का नाम महारानी मेरु था। ऋषभ के सौ लड़के हुए जिनमें सबसे बड़े का नाम भरत था। ऋषभ ने निरपेक्ष हो कर, बुद्धिमत्ता और न्यायपूर्वक राज्य किया और अनेक प्रसिद्ध प्रसिद्ध यज्ञ किये। लिखा है इन्हों ने राज्य अपने पुत्र भरत को दे कर वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण किया, और कठिन तपस्या से अपने शरीर को सुखा दिया, यहाँ तक कि मुँह में कंकड़ी रख कर ये मर गये। विल्सन साहब कहते हैं कि इन्होंने मुख में कंकड़ी इस कारण रखी थी कि वे कुछ खायँ नहीं। श्रीमद्भागवत में भी इससे मिलती जुलती कथा लिखी हुई है और अधिक यह लिखी है कि ऋषभ देव ने भारत-वर्ष के पश्चिमी भाग में जैनधर्म का प्रचार किया। प्रचलित जैनधर्म में ऋषभ देव उनके प्रथम तीर्थङ्कर कहे जाते हैं।

(२) दूसरे मन्वन्तर के सप्तर्षियों में से एक।

(३) राजा कुशाग्र के पुत्र।

(४) मेरु के उत्तर वाले एक पर्वत का नाम।

(५) लङ्का पर आक्रमण करने वाली रामचन्द्र की सेना के एक सेनापति का नाम। इन्द्रजीत ने इनको अपनी माया से बड़ा तङ्ग किया था, यहाँ तक कि रणक्षेत्र में इनको वह मृतक दशा में छोड़ गया। अन्त में हनूमान्‌जी की ऋषभ पर्वत से लायी हुई सञ्जीवनी बूटी से यह पुनः जीवित हुए।

(६) कैलास के शिखर पर के एक सुनहले पर्वत का नाम। जिस पर चार बूटियाँ उत्पन्न होती हैं जिनके प्रभाव से मरा हुआ जी जाता है।

ऋषि=(१) बड़े विद्वान्। सात ऋषि हैं जो प्रजा-पति के समान समझे जाते हैं। एक ऋषि आदित्य गन्धर्व और अप्सरा प्रतिमास में सूर्य के साथ रहते हैं। विष्णुपुराण में तीन प्रकार के ऋषि लिखे हैं। राजर्षि, देवर्षि और ब्रह्मर्षि। राजर्षि जैसे जनक, देवर्षि जैसे नारद और ब्रह्मर्षि जैसे वशिष्ठ। (ऋष् धातु का अर्थ देखना है।)

ऋषिका, या, ऋषिकुल्या=एक नदी का नाम जो महेन्द्र पर्वत से निकल कर गञ्जम के पास समुद्र में गिरती है।

ऋषिकस=मनुष्यों की एक जाति। रामायण में लिखा है कि यह जाति भारत के पश्चिम एवं दक्षिण प्रान्त में रहती है, इसी जाति से अर्जुन ने ८ घोड़े लिये थे।

ऋष्यमूक=दक्षिण के एक पर्वत का नाम, यहीं पर पम्पासर था। यहीं पर मतङ्ग मुनि का आश्रम था। सुग्रीव इसके राजा थे और अनेक वानर भी यहाँ ही रहा करते थे। रामचन्द्र ने वनवास के समय इसी पर्वत पर चौमासा बिताया था।

ऋष्यश्रृङ्ग=तपःप्रभावसम्पन्न एक ऋषि। महाराज दशरथ की कन्या शान्ता इनको ब्याही गयी थी। इन्होंने महाराज दशरथ को पुत्रेष्टि यज्ञ कराया था जिस यज्ञ के प्रभाव से राम आदि चार पुत्र दशरथ के हुए थे। ये महर्षि विभाण्डक के पुत्र थे। एक दिन स्वर्गीय अप्सरा उर्वशी को देख कर महर्षि विभाण्डक का जल में रेतःपात हुआ, उन्हींके आश्रम में रहने वाली एक मृगी ने उस रेत को जल के साथ पी लिया था। इससे उस मृगी के गर्भ रहा और उस गर्भ से यथासमय एक पुत्र उत्पन्न हुआ। वह मृगी शापभ्रष्ट देव-

कन्या थी। हरिणी के गर्भ से उत्पन्न होने के कारण उस बालक के सींग भी थे। इसी बालक का नाम ऋष्यशृङ्ग था। ये आश्रम में रह कर पिता ही के द्वारा लालित पालित हुए थे। वे अपने पिता को छोड़ और किसी को जानते भी नहीं थे। उन्होंने मुख्य और गौण दोनों प्रकार के ब्रह्मचर्य का पालन किया था। एक समय अङ्गदेश के राजा रोमपाद के राज्य में अवर्षण हुआ, उन्होंने अपने राज्य के ब्राह्मणों को बुला कर इस विषय में उनसे सम्मति माँगी। ब्राह्मणों ने बताया कि ऋष्यशृङ्ग मुनि को बुला कर यज्ञ कराने से, अवर्षण दूर हो जायगा। परन्तु ऋष्यशृङ्ग का बुलाना कुछ सहज काम नहीं है। तब राजा ने वेश्याओं को भेज कर उन के हाव भाव से मुग्ध करा कर, ऋष्यशृङ्ग को बुलवाना निश्चित किया। यथासमय वेश्याएँ भेजी गयीं। उस समय आश्रम में विभाण्डक मुनि नहीं थे, अतएव अच्छे अच्छे फल लड्डू खिला एवं आलिङ्गन आदि के द्वारा ऋष्यशृङ्ग को वेश्याओं ने प्रसन्न किया। विभाण्डक मुनि के आने के डर से वेश्याओं ने आश्रम परित्याग किया। ऋष्यशृङ्ग का मन इधर चञ्चल हुआ। ये वेश्याओं की बातें सोचा करते थे। उन्होंने पहले जहाँ वेश्याओं को देखा था, दूसरे दिन भी वे वहाँ गये, और उनको वहाँ देख कर बड़े प्रसन्न हुए। वेश्याओं ने अपने साथ चलने के लिये ऋष्यशृङ्ग को कहा। ऋष्यशृङ्ग बड़ी प्रसन्नता से चलने को तैयार हुए और निश्चित समय पर चल कर वे अङ्गदेश में राजा रोमपाद के समीप पहुँचे। ऋष्यशृङ्ग के अङ्गदेश में उपस्थित होते ही, वृष्टि होने लगी। इधर विभाण्डक मुनि अपने योगबल से सब बातें जान कर मारे क्रोध के अधीर हो गये और वे स्वयं अङ्गदेश में उपस्थित हुए। उस समय राजा रोमपाद ने विभाण्डक मुनि के क्रोध से बचने के लिये अपने मित्र अयोध्या के राजा दशरथ की कन्या शान्ता ऋष्यशृङ्ग मुनि को व्याह दी। दशरथ से शान्ता को राजा रोमपाद ने पोष्यपुत्री रूप से ग्रहण किया था, विभाण्डक मुनि के आते ही नगरवासियों ने शोर मचाया कि इस राज्य के राजा ऋष्यशृङ्ग हैं। विभाण्डक मुनि पुत्र और पुत्रवधू को देखकर अपने आश्रम को लौट गये। (रामायण)

ए

एकचक्रा=(१) एक प्रसिद्ध दानव। दनु और कश्यप से इस की उत्पत्ति हुई थी।

(२) एक नगर का नाम जिसमें भीम उनकी माता और उनके भाई व्यास के कहने से आ कर रहे थे। वहां पर बहुत दिनों तक एक ब्राह्मण के घर में ये लोग रहे। यह वही नगरी है जहाँ पर भीम ने मनुष्यभक्षी बक राक्षस को मारा था।

एकदन्त=एक दाँत, गणेश की उपाधि है।

एकपर्णा या एकपाटला=हिमालयराज की स्त्री मैना की दो लड़कियों के नाम। इन दोनों ने इतनी कठिन तपस्या की कि वैसी तपस्या आज तक किसी ने नहीं की। इनकी तपस्या से स्थावर जङ्गम हिलने लग गये थे। एक दिन रात्रि में वह एक पत्ता खा कर रहती थी। इसी कारण उसका नाम एकपर्णा पड़ा और दूसरी पाटल पुष्प खा कर रहती थी इस कारण उसका नाम एकपाटला पड़ा। एकपर्णा का व्याह योगीश्वर असित देवल से हुआ था और एकपाटला का व्याह जैगीषव्य मुनि से हुआ था।

एकलव्य=निषादराज हिरण्यधनु के पुत्र और द्रोणाचार्य के शिष्य। एक समय पाण्डव और कौरवगुरु द्रोणाचार्य के आदेश से अहेर खेलने वन में गये थे। अहेर ढूँढने के लिये वे वन में इधर उधर घूमते थे। उसी समय एक कुत्ता एकलव्य को काला कम्बल ओढ़े देख चिल्ला रहा था। एकलव्य ने उस कुत्ते के मुख में ७ बाण मार कर उसका बोलना बन्द कर दिया था। वह कुकुर पाण्डवों के समीप आया, उसे देख कर वे बाण मारने वाले की प्रशंसा करने लगे। अनन्तर बाण चलाने वाले को ढूँढते ढूँढते पाण्डव एकलव्य के पास पहुँचे, और वह द्रोणाचार्य का शिष्य है यह उससे सुन कर, उनके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। पाण्डव लौट कर राजधानी में आये। अर्जुन ने विनीत भाव से गुरु द्रोणाचार्य

से जा कर पूँछा "गुरो ! आपने तो प्रतिज्ञा की थी कि मुझसे बढ़कर दूसरा कोई शिष्य नहीं होगा, परन्तु आपने तो एक भील को ऐसे हथकण्डे सिखाये कि उसका स्वप्न भी आपकी शिक्षा में मुझे नहीं आया। द्रोणाचार्य ने बहुत सोचा; परन्तु एकलव्य की कुछ भी बात उन्हें स्मरण नहीं आयी। द्रोणाचार्य अर्जुन को साथ ले कर एकलव्य के यहाँ उपस्थित हुए। गुरु को आते हुए देख कर, एकलव्य ने प्रणाम किया। फिर द्रोणाचार्य के पूँछने पर उसने कहा कि आपने मुझे म्लेच्छ जाति समझ कर तिरस्कार पूर्वक धनुर्विद्या की शिक्षा देने का निषेध किया था। इससे मुझे बड़ा कष्ट हुआ और यहाँ आ कर मैंने आपकी एक मृत्तिका की मूर्ति बनायी तथा उसीको अपना गुरु मान कर विधि से मैं अस्त्रविद्या सिखने लगा। यह सुन द्रोणाचार्य बोले—"वीर ! यदि तुम सचमुच हमारे शिष्य हो तो मुझे गुरुदक्षिणा दो।" एकलव्य प्रसन्न होकर गुरुदक्षिणा देने को प्रस्तुत हुआ। द्रोणाचार्य बोले—"तुम अपने दहिने हाथ का अँगूठा काट कर मुझे गुरुदक्षिणा में देदो।" एकलव्य ने वैसा ही किया। द्रोणाचार्य भी अपने घर लौट आये। तदनन्तर दूसरी अंगुली के द्वारा एकलव्य ने बाण चला कर देखा तो उसे विदित हुआ उसके बाण की गति पहले की अपेक्षा इस समय घट गयी है, द्रोणाचार्य ने इस प्रकार हृदय की कठोरता क्रूरता तथा अन्याय दिखा कर अपने शिष्य अर्जुन की श्रेष्ठता सम्पादन की थी। (महाभारत)

एकविंशा=आचार्यों के एक संग्रह का नाम, जो ब्रह्मा के उत्तरीय मुख से उत्पन्न हुआ था।

एकादशाह=मृतकक्रिया, परिवार के किसी के मरने पर दश दिन तक लोग अशौच मनाते हैं, और ग्यारहवें दिन शुद्ध होते हैं। वर्णभेद से मृतक शौच की अवधि में तारतम्य है।

एकाष्टका=प्रजापति की कन्या, जो कि अपनी घोर तपस्या के कारण क्षोम और इन्द्र की माता बनी। पुस्तकों में लिखा है कि इन्द्र काश्यप और दाक्षायणी के पुत्र हैं।

एकोद्दिष्ट=मासिक श्राद्ध। यह एक ही व्यक्ति के उद्देश्य से किया जाता है। मृत व्यक्ति का या तो एकोद्दिष्ट (मासिकश्राद्ध) अथवा क्षयाहश्राद्ध किया जाता है।

एलापत्र=एक बलिष्ठ सर्प, इसके अनेक फन हैं। यह कद्रू का पुत्र था।

ऐ

ऐतरेय आरण्यक=वेद के ब्राह्मण भाग का उपसंहार। सायणाचार्य कहते हैं कि याग आदि करने के लिये जिस प्रकार गृहस्थों को ब्राह्मण भाग की आवश्यकता है उसी प्रकार वानप्रस्थों के लिये आरण्यक भाग की आवश्यकता है। ब्रह्मज्ञान प्राप्त करने के लिये किन किन आचारों का पालन करना आवश्यक है, ब्रह्म क्या है आदि विषय आरण्यक में लिखे गये हैं। महर्षि मनु कहते हैं कि वेदाध्ययन समाप्त कर के आरण्यक का अध्ययन करना चाहिये। याज्ञवल्क्य कहते हैं कि जो योगाभ्यास करना चाहें उन्हें आरण्यक और हमारा बनाया योगशास्त्र पढ़ना चाहिये। प्रत्येक ब्राह्मण का एक आरण्यक भी है। ऋग्वेद के ऐतरेय ब्राह्मण का उपसंहार भाग ऐतरेय आरण्यक है। ऐतरेय आरण्यक में ऋग्वेद के प्रत्येक ऋषियों का परिचय दिया गया है और ऋग्वेद के पद पदांश शब्द शब्दांश आदि की संख्या इसमें लिखी गयी है।

ऐतरेय ब्राह्मण=वेदों के उपसंहार भाग को ब्राह्मण कहते हैं। वैदिक मन्त्रों का किस प्रकार व्यवहार करना चाहिये प्रधानतः ब्राह्मणों में इसीका विवरण पाया जाता है। कर्मकाण्ड के उपदेश के व्याज से ब्राह्मणों में अन्यान्य बातें भी लिखी गयी हैं। प्रसङ्ग वश ब्राह्मणों में सृष्टितत्त्व का भी वर्णन किया गया है। अनेक पौराणिक कथाओं का मूल ब्राह्मणों में पाया जाता है। बलिदान प्रथा का भी ब्राह्मणों से परिचय मिलता है। यह ऋग्वेद का ब्राह्मण है। (देखो ऋग्वेद)।

ऐरावत=देवराज इन्द्र के हाथी का नाम, समुद्र-मन्थन के समय यह समुद्र से निकला था।

औ

और्व=एक विख्यात प्राचीन आर्य ऋषि। ये पहले भृगुवंशी क्षत्रियों के यजमान थे, परन्तु किसी कारण से इन पुरोहित यजमानों में विरोध हो गया। क्षत्रियों का अत्याचार यहाँ तक बढ़ा कि वे भृगुवंशीय स्त्रियों का गर्भ छेदन कर के गर्भस्थ बालकों का नाश करने लगे। इस समय एक भृगुवंशीय स्त्री अपने गर्भ की रक्षा के लिये किसी पर्वत में छिप कर रहा करती थी। वहाँ भी इन शत्रुओं ने इस स्त्री का पीछा किया। गर्भ भार से मन्दगमना वह स्त्री आत्मरक्षा के लिये दौड़ी। दौड़ने से उसकी जङ्घाओं को फोड़ कर अग्नि के समान तेजस्वी पुत्र निःसृत हुआ। ऊरू से निकलने के कारण इस पुत्र का नाम और्व पड़ा था। और्व मारे क्रोध के सम्पूर्ण पृथिवीमण्डल को भस्म करने के लिये उद्यत हुए, परन्तु उनके पुरखाओं ने आ कर उनको रोका। और्व ने अपने पूर्वपुरुषों के कहने से पृथिवी को भस्म करने का विचार छोड़ दिया और अपने क्रोध को समुद्र में डाल दिया। इसी कारण बड़वानल को और्वानल भी कहते हैं। (महाभारत)

औलूक्य=वैशेषिकदर्शन का नामान्तर। वैशेषिकदर्शनकार का नाम उलूक था। इसी कारण उनका बनाया दर्शन औलूक्यदर्शन के नाम से प्रसिद्ध है। (देखो उलूक)।

औशनः=ऋषिविशेष। ये दैत्यगुरु प्रसिद्ध शुक्राचार्य के पिता थे। शुक्राचार्य का दूसरा नाम उशना था। भृगुवंशी औशन ने ऋषिमण्डली के सम्मुख जिन शास्त्र तत्त्वों का वर्णन किया था, उनके पुत्र उशना ने उन्हीं तत्त्वों का संग्रह करके उशनःसंहिता नामक एक संहिता बनायी थी। जो आज भी प्रसिद्ध है।

क

कंस=भोजवंशीय नृपतिविशेष। ये मथुरा के राजा उग्रसेन के क्षेत्रज पुत्र थे और मगधराज जरासन्ध के जामाता थे। जरासन्ध की अस्ति और प्राप्ति नामक दो कन्याओं का पाणिग्रहण इन्होंने किया था। दानवराज द्रुमिल के औरस और उग्रसेन की पत्नी के गर्भ से कंस की उत्पत्ति हुई थी। अपने ससुर जरासन्ध की सहायता से कंस अपने पिता को राज्य च्युत करके स्वयं राजा बना था। इससे पिता माता बान्धव आदि सभी अप्रसन्न रहा करते थे। इसने अपने चाचा की कन्या देवकी को वसुदेव के साथ ब्याहा था। विवाह के समय में देववाणी हुई कि इसके आठवें गर्भ से उत्पन्न पुत्र तुमको (कंस को) मारेगा, इस कारण कंसने वसुदेव और देवकी को क़ैद कर लिया। कारागार में इनके जो लड़के होते थे कंस उनको मरवा दिया करता था। वसुदेव भादों की कृष्णा अष्टमी की आधी रात को देवकी के आठवें गर्भ से उत्पन्न श्रीकृष्ण को छिप कर गोकुल में गोपराज नन्द के यहाँ रख आये और उसी रात्रि को नन्द की स्त्री यशोदा के गर्भ से एक पुत्री उत्पन्न हुई थी, वह कन्या योगमाया थी, उस रात्रि को योगमाया की माया से गोकुल में सभी अचेतन पड़े थे। इस कारण वसुदेव को मन चाहा काम करने का अवसर मिल गया। श्रीकृष्ण को वहाँ रख कर तथा कन्या को ले कर वसुदेव मथुरा लौट आये। इधर कंस को मालूम हुआ कि देवकी के आठवें गर्भ से कन्या उत्पन्न हुई है। उसने उस कन्या को पत्थर पर पटक कर मार डालने की आज्ञा दी। पत्थर पर पटकते ही कन्या आकाश में उड़ गयी और वहाँ से वह बोली, "दुर्बल! तुमको मारनेवाला उत्पन्न हो गया।" यह सुन कर कंस ने वसुदेव और देवकी को छोड़ दिया और श्रीकृष्ण का पता लगाने के लिये चारो ओर अपने दूत भेजे। उन दूतों को श्रीकृष्ण ने मार डाला। अन्त में कंस ने धनुर्यज्ञ का स्वांग रचकर श्रीकृष्ण को मथुरा बुलवाया था, परन्तु कंस की सब चालाकियाँ पोली निकलीं और कंस श्रीकृष्ण के हाथ मारा गया। (हरिवंश)

कंसा, कंसावती=उग्रसेन की कन्या।

ककुत्स्थ=सूर्यवंशीय विख्यात राजा। मनु के पुत्र इक्ष्वाकु, इक्ष्वाकु के पुत्र शशाद और उनके पुत्र पुरञ्जय थे। ये ही पुरञ्जय ककुत्स्थनाम से संसार में प्रसिद्ध हुए। पहले देवता और दानवों का भय-

कूर युद्ध हुआ था । उस युद्ध में परास्त होकर देवों ने पुरञ्जय की सहायता माँगी । पुरञ्जय ने कहा कि यदि देवराज इन्द्र हमारा वाहन बनें तो हम दैत्यों के साथ संग्राम कर सकते हैं। इन्द्र ने पहले वाहन बनने के प्रस्ताव को अनुचित समझ कर निषेध किया था, परन्तु विष्णु के कहने से पुनः उन्होंने स्वीकार किया । इन्द्र एक बड़े भारी वृषभ का रूप धारण कर उपस्थित हुए । पुरञ्जय वृषरूपधारी इन्द्र के ककुद् पर बैठ कर, दैत्यों के साथ युद्ध करने लगे । घोर युद्ध होने के पश्चात् दैत्य परास्त हुए। बहुत से दैत्य मारे गये, और बहुत से पाताल में भाग कर चले गये । वृष के ककुद् पर बैठने के कारण पुरञ्जय का नाम ककुत्स्थ पड़ा । इनके वंशज काकुत्स्थ कहे जाते हैं । (श्रीमद्भागवत)

ककुद्=दक्षप्रजापति की एक कन्या का नाम जो धर्म के साथ ब्याही गयी थी ।

ककुद्मी=रैवत का नाम । ये ब्रह्मलोक में यह पूछने गये थे कि उनकी लड़की के योग्य वर कहाँ से मिले ।

ककुभ=ओड़िसा के एक पर्वत का नाम ।

कङ्क=(१) उग्रसेन के एक पुत्र का नाम ।

(२) अज्ञातवास के समय पाण्डवों ने अपने अपने नाम बदल कर विराटनगर में आश्रय लिया था । उस समय युधिष्ठिर का नाम कङ्क रखा गया था । कङ्क विराट के सभासद् थे ।

कक्षेप=पुरुवंशज रौद्रश्व के पुत्र का नाम ।

कच=पहले संसार पर आधिपत्य विस्तार करने के लिये देवता और असुरों में युद्ध हुआ था । युद्ध में जो असुर मारे जाते, उनको दैत्यगुरु शुक्राचार्य सञ्जीवनी मन्त्र के द्वारा जीवित कर लिया करते थे । जीवन प्राप्त करके दैत्य पुनः देवों से लड़ने लग जाते थे । परन्तु जो देवता मारे जाते थे वे जीवित नहीं होते थे । इस कारण मृतसञ्जीवनी विद्या प्राप्त करने के लिये देवताओं ने बृहस्पति के पुत्र कच को दैत्यगुरु शुक्राचार्य के समीप भेजा । कच शुक्राचार्य के शिष्य हुए और बहुत शीघ्र देवयानी से उनका बन्धुत्व हो गया । कच का उद्देश्य जान कर दैत्यों ने उन्हें मार दिया । परन्तु देवयानी के कहने से शुक्राचार्य ने कच को जीवित कर दिया। कुछ दिन बीतने पर दैत्यों ने पुनः कच का वध किया, देवयानी के अनुरोध से शुक्राचार्य ने अब की बार भी कच को जीवित कर दिया । एक दिन देवयानी ने कच को फूल ले आने के लिये भेजा । मार्ग में दैत्यों ने मिल कर कच को मार कर, भस्म कर दिया और भस्म को मांस में मिला कर शुक्राचार्य को पिला दिया। कच के आने में विलम्ब होते देख देवयानी पिता के पास जा कर कच के लिये रोने लगी । शुक्राचार्य बोले, अवश्य ही कच को दैत्यों ने मार डाला होगा, मैं दो बार कच को जिला चुका हूँ । अब उसको जिलाना भी व्यर्थ है क्योंकि अवसर पा कर दैत्य उसे मार ही डालेंगे, अतएव कच की बातों को व्यर्थ सोचकर, तुम्हें दुःख उठाना उचित नहीं है । परन्तु शुक्राचार्य के समझाने का कुछ फल न हुआ । अन्त में पुत्री के बहुत कहने पर, शुक्राचार्य सञ्जीवनी मन्त्र के बल से कच को बुलाने लगे, उनके पेट में से कच ने उत्तर दिया । शुक्राचार्य ने उस से, अपने पेट में जाने का कारण पूछा । वह कहने लगा—"आपकी दया से मेरी स्मृतिशक्ति बलवती हो गयी है । इसी कारण मुझे पहले की बातें स्मरण हैं और मैं अपने पूर्व जन्म की तपस्या के क्षीण न होने के कारण इस कष्ट को भी सह रहा हूँ । असुरों ने मुझको जला दिया है और उस भस्म को मदिरा में मिला कर, आपको पिला दिया है ।" शुक्र बोले—"देवयानी ! अब तो कच के प्राण नहीं बच सकते, क्योंकि वह हमारे पेट में चला गया है । यदि उसकी रक्षा की जाय तो मैं मर जाऊँगा ।" देवयानी बोली—"कच के मरने पर मैं भी मर जाऊँगी, और आपके न रहने से भी मेरी वही दशा होगी । इस समय आप जो अच्छा समझें वही करें ।" शुक्राचार्य कुछ देर तक सोचते रहे, अन्त में उन्होंने कहा—"कच ! देवयानी तुमसे अत्यन्त स्नेह रखती है । इस कारण मैं तुमको सञ्जीवनी विद्या का उपदेश करूँगा । जिस समय तुम मेरे शरीर से निकलोगे उस समय अवश्य ही मेरा प्राणवियोग होगा । अतएव मैं अनुरोध करता हूँ कि तुम अवश्य ही मेरे उदर से निकल कर, मुझे जीवित कर देना । सावधान इस धर्म के प्रतिपालन

करने से विमुख न होना।" कचने गुरु की आज्ञा मानने की प्रतिज्ञा की। सञ्जीवनी विद्या प्राप्त कर कच गुरु के उदर से निकले और पुनः उन्होंने अपने गुरु को भी जीवित कर दिया। कच ने बहुत दिनों तक शुक्राचार्य के निकट अध्ययन किया। तदनन्तर गुरु की आज्ञा पा कर, वे स्वर्ग जाने को उद्यत हुए। उस समय देवयानी ने कहा—"तुम्हारा विद्याध्ययन समाप्त हुआ है, इस समय तुम शास्त्रानुसार मेरा पाणि-ग्रहण करो मैं तुम पर अनुरक्त हूँ।" कच बोले—"शुभे! तुम हमारी गुरुकन्या हो, अतएव माननीया हो। मैं तुमसे किसी प्रकार विवाह नहीं कर सकता।" इसी प्रकार दोनों में तर्क वितर्क होता रहा। जब कच किसी प्रकार विवाह करने के लिये प्रस्तुत नहीं हुए तब देवयानी ने शाप दिया—"मैं निरपराधा हूँ, तौ भी तुम मुझे अस्वीकृत करते हो अतएव तुम्हारी यह विद्या फलवती नहीं होगी।" कच बोले—"मैं किसी दोष के कारण तुम्हें वरण करना नहीं चाहता सो तो नहीं है, किन्तु तुम मेरी गुरु-पुत्री हो। इस कारण मैं तुमको स्वीकृत करना नहीं चाहता। अतएव मैं शाप के योग्य नहीं हूँ। तुम्हारा शाप काम के कारण है; अतएव वह मुझसे फलवान् नहीं होगा। तुमको मैं भी शाप देता हूँ कि तुम्हारा मनोरथ सिद्ध नहीं होगा। कोई ब्राह्मण-कुमार तुमसे विवाह नहीं करेगा, तुम ब्राह्मण से अतिरिक्त अन्य किसी जाति की स्त्री होगी। तुम मुझे जो शाप देती हो मैं उसे स्वीकार करता हूँ। मेरी विद्या फलवती न हो, न सही, परन्तु जिसको मैं विद्या पढ़ाऊँगा उसको तो यह विद्या फलवती अवश्य होगी"। तदनन्तर स्वर्ग में जा कर देवताओं को मृतसञ्जीवनी विद्या उन्होंने सिखायी। इन्द्र आदि देवताओं ने कच को आशीर्वाद दिया।

(महाभारत)

कच्चायण=पालिभाषा में कात्यायन को कच्चायण कहते हैं। पालि और संस्कृत दोनों भाषाओं में कौन पहले की है इस विषय में कच्चायण का मत है कि पालिभाषा पहले की है, पालिभाषा ही से अन्य दूसरी भाषाओं की उत्पत्ति हुई है। वही मूल भाषा है।

कच्छ=दक्षिण का एक जनपद। चीन के यात्री हुएन-त्सङ्ग ने कच्छ को "ओतिएनपोचिलो" कहा है। इस चीनी उच्चारण से कनिंगहम ने शुद्ध शब्द औदुम्बर निकाला है। कच्छ देश का औदुम्बर नाम क्यों हुआ इस विषय में अध्यापक लोसन कहते हैं कि कच्छ के अधिवासियों को पहले औदुम्बर कहते थे, इसी कारण हुएनत्सङ्ग ने उस देश को भी औदुम्बर कहा है। प्लिनि के ग्रन्थ में भी यही नाम देखा जाता है, परन्तु इस समय कच्छ देश में इस नाम का कोई चिह्न नहीं देखा जाता है। हुएनत्सङ्ग ने कच्छ की परिधि आठ सौ तेतीस माइल लिखी है। उस समय का कच्छ देश आबू पहाड़ के समीप उमारकोट तक फैला था। हुएनत्सङ्ग ने अपने उच्चारण में कच्छ देश की राजधानी का नाम लिखा है "किर्येशि, शोफालो"। किन्तु देश की राजधानी से दो सौ सत्तर माइल दक्षिण जाने पर चीन परिव्राजक हुएनत्सङ्ग को यह राजधानी मिली थी। उस राजधानी की परिधि ५-माइल थी। हुएनत्सङ्ग ने कच्छ की राज-धानी का जो नाम लिखा है उसका शुद्ध रूप अध्यापक लोसन "कच्छेश्वर" बतलाते हैं। कनिंगहम कहते हैं कि उसका नाम "कोटीश्वर" है। कच्छ के पश्चिम प्रान्त में जो कोटीश्वर नामक तीर्थ स्थान है, उसीका चीन परिव्राजक ने वैसा उच्चारण किया है। कोटीश्वर नगर के मध्य में एक शिवमन्दिर विद्यमान है। कनिंग-हम कहते हैं इसी कारण उस नगर का नाम कोटीश्वर है। चीन परिव्राजक ने कच्छ देश को निम्न और आर्द्र देश बतलाया है। जिस समय चीन यात्री यहाँ आया था, उस समय कच्छ देश मालवराज की अधीनता में था। खृष्टीय १६-वीं सदी में कच्छ देश पर मुसल-मानों का अधिकार हुआ।

(भारतवर्षीय इतिहास)

कच्छप=विश्वामित्र के लड़कों में से एक।

कजङ्ग=जङ्गली एक जाति। पुराणों में भी इस

जाति का उल्लेख हुआ है। परन्तु ठीक पता नहीं मिलता कि किस जाति को कजङ्ग कहते हैं।

कञ्चन=पुरूरवा वंश के राजा भीम के पुत्र का नाम।

कणत्रक=यदु पुत्र क्रोष्टु के वंशज शूर के पुत्र का नाम।

कणाद=प्रसिद्ध प्राचीन आर्य ऋषि। इन्होंने षट् दर्शन के अन्तर्गत एक दर्शन बनाया है जिसका नाम वैशेषिक दर्शन है। बहुतों का विश्वास है कि वैशेषिक दर्शन साङ्ख्य दर्शन से पहले का बना हुआ है। इनका असली नाम उलूक था। इन्होंने तण्डुल-कणा का आहार करके देवता की आराधना की थी और उसी आराधना के फल से इन्होंने वैशेषिक दर्शन बनाया था। तण्डुल-कणा आहार करके इन्होंने आराधना की थी, इस कारण इनका नाम कणाद पड़ा था, इनको "कणभुज" "कणभक्ष" भी कहते हैं। दर्शन में परमाणु वाद का प्रचार इन्हीं ही ने किया है।

कणिकमुनि=एक महर्षि का नाम। ये राजनीति के बड़े विज्ञाता थे और अध्यात्मशास्त्र के भी पण्डित थे। पाण्डवों का उत्कर्ष देख कर, धृतराष्ट्र को बड़ी चिन्ता हुई। उन्होंने इन्हीं कणिक मुनि को बुलाकर उपदेश ग्रहण किया था।

(महाभारत. आ)

कण्डु=ऋषिविशेष। ये कण्ड मुनि के पुत्र थे। एक समय इनकी कठोर तपस्या से भीत होकर देवराज इन्द्र ने प्रम्लोचा नाम की अप्सरा को मुनि की तपस्या में विघ्न डालने के लिये भेजा। प्रम्लोचा के रूप पर मुग्ध होकर मुनि ने बहुत दिन उसके साथ बिताये। एक दिन इनको अकस्मात् अपनी अधोगति का ज्ञान हुआ, उस वेश्या को छोड़ कर ये पुरुषोत्तमक्षेत्र गये, और वहाँ जा कर इन्होंने मुक्ति पायी।

(विष्णुपुराण)

कण्व=(१) पौरवंशी अजमीढ़ के पुत्र का नाम।

(२) तपःप्रभावसम्पन्न प्राचीन ऋषि। ये अप्सरा मेनका की छोड़ी कन्या शकुन्तला के पालक पिता थे, इनका आश्रम मालिनी नदी के तीर पर था। एक समय देवराज इन्द्र ने महर्षि विश्वामित्र की कठोर तपस्या से डर कर मेनका को ऋषि की तपस्या में विघ्न करने को भेजा था। मेनका ने अपना काम किया और एक कन्या उत्पन्न करके मालिनी नदी के तीर उस कन्या को रख कर, स्वर्ग को चली गयी। उसी समय महर्षि कण्व स्नान करने के लिये मालिनी के तीर पर गये थे। वे वहाँ से उस कन्या को आश्रम में उठा लाये और उसका लालन पालन किया। इस कन्या की शकुन्त-पक्षियों ने रक्षा की थी, इस कारण इसका नाम शकुन्तला रक्खा गया था।

(महाभारत)

कति=महर्षि विश्वामित्र के पुत्र का नाम। ये महर्षि विश्वामित्र के औरस और शालावती के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। इन्हीं से कात्यायन वंश चला है।

कदम्ब=एक वृक्ष का नाम, जो मन्दर पर्वत पर है।

कद्रू=दक्षप्रजापति की कन्या और महर्षि कश्यप की स्त्री। ये नागमाता कही जाती हैं। क्यों कि इनके गर्भ से हज़ार नाग उत्पन्न हुए हैं।

(महाभारत)

कनक=यदुवंशी राजा। ये हैहयवंशी दुर्दम के पुत्र थे, इनके चार पुत्र थे, कृतवीर्य, कृतौजा, कृतवर्मा और कृताग्नि।

कनकसेन=मेवाड़ में सिसोदियों का अधिकार प्रतिष्ठित करने वाला पहला राजा। ये भारत के उत्तर प्रान्त लोहकोट से ई० १४४ में सौराष्ट्र प्रान्त में आये थे। उस समय सौराष्ट्र देश में पवाँरवंशियों का राज्य था। कनकसेन युद्ध द्वारा उस राजा को हरा कर स्वयं सौराष्ट्र के राजासन पर बैठे। इन्होंने अपने नाम से वीरनगर नामक एक नगर भी बसाया है।

(टाड्स राजस्थान)

कनखल=एक गाँव का नाम। जिसका उल्लेख लिङ्गपुराण में किया गया है। इसी स्थान पर दक्ष ने यज्ञ किया था।

कनिष्क=शकजातीय प्रसिद्ध राजा। राजा कनिष्क ७८ ई० में पुरुषपुर (पेशावर) की गद्दी पर

बैठे थे । इनके सिंहासनारोहण के समय से शक नामक संवत्सर का प्रचार हुआ था। उस समय भारत में शकजाति का इतना दबदबा था कि उनका चलाया संवत् आज भी चल रहा है। राजा कनिष्क बौद्ध धर्म के प्रधान प्रचारक थे। इन्होंने भारत तथा अन्यान्य देशों में भी धर्मप्रचारक भेज कर बौद्धधर्म का प्रचार करवाया था। कनिष्क के राज्यकाल के विषय में ऐतिहासिकों में परस्पर खूब मतभेद है। कनिष्क के पश्चात् हविष्क या हुष्क राजा हुए थे।

(भारतवर्षीय इतिहास)

कनिष्ठ=देवताओं का गण विशेष, जो चौदहवें मन्वन्तर में वर्तमान था।

कनौज=प्राचीन राज्य। त्रेतायुग से इस राज्य का पता चलता है। इसके कान्यकुब्ज, कन्याकुब्ज, कन्यकुब्ज, गाधिपुर, कौश, कुशस्थल, आदि नाम पुराणों में देखे जाते हैं। रामायण में लिखा है कुश के पुत्र कुशनाभ ने इस नगर को बसाया था, उस समय इसका नाम महोदय था। कुशनाभ के नामानुसार महोदय को कौश कुशनाभ या कुशस्थल भी कहते थे। अन्त में इस नगरी का नाम कान्यकुब्ज हुआ। कुशनाभ की मृत्यु के अनन्तर इस नगर के राजा गाधि हुए। उन्होंने इसका नाम गाधिपुर रखा। इसके कान्यकुब्ज नाम के सम्बन्ध में रामायण में लिखा है वहाँ महर्षि वशिष्ठ रामचन्द्र से कहते हैं कि धर्मात्मा राजर्षि कुशनाभ ने घृताची वेश्या के गर्भ से एक सौ सुन्दरी कन्या उत्पन्न की थीं। एक समय वे कन्याएँ वर्षा ऋतु में प्रमोदवन में आमोद प्रमोद करती थीं। उन कन्याओं को देख वायु ने उनसे विवाह करना चाहा, उसने कहा—"तुम लोग मनुष्यत्व छोड़ कर मेरी भार्या हो जाओ। तुम लोग देवता हो कर अक्षीण यौवन प्राप्त करोगी।" कन्याओं ने वायु को उत्तर दिया देवश्रेष्ठ, आपका प्रभाव हम सब लोग जानते हैं आप सभी के भीतर विराजमान हैं, और सब के अन्तर की बातें जानते हैं। तब आप क्यों हम लोगों को अपमानित करते हैं। हम लोग स्वाधीन नहीं हैं, पिता कुशनाभ हमारे देवता हैं, वे जिनको देंगे वही हमारा पति होगा। यह सुन कर वायु को बड़ा क्रोध उपजा। उन्हों ने उन कन्याओं को कुब्जा बना दिया। वे दुःखिनी हो कर घर लौट आयीं। कन्याओं से उनके कुब्जा होने की सब बातें राजा ने सुनी। राजा सोचने लगे कि अब इनका विवाह कर देना चाहिये अन्त में काम्पिल्यनगर के राजा ब्रह्मदत्त को राजा ने सौ कन्याएँ ब्याह दीं। ब्याह होने पर वे कन्याएँ पहले जैसी सुन्दरी हो गयीं। इसी कारण उस नगर का भी नाम कान्यकुब्ज हो गया था, जिसे अब कनौज कहते हैं।

कान्यकुब्जप्रतिष्ठाता कुशनाभ किस वंश के तथा किसके पुत्र थे रामायण में इसका कुछ भी पता नहीं है। रामायण में रामचन्द्रात्मज कुश के पुत्र का कुशनाभ नाम नहीं मिलता। रामायण तथा अन्यान्य पुराणों में भी सूर्यवंशी कुश के पुत्र का नाम अतिथि लिखा है। चन्द्रवंशी राजा पुरूरवा के वंश में दशम पुरुष कुश नामक एक राजा थे, इनके चार पुत्रों में से एक का नाम कुशनाभ था। सम्भव है कि ये ही कुशपुत्र कुशनाभ कनौजप्रतिष्ठाता हैं। परन्तु पुराणों में इनके पुत्र का कहीं पता नहीं चलता। गाधि कुशिक के पुत्र थे कुशनाभ के नहीं, परन्तु यह सम्भव हो सकता है कि कुशनाभ ने अपने भाई कुशिक के पुत्र गाधि को दत्तक ग्रहण किया हो, जिसका उल्लेख पुराणों में केवल पुत्र ही कह के किया गया हो। चन्द्रवंशियों के बाद गुप्तवंशियों का यहाँ राज्य रहा।

(भारतवर्षीय इतिहास)

कन्दर्प=कामदेव का नामान्तर। ये देवताओं के अनुरोध से महादेव का ध्यान भङ्ग करने के लिये गये थे। महादेव ने इनको अपनी नेत्राग्नि से भस्म कर दिया। महादेव के नेत्राग्नि में जलने पर इनका नाम अनङ्ग हुआ। दूसरे जन्म में इनकी प्रद्युम्न नाम से प्रसिद्धि हुई। श्रीकृष्ण के औरस और रुक्मिणी के गर्भ से प्रद्युम्न उत्पन्न हुए थे। जन्म के सातवें दिन

शम्बर दैत्य इनको हर ले गया। वह श्रीकृष्ण का प्रबल शत्रु था। शम्बर की स्त्री मायावती निःसन्तान थी अतएव उसीको सन्तुष्ट करने के लिये शम्बर ने श्रीकृष्णपुत्र प्रद्युम्न को हर लिया था। कन्दर्प की स्त्री रति ही का जन्मान्तर में मायावती नाम पड़ा था। प्रद्युम्न को देख कर मायावती को अपने पूर्वजन्म की बातें स्मरण हो आयीं। उन्होंने स्वामी का पुत्ररूप से पालन करना अनुचित समझ कर अपनी दासी के ऊपर प्रद्युम्न के लालन पालन का भार दिया। प्रद्युम्न के वयस्थ होने पर मायावती ने उनके पूर्वजन्म की बातें उन्हें स्मरण करायीं, और शम्बर को मारने के लिये प्रोत्साहित किया। मायावती की सम्मति से प्रद्युम्न ने युद्ध में शम्बर का वध किया, और मायावती को साथ ले कर रुक्मिणी के यहाँ उपस्थित हुए। (हरिवंश)

कन्दली=महामुनि और्व की कन्या। ये जानु से उत्पन्न हुई थीं। प्रसिद्ध क्रोधी महर्षि दुर्वासा के साथ इनका परिणय हुआ था। महर्षि दुर्वासा ब्रह्मा के पौत्र और अत्रिमुनि के पुत्र थे। महर्षि दुर्वासा शङ्कर के अंश से उत्पन्न हुए थे। कन्दली असामान्य रूपवती थीं। परन्तु इनमें कलहप्रियत्व एक बड़ा भारी दोष था। एक समय महर्षि दुर्वासा तिलोत्तमा और बलिराज पुत्र साहसिक का प्रेमालाप देख कर कामवश हो कर उदासीन बैठे थे। उसी समय और्वपति प्रार्थिनी कन्या को साथ लिये वहाँ पहुँचे और कन्या का अभिप्राय उनसे कह सुनाया। दुर्वासा ने विधिपूर्वक कन्दली से ब्याह किया। और्व ने दुर्वासा से कहा कि तुम इसका एक सौ अपराध क्षमा करना, दुर्वासा ने इसे स्वीकार किया। कलहप्रिया स्त्री के साथ पति का विवाद प्रारम्भ हुआ, सौ से भी अधिक पत्नी के कटु वाक्य दुर्वासा ने सहे, अन्त में दुर्वासा ने उसे शाप दिया "तुम जल जाओ" उस समय विष्णु भगवान् ब्राह्मण का रूप धर कर वहाँ उपस्थित हुए और उन्होंने दुर्वासा को तपस्या करने की सम्मति दी। कन्दली दग्ध हो गयी, पुनः जन्मान्तर में वह दूसरे की स्त्री नहीं हुई। कहते हैं कि उसका दूसरा जन्म कदली वृक्ष का हुआ था। कन्या की विपत्ति का हाल ध्यान से जान कर महर्षि और्व दुर्वासा के समीप गये, और उन्होंने दुर्वासा को शाप दिया। तुमने सामान्य अपराध से मेरी कन्या को भस्म कर डाला अतएव इस अपराध से तुमको पराभव प्राप्त करना पड़ेगा। और्व के शाप से दुर्वासा को अम्बरीष के यहाँ पराभव प्राप्त करना पड़ा।

(ब्रह्मवैवर्तपुराण)

कन्यकागुण=एक जङ्गली जाति, पुराणों में इस जाति का उल्लेख पाया जाता है।

कपालमोचन=ताम्रलिप्त का दूसरा नाम। ताम्रलिप्त एक पवित्र तीर्थ है, इसके "कपालमोचन" नाम पड़ने का पुराणों में कारण यह लिखा है "दक्ष के नाश करने से महादेव को ब्रह्महत्या का पाप लगा। दक्ष का कपाल महादेव के हाथ में सट गया था वह किसी प्रकार छूटता ही नहीं था, दूसरा उपाय न देख कर महादेव देवों की शरण गये। उनकी सहायता से महादेव तीर्थ भ्रमण करते फिरे, परन्तु दक्ष का मस्तक उनके हाथ से नहीं छूटा, तब शिव हिमालय पर कठोर तपस्या करने लगे, तपस्या से सन्तुष्ट होकर विष्णु उपस्थित हुए, और उन्होंने ताम्रलिप्त में जाने के लिये कहा, महादेव ताम्रलिप्त में गये, और वहाँ वर्गभीमा और जिष्णु नारायण के मध्यवर्ती जलाशय में महादेव ने स्नान किया। वहाँ दक्ष का कपाल शिव के हाथ से छूट गया" इसी कारण ताम्रलिप्त का नाम कपालमोचन पड़ा।

कपालिका=देवी विशेष, आनन्दगिरिकृत शङ्करदिग्विजय में लिखा है कि इसके सर्वाङ्ग शरीर में भस्म लगा हुआ है कण्ठ में रुद्राक्ष माला और कटि देश में बाघम्बर लपटा हुआ है। बाल खुले हैं, बायें हाथ में खोपड़ी का खप्पर और दाहिने में घण्टा है जिसे बजा कर ये चिल्लाती हैं हो शम्भु, हो शङ्कर।

कपाली=विष्णुपुराण के अनुसार एकादश रुद्रों में से एक का नाम।

कपि=एक राजा। ये राजा उरुक्षय के पुत्र थे और पीछे से ब्राह्मण हो गये।

कपिल=विख्यात सिद्धर्षि। ये कर्दम प्रजापति के औरस और देवहूति के गर्भ से उत्पन्न हुए थे, ये भगवान् का पाँचवाँ अवतार माने जाते हैं। सांख्य दर्शन में प्रधानतः ज्ञान का वर्णन किया गया है अतएव इस दर्शन में ईश्वर का कुछ विशेष उल्लेख नहीं पाया जाता है। इस कारण कुछ लोग सांख्य दर्शन को निरीश्वर दर्शन कहते हैं। इस दर्शन के मत में ज्ञान के अतिरिक्त ईश्वर दूसरा पदार्थ नहीं माना जाता है। इस दर्शन के मत से वस्तुमात्र ही सत् है। त्रिविध दुःखों को निवृत्त करना ही इस दर्शन का उद्देश्य है। सांख्य के मत से आध्यात्मिक आधिदैविक और आधिभौतिक भेद से दुःख तीन प्रकार के हैं। इनकी अत्यन्त निवृत्ति करने के लिये सांख्य ज्ञान का उपदेश देता है। सांख्य मत से दुःखों की दो अवस्था होती हैं एक स्थूल और दूसरी सूक्ष्म। मनुष्य चेष्टा से जिन दुःखों का प्रतीकार किया जा सके उसे स्थूल दुःख कहते हैं। यथा—क्षुधा रोग आदि की निवृत्ति आहार और औषध सेवन से हो जाती है। परन्तु इन लौकिक उपायों से जो दुःखनिवृत्ति होती है उसे आत्यन्तिक दुःखनिवृत्ति नहीं कह सकते क्योंकि इन दुःखों के पुनः उत्पन्न होने की सम्भावना है। अतएव यह मानना पड़ेगा कि लौकिक उपायों से आत्यन्तिक दुःखनिवृत्ति नहीं हो सकती। वैदिक यज्ञ आदि से स्वर्ग की प्राप्ति अवश्य होती है इसमें सन्देह नहीं परन्तु वह सुख अचिरस्थायी और कर्मानुसारी है। याज्ञिकों का जीवहिंसा आदि का परिणाम कभी सुखमय नहीं हो सकता। मानसिक दुःख को सूक्ष्म दुःख कहते हैं इसकी निवृत्ति लौकिक उपायों से किसी प्रकार हो ही नहीं सकती, इसका उपाय सांख्य दर्शन बतलाता है। इस दुःख से छुटकारा पाने के लिये एक मात्र उपाय विवेकलाभ ही है। यही सांख्य दर्शन का मत है।

महर्षि कपिल के विषय में अनेक मत प्रचलित हैं। श्वेताश्वतर उपनिषद् में महर्षि कपिल को ब्रह्मा का मानस पुत्र लिखा है, श्रीमद्भगवद्गीता से एक कपिल नामक सिद्धर्षि का पता चलता है "सिद्धानां कपिलो मुनिः" रामायण में लिखा है कि महर्षि कपिल के शाप से सगर राजा के साठ हज़ार पुत्र जल गये। महाभारत में कपिल का धर्मतत्त्वविवरणसम्बन्धी एक उपाख्यान ही वर्तमान है। शिवसंहिता में योगिश्रेष्ठ कपिल का वर्णन है। बौद्ध ग्रन्थों में लिखा है "इक्ष्वाकुवंशीय राजा विराधक ने अपनी दूसरी रानी के कहने से पहली रानी के चार लड़कों को राज्य से निकाल दिया था। वे कुमार पाँच सगी बहिनों को साथ ले कर कपिल मुनि के आश्रम में गये। वहीं कपिल मुनि पीछे गौतम बुद्ध हुए थे और इन्हीं के नामानुसार बुद्धदेव की जन्मभूमि का कपिलवस्तु नाम पड़ा था। इनके अतिरिक्त वितथ पुत्र कपिल और वसुदेव पुत्र कपिल आदि का भी परिचय मिलता है। भागवत के मत से सांख्य दर्शन प्रणेता कपिल के पिता का नाम कर्दम और माता का नाम देवहूति था। (भारतवर्षीय इतिहास)

कपिलवस्तु=नगर का नाम जहाँ गौतम बुद्ध ने जन्म ग्रहण किया था। बौद्ध युग से पहले कपिलवस्तु का कुछ भी परिचय नहीं मिलता। प्रायः बुद्धदेव के सिद्धि प्राप्त करने के समय से इस नगर की प्रसिद्धि हुई है—अनेकों का ऐसा ही विश्वास है। तौभी इसका इतना परिचय तो अवश्य मिलता है कि पहले यह नगर शाक्यवंशीय राजाओं के अधिकार में था। शाक्य-रामचन्द्र के पुत्र कुश के वंशधर हैं। बौद्ध ग्रन्थों के पाठ से जाना जाता है कि शाक्यसिंह बौद्ध के समय में कपिलवस्तु में असंख्य लोग वास करते थे। अच्छे अच्छे मकान बग़ीचा बाज़ार आदि से नगर सुशोभित था। यह नगर सुन्दरता और सम्पदा की खानि था। चीन परिव्राजक फाहियान और हुएनत्सङ्ग ने जब इस नगर को देखा था उस समय भी इस नगर की सुन्दरता बिलकुल नष्ट नहीं हुई थी। हुएनत्सङ्ग ने इस नगर की परिधि ६६७—माइल बतलायी है। गङ्गा और गण्डक का

मध्यवर्ती समस्त देश कपिल के अन्तर्गत उस समय समझा जाता था। कहा जाता है कि सूर्यवंशी गोतम के किसी वंशधर ने रोहिणी नदी के तीर पर कपिलवस्तु नामक नगर बसाया था। गोतम सूर्यवंश की किस शाखा के हैं इसका पता लगाना इस समय कठिन हो गया है। पुरातत्त्वान्वेषी कहते हैं कि इस समय जो स्थान नगर नाम से पुकारा जाता है वहीं पहले कपिलवस्तु था। हुएनत्सङ्ग श्रावस्ती से कपिलवस्तु में आया था, उसने लिखा है कि श्रावस्ती से कपिवस्तु ८९-माइल की दूरी पर है। फाहियान के वर्णन से इसमें कुछ अन्तर पड़ता है। इन्होंने कपिल वस्तु को श्रावस्ती से १३-योजन की दूरी पर बताया है। चीन परिव्राजकों के इन वर्णनों से कपिलवस्तु और क्रकूचण्डा के जन्मस्थान के अन्तर विषय में एक विलक्षण असामञ्जस्य घटता है। हुएनत्सङ्ग पहले कपिल का दर्शन कर क्रकूचण्डा का जन्मस्थान देखने गया था। इन दोनों में एक माइल का व्यवधान था। क्रकूचण्डा का जन्मस्थान ककुआ नाम से प्रसिद्ध है। नगर नामक स्थान से वह ६-माइल है। पण्डितों का कहना है कि ककूआ और कपिलवस्तु दोनों एक ही हैं। नगर नामक स्थान चण्डताल नदी के पूर्व किनारे बसा हुआ है और इस नगर के दूसरी ओर राप्ती नदी की एक शाखा बहती है। पश्चिम की ओर सिद्ध नामक नदी वहाँ एक झील में गिरती है। कहते हैं इसी नदी के तीर पर कपिलमुनि का सिद्धाश्रम था इसी कारण इस नदी का नाम भी सिद्ध पड़ा है। कनिंगहम कहते हैं कि रोहिणी नदी वही राप्ती की शाखा-जिसे कोहानाभी कहते हैं-हो सकती है इस समय नगर से छः माइल पूर्व यह नदी बहती है।

(भारतवर्षीय इतिहास)

कपिला=दक्षप्रजापति की कन्या का नाम।

कपिलाश्व=सूर्यवंशी कुवलयाश्व के तीन पुत्रों में से एक का नाम। ये सब से छोटे थे। इन्हीं कपिलाश्व के पिता कुवलयाश्व का दूसरा नाम धुन्धुमार भी था।

कपिशा=एक नदी का नाम। इसी नदी के तीर पर प्राचीन गन्धर्वराज्य स्थित था। कहा जाता है कि मध्ययुग का गान्धार और इस समय का कन्धार ही पुराना गन्धर्वराज्य है।

(भारतवर्षीय इतिहास)

कपोतरोमा=(१) अन्धकवंशी विलोम के पुत्र का नाम।

(२) शिवि के पुत्र का नाम।

कमलाकर=(१) इनका पूरा नाम राजानक कमलाकर था। इन्होंने मम्मट के काव्यप्रकाश की टीका बनायी है।

(२) ये कमलाकर भट्ट दक्षिणी पण्डित थे इन्होंने निर्णयसिन्धु नामक एक धर्मशास्त्र का संग्रह ग्रन्थ बनाया है। इस ग्रन्थ का दक्षिण में बहुत आदर है।

कम्बलबर्हिष=श्रीमद्भागवत में लिखा है कि ये यदुवंशी अन्धक के चार पुत्रों में से एक थे और ये सब से छोटे थे।

कम्बोज=प्राचीन देशविशेष। इस विषय में दो मत प्रचलित हैं। वर्तमान कम्बोडिया प्रान्त ही प्राचीन कम्बोज देश है। कोई कोई कहते हैं कि काबुल के निवासियों को भी काम्बोज कहते हैं अतएव काबुल का ही प्राचीन नाम कम्बोज है।

करण=जातिविशेष। मनुस्मृति में लिखा है कि व्रात्य क्षत्रियों की करण संज्ञा है। ब्रह्मवैवर्तपुराण में लिखा है कि वैश्य के औरस और शूद्रा के गर्भ से उत्पन्न जाति का नाम करण है।

करणसिंह=जैसलमेर के एक राजा का नाम। ये रावल चाचक के छोटे पुत्र थे। चाचक ने अपनी मृत्यु के समय अपने छोटे पुत्र को गद्दी पर बैठाने का प्रबन्ध करदिया था। उनकी मृत्यु पर जैसलमेर के सिंहासन पर इनका अभिषेक किया गया, इससे दुःखित और लज्जित होकर इनके बड़े भाई जैतसी जन्मभूमि छोड़ गुजरात चले गये और वहाँ के मुसल्मान अधीश्वर के अधीन रहने लगे। करणसिंह के राज्याभिषेक के समय मुज़फ़्फ़रखाँ पाँच हज़ार सेना ले कर नागौर में ऊधम मचाये हुए था, क्यों कि वहाँ के अधीश्वर

भगवतीदास की रूपवती कन्या को मुज़फ़्फ़र ने माँगा था, परन्तु भगवतीदास ने देना अस्वीकार किया । इसीसे वह बलपूर्वक उनसे उन की कन्या छीन लेना चाहता था । भगवतीदास उससे लड़ना अपने लिये असम्भव जान कर करणसिंह के यहाँ चले । इसका समाचार पा कर मुज़फ़्फ़रख़ां वहाँ पहुँचा, और उनकी थोड़ी सेना को हरा कर उनकी कन्या और सम्पत्ति आदि उसने लूट ली । भगवतीदास ने अपनी दुर्गति का हाल रावलकरणसिंह को कह सुनाया । करणसिंह अपनी बलवती सेना ले कर युद्धक्षेत्र में आकर खड़े हुए, मुज़फ़्फ़रख़ां का अन्त हुआ । भगवतीदास की खोई हुई सम्पत्ति और कन्या मिल गयी । करणसिंह ने २८ वर्ष तक जैसलमेर का राज्य किया था । अन्त को ये परलोकवासी हुए ।

(टाड्स राजस्थान)

करतोया=एक नदी का नाम । तन्त्रशास्त्र में लिखा है कि कामरूप देश के पश्चिम सीमा पर करतोया नदी विद्यमान है । इस समय रङ्गपुर ज़िला में तिस्ता नामक एक नदी विद्यमान है । इस नदी में पाखराज नामक एक छोटी नदी मिलती है । रङ्गपुर के वासी कहते हैं कि यही करतोया की प्राचीन धारा है । बहुत दिन बीतने के कारण इसकी धारा दूसरी ओर को हो गयी है । इस नदी के तीर पर "करतोयातट" नामक एक पीठ वर्तमान है । यह पीठ बेगुड़ा ज़िला भवानीपुर में है । वहाँ अपर्णादेवी तथा वामनभैरव की मूर्ति है ।

(भारतवर्षीय इतिहास)

करन कवि वन्दीजन=ये जोधपुर मारवाड़ के रहनेवाले थे और सन् १७३० में वर्तमान थे । इन्होंने साढ़े सात हज़ार पद्यों का एक ग्रन्थ बनाया है जिसका नाम "सूर्यप्रकाश" है । यह ग्रन्थ ऐतिहासिक है । इस ग्रन्थ में महाराज अभयसिंह से लेकर महाराज यशवन्तसिंह तक का इतिहास लिखा है ।

करन ब्राह्मण=ये बुन्देलखण्डी ब्राह्मण थे और सन् १८१० ई० में वर्तमान थे । ये पन्ना के राजा हिन्दूपति के दरबार में रहा करते थे, इनके बनाये दो प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं जिनके नाम हैं "रसकल्लोल" और "साहित्यरस" ।

करन भट्ट=ये भी पन्ना के राजा के दरबार में रहते थे, और सन् १७३७ में जन्मे थे । ये पन्ना के राजा सभासिंह और हृदयसिंह के आश्रित थे, और इन्होंने उनसे उत्साह पा कर सतसई की एक टीका रची थी जिसका नाम "साहित्यचन्द्रिका" है । ये आशु कवि थे और तुरन्त समस्यापूर्ति कर दिया करते थे । इनकी प्रतिभा पर मुग्ध होकर लोग इनको पुरस्कार आदि से सम्मानित किया करते थे । शिवसिंह ने सभासिंह नामक जिन राजा का उल्लेख किया है उनका नाम पन्ना के राजघराने की वंशावली में नहीं पाया जाता ।

करनेस वन्दीजन=इनका जन्म सन् १५५४ में हुआ था और ये अकबर के दरबार में नरहरि कवि के साथ आया जाया करते थे । इनके बनाये तीन ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं । जिनके नाम ये हैं, कर्णभूषण, श्रुतिभूषण और भूपभूषण ।

करन्धक=शूर के दस पुत्रों में से एक पुत्र का नाम । ये वसुदेव के भाई थे ।

करन्धम=ये राजा खनित्र के बड़े शक्तिशाली धनी और साहसी पुत्र थे । जब इनके शत्रुओं ने इन पर आक्रमण किया, तब इन्होंने अपने हाथ पर फूँक मार कर सेना उत्पन्न की ।

करभञ्जिका=उत्तरीय पहाड़ में रहने वाली एक प्राचीन जाति ।

करम्भी=ज्यामघ जाति के राजा शकुनि के पुत्र ।

करारी=अघोरघण्टा या कपालिका के उपासकों में से एक का नाम ।

करालो=एक देवी का नाम, जिनका स्वरूप अत्यन्त भयानक है ।

करिष्क=पुराणों में एक जाति का नाम । यह जाति प्राचीन समय में थी ।

करुणासिंह=बीकानेर के राजा का नाम । इनके पिता का नाम रायसिंह था । रायसिंह की मृत्यु के पश्चात् ये बीकानेर के अधीश्वर

हुए थे । इनको करणसिंह या कर्णसिंह भी कहते थे । पिता की जीवित अवस्था में दो हज़ार घुड़सवारों के नेता होकर ये दौलताबाद के शासनकर्ता के पद पर थे । करणसिंह सुलतान दाराशिकोह के विशेष अनुगत थे । दारा का बादशाह के दरबार में प्रवेश होने के लिये इन्होंने बड़ा प्रयत्न किया था । अतएव दारा के प्रतिद्वन्द्वियों ने इनके मारने के लिये षड्यन्त्र रचा था, परन्तु बूँदी के महाराज ने पहले ही से इस विषय में करणसिंह को सावधान कर दिया था । इससे करणसिंह ने बड़ी सरलता से उनके प्रयत्न निष्फल कर दिये । करणसिंह ने प्रबल प्रताप के साथ राज्य कर के अन्त में जग से नाता तोड़ दिया । इनके चार पुत्र थे । (टाड्स राजस्थान)

करुप=वैवस्वतमनु के पुत्रों में से एक पुत्र का नाम । इन्हींसे कारुप नामक क्षत्रियों की उत्पत्ति हुई ।

कर्कोटक=महर्षि काश्यप के औरस और कद्रू के गर्भ से सहस्र सर्प उत्पन्न हुए थे, उनमें एक प्रधान सर्प का नाम कर्कोटक था। पहले शेषनाग, तत्पश्चात् वासुकि और तदनन्तर क्रम से ऐरावत तक्षक और कर्कोटक उत्पन्न हुए थे । एक समय कर्कोटक ने नारद को ठगा था, इससे क्रुद्ध हो कर नारद ने शाप दिया था कि तुम इसी वन में स्थावर हो कर रहा करो, और राजा नल जब आ कर, तुमको इस स्थान से हटावेंगे तब तुम्हारा यह शाप छूटेगा । राजा नल कलि के कोप से राज्यभ्रष्ट हो कर घूमते घूमते इस वन में भी आये । उस समय यह वन दावानल से जल रहा था । राजा नल वन से "नल, नल" ध्वनि सुन कर वहाँ गये और कर्कोटक का उद्धार किया । शापयुक्त हो कर कर्कोटक ने अपना परिचय दिया और नल को काटा । सर्प के काटने से राजा नल का रूप कुरूप हो गया । कर्कोटक के इस आचरण से राजा नल को बड़ा आश्चर्य हुआ, कर्कोटक बोला, महाराज, आप मुझे अकृतज्ञ न समझें। मैंने काट कर आपका उपकार किया है । आपका रूप विकृत होने से आपके शत्रु आपको पहचान नहीं सकेंगे। और हमारे विष से आपके शरीर में रहने वाला कलि परास्त होगा । पुनः कर्कोटक ने राजा नल को अयोध्याधिपति ऋतुपर्ण के यहाँ आश्रय ग्रहण करने के लिये आदेश किया और उनसे जूआ खेलने की विद्या सीखने की भी सम्मति दी । (महाभारत)

कर्ण=भारत युद्ध के विख्यात वीर और दुर्योधन के मित्र । इनका नाम वसुषेण था । जब इन्होंने अपना अङ्ग काट कर ब्राह्मण वेषधारी इन्द्र को कवच और कुण्डल दान किया, तब से ये कर्ण नाम से प्रसिद्ध हुए । कर्ण पाण्डव माता कुन्ती के कानीन पुत्र थे। कुन्ती की अविवाहित अवस्था में सूर्य के औरस और उनके गर्भ से कर्ण उत्पन्न हुए थे । लोकलज्जा के भय से कुन्ती ने अपने सद्योजात पुत्र को एक सन्दूक में बन्द करके नदी में फिकवा दिया । राधा नाम की एक सूत जाति की स्त्री ने उस सन्दूक को निकलवाया । राधा के कोई पुत्र नहीं था उसने अपने पति के परामर्श से उस बालक को पाला पोसा । राधा ने इनका नाम वसुषेण रखा था । राधा के द्वारा ये पालित हुए थे इस कारण इनको राधेय भी कहते हैं । परन्तु इनकी प्रसिद्धि कर्ण नाम से ही है । कर्ण ने द्रोण से अस्त्र विद्या सीखी थी । पढ़ने के समय ही से अर्जुन से इनकी प्रतिद्वन्द्विता थी । अतएव दुर्योधन ने कर्ण से मित्रता करली । कर्ण और दुर्योधन में बड़ी घनिष्ठ मैत्री हो गयी, कर्ण बहुत चाहता था कि मेरे साथ अर्जुन अस्त्र चालन करें परन्तु अर्जुन इसको स्वीकार नहीं करते थे, क्योंकि कर्ण एक सामान्य मनुष्य था और अर्जुन राजपुत्र । इससे कर्ण को बड़ी लज्जा और दुःख हुआ । दुर्योधन ने अपने मित्र को प्रसन्न करने के लिये उनको अङ्गदेश का राजा बना दिया । एक दिन कर्ण ने ब्रह्मास्त्र सिखाने के लिये द्रोणाचार्य से कहा, परन्तु उन्होंने सूत पुत्र को ब्रह्मास्त्र सिखाना अनुचित बतलाया, अतएव कर्ण परशुराम के यहाँ गया और वहाँ

ब्राह्मण बन कर वह ब्रह्मास्त्र सीखने लगा । एक दिन परशुराम कर्ण के ऊरु पर सिर देकर सोये हुए थे । उसीसमय अलर्क नामक एक कीट कर्ण का जङ्घा काटने लगा । गुरु की निद्रा भङ्ग न हो इसलिये कर्ण इतने कष्ट के समय भी कुछ भी विचलित नहीं हुए । अलर्क के काटे हुए स्थान से रुधिर निकलने लगा, वह परशुराम के शरीर में लगा, इससे उनकी निद्रा खुल गयी । उन्होंने कर्ण से सब बातें सुनीं । इन बातों को सुन के परशुराम को सन्देह हुआ । इन्होंने कर्ण से पूछा "ब्राह्मण किसी प्रकार इतना कष्ट नहीं सह सकता, अतएव तुम स्पष्ट अपना परिचय बताओ" अपना सत्य परिचय कर्ण के बताने पर परशुराम बोले, तुमने अपने को छिपा कर धोखे से ब्रह्मास्त्र सीखा है, अतएव युद्ध के समय तुम इसको भूल जाओगे यह मैं शाप देता हूँ । जिस उद्देश्य से कर्ण परशुराम के यहाँ आये थे उनका वह उद्देश्य अभाग्य से नष्ट हो गया । परशुराम के यहाँ अस्त्र विद्या सीखने के समय कर्ण ने एक ब्राह्मण की गौ को बाण से मार दिया था, इस कारण उस ब्राह्मण ने भी कर्ण को शाप दिया था कि तुम जिसको मारने के लिये सर्वदा यत्न किया करते हो उसीके द्वारा तुम्हारी मृत्यु होगी । इसी शाप से कर्ण अर्जुन के द्वारा मारा गया था ।

परशुराम के यहाँ से अस्त्र सीख कर कर्ण अपने घर लौट आये । अनन्तर कलिङ्गराज की कन्या के स्वयम्बर में जरासन्ध से इनका युद्ध हुआ । इनकी युद्ध निपुणता से प्रसन्न हो कर जरासन्ध ने कर्ण को मालिनी नामक नगरी दी ।

पाण्डवों के द्वैतवन में वास के समय चित्रसेन गन्धर्व ने दुर्योधन को परिवार समेत क़ैद कर लिया था । पाण्डवों की सहायता से दुर्योधन क़ैद से छूट कर हस्तिनापुर लौट आये । इससे दुर्योधन अत्यन्त लज्जित हुआ । कर्ण ने बहुत समझाया । भीष्मपितामह ने पहले ही दुर्योधन को द्वैतवन में जाने के लिये मना किया था । परन्तु दुर्योधन ने पितामह की बात न मानी इससे उसको अपमान भी सहना पड़ा । पितामह ने कर्ण और दुर्योधन की निन्दा और आत्म सम्मान के लिये युधिष्ठिर की प्रशंसा की । पाण्डवों की प्रशंसा सुन ये दोनों कृतघ्न जल गये । कर्ण ने दुर्योधन को समझा दिया कि पितामह पाण्डवों के पक्षपाती हैं और उसने दुर्योधन से दिग्विजय करने के लिये जाने की अनुमति माँगी । उसने कहा कि अश्वमेधयज्ञ के समय पाण्डवों के चार भाइयों ने जिस काम को किया था उसको मैं अकेला ही कर डालूँगा । इस कार्य से भीष्मपितामह अवश्य ही लज्जित होंगे यह समझकर दुर्योधन ने भी कर्ण को दिग्विजय करने की अनुमति दे दी । कर्ण दिग्विजय के लिये निकले, उन्होंने पहले ही पाञ्चाल राज द्रुपद को परास्त किया तदनन्तर अङ्ग वङ्ग कलिङ्ग मिथिला आदि देशों को जीत कर वहाँ के राजाओं से कर ग्रहण किया । इसी प्रकार थोड़े ही दिनों में कर्ण अन्यान्य राजाओं को जीत कर तथा प्रचुर धन ले कर हस्तिनापुर लौटे । इसी समय कर्ण का विवाह हुआ, इन्होंने पद्मावती नामक कन्या का पाणिग्रहण किया था । पद्मावती के गर्भ से कर्ण के वृषसेन, वृषकेतु, चित्रसेन आदि पुत्र उत्पन्न हुए थे । राजा दुर्योधन ने कर्ण के कमाये सुवर्ण मुद्राओं से एक हल बनवाया और उस से यज्ञभूमि जुतवा कर वहाँ विधिपूर्वक वैष्णव-यज्ञ का अनुष्ठान किया । दुर्योधन के यज्ञ समाप्त होने पर कर्णने अर्जुन को वध करने की प्रतिज्ञा की । "जब तक हम अर्जुन को न मारेंगे तब तक अन्न जल नहीं ग्रहण करेंगे" इसी दिनसे कर्ण ने आसुर व्रत का अनुष्ठान करना प्रारम्भ किया । यह व्रत अर्जुन के वध करने के समय तक के लिये सङ्कल्पित हुआ था । इस व्रत के समय याचक जो कुछ मांगेगा कर्ण वही देंगे । कर्ण की दानशीलता की परीक्षा करने के लिये श्रीकृष्ण ने ब्राह्मण का वेश धर उनके पुत्र के मांस खाने की अभिलाषा प्रकट की थी । कर्ण ने प्रसन्नता से उनकी याञ्चा पूरी की । पुनः श्रीकृष्ण ने सञ्जीवनी विद्या द्वारा उस पुत्र को जीवित कर दिया था । इसी व्रत के समय ब्राह्मण वेश में आ कर इन्द्र ने कवच और कुण्डल की याचना की जिन्हें कर्ण ने दे डाला था । यद्यपि सूर्य ने इन्द्र के छल की बातें कर्ण को जना दी

थीं, तथापि कर्ण ने अपने व्रत का नियम भङ्ग नहीं किया । सूर्य के कहने से कर्ण ने इन्द्र से एक शक्ति माँगी थी । अर्जुन को मारने के लिये कर्ण ने उस शक्ति को रख छोड़ा था । परन्तु महाभारत युद्ध के चौदहवें दिन भीमपुत्र घटोत्कच ने कुरु सैन्य का इस प्रकार विनाश करना प्रारम्भ किया जिससे घबड़ा कर कर्ण ने उसी शक्ति के द्वारा घटोत्कच का वध किया । कर्ण नीच जाति है इस कारण उसे महारथ न बना कर अर्द्धरथ ही बनाना उचित है दुर्योधन को ऐसी सम्मति भीष्म ने दी थी । इस कारण भीष्म के जीवित काल में अस्त्र न धारण करने की उसने प्रतिज्ञा की । जिस समय भीष्म शर शय्या पर थे, उस समय कर्ण उनसे मिलने गया था । भीष्म ने कहा, कुन्ती के द्वारा मैंने तुम्हारे जन्म के वृत्तान्त सुने हैं अतएव अब तुम्हें उचित है कि अपने भाई पाण्डवों की ओर से लड़ो । कर्ण ने उत्तर दिया, हम दुर्योधन के निकट अत्यन्त ऋणी हैं हम दुर्योधन को छोड़ना किसी प्रकार उचित नहीं समझते"। कर्ण का दृढ़ सङ्कल्प देख कर भीष्म ने अन्याय युद्ध न करने के लिये उसे उपदेश दिया। परन्तु कर्ण ने पितामह के इस वचन का भी पालन नहीं किया क्योंकि बालक अभिमन्यु के वध के समय सात महारथियों में एक कर्ण भी था । द्रोणाचार्य के मारे जाने पर युद्ध के सोलहवें दिन कर्ण को सेनापति का पद मिला था । अर्जुन को छोड़ कर अन्य पाण्डवों को इसने जीता था, परन्तु कुन्ती के अनुरोध से उन्हें मारा नहीं । युद्ध के सत्रहवें दिन कर्ण अर्जुन के हाथ मारा गया ।

(महाभारत)

(२) (महाराणा) उदय पुर के महाराणा अमरसिंह के ज्येष्ठ पुत्र का नाम । अमरसिंह की मृत्यु के पश्चात् ये मेवाड़ की राजगद्दी पर बैठे थे । सन् १६२१ ई० में इनका राज्याभिषेक हुआ था । इनके चरित्रों से वीरता, साहस, वीर्यवत्ता, बुद्धिमत्ता आदि का परिचय मिलता है । जिस समय ये राजगद्दी पर बैठे उस समय मेवाड़ का राजकोश सूना था । ये कुछ सेना लेकर गुजरात चले गये और वहाँ के राजाओं को जीतकर ये बहुत सा धन ले आये । इन्होंने समय को देखकर युद्ध विग्रह में हाथ देना उचित नहीं समझा । पिता के क्रोध में पड़कर जब सुलतान खुर्रम भगा था तब महाराणा कर्ण ने उसको अपने यहाँ आश्रय दिया था । उसके रहने के लिये पिछौला तालाव के बीच में एक महल बनवा दिया था । खुर्रम और कर्णसिंह में बड़ी मैत्री थी, कर्णसिंह बहुत चाहते थे कि मैं अपने मित्र को दिल्ली का बादशाह देखूँ परन्तु वे देख न सके । इन दोनों ने पगड़ी बदलकर धर्मभाई का सम्बन्ध जोड़ा था । सन् १६२८ ई० में कर्णसिंह राज्यभार अपने पुत्र जगत् सिंह को देकर परलोकवासी हुए । (टाड्स राजस्थान)

(३) मध्यभारत के एक राजा का नाम । ये बड़े वीर थे । इनकी स्त्री का नाम कलावती था, कलावती अनुपम वीर रमणी थी । अलाउद्दीन के साथ युद्ध में कर्ण कलावती की सहायता से विजयी हुए थे । उसी युद्ध में कर्णसिंह विष से बुझायी हुई तलवार से घायल हुए थे । परन्तु पतिव्रता कलावती ने उनका घाव मुख से चूस उन्हें बचा लिया और उनके बदले स्वयं बलि हुई ।

कर्ण प्रवरण=एक प्रकार की गाली । यह गाली प्राचीन समय में उस मनुष्य को दीजाती थी जो अपने को कानों के अधीन बनाकर रखते थे।

कर्ण सुवर्ण=वङ्गदेश के एक विभाग का नाम ।

कर्णाटक=दक्षिण का एक प्राचीन राज्य । गरुड़पुराण में भारत के दक्षिण और पश्चिम में कर्णाटक राज्य बताया गया है । महाभारत में धृतराष्ट्र के प्रश्न के उत्तर में सञ्जय ने दाक्षिणीय जिन राज्यों का उल्लेख किया है उनमें कर्णाटक का भी नाम है । मार्कण्डेय पुराण में अवन्ती दासपुर महाराष्ट्र आदि देशों के साथ कर्णाटक का भी नाम लिया गया है । बृहत्संहिता में भी दक्षिणी राज्यों में कर्णाटक राज्य को गिनाया है । शक्ति सङ्गम नामक तन्त्र में लिखा है कि रामनाथ से रङ्गपत्तन तक कर्णाट देश विस्तृत है । कर्णाट देश में काला कपास बहुत अधिक उत्पन्न होता है इस कारण उसे

कर्णाट देश कहते हैं यह वैयाकरणों की युक्ति है। इस राज्य की प्रतिष्ठा कब हुई और किसने की? इस प्रश्न का उत्तर मिलना कठिन है तथापि इतना पता तो अवश्य मिलता है कि पाण्डव वंशी चालुक्यवंशी पल्लव कोल चूटि आदि राजाओं का वहाँ पर राज्य था। कर्णाटक के प्रसिद्ध राजवंश का नाम वेलाल, या वल्लाल वंश है। वे अपने को यदुवंशी क्षत्रिय बताते थे, इसी वल्लालवंश का एक समय समस्त कर्णाट राज्य में अधिकार फैला हुआ था। सन् १३१० ई० में मुसल्मानों का इस राज्य पर अधिकार हुआ। इसी वल्लाल वंश में से महीसुर का राजवंश उत्पन्न हुआ है। कर्णाटक राज्य पर मुसल्मानों के अधिकार होने पर वल्लाल वंशिय राजाओं ने विजयनगर में अपनी राजधानी स्थापित की। विजयनगर में किसने राजधानी बनायी इस विषय में मत भेद है? कोई कहते हैं कि बुक्काराय ने वहाँ राजधानी बनायी, दूसरे पक्ष का कहना है कि वहाँ राजधानी स्थापित करने वाले का नाम हरिहर है। कुछ लोग कहते हैं कि हरिहर और बुक्का इन दोनों ने मिलकर वहाँ राजधानी की प्रतिष्ठा की थी। माधवविद्यानन्द नामक एक ब्राह्मण की सहायता से विजयनगर में राजधानी बनायी गयी थी। सन् १३१० ई० वाले ताम्रपत्र में बुक्काराय का नाम मिलता है। उससे जाना जाता है कि माधव का दूसरा नाम सायण था। यही सायण वेदों के भाष्यकार हैं। ये बुक्काराय के प्रधान मन्त्री थे।

(भारतवर्षीय इतिहास)

कर्णावती=एक नदी का नाम, इसी नदी के तीर पर काशीराज की कन्या हेमवती के गर्भ से प्रसिद्ध महोबा राज्य के प्रतिष्ठाता चन्द्रवर्मा उत्पन्न हुए थे।

कर्दम=प्रजापति ऋषिविशेष। स्वायम्भुव मुनि की कन्या देवहूति से इनका विवाह हुआ था। देवहूति के गर्भ से विख्यात महर्षि कपिल और कलाआदि नौ कन्याएँ उत्पन्न हुई थीं।

(विष्णुपुराण)

कर्दमायन=अत्रिवंशीय एक शाखा का नाम।

कर्मकाण्ड=वेद के त्रिविध काण्डों में से एक काण्ड का नाम इसमें यज्ञ करने की विधि आदि का निरूपण किया है। मीमांसा दर्शन को भी कर्म काण्ड कहते हैं। प्रधानतः कर्म काण्ड शब्द का व्यवहार फल सूत्रों के अर्थ में होता है।

कर्मजित्=पुरुवंशीय राजा, ये बृहत्सेन के पुत्र थे।

कर्नाल=एक नदी का नाम, जो साम्प्रतिक कुमायु प्रदेश में विद्यमान है। कहते हैं कि इस नदी के तीर पर कर्ण रहते थे इसी कारण इसका नाम कर्णाल पड़ा है।

कलवाल=एक प्राचीन जाति का नाम, जिसका उल्लेख पुराणों में किया गया है।

कलश=कश्मीर के एक राजा का नाम। यह अनन्त-देव का पुत्र था। यह बड़ा ही दुराचारी था। कुसङ्गतिमें पड़कर और लोक लज्जाको तिलाञ्जलि देकर यह स्वाधीन भाव से कुमार्गगामी होगया था, अपनी विलसिता के बाधक अपने पिता को भी बड़े कष्ट इसने दिये थे। उनको नगर से निकलवा दिया, उनके रहने के मकान में कई बार आग लगवा दी थी। ८ वर्ष २१ दिन इसने राज्य किया था। (राजतरङ्गिणी)

कला=कर्दम प्रजापति की एक कन्या का नाम। देवहूति के गर्भ से ये उत्पन्न हुई थी और ब्रह्मा के मानस पुत्र मरीचि को ब्याही गयी थी। इसीके गर्भ से प्रजापति कश्यप ऋषि उत्पन्न हुए थे। (विष्णुपुराण)

कलानिधि=इस नाम के दो कवि हिन्दी में ही हुए हैं। एक का जन्म सन् १७५० ई० में हुआ था, और नख शिख वर्णन में ये दक्ष थे। दूसरे कलानिधि का जन्म सन् १६१५ ई० में हुआ था। ये कवि थे, अवश्य, पर किस रस की कविता के लिये प्रसिद्ध थे इसका पता नहीं चलता।

कलाप=एक नगर का नाम। श्रीमद्भागवत में लिखा है कि शान्तनु के बड़े भाई देवापि इसी नगर में रहते थे।

(२) देश विशेष। कल्कि भगवान् ने विशापयूप नामक अपने पुत्र को इस देश का अधिकार दिया था।

(३) संस्कृत के एक पण्डित का नाम।

इन्होंने अपने नामपर एक व्याकरण बनाया है। यह व्याकरण इस समय बङ्गाल में प्रचलित है।

कलावती=मध्य प्रदेशीय राजा कर्ण की स्त्री। इन की वीरता इतिहास प्रसिद्ध है। रानी कलावती ने अपने पति कर्ण के साथ अलाउद्दीन और उसकी सेना को जो रण शिक्षा दी थी, वह इन महारानी को अमर करने के लिये यथेष्ट है। अपने पति कर्ण का विषैला घाव चूस कर पत्नी कर्तव्य का आदर्श इन्होंने स्थापित किया है।

कलि=युगप्रवर्तक देवता। इनके नामानुसार युग का नाम कलियुग हुआ। ४३२००० वर्ष तक इस देवता का अधिकार रहता है। इस युग के अन्त में भगवान् विष्णु का कल्कि अवतार होता है। द्वापर के अन्त में प्रजापति ब्रह्मा ने अपनी पीठ से अधर्म को उत्पन्न किया था। अधर्म की स्त्री का नाम मिथ्या है। मिथ्या और अधर्म से अत्यन्त कोपी दम्भनामक पुत्र उत्पन्न हुआ। दम्भ ने अपनी भगिनी माया को ब्याहा था, उनसे लोभ नामक पुत्र और निकृति नाम की कन्या उत्पन्न हुई। लोभ ने भी अपनी भगिनी को ब्याहा और उनसे क्रोध नामक पुत्र और हिंसा नाम की कन्या उत्पन्न हुई। क्रोध ने भी अपनी बहिन से विवाह किया, जिससे कलि नामक पुत्र और दुरुक्ति नाम की कन्या उत्पन्न हुई। कलि ने भी कुल परम्परा के अनुसार अपनी बहिन को ब्याहा, और उन्होंने भय नामक पुत्र और मृत्यु नामक कन्या उत्पन्न की। भय और मृत्यु का विवाह हुआ, इनके पुत्र निरय और कन्या यातना हुई। यातना निरय के अनेक पुत्र हुए।

(कल्किपुराण)

कलि के अत्याचार से राजा नल ने राज्यभ्रष्ट होकर महारानी दमयन्ती के साथ अनेक कष्ट सहे थे। इन्द्रादि देवता विदर्भराज की कन्या दमयन्ती के स्वयम्वर में गये हुए थे। दमयन्ती ने देवताओं को छोड़कर नल को वरण किया। देवता स्वयम्वर सभा से लौटे आरहे थे, उस समय कलि और द्वापर से उनकी भेंट हुई। देवताओं के अपमान का बदला लेने की इन दोनों ने ठानी। किस प्रकार दमयन्ती को दुःख दिया जाय इसके लिये ये मौका ढूंढ़ने लगे। अन्त में ११-वर्ष के बाद किसी प्रकार नल के शरीर में कलि प्रविष्ट हुआ। कलि की प्रेरणा से नल अपने भाई पुष्कर के साथ जुआ खेलने लगे और सब धन हार गये। राज्य भ्रष्ट हो कर राजा नल वन वन मारे फिरे। एक वन में कर्कोटक नाग के उद्धार करने पर राजा कलि उसके विष से जर्जरित हुए। कर्कोटक के उपदेशानुसार राजा ऋतुपर्ण से नल ने अक्षक्रीड़ा की शिक्षा ग्रहण की और कलि उनके शरीर से निकल गया।

(महाभारत)

कलिङ्ग=बलिराजा के क्षेत्रज पुत्र का नाम। ये बलि राजा की महारानी सुदेष्णा के गर्भ और महर्षि दीर्घतमा के औरस से उत्पन्न हुए थे। इनके राज्य को भी कलिङ्ग कहते हैं। एक समय कलिङ्ग राज्य अत्यन्त प्रतापशाली हो गया था। पुरातत्त्व की आलोचना से जाना जाता है कि बङ्गीय सागर के तीरस्थ स्थानों से लेकर दक्षिण में तैलङ्ग देश तक इसका विस्तार था। कलिङ्ग राज्य की प्राचीनता के साक्षी सूत्र ग्रन्थ, संहिता शास्त्र, रामायण, महाभारत आदि हैं। रामायण में कलिङ्ग और कुलिङ्ग इन नामों का अनेक बार उल्लेख किया गया है। किष्किन्धा काण्ड के ४१वें सर्ग में लिखा है कि कलिङ्ग देश दक्षिण में विद्यमान था। ब्रह्मवैवर्त पुराण से जाना जाता है कि समाधि नामक वैश्य जिसका उल्लेख दुर्गा सप्तशती में है का पितामह विराध कलिङ्ग देश का राजा था। महाभारत के वन पर्व में युधिष्ठिर की तीर्थयात्रा के प्रसङ्ग में कलिङ्ग का उल्लेख किया गया है। इन बातों से कलिङ्ग देश की प्राचीनता स्पष्ट सिद्ध होती है। उडिसा के दक्षिण और द्रविड़ के उत्तर के देश को कलिङ्ग देश कहते हैं।

कलिन्द=कालिन्दी के पिता का नाम। वह पर्वत जिससे यमुना उत्पन्न हुई थी।

कलियुग=अन्तिम युग। इसमें देवताओं के बारह सौ वर्ष होते हैं। मनुष्यों का एक वर्ष देवताओं का एक दिन होता है। इस हिसाब से कलियुग में मनुष्यों के ४३२००० वर्ष होते हैं। कलियुग के आरम्भ होने का समय ईसा के जन्म के

पूर्व १३वीं या १४वीं शताब्दी बतायी जाती है, अर्थात् कलियुग उस समय लगा जब श्री कृष्ण भगवान् ने अपनी मानवी लीला संवरण की । इस युग में सब अच्छे पदार्थों का ह्रास होगा और साधारण रीत्या मनुष्य जाति की अवनति होगी । लोगों की वेदों पर से श्रद्धा हट जायगी । मनुष्य अहर्निश धनोपार्जन की चिन्ता में संलग्न रहेंगे और उपार्जित धन मनुष्य अपने भोग विलास के कामों में व्यय करेंगे । स्त्रियां स्वतन्त्रचेता होंगी और शारीरिक सुख की चाह करेंगी । सब वर्णों के लोग अपने को ब्राह्मण कहने लगेंगे । गौओं की सेवा केवल दूध के लिये लोग करेंगे । विष्णुपुराण में कलियुग के धर्मों की जो सूची दी गयी है उसमें से ये थोड़ी सी बातें लिख दी गयी हैं । इस युग में भगवत् नाम कीर्तन ही से मनुष्य उस सद्गति के अधिकारी हो जाते हैं जिसके अधिकारी अन्य युगों में लोग बड़ी कठिन तपस्या से होते थे । कलियुग के बाद सतयुग का प्रारम्भ होगा ।

(विष्णुपुराण)

कल्कि=विष्णु का अवतार विशेष । कलियुग के अन्त में भगवान् विष्णु कल्किरूप में अवतार ले कर कलि का संहार और सत्ययुग की प्रवृत्ति करेंगे । लक्ष्मी पद्मा के रूप में भूतल पर अवतीर्ण होंगी और कल्कि से उनका व्याह होगा । पद्मा से व्याह करके विश्वकर्मा के बनाये शम्भल नामक नगर में ये वास करेंगे और बौद्धों का दमन तथा कुथोदरी नाम की राक्षसी का वध करेंगे । तदनन्तर वहाँ से कल्कि भल्लाट नगर में जायँगे । वहां शय्याकर्ण प्रभृति और राजा शशिध्वज के साथ इनका युद्ध होगा । कल्कि की कृपा से राजा शशिध्वज की मुक्ति होगी । तदनन्तर शम्भलपुर में याग यज्ञ आदि का अनुष्ठान होगा और सत्ययुग प्रवृत्त होगा । इस प्रकार अपना काम करके देव गन्धर्व आदि के आने पर कल्कि वैकुण्ठ में जायँगे ।

(कल्किपुराण)

कल्पसूत्र=वेदाङ्ग विशेष । श्रौतसूत्र, धर्मसूत्र और गृह्यसूत्र इन तीन सूत्रों को कल्पसूत्र कहते हैं । आपस्तम्ब का कल्पसूत्र इस समय भी पाया जाता है । इसके प्रथम चौबीस प्रश्नों या भागों में श्रौत या याग यज्ञ आदि का विधान है । २६वें और २७वें भाग में गृह्यसूत्र अर्थात् गृहधर्म की बातें लिखी हैं । २८वें और २९वें अध्याय में धर्मसूत्र अर्थात् सामाजिक भाव से चलने के नियम लिखे हैं । ३०वें अध्याय में यज्ञ आदि के लिये वेदी बनाने की विधि लिखी है, जिससे प्राचीन आर्यों की ज्यामिति विद्या में निपुणता का परिचय मिलता है ।

कल्मषपाद=अयोध्याधिपति राजा ऋतुपर्ण के प्रपौत्र और राजा सुदास के पुत्र थे । इनका नाम सौदास था । मित्रसह और कल्मषपाद भी इन्हें कहते हैं । एक समय इन्होंने आखेट के लिये वन में जा कर व्याघ्ररूपधारी दो राक्षस भाइयों में से बड़े को मारा, और छोटे को छोड़ दिया । यह छोटा राक्षस भ्रातृहत्या का बदला लेने के लिये उद्यत हुआ । पाचकरूप धारण कर के राजा के यहाँ आए हुए वशिष्ठ को नर मांस खिलाने की उसने चेष्टा की । इससे महर्षि वशिष्ठ राजा पर अत्यन्त क्रुद्ध हुए और उन्होंने राजा को शाप दिया, "राक्षस होजाओ" राजा भी वशिष्ठ को शाप देने के लिये उद्यत हुए । परन्तु महिषी दमयन्ती के कहने से राजा कल्मषपाद रुक गये । शाप के लिये हाथ में लिये जल को उन्होंने अपने पैरों पर छोड़ दिया जिससे उनका पैर काला हो गया तभी से सौदास का नाम कल्मषपाद हुआ । पुनः राजा के अनुनय करने पर वशिष्ठ ने १२ वर्ष के लिये एक व्रत का अनुष्ठान बतलाया, जिससे राजा कल्मषपाद १२ वर्ष के बाद शापमुक्त हो गये । शापमुक्त होने के सातवें वर्ष राजा का परलोक वास हो गया ।

कल्याणदास=ये व्रज में रहते थे । सन् १५७५ ई० में वर्तमान थे । इनके बनाये राग बड़े रोचक होते थे ।

कल्याणदेवी=गौडेश्वर राजा जयन्त की कन्या का नाम । इनका विवाह काश्मीर के राजा जयापीड के साथ हुआ था । ईसा की आठवीं सदी में राजा जयापीड गौडदेश में आये हुए

थे और उसी समय कल्याणदेवी से उनका विवाह भी हुआ था। (राजतरङ्गिणी)

कल्याणवर्मा=ये एक प्रसिद्ध ज्योतिषी थे। इनका बनाया सारावली नामक ज्योतिष का एक ग्रन्थ है जिससे विदित होता है कि ये वराह मिहिर से पीछे उत्पन्न हुए थे। ये देवग्राम निवासी बघेल क्षत्रिय थे। ब्रह्मगुप्त के ग्रन्थ में इनके नाम मिलने से ऐसा अनुमान किया जाता है कि ये उनके समकालीन या कुछ पूर्वकालीन थे। पं० सुधाकर द्विवेदीजी सन् ५७८ ई० इनका समय मानते हैं।

कल्याणी=महाराष्ट्र देश की राजधानी। चालुक्य वंशियों की यह प्राचीन राजधानी है। इस नगरी के पश्चिम किनारे कैलास नामक नदी बहती है।

कल्हण=ये काश्मीर निवासी थे और राजा जयसिंह के समय में जीवित थे। इन्होंने काश्मीर का इतिहास संस्कृत में लिखा है जिसका नाम राजतरङ्गिणी है। उसमें एक स्थान पर कल्हण ने लिखा है—

"लौकिकेऽब्दे चतुर्विंशे शककालस्य साम्प्रतम्।
सप्तत्यत्यधिकं यातं सहस्रं परिवत्सरा॥"

इससे इनका समय स्पष्ट ही विदित होता है। बहुत लोग कहते हैं कि भारतवर्ष में श्रृङ्खलाबद्ध प्राचीन इतिहास यदि कोई विश्वास योग्य है तो वह कल्हण रचित राजतरङ्गिणी ही है।

कबन्ध=राक्षस विशेष। यह राक्षस ऋषियों को पीड़ित किया करता था। स्थूलशिरा नामक एक ऋषि ने शाप दे कर इसे कुत्सित राक्षस बना दिया, परन्तु जब इसने अनुनय किया तब प्रसन्न हो कर महर्षि ने कहा कि श्रीरामचन्द्रजी के द्वारा तुम्हारी बाहें काटी जाने पर तुम मुक्त हो जावोगे। यह काश्यपपत्नी दनु के गर्भ से उत्पन्न हुआ था और ब्रह्मा ने इसे दीर्घायु होने का वर दिया था। ब्रह्मा के वर से गर्वित हो कर यह सदा इन्द्र का अपमान किया करता था, इस कारण इन्द्र ने वज्राघात से इसके ऊरु मुख और मस्तक तोड़ दिये। राक्षस बोला—ब्रह्मा के वर से मैं दीर्घायु हुआ हूँ परन्तु इस समय आपके वज्राघात से भग्न शिर और भग्न मुख हो कर किस प्रकार जी सकता हूँ। ब्रह्मा के वचन को तो व्यर्थ नहीं होना चाहिये। तब देवराज इन्द्र ने इसके दोनों भुजाओं को योजन परिमित दीर्घ बना दिया और इसके पेट के भीतर तीक्ष्ण दांत युक्त मुँह बना दिया। तब से ये दण्डकारण्य में रहने लगा और सिंह व्याघ्र आदि को हाथों से पकड़ कर खाने लगा। जिस समय रामचन्द्र दण्डकारण्य में आये, उस समय उनके द्वारा छिन्न बाहु होकर कबन्ध शापमुक्त हुआ था। (रामायण आरण्यकाण्ड)

कवश=प्राचीन ऋषि। इन्होंने वेदों के कई सूक्तों की रचना की है। कहते हैं ये शूद्र थे।

कवि=(१) चाक्षुष मनु के एक पुत्र का नाम।
(२) भागवत के अनुसार प्रियव्रत के एक लड़के का नाम।
(३) ऊरुक्षय नामक एक क्षत्रिय पुत्र का नाम जो पीछे से ब्राह्मण हो गया था।
(४) शुक्राचार्य का नाम।

कवि कर्णपूर=(१) इनका परमानन्द दास नाम था। चैतन्य महाप्रभु इनको पुरीदास कहते थे। ये शिवानन्द सेन के पुत्र थे और १४४६ शक में इनका जन्म हुआ था। नदिया ज़िले के कचड़ा पाडा नामक गांव में अभी भी इनके वंशज विद्यमान थे। अपनी कवित्व शक्ति से इन्होंने "कवि कर्णपूर" की उपाधि पायी थी। इनके बनाये ये ग्रन्थ पाये जाते हैं—आर्यशतक, चैतन्यचरितामृत, चैतन्यचन्द्रोदय नाटक, आनन्द वृन्दावन चम्पू, कृष्णलीलोद्देश दीपिका, गौरगणोद्देश दीपिका और अलङ्कार कौस्तुभ।
(२) वैद्य विशारद विद्या विनोद दत्त के ये पुत्र थे। १५०० शाके में ये वर्तमान थे।

कवि केशरी=इनके नाम-धाम का कुछ पता नहीं है। ये केवल इसी उपाधि से प्रसिद्ध हैं। इन्हों ने तोटक छन्द में हरिकेलिकलावती नामक कृष्ण लीला विषयक एक ग्रन्थ बनाया है। यह ग्रन्थ छप गया है।

कवि चन्द्र=द्वितीय कविकर्णपूर के पुत्र का नाम, इन्होंने रत्नावली नामक एक वैद्यक ग्रन्थ की रचना की थी। इसके अतिरिक्त रामचन्द्र चम्पू नामक एक और भी ग्रन्थ इनका बनाया है।

कविराम=हिन्दी के एक कवि का नाम । इनका जन्म सन् १८२४ ई० में हुआ था इनकी कविता सरस और सरल हुआ करती थी । विशेषतः नीति सम्बन्धी इनकी कविता बड़ी सुन्दर रोचक और उपदेशप्रद होती थी

कवि राज कवि=हिन्दी के एक कवि का नाम । इनका जन्म सन् १८२४ ई० में हुआ था । ये एक साधारण कवि थे । ये कविराज कम्पिला के सुखदेव मिश्र से भिन्न हैं । यद्यपि ये भी अपनी कविताओं में कविराज अपना नाम लिखते थे, परन्तु यह उनकी उपाधि थी नाम नहीं ।

कवीन्द्र=ये नरवर बुन्देलखण्ड के रहने वाले ब्राह्मण थे और सन् १७९७ ई० में उत्पन्न हुए थे । इन के पिता का नाम सखीसुख था और इनके बनाये ग्रन्थ का नाम "रसद्दीप" है ।

कविराज=ये प्रसिद्ध कवि संस्कृत के राघव पाण्डवीय नामक श्लेषमय काव्य के रचयिता हैं । इनकी गणना सुबन्धु और बाण भट्ट के साथ की जाती है । राघव पाण्डवीय में इन्होंने अपने को जयन्तपुर (जो आसाम में है) के राजा कामदेव का सभासद बतलाया है । यह राजा सन् ११८१ ई० में वर्तमान था । राघव पाण्डवीय काव्य में मुञ्जनामक एक राजा का भी उल्लेख किया गया है । जिससे मालवराज भोज देव के पितृव्य मुञ्जराज से कविराज अर्वाचीन साबित होते हैं । एक श्लोक से उमापतिधर जयदेव आदि के समकालीन सिद्ध होते हैं ।

"गोवर्द्धनश्च शरणो जयदेव उमापतिः
कविराजश्च रत्नानि समितौ लक्ष्मणस्य च" ।

यह लक्ष्मणसेन बंगाल का सेनवंशी राजा था और सन् १११६ ई० में वर्तमान था । अतएव कविराज का भी वही समय सिद्ध हुआ । कुछ लोगों का कहना है कि कविराज केवल उपाधि है इनका नाम कुछ और होगा ।

कबीर=ये कबीर पन्थी सम्प्रदाय के प्रवर्तक थे । काशी के समीप किसी छोटे से ग्राम में कबीर दास का जन्म पन्द्रहवीं शताब्दी में हुआ था । इनके जन्म के विषय में यह प्रवाद प्रचलित है कि एक धार्मिक विधवा ब्राह्मण बालिका एक साधु की परिचर्या किया करती थी । साधु ने प्रसन्न होकर ब्राह्मणी को आशीर्वाद दिया कि "तुम पुत्रवती हो" आशीर्वाद सुनकर ब्राह्मणी डरी और बोली, महात्मन् यदि मेरे अब पुत्र हुआ तो समाज में मेरी निन्दा होगी । साधु बोला कि जो बात मैं कह चुका हूँ अन्यथा नहीं हो सकती परन्तु समाज में तुम निष्कलङ्क समझी जाओगी और लोग तुममें श्रद्धा करेंगे । यथा समय उस ब्राह्मणी के एक पुत्र हुआ, लोकलज्जा से डर कर उस ब्राह्मणी ने सद्योजात पुत्र को एक तालाब के किनारे रख दिया । प्रातः काल ईलू नामक एक मुसल्मान जुलाहा आया, उसने उस लड़के को उठा लिया । इसके कोई सन्तान नहीं थी । अतएव ये दोनों अत्यन्त प्रेम से उस लड़के का लालन पालन करने लगे ।

कबीर ने अपने बड़े बूढ़ों के साथ स्वजातीय व्यवसाय की बड़ी उन्नति की । कबीर के पुत्र का नाम कमाल था । यह कबीर के औरसजात पुत्र नहीं थे । इनके विषय में एक जनश्रुति प्रचलित है । कहते हैं— एक दिन कबीर काशी में गङ्गा किनारे होकर जारहे थे । इतने में उन्हें श्रृगालों का चीत्कार सुनायी पड़ा । कबीर ने श्रृगालों की बातें समझ लीं । श्रृगाल कह रहे थे—गङ्गा में बहता हुआ यह मुर्दा यदि किनारे आजाये तो हम लोग इस के मांस से तृप्त होंगे । कबीर ने श्रृगालों का अभिप्राय जानकर मुर्दे को किनारे लगा दिया किनारे पर मुर्दे को लगाते ही मछलियों ने कहा—हमारे मुख का ग्रास छीनना क्या अन्याय नहीं है । इस झगड़े को देख कबीर ने उस मुर्दे को जीवित कर देना ही निश्चित किया । कबीर ने उस मुर्दे को जिलाया और उसका कमाल नाम रख कर उसे पुत्र के समान मानने लगे ।

कबीर के मन में बहुत ही थोड़ी अवस्था में धर्म और भक्ति भाव उत्पन्न होगया था । व्यवसाय द्वारा जो वे कमाते उससे घर का खर्च करके जो बचता उसे वे दीन दुखियों को बांट दिया करते थे । उस समय रामानन्दस्वामी विद्यमान थे । कबीर उनके पास दीक्षा लेने को गये परन्तु जब इन्होंने सुना कि रामानन्द

स्वामी ब्राह्मण से अन्य को दीक्षा नहीं देते तब वे अत्यन्त हतोत्साह हुए। उन्होंने सोचा कि बिना कौशल रचे इनसे काम निकलना कठिन है। यह सोच कर कबीर गङ्गा के किनारे मुर्दा बन कर पड़ गये। स्वामी रामानन्द भी उसी घाट पर स्नान करने जाया करते थे। दैवयोग से उस दिन बदली भी थी और अन्धेरा छाया हुआ था, पास की वस्तु भी दिखलाई नहीं पड़ती थी, यथा समय रामानन्द स्वामी जब स्नान कर के लौटने लगे तब उनका पैर कबीर पर पड़ा। मुर्दा समझ कर रामानन्द स्वामी कहने लगे " राम कह, राम कह" कबीर ने रामानन्द स्वामी से इस प्रकार मूल मन्त्र की दीक्षा पायी और कहा; गुरुदेव हमारी यह दीक्षा हुई।

कबीर ने अपने घर आकर शिर मुंडाय तिलक और माला धारण की। माता के पूँछने पर कबीर ने कहा मैं रामानन्द स्वामी का शिष्य हुआ हूँ। उनकी माता ने उस समय के दिल्ली के बादशाह सिकन्दर लोदी के दरबार में फ़रयाद की। परन्तु कबीर के धर्मभाव और युक्तियुक्त वचन से परास्त हो कर बादशाह ने कबीर को छोड़ दिया। ये सन् १४०० ई० में वर्तमान थे, कहा जाता है कि ये तीन सौ वर्ष तक जीते रहे। इनके बनाये ग्रन्थ ये हैं—

१ सुखनिधान, २ गोरखनाथ की गोष्ठी, ३ कबीरपांजी, ४ बलख की रमायनी, ५ रामानन्द की गोष्ठी, ६ आनन्दरामसागर, ७ शब्दावली, ८ मङ्गल, ९ बसन्त, १० होली, ११ रेखता, १२ झूलना, १३ खमरा, १४ हिण्डोला, १५ बारहमासा, १६ चाँचर, १७ चौंतीस, १८ आलिफनामा, १९ रमाइनी, २० साखी, २१ बीजक। इनके अतिरिक्त "अगमवाणी" नामक एक और भी पुस्तक है।

(आदर्शमहात्मागण)

कबीरपन्थी=कबीर का चलाया धर्मसम्प्रदाय। रामानन्द के शिष्यों में कबीरदास प्रधान थे। इन्होंने जो धर्म पन्थ चलाया है उसका नाम कबीरपन्थी है। कबीरपन्थी सम्प्रदाय में अन्य देवताओं से विष्णु को प्रधान आसन दिया जाता है। रामानन्दी वैष्णवों से इनके आचार व्यवहार में बहुत ही अन्तर है तथापि रामानन्दी वैष्णवों के साथ इनकी सहानुभूति रहती है। इनमें देव देवी की पूजा निषिद्ध है। इनमें न तो पूजा करने का मन्त्र ही माना जाता और न प्रणाम करने की रीति। यह पन्थ अवश्य कबीर की पूजा करता है। कीर्तन ही इनकी उपासना है। गृहस्थ कबीरपन्थी देवी देवताओं की पूजा करते हैं परन्तु संन्यासी पूजा से बरी कर दिये जाते हैं। कबीर के मुख्य बारह शिष्य इस सम्प्रदाय के प्रचारक समझे जाते हैं। कबीरपन्थी सम्प्रदाय की अनेक शाखाएँ हैं इनके टेसकबिरी, दानकबिरी, मङ्गलकबिरी, आदि नाम हैं।

(भारतवर्षीय इतिहास)

कश=राजा सुहोत्र के पुत्र का नाम। ये सुहोत्र पुरूरवा के पुत्र आयु के वंशज थे। कश, काशी के राजा थे।

कश्य=एक राजकुमार का नाम। ये सेनजित् के पुत्र थे।

कश्यप=विख्यात प्रजापति ऋषि। ये ब्रह्मा के पौत्र और मरीचि के मानस पुत्र थे। किसी के मत से मरीचि के औरसकला नाम की उनकी स्त्री के गर्भ से इनकी उत्पत्ति मानी जाती है। महर्षि कश्यप की सात स्त्रियाँ थीं। दिति से दैत्य, अदिति से आदित्य (देवता), विनता से पक्षी, कद्रु से सर्प, सुरभि से गौ महिष आदि, सरमा से कुकुर आदि और दनु से दानव उत्पन्न हुए।

(ब्रह्मवैवर्तपुराण)

मार्कण्डेयपुराण और हरिवंश में लिखा है कि कश्यप की १३ स्त्रियाँ थीं। जिनके नाम ये थे, दिति, अदिति, दनु, विनता, खसा, कद्रू, मुनि, क्रोधा, अरिष्टा, इरा, ताम्रा, इला और प्रधा। आर्ष रामायण के आदिकाण्ड में कश्यप की वंशावली इस प्रकार दी गयी है।

कश्यायना=दक्ष की कन्या की सन्तान। जिसका विवाह एक ऋषि से हुआ था।

कसेरु=भारत के नौ वर्षों में से एक वर्ष का नाम।

कहोड=महर्षि उद्दालक के शिष्य का नाम। ये प्रसिद्ध ऋषि अष्टावक्र के पिता थे।

कक्षसेन=चन्द्रवंशी राजा परीक्षित् के आठ पुत्रों में से एक पुत्र का नाम। ये सब से बड़े थे।

कक्षेयु=पुरुवंशी राजा रौद्राश्व के पुत्र का नाम। रौद्राश्व के पाँच पुत्र थे। उनमें ये मध्यम थे।

का=दक्षप्रजापति का दूसरा नाम। मूत्रस्थान और मलस्थान के देवता।

काकमुख=एक प्राचीन जाति। पहले एक जाति के लोगों को चिढ़ाने के लिये उनका नाम काकमुख लोगों ने रख दिया था।

काकवर्ण=मगध के राजाओं के एक राजा का नाम। इन्होंने ३६ वर्ष तक राज्य किया था। ये शिशुनाग के पुत्र थे।

काकस=प्राचीन जाति का नाम। यह जाति जहाँ से सिन्धुनद निकला है वहीं सिन्धुनद के तट पर रहती थी।

काकुत्स्थ=(देखो काकुत्स्थ)

काञ्चन=पुरूरवा के वंशज भीम के पुत्र का नाम।

काञ्चनप्रभ=अमावसु के पौत्र, और भीम के पुत्र का नाम।

कात्यायन=(१) विख्यात धर्मशास्त्रकार। ये विश्वामित्र वंश में उत्पन्न हुए थे। इनके बनाये कात्यायन श्रौतसूत्र और कात्यायन गृह्यसूत्र का पण्डित-समाज में विशेष आदर है। गृह्यसूत्र में ब्राह्मणों के दशविध संस्कार और वास्तु क्रिया आदि का विवरण दिया गया है।

(२) विख्यात स्मृतिशास्त्रकार। ये महर्षि गोभिल के पुत्र थे और इनके बनाये स्मृतिग्रन्थ का नाम कर्मप्रदीप है।

(३) प्रसिद्ध वैयाकरण। इनका दूसरा नाम वररुचि भी था। ये वररुचि राजा विक्रमादित्य की सभा के नवरत्नों में के वररुचि से भिन्न थे। कात्यायन वैदिक मुनि हैं और पाणिनि के समकालीन हैं। इनके रचित ग्रन्थों के नाम वाजीसूत्र, कर्मप्रदीप, प्राकृत व्याकरण और पाणिनीय व्याकरण पर वार्त्तिक हैं। कथा सरित्सागर में लिखा है कि कात्यायन बचपन ही से अति अद्भुत बुद्धिमान् थे। वे नाट्यशाला में किसी नाटक का खेल देखते तो उसे अपनी माता के निकट आकर समग्र आद्योपान्त कह दे सकते थे और जनेऊ होने के पहले ही व्याडी आदि मुनियों से सुने प्रातिशाख्य को कण्ठाग्र कह जा सकते थे। ये वर्षमुनि के शिष्य थे और वेद वेदाङ्ग में इतने निपुण थे कि पाणिनि भी इनकी समानता नहीं कर सके। इनसे स्पर्द्धा करके पाणिनि ने महादेव की आराधना की और पाणिनि ने इन्हें जीता। ये राजा नन्द के मन्त्री थे। राजा नन्द पाटलीपुत्र के राजा चन्द्रगुप्त के पिता हैं। चन्द्रगुप्त का राज्यकाल सन् ई० के पूर्व चौथी शताब्दी में निश्चित हुआ है। इसके अनुसार खृष्टीय चौथी शताब्दी या उसके भी कुछ पूर्व कात्यायन का समय माना जा सकता है। रमेशचन्द्रदत्त कहते हैं कि पाणिनि का समय खृष्टीय सदी से ८०० वर्ष पूर्व है और वे अनुमान करते हैं कि कात्यायन पाणिनि के समकालीन होने के कारण नवीं सदी में रहे होंगे। डाक्टर भाण्डारकर कात्यायन का समय खृष्टीय सन् से पूर्व चौथी सदी के पूर्वार्द्ध में मानते हैं। कात्यायन का जन्म कौशाम्बी में हुआ था। इनके पिता का नाम सोमदत्त था। वेद की सर्वानुक्रमणी भी इन्हीं कात्यायन मुनि की बनायी हुई है। महाराज नन्द के समकालीन और मन्त्री मानने से कात्यायन मुनि का समय खृष्ट के पूर्व ३१५ वर्ष से (जब चन्द्रगुप्त राज्य पर बैठा था) भी पहिले स्थिर होता है।

कात्यायनसंहिता=इस संहिता के उनतीस अध्याय हैं। इनमें पाँच सौ से अधिक श्लोक हैं। इसमें कितने ही स्थानों पर गद्य भी लिखे गये हैं। गृह्यसूत्रकार गोभिल ने जिन कर्मों का विवरण किया है, उन्हीं कर्मों के कठिन भाग का विवरण कात्यायनमुनि ने अपनी संहिता में किया है। श्राद्ध और सदाचार का वर्णन इसमें कई अध्यायों में किया गया है। इस संहिता में गौरी, पद्मा, शची, मेधा, सावित्री, विजया, जया, देवसेना, स्वधा, स्वाहा, धृति, पुष्टि, तुष्टि और आत्मदेवता मातृगण तथा गणेश की पूजा का विधान है। सकल कर्मों में गणेश और मातृकागण की पूजा करने की आज्ञा है। चित्र प्रतिमा और पट की पूजा करने की विधि लिखी है। तर्पण श्राद्ध पिण्ड और अशौच आदि का भी इस संहिता में विधान है। ज्येष्ठ की वर्तमानता में कनिष्ठ का ब्याह किस प्रकार करना चाहिये। कात्यायन नामक अनेक ऋषियों का

पता मिलता है । परन्तु संहिताकार कात्यायन महर्षि गोभिल के पुत्र थे ।

(भारतवर्षीय इतिहास)

कात्यायनी=भगवती की मूर्ति विशेष । महर्षि कात्यायन ने सब से पहले इस मूर्ति की पूजा की थी। इसी कारण इनका नाम कात्यायनी पड़ा। सौ वर्ष के युद्ध के अनन्तर महिषासुर ने देवताओं को राज्यभ्रष्ट कर दिया, देवता लोग ब्रह्मा को आगे करके शिव और विष्णु के समीप उपस्थित हुए। हरि हर ब्रह्मा के मुख से देवताओं की विपत्ति का हाल सुन अत्यन्त क्रुद्ध हुए। तीनों देवों के मुखमण्डल से एक तेज निर्गत हुआ। उस तेज ने एक स्त्री की मूर्ति धारण की। उस भयङ्कर स्त्री को देवताओं ने अपने अपने अस्त्र दिये। महिषासुर अपने सेना और सेनापति के साथ देवी से युद्ध करके मारा गया । यह सिंहवाहिनी कात्यायनी आश्विन कृष्ण चतुर्दशी को उत्पन्न हुई थी और उसी महीने की शुक्ल सप्तमी, अष्टमी और नवमी को कात्यायन की पूजा ले कर देवी ने दशमी को महिषासुर का वध किया था । यह देवीमूर्ति दशभुजा है। महिषासुर रम्भासुर का पुत्र था। अपने ही वर के प्रभाव से महादेव रम्भासुर के तीन बार पुत्र रूप से उत्पन्न हुए थे । तीनोंबार भगवती ने मूर्ति धारण कर महिषासुर का नाश किया था। महिषासुर अत्यन्त मायावी था । उसने एक समय कात्यायन के एक शिष्य को मनोहर स्त्री मूर्ति धारण करके विठलाना चाहा था, हिमालयवासी कात्यायन यह जान कर अत्यन्त क्रुद्ध हुए और उन्होंने उसे शाप दिया कि तुमने स्त्री का रूप धर कर जो हमारे शिष्य की तपस्या में विघ्न डालने की चेष्टा की, अतः स्त्री ही के द्वारा तुम्हारी मृत्यु होगी । इसी शाप से महिषासुर भगवती के हाथ से मारा गया ।

(मार्कण्डेयपुराण)

कादम्बरी=बाणभट्टनिर्मित ग्रन्थ विशेष । इस ग्रन्थ की नायिका का नाम कादम्बरी है, जो चित्ररथ नामक गन्धर्वराज की कन्या थी ।

कान्यकुब्ज=(देखो कनौज)

कापालिक=शाक्त सम्प्रदाय की एक शाखा । पुस्तकों के देखने से करारी नामक एक शाक्त सम्प्रदाय की शाखा का पता चलता है । इसी करारी सम्प्रदाय को अघोरघण्ट या कापालिक भी कहते हैं । कहते हैं कि सात आठ सौ वर्ष पूर्व काली चामुण्डा छिन्नमस्ता आदि देवियों के सामने ये नरबलि दिया करते थे। शङ्करदिग्विजय में लिखा है कि कापालिक उच्छिष्ट गणपति या हैडिम्ब सम्प्रदाय के अन्तर्गत है। इस समय कापालिकों का बड़ा अपवाद संसार में फैला है। इसमें सन्देह नहीं कि भारत के बुरे दिनों में इस सम्प्रदाय के भी कतिपय मनुष्य उच्छृङ्खलता और व्यभिचार दोषग्रस्त हो गये थे, परन्तु उनके उद्देश्य आदि को बिना जाने कभी वे बुरे नहीं कहे जा सकते। यद्यपि बलिदान आदि की निन्दित प्रथा इस सम्प्रदाय में इस समय पायी जाती है, जो इनके सचमुच अधःपात के सूचक हैं; तथापि इनके ग्रन्थ देखने से स्पष्ट मालूम होता है कि पार्थिव शरीर का बलिदान करने की आज्ञा इनके ग्रन्थों में नहीं है । किन्तु काम क्रोध आदि रिपुओं के बलिदान का ही उपदेश है।

कामदेव=प्रेम के देवता । ये कृष्ण या विष्णु के औरस और लक्ष्मी के गर्भ से उत्पन्न हुए थे । जो उस समय माया या रुक्मिणी कही जाती थी। दूसरी जगह ऐसा लिखा मिलता है कि ये ब्रह्मा से स्त्री के रूप में उत्पन्न हुए हैं। इनके रूप के विषय में लिखा है कि ये सर्वदा युवावस्था में रहते हैं, अपनी माता के साथ कभी कभी घूमने जाते और उनसे बातें भी करते हैं । ये कभी कभी तोतों पर सवार हो कर चांदनी में घूमने भी निकलते हैं। इनकी ध्वजा पर मछली का चिन्ह है, और ध्वजा के कपड़े की ज़मीन लाल है। (देखो अनङ्ग)

कामन्दक=इनका बनाया कामन्दकीय नीतिसार नामक एक ग्रन्थ है। इसमें इन्होंने चाणक्य का नामोल्लेख किया है। इससे निश्चय होता है कि ये चाणक्य की अपेक्षा अर्वाचीन हैं। यह चाणक्य वही हैं जिन्हों ने मगध के राजा नन्द का विनाश कर चन्द्रगुप्त को उनके सिंहासन पर बैठाया। चाणक्य का समय खृष्ट ई० से ३१५ वर्ष पूर्व निश्चित हुआ है । अतएव कामन्दक

का समय उनसे कुछ पूर्व माना जाना उचित है। क्योंकि कामन्दक प्राचीन ग्रन्थकार समझे जाते हैं।

कामरूप=प्राचीन एक विस्तृत जनपद का नाम। वर्तमान असाम, कूचविहार, जलपाईगुड़ी और रङ्गपुर आदि कामरूप राज्य के अन्तर्गत थे। तन्त्रों में लिखा है कि करतोया नदी से ले कर दिकरवासिनी * पर्यन्त कामरूप देश विस्तृत था। इसकी उत्तर सीमा में कञ्जगिरि, पश्चिम में करतोया नदी, पूर्व में दिक्षु नदी और दक्षिण में ब्रह्मपुत्र या लाक्षा नदी, का सङ्गम स्थल है। शास्त्रों में लिखा है कि कामरूप त्रिकोणाकार है। इसकी लम्बाई एक सौ योजन और चौड़ाई तीस योजन है। कामरूप राज्य के अधीन नौ लाख ग्राम विद्यमान थे। किस समय में किस राजा ने कामरूपनगर की प्रतिष्ठा की इस विषय का कुछ भी विवरण नहीं पाया जाता। चीन परिव्राजक हुएनत्साङ्ग ने कामरूप के विषय में लिखा है। प्रवल प्रतापशाली कामरूप राज्य की सीमा दो हज़ार माइल है। कामरूप के उपजाऊ खेत में नारिकेल धान्य यव आदि अधिकता से उत्पन्न होते हैं। इस राज्य में नदी सरोवर की अधिकता के कारण कभी भी जलकष्ट वहाँ के वासियों को नहीं सहना पड़ता। नातिशीतोष्ण अनुकूल जलवायु के कारण वहाँ के साधु सदाचारी निवासी प्रसन्नता से रहते थे। वहाँ के रहने वाले छोटे और काले होते थे। वे सब कर्तव्यपरायण होते थे, बौद्ध धर्म में उनकी श्रद्धा नहीं थी। अनेक हिन्दू देव देवियों के मन्दिरों में बलिदान करते थे। उस समय तक यहाँ एक भी बौद्ध मठ या सङ्घाराम नहीं था। उस समय भास्कर वर्मा वहाँ के राजा थे। ये ब्राह्मण जाति के थे। इन्हीं भास्करवर्मा ने हर्षवर्द्धन के साथ परिव्राजक का परिचय कराया था। चीनी परिव्राजक की बातों से अनुमान किया जाता है कि ब्रह्मपुत्र या लौहित्यनद का पश्चिम वर्तमान असाम, कूचविहार और भूतान कामरूप के अन्तर्गत थे। पण्डित कहते हैं कि ब्रह्मपुत्र के दक्षिण तीरस्थ गोहाटी नामक नगर में कामरूप की राजधानी थी। हुएनत्साङ्ग के लिखने के अनुसार खृष्टीय सातवीं सदी में भी गोहाटी कामरूप की राजधानी थी ऐसा समझा जाता है। आज कामरूप की वह दीर्घता नहीं है, इस समय कामरूप असाम के एक ज़िले का नाम है। उत्तर भूतान, दक्षिण खसिया गिरिश्रेणि, पश्चिम गोवाल पाड़ा और पूर्व में नगायां, इस समय कामरूप की यही सीमा है।

पुरातन ग्रन्थों को देखने से कामरूप राज्य में अनेक तीर्थों का पता चलता है। तन्त्रों में लिखा है कि विस्तृत कामरूप राज्य में सिद्धपीठ, महापीठ, ब्रह्मपीठ, विष्णुपीठ, रुद्रपीठ प्रभृति अनेक पीठ हैं। इसके अतिरिक्त अन्य पीठों का भी परिचय मिलता है। उनमें सौमारपीठ, श्रीपीठ, रत्नपीठ, और कामपीठ आदि प्रधान पीठ हैं। दिकरा नदी और भैरवी नदी के मध्य का स्थान सौमारपीठ कहा जाता है। तन्त्रशास्त्रों में लिखा है कि इसके उत्तर मानससरोवर पूर्व में सौशीलारण्य दक्षिण में ब्रह्मपुत्र और पश्चिम में स्वर्णनदी वर्तमान है। रत्नपीठ का वर्तमान नाम कूचविहार है। स्वर्णकोषी नदी से ले कर रूपिका नदी तक यह पीठ विस्तृत है। भैरवी और रूपटी नदी के मध्य में स्वर्णपीठ वर्तमान है। इन पीठों में कामाख्या पीठ या कामपीठ सब से प्रधान है। कामपीठ के थोड़ी दूर पर उग्रपीठ और ब्रह्मपीठ वर्तमान हैं।

(भारतवर्षीय इतिहास)

कामली=परशुराम की माता। इनका दूसरा नाम रेणुका था। ये इक्ष्वाकुवंशी रेणु नामक राजा की कन्या थीं। महर्षि जमदग्नि के साथ इनका ब्याह हुआ था। पिता की आज्ञा से परशुराम ने अपनी माता का शिर काट लिया था।

(हरिवंश)

कामवाला=अनेक फणधारी सर्पों का राजा। ये कलियुग की सन्तान थे।

---

* दिकर शब्द का अर्थ महादेव है। महादेव के साथ जो वास करती हैं उन्हींको दिकरवासिनी कहते हैं। पुरातन तत्त्ववित् कहते हैं कि मानसरोवर के पास दिकरवासिनी का मन्दिर है।

कामाक्षी=कामरूप देश के कामपीठस्थ देवता का नाम । कहते हैं कि सब से पहले कामरूप राज्य में नरकासुर ने कामाक्षी देवी का मन्दिर बनवाया था, इस विषय में एक किंवदन्ती प्रसिद्ध है । कहते हैं कि मदोद्धत नरकासुर ने एक समय कामाक्षी देवी से विवाह करने की इच्छा की, उस समय देवी का मन्दिर नहीं बना था । देवी ने कहा कि यदि एक रात में तुम हमारा मन्दिर मार्ग और तालाब बनवा दोगे तो मैं तुमसे ब्याह कर लूँगी । नरकासुर ने विश्वकर्मा को बुला कर उनके द्वारा मन्दिर बनवाना प्रारम्भ किया । रात्रि बीतने के पहले समस्त कार्य प्रायः समाप्त हो जायगा यह देख महामाया ने अनेक कुक्कुट बनाये, कुक्कुटों ने रात्रि समाप्ति की सूचना दी । तब देवी ने नरकासुर से कहा कि तुमने हमारा कहना नहीं किया अतएव मैं तुमसे विवाह करने को प्रस्तुत नहीं हूँ । इससे नरकासुर ने अत्यन्त क्रुद्ध हो कर कुक्कुटों का वध कर डाला । इस समय कामाक्षी देवी का जो मन्दिर वर्तमान है वह नरकासुर का ही बनाया है।

सन् १५६४ ई० में कालापहाड़ ने कामाक्षी देवी का मन्दिर नष्ट कर दिया था, उस समय नरनारायण वहाँ के राजा थे, इन्हींसे कूचबिहार के राजवंश का अभ्युदय हुआ है ।

(भारतवर्षीय इतिहास)

काम्पिल्य=हर्यश्व के पुत्र काम्पिल्य के नामानुसार इस नगर की स्थापना हुई है । बदायूँ और फ़र्रुखाबाद के बीच में गङ्गानदी के तीर पर यह नगरी विद्यमान थी । द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न की राजधानी इसी नगरी में थी । पीछे से यह नगर कनौज के अन्तर्गत मिला लिया गया । इस समय यह नगरी फ़र्रुखाबाद के अन्तर्गत क़ायमगंज तहसील के अधीन है ।

काम्यक=एक विस्तृत वन, जो सरस्वती के तीर पर है । दूसरे वनवास के समय पाण्डवों ने यहाँ वास किया था ।

काम्या=स्वायम्भुव मुनि की कन्या का नाम ।

कारूप=वैवस्वत मनु के पौत्र और राजा करूप के पुत्र ।

कार्तवीर्य=नर्मदानदी के तीरस्थ हैहय राज्य के अधिपति । राजा हैहय के नामानुसार उनके राज्य का भी हैहय नाम पड़ा था । कार्तवीर्य का दूसरा नाम था हैहय । इसे लोग अर्जुन भी कहते हैं । माहिष्मती नगरी में इनकी राजधानी थी । एक समय लङ्केश्वर रावण स्वर्णमय शिवलिङ्ग की पूजा करता था । वहाँ से आधयोजन की दूरी पर सहस्रबाहु कार्तवीर्य स्त्रियों के साथ जलक्रीड़ा करता था, कार्तवीर्य ने सहस्रबाहु द्वारा नर्मदा की धारा को रोक दिया । नर्मदा की धारा उलटी बहने लगी, उसीमें रावण की पूजा सामग्री भी बह गयी । इसका कारण ढूँढ़ने के लिये रावण ने अपने मन्त्री शुक और सारण को भेजा । मन्त्रियों ने कार्तवीर्य के जलक्रीड़ा का वृत्तान्त आ कर कह सुनाया । रावण उसको दण्ड देने के लिये वहाँ शीघ्र ही उपस्थित हुआ परन्तु त्रिलोकविजयी रावण कार्तवीर्य के द्वारा परास्त हो कर उसका बन्दी हुआ । रावण के पितामह महर्षि पुलस्त्य ने अपने पौत्र के पराभव की बातें सुनीं । महर्षि पुलस्त्य ने कार्तवीर्य के समीप आ कर रावण को छोड़ने की प्रार्थना की । कार्तवीर्य ने उनके कहने से रावण को छोड़ दिया । दोनों अपने अपने स्थान को चले गये । (रामायण उत्तरकाण्ड)

ब्रह्मवैवर्तपुराण में लिखा है—एक समय सेना सहित भूख प्यास से व्याकुल हो कर कार्तवीर्य जमदग्नि ऋषि के आश्रम के समीप ठहरे थे । जमदग्नि ने राजयोग्य भोजनादि से उनका सत्कार किया । जमदग्नि के पास कपिला नामक एक कामधेनु थी । इसी गौके प्रभाव से जमदग्नि ने राजा का सत्कार किया था । उस गौ के गुणों को सुन कर कार्तवीर्य ने ऋषि से गौ माँगी, जमदग्नि ने उसको देना अस्वीकार किया । राजा ने बलपूर्वक गौ को ले जाना चाहा परन्तु उसकी दैवीशक्ति से उत्पन्न सेनाओं से परास्त हो कर वह लौट गये । तदनन्तर अनेक सेना ले कर कार्तवीर्य ने जमदग्नि के आश्रम पर चढ़ाई की, जमदग्नि ने भी यथाशक्ति उनको रोका परन्तु अन्त में वे मारे गये । कपिला युद्धक्षेत्र से ब्रह्मलोक को चली गयी । पहले विष्णु ने ब्रह्मा को यह गौ दी थी ब्रह्मा ने भृगुमुनि को और भृगुमुनि ने जम-

दग्नि को दी थी। जमदग्नि की मृत्यु के समय उनके पुत्र परशुराम आश्रम में नहीं थे। आश्रम में आ कर उन्होंने पितृवध का वृत्तान्त अपनी माता रेणुका से सुना। परशुराम ने प्रतिज्ञा की—कार्तवीर्य के साथ इस पृथिवी को इक्कीस बार क्षत्रिय शून्य कर दूँगा। परशुराम और कार्तवीर्य से युद्ध हुआ कार्तवीर्य मारा गया।

(ब्रह्मवैवर्तपुराण)

कार्त्तिकेय=महादेव के पुत्र का नाम। चन्द्रमा की स्त्री कृत्तिका के दूध से इनका पालन हुआ था। इस कारण इस देवता का नाम कार्त्तिकेय पड़ा है। ये देवसेनापति हैं। तारकासुर का वध करने के लिये इनका जन्म हुआ था। इन्होंने देवसेना को परिचालित कर के तारकासुर को परास्त और वध किया था। तारकासुर का वध करके ये तारकारि नाम से प्रसिद्ध हुए। इनकी स्त्री का नाम देवसेना है। देवसेना ब्रह्मा की कन्या है। इसी देवसेना को षष्ठी देवी कहा जाता है। पुराणों में कार्त्तिकेय का जन्मविवरण इस प्रकार लिखा है। हिमालयराज ने अपनी कन्या पार्वती को शिव के साथ व्याहा था। पार्वती शिववीर्य धारण नहीं कर सकी अतएव पृथिवी अग्नि और क्रमशः कृत्तियों ने उस वीर्य को धारण किया उसीसे कार्तवीर्य उत्पन्न हुए।

(ब्रह्मवैवर्तपुराण)

काल=(१) भागवत के अनुसार ग्यारह रुद्रों में से एक का नाम।

(२) वसुध्रुव के पुत्र का नाम।

कालञ्जर=पुराणों के अनुसार एक पर्वत का नाम जो सुमेरु से उत्तर की ओर है।

कालकेय=कालकेय नामक दानवगण। इनको कालकञ्ज भी कहते हैं। ये वृत्रासुर के अनुचर थे, इन्द्र ने जब वृत्रासुर का वध किया, तब कालकेयगण प्राण बचाने के लिये समुद्र में छिप गये थे और रात को निकल कर आश्रमवासी ऋषियों को मारा करते थे। एक दिन उनलोगों ने वशिष्ठाश्रम में जा कर १९७ ब्राह्मणों को मार डाला। वे तपस्वियों का इस प्रकार उत्पीडन करने लगे जिससे यज्ञ आदि क्रियायें लुप्त होगयीं। इन्द्रादि देवता इससे रक्षा पाने की इच्छा से वैकुण्ठ में भगवान् के निकट गये। नारायण के परामर्श से ऋषिगण अगस्त्य के समीप गये और उनसे समुद्रपान करने के लिये उन लोगों ने अनुरोध किया। अगस्त्य ने समुद्र पान किया और देवताओं ने अनायास ही कालकेयों को मार डाला। (महाभारत व.)

बहुतों का अनुमान है कि कालकेय अनार्य और जलदस्यु थे। आर्यों के भय से वे स्थल छोड़ कर जल ही में रहा करते थे और चोरी से अपनी जीविका चलाते थे।

कालनेमि=(१)प्रसिद्ध दानव। पहले देवासुर संग्राम में इसने वरुण कुवेर आदि लोकपालों को जीता था। अन्त में विष्णु से युद्ध हुआ और उस युद्ध में यह मारा गया।

(२) राक्षस विशेष। यह विष्णु के भय से रावण के नाना सुमाली के साथ लङ्का से पाताल चला गया और वहाँ रहने लगा।

कालपुरुष=इनका दूसरा नाम यम है। ये ब्रह्मा के पौत्र और सूर्य के पुत्र थे। ये तपस्वी के वेष में अयोध्यापति रामचन्द्र के समीप उपस्थित हुए थे और एकान्त में जा कर अपनी मूर्त्ति धारण कर रामचन्द्र को वैकुण्ठ चलने के लिये ब्रह्मा का आदेश सुनाया। जिस समय कालपुरुष रामचन्द्र से बात करते थे उस समय औरों का वहाँ आना निषेध किया गया था, यदि कोई चला जाय तो रामचन्द्र उसको छोड़ देंगे यह भी ठहराव हुआ था। लक्ष्मण द्वार की रक्षा में नियुक्त थे। उसी समय दुर्वासा महर्षि रामदर्शन के लिये उपस्थित हुए। लक्ष्मण दुर्वासा के शाप से डर कर राम के निकट गये, और उन्होंने दुर्वासा के आने की बात कही। काल पुरुष के साथ किये हुए ठहराव के अनुसार रामचन्द्र ने अपने प्रिय भ्राता लक्ष्मण का त्याग किया। काल पुरुष का स्वरूप भयङ्कर है। इनके ६ मुख १२ बाहु २४ आँखें और ६ पैर थे। ये कृष्णवर्ण हैं और लाल वर्ण के कपड़े पहनते हैं।

(रामायण)

कालभैरव=शिव के अंश से उत्पन्न और उनके अनुचर ब्रह्मतत्त्व ज्ञानहीन ब्रह्मा का पांचवां मस्तक काटने के लिये इनकी उत्पत्ति हुई थी।

काशी में पापियों को दण्ड देना इनका काम है।

कालयवन=अतिशय पराक्रमी यवनपति। ये महर्षि गार्ग्य के अंश से उत्पन्न हुए हैं। जरासन्ध और उसके पक्ष के राजाओं ने कालयवन को कृष्ण के विरुद्ध मथुरा पर आक्रमण करने के लिये भड़काया था। ये महर्षि गार्ग्य के औरस और गोपाली नाम की गोपीवेशधारिणी अप्सरा के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। यादवों की सभा में गार्ग्य को नपुंसक कह कर हँसी की गयी। इस पर यादवों ने भी ठहाका मारा। गार्ग्य को इस से बड़ा क्रोध हुआ। वे पुत्रकामना से बारह वर्ष तक लौहचूर्ण खा कर कठोर तपस्या द्वारा महादेव की आराधना करने लगे। महादेव के वर से अन्धक और वृष्णि वंशियों को निग्रह करने वाला गार्ग्य को कालयवन नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। कालयवन का बाल्यावस्था में अपुत्रक यवनराज ने पालन किया था और यवनराज के मरने पर यही उनके अधिकारी हुए थे। कालयवन बहुत ही शीघ्र पराक्रमी राजाओं में गिना जाने लगा। जरासन्ध के साथ कालयवन की चढ़ाई की बात सुन कर यादव घबड़ा गये। वे श्रीकृष्ण के परामर्श से मथुरा छोड़ कर द्वारका चले गये। श्रीकृष्ण और कालयवन से युद्ध होने लगा। श्रीकृष्ण युद्धक्षेत्र से भाग कर हिमालय की गुहा में-जहाँ मान्धाता के पुत्र मुचकुन्द निद्रित थे-चले गये, और चुपचाप उनकी खाट के नीचे छिप गये। कालयवन भी श्रीकृष्ण के पीछे पीछे वहाँ उपस्थित हुआ। कालयवन निद्रित मुचकुन्द को कृष्ण समझ कर पैर से मार कर उठाने लगा। मुचकुन्द उठे और उन्होंने ज्यों ही कालयवन की ओर दृष्टि की त्यों ही वह भस्म हो गया।

(विष्णुपुराण)

कालयावी=प्राचीन एक महर्षि का नाम। ये महर्षि वास्कलि के शिष्य थे और ऋग्वेद के अध्यापक।

कालसूत्र=एक नरक का नाम। विष्णुपुराण में जो नरकों की सूची दी गई है उसमें कालसूत्र का भी नाम आया है। यमपुरी में एक पुरी है जिसमें पापियों को कष्ट देने के लिये बड़े बड़े यन्त्र संगृहीत हुए हैं।

काला=दक्षप्रजापति की एक कन्या का नाम।

कालापहाड़=बङ्गाल के सूबेदार सुलेमानसूर का यह सेनापति था। यह एक ब्राह्मण का पुत्र था, और इसका नाम निरञ्जनदेव था। इसके छोटे भाई का नाम प्रभात था। निरञ्जन हरदेव विद्यारत्न के पास संस्कृत अध्ययन करता था। इन्हीं विद्यारत्नजी की यथार्थ सुन्दर सुन्दरी नामक एक कन्या थी। एक दिन उसी गांव में देवीजी के मन्दिर के पास गोवध करना चाहता था, निरञ्जन भी उस समय वहाँ ही उपस्थित था उसने काजी को मारा पीटा। इस कारण वह पकड़ा गया और राजधानी में ला कर क़ैद कर लिया गया। निरञ्जनदेव उच्चकुल सम्भूत था और रूपवान् था। वह कारागार में यवनस्पृष्ट भोजन नहीं करता था इसी कारण वह बीमार पड़ गया। उसी कारागार के समीप सुलेमान के भाई ताजख़ां का महल था। ताजख़ां की पुत्री का नाम नज़ीरन था। वह बड़े दयालु स्वभाव की थी। उससे निरञ्जन का दुःख नहीं देखा गया, वह ब्राह्मण का बनाया भोजन छिप कर भिजवाती थी और छिप कर स्वयं भी जा कर उनकी सेवा शुश्रूषा करती थी। वह निरञ्जन के गुणों पर मोहित हो गयी और उसको यवन होने के लिये उसने बाध्य किया। निरञ्जन ने भी अपने छुटकारे का उपाय न देख कर मुसलमान होना स्वीकार किया। निरञ्जन का नाम कालापहाड़ हुआ, नज़ीरन के साथ कालापहाड़ का व्याह हो गया, नज़ीरन के प्रभाव से कालापहाड़ सेनापति हो गया। सेनापति हो कर हिन्दू और हिन्दू धर्म का नाश करना ही अपना कर्तव्य स्थिर किया। कामाक्षी देवी का मन्दिर इसने तोड़ दिया था। उड़िसा पर इसने चढ़ाई की और वहाँ के राजा को इसने बन्दी कर लिया। अब जगन्नाथजी की बारी आयी। कालापहाड़ ने जगन्नाथ पर चढ़ाई की। वहाँ के राजा का सेनापति प्रभात नामक लड़ने लगा। प्रभात बन्दी हुआ। तब हलायुध मिश्र जो हरदेव विद्यारत्न के सम्बन्धी थे लड़ने

लगे, इन्होंने कालापहाड़ की तलवार से आहत किया । उस दिन रात्रि होने के कारण युद्ध बन्द हुआ । प्रभात क़ैदी है, एक सुन्दरी नाम की स्त्री भी उसीके साथ कारागार में बन्द है, यह सुन्दरी उन्हीं हरदेव न्यायरत्न की कन्या है जिन्होंने कालापहाड़ को पढ़ाया था। प्रातःकाल कालापहाड़ सेनापति के सामने प्रभात उपस्थित किया गया, सेनापति उसके वध किये जाने की आज्ञा देने ही वाले थे अत एव उन्होंने पहले उसका परिचय पूँछा । परिचय पूँछने पर कालापहाड़ को मालूम हुआ कि यह तो मेरा भाई ही है । उसने प्रभात को छोड़ दिया । कालापहाड़ तलवार के आघात से व्याकुल था वह मरने के पहले अपना धन अपने भाई को दे गया ।

कालिका=वैश्वानर की एक कन्या का नाम । यह महर्षि कश्यप को व्याही गई थी, और इसीसे दानवों की एक शाखा की उत्पत्ति हुई थी ।

कालिकापुराण=इस पुराण में देवीमाहात्म्य वर्णित है और यह उपपुराण देवीभागवत के अन्तर्गत समझा जाता है । देवीभागवत का पाँचवाँ स्कन्ध कालिकापुराण कहा जाता है । महिषासुर और शुम्भ निशुम्भ का वध तथा सुरथ समाधि वृत्तान्त कालिकापुराण के अन्तर्गत है। इसके कर्त्ता व्यासदेव हैं। कालिकापुराण उपपुराण माना जाता है ।

कालिकावर्त=कनिंहम साहब का अनुमान है कि वृन्दावन का प्राचीन नाम कालिकावर्त था। यमुनातीरवर्ती कदम्ब वृक्ष पर कालिय नामक एक सर्प रहता था। उसके रहने के कारण यमुनाजल भी विषाक्त हो गया था अतएव श्री कृष्ण ने कालिय दमन किया है उसी सर्प के नामानुसार इस स्थान का भी नाम कालिकावर्त पड़ा है। ग्रीक ऐतिहासिकों ने वृन्दावन का नाम नहीं लिया है। एरियान के इतिहास में "क्लिसोबोरास" नामक स्थान का उल्लेख है । पाश्चात्य पण्डित इसी स्थान को वृन्दावन कहते हैं ।

कालिदास=संस्कृत के विख्यात महाकवि । इनके विषय में अनेक मत प्रचलित हैं—

(१) कतिपय विद्वान् कहते हैं कि कालिदास सातवीं सदी में उत्पन्न हुए थे। परन्तु सातवीं सदी के पहले के पुलाकेशिका शिलालेख और तन्त्रवार्तिक आदि ग्रन्थों में जब कालिदास के बनाये श्लोक पाये जाते हैं तब वे सप्तम शताब्दी के कैसे माने जा सकते हैं ।

(२) दूसरे पक्ष का कहना है कि कालिदास वराहमिहिर के समकालीन थे, क्योंकि दोनों विक्रमादित्य की सभा के नवरत्नों में से थे। परन्तु नवरत्न में जिनके नाम आये हैं उनके समय में विशेष अन्तर आने से नवरत्न की कल्पना पर कभी विश्वास नहीं किया जा सकता है ।

(३) तीसरा दल कहता है कि मातृगुप्ताचार्य ही का दूसरा नाम कालिदास था। मातृगुप्ताचार्य ६ ठीं सदी में उत्पन्न हुए थे इससे कालिदास का भी यही समय है । किन्तु यह मत इस कारण दुर्बल है कि कालिदास और मातृगुप्त ये दोनों एक ही के नाम हैं इसमें कोई प्रमाण नहीं और कालिदास का जहाँ नाम गिनाया गया है उसमें मातृगुप्त का पता नहीं—

" रघुकारः कालिदासो मेधारुद्रः कोटिजित् " ।

कालिदास के ये ही नाम पाये जाते हैं ।

(४) अन्य दलवाले कहते हैं कि दिङ्नागाचार्य कालिदास के प्रतिद्वन्द्वी थे। इसी बात को कालिदास ने मेघदूत में प्रकारान्तर से कहा है " दिङ्नागानां पथि परिहरन् स्थूलहस्तावलेपान् " । इससे कालिदास को दिङ्नाग के समकालीन मानना ही पड़ेगा। दिङ्नागाचार्य ६ठीं सदी में थे अतएव कालिदास का भी यही समय निश्चित होता है। परन्तु दिङ्नागाचार्य ६ठीं सदी में थे इसका कोई प्रमाण नहीं। प्रत्युत खृष्ट सदी से पूर्व के भट्टाचार्य ने दिङ्नाग का मत उद्धृत करके यह बात प्रमाणित कर दी है कि वह ६ठीं सदी के नहीं थे ।

इसी प्रकार अनेक मत कालिदास के समय निरूपण के विषय में आज कल प्रचलित हैं ।

कालिदास शक प्रवर्तक विक्रमादित्य के सभापण्डित थे यह बात प्रसिद्ध है । अतएव विक्रम के समय निर्णय होने से कालिदास का भी समय निर्णय हो जायगा । राजा विक्रम इस देश में अनेक हुए हैं । चीन परिव्राजक हुएनत्सांग ने

भी ६वीं सदी के विक्रम का उल्लेख किया है परन्तु वे शकप्रवर्तक नहीं थे। डा० पीटर्सन ने जो मन्दसोर का शिलालेख प्रकाशित किया है, जिसे डा० व्यूलर ने भी माना है उससे यह स्पष्ट ही पाया जाता है कि शकप्रवर्तक विक्रम देव खृष्ट वर्ष के पहले हुए हैं। इस बात को प्रो० फ्लीट भी मानते हैं। जैन तीर्थङ्कर महावीर स्वामी के परलोकवास के ४७० वर्ष के अनन्तर विक्रम उत्पन्न हुए थे। विक्रमादित्य शालिवाहन से भी प्राचीन हैं। शालिवाहन खृष्टीय प्रथम सदी में उत्पन्न हुए थे। उन्होंने विक्रम का शक नर्मदा के दक्षिण तीर पर मिटा कर अपना शक चलाया था। रामकूट नामक महल विक्रमादित्य ने ही शरावती में बनवाया था। वह महल खृष्टीय वर्ष से ५७ वर्ष पहले बनवाया गया था इस बात को ऐतिहासिक मानते हैं। इन्हीं विक्रम की सभा में कालिदास थे। रघुवंश आदि के बनाने वाले कालिदास इनसे भी प्राचीन हैं। क्योंकि प्रसिद्ध मीमांसक कुमारिल भट्ट ने अपने विश्वविख्यात तन्त्रवार्तिं नामक ग्रन्थ में कालिदास का श्लोक उद्धृत किया है। कुमारिल भट्ट शङ्कराचार्य के समकालीन थे, इस बात को सभी जानते हैं। शङ्कराचार्य युधिष्ठिर की सत्ताइसवीं सदी में वर्तमान थे, सुतरां कालिदास को उनसे भी प्राचीन मानना ही उचित और प्रमाणसिद्ध है।

कालिदास कितने हुए हैं, इसका पता लगाना एक कठिन काम है। भोजप्रबन्ध, प्रबन्धचिन्तामणि आदि ग्रन्थों से जाना जाता है कि भोज के समय में भी एक कालिदास वर्तमान थे। संस्कृत साहित्य में कालिदास शब्द एक प्रकार की उपाधि के समान समझा जाता है। क्योंकि जिनका असल नाम दूसरा था, उन्होंने भी अपने नाम में अभिनव कालिदास आदि शब्द जोड़ लिये थे। नवसाहसाङ्क रचयिता अपने को अभिनव कालिदास लिखते थे। किसी किसी हस्तलिखित नवसाहसाङ्क की पुस्तक में केवल कालिदास ही का नाम लिखा मिलता है।

कालिञ्जर=(दुर्ग) प्रसिद्ध महोबा राज्य के एक दुर्ग का नाम। यह किला बुन्देलखण्ड में है। यह दुर्ग महोबा के राजाओं के अधिकार में था, एक समय गुलाम कुतुबुद्दीन ने महोबा पर चढ़ाई की। उस समय परमर्दी नामक एक राजा वहाँ राज्य करते थे। कुतुबुद्दीन के आक्रमण के समय परमर्दी ने बड़ी दृढ़ता से कालिञ्जर की रक्षा की, परन्तु अन्त में जब उन्होंने सफलता की आशा नहीं देखी, तब दासराज को आत्मसमर्पण करके सन्धिस्थापन का प्रस्ताव करना चाहा। इससे रुष्ट हो कर मन्त्री ने उन्हें मार डाला और वह स्वयं लड़ने लगा। मन्त्री ने कुछ दिनों तक दुर्ग की रक्षा की, परन्तु अन्त में वह मारा गया और दुर्ग पर मुसल्मानों का अधिकार हो गया। परमर्दी की मृत्यु होने के उपरान्त उनके पुत्र वीरवर्मा और पौत्र भोजवर्मा ने महोबा का राज्य किया था। सन् १५४५ ई० में शेरशाह ने कालिञ्जर पर आक्रमण किया। उस समय चन्देल वंश के अन्तिम राजा किरातसिंह महोबा के राजा थे। उन्होंने प्राणपण से कालिञ्जर दुर्ग की रक्षा करना चाहा, परन्तु वे शेरशाह को रोक नहीं सके। इस युद्ध में किरातसिंह मारे गये और दुर्ग पर शेरसिंह का अधिकार हो गया। कालिञ्जर एक प्रसिद्ध तीर्थ है। रामायण महाभारत हरिवंश आदि पुराणों में कालिञ्जर का उल्लेख है। पद्मपुराण में लिखा है कि कालिञ्जर शैवों का तीर्थ है। फिरिश्ता में लिखा है कि केदारनाथ ने खृष्टीय ७वीं सदी में कालिञ्जर की स्थापना की थी। पीछे से कालिञ्जरराज ने मुसल्मानों के साथ युद्ध में बड़ी प्रसिद्धि पायी है। कुतुबुद्दीन ने कालिञ्जर के शिवमन्दिर के पास मसजिद बनवा दी है। (भारतवर्षीय इतिहास)

कालिन्दी=सूर्य की कन्या। इसका दूसरा नाम यमुना है।

कालिय=सर्पराज। गरुड़ के भय से ये नागराज समुद्र छोड़ कर व्रज के समीप एक बड़े तालाब में रहते थे। एक समय श्रीकृष्ण ने घूमते घूमते इस ह्रद को देखा। सर्पराज के भय से उस सरोवर के समीप का स्थान जनशून्य हो गया था। उस सरोवर के दोनों तट शैवाल आदि से छिपे हुए थे। उस सरोवर से

कालिय को हटाने का सङ्कल्प श्रीकृष्ण ने किया और तदनुसार वे उसमें कूद पड़े । कालिय ने श्रीकृष्ण को पकड़ लिया, और उसके अनुचर श्रीकृष्ण को काटने लगे, इससे व्रजवासी दुःखित हुए, नन्द और यशोदा रोने लगे, परन्तु श्रीकृष्ण कुछ भी विचलित नहीं हुए। उन्होंने धीरता से कालिय का फन ऊपर उठाया और उस पर नाचने लगे । कालिय त्राहि त्राहि करने लगा और रक्त उगलने लगा । कालिय ने अपने छुटकारे का कोई उपाय न देख श्रीकृष्ण से प्राणभिक्षा माँगी। श्रीकृष्ण बोले—इस सरोवर में मैं तुमको रहने नहीं दूँगा, तुम अपने परिवार के साथ समुद्र में चले जाओ, वहाँ यदि तुमको गरुड़ का भय है तो तुम गरुड़ को मेरा पदचिह्न दिखाना, इससे तुम्हारी रक्षा हो जायगी। सौभरि मुनि के शाप से गरुड़ कालिन्द-ह्रद में नहीं आसकते थे, इस कारण कालिय यहाँ रहने आया था। (हरिवंश)

काली=दस महाविद्या के अन्तर्गत प्रथम महाविद्या। शक्ति के उपासक लोग इनको आद्या शक्ति कहते और उपासना करते हैं। कालिकापुराण में इनके रूप के विषय में लिखा है कि इनके चार हाथ हैं, दाहिने हाथों में खट्वाङ्ग और चन्द्रहास, और वामहस्तद्वय में ढाल और पाश हैं । नरमुण्ड की माला इनका भूषण है। व्याघ्रचर्म इनका वस्त्र है। मस्तकशून्य शव इनका वाहन है।

(कालिकापुराण)

कावेरी=कुर्गदेश से निकल कर यह नदी भारत के दक्षिण प्रदेश में बहती हुई बङ्गाल की खाड़ी में मिलती है।

काशिराज=ये काश के पुत्र थे और काशी के राजा थे। इनके तीन कन्याएँ थीं, जिनके क्रमशः अम्बा, अम्बिका, और अम्बालिका नाम थे। काशिराज ने इन तीनों कन्याओं को स्वयम्वर द्वारा विवाहित करना निश्चित किया। इस के लिये उन्हों ने स्वयम्वरसभा एकत्रित की। उसी समय भीष्मपितामह सत्यवती के कहने से अपने सौतेले भाई विचित्रवीर्य के लिये कन्या ढूंढने निकले थे। उन्होंने बलात्कार से तीनों कन्याओं का हरण कर लिया । अन्यान्य राजाओं ने भीष्म से युद्ध किया, परन्तु सब परास्त हो गये। ज्येष्ठा अम्बा ने भीष्म से कहा कि मैंने शाल्वराज को वर लिया है और उन्होंने भी मेरी प्रार्थना की है, यह सुन भीष्म ने उसे जाने के लिये अनुमति दे दी । अम्बिका और अम्बालिका का विवाह विचित्रवीर्य के साथ यथासमय हो गया।

(महाभारत)

काशी=काशी राज्य एक प्रसिद्ध और ऐश्वर्यशाली राज्य था । वेद ब्राह्मण आरण्यक रामायण महाभारत आदि में काशी और काशिराजाओं का उल्लेख किया गया है । मन्त्रद्रष्टा ऋषियों की श्रेणी के गृत्समद आदि काशी के राजाओं का भी नाम मिलता है । शतपथब्राह्मण में अनेक बार काशी के नाम का उल्लेख किया गया है । बृहदारण्यक में लिखा है कि "दृप्त बालाकि र्हा नूचानो गार्ग्य आस, होवाचाजातशत्रुं काश्यं ब्रह्मते ब्रवाणीति ।" स होवाचाजातशत्रुः सहस्रमेतस्यां वाचि दद्मो जनको जनक इति जना धावन्तीति ।" इस से मालूम पड़ता है कि जनक का विद्यानुराग सुन कर जनसमुदाय काशी छोड़ मिथिला की ओर चला जाता है । इसी कारण काशिराज अजातशत्रु गार्ग्य से अपना क्षोभ प्रकाशित करते हैं । दशरथ के समय काशीनरेश कोशलराज के अधीन थे। दशरथ के अश्वमेध यज्ञ में काशीनरेश निमन्त्रित हो कर गये थे। वनवास से लौट कर आने पर रामचन्द्र के राज्याभिषेक के समय काशिराज प्रतर्दन निमन्त्रित हो कर अयोध्या गये थे । रामायण में लिखा है कि विदा के समय रामचन्द्र ने काशिराज का आलिङ्गन कर के कहा था—आपने युद्ध में सहायता पहुँचाने के लिये भरत के साथ उद्योग कर के मेरा बड़ा उपकार किया है। इस समय आप काशी पधारें । इससे रामचन्द्र और काशीनरेश में मित्रता का परिचय मिलता है । महाभारत के आदिपर्व से पाण्डव और काशिराज में परस्पर शत्रुता का परिचय मिलता है । क्योंकि भीष्म ने काशिराज की

कन्याओं का हरण किया था। इस कारण इन दोनों राज्यों में परस्पर विरोध हो गया था।

रामायण में लिखा है कि प्रतिष्ठाननगर तक काशीराज्य की सीमा थी। मत्स्यपुराण में लिखा है कि काशीराज्य के पूर्व और पश्चिम की ओर दो योजन और दक्षिण पश्चिम की ओर आध योजन विस्तृत था। वाराणसी एक समृद्धिशाली नगर था, यह बात वामनपुराण आदि को देखने से स्पष्ट मालूम होती है। काशी का दूसरा नाम वाराणसी है। असि और वरणा नदी से वेष्टित होने के कारण काशी को वाराणसी कहते हैं। बौद्धों के समय काशी में भी बौद्धधर्म का प्रभाव फैला था। सम्प्रति काशी के तीन माइल उत्तर की ओर एक बौद्धस्तूप वर्तमान है। (भारतवर्षीय इतिहास)

काश्मीर=भारत के इतिहास में काश्मीरराज्य बहुत दिनों से प्रसिद्ध है। प्रजापति कश्यप ने इस नगर की प्रतिष्ठा की थी। वैवस्वत मन्वन्तर के प्रारम्भ ही में इस राज्य की स्थापना हुई थी। काश्मीर के इतिहास राजतरङ्गिणी नामक ग्रन्थ में कल्हण मिश्र ने काश्मीर की उत्पत्ति और माहात्म्य के विषय में लिखा है, पूर्व काल में कल्प के आरम्भ ही से छः मन्वन्तर पर्यन्त हिमालय की गर्भभूमि जलमग्न थी। अनन्तर वैवस्वत मन्वन्तर में प्रजापति कश्यप ने त्रिदेवों की प्रेरणा से इस काश्मीरमण्डल का निर्माण किया है। काश्मीर अत्यन्त पवित्र स्थान है। नागों के मतानुसार नील महेश्वर इसके रक्षक हैं। अलका के समान शङ्ख पद्म आदि नागगण यहाँ रहते हैं। यहीं से सूर्य और चन्द्र वंश के आदि राजाओं की उत्पत्ति हुई है। इस राज्य का नाम "कश्यपमीर" था; क्योंकि कश्यप ने इसकी स्थापना की थी। कश्यपमीर शब्द का अपभ्रंश ही काश्मीर या कश्मीर शब्द है। यद्यपि अति प्राचीन ग्रन्थों में काश्मीर का नाम पाया जाता है, तथापि महाभारत के पूर्ववर्ती रामायण आदि ग्रन्थों में इसका उल्लेख नहीं है। इससे ऐसा अनुमान करने का प्रधान अवसर मिलता है कि उस समय काश्मीरराज्य कतिपय राज्यों में बँट गया था और उन्हीं राज्यों के नाम से परिचित भी होता था। एक समय काश्मीर-राज्य तक्षक के राज्य के अन्तर्गत हो गया था जिसका प्रमाण भी मिलता है। महाभारत में लिखा है "काश्मीरेष्वेव नागस्य भवनं तक्षकस्य च" इससे मालूम पड़ता है कि किसी समय काश्मीर का नाम तक्षभवन या तक्षशिला था। चीन संन्यासी हुएनत्सङ्ग ने भी अपनी यात्रा के विवरण में काश्मीर नाम कहीं नहीं लिखा है। किसी समय शारदापीठ या सरस्वतीपीठ नाम से काश्मीर परिचित होता था।

महाभारत और हरिवंश के अनेक स्थानों में काश्मीरराज्य के विषय में बहुत कुछ लिखा गया है। महाभारत के वनपर्व में काश्मीर के प्रसिद्ध तीर्थ वितस्ता नदी का उल्लेख हुआ है। वही तीर्थ तक्षक नाग का वासस्थान था। उस तीर्थ में स्नान करने से वाजपेय यज्ञ का फल और पापों की शान्ति होती है। जम्बू नामक एक तीर्थ भी उस समय काश्मीर में था, इसका भी परिचय मिलता है। जम्बूतीर्थ के विषय में लिखा है—देव ऋषि और पितृगण सेवित जम्बूके मार्ग के जाने से अश्वमेध यज्ञ का फल होता है। वहाँ पाँच दिन रहने से मनुष्य सिद्धि प्राप्त करता है, उसकी दुर्गति कभी नहीं होती। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में अर्जुन दिग्विजय करने के लिये काश्मीर गये थे, उस समय काश्मीरराज ने उनकी अधीनता स्वीकार की थी। मगधराज जरासन्ध ने जिस समय मथुरा पर आक्रमण कियाथा, उस समय काश्मीरराज गोनर्द ने उसका साथ दिया था। काश्मीर के इतिहास राजतरङ्गिणी में लिखा है कि काश्मीरराज गोनर्द ने जरासन्ध के साथ मिल कर मथुरा पर आक्रमण किया था और वह बलदेव के हाथ मारा गया। चीन संन्यासी हुएनत्सङ्ग ने जिस समय काश्मीर देखा था, उस समय वहाँ हिन्दू और बौद्ध दोनों बसते थे। उस समय वहाँ एक सौ सङ्घाराम तथा उसमें ५ हज़ार बौद्ध भिक्षु रहते थे। काश्मीरी लोग बड़े सुन्दर होते हैं, परन्तु धूर्त भी बड़े होते हैं। यह देश फलपुष्पसम्पन्न है, जल वायु शीतल है। चीन संन्यासी का काश्मीर के विषय में यही मत है। (भारतवर्षीय इतिहास)

काश्यप=विष-विद्या-निपुण एक ब्राह्मण का नाम। अभिमन्युपुत्र परीक्षित् मृगया के लिये एक समय वन में गये थे। शमीक नामक एक मौनी मुनि से राजा ने पूछा, कि इधर से कोई मृग गया है? मुनि मौनी थे इससे उन्होंने कुछ भी उत्तर नहीं दिया, परन्तु राजा को तो यह बात मालूम ही नहीं थी। अतएव उन्होंने क्रोध कर के एक मरा हुआ साँप मुनि के गले में डाल दिया और हस्तिनापुर लौट आये। शमीक के छोटे लड़के ने जब राजा का यह अत्याचार सुना, तब उसने राजा को शाप दिया कि आज के सातवें दिन साँप के काटने से राजा की मृत्यु होगी। शमीक ने अपने पुत्र को शाप देने के लिये डाँटा सही, परन्तु शाप का प्रत्याहार उन्होंने नहीं किया। इस संवाद को सुन कर राजा ने भी अपनी रक्षा की व्यवस्था की। विषवैद्य काश्यप भी राजा की चिकित्सा करने के लिये राजधानी की ओर चले। मार्ग में ब्राह्मण वेश-धारी-तक्षक से इनकी भेंट हुई, काश्यप का अभिप्राय सुन कर तक्षक ने उसकी परीक्षा लेनी चाही। तक्षक ने एक वृक्ष को काटा, काटते ही वह सूख गया; परन्तु काश्यप ने अपनी विद्या से उसे जीवित कर दिया। काश्यप की विद्वत्ता देख कर तक्षक ने उसे बहुत धन दिया। धन ले कर ब्राह्मण देवता लौट आये। (महाभारत)

किर्मीर=बक नामक राक्षस का भाई। वनवास के समय पाण्डव काम्यक वन में आये, उस समय काम्यक वन नरघाती राक्षसों से पूर्ण था। किर्मीर नामक भयङ्कर राक्षस ने उनका मार्ग रोका, भीम आगे बढ़े, और उस राक्षस से भयानक मल्लयुद्ध करने लगे। बहुत देर तक युद्ध होने के अनन्तर किर्मीर मारा गया। (महाभारत व.)

किशोरसिंह (महाराव)=(१) कोटा के एक राजा का नाम। ये महाराव उमेदसिंह के पुत्र थे। उमेदसिंह के समय में कोटाराज्य में भयङ्कर विप्लव हो गया था। प्रधान मन्त्री ज़ालिमसिंह ही कोटे के कर्ता धर्ता सर्वस्व बन बैठे थे। यहाँ तक कि अंग्रेज़ी सरकार ने भी उन्हें वंशपरम्परागत कोटे की दीवानी के लिये स्वीकृति देदी थी। कर्नल टाड साहब लिखते हैं कि सरकार का यह काम अत्यन्त अनुचित नहीं है। जो हो किशोरसिंह अनेक प्रकार की विघ्नबाधाओं को अतिक्रम कर सन् १८२० ई० के अगस्त की १७ तारीख़ को राजगद्दी पर बैठे।

(२) यह कोटे के राजा माधोसिंह के पाँच पुत्रों में से सब से छोटे थे। इन पाँचों भाइयों ने बादशाह शाहजहाँ के अधिकारों की रक्षा के लिये औरङ्गज़ेब के विरुद्ध तलवार उठायी थी। बड़े चार भाइयों ने तो प्राण देकर अपने प्रण की रक्षा की, परन्तु किशोरसिंह उस युद्ध में भयानक घायल हुए। चिकित्सा से नीरोग होने पर इन्होंने दक्षिण के युद्ध में बड़ी सुख्याति पायी थी। माधोसिंह की मृत्यु होने पर उनके चौथे पुत्र कनीराम कोटे के राजा हुए। थोड़े ही दिनों में कनीराम का परलोकवास होने पर वहाँ के सामन्तों ने उनके पुत्र प्रेमसिंह का राज्यासन पर अभिषेक किया। छः महीने राज्य करने के बाद इनकी योग्यता का परिचय मिल गया, सामन्त और प्रजाओं ने मिल कर इनको राज्य से उतार कर किशोरसिंह को राजा बनाया। राजा होने पर ये औरङ्गज़ेब की सेना के साथ अपनी सेना लेकर मरहटों से युद्ध करने के लिये दक्षिण गये थे। उस युद्ध में इनकी वीरता की प्रशंसा सभी ने की थी। ये सन् १७४२ ई० में अरकाटगढ़ किले पर अधिकार करने के समय मारे गये। (टाड्स राजस्थान)

किशोरसूर=सन् १७०४ ई० में इनका जन्म हुआ था। ये शृङ्गाररस के कवि थे और छप्पय छन्द ही में ये कविता करते थे।

किशोरीलाल गोस्वामी=इनके पिता का नाम गोस्वामी वासुदेवलालजी है। इनका जन्म सं० १९२२ में हुआ है और ये प्रसिद्ध उपन्यास लेखक हैं। इन्होंने कविता, सङ्गीत, जीवनचरित, नाटक, रूपक, योग आदि भिन्न भिन्न विषयों पर कोई सौ पुस्तकें लिखी हैं। इनमें उपन्यासों की संख्या ६९ है। संस्कृत में भी इन्होंने एक उपन्यास, एक चम्पू और तीन काव्यग्रन्थ रचे हैं। इनकी फुटकल कविताएँ हिन्दी के मासिक

पत्रों में प्रकाशित हुआ करती हैं। पहले आप काशी में रहते थे, पर अब आप वृन्दावन में रहा करते हैं।

कीचक=मत्स्य देशाधिपति विराट का साला और उन्हींका प्रधान सेनापति। इसकी वीरता से सभी डरते थे। यहाँ तक कि पराक्रमशाली कौरवराज भी कीचक के भय से मत्स्यदेश पर आक्रमण नहीं करते थे। इसकी मृत्यु होने पर कुरुराज दुर्योधन ने विराट के गोगृह पर आक्रमण किया था।

एक वर्ष के अज्ञातवास का समय बिताने के लिये पाण्डव रूप और नाम बदल कर विराट के यहाँ रहते थे। द्रौपदी दासी बन कर और भीम रसोइया बन कर विराट के अन्तःपुर में रहते थे। दुर्बुद्धि कीचक द्रौपदी के रूप पर मुग्ध हो गया और उसने अपना दुष्ट अभिप्राय प्रकाशित किया। द्रौपदी ने उसे झिटक दिया इससे वह द्रौपदी पर बिगड़ा, द्रौपदी अपनी रक्षा के लिये भाग कर सभा में गयी, उसके पीछे पीछे जा कर कीचक ने सब के सामने द्रौपदी को लातों से मारा। द्रौपदी ने कीचक के किये अपमान की बातें भीम से कहीं और उस से बदला चुकाने के लिये भीम को उत्तेजित भी किया। भीम के परामर्श से द्रौपदी ने कीचक को सङ्केतस्थान में रात को आने के लिये कहा। कीचक प्रसन्न हो कर वहाँ उपस्थित हुआ। स्त्री के कपड़े पहन कर भीम वहाँ सोये थे, उन्होंने कीचक को पशु के समान मार डाला।

(महाभारत)

कुनाल=प्रसिद्ध राजा अशोक के पुत्र का नाम। राजमहिषी पद्मावती के गर्भ से कुनाल की उत्पत्ति हुई थी। काञ्चनमाला नाम की स्त्री से कुनाल का ब्याह हुआ था। शरीर और हृदय दोनों ही से कुनाल सुन्दर थे। उनकी आँखों की सुन्दरता पर मोहित हो कर तिष्यरक्षा नामक सौतेली माता ने उनसे अपना राक्षसी अभिप्राय प्रकाशित किया। कुनाल ने उसके अभिप्राय को राक्षसी अभिप्राय समझ कर घृणा के साथ उसे दुतकारा। इस पर वह क्रुद्ध हो गयी और कुनाल की आँखें निकलवा लेने का उसने सङ्कल्प कर लिया। एक समय पिता की आज्ञा से कुनाल विद्रोहदमन करने के लिये तक्षशिला गये हुए थे। तिष्यरक्षा ने राजा अशोक से कह कर सात दिन के लिये राज्यप्रबन्ध का भार ग्रहण किया था। तिष्यरक्षा ने एक आदेशपत्र तक्षशिला के अधिकारी के पास इस आशय का भेजा कि कुनाल की दोनों आँखें निकलवा लो। वह पत्र कुनाल के हाथ में पड़ा। कुनाल ने उसे राजाज्ञा समझ कर अपनी आँखें स्वयं निकाल डालीं। वहाँ से घूमते घूमते साध्वी काञ्चनमाला के साथ कुनाल राजधानी में पहुँचे। सब बातें जान कर अशोक ने तिष्यरक्षा के वध किये जाने की आज्ञा दी। परन्तु कुनाल ने प्रार्थना कर के पिता को इस कार्य से निवृत्त किया।

(बुद्धचरित)

कुण्डिनपुर=वर्तमान बरार प्रदेश को प्राचीन काल में विदर्भराज्य कहते थे। पुराणों में लिखा है कि विदर्भराज्य की राजधानी कुण्डिनपुर में थी जहाँ के राजा भीष्मक थे। यहीं श्रीकृष्ण की महिषी रुक्मिणी उत्पन्न हुई थी। इस नगर के अवस्थान के विषय में कुछ लोगों का विश्वास है कि पश्चिमोत्तर प्रदेश के अन्तर्गत ज़िला बुलन्दशहर की अनूपशहर तहसील का अहीर नामक नगर ही पहले कुण्डिनपुर या कुण्डननगर के नाम से प्रसिद्ध था। दूसरा दल कहता है कि अयोध्या के अन्तर्गत खैरीगढ़ ज़िले के पास एक कुण्डिनपुर वर्तमान है। वही पहले समय का कुण्डिनपुर है। असाम ज़िला में भी एक कुण्डिनपुर है उसके विषय में भी यही कहा जाता है। परन्तु विष्णुपुराण आदि देखने से इन युक्तियों की असारता स्पष्ट ही मालूम पड़ती है।

कुण्डोदर=चन्द्रवंशी जनमेजय के एक पुत्र का नाम। ये जनमेजय परीक्षित् के पुत्र नहीं थे, किन्तु कुरु के पुत्रों में से थे।

कुन्तिभोज=ये वसुदेव के पिता शूरसेन की बुआ के पुत्र और शूरसेन के मित्र थे। ये अपुत्रक थे इसी कारण शूरसेन ने अपनी कन्या पृथा को इन्हें कन्यारूप से पालन करने के लिये दिया था।

महाभारत के युद्ध में इन्होंने पाण्डवों का पक्ष ग्रहण किया था। ये बड़े वीर थे।

कुन्ती=पाण्डवमाता। ये पाण्डु की महिषी थीं। ये मथुरा के राजा शूरसेन की कन्या थीं। कुन्तिभोज ने इनका पालन किया था इस कारण इनका नाम कुन्ती पड़ा। इनका पहला नाम पृथा था। ये पञ्च कन्याओं में से थीं। स्वयम्बर प्रथा से इनका ब्याह हुआ था।

कुन्दन=ये बुन्देलखण्ड के रहने वाले और हिन्दी के कवि थे। ये सन् १६६५ ई० में वर्तमान थे और नायक नायिका भेद सम्बन्धी रचना में दक्ष थे।

कुन्दनलाल=ये अयोध्या के राजदर्बार में थे और ऐतिहासिक थे। इन्होंने अयोध्याराज के यहाँ "लिचना" नामक तोप देखी थी, जिससे वैज्ञानिक रीति से प्राचीन काल में भी युद्ध विद्या प्रचलित थी, यह बात प्रमाणित होती है।

कुबेर=महर्षि पौलस्त्य के पौत्र और विश्रवा के पुत्र। ये यक्ष नामक भूतयोनि के अध्यक्ष और शिव के धनरक्षक हैं। इनकी राजधानी का नाम अलका है। इनका दूसरा नाम वैश्रवण भी है। ये अत्यन्त कुरूप हैं इस कारण इनको कुबेर भी कहते हैं। इनके तीन पैर, केवल आठ दाँत हैं, और देखने में भी ये अत्यन्त कुत्सित हैं। महर्षि भरद्वाज की कन्या देववर्णिनी के गर्भ से इनकी उत्पत्ति हुई थी। वैश्रवण ने कठोर तपस्या द्वारा ब्रह्मा को सन्तुष्ट किया था। ब्रह्मा देवताओं को साथ ले कर इनके यहाँ आये और वर माँगने के लिये कहा। वैश्रवण ने कहा कि मैं वित्तरक्षक लोकपाल होना चाहता हूँ। ब्रह्मा ने स्वीकार किया और इन्हें चौथा लोकपाल बना दिया। वर प्राप्त कर के कुबेर अपने पिता विश्रवा के निकट उपस्थित हुए और बोले पितामह ने मुझे लोकपाल तो बना दिया, परन्तु उन्होंने मेरे रहने के लिये कोई स्थान नहीं बताया है। अतएव आप मेरे रहने के लिये स्थान बता दें। विश्रवा ने अपने पुत्र को दक्षिणसागर के तीरस्थ त्रिकूट पर्वत पर अवस्थित लङ्कापुरी में रहने का आदेश दिया। कुबेर लङ्कापुरी में रहने लगे। इस पुरी में पहले सुकेशनामक राक्षस के पुत्र और देववती के गर्भ से उत्पन्न माल्यवान्, सुमाली और माली नाम के तीन राक्षस रहते थे। ब्रह्मा के वर से अजेय और दुर्धर्षवीर्य हो कर इन तीनों ने अत्याचार करना प्रारम्भ किया। भगवान् विष्णु राक्षसों का अत्याचार देख कर उन्हें दण्ड देने के लिये लङ्का में उपस्थित हुए। विष्णु ने युद्ध में माली को मार डाला और माल्यवान् तथा सुमाली भाग कर पाताल चले गये। कुछ दिनों के बाद सुमाली मर्त्यलोक में घूमने आया। कुबेर को पुष्पक विमान पर घूमते देख कर उसे बड़ा डाह उत्पन्न हुआ। घर लौट कर कुबेर के समान ऐश्वर्यशाली बनने की वह चिन्ता करने लगा। उसने अपनी कन्या कैकसी को विक्रमशाली पुत्र उत्पन्न करने के लिये विश्रवा के पास भेजा। कैकसी पिता के आदेशानुसार विश्रवा मुनि के निकट गयी। उनसे अपना अभिप्राय उसने प्रकाशित किया। मुनि ने उसे स्त्रीरूप से ग्रहण किया। उसीसे रावण का जन्म हुआ। रावण के उत्पीड़न से कुबेर लङ्का छोड़ कर अपने अनुचर परिवार के साथ कैलास पर्वत पर जा कर रहने लगे।

(रामायण)

कुब्जा=कंस की माल्यानुलेपनवाहिनी दासी। श्रीकृष्ण अक्रूर के साथ कंस के धनुपयज्ञ में मथुरा आये। उस समय उन्होंने मार्ग में एक कुब्जा दासी को देखा, जो सुगन्ध अनुलेपन कंस के यहाँ ले जाती थी। श्रीकृष्ण ने उससे अनुलेपन माँगा। प्रसन्नतापूर्वक कुब्जा ने उन्हें अनुलेपन दे दिया। इससे प्रसन्न हो कर श्रीकृष्ण ने भी उसका कुबड़ापन दूर कर के उसको एक सुन्दरी युवती बना दिया। (श्रीमद्भागवत)

कुमार=देवसेनापति कार्त्तिकेय का दूसरा नाम। तारकासुर ब्रह्मा के वर से देवताओं को भगा कर स्वर्ग का राज्य करने लगा। देवता ब्रह्मा के पास गये। ब्रह्मा ने कहा महादेव के पुत्र को सेनापति बना कर युद्ध करो, तुम अवश्य विजयी होगे। देवताओं के प्रयत्न से महादेव और

पार्वती का विवाह हुआ। (देखो कार्त्तिकेय)

कुमारदास=संस्कृत के एक कवि का नाम। ये सिंहलद्वीप के राजा थे। ये कविता में कालिदास के समकक्ष थे। इनका बनाया जानकीहरण नामक एक काव्य है, जो कुछ पहले छपा था, परन्तु आज उसका मिलना दुर्लभ हो गया है। ये कालिदास के समकालीन थे। कहते हैं कालिदास और कुमारदास में मित्रता थी; इन्हींकी मित्रता से आकृष्ट हो कर कालिदास सिंहलद्वीप गये थे। राजशेखर का एक श्लोक इस बात को बतलाता है कि कालिदास और कुमारदास की रचना समकक्ष की होती थी।

" जानकीहरणं कर्तुं रघुवंशे स्थिते सति।
कविः कुमारदासो वा रावणो वा यदि क्षमः॥ "

कुमारपाल=ये अनहरा के राजा थे और सन् ११५० ई० में विद्यमान थे। १२वीं शताब्दी के अन्त में अज्ञातनामा एक कवि थे, जिन्होंने कुमारपाल-चरित्र नामक एक ऐतिहासिक ग्रन्थ बनाया। यह ग्रन्थ पद्यमय है। इसमें ब्रह्मा से ले कर राजा कुमारपाल तक बौद्ध राजाओं की वंशावली का वर्णन है। कुमारपाल-चरित्र की हस्तलिपि रायल एशियाटिक सोसाइटी में विद्यमान है।

कुमारमणि भट्ट=हिन्दी के एक कवि का नाम। ये गोकुल-मथुरा के रहने वाले थे। सन् १७२६ ई० में इनका जन्म हुआ था। ये आलङ्कारिक और कवि थे। इनकी कविता मनोहारिणी और ओजस्विनी होती थी। इन्होंने साहित्य शास्त्र पर एक विवेचनापूर्ण ग्रन्थ लिखा है जिसका नाम है "रसिकरसाल"।

कुमारिका=राजा भरत की नौती और सिंहलेश्वर शतशृङ्ग की कन्या का नाम। राजा शतशृङ्ग के इन्द्रद्वीप आदि आठ पुत्र और कुमारिका नाम की एक कन्या थी। कुमारिका का मुख बकरी के मुख के समान था।

कहते हैं एक समय एक बकरी पानी पीने के लिये सागर के समीप गयी, परन्तु एक लता में अटकने से उसका शरीरत्याग हो गया। उसका शरीर सागरजल में पतित हुआ था और मुख लता ही में अटका था। सागर के माहात्म्य से यह बकरी सिंहलराज के घर में उत्पन्न हुई। सिंहलराज की कन्या का शरीर सुन्दर अवश्य था परन्तु मुख का आकार बकरे के समान था। अपुत्र सिंहलेश्वर को कन्या उत्पन्न हुई है, इस बात को सुनकर सभी प्रसन्न हुए, परन्तु उसके मुख देखने से लोगों की प्रसन्नता विषाद के रूप में परिणत हुई। इधर कन्या भी युवती हुई। उसने जब अपना मुख दर्पण में देखा तब उसे अपने पूर्वजन्म की बातें स्मरण हो आईं। वह राजा की आज्ञा ले कर उस स्थान पर आयी जहाँ बकरी का मुख लता में अटका था और उस मुख को उसने सागरजल में फेंक दिया। इससे उसका मुख भी मनुष्यों के मुख के समान हो गया। राजकन्या ने वहीं रह कर शिव की आराधना की, वर देने के लिये शिव वहाँ उपस्थित हुए। वहाँ शिव के सर्वदा रहने के लिये उसने प्रार्थना की, शिव ने स्वीकार किया। राजकुमारी ने वहाँ मन्दिर बनवा कर शिवलिङ्ग की स्थापना की। उस शिवलिङ्ग का नाम बर्करेश्वर है। स्वस्तिक नामक एक नागराज मिट्टी छेद कर कुमारिका को देखने आये थे, इससे उस मन्दिर के पास एक कूप बन गया और वह गङ्गाजल से पूर्ण भी हो गया। कुमारिका का ब्याह महाकाल से हुआ था।

(स्कन्दपुराण)

कुमारिल भट्ट=विख्यात दार्शनिक पण्डित और वेदों के भाष्यकार। ये प्रसिद्ध मीमांसक दक्षिण देश में उत्पन्न हुए थे। इन्होंने मीमांसा के कई ग्रन्थ बनाये हैं। शबर स्वामी के भाष्य पर इन्होंने एक टीका लिखी है जिसका नाम है "तन्त्रवार्तिक"। इनके बनाये दूसरे ग्रन्थ का नाम "मीमांसावार्तिक" है। जिस समय ये उत्पन्न हुए थे उस समय भारत में बौद्धधर्म का बड़ा प्राबल्य था। बालक कुमारिल ने वैदिकधर्म के उद्धार करने का सङ्कल्प किया। कुमारिल ने बौद्धों ही को अपना गुरु बनाया। बौद्धों से विद्या पढ़ कर इन्होंने उन्हींका खण्डन करना प्रारम्भ किया। कुमारिल ने युक्ति और तर्क से बौद्धों के ग्रन्थों को मनुष्यकृत अतएव अप्रमाण

बताया और वेदों को अपौरुषेय अतएव प्रामाण्य सिद्ध किया। इन्होंने वेदों की पाण्डित्यपूर्ण व्याख्या लिखी है। बौद्धों ने कुमारिल के साथ शास्त्रार्थ में वैदिक देवताओं के चरित्रदोष का उल्लेख कर के उपहास किया। कुमारिल ने युक्तियों से उसका समर्थन किया। बौद्धों ने कहा कि ब्रह्मा ने निज कन्यागमन किया था और देवराज इन्द्र ने गुरु-पत्नी-गमन। कुमारिल ने उत्तर दिया तुम लोग इसका अर्थ नहीं समझते। प्रजापालन करने वाले सूर्य को प्रजापति कहते हैं। ब्रह्मा सूर्य का नामान्तर है। इसका प्रमाण शास्त्रों में वर्तमान है। अरुणोदय के समय ऊषा की उत्पत्ति होती है, इस कारण ऊषा को सूर्य की स्त्री बतलाया गया है। ऊषा के साथ सूर्य का तेज संयुक्त होता है, इसी घटना को ले कर स्त्री पुरुष की कल्पना की गयी है। इन्द्र के गुरु-पत्नी-गमन के सम्बन्ध में कुमारिल ने कहा—तेजोमय सविता को ऐश्वर्ययुक्त होने के कारण इन्द्र कहते हैं। अहल्या का अर्थ है रात्रि। क्योंकि वह—अहनि=दिन में, लीयते = नष्ट होती है। उसी अहल्या रात्रि को सूर्य—इन्द्र जीर्ण करते हैं अतएव उनका नाम अहल्याजार प्रसिद्ध हुआ है। इसी प्रकार अनेक युक्तियों से कुमारिल भट्ट ने बौद्धों को परास्त किया। ये महात्मा शङ्कराचार्य के समकालीन थे। इन्होंने अपने बौद्ध गुरुओं को परास्त किया था। इस गुरु के अपमानरूप अपराध का प्रायश्चित्त करने के लिये वे प्रतिष्ठानपुर (वर्तमान झूँसी) में आये और तुषाग्नि से अपने शरीर को भस्म करने की इच्छा से तुषाग्नि में बैठे। उसी समय शङ्कराचार्य वहाँ उपस्थित हुए। शङ्कराचार्यने उनसे वैदिक धर्म के उद्धार करने के विषय में अनेक उपदेश ग्रहण किये और उन्होंने उनसे अनुरोध किया कि आप मेरे काम में सहायता दें। यह बात शङ्करदिग्विजय के इस श्लोक से स्पष्ट मालूम पड़ती है—

"इत्यूचिवांसमथ भट्टकुमारिलं त-
मीषद्विकस्वरमुखाम्बुजमाह मौनी।
श्रुत्यर्थकर्मविमुखान् सुगतान् निहन्तुं
जातं गुहं भुवि भवन्तमहंतुजाने॥"

कुमारिल भट्ट ने शङ्कराचार्य को कहा कि आप माहिष्मती नगरी में मण्डन मिश्र के पास जा और शास्त्रार्थ कर उनको अपना शिष्य बनाइये। उनसे आपको धर्मोद्धार करने में सहायता मिलेगी। तदनन्तर कुमारिल भट्ट जल गये। ये कार्त्तिकेय के अवतार समझे जाते हैं। मीमांसाशास्त्र में गुरुमत और प्रभाकरमत ये दो प्रसिद्ध मत हैं। कुमारिल ही का मत गुरुमत कहा जाता है।

पाश्चात्य विद्वानों ने इनका समय ६वीं सदी बतलाया है। परन्तु शङ्कराचार्य के समकालीन का समय ६ वीं सदी कैसे हो सकता है। शृङ्गेरीपीठ के सुधन्वा ताम्रशासन से मालूम होता है कि युधिष्ठिर के पीछे सत्ताइसवीं सदी में शङ्कराचार्य ने उस मठ की स्थापना की। अतएव कुमारिल भट्ट का भी वही समय मानना उचित है।

कुम्भ=(राणा) ये मेवाड़ के महाराणा थे। इनके पिता का नाम मुकुल था। राणा मुकुल को कुचक्रियों ने मार डाला था। मुकुल के मरने के बाद उनके पुत्र कुम्भ सन् १४१६ ई० में मेवाड़ के राजा हुए। इनके समय में मेवाड़ एक समृद्धिशाली राज्य था। इन्होंने अपने पराक्रम से मेवाड़ राज्य की सीमा दूरवर्ती नदी तक फैला दी थी। ये शत्रु के प्रति भी दया करते थे। इनकी सेना में अत्याचार करना निषिद्ध था। उस समय गुजरात और मालव, ये दोनों राज्य बड़े पराक्रमी हो गये थे। मालवराज महमूद ने गुजरात के राजा से सन्धि कर के और दोनों सेनाओं को ले कर मेवाड़ पर आक्रमण किया। कुम्भ ने उसका सामना किया। इस युद्ध में महमूद परास्त और कैद हो गया। कैदी महमूद के प्रति राणा कुम्भ ने दयायुक्त व्यवहार किया और मित्र के समान उपहार दे कर उसे छोड़ दिया। महमूद छः महीने तक मेवाड़ में कैद था। कुछ दिनों के बाद, जिस समय दिल्ली का बादशाह कुम्भ से लड़ने आया, उस समय महमूद ने राणा का पक्ष ग्रहण किया था। ये संस्कृत के बड़े विद्वान् और कवि थे। जयदेवकृत प्रसिद्ध गीतगोविन्द की

इन्होंने एक संस्कृत में टीका लिखी है। चित्तौड़ में इन्होंने एक स्तूप बनवाया था जो आज भी इनकी कीर्तिगाथा का गान कर रहा है। प्रसिद्ध भक्ता मीराबाई इन्हींकी स्त्री थी। ५० वर्ष राज्य करने के अनन्तर महाराणा कुम्भ अपने पुत्र हत्यारे ऊदा के द्वारा मारे गये।

कुम्भकर्ण=रावण का कनिष्ठ सहोदर भाई। विश्रवा मुनि के औरस और सुमाली राक्षस की कन्या कैकसी के गर्भ से यह उत्पन्न हुआ था। इसने कठोर तपस्या द्वारा ब्रह्मा को सन्तुष्ट किया था। ब्रह्मा वर देने के लिये उपस्थित हुए। देवताओं ने ब्रह्मा से कहा कि बिना वर पाये तो यह राक्षस इतना अत्याचार करता है वर पाने पर इसकी क्या गति होगी। ब्रह्मा ने सरस्वती को स्मरण किया और कहा, तुम कुम्भकर्ण के मुँह से देवताओं के अनुकूल वचन निकालो। कुम्भकर्ण ने वर माँगा, मैं बहुत दिनों तक सो सकूँ, और छः महीने पर एक दिन भोजन करने के लिये उठूँ। वर माँगने के समय कुम्भकर्ण अचेतन हो गया। चेत होने पर वह कहने लगा मैंने क्या वर माँगा। परन्तु अब हो ही क्या सकता था।

(रामायण)

कुम्भनदास=ये ब्रज के रहने वाले हिन्दी के कवि थे और सन् १५५० ई० में वर्तमान थे। ये वल्लभाचार्य के शिष्य थे। ये अष्टछाप के कवियों में से हैं।

कुम्भीनसी=(१) लङ्केश्वर रावण की मौसी का नाम। यह रावण की माता कैकसी की छोटी बहिन थी। एक समय रावण दिग्विजय करने के लिये बाहर गया हुआ था, उस समय मधु नामक दैत्य ने कुम्भीनसी को हर लिया। इस का संवाद सुन कर रावण मधु को दण्ड देने के लिये मधुवन गया। परन्तु कुम्भीनसी के कहने से दोनों में मित्रता हो गयी। कुम्भीनसी के गर्भ से लवणासुर का जन्म हुआ था जिसे शत्रुघ्न ने मारा था। (रामायण)

(२) गन्धर्वराज अङ्गारपर्ण की पत्नी का नाम। अङ्गारपर्ण का दूसरा नाम चित्ररथ था। पाण्डवों के वनवास के समय में चित्ररथ को अर्जुन ने कैद कर लिया था। एक समय रात्रि को भयानक जङ्गल को डाँक कर पाण्डव गङ्गा के किनारे उपस्थित हुए। गन्धर्व चित्ररथ उस समय स्त्रियों के साथ जलक्रीड़ा कर रहा था। पाण्डवों के आने से उसकी जलक्रीड़ा में विघ्न उपस्थित हुआ, इस कारण वह युद्ध करने को प्रस्तुत हुआ। अर्जुन और चित्ररथ दोनों लड़ने लगे। अर्जुन ने उसे परास्त करके कैद कर लिया। कुम्भीनसी की प्रार्थना से प्रसन्न हो कर युधिष्ठिर ने चित्ररथ को छुड़वा दिया। इसके उपलक्ष में चित्ररथ ने अर्जुन को मायायुद्ध सिखाया। चित्ररथ ने पराजित हो कर अपना चित्रवर्ण का रथ जला दिया और अपना नाम दग्धरथ प्रसिद्ध किया।

(महाभारत)

कुरु=भरतवंशी महाराज संवरण के पुत्र का नाम। महिषी तपती के गर्भ से ये उत्पन्न हुए थे। ये एक धर्मात्मा राजा थे। कुरुजाङ्गल नामक स्थान में बहुत दिनों तक इन्होंने कठोर तपस्या की थी। इनका वंश भी इन्हींके नामानुसार कुरु नाम से प्रसिद्ध है।

कुरुक्षेत्र=तीर्थविशेष। यह बहुत ही प्राचीन तीर्थ है। शतपथब्राह्मण तथा उपनिषदों में भी इसका उल्लेख किया गया है। महाभारत या अन्य पुराणों में लिखा है कि कुरु ने कुरुक्षेत्र का कर्षण किया। यहाँ कर्षण शब्द का अर्थ क्या है यह समझना कठिन है। कुरु ने इस स्थान को सब से पहले आविष्कृत किया था या इस स्थान पर यज्ञ कर के इसकी उन्नति की थी, ये ही साधारणतः कर्षण शब्द के अर्थ हो सकते हैं। महाभारत शल्यपर्व के ५३वें अध्याय में यह विषय लिखा है। ऋषिगण बलराम से कहते हैं—राम! यह समन्तपञ्चक प्रजापति की सनातनी उत्तर वेदी के नाम से प्रसिद्ध स्थल है पहले यहाँ देवताओं के प्रधान प्रधान यज्ञ हो चुके हैं। महानुभाव राजर्षि कुरु ने बहुत दिनों तक इस स्थान का कर्षण किया था। इसी कारण इसको कुरुक्षेत्र

कहते हैं। कुरुक्षेत्र की सीमा के विषय में महाभारत में लिखा है कि दृषद्वती नदी के उत्तर और सरस्वती के दक्षिण कुरुक्षेत्र हैं। तरन्तुक अरन्तुक रामह्रद सकल और मचक्रुक स्थान के समीप का स्थान कुरुक्षेत्र कहा जाता है। इस तीर्थ का परिमाण बारह योजन है। इसमें ३६५ तीर्थ विद्यमान हैं।

कुरुजाङ्गल=इसके विषय में अनेक मत प्रचलित हैं। कोई कहते हैं कि कुरुक्षेत्र जङ्गल से पूर्ण था, कुरु ने उस जङ्गल को कटवा कर साफ़ करवा दिया था इसी कारण उसका नाम कुरुजाङ्गल पड़ा। किसी के मत से कुरुक्षेत्र के आस-पास के स्थानों को कुरुजाङ्गल कहते हैं। रामायण में लिखा है हस्तिनापुर और पाञ्चाल के पश्चिम ओर का स्थान कुरुजाङ्गल कहा जाता है। राजर्षि कुरु के नामानुसार ही यह नाम प्रसिद्ध है। महाभारत के आदिपर्व में लिखा है कि कुरुक्षेत्र और कुरुजाङ्गल ये दोनों स्थान एक ही हैं। वहाँ लिखा है "महातपा कुरु की तपस्या से कुरुजाङ्गल पवित्र हुआ और उन्हींके नामानुसार कुरुक्षेत्र नाम से प्रसिद्ध हुआ।

कुलिन्दराज=एक राजा। यह महाभारत के युद्ध में पाण्डवों की ओर थे। इन्होंने अपने युद्ध कौशल से कुरुपक्ष को तङ्ग कर दिया था। इनके दो भाई और थे जिनमेंसे एक का नाम चित्रदर्शी था। इन तीनों भाइयों ने महाभारत के युद्ध में वीरतापूर्वक युद्ध किया था।

कुल्लूक भट्ट=मनुसंहिता के विख्यात टीकाकार। इनकी बनायी मनुस्मृति की टीका का नाम मन्वर्थमुक्तावली है। इनके पिता का नाम दिवाकर भट्ट था। ये गौड़देश के नन्दनग्राम में रहते थे और वारेन्द्र श्रेणि के शाण्डिल्य गोत्री ब्राह्मण थे। इन्होंने काशी में संस्कृत का अध्ययन किया था और वहाँ ही मनुस्मृति की टीका भी लिखी थी। खृ० १३वीं सदी के मध्य में ये उत्पन्न हुए थे। इनके बड़े भाई का नाम पुरुषोत्तम वेदान्तवागीश था। ताहिरपुर के वर्तमान राय वंशीराजा इन्हींके वंशज हैं। कुल्लूक भट्ट ने गोविन्दराज के भाष्य के अनुसार अपनी मनु की टीका लिखी है और कहीं कहीं उनके मत का खण्डन भी किया है।

कुवलयादित्य=काश्मीर के एक राजा का नाम। ये ललितादित्य के पुत्र थे। ललितादित्य के परलोक होने पर काश्मीर के राज्य पर कुवलयादित्य का अभिषेक हुआ। १ वर्ष १५ दिन तक इन्होंने राज्य करके राज्य त्याग दिया और वन में जा कर तपस्या करने लगे।

(राजतरङ्गिणी)

कुवलयाश्व=(१) महाराज श्रावस्त के पौत्र और बृहदश्व के पुत्र का नाम। इनके पितामह श्रावस्त ने श्रावस्ती नाम की नगरी बसायी थी। कुवलयाश्व ने महर्षि उतङ्क की आज्ञा से धुन्धु नामक राक्षस को मारा था। अतएव ये धुन्धुमार नाम से भी प्रसिद्ध हैं।

(श्रीमद्भागवत)

(२) शत्रुजित् नामक राजा के पुत्र का नाम। इनका दूसरा नाम ऋतध्वज था। इनके घोड़े का नाम कुवलय था। इस कारण ये कुवलयाश्व नाम से प्रसिद्ध हुए हैं। एक समय पातालकेतु नामक दानव का अनुसरण करते हुए कुवलयाश्व पातालपुर में उपस्थित हुए थे और वहाँ उन्होंने गन्धर्वराज विश्वावसु की कन्या मदालसा को व्याहा था। उन्होंने मदालसा से पातालकेतु का पता जान कर उसका वध किया। तदनन्तर कुवलयाश्व अपने घर लौट आये। पातालकेतु का छोटा भाई तालकेतु कुवलयाश्व से बदला चुकाने के लिये राजधानी के निकट तापस वेष में जा कर रहने लगा। एक समय राजकुमार कुवलयाश्व उसके आश्रम में गये। तापसवेषधारी तालकेतु ने राजकुमार की पगड़ी माँगी, राजकुमार ने दे दी। वह पगड़ी ले कर और आश्रम की रक्षा का भार राजकुमार को दे कर राजधानी में चला गया और राजकुमार की पगड़ी राजा के हाथ में दे कर उसने राजकुमार की मृत्यु की बात कही। पति की मृत्यु सुन कर मदालसा ने उसी समय प्राणत्याग किया। राजकुमार जब घर आये तब उन्हें मदालसा की मृत्यु से बड़ा कष्ट हुआ और

उन्होंने प्रतिज्ञा की—मैं अब दूसरा विवाह नहीं करूँगा। जन्मान्तर में मदालसा से मिलने के लिये राजकुमार प्रार्थना करने लगे। मदालसा ने पाताल में नागराज के वंश में जन्मग्रहण किया। इन्हीं नागराज के पुत्रों से कुवलयाश्व की बड़ी प्रीति थी। घटनावश कुवलयाश्व नागलोक में उपस्थित हुए और वहाँ विरहिणी मदालसा से मिल कर प्रसन्न हुए।

(मार्कण्डेयपुराण)

कुश=अयोध्याधिपति महाराज रामचन्द्र के ज्येष्ठ पुत्र। ये सीता के गर्भ से महर्षि वाल्मीकि के तपोवन में उत्पन्न हुए थे। कुश और उनके छोटे भाई लव ने रामचन्द्र की सभा में वाल्मीकि रचित रामायण का पाठ कर लोगों को मुग्ध किया था। रामचन्द्र ने इन्हें कुशावती नगरी का अधिकार दिया था। रामचन्द्र के वैकुण्ठ जाने पर अयोध्या की शोभा नष्ट हो गयी, इसी कारण अयोध्या की अधिष्ठात्री देवी कुशावती नगरी में रात को कुश के शयनगृह में उपस्थित हुई थी और अयोध्या की दुर्दशा की बात सुना कर पैतृक राज्य अयोध्या में जाने के लिये कहा था। देवी के कहने से कुश कुशावती छोड़ अयोध्या चले आये। (रघुवंश)

कुशध्वज=ये मिथिला के राजा ह्रस्वरोमा के पुत्र और रामायण-प्रसिद्ध सीता के चाचा थे। सीता के पिता का नाम था सीरध्वज जनक, कुशध्वज उनके छोटे भाई थे। इनकी दो कन्याएँ थीं। ज्येष्ठा माण्डवी का व्याह भरत से और कनिष्ठा श्रुतकीर्ति का व्याह शत्रुघ्न से हुआ था। सीरध्वज ने राजा सुधन्वा को जीत कर उनका साङ्काश्य नामक राज्य अपने छोटे भाई कुशध्वज को दे दिया था। इनके पूर्वपुरुष निमि और मिथि थे।

(रामायण)

कुशनाभ=महाराज कुश का पुत्र। प्राचीन काल में ब्रह्मा के पुत्र पराक्रमी कुश नामक प्रजापति उत्पन्न हुए थे। महाराज कुश के चार पुत्र थे—कुशाम्ब, कुशनाभ, अमूर्तरज, और वसु। कुशनाभ महोदय नगर में राज्य करते थे।

(देखो कन्नौज)

कुशपुर=प्राचीन एक नगर का नाम। हुएनत्सङ्ग के लिखने से मालूम होता है कि वे कौशाम्बी से कुशपुर गये थे। चीन परिव्राजक ने उस नगर का नाम लिखा है "क्रिया-शे-पू-लो।" बहुत लोग अनुमान करते हैं कि यह काशापुर है परन्तु हिन्दू समाज में यह नगर कुशपुर या कुशभवनपुर नाम से प्रसिद्ध है। इस नगर की स्थापना के विषय में कई प्रकार की किंवदन्ती प्रचलित हैं। कोई कहते हैं रामचन्द्र जी के पुत्र कुश ने इस नगर की प्रतिष्ठा की थी। किसी का मत है कि यह कुशनाभ की राजधानी थी। इसी प्रकार इस विषय में मतभेद है। परन्तु चीनयात्री हुएनत्सङ्ग लिखते हैं कि कौशाम्बी से उत्तर की ओर ११७ मील चलने के बाद उन्हें कुशपुर मिला था। अयोध्या से २८-३० मील की दूरी पर वह नगर था। इन प्रमाणों के बल से गोमती नदी के तीर पर सुलतानपुर के पास कुशपुर होना प्रतीत होता है अथवा उसीके भग्नांश पर सुलतानपुर की नींव दी गई हो।

कुशस्थली या कुशावती=दक्षिण कोशल की राजधानी का नाम। इसकी किस समय और किस प्रकार स्थापना हुई, इस विषय में पुराणों में बहुत कुछ लिखा है। शर्याति के परम धार्मिक आनर्त नामक एक पुत्र था। आनर्त का पुत्र रेवत कुशस्थली में रहता था, रेवत के पुत्र रैवत भी इसी पुरी में रहते थे। विष्णुपुराण में लिखा है कि पुण्यजन नामक राक्षस ने इस नगरी को नष्ट कर दिया था। मत्स्यपुराण में लिखा है कि कुकुक्षि के पूर्वपुरुष आनर्त, आनर्तदेश के अधिपति थे। उनकी राजधानी का नाम कुशस्थली था। कुशराज्य कुशस्थली और यह कुशस्थली दोनों एक हैं या भिन्न, इसका निर्णय करना कठिन है। यदि ये दोनों अभिन्न हैं, तो कहना होगा कि कुशस्थली आज लुप्त हो गयी। रामायण में कुशस्थली का नाम भी नहीं है, वहाँ केवल कुशावती ही का उल्लेख पाया जाता है।

कुशिक=ये राजा महर्षि विश्वामित्र के पितामह और गाधिराज के पिता का नाम है। गाधिपुत्र विश्वामित्र तपोबल से ब्राह्मण हो गये थे।

एक समय प्रसिद्ध च्यवन मुनि ने ध्यान से जाना कि कुशिकवंश के संयोग से हमारे वंश में क्षत्रियत्व संक्रान्त होगा, इसको अनुचित जान कर उन्होंने कुशिकवंश के नाश करने का सङ्कल्प किया। परन्तु उनकी सब चेष्टा व्यर्थ हुई। च्यवनवंशी ऋचीक मुनि ने गाधिराज की कन्या को व्याह लिया। इसी विवाह से जमदग्नि उत्पन्न हुए और जमदग्नि के पुत्र परशुराम हुए। (महाभारत)

कुशीनगर=इस नगर में बुद्धदेव का निर्वाण हुआ था, इस कारण बौद्धों के लिये यह महान् तीर्थ है। कुशीनगर के विषय में प्रो० विलसन् कहते हैं कि सम्प्रति कशरई नामक नगर ही पुरातन प्रसिद्ध कुशीनगर है। लोगों ने इस मत का समर्थन भी किया है। गोरखपुर से ३५ मील पूर्व की ओर इस नगर का चिह्न पाया जाता है। प्राचीन कुशीनगर के अतिशय समृद्धिशाली होने का अनुमान उसके भग्नांश से भी किया जाता है।

कुशेशय=काश्मीर के राजा। इनके पिता का नाम लव था। इन्होंने एक अग्रहार ब्राह्मण को दान दिया था।

कूर्म=विष्णु का द्वितीय अवतार। समुद्रमन्थन के समय भगवान् ने कूर्मरूप धारण किया था।

कूर्मपुराण=कूर्मरूपधारी भगवान् ने इसका वर्णन पहले किया था। नारद ने उसी तत्त्व को सूतजी से कहा था और सूत ने अन्यान्य महर्षियों से। ब्राह्मी, भागवती, सौरी और वैष्णवी इन चार संहिताओं में यह पुराण पहले विभक्त था; परन्तु आज ब्रह्मसंहिता के अतिरिक्त दूसरी संहिता नहीं पायी जाती है। इस समय ब्रह्मसंहिता ही को हम लोग कूर्मपुराण कहते हैं। सृष्टिवंशानुकीर्तन, दक्षयज्ञ, वामनावतार, कृष्णचरित्र, युगधर्म आदि इस पुराण में वर्णित हैं। दानधर्म, तीर्थमाहात्म्य, नित्यकर्म, अशौच-विचार आदि विषय इसीके अन्तर्गत हैं। इस पुराण में ईश्वरगीता और व्यासगीता नामक दो अध्यायों में ज्ञानयोग और ब्रह्मचारी का धर्म बतलाया गया है। शिव दुर्गा का माहात्म्य वर्णन करना ही इस पुराण का मुख्य उद्देश्य है। इस पुराण के मत से वायुपुराण और शिवपुराण दोनों ही महापुराण हैं। कूर्मपुराण में देवी का सहस्रनामस्तव है।

कूर्मी=एक जाति विशेष जो किसानी करती है।

कृतवर्मा=यदुवंशी राजा कनक के पुत्र। कनक के चार पुत्र थे। उनके नाम ये थे कृतवीर्य, कृतौजा, कृतवर्मा और कृताग्नि।

कृत्तिवास=बङ्गाल के विख्यात कवि। इन्होंने बङ्गला भाषा में रामायण की रचना की थी। खृष्ट की १४वीं सदी में ये उत्पन्न हुए थे। इन्होंने वाल्मीकीय रामायण को अवलम्बन करके अपने काव्य की रचना की है। परन्तु वाल्मीकि की रामायण की कथा से इनके काव्य में अनेक भेद पाये जाते हैं।

कृपाचार्य=प्रसिद्ध गौतम ऋषि के पुत्र। कहते हैं कि सरकण्डे पर फेंके हुए गौतम के वीर्य से इनका जन्म हुआ था। कृपाचार्य धनुर्विद्या में पारङ्गत थे और दुर्योधन आदि को इस विद्या की शिक्षा भी देते थे। कुरुक्षेत्र के युद्ध में इन्होंने कौरवों के पक्ष से युद्ध भी किया था। अन्यान्य पुराणों में इनका जन्म विवरण इस प्रकार मिलता है धनुर्विद्या के आचार्य तपस्वी शरद्वान् शिशु अपने पुत्र और कन्या को वन में छोड़ आये। दैवयोग से राजा शान्तनु उसी वन में अहेर खेलने गये और इस अनाथ बालक और बालिका को अपने घर ले आये। इनकी कृपा से पालना हुई इस कारण पुत्र का नाम कृप और कन्या का नाम कृपी हुआ। कुछ दिनों के बाद शरद्वान् ने अपना परिचय दे कर पुत्र को अस्त्र शस्त्र की शिक्षा दी।

कृपी=द्रोणाचार्य की स्त्री और अश्वत्थामा की माता यह कृपाचार्य की भगिनी थी। (देखो कृपाचार्य)

कृष्ण=(१) वसुदेव के पुत्र। ये देवकी के गर्भ और वसुदेव के औरस से मथुरा में उत्पन्न हुए थे। ये भगवान् विष्णु के पूर्ण अवतार थे। स्वयं भगवान् विष्णु देवकी के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। देवकी के छः लड़के मारे जाने पर भगवान् विष्णु की कला देवकी के गर्भ में प्रविष्ट हुई

विष्णु ने योगमाया को कहा देवि, तुम व्रज में जाओ वहाँ नन्द के घर में वसुदेव की स्त्री रोहिणी है। न केवल रोहिणी किन्तु अन्यान्य अनेक वसुदेव की स्त्रियाँ कंस के भय से छिप लुक कर दिन बिता रही हैं। तुम जा कर देवकी का गर्भ रोहिणी के गर्भ में स्थापन करो। वह गर्भ नष्ट नहीं होगा, क्योंकि वह हमारा अंश है। तदनन्तर हम पूर्णरूप से देवकी के गर्भ से उत्पन्न होंगे और तुम भी नन्द की स्त्री यशोदा के गर्भ से जन्म ग्रहण करना। वसुदेव और देवकी को कंस ने कैद कर रखा था। देवकी कंस की भगिनी थी। इस सम्बन्ध से कंस कृष्ण का मामा हुआ। मगधराज जरासन्ध कंस का श्वशुर था। उसने अपने श्वशुर की सहायता से पिता उग्रसेन को राज्य से निकाल कर मथुरा का राज्य अपने हाथ में कर रखा था। कंस ने देवकी को वसुदेव से ब्याहा था। विवाह के समय देववाणी हुई कि देवकी का आठवाँ गर्भ कंस का वध करेगा। इस देववाणी को सुन कर कंस ने देवकी और वसुदेव को कैद कर लिया। कारागार में जितने वसुदेव के लड़के होते गये कंस ने सभी को मार डाला। आठवें गर्भ से भाद्रकृष्ण अष्टमी की आधी रात को श्रीकृष्ण उत्पन्न हुए उस समय वसुदेव श्रीकृष्ण को ले कर नन्द के घर गये। उसी रात्रि को यशोदा के गर्भ से एक कन्या उत्पन्न हुई थी। वसुदेव श्रीकृष्ण को वहाँ रख कर और कन्या को ले कर मथुरा लौट आये। प्रभात होते ही कंस को यह संवाद मिला कि देवकी के कन्या उत्पन्न हुई है। उसने कन्या को मारने की आज्ञा दी। ज्यों वह कन्या पत्थर पर पटकी गयी, त्यों ही वह कन्या ऊपर चली गयी, लोग देखते ही रहे, उस कन्या ने कहा दुर्बुद्धि कंस! तुमको मारने वाला उत्पन्न हो गया। अपने मारने वाले का उत्पन्न होना सुन कर कंस ने वसुदेव और देवकी का कैद रखा जाना निष्फल समझा और शीघ्र ही उन्हें छोड़ दिया। श्रीकृष्ण गोकुल में लालित पालित हो कर दिन दिन बढ़ने लगे। श्रीकृष्ण विष्णु भगवान् के अष्टम अवतार हैं। इनका जीवन तीन भागों में बाँटा जा सकता है—१ व्रजलीला, २ मथुरालीला और ३ द्वारकालीला। १ व्रजलीला में श्रीकृष्ण की अलौकिक और अमानुषिक शक्तियों का परिचय मिलता है। यमलार्जुनवेषधारी दो सिद्धपुरुषों की मुक्ति कंस की भेजी पूतना राक्षसी तथा बक, अघ, अरिष्ट आदि राक्षसों का विनाश, कालियनाग का दमन और निर्वासन, राधा आदि सौ गोपियों के साथ रासक्रीड़ा करना आदि बातें उनकी अलौकिक शक्ति के प्रमाण और समर्थक हैं। वृषभानुनन्दिनी प्रेममयी राधिका श्रीकृष्ण पर अनुरक्त हुई। राधिका का विवाह एक क्लीव से हुआ था। अतएव शास्त्रानुसार इनका विवाह नहीं हुआ था। यद्यपि राधा परकीया थीं तथापि परस्त्री नहीं थीं। भागवत में राधा का नाम कहीं नहीं मिलता। २ मथुरालीला—जब अनेक छल बल कर के भी कंस श्रीकृष्ण का वध नहीं करवा सका, तब उसने श्रीकृष्ण और बलराम को मथुरा ले आने के लिये अक्रूर को भेजा। अक्रूर ने कंस के अत्याचारों से यादवों की रक्षा करने के लिये श्रीकृष्ण से कंस की गुप्तमन्त्रणा प्रकाशित कर दी और कंस को मारने के लिये श्रीकृष्ण को उत्तेजित भी किया। श्रीकृष्ण और बलराम अक्रूर के साथ मथुरा में आये। कंस ने श्रीकृष्ण को मरवा डालने के लिये पहलवान बुलवाये थे और कुवलयापीड नामक मदमत्त हाथी सिंहद्वार पर खड़ा करवा दिया था। श्रीकृष्ण ने मथुरा की सड़क पर जाती हुई कंस की चन्दनवाहिनी कुब्जा को अङ्गदोष से मुक्त किया और पहलवान तथा कुवलयापीड को मार कर वे कंस की सभा में उपस्थित हुए। कंस ने श्रीकृष्ण पर वार किया, परन्तु वह स्वयं मारा गया। उग्रसेन चाहते थे श्रीकृष्ण मथुरा के राजा हों, परन्तु श्रीकृष्ण ने समझा बुझा कर उग्रसेन ही को मथुरा का राजा बनाया, तदनन्तर अवन्तीनगर में जाकर वेदज्ञ ब्राह्मण सान्दीपनी से शास्त्राध्ययन करने लगे। पञ्चजन नामक दैत्य आचार्य सान्दीपनी के पुत्र को एक दिन हर ले गया। श्रीकृष्ण ने उसको मार कर गुरुपुत्र का उद्धार किया। पञ्चजन दैत्य को मारने से श्रीकृष्ण को पाञ्चजन्य नामक शङ्ख मिला था।

३ द्वारकालीला—विदर्भराज भीष्मक की कन्या रुक्मिणी श्रीकृष्ण को अपना पति बनाना चाहती थी, और उसने अपना अभिप्राय दूत द्वारा श्रीकृष्ण को जनाया। श्रीकृष्ण के साथ रुक्मिणी के ब्याह का प्रस्ताव राजा भीष्मक से किया गया, परन्तु उन्होंने अपने पुत्र की सम्मति से वह प्रस्ताव अस्वीकृत किया। तब श्रीकृष्ण बलराम आदि को ले कर स्वयं स्वयम्बर-सभा में उपस्थित हुए और वहाँ से रुक्मिणी को हर कर ले चले। रुक्मी ने जा कर उनको रोका, दोनों में युद्ध होने लगा। रुक्मिणी के कहने से सङ्कटापन्न रुक्मी को श्रीकृष्ण ने छोड़ दिया। शिशुपाल ने भी रुक्मिणी के लिये युद्ध किया था परन्तु वह हार गया। रुक्मिणी के गर्भ से श्रीकृष्ण को प्रद्युम्न, चारुदेष्ण आदि दस पुत्र और चारुमती नाम की एक कन्या हुई थी। इनके अतिरिक्त जाम्बवती, सुशीला, सत्यभामा और लक्ष्मणा नामक चार और प्रधान महिषी तथा १६ हज़ार अप्रधान स्त्रियाँ थीं। प्रद्युम्न का विवाह रुक्मी की कन्या शुभाङ्गी से हुआ था। श्रीकृष्ण पाण्डवों के पक्षपाती थे। अर्जुन उनके मित्र थे। श्रीकृष्ण के कहने से युधिष्ठिर ने इन्द्रप्रस्थ में राजसूय यज्ञ किया था। इसके पहले श्रीकृष्ण, भीम अर्जुन को साथ ले कर मगधराज जरासन्ध की राजधानी में गये थे वहाँ उन्होंने भीम के द्वारा जरासन्ध को मरवा डाला था।

नरकासुर नामक एक पृथिवी का पुत्र था। उसकी राजधानी प्राग्ज्योतिषपुर में थी। इन्द्र के कहने से श्रीकृष्ण ने देवशत्रु नरकासुर का विनाश किया और उसकी १६ हज़ार स्त्रियाँ तथा धन रत्न आदि ले कर वे द्वारका लौट आये। पुत्र के वध होने पर पृथिवी ने श्रीकृष्ण से कहा कि आप ही ने मुझे पुत्र दिया था और आप ही ने ले लिया। महाराज! आपके अभिप्राय क्या किसीसे जाने जा सकते हैं? यह कह कर पृथिवी ने श्रीकृष्ण को दो कुण्डल दिये। ये कुण्डल देवमाता अदिति को देने के लिये सत्यभामा को साथ ले कर श्रीकृष्ण स्वर्ग गये। श्रीकृष्ण को देख कर अदिति बहुत प्रसन्न हुईं और आदर के साथ उन्होंने कुण्डल ले लिये। स्वर्ग से लौटते समय सत्यभामा ने देववृक्ष पारिजात को देखा। द्वारका आ कर सत्यभामा ने एकव्रत करने का सङ्कल्प किया। इस व्रत के अनुष्ठान करने के लिये सत्यभामा ने पारिजात वृक्ष की प्रार्थना की। श्रीकृष्ण ने एक वर्ष के लिये इन्द्र से पारिजात वृक्ष माँगा, नारद दूत बन कर गये, परन्तु इन्द्र ने पारिजात देना अस्वीकार किया।

तब श्रीकृष्ण ने बलपूर्वक पारिजात ले आने के लिये गरुड़ को भेजा, गरुड़ ने युद्ध में इन्द्र आदि देवों को परास्त कर दिया और पारिजात ला कर सत्यभामा को अर्पण किया। व्रत का समय बीतने पर श्रीकृष्ण ने कल्पवृक्ष को लौटा दिया।

अग्निदेव को तृप्त करने के लिये श्रीकृष्ण ने खाण्डव वन जलाने में अर्जुन की सहायता की थी। इससे प्रसन्न हो कर अग्निदेव ने श्रीकृष्ण को सुदर्शन चक्र और कौमोदकी गदा दी थी। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में श्रीकृष्ण ही की प्रधान पूजा की गयी, इससे अप्रसन्न हो कर चेदिराज शिशुपाल ने श्रीकृष्ण की बड़ी निन्दा की। श्रीकृष्ण ने भी सुदर्शनचक्र से उसका सिर काट लिया। महाभारत के युद्ध में अर्जुन और दुर्योधन दोनों श्रीकृष्ण को अपने अपने पक्ष में ले आने की चेष्टा करते थे। श्रीकृष्ण ने अर्जुन का पक्ष स्वयं ग्रहण करने की प्रतिज्ञा की और नारायणी नामक सेना दुर्योधन को दी, इस सेना से दुर्योधन को बड़ी सहायता मिली थी।

रैवतक पर्वत पर रहने के समय श्रीकृष्ण की सम्मति से अर्जुन ने उनकी बहिन सुभद्रा का हरण किया था। श्रीकृष्ण ही ने अर्जुन को उत्साहित कर के महाभारत का युद्ध करवाया था। यदुवंश के नाश होने के अनन्तर श्रीकृष्ण वन चले गये और वहाँ एकान्त में बैठ कर ध्यानमग्न थे, उसी समय जरा नामक एक व्याध ने मृग समझ कर उन्हें विपाक्त बाण से मार डाला। (महाभारत)

(२) प्राचीन समय के एक दस्यु का नाम, यह प्रसिद्ध दस्युओं में से है। ऋग्वेद में लिखा है कि कुयव, अयु और कृष्ण नामक तीन प्रसिद्ध

दस्यु थे। कृष्ण अंशुमती नदी के तीर पर रहता था। इसके दल में दस हज़ार डाँकू सर्वदा वर्तमान रहते थे। इसके अत्याचार से जब प्रजा बहुत पीड़ित हुई तब इन्द्र ने इसे मार डाला।
(ऋग्वेद ७म मण्डल, ६६-सूक्त)

कृष्णचैतन्य=इनका जन्म सन् १४८५ ई० में बङ्गाल के नवद्वीप (नदिया) में हुआ था। इन के पिता का नाम जगन्नाथ मिश्र था। जगन्नाथ मिश्र को बहुत लोग पुरन्दर भी कहते थे। इन की माता का नाम शची देवी था। कृष्णचैतन्य का नाम निमाई था। गङ्गादास नामक एक वैयाकरण ब्राह्मण की शाला में ये व्याकरण पढ़ते थे। थोड़े ही दिनों में ये व्याकरण के असाधारण विद्वान् हो गये। बारह वर्ष की अवस्था में इनके पिता परलोकवासी हुए। पिता के वियोग से इनको बड़ा कष्ट हुआ, परन्तु महापुरुष कृष्णचैतन्य इससे विचलित नहीं हुए। उन्होंने अधिक मनोयोग से पढ़ना प्रारम्भ किया। व्याकरण की शिक्षा समाप्त होने पर कृष्णचैतन्य वासुदेव सार्वभौम के निकट न्यायशास्त्र का अध्ययन करने लगे। पिता की मृत्यु के तीन वर्ष के बाद निमाई का विवाह नवद्वीप निवासी वल्लभाचार्य की कन्या लक्ष्मी देवी से हुआ। इन्होंने बहुत दिनों तक विद्यार्थियों को पढ़ाया। न्यायदर्शन की एक टीका भी इन्होंने बनायी थी, परन्तु वह टीका नष्ट हो गयी। इन्होंने एक सम्प्रदाय भी चलाया है, जिसे लोग गौड़िया सम्प्रदाय कहते हैं। इनका सम्प्रदाय माध्व सम्प्रदाय के अन्तर्गत है। चैतन्यदेव एक समय घर से निकल गये और तब से उनका पता नहीं लगा। इनके धर्म सिद्धान्त और कुछ उपदेश नीचे लिखे जाते हैं।

(१) इष्टदेव के प्रति अतिशय प्रेम और अनुराग उत्पन्न कराने का नाम भक्ति है। काय मन और वाणी से भगवान् का अनुगत होना ही भक्ति है।

(२) भक्ति की तीन अवस्था हैं। १म साधनभक्ति, २य भावभक्ति, ३य प्रेमभक्ति।

(३) इस संसार में मनुष्य जन्म अत्यन्त दुर्लभ है। चौरासी लाख योनि घूमने पर मनुष्य-योनि प्राप्त होती है। मनुष्यत्व पा कर जिन्होंने भगवान् के चरणों में अनुराग लगाया है, वे धन्य हैं।

(४) अहैतुकी भक्ति के द्वारा ही भगवान् की प्राप्ति हो सकती है।

(५) नास्तिक दाम्भिक आदि का सङ्ग करना, कुशिष्य और कुमित्र का ग्रहण, वैष्णवों से वार्तालाप अथवा सद्व्यवहार में त्रुटि करना, आलस्य करना, शोक में मुग्ध होना, निन्दित संस्कारों को नहीं छोड़ना, परनिन्दा, जीवहिंसा और कलह करना, परस्त्रीगमन करना, सेवा में मन न देना, अहङ्कार करना, भगवान् की महिमा एवं प्रशंसा के अतिरिक्त और कुछ नहीं है—ऐसा समझना, हरिनाम का अनुचित स्थान और समय में स्मरण करना, उसकी किसी अन्य वस्तु के साथ तुलना करना, भगवान् की निन्दा सुनना या उसे अच्छा समझना—ये बातें धर्मनाशक गुरुतर अपराध हैं।

(६) पहले विश्वास, पुनः साधुसङ्ग, अर्चना, विघ्ननिवृत्ति, निष्ठारुचि और भाव, तदनन्तर प्रेमोदय होता है।

(७) केवल भगवान् की ही उपासना करो, परन्तु दूसरे की उपासनाप्रणाली की निन्दा न करो। बाहरी भेदों को देख तर्क करना निन्दित है।

(८) शुद्ध प्रेम ही धर्म कहा जाता है, कृष्ण प्रेम ही शुद्ध प्रेम है। उसी प्रेम का दूसरा नाम भक्ति है।

(९) भक्ति की उन्नति करना ही कृष्ण साधकों का परम कर्तव्य है।

(१०) सेवा में प्रीति रखना रसिकों के साथ मधुर भागवत का रसास्वाद, और नामसंकीर्तन—इनमें जिसकी जब रुचि हो तभी उसकी आलोचना करनी चाहिये।

(११) रस का अर्थ है आनन्द। आनन्द दो प्रकार का है, जड़ानन्द और चिदानन्द। शुद्ध आनन्द चिदानन्द अथवा चित् रस है और सांसारिक सुख जड़ानन्द या जड़रस है। परमानन्द ही विकृत हो कर दाम्पत्य, प्रणय, अपत्य स्नेह, सखा आदि का रूप धारण करता है।

(१२) सब जाति के मनुष्य प्रेमभक्ति के अधिकारी हैं। क्या हिन्दू क्या म्लेच्छ सभी प्रेमभक्ति के अधिकारी हैं। परमेश्वर का विना प्रेमभक्ति से भजन किये कोई भी उनसे साक्षात्कार नहीं कर सकता। परमात्मा रस या भाव विशेष के वशीभूत है। वह रस या भाव पाँच प्रकार का है शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर। मधुर का दूसरा नाम कान्ता है। उपासना के पूर्ण विकाश होने पर इन भावों का परिचय मिलता है। मधुर या कान्ताभाव सब से श्रेष्ठ है। जिस प्रकार सती स्त्री अपने पति को आत्मसमर्पण करती है उसी प्रकार भक्त को भी भगवान् के चरणों में आत्मसमर्पण करना लाभदायक है; क्योंकि इसमें अन्यान्य भाव तो अनायास ही आ जाते हैं। इसीसे कान्ताभाव सब से श्रेष्ठ भाव कहा जाता है।

(१३) पहले साधनभक्ति तदनन्तर भावभक्ति और पुनः प्रेमभक्ति है। भाव ही का दूसरा नाम रति है। परन्तु वह केवल चिन्मय अवस्था ही में हो सकती है।

(१४) केवल कृष्ण कृपा ही से रति की उत्पत्ति होती है परन्तु उसकी शिक्षा देना कठिन है। साधुसङ्ग ही से रति पुष्ट होती है, स्वेदकम्प आदि रति के लक्षण हैं।

(१५) रति के कुछ भेद हैं भागवतीरति, छायारति, जडरति, और कपटरति। भागवतीरति की प्रथम अवस्था का नाम छायारति है। मद्यप, वेश्यासक्त आदि के जो लक्षण हैं वे जडरति के लक्षण हैं। दिखावटी प्रेम को कपटरति कहते हैं।

(१६) कोई कोई वैष्णव वैष्णवधर्म ही को सर्वश्रेष्ठ मानते हैं, परन्तु वे यथार्थ में वैष्णव नहीं हैं। कोई वैष्णव-चिह्न धारण करते हैं, किन्तु वे भी यथार्थ वैष्णव नहीं कहे जा सकते हैं। किसी ने वैष्णव वंश में जन्म ही लिया है, ये सब केवल वैष्णव के समान अवश्य हैं, परन्तु वैष्णव नहीं हैं। केवल भक्त ही के साथ रसालाप करना औरों के साथ नहीं।

(१७) हरिनाम श्रवण करने ही से पाप नष्ट और शरीर पवित्र होता है। जिस स्थान पर किसी प्रकार की आशङ्का न हो, वहाँ बार बार हरिनाम का उच्चारण करना चाहिये। इस से क्रमशः शरीर पवित्र होगा, मन भगवान् की ओर लगेगा। उस समय सभी मित्र होजायँगे किसी प्रकार की चिन्ता शेष नहीं रह जायगी।

(१८) अन्तःकरण को शुद्ध करने का नाम शम है। बाह्य इन्द्रियों को वश करने का नाम दम है। दुःख आदि सहन करने के लिये उपयुक्त बनने का नाम तितिक्षा है और समस्त नाशशील वस्तु को अवस्तु समझने का नाम वैराग्य है।

(१९) तितिक्षा और वैराग्य वैष्णव संन्यासियों का प्रधान धर्म है।

(२०) श्रद्धा, साधुसङ्ग, भजन और निवृत्ति आदि के द्वारा जब भागवतीरति उत्पन्न होती है, तब वैष्णव हृदय में एक धर्म उत्पन्न होता है जिसका नाम विरक्ति है। उस समय वैष्णव लोग कौपीन धारण करते हैं और भिक्षा से निर्वाह करते हैं, यही वैष्णवों का वेष है। यह वेष भी दो प्रकार का होता है। भाव में विरक्ति होने पर किसी साधु से वेष ग्रहण करना अथवा स्वयं वैसा वेष ग्रहण करके विचरण करना।

(२१) जब तक गृह नहीं छोड़ा जाय तब तक कामना और उसके फल को दुःखद जान कर प्रेमपूर्वक भगवान् का भजन करो, यही वैष्णव गृहस्थों का लक्षण है।

(२२) जब वेष ग्रहण कर के विचरण करना है तब समस्त आश्रमों को छोड़ कर विधि से अतीत परमहंस वैष्णवआश्रम ग्रहण करो और विचरो।

(२३) शीतलता जल का धर्म है, अग्नि का धर्म ताप है, पशु का धर्म हिंसा है और मनुष्य का धर्म शुद्ध प्रेम है।

(२४) संसाररूपी साँप ने जिनको काट खाया है उनकी रक्षा का मन्त्र वैष्णवमन्त्र कृष्ण नाम के अतिरिक्त दूसरा नहीं है।

(२५) त्रेता और द्वापर में ध्यान और यज्ञ के द्वारा फल लाभ होता था, परन्तु कलि में नामसङ्कीर्तन के द्वारा ही परमात्मा प्राप्त होता है।

(२६) जिनके मुख में "हरि" ये दो अक्षर वर्तमान हैं उनको किसी तीर्थ से प्रयोजन क्या है ?

(२७) अनेक शास्त्रों की आलोचना तथा विद्वानों के विचार से यही निश्चित हुआ है कि नारायण का नित्य ध्यान करना आवश्यक है।

(२८) ध्यान से जैसा पाप शोधन होता है वैसा और किसी से नहीं होता है। हरिनाम-रूप अग्नि ही पुनर्जन्मरूप पापों को नष्ट करती है।

(२९) गृह मध्य स्थित अग्नि जिस प्रकार मन्द मन्द वायु से बलवान् हो कर समस्त गृह को भस्म कर देती है उसी प्रकार चित्तस्थित विष्णु भी समस्त पापों को नष्ट कर देते हैं।

(३०) इस संसार में सभी को अपने कर्मों के अनुसार फल भोगने पड़ते हैं। किन्तु जिस प्रकार सिद्ध धान्य में अंकुर उत्पन्न नहीं होता उसी प्रकार वैष्णवों को भी कर्मफल में लिप्त नहीं होना पड़ता है क्योंकि भक्तवत्सल भगवान् भक्तों के कर्मफल को पहले ही से नष्ट कर देते हैं।

कृष्णचैतन्य देव के ये ही संक्षिप्त उपदेश और सिद्धान्त हैं।

कृष्णद्वैपायन—(व्यास) सत्यवती के कानीन पुत्र। सत्यवती, दासराज वसुपालित की कन्या थी। यमुना के किसी द्वीप में मल्लाहों ने एक मछली पकड़ी थी, उसी मछली के पेट से सत्यवती निकली। शरीर में मछली की गन्ध रहने के कारण इसका नाम मत्स्यगन्धा पड़ा। एक दिन मल्लाहों ने नाव खेने के लिये मत्स्यगन्धा को नियुक्त किया। संयोगवश उसी द्वीप में जाने के लिये महर्षि पराशर उसी नाव पर सवार हुए। उसके रूप पर मोहित हो कर महर्षि ने नदी के बीच ही में मत्स्यगन्धा से अपना अभिलाष प्रकट किया। पहले तो मत्स्यगन्धा ने स्वीकार नहीं किया; परन्तु महर्षि ने जब अपनी तपस्या के प्रभाव से चारों ओर अन्धकार फैला दिया, तब उसने स्वीकार कर लिया। मत्स्यगन्धा गर्भवती होगई। मत्स्यगन्धा, द्वीप में गर्भ प्रसव कर के अपने घर लौट आयी। महर्षि के प्रभाव से उसका कन्यापन भी नष्ट नहीं हुआ। बालक का द्वीप में जन्म हुआ, इस कारण वह द्वैपायन कहे जाते हैं। इनका नाम था कृष्णद्वैपायन। कृष्णद्वैपायन माता की अनुमति से शास्त्राध्ययन और तपस्या करने के लिये वन को चले गये। शास्त्राध्ययन करने पर कृष्णद्वैपायन ने वेदों का विभाग किया था। इस कार्य को करने में उन्हें बहुत कष्ट उठाना पड़ा था। वेद विभाग करने पर इनकी प्रसिद्धि वेदव्यास के नाम से हुई। वेदव्यास के पहले गद्य पद्य और गीति तीनों प्रकार के वेदमन्त्र मिले हुए थे। उस समय वेदों का नाम त्रयी था। इसी त्रयी में से आङ्गिरा वंश के महर्षि अथर्वा ने प्रत्यक्ष फलप्रद शत्रुमारण आदि प्रयोगों को एकत्रित कर के, अपने नाम से प्रकाशित किया। तबसे वेद के दो भाग हुए। बड़े भाग का नाम त्रयी पड़ा और छोटे भाग का नाम अथर्वसंहिता पड़ा। कृष्णद्वैपायन ने उसी त्रयी को रचना के अनुसार ऋक्, यजु और साम नाम से प्रसिद्ध किया, तब से वेद चार भागों में विभक्त हो कर प्रसिद्ध हुआ। कृष्णद्वैपायन ने अष्टादश पुराणों की भी रचना की थी। इन पुराणों के अतिरिक्त सृष्टि के आदि से लेकर कुरु पाण्डव युद्ध तक का इतिहास भी इन्होंने रचा है। उस ग्रन्थ का नाम महाभारत है (देखो महाभारत) इस ग्रन्थ की रचना उन्होंने तीन वर्षों में की थी। प्रसिद्ध ज्ञानी शुकदेव इन्हीं के पुत्र थे। वेदान्तदर्शन के सूत्र इन्हीं ही ने बनाये हैं, जिनके ऊपर अनेक आचार्यों ने अनेक प्रकार के भाष्य बनाये हैं।

कृष्ण मिश्र—संस्कृत के एक विद्वान् और कवि का नाम। प्रसिद्ध प्रबोधचन्द्रोदय नाटक के कर्ता ये ही हैं। उसी नाटक से विदित होता है कि चन्देल राजा कीर्तिवर्मा के ये सभासद् थे। राजा कीर्तिवर्मा ने चेदि के राजा कर्ण को युद्ध में हराया था। काशी में राजा कर्णदेव का नाम कई एक ताम्रपत्रों में खुदा मिलता है। इनका समय सन् १०४२ ई० मिलता है। हेमचन्द्र और बिल्हण के ग्रन्थों से यह मालूम होता है कि अन्यान्य राजाओं ने भी इसे परास्त किया था। कर्णदेव को पराजित करनेवाले राजा कीर्ति-

वर्मदेव सन् १०८० ई० से ११९६ ई० तक वर्तमान थे। अतएव उनके सभासद् कृष्ण मिश्र का भी यही समय माना जाना उचित है।

कृष्णराम=बूँदी के एक राजमन्त्री का नाम। ये महाराव रामसिंह के समय में थे। ये बड़े ही स्वामिभक्त और सुचरित्र कर्मचारी थे। १८३० ई० में ये षड्यन्त्रकारियों के हाथों मारे गये। (टाड्स् राजस्थान)

केकय=प्राचीन एक राज्य का नाम। रामायण में लिखा है कि केकय राज्य की राजधानी का नाम गिरिव्रज अथवा राजगृह था। राजगृह मगध के राजगृह से भिन्न है, इस में कुछ सन्देह नहीं। परन्तु वह राजगृह था कहाँ और केकय राज्य ही कहाँ था, आज उसकी किस नाम से प्रसिद्धि है, इन बातों का जानना इस समय कष्टसाध्य हो गया है। रामायण के अयोध्याकाण्ड में केकय राज्य का उल्लेख हुआ है और वहाँ से कुछ पता भी लगाया जा सकता है। महाराज दशरथ की रानी केकय देश की थी, भरत अपने ननिहाल गये हुए थे। भरत को ले आने के लिये जो अयोध्या से दूत भेजे गये थे और भरत जी वहाँ से लौटे हैं, उनके मार्ग का रामायण में उल्लेख किया गया है। केकय राज्य में जाने के लिये राजदूत अयोध्या से पश्चिम की ओर प्रस्थित हुए। वे अपर ताल और प्रलम्ब नामक जनपद के बीच में बहने वाली मालिनी नदी के तीर से हो कर निकले, हस्तिनापुर में जा कर उन्होंने गङ्गा को पार किया। तदनन्तर वे पाञ्चाल देश को डाँक कर कुरुजाङ्गल देश के मध्य से जाने लगे। वहाँ से शरदण्ड नाम की नदी पार कर, वे कुलिङ्ग नामक पुरी में गये। इसी प्रकार इक्षुमती नदी को पार कर के और वाल्हीक देश के बीच से हो कर वे सुदामा पर्वत पर उपस्थित हुए। तदनन्तर विपाशा शाल्मली आदि नदियों को पार कर, वे गिरिव्रज में उपस्थित हुए। रामायण में ननिहाल से भरत के लौटने के समय का जो उनके मार्ग का विवरण लिखा है, वह इससे नहीं मिलता। इस लिये मालूम पड़ता है कि या तो भरत दूसरे मार्ग से आये, अथवा अयोध्या से केकय राज्य समीप था। परन्तु वह कौन देश है इसके उत्तर में कनिंहम साहब कहते हैं— वितस्ता नदी के उस पार स्थित जलालपुर और उसके समीप का स्थान प्राचीन केकय राज्य है। अकबर के समय में उस प्राचीन नगरी का नाम जलालपुर पड़ा। जलालपुर के समीपस्थ गिर्जाक नाम की गिरिश्रेणी, गिरिव्रज नगर का शेष चिन्ह मालूम पड़ती है। रामायण के गिरिव्रज ही का नामान्तर गिर्जाक हो गया है, ऐसा मानना भी अनुचित न होगा। जलालपुर पञ्जाब में झेलम ज़िले के अन्तर्गत और वितस्ता नदी के दक्षिण तीर पर बसा है। उसके समीप के स्थान केकय राज्य के अन्तर्गत थे। अनेक पश्चिमी विद्वान् इसी प्रकार का अपना मत प्रकाशित करते हैं। किसी किसी का मत है कि काश्मीर के प्रान्तविशेष ही का नाम केकय है। महाभारत आदि ग्रन्थों में काश्मीर राज्य का उल्लेख पाया जाता है, परन्तु रामायण में काश्मीर का नाम तक नहीं मिलता, अतएव सम्भव है, रामायण के समय में काश्मीर केकय नाम से प्रसिद्ध हो। काश्मीर के इतिहास राजतरङ्गिणी में राजपुरी नामक एक नगर का उल्लेख है। बहुतों का विश्वास है कि रामायण वर्णित राजगृह और यह राजगृह दोनों एक ही हैं। परन्तु काश्मीर को केकय राज्य मानलेने में केकय और अयोध्या के मार्ग में वाल्हीक का आना एक प्रकार से असम्भव कहा जा सकता है परन्तु पुराने भारत में जिस जाति के लोग जिस स्थान पर बस जाते थे, वह स्थान उन्हींके नाम से प्रसिद्ध हो जाता था। अतएव सम्भव है कि काश्मीर और अयोध्या के मार्ग में कुछ वाल्हीक जाति के लोगों की बस्ती रही हो। गार्ग्य के वर्णन से भी यही बात पायी जाती है।

केकयी=(देखो कैकेयी)।

केकसी=सुमाली और केतुमाली की एक कन्या का नाम। सुमाली बहुत दिनों से अपने कुटुम्ब के साथ पाताल में रहा करता था। कुबेर[१] के ऐश्वर्य से ईर्ष्या कर के सुमाली ने अपनी कन्या

---

१ "कुवेर" और "कुबेर" दोनों प्रकार से इस शब्द की अक्सर योजना की जाती है।

केकसी को महर्षि विश्रवा के पास इसलिये भेजा कि कुबेर के समान वीर्यवान् पुत्र इसके गर्भ से उत्पन्न हो । महर्षि विश्रवा के औरस और इसी केकसी के गर्भ से रावण आदि घोर अत्याचारी राक्षस उत्पन्न हुए थे ।

केतु=नवग्रहों में से एक ग्रह, इसके रथ को लाख के रङ्ग के आठ घोड़े खींचते हैं । पौराणिकमतानुसार ये प्रति संक्रान्ति को सूर्य को आक्रमण करता है ।

पुराणान्तर में लिखा है कि यह एक दानव था, इसकी माता का नाम सिंहिका था । कहते हैं समुद्रमन्थन के अनन्तर देवता अमृत पीने के लिये एक पंक्ति में बैठे थे । दानव केतु भी एक देवता का रूप धारण कर, उनकी पंक्ति में जा बैठा । उसी पंक्ति में चन्द्रमा और सूर्य भी बैठे थे उन दोनों ने केतु को पहचान कर अन्य देवताओं के निकट उनका रहस्य खोल दिया । तब भगवान् विष्णु ने चक्र से उसका सिर काट डाला । परन्तु अमृत उसके गले के नीचे उतर चुका था, इस कारण सिर कटने पर भी वह न मरा । उसके कटे मस्तक का नाम राहु और मस्तक रहित दूसरे धड़ का नाम केतु पड़ा । ग्रहण के समय राहु उसी क्रोध का बदला चुकाने के लिये चन्द्र और सूर्य का ग्रास करता है । हिन्दू ज्योतिष में ये ग्रह माने जाते हैं । किन्तु इन की गणना पापग्रहों में है । विंशोत्तरी गणना के अनुसार केतु की दशा का फल सात वर्ष तक रहता है । केतु की दशा के पहले बुध और उसके पश्चात् शुक्र की दशा आती है । पाश्चात्य ज्योतिष के अनुसार ये ग्रह नहीं माने जाते हैं ।

केतुमत्=(१) एक लोकपाल का नाम । ये रजस के पुत्र थे । ये पश्चिम दिशा के अधिपति हैं ।

(२) राजा धन्वन्तरी के पुत्र का भी नाम केतुमत् था ।

केतुमती=सुमाली राक्षस की स्त्री का नाम ।

केतुमाला=(१) अग्नीध्र राजा के एक पुत्र का नाम । ये गन्धमादन के अधिपति थे ।

(२) एक वर्ष का नाम ।

केदार कवि=ये भाट जाति के कवि थे । सन् ११५० ई० में ये विद्यमान थे । शिवसिंह के शिवसरोज में लिखा है कि ये अलाउद्दीन गोरी के दरबार में विद्यमान थे; किन्तु इनका बनाया कोई ग्रन्थ नहीं मिलता । यदि मिलता, तो वह सब से प्राचीन हिन्दी भाषा के पद्य की बानगी होती ।

केरल=प्राचीन राज्यविशेष । इस समय के मालवार, कनाड़ा और कोङ्कण आदि देश प्राचीन केरल राज्य के अन्तर्गत समझे जाते हैं । इस देश की उत्पत्ति, पुराणों में इस प्रकार लिखी है— परशुराम ने इस देश को समुद्र से निकाला था और उन्हीं ही ने इस देश में ब्राह्मणों को भी बसाया था । आधुनिक ऐतिहासिक कहते हैं कि पहली या दूसरी सदी में उत्तर केरल के एक राजकुमार ने हिन्दुस्तान से ब्राह्मणों को बुला कर वहाँ बसाया था । मालवार अथवा कनाड़ा के ब्राह्मण उत्तर भारत के ब्राह्मणों के साथ अपने सम्बन्ध का परिचय बतलाते हैं । एक समय केरल देश ब्राह्मणों के अधीन था । ब्राह्मण ही वहाँ के राजा थे । इस राज्य को ब्राह्मणों ने चौंसठ भागों में बाँटा था और साधारण प्रजातन्त्र-शासन-प्रणाली के अनुसार वहाँ का राज्य शासित होता था । ब्राह्मण ही इसके शासक थे तथापि हर तीसरे वर्ष नये शासक निर्वाचित किये जाते थे । वह निर्वाचित राज्य चार सदस्यों के मतानुसार शासन करते थे, आवश्यकता के अनुसार शासक गण युद्धकार्य का भार एक सर्दार को सौंप दिया करते थे । पाण्ड्यवंशी राजाओं ने अनेक बार केरलराज की सहायता की थी । कोङ्कण प्रदेश कभी कभी केरल देश के अन्तर्गत समझा जाता था और कभी कभी वह उससे पृथक् भी हो गया है । खृष्टीय नवम शताब्दी में केरल राज्य नष्ट हो गया था । उस समय केरलराज्य का दक्षिण भाग, मालवार प्रदेश, वहाँ के राजपुत्र का विरोध करने लगा । राजपुत्र ने मुसल्मान धर्म ग्रहण किया था इससे प्रजा विद्रोही हो गयी थी । उस विद्रोह के फल से मालवार प्रदेश छोटे छोटे अनेक राज्यों में बँट गया । उस समय के विच्छिन्न केरल राज्य में जेमोरिन वंश के एक राजा राज्य करते थे । इन्हीं जेमोरिन वंश के राजा के यहाँ पुर्तगाल देश का नाविक भास्को-डि-गामा ठहरा था । पन्द्रहवीं सदी में केरल राज्य

की जो अवस्था हुई थी उसका पता जेमोरिन वंश के इतिहास से मिलता है। केरल के उत्तर भाग कनाडा का १२वीं सदी तक अस्तित्व सुरक्षित था। अन्त में यह विजयनगर के राज्य में मिला दिया गया था। केरल का कुछ भाग वर्तमान ट्रावङ्कोर के राज्य में मिला लिया गया था, इसके पुष्ट प्रमाण मिल चुके हैं। उस समय केरल का कुछ भाग चेरा नाम से प्रसिद्ध था।

(भारतवर्षीय इतिहास)

केलनजी=जयसलमेर के प्रतिष्ठाता यदुवंशी जयसल राव के एक पुत्र का नाम। केलनजी उनके ज्येष्ठ पुत्र थे। अतएव जयसल की मृत्यु होने के पीछे केलनजी ही का राज्याभिषेक हुआ। परन्तु इनके राज्याभिषेक से राजमन्त्री बहुत असन्तुष्ट हुआ। और उसीने षड्यन्त्र रच के केलनजी को राज्य से अलग कर दिया। पीछे से वहाँ रह कर केलनजी किसी प्रकार का विद्रोह न करें, यह सोच कर उसने उनको वहाँसे निकाल दिया। केलनजी ११ वीं सदी में थे। उनके बाद उनके छोटे भाई को राज्य मिला।

(टाड्स् राजस्थान)

केवल=नर नामक एक राजा के एक लड़के का नाम।

केवलराम=इनका होना सन् १५७५ ई० में प्रमाणित होता है। इनका नाम भक्तमाल में दिया हुआ है, ये कृष्णदास पयहारी के शिष्य थे।

केशव=भगवान् विष्णु का नामान्तर। केश शब्द का अर्थ सूर्य की किरण समझा जाता है। महाभारत में लिखा है।

"अंशवो ये प्रकाशन्ते मम ते केशसंज्ञिताः।
सर्वज्ञाः केशवं तस्मात् प्राहुर्मां द्विजसत्तमाः॥"

केशवचन्द्रसेन=बङ्गाल के नवविधान (ब्राह्मो) समाज के प्रसिद्ध प्रतिष्ठाता। इनका जन्म कलकत्ता में हुआ था। इनके पिता का नाम प्यारीमोहन था। सन् १८३८ ई० में इनका जन्म हुआ था। इनकी ११ वर्ष की अवस्था में इनके पिता स्वर्गवासी हुए। ये पढ़ने के लिये हिन्दू विद्यालय में भर्ती हुए थे। परन्तु किसी कारणवश इनको अपना अध्ययन शीघ्र ही समाप्त करना पड़ा। तदनन्तर इन्होंने एक पादरी के साथ मिल कर ब्रिटिश इण्डिया सोसाइटी नाम से एक सभा स्थापित की। उसी समय ब्राह्मसमाज के नेता देवेन्द्रनाथ ठाकुर के साथ इनका परिचय हुआ और केशवचन्द्र ब्राह्मसमाज के एक सभ्य हुए। इसी समय से दोनों मिल कर काम करने लगे। इन दोनों ने अपने प्रयत्न से ब्राह्म विद्यालय की स्थापना की। केशवचन्द्र देवेन्द्रनाथ के साथ कुछ दिनों तक धर्मप्रचार करने के लिये घूमते रहे, तदनन्तर गोस्वामी विजयकृष्ण के साथ ये धर्मप्रचार करते रहे। इन्होंने ब्राह्म-विवाहसम्बन्धी कानून को नियमबद्ध करने के लिये आन्दोलन किया। १८७२ ई० में कानून भी बन गया। इनकी कन्या का विवाह कूचविहार के राजा से हुआ था। इस विवाह में ब्राह्मसमाज के विरोधी कतिपय ठहराव इन्होंने किये थे। इस कारण ब्राह्मसमाजी इनसे अलग हो गये। तब इन्होंने "नवविधान" नामक एक पन्थ चलाया और कुछ साथियों को ले कर ये जब तक जीते रहे तब तक उसकी उन्नति करते रहे। १८८४ ई० में बहुमूत्ररोग से पीड़ित हो कर, परलोकवासी हुए।

केशवदास=ये काश्मीर के रहनेवाले थे और सन् १५४१ ई० में विद्यमान थे। ये हिन्दी के कवि थे। कविता के कारण इनकी प्रसिद्धि चारों तरफ फैल गयी, प्रसिद्ध होने पर ये व्रज में आकर रहनेलगे। वहाँ इन्होंने कृष्णचैतन्य से शास्त्रार्थ भी किया था, परन्तु शास्त्रार्थ में ये हार गये।

केशवदास सनाढ्य मिसर=येबुन्देलखण्डकेरहने वाले हिन्दी के एक कवि थे और सन् १५८० ई० में विद्यमान थे। इनका पहले का वासस्थान टिहरी में था। एक समय ओरछा के राजा मधुकरशाह से इनका परिचय हुआ। राजा ने इनका बड़ा सम्मान किया और राजा मधुकरशाह के पुत्र इन्द्रजीत ने २१ गाँव इन्हें दिये। तबसे ये सकुटुम्ब ओरछे ही में रहने लगे। सबसे पहले इन्हीं ने भाषा में कविता के दश अङ्गों का वर्णन "कविप्रिया" नामक ग्रन्थ में किया है। इनका सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ "विज्ञानगीता" है। इस ग्रन्थ को इन्होंने मधुकरशाह के नाम से बनाया है। इसके पश्चात् इन्होंने परवीनराय पातर के लिये कविप्रिया की रचना की। अनन्तर

इन्होंने "रामचन्द्रिका" नामक ग्रन्थ इन्द्रजीत के नाम से लिखा। इन्होंने "रसिकप्रिया" और "राम अलंकृत मञ्जरी" नामक दो और भी ग्रन्थ बनाये हैं।

जब अकबर ने इन्द्रजीत पर आज्ञाभङ्ग करने के अपराध में १० लाख रुपये जुर्माना किये, क्योंकि बुलाने पर भी परवीनराय पातर उनके दरबार में उपस्थित न हुए थे, तब केशवदास जा कर चुप चाप बीरबर से मिले और उन्होंने एक कवित्त पढ़ा; जिसका अन्तिम पद यह था—"दियो करतारो दुहूं करतारी" इस कवित्त को सुनकर बीरबर प्रसन्न हुए और जुर्माना माफ करा दिया।

केशवभारती=ये एक संन्यासी थे, कृष्णचैतन्य ने इन्हींसे दीक्षा ली थी।

केशवाचार्य=श्रीसम्प्रदाय के आचार्य श्रीरामानुजाचार्य के पिता का नाम।

केशरी=राजवंश विशेष। इस वंश के लोग, उड़ीसा के राजा थे। केशरीवंश के राजत्वकाल से उड़ीसा का धारावाहिक इतिहास प्राप्त होता है। इसके पहिले राजा का नाम ययाति केशरी था।

केशिध्वज=ये कीर्तिध्वज के प्रसिद्ध पुत्र थे। इनके चचेरे भाई का नाम खाण्डिक्य था, ये धार्मिक अनुष्ठानों के लिये और केशिध्वज ज्ञान-सम्बन्धी आविष्कारों के लिये प्रसिद्ध थे। अतएव दोनों में विवाद हुआ और वह विवाद यहाँ तक बढ़ा कि केशिध्वज ने खाण्डिक्य को अपने राज्य से निकाल दिया। पीछे से एक ऐसा समय आया कि केशिध्वज को किसी महत्त्वपूर्ण विषय के सम्बन्ध में परामर्श करने की आवश्यकता पड़ी। इसके लिये वे बहुत चिन्तित हुए। तब मन्त्रियों ने कहा कि इसकी मीमांसा आपके शत्रु खाण्डिक्यके अतिरिक्त दूसरा कर नहीं सकता, तब केशिध्वज खाण्डिक्य से मिले और उनकी कठिनाई दूर हुई। उन्होंने खाण्डिक्य को पुरस्कार देने की इच्छा से पूछा कि आप कृपा कर बतलावें कि इसके लिये मैं आपको क्या दूँ, जिससे मैं आपके ऋण से उऋण होऊं। इस पर खाण्डिक्य के मित्रों ने सम्मति दी कि तुम अपने हाथ से निकला राज्य माँगो। इस पर खाण्डिक्य ने केशिध्वज को सम्बोधन कर के कहा कि यदि आप हमको पारमार्थिक ज्ञान जोकि जीव सम्बन्धी सिद्धान्त से सम्बन्ध रखता है—बतला दें, तो आप हमारे ऋण से उऋण हो जाँय। हम को यह बतलाइये कि जीव की उन्नति किन कर्मों से होती है। तब केशिध्वज ने यथार्थ अज्ञान की व्याख्या की और योग के लाभ बताये।

(विष्णुपुराण)

केशिनी=यह विदर्भराज की कन्या थी। इसका विवाह राजा सगर से हुआ था। सगर के औरस और केशिनी के गर्भ से एक पुत्र उत्पन्न हुआ था।

केशी=कंस का एक अनुचर। इस दानव ने कंस की आज्ञा से एक बड़े घोड़े का रूप धारण कर के वृन्दावन में ब्रजवासियों को कष्ट देना प्रारम्भ किया। यह दानव दुलत्तियों से गौओं और ग्वालों का वध कर उनका मांस खाता था। जब श्रीकृष्ण उसके सामने गये, तब वह उन पर वेग से टूटपड़ा। परन्तु श्रीकृष्ण ने उसके पिछले पैर पकड़ कर उसे गुफना की तरह खूब घुमाया और ४०० हाथ की दूरी पर फेंक दिया। कुछ देर तक तो वह दानव मूर्च्छित पड़ा रहा, पुनः सचेत होने पर वह उनसे लड़ने को गया। उस समय श्रीकृष्ण ने उसके मुँह में हाथ घुसेड़ कर, उसे मार डाला।

(श्रीमद्भागवत)

केहर=भाटी जाति के एक प्रधान नेता। भाटी जाति के इतिहास में इनका नाम बहुत प्रसिद्ध है। इनके पाँच पुत्र थे। ये पाँचों बड़े वीर और योद्धा थे। अनेक राजपूत राजाओं के राज्य इन्होंने छीन लिये थे। इसी कारण धोखे में केहर मार डाले गये थे। ये प्रसिद्ध खलीफा वीदल के समकालीन थे।

कैकय=(देखो केकय)।

कैकसी=(देखो केकसी)।

कैकेयी=अयोध्याधिपति महाराज दशरथ की महिषी और भरत की माता। यह केकयदेश के राजा की राजकन्या थी। केकयराज्य विपाशा और शतद्रु के मध्य में वाल्हीक नामक जनपद के दक्षिण की ओर है। (देखो केकय) केकयी

युवती और सुन्दरी थी, अतएव महाराज दशरथ उसके सर्वथा अनुगत होगये थे । एक समय राजा को प्रसन्न करके केकयी ने उनसे दो वर देने की प्रतिज्ञा कराली थी । महाराज ने वृद्धावस्था में अपने ज्येष्ठ पुत्र को राज्य देना चाहा। अभिषेक की तैयारियाँ होने लगीं । इस समय केकयी ने वे दोनों वर माँगे । एक वर से राम को चतुर्दश वर्ष का वनवास और दूसरे वर से भरत को राज्य । इससे राजभवन में कोलाहल होने लगा । एक क्षण ही में अयोध्या का आनन्द शोक के रूप में बदल गया । महाराज दशरथ अचेत होकर गिर पड़े । श्रीरामचन्द्र को भी इसकी ख़बर लगी । श्रीरामचन्द्र, पिता को सत्यपाश से मुक्त करने के लिये उनकी आज्ञा के विना ही वन जाने के लिये प्रस्तुत हुए । लक्ष्मण और सीता ने उनका साथ दिया । भरत उस समय अपने मामा के यहाँ थे । उनको ले आने के लिये दूत केकय राज्य भेजे गये । भरत ने आकर देखा कि श्रीराम अयोध्या में नहीं हैं और उन्हींके वियोग में दशरथ की मृत्यु हुई है । भरत ने अपनी माता केकयी का बड़ा तिरस्कार किया, और वे शीघ्र ही राम को लौटा लाने के लिये चले । परन्तु राम नहीं लौटे । उन्होंने समझा बुझा कर भरत ही को लौटा दिया । रामचन्द्र जब वन से लौट कर आये, तब केकयी अपने कर्म के लिये बहुत लज्जित हुई थी ।

कैटभ=पुराने समय में ब्रह्मा ने दो असुरों की सृष्टि की थी । ये दोनों असुर पहले योगनिद्रामग्न भगवान् विष्णु के कर्णमूल से उत्पन्न हुए थे । उत्पन्न होने के समय ये अचेत न थे । इससे ब्रह्मा ने इनके शरीर में प्राणों का सञ्चार किया । इनके जीवित होने पर ब्रह्मा ने जब इनके शरीर को स्पर्श किया तब एक का शरीर कोमल था, अतएव उसका नाम मधु और दूसरे का शरीर कड़ा था, इस कारण उसका नाम कैटभ रक्खा । ये दोनों अपने शारीरिक बल के घमण्ड से एकार्णव सागर में घूमने लगे । इनके भय से ब्रह्मा ने विष्णु के नाभिकमल में अपना वासस्थान बना लिया । बहुत दिनों के बाद इन दोनों ने ब्रह्मा को देख कर उनसे लड़ना प्रारम्भ किया तब ब्रह्मा ने इनसे त्राण पाने के लिये, विष्णु को जगाया । निद्रा से उठ कर विष्णु युद्ध करने लगे, बहुत दिनों तक युद्ध होने पर भी, कैटभक्लान्त न हुआ । अनन्तर इन असुरों ने विष्णु से कहा हम तुम्हारी युद्धकला से प्रसन्न हैं, तुम वर माँगो । विष्णु ने कहा:—

" भवेतामद्य मे तुष्टौ मम वध्यावुभावपि ।
किमन्येन वरेणात्र एतावद्धि वृतं मया ॥ "

यदि तुम प्रसन्न हो, तो तुम दोनों मेरे हाथों मारे जाओ, मैं यही वर माँगता हूँ । अनन्तर विष्णु ने उन का वध किया । (हरिवंश)

कैय्यट=(१) ये महाभाष्यप्रदीप के रचयिता थे । सुना जाता है कि ये काव्यप्रकाश-कार मम्मट के छोटे भाई थे और उवट भी इनके छोटे भाई थे (देखो उवट) महाभाष्य प्रदीप में लिखा है " कैयटो जैयटात्मजः " अर्थात् कैयट जैयट के पुत्र थे । ये ही जैयट मम्मट के पिता थे । जैयट, कैयट, उवट, वज्रट, उद्भट, रुद्रट, धम्मट, मम्मट, कल्लट, मल्लट, विल्हण, कल्हण आदि नाम उस समय काश्मीरियों ही के रखे जाते थे । इससे इनका काश्मीरी होना प्रमाणित होता है । इनके विषय में काश्मीर में जो कथानक प्रचलित है उसका उल्लेख सुभाषितावली की भूमिका में पीटर्सन साहब ने किया है। कैयट ने बड़े परिश्रम से महाभाष्य पढ़ा था, उनका अभ्यास महाभाष्य में इतना बढ़ गया था कि वे विद्यार्थियों को समग्र महाभाष्य कण्ठाग्र ही पढ़ा सकते थे । वररुचि ने महाभाष्य के जिन कठिन स्थलों को न समझने के कारण छोड़ दिया था, वे स्थल भी कैयट को स्पष्ट हो गये थे । कहा जाता है कि जब कृष्ण भट्ट दक्षिण देश से इनका दर्शन करने आये, तब कैयट कुल्हाड़ी से लकड़ी चीर रहे थे और विद्यार्थियों को पढ़ाते जाते थे । इससे भट्ट जी को बड़ा आश्चर्य हुआ । कृष्ण भट्ट ने काश्मीर के राजा से कैयट को दक्षिणा में अन्न धन आदि दिलाना चाहा, परन्तु कैयट ने राजधन लेने से इनकार कर दिया । कैयट काश्मीर छोड़ काशी चले आये, वहाँ के पण्डितों को उन्होंने शास्त्रार्थ में

हराया। कैयट ने महाभाष्यप्रदीप की रचना काशी ही में की थी। कैयट पामपुर के निवासी थे। यदि पूर्वोक्त कथानक सत्य है तो कैयट अजितापीड से पीछे हुए हैं क्योंकि अजितापीड ने पामपुर को बसाया। ये, सन् ८४४ ई० से ८४६ ई० तक काश्मीर के राजा रहे हैं। कुछ लोगों का मत है कि कैयट १३ वीं सदी से पहले के नहीं हैं और सायण माधव के पूर्व के किसी लेखक ने इनके विषय में कुछ भी नहीं लिखा है। परन्तु जब ये उव्वट और मम्मट के भाई थे, तब इनका समय ग्यारहवीं सदी मानना ही उचित जान पड़ता है।

(२) संस्कृत के एक विद्वान् का नाम। ये नाम के अनुसार काश्मीरी माने जा सकते हैं। इन्होंने सन् ९७७ ई० में आनन्दवर्द्धन रचित देवीशतक की टीका लिखी है। इनके पिता का नाम चन्द्रादित्य और पितामह का नाम वल्लभदेव था। ये कवि राजा भीमगुप्त के समय में जीवित थे। इनके बनाये और किसी ग्रन्थ का पता नहीं चलता।

कैलास=मेरु पर के एक पहाड़ का नाम। जोकि हिमालय के ऊपर है। मेरु का नाम प्रायः पुराणों में पाया जाता है। पुराणों में इसका विस्तार कई योजन का बतलाया गया है यह मेरु से पश्चिम की ओर है। पुराणों में लिखा है कि यह चाँदी का पहाड़ है और शिव का आवास-स्थान है।

कैलासमन्दिर=इलोरा गुहा के मन्दिरों में से एक मन्दिर का नाम। यह मन्दिर सुन्दरता और शिल्पनिपुणता में अनुपम है। पुराण वर्णित देव देवियों की मूर्ति इसमें खोदी गयी है। इस मन्दिर के सामने एक बरांडा है। बरांडा के बाद एक विशाल मण्डप है। यह मण्डप १४० फीट लम्बा और ६० फीट चौड़ा है। इस मण्डप में बड़े बड़े खम्भे हैं और ऊपर छत है। उसके एक ओर बहुत बड़ा बरांडा है और उसकी बगल में एक मण्डप है। इस मण्डप की लम्बाई २५० फीट और चौड़ाई १५० फीट है। इसी के बीच में पत्थर का बना प्रधान मन्दिर है। इसके पत्थरों पर खुदाई का काम है। मन्दिर की ऊँचाई प्रायः सौ फीट होगी। मन्दिर के बाहर और भीतर अनेक मूर्तियाँ खुदी हैं। मन्दिर चौकोने चार खम्भों पर स्थित है। खम्भे पत्थर के बने चार हाथियों पर बनाये गये हैं। इस मन्दिर की सुन्दरता देख कर बहुत लोग इसे रङ्गमहल कहते हैं।

(भारतवर्षीय इतिहास)

कैसिका=विदर्भ देश के राजा के पुत्र का नाम।

कैसवराम=इनके जन्म आदि के सन् संवत् का पता नहीं चलता। इनका नाम शिवसिंहसरोज में आया है। ये प्रसिद्ध भ्रमरगीत के रचयिता बतलाये जाते हैं। परन्तु प्रसिद्धि यह है कि भ्रमरगीत के यथार्थ में रचयिता कवि कृष्णदास थे।

कोङ्कण=प्राचीन एक राज्य का नाम। प्राचीन केरल राज्य के अंशविशेष को कोङ्कण कहते हैं। (देखो केरल)

कोङ्कणपुर=कोङ्कणपुर ही का दूसरा नाम कोङ्कण है। कोङ्कण की प्राचीन राजधानी अन्नगुण्डी में थी। तुङ्गभद्रा नदी के उत्तर तीर पर इस नगरी के ध्वंसचिन्ह अभी भी पाये जाते हैं कहा जाता है कि अन्नगुण्डी में यादवों की राजधानी थी। तुङ्गभद्रा के दक्षिण तीर पर विजयनगर नामक नगर के बस जाने से इस समय अन्नगुण्डी खँडहर हो रही है। सातवीं सदी में चालुक्यवंशी महाराष्ट्रों का प्रभाव कोङ्कण में फैला हुआ था। डा० हेमिल्टन कहते हैं कि कोङ्कण देश के अधिवासी अपने देश को कोंकन कहते हैं। दक्षिण भारत से सिन्धु नदी के मुहाने की ओर जाने पर मार्ग में कोकन्द नाम की एक जाति का उल्लेख प्लिनी साहब ने किया है। क्या वे ही कोङ्कण के आदिम अधिवासी हैं। इस प्रकार की शङ्का कुछ लोग करते हैं। कोङ्कण के आदिम अधिवासियों के विषय में हुएनत्सङ्ग ने लिखा है—वे काले रङ्ग के और क्रोधी होते हैं, परन्तु उनका विद्या में अनुराग होता है। (भारतवर्षीय इतिहास)

कोशल=पुराण वर्णित प्राचीनतम एक गौरवशाली राज्य। कोशल राज्य की राजधानी अयोध्या नगरी में थी। यह राज्य अत्यन्त प्राचीन है।

इस राज्य का उल्लेख वेदों के ब्राह्मणों में पाया जाता है। शतपथ ब्राह्मण में कोशलराज्य की सीमा इस प्रकार लिखी है। सदानीरा के एक तट पर कोशल राज्य और उसके दूसरे तट पर विदेह राज्य है। कोशल राज्य इक्ष्वाकुवंशियों के अधिकार में था। इक्ष्वाकु से रामचन्द्र पर्यन्त इनकी राजधानी अयोध्या ही में थी। रामचन्द्र के महाप्रस्थान के पश्चात् अयोध्यानगरी की श्री नष्ट हो गयी थी। रामायण में लिखा है कि कोशलराज्य को दो भागों में बाँट कर रामचन्द्र ने अपने दोनों पुत्रों को दे दिया। कुश के राज्य का नाम कोशल पड़ा और लव के राज्य का नाम उत्तरकोशल पड़ा। तब इन दोनों ने अपनी अपनी राजधानी भी पृथक् कर ली। कुश की राजधानी का नाम कुशावती या कुशस्थली था, और लव की राजधानी का नाम श्रावस्ती था। इसी प्रकार अन्य राजपुत्रों ने अपनी अपनी राजधानी पृथक् पृथक् बना ली, इसीसे अयोध्या जनशून्य हो गयी। पुनः इसी वंश में ऋषभ नामक एक राजा उत्पन्न हुए और उन्होंने अयोध्या का पुनः उद्धार किया।

(भारतवर्षीय इतिहास)

कौटिल्य=ये एक इतिहासप्रसिद्ध महापुरुष थे। जिस समय ग्रीक देश का अलेक्ज़ेण्डर भारतवर्ष में आया था। उस समय यहाँ कौटिल्य वर्तमान थे। कौटिल्य का दूसरा नाम चाणक्य था। उन्हींकी कूटनीति से नन्दवंश का नाश और चन्द्रगुप्त का मगध के राज्यासन पर अभिषेक हुआ था। मेगास्थानीज़ ने लिखा है कि-चाणक्य और चन्द्रगुप्त के समय में भारत में खानों की बड़ी अधिकता थी। कौटिल्य ने प्राचीन ग्रन्थों का सार संग्रह करके अर्थशास्त्र नामक एक ग्रन्थ लिखा है। इस ग्रन्थ में खान और खनिज पदार्थों के विशद विवरण लिखे हैं। अर्थशास्त्र में लिखा है कि खानों से राजा का कर वसूल होता था। खानें राजाओं की आमदनी का एक द्वार थीं। कौटिल्य के अर्थशास्त्र से प्राचीन राज्यव्यवस्था सम्बन्धी बहुत सी नयी बातें मालूम होती हैं। यह ग्रन्थ आर्यों की व्यावहारिक अभिज्ञता का पूर्ण प्रमाण है।

कौथुमी=सामवेद की एक शाखा का नाम। इस वेद की अनेक शाखाएँ थीं, परन्तु आज केवल दो ही शाखाएँ उपलब्ध होती हैं। एक का नाम कौथुमी और दूसरी का नाम राणायन है। कौथुम मुनि द्वितीय शाखा के प्रवर्तक हैं।

कौरव=चन्द्रवंशी राजा कुरु के वंशज। धृतराष्ट्र के एक सौ पुत्र "कौरव" नाम से प्रसिद्ध हैं।

कौशल्या=अयोध्या के राजा दशरथ की प्रधान महारानी। ये रामचन्द्र की माता और दक्षिण कोशलराज की कन्या थीं। इसी से इनका नाम कौशल्या पड़ा था। रामचन्द्र के अश्वमेध यज्ञ समाप्त होने पर, इनकी मृत्यु हुई।

(रामायण)

कौशाम्बी=एक प्राचीन नगरी। यह प्रयाग के पास है। समय समय पर प्रतापी राजाओं ने इस नगरी को अपनी राजधानी बनाया है। इस नगरी का कभी कौशाम्बी और कभी कौशाम्बी मण्डल नाम था। इस समय के कोसम नगरी ही को बहुत लोग प्राचीन कौशाम्बी समझते हैं। रामायण में इस नगर का उल्लेख किया गया है। महर्षि विश्वामित्र के साथ रामचन्द्र और लक्ष्मण मिथिला जा रहे थे। विश्वामित्र ने उनसे पार्श्वस्थ नगरों का वर्णन किया है। विश्वामित्र कहते हैं-कुश नामक एक ब्रह्मपुत्र थे। उन्होंने अपनी सुलक्षणा स्त्री के गर्भ से कुशाम्ब कुशनाभ आदि चार पुत्र उत्पन्न किये। इन चारों ने एक एक नगर बसाया था, कुशाम्ब ने कौशाम्बी नगरी बसायी थी। पुरूरवा के बाद दसवीं पीढ़ी में कुशाम्बू नामक एक राजा हुए थे। उन्हीं कुशाम्बू ने कौशाम्बी नगरी बसायी थी। अनेक पुराणों में यह बात लिखी है। विष्णुपुराण में लिखा है कि हस्तिनापुर जब गङ्गा में डूब गया तब कुरुवंशियों ने अपनी राजधानी कौशाम्बी को बनाया। उस समय कौशाम्बी की शोभा अवर्णनीय थी। कालिदास के मेघदूत में लिखा है कि कौशाम्बी के उदयन नामक एक भाग्यवान राजा थे। बौद्ध ग्रन्थों से भी कौशाम्बीराज उदयन का पता चलता है। महावंश नामक बौद्ध-धर्म-ग्रन्थ पञ्चम शताब्दी में बना है। उसमें लिखा है कि महानुभाव यश

वैशाली से भाग कर कौशाम्बी नगरी में बौद्ध पुरोहितों की सभा में गया । ललितविस्तर नामक एक बौद्धधर्म ग्रन्थ का ७० या ७६ ई० में चीनी भाषा में अनुवाद हुआ था । अतः वह ग्रन्थ तृतीय शताब्दी के पहले प्रचलित था । उस ग्रन्थ में शतानीक के पुत्र कौशाम्बीराज उदयन की जन्मतिथि लिखी है । जिस दिन बुद्धदेव उत्पन्न हुए थे, उसी दिन उदयन भी उत्पन्न हुए थे । लङ्का में मिले हुए ग्रन्थों में लिखा है कि भारतवर्ष के उन्तीस प्रधान नगरों में से कौशाम्बी भी है । कौशाम्बी के राजा उदयनवत्स का नाम तिब्बतियों में प्रसिद्ध है । रत्नावली नाटक में कौशाम्बी के राजा का नाम वत्स लिखा मिलता है । बुद्धदेव ने बौद्धत्व लाभ करने के पश्चात् अपने बौद्धजीवन का छठवाँ और नवाँ वर्ष काशाम्बी नगरी में बिताया था । हुएनत्सङ्ग ने लिखा है कि कौशाम्बी में चन्दननिर्मित बौद्ध की मूर्ति वर्तमान है, जिसका दर्शन भी उन्होंने किया था । बुद्धदेव के जीवित-काल ही में राजा उदयन ने उसे बनाया था । वह मूर्ति राजमहल में एक पिटारी में रखी हुई थी ।

आज कौशाम्बी में प्राचीनत्व कुछ भी नहीं है । अब न तो वह बौद्ध की मूर्ति ही है और न मन्दिर ही । आज प्रयाग से तीस मील उत्तर पश्चिम की ओर यमुना के किनारे कोसमनामी एक नगरी है । वही नगरी प्राचीन कौशाम्बी नगरी समझी जाती है । कोसम में सम्राट् अकबर का बनाया एक पत्थर का खम्भा है उससे भी यही बात प्रमाणित होती है ।

कौशिक=महर्षि विश्वामित्र का नामान्तर । ये महाराज कुशिक के वंशज थे, अतएव इनको कौशिक कहते हैं । इनके पिता का नाम गाधि-राज है ।

कौषीतकी=ऋग्वेद की एक शाखा का नाम । यह शाखा ऋग्वेद का ब्राह्मण भी कहा जाता है । इसका दूसरा नाम साङ्ख्यायन है । इसके कर्ता का नाम कुषीतक ऋषि है ।

क्रतु=ब्रह्मा के मानस पुत्र का नाम । ये धर्मशास्त्र-कारों में से एक हैं । इनकी स्त्री का नाम सन्नीति था, बालखिल्य मुनिगण इन्हींके पुत्र थे ।

क्रोधा=प्रजापति दक्ष की कन्या और महर्षि कश्यप की भार्या ।

क्रौञ्चद्वीप=एक द्वीप का नाम । प्रियव्रत ने पृथिवी को सात भागों में विभक्त किया था । उनमें से एक का नाम क्रौञ्चद्वीप था । क्रौञ्चद्वीप के राजा भव्य थे ।

क्षत्र=सूर्यवंशी एक राजा का नाम । ये वैवस्वत मनु के पौत्र और राजा धृष्ट के पुत्र थे ।

क्षत्रधर्मा=चन्द्रवंशी एक राजा । इनके पिता का नाम संहृति था ।

क्षत्रवृद्ध=चन्द्रवंशी राजा पुरूरवा के पौत्र और आयु के पुत्र ।

क्षत्रश्री=ऋग्वेद वर्णित एक राजा । इनके विषय में ऋग्वेद में लिखा है कि ये राजा प्रतर्दन के पुत्र थे ।

क्षपणक=महाराज विक्रमादित्य की सभा के नव-रत्नों में से एक । क्षपणक बौद्ध या जैन संन्यासियों को कहते हैं, अतएव इस नाम से बहुत लोगों का अनुमान है कि ये भी बौद्ध या जैन रहे होंगे । इनके बनाये किसी ग्रन्थ का पता नहीं लगता परन्तु काव्यसंग्रह में इनका बनाया एक श्लोक उद्धृत किया गया है—

नीतिर्भूमिभुजां नतिर्गुणवतां ह्रीरङ्गनानां रति-
र्दम्पत्योः, शिशवो गृहस्य, कविता बुद्धेः प्रसादो गिराम् ।
लावण्यं वपुषः श्रुतिः सुमनसां शान्तिर्द्विजस्य क्षमा,
शक्तस्य द्रविणं गृहाश्रमवतां शीलं सतां मण्डनम् ॥

अर्थात् राजाओं की नीति, गुणियों की नम्रता, स्त्रियों की लज्जा, दम्पति का प्रेम, घर के बालबच्चे, बुद्धि की कविता, वचन की मधुरता, देह की सुन्दरता, सज्जनों का यश, ब्राह्मणों की शान्ति, सामर्थ्यवान् की क्षमा, गृहस्थों का धन वैभव और सज्जनों का शील भूषण है । इस एक ही श्लोक से क्षपणक की कवित्व शक्ति का परिचय भली भाँति मिल जाता है । इनके काल के विषय में विक्रम का सभासद होना ही अधिक प्रमाण है ।

क्षितिनन्द=काश्मीर के एक राजा । ये मिहिर कुल के राजा वक के पुत्र थे । क्षितिनन्द ने तीस

वर्षों तक काश्मीर का राज्य किया था । इनके समय में राजकीय व्यवस्था में कुछ विशेष परिवर्तन नहीं हुआ । (राजतरङ्गिणी)

क्षीरस्वामी=ये काश्मीर के राजा जयापीड के राज्यकाल में विद्यमान थे । जयापीड का राज्यकाल राजतरङ्गिणी के अनुसार ७०० शाके अर्थात् सन् ७७६ ई० से लेकर सन् ८१३ ई० तक था । राजतरङ्गिणी से मालूम होता है कि क्षीरस्वामी जयापीड के गुरु थे । इन्होंने अमरकोष की एक टीका लिखी है और धातुपाठ तथा पाणिनी व्याकरण से सम्बन्ध रखने वाले कई एक सूत्र लिखे हैं । कुट्टनीमत काव्य के रचयिता दामोदर गुप्त और अलङ्कार-शास्त्र-प्रणेता भट्टोद्भट समकालीन थे ।

क्षुप=आदिराजा । रामायण के उत्तरकाण्ड में और महाभारत के अश्वमेधपर्व में क्षुप नामक एक राजा का उल्लेख हुआ है । रामायण में लिखा है कि ये ही पृथिवी के आदिराजा थे । सृष्टि के आदिकाल सत्ययुग में मनुष्यों का कोई राजा नहीं था, अतएव मनुष्य ब्रह्मा के शरण गये । ब्रह्मा के आदेश से देवताओं के अंश से क्षुप राजा उत्पन्न हुए । इक्ष्वाकु का जन्म-विवरण जिस प्रकार लिखा गया है क्षुप का भी जन्मवृत्तान्त उसी प्रकार लिखा गया है । महाभारत अश्वमेधपर्व के चौथे अध्याय में जो लिखा है उससे क्षुप इक्ष्वाकु के पूर्वपुरुष माने जा सकते हैं । युधिष्ठिर ने व्यासजी से राजर्षि मरुत्त का विवरण पूँछा था उत्तर में व्यासदेव कहते हैं—"तात ! सत्ययुग में प्रजापालक दण्डधर राजा थे, उनके पुत्र प्रसन्धि, प्रसन्धि के पुत्र क्षुप और क्षुप के पुत्र इक्ष्वाकु हुए ।" अन्य पुराणों में इक्ष्वाकु को मनु का पुत्र बतलाया है । विष्णुपुराण में नेदिष्ट के वंश की ग्यारहवीं पीढ़ी में क्षुप नामक एक राजा का पता मिलता है, परन्तु वह क्षुप, मनु के पुत्र नहीं हैं ।

क्षेत्रसिंह=ये प्रतापी महाराणा हमीरसिंह के बड़े पुत्र थे । मेवाड़ी भाषा में इनका नाम खेतसिंह है । राणा हमीर के परलोकवासी होने पर क्षेत्रसिंह उस बड़े राज्य के अधीश्वर हुए । सन् १३६५ ई० में ये चित्तौर के सिंहासन पर बैठे थे । राज्यारोहण के कुछ ही समय के बाद क्षेत्रसिंह अपने वीर पिता के वीर पुत्र, साहसी पिता के साहसी पुत्र और जयी पिता के जयी पुत्र हो गये । इन्होंने अजमेर जहाज़पुर मण्डलगढ़ और समस्त चप्पन को जीत कर अपने विशाल राज्य में मिला लिया । बकरौल नामक स्थान में दिल्ली के बादशाह हुमायूँ के साथ इनकी लड़ाई हुई । इस लड़ाई में क्षेत्रसिंह की जीत हुई । परन्तु इस जीत के बाद ही न मालूम किस कारण से बनोदा के सरदार ने गुप्तभाव से क्षेत्रसिंह को मार डाला ।

क्षेमकरण=ये संवत् १८३५ में उत्पन्न हुए और सं० १९१८ में मरे । ये संस्कृत और भाषा के विद्वान् थे । इनकी बनायी "रामगीतामाला" नाम की पुस्तक प्रसिद्ध है ।

क्षेमगुप्त=काश्मीर के एक राजा का नाम । इनके पिता का नाम पर्वगुप्त था । पर्वगुप्त के स्वर्गारोहण करने के अनन्तर क्षेमगुप्त काश्मीर के राज्यासन पर अभिषिक्त हुए । ये मद्यप और अहङ्कारी युवक थे । ये स्वभाव से उद्दण्ड और दुर्जनों के साथ रहने के कारण कुवृत्त भी हो गये थे । मद्यपान, रमणी-सेवा, द्यूत आदि में क्षेमगुप्त सर्वदा चूर थे, और धूर्त इनका धन चुराया करते थे । मनस्वी लोग इनके पास तक जाना अनुचित समझते थे क्योंकि ये सज्जनों को गाली दिया करते थे । खुशामदी लोगों ही का वहाँ पूर्ण अधिकार था । क्षेमगुप्त दानी थे । इन्होंने अपने नाम को स्थिर रखने के लिये क्षेमगुप्तेश्वर नामक शिव की स्थापना की थी । लाहौर के राजा सिंहराज की कन्या दिद्दा से क्षेमगुप्त का विवाह हुआ था । दिद्दा पर क्षेमगुप्त अत्यन्त आसक्त थे । अतएव उसने दिद्दाक्षेम नाम से अपनी प्रसिद्धि की ।

शृगाल का शिकार करना क्षेमगुप्त को बहुत प्रिय था । वह सर्वदा किरात, डोम और कुत्तों को साथ ले कर शृगालों का शिकार किया करते थे । एक दिन किसी शृगाली के मुख से अग्निज्वाला निकलती देख उनको बड़ा भय हुआ था । अन्त में लूता रोग से इनकी मृत्यु हुई । (राजतरङ्गिणी)

क्षेमधूर्ति=ये कुलूत के राजा थे। महाभारत के युद्ध में इन्होंने दुर्योधन का पक्ष ग्रहण किया था। ये गदायुद्ध में बड़े प्रवीण थे। इन्होंने भीमसेन के साथ युद्ध किया था और ये उनकी गदा से मारे गये थे।

(महाभारत)

क्षेमा=एक बौद्धसंन्यासिनी। कोशलराज प्रसेनजित् ने इनसे धार्मिक अनेक प्रश्न पूँछे थे। उस समय इनकी बहुत प्रसिद्धि थी, ये एक ज्ञानगौरवशालिनी विदुषी थीं।

क्षेमेन्द्र=ये काश्मीरनिवासी एक प्रसिद्ध कवि हैं। डा० पीटर्सन साहब लिखते हैं कि सन् १०५० ई० में राजा अनन्तदेव के राज्यकाल में क्षेमेन्द्र ने "समयमातृका" नामक ग्रन्थ बनाया। परन्तु डा० व्यूलर साहब का कहना है कि क्षेमेन्द्र का विद्यासम्बन्धी जीवन सन् १०२५ ई० से १०७५ ई० तक रहा होगा। इन बातों से क्षेमेन्द्र का समय ११वीं सदी निश्चित होता है। इनके बनाये अनेक ग्रन्थ हैं जिनमें कई एक प्रसिद्ध और आदरणीय हैं। उनमें से "औचित्यविचारचर्चा" "कलाविलास" "दर्पदलन" "कविकण्ठाभरण" "चतुर्वर्गसंग्रह" "चारुचर्या" "बृहत्कथामञ्जरी" "भारतमञ्जरी" "रामायणमञ्जरी" "समयमातृका" "सुवृत्ततिलक" और "दशावतारचरित" बहुत प्रसिद्ध हैं।

इनके बनाये ग्रन्थों के देखने से मालूम पड़ता है कि ये विलक्षण कवि और बड़े व्यवहारकुशल थे। इनके ग्रन्थों में कायस्थ और मुसलमानों की बड़ी निन्दा है। "समयमातृका" नामक ग्रन्थ का विषय दामोदर गुप्त विरचित "कुट्टनीमत" के समान है। "अवदानकल्पलता" नामक ग्रन्थ में इन्होंने बौद्ध महापुरुषों की जीवनी और उनसे शिक्षा लिखी है। यह ग्रन्थ एशियाटिक सोसाइटी से मुद्रित हो गया है। क्षेमेन्द्र पहले शैव थे, परन्तु पीछे से एक वैष्णव संन्यासी का साथ होने के कारण वे वैष्णव हो गये। बहुत लोगों का यह भी कहना है कि वे वैष्णवता से मुँह मोड़ कर बौद्ध हो गये थे।

ख

खगम=तपोबलसम्पन्न एक ब्राह्मणकुमार। इनके शाप से इनके मित्र सहस्रपाद सर्प हो गये थे। इन्होंने अपने मित्र से कहा कि रुरु मुनि के दर्शन करने से तुम शापमुक्त हो जाओगे।

(महाभारत)

खगेन्द्र=काश्मीर के एक राजा। इनके पिता का नाम कुशेशय था। कुशेशय की मृत्यु होने पर इनका काश्मीर के राज्य पर अभिषेक हुआ था। इन्होंने खरवागि और खोनमुख नामक दो प्रधान अग्रहार बनवा कर ब्राह्मणों को दान कर दिये थे।

खट्वाङ्ग=सूर्यवंशी एक राजा। श्रीमद्भागवत में लिखा है कि खट्वाङ्ग के पुत्र दीर्घबाहु थे।

(श्रीमद्भागवत)

खडगसेन=ये जाति के कायस्थ और गवालियर के रहने वाले थे। इनका जन्म सन् १६०३ ई० में हुआ था। इनकी दो कविताएँ अर्थात् दानलीला और दीपमालिका चरित्र प्रसिद्ध हैं।

खण्डन कवि=ये बुन्देलखण्ड के वासी थे और इनका जन्म सन् १८२७ ई० में हुआ था। इन्होंने नायक नायिका भेद पर एक अच्छा ग्रन्थ रचा था। वह ग्रन्थ झाँसी में इस समय भी किसी के पास विद्यमान है।

खना=विख्यात ज्योतिःशास्त्रपण्डिता महिला। ये विक्रमादित्य की सभा के नवरत्नों में से एक मिहिर की स्त्री थीं, नवरत्न सभा के एक दूसरे रत्न वररुचि के भी पुत्र का नाम मिहिर था, परन्तु खना के पति मिहिर उससे भिन्न हैं। ये मिहिर वराह के पुत्र थे। अतएव खना के पति वराहमिहिर नाम से प्रसिद्ध हैं। विक्रमादित्य के राज्यकाल में वराह भी एक प्रसिद्ध ज्योतिषी समझे जाते थे। कहते हैं कि मिहिर का जन्म होने पर वराह ने गणना करके विचारा कि मिहिर की आयु बहुत कम है। यह इकलौता पुत्र मेरी आँखों के सामने ही मर जाय, इस कष्ट को मैं कैसे सहूँगा! यह सोच कर वराह ने उस पुत्र को आँखों के सामने से हटा देने का विचार किया। वराह ने उस पुत्र को एक पात्र में रख कर एक नदी में छोड़ दिया। वह लड़का बहते बहते

लङ्का गया । वहाँ के वासियों ने समुद्र से इस लड़के को निकाल कर, उसका लालन पालन किया । वहाँ ही खना के साथ मिहिर का व्याह हुआ, लङ्कावासियों से खना और मिहिर ने ज्योतिष विद्या की शिक्षा पायी थी। खना और मिहिर जब लङ्का से लौटे आ रहे थे तब मार्ग में उसी समय उत्पन्न एक बछड़े की जन्मकुण्डली की गणना करने में अपनी भूल समझ कर, ज्योतिष के ग्रन्थों को इन्होंने समुद्र में डुबो दिया । परन्तु गणना ठीक थी यह बात खना ने उन्हें समझा दी । तब बहुत परिश्रम कर के खना ने मिहिर के ज्योतिष ग्रन्थों को समुद्र से निकाला । परन्तु पातालगणना की पुस्तक नहीं मिल सकी। क्योंकि वह पुस्तक समुद्र में डूब चुकी थी । इससे पातालगणना विषयक पुस्तक संसार से उठ गयी । मिहिर, खना के साथ विक्रमादित्य की राजधानी उज्जयिनी में उपस्थित हुए । कुछ दिनों के बाद वराह के साथ इनका परिचय हुआ । वराह पुत्र और पुत्रवधू को अपने घर ले आये । अपन स्वामी की आयुगणना में जो वराह ने भूल की थी वह खना ने अपने ससुर को समझा दी । थोड़े ही दिनों में खना की विद्वत्ता की प्रसिद्धि हो गयी । एक दिन विक्रमादित्य ने वराह को आकाश के नक्षत्र गिनने के लिये कहा । वे आकाश के नक्षत्रों को न गिन सकने के कारण बहुत चिन्तित थे । खना ने उनको चिन्तित देख, उसका कारण समझ कर बिना परिश्रम ही नक्षत्रों की गणना करदी । विक्रमादित्य ने खना की विद्वत्ता वराह से सुनी । विक्रमादित्य ने विदुषी खना को एक सभा में पुरस्कृत करने की इच्छा से खना को राजसभा में ले आने के लिये वराह को आज्ञा दी । पुत्रवधू को राजसभा में ले जाना अपमानजनक समझ कर वराह ने अपने पुत्र मिहिर को खना की जीभ काटने की आज्ञा दी । जब मिहिर पिता की आज्ञा मानने के लिये उद्यत न हुए तब खना ने कहा कि अब मेरी आयु शेष हो चुकी है, अतएव आपका जीभ काटना किसी प्रकार हानिकारी नहीं होगा । जीभ काटी जाने पर खना मर गयी । एक आग्रही वृद्ध ने अज्ञान और हठवश भारत के एक रत्न को तुड़वा डाला ।

खनित्र=विष्णुपुराणोक्त एक सूर्यवंशी राजा । ये प्रमिति के पुत्र थे ।

खनिनेत्र=एक सूर्यवंशी राजा, ये विविंश के पुत्र थे।

खर=शूर्पणखा का एक भाई । सुमाली राक्षस की कन्या राका विश्रवा मुनि को व्याही गयी थी। राका के गर्भ से खर नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था । खर १४ हज़ार राक्षसी सेना ले कर रावण के अधिकृत जनस्थान की रक्षा करता था । राम के वनवास के समय दुराचारिणी शूर्पणखा के कान नाक काट लिये गये थे । इस कारण खर ने १४ राक्षसों को राम के विरुद्ध भेजा, परन्तु वे सब राक्षस मारे गये, तदनन्तर खर के सेनापति दूषण और त्रिशिरा ने चौदह हज़ार राक्षसों की एक सेना ले कर राम पर आक्रमण किया । परन्तु अन्त में वह मारा गया। अकम्पन इनके मारे जाने की खबर लङ्का ले गया था।

(रामायण)

खश=उत्तरभारतीय एक पार्वत्यप्रदेशवासियों का नाम ।

खाण्डववन=एक प्राचीन वन का नाम । पुराणों में लिखा है कि राजा श्वेतकि के यज्ञ में घृत की अक्षय्य धारा पान करने से अग्नि को अजीर्ण हो गया था । उसे पचाने के लिये अग्नि ने अर्जुन की सहायता से खाण्डववन को जलाया । खाण्डवदाह के समय इन्द्र ने विरोध भी किया था क्योंकि उस वन में तक्षक का पुत्र रहता था । उसीको सहायता देने की इच्छा से इन्द्र ने उसका विरोध किया था ।

खाण्डिक्य=मिथिला के राजा मृतध्वज के पुत्र का नाम ।

खुमान=ये बुन्देलखण्डी थे और चरखारी में रहा करते थे । इनका जन्म सन् १६८३ ई० में हुआ था । ये जन्मान्ध थे और इन्हें कुछ भी शिक्षा नहीं मिली थी । दैवयोग से एक दिन एक महात्मा इनके घर पर आये और चार महीने तक वे टिके रहे । जब वे चरखारी से विदा हुए, तब वहाँ के अनेक प्रतिष्ठित और विद्वद्जन उन्हें पहुँचाने के लिये नगर की सीमा तक गये । और

सब तो महात्माजी को नगर की सीमा तक पहुँचा कर लौट आये, परन्तु खुमान नहीं लौटा, वह चलता ही चला गया । जब महात्मा ने बार बार उससे लौटने के लिये कहा, तब खुमान ने कहा—महाराज! मैं घर जा कर क्या करूँगा, मैं अन्धा हूँ, अनपढ़ हूँ, मैं घर के किसी काम के योग्य नहीं हूँ । मैं धोबी के उस गधे के समान हूँ जो न घर का और न घाट का । यह सुन महात्मा प्रसन्न हुए और खुमान की जिह्वा पर उन्होंने सरस्वती मन्त्र लिख दिया और कहा कि तुम एक पद्य मेरे कमण्डलु के वर्णन में बनाओ, यह सुनते ही खुमान ने तुरन्त पचीस पद्य बना डाले और गुरु महाराज के चरणों की धूलि अपने सिर पर चढ़ा कर लौट गये । तबसे वे संस्कृत और भाषा में कविता रचने लगे ।

एक बार वे ग्वालियर के सिन्धिया महाराज के दरबार में गये । महाराज ने उन्हें रात भर में एक संस्कृत का ग्रन्थ बनाने की आज्ञा दी, इस पर रात भर में खुमान ने ७०० श्लोक बनाये ।

इनमें ईश्वरप्रदत्त प्रतिभा थी और इनके बनाये सर्वोत्कृष्ट दो ग्रन्थ हैं । "लक्ष्मनशतक" और "हनुमाननखसिख" । सम्भवतः यह वे ही खुमान कवि हैं, जिन्होंने भाषा में अमरकोष का पद्यमय अनुवाद किया था ।

खुमानसिंह=खुमान रावत गुहलौत चित्तौर के राजा थे, और सन् ८३० ई० में विद्यमान थे । इन्हीं के स्मरणार्थ "खुमान रायसा" की रचना की गयी थी । यह मेवाड़ का सबसे प्राचीन इतिहास है और नवीं शताब्दी में बनाया गया था; किन्तु राणा प्रताप के समय में फिर इसका संशोधन हुआ और इसमें अलाउद्दीन खिलजी के चित्तौर आक्रमण और महाराणा प्रताप तथा अकबर के युद्ध के समय तक का वृत्तान्त जोड़ा गया ।

खूबचन्द कवि=इनके समय का पता नहीं चलता। शिवसिंह ने अपने सरोज में इनका नामोल्लेख किया है और लिखा है कि ईडर नरेश राजा गम्भीरशाह की प्रशंसा में इन्होंने पद्य रचे थे ।

खेम कवि=ये ब्रजवासी थे और इनका जन्म सन् १५७३ ई० में हुआ था । इनका बनाया एक नायिकाभेद पर ग्रन्थ पाया जाता है । जान पड़ता है कि क्षेम का दूसरा नाम खेम था ।

ख्याति=महर्षि भृगु की पत्नी और प्रजापति दक्ष की कन्या । इनके गर्भ से धातृ विधातृ दो पुत्र और लक्ष्मीनाम्नी एक कन्या उत्पन्न हुई थी ।

ग

गङ्ग कवि=इनका जन्म संवत् १५८५ में हुआ था और ये इकनौर ज़ि० इटावे के रहने वाले थे । एक बार राजा बीरबर ने प्रसन्न हो कर इन्हें एक लाख रुपये पुरस्कार में दिये थे । ये अकबर के दरबारी थे और अकबर खानखाना आदि से इन्हें प्रायः पुरस्कार मिला करते थे ।

गङ्गा=भारत की पुण्यसलिला एक प्रसिद्ध नदी । प्राचीन काल ही से इस नदी की महिमा ऋषियों ने गायी है । वाल्मीकिरामायण में लिखा है कि गिरिराज हिमालय की दो कन्याएँ थीं । एक का नाम गङ्गा और दूसरी का नाम उमा था । सुमेरु की कन्या मेनका से इनका ब्याह हुआ था । उसी मेनका के गर्भ से हिमालय की कन्या गङ्गा उत्पन्न हुई थी । देवता लोगों ने किसी विशेष कार्य के लिये हिमालय से भिक्षा में गङ्गा को माँगा । गङ्गा में महादेव का वीर्य डाला गया । परन्तु उसके धारण करने में असमर्थ हो कर गङ्गा ने उस महादेव के वीर्य को हिमालय के समीपस्थ एक शरवन में फेंक दिया, इससे देवता और ऋषि चिन्तित हुए उन लोगों ने महादेव के वीर्य की रक्षा करने के लिये छः कृत्तिकाओं को वहाँ भेजा । इन्हीं लोगों ने उसकी रक्षा की और कुमार कार्त्तिकेय उत्पन्न हुए । गङ्गा अपना गर्भ निकाल कर, ब्रह्मा के कमण्डलु में रहने लगीं । पुनः सगरवंशियों ने अपने पूर्वपुरुषों के उद्धार के लिये अनेक वर्षों तक तपस्या की, जिससे कि गङ्गा पाताल में आवें, वे अपने कार्य में सफल भी हुए थे । सगरवंशीय राजा भगीरथ ने गङ्गा को ला कर अपने साठ हज़ार पुरुषों का उद्धार किया था

गङ्गा का दूसरा नाम विष्णुपदी है। ध्रुव नक्षत्र स्थान को पौराणिक विष्णु का तृतीय पद कहते हैं। वहीं मेघ एकत्रित होते हैं और वृष्टि करते हैं। वृष्टि ही से गङ्गा की उत्पत्ति होती है इस कारण गङ्गा को विष्णुपदी कहते हैं।

गङ्गा का एक और नाम जाह्नवी है। भगीरथ जिस समय गङ्गा को मर्त्यलोक में ले आ रहे थे, उस समय जह्नु मुनि का आश्रम गङ्गा की धार में डूब गया। जह्नु एक यज्ञ करने का प्रबन्ध करते थे। गङ्गा का जल आने से यज्ञ की सामग्री नष्ट हो गयी। क्रुद्ध हो कर मुनि ने योगबल से गङ्गा को पी लिया। पुनः भगीरथ के अनेक स्तव करने पर उन्होंने कर्णरन्ध्र से गङ्गा को निकाल दिया। तबसे गङ्गा का नाम जाह्नवी या जह्नुकन्या पड़ा।

गङ्गाद्वार=हरिद्वार का दूसरा नाम (देखो मायापुर)

गङ्गाधर=(१) इन्होंने विहारी की सत्सई पर एक टीका लिखी है। यह टीका कुण्डलिया और दोहों में है और उसका नाम उपसत्सैया है। ये कहाँ उत्पन्न हुए थे और कब थे—इन बातों का पता नहीं। इनका नाम शिव-सिंह-सरोज में पाया जाता है।

(२) एक प्रसिद्ध धर्मशास्त्र के पण्डित। इन्होंने संस्कृत के अनेक ग्रन्थ बनाये हैं; जिन में प्रधान ये हैं— "कात्यायनसूत्रटीका" "आधानपद्धति" "पाकयज्ञपद्धति" "प्रयोगपद्धति" "स्मार्तपदार्थसंग्रहपद्धति" और "संस्कारपद्धति"।

गङ्गापति=ये सन् १७१८ ई० में वर्तमान थे। इन का बनाया विज्ञान-विलास एक ग्रन्थ है, जिसे इन्होंने संवत् १७७५ में लिखा था। यह दार्शनिक ग्रन्थ है और गुरु शिष्य के परस्पर प्रश्नोत्तर के रूप में लिखा गया है।

गङ्गाप्रसाद=(देखो गङ्ग कवि)

गङ्गादास="छन्दोमञ्जरी" नामक छन्द का एक ग्रन्थ इन्हीं कवि गङ्गादास का बनाया हुआ है। ग्रन्थ के प्रारम्भ और अन्त में कवि ने अपना कुछ परिचय दिया है। प्रारम्भ का श्लोक यह है—

"देवं प्रणम्य गोपालं वैद्यगोपालदासजः।
सन्तोषातनयश्छन्दो गङ्गादासस्तनोत्ययः॥"

अर्थात् मैं देवगोपाल को प्रणाम कर के इस छन्दोग्रन्थ की रचना करता हूँ। मेरे पिता का नाम वैद्य गोपालदास है, और माता का नाम सन्तोषा है। अन्त का श्लोक यह है—

"सर्गैः षोडशभिः समुज्ज्वलपदैर्नव्यार्थभव्याशयै-
र्येनाकारि तदच्युतस्य चरितं काव्यं कविप्रीतिदम्।
कंसारेः शतकं दिनेशशतकद्वन्द्वं च तस्यात्त्वसौ
गङ्गादासकवेःश्रुतौ कुतुकिनां सच्छन्दसां मञ्जरी॥"

अर्थात् गङ्गादास कवि ने कवियों को प्रसन्न करने वाले अच्युत-चरित नामक सोलह सर्ग वाले काव्य को बनाया, जिसमें बहुतसे ललित पद तथा नवीन अर्थ और मनोहर आशय भरे हुए हैं। उसी कवि ने कंसारि भगवान् कृष्णचन्द्र की बाललीला का, जिसमें वर्णन है और सूर्यवर्णनात्मक सूर्यशतक भी, सौ सौ श्लोकों के दो शतक बनाये; उसी कवि की प्रतिभा का यह "छन्दोमञ्जरी" सुनने वालों के कर्णों को तृप्तिदायक होवे। उपरोक्त श्लोकों से इस ग्रन्थ के कर्ता के माता पिता और अन्य ग्रन्थों के नाम विदित होते हैं। ये वैद्यवंश में उत्पन्न हुए थे। यद्यपि ये महाकवि नहीं थे, तथापि भाग्यवान् इतने थे कि इनका रचित "छन्दोमञ्जरी" छोटा सा ग्रन्थ भारतवर्ष भर में प्रचलित है। सुनने में आता है कि इनके पिता गोपालदास वैद्य ने "पारिजातहरण" नाम का एक नाटक बनाया है।

गङ्गादास ने अपनी "छन्दोमञ्जरी" में "अनर्घ्यराघव" नाटक का एक श्लोक और "गीतगोविन्द" का श्लोक उद्धृत किया है। इससे यह बात सिद्ध होती है कि अनर्घ्यराघव-प्रणेता मुरारि मिश्र और जयदेव से ये प्राचीन नहीं हैं। परन्तु इनके ठीक समय का कुछ ठीक पता नहीं चलता। किसी किसी के मत में खृ. १२वीं शताब्दी मुरारि का समय माना गया है, जयदेव का भी १२वीं सदी का पूर्वभाग समय है, अतएव गङ्गादास १२वीं सदी के पहले के नहीं हैं। इतने ही से इनके समय निरूपण करने से सन्तोष करना पड़ता है।

गङ्गाधर=इस कवि के रचित श्लोक गोविन्दपुर के एक शिलालेख में मिले हैं। उस शिलालेख में

मिति शाके १०५६ अर्थात् सन् ११३७ ई० की दी है इससे ऐसा मालूम पड़ता है कि ये कवि उसी समय विद्यमान थे। लेख में यह कवि अपनी वंशावली भी कुछ लिखता है जिससे विदित होता है कि उसके प्रपितामह का नाम दामोदर, पितामह का नाम चक्रपाणि, पिता का नाम मनोरथ, चाचा का नाम दशरथ, और भाइयों का नाम महीधर तथा पुरुषोत्तम था। " एपिग्राफिया इण्डिका " में इस लेख के सम्बन्ध में लिखा है कि श्रीधरदास विरचित "सदुक्तिकर्णामृत" सन् १२०५ई० में रचा गया।

विल्हण के विक्रमाङ्क देवचरित में भी एक गङ्गाधर कवि का नाम मिलता है। जान नहीं पड़ता कि ये गोविन्दपुर के शिलालेख वाले गङ्गाधर हैं या और कोई। " काव्यसंग्रह " में गङ्गाधर कवि विरचित " मणिकर्णिकाष्टक " छपा है न जाने यह गङ्गाधर इनमें से कौनसे हैं?

गच्छ=(१) विष्णुपुराणोक्त एक मनुष्य।

(२) बौद्धों का मठ, जिसमें यतिसमूह शास्त्रचिन्ता किया करते हैं।

गज=ये जैसलमेर के एक यदुवंशी राजा थे। इनके पिता का नाम रज है। राजकुमार गज के यौवन में पदार्पण करते ही पूर्व देश के राजा यदुभानु ने अपनी कन्या से विवाह करने के लिये नारियल भेजा। जिस समय राजमहल में राजकुमार के विवाह की धूम पड़ी थी, उसी समय यह समाचार आया कि खुरासान का फरीदशाह चार लाख घुड़सवार सेना ले कर आ रहा है, उसके भय से प्रजा इधर उधर भाग रही है। राजा ने ठीक बात जानने के लिये दूत भेजा और वे स्वयं भी युद्ध का उद्योग करने लगे। राजा भी अपनी सेना लेकर हरियू नामक स्थान पर जा पहुँचे, दोनों ओर से घमासान युद्ध होने लगा। इस युद्ध में यवनसेना न ठहर सकी, तीस हज़ार सैनिक मारे गये। फरीदशाह की हार हुई। राजकुमार गज भी विवाह कर के इस युद्ध में सम्मिलित हुआ था। पुनः बची खुची सेना ले कर यवनों ने चढ़ाई की, यद्यपि इस बार भी जीत हिन्दुओं ही की हुई, परन्तु राजा रज अबकी बार मारे गये।

पुनः रूम के सुल्तान से यवनों ने अपना धर्मप्रचार करने के मिष सहायता माँगी। इधर राजा गज भी मन्त्रियों को बुलाकर उनका सामना करने के लिये परामर्श करने लगे। उस समय तक उस देश में कोई ऐसा क़िला नहीं था, जिसमें कुछ सैनिक रह कर एक बड़ी भारी सेना का सामना कर सकें, इसी लिये राजा गज ने उत्तर ओर वाले पहाड़ पर एक क़िला बनवाया, जिसका नाम गजनी पड़ा। जिस समय क़िला बन कर तैयार हुआ, उसी समय संवाद आया कि, रूम और खुरासान के दोनों अधीश्वर सेना ले कर लड़ने के लिये समीप आ गये। दूतों ने कहा—

"रूमीपति खुरसानपति, हय पय पाखड पाय।
चिन्ता तेरे चित्त लगि, सुनियो यदुपतिराय॥"

राजा गज को देवी ने स्वप्न में आदेश दिया था कि, इस युद्ध में तुम जीतोगे, ज्योतिषियों ने शुभमुहूर्त बता दिये थे। राजा गज ने अपनी विजययात्रा की। अभी युद्ध भी प्रारम्भ नहीं हुआ था तब तक ख़बर मिली कि खुरासान का अधीश्वर मर गया। इससे रूमी सुल्तान घबड़ाया तो अवश्य, परन्तु वह अपने उद्देश्य से विचलित नहीं हुआ। दोनों ओर की स्वामिभक्त सेना लड़ने लगी, अन्त में विजय राजा गज ही का हुआ। युधिष्ठिर के ३००८ संवत् बीतने पर गजसिंह का गज़नी के सिंहासन पर अभिषेक हुआ। पुनः गजसिंह ने काश्मीरराज राजा कन्दर्पकेलि को अपने यहाँ बुला भेजा, परन्तु उसने साफ कह दिया कि बिना युद्ध किये मैं आने वाला नहीं। इस कारण गजसिंह ने काश्मीर पर चढ़ाई की। काश्मीरराज ने हार कर उनकी अधीनता स्वीकार की। कन्दर्पकेलि की कन्या से राजा गज ने ब्याह किया था जिसके गर्भ से शालिवाहन उत्पन्न हुए। इस राजकुमार की जब १२ वर्ष की अवस्था थी तब संवाद आया कि, मुसल्मानों की एक बड़ी सेना लड़ने के लिये आ रही है। गजसिंह भी तैयार हुए, परन्तु देवी ने इन्हें स्वप्न में आदेश दिया कि तुम राजकुमार को पूर्व के देशों में भेज दो अबकी बार तुम्हारा राज्य छिन जायगा

और इस युद्ध में तुम भी मारे जाओगे । तुम्हारे वंशज मुसलमान बन कर, तुम्हारे इस राज्य का उद्धार कर सकते हैं । दोनों ओर से युद्ध हुआ । खुरासान के अधीश्वर और गज दोनों ही इस युद्ध में मारे गये । (टाड्स् राजस्थान)

गजसिंह=(१) बीकानेर के एक राजा । जोरावरसिंह के बाद ये बीकानेर के राज्यासन पर बैठे । इनके शासन काल में अनेक घटनाएँ हुई थीं । महाराज गजसिंह, यथार्थ एक वीर राठौर थे । उन्होंने इकतालीस वर्ष तक राज्य किया और अपने राज्य की सीमा बढ़ायी । इन्होंने भाटिया तथा भावलपुर के मुसलमानों के साथ अनेक युद्ध किये थे और ये सभी में विजयी हुए थे । महाराज गजसिंह ने भाटियों से राजासर, कालिया, रानियार, सत्यसर, बूनिपुरा, युतालाई और दूसरे भी कितने ही छोटे मोटे प्रदेश अपने राज्य की सीमा में मिला लिये थे । इन्होंने भावलपुर के खाँ के साथ युद्ध करके अनूपगढ़ नामक क़िला हस्तगत कर लिया था । राजा गजसिंह के सोलह पुत्र थे जिनमें छः विवाहित रानियों से उत्पन्न हुए थे । (टाड्स् राजस्थान)

(२) ये जैसलमेर के राजा थे । ये अपने पिता मानसिंह (काना) के तीसरे पुत्र थे । जिस समय ये जैसलमेर के राजसिंहासन पर बैठे थे उस समय राज्य की विलक्षण दशा थी । मेहता सलीमसिंह ने विषप्रयोग से कितने ही राजकुमारों को मरवा डाला था, कितनों को देशनिकाला दिलवाया था ।

(३) जोधपुर के एक राजा का नाम । ये महाराज शूरसिंह के पुत्र थे । पिता की मृत्यु के उपरान्त उनके ज्येष्ठ पुत्र गजसिंह सन् १६२०ई० में सिंहासन पर बैठे । गजसिंह का जन्म लाहौर में हुआ था पिता की मृत्यु के समय ये बुरहानपुर में थे । उसी समय दाराबखाँ बादशाह का प्रतिनिधि बन कर गजसिंह के ख़ेमे में गया और उनके मस्तक पर मुकुट ललाट में राजतिलक और कमर में तलवार लटकायी । मारवाड़ राज्य के अतिरिक्त बादशाह ने और भी उन्हें जागीर दी । और उसी समय उस होनहार वीर राजा को दक्षिण की सूबेदारी भी मिली और उनकी सेना के घोड़ों के न दागने की आज्ञा दे कर बादशाह ने एक और बड़े भारी अपमान से गजसिंह की रक्षा की । गजसिंह सुन्दर गुणी और सुचतुर वीर थे । सूबेदारी पाने पर उनके वे गुण एक एक कर के प्रकाशित होने लगे । बड़े बड़े प्रान्तों को जीत कर, इन्होंने बादशाह के राज्य को बढ़ाया । राठौरराज की वीरता का परिचय पा कर बादशाह ने उन्हें दलथम्भन की उपाधि दी ।

इसी समय बादशाह जहाँगीर के पुत्र खुर्रम और परवेज़ में राज्य के लिये मनोमालिन्य उपस्थित हुआ था । खुर्रम ने गजसिंह से अपने कार्य में सहायता माँगी, परन्तु गजसिंह ने साफ़ इंकार कर दिया । इससे दुःखी हो कर खुर्रम ने गजसिंह को विषप्रयोग से मरवा डालने की इच्छा से मन्त्री गोविन्दसिंह को फाँसा, परन्तु उनसे भी निराश हो कर एक गुप्त हत्यारे से गोविन्दसिंह को उसने मरवा डाला । अन्त में खुर्रम ने परवेज़ का किसी प्रकार वध कर के राज्य के कण्टक जहाँगीर को भी उड़ाना चाहा । भारत का बादशाह सङ्कट में पड़ा । उसने राजाओं को सहायता के लिये निमन्त्रण भेजा, जहाँगीर की सेना तथा अन्य राजाओं की सेना के सेनापति आमेर के राजा बनाये गये । इसे गजसिंह ने अपना अपमान समझा । और अपना झंडा नीचे कर के वे युद्ध से हट गये । वे जानते थे कि मैं यहीं बैठ कर युद्ध का फलाफल देख लूँगा । परन्तु भीमसिंह ने उन्हें बैठने नहीं दिया, भीमसिंह ने एक ऐसा खराब पत्र भेजा जिससे बादशाह के किये अपमान को भूल कर इन्होंने बादशाह की ओर से युद्ध करना ही उचित समझा । यदि भीमसिंह पत्र द्वारा गजसिंह का मन न बदलते तो उसी दिन खुर्रम भारत का बादशाह हो जाता परन्तु भावी प्रबल है । भीमसिंह मारे गये, खुर्रमसिंह की सेना तितर बितर हो गयी, खुर्रम भाग गया । दिल्ली के बादशाह का सङ्कट दूर हुआ । खुर्रम का मान मथा गया, विद्रोह शान्त हुआ ।

इसके बाद गजसिंह का सम्माज बहुत अधिक बढ़ गया, परन्तु दुःख है कि इस सम्मान

को वे बहुत दिनों तक भोग नहीं सके । सन् १६३८ ई० में वे मारे गये । गजसिंह के दो पुत्र थे यशवन्तसिंह और अमरसिंह ।

(टाडस् राजस्थान)

(५) हिन्दी के एक कवि का नाम । ये ही गजसिंह-विलास के रचयिता हैं । इनके समय के विषय में कुछ भी ठीक नहीं कहा जा सकता। शिवसिंह ने अपने सरोज में इनका नाम लिखा है।

गजायुर्वेद=गज-चिकित्सा विषयक शास्त्र । इस समय इस विषय का प्राचीन ग्रन्थ प्रायः अब तक सुनने में नहीं आया है । परन्तु पुराने समय में इस विषय के ग्रन्थ थे, इसका पता लगता है । अग्नि, गरुड आदि पुराणों से इसका विशेष पता पाया जाता है । धन्वन्तरि के अतिरिक्त अन्य महर्षियों ने भी इस विषय के ग्रन्थ बनाये थे । अग्निपुराण में लिखा है कि पालकाप्य नामक मुनि ने गजायुर्वेद विषयक ग्रन्थ बनाये थे । पालकाप्य ने इस शास्त्र का उपदेश लोमपाद को दिया था और लोमपाद ने धन्वन्तरि को गजायुर्वेद का उपदेश दिया था । धन्वन्तरि ने उसीके अनुसार ग्रन्थ बनाया था ।

गणेश=पार्वती के पुत्र । पार्वती से शिव का विवाह होने पर पार्वती के बहुत दिनों तक पुत्र नहीं हुआ । अनन्तर महादेव ने पार्वती को पुण्यक व्रत करने के लिये आदेश दिया । पुण्यक व्रत से विष्णु प्रसन्न हुए । उन्होंने वर दिया । पार्वती के गर्भ से एक पुत्र उत्पन्न हुआ । नवजात पुत्र को देखने के लिये ऋषि देव गन्धर्व आदि उपस्थित हुए, उन्हींमें शनि भी आये थे, पार्वती ने अपने शिशु पुत्र को देखने के लिये शनि से कहा, परन्तु शनि ने कहा कि मैं जो इस लड़के को नहीं देखता इसमें कारण है । मेरी स्त्री ने मुझे शाप दिया है कि तुम जिसको देखोगे वह मर जायगा । परन्तु तौ भी पार्वती ने नहीं माना । शनि ने ज्यों ही उधर दृष्टि की कि नवजात शिशु का सिर कट गया । पार्वती रोने लगीं, विष्णु के पास इसकी खबर भेजी गयी । विष्णु वहाँ से चले, मार्ग में एक हाथी सोया था उसका मस्तक काट विष्णु ले आये और उस बालक के धड़ में उसे जोड़ कर उसे जीवित किया । हस्तिमुख जान कर कोई इसका तिरस्कार न करे, इस अभिप्राय से देवताओं ने प्रतिज्ञा की कि बिना गणेश की पूजा किये, हम लोग पूजा ग्रहण नहीं करेंगे । तभी से गणेश की पूजा प्रथम की जाती है ।

(ब्रह्मवैवर्तपुराण)

गणेश उपपुराण=एक प्रकार का उपासनाग्रन्थ । इसमें गणेश की प्रार्थना, उपासना और महत्त्व आदि की बातें लिखी हैं । यह प्रसिद्ध अष्टादश उपपुराणों में नहीं है । सम्भव है किसी गाणपत्य ने इसकी रचना की हो ।

गणेश दैवज्ञ=इस नाम के दो ज्योतिर्वेत्ताओं का परिचय मिलता है । उनमें एक ने "ग्रहलाघव" नामक ग्रन्थ और दूसरे ने "जातकालङ्कार" नामक ज्योतिष का ग्रन्थ बनाया था । पहले गणेश दैवज्ञ के पिता का नाम केशव दैवज्ञ था । ये नन्दीग्राम में रहते थे और कौशिकगोत्र ब्राह्मण थे । दूसरे गणेश दैवज्ञ के पिता का नाम गोपाल दैवज्ञ था । ये भरद्वाजगोत्री ब्राह्मण थे । ये गुजरात के सूर्यपुर नामक नगर में रहते थे । सन् १५२० ई० में "ग्रहलाघव" नामक ग्रन्थ बना था ।

गण्डकी एक नदी का नाम । जो अवध होती हुई पटने के पास गङ्गा में मिली है ।

गण्डूष=चन्द्रवंशी देवमीढ़ूष के कई पुत्रों में से एक पुत्र का नाम ।

गति=देवहूति की एक कन्या का नाम । इसका विवाह पुलक से हुआ था ।

गद=वसुदेव के कई पुत्रों में से एक पुत्र का नाम ।

गदावसानक्षेत्र=मथुरा के अन्तर्गत एक तीर्थ । श्रीकृष्ण का वध करने के लिये जरासन्ध ने निन्यानवे बार गदा फेंकी थी, अन्त में वह गदा जिस स्थान पर गिरी, उस स्थान का नाम पड़ा "गदावसानक्षेत्र" ।

गन्धवती=राजा उपरिचर की कन्या । इनका ही नाम सत्यवती था । इन्हींके गर्भ से कृष्णद्वैपायन का जन्म हुआ था । गन्धवती को योजनगन्धा या मत्स्यगन्धा भी कहते हैं । गन्धवती का जन्म-विवरण अलौकिक घटनापूर्ण है ।

गन्धमादन=(१) एक पर्वत का नाम, जो मेरु के

दक्षिण में है, और इसके पास ही एक वन है, जिसका नाम भी गन्धमादन है।

(२) रामचन्द्र की सेना के एक सेनापति का नाम। ये इन्द्रजीत के अस्त्र से घायल हो कर मरे थे। हनुमान् के सञ्जीवन बूटी ले आने पर, ये जीवित हुए। यद्यपि यह एक पराक्रमी बन्दर बताये जाते हैं, तथापि ये धनपति कुबेर के पुत्र थे।

गन्धमोजया=एक प्राचीन राजकुमार। ये श्वफल्क के पुत्र थे और उनकी स्त्री गान्दिनी के गर्भ से उत्पन्न हुए थे।

गदाधर भट्टाचार्य=नवद्वीप के विख्यात नैयायिक पण्डित, ये वारेन्द्रश्रेणि के ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम जीवाचार्य था। पावना जिले के लक्ष्मीचापडा नामक ग्राम में ये रहते थे। मिथिला से न्यायशास्त्र का अध्ययन समाप्त कर के ये नवद्वीप आये और वहाँ इन्होंने पाठशाला पढ़ाना प्रारम्भ किया। उस समय नवद्वीप के प्रसिद्ध नैयायिक जगदीश तर्कालङ्कार जीवित थे। ये एक बुद्धिमान् और कल्पक विद्वान् थे। बहुत ही शीघ्र इनकी प्रसिद्धि हो गयी। गदाधर के समय में मिथिला ही विद्यापीठ थी, वहाँ दूर दूर से पढ़ने के लिये विद्यार्थी जाया करते थे, परन्तु नवद्वीप में गदाधर भट्टाचार्य की पाठशाला खुल जाने से अब विद्यार्थी पढ़ने के लिये वहीं जाने लगे। मैथिल पण्डित पाठ पढ़ा कर विद्यार्थियों को ग्रन्थ नहीं देते थे, परन्तु गदाधर भट्ट ने जो ग्रन्थ पढ़े थे वे सभी इनको कण्ठस्थ थे, अतएव मैथिल पण्डितों ने भी ग्रन्थ न देना निरर्थक समझ कर इनकी पढ़ी पुस्तकें इन्हें दे दीं। इन्होंने इतने ग्रन्थ बनाये थे। "ब्रह्मनिर्णय" (वेदान्त) "कुसुमाञ्जलिव्याख्या" "मुक्तावली टीका" "तत्त्वचिन्तामणिदीधिति" और "तत्त्वचिन्तामणिदीधिति" की गदाधरी नाम की व्याख्या, "गदाधरी" नवीन न्याय का अपूर्व ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ से न्याय और गदाधर भट्टाचार्य दोनों का गौरव है। हरिराम तर्कवागीश से इन्होंने विद्याध्ययन किया था।

गन्धर्व=रामायण में लिखा है कि भरत ने गन्धर्व देश को दो भागों में बाँट कर और उन दो भागों में तक्षशिला और पुष्कलावती नाम की दो राजधानी बना कर उनको अपने दोनों पुत्रों को दे डाला। जिस समय भारतवर्ष नव भागों में विभक्त था, उस समय उत्तर पश्चिम सीमान्त देशों को गन्धर्व देश कहते थे। वर्तमान अफगानिस्तान और पारस का कुछ भाग गन्धर्व देश ही के अन्तर्गत समझा जाता था। पण्डितों का कहना है कि मध्ययुग में जिस देश का नाम गान्धार था, (आज कल जिसको कान्धार कहते हैं) वही पहले का गन्धर्व देश है। तक्षशिला के प्रसङ्ग में रामायण में लिखा है कि भरत के मामा केकयराज युधाजित् ने अपने पुरोहित अङ्गिरापुत्र गार्ग्य को कुछ भेंट के साथ रामचन्द्र के समीप भेजा था। गार्ग्य ने भेंट दे कर रामचन्द्र जी से कहा महाराज, आपके मामा ने जो संवाद भेजा है उसे सुनिये। सिन्धु नदी के दोनों तीर पर गन्धर्व देश है, वहाँ तीन कोटि युद्धविद्याविशारद महाबल शैलूषतनय गन्धर्व रहते हैं सो महाराज, उस देश को जीत कर वहाँ का शासन करो। इससे स्पष्ट है कि पश्चिम सीमान्त प्रदेश अफगानिस्तान और पारस का कुछ भाग गन्धर्व देश कहा जाता था।

गन्धर्वजाति=प्राचीन भारत की एक प्राचीन जाति। इस जाति के लोग गाने बजाने में बड़े निपुण होते थे। विष्णुपुराण में लिखा है कि गान करते करते उत्पन्न होने के कारण इस जाति के लोग गन्धर्व कहलाये। महाभारत में लिखा है कि गन्धर्वजाति के लोग उत्तर के रहने वाले हैं। रामायण में भी गन्धर्वजाति का उल्लेख हुआ है। गन्धर्वों ने एक समय पाताल में जा कर वहाँ के अधिवासियों को जीता था। कुछ लोग कहते हैं कि गन्धर्व गान्धार प्रदेश के वासी थे।

गन्धर्वनगर=गन्धर्वों के रहने का स्थान, (देखो गन्धर्व) महाभारत में लिखा है कि गन्धर्वनगर पर अर्जुन ने एक बार आक्रमण किया था और वहाँ के अधिवासियों को जीत लिया था।

गन्धर्वलोक=एक लोक का नाम, जो पृथिवी से ऊपर है।

गन्धर्वविवाह=एक प्रकार का विवाह। इस विवाह में अन्य विवाहों की अपेक्षा नियम सरल

है, स्त्री पुरुष की प्रसन्नता ही से यह विवाह हो जाता है। वीर क्षत्रियों में इस प्रकार का विवाह पहले प्रचलित था।

गन्धहस्ति=एक बौद्धस्तूप। चीनी संन्यासी हुएनत्सङ्ग ने लिखा है कि बोधगया से कुछ चल कर निरञ्जना नाम की एक नदी मिलती है उस नदी को पार कर के, थोड़ी ही दूर पर, यह स्तूप मिलता है। कहा जाता है कि बोधगया के दक्षिण पूर्व की ओर लीलाजन नदी के तीर पर इस स्तूप का भग्नांश अब भी मिलता है।

गभस्तिमान्=भारतवर्ष के नव विभागों में से एक विभाग का नाम। गभस्तिमान् शब्द का अर्थ है सूर्य। सम्भव है कि जिस देश में सूर्य की किरणें प्रखर रूप धारण करती हों वही देश गभस्तिमान् के नाम से परिचित हो। पहले समय में गभस्तिमान् प्रदेश एशिया महादेश के मङ्गोलिया, तिब्बत, श्याम और रूस का कुछ भाग समझा जाता था।

गभीपण=वर्तमान काशीपुर का प्राचीन नाम।

गय=(१) एक धर्मपरायण सत्कर्मी राजा। इनके पिता का नाम था अमूर्तराज। इन्होंने सौ वर्ष तक यज्ञ का अन्न खाया था। अग्नि के वर से इन्होंने वेदपाठ का अधिकार पाया था। इन्होंने समस्त शत्रुओं का नाश कर के जगत् में अपना अधिकार फैलाया था। ये प्रतिदिन प्रातःकाल एक लाख साठ हज़ार गौ, दस हज़ार घोड़े और एक लाख निष्क (रुपया) दान करते थे। इन्होंने एक बहुत बड़े यज्ञ का अनुष्ठान किया था, जिसकी वेदि ३६ योजन लम्बी और ३० योजन चौड़ी थी। यह वेदि सोने की बनी थी। इस यज्ञ से संसार में इनकी प्रसिद्धि हो गयी। (महाभारत)

(२) एक विख्यात असुर। इसीके नामानुसार हिन्दुओं के पवित्र तीर्थ का नाम गया पड़ा है। इसी तीर्थस्थान में पितरों को पिण्डदान करने के लिये हिन्दू जाते हैं। इस क्षेत्र का परिमाण पाँच कोस का है और गयाशिर नामक स्थान का परिमाण एक कोस का है। गय नामक असुर बृहत्काय था और असीम विष्णुभक्त था। वह स्वभाव ही से धार्मिक था। वह कोलाहल नामक पर्वत पर विष्णु से वर माँगने की इच्छा से कठोर तपस्या करता था। उसकी तपस्या से डर कर देवों ने ब्रह्मा को अपना मुखिया बनाया और उन्हें साथ ले कर वे विष्णु के निकट गये। विष्णु भी सब देवताओं को साथ ले कर गयासुर को वर देने के लिये कोलाहल पर्वत पर गये। गय ने वर माँगा। विष्णु वर दे कर देवताओं के साथ अपने स्थान को गये। विष्णु के वर से गय का शरीर पवित्र हो गया। लोग उसके दर्शन से वैकुण्ठ जाने लगे। नगर शून्य हो गये। यमराज को बैठे बैठे दिन बिताना भारी पड़ा, सभी लोग गयासुर के शरीर का दर्शन करते और स्वर्ग चले जाते थे। यमराज विष्णु के समीप गये और जा कर अपने निठल्ले बैठने का कारण जनाया। अनन्तर वहाँ ही एक देवताओं की सभा हुई और उसमें यह निश्चित हुआ कि किसी उपाय से गय को अचल करना चाहिये, नहीं तो यह घूम घूम कर संसार को वैकुण्ठ भेज देगा। इसीके अनुसार देवता गय के पास गये और उससे उसका शरीर भिक्षा में लिया। उसी शरीर को उन्होंने यज्ञस्थान बनाया और उसके शरीर को एक पत्थर के चट्टान से दबा दिया, परन्तु तौ भी वह असुर अचल नहीं हो सका। अन्त में स्वयं विष्णु उस शिला पर विराजमान हुए, इससे गय नामक असुर निश्चल हो गया। उसने इनकी चालाकी समझ कर कहा—आप लोगों ने हमको निश्चल करने के लिये इतना कष्ट क्यों उठाया? यदि ऐसी ही बात थी तो मुझसे आप लोग कह देते, तो मैं स्वयं निश्चल हो जाता। इससे देवता लोगों ने उस पर प्रसन्न हो कर उसे वर देना चाहा, उसने यही वर माँगा कि सूर्य चन्द्र जब तक रहैं तब तक आप लोग इसी पत्थर पर बैठे रहैं। (वायुपुराण)

गयाक्षेत्र=हिन्दुओं का एक प्राचीन और पवित्र तीर्थ। रामायण, महाभारत, याज्ञवल्क्य, वायुपुराण आदि ग्रन्थों में गयाक्षेत्र का उल्लेख किया गया है। अतएव गयाक्षेत्र की प्राचीनता निर्विवाद सिद्ध है। इस क्षेत्र की उत्पत्ति के विषय में अनेक प्रकार के मत देखे जाते हैं। महाभारत

में लिखा है—इस स्थान पर चन्द्रवंशी अमूर्तरज के पुत्र गय ने यज्ञ किया था और दक्षिणा में बहुत अन्न धन आदि दिये थे इस कारण इसका नाम गया पड़ा । हरिवंश में लिखा है कि प्रजापति मनु ने यहाँ पुत्रकामना से यज्ञ किया था । उसी यज्ञ में मित्रावरुण के अंश से ईडा नाम की एक कन्या उत्पन्न हुई । मित्र और वरुण के वर से वही फिर सुद्युम्न नामक प्रसिद्ध मनु के वंशधर हुए । उत्कल, गय और विनताश्व उन्हींके सहयोगी थे । गय के अधीन गयापुरी थी । वायुपुराण में एक अन्य प्रकार ही से लिखा है (देखो गय (२)) जिस समय मगधदेश में बौद्धों का प्रभाव था, उस समय गयाक्षेत्र ध्वस्त विध्वस्त हो गया । अशोक के समय में गया में अनेक बौद्धमठ स्थापित हुए थे । पुनः हिन्दुओं के अभ्युदयकाल में बौद्धों के मठ सङ्घाराम विहारस्तूप आदि सभी नष्ट कर दिये । गया में अनेक तीर्थ विद्यमान हैं । फल्गुतीर्थ, नागकूट, गृध्रकूट, पाण्डुशिला, स्वर्गद्वार, धर्मशिला प्रभृति प्रसिद्ध तीर्थ हैं ।

गर—उशीनर के पाँच लड़कों में से एक का नाम ।

गरुड—पक्षिराज । विष्णु का वाहन । प्रजापति ऋषि कश्यप के औरस और विनता के गर्भ से इनकी उत्पत्ति हुई थी । इनके ज्येष्ठ भाई अरुण विकलाङ्ग होने के कारण सूर्य के सारथी बन गये । अपनी सौतेली माता के दासत्व से अपनी माता को मुक्त करने के लिये गरुड स्वर्ग से अमृत ले आये थे । माता की आज्ञा से स्वर्ग जाते हुए, गरुड को मार्ग में भूख लगी । क्षुधा दूर करने के लिये वे अपने पिता कश्यप के पास गये और उनसे खाने के लिये माँगा । कश्यप ने इनको खाने के लिये लड़ते हुए एक बड़े गज और कच्छप को बतला दिया । ये गज और कच्छप पहले विभावसु और सुप्रतीक नामक तपोबल-सम्पन्न सहोदर भाई थे । बड़ा भाई विभावसु अत्यन्त क्रोधी था और छोटा सुप्रतीक मृदु स्वभाव का था । सुप्रतीक ने अपने बड़े भाई से पैतृक सम्पत्ति बाँट देने के लिये कहा । इससे क्रुद्ध हो कर उसने उसे गज होने के लिये शाप दिया, तब छोटे ने भी बड़े को शाप दिया कि तुम कच्छप हो जाओ, तभी से गज-कच्छपरूपी दोनों भाई एक दूसरे का विनाश करने के लिये युद्ध कर रहे थे । पिता की आज्ञा पा कर गरुड ने उन दोनों को पकड़ लिया और पास ही के एक वट वृक्ष की शाखा पर उन्हें खाने की इच्छा से वे बैठे । परन्तु वट की वह शाखा टूट गयी । उस समय गरुड ने देखा कि उसमें बहुतसे ऋषि उलटे लटके हैं और तप कर रहे हैं । उसके पृथिवी पर गिरने से ऋषि आहत होंगे और उन्हें शाप देंगे । गरुड ने यह सोच और उस शाखा को लिये हुए पिता के पास इस सङ्कट से उद्धार पाने की इच्छा से गये । कश्यप के कहने से ऋषि शाखा छोड़ कर अन्यत्र चले गये । गरुड ने सुमेरु पर जा कर और निश्चिन्त हो कर खूब भोजन किया । प्रचुर आहार से सन्तुष्ट हो कर वे अमृत लाने के लिये स्वर्ग की ओर चले । वहाँ जा कर युद्ध में देवों को परास्त कर के वे अमृत ले आये और अपनी माता को दासत्व से छुड़ाया ।

(महाभारत)

गरुडपुराण—यह पूर्व खण्ड और उत्तर खण्ड दो खण्डों में विभक्त है । सृष्टिप्रकरण से ले कर प्रजापति की उत्पत्ति, सूर्यपूजा, विष्णुपूजा, लक्ष्मीपूजा, शिवपूजा, पादुकापूजा, गोपालपूजा, हयग्रीवपूजा, दुर्गापूजा आदि पूजापद्धति, दीक्षाविधि, प्रायश्चित्तविधि, तर्पणविधि, सन्ध्याविधि, श्राद्धविधि, स्नानविधि और नाना प्रकार के व्रतमाहात्म्य, व्रतोत्पत्तिकथन, रत्नपरीक्षा, गृहधर्म, यतिधर्म, गयाकृत्य, सूर्यवंश, चन्द्रवंश, जनमेजयवंश, रामायण, हरिवंश और भारतकथन, आयुर्वेदप्रकरण में—रोगनिदान, विष्णुध्यान, नारायणध्यान, नृसिंहस्तव, व्याकरणनियम, छन्दःशास्त्र, अधिक कहाँ तक कहा जाय, स्त्रीवशीकरण, मशकवारण तक इस पुराण में लिखा है । नरकवर्णन, प्रेतवर्णन, सपिण्डीकरण की विधि आदि विधियाँ भी इस पुराण में लिखी हैं । गरुडपुराण में २१ अवतार लिखे गये हैं । भागवत में लिखा है कि गरुडपुराण में १९ हजार श्लोक हैं, परन्तु इसके प्रथम अध्याय में लिखा है—

अष्टौ श्लोकसहस्राणि तथा चाष्टौ शतानि च ।
पुराणं गारुडं व्यासः पुराऽसौ मेऽब्रवीदिदम् ॥

अर्थात् गरुडपुराण में आठ हज़ार आठसौ श्लोक हैं। इस पुराण में तन्त्रों के मन्त्र और ओषधियों का विवरण अधिकता से पाया जाता है। रत्नपरीक्षा के प्रसङ्ग में लिखा है कि हिमालय, मातङ्ग पर्वत, सुराष्ट्र, पुण्ड्र, कलिङ्ग, कोशल, वेण्वातट और सौवीर देश—इन आठ स्थानों में उत्तम हीरे उपलब्ध होते हैं। हिमगिरि के हीरे कुछ लाल वर्ण के और सौवीर देश के कुछ नीलिमा लिये होते हैं। सुराष्ट्र देश का हीरा ताँबे के रङ्ग का, कलिङ्ग देश का सोने के समान, कोशल देश का कुछ पीलापन लिये, पुण्ड्रक देश का कुछ श्याम वर्ण पर, मतङ्ग पर्वत का थोड़ा पीलापन लिये हुए होता है। किसी क्षार से हीरा पर लकीर खींच कर उसकी परीक्षा की विधि भी इस ग्रन्थ में लिखी है। पृथिवी में जितने रत्न, लौह, या धातु वर्तमान हैं, उन सब पर हीरे का निशान हो सक्ता है; परन्तु हीरे पर किसी वस्तु से निशान नहीं हो सकता। रत्नों की गुरुता ही उनकी अच्छाई का कारण है। परन्तु हीरा जितना ही हलका होगा उतना ही उसका अधिक मूल्य होगा। इसी प्रकार मोतियों के विषय में भी उनकी उत्पत्ति और मूल्य के तारतम्य के विषय में लिखा है। सूर्य-प्रमाण-संस्थान, ज्योतिःसार, लग्नमान, प्रश्नगणना, आदि विषय भी इस पुराण में उल्लिखित हैं। नीतिसार, राजधर्म आदि पर भी कुछ कुछ विवेचन इस ग्रन्थ में किया गया है। इसके अनेक श्लोक हितोपदेश आदि ग्रन्थों में देखे जाते हैं।

गर्ग=(१) प्राचीन प्रसिद्ध ज्योतिर्वेत्ता। ये यदुवंशियों के कुलगुरु थे। इनके पुत्र का नाम गार्ग्य और कन्या का नाम गार्गी था। इन्होंने शेष जी को प्रसन्न कर के नक्षत्रविद्या और शुभाशुभ ज्ञान की शिक्षा पायी थी। ये हिन्दुओं में सबसे पुराने ज्योतिष् के आचार्य हैं। बेंटले साहब के मतानुसार इनकी संहिता ईसा के ५०० वर्ष पूर्व बनायी गयी थी। भागवत के मतानुसार बलराम और कृष्ण का नामकरण संस्कार गर्ग मुनि ने किया था। और वसुदेव ने इन्हें इसी काम के लिये गोकुल भेजा था।

(२) ये वाष्कलि के शिष्य और ऋग्वेद के उपदेष्टा थे।

(३) इस नाम के एक ब्राह्मण भी हुए हैं, जो बारह वर्ष तक लोहचूर्ण भक्षण कर के और कठिन तपस्या कर के वीर कालयवन के पिता हुए थे।

(४) इस नाम के एक वैयाकरण पण्डित भी हुए थे।

गर्गभूमि=राजा अलर्क के एक पुत्र का नाम।

गागा राव=जोधपुर के एक राजा का नाम। ये वीर सूजा के पौत्र थे। सूजा के मरने पर सन् १५१६ ई० में गागा का राज्याभिषेक हुआ। गागा के राज्यासन पर बैठते ही उनका सेरवा जी उनको गद्दी से उतारने का प्रयत्न करने लगा। राठौरों के पुराने शत्रु दौलतखाँ ने सेरवा जी से सहायता माँगी। दौलतखाँ ने बन्दर बाँट कर के राठौर राज्य को बाँट देना चाहा; परन्तु तेजस्वी गागा ने इसे नहीं स्वीकार किया। युद्ध ही से फैसला करना उन्होंने उत्तम समझा। युद्ध में सेरवा जी मारा गया। दौलतखाँ भी घायल और अपमानित हो कर लौट गया। उसी समय बाबर की सर्वग्रासी नीति का प्रचार हुआ था। स्वदेश रक्षा करने के निमित्त राणा संग्रामसिंह की अध्यक्षता में राजपूतों की एक बड़ी सेना तैयार हुई थी। वीर गागा ने भी उसमें योग दिया था। इनकी सेना के सेनापति थे इनके पौत्र रायमल्ल। रायमल्ल बड़ी वीरता से लड़ कर उस युद्ध में काम आये। पौत्र के मरने से गागा बहुत ही शोकसन्तप्त हुए। उस युद्ध के चार वर्ष के बाद गागा का शरीरपात हुआ। (टाडस् राजस्थान)

गाणपत्य=गणेश का उपासक सम्प्रदाय। इस सम्प्रदाय के लोग गणेश ही को परब्रह्म मान कर पूजते हैं।

गाण्डीव=अर्जुन के एक धनुष का नाम। यह धनुष अग्नि से इन्हें मिला था। खाण्डव दाह के समय अर्जुन ने सहायता दे कर अग्नि का अजीर्ण रोग मिटाया था। इससे प्रसन्न हो कर

अग्नि ने अर्जुन को गाण्डीव नामक धनुष दिया था। यह धनुष अर्जुन को बड़ा प्रिय था। अर्जुन की प्रतिज्ञा थी कि, जो गाण्डीव की निन्दा करेगा उसका मैं वध करूँगा।

गाधि=चन्द्रवंशी महाराज कुशिक के पुत्र। गाधिराज प्रसिद्ध महर्षि विश्वामित्र के पिता थे। देवराज इन्द्र ने, महाराज कुशिक की स्त्री पौरकुत्सी के गर्भ से गाधिराज के रूप में जन्म ग्रहण किया था। महर्षि भृगु के पुत्र ऋटिक ने गाधिकन्या सत्यवती को व्याहा था। सत्यवती के गर्भ से जमदग्नि मुनि उत्पन्न हुए थे। (हरिवंश)

गाधिपुर=(देखो कनौज)

गान्धर्ववेद=सामवेद के एक उपवेद का नाम। इसमें गीत वाद्य नृत्य आदि की बातें लिखी हैं। इस समय यह वेद लुप्त हो गया है, इस वेद के प्रवर्तक महामुनि भरत हैं। महर्षि वाल्मीकि के समय में महामुनि भरत सङ्गीतशास्त्र के प्रधान अध्यापक थे। गान्धर्ववेद के प्रवर्तक भरत मुनि और वाल्मीकि के समसामयिक भरत मुनि दोनों भिन्न हैं या एक, इसका निर्णय करना कठिन है। यद्यपि गान्धर्ववेद का इस समय पाना कठिन है तथापि उसके अनुसार बने हुए अनेक ग्रन्थ अभी भी वर्तमान हैं। सोमेश्वर, भरत, हनुमन्त, और कल्लिनाथ ये गान्धर्ववेद के प्रधान आचार्य हैं।

गान्धार=प्राचीन देशविशेष। सिन्धु नद के तीरवर्ती जिसको इस समय कान्धार कहते हैं, उसीका मध्ययुग में गान्धार नाम था। इस देश का प्राचीन नाम गन्धर्वदेश है।

गान्धारी=(१) राजा क्रोष्टु की स्त्री और अनमित्र की माता। मृत्तिकावती नगरी में रहने वाले राजा भोज कहे जाते थे। इसी भोजवंशी राजा क्रोष्टु की गान्धारी और माद्री—दो स्त्रियाँ थीं। गान्धारी के गर्भ से महाबली अनमित्र उत्पन्न हुए थे। (हरिवंश)

(२) कुरुवंशी प्रसिद्ध राजा धृतराष्ट्र की स्त्री। ये गान्धारराज सुबल की कन्या, और दुर्योधन की माता थीं। इनके छोटे भाई का नाम सौबल या शकुनी था। गान्धारी ने शिव की आराधना कर सौ पुत्र उत्पन्न करने का वर पाया था। इस समाचार को पा कर भीष्म ने अपने भाई के पुत्र धृतराष्ट्र के विवाह के लिये वहाँ दूत भेजा। सुबल ने वर को अन्धा जान कर भी केवल कुलमर्यादा के विचार से अपनी कन्या गान्धारी उन्हें दे दी। गान्धारी ने भी अपने भावी पति के अन्ध होने की ख़बर पा कर अपनी आँखों पर पट्टी बाँध ली। विवाह हो जाने पर भी गान्धारी ने आँखों की पट्टी नहीं खोली। इससे उनके पतिव्रता होने का पूर्ण परिचय मिलता है। ये अत्यन्त धार्मिका थीं। ये अपने पुत्रों को पाण्डवों के साथ मित्रता रखने का उपदेश सर्वदा दिया करती थीं। परन्तु ऐश्वर्य-मदोन्मत्त उनके पुत्र उन उपदेशों को सुनते भी नहीं थे। कुरुक्षेत्र के युद्ध में अपने सौ पुत्रों का मृत शरीर देख कर इन्होंने पाण्डवों के मन्त्री श्रीकृष्ण को कहा था-यदि तुम चाहते तो अवश्य ही यह कुरु पाण्डवों का युद्ध रुक जाता, पर तुमने ऐसा न होने दिया। अतः आज मैं तुमको शाप देती हूं। मैंने पतिसेवा से जो कुछ पुण्य सञ्चय किया है उसके प्रभाव से मैं तुमको शाप देती हूँ कि तुमने जिस प्रकार कौरव और पाण्डवों का विनाश होते देखा है, उसी प्रकार तुम्हारे बान्धव भी तुम्हारे ही द्वारा नष्ट होंगे और ज्ञाति पुत्र हीन तथा वनचारी हो कर तुम बुरी तरह मारे जाओगे। गान्धारी का यह शाप सफल हुआ था। युधिष्ठिर के राज्याभिषेक के समय दश दिनों तक हस्तिनापुर में रह कर गान्धारी ने अपने मृत पुत्रों की अन्तिम क्रिया की थी। तदनन्तर कार्तिक पूर्णिमा को अपने पति के साथ वे वन में गयीं। सञ्जय भी इनके साथ गये थे। एक बार वेदव्यास उनके आश्रम में गये। इनके प्रभाव से धृतराष्ट्र और गान्धारी को कुरुक्षेत्र के युद्ध में मृत द्रोण भीष्म आदि का दर्शन हुआ था। ये सब वीर व्यास के तपःप्रभाव से जल में से उत्पन्न हुए थे। युद्ध में मृत, अपने पुत्रों को देख कर गान्धारी को बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ था तदनन्तर छः मास बीतने पर, एक दिन उस वन में दवानल जल उठा। धृतराष्ट्र कुन्ती और गान्धारी न खाने के कारण

दुर्बल हो गये थे इस कारण भाग कर वे अपने को न बचा सके और जल कर मर गये । सञ्जय ने किसी प्रकार भाग कर आत्मरक्षा की थी ।

गान्दिनी=अक्रूर की माता और यदुवंशी श्वफल्क की स्त्री । इसी कारण अक्रूर का नाम गान्दिनी-सुत पड़ा है । गान्दिनी काशीराज की कन्या थीं । ये प्रतिदिन ब्राह्मणों को गोदान किया करतीं, इस कारण इनका नाम पड़ा है गान्दिनी । ये माता के गर्भ में बहुत दिनों तक रही थीं, इस कारण इनके पिता चिन्तित हुए थे । उस समय गर्भ की बालिका ने कहा कि यदि प्रति-दिन एक गोदान करने की तुम लोग व्यवस्था करो तो मैं बाहर निकल आऊँ । पिता के स्वीकार करने पर कन्या ने जन्म ग्रहण किया । अक्रूर के अतिरिक्त इसके गर्भ से १३ और पुत्र और सुन्दरी नाम की एक कन्या उत्पन्न हुई थी । (हरिवंश)

गायत्री=वेदमाता । ये गाने वालों का त्राण करती हैं, इस कारण इनका नाम पड़ा गायत्री । पद्म-पुराण में लिखा है कि ये ब्रह्मा की स्त्री हैं । ब्रह्मा की पहली स्त्री का नाम था सावित्री । एक समय ब्रह्मा ने एक यज्ञ का अनुष्ठान किया था । यज्ञ में स्त्री का होना आवश्यक है । इस कारण सावित्री को ले आने के लिये ब्रह्मा ने इन्द्र को भेजा, इन्द्र ने ब्रह्मा की आज्ञा सावित्री से कही, सावित्री ने कहा इस समय लक्ष्मी आदि मेरी सखी यहाँ वर्तमान नहीं हैं, उनके आने पर मैं आऊँगी । इन्द्र से यह बात सुन कर ब्रह्मा ने दूसरी स्त्री ग्रहण करने की इच्छा प्रकाशित की । इन्द्र मर्त्यलोक में आये और एक ग्वालिन ले कर ब्रह्मा के निकट उपस्थित हुए । ब्रह्मा ने उससे गान्धर्व विवाह किया । उसका नाम था गायत्री । इनके दो हाथों में से एक हाथ में मृग-शृङ्ग और दूसरे में पद्म है । इनके पहनने का कपड़ा लाल रङ्ग का है । इनके गले में मुक्ताहार, कानों में कुण्डल और मस्तक पर मुकुट है । वेद में लिखा है—एक बार वृहस्पति ने लात मार कर गायत्री का माथा फोड़ दिया था । परन्तु गायत्री की मृत्यु नहीं हुई । इनके मस्तक से वषट्कार देवों की उत्पत्ति हुई । बहुत लोग इस घटना को रूपक समझते हैं । गायत्री हिन्दूधर्म का बीजमन्त्र है । चार्वाक ने गायत्री के विनाश करने की बहुत चेष्टा की थी, परन्तु वह सफल नहीं हुआ ।

गार्गी=वैदिक समय की एक पण्डिता ऋषि-पुत्री । इसके पिता का नाम गर्ग मुनि था । यह अत्यन्त बुद्धिमती स्त्री थी । कहते हैं कि मिथिला के जनकराज की सभा में आ कर इसने पण्डितों के सामने याज्ञवल्क्य के साथ वेदान्तशास्त्र-विषयक आलाप किया था ।

गार्ग्य=यादवों के कुलगुरु और गर्ग मुनि के पुत्र । ये किसी कारण वश एक समय यादवों से रुष्ट हो गये थे । अतएव इन्होंने लोहचूर्ण खा कर बारह वर्ष तक तपस्या की, जिससे यादवों को विनाश करने वाला पुत्र उत्पन्न हो । महादेव ने तपस्या से प्रसन्न हो कर उन्हें वर दिया था । इन्हींके औरस और गोपाली नामक अप्सरा के गर्भ से यादवों का शत्रु कालयवन उत्पन्न हुआ था ।

गालव=(१) महर्षि विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम ।

(२) महर्षि विश्वामित्र का प्रिय शिष्य । इस पर प्रसन्न हो कर महर्षि ने इसे घर जाने की आज्ञा दी । गालव ने गुरुदक्षिणा देना चाही । परन्तु विश्वामित्र ने कहा मैं तुम्हारी भक्ति ही से प्रसन्न हूँ, अब तुम्हें गुरुदक्षिणा देने की आवश्यकता नहीं है । परन्तु शिष्य ने गुरुदक्षिणा देने के लिये बहुत आग्रह किया तब गुरु ने ८ सौ घोड़े माँगे । विष्णु की आराधना से उनका वाहन पक्षिराज गरुड वहाँ उपस्थित हुआ । गरुड के साथ उनका पहले ही से परि-चय था । गरुड के कहने से उनकी पीठ पर चढ़ कर गालव ययाति के पास पहुँचा । उसने ययाति से आठ सौ घोड़े माँगे, राजा ने कहा—इस समय अनेक यज्ञ करने से मेरा कोश खाली हो गया है, और मेरे यहाँ वैसे घोड़े भी नहीं हैं । परन्तु राजा ने दूसरे उपाय से गालव का मनोरथ पूर्ण करने के लिये वचन दिया । राजा ययाति ने अपनी कन्या माधवी गालव को दे कर कहा—इस कन्या को किसी योग्य पात्र को

दे कर आप आठ सौ घोड़े ले सकते हैं। इस कन्या से यदि आप चाहें तो राज्य ले सकते हैं। क्योंकि इस सुन्दरी कन्या को बहुत लोग चाहेंगे। माधवी को ले कर गालव पुत्रार्थी राजा हर्यश्व के निकट उपस्थित हुए। हर्यश्व ने दो सौ घोड़े दिये और माधवी से एक पुत्र उत्पन्न कर के उसे लौटा देने के लिये कहा। गालव ने चतुर्थांश गुरुदक्षिणा गुरु को दे दी। हर्यश्व को माधवी के गर्भ से वसुमना नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ। गालव वहाँ गये। राजा ने पूर्व प्रतिज्ञा के अनुसार पुत्र को रख कर माधवी को लौटा दिया। गालव माधवी को ले कर काशिराज दिवोदास के पास गये। दिवोदास ने भी दो सौ घोड़े दिये और एक पुत्र होने तक माधवी को रखना स्वीकृत किया, यथा समय माधवी के गर्भ से प्रतर्दन नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। दिवोदास ने प्रतर्दन को रख कर माधवी को लौटा दिया। इस प्रकार गुरुदक्षिणा का आधा भाग गुरु को दे दिया। पुनः गालव माधवी को ले कर राजा उशीनर के निकट उपस्थित हुए। उशीनर ने भी दो सौ घोड़े दिये, और एक पुत्र उत्पन्न होने तक माधवी को रखना अंगीकार किया। माधवी के गर्भ से उशीनर के एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम शिवी पड़ा। राजा उशीनर ने पुत्र को रख कर माधवी को लौटा दिया। अब भी गुरुदक्षिणा का एक हिस्सा बाकी है। गालव बाकी गुरुदक्षिणा पूरी करने के लिये माधवी को कहाँ ले जायँ वह यही सोच रहा था कि उसी समय गरुड वहाँ उपस्थित हुए और उन्होंने कहा कि अब वैसे दो सौ घोड़े कहीं नहीं मिल सकते। अतएव गरुड के परामर्श से गालव ने दो सौ घोड़ों के बदले माधवी ही को गुरु के चरणों में अर्पण किया। विश्वामित्र ने कहा कि दक्षिणा पूर्ण हुई। माधवी के गर्भ से विश्वामित्र को भी एक पुत्र उत्पन्न हुआ था, जिसका नाम था अष्टक।

अष्टक के उत्पन्न होने के बाद विश्वामित्र के समीप जा कर उन्होंने माधवी को माँगा। पूर्व प्रतिज्ञा के अनुसार विश्वामित्र ने गालव को माधवी दे दी। गालव माधवी को ले कर ययाति के पास पहुँचे और माधवी उन्होंने ययाति को सौंप दी। ययाति चाहते थे कि स्वयम्वर विधि से माधवी का विवाह कर दें, परन्तु उसने विवाह करना अस्वीकार किया। उसने वन में रह कर अपना जीवन बिताना उचित समझा।
(महाभारत)

गिरिधर कविराय=इन राजकवि का जन्म सन् १७१३ ई० में हुआ था और ये दुआब के रहने वाले थे। इनकी नीति की कुण्डलियाँ प्रसिद्ध हैं।

गिरिधर जी=एक शेखावत राजा का नाम। इनके पिता का नाम रायसाल था, इनके सात पुत्र थे। मरने के पहले रायसाल ने अपने राज्य को सात भागों में बाँट कर अपने सातों लड़कों को दे दिया था। ज्येष्ठ पुत्र गिरिधर जी को खण्डेला और रेवासा मिला था। गिरिधर जी साहसी और वीर थे, इनके इन्हीं गुणों पर प्रसन्न हो कर दिल्ली के राजा ने इन्हें "खण्डेला के राजा" की उपाधि दी थी। गिरिधर जी के समय मेवाती जाति के डाकुओं का ज़ोर बहुत बढ़ा हुआ था, दिल्ली के बादशाह बहुत यत्न करने पर भी उनका कुछ भी नहीं कर सके थे। अन्त में उन डाकुओं को पकड़ने या मारने का भार गिरिधर जी को दिया गया। गिरिधर जी ने सोचा कि यदि बड़ी सेना ले कर मैं जाऊँगा तो अवश्य ही डाकू भाग जायँगे, इस लिये गिरिधर जी छोटी सी सेना ले कर पर्वत पर्वत घूमने लगे, एक दिन डाकुराज से उनका सामना हो गया घमासान लड़ाई हुई। डाकूपति उस लड़ाई में मारा गया। इसके थोड़े ही दिनों के बाद गिरिधर जी को भी यमुना में स्नान करने के समय एक मुसलमान ने मार डाला। (टाडस् राजस्थान)

गिरिधारी भाट=ये मऊरानीपुर ज़ि० झाँसी के रहने वाले थे और सन् १८८३ ई० में विद्यमान थे।

गिरिव्रज=मगध राज्य की प्राचीन राजधानी का नाम कुशागड़पुर या कुशाग्रपुर था। पीछे से उसका नाम गिरिव्रज या राजगृह पड़ा। रामायण, महाभारत आदि ग्रन्थों में कुशागड़पुर का नाम कहीं नहीं देखा जाता है, किन्तु राजगृह या

गिरिव्रज का नाम देखा जाता है। रामायण में केकय राज्य की राजधानी का नाम गिरिव्रज लिखा है। रामायण में गिरिव्रज का जो पता लिखा है उससे पता लगता है कि रामायण का गिरिव्रज और मगध की राजधानी गिरिव्रज दोनों भिन्न भिन्न हैं। महाभारत में मगध की राजधानी का नाम गिरिव्रज लिखा है। इससे रामायण का गिरिव्रज महाभारत का गिरिव्रज दोनों भिन्न भिन्न प्रमाणित होते हैं। महाभारत में लिखा है कि जरासन्ध को मारने की इच्छा से कृष्ण अर्जुन और भीमसेन कुरुदेश से प्रस्थान कर के कुरुजाङ्गल होते हुए पद्मसरोवर के समीप पहुँचे। तदनन्तर कालकूट अतिक्रम कर के, गण्डकी, सदानीरा, शर्करावर्त, आदि नदियों को पार कर के चले। सरयू पार कर के उत्तरकोशल देखते हुए मिथिला, माला और चर्मण्वती नदी को पार कर के वे प्रस्थित हुए। तदनन्तर गङ्गा और शोण पार कर वे तीनों वीर कुशाम्ब देश के वक्षस्थल स्वरूप मगध राज्य की सीमा में पहुँचे। पुनः कुछ चल कर जल और गोधन तथा मनोहर वृक्षपूर्ण गोरथ नामक पर्वत ढाक कर उन तीन महावीरों ने मगधराज की पुरी को देखा। महाभारत के सभापर्व में गिरिव्रज नगर का जो विवरण लिखा है उससे विदित होता है कि जरासन्ध के राज्यकाल में यह स्थान अनेक पशु सुन्दर जल तथा मनोहर अटारियों से सुशोभित और उपद्रवशून्य था।

गुणाढ्य="कथा सरित्सागर" में इस कवि का उल्लेख किया गया है। इसके रचित ग्रन्थ का नाम वृहत्कथा है, जिसे लोग "वड्डाह कथा" भी कहते हैं। कथा सरित्सागर में इन्हें कात्यायन और व्याड़ी के समकालीन बताया गया है। कात्यायन का समय सन् ई० के प्रारम्भ होने के ३१५ पूर्व माना जाता है। अतएव गुणाढ्य का भी वही समय माना जाना उचित है। पुरुष-परीक्षा में विक्रमादित्य से वड्डाह नामक एक राजा से भेंट लिखी है। यदि इसी वड्डाह की कथा गुणाढ्य ने लिखी हो तो सम्भव है वे विक्रमादित्य के नवरत्न वाले वररुचि के समय में रहे हों।

जगद्धर के लिखने से जान पड़ता है कि गुणाढ्य ने महादेव जी से वड्डाह राजा की कथा सुन कर वृहत्कथा नामक ग्रन्थ वड्डाह के वर्णन में लिखा। यदि यह बात सच है तो गुणाढ्य को खृष्टीय छठवीं सदी का मानना पड़ेगा। परन्तु इससे और कथा सरित्सागर के लेख से बड़ा भेद पड़ता है। यह सम्भव हो सकता है कि वररुचि के लिये कात्यायन नाम लिखा हो, परन्तु व्याड़ी के नाम में भूल नहीं हो सकती। इससे यही निर्णय ठीक होगा कि गुणाढ्य सन् ई० से ३१५ वर्ष पूर्व वाले कात्यायन ही के सम सामयिक हैं और वृहत्कथा के—जिसे लोग भूल से वड्डाह कथा कहते हैं—रचयिता हैं।

गुणाढ्य कवि के प्राचीन होने में कुछ भी सन्देह नहीं। गोवर्द्धनाचार्य ने अपने "आर्या-सप्तशती" नामक ग्रन्थ में कवियों की गणना में वाल्मीकि और व्यास के नाम के उपरान्त इन्हींका नाम निर्देश किया है—

अतिदीर्घजीविदोषाद् व्यासेन यशोऽपहारितं हन्त,
कैर्नोच्येत गुणाढ्यः स एव जन्मान्तरापन्नः।

पैशाची भाषा में सात लाख श्लोकों में वृहत्कथा नामक ग्रन्थ इन्होंने लिखा था। यह बात इनके एक प्रतिद्वन्द्वी के श्लोक से मालूम होती है जिसने द्वेष से इनके ग्रन्थ की निन्दा की थी—

"प्रमाणं सप्त लक्षाणि पैशाचं नीरसं वचः"
शोणितेनाक्षरन्यासो धिक् पिशाचकथामिमाम्॥

वृहत्कथा के अधिकांश भाग को गुणाढ्य ने स्वयं जला दिया था। जो कुछ उसके भाग शेष थे उसको सोमदेव और क्षेमेन्द्र ने कथा सरित्सागर और वृहत्कथामञ्जरी नामक ग्रन्थ में लिखा है।

गुणसिन्धु=ये बुन्देलखण्डी थे और सन् १८२७ ई० में उत्पन्न हुए थे। शृङ्गार रस की कविता बनाने में ये बड़े निपुण थे।

गुमानजी मिसिर=ये साँडी ज़ि० हरदोई के रहने वाले थे और सन् १७४० ई० में विद्यमान थे। ये दिल्ली के मोहम्मदशाह के दरबारी थे। परन्तु पीछे से ये अली अकबरखाँ मोहम्मदी के सहवर्ती हुए। अली अकबर स्वयं एक उत्तम श्रेणी का कवि था और "निधान", "दीनानाथ"

आदि कई एक कवियों को अपने पास रखता था। गुमानजी ने "कलानिधि" नाम का एक ग्रन्थ रचा। इस ग्रन्थ में श्रीहर्ष के "नैपध-चरित्र" के प्रत्येक श्लोक की प्रतिपद टीका लिखी है। इन्होंने नैपध के बारहवें सर्ग के पञ्चनली पर सलिल नाम की टीका की है। "पञ्चनली" नैपध के कठिन भागों में से है।

गुमानसिंह=कोटा राज्य के महाराव। सन् १७६६ ई० में गुमानसिंह अपने पिता के सिंहासन पर विराजे। गुमानसिंह एक तेजस्वी वीर राजा थे। जिस समय ये कोटे के सिंहासन पर विराजे उस समय ज़ालिमसिंह की प्रभुता बहुत चढ़ी बढ़ी थी। गुमानसिंह को उस प्रभुता से सन्देह हुआ, अतएव उन्होंने ज़ालिमसिंह की जागीर छीन कर अपने यहाँ से उनको निकाल दिया। ज़ालिमसिंह कुछ दिनों तक तो मेवाड़ के महाराणा के पास थे और उन्हें महाराणा ने "राजराणा" की उपाधि दी थी। पुनः मरहटों के लगातार आक्रमण जिस समय कोटे राज्य पर हो रहे थे, उस समय ज़ालिमसिंह मेवाड़ से कोटे आये। यद्यपि गुमानसिंह का क्रोध अब भी ठंडा नहीं हुआ था; तथापि समय पर कोटे राज्य की भलाई करते हुए, ज़ालिमसिंह को देख कर, गुमानसिंह को उनको उनका पहला अधिकार देना ही पड़ा। इस घटना के कुछ दिनों बाद महाराव गुमानसिंह बीमार पड़े और कुछ काल तक रोगयन्त्रणा सह कर, दश वर्ष के बालक उमेदसिंह और कोटा राज्य को ज़ालिमसिंह के ऊपर छोड़ कर, चल बसे।

(टाडस् राजस्थान)

गुमानी कवि=इनका नाम लोकरत्नपन्थ था। इनके पिता इनको प्यार से गुमानी कह कर पुकारते थे इसी कारण इनका यही नाम प्रसिद्ध हो गया। ये कुलीन महाराष्ट्र ब्राह्मण थे। इनका जन्म संवत् १८४७ में हुआ था। इनके पिता का नाम निधि और माता का नाम देवमञ्जरी था। संस्कृत हिन्दी उर्दू कुमाऊनी और नेपाली भाषा के ये कवि थे। इन्होंने लोकोक्तियों को संग्रह कर बहुत सुन्दर उपदेशात्मक श्लोक बनाये हैं, जो काव्यमाला में मुद्रित हैं। इस कवि का संवत् १९०३ में शरीरपात हुआ।

गुरदत्तसिंह=राजा गुरदत्तसिंह का छाप नाम भूपति कवि था और ये अमेठी के राजा थे। ये सन् १७२० ई० में विद्यमान थे।

गुरदत्त सुकुल=ये मकरन्दपुर ज़ि० कानपुर के रहने वाले थे और सन् १८०७ ई० में उत्पन्न हुए थे। इनके देवकीनन्दन और शिवनाथ दो भाई और थे, और ये तीनों भाई अच्छे कवि थे। इनका बनाया "पच्छीविलास" उत्तम ग्रन्थ है।

गुरदीन पाण्डे=इनका जन्म सन् १८३४ ई० में हुआ था। इनका बनाया "बाकमनोहर पिङ्गल" उत्तम ग्रन्थ है। इसमें षट्ऋतु और नखसिख वर्णन भी है।

गुरदीनराय बन्दीजन=ये पोतिया ज़ि० सीतापुर के रहने वाले थे और सन् १८८३ ई० में जीवित थे। ये ईशान नगर ज़ि० खीरी के राजा रणजीतसिंह के दरबारी थे।

गुरुगोविन्दसिंह=सिक्खों के दशम गुरु। इनके पिता का नाम तेगबहादुर था। ये सन् १६६२ ई० में उत्पन्न हुए थे। इन्होंने सिक्ख धर्म में बहुत से परिवर्तन किये और खालसा सम्प्रदाय स्थापित किया। तभी से इनके अनुगामी खालसा अर्थात् पवित्र कहे जाते हैं। सन् १६७५ ई० में ये गुरु बनाये गये और उसी समय इन्होंने सिक्खों के धर्म ग्रन्थ "ग्रन्थसाहब" का प्रणयन किया। सिक्ख लोग इस ग्रन्थ की पूजा करते हैं। समस्त सिक्ख जाति को एक जाति बनाने के लिये ही खालसा सम्प्रदाय की स्थापना हुई थी। धर्म की अन्य बातें नानक के उपदेशानुसार इस सम्प्रदाय में भी मानी जाती हैं। सन् १७०७ ई० में ये दक्षिण गोदावरी नदी के तीर पर एक गुप्त हत्यारे के हाथ से मारे गये। इनके समाधिस्थान पर सिक्ख मन्दिर बना हुआ है। ये बड़े निर्लोभ थे।

गुलाम नबी=बिलग्राम ज़ि० हरदोई के निवासी सय्यद गुलाम नबी का छाप नाम रसलीन था। इनका रचा "अङ्गदर्पण" पढ़ने योग्य काव्य है। इनका बनाया दूसरा ग्रन्थ "रसप्रबोध" है। इनके समय का पता नहीं।

गुलाबसिंह=इनका जन्म सन् १७८६ ई० में हुआ था और ये पञ्जाबी थे । इन्होंने वेदान्त सम्बन्धी कई एक ग्रन्थ रचे हैं । इनके बनाये प्रसिद्ध ग्रन्थ ये हैं—"रामायण", "चन्द्र-प्रबोध", "मोक्षपन्थ", "भँवरसागर" ।

गुलाल=इनका जन्म सन् १८१८ ई० में हुआ था । इन्होंने पशुचिकित्सा सम्बन्धी एक ग्रन्थ बनाया है । जिसका नाम है "शालिहोत्र" ।

गुहक=(१) एक अनार्य राजा । अयोध्या राज्य के समीप इस अनार्य राजा का राज्य था । शृङ्गवेर-पुर में इसकी राजधानी थी । महाराज दशरथ के साथ इस राजा की बड़ी गहरी मित्रता थी। रामचन्द्र भी इसका बड़ा आदर करते थे । वनवास के समय रामचन्द्र इसीकी सहायता से गङ्गा पार हुए थे । (रामायण)

(२) कलिङ्ग और महेन्द्र के एक राजा का नाम । बिहार और उड़ीसा के कुछ भागों को कलिङ्ग देश कहते हैं ।

गूदर=एक प्रकार के फकीर । इनके पास एक लप्पर रहता है उसमें ये सदा आग रखा करते हैं और जहाँ भीख मिलती है, वहाँ धूप जला दिया करते हैं । ये भीख नहीं माँगते किन्तु "अलख" कहा करते हैं जिसका अर्थ है अदृश्य ।

गृध्रिका=कश्यप की कन्या और तमरा की धी । ये गीधों की माता हैं ।

गोकर्ण=(१) काश्मीर के एक राजा का नाम । ये गोपादित्य के पुत्र थे । इन्होंने गोकर्णेश्वर शिव की स्थापना की थी । इन्होंने ५७ वर्ष ११ महीने राज्य कर परलोकयात्रा की थी ।

(२) यह स्थान बहुत प्राचीन और पवित्र है । राजा भगीरथ यहाँ तपस्या करते थे ।

गोकुल=एक कसबे का नाम । यहीं नन्द रहते थे। यहीं कृष्ण और बलराम भेजे गये थे जिससे कि वे कंस के कोप से बच जाँय ।

गोकुलनाथ वन्दीजन=ये बनारस के रहने वाले थे और सन् १८२० ई० में विद्यमान थे । ये बनारस के रघुनाथ कवि के पुत्र थे । चौरागाँव में (जो काशी की पंचक्रोशी के अन्तर्गत है) इनका घर था । इनकी बनायी चेतचन्द्रिका को जिसमें चेतसिंह के कुटुम्ब का इतिहास है, कवि लोग प्रामाणिक मानते हैं । इनका दूसरा ग्रन्थ "गोविन्दसुखदविहार" है । बनारस के राजा उदितनारायण की प्रेरणा से महाभारत का भाषान्तर भी इन्हींके तत्त्वावधान में हुआ था । इस भाषा महाभारत का नाम महाभारत-दर्पण है, और इसके क्रोड़पत्र का नाम हरिवंश-दर्पण है । ये कलकत्ते में सन् १८२९ ई० में छपे थे ।

गोकुलपरसाद=ये जाति के कायस्थ थे और बलरामपुर ज़िला गोंडा के निवासी थे । इन्होंने बलरामपुर के राजा दिग्विजयसिंह के स्मरणार्थ *दिग्विजयभूषण नामक एक ग्रन्थ बनाया ।* इन्होंने "अष्टयाम", "चित्रकलाधर", "दूती-दर्पण" तथा और भी कई ग्रन्थ रचे हैं । अपनी कविता में ये अपना नाम "व्रैज" रखते थे । सन् १८८३ ई० में यह विद्यमान थे ।

गोतम=(देखो अक्षपाद)

गोदावरी=एक नदी का नाम । पुराणों में इस नदी का उल्लेख है ।

गोधर=काश्मीर के एक राजा का नाम । ये अन्य वंश के थे तथा धार्मिक और उदारस्वभाव के थे । इन्होंने हस्तिशाला नामक अग्रहार, ब्राह्मणों को दान में दिये थे । इनके पुत्र का नाम सुवर्ण था । (राजतरङ्गिणी)

गोनर्द=(१) काश्मीर के एक राजा । ये काश्मीर के प्रथम ऐतिहासिक राजा थे । राजतरङ्गिणी में लिखा है कि ये प्रतापी राजा थे, गङ्गा से कैलास पर्यन्त इनके शासन में था । मगधराज जरासन्ध से इनकी मैत्री थी । अतएव गोनर्द ने भी बड़ी सेना ले कर जरासन्ध के साथ मथुरा पर आक्रमण किया था । गोनर्द की सेना यमुना के किनारे पड़ी थी । उनकी वीरता देख यादवों को स्तम्भित और हताश होना पड़ा था । यादवों की सेना भागना ही चाहती थी कि बलभद्र वहाँ जा पहुँचे । बलभद्र और गोनर्द का परस्पर युद्ध होने लगा । दोनों ओर के वीर उत्सुकता से अपने अपने स्वामियों के विजय की प्रत्याशा कर रहे थे । अन्त में काश्मीरराज गोनर्द मारे गये । (राजतरङ्गिणी)

(२) काश्मीर के एक दूसरे राजा। ये द्वितीय गोनर्द के नाम से प्रसिद्ध हैं। ये प्रथम गोनर्द के पौत्र थे। इनके पिता दामोदर, गान्धारराज के यहाँ स्वयम्बर में कृष्ण के हाथ मारे गये थे। इनके पिता के मरने पर इनकी माता ही काश्मीर का शासन करती थीं। गोनर्द के बड़े होने पर ये काश्मीर के राजा हुए। यद्यपि ये अल्प अवस्था के थे, तथापि इन्होंने किसी प्रकार की चञ्चलता प्रदर्शित नहीं की। कौरवों और पाण्डवों के युद्ध में भी ये योग देने के लिये गये थे। (राजतरङ्गिणी)

(३) ये तृतीय गोनर्द के नाम से प्रसिद्ध हैं। इनके पहले काश्मीर राज्य की अवस्था शोच्य हो गयी थी। कहते हैं बौद्धों के अत्याचार से देवता लोग अप्रसन्न हो गये और हिम बरसाने लगे। तृतीय गोनर्द ने सदाचार का प्रचार कर के देवताओं को प्रसन्न किया। राजतरङ्गिणी में लिखा है कि इन्होंने काश्मीर राज्य का पुनः स्थापन किया। जिस प्रकार रघुवंशियों के आदि-पुरुष रघु समझे जाते हैं, उसी प्रकार तृतीय गोनर्द, गोनर्दवंशियों के आदिपुरुष हैं। इन्होंने ३५ वर्ष तक काश्मीर का राज्य किया था। (राजतरङ्गिणी)

गोप=अहीरों की एक पुरानी जाति। ये लोग पहले गोकुल में रहते थे और पीछे से वृन्दावन गये। बौद्धों के पहले इस जाति का बड़ा प्रभाव था, यह एक बलवती जाति समझी जाती थी।

गोपराष्ट्र=गोपों के रहने के स्थान का नाम। दक्षिणी कोङ्कण देश को पहले गोपराष्ट्र कहते थे।

गोपा=(१) इनका जन्म सन् १५३३ ई० में हुआ था। इनके बनाये "रामभूषण" और "अलङ्कारचन्द्रिका" दो ग्रन्थ पाये जाते हैं।

(२) सिद्धार्थ बुद्धदेव की पत्नी का नाम। राजा शुद्धोदन ने अपने पुत्र सिद्धार्थ का संसार से विराग देख कर कपिलवस्तु के समीपस्थ कोलिराज्य के अधीश्वर की कन्या गोपा से उनका व्याह कर दिया। गोपा के गर्भ से एक पुत्र होने पर सिद्धार्थ ने घर छोड़ दिया। गोपा बुद्धिमती और विदुषी स्त्री थी। उन्होंने अपने पति के हृदय पर अपना अधिकार जमा लिया था। गोपा के गुणों पर मुग्ध हो कर सिद्धार्थ संसार में आसक्त हो रहे थे। गोपा परदा को बहुत बुरा समझती थी। वह कहा करती थी कि जिनको लज्जा नहीं है, जिनको आत्मसम्मान का विचार नहीं है, जो अपनी इन्द्रियों को अपने वश में नहीं रख सकतीं, उनके लिये हज़ार परदा करना भी व्यर्थ है और जिनका पति ही प्राण है, जिन्होंने इन्द्रियों को वश में रखना सीखा है, वे चाहे जहाँ जाँय इससे हानि ही क्या है। जो अपनी रक्षा करना जानती हैं वे सर्वदा सुरक्षिता हैं और जो आत्मरक्षा करना नहीं जानतीं, वे चाहे कितनी ही रक्षा में रखी जाँय तथापि अरक्षिता हैं। सिद्धार्थ ने देखा कि मैं धीरे धीरे संसार में लिप्त होता जा रहा हूँ इसको छोड़ना चाहिये, परन्तु किस प्रकार छोड़ें, यही सोचते थे, उसी समय गोपा के एक पुत्र हुआ। इस समय को अपने संसार छोड़ने का उपयुक्त समय जान कर वे धीरे से निकल पड़े। (बुद्धचरित)

गोपादित्य=काश्मीर के एक राजा। इनके पिता का नाम था अक्ष। पिता की मृत्यु के अनन्तर गोपादित्य काश्मीर के राजा हुए। ये वर्णाश्रम धर्म के बड़े प्रेमी थे। इन्होंने अपने राज्यकाल में सत्ययुग का आविर्भाव किया था। इन्होंने कितने ही अग्रहार बनवाये थे और लहसुन खाने वाले ब्राह्मणों को अपने राज्य से निकलवा दिया था। सदाचारी ब्राह्मणों को बुलवा कर अपने राज्य में रखा था। वे पशुहिंसा से घृणा करते थे इस कारण यज्ञ न करने पर भी लोग उन्हें आदर्श राजा कहते थे। इन्होंने ६० वर्ष ६ दिन राज्य किया था। (राजतरङ्गिणी)

गोपाल=ये जाति के कायस्थ थे और बान्धोगढ़ बघेलखण्ड के रहने वाले थे। ये सन् १८३० ई० में विद्यमान थे। महाराज विश्वनाथसिंह रीवाँ-धीश्वर के ये दीवान थे। इनकी बनायी "गोपालपचीसी" इनकी रचनाओं में मुख्य समझी जाती है।

गोपालचन्द्र साह=इनके दो उपनाम थे। गिरिधर बनारसी और गिरिधरदास। इनका जन्म सन् १८३२ ई० में हुआ था। ये भारतेन्दु

बाबू हरिश्चन्द्र के पिता थे। इनके दो ग्रन्थ अर्थात् "दशावतार" और "भारतीभूषण" प्रसिद्ध हैं।

गोपाल बन्दीजन=ये बुन्देलखण्डी थे और सन् १८४० ई० में विद्यमान थे। चरखारी नरेश के ये दरबारी थे।

गोपालराम=इन्होंने कुछ पद्य नरेन्द्रलाल साह और बादशाहों की प्रशंसा में बनाये थे। इनके समय का पता नहीं है।

गोपाललाल=इनका जन्म सन् १७६९ ई० में हुआ था। इनकी शान्ति रस सम्बन्धिनी कविता अच्छी बतलायी जाती है।

गोपालसिंह=हिन्दी के एक कवि का नाम। इन का वासस्थान व्रज में था। इन्होंने एक ग्रन्थ बनाया था, जिसका नाम है "तुलसीशब्दार्थ-प्रकाश" इसमें इन्होंने अष्टछाप का वर्णन किया है। ये जाति के क्षत्रिय थे। इनका धार्मिक मत वल्लभाचार्य का सम्प्रदाय था।

गोपाली=एक अप्सरा का नाम। यह गार्ग्य मुनि की स्त्री थी। इसीके गर्भ से कालयवन उत्पन्न हुआ था।

गोपीनाथ बन्दीजन=ये बनारसी थे और सन् १८२० ई० में विद्यमान थे। काशीनरेश उदित-नारायण की प्रेरणा से "महाभारत" दर्पण जब बनाया गया; तब उसके बनाने में अधिक भाग इन्हींका था। यहाँ तक कि इनके जीवन का अधिक समय इसी काम में व्यतीत हुआ। इस काम से जब इन्हें अवकाश मिलता था; तब ये छोटी छोटी फुटकल कविताएँ बनाया करते थे।

गोभानु=ये राजा वह्नि के पुत्र और तुर्वसु के पौत्र थे। कुछ पीढ़ियों के बाद इनका वंश लोप हो गया, क्योंकि ययाति ने शाप दिया था। (हरिवंश)

गोभिल=प्राचीन ऋषि। इन्होंने सामवेदियों का कर्मकाण्ड विषयक एक ग्रन्थ लिखा था जिसका नाम गोभिलसूत्र है। इन्होंने अपने गृह्यसूत्र में जिन विषयों का विवरण दिया है-वे ही विषय कात्यायनसंहिता में लिखे गये हैं।

गोमती=एक नदी का नाम। ऋग्वेद में भी इस नदी का नाम आया है। ऋग्वेद के एक सूक्त में इसकी रीति का वर्णन है। वे गोमती के तीर पर रहते थे। पर्वतों के समीप उन्होंने अपने रहने का स्थान बनवाया था। दिवोदास के राज्य-काल में क्षेमक नाम राक्षस के उपद्रव से काशी जनशून्य हो गयी। वहाँ के वासी काशी छोड़ कर अन्यत्र जा कर रहने लगे। यहाँ तक कि काशिराज दिवोदास ने भी काशी छोड़ दी। गोमती नदी के तीर पर उन्होंने अपनी राज-धानी बनवायी थी। अन्यान्य पुराणों में भी प्रसङ्गानुसार गोमती का नाम आया है।

गोमतीपुत्र=एक आन्ध्र देश के राजा का नाम। जो शिवस्वाती का पुत्र था और जिसने २१ वर्ष तक राज्य किया था।

गोमन्त=एक पर्वत का नाम। यह दक्षिण देश में है। जिस प्रदेश का नाम आज कल गोआ कहा जाता है, उसे पहले कोङ्कण कहते थे। यह पर्वत भी उसी प्रदेश में है।

गोरक्षनाथ अथवा गोरखनाथ=विख्यात सिद्ध-पुरुष और धर्ममत प्रवर्तक। १५वीं शताब्दी में उत्तर पश्चिम प्रदेश में इन साधु का प्रादुर्भाव हुआ था। ये कबीर के समकालीन थे। इनके कितने ही शिष्य थे। इनके शिष्य इन्हें गुरु गोरख-नाथ कहते थे। ये स्वयं योगी थे, और इनका सिद्धान्त था कि संसार में योगी ही सब से श्रेष्ठ हैं। सभी जाति के मनुष्य इनके मत में दीक्षित हो सकते हैं। इनके अनुयायियों को कान फड़वाना पड़ता है। अतएव उन्हें बहुत लोग "कनफटा जोगी" भी कहते हैं। इनके चेलों ने समय समय पर राजाओं की सेनाओं में भर्ती हो कर भयानक युद्ध भी किये हैं। काशी के भैरवनाथ के मन्दिर में ये ही पुरोहित हैं। गोरखपुर के गोरक्षनाथ महादेव का मन्दिर इस सम्प्रदाय का प्रधान मठ माना जाता है।

गोलोक=यह सब लोकों से ऊपर है, यहीं कृष्ण भगवान् रहते हैं। यह लोक अक्षय्य लोक है अन्य लोकों के नष्ट होने पर भी यह लोक नष्ट नहीं होता।

गोवर्द्धन=एक पर्वत और तीर्थ। यह वृन्दावन के समीप है। कृष्ण ने इसे उठा कर इन्द्र के कोप से व्रजवासियों की रक्षा की थी।

गोवर्द्धनाचार्य=ये कवि गीतगोविन्दकार जयदेव तथा उमापतिधर आदि के समकालीन थे। गीतगोविन्द में जयदेव ने इनका उल्लेख कर के इनकी बड़ाई की है। उन्होंने लिखा है कि शृङ्गार रस की कविता लिखने में ये बड़े निपुण थे। इनका बनाया "आर्यासप्तशती" नामक एक ग्रन्थ है। यद्यपि नाम से तो विदित होता है कि इस ग्रन्थ में ७०० श्लोक होंगे, परन्तु काव्यसंग्रह में जो ग्रन्थ छपा है उसमें ७३१ श्लोक हैं। गोवर्द्धनाचार्य ने निज रचित ग्रन्थ में अपने पिता का नाम नीलाम्बर लिखा है। इनके ग्रन्थ में वाल्मीकि, व्यास, बृहत्कथा के रचयिता गुणाढ्य, कालिदास, भवभूति, बाण आदि के नामोल्लेख मिलते हैं और ये सब कवि उमापतिधर से प्राचीन भी हैं। अतएव उमापतिधर के सामयिक होने से इनका समय १२वीं शताब्दी का आरम्भ और मध्यभाग सिद्ध होता है।

राढ देश में मल्लभूमि की राजधानी विष्णुपुर है। वहाँ के राजा के आश्रित मुरारि कवि शाके ११०० अर्थात् सन् ११७८ ई० के पूर्व विद्यमान थे। उन्होंने अपने को गोवर्द्धन भट्ट का पुत्र बताया है। कौन जाने ये गोवर्द्धन आर्यासप्तशती के रचयिता ही हों। गोवर्द्धनाचार्य ने अपने शिष्यों में से एक का नाम उदयन लिखा है। ये प्रसिद्ध नैयायिक उदयनाचार्य ही हैं या और कोई सो स्पष्ट नहीं जाना जाता।

गोविन्द ठकुर=चन्द्रदत्त मैथिलकृत संस्कृत भाषान्तर वाली भक्तमाला में गोविन्द ठकुर को "काव्यप्रदीप" का रचयिता बताया है और यह भी लिखा है कि गोविन्द ठकुर मम्मट भट्ट से भेंट करने गये और उनको दाढ़ी मूँछ बनाये तथा जूता पहने देख उन्हें आश्चर्य हुआ कि ये मुसल्मान के वेश में क्यों रहते हैं? यदि भक्तमाला की बातें सत्य हों तो मम्मट भट्ट के समकालीन गोविन्द ठकुर भी १२वीं सदी के अन्तिम वा १३वीं सदी के प्रारम्भ काल में माने जा सकते हैं। "काव्यप्रकाश" के टीकाकार कमलाकर भट्ट (जिसने "शूद्रकमलाकर" नामक ग्रन्थ रचा है) अपने ग्रन्थ में "काव्यप्रदीप" का नाम लिखते हैं। इस कारण गोविन्द ठकुर उसके पूर्व ही किसी समय में रहे होंगे—ऐसा निश्चय होता है। गोविन्द ठकुर के एक चचेरे भाई की पाँचवीं पीढ़ी में नरसिंह ठकुर हुए, जिन्होंने "काव्यप्रकाश" पर टीका लिखी है और जिसका निर्णीत समय १६६८ ई० है। प्रत्येक पीढ़ी को लगभग ३० वर्ष का समय दे कर यदि लेखा लगायें, तो गोविन्द ठकुर का समय किसी प्रकार १६वीं सदी के प्रारम्भ वा १५वीं सदी के अन्तिम भाग से पूर्व नहीं पड़ सकता। "काव्यमाला" में मुद्रित "काव्यप्रदीप" की भूमिका में इनका वंशवृक्ष दिया है, और इन्हें मिथिला का निवासी भी बताया है; परन्तु उनका निश्चित समय नहीं लिखा केवल इतना ही अनुमान कर के छोड़ दिया है कि गोविन्द ठकुर १६ वीं शताब्दी के अन्तिम भाग से पीछे के कभी नहीं हो सकते।

गोविन्ददास=(१) हिन्दी के एक कवि। इनका वासस्थान व्रज में था। सन् १५६७ ई० में ये वर्त्तमान थे। वल्लभाचार्य के मतानुयायी अष्टछाप के कवियों में इनकी भी गणना है। वल्लभाचार्य जी के पुत्र और उनके सम्प्रदाय के प्रवर्तक विट्ठलनाथ जी के ये शिष्य थे।

(२) गोविन्ददास मारवाड़ राज्य के एक मन्त्री का नाम था। ये राजा गजसिंह के मन्त्री थे शाहजादे खुर्रम ने जब गजसिंह से अपने कार्य की सिद्धि के लिये सहायता माँगी तब गजसिंह ने उसकी प्रार्थना अस्वीकार की, इससे चिढ़ कर खुर्रम इसका प्रयत्न करने लगा, जिससे गजसिंह मारे जाँय, उसने इस दुष्कृत्य के करने के लिये गोविन्ददास से सहायता माँगी। परन्तु उसे निराश होना पड़ा। अतएव खुर्रम ने हत्यारे किशनसिंह के द्वारा गोविन्ददास को मरवा डाला। ये भाटी सरदार थे और जोधपुर के सामन्त सरदारों में से थे।

(टाडस् राजस्थान)

गोविन्दराम=हाडावती ग्रन्थ के रचयिता गोविन्द-

राम राजपूताने के रहने वाले थे । हाड़ावती में हाड़ावंश का इतिहास है ।

गोहिल=गिलहोट वंश के आदिपुरुष । ये सूर्यवंशी राजा शिलादित्य के पुत्र थे । इनका जन्म-वृत्तान्त अतिशय करुणाजनक है । शिलादित्य वल्लभीपुर के राजा थे । जब वल्लभीपुर का पतन हुआ शिलादित्य मारे गये, उस समय शिलादित्य की अन्यान्य रानियाँ उनके साथ सती हो गयीं परन्तु पुष्कलावती नामक रानी जीती रहीं, क्योंकि वह गर्भवती थी । पुष्कलावती परमार वंश की राजकन्या थी । इसने गर्भरक्षा के लिये भाग कर अपने प्राण बचाये, मालिया नामक एक पर्वत की गुफा में जा कर यह रहने लगी । यथा समय उसके एक पुत्र उत्पन्न हुआ । उस पुत्र को वीरनगरनिवासिनी कमलावती नाम की ब्राह्मणी को सौंप कर रानी पुष्कलावती ने अपने पति का अनुगमन किया । गुहा में जन्म हुआ था, इस कारण उस लड़के का नाम गोहिल पड़ा । यह भीलों का राजा हुआ । (टाडस् राजस्थान)

गौड़ देश=प्राचीन समय में कोशल प्रदेश जिस की राजधानी अयोध्या थी—दो भागों में बटा था । उनके उत्तरकोशल और दक्षिणकोशल नाम थे । पुनः उत्तरकोशल में भी दो विभाग थे । एक का नाम था गौड़ और दूसरे का नाम था कोशल । रापती नदी के दक्षिण तीरस्थ प्रदेश को गौड़ देश कहते हैं । इसी गौड़ देश में श्रावस्ती नगरी विद्यमान है । श्रावस्ती नगरी का ध्वंसावशेष गोंडा नगर है ।

वङ्ग देश के प्रान्त विशेष का भी नाम गौड़ देश था ।

गौडपादाचार्य=प्रसिद्ध शङ्कराचार्य के गुरु । इन्होंने अद्वैत सिद्धान्त प्रतिपादक एक ग्रन्थ लिखा है, "माण्डूक्योपनिषत्कारिका" उस ग्रन्थ का नाम है । इनकी कारिका आर्यावृत्त में हैं और वे मनोहर हैं ।

गौतम=बुद्धदेव का दूसरा नाम । कपिलवस्तु के राजा शुद्धोदन के ये पुत्र थे । इनका पहला नाम सिद्धार्थ था । ये अपनी माता के ४१ वर्ष की अवस्था में उत्पन्न हुए थे और इनके जन्म के सात दिन के बाद इनकी माता मायादेवी मर चुकी थी । मायादेवी के मर जाने पर राजा शुद्धोदन ने पुनः विवाह किया था । इस स्त्री का नाम था गौतमी । सिद्धार्थ के पोसने, पालने का भार गौतमी पर रखा गया था । गौतमी ने इनका पालन किया था, इसी कारण इनको लोग गौतम बुद्ध कहते हैं । इनकी स्त्री का नाम था गोपा । (देखो गोपा) गौतम बुद्ध ने ४५ वर्ष धर्म प्रचार किया था । अस्सी वर्ष की अवस्था में सन् ५१२ ई० के पूर्व कुशीनर नगर में उनका शरीरपात हुआ था । पेट की किसी बीमारी से इस बड़े धर्मप्रचारक और असीम विरागी को संसार से नाता तोड़ना पड़ा । इन्होंने जो धर्ममत चलाया था इनकी जीवित अवस्था में उसका विज्ञान लिपि-बद्ध नहीं हुआ था । इनके शिष्य ही बुद्धदेव के उपदेशों को स्मरण रखते थे । तदनन्तर वे उपदेश लिपि-बद्ध किये गये । बुद्ध के समय में भारत में अनेक अभिनव विचारों का सूत्रपात हो गया था । शिक्षा का द्वार एक प्रकार से उन्मुक्त हो गया था । बौद्ध धर्म के संन्यासी हरिद्रा के रंगे वस्त्र पहनते हैं । इस धर्म की चार शाखाएँ हैं ।

ग्वाल=ये कवि मथुरा के रहने वाले थे और सन् १८१५ ई० में विद्यमान थे । इनमें साहित्य सम्बन्धी योग्यता उच्च श्रेणी की थी । इनके बनाये ग्रन्थ ये हैं । (१) "साहित्यभूषण", (२) "साहित्यदर्पण", (३) "भक्तिभाव", (४) "शृङ्गारदोहा", (५) "शृङ्गारकवित्त", (६) "नखसिख", (७) "गोपीपचीसी", (८) "जमुनालहरी" । ये देवीदत्त और पद्माकर के प्रतिद्वन्द्वी थे ।

घ

घटकर्पर=महाराज विक्रमादित्य की सभा के नवरत्नों में एक घटकर्पर भी थे । इन्होंने २२ श्लोक का एक काव्य बनाया है, जिसमें यमकों की विशेषता है । सुनते हैं कि जब इन्होंने प्रतिज्ञा की कि यदि कोई दूसरा कवि यमक में मुझे जीत ले, तो मैं उसके यहाँ पानी भरूँ । तब कविशिरोमणि कालिदास ने "नलोदय" काव्य बना कर

यमक में इन्हें परास्त किया । "काव्यसंग्रह" में "घटकर्पर" काव्य और "नलोदय" दोनों छपे हैं । इन ग्रन्थों को देखने से इतना तो अवश्य मालूम पड़ता है कि घटकर्पर कालिदास की तरह कठिन और गूढ़ कूट से भरा यमक लिखने नहीं बैठे थे । इनका बनाया "नीति-सार" नामक एक और भी ग्रन्थ है, जिसके देखने से इनकी कवित्व शक्ति भली भाँति प्रकट होती है । विक्रमादित्य के सभासद होने से इनका समय भी खृष्टीय छठवीं सदी निश्चित होता है ।

बहुत लोग कहते हैं कि "राक्षस" काव्य भी इन्हींका बनाया है । "राक्षस" काव्य में २२ श्लोक हैं । इसमें अधिक कूट और यमक हैं । इस कारण इसका नाम राक्षस काव्य पड़ा है ।

घटोत्कच=द्वितीय पाण्डव भीम के पुत्र का नाम । हिडम्बा राक्षसी के गर्भ से यह जन्मा था । महाभारत के युद्ध में यह पाण्डवों की ओर से लड़ता था । रात्रि को इसने कर्ण के साथ बड़ी भीषण लड़ाई की थी । बहुत कौरव योद्धाओं का इसने वध किया था । द्रोण, कर्ण, अश्वत्थामा आदि वीर, कौरवसेना का नाश देख कर, चिन्तित हो गये थे । अन्त में कर्ण ने इन्द्र से जो शक्ति पा कर अर्जुन का वध करने के लिये रख छोड़ी थी, उसीसे कौरव सेना की रक्षा के लिये घटोत्कच को मारा । यह देख श्रीकृष्ण बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने कहा—अब कर्ण को बिना परिश्रम ही अर्जुन मार सकते हैं । अबसे हम लोग कर्ण को मरा हुआ ही समझते हैं । (महाभारत)

घण्टाकर्ण=(१) शिव के एक अनुचर का नाम । यह मङ्गल का पुत्र था और मेधा के गर्भ से उत्पन्न हुआ था । इसका दूसरा नाम घण्टेश्वर था । यह शाप द्वारा मनुष्य के रूप में उज्जयिनी नगरी में उत्पन्न हुआ था । उसकी इच्छा थी कि विक्रमादित्य की सभा के नवरत्न पण्डितों को परास्त करूँ । इसके लिये वह शिव की आराधना करने लगा । प्रसन्न हो कर महादेव वर देने के लिये उपस्थित हुए । उसकी प्रार्थना सुन कर महादेव बोले कालिदास को छोड़ और सबको तुम परास्त कर सकोगे । घण्टाकर्ण ने कालिदास को भी पराजय करने की इच्छा प्रकट की; परन्तु शिव ने वैसा वर नहीं दिया । इससे अप्रसन्न हो कर घण्टाकर्ण ने प्रतिज्ञा की कि अबसे शिव का नाम न लूँगा, परन्तु वह तो भी शिव का भक्त था । वह उज्जयिनी के पण्डितों को जीतने के लिये प्रस्थित हुआ । उज्जयिनी के पण्डितों को घण्टाकर्ण की सब बातें मालूम हो चुकी थीं । शास्त्रार्थ में कालिदास के अतिरिक्त सब पण्डित परास्त हो गये । अन्त में कालिदास के साथ शास्त्रार्थ प्रारम्भ हुआ । कालिदास ने कहा यदि बड़े छन्दों में घण्टाकर्ण शिव की स्तुति बना दे, तो मैं अपना पराजय मान लूँ । कालिदास ने सोचा था कि जो मनुष्य शिव का नाम नहीं उच्चारण करता वह शिव की स्तुति क्यों बनाने लगा, अतएव वह स्वयं परास्त हो जायगा । परन्तु घण्टाकर्ण अचल शिवभक्त था । वह विशेष कारण से शिव का नाम नहीं लेता था । घण्टाकर्ण ने, शिवनाम के बिना ही बड़े छन्दों में शिव की स्तुति बना कर विक्रमादित्य और उनके सभापण्डितों को विस्मित कर दिया । घण्टाकर्ण शाप से मुक्त हो गया । उसकी अचला भक्ति से शिव जी प्रसन्न हुए और उन्होंने उसे अपना अनुचर बना लिया ।

(२) हरिवंश में भी एक घण्टाकर्ण का उल्लेख हुआ है । यह विष्णु का द्वेषी था । विष्णु का नाम किसी प्रकार सुनायी न पड़े इस लिये यह अपने कानों में घण्टे लटकाये रखता था । इसी कारण इसका नाम घण्टाकर्ण हुआ था । श्रीकृष्ण द्वारका की रक्षा का भार यदुवंशियों पर छोड़ कर शिव से पुत्रप्राप्ति का वर पाने के लिये बदरिकाश्रम जा रहे थे उस समय घण्टाकर्ण नामक पिशाच उनका साथी हो गया । घण्टाकर्ण ने महादेव से मुक्ति की प्रार्थना की । महादेव ने उसे बदरिकाश्रम जा कर नारायण के आश्रम में विष्णु की आराधना करने के लिये कहा । घण्टाकर्ण का वहीं विष्णु से साक्षात्कार हो गया, उसने श्रीकृष्ण की स्तुति की । उससे प्रसन्न हो कर भगवान् कृष्ण ने उसे मुक्ति दी । (हरिवंश)

घनश्याम सुकुल=ये असनी ज़ि० फ़तहपुर के रहने वाले थे और इनका जन्म सन् १५७८ ई० में हुआ था। ये रीवाँ नरेश के दरबारी थे।

घाघ=ये कनौज के रहने वाले थे और सन् १६६६ ई० में उत्पन्न हुए थे। इनकी कहावतें उत्तरी भारत के किसानों के मुखों में विराजती हैं और ग्रियर सन साहब ने "बिहार पेजयट लाइफ" नामक पुस्तक में इनकी कहावतें संगृहीत भी की हैं। इन्हींके ढङ्ग के भड्डर और घाक भी थे, परन्तु वे इनके समान इतने प्रसिद्ध नहीं थे।

घृतपृष्ठ=राजा प्रियव्रत के दश पुत्रों में से एक पुत्र का नाम। राजा प्रियव्रत ने अपने राज्य को सात भागों में बाँट कर अपने सात लड़कों को एक एक भाग दे दिया था। इनके तीन पुत्र संन्यासी हो गये थे। अतएव सात ही पुत्रों में इन्हें अपना राज्य बाँटना पड़ा। घृतपृष्ठ को क्रौञ्च द्वीप का राज्य मिला था।

(भागवत)

घृतस्मद्=सुहोत्र के पुत्र और शौनक के पिता। जो अग्निवंशियों के आदिपुरुष थे।

घृताची=स्वर्ग की एक अप्सरा। इसको देखने से वेदव्यास के मन में काम उत्पन्न हुआ था। जिससे शुकदेव उत्पन्न हुए। महर्षि च्यवन के पुत्र प्रमिति ने इसके गर्भ से रुरु नामक पुत्र उत्पन्न किया था। (महाभारत)

महोदय (कनौज) के राजा कुशनाभ ने इसके गर्भ से १ सौ कन्या उत्पन्न की थीं। (देखो कनौज)

गङ्गाद्वार के पास भरद्वाज का आश्रम था। एक समय भरद्वाज गङ्गा में घृताची को स्नान करते देख कर उस पर मोहित हो गये। वे यहाँ तक मोहित हुए कि उनका वीर्य-पात हो गया। मुनि ने वीर्य को द्रोणि में (एक प्रकार के पात्र में) रख दिया। उसीसे प्रसिद्ध वीराचार्य द्रोण का जन्म हुआ था।

घृतेय=एक राजकुमार का नाम। ये रुद्राश्व के पुत्र थे।

घोषवसु=एक भविष्य राजा। ये शुङ्गवंशी पुलिन्दक के पुत्र होंगे।

च

चकोरसातकर्णि=एक भविष्य राजा का नाम। ये कण्वंश में सुन्दर सातकर्णि के पुत्र होंगे।

चक्रतीर्थ=तीर्थविशेष। कुरुक्षेत्र के जिस तीर्थ को दधीचितीर्थ कहते हैं, उसीका नाम चक्रतीर्थ है। भीष्मपितामह को मारने के लिये इसी स्थान पर भगवान् कृष्णचन्द्र ने चक्र धारण किया था।

चक्रपाणिदत्त=एक वैद्य का नाम। इन्होंने वैद्यक का एक ग्रन्थ बनाया है। उस ग्रन्थ का नाम है चक्रदत्त। इनका जन्म ११वीं सदी के प्रारम्भ में हुआ था। इनके पिता नारायण कविराज नरपालदेव के रसोईया के दरोगा थे। इन्होंने अपने ग्रन्थ में अनेक नयी बातों का समावेश करके भारत का कल्याण किया है।

चक्राङ्कापुरी=एक प्राचीन राज्य का नाम। रामायण में लिखा है कि रामचन्द्र जी के यज्ञ के समय जो यज्ञ का घोड़ा छोड़ा गया था, वह घूमता फिरता चक्राङ्कापुरी में गया। उस समय इस पुरी के राजा थे सुबाहु। सुबाहु के पुत्र दमन ने यज्ञाश्व को अपने यहाँ बाँध रखा। शत्रुघ्न और दमन दोनों में युद्ध होने लगा। शत्रुघ्न की सेना कट कट कर गिरने लगी, अन्त में भरतपुत्र पुष्कर ने दमन को परास्त किया। दमन के परास्त होने पर राजा सुबाहु और उनके छोटे भाई चित्राङ्ग लड़ने लगे। कहते हैं कि रामचन्द्र जी ने एक दिन स्वप्न में सुबाहु को दर्शन दिया। इससे उसके हृदय में भक्ति उत्पन्न हुई और उसने युद्ध करना छोड़ दिया।

चक्रवर्मा=काश्मीर के एक राजा का नाम। इनके पिता का नाम पङ्गु था। उस समय काश्मीर में तन्त्री और पदातियों का प्राधान्य था। वे जिसको चाहते उसीको राजा बना देते और जिसको जब राज्य से उतारना चाहते, उसी समय उसको राज्य से उतार देते। राजा पङ्गु के परलोक गमन करने पर शिशु चक्रवर्मा का काश्मीर के सिंहासन पर अभिषेक हुआ। शिशु चक्रवर्मा का पालन कुछ दिनों तक उसकी माता बप्पटदेवी के अधीन और पीछे उसकी

देख रेख, उसकी पितामही करती थी । नवें वर्ष में मन्त्रियों ने चक्रवर्मा को राज्यच्युत कर दिया । मन्त्रियों ने चक्रवर्मा को राज्यच्युत कर के शङ्करवर्मा को राजा बना दिया । परन्तु बिचारा शङ्करवर्मा मन्त्रियों को मुँह माँगा धन नहीं दे सकता था, इस कारण इसको भी राजच्युत होना पड़ा । शङ्करवर्मा के बाद मन्त्रियों ने पार्थ को राजा बनाया । पुनः किसी कारण वश स्वार्थी मन्त्री पार्थ से भी अप्रसन्न होगये । चक्रवर्मा उचित अवसर जान कर मन्त्रियों से मिला और उनको अधिक धन देना स्वीकार किया । पुनः चक्रवर्मा राजा तो हो गये, परन्तु उन्होंने अपने शत्रुओं को राज्य के बड़े बड़े कामों पर भर्ती किया । परन्तु मन्त्रियों को उचित मूल्य न देने के कारण वह स्वयं राज्य छोड़ कर रात को भाग गया ।

चक्रवर्मा राज्यभ्रष्ट हो कर डामरों के राजा से मिला और उससे सहायता माँगी । डामराधिपति ने कुछ शर्त करा कर सहायता देना स्वीकार किया । डामर और मन्त्रियों में युद्ध हुआ मन्त्री मारे गये । चक्रवर्मा राजा हुए । राजा होने पर वह महाअभिमानी हो गया, अपनी प्रशंसा चाहने लगा । अतएव धूर्त गणिका आदि इसको ठगने लगे । डामरों पर भी इसने अत्याचार किये थे, इसी कारण वह मारा गया । (राजतरङ्गिणी)

चण्ड=(१) प्रसिद्ध शुम्भासुर का प्रधान सेनापति । इसके छोटे भाई का नाम मुण्ड था । चण्ड और मुण्ड दोनों ही भगवती के हाथों मारे गये थे । चण्ड के मारने से भगवती का नाम चण्डी वा चण्डिका पड़ा था ।

(२) मेवाड़ के राणा लाक्षा का पुत्र । ये राणा चण्ड के नाम से राजपूताने में प्रसिद्ध हैं। इनका स्वार्थ त्याग राजपूताने के इतिहास में प्रसिद्ध है । मारवाड़ के राजा रणमल्ल ने अपनी कन्या का चण्ड से विवाह करने की इच्छा से मेवाड़ के राणा के पास अपने पुरोहित द्वारा टीका भेजा था । राणा ने विवाह स्वीकार किया । उस समय चण्ड राजसभा में उपस्थित नहीं थे । राणा लाक्षा ने चण्ड को राजसभा में बुलवाया और उनके आने तक मारवाड़ के पुरोहित को ठहरने के लिये कहा । राणा लाक्षा का हँसना स्वभाव था । इसी कारण उन्होंने पुरोहित जी से कहा इस पकी दाढ़ी वाले बूढ़े के लिये तो आप लोग टीका नहीं ला सकते ? इससे सभास्थ सभी लोग हँस पड़े । सभा के लोग यही देख रहे थे कि चण्ड आवें और दूत विदा किया जाय । थोड़ी देर के बाद चण्ड भी आ गये । सभा में आ कर उन्होंने पिता की बातें सुन लीं जो पिता ने हँसी में कही थीं। वह सोचने लगे, हँसी ही में सही, परन्तु पिता ने जिसे मुहूर्तमात्र के लिये भी अपनी समझी अब उसके साथ मैं विवाह कैसे कर सकता हूँ । यह सोच कर, चण्ड ने विवाह करने में अपनी असम्मति बतायी। पिता ने बहुत समझाया धमकाया परन्तु चण्ड अपनी प्रतिज्ञा से नहीं टले । उन्होंने किसी प्रकार भी विवाह करना स्वीकार नहीं किया । राणा लाक्षा मारवाड़राज का अपमान समझ कर बड़े दुःखी हुए । राणा, चण्ड पर बड़े विरक्त हुए और रणमल्ल का अपमान न हो, इस कारण उन्होंने स्वयं उस कन्या से विवाह किया । भवितव्यता को कौन मिटा सकता है ? बारह वर्ष की कन्या पचास वर्ष के वृद्ध को ब्याही गयी ! उसके गर्भ से मुकुल जी नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ । मुकुल की अवस्था पाँच वर्ष की है, राणा लाक्षा युद्ध करने के लिये गया जाने वाले हैं । युद्ध में जाने के समय राणा ने चण्ड से कहा यदि मैं युद्ध से न लौटूँ, तो मुकुल की जीविका का क्या प्रबन्ध होगा । चण्ड ने उत्तर दिया " चित्तौर का राज्य " इस उत्तर में पिता को किसी प्रकार का सन्देह न रहे, इस कारण चण्ड ने पिता के जाने के पहले ही मुकुल का राज्याभिषेक करना स्थिर किया । चण्ड का दृढ़ सङ्कल्प और इतना बड़ा त्याग देख लोगों की बुद्धि चकरा गयी । चण्ड ने मुकुल का अभिषेक कर के उनके सामने प्रतिज्ञा की कि मैं तुम्हारे विश्वासी भृत्य के समान रहूँगा । इस स्वार्थ त्याग के बदले चण्ड पहली श्रेणी के सरदार बनाये गये और यह निश्चित हुआ कि आज से यदि किसी को भूमिदान दिया जाय तो

महाराणा के हस्ताक्षर के ऊपर चण्ड के भाले का चिह्न रहेगा । चण्ड ने मेवाड़ की उन्नति के लिये तन और मन से परिश्रम किया था । इसी प्रकार कुछ दिन बीत गये । राजमाता को चण्ड की क्षमता देख कर ईर्ष्या हुई । विमाता का भाव समझने में चण्ड को देर न लगी । उन्होंने विमाता की बातें समझ कर मेवाड़ का भार उनको दे दिया और वे स्वयं चित्तौर छोड़ कर माँडू राज्य में चले गये । वहाँ के राजा इनके स्वार्थत्याग की बात पहले ही से जानते थे, उन्होंने चण्ड को एक बड़ी जागीर दे कर अपने राज्य में रखा । जाने के समय चण्ड ने अपनी सौतेली माता से कहा था—देखना, शिशोदिया कुल का गौरव नष्ट न होने पावे । जोधपुर के राठौर, मेवाड़ राज्य में घुसने लगे । वे स्वार्थी तथा लोभी थे । शीघ्र ही मेवाड़राज्य के शासन में गड़बड़ी होने लगी । चण्ड के जाने पर मुकुल के नाना रणमल्ल चण्ड का काम करने लगे । रणमल्ल ने धीरे धीरे राज का कारोबार अपने हाथ में ले लिया । नर-पिशाच रणमल्ल अपने दौहित्र को मार कर, चित्तौर का सिंहासन अपनाने के लिये षड्यन्त्र करने लगा । एक बुढ़िया धाय ने मुकुल की माता से ये बातें कहीं । उस समय राजमाता के कान खड़े हुए । उन्होंने संसार में चण्ड के अतिरिक्त और किसी को अपना रक्षक नहीं समझा । चण्ड के पास राजमाता का दूत गया । चण्ड के कौशल और साहस से रणमल्ल तथा उसके साथी मारे गये । रणमल्ल के पुत्र जोधा जी ने भाग कर आत्मरक्षा की । चण्ड के दो पुत्र थे, परन्तु दोनों रणमल्ल के पुत्र जोधा जी के साथ युद्ध करते हुए मारे गये ।

(टाडस् राजस्थान)

चण्डी=दुर्गा का दूसरा नाम । चण्ड दैत्य का वध करने के कारण दुर्गा का नाम चण्डी हुआ था ।

चण्डीदत्त=इनका जन्म सन् १८४१ ई० में हुआ था और ये अवधेश महाराज मानसिंह जी के दरबारी थे ।

चण्डीदास=विख्यात पदावलीप्रणेता । सन् १४१७ ई० में ये उत्पन्न हुए थे । इनके पिता का नाम दुर्गादास था । वे किसी मन्दिर के पुजारी थे । उनकी मृत्यु होने पर चण्डीदास अपने पिता के काम पर नियुक्त किये गये । उसी मन्दिर का किसी सेविका के साथ इनका प्रणय था, इसी कारण इन्होंने अपना आजीवन विवाह नहीं किया । इनकी प्रणयिनी, जाति की धोबिन थी । इससे वहाँ के लोगों ने इन्हें समाजच्युत कर दिया । पुनः गाँव के एक भले आदमी ने इन्हें धार्मिक समझ कर अपने परिश्रम से समाज में इनका प्रवेश करा दिया । इनके वासस्थान के विषय में बड़ा गड़बड़ाध्याय है । बङ्गाली कहते हैं कि चण्डीदास बङ्गाली थे, और विहारी कहते हैं कि ये मैथिल थे । यद्यपि इनकी रचना की भाषा मैथिली भाषा है, तथापि बङ्गाली कहते हैं कि पुरानी बङ्गला वैसी ही थी । जो हो, परन्तु बिहारियों का कहना प्रामाणिक है इसमें सन्देह नहीं । यद्यपि चण्डीदास को शिक्षा नियमितरूप से नहीं दी गई थी, तथापि इनकी रचनाशैली मनोहर है । सन् १४७७ ई० में इनका शरीरपात हुआ था ।

चतुर्भुजदास=ये व्रजवासी थे और सन् १५५० ई० में वर्त्तमान थे । इनकी गणना अष्टछाप के कवियों में है और ये गोकुल के बिट्ठलनाथ के शिष्य थे ।

चतुरविहारी=ये व्रजवासी थे और सन् १५४८ ई० में उत्पन्न हुए थे ।

चतुर्भुज मिश्र=प्राचीन संस्कृत के एक पण्डित । इन्होंने महाभारत की एक टीका लिखी थी । परन्तु यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि इनकी टीका इस समय उपलब्ध होती है कि नहीं ?

चन्दनराय=ये नाहिल या माहिल (पुँवाया) ज़ि० शाहजहाँपुर के रहने वाले थे । ये सन् १७७३ ई० में विद्यमान थे और गौड़ा के राजा के दरबारी थे । इन्हीं राजा के नाम पर चन्दन-राय ने "केसरीप्रकाश" नामक ग्रन्थ बनाया था । इन्होंने बहुतसे हिन्दी के ग्रन्थ बनाये हैं, जिनमें प्रसिद्ध ये हैं:—१ "शृङ्गारसार", २ "कल्लोलतरङ्गिणी", ३ "काव्याभरण", ४ "चन्दनसतसई", ५ "पथिकबोध" ।

चन्दकुमारी=पंजाबकेसरी रणजीतसिंह की पुत्र-वधू और खड्गसिंह की स्त्री। रणजीतसिंह ने मरने के समय मन्त्री ध्यानसिंह के हाथ अपने पुत्र को सौंपा था। परन्तु विश्वासघाती मन्त्री ने राज्य लोभ से प्रभु की आज्ञा की अवहेला कर के खड्गसिंह और उनके पुत्र निहालसिंह को मरवा डाला। रानी चन्दकुमारी ने इस अपराध के कारण ध्यानसिंह को निकाल दिया और उत्तमसिंह को प्रधान मन्त्री बनाया। मन्त्री ध्यानसिंह ने सेनापति गुलाबसिंह की सहायता से चन्दकुमारी को राज्य से पृथक् कर दिया और रणजीतसिंह की एक रखेलिन (उपपत्नी) के पुत्र शेरसिंह को राजा बना दिया। रानी चन्दकुमारी शेरसिंह से अत्यन्त घृणा करती थी। राज्यासन पर बैठ कर शेरसिंह ने चन्दकुमारी को ब्याहना चाहा, परन्तु रानी ने साफ़ अस्वीकार कर दिया। जब चन्दकुमारी शेरसिंह से राज़ी नहीं हुई, तब उसने दासियों को घूँस दे कर उनको मरवा डाला। चन्दकुमारी बुद्धिमती स्त्री थी। यद्यपि उसका जीवन विषादमय है; तथापि उसका नैतिक बल स्वच्छ और दृढ़ है।

चन्द सौदागर=इनकी कथा पद्मपुराण में लिखी है। इनके पुत्र का नाम लखिन्देव और पुत्रवधू का नाम बेहुला था। इसके छः पुत्र पद्मा के कोप से मर गये। अन्त में लखिन्देव उत्पन्न हुआ। पद्मा-मनसा सर्पों की अधिष्ठात्री देवी हैं। उनकी इच्छा थी कि पृथिवी में हमारा माहात्म्य प्रचारित हो, और लोग हमारी पूजा किया करें। चन्द एक प्रसिद्ध सौदागर और धनी थे। वे जाति के बनिये थे। चन्द सौदागर की प्रतिकूलता के कारण मनसा का माहात्म्य प्रसिद्ध नहीं होने पाता था। अतएव मनसा देवी उस पर क्रुद्ध हो गयीं। उसके छः पुत्रों को मनसा देवी ने साँपों से मरवा डाला था, व्यवसाय में भी मनसा देवी ने चन्द की बहुत हानि की। उसके सात जहाज़ मनसा के क्रोध से समुद्र में डूब गये। किसी प्रकार उसकी प्राणरक्षा हुई। मनसा के इतना कष्ट देने पर भी, तेजस्वी चन्द सौदागर अपनी प्रतिज्ञा से विचलित न हुआ। उसका एक पुत्र लखिन्देव भी विवाह के दिन एक साँप के डँस लेने से मर गया। पुत्रवधू बेहुला भी अपने पति को ले कर नदी में पड़ गयी, अनेक कष्ट उठा कर वह स्वर्ग में इन्द्र की सभा में पहुँची। बेहुला ने अपने गुणों से स्वामी और उनके भाइयों को जीवित किया। बेहुला मनसा की भक्ति करती थी, मनसा की कृपा से बेहुला का सौभाग्य लौट आया। बेहुला के कहने से चन्द सौदागर का भी मन फिरा, उन्होंने भी मनसा देवी की पूजा करना आरम्भ किया। मनसा देवी की पूजा प्रचारित हुई। मनसा प्रसन्न हुईं, और चन्द सौदागर के दिन लौट आये।

(पद्मपुराण)

चन्द्रसखी=ये स्त्री कवि ब्रज की थीं और सन् १५८१ ई० में इनका जन्म हुआ था। इनके बनाये कृष्ण-लीला सम्बन्धी पद अब तक गाये जाते हैं। कोई इन्हें स्त्री कवि और कोई इन्हें पुरुष कवि बतलाते हैं।

चन्द्र=लक्ष्मी का भाई। समुद्र मथने से अमृत, पारिजात, लक्ष्मी, ऐरावत, उच्चैःश्रवा, आदि के साथ इसकी उत्पत्ति हुई है। यह देवताओं में गिना जाता है। अमृतपान के समय देवताओं की पङ्क्ति में एक दैत्य भी बैठा था। चन्द्र ने उसे देख कर विष्णु को पहचनवा दिया। विष्णु ने चक्र से उसका सिर तो काट लिया, परन्तु वह असुर मरा नहीं, क्योंकि वह अमृत पी चुका था। मस्तकरूपी राहु उसी क्रोध से चन्द्र का ग्रास किया करता है। (महाभारत)

काशीखण्ड में लिखा है कि ब्रह्मा के मानस पुत्र अत्रि से चन्द्रमा की उत्पत्ति हुई थी। महर्षि अत्रि ने तीन हज़ार दिव्य वर्ष तक तपस्या की थी, उसी समय उनका वीर्य ही सोमरूप बन गया। ब्रह्मा ने उस रथ को ले कर अपने रथ में रख लिया। उस रथ पर बैठ कर, सोम ने इकीस बार पृथिवी की प्रदक्षिणा की। उसी भ्रमण के समय जो रेत पृथिवी पर गिरा, उससे अनेक ओषधियाँ उत्पन्न हुईं, जिनसे जगत् की रक्षा होती है। महादेव की कृपा से चन्द्र को

एक राज्य मिला था, जिसका नाम चन्द्रलोक है । नव नक्षत्र जो दक्ष की कन्याएँ थीं उनसे चन्द्र का व्याह हुआ था । चन्द्र की दूसरी स्त्री का नाम रोहिणी है । रोहिणी से चन्द्र का अधिक प्रेम रहता है । इस कारण इनकी अन्य स्त्रियों ने चन्द्रमा को दुत्कारा था । चन्द्र अप्रसन्न हुए और उन्होंने कहा, तुम लोगों ने कठोर वाक्य कहे हैं, अतएव संसार में तुम सब कठोर समझी जावोगी और जिस तिथि में तुम्हारा भोग होगा, वह तिथि यात्रा के लिये अनुपयुक्त होगी । वे चन्द्र के इस शाप से रुष्ट हो गयीं और अपने पिता दक्ष के पास जा कर चन्द्र के सब दुर्व्यवहार उन लोगों ने कहे । चन्द्रमा रोहिणी पर अधिक आसक्त हैं, और हम लोगों ने उनको इस दुष्कर्म से रोकना चाहा, इससे रुष्ट हो कर हम लोगों को उन्होंने शाप दिया है । ये सारी बातें दक्ष से उन लोगों ने कहीं । दक्ष ने चन्द्रमा के समीप जा कर सब स्त्रियों पर समान व्यवहार रखने के लिये उनको उपदेश दिया । चन्द्रमा ने उस समय तो मान लिया, परन्तु थोड़े दिन बीतने पर पुनः वे रोहिणी को अधिक चाहने लगे, इस अवस्था में और स्त्रियों पर उनका प्रेम घटना स्वाभाविक ही था । अबकी बार प्रेम की न्यूनता तिरस्कार के रूप में परिणत हुई । पुनः अपने पिता के पास जा कर उन लोगों ने चन्द्र के दुर्व्यवहार कहे; और यह भी कहा कि हम लोग अपने पति के पास जाना नहीं चाहतीं यदि आप आज्ञा दें तो हम लोग तपस्विनी बन कर अब अपना समय बितावें । चन्द्रमा की दुष्टता से दक्ष के मन में बड़ा क्रोध उपजा । उस समय दक्ष की नाक के अग्रभाग से स्त्री-सम्भोग लोलुप यक्ष्मा की उत्पत्ति हुई । दक्ष की आज्ञा से यक्ष्मा चन्द्र के शरीर में प्रविष्ट हुआ । यक्ष्मा रोग के कारण चन्द्रमा दिनों दिन क्षीण होने लगे । चन्द्रमा की यह दशा देख देवताओं ने उन पर कृपा करने के लिये दक्ष से कहा । दक्ष ने उत्तर दिया कि यदि चन्द्रमा उन सब स्त्रियों से समान व्यवहार रखें, तो दूसरे पक्ष में उनकी कला की वृद्धि हो जायगी । तभी से चन्द्रमा की कला एक पक्ष में क्षीण और दूसरे पक्ष में परिवृद्ध होती है । (कालिकापुराण)

एक बार चन्द्रमा ने देवगुरु बृहस्पति की स्त्री पर मोहित हो कर उसे चुरा लिया था । बृहस्पति ने चन्द्र के अत्याचार, देवताओं से कहे और अपनी स्त्री को लौटा देने के लिये प्रार्थना की । परन्तु चन्द्रमा ने किसी भी देवता का कहना न सुना । इस पर क्रुद्ध हो कर शुक्राचार्य, महादेव और बृहस्पति चन्द्रमा से युद्ध करने के लिये उद्यत हुए । बृहस्पति का पुत्र कच शुक्राचार्य का प्रिय शिष्य था, इसी कारण देवगुरु बृहस्पति की विपत्ति में सहायता करना शुक्राचार्य ने अपना कर्त्तव्य समझा । इस युद्ध से महाअनर्थ होने की आशङ्का कर के देवताओं ने ब्रह्मा से इस युद्ध की बातें कहीं । ब्रह्मा स्वयं युद्धक्षेत्र में उपस्थित हुए । शुक्राचार्य और महादेव को युद्ध से हटा कर ब्रह्मा ने बृहस्पति की स्त्री उन्हें दिलवा दी बृहस्पति की स्त्री का नाम तारा था । उस समय तारा गर्भवती थी । बृहस्पति के कहने से तारा ने गर्भ त्याग किया । ब्रह्मा ने पूँछा यह गर्भ किसका है ? तारा ने उत्तर दिया "चन्द्रमा का" वह पुत्र चन्द्रमा को दे दिया गया जिसका नाम बुध रखा गया । यह बुध चन्द्रमा के विपरीत आकाशमण्डल में उदित होता है । इसी पाप से चन्द्रमा को यक्ष्मा रोग हुआ था रोग से मुक्त होने के लिये उन्होंने अपने पिता अत्रि से प्रार्थना की । उनकी कृपा से चन्द्रमा शापमुक्त हुए और पुनः अपना तेज पा गये ।

चन्द्र कवि=इनका जन्म सन् १६६२ ई० में हुआ था । ये भूपाल के चन्दन बाबू के दरबारी थे । यह राजगढ़ के नव्वाब सुलतान पठान के भाई थे । इन्होंने बिहारी की सतसई पर एक टीका कुण्डलिया छन्द में सुलतान पठान के नाम से बनायी थी ।

चन्द्रकेतु=लक्ष्मण के छोटे पुत्र का नाम । रामचन्द्र ने इन्हें कारापथ नामक स्थान का राज्य दिया था ।

चन्द्रगुप्त=प्राचीन भारत के एक पराक्रमी मौर्य सम्राट् । चन्द्रगुप्त का समय निरूपण करना कठिन है । प्रायः ३०० खृष्टाब्द में नन्द नामक

राजा मगध में राज्य करते थे। इसी राजवंश में सर्वार्थसिद्धि नामक राजा उत्पन्न हुए। कोई कोई इस सर्वार्थसिद्धि का नाम महानन्द बतलाते हैं। उनके मन्त्री का नाम राक्षस था। सर्वार्थसिद्धि की दो स्त्रियाँ थीं। एक का नाम मुरा और दूसरी का नाम सुनन्दा था। मुरा के गर्भ से मौर्य नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ था और सुनन्दा के गर्भ से नव पुत्र उत्पन्न हुए थे। सुनन्दा के पुत्र नवनन्द कहे जाते थे। राजा सर्वार्थसिद्धि ने अपनी वृद्धावस्था में राज्य भार अपने पुत्रों को दे कर और मौर्य को उनका मन्त्री बना कर स्वयं भजन पूजन करने के लिये अवकाश ग्रहण किया। मन्त्री मौर्य के अनेक पुत्र उत्पन्न हुए थे, जिनमें एक का नाम चन्द्रगुप्त था। मौर्य के पुत्र बड़े बलवान् थे, इस कारण नवनन्दों ने मौर्य और उनके पुत्रों को क़ैद कर लिया। पुनः किसी कारण वश उन्होंने चन्द्रगुप्त को कारा से मुक्त कर दिया। चन्द्रगुप्त बलवान् सुन्दर और उन्नति-चेता था। उसका हृदय उदार होने के कारण विशाल था। इन्हीं गुणों से लोग उससे बहुत प्रेम करते थे। इससे नवनन्दों को ईर्ष्या हुई, वे लोग चन्द्रगुप्त का वध करने का अवसर ढूँढ़ने लगे। चन्द्रगुप्त को भी अपने प्राणों की रक्षा की चिन्ता हुई। किसके शरण जाने से प्राणरक्षा होगी, वह यह विचारने लगा। एक दिन उसने देखा कि, एक ब्राह्मण, जिसके पैर में कुश का काँटा लगा था, कुशों के मूल में मट्ठा डाल कर कुशकुल के विनाश करने की चेष्टा में लगा हुआ है। चन्द्रगुप्त के पूँछने पर मालूम हुआ कि, उसका नाम चाणक्य है। चन्द्रगुप्त ने सोचा ऐसे मनुष्यों के आश्रय से अवश्य ही आत्म-रक्षा हो सकती है। बहुत विनती कर, इस ब्राह्मण को चन्द्रगुप्त अपने घर ले गया और एक महोत्सव में किसी प्रकार नवनन्द की भोजनशाला में उसका प्रवेश करा कर उसे नन्द के आसन पर बैठाया। यह देख नवनन्द अत्यन्त क्रुद्ध हुए और उन लोगों ने ज़बरदस्ती उस ब्राह्मण को आसन से उठवा दिया। उस ब्राह्मण ने उसी समय शिखा खोल कर प्रतिज्ञा की कि जब तक मैं नन्दवंश का उच्छेद न कर लूँगा, तब तक शिखाबन्धन नहीं करूँगा। चन्द्रगुप्त नगर के बाहर जा कर चाणक्य से मिला। दोनों ने मिल कर म्लेच्छाधिप पर्वतराज का आह्वान किया। दोनों में ठहराव हुआ कि जब युद्ध में जय होगा तब आधा राज्य पर्वतराज को मिलेगा। म्लेच्छराज ने सेना सहित नवनन्द के राज्य पर आक्रमण किया। नवनन्द मारे गये। नन्द मन्त्री राक्षस ने दूसरा उपाय न देख सर्वार्थसिद्धि को वन में भेज दिया। चन्द्रगुप्त ने राजधानी पर अपना अधिकार जमा लिया। राक्षस ने चन्द्रगुप्त का नाश करने के लिये विषकन्या भेजी थी, चन्द्रगुप्त ने चाणक्य के कहने से उस कन्या को म्लेच्छराज के यहाँ भिजवा दिया। उस कन्या से म्लेच्छराज मारा गया। इसके बाद चाणक्य ने म्लेच्छराज के पुत्र मलयकेतु को प्रतिज्ञात राज्यार्द्ध ग्रहण करने के लिये बुलाया, परन्तु वह डर कर भाग गया। तदनन्तर चाणक्य ने कूट नीति से सर्वार्थसिद्धि को मरवा डाला। राक्षस ने मलयकेतु की सहायता से चन्द्रगुप्त पर आक्रमण किया था; परन्तु चाणक्य ने अपनी नीति से उसे क़ैद कर लिया। चाणक्य ने राक्षस की बुद्धि की प्रशंसा की और उन्होंने उसे चन्द्रगुप्त का मन्त्री बनवा दिया। चाणक्य इस बात को अच्छी तरह जानते थे कि बुद्धिमान् राक्षस को बिना मन्त्री बनाये चन्द्रगुप्त का निर्विघ्न राज्य करना कठिन है। विशाखदत्त ने इसी घटना को ले कर "मुद्राराक्षस" नामक, संस्कृत में एक उत्तम नाटक लिखा है।

कोई कोई कहते हैं कि चन्द्रगुप्त सर्वार्थसिद्धि के बड़े पुत्र थे। सबसे बड़े होने पर भी दासीपुत्र होने के कारण इनके और छोटे भाई इनसे द्वेष रखते थे। सर्वार्थसिद्धि के दो मन्त्री थे राक्षस और शकटार। किसी कारण वश शकटार को राजा ने अपमानित किया, अतएव उसने निश्चित किया कि मैं इस राजकुल का नाश कर डालूँगा। बदला लेने की इच्छा से शकटार ने चाणक्य से मैत्री की और किसी श्राद्ध में राजभवन में ले जा कर,

नन्द के आसन पर उन्हें बैठा दिया । राजा की आज्ञा से नौकरों ने चुटिया पकड़ कर चाणक्य को वहाँ से निकाल दिया । इससे क्रुद्ध हो कर चाणक्य ने भी राजवंश का नाश करने के लिये सङ्कल्प किया ।

प्रसिद्ध बौद्धाचार्य बुद्धघोष कहते हैं कि चन्द्रगुप्त ने अपने मामा की कन्या को ब्याहा था और उसे ही प्रधान महिषी बनाया था ।

चन्द्रपर्वत=अग्निपुराण वर्णित सूर्यवंशी राजा तारापीड के पुत्र का नाम ।

चन्द्रचक्रा=एक नगरी का नाम । जिसमें लक्ष्मण-पुत्र चन्द्रकेतु ने अपनी राजधानी स्थापित की थी ।

चन्द्रवर्मा=चन्देलराजवंश का आदिपुरुष । काशी-राज के पुरोहित इन्द्रजित की कन्या हेमवती के गर्भ और चन्द्रमा के औरस से इनकी उत्पत्ति हुई थी । कर्णावती नदी के तीर पर ये उत्पन्न हुए थे ।

चन्द्रवरदाई भाट=हिन्दी के एक कवि । ये सन् ११६१ ई० में विद्यमान थे । ये रणथम्भौर के वीसलदेव चौहान के प्राचीन वंश में से थे । ये जब पृथिवीराज चौहान के दरबार में गये, तब उन्होंने इन्हें अपना सचिव और राजकवि बना लिया । १७ वीं सदी के प्रारम्भ में मेवाड़ के अमरसिंह ने इनकी कविताओं का संग्रह किया । इनका मुख्य ग्रन्थ "पृथ्वीराज रायसा" है, जिसमें इन्होंने अपने स्वामी की जीवनी का वर्णन किया है । इनका बनाया "जैचन्द-प्रकाश" नामक एक और ग्रन्थ बतलाया जाता है, जिसमें कनौज के राजा जैचन्द का हाल है ।

चन्द्रसेन=(१) प्राचीन भारतवर्ष के एक पराक्रमी राजा का नाम । इनके पिता का नाम समुद्रसेन था । ये कुरुक्षेत्र के युद्ध में पाण्डवों की ओर से युद्ध करते थे, और उसी रणक्षेत्र में अश्वत्थामा के हाथ से मारे गये । इसका पता नहीं कि, ये कहाँ के राजा थे ।

(२) चम्पावती नगरी के राजा का नाम । एक समय अहेर खेलने राजा वन में गये हुए थे, उन्होंने मृगा समझ कर एक ऋषि के बाण मारा । राजा ने बहुत प्रार्थना की और अनेक प्रयत्नों से उन्होंने ऋषि से अपराध क्षमा कराना चाहा, परन्तु ऋषि ने एक भी नहीं सुना । ऋषि के शाप से राजा का शरीर काला और वृद्ध हो गया । अनन्तर एक ऋषि के कहने से वसन्त-पुर नामक नगर में (यह नगर जयपुर राज्य के अन्तर्गत है) गये और शापमुक्त हुए । इन्होंने खीष्टाब्द की प्रथम शताब्दी में चम्पावती नगरी निर्माण करवायी थी । यह नगरी चन्द्रभागा नदी के तीर पर है और वर्तमान झालावाड़ राज्य की राजधानी है ।

(३) ये क्षत्रियकुलान्तकारी परशुराम के हाथों मारे गये थे । इनकी गर्भवती रानी ने दाल्भ्यमुनि के आश्रम में जा कर प्राणरक्षा की थी । इसी रानी के गर्भ से उत्पन्न पुत्र से चन्द्र-सेनी कायस्थों की उत्पत्ति हुई थी ।

(४) मारवाड़ के राजा मालदेव का पुत्र । सन् १५६६ ई० में मालदेव ने अनेक भेंट दे कर चन्द्रसेन को अकबर के निकट भेजा था । चन्द्र-सेन योग्य राठौर था, वह जन्मभूमि की स्वाधी-नता और राठौर कुल की मर्यादा को अपने प्राणों से भी अधिक मूल्यवान् समझता था । नीच प्रकृति, भीरु, अपने बड़े भाई उदयसिंह को चन्द्रसेन, इस कारण राजगद्दी पर बैठने देना नहीं चाहता था कि यह राठौर कुल की मर्यादा नष्ट कर देगा । अतएव उसने इसका प्रबल विरोध किया, तेजस्वी राठौरों ने भी उसका साथ दिया । इस प्रकार राठौरों में दो दल हो गये । चन्द्रसेन राजधानी जोधपुर को छोड़ कर चला गया, परन्तु उसने अपने मान एवं मर्यादा की रक्षा करने के विचार को नहीं पलटा वह सिवाना नामक स्थान में रह कर भी इसके लिये चेष्टा करता था कि राठौरों की स्वाधीनता बची रहे । वह अपने प्रयत्न में अधिकांश सफल भी हुआ था । अपने सत्रह वर्ष की कठोर तपस्या का फल चन्द्रसेन देखना चाहता ही था कि यवनों की एक लड़ाई में वह मारा गया ।

(टाडस् राजस्थान)

चन्द्रहास=ये एक प्रसिद्ध राजा थे । इनकी बाल्य अवस्था ही में इनके पिता माता दोनों परलोक-

वासी हुए। प्रधान मन्त्री ने छल से इनको मरवा डालना चाहा था। इसके लिये उसने षड्यन्त्र भी रच डाला था। परन्तु इनकी धाय इनको ले कर भाग गयी और एक गभीर जङ्गल में जा छिपी, जिससे इनके प्राणों की रक्षा हुई। यह कहावत बहुत ठीक है कि विपत्ति चारों ओर से आती है। इनकी रक्षिका धाय भी मर गयी। वन में एक छोटा बालक, निराश्रय पड़ा हुआ है। एक बार संयोगवश राजमन्त्री ने इन्हें देखा और देखते ही उसने पहचान लिया। मन्त्री ने इसको मरवा डालने के लिये आदमी नियत किये। परन्तु मन्त्री का सोचा बिलकुल उलटा हुआ। चन्द्रहास का मरना तो दूर रहा, इसका बाल भी बाँका नहीं हुआ। मन्त्रिपुत्र ही मारा गया। अन्त में मन्त्री की कन्या ने एक बगीचे में चन्द्रहास को देखा, और उनका विवाह हुआ।

चन्द्रापीड़=(१) महाकवि बाणभट्टकृत कादम्बरी का कथा नायक। इनके पिता उज्जयिनी के राजा तारापीड़ और माता विलासवती थी। शाप के कारण रानी विलासवती के गर्भ से चन्द्रमा चन्द्रापीड़ के रूप में उत्पन्न हुए थे। चन्द्रापीड़ पिता की आज्ञा ले कर मन्त्री शुकनास के पुत्र प्रिय मित्र वैशम्पायन को साथ ले कर हिमालय के समीप मृगया खेलने गये थे। वहाँ एक किन्नर मिथुन के पीछे घोड़ा दौड़ाते हुए राजकुमार हेमकूट पर्वत निवासी गन्धर्वराज हंस की कन्या महाश्वेता के आश्रम में उपस्थित हुए। यहीं महाश्वेता की प्रिय सखी गन्धर्वराज की पुत्री कादम्बरी के साथ राजकुमार का परिचय हुआ। प्रथम दर्शन ही में दोनों प्रेम-सूत्र में बँध गये। इसके बाद एक विपत्ति आयी। चन्द्रापीड़ के मित्र वैशम्पायन महाश्वेता पर मोहित हो कर उसका आलिङ्गन करने के लिये दौड़े, महाश्वेता के शाप से मन्त्रिपुत्र मर गये, और शुक हो गये। वैशम्पायन पूर्व जन्म में महर्षि श्वेतकेतु के औरस और लक्ष्मी के गर्भसे उत्पन्न पुण्डरीक नामक एक ऋषिकुमार थे। पुण्डरीक महाश्वेता को देख कर मोहित हो गये थे। एक दिन पुण्डरीक की कामपीड़ा बढ़ गयी। उन्होंने अपनी पीड़ा के हेतु चन्द्रमा को समझ कर शाप दिया। चन्द्रमा ने भी पुण्डरीक को शाप दिया। पुण्डरीक के शाप से चन्द्रमा राजा तारापीड़ के औरस और विलासवती के गर्भ से चन्द्रापीड़ के रूप में उत्पन्न हुए थे। चन्द्रमा के शाप से पुण्डरीक तारापीड़ के मन्त्री शुकनास के औरस और मनोरमा के गर्भ से वैशम्पायन रूप से उत्पन्न हुए। वैशम्पायन उसी पूर्व जन्म के संस्कार से महाश्वेता के प्रति अनुरक्त हुए थे। महाश्वेता ने जब जाना कि जिसको मैंने शाप दिया है वह हमारा पूर्व जन्म का प्रेमी है; तब उसे बड़ा कष्ट हुआ, पुण्डरीक की मृत्यु के बाद दैवीवाणी के अनुसार भावी पतिसङ्गम की इच्छा से महाश्वेता पुण्डरीक के शरीर की रक्षा कर रही थी। वैशम्पायन की मृत्यु की बात सुन कर, चन्द्रापीड़ ने भी शरीर त्याग किया, और शरीर त्याग करने पर वे विदिशा नगरी में शूद्रक नाम राजा हुए। देवताओं की आज्ञा से चन्द्रापीड़ का भी मृत शरीर रखा गया। महाश्वेता के समान राजभवन छोड़ कर ब्रह्मचारिणी के वेश में कादम्बरी भी भावी पति की शरीररक्षा करने के लिये महाश्वेता के आश्रम में रहने लगी। शुकरूपी वैशम्पायन राजा शूद्रक के निकट ले आया गया। शुक के मुह से अपनी कथा सुन कर राजा शूद्रक ने देह त्याग किया। पापक्षय होने से शुक ने भी देह त्याग की। शूद्रक के शरीर त्याग करते ही चन्द्रापीड़ जी उठे। कादम्बरी के साथ चन्द्रापीड़ का व्याह हुआ। थोड़ी देर के बाद वैशम्पायन भी जी उठे और उनको महाश्वेता व्याही गयी।

(कादम्बरी)

(२) काश्मीर के एक राजा का नाम। ये दुर्लभक (प्रतापादित्य) के ज्येष्ठ पुत्र थे। पिता के बाद चन्द्रापीड़ काश्मीर राज्य के अधीश्वर हुए। ये राजा गुणवान् और असीम धार्मिक थे। राजतरङ्गिणी में लिखा है कि ये सत्ययुग के राजाओं के समान थे। तेजस्विता और क्षमा का अपूर्व समावेश इसी राजा में देखा गया है। इनके हृदय की महत्ता नीचे लिखी दो घटनाओं से विदित होती है।

राजा एक अग्रहार बनवाना चाहते थे। उसके लिये स्थान निश्चित किया, उसके पास ही एक चमार की कुटी थी। राजकर्मचारियों ने बहुत कहा कि इस स्थान को दे दो, और उसका मूल्य जितना चाहो ले लो, परन्तु उस चमार ने नहीं सुना। इसका संवाद राजा को दिया गया। राजा अपने कर्मचारियों पर बहुत अप्रसन्न हुए। अन्त में उस चमार ने कहा कि यदि महाराज आ कर माँगें तो मैं दे दूँ। महाराज गये और उससे माँगा तथा उस स्थान का पर्याप्त मूल्य भी दिया।

एक समय राजा के पास एक ब्राह्मणी आयी, उसने कहा मेरा पति मारा गया है। उसका कोई शत्रु नहीं था। अमुक ब्राह्मण पर मेरा सन्देह है। सम्भव है उसीने कृत्या से मेरे पति को मार डाला हो। महाराज ने उस ब्राह्मण को बुलाया, परन्तु अपराधी वही है, इसका निश्चय राजा नहीं कर सके। अपराध निश्चय करने के लिये राजा ने तीन दिन अनशन व्रत किया, तीसरे दिन रात्रि को राजा को स्वप्न हुआ कि इस प्रकार तुम अपराधी को पहचान कर सकते हो। राजा ने अपराधी को प्राणदण्ड के अतिरिक्त दूसरे दण्ड से दण्डित किया, इससे ब्राह्मण इन पर क्रुद्ध हो गया, और उसने इनके छोटे भाई तारापीड़ के कहने से अभिचार के द्वारा राजा को मार डाला। इन्होंने ८ वर्ष ८ महीने राज्य किया था। परन्तु इनका यश चिरस्थायी है। (राजतरङ्गिणी)

चन्द्रावली=एक गोपी, जो चन्द्रभानु की कन्या थी। राधा के बड़े चाचा का नाम चन्द्रभानु था। चन्द्रमल्ल को यह व्याही गयी थी। राधा के समान चन्द्रावली भी श्रीकृष्ण पर आसक्त थी। करेला नामक गाँव में चन्द्रावली अपने पति के यहाँ रहती थी।

चम्पा राज्य=जिस समय मगधराज्य श्री सौभाग्य से पूर्ण था, उस समय चम्पा नगरी या चम्पा राज्य की बड़ी ख्याति थी। श्रीमद्भागवत और पद्मपुराण में लिखा है—हरिश्चन्द्र के पौत्र हरित के पुत्र राजा चम्प ने चम्पा नगरी या चम्पा राज्य की स्थापना की थी। इससे चम्पा नगरी की प्राचीनता स्पष्ट सिद्ध होती है। विष्णुपुराण और हरिवंश में हरित के पुत्र का नाम चन्चु लिखा है। चम्पा नामक अनेक जनपदों का परिचय पाया जाता है। बहुतों का अनुमान है कि यह राज्य वर्तमान कम्बोडिया के (कम्बोज) दक्षिण भाग में स्थित है। किसी किसी के मत से काश्मीर के सीमान्त प्रदेश में इस राज्य के होने का अनुमान किया जाता है। उसकी राजधानी का नाम ब्रह्मपुर है जिसे इस समय चम्पा कहते हैं। मध्यप्रदेश के बिलासपुर ज़िले में भी एक चम्पा नगर का पता लगता है। परन्तु प्राचीन चम्पा नगरी जिसका वर्णन पुराणों में है—वह मगध राज्य के समीप है। प्राचीन अङ्ग देश की यह राजधानी थी। इसके दूसरे नाम कर्णपुर मालिनी और लोमपादपुर हैं। वर्तमान भागलपुर के समीप चम्पा नगरी थी इस समय ऐसा अनुमान किया जाता है। हुएनत्सङ्ग ने चम्पा नगरी का विवरण इस प्रकार लिखा है—चम्पा बहुत बड़ा जनपद है। चम्पा नगरी गङ्गा के तीर पर बसी है, वहाँ की भूमि उपजाऊ और समतल है। वहाँ के वासी सरल और सत्यवादी हैं। वहाँ अनेक बौद्धमठ और सङ्घाराम विद्यमान हैं। परन्तु उनका अधिकांश भाग जीर्ण और टूटा फूटा है। इन मठों में प्रायः दो सौ बौद्ध भिक्षुक रहते थे। बौद्धमन्दिरों के अतिरिक्त प्रायः बीस देवमन्दिर वर्तमान हैं, जो राजधानी परिखा और प्राकार से वेष्टित है। नगर के समीप गङ्गा के तीर पर एक सामान्य पहाड़ और उस पर एक मन्दिर देखा जाता है। सुना जाता है कि इसके अधिष्ठाता देवता अनेक अलौकिक कार्य करते थे। चम्पा की प्रतिष्ठा के विषय में बौद्धग्रन्थों में एक कथा लिखी मिलती है—वर्तमान कल्प के प्रारम्भ में मानव सृष्टि के पहले एक अप्सरा स्वर्गभ्रष्ट हो कर मर्त्यलोक में आयी। थोड़े दिनों के बाद एक देवता के औरस से उस अप्सरा के चार पुत्र उत्पन्न हुए। उन्हीं चार पुत्रों ने जम्बूद्वीप का राज्य आपस में बाँट लिया। उन्हींमें से एक ने चम्पा नगरी बसायी थी। चीन परिव्राजक ने हिरण्यप्रभात वा मुंगेर से

चम्पा नगरी को ९० मील की दूरी पर बतलाया है और नदी परिवेष्टित पहाड़ के २३ मील पश्चिम गङ्गा तीर पर चम्पा नगरी का अवस्थान बतलाया है । यह नगरी एक पर्वत पर बसी है और उस पर्वत पर एक देवमन्दिर भी है । कनिंहम कहते हैं कि परिव्राजक ने जिस पहाड़ का वर्णन किया है वह इस समय पत्थरघाट के नाम से प्रसिद्ध है। वही प्राचीन चम्पा नगरी का ध्वंसावशेष है । भागलपुर से पत्थरघाट २४ मील की दूरी पर है । पत्थरघाट के पास एक चम्पा नगरी इस समय भी है ।

(भारतवर्षीय इतिहास)

चरक=विख्यात वैद्यक ग्रन्थ चरकसंहिता के प्रणेता । भगवान् अनन्तदेव ने चर रूप से (गुप्त वेश से) पृथिवी पर आ कर देखा कि मनुष्य अनेक प्रकार की व्याधियों से पीड़ित हो रहे हैं । मनुष्यों की ऐसी दशा देख कर, उनके मन में दया उत्पन्न हुई । षडङ्ग-वेद-वेत्ता ऋषि के रूप में पृथिवी पर अवतीर्ण हुए थे और उन्होंने संसार के मनुष्यों के दुःख दूर किये । चर रूप से पृथिवी पर ये उत्पन्न हुए थे इस कारण चरक नाम से ये प्रसिद्ध हुए । इन्होंने अत्रिपुत्र भरद्वाज से आयुर्वेद की शिक्षा पायी थी । इन्होंने जो वैद्यक का ग्रन्थ बनाया है, उसका नाम " चरकसंहिता" है । इस " चरकसंहिता " के प्रणेता के विषय में मतभेद है और वह सकारणक है और वह चरकसंहिता के अन्त में लिखा भी है । ग्रन्थकार कहते हैं रोगों की चिकित्सा के सम्बन्ध में अग्निवेश ने जो इस संहिता में लिखा है, वह और ग्रन्थों में भी हो सकता है, परन्तु जो इस ग्रन्थ में नहीं है वह अन्य ग्रन्थों में भी नहीं है । तो क्या अग्निवेश ही " चरकसंहिता " के प्रणेता हैं ? जिस प्रकार पुराण आदि शास्त्र ग्रन्थ शिष्य प्रशिष्य परम्परा द्वारा सङ्कलित होते आये हैं उसी प्रकार चरक सुश्रुत आदि की भी मत-परम्परा है । " चरकसंहिता " में जो चरक का परिचय दिया गया है उससे उनका समय निरूपण करना कठिन है । " चरक" में लिखा है कि चरक आत्रेय ऋषि का मत प्रकाशित करते हैं । चरक के प्रत्येक अध्याय के प्रारम्भ में लिखा है कि भगवान् आत्रेय ने कहा । भावप्रकाश नामक वैद्यक ग्रन्थ में चरक के विषय में लिखा है—मत्स्यावतार भगवान् के द्वारा वेदों का उद्धार हुआ । उस समय शेष या अनन्त को अथर्ववेद में आयुर्वेद प्राप्त हुआ । चर रूप से महीतल पर आ कर मनुष्यों को दुःखी देख, उन्हें दया उत्पन्न हुई । इससे प्राणियों के दुःख दूर करने के लिये वह अवतीर्ण हुए । इन्होंने चर रूप से जन्म लिया था इस कारण इनका नाम चरक हुआ । आत्रेय मुनि के शिष्य अग्निवेश ने चिकित्सा सम्बन्धी जितने ग्रन्थ लिखे थे उनका सारांश ले कर इन्होंने "चरकसंहिता" नामक ग्रन्थ बनाये थे । यद्यपि इन बातों से चरक का समय निरूपण नहीं किया जा सकता; तथापि इससे यह तो अवश्य मालूम होता है कि, इनके पहले भी आयुर्वेद की चर्चा थी । " सुश्रुत " और " चरक " के पढ़ने वालों का मत है कि, चरक सुश्रुत से प्राचीन है । क्योंकि, " सुश्रुत " में पारद का उल्लेख है और "चरक" में नहीं, पाश्चात्य पण्डितों का भी यही मत है । परन्तु इस मत को सिद्धान्त मत नहीं मान सकते । क्योंकि, किसी भी प्रसिद्ध पुराण में चरक का उल्लेख नहीं है । इससे चरक सुश्रुत की अपेक्षा नवीन प्रमाणित होते हैं । भावप्रकाशकार ने चरक को संग्रहकर्ता बतलाया है । संग्रहकर्ता ने यदि पारद का उल्लेख नहीं किया तो इससे वह पुराना नहीं हो सकता । किसी ग्रन्थ में किसी विषय का उल्लेख न होना ही उसकी प्राचीनता का प्रमाण नहीं है । दूसरी बात यह है कि, स्वयं चरक ही ने अपने ग्रन्थ में शल्यचिकित्सा के विषय में धन्वन्तरी सम्प्रदाय का प्रामाण्य माना है । ऐसी अवस्था में हम चरक को सुश्रुत से प्राचीन कैसे कह सकते हैं परन्तु इनके ठीक समय का पता लगाना भी तो कठिन है।

चरक और सुश्रुत का समय निरूपण करने के लिये विदेशी विद्वानों ने बड़ा प्रयत्न किया है। एम् लेलभिन लेभी नामक फारस के प्रसिद्ध विद्वान् हैं । वे प्राच्य भाषाओं में भी अभिज्ञ

समझे जाते हैं। चीन देश के "त्रिपिटक" ग्रन्थ की आलोचना करते हुए उन्होंने लिखा है- "चरक" नामक वैद्य, शकवंशीय राजा कनिष्क के दीक्षागुरु थे। कनिष्क का राज्यकाल द्वितीय सदी में माना गया है; अतएव चरक भी दूसरी सदी के हैं। द्वितीय शताब्दी में भारत पर ग्रीस का प्रभाव पड़ा था। ग्रीस ही से चरक ने चिकित्सा शास्त्र सीखा था। फरासी पण्डित की यह युक्ति अशुद्ध है; क्योंकि यह बात स्पष्ट ही मालूम होती है। पाणिनिसूत्र में चरक का नाम आया है "कठचरकाल्लुक्"। पाश्चात्य पण्डित गोल्डस्टूकर के अनुसन्धान से निश्चित हुआ है कि ख्रीष्ट जन्म के ६ सौ वर्ष पूर्व, पाणिनि मुनि वर्तमान थे। गोल्डस्टूकर और भी कहते हैं कि ख्रीष्ट जन्म के ५४३ वर्ष पूर्व शाक्य मुनि बुद्धदेव का परलोकवास हुआ था। पाणिनि उसके भी पहले के हैं। कात्यायन और पतञ्जलि दोनों ने पाणिनिसूत्रों की टीका लिखी है। कात्यायन की टीका का नाम वार्तिक और पतञ्जलि की व्याख्या का नाम महाभाष्य है। कात्यायन और पातञ्जल दोनों समकालीन माने जाते हैं। गोल्डस्टूकर ने ख्रीष्टाब्द से १४० वर्षों पूर्व से ले कर १२० वर्षों पूर्व तक, इनकी स्थिति मानी है। चक्रपाणि और भोज दोनों ही ने चरक का निर्माता पतञ्जलि ही को माना है। इससे फरासी पण्डित की उक्ति की असारता स्पष्ट ही मालूम होती है।

सुश्रुत की अपेक्षा चरक को प्राचीन मानने के प्रधान कारण पण्डित लोग थे। चरक की अपेक्षा सुश्रुत में विषयों का निवेश शृङ्खलित हुआ है। जब जो विषय स्मरण आया, चरक ने वही लिख दिया। इन्होंने समय समय पर भूयोदर्शन और परीक्षा की उपेक्षा कर के दार्शनिक तत्त्वों ही की प्रधानता मानी है। सुश्रुत के अधिकांश सिद्धान्त वैज्ञानिक भित्ति पर स्थित हैं। चरकसंहिता में न्याय और वैशेषिक दर्शन के अनेक विषयों का अनुसरण किया गया है। पण्डितों का यह भी कहना है कि चरक की भाषा सरल और अलङ्कारशून्य है। वेद के ब्राह्मण भागों के साथ उसकी समानता उपलब्ध होती है। डा० ब्यूलर कहते हैं कि द्वितीय शताब्दी की भाषा काव्यमय थी। गिरनार और नासिक में जो लेख मिले हैं उनकी भाषा सप्तम शताब्दी के बाण भट्ट और सुबन्धु की भाषा से अपेक्षा कृत सरल है। सप्तम शताब्दी की भाषा अलङ्कार पूर्ण है। चरक की भाषा और भी सरल है। अतएव चरक सुश्रुत आदि ग्रन्थों से पहले का बना हुआ है यही सिद्ध होता है। बौद्ध धर्म के प्रादुर्भाव के पहले चरकसंहिता प्रचलित थी-यह बात निर्विवाद स्वीकार की जा सकती है। (भारतवर्षीय इतिहास)

चरनदास=ये हिन्दी के एक कवि थे और जाति के ब्राह्मण थे। पण्डितपुर ज़ि० फ़ैज़ाबाद के ये रहने वाले थे। ये भाषानिबन्ध रचना में प्रौढ़ विद्वान् थे। इनका बनाया ग्रन्थ "ज्ञानस्वरोदय" एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इनका जन्म १४८० ई० में हुआ था।

चरनदासी=वैष्णव सम्प्रदाय के अन्तर्गत एक सम्प्रदाय का नाम। चरनदास नामक कोई मनुष्य इसका प्रवर्तक है। इस सम्प्रदाय का आदि स्थान दिल्ली शहर में है। दूसरे आलमगीर के समय में यह सम्प्रदाय चला है। इसके अनुयायी श्रीकृष्ण को परब्रह्म समझते हैं। तुलसी या शालिग्राम की ये पूजा नहीं करते हैं। इस सम्प्रदाय के शिष्य भी चरनदासी कहे जाते हैं।

चाचकदेव=जैसलमेर के एक राजा का नाम। ये केलन जी के पुत्र थे। केलन जी की मृत्यु होने पर सन् १२१६ ई० में चाचकदेव गद्दी पर बैठे। कुछ दिनों के बाद इन्होंने चन्ना जाति के राजपूतों के साथ युद्ध किया। इस युद्ध में दो हज़ार चन्ना जाति के राजपूत मारे गये थे। पुनः रावल चाचकदेव ने सोढ़ा के अधीश्वर राणा अमरसिंह के देशों पर आक्रमण किया, उसने भी सामना किया। अन्त में परास्त हो कर उसने अपनी कन्या चाचकदेव को व्याह दी, जिससे वह रक्षित हुआ। कान्यकुब्ज के राठौर धीरे धीरे मरु देश पर अपना अधिकार फैला रहे थे, उन्होंने मरु देश के कुछ भाग पर अपना अधिकार भी जमा लिया था। इससे रावल

चाचकदेव ने सोढ़ा नरेश्वर की सेना के साथ अपनी सेना मिला कर उनका सामना किया। अन्त में छाड़ा और टीडा दो राठौर वीरों ने अपनी कन्याओं को दे कर चाचकदेव का क्रोध शान्त किया। इस राजा ने ३२ वर्ष तक राज्य किया था। अन्त में अन्य राजाओं के समान इनका भी परलोक हुआ।

(टाडस् राजस्थान)

चाणक्य=प्रसिद्ध नीतिशास्त्रवेत्ता पण्डित। इन का जन्म चणक वंश में हुआ था। इस कारण लोग इन्हें चाणक्य कहते थे। इनका दूसरा नाम कौटिल्य था। अन्नपूर्ण घड़े को कूट कहते हैं, उस घड़े के स्वामी का नाम कूटल है। जो एक वर्ष के खाने योग्य अन्न सञ्चित कर के रखते हैं, उन्हें कूटल या कुम्भी-धान्य कहते हैं। चाणक्य के पूर्वपुरुष उसी श्रेणि के गृहस्थ थे। इस कारण इनकी कौटिल्य संज्ञा हुई है। प्रसिद्ध बौद्धशास्त्रवेत्ता रिज़ डेविस का मत है कि चन्द्रगुप्त सन् ३२० ई० में राजा हुए थे। अत एव चाणक्य का भी वही समय है। इन्हींकी बुद्धि से चन्द्रगुप्त नवनन्दों का नाश कर राजा बना था। (देखो अर्थशास्त्र और चन्द्रगुप्त)

चाणूर=यह यवन देश का राजा था और इसे श्रीकृष्ण ने मारा था। इसका उल्लेख महाभारत में हुआ है।

चामुण्डा=दुर्गा की एक मूर्ति का नाम। सेनापति चण्ड मुण्ड के मारने से इनका "चामुण्डा" नाम हुआ था।

चारुदत्त=राजा शूद्रक कृत "मृच्छकटिक" नाटक के नायक का नाम। ये ब्राह्मण थे। वसन्तसेना नाम की एक वेश्या पर ये अनुरक्त थे। उसी वेश्या की हत्या के अपराध में चारुदत्त पकड़े गये। चारुदत्त का एक शत्रु था जिसका नाम था वासुदेव। वह अपने को राजमहिषी का भाई बताया करता था। वेश्या वसन्तसेना से चारुदत्त का बहुत प्रेम था। वासुदेव भी वसन्तसेना को चाहता था, परन्तु वसन्तसेना उससे घृणा करती थी। इसी कारण वासुदेव ने वसन्तसेना को खूब मारा, और हत्या का अपराध चारुदत्त पर लगा कर, उन्हें पकड़वा दिया। विचारकों ने उनको बुलवाया, चारुदत्त के अपराध पर विचारकों को सन्देह हुआ। उसी समय चारुदत्त का एक मित्र वसन्तसेना के अलङ्कार ले कर आया। चारुदत्त पर अपराध प्रमाणित हुआ। विचारकों ने चारुदत्त को प्राणदण्ड की आज्ञा दी। उधर एक बौद्ध संन्यासी के उपचार से वसन्तसेना जी उठी। जिस समय चारुदत्त के मारे जाने का उद्योग हो रहा था उस समय वसन्तसेना वहाँ उपस्थित हुई। चारुदत्त बच गये। अन्त में चारुदत्त और वसन्तसेना का विवाह हुआ था। (मृच्छकटिक)

चारुदेष्ण=हरिवंश वर्णित चन्द्रवंशी गण्डूष के ज्येष्ठ पुत्र का नाम। ये देवमीढ़ूष के पौत्र थे।

चार्वाक=नास्तिक्य मत प्रवर्तक मुनि। देवगुरु बृहस्पति इस दर्शन के प्रवर्तक हैं। इनके शिष्य चार्वाक ने इस दर्शन का प्रचार किया था। इस कारण इस दर्शन को चार्वाक दर्शन कहते हैं। चारु अर्थात् साधारण दृष्टि से मनोहर वाक्य इस दर्शन में हैं। इस कारण भी इस दर्शन को चार्वाक दर्शन कहते हैं। बृहस्पति नामक अनेक ऋषियों का और चार्वाक नामक अनेक व्यक्तियों का भी परिचय मिलता है। अतएव चार्वाक दर्शन के प्रवर्तक और प्रचारक के विषय में भी मतभेद होना स्वाभाविक है। ऋग्वेद में दो बृहस्पति नाम के ऋषियों का उल्लेख है। एक आङ्गिरस हैं और दूसरे लौक्य। तैत्तिरीयसंहिता में देवपुरोहित बृहस्पति का परिचय पाया जाता है। मैत्रेयी उपनिषद् में लिखा है कि असुरों के बुद्धिभ्रंश होने के लिये बृहस्पति ने नास्तिक्य मत चलाया। इसीलिये बृहस्पति ने दैत्यगुरु शुक्राचार्य का रूप धारण कर अविद्या की सृष्टि की। उसी अविद्या में पड़ कर दैत्य वेदादि शास्त्रों का तिरस्कार करने लगे और हित बात को अहित समझने लगे। संहिताकारों में भी बृहस्पति का नाम देखा जाता है। बृहस्पतिसंहिता २६ संहिताओं के अन्तर्गत है। महाभारत में भी दो बृहस्पति देखे जाते हैं। उनमें एक ने "अहिंसा परमो धर्मः" का प्रचार किया था,

दूसरे ने वज्रनाशास्त्र बनाया था। मैत्रेयी उपनिषद् बृहस्पति और यह वज्रनाशास्त्रप्रणेता बृहस्पति दोनों एक ही हैं—ऐसा विद्वानों का अनुमान है। वे ही चार्वाक दर्शन के प्रवर्तक बृहस्पति हैं। चार्वाक नामक भी अनेक व्यक्तियों का परिचय मिलता है। बृहस्पति के शिष्य चार्वाक तो हैं ही महाभारत के शान्तिपर्व में दुर्योधन के मित्र चार्वाक का उल्लेख हुआ है, जो युधिष्ठिर की निन्दा करने के कारण ब्रह्मकोप से भस्म हो गया था। खीष्टीय तीसरी सदी में भी एक चार्वाक नामक मनुष्य ने नास्तिक्य मत का प्रचार किया। इसका भी प्रमाण पाया जाता है। लोकायतिक, नास्तिक्य, बार्हस्पत्य और पाखण्ड आदि नामों से चार्वाक का परिचय होता है। परलोक नहीं मानते इस कारण लोकायत, ईश्वर नहीं मानते इस कारण नास्तिक्य, बृहस्पति का चलाया है इस कारण बार्हस्पत्य नाम से—इसका अभिधान होता है।

(भारतवर्षीय इतिहास)

चार्वाक दर्शन—इस दर्शन के संक्षिप्त प्रतिपाद्य विषय ये हैं। देह भिन्न आत्मा का अस्तित्व नहीं है। आत्मा ही देह है, आत्मा के नाश होने से देह का नाश होता है। इस संसार में सुख ही परम पुरुषार्थ है। प्रत्यक्ष के अतिरिक्त दूसरा प्रमाण नहीं है। पृथिवी, जल, वायु और अग्नि इन चार भूतों से समस्त सृष्टि उत्पन्न हुई है। भूतों ही से चैतन्य भी उत्पन्न हुआ है। परलोक या पुनर्जन्म नहीं है। मृत्यु ही मुक्ति है। चार्वाक कहते हैं कि संसार सुख दुःखयुक्त है; इस कारण जो लोग सुख भोग की उपेक्षा करते हैं, वे मूर्ख पशु हैं। फल में छिलका या गुठली है इससे क्या कोई फल का त्याग करता है। फलतः चार्वाक मत में सांसारिक भोग-सुख ही सुख है, और परलोक मिथ्या है। जिस प्रकार गुड़ और तण्डुल के संयोग से, उसमें मादकता उत्पन्न हो जाती है, उसी प्रकार पञ्चभूतों के संयोग से भी चैतन्य उत्पन्न हो जाता है और इन भूतों के नाश से शरीर का नाश हो जाता है, देह के नाश होने पर पुनः उसकी उत्पत्ति होने की सम्भावना नहीं है। मैं स्थूल हूँ, कृश हूँ, आत्मा शरीर से भिन्न है, आदि धारणाएँ केवल लौकिक कल्पना-प्रसूत हैं। देह नाश होना ही पदार्थों की अन्तिम अवस्था है। अतएव चार्वाक कहते हैं, जो हो सके इसी जन्म में सुख भोग लो, जितने दिन तक जीओ, सुख भोग लो, ऋण कर के भी घी खाया करो, क्योंकि शरीर के भस्म होने पर, पुनः उसके उत्पन्न होने की सम्भावना नहीं है। कहा भी है—

"यावज्जीवं सुखं जीवेदृणं कृत्वा घृतं पिबेत्।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः ?॥"

स्वर्ग, अपवर्ग, परलोक, वर्णाश्रम धर्म, वैदिक क्रिया कर्म आदि किसी की भी सार्थकता चार्वाक नहीं मानते हैं। उनके मत से ये सब धूर्तों की चालाकी है। ये सब मूर्खों के जीने के केवल उपाय हैं। यदि यज्ञ में मारा हुआ जीव सचमुच स्वर्ग में जाता है, तो यजमान अपने पिता ही का बलिदान क्यों नहीं करता। श्राद्ध आदि के पिण्डदान से यदि प्रेतों की तृप्ति होती है, तो नीचे रखे हुए अन्न से अटारी पर बैठे हुए मनुष्य की तृप्ति होनी चाहिये। चार्वाकों के मत से शास्त्रापेक्षा युक्ति ही की प्रबलता है। उन्होंने कहा है—

"केवलं शास्त्रमाश्रित्य न कर्तव्योऽर्थनिर्णयः।
युक्तिहीनविचारे तु धर्महानिः प्रजायते॥"

प्रत्यक्ष प्रमाण के अतिरिक्त दूसरा प्रमाण भी चार्वाक नहीं मानते। वे कहते हैं अनुमान आदि प्रमाण भ्रमपूर्ण हैं। क्योंकि बिना व्याप्ति ज्ञान के अनुमान नहीं हो सकता। व्याप्ति ज्ञान भी प्रत्यक्ष के द्वारा ही होता है। वर्तमान वस्तुओं ही का ज्ञान प्रत्यक्ष होता है, भूत और भविष्य का नहीं। चार्वाक शब्द प्रमाण को भी नहीं मानते, अतएव वे वेदों को भी नहीं मानते, ईश्वर का अस्तित्व उनके मत से सिद्ध नहीं होता। अतएव वेद-विहित-धर्म कर्म को छोड़ कर सांसारिक सुख ही को सर्वस्व और प्रधान कर्तव्य मानना उनका उद्देश्य है। असुरों का बुद्धिनाश करने के लिये, बृहस्पति ने इस दर्शन शास्त्र का प्रचार किया था, सुतरां इसके अनुसार चलने वालों का अधःपात हिन्दूमतानुसार अवश्यम्भावी है।

चितेयु=अग्निपुराण वर्णित चन्द्रवंशी भद्राश्व के दस पुत्रों में से पञ्चम पुत्र का नाम।

चित्रक=चन्द्रवंशी राजा वृष्णि के छोटे पुत्र का नाम।

चित्रकूट=पुरुवंशी राजा आयु के वंशज शुचि के पुत्र का नाम।

चित्रगुप्त=ब्रह्मा के अङ्गजात एक पुत्र। ब्रह्मा जगत् सृष्टि कर, जब ध्यानमग्न थे, तब उनके अङ्ग से अनेक वर्णों से चित्रित कलम दवात लिये एक पुरुष उत्पन्न हुआ। इस मनुष्य ने उत्पन्न होते ही ब्रह्मा से पूँछा कि कहाँ और कौन काम हमको करना होगा? यह सुन ब्रह्मा ध्यानमग्न हुए और योगनिद्रा के अवसान होने पर उन्होंने कहा कि तुम मनुष्यों के पाप पुण्यों के विचार लिखने के लिये यमराज के यहाँ जा कर रहो। मनुष्यों के चित्रविचित्र कर्म इनके द्वारा गुप्त होते हैं इस कारण इनका नाम चित्रगुप्त है। ब्रह्मा ने यह और कहा कि तुम हमारे काय से उत्पन्न हुए हो, इस कारण लोग तुम को कायस्थ कहेंगे। इनके अम्बष्ठ, माथुर, गौर आदि नौ पुत्र हुए थे।

(भविष्यपुराण)

मनुष्यों की शुभाशुभ कर्म लिपि चित्रगुप्त ही लिखते हैं। यमलोक के पास एक चित्रगुप्तलोक भी वर्त्तमान है। वहीं चित्रगुप्त की आज्ञा से कायस्थ पाप पुण्य का विचार करते हैं।

(गरुड़पुराण)

कार्तिक मास की शुक्ल द्वितीया को इनकी पूजा होती है। इस द्वितीया का नाम यमद्वितीया है। शापप्राप्त राजा सुदास इसी यमद्वितीया को चित्रगुप्त की पूजा कर के स्वर्ग गये थे। भीष्मपितामह ने भी चित्रगुप्त की उपासना कर के इच्छामृत्यु का वर पाया था।

चित्ररथ=(१) गन्धर्व विशेष। इनका असली नाम अङ्गारपर्ण था। इनके पास एक चित्रित रथ था; इस कारण इनको चित्ररथ भी कहते हैं। इनकी स्त्री का नाम कुम्भीनसी था। पाण्डवों के वनवास के समय में अर्जुन ने अङ्गारपर्ण को परास्त कर दिया था। इस कारण अङ्गारपर्ण ने अपने रथ को जला दिया। तबसे दग्धरथ नाम से इनकी प्रसिद्धि हुई।

(२) ये धर्मरथ के पुत्र थे। बलिराज के क्षेत्रज पुत्र अङ्ग, अङ्ग देश के अधिपति थे। राजा अङ्ग के पुत्र का नाम था महाराज दधिवाहन, दधिवाहन के पुत्र दिविरथ, दिविरथ के पुत्र का नाम धर्मरथ था। चित्ररथ राजा धर्मरथ ही के पुत्र थे। (हरिवंश)

चित्रलेखा=दैत्यराज बाण की कन्या ऊषा की सखी, और बाणमन्त्री कूष्माण्ड की कन्या। इसने ऊषा के कहने से और नारद की सहायता से अनिरुद्ध को श्रीकृष्ण के अन्तःपुर से हर लिया था।

चित्रसेन=गन्धर्व विशेष। दुःखी पाण्डव जिस समय द्वैतवन में दिन काट रहे थे उस समय अपना ऐश्वर्य दिखाने के लिये दुर्योधन अपने साथी नौकर चाकर सेना आदि से सज धज कर, आभीरपल्ली देखने के बहाने द्वैतवन में गया। उसी वन में एक सरोवर के किनारे चित्रसेन नामक गन्धर्व रहता था। सरोवर के तीर से गन्धर्वों को हटा देने के लिये दुर्योधन ने अपनी सेना को आज्ञा दी। दोनों ओर से युद्ध होने लगा, युद्ध में दुर्योधन की सेना को गन्धर्वों ने हरा दिया, कुछ देर तक कर्ण लड़ते रहे, परन्तु पीछे वह भी अपनी रक्षा करने के लिये भाग गये। दुर्योधन क़ैद कर लिये गये। उनकी स्त्रियाँ गन्धर्वों के हाथ में पड़ गयीं। दुर्योधन के मन्त्री भाग कर युधिष्ठिर की शरण में गये, और उन लोगों ने दुर्योधन और कौरव-कुल-वधुओं की दुर्दशा कह कर उनसे सहायता माँगी। दुर्योधन को सहायता देने की इच्छा, भीम की बिलकुल न थी, परन्तु महानुभाव युधिष्ठिर के बहुत समझाने पर भीम समझ गये। युधिष्ठिर ने भीम अर्जुन और नकुल सहदेव को दुर्योधन का उद्धार करने के लिये भेजा। भीम अर्जुन के साथ गन्धर्वों की सेना का युद्ध हुआ। युद्ध में गन्धर्वों की सेना परास्त हो कर भाग गयी। स्वयं गन्धर्वराज चित्रसेन युद्धक्षेत्र में उपस्थित हुए, परन्तु उन्होंने अर्जुन से युद्ध नहीं किया। गन्धर्वराज

दुर्योधन और रानियों को ले कर भीम अर्जुन के साथ युधिष्ठिर के समीप गये। युधिष्ठिर ने दुर्योधन और उनकी स्त्रियों को छुड़वा कर प्रसन्नता के साथ बिदा किया और चित्रसेन ने अपने बन्दियों के साथ बहुत उत्तम व्यवहार किया है इसके लिये उसकी प्रशंसा की। दुर्योधन का अभिमान चूर हो गया, वह अपना सा मुँह लिये हुये घर लौट गया।

(महाभारत)

चित्राङ्गद=महाराज शन्तनु का पुत्र और भीष्म का सौतेला भाई। यह सत्यवती के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। इसके छोटे भाई का नाम विचित्रवीर्य था। विचित्रवीर्य की जवानी ही में शन्तनु का परलोक वास हुआ था। भीष्म ने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार ही राजपद ग्रहण करना अस्वीकार किया, इससे चित्राङ्गद राजा बनाये गये। चित्राङ्गद प्रजाप्रिय राजा थे। चित्राङ्गद नामक एक गन्धर्व के साथ इन चित्राङ्गद का तीन वर्ष तक युद्ध होता रहा, अन्त में उसी युद्ध में ये मारे गये।

(महाभारत)

चित्राङ्गदा=अर्जुन की एक स्त्री का नाम। यह मनीपुर के राजा चित्रवाहन की कन्या थी। इसके गर्भ से बभ्रुवाहन नामक एक वीर पुत्र उत्पन्न हुआ था, बभ्रुवाहन ही मनीपुर का राजा हुआ क्योंकि उसके मातामह के कोई पुत्र न था। (महाभारत)

चिन्तामणि त्रिपाठी=यह हिन्दी के एक कवि थे। टिकमापुर ज़ि० कानपुर के ये रहने वाले थे और सन् १६२० ई० में विद्यमान थे। ये भाषा निबन्ध रचना के प्रौढ़ विद्वान् थे। इनके विषय में यह एक आख्यायिका प्रचलित है कि इनके पिता देवी के परम भक्त थे। एक दिन प्रसन्न हो कर देवी ने इन्हें दर्शन दिये और चार खोपड़ी दिखा कर कहा कि ये चारों तुम्हारे पुत्र होंगे। तदनुसार उनके चार पुत्र हुए, जिनके नाम थे–चिन्तामणि, भूषण, मतिराम और जटाशङ्कर। जटाशङ्कर का दूसरा नाम नीलकण्ठ था। ये एक महात्मा के आशीर्वाद से बड़े प्रसिद्ध कवि हुए। इनके और तीनों भाई संस्कृत पढ़ने लगे और प्रसिद्ध विद्वान् हुए। चिन्तामणि बहुत दिनों तक नागपुर के भोंसला मकरन्द शाह के दरबार में रहे। इन्हींके नाम पर चिन्तामणि ने "छन्दविचार" नामक एक ग्रन्थ बनाया है इनके बनाये ये ग्रन्थ हैं (१) "काव्यविवेक" (२) "कविकुलकल्पतरु" (३) "काव्यप्रकाश" (४) और "रामायण"।

चिप्पट जयापीड=काश्मीर के एक राजा का नाम। ललितापीड के औरस और जयादेवी नामक एक वेश्या के गर्भ से ये उत्पन्न हुए थे, इनका दूसरा नाम बृहस्पति था। पृथिव्यापीड का परलोक वास होने पर इनका राज्याभिषेक हुआ। राज्याभिषेक के समय चिप्पट जयापीड बालक ही थे। जयादेवी के पाँच भाई थे। अपने भानजे के राजा होने से उन लोगों ने राज्य के बड़े बड़े काम अपने हाथ में ले लिये थे। राजा बालक ही था, अतः वे राज्य में मनमाने उपद्रव मचाने लगे। चिप्पट जयापीड का जब बाल्य काल व्यतीत हुआ, तब इनके मामाओं ने सोचा कि यदि राजा जान लेगा कि ये राज्य का धन मनमाना अपहरण करते हैं; तो अवश्य ही हम लोगों का विनाश कर डालेगा। अतएव किसी प्रकार इसीको समाप्त करना उचित है। यही सोच कर उन्होंने कृत्या द्वारा राजा चिप्पट जयापीड को मरवा डाला। चिप्पट जयापीड ने १२ वर्ष तक राज्य किया था।

(राजतरङ्गिणी)

चिरञ्जीव=हिन्दी भाषा के एक कवि। ये बैसवारा के रहने वाले थे और इनका जन्म सन् १११३ ई० में हुआ था। कहा जाता है इन्होंने भाषा में महाभारत का अनुवाद किया था।

चूडामणि=इनका जन्म सन् १८०४ ई० में हुआ था। ये हिन्दी के कवि थे। इन्होंने अपने दो अन्नदाताओं की अर्थात् गुमानसिंह और अजितसिंह की प्रशंसा में पद्य रचे थे।

चूली महर्षि=वाल्मीकि रामायण में इनका उल्लेख किया गया है। ये ब्रह्मचारी तपस्वी थे। उर्मिला की कन्या सोमदा नामक एक गन्धर्वी इनकी उपासना करती थी, बहुत दिनों तक उपासना करने पर महर्षि प्रसन्न हुए और पूँछा–तुम क्या

चाहती हो? उसने कहा मैं ब्रह्मचारिणी हूँ। मुझे एक योगी पुत्र होने की अभिलाषा है कृपया आप मुझे पुत्रदान दें। महर्षि ने उसे पुत्र दिया। उस पुत्र का नाम ब्रह्मदत्त रखा गया इसीने काम्पिल नामक नगर बसाया था।

(रामायण)

चेतनचन्द्र=हिन्दी के एक कवि। इनका जन्म सन् १५५६ ई० में हुआ था। इन्होंने शालिहोत्र सम्बन्धी एक ग्रन्थ रचा, जिसका नाम "अश्व-विनोद" रखा। यह ग्रन्थ उन्होंने सोमवंशीय राजा कुशलसिंह के लिये लिखा था।

चेदि-राज्य=यह एक प्राचीन राज्य का नाम है। महाभारत तथा अन्यान्य पुराणों में इसका उल्लेख किया गया है। उपरिचरवसु को चेदि का राजा बताया है। दमघोषपुत्र शिशुपाल को भी चेदि देश का राजा बताया है। पुरुवंशी राजा क्रोष्टु के वंश में भी एक चेदि नामक राजा हुए थे। चेदि देश कहाँ था और इस समय उसका कुछ पता है कि नहीं? पुराणों के पढ़ने से मालूम होता है कि समय समय पर चेदि राज्य अनेक देशों में स्थापित हुआ था। प्रत्नतत्त्व-वेत्ताओं में से कतिपय व्यक्तियों का कहना है कि बुन्देलखण्ड और बघेलखण्ड के समीप ही चेदियों की राजधानी थी। दूसरे कहते हैं कि नर्मदा नदी के तीर पर चेदि राज्य स्थापित था। चेदिवंश ही का हैहयवंश दूसरा नाम है। त्रैपुर, डाहल, और चैद्य आदि नामों से भी इसका परिचय होता था। खृष्टीय पाँचवीं सदी में नर्मदा के तीर पर चेदि राज्य का विशेष अभ्युदय हुआ था। उस समय कालिञ्जर दुर्ग में चेदि राजाओं की राजधानी स्थापित हुई थी। खृष्टाब्द के २४६ वर्ष पूर्व, चेदि-राज-वंश ने एक संवत् चलाया था। उसी समय कालिञ्जर दुर्ग पर उन लोगों का अधिकार हुआ था। एक समय दक्षिण में कर्नाट तक और उत्तर में बुन्देलखण्ड पर्यन्त चेदि राज्य की सीमा विस्तृत थी। खृष्टीय दसवीं सदी में चन्देल वा चन्द्रादित्यवंशी क्षत्रियों का अधिकार चेदि राज्य पर हुआ था। गुजरात के बघेलवंशियों के भी अधिकार में कुछ दिनों तक चेदि राज्य रहा है। पुनः वह मुसल्मानों के अधिकार में आ गया। नर्मदा नदी के उत्पत्ति स्थान के समीप चेदि राज्य प्रतिष्ठित हुआ था, ऐसा अनुमान से सिद्ध होता है। पुनः चेदि राज्य दो भागों में विभक्त हुआ। उस समय एक भाग का नाम महाकोशल और दूसरे भाग का नाम चेदि राज्य पड़ा। मध्यभारत में मनीपुर नामक एक नगरी का पता पाया जाता है, वही महाकोशल की राजधानी थी, त्रिपुर वा चेदि—चेदि राज्य की राजधानी का नाम है।

चैत्ररथ=चन्द्रवंशी कुरु के पुत्रों में से एक का नाम।

चोर कवि=ये संस्कृत के प्रसिद्ध काश्मीरी कवि हैं। इनका दूसरा नाम बिल्हण है। इनके बनाये ग्रन्थों का नाम "चौरपञ्चाशिका" "विक्रमाङ्कदेवचरित" और "कर्णसुन्दरी" नाटिका है। इन्होंने और भी कई ग्रन्थ बनाये होंगे; परन्तु इन तीनों को छोड़ औरों का पता नहीं चलता। "सुभाषितावली" में कुछ श्लोक इनके नाम से उद्धृत किये गये हैं। "चौर-पञ्चाशिका" की रचना के विषय में सुना जाता है कि बिल्हण जब गुजरात के राजा वैरीसिंह की बेटी शशिकला को पढ़ाने के लिये नियत किये गये, तब वे उसके यौवन और सौन्दर्य पर मोहित हो गये और उसके साथ गन्धर्वविधि से उन्होंने अपना व्याह कर लिया। इस वृत्तान्त के राजा के कान तक पहुँचने में विलम्ब न लगा, राजा ने कवि का वध किये जाने की आज्ञा दी। वध्यस्थान पर पहुँचने के पहले ही कवि ने अपनी प्रियतमा के वर्णन में पचास श्लोक रच डाले। राजा ने इस काव्यरचना की भी बात सुनी और उसने न केवल कवि के प्राण ही बचाये; किन्तु अपनी बेटी भी उन्हें व्याह दी। परन्तु यह आख्यायिका निर्मूल जान पड़ती है क्योंकि गुजरात का राजा वैरीसिंह सन् ९२० ई० में मर गया और विक्रमाङ्कदेवचरित द्वारा विदित होता है कि बिल्हण खृष्टीय ग्यारहवीं शताब्दी के अन्त में काश्मीर से बाहर निकले और उस समय गुजरात में चालुक्य वंश का और भीमदेव का पुत्र कर्णराज, राज्य कर रहा

था। इतना तो अवश्य सिद्ध होता है कि बिल्हण को गुजरात में कुछ क्लेश अवश्य मिला था, जिससे उन्होंने सोमनाथ जी का दर्शन कर के भुला दिया। जान पड़ता है कि इस समय सोमनाथ की वह शोभा न रही होगी, जो महमूद गज़नवी की चढ़ाई के पहले थी। जैसा मार्शम्यान आदि इतिहास लिखने वालों ने लिखा है। यदि गज़नी के लुटेरे के पूर्व बिल्हण ने सोमनाथ का दर्शन किया हो, तो सम्भव है कि वे सन् ६२० ई० के वैटोसिंह के समकालीन रहे हों, किन्तु न तो "राजतरङ्गिणी" और न "विक्रमाङ्कदेवचरित" इस विषय में कुछ सहायता देते हैं। "राजतरङ्गिणी" के द्वारा ज्ञात होता है कि काश्मीर के राजा कलश ने सन् १०६४ ई० से ले कर सन् १०८८ ई० पर्यन्त राज्य किया। इसी राजा के समय बिल्हण काश्मीर को छोड़ भ्रमण के लिये बाहर निकले। "विक्रमाङ्कदेवचरित" द्वारा जाना जाता है कि बिल्हण मथुरा, कन्नौज, बनारस, प्रयाग, अयोध्या, धार, गुजरात आदि प्रान्तों में घूमते हुए, सेतुबन्ध रामेश्वर तक जा पहुँचे थे।

व्यूलर साहब अनुमान करते हैं कि, बिल्हण लगभग सन् १०६५ ई० में भारतवर्ष के भिन्न भिन्न राजाओं के दरबार में गये होंगे और अन्त में जा कर पश्चिमी चालुक्य के राजा विक्रमदेव के यहाँ ठहरे हों, जिनके वर्णन में उन्होंने "विक्रमाङ्कदेवचरित" नामक काव्य बनाया है। पश्चिमी चालुक्य के राजा विक्रमदेव सन् १०७६ ई० में राजगद्दी पर बैठे थे।

बिल्हण ने विक्रमाङ्कदेवचरित में अपने वंश का कुछ वर्णन भी किया है और अपने पुरुषों का निवास-स्थान खोनमुख नामक एक काश्मीर का गाँव बताया है। काश्मीर के खोनमुख नामक गाँव में कौशिक गोत्र में उत्पन्न वेद शास्त्रादि में निपुण मुक्तिकलश नामक एक पण्डित थे। मुक्तिकलश के पुत्र का नाम राजकलश था और राजकलश के बेटे का नाम ज्येष्ठकलश था। ज्येष्ठकलश की पत्नी का नाम नागादेवी था। यही नागादेवी बिल्हण की माता थीं। बिल्हण के जेठे भाई का नाम इष्टराम और छोटे भाई का नाम आनन्द था।

बिल्हण शरीर से बहुत सुन्दर थे, यदि चौरपञ्चाशिका की आख्यायिका सत्य हो तो आश्चर्य नहीं कि राजकन्या इनके गुणों में से सौन्दर्य को प्रधान समझ, इन पर मोहित हुई हो।

निदान बिल्हण काश्मीरी कवि थे। "कर्णसुन्दरी" नाटिका के आरम्भ में इन्होंने जिन देव से सभासदों के कल्याण की प्रार्थना की है। इनका समय खृष्टीय ग्यारहवीं सदी माननी ही युक्तियुक्त है।

कुछ लोगों का मत है कि चोर कवि एक और भी हैं जो गुणसिन्धु राजा के पुत्र थे। पर उनके विषय में भी बिल्हण की नाँई राजकन्या पर आसक्ति और अन्त में छुटकारे का वर्णन है। यदि ये बिल्हण से भिन्न कोई कवि हैं तो इनके समय का कुछ भी पता नहीं है। "कवी चोरमयूरौ" इस श्लोक पङ्क्ति के अनुसार यदि चोर को मयूर का समकालीन मान लें तो चोर भी मयूर के समान खृष्टीय सातवीं सदी के आरम्भ में वर्तमान माने जा सकते हैं।

चोल=(१) प्राचीन एक राज्य का नाम। ग्रन्थों में चोल राज्य की सीमा के विषय में लिखा है "द्राविडतैलङ्गयोर्मध्ये चोलदेशः प्रकीर्तितः"। अर्थात् द्राविड़ और तैलङ्ग के मध्यस्थान को चोल देश कहते हैं। चीनी परिव्राजक ने जिस समय इस राज्य को देखा था उस समय इस राज्य की दशा बहुत बिगड़ी हुई थी, सैनिक लूट पाट कर रहे थे। वहाँ की प्रजा इन्द्रियपरायण और नृशंस हो गयी थी। (देखो पाण्ड्य)

(२) हरिवंश वर्णित चन्द्रवंशी राजा आक्रीड के चार पुत्रों में से एक का नाम।

च्यवन=(१) एक प्रसिद्ध प्राचीन ऋषि। भृगु के औरस और पुलोमा के गर्भ से इनकी उत्पत्ति हुई थी। कोई राक्षस इनकी गर्भवती माता को बलात्कारपूर्वक हरण किये जा रहा था। इससे गर्भस्थ बालक क्रुद्ध हो कर ज़मीन पर गिर पड़ा और क्रोधाग्नि से उस बालक ने राक्षस का नाश कर दिया। वह बालक गर्भ से च्युत

हुआ था। इस कारण पतनार्थक च्यु धातु से सिद्ध च्यवन इनका नाम रखा गया। एक दिन च्यवन देवसभा में बैठे थे। वहाँ उनको विदित हुआ कि कुशिकवंश का क्षात्र तेज उनके वंश में संक्रान्त होगा। इससे वे बड़े चिन्तित हुए। उनके सात्त्विक ब्राह्मणवंश में उग्र क्षात्र तेज न घुसने पावे, इसके लिये च्यवन ऋषि ने शाप दे कर कुशिकवंश का नाश करना चाहा। च्यवन ने कुशिक और उनकी स्त्री से अपना भृत्यकर्म लेना प्रारम्भ किया। वे भी इनकी सेवा करने लगे। वे सर्वदा उनके समीप उपस्थित रहते थे। च्यवन ने एक दिन राजा और रानी से अपनी पालकी उठवायी थी, उस समय च्यवन ने उन्हें कोड़े मारे थे। परन्तु उन लोगों ने च्यवन के अत्याचारों को बड़ी प्रसन्नता से सहा। राजा और रानी के किसी भी व्यवहार से च्यवन को क्रोध न आया। विना क्रोध आये शाप दे भी कैसे सकते हैं। अतएव च्यवन को अपना सङ्कल्प छोड़ना पड़ा। राजा और रानी को वर दे कर मुनि अपने आश्रम में लौट आये। ऋषि ने अपनी तपस्या के प्रभाव से कुशिक और उनकी रानी को अपने आश्रम में स्वर्ग की शोभा दिखाई थी। च्यवन के पुत्र का नाम और्व और पौत्र का नाम ऋचीक था। ऋचीक महाराज कुशिक के पुत्र गाधिराज की कन्या से व्याहे गये थे। ऋचीक के पुत्र का नाम जमदग्नि और पौत्र का नाम राम था। ये ही राम, परशुराम के नाम से प्रसिद्ध हुए। इधर गाधिराज को विश्वामित्र नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ था, जिसने कठोर तपस्या द्वारा ब्राह्मणत्व लाभ किया था।

एक समय च्यवन एक सरोवर के तीर के वन में बहुत दिनों से तपस्या कर रहे थे। आँखों के अतिरिक्त उनका और समस्त शरीर वल्मीक से ढपा था। राजा शर्याति की कन्या सुकन्या संयोगवश उस वन में गयी। उसने च्यवन की आँखों को चमकीला पदार्थ समझ काँटे से खोद दिया। महर्षि क्रुद्ध हुए। उनके क्रोध से राजा शर्याति के सैनिकों एवं अनुचरों का मल मूत्र बन्द हो गया। सब व्यग्र हो गये। पहले तो इसका कारण किसी की समझ में न आया पीछे बहुत ढूँढ़ने पर विदित हुआ। राजा मुनि की शरण में गये। बहुत प्रार्थना करने पर मुनि प्रसन्न हुए और उन्होंने सुकन्या का अपने साथ विवाह कर देने का अनुरोध किया। राजा कर ही क्या सकते थे। उन्होंने स्वीकार किया। सुकन्या भी बूढ़े पति के साथ विवाह करने को राज़ी हो गयी। एक समय स्वर्गीय वैद्य अश्विनीकुमार द्वय ने सुकन्या को देखा, और देख कर वे उस पर आसक्त हो गये। अश्विनीकुमार द्वय ने बूढ़े पति को छोड़ कर अपने से विवाह करने के लिये सुकन्या से अनुरोध किया, परन्तु उस पतिव्रता ने स्वीकार न किया। सुकन्या का पातिव्रत्य देख कर अश्विनीकुमार बड़े प्रसन्न हुए और औषधादि द्वारा च्यवन को उन लोगों ने जवान बना दिया। वैद्यक शास्त्र में लिखा है कि जिस औषधसेवन से बूढ़े च्यवन जवान हुए थे, उसका नाम भी उन्हींके नामानुसार " च्यवनप्राश " पड़ गया। महर्षि च्यवन ने इस उपकार के बदले अपने श्वसुर के यज्ञ में अश्विनीकुमारों को यज्ञ भाग दिया था। इससे इन्द्र क्रुद्ध हो गये और उन्होंने महर्षि पर वज्र चलाया। महर्षि ने इन्द्र के हाथों को स्तम्भित कर दिया और हवन से एक राक्षस उत्पन्न कर के उसको इन्द्र का वध करने के लिये कहा। तब इन्द्र मुनि की शरण में आये। मुनि ने भी क्षमा प्रदान की। आस्तिक ने च्यवन मुनि से शिक्षा पायी थी।

(महाभारत)

(२) एक वैद्य का नाम। ये बहुत प्राचीन वैद्यों में से हैं। ब्रह्मवैवर्तपुराण में लिखा है कि भास्कर के सोलह शिष्य थे जिनमें एक का नाम च्यवन था। ऋषिश्रेष्ठ च्यवन ने " जीवदान " नामक एक आयुर्वेद विषयक ग्रन्थ बनाया था।

छ

छत्र कवि=इनका जन्म सन् १५६८ ई० में हुआ था, इन्होंने महाभारत को संक्षिप्त कर एक

ग्रन्थ बनाया है जिसका नाम विजयमुक्तावली है और वह पद्य में है।

छत्रसाल=(१) ये पन्ना के राजा थे और सन् १६५० ई० में विद्यमान थे । ये गुणियों का सम्मान करने के लिये प्रसिद्ध थे । इन्होंने लाल कवि से "छत्रप्रकाश" बनवाया था । इसमें बुन्देलों का आरम्भ से छत्रसाल तक का इतिहास है । ये सन् १६५८ ई० में मारे गये ।

(२) बूँदी के एक राजा का नाम । इनका असली नाम शत्रुशाल था । इनके पिता का नाम गोपीनाथ था । राव रतन के स्वर्ग जाने पर इनका राज्याभिषेक हुआ । बादशाह शाहजहाँ ने स्वयं जा कर इनके राज्याभिषेक का उत्सव कराया था और उनका सम्मान बढ़ाने के लिये उन्हें दिल्ली के प्रधान शासनकर्ता के पद पर नियुक्त किया था । शाहजहाँ के राज्य तक इन्होंने अपना काम किया था । ये औरङ्गज़ेब की एक सेना के प्रधान सेनापति बन कर दक्षिण गये थे, वहाँ इन्होंने अपने बाहुबल का परिचय दे कर कई क़िले जीत लिये । दौलताबाद और बीदर के क़िले पर अधिकार करने के समय इनकी यथार्थ वीरता का परिचय मिला था, यह युद्ध सन् १६५३ ई० में हुआ था ।

जिस समय औरङ्गज़ेब आदि पिता को राज्य से हटा कर, स्वयं राजा बनने के लिये युद्ध में प्रवृत्त थे, उस समय राव छत्रसाल बादशाह शाहजहाँ की ओर से युद्ध करते थे, दारा के रणक्षेत्र को छोड़ कर भाग जाने पर भी छत्रसाल लड़ते रहे और अन्त में उसी युद्ध में मारे गये । (टाडस् राजस्थान)

छाया=सूर्य की पत्नी । संज्ञा नाम की एक सूर्य की स्त्री थी । इसी स्त्री के गर्भ से सूर्य के यम नामक पुत्र और यमुना नाम की कन्या उत्पन्न हुई थीं। संज्ञा ने सूर्यतेज न सह सकने के कारण अपने समान अपनी छाया से एक स्त्री बना कर उसे सूर्य के पास रख दी थी, और वह अपने पुत्रों के लालन पालन का भार उसको दे कर स्वयं अपने पिता के घर चली गयी । पिता विश्वकर्मा ने उसे बहुत झिड़का, और पति के पास लौट जाने के लिये भी कहा; परन्तु वह सूर्य के पास न जा कर, उत्तर कुरुवर्ष में चली गयी, और वहाँ घोड़ी का रूप धर कर इधर उधर विचरने लगी । इधर सूर्य ने छाया को अपनी पत्नी समझ कर उससे सावर्णि और शनैश्चर नामक दो पुत्र उत्पन्न किये । अब छाया अपने पुत्रों का अधिक आदर करने लगी, इससे क्रुद्ध हो कर यम ने विमाता के लात मारी । इस पर विमाता ने शाप दिया कि "तुम्हारे पैर गिर पड़ें" । यम ने विमाता के अत्याचार पिता से कहे । सूर्य ने शाप तो नहीं छुड़ाया और कहा कि, तुम्हारे पैर के मांस को कीड़े पृथिवी पर ले जायँगे, किन्तु उन्होंने इसके लिये छाया को फटकारा । इससे क्रुद्ध हो कर छाया ने अपनी सृष्टि की सारी कथा कह सुनायी । सूर्य विश्वकर्मा के पास गये और उन्होंने संज्ञा के दुर्व्यवहार की बातें कह कर अभियोग खड़ा किया । विश्वकर्मा ने कहा, वत्स ! तुम्हारा तेज न सह कर संज्ञा हमारे पास आयी थी, परन्तु मैंने पुनः उसे तुम्हारे ही पास लौटा दिया था । सूर्य संज्ञा को ढूँढ़ने लगे । घोड़े का रूप धारण कर वह उत्तर कुरुवर्ष में घोड़ी रूपिणी संज्ञा से जा कर मिले । उसी समय अश्विनीकुमार द्वय की उत्पत्ति हुई । अन्त में सूर्य के तेज को कम करने का ठहराव करने पर संज्ञा पुनः सूर्य के पास लौट आयी ।

छीतस्वामी=ये सन् १५६७ ई० में विद्यमान थे । ये अष्टछाप के कवियों में और विट्ठलनाथ के शिष्यों में से थे ।

छेम=इनका जन्म सन् १६३८ ई० में हुआ था । इनके विषय में विशेष पता नहीं चलता । बहुत सम्भव है शिवसिंह ने अपने सरोज में जिसको दोआब का खेमकरन लिखा है वह यही छेम हों ।

छेमकरन=इनका जन्म सन् १७७१ ई० में हुआ था और ये धनौली ज़ि० बाराबङ्की के रहने वाले थे । इनके बनाये ग्रन्थ ये हैं:—

१ रामरत्नाकर, २ रामास्पद, ३ गुरुकथा, ४ आह्निक, ५ रामगीतमाला, ६ कृष्णचरितामृत, ७ पदविलास, ८ रघुराजघनाक्षरी, ९ वृत्तभास्कर ।

इनकी मृत्यु ८०वे वर्ष की अवस्था में सन् १८६१ ई० में हुई थी ।

छेम कवि=हिन्दी के एक कवि का नाम। ये जाति के भाट थे और डालामऊ ज़ि० रायबरेली के रहने वाले थे। सन् १५३० ई० में ये विद्यमान थे। ये हुमायूँ बादशाह के दरबारी कवि थे। इनके नाम से कुछ पद्य शिवसिंहसरोज में उद्धृत किये गये हैं।

छोटूराम तिवारी=ये बनारस के रहने वाले एक कवि थे। ये सज्जन बहुत दिनों तक पटना कालेज में संस्कृत प्रोफ़ेसर थे। इनकी रामकथा नाम की पुस्तक है। यह पुस्तक छपी नहीं। केवल उसके प्रूफ ही तैयार हो पाये थे कि वे मर गये। पीछे इनके मरने पर उन प्रूफों का बड़ा आदर हुआ था।

ज

जखनाचार्य=प्रसिद्ध शिल्पकार। दक्षिण के ट्रावङ्कोर और महीशूर का राजवंश बहुत दिनों से शिल्पनिपुणता के लिये प्रसिद्ध है। वर्तमान शताब्दी में जिस प्रकार ट्रावङ्कोर के राजवंशी राजा रविवर्मा शिल्प के लिये प्रसिद्ध हुए हैं, उसी प्रकार १२ वीं शताब्दी में महीशूर राजवंश के राजा जखनाचार्य प्रसिद्ध हुए थे। कहा जाता है कि महीशूर के प्रधान प्रधान देवालय इन्हीं राजा जखनाचार्य के बनाये हैं।

जगजीवन कवि=ये एक हिन्दी के कवि थे। १७०५ संवत् में ये उत्पन्न हुए थे। इनके बनाये कवित्त हजारा में पाये जाते हैं।

जगजीवनदास चन्देल=ये चन्देले क्षत्रिय थे और कोटवा ज़िला बाराबंकी के रहने वाले थे। सतनामी पंथ इन्होंने ही चलाया। ये भाषा काव्य भी करते थे। प्रायः इनकी गद्दी पर बैठने वाले कवि ही होते आये हैं।

जगत्सिंह=(१) कोटे के एक राजा। ये राजा मुकुन्दसिंह के पुत्र थे। उनके मरने पर जगत्सिंह का कोटे के राजसिंहासन पर अभिषेक हुआ। ये दिल्ली के बादशाह की अधीनता में दो हज़ार सेना के "मनसब़दार" अर्थात् सेनापति थे। संवत् १७२६ तक जगत्सिंह दक्षिण के समर में लिप्त थे। उसी संवत् में ये अपुत्रावस्था में परलोकवासी हुए।

(टाडस् राजस्थान)

(२) जयपुर के एक राजा। सन् १८०३ ई० में इनका राज्याभिषेक हुआ था। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के साथ इनकी दो बार सन्धि हुई थी। इन्होंने एक बार कम्पनी के सेनापति के साथ हुल्कर के विरुद्ध शस्त्र भी धारण किया था। मारवाड़ के राजा मानसिंह पर इन्होंने लाख सैनिक ले कर आक्रमण किया था। यद्यपि इन्होंने मारवाड़राज को पहले युद्ध में हराया था, तथापि पीछे इन्हें स्वयं हारना और अपमानित होना पड़ा। कम्पनी का पहला सन्धि-बन्धन किसी कारण से टूट गया तब पुनः सन् १८१८ ई० में दूसरा सन्धिपत्र लिखा गया। इसी सन् में ये परलोकवासी हुए।

(३) ये मेवाड़ के महाराणा संग्रामसिंह के ज्येष्ठ पुत्र थे। सन् १७३४ ई० में इनका राज्याभिषेक हुआ था। ये दूसरे जगत्सिंह के नाम से प्रसिद्ध हैं। इन्होंने अपने प्राचीन गौरव की रक्षा करने के लिये प्रयत्न किया था और वे सफल भी हुए थे।

(३) मेवाड़ के महाराणा। ये प्रथम जगत्सिंह हैं। ये महाराणा कर्णसिंह के पुत्र थे। पिता ने इनको सन् १६२८ ई० में राज्य दिया था। महाराणा जगत्सिंह ने २६ वर्ष तक राज्य किया था। इनका राज्यकाल शान्ति से बीता। क्योंकि उस समय शाहजहाँ बादशाह था जो महाराणा के द्वारा उपकृत हो चुका था। इन्होंने जगमन्दिर और श्रीनिवास नामक दो सुन्दर मकान भी बनवाये थे। इनके समय में मेवाड़ राज्य में शिल्प की बड़ी उन्नति हुई थी।

(टाडस् राजस्थान)

जगत्सिंह विसेन=ये राजा गोंडा के भाई थे। देउनहाँ नामक राज्यखण्ड के ये अधीश्वर थे। सं० १७८८ में इनका जन्म हुआ था। ये स्वयं कवि और कवियों के आश्रयदाता थे। अटसेला शिव कवि वन्दीजन इनके आश्रय में थे और वे इनके विद्यागुरु भी थे। ये कविता करने में बड़े निपुण थे। इन्होंने "छन्दश्शृङ्गार" नामक पिङ्गल का और "साहित्यसुधानिधि" नामक अलङ्कार का ग्रन्थ बनाया है। इनके अतिरिक्त इनके बनाये और भी ग्रन्थ हैं।

जगत्सेठ=मुर्शिदाबाद के निवासी एक महासेठ। इनका फतेचन्द नाम था, "जगत्सेठ" केवल इनकी उपाधि थी। जगत्सेठ का अर्थ है संसार में सब से बड़ा धनी। सन् १७२२ ई० में दिल्ली के बादशाह की ओर से फतेचन्द को यह उपाधि मिली थी। ये जैनी थे। इनके पूर्वज मारवाड़ से मुर्शिदाबाद में जा कर बसे थे। इनके पिता का नाम राय उदयचन्द था और माता का नाम धनबाई। धनबाई के भाई मानिकचन्द निःसन्तान थे। मानिकचन्द उस समय के धनिकों में एक प्रसिद्ध धनी थे। मानिकचन्द ने अपने भाँजे फतेचन्द को दत्तक ग्रहण किया था, तबसे फतेचन्द मानिकचन्द के पुत्र समझे जाने लगे। नव्वाब सिराजुद्दौला को पदच्युत कर के अंग्रेज़ों का प्रभुत्व विस्तार करने के लिये, जिन लोगों ने प्रयत्न किया था, उनमें फतेचन्द जगत्सेठ भी थे। सिराज के बाद मीरजाफ़र बङ्गाल के नव्वाब हुए थे, परन्तु वे बहुत दिनों तक इस पद का सौभाग्य नहीं भोग सके थे। सन् १७६० ई० में मीरजाफ़र पदच्युत हुए और उनके स्थान पर मीरक़ासिम बङ्गाल के नव्वाब हुए। मीरक़ासिम पहले ही जगत्सेठ पर अप्रसन्न थे, उन्होंने १७६३ ई० के अपरैल मास में फतेचन्द को क़ैद कर लिया। जगत्सेठ को छोड़ देने के लिये अंग्रेज़ों ने प्रयत्न किया, परन्तु उसका कुछ फल नहीं हुआ। अन्त में जगत्सेठ मार डाले गये।

जगदीश कवि=ये हिन्दवी (हिन्दी) के कवि थे और संवत् १५८८ में उत्पन्न हुए थे। ये अकबर बादशाह के दरबार में थे।

जगदीश तर्कालङ्कार=नवद्वीपनिवासी एक प्रसिद्ध नैयायिक। ये १७वीं सदी के प्रारम्भ में उत्पन्न हुए थे। इनके पिता का नाम यादवचन्द्र तर्कवागीश था और वे भी एक प्रसिद्ध नैयायिक थे। इनकी बाल्यावस्था ही में इनके पिता की मृत्यु हुई। ये बाल्यावस्था में बड़े उद्धत थे। एक दिन ये पखेरू के बच्चे पकड़ने के लिये एक ताड़ के पेड़ पर चढ़े। ज्यों ही उन्होंने एक घोंसले में हाथ बढ़ाना चाहा, त्यों ही ये वहाँ देखते क्या हैं कि एक साँप फन बढ़ाये उनको काटने के लिये उद्यत है, जगदीश ने उस साँप का फन पकड़ लिया, साँप काट तो नहीं सका, परन्तु वह उनकी बाँह में लिपट गया, जगदीश ने उस साँप को रगड़ रगड़ कर मार डाला। एक पण्डित, जगदीश के इस कृत्य को दूर ही से देख रहे थे। जब जगदीश पेड़ से उतरे तब उन पण्डित ने उनको बहुत समझाया, और उनको लिखना पढ़ना सिखाने के लिये वे स्वयं उद्यत हुए। उस समय जगदीश की अवस्था अठारह वर्ष की थी और वे अत्यन्त गरीब थे अतएव उन्होंने बड़े कष्ट से अध्ययन किया था। वे व्याकरण और काव्य पढ़ कर न्यायशास्त्र पढ़ने के लिये नवद्वीप के प्रधान नैयायिक भवानन्द विद्यावागीश की पाठशाला में गये। भवानन्द के यहाँ का पाठ समाप्त करने पर इनको "तर्कालङ्कार" की उपाधि मिली थी। इसके अनन्तर वे पाठशाला बना कर पढ़ाने लगे। इनकी पढ़ाने में बड़ी प्रसिद्धि हुई। इससे दूर दूर के छात्र इनके यहाँ आने लगे। इन्होंने "न्यायदीधिति" की टीका लिखी है। इसके अतिरिक्त इन्होंने और भी ग्रन्थ लिखे हैं; जो ये हैं:—

(१) गङ्गेशोपाध्याय-प्रणीत "अनुमान-मयूख" का भाष्य।
(२) पक्षता।
(३) केवलान्वयी।
(४) केवलव्यतिरेकी।
(५) अन्वयव्यतिरेकी।
(६) अवयव।
(७) चतुष्टय तर्क।
(८) सिद्धान्तलक्षण।
(९) व्याप्तिपञ्चक।
(१०) उपाधिवाद।
(११) पूर्वपक्ष।
(१२) अनुमानदीधिति का तर्क।
(१३) सिंहव्याघ्री।
(१४) अवच्छेदकनिरुक्ति।

जगदेव कवि=ये हिन्दी के एक कवि थे और संवत् १७१२ में उत्पन्न हुए थे। इनकी कविता सरस होती थी।

जगद्धात्री=दुर्गा की एक मूर्त्ति, शारदीय दुर्गापूजा के अनन्तर इनकी पूजा होती है। एक समय कई एक देवताओं ने मिल कर यह स्थिर किया कि और कोई देवता नहीं है, परमेश्वर नामक देवता का अस्तित्व नहीं है। भगवती दुर्गा देवताओं का ऐसा विचार जान कर एक ज्योतिर्मयी मूर्त्ति धारण कर उनके सामने उपस्थित

हुईं । अग्नि वायु आदि देवता उस ज्योतिर्मयी मूर्त्ति का निर्णय नहीं कर सके । देवताओं ने सबसे पहले पवनदेव को उस ज्योति के समीप भेजा । ज्योति की अधिष्ठात्री देवता ने, उस देव के सामने एक तृण रख कर यह कहा कि यदि तुम इस तृण को यहाँ से हटा दो तो मैं तुम्हें शक्तिमान् समझूँगी । पवन ने बहुत प्रयत्न किया, परन्तु वे उस तृण को वहाँ से हटा न सके । तदनन्तर अग्नि आये उनको तृण जलाने के लिये कहा गया; परन्तु वे भी उस तृण को नहीं जला सके । तब देवता उन देवी को सबसे बड़ी मान कर उनकी आराधना करने लगे । उस ज्योतिर्मय मूर्त्ति से भगवती जगद्धात्री के रूप में आविर्भूत हुईं । ये भगवती चतुर्भुजा, त्रिनयना, हास्यमुखी और सिंहवाहिनी हैं । ये रक्त वस्त्र धारण करतीं और अलङ्कारविभूषित हैं ।

जगन कवि=ये हिन्दी के कवि थे और सं० १६५२ में उत्पन्न हुए थे । शृङ्गार रस के ये एक अच्छे कवि थे ।

जगनन्द कवि=ये हिन्दी के कवि वृन्दावन के रहने वाले थे और सं० १६५८ में उत्पन्न हुए थे । इनके बनाये कवित्त हजारा में पाये जाते हैं ।

जगनिक बन्दीजन=ये हिन्दी के कवि महोवा बुन्देलखण्ड के वासी थे । सं० ११२४ में, ये उत्पन्न हुए थे । जिस प्रकार पृथ्वीराज चौहान के यहाँ चन्द कवि की प्रतिष्ठा थी उसी प्रकार चन्देल राजा परिमाल के यहाँ इनकी प्रतिष्ठा थी । चन्द ने रायसा में इनकी प्रशंसा की है ।

जगन्नाथ=पुरी की दारुमयी मूर्त्ति । कहते हैं सत्ययुग में राजा इन्द्रद्युम्न ने इस मूर्त्ति को बनवाया था । यहाँ जगन्नाथ जी रहते हैं । इस कारण पुरीक्षेत्र को जगन्नाथक्षेत्र या श्रीक्षेत्र भी कहते हैं । हिन्दू मात्र इस क्षेत्र को अपना पवित्र तीर्थ समझते हैं । यहाँ भोजन आदि में जातिभेद की रुकावट नहीं है । बड़े बड़े श्रोत्रिय ब्राह्मण भी यहाँ अस्पृश्य जातियों के साथ बैठ कर महाप्रसाद ग्रहण करते हैं । राजा इन्द्रद्युम्न की इच्छा के अनुसार ब्राह्मण-वेश-धारी विश्वकर्मा ने श्रीकृष्ण बलराम और सुभद्रा की मूर्त्तियाँ बनायीं । मूर्त्तियों के तैयार हो जाने पर राजा ने भक्तिपूर्वक उनको प्रणाम किया । उस समय विष्णु ने अपना परिचय दिया और कहा—"मैं तुम्हें वर देता हूँ दस हजार नौ सौ वर्ष तक तुम राज्य करोगे और देह त्याग करने पर निर्गुण परम पद प्राप्त करोगे"। बहुत लोग महाप्रसाद भक्षण प्रथा को आधुनिक और अप्रामाणिक समझते हैं ।

जगद्धर=भवभूतिकृत "मालतीमाधव" नामक नाटक की टीका इन्होंने लिखी है । उसके प्रत्येक अङ्क की समाप्ति में इन्होंने अपने पिता माता का नाम लिखा है और ग्रन्थ की समाप्ति में भी अपने वंश का संक्षेप में कुछ परिचय दिया है । जिससे विदित होता है कि द्विजातिकुलतिलक चण्डेश्वर नाम के एक प्रसिद्ध मीमांसक हुए, जिनके पुत्र रामेश्वर पण्डित भी एक प्रसिद्ध मीमांसक थे । रामेश्वर के पुत्र गदाधर, गदाधर के पुत्र विद्याधर और उनके पुत्र रत्नधर हुए । ये ही रत्नधर जगद्धर के पिता हैं । जगद्धर ने अपनी माता का नाम दमयन्तिका लिखा है । ये जगद्धर न्याय, वैशेषिक, व्याकरण, काव्य आदि में बड़े निपुण जान पड़ते हैं । इनकी "मालतीमाधव" नाटक की टीका संस्कृत जानने वालों की दृष्टि में बड़ी प्रतिष्ठित समझी जाती है । इन्होंने ग्रन्थ के अन्त में अपने पिता की उपाधि "श्रीमन्महोपाध्याय पण्डितराज महाकविराज धर्माधिकारी" लिखी है । इससे जाना जाता है कि ये महापण्डित विद्वज्जनों के कुल में उत्पन्न हुए थे । इन्होंने "वेणीसंहार" और "वासवदत्ता" की भी टीका लिखी है । इनका समय, पण्डितवर रामकृष्ण भाण्डार कर के निर्णयानुसार खृष्टीय १४ वीं सदी से पूर्व नहीं हो सकता ।

जगन्नाथ कवि=ये कान्यकुब्ज अवस्थी ब्राह्मण थे और सुमेरपुर ज़िला उन्नाव के रहने वाले थे । संस्कृत-साहित्य के ये अच्छे पण्डित थे । पहले ये अवध नरेश मानसिंह के दरबार में थे परन्तु पीछे से अलवर नरेश शिवदीनसिंह की सभा में रहने लगे थे । इन्होंने संस्कृत में कई ग्रन्थ लिखे हैं, परन्तु भाषा में कुछ फुटकर कविताओं के अतिरिक्त इनके बनाये किसी ग्रन्थ का पता नहीं चलता ।

जगन्नाथ कवि प्राचीन=ये शान्त रस के कवि थे ।

इन्होंने भाषा में शान्त रस पर कई पुस्तकें भी लिखी हैं ।

जगन्नाथदास=ये हिन्दी के कवि थे । रागसागरोद्भव में इनके बनाये पद पाये जाते हैं ।

जगन्नाथ पण्डितराज=ये महाशय प्रसिद्ध आलङ्कारिक और कवि दिल्ली के बादशाह के दरबार में थे । इन्होंने "भामिनीविलास" के अन्त में अपना परिचय इस प्रकार दिया है "दिल्लीवल्लभपाणिपल्लवतले नीतं नवीनं वयः" ये तैलङ्ग देश में राजमहेन्द्री प्रान्त के निवासी थे । पर बहुत दिनों काशी में रह कर इन्होंने विद्याभ्यास किया था । इनके पिता का नाम पेरू भट्ट माता का लक्ष्मी और गुरु का नाम ज्ञानेन्द्र भिक्षु था, जयपुर के राजा की आज्ञानुसार जयपुर और काशी में इन्होंने नक्षत्रों को देखने के उपयुक्त कौतुकालय बनवाये थे । काशी में मानमन्दिर घाट पर अब तक वह कौतुकालय वर्तमान है । पर भूमि के हिल जाने से अब उस स्थान से नक्षत्रादि ठीक नहीं दीख पड़ते । इनका समय लोगों ने सन् १६२०ई० से१६६० ई० तक दिल्ली की राजसेवा में कटा हुआ सिद्ध किया है । वहाँके बादशाह से इनको "पण्डितराज" की उपाधि मिली थी । इनके रचित ग्रन्थों के नाम "रसगङ्गाधर", "मनोरमाकुचमर्दन", "गङ्गालहरी", "करुणालहरी", "अश्वधाटी" काव्य "भामिनीविलास", "प्राणाभरण" आदि हैं । सुनने में आता है कि इन्होंने किसी मुसलमान स्त्री के प्रेम में फँस कर उससे विवाह कर लिया था । इस कारण ब्राह्मणों ने इन्हें जातिबहिष्कृत कर दिया । अन्त में गङ्गालहरी रचते रचते काशी में गङ्गा तट पर इन्होंने प्राणत्याग किया । बुढ़ापे में ये कुछ दिनों तक मधुपुरी (मथुरा) में भी रहे थे ।

जज्ज=यह कास्मीर के राजा जयापीड़ का साला था । जब जयापीड़ दिग्विजय के लिये बाहर निकले तब इसने उपद्रव करके अपने भगिनीपति के राज्य पर अधिकार कर लिया था । पुनः जब जयापीड़ लौटे, तब जज्ज ने उनसे युद्ध किया था । बहुत दिनों तक दोनों पक्ष में युद्ध होता रहा । अन्त में जज्ज मारा गया । तीन वर्ष इसने राज्य किया था ।

(राजतरङ्गिणी)

जटायु=सूर्यसारथि अरुण का पुत्र । अयोध्याधिपति महाराज दशरथ का यह मित्र था । सीताहरण के समय जटायु ने सीता का आक्रन्दन सुन कर रावण को रोका था । रावण और जटायु दोनों में युद्ध होने लगा । उसी युद्ध में रावण के अस्त्राघात से जटायु की मृत्यु हुई । सीता को ढूँढ़ते ढूँढ़ते राम लक्ष्मण ने जटायु को देखा था । जटायु ने सीताहरण की बात राम से कह कर, प्राणत्याग किया । राम ने अपने पिता के मित्र की अन्त्येष्टि क्रिया की ।

(रामायण)

जटासुर=एक राक्षस विशेष । जिस समय पाण्डव बदरिकाश्रम में रहते थे उस समय यह राक्षस द्रौपदी का हरण करने के लिये सर्वशास्त्रज्ञ ब्राह्मण बन कर उनके समीप गया और अपनी इष्टसिद्धि के लिये अवसर देखने लगा । एक दिन भीमसेन मृगया खेलने वन में गये । यह युधिष्ठिर नकुल और सहदेव को क़ैद कर द्रौपदी को हर ले गया । संयोगवश मार्ग में भीमसेन मिल गये । उन्होंने इस राक्षस को मार डाला और युधिष्ठिर आदि को उससे छुड़ा लिया ।

(महाभारत)

जटिल=एक विष्णुभक्त बालक । इसके सम्बन्ध में अद्भुत उपाख्यान प्रचलित है । यह बालक पाठशाला में जाते डरता था । यदि कोई उसकी माता से यह बात कहता, तो वह अपने पुत्र को गोविन्द नाम स्मरण करने का उपदेश देती । तबसे वह बालक माता के उपदेशानुसार गोविन्द नाम का स्मरण करते करते पाठशाला जाने लगा । उसकी भक्ति देख कर भगवान् मार्ग में उससे मिलते और उसके साथ खेलते थे । एक दिन मित्र के साथ खेलते खेलते जटिल को बहुत विलम्ब हो गया, अतएव वह पाठशाला में यथासमय उपस्थित न हो सका । गुरु ने विलम्ब का कारण पूँछा । बालक ने भी उत्तर में सब बातें कह दीं । परन्तु गुरु ने उसके कहने पर विश्वास न किया और उसके एक

बेंत मारा। परन्तु उसके शरीर पर बेंत का दाग न पड़ा। यह देख कर गुरु को बड़ा आश्चर्य हुआ। दूसरे दिन गुरु जी के यहाँ पितृश्राद्ध था। दही ले आने के लिये गुरु ने जटिल से कहा। भोजन के दिन एक नाँद दही ले कर जटिल गुरु के यहाँ उपस्थित हुआ। सब लोगों ने कहा इतने मनुष्यों में यह दही बहुत कम है। परन्तु जटिल ने उत्तर दिया कि मेरे मित्र गोविन्द ने कहा है कि इतना दही बहुत है। भोजन के समय वैसा ही हुआ। यह देख कर जटिल के साथ गुरु जी गोविन्द को देखने के लिये वन में गये। गोविन्द ने जटिल से कहा कि तुम अपने गुरु से कह दो कि, उस इमली के पेड़ में जितने पत्र हैं उतने वर्ष यदि तुम तपस्या करो, तो तुम्हें गोविन्द का दर्शन हो। जटिल से यह सुन कर गुरु जी वहाँ ही तपस्या करने लगे।

जड़भरत=पहले समय में शालग्राम नामक स्थान में एक राजा रहता था, जिसका नाम भरत था। भरत स्वकर्मनिष्ठ वानप्रस्थाश्रमी था। यह राजा अहिंसा आदि चित्त के गुणों का अभ्यास कर के एक महान्, आत्मा हो गया था। वह सर्वदा, यहाँ तक कि स्वप्न में भी भगवान् का नाम स्मरण करता था। इस प्रकार वह राजा मुनियों का वेष धारण कर पुष्प फल आदि वन से स्वयं ले आया करता था। एक दिन राजा भरत किसी नदी में स्नान करने गया। स्नान कर के वह सन्ध्या आदि करता था उसी समय आसन्नप्रसवा एक मृगी वहाँ जल पीने आयी। मृगी जल पी ही रही थी कि एक भयानक सिंहनाद सुनायी पड़ा। उससे घबड़ा कर वह मृगी नदी के करारे पर कूदने लगी परन्तु करारा ऊँचा होने और पूर्ण गर्भ होने के कारण वह कूद तो न सकी पर गिर कर मर गयी। कूदने के समय उस मृगी के गर्भ का बच्चा भी गर्भच्युत हो कर नदी में गिर कर बहने लगा। सद्योजात मृगशिशु को बहते देख राजा भरत को बड़ी दया आयी और वे उसको अपने आश्रम पर ले आये। थोड़े ही दिनों में राजा भरत का उस पर ऐसा स्नेह हुआ कि अपना नित्यकर्म छोड़ कर उसीका वे लालन पालन करने लगे। वह मृगा भी बड़ा हुआ, कभी कभी वह आहार ढूँढ़ने के लिये आश्रम से बाहर निकल जाया करता था। उस समय राजा चिन्तित हो जाया करता था। राजा ने राज्य, पुत्र, भोग्य वस्तु आदि छोड़ कर वानप्रस्थाश्रम-धर्माचरण करने के लिये वनवास अंगीकार किया था। परन्तु यहाँ भी वह एक मृगा पर आसक्त हो गया, उसके समस्त धर्म कर्म लुप्त हो गये। अन्त में राजा भरत की मृत्यु का समय उपस्थित हुआ। राजा ने उसीकी चिन्ता करते करते प्राणत्याग किये। मृत्यु के समय राजा ने मृगा की चिन्ता करते करते प्राणत्याग किये थे, अतः वे कालिञ्जर पर्वत पर जातिस्मर एक मृगा हुए। पूर्व जन्म की बातें उन्हें स्मरण थीं इस कारण वे माता को छोड़ शालग्राम नामक स्थान में चले आये। अपने किये कर्म ही से वे मृगयोनि को प्राप्त हुए हैं—यह जान कर वे अपने आश्रम ही में रह कर शुष्क तृण आदि भक्षणपूर्वक अपना समय बिताने लगे। यथासमय मृगयोनि छोड़ कर वे एक ब्राह्मणकुल में जातिस्मर ब्राह्मण हुए। पुनः अधोगति न हो इस लिये वे संसार के कामों से विरक्त रहने लगे। वे किसी के साथ अधिक बातें नहीं करते थे। जड़बुद्धि पागल के समान वे रहने लगे। इस कारण लोगों ने उनका नाम जड़भरत रखा। वे मलिन वस्त्र धारण करते थे और अपने अङ्गों का भी परिष्कार नहीं करते थे। पर शास्त्रों में उनका अगाध ज्ञान था। उन्होंने कभी भी गुरु से अध्ययन नहीं किया। उनकी बातें भी किसी की समझ में नहीं आती थीं। जिस समय जड़भरत के सामने जो वस्तु उपस्थित रहती, वे उसीसे अपना पेट भर लिया करते थे। वहाँ के लोग उसे मूर्ख पागल समझ कर सर्वदा उसको चिढ़ाया करते थे। कभी कभी उसको भोजनमात्र दे कर उससे खूब काम करा लिया करते थे। पिता की मृत्यु के अनन्तर उनके भाई और भौजाई उनका अपमान करने लगीं। एक समय

सौवीरराज पालकी पर चढ़ कर इक्षुमतीतीरस्थ कपिलाश्रम जा रहे थे। दुःखमय संसार में क्या करना चाहिये—यही जानने के लिये राजा कपिलाश्रम जा रहे थे। राजा के कर्मचारियों ने जड़भरत को पालकी ढोने के लिये बेगार पकड़ लिया। जड़भरत पालकी ढोने के काम में लग गये। वे भी पूर्वपाप को नष्ट करने की इच्छा से पालकी ढोने लगे। परन्तु वे अन्य पालकी ढोने वालों के समान वेग से नहीं चल सकते थे। राजा ने जड़भरत से कहा—क्यों जी! तुम तो बहुत मोटे हो, और थोड़ी ही दूर पालकी ढोने में थक गये। जड़भरत ने उत्तर दिया—मैं स्थूल नहीं हूँ, तुम्हारी पालकी भी मैं नहीं ढोता, और न मैं थका ही हूँ। सौवीरराज ने जड़भरत से उनकी बातों का अर्थ पूँछा। जड़भरत बोले—मैं आत्मा हूँ, आत्मा और देह एक ही नहीं है आत्मा का उपचय अपचय नहीं होता, वह एक अक्षय, निर्गुण, शान्तिमय और प्रकृति से भिन्न है। मैं शिबिका नहीं ढोता, क्योंकि शिबिका एक प्रकार की लकड़ी है, लकड़ी वृक्ष से उत्पन्न होती है। शिबिका को तोड़ने पर वह लकड़ी ही कही जायगी, शिबिका नहीं। काष्ठ वृक्ष से उत्पन्न होता है इस कारण, मैं शिबिका ढोता हूँ कहना—बिलकुल असत्य है। किन्तु शिबिका मुझे ढोती है यह कहना विशेष सत्य है, क्योंकि जिस पञ्चभूत से वृक्ष उत्पन्न हुआ है, वही पञ्चभूत हमको वहन कर रहा है। जिस प्रकार शिबिका तोड़ने पर शिबिका दिखायी नहीं पड़ती और केवल वह काष्ठ खण्ड देखा जाता है उसी प्रकार हमारे शरीर में हमको ढूँढ़ने पर कोई हमको नहीं पा सकता, केवल हाथ पैर पाये जाँयगे। अतएव मैं देह नहीं, देह से भिन्न हूँ। जड़भरत की ज्ञानयुक्त इन बातों को सुन कर सौवीरराज पालकी से उतर पड़े और उनसे क्षमा प्रार्थना करने लगे। पुनः राजा ने ब्राह्मण से पूँछा, आप कौन हैं क्यों इस वेश में रहते हैं और आपके यहाँ आने ही का कारण क्या है? ब्राह्मण ने कहा मैं कौन हूँ यह कहना कठिन है, तथापि भोग के लिये मैं सर्वत्र जाता हूँ यह सत्य है। मैं आत्मा हूँ, आत्मा देव मनुष्य पशु वृक्ष आदि से अतिरिक्त है। केवल कर्मफलभोग के लिये शरीरभेद होता है धर्म और अधर्म से सुख दुःख उत्पन्न होते हैं। कर्म से उत्पन्न सुख दुःख आदि के भोग के लिये जीव या आत्मा को देह धारण करना पड़ता है। इसी कारण सुख दुःख आदि के भोग के लिये ही मेरा यहाँ आना हुआ है। यहाँ आने का और दूसरा कारण नहीं है। इसी प्रकार अन्य अनेक प्रकार के उपदेश सुनने से राजा का भेदज्ञान नष्ट हुआ। और जड़भरत की भी मोक्ष हो गयी।

(विष्णुपुराण)

जतुकर्ण=चरक में लिखा है कि भगवान् पुनर्वसु के छः शिष्य थे, उनमें एक जतुकर्ण भी थे। इन्होंने एक वैद्यकसंहिता भी बनायी थी। परन्तु इस समय उसका पता नहीं चलता।

जनक=(१) इक्ष्वाकुवंशी एक राजा का नाम। इक्ष्वाकु के दूसरे पुत्र का नाम निमि था। इनके विषय में पुराणों में एक विलक्षण कथा लिखी है। एक समय कई सौ वर्ष में समाप्त होने वाला यज्ञ का वे अनुष्ठान करना चाहते थे। उस यज्ञ को सम्पादन करने के लिये उन्होंने कुलगुरु वशिष्ठ को होता बनाया। परन्तु वशिष्ठ इन्द्र के यज्ञ में फँसे हुए थे। अतएव यज्ञ समाप्त होने तक वशिष्ठ ने निमि को ठहरने के लिये कहा निमि ने इसका कुछ भी उत्तर नहीं दिया, वशिष्ठ ने भी यह समझा कि मेरा कहना इन्हें स्वीकृत है। परन्तु इधर निमि ने गौतम आदि ऋषियों को बुला कर होता बनाया और यज्ञ भी प्रारम्भ कर दिया। यह सुन वशिष्ठ बड़े क्रुद्ध हुए और उन्होंने शाप दिया। राजा ने भी वशिष्ठ को शाप दिया। दोनों के शाप से दोनों का शरीर नष्ट हो गया। उपचार आदि से राजा का शरीर मृतक के समान रक्षित करके यज्ञ समाप्त किया गया। निमि के कोई पुत्र न था। अतएव देश में अराजकता न फैल जाय इस लिये मुनियों ने निमि का शरीर अरणि से मन्थन किया। उस मृत देह से एक पुत्र उत्पन्न हुआ। वह कुमार मृत देह से उत्पन्न हुआ इस कारण

उसका नाम "जनक" पड़ा। पिता की विदेहावस्था में उसका जन्म हुआ है इस कारण उसका दूसरा नाम वैदेह हुआ और मन्थन से उत्पन्न होने के कारण उसका मिथि भी नाम हुआ। इसी जनक ने मिथिलापुरी बसायी थी। इन्हींके वंश में २७वीं पीढ़ी में सीरध्वज जनक उत्पन्न हुए थे, जिनकी कन्या का नाम सीता था। इन राजर्षि जनक का उल्लेख शतपथ ब्राह्मण में पहले ही किया गया है, तथा वहाँ विदेह राज्य की समृद्धि का भी वर्णन है। इनके समय में मिथिला विद्या का क्रीड़ा-क्षेत्र बना हुआ था। उपनिषद् आदि का पाठ करने से साफ ही मालूम पड़ता है कि, उस समय बड़े बड़े ऋषि भी इनसे ब्रह्मोपदेश ग्रहण करने के लिये जाते थे। राजर्षि जनक की सहायता से याज्ञवल्क्य ने यजुर्वेद का सङ्कलन किया था। उस समय के ब्राह्मणों से भी इनका सम्मान बहुत बढ़ा चढ़ा था।

(२) काश्मीर के एक राजा का नाम। इनके पिता का नाम सुवर्ण था। राजा जनक ने जालोर नामक विहार और अग्रहार बनवाया था।

जनकपुर=(देखो मिथिला)

जनकेश वन्दीजन=ये हिन्दी के एक कवि थे और मऊ बुन्देलखण्ड के रहने वाले थे। सं० १९१२ में ये उत्पन्न हुए थे। छत्रपुर के राजा के दरबार में ये रहते थे। इनकी कविता बहुत मधुर होती थी।

जनदेव=मिथिला के एक राजा का नाम। इनकी सभा में अनेक प्रकार के उपासना-मार्ग जानने वाले दार्शनिक पण्डित रहते थे। उनमें नास्तिक पण्डित भी थे। उनमें कुछ लोग देहनाश के साथ ही साथ आत्मा का भी नाश होना मानते थे। कुछ लोग शरीर को अविनाशी मानते थे। उन पण्डितों के साथ बात करने से मोक्षलाभेच्छु राजा के मन को शान्ति नहीं मिलती थी, इस कारण राजा पण्डितों से अप्रसन्न रहा करते थे। परलोक, पुनर्जन्म, आत्मतत्त्व आदि विषयों की सुमीमांसा न होने के कारण राजा सर्वदा उदासीन रहा करते थे। कुछ समय कपिलापुत्र महामुनि पञ्चशिख पृथिवी पर घूमते घूमते मिथिला में उपस्थित हुए। महर्षि पञ्चशिख ने एक स्त्री का दूध पीया था, इसी कारण वे कपिलापुत्र कहे जाते थे। राजा जनदेव पञ्चशिखाचार्य से तत्त्वज्ञान की शिक्षा प्राप्त कर, कृतार्थ हुए थे। (महाभारत)

जनार्दन भट्ट=वैद्यरत्न नामक एक वैद्यक का ग्रन्थ इन्होंने भाषा में लिखा है।

जमालउद्दीन=ये हिन्दी के अच्छे कवि थे और संवत् १६२५ में उत्पन्न हुए थे।

जनमेजय=(१) राजा पुरु के पुत्र और ययाति के पौत्र। जनमेजय के पुत्र प्रचिन्वत् ने अपने पराक्रम से समस्त पूर्व देश को जीता था।

(२) राजा परीक्षित् के पुत्र और तीसरे पाण्डव अर्जुन के पौत्र। राजा परीक्षित् साँप के काटने से मरे, इस कारण उनके पुत्र जनमेजय ने सर्पों को नाश करने के लिये एक बड़ा यज्ञ करना प्रारम्भ किया। परीक्षित् को काटने वाला तक्षक प्राणभय से इन्द्र की शरण गया। सर्पयज्ञ बन्द करा देने के लिये नागराज वासुकि ने अपने भाँजे और जरत्कारु के पुत्र आस्तीक को जनमेजय के पास भेजा। आस्तीक जनमेजय के निकट जा कर सर्पयज्ञ की प्रशंसा करने लगे। जनमेजय बोले, यदि देवराज इन्द्र तक्षक को छोड़ना नहीं चाहते, तो इन्द्र के साथ ही तक्षक को भस्म कर डालो। पुरोहित मन्त्र पढ़ने लगे। तक्षक के साथ ही इन्द्र भी यज्ञाग्नि की ओर आकृष्ट होने लगे। अगत्या इन्द्र ने तक्षक को छोड़ दिया। अब केवल तक्षक ही यज्ञाग्नि की ओर खींचा जाने लगा। जनमेजय ने आस्तीक को वर देने की प्रतिज्ञा की। आस्तीक बोले महाराज! सर्पयज्ञ बन्द कर दो, जिससे हमारे मातृकुल की रक्षा हो यही हमारी अभिलाषा और प्रार्थना है। जनमेजय ने आस्तीक की प्रार्थना स्वीकार कर के यज्ञ बन्द कर दिया। (महाभारत)

जना=माहिष्मती के राजा नीलध्वज की महारानी। इनके पुत्र का नाम प्रवीर और कन्या का नाम स्वाहा था। स्वाहा अग्निदेव को व्याही गयी थीं। जना के कहने से प्रवीर ने

पाण्डवों के अश्वमेध यज्ञ के घोड़े को रोक लिया था । श्रीकृष्ण की सहायता और उनके अत्यन्त परिश्रम करने पर प्रवीर समरक्षेत्र में मारा गया । पुत्रशोक से विह्वल हो कर जना ने भी गङ्गा में शरीरत्याग किया ।

जनार्दन भट्ट=बम्बई की छपी काव्यमाला के एकादश गुच्छक में इनका बनाया "श्रृङ्गारशतक" नामक ग्रन्थ देखने में आता है । परन्तु उसमें इनके निवास या समय का पता नहीं है । काव्य की रचना देखने से ये कवि बहुत ही अर्वाचीन जान पड़ते हैं । इनके पिता का नाम उस ग्रन्थ में "जगन्निवास गोस्वामी" लिखा मिलता है । इन्होंने अपने ग्रन्थ में पूर्व के कवियों का स्मरण किया है ।

" विख्याता रघुवंशवद्गुणगणैः श्रृङ्गारसारापरं,
भृङ्गारे रसमञ्जरीवदमला माघार्थवत्सत्तनौ ।
क्लिष्टा नैषधवच्च मानकरणे कादम्बरीवद्व्रते,
नानाश्लेषविचक्षणा विजयते सारङ्गरम्येक्षणा ॥"

इससे विदित होता है कि, कालिदास, भानुदत्त मिश्र, माघ, श्रीहर्ष, बाण आदि इनके समय तक प्रसिद्धि पा चुके थे । उपरोक्त कवियों में भानुदत्त मिश्र सबसे नवीन हैं । इनका समय १४वीं सदी का अन्त या १५वीं सदी का आदि माना जा सकता है । अतएव विद्वानों का कहना है कि, इन गोस्वामी जी का समय १६वीं सदी का पिछला भाग अनुमान किया जा सकता है ।

जमदग्नि=महर्षि ऋचीक के पुत्र । ये वैदिक ऋषि थे । ऋग्वेद के कई सूक्तों के पाठ करने से इसका प्रमाण पाया जाता है कि, जमदग्नि और विश्वामित्र दोनों ही वशिष्ठ के विरोधी थे । राजा प्रसेनजित् की कन्या रेणुका के साथ इनका ब्याह हुआ था । इनके गर्भ से जमदग्नि के पाँच पुत्र उत्पन्न हुए थे । रुमावान्, सुषेण, वसु, विश्वावसु और राम । राम कनिष्ठ थे, परन्तु गुण में सबसे बड़े थे ।

एक दिन जमदग्नि की स्त्री रेणुका गङ्गा स्नान करने गयी थी । वहाँ उन्होंने राजा चित्ररथ को अपनी स्त्रियों के साथ जलक्रीड़ा करते देखा । इससे रेणुका को भी काम उत्पन्न हुआ और वे चित्ररथ के साथ व्यभिचार करने में प्रवृत्त हुईं । घर आने पर जमदग्नि ने उन पर सन्देह किया और अपने पुत्रों को एक एक कर के रेणुका का सिर काटने की आज्ञा दी । परन्तु किसी ने उनकी आज्ञा का पालन नहीं किया, अतएव जमदग्नि के शाप से वे भी जड़ हो गये । अन्त में जमदग्नि ने परशुराम से कहा, उन्होंने शीघ्र ही पिता की आज्ञा का पालन किया । इससे जमदग्नि उन पर बहुत प्रसन्न हुए । प्रसन्न हो राम को वर देने को उद्यत हुए । तब राम ने उनसे अपनी माता का प्राणदान माँगा । जमदग्नि के वर से उनकी माता जीवित हो गयीं । जमदग्नि ध्यानमग्न अवस्था में हैहयराज कार्तवीर्य के हाथ से मारे गये थे ।

जम्बुद्वीप=एक द्वीप का नाम जिसके अन्तर्गत हमारा यह भारतवर्ष है । पुराणों में लिखा है कि राजा प्रियव्रत ने समस्त भूमण्डल के सात भाग किये थे और अपने सातों पुत्रों को एक एक भाग दे दिया था । ज्येष्ठ पुत्र अग्नीध्र को जम्बुद्वीप दिया था । श्रीमद्भागवत में महाराज परीक्षित् के प्रश्न के उत्तर में शुकदेवजी ने कहा है राजन्, यह भूमण्डल एक बड़े कमल के समान है सात द्वीप इसके सात कोष हैं । उन सात कोषों के मध्य में वर्तमान यह जम्बुद्वीप है । उसकी दीर्घता नियुत योजन है और वह लक्ष योजन विशाल है । जम्बुद्वीप गोलाकार है । इस द्वीप में नव वर्ष हैं, जिनमें प्रधान भारतवर्ष है । इस वर्णन से जान पड़ता है कि, उस समय आजकल के समस्त भूमण्डल को जम्बुद्वीप कहते थे और वह भारतीय नृपतियों के अधीन था ।

जम्बुमाली=एक राक्षस । इसके पिता का नाम प्रहस्त था । रावण ने इसीको हनुमान् से लड़ने के लिये भेजा था । इसके दाँत बड़े बड़े थे । यह लाल वस्त्र पहना करता था । गधे के रथ पर चढ़ कर जम्बुमाली हनुमान् से लड़ने के लिये गया था इसी युद्ध में हनुमान् ने इसे मार डाला । (रामायण)

जय=इसके छोटे भाई का नाम था विजय । ये

दोनों विष्णु के द्वाररक्षक थे । एक समय इन लोगों ने सनकादि ऋषियों को विष्णु के यहाँ जाने से रोका, अतएव ऋषियों ने इन्हें शापित किया । पुनः जब इन लोगों ने प्रार्थना की तब ऋषि बोले, हम लोगों का शाप व्यर्थ नहीं हो सकता । अतएव तुम लोगों की दो प्रकार से मुक्ति हो सकती है । एक तो विष्णु की शत्रुता करने से और दूसरे मित्रता करने से । इन लोगों ने शीघ्र वैकुण्ठ जाने के लिये शत्रु-भाव से मुक्ति की प्रार्थना की । "तथास्तु" कह कर मुनि चले गये । मुनियों के शाप से जय सत्ययुग में हिरण्याक्ष, त्रेता में रावण और द्वापर में शिशुपाल हुआ था । और विष्णु के हाथ से मारे जाने के कारण इसकी मुक्ति हुई थी ।

जय कवि=ये लखनऊ के रहने वाले और बन्दीजन थे । सं० १६०१ में इनका जन्म हुआ था । ये वाजिदअलीशाह के दरबार में थे । उर्दू और भाषा में इन्होंने बहुत कविता की है । प्रायः सामयिक चेतावनी सम्बन्धी इनकी कविता हुआ करती थी । अतएव वह सर्वप्रिय थी । मुसल्मानों से धर्मविषयक झगड़ा इनका बहुत दिनों तक चलता रहा ।

जयकृष्ण कवि=ये भी हिन्दी के कवि थे । ये भवानीदास कवि के पुत्र थे । "छन्दसार" नामक एक पिङ्गल का ग्रन्थ इन्होंने बनाया है । इनके समय और निवासस्थान आदि का कुछ भी पता नहीं है ।

जयचन्द=कनौज के अन्तिम हिन्दू राजा । इनके पिता का नाम विजयचन्द था । ये दिल्ली के राजा अनङ्गपाल के दौहित्र थे । अनङ्गपाल की दूसरी कन्या अजमेर के राजा सोमेश्वर को व्याही गयी थी । इसीके गर्भ से पृथ्वीराज का जन्म हुआ था । पृथ्वीराज और जयचन्द दोनों ही दिल्लीश्वर अनङ्गपाल के दौहित्र थे । पृथ्वी-राज पर अनङ्गपाल अधिक प्रेम रखते थे । इसी कारण वे दिल्ली के सिंहासन पर पृथ्वीराज को बैठा कर अनङ्गपाल परलोक पधारे । इस कारण जयचन्द इनसे भीतरी डाह रखने लगा वह पृथ्वीराज को राज्यच्युत करने का अवसर ढूँढ़ने लगा । जयचन्द एक पराक्रमी राजा था । उसने अपने पराक्रम से दक्षिण में नर्मदा नदी के तीर तक, अपना राज्य फैलाया था । एक समय जय-चन्द ने अपनी कन्या संयुक्ता के स्वयम्बर के लिये एक बड़े यज्ञ का प्रारम्भ किया था । उस यज्ञ में अनेक स्थान के राजा निमन्त्रित किये गये थे परन्तु पृथ्वीराज और राणा संग्रामसिंह को इस यज्ञ के लिये निमन्त्रण नहीं भेजा गया था । यही नहीं बल्कि इनको अपमानित करने के लिये जयचन्द ने इन दोनों की स्वर्णमूर्ति बनवा कर और उन्हें दरवान के कपड़े पहना कर फाटक पर रखवा दिया था । जयचन्द की कन्या संयुक्ता ने पृथ्वीराज की स्वर्णप्रतिमा के गले में माला पहना दी । इसका समाचार पा कर पृथ्वीराज अपनी सेना लिये हुए कनौज पहुँच गये और संयुक्ता को ले कर चल दिये । इससे जयचन्द ने अपना बड़ा अपमान समझा और इस अपमान का बदला लेने के लिये गज़नी के राजा शाहबुद्दीन ग़ोरी को दिल्ली पर आक्रमण करने के लिये उत्तेजित किया । दिल्ली पर चढ़ाई करने के लिये शाहबुद्दीन ग़ोरी सन् ११६१ ई० में भारत आया । पानीपत के पास सिरौरी के मैदान में पृथ्वीराज और ग़ोरी का युद्ध हुआ । परन्तु इस युद्ध में हार कर ग़ोरी लौट गया । दो वर्ष के बाद ग़ोरी पुनः सन् ११६३ ई० में भारत आया । इस बार भी वहीं युद्ध हुआ । परन्तु इस बार पृथ्वीराज का भाग्यचक्र उलट गया । इस युद्ध में पृथ्वीराज हार गये और मारे गये । दिल्ली का राज्य मुसल्मानों के हाथ चला गया । जयचन्द को भी इसका फल बहुत शीघ्र ही मिल गया था । कुछ दिनों के बाद मुसल्मानों ने इनके राज्य पर भी आक्रमण किया । जयचन्द हार कर भागा । भागते समय वह एक नदी पार करने लगा उसी समय वह नाव के साथ उसी जल में डूब मरा ।

(इतिहास)

जयत कवि=ये हिन्दी के कवि थे । सं० १६०१ में ये उत्पन्न हुए थे । ये अकबर बादशाह के दरबार में थे ।

जयदेव कवि=(१)ये भाषा के कवि सं० १८१५ में

उत्पन्न हुए थे। इनकी कविता सुन्दर होती थी।

(२) ये कम्पिला के रहने वाले और भाषा के कवि थे। सं० १७२८ में ये उत्पन्न हुए थे नव्वाब फ़ाजिलअलीख़ाँ के यहाँ रहते थे और सुखदेव मिश्र कम्पिला वाले के शिष्यों में सर्वोत्तम थे।

जयदेव=(१) ये महाशय "गीतगोविन्द" के रचयिता अत्यन्त मधुर और ललित कविता बनाने के लिये प्रसिद्ध हुए। इन्होंने निज रचित "गीतगोविन्द" में अपने माता पिता का नामोल्लेख किया है। इनकी माता का नाम वामादेवी और पिता का नाम भोजदेव था। बङ्गाल में वीरभूमि नाम के स्थान से कुछ दूर हट कर, भागीरथी में गिरने वाला अजय नामक एक नद है। इसीके किनारे केदुला नामक एक गाँव है जिसे लोग जयदेव की जन्मभूमि बतलाते हैं। स्वयं जयदेव ने लिखा है—

" वर्णितं जयदेवकेन हरेरिदं प्रवणेन,
किन्दुबिल्वसमुद्रसम्भवरोहिणीरमणेन" ।

इसीसे पूर्वोक्त बातें मालूम होती हैं। जयदेव के समय के विषय में विचार करने से यही प्रतीत होता है कि ये उमापतिधर के समकालीन थे। ये उमापतिधर बङ्गाल के उस राजा लक्ष्मणसेन के मन्त्री थे, जो सन् १११६ ई० में वर्तमान था और जिसके पिता दानसागर के रचयिता बल्लालसेन के नाम से सेनवंश के राजाओं के बीच अत्यन्त प्रतिष्ठित और प्रसिद्ध थे। अतएव उमापति के समकालीन होने के कारण १२ वीं सदी का पूर्व भाग ही इनका समय माना जा सकता है।

" पृथ्वीराज रासो " के रचयिता कवि चन्द १२वीं शताब्दी के अन्त भाग में विद्यमान थे यह बात इतिहास से प्रमाणित हो चुकी है और चन्द कवि ने अपने ग्रन्थ में जयदेव के गीतगोविन्द का नाम दिया है। इससे भी ऊपर कही हुई बात ही प्रमाणित होती है।

जयदेव के रचित " गीतगोविन्द " की कई एक टीकायें देखने में आती हैं, जिनमें सबसे पुरानी टीका भगवती भवेश के बेटे मैथिल कृष्णदत्त की बनायी जान पड़ती है। भक्तमाल में भी विस्तारपूर्वक जयदेव का चरित्र वर्णन किया गया है। संस्कृत ग्रन्थकार भक्तों के बीच जयदेव प्रसिद्ध भी बहुत हैं। लोग तो यहाँ तक कहते हैं कि स्वयं भगवान् श्रीकृष्णजी भी " गीतगोविन्द " के गान से रीझ जाते हैं। संस्कृत जानने वालों में विरला ही कोई होगा, जिसने " गीतगोविन्द " काव्य और जयदेव कवि का नाम न सुना होगा।

(२) ये प्रसिद्ध ग्रन्थकार " प्रसन्नराघव" नामक नाटक के रचयिता हैं। ये नैयायिक भी थे। प्रसन्नराघव की प्रस्तावना में इन्होंने यह शङ्का उठायी है कि जो कवि है वह उत्तम नैयायिक कैसे हो सकता है और उसका समाधान भी विचित्र रीति से किया है जैसा कि नीचे लिखे श्लोक से प्रकट हो जाता है—

" येषां कोमलकाव्यकौशलकलालीलावती भारती
तेषां कर्कशतर्कवक्रवचनोद्गारेऽपि किं हीयते ।
यैः कान्ताकुचमण्डले कररुहाः सानन्दमारोपिता-
स्तैः किं मत्तकरीन्द्रकुम्भशिखरे नारोपणीयाः शराः॥"

अर्थात् जिन मनुष्यों की वाणी कोमल काव्यरचना की निपुणता वा चातुर्य की कला से भरी चमत्कार उपजाने वाली है, क्या उनकी वही वाणी न्यायशास्त्र के रूखे और कुटिल शब्दों के उच्चारण से हीन हो सकती है। भला देखो तो जिन विलासियों ने आनन्दपूर्वक अपनी ललनाओं के गोल स्तनों पर नखों के चिह्न किये हों वे क्या मतवाले हाथी के ऊँचे गण्डस्थलों पर अपने बाणों का घाव नहीं करते।

इन्होंने अपनी माता का नाम सुमित्रा पिता का नाम महादेव और अपने आपको कौण्डिन्य अर्थात् कुण्डिनपुरनिवासी बताया है। निज रचित ग्रन्थ में इन्होंने निम्न लिखित कवियों का नामोल्लेख किया है। चोर, मयूर, भास, कालिदास, हर्ष और बाण।

अनुमान से विदित होता है कि उपरोक्त सब कवि खृष्टीय सातवीं शताब्दी की समाप्ति के पूर्व प्रसिद्धि पा चुके थे। अतएव यह जयदेव सातवीं शताब्दी से पिछले जान पड़ते हैं। परन्तु "गीतगोविन्द-"कार जयदेव इनसे अवश्य भिन्न हैं।

क्योंकि न तो इनके माता पिता का मेल है और न वासस्थान का। इन्हीं "प्रसन्नराघव-" कार जयदेव ही की उपाधि पक्षधर मिश्र और पीयूषवर्ष थी ऐसा बहुतों का अनुमान है। "चन्द्रालोक" नामक अलङ्कार का एक ग्रन्थ भी इन्हीं जयदेव का बनाया हुआ है। जयदेव रचित "रतिमञ्जरी" नामक एक छोटा सा और ग्रन्थ देखने में आता है, परन्तु पता नहीं कि यह जयदेव कौन हैं।

श्रीहरप्रसाद शास्त्री ने लिखा है कि पक्षधर मिश्र ई० १५वीं शताब्दी में मिथिला में विद्यार्थियों को पढ़ाया करते थे। यह अनुमान बहुत कर के सत्य ही होगा क्योंकि गोस्वामी तुलसीदास जी जिन्होंने हिन्दी भाषा में "रामचरितमानस" नाम की रामायण लिखी है उनका जीवनकाल प्रायः सन् १५२६ ई० से १६२२ ई० तक था, अर्थात् १६ वीं सदी के अन्तिम भाग में था। इन गोसाईं जी ने "प्रसन्नराघव" नाटक के भावों को अपने रामायण में भर दिया है—ऐसा अनुमान होता है। क्योंकि ऐसे भाव बहुधा ग्रन्थों में नहीं मिलते। उदाहरणार्थ कुछ श्लोक लिखे जाते हैं—

"झगिति जगतीमागच्छन्त्याः पितामहविष्टपान्
महति पाथेयो देव्या वाचः श्रमः समजायत।
अपि कथमसौ मुञ्चेदेनां न चेदवगाहते
रघुपतिगुणग्रामश्लाघ्यां सुधामयदीर्घिकाम्॥"

(प्रसन्नराघव)

भक्ति हेतु विधि भवन बिहाई।
सुमिरत शारद आवत धाई॥
रामचरित-सर बिनु अन्हवाये।
सो श्रम जाय न कोटि उपाये॥

(रामायण)

नेदं धनुश्चलति किञ्चिदपीन्दुमौलेः
कामातुरस्य वचसामिव संविधानै-
रभ्यर्थितं प्रकृति चारु मनः सतीनाम्।

(प्रसन्नराघव)

डगै न शम्भु शरासन कैसे।
कामी वचन सती मन जैसे॥

(रामायण)

चन्द्रहास हर मम परितापं रामचन्द्रविरहानलजातम्।
त्वं हि कान्तिजितमौक्तिकचूर्णं धारया वहसि शीतलमम्भः॥

(प्रसन्नराघव)

चन्द्रहास हर मम परितापम्।
रघुपति विरह अनल संजातम्॥
शीत निशा तव असि वर धारा।
कह सीता हर मम दुख भारा॥

(रामायण)

कुरु सकरुणं चेतः श्रीमन्नशोकवनस्पते
दहनकणिकामेकां तावन्मम प्रकटीकुरु।
ननु विरहिणीसन्तापाय स्फुटीकुरुत भवां-
स्तव किसलयश्रेणिव्याजात् कृशानुशिखावलीम्॥

(प्रसन्नराघव)

सुनहु विनय मम विटप अशोका।
सत्य नाम कर हरु मम शोका॥
नूतन किसलय अनल समाना।
देहि अगिनि जनि करहि निदाना॥

(रामायण)

हिमांशुश्चण्डांशुर्नवजलधरो दावदहनः
हरिद्वीचीवातः कुपितफणिनिश्वासपवनः।
नवा मल्ली भल्ली कुवलयवनं कुन्तगहनं
मम त्वद्विश्लेषात् सुमुखि विपरीतं जगदिदम्॥

(प्रसन्नराघव)

"राम वियोग कहा तव सीता।
मोकहँ सकल भयउ विपरीता॥
नव तरु किसलय मनहु कृशानू।
काल निशा सम निशि शशि भानू॥
कुवलय विपिन कुन्त वन सरिसा।
बारिद तप्त तेल जनु बरिसा॥
ज्यहि तरु रहे करै सोइ पीरा।
उरग श्वास सम त्रिविध समीरा॥"

(रामायण)

अतएव "प्रसन्नराघव-" कार जयदेव तुलसीदास जी के पहले अर्थात् १५वीं सदी में वर्तमान रहे होंगे। कुछ लोग पक्षधर मिश्र को "प्रसन्नराघव-" कार से भिन्न मानते हैं। परन्तु ऐसा संशय करने का कोई विशेष कारण नहीं दीख पड़ता।

जयद्रथ=सिन्धु देश के एक राजा। दुर्योधन की भगिनी दुःशला इनको व्याही गयी थी। जयद्रथ

के पिता का नाम वृद्धक्षत्र था। जिस समय पाण्डव काम्यक वन में वास करते थे, उस समय इन्होंने द्रौपदी को कुटी में अकेली देख पाया। उस समय पाण्डव कुटी में नहीं थे। जयद्रथ ने द्रौपदी का हरण किया। महावीर भीम ने जयद्रथ को पराजित कर के द्रौपदी को उबारा। अर्जुन और भीम दोनों ने जयद्रथ की बड़ी दुर्दशा की। उसका सिर मूँड़ कर इन्होंने छोड़ दिया। इसका बदला लेने के लिये जयद्रथ कठिन तपस्या करने लगा। सांसारिक पदार्थों से विरक्त हो कर उसने कठिन तपस्या ठानी। उसकी तपस्या से प्रसन्न हो कर महादेव वर देने के लिये वहाँ उपस्थित हुए। जयद्रथ बोला—मैं यही वर चाहता हूँ कि एक रथ पर चढ़ कर पाँचों पाण्डवों को हरा दूँ। महादेव बोले, तुम अर्जुन को छोड़ कर अन्य पाण्डवों को एक दिन हरा दोगे। यह वर दे कर महादेव चले गये। महादेव के इस वर के प्रभाव से महाभारत के युद्ध में अभिमन्युवध के समय द्रोणनिर्मित चक्रव्यूह का जयद्रथ द्वाररक्षक था। अभिमन्यु की सहायता करने के लिये युधिष्ठिर भीम आदि जाना चाहते थे, परन्तु जयद्रथ ने युद्ध में इनको हरा दिया। इसी कारण वे भीतर जा कर अभिमन्यु की सहायता नहीं कर सके। उस समय अर्जुन संशप्तक दल के साथ युद्ध कर रहे थे। व्यूह के समीप जाने का उन्हें अवसर ही नहीं मिला। पुत्र के मारे जाने का दारुण संवाद सुन कर अर्जुन ने प्रतिज्ञा की कि सूर्यास्त होने के पहले ही जयद्रथ को मार डालूँगा। नहीं तो स्वयं अग्निकुण्ड में प्रवेश कर, प्राणत्याग करूँगा। जयद्रथ को बचाने के लिये कौरवों ने बड़ी चेष्टा की थी, उन्होंने जयद्रथ को छिपा रखा था। श्रीकृष्ण ने चक्र से सूर्य को आच्छादित कर दिया, इससे लोगों को मालूम हुआ कि सन्ध्या हो गयी। कौरव इससे प्रसन्न हुए कि अब तो अर्जुन स्वयं मर जाँयगे। इसी हर्ष से जयद्रथ बाहर निकला। श्रीकृष्ण की प्रेरणा से अर्जुन ने उसे मार डाला। उसके पिता वृद्धक्षत्र ने उसे वर दिया था कि जो इसका सिर भूमि पर गिरावेगा उसका मस्तक खण्ड खण्ड हो जायगा। उस समय उसके पिता वृद्धक्षत्र कुरुक्षेत्र में समन्तपञ्चक नामक स्थान में तपस्या करते थे। अर्जुन ने जयद्रथ का सिर उनके अङ्क में रख दिया। तपस्या के अन्त में जब वे उठे तब उन्हींके द्वारा जयद्रथ का सिर भूमि पर गिरा। इस कारण उसका सिर खण्ड खण्ड हो गया। अपने वर का भी स्वयं उन्हींको फल मिला। जयद्रथ के पुत्र का नाम सुरथ था। (महाभारत)

जयन्त=(१) अयोध्याधिपति राजा दशरथ के एक मन्त्री का नाम। (रामायण)

(२) देवराज इन्द्र के पुत्र का नाम। पारिजात हरण के समय इन्द्रपुत्र जयन्त और कृष्णपुत्र प्रद्युम्न दोनों में खूब युद्ध हुआ था। (हरिवंश)

इन्द्रपुत्र ही ने जानकी जी को काक का रूप धर अपनी चोंच से घायल किया था और जब श्रीरामचन्द्र जी ने उसके ऊपर ब्रह्मास्त्र चलाया तब वह प्राण बचाने के लिये तीनों लोकों में गया—पर उसकी कोई भी रक्षा न कर सका। तब वह अनन्योपाय हो श्रीरामजी के शरण में गया। श्रीराम जी ने उसको प्राणदण्ड तो न दिया, किन्तु उसकी १ आँख फोड़ दी।

जयपाल=(१) लाहौर के प्रसिद्ध एक हिन्दू राजा। इनके पुत्र का नाम था अनङ्गपाल। सन् ९७७ ई० में गज़नी के मालिक ने इन्हें जीता था। उसने पेशावर अधिकार कर लिया था और ५० हाथी और १० लाख रुपये की भेंट ले कर वह अपनी राजधानी को लौट गया। इसके बाद उसके पुत्र महमूद ने सन् १००१ ई० में पुनः जयपाल के राज्य पर चढ़ाई की। इस युद्ध में भी जयपाल हार गये और क़ैद हुए। परन्तु वार्षिक कर देने की प्रतिज्ञा करने पर छूट गये। दो बार पराजित होने के कारण ये अत्यन्त दुःखी हुए और अपने पुत्र को राज्य दे कर स्वयं अग्निकुण्ड में जल कर मर गये। (इतिहास)

(२) अनङ्गपाल के पुत्र और प्रथम जयपाल के पौत्र। सन् १०१३ ई० में पिता की मृत्यु होने

पर ये लाहौर की राजगद्दी पर विराजे । पुनः सन् १०२२ ई० में गज़नी के राजा महमूद ने इनको परास्त कर के लाहौर पर अपना अधिकार कर लिया । तभीसे भारत में मुसलमानी राज्य की नींव पड़ी ।

जयमल=(१) विख्यात एक राजपूतवीर । ये बदनौर के राजा थे । बदनौर मेवाड़ के प्रधान सामन्त राज्यों में से है । राणा साङ्गा के पुत्र कायर उदयसिंह अकबर के डर से राजपूतों की प्यारी चित्तौर की भूमि को छोड़ कर भाग गये । उस समय भी वीरवर जयमल अकबर के सामने खड़े थे और मातृभूमि की रक्षा करने के लिये, स्वयं राजपूत होने का परिचय दे रहे थे । इनके युद्ध-कौशल को देख कर मुगल सैन्य को आश्चर्य-चकित होना पड़ा था । परन्तु असंख्य मुगल सेना के साथ एकाकी जयमल जय प्राप्त नहीं कर सके । सन् १५६८ ई० में जयमल ने स्वदेशोद्धार के लिये युद्धक्षेत्र में प्राणत्याग किया । अकबर ने यद्यपि इस वीर को बड़ी नीचता से मारा था, तथापि इससे उसके हृदय में इनका सम्मान नहीं था-यह नहीं कहा जा सकता । क्योंकि, उसने इनकी सङ्गमरमर की मूर्ति दिल्ली में स्थापित करवायी थी ।

(टाडस् राजस्थान)

(२) भक्तमाल में भी एक जयमल का विवरण लिखा है । ये अत्यन्त विष्णुभक्त थे । ये प्रतिदिन बहुत देर तक विष्णु की पूजा किया करते थे । एक दिन एक राजा ने, जब जयमल विष्णु-पूजन कर रहे थे तब, उनके राज्य पर आक्रमण किया । उस विपत्ति के समय भी जयमल ने पूजा नहीं छोड़ी । स्वयं विष्णु योद्धा का वेश धारण कर रणक्षेत्र में उपस्थित हुए और शत्रुपक्ष का नाश करने लगे । केवल वह राजा ही युद्धक्षेत्र में बचे थे । पूजा समाप्त कर जयमल भी युद्धक्षेत्र में उपस्थित हुए । जयमल के शत्रु राजा ने जिस अलौकिक उपाय से उनकी सेना का नाश हुआ है उसका वर्णन जयमल के सामने किया । जयमल की बातें सुन कर वह राजा भी विष्णुभक्त हो गया ।

(भक्तमाल)

जयसल=(१) जयसलमेर राज्य के प्रतिष्ठाता यदुवंशी एक राजा । ये दूसा जी के पुत्र थे, ये दो भाई थे । मेवाड़ की राजकन्या से भी दूसा जी के एक पुत्र उत्पन्न हुआ था । दूसा जी के बाद वही मेवाड़-राज-कन्या का पुत्र लुद्रवा राज्य का अधीश्वर हुआ । इसका विवाह सोलंकी सिद्धराज जयसिंह की कन्या से हुआ था, जिसका नाम भोजदेव था । पिता के परलोक वास के अनन्तर भोजदेव ही लुद्रवा का राजा हुआ । उस समय जयसल की अवस्था ३५ वर्ष की थी । जयसल ने भोजदेव के विरुद्ध षड्यन्त्र रचा । परन्तु भोजदेव सर्वदा ५०० सोलंकी वीरों से रक्षित रहते थे इस कारण उनके शरीर पर जयसल हस्तक्षेप नहीं कर सके । उसी समय शाहबुद्दीन और पाटन के अधीश्वर दोनों में युद्ध हो रहा था । राजनीतिविशारद जयसल ने शाहबुद्दीन के साथ मिल कर पट्टन पर आक्रमण करने का दृढ़ सङ्कल्प किया । इसी विचार से उन्होंने दो सौ साहसी घुड़सवारों को साथ ले कर पंजाब की यात्रा की । जयसल यवनराज से मिले । यवनराज ने इनका अभिप्राय जान कर अपने प्रधान सेनापति करीमखाँ को इनके साथ लुद्रवा पर आक्रमण करने के लिये भेज दिया । उस युद्ध में भोजदेव मारा गया । उसकी सेना ने जयसल की अधीनता स्वीकार की । लुद्रवा राज्य जयसल के अधीन हो गया । जयसल ने लुद्रवा को राजधानी बनाने के लिये अनुपयुक्त जान कर वहाँ से पाँच कोस की दूरी पर एक स्थान निश्चित किया । एक समय एक पत्थर पर जयसल ने एक ब्राह्मण को बैठा देखा । उस ब्राह्मण की कुटी ब्रह्मसरकुण्ड के समीप थी । जयसल ने ब्राह्मण को प्रणाम कर के उसे अपने आने का उद्देश्य कह सुनाया । तब ब्राह्मण ने इस प्रकार कहा—त्रेतायुग में काकाकाग नामक एक योगी इस कुण्ड के पास रहता था । उसी योगी के नाम के अनुसार इस कुण्ड से निकली नदी कागा नाम से प्रसिद्ध हुई । एक समय अर्जुन भी श्रीकृष्ण के साथ इस कुण्ड की यात्रा करने आये थे । उस समय श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा था कि बहुत दिनों के पीछे

हमारे ही वंश का एक मनुष्य इस स्थान पर अपना राज्य स्थापित करेगा। अर्जुन ने कहा—यदि यहाँ राजधानी बनायी जायगी, तो यहाँ के रहने वालों को अत्यन्त जलकष्ट होगा। क्योंकि, इस नदी का जल निर्मल नहीं है। यह सुन कर श्रीकृष्ण ने अपने चक्र से उस त्रिश्रृङ्ग पर्वत से एक नयी नदी निकाली। यह कह कर योगी ने एक पत्थर निकाला जिस पर एक श्लोक लिखा हुआ था, जिसका अभिप्राय यह था—

हे यदुवंशावतंस! आप इस देश में पधारिये और इस शिखर पर त्रिकोण दुर्ग बनवाइये।

लुद्रवा विध्वंस हो गया है और जयसल का देश इस स्थान से पाँच कोस दूर है जो लुद्रवा से अत्यन्त दृढ़ है।

हे यदुवंशसम्भूत जयसल! लुद्रवा को छोड़ कर इस स्थान पर राजधानी स्थापित करो। सन् ११५६ ई० श्रावणकृष्णा द्वादशी रविवार के दिन जयसलमेर की राजधानी प्रतिष्ठित हुई। लुद्रवा के निवासी भी धीरे धीरे यहाँ चले आये। जयसल के दो पुत्र थे। जिनका नाम केलन और शालिवाहन था। इन्होंने पाड़ जाति के एक विद्वान् को अपना प्रधान मन्त्री और उपदेष्टा बनाया था।

(टाडस् राजस्थान)

जयसिंह=(१) उदयपुर के महाराणा। ये महाराणा राजसिंह के पुत्र थे। राजसिंह के मरने के बाद सन् १६८१ ई० में उनके दूसरे पुत्र जयसिंह मेवाड़ की राजगद्दी पर बैठे। जयसिंह ने राजगद्दी पर बैठ कर औरङ्गज़ेब के साथ सन्धि कर ली। बादशाह का पुत्र अज़ीम और मुगल-सेनापति दिलेरखाँ सन्धिपत्र ले कर मेवाड़ गये थे। मेवाड़ के महाराणा ने उनका अतिशय स्वागत किया था। जयसिंह से विदा होते समय मुगल-सेनापति दिलेरखाँ ने कहा था—राजपूत सरदार स्वभाव ही से कठोर हैं और मेरा पुत्र आपके मङ्गल के लिये बन्धक रखा गया है। परन्तु उसके जीवन के बदले यदि मैं आपके देश की पूर्ण स्वाधीनता का उद्धार कर सकूँ तो, मैं इसमें त्रुटि नहीं करूँगा। आप अपने चित्त को स्थिर रखिये। आपके स्वर्गीय पिता मेरे मित्र थे।

दिलेरखाँ ने अपनी प्रतिज्ञा का पालन करने के लिये प्रयत्न किया था अवश्य, परन्तु वह सफल नहीं हो सका। इसीसे कामोरी मुगलों के कठोर आक्रमण से रक्षा पाने के लिये राणा जी को वन में रहना पड़ा था। उस वन से बीच बीच में निकल कर राणा जी युद्ध भी किया करते थे। यद्यपि इन कामों को करने के लिये अधिक धन की आवश्यकता थी, तथापि राणा जी ने योग्यता-पूर्वक इस कार्य को सम्पादन किया था। इन्होंने मेवाड़ में एक बहुत बड़ा तालाब भी बनवाया था, जिसको "जयसमुद्र" कहते हैं अन्त में इनको घरेलू झगड़ों के कारण अपमान और कष्ट सहने पड़े थे। इस कष्ट का कारण केवल उनकी स्त्रैणपरायणता ही थी। अन्त में इन्होंने अपने पुत्र को राज्य दे कर झगड़े से पीछा छुड़ाना चाहा परन्तु पुनः इनको राज्य में आना पड़ा। जब ये राज्य में आये, तब इनका पुत्र इनसे लड़ने को प्रस्तुत हो गया। अतः ये पुनः जयसमुद्र पर चले गये। पुनः जब उनके पुत्र ने देखा कि राज्य के सरदारों में भीतरी द्वेष प्रज्वलित हो गया है, तब उस समय को भयानक समझ कर, पुत्र ने पिता से सन्धि कर ली। सन्धि हो जाने पर जयसिंह ने पुनः राज्य ग्रहण कर लिया। जयसिंह ने बीस वर्ष तक राज्य किया था। (टाडस् राजस्थान)

(२) ये जयसिंह काश्मीर के राजा थे। काश्मीर का इतिहास राजतरङ्गिणी नामक ग्रन्थ के रचयिता कल्हण इनके समकालीन थे। कल्हण का समय सन् ११४८ ई० माना जाता है।

(३) जयपुर के एक राजा। इनका पूरा नाम मिर्ज़ा राजा जयसिंह था। ये जगत्सिंह के पौत्र थे। जोधाबाई के कहने ही से बादशाह जहाँगीर ने इनको जयपुर राज्य का अधिकारी निश्चित किया। मानसिंह ने जिस प्रकार अकबर के समय अपना राज्य, सामर्थ्य और सम्मान बढ़ाया था, उसी प्रकार औरङ्गज़ेब के समय मिर्ज़ा राजा जयसिंह ने भी प्रसिद्धि पायी थी। जिस युद्ध में औरङ्गज़ेब था उसी युद्ध में रह कर

जयसिंह ने विजय प्राप्त किया था । औरङ्गज़ेब की भाग्यलक्ष्मी जयसिंह ही के सहारे भारतीय राजनीति के मैदान में चमकी थी । जयसिंह ही की बुद्धिमत्ता से छत्रपति शिवा जी बन्दी के वेश में दिल्ली आये थे । यद्यपि शिवा जी को जयसिंह ने बन्दी किया था, तथापि उनकी सम्मानरक्षा करने का उन्होंने वचन भी दिया था । जिसका जयसिंह ने पालन किया था । जिस समय विश्वासघात कर के औरङ्गज़ेब शिवा जी को मार डालना चाहता था उस समय जयसिंह ही की सहायता से शिवा जी दिल्ली से निकल कर भाग सके थे । इसलिये औरङ्गज़ेब इनसे अप्रसन्न रहा करता था । अन्त में उसने विष-प्रयोग करा कर इन्हें मरवा डाला ।

(४) जयपुर के एक राजा । ये सवाई जयसिंह के नाम से प्रसिद्ध थे । ये सन् १६९९ ई० में सिंहासन पर बैठे । औरङ्गज़ेब की मृत्यु के पीछे उनके पुत्रों में राज्य के लिये युद्ध होने लगा । सवाई जयसिंह ने वेदारवख़्त का पक्ष लिया था । परन्तु वह धौलपुर के युद्ध में मारा गया । शाहआलम बादशाह हुए, अतएव उसने जयपुर राज्य के एक अन्य मनुष्य को शासक बना कर भेजा । जयसिंह ने अपने प्रबल प्रताप से बादशाह की सेना को भगा कर अपने राज्य पर अधिकार कर लिया । इन्होंने ४४ वर्षों तक राज्य किया था । ज्योतिषशास्त्र का इन्होंने उद्धार किया था । काशी, जयपुर, आदि स्थानों में इन्होंने वेधशालाएँ बनवायी थीं । जयपुर नाम का नगर भी इन्हीं ही ने बसाया ।

(टाडस् राजस्थान)

जयसिंह कवि=ये हिन्दी भाषा के कवि थे । ये शृङ्गार रस की अच्छी कविता करते थे ।

जयापीड=काश्मीर के एक राजा । इनके पिता का नाम वज्रादित्य था । संग्रामपीड की मृत्यु होने पर जयापीड सिंहासनारूढ़ हुए थे । अपने वंशजों का पुरातन इतिहास सुनने से उनके हृदय में दिग्विजय करने की इच्छा बलवती हो गयी । इसी विचार से वे सेना ले कर दिग्विजय के लिये प्रस्थित हुए । मार्ग में उनके साथी स्वदेश का स्मरण कर लौटने लगे, यह देख जयापीड ने सभी साथी राजाओं को लौटा दिया और थोड़ी सेना ले कर वे स्वयं आगे बढ़े । वे प्रयाग आये, और यहाँ एक कम एक लाख घोड़े ब्राह्मणों को दान में दिये, और यहाँ एक स्तम्भ गाड़ दिया, जिसमें लिखा था "श्रीजयापीडदेवस्य" । पुनः अपनी समस्त सेना को लौट जाने की आज्ञा दे कर एक दिन रात्रि को यहाँ से चले । घूमते घामते अन्त में वे गौड़ राज्य में उपस्थित हुए । उस समय जयन्त नामक राजा गौड़ देश का शासन करता था । गौड़ देश की राजधानी पौण्ड्रवर्द्धन नामक नगर में जयापीड उपस्थित हुए । एक वेश्या ने उनको राजा समझ कर उपचार आदि से उनका स्वागत किया । उसी के यहाँ ये ठहर गये । उसने अपनी इच्छा प्रकट की, परन्तु जयापीड ने उत्तर दिया—जब तक मेरी दिग्विजययात्रा समाप्त नहीं होगी, तब तक हमको स्त्रियों से क्या मतलब । उस वेश्या का नाम कमला था ।

एक दिन उस गाँव में एक सिंह आया था, जिससे नगरवासी त्रस्त हो गये थे । सिंह के आने की ख़बर जयापीड को लगी । वे वहाँ गये, और सिंह को मार डाला । दूसरे दिन गौड़राज उसी मार्ग से जा रहे थे, उन्होंने सिंह को मरा हुआ देखा । उसको जब उठवाया, तब वहाँ उन्हें एक आभूषण गिरा हुआ मिला । उस आभूषण में लिखा था "जयापीड" इस नाम को देख कर बहुत लोग तो डर गये, परन्तु राजा ने कहा कि बड़ी प्रसन्नता हुई, जयापीड का जो पता बतावेगा उसे मैं पारितोषिक दूँगा । जयापीड का पता मिला, राजा ने उनको अपने घर निमन्त्रित कर अपनी पुत्री कल्याणीदेवी उनको व्याह दी ।

(राजतरङ्गिणी)

जयेन्द्र=काश्मीर के एक राजा का नाम । ये अन्यवंशीय राजा विजय के पुत्र थे । (देखो आर्यराज)

जरत्कारु=नागराज वासुकि के भगिनीपति का नाम । वासुकि की भगिनी का भी नाम जरत्कारु ही था । इनके पुत्र का नाम था आस्तीक ।

आस्तीक की माता जरत्कारु ने आस्तीक के पिता को एक दिन सन्ध्या के समय निद्रा से उठाया। इससे क्रुद्ध हो कर वे स्त्री को छोड़ चले गये। उनके जाने के समय उनकी स्त्री रोने लगी उस समय उन्होंने कहा था "अस्ति" अर्थात् गर्भ है अतएव उस गर्भ से उत्पन्न पुत्र का नाम आस्तीक या आस्तिक पड़ा। (महाभारत)

जरा=(१) राक्षसीविशेष। इसी राक्षसी ने मगधपति जरासन्ध के आधे शरीर को जोड़ कर उन्हें जीवित किया था। ब्रह्मा ने इसका नाम गृहदेवी रखा था। इसको लोग षष्ठीदेवी भी कहते हैं। (महाभारत)

(२) एक व्याध का नाम। यदुवंश के नाश होने पर जब श्रीकृष्ण एक वृक्ष के नीचे ध्यानमग्न थे, तब इसीने उनके बाण मारा था। कहते हैं यह व्याध पूर्व जन्म में बालिपुत्र अङ्गद था। (भागवत)

जरासन्ध=मगध के प्रसिद्ध राजा। इनके पिता का नाम बृहद्रथ था। राजा बृहद्रथ ने पुत्र प्राप्त करने के लिये चण्डकौशिक की आराधना की थी। प्रसन्न हो कर चण्डकौशिक ने राजा को एक फल दिया था और कहा था कि इस फल के खाने से अवश्य ही रानी के एक पुत्र होगा। राजा बृहद्रथ की दो रानियाँ थीं उन्होंने उस फल में से आधा आधा फल दोनों को दिया। इससे आधा आधा पुत्र दोनों ने उत्पन्न किये ऐसे पुत्र के जन्म की बात सुन कर राजा ने उसको श्मशान में ले जाने की आज्ञा दी। श्मशान में जरा नाम की एक राक्षसी रहती थी। उसने उस अपूर्णाङ्ग बालक को जोड़ कर जीवित कर दिया। तबसे उस लड़के का नाम जरासन्ध हुआ। उस लड़के को राक्षसी ने राजा को दे कर कहा महाराज, यह बालक अत्यन्त पराक्रमी राजा होगा और बिना जोड़ टूटे इसकी मृत्यु भी नहीं होगी। अस्ति और प्राप्ति नाम की जरासन्ध की कन्या मथुरापति कंस को ब्याही गयी थीं। जरासन्ध की सहायता से कंस ने अपने पिता को राज्यच्युत कर के राज्य पाया था। श्रीकृष्ण ने जब कंस को मार डाला तब क्रुद्ध हो कर जरासन्ध ने मथुरा पर आक्रमण किया था। उसने यवनराज कालयवन से भी सहायता ली थी। इनके आक्रमण से रक्षा पाना कठिन जान कर, श्रीकृष्ण ने मथुरा छोड़ दी और समुद्र के बीच द्वारका नाम की नगरी बसायी। वहाँ से लौट कर श्रीकृष्ण मथुरा आये और उन्होंने प्रपञ्च रच कर कालयवन को मरवा डाला। राजा युधिष्ठिर ने राजसूय नामक यज्ञ प्रारम्भ किया। परन्तु बिना जरासन्ध को पराजित किये इस यज्ञ का होना कठिन था। इस लिये श्रीकृष्ण, भीम और अर्जुन को अपने साथ ले कर मगध गये। वे तीनों ही स्नातक ब्राह्मण के वेश में थे। जरासन्ध के महल में ये गये, इनको ब्रह्मचारी जान कर किसीने रोका नहीं। आधी रात को जरासन्ध इनसे मिलने आया, उस समय उन लोगों ने अपना परिचय दे कर युद्ध के लिये उसे ललकारा। श्रीकृष्ण की प्रेरणा से भीम ने जरासन्ध की सन्धि को तोड़ दिया, जिससे उसका प्राणान्त हो गया।

(महाभारत)

जलन्धर=(१) दैत्यविशेष। एक समय इन्द्र महादेव के दर्शन के लिये कैलास गये हुए थे। वहाँ उन्होंने एक भीमाकृति पुरुष को देखा और शिव जी कहाँ हैं? यह पूछा। उसने इन्द्र को कुछ उत्तर नहीं दिया। इस पर क्रुद्ध हो कर इन्द्र ने उस मनुष्य के सिर पर वज्र मारा। उस मनुष्य के मस्तक से अग्नि की ज्वाला निकली और वह इन्द्र को जलाने के लिये चली। इन्द्र ने अब समझ लिया कि मैंने जिसके मस्तक पर वज्राघात किया है वह शिव ही हैं। तब तो इन्द्र महादेव जी की स्तुति करने लगे। इन्द्र की स्तुति से सन्तुष्ट हो कर महादेव जी ने अग्नि को समुद्र में फेंक दिया। उस अग्नि से एक बालक उत्पन्न हुआ और वह रोने लगा। उसके रोने से संसार बहरा हो गया। इसका कारण जानने के लिये ब्रह्मा समुद्र के तीर उपस्थित हुए। समुद्र ने ब्रह्मा से कहा "यह हमारा पुत्र है, आप इसको ले कर पालन करें।" ब्रह्मा ने उस बालक को गोदी में ले लिया। उस लड़के ने ब्रह्मा की मूँछ इस प्रकार जोर से पकड़ी कि, उनकी आँखों से जल निकल पड़ा।

इस कारण ब्रह्मा ने उस लड़के का नाम "जलन्धर" रखा और उसको वर दिया कि रुद्र के अतिरिक्त और कोई इस बालक को नहीं मार सकता। दूसरे पुराणों में लिखा है कि समुद्र के औरस और गङ्गा के गर्भ से जलन्धर उत्पन्न हुआ था। इसके जन्म लेते ही पृथिवी रोने लगी, जिससे स्वर्ग, मर्त्य और पाताल काँपने लगे। पृथिवी की विपत्ति देख ब्रह्मा सागर-सङ्गम पर उपस्थित हुए।

ब्रह्मा ने उस बालक को असुर राज्य पर स्थापित किया। धीरे धीरे वह प्रतापी हो गया और स्वर्ग राज्य पर चढ़ाई कर के उसने उसे भी अपने हस्तगत कर लिया। स्वर्गच्युत हो कर इन्द्र महादेव की शरण गये। महादेव ने जलन्धर को मार कर इन्द्र को पुनः स्वर्ग का राजा बना दिया। जलन्धर को वर था कि जब तक उसकी स्त्री वृन्दा का चरित्र निष्कलङ्क रहेगा, तब तक उसे कोई भी नहीं मार सकता। विष्णु ने जलन्धर का रूप धर कर उसका सतीत्व नष्ट किया जिससे शिव ने थोड़े ही परिश्रम से उसे मार डाला।

(पद्मपुराण)

(२) एक राज्यविशेष। (देखो त्रिगर्त)

जलालुद्दीन कवि=ये सं० १६१५ में उत्पन्न हुए थे और हिन्दी के एक सुकवि थे। हजारा में इनके बनाये कवित्त पाये जाते हैं।

जलील=इनका पूरा नाम अब्दुलजलील बिलग्रामी था। ये संवत् १७३९ में उत्पन्न हुए थे। औरङ्गजेब बादशाह के यहाँ इनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। इनके बनाये ग्रन्थों से इनके अगाध पाण्डित्य का परिचय मिलता है। हरिवंश मिश्र कवि से इन्होंने भाषा पढ़ी थी। और भाषा में अच्छी कविता करते थे।

जलौक=ये काश्मीर के राजा थे। इनके पिता का नाम अशोक था। अशोक का परलोकवास होने पर इनको काश्मीर का राज्य मिला था। इन्होंने बौद्धों को अपने राज्य से निकाल दिया था। ये धर्मात्मा थे। इनके राजत्वकाल में काश्मीर ऐश्वर्यशाली राज्यों में गिना जाता था।

(राजतरङ्गिणी)

जलौका=काश्मीर के राजा प्रतापादित्य के ये पुत्र थे। ये विक्रमादित्य की ज्ञाति के थे। इन्होंने ३२ वर्ष राज्य किया था। इनके शासनकाल में काश्मीर राज्य में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ था।

(राजतरङ्गिणी)

जवानसिंह=उदयपुर के महाराणा। ये महाराणा भीमसिंह के औरस पुत्र थे। सन् १८२८ ई० में ये राजसिंहासन पर बैठे थे। ये विलासी और आलसी थे। राज्य के शासन में भाग लेना ये जानते ही न थे, या चाहते ही नहीं थे। इनके समय में भी अंग्रेज़ गवर्नमेंट से सन्धि-पत्र लिखा गया था। ये बड़े ख़र्चीले थे। अन्त में इनको ऋण भी करना पड़ा था। इनका जीवन अकर्मण्यता की कालिमा से कलङ्कित है।

(टाडस् राजस्थान)

जह्नु=प्रसिद्ध राजर्षि। इन्होंने गङ्गा के पीने से जगत् में प्रसिद्धि पायी थी। इनके पिता का नाम सुहोत्र और माता का नाम केशिनी था। उर्वशी के गर्भ से राजा पुरूरवा के सात पुत्र उत्पन्न हुए थे। उनमें एक का नाम जीम था, जिसके पुत्र काञ्चनप्रभ थे। काञ्चनप्रभ के पुत्र सुहोत्र और सुहोत्र के पुत्र जह्नु थे। महाराज जह्नु सर्वमेध नामक यज्ञ कर के प्रसिद्ध हुए थे। गङ्गा उनको पति बनाने के लिये उनके पास गयीं, परन्तु उन्होंने स्वीकार नहीं किया। इस कारण क्रुद्ध हो कर गङ्गा ने उनके स्थान को डुबोना चाहा। उस समय जह्नु ने गङ्गा को पी लिया। यह देख महर्षियों ने गङ्गा का नाम जाह्नवी रखा। युवनाश्व की कन्या कावेरी से इनका ब्याह हुआ था। कावेरी के गर्भ से जह्नु के एक पुत्र हुआ था, जिसका नाम सुनह था।

(हरिवंश)

रामायण और विष्णुपुराण में जह्नु की कथा दूसरे प्रकार से लिखी गयी है। जिस समय भगीरथ अपने पूर्वपुरुषों के उद्धार के लिये गङ्गा को पाताल ले जा रहे थे उस समय मर्त्यलोक में महर्षि जह्नु एक यज्ञ कर रहे थे। गङ्गा ने यज्ञभूमि को डुबो दिया और वे यज्ञ-

सामग्री वहा ले चलीं। इस पर क्रुद्ध हो कर राजर्षि जह्नु ने गङ्गा को पी डाला। भगीरथ बड़े कष्ट में पड़े और वे उनकी स्तुति करने लगे। उनकी स्तुति से प्रसन्न हो कर जह्नु ने गङ्गा को बाहर निकाल दिया, तभी से गङ्गा को जाह्नवी भी कहते हैं।

(रामायण, विष्णुपुराण)

जाजलि=अथर्ववेदज्ञ गोत्रप्रवर्तक एक ऋषि। ये अपनी तपस्या के अभिमान में चूर हो कर दाम्भिक हो गये थे। वाराणसी के तुलाधार नामक वणिक् के निकट धर्मशास्त्र का उपदेश सुनने से इनको ज्ञान हुआ था।

(महाभारत)

जानकीप्रसाद पवाँर=(१) ये हिन्दी के कवि थे। मौज़ा जोहचेनकटी ज़िला रायबरेली के रहने वाले थे। इनके पिता का नाम ठाकुर भवानीप्रसाद था। ये फ़ारसी और संस्कृत भाषा में प्रवीण थे। उर्दू में शादनामा नामक एक ग्रन्थ इन्होंने बनाया है। भाषा में इनके बनाये ये ग्रन्थ हैं—१ "रघुवीरध्यानावली", २ "रामनवरत्न", ३ "भगवतीविनय", ४ "रामनिवासरामायण", ५ "रामानन्दविहार", ६ "नीतिविलास"। चित्रकाव्य और शान्तरस के वर्णन में ये सिद्धहस्त थे।

(२) ये भाषा कवि काशी के रहने वाले थे। केशव कृत रामचन्द्रिका की इन्होंने टीका लिखी। इनका बनाया "युक्तिरामायण" नामक भी एक ग्रन्थ है।

जामदग्न्य=ये विष्णु के एक अवतार माने जाते हैं। ये जमदग्नि ऋषि के पुत्र थे और इनका नाम था राम। महादेव से परशु प्राप्त करने के कारण इनको परशुराम भी कहते हैं। ऋचीक प्रदत्त चरु के प्रभाव से क्षत्रियकुमार होने पर भी विश्वामित्र ब्राह्मणधर्मी और जामदग्न्य ब्राह्मणकुमार होने पर भी क्षत्रियधर्मी हो गये थे।

एक समय जामदग्न्य की माता रेणुका स्नान करने गयी थीं वहाँ उन्होंने मृत्तिकावत् के राजा चित्ररथ को स्त्रियों के साथ जलक्रीड़ा करते देखा। उसे देख रेणुका का भी मन विचलित हुआ। कामक्रीड़ा के अन्त में रेणुका अपने आश्रम में गयीं। रेणुका को देखते ही जमदग्नि ने समझ लिया और अपने पुत्रों को क्रमशः उसका शिरच्छेदन करने के लिये कहा। उनके चार पुत्रों ने उनका कहना अस्वीकार किया। तब क्रुद्ध हो कर जमदग्नि ने पुत्रों को शाप दिया। उनके शाप से पुत्र अचेतन हो गये। पञ्चम पुत्र राम उस समय आश्रम में नहीं थे। थोड़ी देर के बाद वे आये और पिता की आज्ञा से उन्होंने माता का सिर काट लिया। जमदग्नि का क्रोध दूर हो गया। उन्होंने अपने पुत्र से वर माँगने के लिये कहा परशुराम ने चार वर माँगे।

(१) मेरी माता जीवित हो जाँय, और उनको अपना वध किया जाना भूल जाय।

(२) युद्ध में कोई मेरा सामना न कर सके।

(३) बहुत दिनों तक मैं जीवों।

(४) मेरे भाई पुनः जी उठें और अपने अपने-कार्य में लग जाँय।

पिता ने प्रसन्न हो कर ये चारों वर दे दिये।

एक समय हैहयराज कार्तवीर्य ने परशुराम की अनुपस्थिति के समय जमदग्नि को मार डाला। परशुराम घर आ कर माता से पितृवध का सारा वृत्तान्त सुना और उसी समय हैहय देश में जा कर उन्होंने कार्तवीर्य को मार डाला तथा होम की धेनु का उद्धार किया। कार्तवीर्य का वध कर के ही वे तृप्त नहीं हुए, पितृवध का बदला चुकाने के लिये उन्होंने इक्कीस बार पृथिवी को क्षत्रियहीन कर दिया। उन्होंने क्षत्रियों के रुधिर से कुरुक्षेत्र के पास के समन्तपञ्चक के पाँच तालाब भर दिये थे और उन्हीं ह्रदों में पितृतर्पण कर के महर्षि ऋचीक का दर्शन पाया था। महर्षि ऋचीक ने उनसे क्षत्रियों को न मारने के लिये कहा। तब जामदग्न्य कश्यप को पृथिवी दान करके स्वयं महेन्द्र पर्वत पर जा कर रहने लगे। समुद्र को हटा कर पशुराम ने महेन्द्र पर्वत पर अपने रहने के लिये स्थान बनाया था।

परशुराम ने गन्धमादन पर्वत पर तपस्या

कर के महादेव को प्रसन्न किया था और उनसे तेजोमय परशु पाया था।

राम, जिस समय सीता को ब्याह कर अयोध्या की ओर लौट रहे थे, उस समय परशुराम वहाँ पहुँचे। क्षत्रियकुल में लोग पुनः उत्पन्न हुए, यह समझ कर परशुराम रामचन्द्र का वध करने के लिये आगे बढ़े। परन्तु राम को देख कर, परशुराम डर गये, रामचन्द्र ने उन्हें समझा दिया। परशुराम ने श्रीराम को अपने धनुष पर शर चढ़ाने के लिये कहा, यदि रामचन्द्र शर चढ़ा देंगे तो परशुराम हार जाँयगे। श्रीराम ने शर चढ़ा दिया। परशुराम पुनः महेन्द्र पर्वत पर चले गये।

रामायण या महाभारत में परशुराम अवतार नहीं माने गये हैं। परन्तु मत्स्य और विष्णु-पुराण में वे भगवान् के छठवें अवतार और भागवत में १६ वें अवतार माने गये हैं। इन्होंने कोङ्कण प्रदेश को दस्युओं के अधिकार से निकाल कर वहाँ ब्राह्मणों का उपनिवेश स्थापन किया था।

जाम्बवती=श्रीकृष्ण की प्रधान स्त्रियों में से एक का नाम। श्रीकृष्ण के श्वशुर सत्राजित के पास स्यमन्तक नाम का एक मणि था। सत्राजित के छोटे भाई उस मणि को गले में लगा कर आखेट करने गये थे। एक सिंह ने प्रसेन को मार डाला और मणि ले कर एक गुहा में चला गया। पुनः जाम्बवान् ने उस सिंह को मार कर मणि ले ली और उस मणि को अपनी कन्या जाम्बवती को खेलने के लिये दे दिया। सत्राजित ने समझा कि श्रीकृष्ण ने उनके भाई प्रसेन को मार कर मणि ले ली। क्योंकि कुछ ही दिनों पहले श्रीकृष्ण ने मणि माँगी थी, परन्तु सत्राजित ने नहीं दी थी। श्रीकृष्ण अपना कलङ्क छुड़ाने के लिये और प्रसेन को ढूँढ़ने के लिये वन में गये, वहाँ उन्होंने प्रसेन और सिंह के मृतक शरीर को देखा। अपने साथियों को गुहा के बाहर ही रख कर स्वयं श्रीकृष्ण गुहा में घुसे। उस गुहा में जा कर स्यमन्तक मणि से खेलती हुई जाम्बवती को उन्होंने देखा। श्रीकृष्ण को देख कर जाम्बवती और उसकी धाय चिल्ला उठीं। जाम्बवान् आया और वह श्रीकृष्ण से लड़ने लगा। युद्ध में हार कर जाम्बवान् श्रीकृष्ण की स्तुति करने लगा और स्यमन्तक मणि उनको अर्पण कर दी। जाम्बवती से विवाह कर, उसे और मणि को ले कर श्रीकृष्ण द्वारका लौट आये। जाम्बवती के गर्भ से श्रीकृष्ण के दस पुत्र उत्पन्न हुए थे।

(भागवत)

जाम्बवान्=ऋक्षपति। ये भल्लूकराज ब्रह्मा के पुत्र थे। त्रेतायुग में कपिराज सुग्रीव के सेनापति हो कर लङ्का के युद्ध में इन्होंने श्रीरामचन्द्र को सहायता दी थी। द्वापरयुग में स्यमन्तक मणि के कारण श्रीकृष्ण से इनका युद्ध हुआ था। इसी युद्ध के अन्त में जाम्बवान् ने स्यमन्तक मणि और अपनी कन्या श्रीकृष्ण को सौंप दी। मालूम होता है जाम्बवान् ऋक्षजातीय अनार्य राजा थे।

ज़ालिमसिंह=ये झाला जाति के एक राजपूत थे। इनके पूर्वपुरुष सौराष्ट्र देश के अन्तर्गत झाला प्रदेश के बीच हलवद नामक स्थान के रहने वाले थे। इनके पूर्वपुरुष कोटे आये थे। कोटे के राजा ने उनका बड़ा आदर किया था तथा उनको अपने प्रधान सेनापति का पद दिया। इनके पिता का नाम पृथ्वीसिंह था, परन्तु ये अपने चाचा हिम्मतसिंह के गोद गये थे। इनका जन्म संवत् १७९६ में हुआ था। ये पहले पहल कोटे के फ़ौजदार नियुक्त हुए। भटवाड़े के रणक्षेत्र में इन्होंने वीरता और राजनीतिसत्ता का अनुपम परिचय दिया था। परन्तु इनकी शक्ति देख कर कोटे के राजा गुमानसिंह के हृदय में कुछ खटका हुआ। उन्होंने इनको अपने राज्य से निकाल दिया। कोटा राज्य से सम्बन्ध टूट जाने पर ये उदयपुर गये। उस समय महाराणा अडसी मेवाड़ के अधीश्वर थे। वहाँ ये कुछ दिनों तक रहे। उदयपुर के महाराणा ने इन्हें "राजराणा" की माननीय उपाधि से भूषित किया था। पुनः ये अवसर देख कर कोटे चले आये, और इन्होंने गुमानसिंह को प्रसन्न कर लिया। इनके समय में कोटे की राजगद्दी पर पाँच राजा बैठ चुके थे।

(टाडस् राजस्थान)

जावाल=एक प्राचीन वैद्य का नाम। ये भास्कर के शिष्यों में से थे। इन्होंने "तन्त्रसारक" नाम का एक वैद्यक ग्रन्थ बनाया है।

जावालि=प्राचीन महर्षि। ये महर्षि गौतम के गुरु थे। महाराज दशरथ की शासनसभा में एक जावालि मन्त्रिकार्य करते थे। मालूम नहीं ये दोनों जावालि एक ही हैं या भिन्न भिन्न।

जितव्रत=सूर्यवंशी हविर्द्धान नामक राजा के पुत्र का नाम।

जीमूतवाहन=(१) एक प्रसिद्ध स्मार्त पण्डित। खृष्टीय ११वीं सदी के प्रथम भाग में ये उत्पन्न हुए थे। इन्होंने मनुसंहिता पर भाष्य बनाया है।

(२) एक गन्धर्वविशेष। ये अपनी दया के लिये प्रसिद्ध थे। इन्होंने अपना शरीर तक दान कर दिया था।

जीमूतमल्ल=यह एक बड़ा पराक्रमी पहलवान था। जिस समय पाण्डव विराट् के यहाँ अज्ञातवास में थे, उस समय वहाँ ब्राह्मणों का एक मेला हुआ। उस मेले में दूर दूर के पहलवान आये थे। उनमें जीमूतमल्ल नामक एक बड़ा पहलवान आया था। उसके साथ कोई लड़ने के लिये उद्यत नहीं हुआ। अन्त में भीमसेन उससे लड़े, और उन्होंने उसे मार डाला।

(महाभारत)

जीवनकवि=ये भाषा के कवि सं० १८०३ में उत्पन्न हुए थे और मुहम्मदअली बादशाह के दरबार में थे।

जीवनाथ बन्दीजन=ये भाषा कवि नवलगंज, ज़िला उन्नाव के रहने वाले थे। सं० १८७२ में ये उत्पन्न हुए थे। ये महाराज बालकृष्ण दीवान बादशाह घराने के प्राचीन कवि हैं। "वसन्तपचीसी" नामक ग्रन्थ इनका उत्तम है।

जुल्फेकार=ये भाषा के कवि थे और सं० १७८२ में उत्पन्न हुए थे। इन्होंने बिहारीसतसई की विलक्षण टीका लिखी है।

जुष्क=काश्मीर के एक राजा का नाम। राजतरङ्गिणी में लिखा है कि जुष्क हुष्क और कनिष्क एक ही समय काश्मीर का शासन करते थे। जुष्क ने अपने नाम पर काश्मीर राज्य में एक नगर की प्रतिष्ठा की थी। ये शकवंशी थे।

(राजतरङ्गिणी)

जैगीषव्य=विख्यात ऋषि असितदेवल के गुरु। पहले असितदेवल नामक एक ऋषि, गार्हस्थ्य धर्म का पालन करते हुए आदित्यतीर्थ में रहते थे। कुछ दिनों के बाद जैगीषव्य भी वहाँ गये और योग साधन कर उन्होंने सिद्धि प्राप्त की। उनके योगबल को देख कर देवल शिष्य बन गये।

(महाभारत)

जैतसिंह=बीकानेर के राजा। ये बीकानेर के प्रतिष्ठाता राजा बीका के पौत्र थे। इनके पिता का नाम लूनकरण था। संवत् १५६६ में लूनकरण की मृत्यु हुई। तब जैतसिंह का राज्याभिषेक हुआ। ये अपने पिता के ज्येष्ठ पुत्र नहीं थे। परन्तु इनके बड़े भाई ने स्वेच्छा से कुछ जागीर ले कर अपना राज्याधिकार त्याग दिया था। ये बड़े वीर थे। इन्होंने तारनोह प्रदेश के अधिनायक को युद्ध में परास्त कर दिया था। संवत् १६०३ में इनका परलोकवास हो गया।

जैन=एक धर्मसम्प्रदाय। इस धर्म के अनुयायियों को भी जैन कहते हैं। यह धर्मसम्प्रदाय प्राचीन है। कतिपय पण्डितों का मत है कि बौद्धधर्म ही जैनधर्म या सम्प्रदाय का मूल है। गौतमबुद्ध के जन्म के बाद जो जैनदर्शन लिखे गये हैं उनमें बौद्धदर्शन की छाया पायी जाती है। इसी कारण पूर्वोक्त प्रश्न उठाया जाता है। परन्तु दोनों दर्शनों पर जिन लोगों ने गूढ़ विचार किये हैं उनका मत है कि जैनमत के अन्तिम तीर्थङ्कर महावीर बुद्धदेव के गुरु थे। महावीर से बुद्धदेव ने जो बीजमन्त्र पाया था, वही समय पा कर बुद्धदेव के द्वारा प्रकाशित हुआ था। "जिन" शब्द के द्वारा प्रधानतः जैनधर्म के चौबीस महापुरुष और पवित्रात्मा समझे जाते हैं। उनका दूसरा नाम तीर्थङ्कर है। शास्त्रकार और संसारसमुद्र से पार उतारने वाले को तीर्थङ्कर कहते हैं। जैन शास्त्रों के मत से चौबीस अवतार भूमण्डल पर अवतीर्ण हुए थे। तीर्थङ्करों के नाम और सङ्ख्या के विषय में जैनशास्त्रों में मतभेद है। पुराणों में जिस प्रकार एक मन्वन्तर में एक एक देवता की प्रधानता लिखी है और भिन्न भिन्न युगों में अवतार उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार जैनमत के

आगम शास्त्रों में भी अनेक बातें लिखी पायी जाती हैं। वे बीते समय को उत्सर्पिणी और वर्तमान काल को अवसर्पिणी कहते हैं। उत्सर्पिणी में जिस नाम के तीर्थंकर विद्यमान थे, अवसर्पिणी में वे ही नाम परिवर्तित हुए हैं।

जैनधर्म में प्रधानतः दो मत हैं। एक का नाम दिगम्बर और दूसरे का नाम श्वेताम्बर है, दिगम्बर कहते हैं लज्जा से पाप प्रकाशित होता है, जिसके पाप नहीं, उसे लज्जा भी नहीं ही होगी, विशुद्ध आचरण करने से मनुष्य को अविनाशी सुख की प्राप्ति होती है। इसी कारण दिगम्बरसम्प्रदायी लज्जा निवारण करने के लिये भी वस्त्र धारण करना उचित नहीं समझते। श्वेताम्बर श्वेत वस्त्र धारण करते हैं। इसी कारण उन्हें श्वेताम्बर कहते हैं। इसके दो भेद हैं। एक का नाम मन्दिरमार्गी या डेरावासी है। ये तीर्थङ्करों की मूर्ति बना कर उसकी पूजा करते हैं। दूसरे सम्प्रदाय का नाम स्थानकवासी है। इनको लोग ढूंढिया भी कहते हैं। स्थानकवासी प्रतिमापूजा के विरोधी हैं। जैन संन्यासियों को यति और गृहस्थों को श्रावक कहते हैं। जितेन्द्रियता के लिये यति लोग प्रसिद्ध हैं। किसी प्रकार जीवहिंसा न हो इसके लिये ये सर्वदा सावधान रहते हैं। श्रावकों के प्रधान चार गुण हैं दान विनय दया और कठोर नियमों का पालन। जैनयति देवालयों में शास्त्र पाठ करते हैं। जैनों के आगम नामक पचास धर्मग्रन्थ हैं। अहिंसा ही जैनियों का परम धर्म है। पारसनाथ पर्वत, आबू पर्वत, शत्रुञ्जय पर्वत आदि इनके तीर्थस्थान हैं। काठियावाड़ के गिरनार पर्वत पर भी जैनियों के मन्दिर हैं।

जैमिनि=मीमांसादर्शनप्रणेता महर्षि। इनका बनाया मीमांसादर्शन पूर्वमीमांसादर्शन कहा जाता है। इसको जैमिनिदर्शन भी कहते हैं। पूर्वमीमांसादर्शन आस्तिक षड्दर्शनों के अन्तर्गत समझा जाता है। इसके १२ अध्याय हैं। इसमें वैदिक मन्त्रों पर विचार किया गया है। इस कारण इसे मीमांसादर्शन कहते हैं। जिन जिन विषयों में वेद और स्मृतियों में विरोध है उसीका विचार इस दर्शन में किया गया है। इस दर्शन के अतिरिक्त देवता का अस्तित्व नहीं माना जाता। क्योंकि जिस घट पर इन्द्र का आवाहन किया गया, यदि उस घड़े पर ऐरावत के साथ या स्वयं इन्द्र आ कर बैठें, तो अवश्य ही वह घड़ा चूर चूर हो जायगा और छोटे घड़े पर इन्द्र का आ कर बैठना भी तो असम्भव है। अतएव जिस मन्त्र से जिस देवता का आवाहन किया जाता है उसी मन्त्र ही को देवता मान लेने में कोई असुविधा नहीं रह जाती।

जैमिनि नामक अनेक ऋषियों का परिचय पाया जाता है, सुतरां मीमांसादर्शन के प्रणेता कौन से जैमिनि हैं इसका पता लगाना कठिन है। कृष्णद्वैपायन वेदव्यास के एक शिष्य का भी नाम जैमिनि था। "जैमिनिभारत" नामक ग्रन्थ इन्हींका बनाया कहा जाता है। ये वेदव्यास से महाभारत और सामवेद पढ़े थे। जैमिनि के नाम से सामवेद की एक शाखा भी है। ये दोनों जैमिनि एक हैं या भिन्न भिन्न हैं इसका पता कैसे लगाया जाय? वज्रवारक पाँच ऋषियों में जैमिनि का भी नाम पाया जाता है, इनके अतिरिक्त दर्शनकार जैमिनि एक है ही हैं। इसके निर्णय करने का कोई उपाय नहीं है।

जोधा जी=जोधपुर के स्थापनकर्ता राठौरवीर। इनके पिता राव रिड़मल्ल थे। इनके पिता और पितामह माडोर के क़िले में रह कर राज्यशासन करते थे। परन्तु एक योगी के कहने से इन्होंने जोधपुर बसाया था। उदयपुर के चूड़ा जी ने माडोर पर अधिकार कर लिया था। उस समय जोधा जी वन में छिप कर रहने लगे थे। पुनः समय पर जोधा जी ने अपने साथियों को ले कर माडोर के क़िले पर चढ़ायी की और उस पर अपना अधिकार कर लिया। संवत् १४८४ के वैशाख मास में मेवाड़ के अन्तर्गत धनला नामक ग्राम में इनका जन्म हुआ था। संवत् १५१५ में इन्होंने जोधपुर नगर की स्थापना की थी। जोधा जी के १४ पुत्र थे।

(टाडस् राजस्थान)

जोधाबाई=ये जोधपुर के राजा मालदेव की पुत्री और उदयसिंह की बहिन थीं। उदयसिंह ने अकबर का प्रसाद पाने के लिये अपनी बहिन जोधाबाई का व्याह अकबर से किया था। यह व्याह सन् १५६६ ई० में हुआ था। इन्हींके गर्भ से सलीम का जन्म हुआ था जो अकबर के पीछे जहाँगीर नाम धारण कर के दिल्ली के सिंहासन पर बैठा। ये अकबर को हिन्दुओं के साथ अच्छा व्यवहार करने के लिये उपदेश दिया करती थीं।

जोनराज=कल्हण ने अपने से पूर्ववर्ती तथा सामयिक राजाओं का इतिहास सन् ११४८ ई० में राजतरङ्गिणी में लिपिबद्ध किया था। उसके बाद से अपने समय तक के राजाओं का इतिहास जोनराज ने लिखा है। इनकी बनायी राजतरङ्गिणी दूसरी राजतरङ्गिणी कही जाती है। इन्होंने अपने ग्रन्थ में अपना समय इस प्रकार लिखा है:—

"श्रीजोनराजविबुधः कुर्वन् राजतरङ्गिणीम्।
सायकाग्निमिते वर्षे शिवसायुज्यमावसत्॥"

अर्थात् पण्डित जोनराज संवत् ३५ में राजतरङ्गिणी बना कर शिवसायुज्य को प्राप्त हुए। इससे जाना जाता है कि इन्होंने सन् १४१२ ई० में प्राणत्याग किया। इन्होंने भारवि के किरातार्जुनीय नामक काव्य की टीका भी लिखी थी, ऐसा जाना जाता है।

जोरावरसिंह=(१) बीकानेर के एक राजा का नाम। सुजानसिंह के बाद ये बीकानेर के सिंहासन पर बैठे। सन् १७३७ ई० में ये बीकानेर के राजा हुए। दस वर्षों तक इन्होंने राज्य किया था। इनके शासनसमय में कुछ विशेष घटना नहीं हुई। (टाडस् राजस्थान)

(२) जयसलमेर के प्रधान सामन्त। इनके पिता का नाम अनूपसिंह था। अनूपसिंह ने राजकुमार रायसिंह से मिल कर जयसलमेर के राजा रावल मूलराज को क़ैद कराया था। परन्तु जोरावरसिंह ने अपनी माता की आज्ञा से रावल मूलराज को कारागार से निकाल लिया था। रावल मूलराज के मन्त्री सालिमसिंह ने षड्यन्त्र रच कर इनको राज्य से निकलवा दिया था। एक समय यह कहीं बाहर से आ रहा था कि रास्ते में सामन्तों ने उसे घेर लिया। सलीमसिंह ने दूसरा उपाय न देख जोरावरसिंह के पैर पर पगड़ी रख दी, अतएव उन्होंने क्षमा कर दिया। परन्तु दुष्ट सलीमसिंह ने विष से उनको मरवा डाला। (राजस्थान)

ज्योतिष्मान्=ये राजा प्रियव्रत के पुत्र थे। इनको राजा प्रियव्रत ने कुशद्वीप का अधिकार दिया था।

ज्वर=दैत्यराज बाण के एक सेनापति का नाम। इसके तीन पैर तीन मस्तक छः बाहु और नौ नेत्र थे। महादेव ने इसे बाण की सहायता के के लिये भेजा था। बलराम और प्रद्युम्न को ले कर श्रीकृष्ण अनिरुद्ध का उद्धार करने के लिये बाण की राजधानी में गये थे। बाण के सेनापति ज्वर से आक्रान्त हो कर श्रीकृष्ण वहाँ पीड़ित हुए थे। ज्वर श्रीकृष्ण के शरीर में प्रवेश कर के उन्हें पीड़ित करने लगा, अतएव श्रीकृष्ण ने एक और ज्वर की सृष्टि की। इसने श्रीकृष्ण के शरीर में घुसे हुए ज्वर को उनके सामने खड़ा किया। उस समय ज्वर नम्र हो कर श्रीकृष्ण की दया प्रार्थना करने लगा। उसकी स्तुति से प्रसन्न हो कर श्रीकृष्ण ने ज्वर को छोड़ दिया और उसे वर दिया कि पृथिवी में तुम्हारे अतिरिक्त दूसरा ज्वर नहीं रहेगा। (हरिवंश)

झ

झूनाराम=यह जयपुर राज्य का एक मन्त्री था। महाराज जयसिंह की अकालमृत्यु होने के पीछे भटियानी रानी राज्यशासन करती थी। ऐसा सन्देह करने का पूरा अवसर मिलता है कि भटियानी रानी का चरित्र शुद्ध नहीं था। झूनाराम ने उनके हृदय पर अपना अधिकार जमा लिया था। इसी कारण गवर्नमेंट के नियुक्त सुयोग्य प्रधान मन्त्री बैरिसाल को निकाल रानी ने इसे प्रधान मन्त्री बनाया। इसके मन्त्री बनते ही जयपुर राज्य में मनमाने कार्य होने लगे। जयपुर राज्य में अराजकता ने विशाल मूर्ति धारण कर ली। प्रजा के दुःखों का ठिकाना नहीं रहा। कहते हैं जयसिंह की अकालमृत्यु का भी कारण झूनाराम ही है। भटियानी रानी के

मरने बाद यह राजमन्त्री के पद से हटा कर चुनार के क़िले में आजीवन क़ैद कर लिया गया था। (टाडस् राजस्थान)

ट

टोडरमल=बादशाह अकबर के ये राजस्व मन्त्री थे। ये जाति के खत्री थे। पञ्जाब के लाहौर नगर में इनका जन्म हुआ था। ये युद्धविद्या में अत्यन्त निपुण थे। ये अकबर के सेनापतियों में से भी थे। गाना बजाना और कविता करने में भी ये दक्ष थे। गणित के ये प्रकाण्ड विद्वान् थे और ज्ञान के अन्य भागों में भी इनका न्यूनाधिक अधिकार था। यद्यपि वे राजस्व मन्त्री के पद पर थे तथापि अपनी वीरता के लिये प्रसिद्ध थे। टोडरमल के पहले राजकीय हिसाब हिन्दी भाषा में लिखे जाते थे परन्तु इनके समय से राज्य का हिसाब पारसी में लिखा जाने लगा। २७ वर्ष की अवस्था में टोडरमल इतने बड़े राज्य के दीवान हुए थे। मालगुज़ारी वसूल करने के जो इन्होंने नये नियम बनाये थे, उनसे इनका यश चारों ओर फैल गया। अकबर के राज्य में इनके समान हिसाब जानने वाला दूसरा नहीं था। टोडरमल ने मुहर्रिरी से अपनी बुद्धि के बल से इतने बड़े उच्च पद को पाया था।

ड

डिम्बक=शाल्व नगर के राजा ब्रह्मदत्त के पुत्र का नाम। इनके सौतेले भाई का नाम हंस था। हंस और डिम्बक महादेव के वर से देवता असुर गन्धर्व और दानव आदि से अवध्य हो गये थे और विरूपाक्ष तथा कुण्डोदर नामक दो रुद्र के अनुचर भी इनके साथ सर्वदा रहा करते थे। एक समय इन लोगों ने दुर्वासा मुनि का अपमान किया। उनके दण्ड कमण्डलु आदि तोड़ फोड़ डाले। मुनि ने इनकी उच्छृङ्खलता श्रीकृष्ण से जा कर कही। श्रीकृष्ण ने हंस और डिम्बक के साथ युद्ध किया था। श्रीकृष्ण हंस के साथ युद्ध करते करते उसको बड़ी दूर लिये चले गये। डिम्बक सात्यकि के साथ युद्ध कर रहा था। डिम्बक को मालूम हुआ कि उसका भाई मारा गया। अतएव उसने युद्ध छोड़ कर यमुना में प्रवेश किया, और अपनी जीभ उखाड़ कर वह स्वयं मर गया। आत्महत्या करने के कारण डिम्बक को बहुत दिनों तक नरक भोग करना पड़ा था।

(हरिवंश)

डूँगरसिंह=बीकानेर के एक राजा का नाम। इनके पिता का नाम लालसिंह था। ये दत्तक हो कर बीकानेर की राजगद्दी पर आये थे। इनकी छोटी अवस्था होने के कारण मन्त्रिसभा के द्वारा इनके राज्य का शासन होता था। राजा की अधिक अवस्था होने पर भी मन्त्रिसमाज ही राज्यशासन करता रहा। सन् १८७४ ई० में अमरसिंह नामक एक सामन्त ने इनको विष देने का प्रयत्न किया था, अतएव महाराज ने उसे १२ वर्ष के लिये कारागार भिजवा दिया। सन् १८७६ ई० में ये हरिद्वार और गया तीर्थ करने गये थे। वहाँसे लौटते प्रिंस ऑफ वेल्स् (सम्राट् एडवर्ड) से आगरे में मिले थे। इन्होंने अपने सामन्तों पर कर बढ़ा दिया था। इससे सामन्त असन्तुष्ट हो गये थे। अन्त में वह असन्तोष इतना बढ़ा कि उसका निपटारा युद्ध के द्वारा करना पड़ा। इनको अंग्रेज़ गवर्नमेंट से भी सहायता लेनी पड़ी। गवर्नमेंट की सेना और महाराज की सेना दोनों ने बीदासर नामक क़िले पर आक्रमण किया। अन्त में सामन्तों ने आत्मसमर्पण कर दिया।

(टाडस् राजस्थान)

त

तक्षक=एक सर्प का नाम। इसीने राजा परीक्षित् को काटा था। सर्पयज्ञ से रक्षा पाने के लिये इसने इन्द्र का आश्रय लिया था। परन्तु इन्द्र ने अपने पर आती हुई आपत्ति को देख कर इसका त्याग किया परन्तु आस्तीक ने इसकी रक्षा की। (महाभारत)

तक्षशिला=गन्धर्व देश की राजधानी का नाम। भरत के ज्येष्ठ पुत्र तक्ष की यह राजधानी थी। इसके पहले तक्ष ने इसे स्थापित की थी, महा-

भारत के आदिपर्व में लिखा है कि राजा जनमेजय ने तक्षशिला पर अधिकार कर लिया था। उस समय भी भरत के पुत्र तक्ष के वंशधर वहाँ राज्य करते थे या और कोई राज्य करता था। इसका पता नहीं मिलता। महाराज जनमेजय ने तक्षशिला पर अधिकार कर के बहुत दिनों पर उसका शासन किया था और वहीं उन्होंने सर्पयज्ञ प्रारम्भ किया था। जनमेजय के पहले युधिष्ठिर आदि के समय तक्षशिला का नाम कहीं नहीं देखा जाता। पाश्चात्य पण्डितों का मत है कि तक्षजाति ने तक्षशिला नगरी स्थापित की थी। इस जाति के आदि-पुरुष का नाम तक्षक था। तक्षगण नागोपासक थे। तक्षशिला नगरी में नागमूर्ति की पूजा होती थी। राजा कनिष्क ने बौद्धधर्म का प्रचार कर के नागपूजा उठा दी। तक्षजाति तूरानी जाति से उत्पन्न हुई थी ऐसा भी बहुतों का अनुमान है। सिकन्दर ने जिस समय भारत पर आक्रमण किया था उस समय तक्षशिला एक छोटा राज्य समझा जाता था।

(भारतवर्षीय इतिहास)

तख्तसिंह=जोधपुर के एक राजा। ये अहमदनगर के राजा रायसिंह के प्रपौत्र थे। अहमदनगर के राजा पृथ्वीसिंह ने महाराज तख्तसिंह के पुत्र यशवन्तसिंह को दत्तक पुत्र रूप से ग्रहण किया था। पृथ्वीसिंह के मरने पर तख्तसिंह, यशवन्तसिंह के नाम से अहमदनगर का शासन करने लगे। मारवाड़पति मानसिंह का परलोकवास होने पर तख्तसिंह ही को राजरानी तथा सामन्तों ने जोधपुर का राजा बनाया। तख्तसिंह के मारवाड़ के राजा होने पर अहमदनगर वालों ने बखेड़ा खड़ा कर दिया। अतएव उनके पुत्र भी छः वर्ष के पीछे अहमदनगर से जोधपुर चले गये। इनका शासनकाल प्रजा के लिये उत्तम नहीं था। कई विषयों में इनसे और गवर्नमेंट में मतभेद रहा। (टाडस् राजस्थान)

तनय=ये चन्द्रवंशी राजा कुश के पुत्र थे।

तपती=सूर्यतनया, यह सूर्यपत्नी छाया के गर्भ से उत्पन्न हुई थी, और कुरुवंशीय ऋक्ष नामक एक प्रसिद्ध राजा थे। ऋक्ष के पुत्र संवरण, अत्यन्त भक्त थे। संवरण की तपस्या से प्रसन्न हो कर सूर्यदेव ने अपनी कन्या उन्हें दे दी थी।

(महाभारत)

तरणीसेन=विभीषण के पुत्र। ये अत्यन्त रामभक्त थे। रामचन्द्र ही के हाथ से ये मारे गये। वाल्मीकिरामायण में इनका उल्लेख नहीं है।

ताटका=सुकेतु नामक यक्ष की कन्या। सुकेतु निःसन्तान थे अतएव उन्होंने ब्रह्मा की आराधना की। प्रजापति ब्रह्मा के वर से सुकेतु की स्त्री के ताड़का नाम की एक कन्या उत्पन्न हुई थी। जम्भ के पुत्र सुन्द के साथ इसका ब्याह हुआ था। किसी कारण से महर्षि अगस्त्य के शाप के द्वारा सुन्द मारा गया था। स्वामी के मारे जाने से क्रुद्ध हो कर ताड़का अपने पुत्र मारीच को साथ ले कर अगस्त्य को मारने के लिये उनके आश्रम पर गयी। माता और पुत्र दोनों ही राक्षसत्व को प्राप्त हो गये थे। अतएव उन दोनों ही ने ब्राह्मणों का नाश करना ही अपना कर्तव्य समझ लिया। ब्राह्मणों को देखते ही वे उस पर धावा करते थे। अगस्त्य के आश्रमवासी तपस्वी ताड़का के अत्याचार से पीड़ित हो कर भाग भाग कर अपनी रक्षा करने लगे। ताड़का के अत्याचार से महर्षि अगस्त्य का आश्रम शून्य हो गया और "ताड़का के वन" के नाम से उसकी प्रसिद्धि हुई। गङ्गा के दक्षिण किनारे जो अब आरा ज़िला है। वह ताड़का राक्षसी का 'वन' था। ताड़का के उपद्रव से मुनिगण व्याकुल हो गये। तब विश्वामित्र ने अयोध्या नगरी में जा कर और दशरथ से राम और लक्ष्मण को ताड़का का वध करने के लिये माँगा। विश्वामित्र के साथ राम और लक्ष्मण गये। राम ने ताड़का को मार डाला और मारीच को दूर भगा दिया। ताड़का को मारने के समय राम ने कहा था—महाराज! यह स्त्री है, परन्तु विश्वामित्र ने कहा—यह स्त्री नहीं है, जो वीर के समान युद्ध करती है, जिसने स्त्रियों के योग्य लज्जा और कोमलता का त्याग कर दिया है, उसे मारने से स्त्रीवध का प्रायश्चित्त नहीं होता।

(रामायण)

तातियाटोपी=सिपाही-युद्ध का एक प्रसिद्ध नायक।

यह नाना साहब का दहिना हाथ समझा जाता था। इसने भी नाना साहब के समान सिपाही-युद्ध में प्रसिद्धि पायी थी। सिपाही-युद्ध का इतिहास इसकी वीर कहानी से पूर्ण है। सन् १८५९ में इसको प्राणदण्ड मिला था। (इतिहास)

तातीया भील=एक प्रसिद्ध डाँकू। इसके पिता का नाम भाऊसिंह था। इसका जन्म सन् १८५२ ई० में मध्यप्रदेश के अन्तर्गत विरदा नामक गाँव में हुआ था। तातीया को डाँका डालने से जो धन मिलता था वह उसे दरिद्र ब्राह्मणों को दान कर दिया करता था। कहते हैं इसने कभी ब्राह्मण, स्त्री और बालकों को नहीं लूटा। डाँकू होने के पहले वह तीन चार बार जेल में हो आया था। दो बार तो वह जेल से भाग भी चुका था। एक बार वह हाजत से सेंध काट कर भाग आया था। पुलिस बहुत प्रयत्न करने पर भी उसको पकड़ नहीं सकती थी। अन्त में एक स्त्री के धोखा देने से वह पकड़ा गया और प्राणदण्ड से दण्डित हुआ।

तारक=(१) देवद्वेषी असुर। तपस्या से ब्रह्मा को सन्तुष्ट कर के इसने दो वर पाये थे। एक वर यह था कि इस जगत् में उससे बलवान् दूसरा कोई जन्म न ले और दूसरा वर यह था कि महादेव के पुत्र द्वारा उसकी मृत्यु हो। ब्रह्मा के वर से बलवान् हो कर तारक देवताओं को उत्पीड़ित करने लगा। तारक द्वारा पीड़ित हो कर देवता ब्रह्मा के शरण गये। ब्रह्मा बोले—मैं तारक का विनाश नहीं कर सकता, क्योंकि मैंने उसे वर दिया है कि शिव के पुत्र के अतिरिक्त दूसरा [illegible] नहीं मार सकता। अतएव शिव के जिस [illegible] पुत्र उत्पन्न हो उस प्रकार तुम लोग प्रयत्न [illegible]। देवगण, कामदेव को साथ ले कर हिमा- [illegible] पर्वत पर योगध्यानमग्न महादेव के निकट [illegible] ये। उस समय पार्वती भी शिव की पूजा [illegible]ने के लिये वहाँ उपस्थित थीं। कामदेव ने [illegible]वसर जान कर बाण मारा। शिव का मन [illegible]ल हुआ, उनका ध्यान टूट गया। वे क्रोध से इधर उधर देखने लगे। डर कर देवता भाग गये, परन्तु कामदेव नहीं भाग सके। वे महादेव के नेत्राग्नि से भस्म हो गये। महादेव भी उस स्थान को छोड़ कर अन्यत्र चले गये और पुनः वहाँ योगमग्न हो गये। महादेव को प्राप्त करने के लिये पार्वती कठोर तपस्या करने लगीं। पार्वती की तपस्या सफल हुई, पार्वती का शिव से ब्याह हुआ। कार्तिक उत्पन्न हुए और उन्होंने तारकासुर का वध किया। (महाभारत)

(२) इन्द्रद्वेषी एक असुर। इस असुर ने इन्द्र को अत्यन्त पीड़ित किया था। इन्द्र विष्णु के शरण में गये। विष्णु ने नपुंसक का रूप धारण कर के उसका नाश किया था। (गरुडपुराण)

तारा=(१) कपिराज बाली की पत्नी का नाम। ये सुषेण नामक वानरराज की कन्या और अङ्गद की माता थीं। बाली के मारे जाने पर इन्होंने सुग्रीव से ब्याह किया था। ये पञ्चकन्याओं में समझी जाती हैं और प्रातःकाल इनका नाम स्मरण करने से बड़े बड़े पाप दूर हो जाते हैं।

(२) दस महाविद्या के अन्तर्गत एक विद्या का नाम।

(३) देवगुरु बृहस्पति की स्त्री का नाम। एक दिन चन्द्रमा ने इनकी सुन्दरता पर मुग्ध हो कर इनको हर लिया। बृहस्पति ने चन्द्रमा के इस दुराचार की बात देवताओं से कही। देवता और ऋषियों ने तारा को लौटा देने के लिये चन्द्रमा से कहा। परन्तु चन्द्र ने उनका कहना नहीं माना। रुद्र बृहस्पति का पक्ष ले कर युद्ध करने के लिये तैयार हुए। ब्रह्मा ने-अनर्थ होने की आशङ्का से रुद्र को समझा बुझा कर युद्धक्षेत्र से हटाया और चन्द्रमा से तारा को ले कर बृहस्पति को दे दिया। उस समय तारा के गर्भ था। बृहस्पति ने गर्भत्याग कर तारा से अपने समीप आने के लिये कहा। तारा ने गर्भत्याग दिया। उस पुत्र का नाम हुआ दस्यु-सुन्तम। वह पुत्र चन्द्रमा ही का औरसजात है—यह जान कर ब्रह्मा ने चन्द्रमा को वह पुत्र दे दिया।

तारापीड=काश्मीर के एक राजा। ये प्रतापादित्य के पुत्र थे। इन्होंने तुच्छ राज्य लोभ के कारण

देवतुल्य अपने बड़े भाई चन्द्रापीड को अभिचार के द्वारा मरवा कर काश्मीर का राज्य पाया था। इनका स्वभाव प्रचण्ड और भयानक था। इनके राज्य में काश्मीर राज्य की श्रीवृद्धि तो अवश्य हुई, परन्तु प्रजा दुःखी रही। ४ वर्ष २४ दिन राज्य कर के इनकी मृत्यु हुई।

(राजतरङ्गिणी)

तारावाई=(१) राजपूताना के अरावली पर्वत के समीपस्थ बदनौर की एक वीर रमणी। ये सोलङ्की राजा राव सुरतान की कन्या थीं। इनका व्याह पृथ्वीराज से हुआ था। तारावाई के पिता राव सुरतान के पूर्वपुरुष तोङ्कखोड़ा में राज्य करते थे। लयला नामक अफ़गान ने उस क़िले पर अधिकार कर लिया। तब राव सुरतान बदनौर में जा कर रहने लगे। तारावाई उस समय युवती थीं। वे सर्वदा योद्धा के वेश में रहना अधिक पसन्द करती थीं। उन्होंने प्रतिज्ञा की थी कि जो यवनों के अधिकार से खोड़ा का उद्धार करेगा, उसीसे वे अपना व्याह करेंगी। मेवाड़ के राणा रायमल्ल के पुत्र पृथ्वीराज को इन्होंने अपना पति बनाया। इन दम्पति ने मिल कर और राजपूत सेना ले कर खोड़ा पर आक्रमण कर के अपना अधिकार कर लिया। अपने भगनीपति की विश्वासघातकता के कारण पृथ्वीराज मारे गये, तब तारावाई ने भी उनका साथ दिया।

(२) छत्रपति शिवा जी की पुत्रवधू, और राजाराम की पत्नी। सन् १७०० ई० में इनके पति का परलोकवास हुआ। इसके बाद औरङ्गज़ेब ने सिंहगढ़ पर चढ़ाई की। तारावाई ने बड़ी वीरता से उसकी रक्षा करने के लिये युद्ध किया। परन्तु तीन वर्ष युद्ध होने के बाद सिंहगढ़ औरङ्गज़ेब के अधिकार में चला गया। परन्तु ज्यों ही औरङ्गज़ेब की सेना हटी त्यों ही तारावाई की आज्ञा से मरहटों ने सिंहगढ़ पर अपना अधिकार जमा लिया। महाराष्ट्रीय अनेक युद्ध तथा राजनीति में तारावाई की चतुरता का पता लगता है। सन् १७५२ ई० में इनका परलोकवास हुआ।

तालकेतु=एक दानव। यह पातालकेतु नामक दानव का छोटा भाई था। पातालकेतु को राजा ऋतध्वज ने मार डाला था। अतएव अपने भाई के मारे जाने का बदला लेने के लिये तालकेतु ने जाल फैलाया। उसने मुनिरूप धारण कर के यमुना तट पर अपना आवास बनाया। एक दिन राजपुत्र कुवलयाश्व उसके आश्रम पर गये। उसने छल कर के राजकुमार की पगड़ी और कंठा ले लिया और राजमहल में जा कर उसने कहा कि कुवलयाश्व मर गये। पुनः उसके छल का पता लोगों को लग गया और वह मार डाला गया।

तिलोत्तमा=पहले दैत्यराज हिरण्यकशिपु के वंश में निकुम्भ नामक एक असुर उत्पन्न हुआ था। निकुम्भ के दो पुत्र थे, सुन्द और उपसुन्द। ये दोनों विश्व विजय करने की इच्छा से विन्ध्य पर्वत पर कठोर तपस्या करने लगे। इनके तप से सन्तुष्ट हो कर ब्रह्मा इनको वर देने के लिये आये। सुन्द और उपसुन्द ने वर माँगा त्रिलोक में कोई भी हम लोगों को नहीं मार सके। यदि किसी कारणवश दोनों भाइयों में विवाद हो जाय तब वे ही एक दूसरे का विनाश कर सकें, अन्य किसी उपाय से उनकी मृत्यु न हो। यह वर दे कर ब्रह्मा के चले जाने पर सुन्द और उपसुन्द ने देवताओं को दुःख देना आरम्भ किया। यज्ञ आदि क्रिया का लोप हो गया। इन दैत्यों के अत्याचार से रक्षा पाने के लिये देवता ऋषि सिद्ध आदि ब्रह्मा के निकट गये और उनके अत्याचार देवताओं ने ब्रह्मा से निवेदन किये। ब्रह्मा ने थोड़ी देर तक ध्यान किया और पुनः विश्वकर्मा को बुलाया। विश्वकर्मा ब्रह्मा के समीप उपस्थित हुए। ब्रह्मा ने एक अपूर्व सुन्दरी स्त्री बनाने की विश्वकर्मा को आज्ञा दी। संसार में जितने सुन्दर पदार्थ हैं, उनका तिल तिल भर सुन्दर भाग ले कर विश्वकर्मा ने एक सुन्दरी स्त्री बनायी। उस स्त्री का नाम हुआ तिलोत्तमा। ब्रह्मा ने सुन्द उपसुन्द के निकट जाने के लिये तिलोत्तमा को आज्ञा दी। तिलोत्तमा को देख कर और उसके साथ अपना अपना व्याह करने के लिये वे दोनों आपस में लड़ने लगे और आपस ही में कट मरे। त्रिभुवन

की बाधा दूर हुई, लोग पुनः अपने अपने धर्म कर्म करने लगे ।

(महाभारत)

यही दुर्वासा के शाप से बाणा की कन्या हुई थी ।

तुकाजी हुल्कर=इन्दौर के राजा । ये अहल्याबाई के सेनापति थे । अहल्याबाई अपने सेनापति पर अत्यन्त विश्वास और स्नेह करती थी, अतएव उन्होंने सेनापति को हुल्कर की उपाधि दी थी ।

तुकाराम=ये एक महाराष्ट्र देश के साधु थे । सन् १५८८ ई० में इन्होंने पूना के पास देहुक नामक स्थान में जन्म ग्रहण किया था । ये यद्यपि शूद्र जाति के थे, तथापि सभी जाति के महाराष्ट्र इनका आदर करते थे । इनकी जब २१ वर्ष की अवस्था हुई तब इनके पिता माता का स्वर्गवास हुआ, और उसी समय इनके बड़े भाई भी घर छोड़ कर बाहर चले गये । २५ वर्ष की अवस्था में इनका व्याह हुआ था । भाई के घर छोड़ कर चले जाने पर तुकाराम को वैराग्य उत्पन्न हुआ । उसी समय उस देश में दुर्भिक्ष पड़ा, और उसमें बहुत लोगों ने अन्न न मिलने के कारण प्राणत्याग किये । इन दोनों घटनाओं का तुकाराम पर बड़ा प्रभाव पड़ा । इन्होंने भी घर छोड़ दिया, और ये ईश्वरोपासन में अपना समय बिताने लगे । तुकाराम की कविताओं का नाम "अभङ्ग" है । इन्होंने आठ हजार से भी अधिक अभङ्ग बनाये हैं । इन अभङ्गों के द्वारा इन्होंने महाराष्ट्र देश में धर्म-प्रवाह प्रवाहित कर दिया था । दूर दूर के लोग इन्हें देखने को जाते थे । शिवा जी ने इनको अपनी राजधानी में बुलाने के लिये एक मनुष्य भेजा था । परन्तु तुकाराम ने अत्यन्त विनय से उनको उत्तर दे दिया । अनन्तर स्वयं शिवा जी उनके समीप गये, और उनका उपदेश सुन कर वन में जा कर तपस्या करने लगे । शिवा जी की ऐसी अवस्था देख कर उनकी माता जीजाबाई तुकाराम के समीप गयीं, और सब अवस्था तुकाराम से कही । तदनन्तर जब पुनः शिवा जी वहाँ आये तब तुकाराम ने उन्हें योग्य शिक्षा दे कर विदा किया । अब भी क्या धनी क्या दरिद्र सभी, तुकाराम की कविता का आदर के साथ पाठ करते हैं । तुकाराम ने अन्तिम समय अपनी स्त्री से कहा था कि तुम्हारे गर्भ से एक अत्यन्त भक्त पुत्र उत्पन्न होगा । तुम उसका नारायण नाम रखना । तुकाराम की भविष्य वाणी सफल हुई थी । उस लड़के को देखने के लिये शिवा जी भी आये थे और उसके पालन के लिये एक गाँव दिया था ।

तुकाराम जाति के बनिये थे । उनके पूर्व-पुरुष व्यापार कर के जीविका निर्वाह करते थे । परन्तु धन के अभाव से तुकाराम का व्यापार नहीं चलता था । कोई उनका विश्वास कर उन्हें ऋण भी नहीं देता था । तुकाराम की दो स्त्रियाँ थीं । उनमें से एक दरिद्र की कन्या और रोगिणी थी, दूसरी धनी की कन्या थी । उसका नाम अवलाई था । अवलाई धनी की लड़की थी, परन्तु दरिद्र के यहाँ व्याह होने से उसकी प्रकृति कठोर हो गयी थी । उसने कुछ रुपये तुकाराम को व्यवसाय करने के लिये कहीं से ला कर दिये थे । उससे कुछ लाभ भी हुआ था, परन्तु एक गरीब ब्राह्मण की दुर्दशा सुन कर तुकाराम ने वे सभी रुपये उसे दे डाले और छूँछे हाथों घर लौट आये । यह देख कर अवलाई ने उग्र मूर्ति धारण की । उनकी पहली स्त्री रोगिणी थी ही, और पुनः अन्न का कष्ट, अतएव उसने प्राणत्याग कर इन दुःखों से अपना पीछा छुड़ाया । इन्हीं सब बातों को देख कर तुकाराम को निश्चय हो गया कि संसार में सुख नहीं है । अतएव वे घर छोड़ चले गये । इनके उपदेश सुनने के लिये दूर दूर से लोग आते थे । तुकाराम ने कहाँ शरीरत्याग किया—इसका कुछ भी पता नहीं लगता; तथापि इतना जाना गया है कि सन् १६५६ ई० में इनका परलोकवास हुआ था ।

तुञ्जीन=काश्मीर के एक राजा का नाम । इनके पिता का नाम जलौका था । महाराज तुञ्जीन बड़े प्रजारञ्जक राजा थे । इनकी स्त्री का नाम वाक्पुष्टा था । इन्होंने तुङ्गेश्वर नामक शिव-मन्दिर बनवाया था । एक समय तुञ्जीन के राज्य में दुर्भिक्ष पड़ा । अन्न के अभाव से

जिधर देखो उधर ही दुबले पतले आदमी दृष्टिगोचर होते थे । बड़े बड़े कुलीन अन्न के लिये द्वार द्वार मारे मारे फिरने लगे । अपनी प्रजा की ऐसी दुरवस्था देख कर तुञ्जीन अपने पास से अन्न ख़रीद कर प्रजा में बँटवाने लगे। परन्तु अन्त में राजकोष भी शून्य हो गया । राजा बड़ी विपत्ति में पड़े । वे दिन रात प्रजा की चिन्ता करते करते सूख कर काँटा हो गये । राजा की ऐसी दशा देख महारानी वाक्पुष्टा ने उन्हें बहुत समझाया, और प्रजा को भोजन देने का कुछ प्रबन्ध कर दिया । इसी प्रकार एक साल बीता दूसरे साल वृष्टि हुई और अकाल भी जाता रहा । राजा तुञ्जीन ने ३६ वर्ष तक राज्य किया था ।

(राजतरङ्गिणी)

तुर्वसु=राजा ययाति के और देवयानी के गर्भ से ये उत्पन्न हुए थे । पुराणों के देखने से मालूम होता है कि इन्हीं तुर्वसु ने तुरुस्क (तुर्कस्थान) राज्य स्थापन किया था ।

तुलसी=एक गोपी का नाम । ये गोलोक में राधिका की सहेली थीं । राधा ने इन्हें एक दिन श्रीकृष्ण के साथ क्रीड़ा करते देख शाप दिया कि "तुम मनुष्ययोनि को प्राप्त होवो" । यह शाप सुन कर तुलसी दुःखित हुईं और श्रीकृष्ण के शरण गयीं । श्रीकृष्ण ने कहा "तुम मनुष्य जन्म प्राप्त कर तपस्या द्वारा हमारा अंश प्राप्त कर सकोगी" राधा के शाप से तुलसी ने मर्त्यलोक में राजा धर्मध्वज के औरस और उनकी स्त्री माधवी के गर्भ से जन्म ग्रहण किया । उसका रूप संसार के सभी पदार्थों से अतुलनीय था इस कारण उसका नाम तुलसी पड़ा । इसने वन में जा कर कठोर तपस्या की । तपस्या के अन्त में वर देने के लिये ब्रह्मा वहाँ उपस्थित हुए । तुलसी ने श्रीकृष्ण को पाने के लिये वर माँगा । ब्रह्मा ने कहा सुदामा नामक एक गोप गोकुल में रहता था । वह श्रीकृष्ण के अङ्ग से उत्पन्न हुआ था । वह भी राधा के शाप से शङ्खचूड़ नाम धारण कर के पृथिवी पर उत्पन्न हुआ है । पहले तुम उसको अपना पति बनाओ, पीछे तुमको श्रीकृष्ण भी मिल जायँगे । यह कह ब्रह्मा चले गये । तुलसी का भी यथासमय श्रीकृष्ण से ब्याह हुआ । शङ्खचूड़ के उत्पात से देवता गण व्याकुल हो गये । शङ्खचूड़ को वर था कि जब तक उसकी स्त्री का सतीत्व नष्ट नहीं होगा, तब तक वह नहीं मारा जायगा । देवताओं की दुर्दशा देख कर श्रीकृष्ण ने शङ्खचूड़ की मूर्ति धारण कर तुलसी का सतीत्व नष्ट किया । शङ्खचूड़ भी मारा गया । तुलसी ने अपना सतीत्व नष्ट हुआ जान कर श्रीकृष्ण को शाप दिया कि तुम पाषाण हो जावो । तुलसी अपने स्वामी का मरना सुन कर नारायण के पैरों पर गिर पड़ी । तब नारायण ने कहा तुम्हारा शरीर गण्डकी नदी हो, और तुम्हारे केशों से तुलसी नामक वृक्ष उत्पन्न हो, तुम लक्ष्मी के समान हमारी प्रियतमा होवोगी ।

(ब्रह्मवैवर्तपुराण)

तुलसीदास=प्रसिद्ध महात्मा कवि । ये सरयूपारी ब्राह्मण थे, यमुना के किनारे राजापुर नामक ग्राम में इनका जन्म हुआ था । शायद सन् १५३५ ई० में इनका जन्म हुआ था । आठ वर्ष की अवस्था में इनके पिता मर गये थे । पिता के परलोकवास होने के कुछ दिनों के बाद तुलसीदास काशी में पढ़ने आये । काशी में १२ वर्ष रह कर इन्होंने विद्याध्ययन किया । तदनन्तर ये स्वदेश को लौट गये और ब्याह कर के संसारधर्म का पालन करने लगे । कहते हैं तुलसीदास बड़े स्त्रीपरायण थे । वे सर्वदा स्त्री के साथ रहा करते थे । एक समय तुलसीदास के ससुर ने उनकी स्त्री को बुलाया, परन्तु उन्होंने उसे न जाने दिया । एक दिन तुलसीदास किसी कार्यवश कहीं गये थे, अवसर जान कर उनके ससुराल वाले उसी समय आये और उनकी स्त्री को ले गये । जब तुलसीदास लौट कर आये और अपनी स्त्री को घर में न देखा, तब उन्होंने माता से पूँछा । माता से मालूम होने पर बिना विलम्ब किये ही तुलसीदास अपनी ससुराल के लिये प्रस्थित हुए । स्त्री ने अपने पति को वश देख कर बड़े क्रोध में भर कहा—

"लाज न लागत आपकों, दौरे आयहु साथ ।
धिक धिक ऐसे प्रेम कों, कहा कहौं मैं नाथ ॥

"अस्थिचर्ममय देह मम, तामें जैसी प्रीति।
तैसी जो श्रीराम महँ, होत न तो भवभीति॥"

स्त्री की बातों का तुलसीदास के मन पर बड़ा प्रभाव पड़ा। उनके ज्ञाननेत्र खुल गये। वे वहाँ ही से काशी चले गये। वहाँसे उनके धार्मिक जीवन का सूत्रपात हुआ। उन्होंने कई एक ग्रन्थ भी बनाये हैं, जिनमें से उनका राम-चरित-मानस नामक काव्य बहुत ही प्रसिद्ध है। उनके विषय में अनेक अलौकिक घटनाएँ प्रसिद्ध हैं जिनसे उनके महात्मा और महानुभाव होने का परिचय मिलता है।

तुलाधार=(१) काशी का रहने वाला धार्मिक और ब्रह्मतत्त्वज्ञ एक बनिया। इसीने महर्षि याजलि को मोक्षधर्म का उपदेश दिया था।
(महाभारत)

(२) एक व्याध, यह भी काशी का रहने वाला था। माता पिता की सेवा कर के यह सर्वज्ञ बन गया था। भूत भविष्य का ज्ञान इसकी आँखों के सामने नाचा करता था।

तृणविन्दु=एक ऋषि का नाम। ये २४वें द्वापर में वेदों का विभाग कर के वेदव्यास नाम से प्रसिद्ध हुए थे।

तृणावर्त=कंस का एक अनुचर दानव। इसे कंस ने श्रीकृष्ण को मारने के लिये गोकुल भेजा था। तृणावर्त वायु बन कर श्रीकृष्ण को ले कर आकाश में जाना चाहता था, परन्तु श्रीकृष्ण बड़े भारी हो गये; अतएव वह उन्हें उठा तक न सका। श्रीकृष्ण ने इसका गला पकड़ लिया था, इस लिये वह भाग न सका और वहीं मर गया।　(श्रीमद्भागवत)

तेगबहादुर=सिक्खों के नवें गुरु। सन् १६७५ ई० में औरङ्गज़ेब ने इनका सिर कटवा लिया था। इनके पिता हरगोविन्दसिंह सिक्खों के छठवें गुरु थे। इनकी माता का नाम नानकी था। मुगल सम्राट् औरङ्गज़ेब की आज्ञा से ये क़ैद कर के दिल्ली ले आये गये थे। मुसल्मानधर्म ग्रहण करने के लिये उन पर बड़े बड़े अत्याचार किये गये थे। तेगबहादुर ने अपने गले में एक काग़ज़ का टुकड़ा लटका कर औरङ्गज़ेब से कहा कि हमारे गले में जो मन्त्र बँधा है, उसके प्रभाव से कटा मस्तक जुट जाता है। सम्राट् ने सिर कटवा लिया, परन्तु मस्तक न जुड़ा। तब वह काग़ज़ पढ़ कर देखा गया। उसमें लिखा था "सिर दिया, सर नहीं दिया" अर्थात् मस्तक दे दिया परन्तु अपने मन का भाव न दिया।

तेजसिंह=ये जयसलमेर के महाराज यशवन्तसिंह के तृतीय पुत्र थे। यशवन्तसिंह के मरने के पीछे इन्होंने ही बलपूर्वक जयसलमेर का राज्य अपने अधिकार में कर लिया था। नियम से राज्य के अधिकारी इनके बड़े भाई के पुत्र अक्षयसिंह थे। अक्षयसिंह जयसलमेर से भाग कर दिल्ली यशवन्तसिंह के भाई हरिसिंह के पास पहुँचे। हरिसिंह ने प्रतिज्ञा की कि मैं जयसलमेर जा कर तेजसिंह को गद्दी से उतार दूँगा। इसी अभिप्राय से अक्षयसिंह को ले कर हरिसिंह जयसलमेर गये।

जयसलमेर में एक उत्सव होता था जिसका नाम था "एहास" उस दिन घड़सी नामक तालाब के किनारे राजा प्रजा सभी एकत्रित होते थे और उस तालाब से एक एक मुट्ठी रेत निकाल कर बाहर रखते थे। उसी समय अवसर देख कर हरिसिंह ने तेजसिंह पर आक्रमण किया। बहुत मनुष्य मारे गये। तेजसिंह भी इतने घायल हुए कि वे घावों के कारण मर गये।
(टाडस् राजस्थान)

त्रिजटा=लङ्केश्वर रावण के अन्तःपुर में रहने वाली एक राक्षसी। यह सीता की रक्षा करने के लिये नियुक्त की गई थी। अन्य राक्षसियों का सीता के प्रति निर्दय व्यवहार था, परन्तु त्रिजटा का सीता के प्रति व्यवहार सदय था।
(रामायण)

त्रित=गौतम मुनि के एक पुत्र का नाम। एकत और द्वित नामक इनके दो भाई और थे। ये तीनों बड़े तपस्वी और विद्वान् थे। त्रित अपने भाइयों की अपेक्षा विद्या और बुद्धि में श्रेष्ठ थे। एक समय ये तीनों भाई वन में हो कर पशु लाने के लिये दूसरे गाँव में गये। दोनों भाई पशु ले कर घर चले आये और त्रित को वन में छोड़ आये। त्रित एक भेड़िया के सामने पड़ गये।

वे उनसे अपनी रक्षा करने के लिये जो दौड़े तो एक कुएँ में गिर पड़े । कहते हैं उन्होंने वहीं बैठ कर सोमयज्ञ किया । उस यज्ञ में देवता भी उपस्थित हुए तथा उनके प्रभाव से उस कूप ही में सरस्वती नदी का आविर्भाव हुआ । तभीसे वह कूप उदयान तीर्थ नाम से प्रसिद्ध हुआ । उस कूप के जल पीने से सोमरस पीने का फल मिलता हैं । त्रित के शाप से इनके दोनों भाई वन में वृक बन कर घूमते हैं ।

(महाभारत)

त्रिपुरारि=महादेव का नामान्तर ।त्रिपुर का नाश करने के कारण महादेव का यह नाम पड़ा है । तारकासुर के तीन पुत्र थे । तारकाक्ष, कमलाक्ष और विद्युन्माली । इन लोगों ने कठोर तपस्या कर के यह वर पाया था कि ये तीनों भाई स्वतन्त्र तीन नगरों में वास करेंगे । हज़ार वर्ष के बाद वे तीनों नगर मिलित होंगे उस समय यदि कोई बाण मार कर उसका विनाश कर सकेगा वही इनका मारने वाला होगा । इसीके अनुसार उन लोगों ने मय दानव को तीन नगर बनाने की आज्ञा दी । मय दानव ने अपने तपोबल से स्वर्ग में सुवर्णमय अन्तरिक्ष में रजतमय और पृथिवी में लौहमय नगर बनवाये । तारकाक्ष सुवर्णमय पुरी में, कमलाक्ष रजतमय पुरी में, और विद्युन्माली लौहमय पुरी में वास और शासन करने लगे । तारकाक्ष का एक हरि नामक पुत्र था, उसने तपस्या द्वारा ब्रह्मा को प्रसन्न कर के यह वर पाया कि, उसके नगर में एक तालाब खोदा जाय । उसमें स्नान करने से अस्त्र से मारे हुए मनुष्य जी उठेंगे । ऐसा वर पा कर दानवों के अभिमान की सीमा न रही । वे देवताओं पर अत्याचार करने लगे । इन्द्रादि देवता ब्रह्मा के शरण गये । ब्रह्मा ने कहा कि मेरे ही वर के प्रभाव से वे इतना अत्याचार कर रहे हैं । किन्तु महादेव के बिना दूसरा कोई उनका विनाश नहीं कर सकता है । अतएव देवों को ले कर ब्रह्मा महादेव के निकट गये । देवताओं की दुर्दशा सुन कर महादेव अधीर हो गये । उन्होंने देवों का कल्याण सम्पादन करने के लिये दानवों के विनाश का सङ्कल्प किया । महादेव दिव्य रथ पर आरूढ़ हुए और स्वयं ब्रह्मा सारथि बने । कुछ दूर आगे जा कर, उन्होंने दानवों के त्रिपुर को देखा । महादेव धनुष चढ़ा कर त्रिपुर के मिलने की अपेक्षा करने लगे । पुरत्रय के मिलने के समय ही महादेव ने बाण मार कर उनका नाश किया । पुरवासी आर्तनाद करने लगे । महादेव ने असुरों को जला कर पश्चिम समुद्र में फेंक दिया । (महाभारत)

त्रिभुवन गुप्त=काश्मीर के एक राजा का नाम । ये अभिमन्यु गुप्त के द्वितीय पुत्र थे । संवत् ५१ के अगहन शुक्लपक्ष में इनकी दादी ने अभिचार से इन्हें मरवा डाला । ४ वर्ष ४ महीने १० दिन इन्होंने काश्मीर का शासन किया था ।

(राजतरङ्गिणी)

त्रिशङ्कु=(१) सूर्यवंशी एक राजा । सशरीर स्वर्ग जाने की इच्छा से इन्होंने वसिष्ठ को यज्ञ कराने के लिये कहा था । वसिष्ठ ने कहा—यह होना असम्भव है । गुरु से कोरा उत्तर पा कर त्रिशङ्कु ने गुरुपुत्रों के समीप जा कर अपना अभिप्राय प्रकट किया । वसिष्ठ के पुत्रों ने कहा कि यह काम हम लोगों के द्वारा नहीं हो सकता पिता की उपेक्षा कर के हम लोग यह काम नहीं कर सकते हैं । राजा त्रिशङ्कु ने कहा कि गुरु ने भी हमारा काम कराना अस्वीकार किया, और आप लोग भी अस्वीकार करते हैं । अतएव हमको अब दूसरा गुरु बनाना ही पड़ेगा । यह सुन वसिष्ठ के पुत्र बड़े क्रुद्ध हुए और उन लोगों ने शाप दिया "तुम चाण्डालत्व को प्राप्त होवो" वसिष्ठ के पुत्रों के शाप से राजा चाण्डाल हो गये, उनकी मनोवृत्ति मलिन हुई । राजा को चाण्डाल जान कर मन्त्रियों ने भी उन्हें छोड़ दिया । राजा अपनी दुर्दशा देख विश्वामित्र के पास गये । विश्वामित्र ने योगबल से सब जान लिया । उन्होंने सशरीर राजा को स्वर्ग पहुँचाने के लिये प्रतिज्ञा की । विश्वामित्र की आज्ञा से उनके पुत्र यज्ञ का आयोजन करने लगे, महर्षियों को निमन्त्रण देने के लिये विश्वामित्र के शिष्य गण चारों तरफ दौड़ाये गये । वसिष्ठ उनके पुत्र तथा महोदय ऋषि के अतिरिक्त और सभी वेदज्ञ ऋषियों को निमन्त्रण दिया गया । महोदय और

वसिष्ठ के पुत्रों ने कहा कि जिस यज्ञ में क्षत्रिय यज्ञ कराने वाला है, और यज्ञ करने वाला चाण्डाल है, उसमें देवता आदि हवि भोजन कैसे करेंगे? यह सुन कर विश्वामित्र अप्रसन्न हुए और उन्होंने वसिष्ठ के पुत्रों को कुक्कुर-मांस-भोजी डोम तथा निषाद हो जाने के लिये शाप दिया। विश्वामित्र की आज्ञा से वेदज्ञ ऋषियों ने यज्ञ प्रारम्भ किया। स्वयं विश्वामित्र इस यज्ञ के अध्वर्यु बने। परन्तु यज्ञ में कोई भी देवता न आये, तब क्रुद्ध हो कर विश्वामित्र अपनी तपस्या से राजा को स्वर्ग भेजने का प्रयत्न करने लगे, विश्वामित्र के तपोबल से राजा धीरे धीरे ऊपर उठने लगे पर इन्द्र ने मना किया। इससे विश्वामित्र और भी क्रुद्ध हो गये और उन्होंने एक नये स्वर्ग का निर्माण करना प्रारम्भ किया। इससे अनर्थ होने की सम्भावना देख देवों ने विश्वामित्र से सन्धि कर ली। तबसे अधोमस्तक हो कर त्रिशङ्कु अन्तरिक्ष में लटकते हैं।

(रामायण)

(२) हरिवंश में एक दूसरे त्रिशङ्कु की बात लिखी गयी है। वे महाराज त्रय्यावरुण के पुत्र थे। इनका पहला नाम सत्यव्रत था। इन्होंने दूसरे की स्त्री का हरण किया था। इस कारण उनके पिता उन पर अप्रसन्न हो गये थे। तदनन्तर उन्होंने गुरुदेव वसिष्ठ की गौ को मार डाला और उसका मांस भी खाया। इन्हीं तीन पापों के कारण इनका नाम त्रिशङ्कु पड़ा था। उनके पिता ने उन्हें अपने राज्य से बाहर निकाल दिया था। यह देख कर विश्वामित्र को उन पर दया आयी और उन्होंने त्रिशङ्कु को पिता के राज्य पर बैठा दिया। त्रिशङ्कु को सशरीर स्वर्ग भेजने के लिये विश्वामित्र ने यज्ञ भी करवाया था। देवता भी उनको स्वर्ग में स्थान देने के लिये सहमत हुए। इनकी स्त्री का नाम सत्यरथा था। इसीके गर्भ से पुण्यात्मा हरिश्चन्द्र उत्पन्न हुए थे।

(हरिवंश)

त्रिशिरा=एक राक्षस का नाम। यह खर दूषण की सेना में वर्तमान था। श्रीरामचन्द्र जी के द्वारा १४ हज़ार राक्षसों के मारे जाने पर त्रिशिरा और खर ये दो ही बचे थे।

(रामायण)

त्रैलिङ्गस्वामी=ये महात्मा दाक्षिणात्य एक ब्राह्मणवंश में उत्पन्न हुए थे। विजिना ग्राम में सन् १५२९ ई० के पौष मास में इन्होंने जन्म ग्रहण किया था। इनके पिता नृसिंहधर एक बड़े भारी धनी थे। नृसिंहधर की दो स्त्रियाँ थीं। बड़ी स्त्री के गर्भ से यही त्रैलिङ्गधर उत्पन्न हुए थे। यही त्रैलिङ्गधर पीछे से त्रिलिङ्गस्वामी नाम से प्रसिद्ध हुए थे। ये काशी में रहते थे, और इनकी लोग विश्वनाथ के समान पूजा और श्रद्धा करते थे। त्रैलिङ्ग की ४० वर्ष की अवस्था में उनके पिता का परलोकवास हुआ था। पिता के परलोकवास होने पर उन्होंने अपनी माता से अनेक शास्त्र तथा योगविद्या का अध्ययन किया था। त्रैलिङ्ग की ५२ वर्ष की अवस्था होने पर उनकी माता का भी परलोकवास हुआ। माता का अग्निसंस्कार कर के त्रैलिङ्ग पुनः घर नहीं लौटे, उनके छोटे भाई श्रीधर ने उन्हें बहुत रोका, परन्तु इन्होंने उनके कहने पर बिलकुल ही ध्यान नहीं दिया। पुनः इनके छोटे भाई श्रीधर गाँव वालों को साथ ले कर उनके पास गये, परन्तु तौ भी त्रैलिङ्ग अपने सङ्कल्प से विचलित नहीं हुए। उन्होंने पिता की समस्त सम्पत्ति छोटे भाई को दे दी। श्रीधर ने अपने बड़े भाई के रहने के लिये स्थान तथा आहारादि का प्रबन्ध कर दिया था। उसी स्थान पर रह कर २० वर्ष तक उन्होंने योगाभ्यास किया। वहीं भगीरथस्वामी नामक एक योगी से इनका साक्षात्कार हुआ। त्रैलिङ्ग भगीरथस्वामी के साथ पुष्करक्षेत्र गये और वहाँ बहुत दिनों तक उन्होंने वास किया। वहाँ रह कर उन्होंने योग की गुप्त क्रियाएँ सीखीं। उन्होंने भगीरथस्वामी से दीक्षा ली, और उन्होंने इनका गणपतिस्वामी नामकरण किया, परन्तु काशी में रहने के समय जिस नाम से इनकी प्रसिद्धि थी, वही नाम बना रहा। पुष्कर तीर्थ में भगीरथस्वामी के देहत्याग करने के पश्चात्

त्रैलिङ्गस्वामी अनेक तीर्थों में गये। रामेश्वर से हो कर जब स्वामी जी सुदामापुरी गये तब वहाँ इनके आशीर्वाद से एक ब्राह्मण को धन पुत्र लाभ हुआ था। वहाँ उनकी सिद्धि देख कर लोगों की भीड़ उनके यहाँ जुटने लगी। इससे दुःखित हो कर वहाँसे वे हिमालय प्रदेश में नैपाल के राज्य में चले गये। वहाँ उन्होंने कुछ दिनों तक योगाभ्यास किया परन्तु जब वहाँ भी लोग उन्हें घेरने लगे तब वे वहाँसे पहले तिब्बत और फिर मानससरोवर को चले गये। वहाँ उन्होंने बहुत दिनों तक योगाभ्यास किया। अनन्तर वहाँसे आ कर मध्यप्रदेश में नर्मदा नदी के तीर पर मार्कण्डेय मुनि के आश्रम में रहने लगे। वहाँ उनका अनेक संन्यासियों से परिचय हुआ। वहाँ एक खाकी बाबा नामक योगी रहते थे। एक दिन वे आधी रात को नर्मदा किनारे गये, वहाँ उन्होंने देखा, नर्मदा की धारा दुग्धधारा हो गयी है, और त्रैलिङ्गस्वामी उसका पान कर रहे हैं। परन्तु खाकी बाबा जब वहाँ उपस्थित हुए, तो फिर पानी का पानी। इस अलौकिक घटना के देखने से खाकी बाबा को बड़ा आश्चर्य हुआ। तबसे खाकी बाबा और आश्रम के अन्य लोग इनमें बड़ी भक्ति करने लगे। पुनः वहाँसे वे काशी गये। काशी में पहले पहल उन्होंने तुलसीदास के बाग में अपना आसन जमाया, पुनः वहाँ से वेदव्यास के आश्रम तथा वहाँसे हनुमानघाट पर वे रहने लगे। तुलसीदास के बाग में रहने के समय उन्होंने एक कुष्ठरोगी को नीरोग किया था। एक बार एक दक्षिणी स्त्री ने नङ्गे रहने के कारण इनका तिरस्कार किया था। काशी के विश्वनाथ ने उस स्त्री को इष्ट-सिद्धि के लिये स्वामी जी के पास जाने के लिये स्वप्न में आज्ञा दी थी। वह स्त्री अपने स्वामी का असाध्य रोग दूर करने के लिये विश्वनाथ की आराधना करती थी। विश्वनाथ ने उसे वर दिया कि नङ्गे स्वामी को प्रसन्न करो, रोग छूट जायगा, उन्होंने शीतातप के कष्ट को वश में कर लिया था। माघ की रात्रि में भी वे कभी गङ्गा में घंटों स्नान करने लग जाते थे। इनके विषय में और भी अनेक कथाएँ प्रचलित हैं। इन्होंने काशी में पञ्चगङ्गा के पास "लाट" नामक शिवलिङ्ग स्थापित किया है। कहा जाता है कि, सन् १८८७ ई० के पौष मास में शुक्ल एकादशी की सन्ध्या को इस महात्मा ने २८० वर्ष की अवस्था में शरीरत्याग किया।

द

दंश=एक असुर का नाम। भृगु मुनि के शाप से यह अलर्क नामक कीट की योनि में उत्पन्न हुआ था। (देखो अलर्क)

दक्ष प्रजापति=इनकी उत्पत्ति के विषय में अनेक पुराणों में भिन्न भिन्न मत पाये जाते हैं। कालिकापुराण में लिखा है—ब्रह्मा ने जगत् की सृष्टि करने की इच्छा से आधा पुरुष का और आधा नारी का शरीर ग्रहण किया और उसी नारी के गर्भ से विराट् पुरुष की उत्पत्ति हुई। विराट् पुरुष ने स्वायम्भुव मनु को जन्माया। स्वायम्भुव मनु ने तपस्या द्वारा ब्रह्मा को प्रसन्न किया और ब्रह्मा ने सृष्टि के लिये दक्ष को उत्पन्न किया। दक्ष ने योगमाया की आराधना कर के यह वर पाया कि, योगमाया उनकी कन्या रूप से उत्पन्न हो कर महादेव की गृहिणी बनेंगी। इसी प्रकार बिना स्त्रीसङ्ग के दक्ष प्रजापति सृष्टि करने लगे। परन्तु दक्ष ने जितने पुत्र उत्पन्न किये वे सब नारद के कहने से पृथिवी परिक्रमा करने लगे। इस प्रकार प्रजा की वृद्धि रुक गयी, तब दक्ष ने मैथुनी सृष्टि उत्पन्न करने की इच्छा से असिक्री को ब्याहा। उसीके गर्भ से योगमाया उत्पन्न हुई, जिनका नाम सती था।

गरुड़पुराण में लिखा है प्रजापति ब्रह्मा ने प्रजा सृष्टि करने की इच्छा से धर्म रुद्र मनु सनक भृगु आदि मानस पुत्रों को उत्पन्न किया और दक्षिणाङ्गुष्ठ से दक्ष और वामाङ्गुष्ठ से उनकी स्त्री को उत्पन्न किया। दक्ष ने अनेक कन्याएँ उत्पन्न की थीं, जिनमें एक कन्या सती रुद्र को ब्याही गयी थी।

हरिवंश में इस प्रकार लिखा है—दस प्रचेताओं की इच्छा और मारिषा के गर्भ तथा सोमदेव

के अंश से दक्ष की उत्पत्ति हुई थी। उन्होंने अनेक मानसी कन्याओं की सृष्टि की थी। इन कन्याओं में से दस धर्म को, १३ कश्यप को, और २१ सोमदेव को व्याही गयीं। इन्हीं कन्याओं के गर्भ से दैत्य दानव, नाग, पशु पक्षी आदि नाना जातीय जीवों की सृष्टि हुई।

हरिवंश के द्वितीय और तृतीय अध्याय में लिखा है कि, ब्रह्मा के दक्षिणाङ्गुष्ठ से दक्ष और वामाङ्गुष्ठ से दक्षपत्नी उत्पन्न हुई थीं। प्रजापति दक्ष ने पहले देवता, गन्धर्व, असुर, पशु पक्षी आदि की मानसी सृष्टि कर के देखा कि, मानसी सृष्टि की प्रजाओं की वृद्धि नहीं होती, अतएव उन्होंने स्त्री पुरुष के योग ही से प्रजा की सृष्टि करना उचित समझा। तब उन्होंने वीरण प्रजापति की कन्या असिक्री को व्याहा। असिक्री के गर्भ से दक्ष ने ५ हज़ार पुत्र उत्पन्न किये। परन्तु ब्रह्मा के मानस पुत्र नारद ने हर्यश्व और सरलाश्व आदि दक्षपुत्रों को अनेक प्रकार की बातें समझा कर उद्देश्यहीन बना दिया। वे सृष्टि कार्य से उदासीन हो गये। यह देख कर दक्ष ने नारद का नाश कर दिया। पुनः ब्रह्मा दक्ष के निकट आये, और उन्होंने नारद का जीवनदान माँगा। दक्ष ने कहा—मैं अपनी कन्या देता हूँ, आप इसे ले जा कर कश्यप को दीजिये, इसीके गर्भ से नारद पुनः उत्पन्न होंगे। ब्रह्मा ने दक्षकन्या कश्यप को दी, और उसके गर्भ से नारद उत्पन्न हुए।

भागवत में दक्ष को ब्रह्मा का मानसपुत्र लिखा है। दक्ष ने मनुकन्या प्रसूति को व्याहा। प्रसूति के गर्भ से दक्ष को १६ कन्याएँ उत्पन्न हुईं। उनमें १३ धर्म को, एक अग्नि को, एक पितरों को, और एक शिव को व्याही गयी। दक्ष का सती में बड़ा स्नेह था। एक समय प्रजापतियों ने एक बड़े यज्ञ का अनुष्ठान किया। उस यज्ञ में समस्त देवता उपस्थित थे। प्रजापति दक्ष जब इस यज्ञ में आये, तब सब देवता उनका सम्मान करने के लिये खड़े हुए, परन्तु महादेव बैठे ही रहे। इससे दक्ष अप्रसन्न हो गये, उन्होंने शिव की निन्दा की तथा शाप दिया कि शिव आज से देवताओं के साथ यज्ञभाग नहीं पा सकेंगे। यह कह कर दक्ष यज्ञभूमि से उठ कर चले गये। तभीसे जामाता और श्वशुर में विद्वेष खड़ा हो गया। थोड़े दिनों के बाद परमेष्ठी ब्रह्मा ने दक्ष को समस्त प्रजापतियों का अधिपति बनाया। इससे दक्ष के अभिमान की सीमा नहीं रही। उन्होंने बृहस्पति नामक एक यज्ञ का अनुष्ठान किया। इस यज्ञ में सबको निमन्त्रण दिया गया। परन्तु महादेव और सती को निमन्त्रण नहीं दिया गया। पिता के घर में होने वाले यज्ञ का संवाद सुन कर सती ने अपने मायके जाने के लिये स्वामी की अनुमति माँगी। परन्तु स्वामी ने किसी प्रकार अनुमति नहीं दी। तब सती बिना निमन्त्रण पाये ही और पति की बात न मान कर पिता के यज्ञ में उपस्थित हुईं दक्ष सती के सामने ही शिव की निन्दा करने लगे। पिता के द्वारा अपमानित हो कर सती ने वहीं यज्ञस्थान ही में शरीरत्याग किया। नारद से सती के देहत्याग की बात सुन कर शिव व्याकुल हो गये, और उन्होंने अपनी एक जटा काट कर उसी समय भूमि पर पटक दी। उस जटा से वीरभद्र उत्पन्न हुआ। शिव के अनुचरों को ले कर वीरभद्र दक्षयज्ञ का विनाश करने के लिये प्रस्थित हुए। वीरभद्र ने भृगु की दाढ़ी उखाड़ ली। पूषा के दाँत तोड़ डाले, और दक्ष का सिर काट कर यज्ञाग्नि में भस्म कर डाला। यह सब हाल सुन कर ब्रह्मा देवों को साथ ले कर कैलास गये और उन्होंने स्तुतियों द्वारा महादेव को प्रसन्न कर दक्ष को जीवित करने का अनुरोध किया। महादेव ने कहा, दक्ष का मस्तक जल गया है। अतएव अब बकरे का मस्तक ही दक्ष का मस्तक बने। ब्रह्मा ने वैसा ही किया दक्ष जी उठे। उन्होंने यज्ञ समाप्त कर के अनेक विध स्तुति कर के महादेव को प्रसन्न किया।

(भागवत)

महाभारत आदिपर्व के पाँचवें खण्ड में लिखा है—प्रचेता के दक्ष नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ। दक्ष ही से समस्त प्रजा उत्पन्न हुई। इसी कारण दक्ष पितामह कहे जाते हैं। दक्ष ने वीरणी के गर्भ से हज़ार पुत्र और पचास कन्या जन्मायी थीं। इन कन्याओं में से दस

धर्म को, १३ कश्यप को और २७ चन्द्रमा को ब्याही गयीं। कश्यप की स्त्रियों में दाक्षायणी सबसे श्रेष्ठ हैं। उनके गर्भ से द्वादश आदित्य उत्पन्न हुए थे। तदनन्तर कश्यप से इन्द्र आदि देवता और विवस्वान् उत्पन्न हुए। विवस्वान् के दो पुत्र थे, वैवस्वत मनु, और यम।

(महाभारत)

दग्धरथ=गन्धर्वविशेष। इनका दूसरा नाम अङ्गारवर्ण था। इनके पास एक चित्रित रथ था इस कारण इनको लोग चित्ररथ भी कहा करते थे। पाण्डवों के वनवास के समय में अर्जुन से इनका युद्ध हुआ था। उस युद्ध में ये पराजित हुए, इससे इन्होंने अपना चित्ररथ जला डाला। तभीसे इनका नाम दग्धरथ हुआ।

दण्डी=दण्डी कवि किस देश में और कब हुए थे इसका निश्चित निर्णय अभी नहीं हो पाया। बङ्गालियों का अनुमान है कि "दशकुमारचरित" में विदर्भ देश की विशेष प्रशंसा होने के कारण ये विदर्भवासी थे। परन्तु ऐसे दुर्बल प्रमाणों से किसी सिद्धान्त पर उपनीत होना भूल है। क्योंकि ऐसी स्थिति में प्रयाग के वर्णन करने वाले कालिदास को प्रयागवासी मानना पड़ेगा। कुछ लोगों का कहना है कि ये शूद्रक कवि से नवीन हैं, क्योंकि इन्होंने अपने काव्यादर्श में—

"लिम्पतीव तमोङ्गानि वर्षतीवाञ्जनं नभः।"

इस शूद्रक कृत मृच्छकटिक के श्लोकार्द्ध को उद्धृत किया है। शूद्रक का समय पहली सदी माना जाता है।

इनकी प्राचीनता के विषय में एक श्लोक प्रचलित है—

"जाते जगति वाल्मीकौ कविरित्यभिधाभवत्।
कवी इति ततो व्यासे कवयस्त्वपि दण्डिनि॥"

यह प्राचीन श्लोक इनकी प्राचीनता सिद्ध करता है, ये कवि कालिदास के समकालीन हों तो कुछ आश्चर्य नहीं। राजशेखर कवि सन् ७६१ ई० में हुए थे और उन्होंने अपने ग्रन्थ में दण्डी का नाम दिया है। इसके द्वारा विल्सन साहब का यह अनुमान कि दण्डी सोमदेव भट्ट की अपेक्षा नवीन हैं और "कथासरित्सागर" देख कर उन्होंने "दशकुमारचरित" की रचना की है—यह ठीक नहीं जान पड़ता। परन्तु इससे इतना तो अवश्य कह सकते हैं कि दण्डी कवि शूद्रक और राजशेखर इन दोनों के मध्य के समय में उत्पन्न हुए थे। अतएव पूर्वोक्त कथानक के आधार पर इनको छठवीं सदी का मानना कुछ अनुचित नहीं है।

जो लोग घर बार छोड़ कर संन्यासी हो जाते हैं, उन्हें दण्डी कहते हैं। सम्भव है दण्डी, उनका नाम न हो, किन्तु केवल उनके चतुर्थाश्रमीत्व का द्योतक हो। इस अनुमान की पुष्टि में पण्डित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर लिखते हैं कि, दण्डियों के रहने का कोई नियत स्थान नहीं है, वे सदा रमते बिचरते हैं। केवल वर्षा ऋतु के चार महीनों में यात्रा में बहुत अधिक क्लेश मिलने के कारण किसी गृहस्थ के यहाँ टिक रहते हैं। ये दण्डी कवि भी बरसात में किसी गृहस्थ के यहाँ टिक रहते थे, और प्रत्येक चौमासे में एक एक ग्रन्थ बनाते थे। जिस बार दण्डी जिस गृहस्थ के यहाँ टिकते थे, वर्षा के अन्त में, चलते समय अपनी रचित पुस्तक उसीको सौंप जाते थे। "दशकुमारचरित" को दण्डी ने एक वर्ष के चौमासे में बनाया। वैसे ही अलङ्कार ग्रन्थ "काव्यादर्श" भी एक ही चौमासे का बना प्रतीत होता है। यदि यह किंवदन्ती सत्य हो तो, दण्डी रचित ग्रन्थों के आदि और अन्त में जो न्यूनता दिखलाई पड़ती है उसका भी उत्तर मिल जाता है। क्योंकि ऐसा भी सुनने में आता है कि दण्डी ने जिस बरसात में "दशकुमारचरित" बनाया, उसी बरसात में उनका देहान्त हुआ। इसी कारण न तो "दशकुमारचरित" संपूर्ण हो सका और न ठीक उसका पूर्वापर सम्बन्ध ही लग सका।

दण्डी के बनाये जो ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं उनके नाम ये हैं—"काव्यादर्श", "दशकुमारचरित", "छन्दोविचिति" और "कलापरिच्छेद"। वासवदत्ता की भूमिका में हाल साहब ने अनुमान किया है—"लिम्पतीव तमोङ्गानि" आदि श्लोक द्रविडविरचित हैं और मम्मट ने इन्हें "काव्यप्रकाश" में उद्धृत किया है। यह अस-

म्भव भी नहीं जान पड़ता । इससे विल्सन साहब का उपनीत सिद्धान्त अशुद्ध जान पड़ता है । अर्थात् सोमदेव की अपेक्षा दण्डी अर्वाचीन हों तो मम्मट से वे कथमपि प्राचीन नहीं हो सकते । यदि हाल साहब का अनुमान ठीक हो तो उक्त श्लोक को "मृच्छकटिक" में प्रक्षिप्त मानना पड़ेगा या शूद्रक को कालिदास, दण्डी आदि की अपेक्षा नवीन मानना पड़ेगा ।

दत्तात्रेय=प्रसिद्ध ऋषि । अत्रिपत्नी अनसूया के गर्भ से भगवान् विष्णु ने दत्तात्रेय का जन्म धारण किया था । कुशिकवंशी एक कुष्ठ ब्राह्मण प्रतिष्ठानपुर में रहता था । उसकी पतिव्रता स्त्री बड़े मनोयोग से सेवा करती थी । वह ब्राह्मण एक दिन एक वेश्या को देख कर काममोहित हुआ और उसने अपनी स्त्री को उस वेश्या के यहाँ ले चलने की आज्ञा दी । साध्वी स्त्री कामार्त पति को कन्धे पर ले कर वेश्या के यहाँ चली । मार्ग में उस कुष्ठ ब्राह्मण का पैर अणीमाण्डव्य नामक ऋषि के शरीर में लगा । इससे क्रुद्ध हो कर ऋषि ने शाप दिया कि जिसका पैर मेरे शरीर में लगा है वह सूर्योदय के पहले मर जायगा । पतिव्रता स्त्री को ऋषि का शाप सुन कर कष्ट तो हुआ, परन्तु उसने दृढ़ता से कहा—"अब सूर्योदय ही न होगा" । पतिव्रता की बात भला कभी झूठी हो सकती है । रात बीत गयी, तथापि सूर्योदय नहीं हुआ । जगत् में अंधेरा छा गया, सूर्योदय न होने से जगत् के नष्ट होने की आशङ्का होने लगी । घबड़ा कर देवगण ब्रह्मा के पास गये । ब्रह्मा ने कहा कि जब पतिव्रता के माहात्म्य से सूर्योदय नहीं हो रहा है तब पतिव्रता की सहायता ही से सूर्योदय हो सकेगा । ब्रह्मा की आज्ञा से देवगण अत्रिपत्नी अनसूया के पास गये । अनसूया ने उस ब्राह्मणी के पास जा कर सूर्योदय होने के लिये अनुमति चाही और कहा कि यदि सूर्योदय होने पर तुम्हारा पति मर जायगा तो मैं उसे जीवित कर दूँगी । ब्राह्मणी ने सूर्योदय होने की आज्ञा दी, सूर्योदय हुआ । देवगण प्रसन्न हो कर अनसूया को वर देने के लिये गये । उन्होंने वर माँगा कि ब्रह्मा विष्णु महेश्वर मेरे पुत्र हों । अनसूया के गर्भ से ब्रह्मा सोम रूप से, विष्णु दत्तात्रेय रूप से और रुद्र दुर्वासा रूप से उत्पन्न हुए थे । (मार्कण्डेयपुराण)

दधीचि=ब्रह्माण्डपुराण में लिखा है कि ये महर्षि शुक्राचार्य के पुत्र थे । ये अथर्वा के औरस और कर्दम प्रजापति की कन्या शान्ति के गर्भ से उत्पन्न हुए थे । ऋग्वेद में भी लिखा है कि ये महर्षि अथर्वा के पुत्र थे । महाभारत में लिखा है कि दक्ष जिस समय हरिद्वार में शिवविहीन यज्ञ कर रहे थे, उस समय दधीचि ने शिव को निमन्त्रण देने के लिये दक्ष को बहुत समझाया था, परन्तु दक्ष ने उनकी एक न सुनी । इससे अप्रसन्न हो कर दधीचि वहाँ से चले गये । वृत्रासुर के अत्याचार से जब देवता पीड़ित हो रहे थे, तब उन्हें मालूम हुआ कि, यदि दधीचि मुनि के अस्थि से वज्र बने तो उसीसे वृत्रासुर का नाश होगा । यह सोच कर देवता दधीचि के निकट गये, और उन लोगों ने उनसे अपना अस्थि देने की प्रार्थना की । इसके पहले इन्द्र ने दधीचि मुनि का अपकार किया था । एक समय महर्षि दधीचि उग्र तपस्या कर रहे थे, भीत हो कर इन्द्र ने अलम्बुषा नाम की अप्सरा द्वारा उनकी तपस्या में विघ्न डाला । परन्तु इस समय उदारचेता महर्षि, पूर्व अपकार भूल गये । उन्होंने देवताओं के उपकार के लिये अपना शरीर छोड़ दिया । उनके अस्थि से वज्र बनाया गया और उसी वज्र से वृत्रासुर मारा गया ।

दनु=प्रजापति दक्ष की कन्या और कश्यप की स्त्री, इसके गर्भ से वातापी, नरक, वृषपर्वा, निकुम्भ, प्रलम्ब और वनायु आदि ४० दानव उत्पन्न हुए थे ।

दन्तवक्त्र=शिशुपाल का भाई । यह श्रीकृष्ण के द्वारा मारा गया था । त्रेता में यह कुम्भकर्ण और सत्ययुग में हिरण्यकशिपु दैत्य हुआ था ।

दमघोष=चन्द्रवंशी एक राजा । ये चेदि देश के राजा थे । दमघोष ने यदुवंशी वसुदेव की दूसरी भगिनी सुप्रभा को व्याहा था । सुप्रभा के गर्भ से शिशुपाल और दन्तवक्त्र उत्पन्न हुए थे । (हरिवंश)

दमन=विदर्भराज भीम के एक पुत्र का नाम । पहले कोई सन्तान न होने के कारण राजा भीम

का समय बड़े कष्ट से बीतता था। एक समय दमन नामक महर्षि विदर्भराज के यहाँ आये। ब्रह्मर्षि के वर से राजा की स्त्री के गर्भ से तीन पुत्र और एक कन्या उत्पन्न हुई। उन्होंने दमन महर्षि के नामानुसार ही पुत्र कन्याओं का नामकरण किया। सबसे छोटे पुत्र का नाम दमन था। (महाभारत)

दमयन्ती=विदर्भाधिपति भीम की कन्या। राजा भीम ने अपनी अपूर्व सुन्दरी कन्या को व्याह देने के लिये एक स्वयम्वरसभा की। इस सभा में देवताओं को भी निमन्त्रण दिया गया था। दमयन्ती ने हंसों से निषधराज नल के गुण सुने थे। दमयन्ती ने देवताओं को छोड़ कर नल के गले में माला पहनायी। कलि और शनि भी स्वयम्वरसभा में जा रहे थे। उन लोगों ने स्वयम्वर से लौटे हुए देवों से सुना कि दमयन्ती ने देवताओं को छोड़ कर नल को वरण किया है।

इससे कलि और शनि दोनों ही दमयन्ती पर रुष्ट हुए। वे दोनों दमयन्ती को पीड़ा देने के लिये अवसर ढूँढ़ने लगे। बहुत दिनों तक उन लोगों को कोई अवसर न मिला। अन्त में विवाह के ग्यारहवें वर्ष कलि ने नल के शरीर में प्रवेश किया। राज्यभ्रष्ट हो कर नल दमयन्ती के साथ जंगलों में घूमते फिरे। नल के भाई पुष्कर निषध के राजा हुए। बहुत वर्षों बाद कलि निर्जित हुआ तथा नल और दमयन्ती पुनः सिंहासनासीन हुए। (महाभारत)

दम्भोद्भव=अतिप्राचीन एक चक्रवर्ती राजा। ये बड़े बली और अभिमानी थे। ये सबसे कहा करते थे कि संसार में ऐसा कौन है जो मुझसे लड़ सके। एक बार इन्होंने यही बात एक महर्षि से कही। महर्षि ने उत्तर दिया कि नरनारायण बड़े बली हैं और वे तुमको जीत सकते हैं। अन्त में ये नरनारायण के पास पहुँचे। पहले तो उन लोगों ने राजा को रोका, परन्तु राजा कब मानने वाले थे। वे झट लड़ने के लिये तैयार हो गये। अन्त में राजा दम्भोद्भव हार गये। (महाभारत)

दयानन्द सरस्वती=ये एक संन्यासी थे। गुजरात के अन्तर्गत काठियावाड़ में मोरवी नामक एक राज्य है। इस राज्य के प्रधान नगर का नाम मोरवी है। वहीं दयानन्द ने सन् १८२४ ई० में जन्म ग्रहण किया था। जिस समय दयानन्द ने जन्म लिया उस समय भारत में ऊधम मचा हुआ था। अंग्रेज़ और महाराष्ट्रों में युद्ध हो रहा था, लुटेरों के भय से देश में सर्वत्र अशान्ति फैली हुई थी।

दयानन्द के पिता पक्के शिवोपासक थे। पिता का चरित्र, धर्मनिष्ठ पुत्र में संक्रान्त हुआ था। इनकी माता एक दयावती कुलकामिनी थीं। इन्होंने पाँच वर्ष की अवस्था में वर्ण परिचय पढ़ कर वेदमन्त्र और कुछ वेदभाष्य का अभ्यास किया, आठवें वर्ष में इनका यज्ञोपवीत हुआ और तबसे ये यजुर्वेद पढ़ने लगे। १४ वर्ष की अवस्था में इन्होंने व्याकरण, यजुर्वेद तथा वेद के और भागों का अध्ययन कर के अपना अध्ययन समाप्त किया।

कहा जाता है एक घटना से इनकी जीवनधारा परिवर्तित हो गयी। एक बार शिवरात्रि के रात्रिजागरण में आधी रात को ये सोचने लगे कि जो वृषवाहन पुरुष हमारे सामने वर्तमान हैं, जो भोजन शयन आदि करते हैं, जिन्होंने हाथ में त्रिशूल धारण किया है क्या ये वे ही महादेव हैं? क्या ये ही पुराणोक्त कैलासपति परमेश्वर हैं? यही चिन्ता करते करते वे अपने पिता से अपनी शङ्का का समाधान पूँछने लगे। पिता ने कहा—तुम यह क्यों पूछते हो? दयानन्द ने कहा कि यदि ये ही सर्वशक्तिमान् परमेश्वर हैं तो इनके शरीर को अभी चूहे ने छू लिया और इन्होंने उसका कुछ भी प्रतीकार न किया। इसके उत्तर में पिता ने जो कुछ कहा उससे इनके संशय का घटना तो दूर रहा, वह और भी बढ़ गया। उसी समय उन्होंने मूर्तिपूजा छोड़ देने की इच्छा की, परन्तु पिता के भय से इस बात को वे प्रकाशित न कर सके। इसके कुछ ही दिनों के बाद उनकी १४ वर्ष की भगिनी साङ्घातिक रोग से असह्य पीड़ा भोग कर दो घण्टे में मर गयी। दयानन्द ने पहले ही पहल मृत्यु का यह भयङ्कर दृश्य देखा था। मृत्यु का भयङ्कर स्वरुप देख कर उनके

हृदय में मुक्ति की इच्छा प्रबल हो गयी, उन्होंने निश्चित कर लिया जिस प्रकार हो उस प्रकार मृत्यु के दुःख से छूटना चाहिये। वे संसार से पूर्ण विरक्त हो गये। पिता ने दयानन्द का यह परिवर्तन देख कर उन पर ज़मींदारी का भार छोड़ना चाहा, परन्तु उन्होंने इस काम को करना अस्वीकृत किया। उनके पिता माता ने उनका विवाह करना निश्चित किया। दयानन्द ने इसके लिये पिता माता को बहुत रोका, परन्तु उन लोगों ने कुछ न सुना। अतएव दूसरा उपाय न देख दयानन्द सन् १८४६ ई० में घर से भाग खड़े हुए। कुछ दिनों तक तो इनका कुछ पता नहीं लगा। परन्तु पीछे पता लगा कर उनके पिता ने उनको एक मठ में पकड़ लिया। दयानन्द पिता के साथ घर लौट आये। पिता ने पुत्र को पहरे में रखने का प्रबन्ध कर दिया। एक दिन रात के समय ज्यों ही पहरे वाले सोये त्यों ही अवसर देख, दयानन्द फिर घर से भागे और भाग कर अहमदाबाद बरौदा आदि स्थानों में घूम घूम कर वे मूर्तिपूजा के विरुद्ध वक्तृता देने लगे। सन् १८५४ ई० में वे हरिद्वार कुम्भ के मेले में गये, तबसे उनके अनेक विरोधी हो गये। दयानन्द ने भारत के प्रायः सभी स्थानों में भ्रमण किया था।

मूर्तिपूजा के विरुद्ध व्याख्यान देने के कारण बहुत लोग उनकी जान के गाँहक हो गये थे। उनकी भ्रमणकथा बड़ी विलक्षण है। परमहंस परमानन्द के यहाँ उन्होंने "वेदान्तसार" आदि ग्रन्थों का अध्ययन किया था और परमहंस पूर्णानन्द से संन्यासाश्रम ग्रहण किया था। अनेक स्थानों में घूमने के कारण जिन साधु संन्यासियों से उनका परिचय हुआ था उनमें व्यासाश्रम के योगानन्द, वाराणसी के सच्चिदानन्द, केदारघाट के गङ्गागिरि, ज्वालानन्द पुरी और शिवानन्द गिरि के नाम उल्लेख योग्य हैं। दर्शन और योगशास्त्र विषयक अनेक ग्रन्थ उनके साथ रहते थे। अवसर पाने पर वे शास्त्रपाठ और योगाभ्यास किया करते थे। तदनन्तर वे मथुरा आये, और वहाँके प्रसिद्ध पण्डित विरजानन्द के यहाँ नाना शास्त्रों का अध्ययन करने लगे। शैव और वैष्णव दोनों सम्प्रदाय के वे विरोधी थे। उन्होंने फरुखाबाद में एक वैदिक पाठशाला स्थापित की थी और पञ्जाब में कई स्थानों पर उन्होंने आर्यसमाज की प्रतिष्ठा की थी।

मूर्तिपूजा की असारता बतलाने के लिये इन्होंने काशी के पण्डितों की एक सभा की। सन् १८६९ ई० की १७ वीं नवम्बर मङ्गलवार को काशी में दुर्गाकुण्ड के समीप सब लोग एकत्रित हुए। विचार होने लगा परन्तु इस विचार में सरस्वती जी हार गये। इसके अनन्तर ये कलकत्ता आदि स्थानों में घूमते रहे। सन् १८८३ई० में अजमेर में इनका शरीरपात हुआ।

दयानाथ दुबे=ये हिन्दी के एक कवि थे। सन् १८६१ ई० में इन्होंने जन्म ग्रहण किया था। इनका बनाया प्रेमसंबन्धी एक ग्रन्थ है जिसका नाम "आनन्दरस" है।

दयानिधि=ये बैसवाड़े के रहने वाले थे और सन् १७५४ ई० में जन्मे थे। राजा अचलसिंह की आज्ञा से इन्होंने शालिहोत्र नामक एक ग्रन्थ लिखा था।

दयाराम त्रिपाठी=ये एक हिन्दी के कवि थे। इनका जन्म सन् १७१२ ई० में हुआ था। इनकी कविता प्रधानतः शान्तरस की ओर झुकी हुई होती थी। इनका "अनेकार्थ" भी प्रसिद्ध है।

दयाल=ये हिन्दी के एक कवि थे और सन् १८८३ ई० में जीवित थे। ये "भौम" कवि के पुत्र थे।

दयालसिंह=इनका पूरा नाम सर्दार दयालसिंह मजीठिया था। इन्होंने पञ्जाब में एक प्रतिष्ठित सिक्ख कुल में सन् १८४९ ई० में जन्म ग्रहण किया था। इनका परिवार दानशीलता के लिये प्रसिद्ध है। इनके पितामह सर्दार देशासिंह जाटों के नेता थे। जाट लोग रणपण्डित होते हैं यह बात कहने की आवश्यकता नहीं है। महाराज रणजीतसिंह ने, देशासिंह को उनके समरकौशल और उनके अन्य गुणों पर प्रसन्न हो कर, उन्हें अमृतसर का शासनकर्ता बनाया। दयालसिंह के पिता सर्दार लेहनासिंह

खालसा सेना के सेनापति थे। पिता की मृत्यु होने पर सर्दार लेहनासिंह अमृतसर के शासन-कर्ता के पद पर नियत किये गये। सन् १८५४ ई० में लेहनासिंह की भी, वृद्ध होने के कारण, काशी में मृत्यु हुई। उस समय दयालसिंह की अवस्था ५ वर्ष की थी। पिता की मृत्यु के बाद इनकी माता की भी मृत्यु हुई। उस समय कोर्ट ऑफ वार्डस् की देख रेख में इनकी सम्पत्ति का प्रबन्ध और शिक्षा होने लगी। इन्होंने शीघ्र ही अंगरेज़ी और फ़ारसी भाषाओं में अभिज्ञता प्राप्त कर ली। अपनी सम्पत्ति का अधिकार मिल जाने पर ये दो वर्ष तक इङ्गलैण्ड भी रहे थे। इङ्गलैण्ड में इनका बहुत आदर और मान हुआ था। वहाँसे लौटने पर इन्होंने देश में सामाजिक और राजनैतिक विषयों की उन्नति करने के लिये प्रयत्न किया था। दर्शनशास्त्र में इनका प्रगाढ़ प्रेम है। दान के लिये इनकी प्रसिद्धि थी, सर्वसाधारण के कार्यों में ये खूब दान दिया करते थे। वे पञ्जाब के राजनैतिक नेता थे। पञ्जाब के प्रधान अंगरेज़ी पत्र "ट्रिब्यून" के ये प्रतिष्ठाता थे मृत्यु के समय उन्होंने एक दानपत्र लिखा था, जिसमें उन्होंने पुस्तकालय के लिये ६० हज़ार रुपये और एक मकान दिया था। कालेज खोलने के लिये उन्होंने जो सम्पत्ति दी थी, उसका मूल्य १५ लाख रुपये हैं। ये काँग्रेस के सञ्चालकों में से थे। इन्हींकी सहायता से लाहौर में काँग्रेस का अधिवेशन हुआ था। सन् १९०५ ई० में इन्होंने शरीर त्याग दिया।

दलपतिराय=ये एक हिन्दी के कवि और अहमदाबाद के रहने वाले थे। इनका जन्म सन् १८२८ ई० में हुआ था। इन्होंने "भाषाभूषण" पर एक उत्तम टीका लिखी है।

दलसिंह=ये बुन्देलखण्ड के राजा थे और हिन्दी के कवि भी थे। इनका जन्म सन् १७२४ ई० में हुआ था। इन्होंने "प्रेमपयोनिधि" नामक एक ग्रन्थ बनाया था।

दलीपसिंह=पञ्जाब केसरी रणजीतसिंह के छोटे पुत्र। सन् १८३८ ई० में दलीपसिंह ४ वर्ष की अवस्था में पञ्जाब के सिंहासन पर बैठाये गये। सिक्खयुद्ध के अन्त होने पर लार्ड डैलहौसी ने पञ्जाब पर अधिकार कर लिया। उस समय दलीप एक शिक्षक की देख रेख में रहा करते थे। बालक होने पर सरकार से इन्हें दो लाख वार्षिक ख़र्च के लिये मिलते थे। सन् १८५३ ई० में ये क्रिस्तान हो गये। तदनन्तर ये इङ्गलैण्ड गये और पैरिस के होटल में इनका प्राणान्त हो गया।

दशरथ=अयोध्या के राजा। इनके पिता का नाम अज था। ये विष्णु के अवतार रामचन्द्र के पिता थे। दशरथ की राजधानी अयोध्या अत्यन्त प्राचीन नगरी थी। वह सरयू के तीर पर स्थित है, और उसकी विशालता १२ योजन थी। इस समय संसार में १२ योजन विस्तृत नगरी कहीं नहीं है। दशरथ की तीन प्रधान महारानियाँ थीं; कौशल्या, कैकेयी और सुमित्रा और अप्रधान ३५० थीं। दशरथ ६० हज़ार वर्ष जीते रहे और राज्य करते रहे। बहुत वर्षों तक दशरथ के कोई सन्तान न हुई। केवल शान्ता नाम की एक कन्या दशरथ के थी, उसको भी उन्होंने अपने मित्र अङ्गदेशाधिपति रोमपाद को दत्तक रूप से दे दिया था। अपुत्रक राजा दशरथ बड़े दुःखित थे। अनन्तर मन्त्रियों के कहने से उन्होंने ऋष्यशृङ्ग को बुला कर अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान किया उस यज्ञ का चरु खाने से प्रधान तीनों महारानियों के गर्भ रहा। यथासमय राम भरत और लक्ष्मण शत्रुघ्न उत्पन्न हुए। यज्ञ करने के पहले दशरथ अहेर खेलने वन में गये थे। वहाँ दशरथ ने शब्दभेदी बाण द्वारा अन्ध मुनि के पुत्र को हाथी के भ्रम से मार डाला। पुत्रशोकातुर अन्ध मुनि ने दशरथ को शाप दिया कि, तुमको भी हमारे ही समान पुत्र-शोक से प्राण त्याग करना पड़ेगा। इस शाप से दुःखी हो कर राजा घर आये। अयोध्या के दक्षिण की ओर निषाद-पति गुह का राज्य था, उसकी राजधानी का नाम शृङ्गवेरपुर था। गुह अनार्य राजा था। इसके साथ दशरथ की मैत्री थी। ताड़का राक्षसी को मारने के लिये राजा दशरथ ने विश्वामित्र की प्रार्थना करने पर राम और लक्ष्मण को उनके साथ भेजा था। कैकेयी

के कुचक्र में फँस कर राजा दशरथ ने अपने पुत्र राम लक्ष्मण को १४ वर्ष के लिये वन में भेजा था और इसी पुत्रवियोग से उनका प्राण भी गया। (रामायण)

दामोदर=(१) काश्मीर के एक राजा । इनके पिता का नाम प्रथम गोनर्द था। मथुरा के युद्ध में गोनर्द के मारे जाने पर उनके पुत्र दामोदर काश्मीर के सिंहासन पर बैठे । यद्यपि दामोदर काश्मीर जैसे सुखसमृद्धिपूर्ण राज्य के राजा हुए, परन्तु उन्हें शान्ति नहीं मिली । वे पितृघातियों से बदला चुकाने के लिये सदा व्याकुल रहा करते थे। कुछ दिनों के बाद इन्होंने सुना कि गान्धारराज की राजकन्या का स्वयम्वर होने वाला है। उसमें क्षत्रियों को भी निमन्त्रण दिया गया है। ये भी सेना ले कर चले। इन्होंने श्रीकृष्ण आदि से युद्ध किया । श्रीकृष्ण ने इन्हें मार डाला। (राजतरङ्गिणी)

(२) काश्मीर के एक राजा। ये जलौका के पश्चात् काश्मीर के सिंहासन पर बैठे थे । मालूम नहीं ये किस वंश के थे । ये बड़े पक्के शैव थे, इसीसे कुबेर भी इनसे मित्रता रखते थे। कहते हैं कि कुबेर से मैत्री होने के कारण यक्ष लोग इनकी आज्ञा का पालन करते थे। ये यक्षों से एक बाँध बँधवाते थे, जिससे काश्मीर में बूड़ा न आवे। एक समय राजा द्वितीय दामोदर वितस्ता नदी में स्नान करने जाते थे। मार्ग में ब्राह्मणों ने इन्हें घेरा, और वे इनसे भोजन माँगने लगे। ये स्नान करने जा रहे थे। इस कारण इन्होंने उधर कुछ ध्यान न दिया। ब्राह्मणों ने इन्हें साँप होने का शाप दे दिया पुनः बहुत प्रार्थना करने पर रामायण का पाठ एक दिन में सुन जाने पर शाप न लगेगा ऐसा उन लोगों ने कहा।

(राजतरङ्गिणी)

दामोदर गुप्त=संस्कृत के एक कवि जो काश्मीरनिवासी थे । इन्होंने "कुट्टनीमत" नामक एक ग्रन्थ लिखा है। इनके विषय में राजतरङ्गिणी में लिखा है—

"स दामोदरगुप्ताख्यं कुट्टनीमतकारिणम्।
कविं कविं बलिरिव धूर्यधीसचिवं व्यधात् ॥"

जिससे मालूम होता है कि ये महाराज जयापीड के मन्त्री थे। जयापीड का समय सन् ७७३ ई० से ले कर सन् ८०३ ई० तक माना गया है। अतः दामोदर गुप्त का भी वही समय मानना उचित है। इनका बनाया "कुट्टनीमत" अपने ढङ्ग का अनोखा है।

दामोदर मिश्र=इन्होंने "हनुमन्नाटक" का संग्रह किया था । ये "काव्यप्रकाश-"कार मम्मट से प्राचीन हैं। अतएव ग्यारहवीं सदी के पूर्व भाग में इनका होना प्रमाणित होता है।

दामोदरदास=ये हिन्दी के एक कवि थे और इनका जन्म सन् १५६५ ई० में हुआ था। इनके विषय में इससे अधिक कुछ नहीं पता चलता।

दारुक=श्रीकृष्ण का सारथि । जिस समय अर्जुन सुभद्रा को हर कर लिये जा रहे थे, उस समय इन्होंने अर्जुन से कहा था—मैं यादवों के विरुद्ध रथ नहीं हाँक सकता, अतएव आप मुझे बाँध दें, और जहाँ चाहें रथ ले जायँ। वैकुण्ठयात्रा के समय श्रीकृष्ण ने अर्जुन के लिये संदेशा उनके पास इसीके द्वारा भेजा था।

(महाभारत)

दासराज=यह एक अनार्य राजा था। इसीकी पालित कन्या को महाराज शन्तनु ने ब्याहा था।

(महाभारत)

दिति=प्रजापति दक्ष की कन्या। ये कश्यप की स्त्री और दैत्यों की माता थीं। देवताओं ने जब दैत्यों का नाश किया तब दिति ने इन्द्र को दमन करने वाले एक पुत्र की प्रार्थना अपने पति से की। कश्यप ने उनकी प्रार्थना पूर्ण कर के कहा—तुमको हज़ार वर्ष तक गर्भ धारण करना पड़ेगा, और सर्वदा शुद्धता से रहना होगा। सावधानी से दिति भी इन नियमों का पालन करने लगीं। आने वाली आपत्ति के डर से इन्द्र गर्भ नष्ट करने के लिये सर्वदा अवसर देखने लगे। संयोगवश एक दिन विना पैर धोये दिति सोयी थीं। यह अवसर अच्छा देख कर इन्द्र गर्भ में घुस गये, और उन्होंने गर्भ के ४९ टुकड़े कर डाले। इसी गर्भ से मरुत् गण उत्पन्न हुए थे।

(रामायण)

दिद्दा=काश्मीर की सिंहासनाधिरूढ़ा एक महारानी। इसको महारानी कहने के बदले पिशाचिनी कहना अधिकतर उपयुक्त होगा। क्योंकि, पहले यह पर्वगुप्त नामक शिशुराजा की अभिभाविका नियत की गयी थी। परन्तु क्रमशः पाँच राजाओं को अनेक उपायों से मरवा कर अन्त में यह स्वयं सिंहासन पर बैठ गयी। यह व्यभिचारिणी परले सिरे की थी। राजतरङ्गिणी में लिखा है—यह विधवा महारानी दिद्दा किसी दिन भी बिना पुरुष के नहीं सोती थी। २३ वर्ष चार महीना २३ दिन इसने राज्य किया था। इसने अपने मरने के समय अपने भाई के बेटे को राज्य दे दिया।

(राजतरङ्गिणी)

दिनकर मिश्र=ये संस्कृत के एक प्रसिद्ध पण्डित थे। इन्होंने रघुवंश की टीका भी लिखी है। लोग कहते हैं कि, इन्होंने सन् १३८५ ई० में यह टीका बनायी। ये बौद्ध थे।

दिनकर राव=ये बम्बई प्रदेश के रत्नगिरि ज़िला के दबतर नामक स्थान में सन् १८१६ ई० में उत्पन्न हुए थे। इनके पिता महाराष्ट्र ब्राह्मण थे उनका नाम था राघव दादू। दिनकर राव की पहले से तीन चार पीढ़ी गवालियर राज्य में रहा करती थीं। वहाँ ये सभी राज्य के उच्च कर्मचारी थे। दिनकर राव ने बाल्यावस्था में संस्कृत और फ़ारसी भाषा सीखी थीं। ये पक्के सनातन-धर्मी हिन्दू थे और सन्ध्या आह्निक आदि नित्य कर्म बड़े प्रेम से करते थे। सङ्गीत-विद्या में भी इनका प्रगाढ़ प्रेम था। १५ वर्ष की अवस्था में उन्हें राज्य के एकाउंटेंट का पद मिला। इस काम को इन्होंने बड़ी योग्यता से सम्पादन किया। थोड़े दिनों के बाद, उनके पिता की मृत्यु होने पर दिनकर राव एक प्रान्त के सूबेदार बनाये गये। सन् १८४४ ई० में राजघराने में कलह उपस्थित हुआ। महाराज बालक थे, अतः राज्यकीय व्यवस्था उच्छृङ्खल हो गयी। माल-गुज़ारी वसूल न होती, राजकोष खाली हो गया। सेना आदि विद्रोह करने लगी। इस समय एक उत्तम व्यवस्थापक की बड़ी आवश्यकता थी। ऐसे विकट समय में सन् १८५२ ई० में दिनकर राव राजमन्त्री हुए। उन्होंने अपना मासिक वेतन ५ हज़ार से घटा कर २ दो हज़ार कर दिया। इसी प्रकार उन्होंने अन्यान्य खर्चे में भी कमी की। इसके पश्चात् उन्होंने राजकोष पूर्ण करने का प्रयत्न किया, उन्होंने मालगुज़ारी वसूल करने के लिये चुन चुन कर मनुष्य नियत किये। उन्होंने सब विभागों के कर्मचारियों को काम बाँट दिये। इस प्रकार देश में पुनः शान्ति स्थापित हुई। सन् १८५७ ई० में सिपाही-विद्रोह हुआ। उस समय दिनकर राव ने अंगरेज़ सरकार को बड़ी सहायता दी। दिनकर राव के कहने से सेन्धिया ने कुछ भी उपद्रव नहीं किया। विद्रोही दल जिस समय गवालियर राज्य में से हो कर जा रहा था। उस समय दिनकर राव ने अपनी सेना को उसका साथ न देने के लिये चितावनी दी थी। विद्रोह के अन्त में सन् १८५९ ई० में भारत के बड़े लाट ने एक दरबार किया, उसमें दिनकर राव को धन्यवाद और काशी ज़िले में एक बड़ी ज़मींदारी दी गयी। इसी वर्ष उन्होंने गवालियर के मन्त्री के पद को छोड़ दिया। तदनन्तर धौलपुर में सुपरिंटेंडेंट का पद ग्रहण किया। सन् १८६१ ई० में ये बड़े लाट की व्यवस्थापक सभा के मेम्बर नियत हुए। गवर्नमेंट से इन्हें के. सी. एस्. आई. की उपाधि मिली थी। तदनन्तर उन्हें राजा की उपाधि दी गयी। वृद्धावस्था में उन्होंने सभी प्रकार के काम छोड़ दिये। सन् १८९६ ई० में उनकी मृत्यु हुई।

दिनेश टिकारी वाले=ये हिन्दी के एक कवि थे। इनका समय १८०७ विक्रमी संवत् है। इन्होंने "रसरहस्य" नामक एक ग्रन्थ लिखा है।

दिलदार=ये हिन्दी के कवि थे। इनका जन्म सन् १५९३ ई० में हुआ था। इनका कुछ विशेष पता नहीं चलता।

दिलीप=सूर्यवंशी एक प्राचीन राजा। पुराणों में दो दिलीपों का पता लगता है। एक दिलीप रघु के पिता थे और दूसरे भगीरथ के पिता। रघुवंश में कालिदास ने लिखा है कि रघु के पुत्र अज, उनके पुत्र दशरथ और दशरथ के पुत्र राम थे। परन्तु वाल्मीकिरामायण से पता चलता है कि दिलीप और राम के बीच में १७ पुरुष हुए हैं।

महाकवि कालिदास ने अपने रघुवंश में दिलीप का विवरण इस प्रकार लिखा है। एक समय दिलीप स्वर्ग से आ रहे थे, मार्ग में उन्हें कामधेनु मिली, परन्तु उन्होंने उसे प्रणाम नहीं किया। इस पर इन्हें उसने शाप दिया कि मेरी पुत्री नन्दिनी की सेवा किये विना तुम्हारे पुत्र नहीं होगा। बहुत दिनों तक कोई सन्तान न होने के कारण राजा बड़े चिन्तित हुए। अन्त में उन्होंने पुत्र न होने का कारण वशिष्ठ से पूँछा तब उनके उपदेश से उन्होंने नन्दिनी की सेवा की और तब रघु उत्पन्न हुए। (रघुवंश)

दिवाकर=(१) इनका पूरा नाम मातङ्ग दिवाकर था। ये कन्नौज के महाराज हर्षवर्द्धन के सभासद् थे। इन्हीं महाराज हर्षवर्द्धन की सभा में बाण मयूर आदि कवि थे। दिवाकर यद्यपि मातङ्गवंशज थे, तथापि विद्या के कारण बाण मयूर के समान इनकी प्रतिष्ठा थी—

"अहो प्रभावो वाग्देव्या यन्मातङ्गदिवाकरः।
श्रीहर्षस्याभवत् सभ्यः समो बाणमयूरयोः॥"

श्रीहर्ष के समकालीन होने के कारण इनका समय सातवीं सदी का प्रारम्भ भाग माना जाता है।

(२) ये एक प्रसिद्ध ज्योतिषी थे। पं० सुधाकर द्विवेदी ने इनका समय पन्द्रहवीं सदी बताया है। ये गोदावरी नदी के तट पर बसे हुए गोल नामक एक ग्राम के निवासी थे। जातकपद्धति नामक एक ग्रन्थ भी उन्होंने बनाया है।

दिविरथ=महाराज अङ्ग के पौत्र और दधिवाहन के पुत्र। दिविरथ का नाम धर्मरथ और उनके पौत्र का नाम चैत्ररथ था।

दिवोदास=(१) बध्नस्व के पुत्र। ये मेनका के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। इनकी बहिन का नाम अहल्या था।

(२) मनुवंशी काशिराज रिपुञ्जय का पुत्र। इसने तपस्या द्वारा ब्रह्मा को प्रसन्न कर के वर पाया था। उसीके फल से उसे नागरं राज्य के निकट अनङ्गमोहिनी नाम की स्त्री के साथ इसका विवाह हुआ और स्वर्ग से इसे रत्न और कुसुम मिले। इसी कारण इसका नाम दिवोदास पड़ा था। इसने बहुत दिनों तक काशी का राज्य किया था।

(३) इसके पुत्र का नाम प्रतर्दन था और पिता का नाम सुदेव। राजा सुहोत्र के पुत्र काश थे। उनके पुत्र काश्य या काशिराज ने काशीपुरी बसायी थी। इसी वंश में हर्यश्व नामक एक राजा हुए थे, जिन्हें यदुवंशी हैहय के पुत्रों ने मार डाला था। हर्यश्व के बाद सुदेव काशिराज हुए पर उन्हें भी हैहयपुत्रों ने मार डाला। तदनन्तर सुदेव के पुत्र दिवोदास काशी के अधीश्वर हुए और उन्होंने काशी को दुर्ग प्राकार आदि बना कर सुरक्षित किया। उस समय गङ्गा के उत्तर तीर से ले कर गोमती के दक्षिण तीर तक काशी का राज्य विस्तारित था। (महाभारत)

हरिवंश और मत्स्यपुराण में लिखा है कि हैहयवंशियों ने काशी पर अधिकार कर लिया था और दिवोदास ने उनको मार भगाया। तदनन्तर हैहयवंशी राजा दुर्दम ने दिवोदास को परास्त किया और वे स्वयं काशी के राजा बन गये। दिवोदास के पुत्र प्रतर्दन ने पुनः अपने पिता के राज्य का उद्धार किया था।

दीर्घतमा=प्राचीन महर्षि। ये उतथ्य के पुत्र और बृहस्पति के बड़े भाई थे। इनके जन्मान्ध होने के कारण इनका नाम दीर्घतमा पड़ा था।

दुःशला=अन्धराज धृतराष्ट्र की यह कन्या थी। दुर्योधन इसके बड़े भाई थे। इसका ब्याह सिन्धु देश के राजा जयद्रथ के साथ किया गया था। इसके पुत्र का नाम सुरथ था। जिस समय, जयद्रथ को महाभारत के युद्ध में अर्जुन ने मारा, उस समय सुरथ बालक था। दुःशला ने अपने पुत्र के अभिभावक का पद ग्रहण कर के सिन्धु राज्य का शासन किया था। युधिष्ठिर के अश्वमेध यज्ञ का घोड़ा ले कर अर्जुन जब सिन्धु राज्य में गये थे, उस समय सुरथ मारे डर के मर गया, यह सुन कर अर्जुन ने सुरथ के पुत्र को सिन्धु देश के राज्य पर बैठा दिया।

(महाभारत)

दुःशासन=ये धृतराष्ट्र के पुत्र और दुर्योधन के छोटे भाई थे। दुर्योधन इसीके परामर्श से अपना काम किया करता था। महाभारत के युद्ध का कारण यही था। जुए में जब पाण्डव हार गये तब यही दुःशासन द्रौपदी के केश पकड़ कर उन्हें सभा में लाया था और उनको नङ्गी करने का प्रयत्न करता था। इसी अपमान का बदला चुकाने के लिये भीमसेन ने प्रतिज्ञा की थी कि जब तक मैं दुःशासन की छाती फाड़ कर रुधिर न बहाऊँगा और जब तक दुर्योधन के रक्त से द्रौपदी की चोटी नहीं भिगायी जायगी तब तक द्रौपदी के बाल खुले रहेंगे। कुरुक्षेत्र के युद्ध में भीमसेन ने अपनी प्रतिज्ञा पूरी की थी। (महाभारत)

दुन्दुभि=दानवविशेष। यह दानव महिषाकार था। बालि ने इसका वध किया था, और उसके सिर को ऋष्यमूक पर्वत पर फेंक दिया था। तभीसे मतङ्ग मुनि के शाप के कारण बालि ऋष्यमूक पर्वत पर नहीं जा सकता था। (रामायण)

दुर्गसिंह=एक प्राचीन वैयाकरण। इन्होंने कलाप व्याकरण की टीका और वृत्ति लिखी है।

दुर्गा=आद्या शक्ति। दुर्ग नामक असुर के मारने के कारण इनका नाम दुर्गा पड़ा है। महिषासुर ने देवताओं को भगा कर स्वर्गपर अपना अधिकार कर लिया। इससे दुःखी हो कर देवता ब्रह्मा की शरण गये। ब्रह्मा देवताओं को ले कर महादेव के पास उपस्थित हुए और उन्होंने देवताओं की दुर्दशा का वर्णन किया। महादेव क्रुद्ध हुए उनके वदन से एक तेज निकला। उसी समय ब्रह्मा तथा अन्य देवताओं के भी मुख से ज्योति निकलने लगी। सभीके देखते देखते उस तेजोमण्डल ने एक सुन्दरी स्त्री का रूप धारण किया। देवताओं ने उस स्त्री को अपने अपने अस्त्र प्रदान किये। उस देवी ने महिषासुर को तीन बार मारा, पहली बार उग्रचण्डा रूप से दूसरी बार भद्रकाली रूप से तीसरी बार दुर्गा रूप से। (देवीभागवत)

दुर्गादास=प्रसिद्ध राठौर वीर, ये मारवाड़ की लूनी नदी के पास दूनाडे नामक प्रदेश के सामन्त थे। इनके पिता का नाम आशासिंह था। जिन प्रभुभक्त वीर राठौरों ने स्वार्थत्याग का उज्ज्वल दृष्टान्त दिखा कर अपनी शुभ्र कीर्ति को चिरस्थायिनी बनाया है, उन सबके अगुवा दुर्गादास ही हैं। कुमार अजितसिंह को अपने हाथ में समर्पण कर देने के लिये औरङ्गज़ेब ने इन्हें मारवाड़ का समस्त राज्य देने का लोभ दिया था। परन्तु वीरवर दुर्गादास ने उसका साफ़ साफ़ शब्दों में तिरस्कार कर दिया। संवत् १७३६ में जो राठौरों ने भयानक युद्ध किया था, उस युद्ध में वीरश्रेष्ठ दुर्गादास ने अपनी वीरता का परिचय दिया था। उस युद्ध में इन्होंने मुसल्मान वीरों के गर्व धूल में मिला दिये थे। कुमार अजित की रक्षा करने के लिये ये आबू के पहाड़ पर वेश बदल कर रहा करते थे, और वहाँ ही इनकी संरक्षकता में मारवाड़ का भावी अधीश्वर बढ़ रहा था। दुर्गादास अपने प्रयत्न में सफल भी हुए थे, अर्थात् दुर्गादास ने राजकुमार अजित को अपने प्रयत्न, त्याग और वीरता से मारवाड़ का अधीश्वर बना दिया था। दुर्गादास के गुण देवोपम थे। टाड साहब कहते हैं कि दुर्गादास के स्वार्थत्याग का उदाहरण संसार की किसी भी वीर जाति में नहीं पाया जाता है। (टाडस् राजस्थान)

दुर्गावती=(१) चित्तौर के महाराणा सांगा की कन्या। वेसिन के राजा सिलौढ़ी को ये ब्याही गयी थीं। गुजरात के अधिपति बहादुरशाह ने सन् १५३१ ई० में राजा सिलौढ़ी को क़ैद कर के बलपूर्वक मुसल्मान बना लिया। सिलौढ़ी के भाई लक्ष्मण ने क़िले की रक्षा करने के लिये युद्ध किया, परन्तु असंख्य मुसल्मानों को रोकना उनके लिये असम्भव था। अतएव उन्होंने क़िला मुसल्मानों को दे देने की इच्छा की। रानी दुर्गावती ने मुसल्मानों के हाथ में जाने की अपेक्षा मरना अच्छा समझ कर, ७०० राजपूत स्त्रियों के साथ अग्निकुण्ड में प्रवेश किया था।

(२) चन्देल क्षत्रियवंशी महोबा के राजा की कन्या। महोबा हमीरपुर ज़िले का प्रधान

नगर है। दुर्गावती की सुन्दरता तथा उसके अनुपम गुणों को सुन कर दलपतशाह ने उसके साथ ब्याह करने की अपनी इच्छा प्रकट की। परन्तु दुर्गावती के पिता ने उसे स्वीकार नहीं किया। इससे दलपत ने महोबे पर चढ़ाई की और दुर्गावती को अपनी धर्मपत्नी बनाया। परन्तु दुर्गावती का भाग्य खोटा निकला। ४ वर्ष के बाद ही वह विधवा हो गयी। उसके एक पुत्र हुआ था, जिसकी अवस्था तीन वर्ष की थी। महारानी अपने पुत्र को राज-सिंहासन पर बैठा कर स्वयं गढ़मण्डल राज्य का शासन करने लगीं। महारानी के सुशासन के प्रभाव से राजकोष धनपूर्ण हो गया, प्रजा सुख से अपने दिन बिताने लगी। परन्तु विधवा रानी को यह सुख भी भोगना नहीं बदा था। उसके अतुल ऐश्वर्य की बात दिल्ली के सम्राट् अकबर के कानों तक पहुँची। अकबर के मध्यभारत के सेनापति आसफखाँ ने १८ हज़ार सेना ले कर गढ़मण्डल की राजधानी सिंहगढ़ पर आक्रमण किया। पहले दिन के युद्ध में तो महारानी दुर्गावती की जीत हुई, परन्तु दूसरे दिन के युद्ध में हाथी पर बैठी हुई महारानी घायल हुईं। एक बाण आ कर उनकी आँख में लगा, और दूसरे बाण से उनकी कनपटी विध गयी। महारानी को आहत देख कर उनकी सेना भागने लगी। उस समय महारानी युद्ध में अपनी जीत की कोई आशा न देख स्वयं छूरी से अपना वक्षस्थल फाड़ कर मर गयीं।

दुर्जनसाल=कोटा राज्य के अधीश्वर राजा भीमसिंह के ये छोटे पुत्र थे। इनके बड़े भाई अर्जुनसिंह पूर्व प्रथा के अनुसार कोटा राज्य के अधीश्वर हुए। परन्तु वे चार वर्ष तक राज्य करने के बाद परलोकवासी हुए। अनन्तर दुर्जनसाल और श्यामसिंह इन दोनों भाइयों ने राज्य के लिये युद्ध करना प्रारम्भ किया। उसका फल यह हुआ कि, दुर्जनसाल के बड़े भाई श्यामसिंह उसी युद्ध में मारे गये। हाड़ा जाति के कवियों ने लिखा है कि, श्यामसिंह के मरने पर दुर्जनसाल भ्रातृवियोग से बड़े दुःखी हुए थे। वे हाहाकार करते फिरते थे।

दुर्जनसाल सन् १७२४ ई० में कोटे के राजा हुए। उस समय तैमूरवंश के अन्तिम सम्राट् मुहम्मदशाह का दिल्ली पर अधिकार था। दिल्ली के सम्राट् ने दुर्जनसाल को बड़े सम्मान के साथ दिल्ली में बुलाया और खिलत दी। इसी समय हाड़ा जाति के राज्यों में गोवध न होने का आदेश, दिल्ली के बादशाह ने प्रचारित किया था। आमेर नरेश ईश्वरीसिंह ने कोटा राज्य पर बड़े ज़ोर शोर से आक्रमण किया था, परन्तु दुर्जनसाल की वीरता से उनके सभी करतब फिट्ट होगये। वीरश्रेष्ठ दुर्जनसाल ने कई एक प्रदेशों को जीत कर अपने राज्य में मिला लिया। वे बड़े शिकारी थे। वे जब शिकार खेलने बन में जाते, तब उनके साथ उनकी स्त्रियाँ भी जाती थीं। दुर्जनसाल का ब्याह मेवाड़ की राजकन्या से हुआ था।

(टाडस् राजस्थान)

दुर्जय=ये धृतराष्ट्र के पुत्र थे। इन्हींको दुर्योधन ने कर्ण की सहायता के लिये भेजा था और भीमसेन ने इन्हें मार डाला था।

(महाभारत)

दुर्मुख=ये भी धृतराष्ट्र के पुत्र थे। दुर्जय को मार कर भीमसेन ने जब कर्ण का रथ तोड़ कर उसे विवश कर दिया था, तब दुर्योधन ने दुर्मुख को कर्ण की सहायता के लिये भेजा था। परन्तु वह बिचारा रणभूमि में उपस्थित होते ही भीमसेन के द्वारा मारा गया।

(महाभारत)

दुर्योधन=धृतराष्ट्र के ज्येष्ठपुत्र का नाम। महाभारत के युद्ध में ये ही कौरव दल के नेता थे। भीम इनके समानवय के थे। भीम का बल देख कर ये सर्वदा उनसे ईर्ष्या किया करते थे। इसने बाल्यावस्था में भीम को विष पिला कर नदी में छुड़वा दिया था। धृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर को युवराज बनाना चाहा था, परन्तु दुर्योधन के आपत्ति खड़ी करने से राजा का वह विचार कार्य में परिणत न हो सका। दुर्योधन के कहने से अन्ध राजा धृतराष्ट्र ने कुन्ती और पाण्डवों को राजधानी से निकाल कर वारणावत नामक नगर में भेज दिया था। दुर्योधन

वारणावत में पाण्डवों को जला देना चाहता था; परन्तु वह अपनी कुवासना पूरी नहीं कर सका। पाण्डव अपनी रक्षा करने के लिये रात को वारणावत नगर से निकल कर भागे, और पाञ्चाल राज्य में जा कर उपस्थित हुए पाञ्चाल राज्य के राजा द्रुपद थे। महाभारत के समय में पाञ्चाल राज्य दो भागों में बटा था। जिसे उत्तर पाञ्चाल और दक्षिण पाञ्चाल कहते थे। उत्तर पाञ्चाल आज कल का रुहेलखण्ड है। इसकी राजधानी का नाम था अहिच्छत्र। दक्षिण पाञ्चाल गङ्गा का द्वीप था, उसकी प्राचीन राजधानी काम्पिल्य में थी। द्रुपदराज के साथ कौरवों की शत्रुता बहुत ही पुरानी थी। ये दोनों ही बड़े पराक्रमी राज्य थे। द्रुपद की कन्या के साथ पाण्डवों का विवाह होने पर कुरु और पाञ्चाल की शत्रुता और भी बढ़ गयी। इसी कारण बहुत लोग महाभारत युद्ध को कुरु पाञ्चाल युद्ध कहते हैं। उस समय द्रौपदी के ब्याह के लिये स्वयम्बर रचा गया था। उस में अनेक राजा आये थे, युधिष्ठिर आदि भी उसमें छद्मवेश से गये थे। कौरव आदि किसी राजा से लक्ष्यवेध न हो सका, अन्त में छद्मवेशधारी अर्जुन ने लक्ष्यवेध किया और द्रौपदी को पाया।

द्रुपद एक पराक्रमी राजा थे। पाण्डवों का उनसे सम्बन्ध हो गया। भागे हुए पाण्डवों ने एक बड़े सहायक को पा कर धृतराष्ट्र से आधा राज्य माँगा। धृतराष्ट्र ने पाण्डवों को आधा राज्य दे दिया और उनकी राजधानी इन्द्रप्रस्थ में बनवा दी। राज्य पा कर पाण्डवों ने राजसूय यज्ञ करना प्रारम्भ किया। श्रीकृष्ण की सहायता और सलाह से युधिष्ठिर का राजसूय यज्ञ बड़े समारोह से समाप्त हुआ। इससे जल भुन कर दुर्योधन खाक हो गया। उसने अपने मामा शकुनि से सलाह कर के जुआ खेलने के लिये युधिष्ठिर को बुलाया। शकुनि की चालाकी से युधिष्ठिर जुआ में राज्य हार गये और १२ वर्ष वनवास और एक वर्ष अज्ञात वास की भी उन्होंने प्रतिज्ञा की। इसके बाद द्रौपदी को भी दाव पर युधिष्ठिर हार गये। दुःशासन केश पकड़ कर द्रौपदी को सभा में खींच ले आया और उसे नग्न करने की चेष्टा करने लगा, परन्तु श्रीकृष्ण सहायक थे इस कारण द्रौपदी नंगी नहीं की जा सकी। उसी समय दुर्योधन ने द्रौपदी को अपने जंघे पर बैठने के लिये बुलाया था। द्रौपदी पर इन अत्याचारों को होते देख पुरुषसिंह भीम ने प्रतिज्ञा की कि मैं दुःशासन का रक्त पान करूँगा, और दुर्योधन के जंघे को तोड़ डालूँगा। पाण्डवों को १२ वर्ष का वनवास दे कर दुर्योधन बहुत प्रसन्न हुआ। अपना ऐश्वर्य दिखाने के लिये उसने घोषयात्रा भी की थी, परन्तु वह चित्रसेन नामक गन्धर्व के हाथों बन्दी हो गया। महात्मा युधिष्ठिर ने दुर्योधन के बन्दी होने को अपना अपमान समझ कर भीम और अर्जुन को उसके उद्धार के लिये भेजा। युद्ध में चित्रसेन परास्त हुआ। उसने भीमार्जुन के हाथ में सपरिवार दुर्योधन को अर्पित कर दिया। युधिष्ठिर ने आदर के साथ बुला कर उसे अपने पास बिठाया तथा अनेक प्रकार के उपदेश दे कर विदा किया। इस घटना से दुर्योधन को जो कष्ट हुआ वह दुर्योधन ही जान सकता है। पाण्डवों ने मत्स्यदेश के राजा विराट् के यहाँ रह कर एक वर्ष का अपना अज्ञात वास बिताया था। कोई कहते हैं वर्तमान जयपुर ही मत्स्यदेश है, और किसी किसी के मत से मत्स्यदेश गुजरात के समीप था। बहुत लोग कहते हैं कि रंगपुर ज़िला ही प्राचीन मत्स्यदेश है। विराट् के भवन में अज्ञात वास के समय विराट् का साला और उनका सेनापति कीचक भीमसेन द्वारा मारा गया। कीचक के भय से कौरव भी विराट् से शत्रुता नहीं कर सकते थे। कीचक के मरने का संवाद सुन कर दुर्योधन ने विराट् के उत्तर गोगृह पर आक्रमण किया परन्तु अर्जुन से हार कर दुर्योधन घर लौट आये। इसी युद्ध के दिन ही पाण्डवों के अज्ञात वास की अवधि पूरी हो गयी थी। विराट् के साथ पाण्डवों का परिचय हुआ। विराट् के कहने पर अर्जुनपुत्र अभिमन्यु ने उत्तरा से ब्याह किया अब पाण्डवों को दो प्रबल सहायक मिले। एक पाञ्चालराज द्रुपद, और दूसरे

मत्स्यराज विराट् । युधिष्ठिर ने अपना आधा राज्य दे देने के लिये धृतराष्ट्र के यहाँ कहलाया । परन्तु दुर्योधन ने साफ कह दिया कि विना युद्ध के एक सूची की नोक की बराबर भी भूमि नहीं दी जायगी । बीच में पड़ कर श्रीकृष्ण ने झगड़ा मिटा देना चाहा, परन्तु दुर्योधन ने उनकी एक भी बात नहीं सुनी । अतः दोनों ओर से युद्ध होने की तैयारी होने लगी । कौरव पाण्डव दोनों ने श्रीकृष्ण की सहायता माँगी । श्रीकृष्ण ने स्वयं पाण्डवों का साथ दिया, और उनकी सेना ने कौरवों का । अट्ठारह दिनों लों युद्ध हुआ था, दस दिन युद्ध होने के बाद कौरव सेनापति भीष्म मारे गये । पाँच दिन युद्ध होने के बाद कौरव सेनापति द्रोण, अढ़ाई दिन युद्ध के बाद कर्ण और आधा दिन युद्ध कर के कौरव सेनापति शाल्व मारे गये । कौरवदल हार गया, दुर्योधन भाग कर एक तालाव में जा कर लुक गया । ढूँढ़ते ढूँढ़ते भीम वहाँ पहुँचे । भीम के दुर्वाक्यों से उत्तेजित हो कर दुर्योधन तालाव में से निकला । भीम और दुर्योधन का गदा-युद्ध प्रारम्भ हुआ । भीम ने अपनी पहले की हुई प्रतिज्ञा के अनुसार गदा से दुर्योधन के जंघे तोड़ डाले । दुर्योधन अब तब की दशा में वहीं गिर गया । उसको वहीं छोड़ कर पाण्डव अपनी सेना में चले गये । उस समय दुर्योधन से मिलने के लिये अश्वत्थामा वहाँ उपस्थित हुए । दुर्योधन के अनुरोध से अश्वत्थामा ने द्रौपदी के पाँच पुत्रों को मार डाला । यह समाचार दुर्योधन को मिला । दुर्योधन काल की गोद में सदा के लिये सो गया । (महाभारत)

दुर्लभक—कारमीर के एक राजा । इनके पिता का नाम दुर्लभवर्द्धन था और माता का नाम अनङ्गलेखा । कारमीरराज बलादित्य इनके नाना थे । नाना ने अपने दौहित्र दुर्लभक को दत्तक रूप से ग्रहण किया था और उनका नाम प्रतापादित्य रखा था । पिता की मृत्यु के बाद इन्होंने कारमीर का राज्य ग्रहण किया । प्रतापादित्य ने प्रतापपुर नामक एक सुन्दर नगर बसाया था । उस नगर में देश विदेश के व्यवसायी वणिक् आ कर रहा करते थे । उस नगर में अशेष गुणसम्पन्न तथा ऐश्वर्यशाली नोंन नामक वणिक् भी रहा करता था । एक दिन नोंन ने राजा को अपने यहाँ आने के लिये निमन्त्रित किया । राजा उसके घर गये । वहाँ जा कर मणिमय दीप आदि को देख कर राजा को चकित होना पड़ा था ।

एक समय राजा दुर्लभक ने मार्ग से नोंन की पत्नी नरेन्द्रप्रभा को देखा । नरेन्द्रप्रभा ने भी राजा को देखा । देखने ही से उन दोनों में परस्पर प्रेम हो गया । राजा लौट कर घर आये । राजा नरेन्द्रप्रभा की चिन्ता से दिन दिन क्षीण होने लगे । एक ओर राजा का महान् कर्तव्य पालन और दूसरी ओर नरेन्द्रप्रभा के प्रेम का स्वाभाविक आकर्षण—इन दोनों बड़ी विषम समस्याओं का सामञ्जस्य करना, राजा के लिये कठिन काम हो गया ।

राजा की क्षीणता और अस्वस्थ्यता की बात नगर में फैल गयी । महामना नोंन ने भी ये बातें सुनीं । नोंन स्वयं महाराज के समीप उपस्थित हो कर कहने लगे । राजन् ! आप इतना कष्ट क्यों उठाते हैं, धर्मभय से प्राण देना उचित नहीं है । जिस कीर्ति के लोप की आशङ्का से आप प्राण देने के लिये प्रस्तुत हैं, मरने पर उस कीर्ति को कौन सुनने आवेगा । आप मेरी चिन्ता कुछ न करें । मैं आपके लिये प्राण देने को भी प्रस्तुत हूँ तुच्छ उपभोग्य पदार्थों की बात ही क्या है ? मैं प्रसन्नता से नरेन्द्रप्रभा को आपके अर्पण करता हूँ । आप ग्रहण करें। यदि आज्ञा हो तो पास के मन्दिर में आयी हुई नरेन्द्रप्रभा को मैं बुला लाऊँ । नोंन की बातें सुन कर राजा दुर्लभक पहले तो बड़े लज्जित हुए, परन्तु काम के प्रबल प्रलोभन को न रोक सकने के कारण, नरेन्द्रप्रभा को उन्होंने ग्रहण किया । नरेन्द्रप्रभा के गर्भ से राजा के तीन पुत्र, चन्द्रापीड, तारापीड, और मुक्तापीड, उत्पन्न हुए थे । इनको यथाक्रम वज्रादित्य, उदयादित्य और ललितादित्य भी कहते हैं । राजा दुर्लभक ने ५० वर्ष तक राज्य कर के स्वर्ग को प्रस्थान किया । (राजतरङ्गिणी)

दुर्लभवर्द्धन=एक कायस्थरमणी के गर्भ और नागवंशी कर्कोटक के औरस से ये उत्पन्न हुए थे। काश्मीरराज बलादित्य की एक कन्या थी, जिसका नाम अनङ्गलेखा था। एक दिन अनङ्गलेखा को देख कर एक ज्योतिषी ने राजा से कहा—महाराज! आपका जामाता इस राज्य का अधिपति होगा। यह सुन राजा चिन्तित हुए। उन्होंने सोचा कि यदि मैं किसी सामान्य मनुष्य से अपनी कन्या व्याहूँ, तो जामाता राजा भी नहीं हो सकेगा। अतएव बलादित्य ने अनङ्गलेखा का व्याह दुर्लभवर्द्धन से किया। दुर्लभवर्द्धन नीतिज्ञ और विद्वान् थे, अतएव थोड़े ही दिनों में उन्होंने सबके हृदय पर अपना अधिकार जमा लिया। दुर्लभवर्द्धन भाग्यानुसारी बुद्धि से काम करने लगे, उनकी बुद्धिमत्ता देख कर राजा ने उनका नाम प्रज्ञादित्य रखा और धीरे धीरे उनको अधिक सम्पत्ति का मालिक बना दिया। परन्तु राजकन्या का हृदय दुर्लभवर्द्धन की ओर नहीं लगा, वह खङ्ग नामक एक मन्त्री के प्रणय में फँस गयी। खङ्ग भी उसकी ओर झुके। भय, लज्जा आदि त्याग कर दोनों प्रणयी सुख से अपना समय बिताने लगे। एक दिन रात्रि को अनङ्गलेखा के चरित्र की परीक्षा करने के लिये दुर्लभवर्द्धन अन्तःपुर में छिप कर घुसे। वहाँ का जो दृश्य उन्होंने देखा उससे उन्हें क्रोध आना स्वाभाविक था। तथापि नीतिज्ञ दुर्लभवर्द्धन क्रोध रोक कर और मन्त्री खङ्ग के कपड़े पर यह वाक्य "तुम मारने योग्य हो, तथापि मैंने छोड़ दिया" लिख कर बाहर चले आये। उठ कर खङ्ग ने अपने कपड़े को जो देखा, तो उस पर कुछ लिखा हुआ था। उसे पढ़ कर उसके हृदय का भाव एक बार ही बदल गया। उसके हृदय से अनङ्गलेखा का प्रेम दूर हो गया, अब वह दुर्लभवर्द्धन के उपकार करने की चिन्ता में लगा। अन्त में बलादित्य के मरने पर खङ्ग ने अन्य मन्त्रियों को अपने वश में करके दुर्लभवर्द्धन को काश्मीर के राजसिंहासन पर बैठा दिया। उन्होंने अपनी स्त्री का चरित्र-दोष प्रकाशित नहीं किया था। इन्होंने ३५ वर्ष तक राज्यशासन कर परलोकगमन किया। (राजतरङ्गिणी)

दुर्वासा=अत्रि मुनि के पुत्र। अनसूया के गर्भ से ये उत्पन्न हुए थे। स्वयं महादेव ने ही अंश रूप से अनसूया के गर्भ से दुर्वासा रूप में जन्म ग्रहण किया था। दुर्वासा, अपने अत्यन्त क्रोधी होने के कारण प्रसिद्ध हैं। इन्होंने और्व की कन्या कन्दली को व्याहा था। इनके कोप से देवराज इन्द्र लक्ष्मीभ्रष्ट हुए थे। इन्हींके शाप से शकुन्तला ने पति द्वारा परित्यक्ता हो कर अनेक कष्ट उठाये थे। एक समय दुर्वासा गरम गरम खीर खा रहे थे, उस समय उसी खीर से थोड़ी सी निकाल कर उन्होंने श्रीकृष्ण को दी, और उसे अपने सर्वाङ्ग में लगाने के लिये कहा। श्रीकृष्ण ने उसे सर्वाङ्ग में लगाया, परन्तु यह ब्राह्मण का प्रसाद है इस बुद्धि से उसे पैर में नहीं लगाया। यह देख कर दुर्वासा बोले तुमने हमारा उच्छिष्ट सर्वाङ्ग में लगाया है इस कारण तुम्हारा सर्वाङ्ग अभेद्य होगा, परन्तु पैर में नहीं लगाया, अतएव वह अभेद्य नहीं होगा। इसी कारण पैर ही में बाण लगने के कारण श्रीकृष्ण की मृत्यु हुई। कुन्ती की सेवा से प्रसन्न हो कर उसे जो मन्त्र इन्होंने बताया था, उसके प्रभाव से कर्ण तथा पाँच पाण्डव उत्पन्न हुए थे। (महाभारत)

दुष्यन्त=पौरववंशीय एक विख्यात राजा और महाकवि कालिदास कृत अभिज्ञानशाकुन्तल नामक नाटक के नायक। कालिदास ने महाभारत के अन्तर्गत आदिपर्व में लिखी दुष्यन्त और शकुन्तला की कथा को अपनी असाधारण कल्पना और अमृतमयी रचनाप्रणाली से नाटक का रूप दिया है। महाभारत में लिखा है—एक समय राजा दुष्यन्त मृगया खेलने वन में गये। वहाँ वे एक मृग के पीछे दौड़ते दौड़ते मालिनी नदी के तीर पर कण्व मुनि के आश्रम में पहुँचे। मन्त्री और पुरोहित को आश्रम के बाहर ठहरा कर, राजा एकाकी आश्रम में गये। उस समय कण्व वहाँ नहीं थे, वे फल ढूँढ़ने के लिये कहीं बाहर गये हुए थे। राजा का शब्द सुन कर कुटी से एक अत्यन्त सुन्दरी स्त्री बाहर निकली और उसने अर्घ्य पाद्य आदि से अतिथि-सत्कार किया। ऋषि को वहाँ न देख कर राजा ने

शकुन्तला का परिचय पूँछा । जो कण्व से सुना था वही शकुन्तला कहने लगी । उसने कहा—एक समय महर्षि विश्वामित्र की तपस्या से डर कर देवराज ने उनकी क्रिया में विघ्न डालने के लिये मेनका नाम की एक अप्सरा को भेजा था । मेनका पर महर्षि मोहित हुए जप तप छोड़ कर वे मेनका के साथ भोग विलास करने लगे । मेनका के गर्भ रहा । मेनका, यथासमय एक पुत्री उत्पन्न कर और उसे मालिनी नदी के तीर पर रख कर स्वर्ग चली गयी । शकुन्तसमूह (पक्षिगण) हाल की जन्मी उस कन्या को निर्जन वन में पड़ी देख और दयावश हो उसकी रक्षा करने लगे । जब प्रभातकाल महर्षि कण्व मालिनी के तीर पर गये, तब उन्होंने उस कन्या को देखा, और वे उसे उठा कर अपने आश्रम में ले आये । मैं वही कन्या हूँ । महर्षि कण्व को मैं पिता कहती हूँ । शकुन्तों ने मेरी रक्षा की थी इस कारण पिता ने मेरा नाम शकुन्तला रखा है । शकुन्तला का परिचय पा कर राजा ने यह समझ लिया कि यह राजपुत्री है । क्योंकि विश्वामित्र क्षत्रिय राजकुमार थे, उन्होंने अपनी तपस्या से महर्षि पद पाया था । अतः स्वयं राजा ने ही शकुन्तला से गान्धर्व विवाह करने का प्रस्ताव किया । शकुन्तला ने उनसे कण्व के आने तक ठहरने को कहा । तब राजा कहने लगे, शास्त्रों में आठ प्रकार के विवाह लिखे गये हैं । ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस और पैशाच । इन आठ प्रकार के विवाहों में ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर और गान्धर्व विवाह करने का क्षत्रिय को अधिकार है । अतएव इस विषय में दूसरे की सम्मति लेने की आवश्यकता नहीं है । शकुन्तला ने भी शास्त्रसम्मत विवाह करने में आपत्ति नहीं की, परन्तु उसने यह ठहरा लिया, कि उसके गर्भ से उत्पन्न पुत्र ही राजा हो सकेगा । रीति के अनुसार दोनों का गान्धर्व विवाह हुआ । कण्व के आने के पहले राजा उस आश्रम से चल दिये । जाने के समय राजा ने कहा कि तुम्हें यहाँसे ले जाने के लिये आज रात को मेरे मनुष्य आवेंगे । आश्रम में आ कर कण्व ने शकुन्तला के विवाह की बातें सुनीं और सुन कर वे प्रसन्न हुए । शकुन्तला के गर्भ रहा, और यथासमय उसने अत्यन्त सुन्दर एक पुत्र उत्पन्न किया । कुमार के तीन वर्ष के होने पर कण्व ने शास्त्रानुसार उसके जातकर्म आदि संस्कार किये । वह बालक ५ वर्ष की अवस्था में सिंह व्याघ्र आदि को पकड़ कर आश्रम के वृक्षों में बाँध दिया करता था इस कारण तपस्वी लोग उसे सर्वदमन कह कर पुकारते थे । तबसे उस बालक का एक नाम सर्वदमन पड़ा । महर्षि कण्व ने सर्वदमन का अद्भुत पराक्रम देख कर शकुन्तला से कहा " तुम्हारे पुत्र के यौवराज्याभिषेक का समय उपस्थित हुआ है अतएव अब तुम्हारा यहाँ रहना उचित नहीं है । यह कह कर मुनि ने शकुन्तला को हस्तिनापुर दुष्यन्त के पास ले जाने के लिये शिष्यों को आज्ञा दी । कण्वशिष्य सपुत्रा शकुन्तला को राजा के यहाँ पहुँचा कर लौट आवे । परन्तु राजा पहचान नहीं सके । शकुन्तला के सम्बन्ध की कोई भी बात उन्हें स्मरण नहीं आती थी । राजा के मुख से वैसी कठोर बातें सुन कर शकुन्तला ठिठक गयी, मारे लज्जा के वह जड़ के समान खड़ी रह गयी । थोड़ी देर के बाद उसे ज्ञान हुआ, वह भी बड़े कठोर शब्दों में राजा की भर्त्सना करने लगी । इसी प्रकार दोनों में तर्क वितर्क हो रहा था, उस समय देववाणी हुई कि राजन् ! शकुन्तला का कहना सत्य है । यह पुत्र तुम्हारा ही है । तुम शकुन्तला के पुत्र का पालन करो । हम लोगों के कहने से तुम इस लड़के का भरण पोषण करोगे । अतएव इसका नाम भरत होगा । देववाणी सुन कर राजा ने शकुन्तला और उसके पुत्र को ग्रहण किया और राजा अमात्य तथा पुरोहित को सम्बोधित करके कहने लगे—आप लोगों ने इस देवदूत की बातें सुनीं । मैं जानता हूँ कि यह हमारा पुत्र है, परन्तु यों ही यदि मैं इसे रख लेता तो लोग मुझको दोषी ठहराते और यह बालक भी कलङ्कित होता । इसी कारण हमने इतना वादविवाद किया है ।

(महाभारत)

दूलह त्रिवेदी=ये हिन्दी के एक कवि थे और वनपुरा के रहने वाले थे। इन्होंने "कविकुल-कण्ठाभरण" नामक ग्रन्थ सन् १७४६ ई० में लिखा था।

दूलहराय=ढूँढार राज्य के स्थापनकर्ता। ये निपधाधिपति राजा नल के ३३ पुरुषों के पीछे राजा सोढ़ासिंह के पुत्र थे। सोढ़ासिंह के मरने पर उनके भाई ने अपने सुकुमार भतीजे को गद्दी से अलग कर दिया। दूलहराय की माता अपने देवर का ऐसा कठोर अत्याचार देख कर अत्यन्त चिन्तित हुईं, परन्तु वे सामने आती हुई एक दूसरी विपत्ति को देख कर और पुत्र को झोली में बाँध कर राजधानी से बाहिर हुईं। उन्होंने सोचा कि जब यह नृशंस, राज्य लेने के लिये उद्यत हुआ है, तब दूलहराय का प्राण ही क्यों रहने देगा। अतः महारानी कँगालिन के वेप में पुत्र की झोली ले कर चलीं। चलते चलते वे खोहगाँव के पास पहुँचीं। यह स्थान वर्तमान जयपुर से ढाई कोस दूर था। मार्ग की थकावट तथा, भूख प्यास से रानी व्याकुल हो गयी थीं, अतएव वे बच्चे की झोली रख कर फल आदि ढूँढ़ने के लिये गयीं लौट कर उन्होंने देखा कि बच्चा सोया हुआ है और उस पर एक साँप फन की छाया किये खड़ा है। यह देख दुःखिनी रानी पर मानो वज्र गिरा। उनका शरीर काँप उठा। उसी समय एक ब्राह्मण उधर से जाता देख पड़ा। उसने रानी को बहुत समझाया, और कहा आप चिन्तित न हों। आपका पुत्र राजा होगा,रानी ने कहा—भविष्यत् की मुझे कुछ चिन्ता नहीं भविष्य सर्वदा अन्धकार में रहा करता है। इस समय हम लोग भूखे हैं आप ऐसा कोई उपाय बतावें जिससे हमलोगों को भोजन मिले। तब ब्राह्मण ने खोहगाँव का मार्ग बताया। रानी खोहगाँव में गयीं। वहाँ वे मीनाराज के यहाँ दासियों में भर्ती हुईं। एक दिन मीना की रानी की आज्ञा से दासी रानी ने भोजन बनाया। उस भोजन को खा कर मीनाराज लालनसी बहुत सन्तुष्ट हुए और उन्होंने पूँछा कि यह भोजन किसने बनाया है। उस भोजन बनाने वाली परिचारिका का परिचय पाते ही मीनाराज उसको अपनी भगिनी के समान तथा दूलहराय को भानजे के समान रखने लगे। दूलहराय भी मीनाराज का आश्रय पा कर क्षात्रधर्म की शिक्षा प्राप्त करने लगा। उस समय दिल्ली के सिंहासन पर तंवर वंश का अधिकार था। मीनाराज उसके करद राजा थे। जब दूलहराय की अवस्था १४ वर्ष की हुई, तब मीनाराज ने इन्हें कर देने के लिये दिल्ली भेजा।

दूलहराय दिल्ली में पाँच वर्ष तक रहे, उस समय मीना के एक कवि के साथ इनका विशेप परिचय हो गया था। दिल्ली के राजा को देखने से दूलहराय की भी राजा बनने की प्रबल इच्छा उत्पन्न हुई। मीना के कवि के परामर्श से दूलहराय ने मीनाराज लालनसी पर आक्रमण किया, और उनको मार कर वे स्वयं राजा बन बैठे। राजा बन कर दूलहराय निश्चिन्त नहीं बैठ रहे, उन्हें अपना राज्य बढ़ाने की चिन्ता व्यापी। इसी विचार से वे बड़गूजर राजा पर आक्रमण करने के लिये प्रस्थित हुए। बड़गूजर राजा ने इनको अपनी लड़की व्याह दी और इनको अपना उत्तराधिकारी भी बनाया। माची नामक स्थान में नाटू नाम का एक मीनाराज रहा करता था, उस पर भी दूलहराय चढ़ गये। दोनों दलों में युद्ध हुआ। मीनाराज की सेना परास्त हुई। दूलहराय ने उस पर भी अधिकार जमा लिया। माची प्रदेश पर अधिकार कर के दूलहराय ने वहाँ अपनी नयी राजधानी बनवायी और उसका नाम "रामगढ़" रखा। दूलहराय ने अजमेर की राजकुमारी मरोनी के साथ भी व्याह किया था। एक समय राजा दूलहराय किसी देवमन्दिर से दर्शन कर के लौटे आ रहे थे। उस समय मीनाओं का एक बड़ा समूह इन पर टूट पड़ा, इन्होंने भी उत्तर दिया तो सही, परन्तु ये एकाकी इतनी बड़ी सेना का क्या कर सकते थे। इसीसे उस युद्ध में ये मारे गये। (टाडस् राजस्थान)

दूल्हाराम=ये रामसनेही पन्थ के तीसरे गुरु थे। सन् १७७६ ई० में ये हुए थे, और इनका परमपद १८२४ ई० में हुआ। इनके

प्रायः १०,००० सबद और ४००० साखी प्रसिद्ध हैं।

दूषण=लङ्कापति रावण के एक सेनापति का नाम । इसके दूसरे भाई का नाम था खर । रावण का राज्य गोदावरीतीरस्थ दण्डकारण्य तक विस्तृत था। राज्य के प्रान्त भाग की रक्षा करने के लिये खर और दूषण १४ हज़ार सेना ले कर दण्डकारण्य में रहा करते थे। रावण की भगिनी शूर्पणखा भी इसी वन में रहा करती थी। सीता के साथ राम लक्ष्मण जब दण्डकारण्य में रहा करते थे, तब मोहित हो कर शूर्पणखा राम के पास पहुँची । राम ने उसकी नाक कटवा ली । शूर्पणखा रोती हुई खर दूषण के पास पहुँची। खर दूषण ने राम पर आक्रमण किया दूषण पाँच हज़ार सेना का नायक था। इस युद्ध में दूषण आदि सभी मारे गये । (रामायण)

दूहड़=ईडर के राजा आसथान के ज्येष्ठ पुत्र। पिता के परलोकवास होने पर दूहड़ अपने पिता के राज्य के स्वामी हुए। परन्तु उनका हृदय उस राज्य के पाने से तृप्त नहीं हुआ। प्राचीन कन्नौज राज्य पर अधिकार करने की उनकी बड़ी प्रबल इच्छा थी। पिता के राज्य पर बैठ कर दूहड़ अपनी अभिलाषा को पूर्ण करने का प्रयत्न करने लगे। परन्तु उनका प्रयत्न सफल नहीं हुआ। कन्नौज राज्य के उद्धार करने में निष्फलप्रयत्न हो कर दूहड़ ने मंडोर राज्य पर अधिकार जमाने का प्रयत्न किया। इस प्रयत्न में वे केवल असफल ही नहीं हुए किन्तु मारे भी गये । (टाडस् राजस्थान)

दृढ़धनु=विष्णुपुराणवर्णित चन्द्रवंशी राजा सेनजित के तृतीय पुत्र का नाम ।

दृढ़नेमि=ये भी चन्द्रवंशी एक राजा थे। इनके पिता का नाम सत्यधृति था।

(विष्णुपुराण)

दृढ़रथ=ये पुरुवंशी राजा जयद्रथ के पुत्र थे।

दृढ़सेन=ये सुश्रम के पुत्र थे, और पुरुवंश की एक शाखा उपरिचरवसु के वंश में उत्पन्न हुए थे।

दृढ़हनु=ये स्येनजित् के द्वितीय पुत्र थे।

दृढ़ायु=ये पुरूरवा के पाँचवें पुत्र थे।

देव=(१) हिन्दी के एक प्रसिद्ध कवि । सामने गाँव ज़िला मैनपुरी के ये रहने वाले थे। इनका जन्म, संवत् १६६१ में हुआ था। ये हिन्दी-भाषा-काव्य के आचार्य माने जाते हैं । शिवसिंहसरोज के कर्ता को इनकी बनायी ७२ पुस्तकों का पता चला था । उनमें से कुछ ग्रन्थों के नाम ये हैं—" १ प्रेमतरङ्ग, २ भावविलास, ३ रसविलास, ४ रसानन्दलहरी, ५ सुजानविनोद, ६ काव्यरसायनपिङ्गल, ७ अष्टयाम, ८ देवमायाप्रपञ्चनाटक, ९ प्रेमदीपिका, १० सुमिलविनोद, ११ राधिकाविलास"।

(२) इनका दूसरा नाम काष्ठजिह्वा स्वामी था। ये काशी में रहते थे और संस्कृत के बड़े पण्डित थे। एक बार इन्होंने शास्त्रार्थ में अपने गुरु को परास्त कर दिया था । इससे इनको बड़ा कष्ट हुआ । तभी से इन्होंने काठ की जीभ मुँह में बना कर डाल ली। ये पाटी पर लिख कर लोगों से बातचीत करते थे । काशीनरेश महाराज ईश्वरीनारायणसिंह ने इनसे उपदेश लिया था। इन्होंने "विनयामृत" आदि अनेक भाषा के ग्रन्थ बनाये हैं।

देवक=भोजवंशी आहुक के पुत्र। उग्रसेन इनके भाई थे और देवकी उनकी कन्या थी। देवक श्रीकृष्ण के नाना थे।

देवकी=श्रीकृष्ण की माता। (देखो देवक)

देवकीनन्दन शुक्ल=ये मकरन्दपुर ज़िला कानपुर के रहने वाले थे। सं० १८७० में ये उत्पन्न हुए थे। इनकी कविता सरस और मनोहर होती थीं । इनके दो भाई और थे, ये तीनों ही कविता करने में बड़े निपुण थे। इनका बनाया "नखसिख" नामक एक ग्रन्थ है।

देवदत्त=(१) ये हिन्दी के कवि थे। शिवसिंहसरोज में लिखा है कि इनका बनाया ललितकाव्य प्रसिद्ध है। सं० १७०५ में ये विद्यमान थे।

(२) ये भी एक हिन्दी के कवि थे । सं० १७७२ में इनका जन्म हुआ था। इनका बनाया "योगतत्त्व" नामक एक ग्रन्थ है ।

देवयानी=दैत्यगुरु शुक्राचार्य की कन्या और नहुषपुत्र राजा ययाति की स्त्री। ब्राह्मण की कन्या

हो कर इन्होंने क्षत्रिय से ब्याह किया था। दैत्यराज वृषपर्वा की कन्या शर्मिष्ठा के साथ देवयानी की मित्रता थी। एक समय दोनों अपनी सहेलियों के साथ स्नान कर रही थीं। वायु के चलने से तट पर रखे हुए सभीके वस्त्र मिल गये। स्नान के अन्त में शर्मिष्ठा ने देवयानी का वस्त्र पहन लिया, फिर क्या था, दोनों में कलह होने लगा। शर्मिष्ठा ने देवयानी के पिता को असुरों का भाट बतलाया, और देवयानी को कुए में गिरवा कर वह स्वयं घर चली गयी, संयोगवश राजा ययाति वहाँ पहुँच गये। राजा ययाति रमणी का आर्त नाद सुन कर उस कुए के पास गये और देवयानी को निकाला। कुए से निकल कर देवयानी अपने घर नहीं गयी। उन्होंने किसीके द्वारा अपने पिता को अपनी दुर्दशा का हाल और अपना सङ्कल्प कहला भेजा। दैत्यगुरु ने अपना अभिप्राय दैत्यराज वृषपर्वा से कहा। वृषपर्वा ने उनसे अपने अभिप्राय को बदल देने के लिये कहा, तब शुक्राचार्य बोले कि तुम देवयानी को प्रसन्न करो, यदि वह तुम्हारे नगर में रहना स्वीकार करे, तो मुझे भी स्वीकृत है। वृषपर्वा देवयानी के समीप जा कर उसका अनुनय करने लगा। देवयानी बोली—यदि तुम्हारी कन्या शर्मिष्ठा हज़ार दासियों के साथ मेरी दासी होना स्वीकार करे, और हमारे ब्याह के बाद भी हमारे पति के घर दासी बन कर ही जाय तो मैं अपना सङ्कल्प छोड़ सकती हूँ। दैत्यराज ने देवयानी का कहना स्वीकार किया। देवयानी घर लौट आयी, शर्मिष्ठा भी हज़ार दासियों को ले कर शुक्राचार्य के घर देवयानी की सेवा करने के लिये गयी। एक समय देवयानी अपनी दासियों के साथ वन में घूम रही थी। उस समय राजा ययाति वहाँ आये। देवयानी ने उनसे विवाह करने का प्रस्ताव किया, शुक्राचार्य ने भी इस विवाह में अपनी सम्मति दी। उसी वन में देवयानी और राजा ययाति का ब्याह हुआ। दैत्यराज के दिये दहेज़ तथा देवयानी को ले कर ययाति अपने नगर को लौट गये। कुछ दिन बीतने पर ययाति के औरस और देवयानी के गर्भ से यदु और तुर्वसु नामक दो पुत्र तथा दासी शर्मिष्ठा के गर्भ से द्रुह्यु, अनु और पुरु नामक तीन पुत्र उत्पन्न हुए। देवयानी ने सोचा कि राजा अधर्म कर रहे हैं, क्योंकि उन्होंने दासी के गर्भ से अधिक पुत्र उत्पन्न किये हैं। देवयानी ने अपने पति का यह व्यवहार अपमानजनक समझ कर पिता से कहा। पिता ने शाप दिया—तुमने जो अधर्माचरण किया है इस कारण तुमको अकाल ही में वार्द्धक्यग्रस्त होना पड़ेगा। राजा ययाति ने शुक्राचार्य से बहुत प्रार्थना की कि महाराज, शापनिवारण कीजिये। तब शुक्राचार्य ने कहा, हमारा शाप व्यर्थ नहीं हो सकता। हाँ, यदि तुम्हारा कोई पुत्र स्वेच्छा से वार्द्धक्य लेना स्वीकार करे, तो तुम युवा हो सकते हो। शर्मिष्ठागर्भज पुरु के अतिरिक्त दूसरे किसीने भी वार्द्धक्य लेना स्वीकार नहीं किया। अतएव राजा ययाति ने पुरु को राज्य दे कर और पुत्रों को राज्य से वर्जित किया।

देवल=असित मुनि के पुत्र और व्यासदेव के शिष्य। रम्भा के शाप से ये अष्टावक्र हो गये थे।

देववर्णिनी=भरद्वाज मुनि की कन्या और विश्रवा की स्त्री। इसके गर्भ से वैश्रवण नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ था। वैश्रवण का दूसरा नाम कुबेर है। ये देवताओं के धनाध्यक्ष हैं। पहले लङ्कापुरी इनकी राजधानी थी, परन्तु सौतेले भाई रावण के अनेक अत्याचारों के कारण इन्होंने हिमालय के उत्तर स्थित अलकापुरी को अपनी राजधानी बनायी।

देवसेना=सावित्री के गर्भ से उत्पन्न प्रजापति ब्रह्मा की कन्या। इनका दूसरा नाम षष्ठी है। ये सोलह मातृकाओं में श्रेष्ठ तथा शिशुपालन करने वाली हैं। देवसेनापति कार्त्तिकेय के साथ इनका ब्याह हुआ था। इनकी एक बहिन थी, जिसका नाम था दैत्यसेना।

देवहूती=स्वायम्भुव मनु की कन्या और कर्दम प्रजापति की स्त्री। प्रसिद्ध सांख्यदर्शनरचयिता महर्षि कपिल इन्हींके गर्भ से उत्पन्न हुए थे। इन्हींसे महर्षि कपिल ने शास्त्राध्ययन किया था, इन्हींके ज्ञानगर्भ उपदेशों के बल ही से

संसार को ज्ञान की शिक्षा देने में महर्षि कपिल समर्थ हो सके थे। (हरिवंश)

देवा कवि=ये हिन्दी के एक कवि थे, और राजपूताने के रहने वाले कहे जाते थे। सं० १८५५ में ये उत्पन्न हुए थे। ये कवि कृष्णदास पावहारी गलताजी वाले के शिष्य थे और उदयपुर के पास एक मन्दिर में चतुर्भुजस्वामी के पुजारी थे।

देवी कवि=ये हिन्दी के कवि थे और इनकी बनायी शृङ्गाररस की कविता बहुत उत्तम होती थी।

देवीदत्त=एक हिन्दी के कवि। शान्तरस तथा सामयिक कवितायें इनकी अच्छी होती थीं।

देवीदास=ये हिन्दी के कवि और बुन्देलखण्डी थे। सं० १७१२ में ये उत्पन्न हुए थे। इन्होंने अनेक ग्रन्थ बनाये हैं। यादववंशी करौली के महाराज भैया रतनसिंहजी की सभा में थे १७४२ संवत् में गये और तबसे मरण पर्यन्त वहीं रहे। उन्हींके नाम पर इन्होंने "प्रेमरत्नाकर" नामक एक ग्रन्थ की भी रचना की है। इनके नीतिसम्बन्धी दोहे बहुत सुन्दर हैं।

देवीदीन वन्दीजन=ये कवि रसाल कवि बिलग्रामी के भानजे थे। इनके बनाये नखसिख और रसदर्पण दो ग्रन्थ हैं।

देवी वन्दीजन=ये कवि सं०१७५० में उत्पन्न हुए थे। सूरसागर आदि ग्रन्थों को इन्होंने हास्य रस में बनाया है।

देवीराम=ये शान्तरस के कवि थे। सं० १७५० में उत्पन्न हुए थे, इनके काव्य उत्कृष्ट नहीं हैं।

दैत्यसेना=प्रजापति की कन्या और देवसेना की भगिनी। केशी नामक दानव ने इसे बलपूर्वक व्याहा था। (महाभारत)

द्युमत्सेन=शाल्व देश के एक राजा का नाम। इनके पुत्र का नाम सत्यवान् और पुत्रवधू का नाम सावित्री था। किसी कारण से द्युमत्सेन अन्धे हो गये। कतिपय दुष्टों ने मिल कर इन्हें राज्य से अलग कर दिया। राज्यभ्रष्ट हो कर राजा द्युमत्सेन महारानी शैव्या और पुत्र सत्यवान् को ले कर वन में रहने लगे। एक समय मद्र देश के राजा उस वन में गये, और उन्होंने अपनी कन्या सावित्री उनके पुत्र सत्यवान् को व्याह दी। सत्यवान् अल्पायु थे, थोड़े ही दिनों में उनकी आयु पूरी हो गयी। सावित्री ने यमराज को अपने पातिव्रत्य से वश में कर के उनसे कतिपय वर पाये थे। उन्हीं वरों के प्रभाव से राजा द्युमत्सेन को आँखें मिल गयीं और राज्य भी मिल गया, तथा सत्यवान् पुनः जी उठे। द्युमत्सेन ने यथा समय सत्यवान् को राज्य दे कर स्त्री के साथ वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण किया।

(महाभारत)

द्राविड़ राज्य=चोल देश के दक्षिण द्राविड़ राज्य है। चीनी परिव्राजक हुएनत्संग ने लिखा है—द्राविड़ राज्य की परिधि एक हज़ार मील की है। उसकी राजधानी का नाम काञ्चीपुर है। काञ्चीपुर की परिधि पाँच माइल थी। वर्तमान काल में "पालार" नदी के तीर पर जो काञ्चीवरम् नामक नगरी देखी जाती है वही प्राचीन काञ्चीपुर की स्मृति है। द्राविड़ राज्य के उत्तर कोङ्कण और दक्षिण में मदुरा आदि राज्यों का वर्णन पाया जाता है। इन्हीं वर्णनों के आधार पर कानिंहम ने द्राविड़ राज्य की एक सीमा निश्चित की है। वे कहते हैं—कुन्दपुर से ले कर कादु और त्रिपती होते हुए पूलिकट नामक सरोवर तक एक रेखा खींचने से द्राविड़ राज्य के पश्चिम की सीमा जानी जा सकती है। कालीकट से कावेरी नदी के मुँहाने तक दूसरी रेखा खींचने से दक्षिण की सीमा बनती है। चीनयात्री जिस समय काञ्ची गये थे उस समय वहाँ कई सौ बौद्धों के सङ्घाराम थे, उनमें दस हज़ार बौद्ध संन्यासी रहा करते थे। हुएनत्सङ्ग काञ्ची से सिंहल जाने के लिये प्रस्तुत थे, परन्तु उस समय सिंहल में राष्ट्रविप्लव था। इस कारण वे वहाँ नहीं जा सके। उस समय सिंहल से तीन सौ संन्यासी आये थे, और सिंहल के राजा की हत्या की बात उन्होंही ने प्रचारित की थी, हिसाब से देखा गया है कि सन् ६४६ ई० के जुलाई महीने में हुएनत्सङ्ग काञ्चीपुर में गये थे। सिंहल के राजा "गुणामुगालान" सन् ६३६ ई० में मारे गये थे। राजा की मृत्यु के बाद ही से सिंहल में अशान्ति का स्रोत बह रहा था, अतएव चीनी परिव्राजक की सिंहल-

यात्रा रुक गयी। हुएनत्सङ्ग ने लिखा है—द्राविड़ राज्य की भूमि उपजाऊ है, वहाँ उत्तम रीति से खेती होती है। वहाँ के रहने वाले साहसी सत्यवादी सज्जन और विद्यानुरागी होते हैं। द्राविड़ देश के वासी मध्यदेश की भाषा बोलते हैं। एक समय द्राविड़ राज्य कहने से विन्ध्यपर्वत के दाक्षिणस्थ देश द्राविड़, कर्णाट, गुर्जर, आन्ध्र और तैलङ्ग—ये पाँच देश समझे जाते थे। कहीं कहीं तैलङ्ग के स्थान में महाराष्ट्र देश द्राविड़ राज्य के अन्तर्गत माना गया है। द्राविड़ देश साधारणतः तामिल देश कहा जाता है, वहाँ की प्रचलित भाषा तामिल है। बङ्गोपसागर के दक्षिण भाग से कुमारिका तक समस्त दाक्षिणात्य के पूर्व भाग में किसी समय तामिलभाषा बोली जाती थी। इसी कारण समस्त तामिलभाषाभाषी देश द्राविड़ देश के नाम से पुकारा जाता था। कलिङ्ग, आन्ध्र, चोल, कार्णाट आदि जो जो राज्य गौरवशाली हुए उनके साथ द्राविड़ का नाम मिला दिया जाता था, यही कारण है कि द्राविड़ की राजधानी कहीं काञ्चीपुर लिखा मिलती है और कहीं राजमहेन्द्री। जिस प्रकार बङ्ग देश में भिन्न भिन्न समयों में अनेक राज्यों का अभ्युदय हुआ था, उसी प्रकार द्राविड़ देश में तत्तत् समय में अनेक राज्यों के अभ्युदय होने का प्रमाण पाया जाता है। इतिहास की आलोचना से द्राविड़ राज्य के विषय में इतना ही पता चला है।

द्रुपद=चन्द्रवंशी पृषत नाम के राजा का पुत्र। राजा पृषत के साथ भरद्वाज ऋषि की मित्रता थी। पृषत के पुत्र द्रुपद और भरद्वाज के पुत्र द्रोण दोनों समवयस्क थे। द्रुपद जब तब भरद्वाज के आश्रम पर जा कर द्रोण के साथ खेला करते थे। इस प्रकार द्रुपद और द्रोण में भी बन्धुता हो गयी। कुछ दिनों के बाद, राजा पृषत के मरने पर द्रुपद उत्तर पाञ्चाल के राजा हुए। महाभारत के समय में पाञ्चाल देश के दो भाग थे, उत्तर पाञ्चाल और दक्षिण पाञ्चाल। वर्तमान रुहेलखण्ड उत्तर पाञ्चाल कहा जाता था उसकी राजधानी का नाम अहिच्छत्र था। दक्षिण पाञ्चाल की राजधानी काम्पिल्य नामक नगर में थी। भरद्वाज के मरने पर द्रोण तपस्या करने लगे। द्रुपद राजा हो कर द्रोण की मैत्री भूल गये, द्रोण द्रुपद के यहाँ आये और उन्होंने पुरानी बन्धुता का स्मरण भी दिलाया। द्रुपद ने दरिद्र ब्राह्मण के साथ मैत्री रखना अनुचित समझा। कुछ दिनों के बाद द्रोण कुरु पाण्डव को अस्त्रशिक्षा देने के लिये नियत हुए। द्रुपद के अपमान को द्रोण भूले हुए नहीं थे। कौरव पाण्डवों को अस्त्रविद्या में निपुण बना कर द्रोण ने अर्जुन को आज्ञा दी कि द्रुपद को क़ैद कर के हमारे समीप ले आओ। द्रोणाचार्य ने अस्त्रशिक्षा देने के पहले अर्जुन से इसके लिये प्रतिज्ञा करा ली थी। अर्जुन सचिवों के साथ द्रुपद को क़ैद कर के ले आये। द्रोण ने अपना अपमान स्मरण करा कर उनसे मैत्री की, परन्तु यह मैत्री ज़बरदस्ती की हुई। इस मैत्री से द्रुपद ने अपना घोर अपमान समझा और द्रोणहन्ता पुत्र प्राप्त करने का सङ्कल्प किया। किस प्रकार द्रोणहन्ता पुत्र होगा इसकी चिन्ता वे करने लगे। गङ्गा के किनारे याज और उपयाज नामक दो स्नातक ब्राह्मण रहते थे। द्रुपद ने बड़े परिश्रम से उन्हें बुला कर अपना पुरोहित बनाया और उन्हींके द्वारा एक यज्ञ कराया। उस यज्ञ से धृष्टद्युम्न नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ, और याज्ञसेनी नामक एक कन्या। द्रौपदी काली थी इस कारण उसको कृष्णा कहते थे। महाभारत के युद्ध में द्रोण के हाथों द्रुपद मारे गये, परन्तु धृष्टद्युम्न ने द्रोण को मारा। द्रुपद का एक नपुंसक पुत्र शिखण्डी था, जिसके द्वारा भीष्म पितामह की मृत्यु हुई।

(महाभारत)

द्रुह्यु=राजा ययाति के औरस और दैत्यराज वृषपर्वा की कन्या शर्मिष्ठा के गर्भ से इनकी उत्पत्ति हुई थी। इन्होंने भी ययाति का वार्द्धक्य लेना अस्वीकार किया था। इनके पुत्र का नाम बभ्रु था। (विष्णुपुराण)

द्रोण=भरद्वाज ऋषि के पुत्र। भरद्वाज का आश्रम गङ्गा के किनारे था। एक समय महर्षि भरद्वाज गङ्गास्नान करने जा रहे थे, वहाँ

घृताची नाम की कन्या को देख कर वे कामार्त हो गये। उस समय उनका रेतस्खलन हुआ जिसे उन्होंने द्रोण नामक यज्ञपात्र में रख दिया। उस द्रोण से एक पुत्र का जन्म हुआ। महर्षि ने उसका नाम द्रोण रखा। भरद्वाज ने अग्निवेश्य नामक ऋषि को आग्नेयास्त्र की शिक्षा दी थी। द्रोण ने उन्हीं अग्निवेश्य नामक ऋषि से धनुर्वेद का अध्ययन किया था। अग्निवेश्य ने गुरुपुत्र और अपने शिष्य द्रोण को आग्नेयास्त्र की भी शिक्षा दी थी। पूर्वकाल में अनेक प्रकार के आग्नेयास्त्रों का युद्ध में उपयोग किया जाता था। रामायण और महाभारत में भी नालीक यन्त्र का उल्लेख पाया जाता है। "नालीकैस्ताडयामास" (रामायण) नालीक यन्त्र के आकार आदि देखने से स्पष्ट मालूम होता है कि आज कल की बन्दूक और नालीक यन्त्र, दोनों एक ही हैं।

पहले तुलागुडा नामक एक और आग्नेयास्त्र यन्त्र था, यह तुला के आकार का बनता था। इससे गोले बरसाये जाते थे, वह अग्नि के बल से चलता था, उससे वायु तथा मेघध्वनि के समान भयङ्कर शब्द निकलता था और वह चक्र सहित होता था—

"तथैवासनयश्चैव चक्रयुक्तास्तुलागुडाः।
वायुस्फोटाः सनिर्घाता महामेघस्वनास्तथा॥"
(महाभारत)

ऊपर का वर्णन पढ़ने से तुलागुडा और आज कल की तोपें, दोनों एक ही हैं ऐसा समझने का प्रमाण मिल जाता है।

परन्तु ऐसे अस्त्रों से देवता और आर्य घृणा करते थे, क्योंकि ऐसे अस्त्रों के युद्ध में वे अपना कुछ भी पुरुषार्थ नहीं दिखा सकते थे। ऐसे अस्त्रों को वे कूटयुद्ध के साधन समझते थे। उस समय कूटयुद्ध बहुत निषिद्ध समझा जाता था। जिस युद्ध में शारीरिक बल का परिचय पाया जाय, वही युद्ध उस समय उत्तम समझा जाता था। वैशम्पायन ने जनमेजय से कहा है—राजन्! कलिकाल में पौरुषहीन अधार्मिक राजाओं के समय में हमारे कहे गुलिकानिक्षेपक, प्रस्तरक्षेपक, यन्त्र और अन्यान्य कृत्रिम यन्त्रसमूह कूटयुद्ध के उपकरण होंगे। ज्यों ज्यों अधर्म बढ़ता जायगा, उतना ही अधिक कूटयुद्ध के उपयोगी शस्त्रों का आश्रय लिया जायगा—

"यन्त्राणि लोहसीसानां गुलिकाक्षेपकानि च।
तथा चोपलयन्त्राणि कृत्रिमाण्यपराणि च॥
कूटयुद्धसहायानि भविष्यन्ति कलौ नृप।
अधर्मवृद्ध्या चैतानि भविष्यन्त्युत्तरोत्तरम्॥"

जो समझते हैं कि ईसा के पहले बारूद का प्रचार नहीं था, उन्हें इन बातों पर ध्यान देना चाहिये।

प्राचीनकाल म कूटयुद्ध करना निन्दित समझा जाता था। इस कारण नालीकादि यन्त्र की ओर उनकी उपेक्षा थी परन्तु क़िले आदि की रखवाली के लिये इनका उपयोग किया जाता था। रामायण में रावण के दुर्ग का वर्णन और महाभारत में इन्द्रप्रस्थ और द्वारका के दुर्गवर्णनों का पाठ करने से इसका पता चलता है।

द्रोण और द्रुपद में मित्रता थी परन्तु वह मित्रता किसी कारण से टूट गयी (देखो द्रुपद) द्रोण ने अपने पिता की आज्ञा से शरद्वान् की कन्या कृपी को ब्याहा था। कृपी के गर्भ से अश्वत्थामा का जन्म हुआ था। जन्म के समय अश्वत्थामा ने घोड़े के समान घोर नाद किया था। इस कारण उनका नाम अश्वत्थामा पड़ा था। महेन्द्र पर्वत पर जा कर द्रोण ने भार्गव परशुराम से अस्त्रविद्या सीखी थी और वे उनसे उत्तम उत्तम अस्त्र ले आये थे। अर्जुन ने जब गुरुदक्षिणा लेने के लिये द्रोण से प्रार्थना की, तब द्रोण बोले—देखो अर्जुन! जब कभी मैं तुमसे युद्ध करने लगूँ तब तुम भी युद्ध ही से उत्तर देना कुछ सङ्कोच न करना। अर्जुन की इस प्रतिज्ञा ही को द्रोण ने गुरुदक्षिणा में लिया। यही कारण है कि अर्जुन ने द्रोण के साथ महाभारत के युद्ध में घोर संग्राम किया था, नहीं तो द्रोण के सबसे अधिक प्रिय शिष्य अर्जुन ऐसा कभी न करते। महाभारत के युद्ध में अर्जुन जब द्रोण के साथ युद्ध कर रहे थे तब अश्वत्थामा की मृत्यु का संवाद

सुन कर द्रोण अचेत हो गये, उसी समय धृष्टद्युम्न ने द्रोण का सिर काट डाला।

(महाभारत)

द्रौपदी=पाञ्चालराज द्रुपद की यज्ञवेदी से उत्पन्न कन्या। इसका वर्ण काला था—इस कारण इसको कृष्णा भी कहते हैं। स्वयम्बरसभा में लक्ष्यभेद कर के अर्जुन इसको ले आये थे और पाँचो भाइयों ने मिल कर इसको व्याहा था। ये अपने पतियों के साथ वन वन घूमी थीं। अज्ञात वास के समय विराट के यहाँ ये सैरिन्ध्री (दासी) बन कर रही थीं। दुर्योधन और दुःशासन ने सभा में इनका अपमान किया था, जिसका बदला भीम ने रण में चुकाया। महाभारत युद्ध के अन्त में इन्होंने कुछ दिन अपने पतियों के साथ बिताये थे। महाप्रस्थान के समय ये भी अपने पतियों के साथ चली थीं परन्तु सबसे पहले ये ही हिम से गली थीं।

(महाभारत)

द्वारकादास=शेखावाटी के एक राजा का नाम। ये खण्डेलाराज गिरिधरराय के बड़े पुत्र थे। पिता के मरने के बाद ये उनके सिंहासन पर विराजे। परन्तु पिता के सिंहासन पर बैठने के थोड़े ही दिनों बाद इन्हें एक बड़ी विपत्ति में फँसना पड़ा। शेखावत सम्प्रदाय के आदिपुरुष नूनकरण थे। उन्हींके वंशधर जो उस समय मनोहर-पुर के अधीश्वर थे, उन्होंने अपनी स्वाभाविक नीचता के वश-वर्ती हो कर इन्हें उस विपत्ति में फँसाया था। दिल्ली के बादशाह एक सिंह पकड़ लाये। प्रचलित रीति के अनुसार उन्होंने उस सिंह से युद्ध करने के लिये विज्ञापन निकाला। इस विज्ञापन के निकलते ही मनोहर-पुर के राजा ने बादशाह से कहा—हमारी जाति के राय-सलोत द्वारकादास जो प्रसिद्ध वीर नाहरसिंह के शिष्य हैं वे ही इस सिंह से लड़ सकते हैं। बादशाह ने सिंह से लड़ने के लिये द्वारकादास को आज्ञा दी। द्वारकादास मनो-हर-पुर-पति की चालाकी ताड़ तो गये, परन्तु उन्होंने बादशाह की आज्ञा का बड़ी धीरता से पालन किया। मैदान दर्शकों से भर गया, द्वारकादास भी स्नान कर के और पूजा की सामग्री ले कर वहाँ उपस्थित हुए। द्वारकादास ने जा कर सिंह के टीका लगा दिया और उसके गले में माला पहना दी, तदनन्तर अपने आसन पर धीर भाव से बैठ कर वे पूजा करने लगे। द्वारकादास के आचरण को देख लोग विस्मित हो रहे थे। मनोहर-पुर के राजा मन ही मन प्रसन्न हो रहे थे। इसी समय सिंह द्वारकादास के पास जा कर उनका शरीर सूँघने लगा। पुनः जब बादशाह ने बुलाया, तब द्वारकादास वहाँ से उठ कर बादशाह के समीप चले गये। बादशाह ने समझा कि अवश्य ही यह दैवीशक्ति से बलवान् हैं। प्रसन्न हो कर बादशाह ने द्वारका-दास से इच्छानुसार माँगने के लिये कहा। द्वारकादास ने यही माँगा कि आज से किसीको ऐसी विपत्ति में न फँसाना।

अन्त में द्वारकादास खाँजहान के हाथ से मारे गये। कहते हैं खाँजहान और द्वारकादास दोनों परममित्र थे। एक समय बादशाह किसी कारण से खाँजहान से अप्र-सन्न हुए और द्वारकादास को उन्होंने कहला भेजा कि खाँजहान को जीता हुआ या मार कर मेरे यहाँ ले आवो। इस आज्ञा को सुन कर द्वारकादास को बड़ा कष्ट हुआ, उन्होंने खाँजहान से कहला भेजा कि इस घृणित कार्य को सम्पन्न करने का भार मुझ पर रखा गया है, अतएव आप स्वयं बादशाह के यहाँ जा कर आत्मसमर्पण करें या यहाँ से कहीं भाग जायँ। खाँजहान ने ऐसा करना अनुचित समझा। दोनों वीर संग्रामक्षेत्र में जा कर लड़ने लगे, एक दूसरे के प्रहार से दोनों ही मर गये।

(टाडस् राजस्थान)

द्विविद=एक वानर का नाम। यह नरकासुर का मित्र था। अतएव नरकासुर के मारे जाने पर इसने उत्पात करना प्रारम्भ किया। यह नगर ग्राम आदि को नष्ट भ्रष्ट कर उच्छृङ्खलों के समान घूमने लगा। एक दिन बलभद्र,

रैवत उद्यान में स्त्रियों के साथ क्रीड़ा करते थे, द्विविद वहाँ पहुँचा और उपद्रव करने लगा। तब बलदेव जी ने इसे मार डाला।
(विष्णुपुराण)

द्वैपायन=(देखो कृष्णद्वैपायन)

ध

धनञ्जय=(१) अर्जुन का एक नाम। उत्तर-कुरु जीतने से अर्जुन का नाम धनञ्जय पड़ा था।

(२) संस्कृत के एक कवि। ये भोजराज के पितृव्य धारानरेश मुञ्ज की सभा के पण्डित थे। इनका बनाया दशरूपक नाम का ग्रन्थ प्रसिद्ध है। उस ग्रन्थ की समाप्ति में लिखा है—

"विष्णोः सुतेनापि धनञ्जयेन विद्वन्मनोरागनिबद्धहेतुः।
आविष्कृतं मुञ्जमहीशगोष्ठीवैदग्ध्यभाजा दशरूपमेतत्॥"

जिससे विदित होता है कि इनके पिता का नाम विष्णु था और ये मुञ्ज के समकालीन और उनके सभासद् थे। भोजराज का समय ग्यारहवीं सदी का प्रथम भाग माना गया है। मुञ्ज भोज के पितृव्य थे इस कारण इनका समय भोजराज के समयानुसार दसवीं सदी का अन्त मानना होगा, इस हिसाब से धनञ्जय का भी वही समय हुआ। इनके समकालीन धनिक पद्मगुप्त हलायुध आदि कवि थे। धनिक धनञ्जय के भाई थे, क्योंकि उन्होंने भी अपने पिता का नाम विष्णु लिखा है। पद्मगुप्त नवसाहसाङ्क नामक काव्य के रचयिता हैं। हलायुध प्रसिद्ध कोषकार हैं। मल्लिनाथ आदि प्रसिद्ध टीकाकारों ने इनको स्मरण किया है। परन्तु यह निश्चय नहीं किया जा सकता कि कोषकार हलायुध और ये हलायुध दोनों एक हैं या भिन्न भिन्न हैं। दशरूपक साहित्य का ग्रन्थ है।

धनपति=(१) कुबेर का नामान्तर, क्योंकि कुबेर देवताओं के धनाध्यक्ष हैं।

(२) देहस्थित वायुविशेष। यह वायु ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न हुआ था और उन्हींकी आज्ञा से इसने शरीर धारण किया था।
(वामनपुराण)

धनसिंह=हिन्दी का एक कवि। संवत् १७११ में ये उत्पन्न हुए थे, और मौरावाँ ज़िला उन्नाव के रहने वाले थे। ये जाति के भाट थे और निपुण कवि थे।

धनिक=ये विष्णु कवि के पुत्र और धनञ्जय के भाई थे। इन्होंने धनञ्जय रचित दशरूपक पर "दशरूपावलोक" नाम की एक टीका लिखी है।

धनीराम कवि=ये बनारस के रहने वाले थे। सं० १८८८ में इनका जन्म हुआ था। काव्य-प्रकाश की भाषा और रामचन्द्रिका की टीका इन्होंने बनायी है।

धन्वन्तरि (१)=महाराज विक्रम की सभा के नवरत्नों में इनका नाम पहले लिखा मिलता है। समुद्रमन्थन के समय जो चतुर्दश रत्न निकले हैं उनमें अमृत-कलश-हस्त धन्वन्तरि का भी उल्लेख पाया जाता है। पुराणों में धन्वन्तरि काशिराज नाम से प्रसिद्ध हैं। एक सुश्रुत के गुरु धन्वन्तरि का पता चलता है। काशी में वृद्धकाल नामक महादेव के पास धन्वन्तरिकूप आज भी धन्वन्तरि का स्मारक बना हुआ है। प्रवाद है कि वैद्य धन्वन्तरि परलोक सिधारते समय गुणकारी औषधियों की झोली इसी कूप में छोड़ गये। अतएव उस कूप का जल आज भी आरोग्यकारी समझा जाता है। परन्तु विक्रम के नवरत्नों में के धन्वन्तरि वैद्य नहीं थे। इनका बनाया कोई ग्रन्थ अभी तक नहीं मिला है। इनके समय के विषय में कुछ कहने की आवश्यकता ही नहीं है, क्योंकि छठीं सदी के विक्रम के सभारत्न थे।

(२) देववैद्यविशेष, समुद्रमन्थन के समय ये उत्पन्न हुए थे। दुर्वासा के शाप से इन्द्र के श्रीभ्रष्ट होने पर ब्रह्मा के आदेश से देवताओं ने समुद्रमन्थन कर के लक्ष्मी का उद्धार किया। उसी समुद्रमन्थन के समय धन्वन्तरि अमृत-कलश हाथ में ले कर निकले थे, और देवताओं के वैद्य नियत किये गये।

हरिवंश में धन्वन्तरि की उत्पत्ति और प्रकार से लिखी है। समुद्रमन्थन से उत्पन्न हो कर इन्होंने विष्णु से प्रार्थना की कि-प्रभो! मैं आपका पुत्र हूँ, आप कृपा कर मेरे लिये यज्ञ-

भाग विधान करें, और हमारे रहने का स्थान निश्चित कर दें। विष्णु बोले—वत्स! यज्ञभाग देवताओं में बट गया है, अब मैं इस विषय में कुछ भी नहीं कर सकता। इस जन्म में तुम देवपुत्र हुए हो, दूसरे जन्म में तुम्हारी बड़ी प्रसिद्धि होगी। गर्भ ही में तुमको अणिमादि सिद्धि प्राप्त होंगी और तुम उसी शरीर से देवत्व प्राप्त कर सकोगे। तुम्हारे द्वारा आयुर्वेद के आठ भाग होंगे। यह कह कर विष्णु अन्तर्हित हो गये।

भावप्रकाश में लिखा है—मर्त्यलोक के मनुष्यों का कष्ट देख कर इन्द्र ने स्वर्गीय वैद्य धन्वन्तरि को मर्त्यलोक में भेजा। धन्वन्तरि ने इन्द्र से आयुर्वेद का अध्ययन किया, और दिवोदास काशिराज के रूप से भूमण्डल पर अवतीर्ण हुए। इनके बनाये ग्रन्थ का नाम "धन्वन्तरि-संहिता" है।

धर्म=ब्रह्मा के दक्षिण अङ्ग से इनकी उत्पत्ति हुई है। वराहपुराण में इनकी उत्पत्ति के विषय में लिखा है—ब्रह्मा सृष्टि करने की इच्छा कर के अत्यन्त चिन्तित हुए, उसी समय ब्रह्मा के दक्षिण अङ्ग से एक पुरुष उत्पन्न हुआ। उसके कानों में श्वेत कुण्डल और गले में श्वेत माला थी। ब्रह्मा ने उस मनुष्य से कहा—तुम चार पैर वाले वृषभ के आकार के हो। तुम सबसे प्रधान हो कर प्रजापालन करो। धर्म सत्ययुग में चार पैर से, त्रेता में तीन पैर से, द्वापर में दो पैर से और कलि में एक पैर से प्रजा की रक्षा करता है। गुण, द्रव्य, क्रिया और जाति—ये ही चार धर्म के पैर हैं। वेदों में धर्म को त्रिशृङ्ग लिखा है। इसके दो सिर और सात मस्तक हैं। एकादशी तिथि में धर्म का वास है अतएव धर्म को उद्देश कर के जो एकादशी का व्रत करते हैं उनके पाप छूटते हैं।

वामनपुराण में धर्म की स्त्री का नाम अहिंसा लिखा है। अहिंसा के गर्भ से चार पुत्र उत्पन्न हुए थे। सनत्कुमार, सनातन, सनक, सनन्द। दूसरे पुराणों में ये ब्रह्मा के पुत्र बतलाये गये हैं। चन्द्रमा ने जिस समय गुरु-पत्नी का हरण किया था, उस समय धर्म दुःखी हो कर अरण्य में चले गये थे। तभीसे वह अरण्य धर्मारण्य के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

धर्मदास=काव्यसंग्रह में इनका बनाया विदग्ध-मुख-मण्डन नामक ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है। उसका मङ्गलाचरण बुद्धदेव के स्तुति पर का है। यथा—

> सिद्धौषधानि भयदुःखमहापदानाम्,
> पुण्यात्मनां परमकर्णरसायनानि।
> प्रक्षालनैकसलिलानि महामलानाम्,
> शौद्धोदनेः प्रवचनानि चिरञ्जयन्ति ॥ १ ॥

इससे इनकी बुद्धधर्म में निष्ठा स्पष्ट मालूम होती है। परन्तु इनके ग्रन्थ से इनके वासस्थान या समय का पता नहीं चलता। विदग्ध-मुख-मण्डन ग्रन्थ प्राचीन जान पड़ता है। सम्भवतः ये बौद्ध धर्म की प्रबलता के समय में रहे होंगे। अतः इनके समय का होना सातवीं या आठवीं सदी निश्चित की जा सकती है। इनके वासस्थान के विषय में बहुतों ने बुद्धि दौड़ायी है परन्तु वह दौड़ निःसार है। हरिमोहन प्रामाणिक का कहना है कि मगध देश में बौद्धों की आधिकता थी, अतएव ये मगध देश के माने जा सकते हैं।

धर्मध्वज=मिथिला के जनकवंशी एक राजा। दण्डनीति वेद और मोक्षशास्त्र में ये बड़े भारी विद्वान् थे। एक समय सुलभा नाम की एक संन्यासिनी योगिन बन कर पृथिवी की परिक्रमा करती थी। वह धार्मिक महात्माओं से धर्मध्वज की प्रशंसा सुन कर मिथिला में पहुँची मोक्षधर्म में धर्मध्वज का अधिकार हुआ है कि नहीं इसकी परीक्षा करने के लिये उसने योगिनी का वेष छोड़ कर एक मनोहर स्त्री का रूप ग्रहण किया, और राजा के पास जा कर भिक्षा माँगी। बहुत देर तक दोनों में धार्मिक गूढ़ विचार हुए। सुलभा के मोक्षसम्बन्धी ज्ञान को देख कर राजा को आश्चर्य हुआ था।

(महाभारत)

धर्मव्याध=एक समय कौशिक नामक एक ब्राह्मण एक वृक्ष के नीचे वेदमन्त्रों का पाठ कर रहा था। उसी समय एक बकी ने वृक्ष पर से उस ब्राह्मण पर बीट कर दी। ब्राह्मण ने

क्रोध कर के उसकी ओर देखा। वह भस्म हो कर गिर गयी। उसको मरी देख ब्राह्मण को दुःख हुआ। अनन्तर वह ब्राह्मण एक गाँव में भिक्षा के लिये गया, एक गृहस्थ के द्वार पर जा कर उसने भिक्षा की याचना की। घर की मालकिन ब्राह्मण को बाहर ठहरने के लिये कह कर, घर में भिक्षा लाने गयी। उसी समय उसका पति बाहर से आया, वह स्त्री अपने पति की सेवा में लग गयी और इसीसे ब्राह्मण को भिक्षा देना भूल गयी। कुछ देर के बाद उसे स्मरण आया और भिक्षा ले कर वह बाहर आयी। विलम्ब होने के कारण ब्राह्मण अत्यन्त क्रुद्ध हो गये थे। उन्होंने स्त्री को झिड़क कर शाप देने की धमकी दी। स्त्री ने कहा—यदि हमसे कुछ अपराध हुआ हो तो आप उसे क्षमा करें। मैं पति की सेवा करने लगी थी। क्योंकि स्त्रियों का पति ही देवता है आप शाप देने की धमकी देते हैं उससे मुझे कुछ भी डर नहीं है। मैं वह बकी नहीं हूँ। आप ब्राह्मण अवश्य हैं, परन्तु आपको धर्मतत्त्व मालूम नहीं है। यदि धर्मतत्त्व जानने की इच्छा हो तो मिथिला देश में एक धर्म-व्याध रहता है आप उसके पास जाँय। ब्राह्मण को स्त्री की बातें सुनने से आश्चर्य हुआ, वह धर्मव्याध से धर्मोपदेश सुनने के लिये मिथिला चला। मिथिला में जा कर उसने देखा, तपस्वी धर्मव्याध मांस बेंच रहा है। ब्राह्मण को देख कर व्याध प्रणाम कर के बोला, आप एक ब्राह्मणी के कहने से मेरे पास आये हैं। आइये, हमारे घर चलिये। उसकी बातों से कौशिक को बड़ा आश्चर्य हुआ। ऐसे धार्मिक पुरुष का ऐसे निन्दित कर्म में लगा रहना उन्हें बहुत बुरा लगा। व्याध ने कहा—मांस बेंचना हमारा पुरुष-परम्परा-गत कार्य है, विधाता ने पहले ही से हमारी यह वृत्ति निश्चित कर दी है। यह कह कर उस व्याध ने ब्राह्मण को अनेक धर्मोपदेश दिये, और अपने पूर्व-जन्म के वृत्तान्त भी बतलाये। व्याध पूर्वजन्म में एक वेदाध्यायी ब्राह्मण था। एक समय किसी राजा के साथ आखेट करते हुए उसने मृगरूपी एक तपस्वी के बाण मारा था, उसी तपस्वी के शाप से वह व्याधजाति में जन्मा था।

धावक=एक प्राचीन प्रसिद्ध कवि। श्रीयुत पण्डित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर लिखते हैं—ऐसी किंव-दन्ती प्रचलित है कि धावक नाम किसी कवि ने रत्नावली और नागानन्द नामक नाटक बनाये। राजा श्रीहर्ष ने धन द्वारा धावक को अपनी ओर झुका कर उन्हें परितुष्ट किया, और उन नाटकों को अपने नाम से प्रचलित करवाया। मुख्य और प्रसिद्ध अलङ्कारशास्त्रज्ञ पण्डित मम्मट भट्ट के लेख से भी यही बात पक्की होती है। परन्तु धावक और श्रीहर्ष के बीच समय का जो अन्तर विद्यमान है उससे पूर्वोक्त बात मानी नहीं जा सकती। कालिदासविर-चित "मालविकाग्निमित्र" नाटक की प्रस्ता-वना में प्राचीन नाटक लिखने वालों के बीच धावक का भी नाम लिखा मिलता है। इससे धावक विक्रमादित्य के भी पूर्ववर्ती निश्चित होते हैं। अतएव विद्यासागर की किंवदन्ती और मम्मट के लेख दोनों ही ठीक नहीं जान पड़ते। जब श्रीहर्ष का एक अच्छा कवि होना, और सब देश की भाषाओं का जानना, एक प्रामाणिक इतिहास से सिद्ध है तब निर्मूल किंवदन्ती- तथा मम्मट का लेख सम्भालने के लिये किसी दूसरे धावक कवि की कल्पना कर के श्रीहर्ष की कविविषयक कीर्ति को उड़ा देने की चेष्टा किसी प्रकार न्यायसङ्गत नहीं जान पड़ती।

उपरोक्त मत से प्रकट होता है कि धावक का समय विक्रम से भी बहुत पूर्व रहा होगा, पर ध्यान रखना चाहिये मालविकाग्नि की दो एक प्रतियों में धावक का नाम लिखा मिलता है। बहुत कर के यह भी सम्भव है कि प्राचीन कालिदास मालविकाग्निमित्र के कर्ता न हों, क्योंकि भोजराज की सभा में भी तो एक कालिदास वर्तमान थे। इन्हीं सब बातों का विचार कर के धावक का समय सातवीं सदी निश्चित किया जाता है।

धीर कवि=ये हिन्दी के कवि सं० १८२२ में उत्पन्न हुए थे और दिल्ली के बादशाह शाहआलम के दरबार में रहते थे।

धुन्धु=राक्षसविशेष। यह पराक्रमी राक्षस, प्रसिद्ध मधुराक्षस का पुत्र था। यह उत्तङ्क मुनि के आश्रम के पास एक समतल रेतीले स्थान में रहता था। प्राणियों का नाश करने की इच्छा से यह मरुक्षेत्र में सो कर तपस्या करता था। एक वर्ष श्वास रोकने के बाद वह एक दिन श्वास लेता था। इसके श्वास से वन पर्वत आदि काँपने लग जाते थे और धूलि उड़ने से दिगन्त ढँप जाता था। इस राक्षस से देवता भी डरते थे। राजा बृहदश्व के पुत्र कुवलयाश्व ने इसका वध किया था। धुन्धु को मारने का कारण कुवलयाश्व धुन्धुमार कहे जाने लगे। महर्षि उत्तङ्क की आज्ञा से कुवलयाश्व ने अपने पुत्रों को ले कर उस पर आक्रमण किया और मार डाला।

धूमावती=दश महाविद्याओं के अन्तर्गत एक विद्या। तन्त्रों में इनकी उत्पत्ति इस प्रकार लिखी है। एक दिन क्षुधा से व्याकुल हो कर पार्वती ने महादेव से भोजन माँगा, परन्तु महादेव उस समय भोजन नहीं दे सके। तब पार्वती भूख से व्याकुल हो कर महादेव ही को खा गयीं। इससे पार्वती के शरीर से धूम निकलने लगा। तभीसे उनका नाम धूमावती पड़ा। पुनः महादेव माया का शरीर बना कर बोले—देवि! जब तुमने हमको खा लिया है तब तुम विधवा हो गयी हो, अब तुमको विधवा के वेश से रहना चाहिये और उसी वेश में लोग तुम्हारी पूजा करेंगे तथा तुम्हारा नाम धूमावती होगा। कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी को पुरश्चरण सिद्धि के लिये धूमावती के मन्त्र का जप किया जाता है।

धूम्रलोचन=दानवपति शुम्भ का सेनापति। शुम्भ ने इसे ही ६० हज़ार सेना ले कर भगवती को पकड़ कर ले आने के लिये भेजा था, परन्तु यह वहाँ जा कर अपनी सेना के साथ मारा गया।

धृतराष्ट्र=(१) शन्तनुपुत्र विचित्रवीर्य के पुत्र। इनकी माता काशिराज की कन्या अम्बिका थी, काशिराज की दूसरी कन्या अम्बालिका भी विचित्रवीर्य ही को व्याही गयी थी। अम्बालिका के गर्भ से पाण्डु उत्पन्न हुए थे। अपुत्रक अवस्था में विचित्रवीर्य की मृत्यु होने से उनकी माता सत्यवती वंशलोप होने की आशङ्का से चिन्तित हुईं और अपने कुमारिकावस्था के पुत्र कृष्णद्वैपायन को बुलाया। व्यास के आने पर उन्होंने अपनी दोनों बहुओं को गर्भ रखने की आज्ञा दी। सङ्गम के समय कृष्णद्वैपायन की भयावनी मूर्ति देख अम्बालिका पीली पड़ गयी और अम्बिका ने अपनी आँखें बन्द कर लीं; इसी कारण उसका पुत्र अन्धा धृतराष्ट्र हुआ। व्यासदेव ने सत्यवती से कह दिया था कि अम्बिका का पुत्र अन्धा होगा। धृतराष्ट्र के जन्म होने पर सत्यवती ने पुनः अम्बिका को व्यासदेव के साथ सङ्गम करने के लिये कहा था। अम्बिका सास का कहना भी नहीं टाल सकती थी, और व्यासदेव के पास जाने में उसे भय लगता था इस कारण उसने अपनी दासी को अपने वस्त्र पहना कर व्यासदेव के पास भेजा, व्यास ने उसके गर्भ रख दिया। इसी गर्भ से महात्मा विदुर उत्पन्न हुए थे। धृतराष्ट्र का व्याह गान्धारराज सुबल की कन्या गान्धारी से हुआ था। व्यासदेव के वर से गान्धारी के सौ पुत्र होने वाले थे। गान्धारी ने दो वर्ष गर्भ धारण भी किया, परन्तु उसके कोई सन्तान न हुआ। इसी समय कुन्ती के तेजस्वी तीन पुत्र हो गये थे। इससे गान्धारी को बड़ी ईर्ष्या हुई और वह अपना पेट ठोंकने लगी। उसके गर्भ से लोहे के समान कठिन एक मांसपिण्ड उत्पन्न हुआ। गान्धारी उस मांसपिण्ड को फिकवा रही थी, उसी समय व्यासदेव जी वहाँ पहुँचे, और उनकी सम्मति से वह मांसपिण्ड सौ भागों में किया गया और घृतपूर्ण कलश में वे पृथक् पृथक् रख दिये गये। दो वर्ष के बाद उन घड़ों में से एक से दुर्योधन उत्पन्न हुआ। उत्पन्न होते ही दुर्योधन ने गर्दभ के समान शब्द किया, तथा उस समय और भी अनेक अमङ्गलसूचक चिह्न देखे गये। विदुर ने

धृतराष्ट्र से ऐसे लड़के का त्याग करने को कहा था, परन्तु अपत्यस्नेह के कारण धृतराष्ट्र उसे छोड़ न सके। एक मास के भीतर ११ पुत्र और एक कन्या उत्पन्न हुई। कुरुक्षेत्र के युद्ध के अन्त में भीमसेन के द्वारा सौ पुत्रों के मारे जाने का संवाद सुन कर धृतराष्ट्र ने भीम का आलिङ्गन करना चाहा था, परन्तु श्रीकृष्ण के परामर्शानुसार लोहे के भीम उनके अङ्क में दे दिये गये। धृतराष्ट्र ने उसे चूर्ण कर दिया। अनन्तर धृतराष्ट्र गान्धारी के साथ वन में गये और वहाँ छः महीने के बाद वन में दावानल प्रज्वलित होने के कारण वहीं भस्म हो गये। (महाभारत)

(२) नागविशेष। यह कद्रू का पुत्र था। इसीके साथ पाण्डवों का विरोध हुआ था, अश्वमेध का अश्व ले कर अर्जुन मनीपुर गये थे। वहाँ अर्जुन के पुत्र बभ्रुवाहन ने घोड़ा पकड़ लिया। इसी कारण दोनों में युद्ध हुआ। इस युद्ध में अर्जुन मारे गये। अर्जुन की मृत्यु सुन कर बभ्रुवाहन की माता चित्राङ्गदा रोने लगी, नागजातीय अर्जुन की स्त्री उलूपी भी वहाँ आ कर रोने लगी। उलूपी और चित्राङ्गदा दोनों के कहने से बभ्रुवाहन सञ्जीवक मणि लाने को पाताल गये। उधर धृतराष्ट्र नाग के कहने से वासुकी ने मणि देना अस्वीकार किया। अतः बभ्रुवाहन और वासुकी में युद्ध होने लगा। बभ्रुवाहन वासुकी को युद्ध में परास्त कर के सञ्जीवक मणि ले आये। तब धृतराष्ट्र ने अपने पुत्रों के द्वारा अर्जुन का सिर बकदाल्भ्य वाले वन में फिकवा दिया। अर्जुन का शरीर मस्तकशून्य है. यह देख मनीपुर के राजमहल में हाहाकार मच गया। अन्त में श्रीकृष्ण के अनुग्रह से धृतराष्ट्र के दोनों पुत्र मारे गये और अर्जुन का सिर भी आ गया।

धृष्टद्युम्न=पाञ्चालराज द्रुपद के पुत्र और पृषत के पौत्र। इन्होंने महाभारत के युद्ध में पुत्रशोकातुर द्रोण का सिर काट लिया था, युद्ध के अन्तिम दिन रात को द्रोणपुत्र अश्वत्थामा पाण्डवों के शिविर में छिप कर घुसे और धृष्टद्युम्न को मार डाला। (महाभारत)

धेनुक=असुरविशेष। यह गर्दभ के आकार का था। बलराम के द्वारा यह मारा गया था। एक समय बलराम और श्रीकृष्ण गौ चराते चराते तालवन में गये और वहाँ तालफल तोड़ने लगे, उसी वन में धेनुक नाम का राक्षस रहता था, तालफल के गिरने का शब्द सुन कर यह राक्षस इनकी ओर दौड़ा। बलराम ने दोनों पैर पकड़ कर और तालवृक्ष पर पटक कर मार डाला। (भागवत)

धोयी=जयदेव ने गीतगोविन्द में "धोयीकविक्ष्मापतिः" ऐसा लिख कर धोयी कवि की प्रशंसा की है। इसमें संशय नहीं कि ये एक अच्छे कवि थे। इनका बनाया "पवनदूत" नामक एक ग्रन्थ भी है। इस ग्रन्थ का विषय कालिदास के मेघदूत के समान है। इस ग्रन्थ में कुवलयवती नाम की नायिका ने पवन द्वारा प्राणप्रिय राजा लक्ष्मण के पास अपने विरह का संदेसा भेजा है। इसमें सन्देह नहीं कि यह राजा लक्ष्मण, बङ्गाल का सेनवंशीय वही राजा लक्ष्मणसेन है, जिसके सभासद् जयदेव, धोयी, गोवर्द्धन, शरण, उमापतिधर आदि थे। अतएव उन कवियों के समान धोयी भी बङ्गदेशवासी ही होंगे। इनका भी समय १२ सदी का पूर्वभाग ही मानना उचित है।

धोयी का यह श्लोक प्रसिद्ध है—

"इक्षुदण्डं कलानाथं भारतञ्चापि वर्णय।
इति धोयीकविर्ब्रूते प्रतिपर्वरसायनम्॥"

धौंकलसिंह=(१) ये जाति के बैस क्षत्रिय और न्यावाँ ज़िला रायबरेली के रहने वाले थे। इनका जन्म सं० १८६० में हुआ था। रमलप्रश्न आदि छोटे छोटे ग्रन्थ इनके बनाये पाये जाते हैं।

(२) जोधपुर के राजा भीमसिंह के ये पुत्र थे। इनका जन्म भीमसिंह के मरने के बाद हुआ था। भीमसिंह के मरने पर मानसिंह वहाँ के अधीश्वर बन गये। पोकरण के जागीरदार सवाईसिंह के हृदय में पितृहिंसा का वैर जागरूक था। उन्होंने यह प्रकाशित किया कि मृत महाराज भीमसिंह की रानी गर्भवती हैं, उनके

गर्भ से यदि पुत्र होगा, तो न्यायतः इस राज्य पर उसका अधिकार है। अतएव वह राजा बनाया जायगा। ऐसा प्रकाशित कर के सवाईसिंह ने कतिपय सामन्तों को अपने पक्ष में कर लिया, एक दिन यह प्रस्ताव महाराज मानसिंह के सामने भी किया गया। महाराज मानसिंह ने उसे कुछ महत्त्व का न समझ कर स्वीकृत कर लिया। कुछ दिनों के अनन्तर महारानी के एक पुत्र उत्पन्न हुआ। महारानी ने समझा कि यदि यह पुत्र यहाँ रहेगा तो मानसिंह उसे मार डालेगा। यही सोच कर उन्होंने सवाईसिंह के यहाँ पोकरण में उस लड़के को भेज दिया। दो वर्ष के बाद मानसिंह को पता लगा। उस समय मानसिंह ने कहा कि यदि वह सत्य सत्य महाराज का पुत्र होगा तो मुझे अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने में कुछ सन्देह नहीं है। मानसिंह ने जब महारानी से पूँछा तब उन्होंने यही कह दिया कि वह पुत्र मेरा नहीं है। मानसिंह का बोझ बहुत कुछ हल्का हुआ, परन्तु सवाईसिंह जिस प्रतिहिंसा का बदला लेना चाहते थे उनका वह मनोरथ पूर्ण नहीं हुआ। उन्होंने धौंकलसिंह को खेतड़ी के सामन्त छत्रसिंह भाटी के यहाँ भेज दिया, और जयपुर के महाराज जगत्सिंह को मानसिंह के विरुद्ध उभाड़ा, कृष्णाकुमारी का व्याह भी मृत महाराज भीमसिंह से निश्चित हुआ था, परन्तु भीमसिंह मर गये। सवाईसिंह ने जयपुर के महाराज से कृष्णाकुमारी के साथ व्याह करने के लिये कहा। उन्होंने प्रस्ताव उदयपुर भेजा। परन्तु सवाईसिंह की चतुरता से मानसिंह ने मार्ग ही में उनकी सेना से विवाह के प्रस्ताव की सामग्री छीन कर उसे मार भगाया। इससे उनका विरोध बद्धमूल हो गया। बड़ी तैयारी से जगत्सिंह जोधपुर पर चढ़ आये। राठौर सेना भी जगत्सिंह की ओर जा मिली थी, युद्ध हुआ। युद्ध से भाग कर मानसिंह ने जोधपुर के क़िले का आश्रय लिया। अन्त में जगत्सिंह वहाँसे अपमानित हो कर जयपुर लौट गये। सवाईसिंह का षड्यन्त्र प्रकाशित हो गया। अमीरख़ाँ ने मानसिंह के कहने से सवाईसिंह को मित्रता के जाल में फाँस कर मार डाला। पुनः १८२७ ई० में धौंकलसिंह मारवाड़ का राज्य पालन करने के लिये चेष्टा करने लगे। जयपुर के महाराज सवाई जयसिंह तथा कतिपय राठौर सामन्तों का दल इस लिये तैयार हुआ कि मानसिंह को गद्दी से उतार कर धौंकलसिंह को राज्य दिला दें। परन्तु वृटिश गवर्नमेंट के सुप्रबन्ध से षड्यन्त्रकारी हताश हो गये, और धौंकलसिंह भी निराश हो गये।

(टाडस् राजस्थान)

धौम्य=पाण्डवों का पुरोहित। इनके बड़े भाई का नाम देवल था। चित्ररथ के कहने से पाण्डवों ने धौम्य को पुरोहित बनाया था। नारद से इन्होंने सूर्य का एक स्तोत्र पाया था। उसी स्तव की शिक्षा इन्होंने युधिष्ठिर को दी थी। इसी स्तोत्र के प्रभाव से युधिष्ठिर ने अक्षय स्थान पाया था। (महाभारत)

ध्यानसिंह=पञ्जाबकेशरी महाराज रणजीतसिंह के दीवान। ये रणजीत के दहिने हाथ थे। ध्यानसिंह के बड़े भाई का नाम गुलाबसिंह और छोटे का नाम सुचित्तसिंह था। इन तीनों भाइयों को राजा रणजीतसिंह मानते थे और उन लोगों को राजा की उपाधि दी थी। महाराज रणजीतसिंह की आज्ञा से राजकीय पत्रों में ध्यानसिंह "राजा कलानबहादुर" लिखे जाते थे। महाराज रणजीतसिंह ने मरने के समय खड्गसिंह को अपना उत्तराधिकारी और ध्यानसिंह को उनका शिक्षक तथा अभिभावक नियत किया। परन्तु खड्गसिंह पञ्जाबकेशरी के सिंहासन के योग्य नहीं थे। यारों की सम्मति से वे ध्यानसिंह पर सन्देह करने लगे। अन्त में ध्यानसिंह के पुत्र को राजभवन में न जाने की आज्ञा उन्होंने दी। इसके थोड़े ही दिनों के बाद खड्गसिंह क़ैद कर लिये गये और उन्होंने कारागार में ही प्राणत्याग किया। खड्गसिंह के पुत्र नवनिहालसिंह का राज्याभिषेक सम्पन्न हुआ। परन्तु जिस दिन कारागार में खड्गसिंह ने बिदा ली उसी दिन एक द्वार के गिर जाने से नवनिहालसिंह भी मर गये। अब रानी चाँदकुमारी ने राज्य का भार ग्रहण किया। राज्य पा कर महारानी ध्यानसिंह का

विरोधाचरण करने लगी । ध्यानसिंह भी महारानी को पदच्युत करने के लिये प्रयत्न करने लगे । रानी चाँदकुमारी पदच्युत कर दी गयी और रणजीतसिंह की रखेलिन स्त्री के एक पुत्र शेरसिंह का राज्याभिषेक किया गया । राज्य पर बैठ कर शेरसिंह चाँदकुमारी को व्याहने का प्रयत्न करने लगा । परन्तु रानी ने शेरसिंह के प्रस्ताव का निषेध किया । सिंहासन के लिये रानी चाँदकुमारी और शेरसिंह में चखा चखी हो गयी । अन्त में दोनों में सन्धि हुई । नौ लाख वार्षिक आपकी जागीर ले कर रानी चाँदकुमारी ने राज्य का अधिकार छोड़ दिया और शेरसिंह ने चाँदकुमारी को व्याहने की आशा छोड़ दी । सन्धि होने पर महारानी लाहौर में अपने पुत्र के बनाये मकान में रहने लगीं । यद्यपि रानी और शेरसिंह में सन्धि हो गयी, परन्तु शत्रुता नहीं गयी । ध्यानसिंह और शेरसिंह महारानी को मारने का प्रयत्न करने लगे । सन् १८४२ ई० में राजा शेरसिंह और मन्त्री ध्यानसिंह के उद्योग से दासियों द्वारा चाँदकुमारी मारी गयी । कुछ दिनों के बाद शेरसिंह और ध्यानसिंह के बीच कुछ उपद्रव खड़ा हुआ । सिन्ध वाला सर्दार पञ्जाब में बड़े प्रतिष्ठित समझे जाते थे । वे रणजीतसिंह की जाति के थे । वे रखेलिन के पुत्र के शासन से सन्तुष्ट नहीं थे । ध्यानसिंह शेरसिंह के मन्त्री थे । इस कारण वे सर्दार इन पर भी विरक्त हो गये थे । वे इस बात को जानते थे कि रानी चाँदकुमारी की हत्या में ध्यानसिंह भी सम्मिलित थे । इसी कारण वे शेरसिंह और ध्यानसिंह दोनों के प्राण लेने को उद्यत हुए । सिन्ध वाला सर्दारों में सर्दार अजितसिंह साहसी और चतुर सर्दार थे । सर्दार अजितसिंह एक दिन ३०० घुड़सवार और २५० पैदल सेना साथ ले कर उन पर चढ़ गये और उन्होंने दोनों को मार डाला ।

(इतिहास)

ध्रुव=राजा उत्तानपाद के पुत्र । बहुत प्राचीन समय में प्रियव्रत और उत्तानपाद नामक स्वायम्भुव मनु के दो पुत्र थे । राजा उत्तानपाद की दो महारानियाँ थीं, सुनीति और सुरुचि । सुरुचि पर राजा का अधिक प्रेम था । सुनीति के गर्भ से ध्रुव और सुरुचि के गर्भ से उत्तम नामक दो पुत्र राजा के हुए थे । एक समय राजा उत्तानपाद सुरुचि के गर्भ से उत्पन्न उत्तम को गोद में ले कर सिंहासन पर बैठे थे । उसी समय ध्रुव भी वहाँ गया और वह राजा की गोद में बैठने की चेष्टा करने लगा । सौभाग्यगर्विता सुरुचि अपनी सौत के पुत्र को राजा की गोद में जाते हुए देख कर कहने लगी—वत्स ! तुम सुनीति के गर्भ से उत्पन्न हुए हो, तुम हमारे पुत्र नहीं हो, अतएव तुम्हें ऐसा उच्चाभिलाष नहीं करना चाहिये । यह राजासन हमारे गर्भ से उत्पन्न पुत्र के योग्य है, तुम्हारे नहीं । विमाता की ऐसी बातों को सुन कर ध्रुव रोने लगा और वह रोता हुआ अपनी माता के समीप पहुँचा । रोने का कारण पूँछने पर ध्रुव ने माता से सब हाल कह दिया । सुन कर सुनीति को बड़ा कष्ट हुआ । वह ध्रुव के आँसू पोंछती हुई कहने लगी—वत्स ! इसमें किसी का अपराध नहीं है, जो दूसरे को दुःख देता है वह स्वयं ही अपने दिये दुःख का भोग करता है । सुरुचि का कहना सत्य है तुम अभागी अवश्य हो क्योंकि तुमने मुझ अभागिन के गर्भ से जन्म लिया है । तुमने मेरा दूध पीया है । अतएव तुम्हें राजासन कैसे मिलेगा ? सुरुचि पुण्यवती है, उसने अपने पुण्य से राजा को वश में कर रखा है । अतएव तुम दुःख न करो और अपनी वर्तमान स्थिति में सन्तुष्ट रहो । यदि सुरुचि की बातें तुम्हें बड़ी दुःखद हैं तो तपस्या करो, तपस्या से पुण्य सञ्चय करो । अपने मन को धर्म में लगावो । एकान्तभाव से भगवान् की आराधना करो, सर्वदा प्राणियों का हित करो, इस प्रकार अवश्य ही तुम्हारा अभीष्ट सिद्ध होगा । वत्स ! उस भगवान् के अतिरिक्त दूसरा कोई तुम्हारा दुःख नहीं छुड़ा सकता । माता की बातों को सुन कर ध्रुव कहने लगे—मा ! तुम्हारी बातें इस समय मेरे ध्यान में नहीं आती हैं, मैं तपस्या के द्वारा उस स्थान को प्राप्त करूँगा, जो पिता को भी दुर्लभ है । वह

कह कर और माता को प्रणाम कर ध्रुव घर से निकल गये। बहुत दूर जाने पर ध्रुव को सप्तर्षि का साक्षात्कार हुआ। उनसे ध्रुव ने अपनी सब बातें कहीं। महर्षियों ने ध्रुव की छोटी अवस्था और दृढ़ सङ्कल्प देख कर, उन्हें विष्णु के आराधन का उपदेश दिया, ध्रुव विष्णु की पूजा प्रक्रिया नहीं जानते थे। सप्तर्षियों ने विष्णुमन्त्र का उपदेश दे कर उसका जप करने के लिये उनसे कहा। सप्तर्षियों से मन्त्र पा कर ध्रुव यमुना के किनारे मधु नामक वन में भगवान् की आराधना करने लगे। ध्रुव की तपस्या देख कर इन्द्र आदि देवता भयभीत हो गये। उन लोगों ने ध्रुव की तपस्या में विघ्न डालने का बहुत प्रयत्न किया परन्तु वे सफलमनोरथ नहीं हो सके। देवगण भगवान् विष्णु के समीप उपस्थित हुए। विष्णु देवताओं को धीरज दे कर वर देने के लिये ध्रुव के निकट उपस्थित हुए। ध्रुव ने अभिलषित वर पाया। घर लौट आने पर पिता ने उनको बड़ी प्रसन्नता से राज्य दिया। राज्य पा कर ध्रुव ने शिशुमार की कन्या भ्रमि को ब्याहा। ध्रुव की दूसरी स्त्री का नाम इला था। ध्रुव ने भ्रमि के गर्भ से कल्प और वत्सर नामक दो पुत्र और इला के गर्भ से उत्कल नामक एक पुत्र उत्पन्न किया। ध्रुव के वैमात्रेय भ्राता उत्तम अहेर खेलने गये थे उन्हें एक यक्ष ने मार डाला। इस कारण ध्रुव यक्षों से युद्ध करने गये, कुबेर के युद्ध न करने की प्रार्थना करने पर मनु ने ध्रुव को युद्ध करने से रोक दिया, अतएव कुबेर से वर पा कर ध्रुव लौट आये। ३६ हज़ार वर्ष राज्य कर के ध्रुव विष्णुप्रदत्त अपने लोक में गये।

(भागवत)

न

नकुल=पाण्डु के क्षेत्रज पुत्र। पाण्डु की महारानी माद्री के गर्भ और अश्विनीकुमारों के औरस से इनकी उत्पत्ति हुई थी। महाराज पाण्डु शापग्रस्त हो कर अपनी दो रानियों के साथ वनवास करते थे। उसी समय दुर्वासा के दिये मन्त्र के प्रभाव से कुन्ती के तीन पुत्र उत्पन्न हुए। यह देख कर माद्री ने भी अपने स्वामी से पुत्र की प्रार्थना की। पाण्डु के कहने से कुन्ती ने माद्री को भी मन्त्र-प्रदान किया। उसी मन्त्र के प्रभाव से अश्विनीकुमारों के द्वारा माद्री ने दो पुत्र उत्पन्न किये, जिनका नाम नकुल और सहदेव था। अज्ञात वास के समय नकुल तन्त्रीपाल के नाम से विराट् के यहाँ गौरक्षा करने के काम पर नियुक्त थे। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के समय ये दशार्ण (वर्तमान छत्तीसगढ़) मालव आदि देशों को जीत कर तथा समुद्रतीरस्थ आभीर देशों को जीत कर पञ्जाब में उपस्थित हुए थे। पञ्जाब अमरपर्वत और द्वारपाल आदि देशों को जीता था। इसके अनन्तर उन्होंने द्वारका में वसुदेव के पास दूत भेजा था। यादवों ने जब युधिष्ठिर की अधीनता स्वीकार कर ली, तब नकुल पश्चिमोत्तर प्रदेशस्थ म्लेच्छ पह्लव आदि जातियों को जीत कर इन्द्रप्रस्थ में लौट आये। चेदिराज की कन्या करेणुमती से इनका ब्याह हुआ था और उसके गर्भ से निरमित्र नामक एक पुत्र इनके उत्पन्न हुआ था।

(महाभारत)

नन्द=(१) ये श्रीकृष्ण के पालने वाले पिता थे। मथुरा ज़िला में यमुना के उस पार गोकुल नामक एक गाँव है। उस गाँव में गोप रहा करते हैं। उस समय वहाँ गोपों के अधिपति नन्द थे और मथुरा में कंस राज्य कर रहा था। नन्द मथुराधिप कंस के एक करद नृपति थे। नन्द की स्त्री का नाम यशोदा था। जिस दिन गोकुल में यशोदा के गर्भ से महामाया कन्या रूप से प्रकट हुईं, उसी रात्रि को मथुरा में देवकी के गर्भ से भगवान् श्रीकृष्ण उत्पन्न हुए। कंस के भय से वसुदेव श्रीकृष्ण को गोकुल में रख कर कन्या को ले आये। महामाया की उत्पत्ति के समय में उनकी माया से गोकुल में सभी अचेतन हो गये थे। इस कारण वसुदेव को लड़के बदलने में सुविधा हुई। गोकुल में नन्द के यहाँ श्रीकृष्ण लालित और वर्द्धित हुए थे। गोकुल ही में श्रीकृष्ण ने कंस के भेजे दानवों

का वध किया था । यहाँसे भगवान् श्रीकृष्ण कंस के धनुर्यज्ञ में निमन्त्रित हो कर अक्रूर के साथ मथुरा गये थे और कंस को मार कर श्रीकृष्ण मथुरा ही में रहने लगे । पुनः वे वृन्दावन नहीं लौटे । जिस दिन श्रीकृष्ण ने गोकुल छोड़ा था, उसी दिन से नन्द का जीवन दुःखों की काली रेखाओं से अङ्कित हो गया था । हंस और डिम्बक का वध करने के लिये श्रीकृष्ण एक बार गोकुल गये थे । वहाँ यशोदा और नन्द से श्रीकृष्ण की भेंट हुई, श्रीकृष्ण उन्हें समझा बुझा, लौट आये । इसके पश्चात् प्रभासक्षेत्र में भी इनका मिलाप हुआ था, वही मिलाप जीवन का अन्तिम मिलाप है ।

एक समय एकादशी का व्रत कर के नन्द यमुनास्नान कर रहे थे, वहाँसे वरुण के दूत उन्हें वरुण की सभा में ले गये । श्रीकृष्ण ने वहाँसे नन्द को छुड़ाया था । इसी दिन से नन्द जिस घाट पर स्नान करते थे उस घाट का नाम नन्दघाट पड़ा ।

(भागवत)

(२) मगध के एक राजा । इस नाम के नौ राजा पटने के सिंहासन पर बैठे थे । इनकी उत्पत्ति के विषय में अनेक प्रकार के मत देखे जाते हैं । विष्णुपुराण, ब्रह्माण्डपुराण, भागवत और मत्स्यपुराण में नन्द का जन्म-वृत्तान्त पाया जाता है । इन सभी पुराणों में लिखा है कि नन्द एक शूद्रा के गर्भ से उत्पन्न हुए थे और इनके पिता का नाम महानन्दि था । परन्तु जैन और बौद्ध ग्रन्थकार पूर्वोक्त बात को नहीं मानते । उनका कहना है कि नन्द पटने के एक नाई के औरस और एक वेश्या के गर्भ से उत्पन्न हुआ था । एक उपाध्याय ने नन्द के साथ अपनी कन्या ब्याह दी थी । पाटलीपुत्र के अपुत्रक राजा उदायी गुप्त जब मारे गये, तब मन्त्रीगण राज्याभिषेक की सामग्री ले कर नगर के बाहर एकत्रित हुए और किसको सिंहासन पर बैठावें इस बात की चिन्ता करने लगे । उसी समय नन्द वहाँ आ कर खड़े हो गये । राजहस्ति ने अभिषेकार्थ जल से नन्द का अभिषेक किया और उन्हें अपनी पीठ पर बैठा लिया । राजा के घोड़े ने आनन्द से विह्वल हो कर ह्रेषारव किया, और चारों ओर आनन्दध्वनि होने लगी । इससे मन्त्रियों ने भी नन्द ही को राजा बनाया । ख्रीष्टीय ई० के ४६६ वर्ष पूर्व नन्द राजा हुए थे । इनके वंश में क्रमशः सात और नन्द हुए थे । कल्पक नामक एक अशेष विद्वान् नन्द के मन्त्री थे । कल्पक के पुत्र पौत्र क्रमशः नन्द राजाओं के मन्त्री होते आये । कल्पक के पुत्र शकटाल नवम नन्द के मन्त्री थे । प्रसिद्ध वररुचि इसी नवम नन्द के सभापण्डित थे । प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ पण्डित चाणक्य ने इसी नन्दवंश के अन्तिम राजा को राज्यच्युत कर के चन्द्रगुप्त को पटना का राजा बनाया ।

नन्द कवि=(१) ये हिन्दी के एक कवि थे और सं० १६२५ में उत्पन्न हुए थे । ये उत्तम कवि थे । हजारा में इनका नाम पाया जाता है ।

(२) ये भी हिन्दी के कवि थे और इनकी कविता सुन्दर होती थी ।

नन्दकिशोर=ये हिन्दी के कवि थे । इन्होंने भाषा में " रामकृष्णगुणमाल " नामक ग्रन्थ बनाया है ।

नन्दकुमार (महाराज)=ये काश्यपगोत्री नन्द के वंश में थे । राजा आदिशूर ने पाँच ब्राह्मणों को कान्यकुब्ज देश से बुलवाया था । उनमें एक का नाम दक्ष था । नन्दकुमार के पूर्वपुरुष मुर्शिदाबाद ज़िले के जरुल नामक गाँव में रहते थे । नन्दकुमार के प्रपितामह का नाम रामगोपालराय और पितामह का नाम चण्डीचरण राय था । चण्डीचरण के दो विवाह हुए थे, उनमें पहली स्त्री से पद्मनाभराय नाम का एक पुत्र उत्पन्न हुआ था । पद्मनाभ की दो कन्याएँ थीं और एक पुत्र । दोनों कन्याएँ बड़ी थीं, उनका नाम विष्णुप्रिया और कृष्णप्रिया था । पुत्र नन्दकुमार थे। इनके प्रपितामह रामगोपालराय किसी कारण से जरुल गाँव को छोड़ कर अपनी ससुराल भद्रपुर में जा कर रहने लगे । नन्दकुमार के कोई पूर्वपुरुष पीतमुण्डी नामक गाँव में रहते थे, इस कारण उस वंश के लोग पीतमुण्डी कहे जाने

लगे। पीतमुण्डी ब्राह्मण पहले कुलीन नहीं समझे जाते थे, परन्तु पीछे से ये श्रोत्रिय कहे जाने लगे। नन्दकुमार ने बङ्गाल के विख्यात नव्वाब अलीवर्दीखाँ के राज्यसमय अमीनगीरी कर के बहुत धन एकत्रित किया था। परन्तु दीवान से विरोध हो जाने के कारण इन्हें नौकरी छोड़ देनी पड़ी। अलीवर्दी की मृत्यु होने पर नन्दकुमार सिराजुद्दौला के यहाँ नौकरी के लिये आने जाने लगे। सिराजुद्दौला पहले नन्दकुमार से कुछ अप्रसन्न था, परन्तु पीछे प्रसन्न हो कर, उसने इन्हें हुगली की दीवानी दी। सिराज के नष्टभ्रष्ट होने पर नन्दकुमार लार्ड क्लाइव के मुंशी बनाये गये। पहले शोभाबाज़ार राजवंश के प्रतिष्ठाता नवकृष्णदेव इस पद पर थे, परन्तु सिराज के खजाने से अधिक धन मिलने के कारण उन्होंने नौकरी छोड़ दी। तब उस पद पर नन्दकुमार नियुक्त किये गये। क्लाइव के विलायत चले जाने पर भेरलस्ट साहब बङ्गाल के गवर्नर हुए। पहले वे नन्दकुमार से बहुत प्रसन्न थे, परन्तु पीछे किसी कारण से उन दोनों में अनबनाव हो गया। उनके बाद कार्टियर साहब बङ्गाल के गवर्नर हुए। तीन वर्ष के बाद ये भी विलायत चले गये। तदनन्तर वारिन हेस्टिंग्ज़ बङ्गाल के गवर्नर हुए। इन्हींकी आँखों पर चढ़ने से नन्दकुमार का प्राणान्त हुआ। सुप्रीम-कोर्ट में नन्दकुमार पर एक जाली मुकद्दमा चलाया गया, विचारपति ने नन्दकुमार को फाँसी की आज्ञा दे दी।

५२ लाख नक़द और भूमिसम्पत्ति आदि छोड़ कर नन्दकुमार मरे थे। इनके पुत्र गुरुदास की अकालमृत्यु हो गयी, उनकी स्त्री जगदम्बा उस सम्पत्ति की अधिकारिणी हुईं। इस समय इनके वंशधर मुर्शिदाबाद में कुञ्जघाट में रहते हैं। (इतिहास)

नन्ददास=ये रामपुर के निवासी ब्राह्मण थे और विट्ठलनाथ जी के शिष्य थे। इनकी गणना अष्टछाप के कवियों में है। इनके बनाये ग्रन्थों के नाम ये हैं। १ "नाममाला", २ "अनेकार्थ", ३ "पञ्चाध्यायी", ४ "रुक्मिणीमङ्गल", ५ दशमस्कन्ध", ६ "दानलीला", ७ "मानलीला" इन ग्रन्थों के अतिरिक्त इनके बनाये अनेक पद पाये जाते हैं।

नन्दराम कवि=ये हिन्दी के कवि थे। इनकी शान्त रस की कविता अच्छी होती थी।

नन्दराम हलदिया=आमेरराज के मन्त्री दौलतसिंह के ये भाई थे और उसी राज्य में सेनापति के पद पर वर्तमान थे। सीकर के अधिपति देवीसिंह ने जिस समय शेखावाटी प्रदेश में अपना सिर उठाया उस समय आमेरराज ने इनको सेना सहित उसको दमन करने और कर लेने के लिये भेजा था। जिस समय इनकी सेना उक्तप्रदेश में पहुँची उस समय देवीसिंह मर गये थे। आज सीकर के राजसिंहासन पर एक अबोध बालक विराजमान था। शेखावाटी प्रदेश के सभी सामन्त देवीसिंह के विरुद्ध थे, परन्तु नीतिज्ञ देवीसिंह ने आमेर की राजसभा के सदस्यों से प्रेम कर रखा था। नन्दराम हलदिया और उनके भाई राजमन्त्री दौलतसिंह देवीसिंह के मित्र थे। सीकर की सरहद में देवीसिंह के पहुँचने पर सीकर के दीवान आदि इनके डेरों पर गये। नन्दराम हलदिया के परामर्श से उन लोगों ने युद्ध की तैयारी कर ली। नन्दराम भी दिखावटी लड़ाई लड़ने लगा, अन्त में अपने लिये लाख और राज्य के लिये दो लाख ले कर वह लौट आया। महाराज को भी यह बात मालूम हो गयी, उन्होंने नन्दराम की सम्पत्ति ज़ब्त कर ली, और उसे क़ैद करने की आज्ञा दी। परन्तु धूर्त नन्दराम पहले ही भाग गया था। (टाडस् राजस्थान)

नन्दलाल कवि=(१) ये हिन्दी के कवि थे और सं० १६११ में उत्पन्न हुए थे। इनकी कविता सुन्दर होती थी, हज़ारा में इनके कवित्त पाये जाते हैं।

(२) ये भी हिन्दी के कवि थे। इनकी कविता सरस होती थी। इनका जन्म सं० १७७४ में हुआ था।

नन्दा=भगवती का नामान्तर। वराहपुराण में ब्रह्मा भगवती से कहते हैं—देवि! तुमने देवताओं के बड़े बड़े काम किये हैं। परन्तु एक और भी काम करना पड़ेगा। वह यह कि

महिषासुर का नाश करना होगा। ब्रह्मा के यह कहने पर देवताओं ने भगवती को हिमालय पर्वत पर स्थापित किया। हिमालय पर स्थापित करने से देवी को बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ। इस कारण देवी का नाम नन्दा पड़ा।
(वराहपुराण)

नन्दिगुप्त=काश्मीर के एक राजा का नाम। इनके पिता का नाम अभिमन्यु गुप्त था। अभिमन्यु गुप्त के मरने के पश्चात् बालक नन्दिगुप्त काश्मीर के सिंहासन पर बैठाये गये। अनन्तर इनकी पितामही दिद्दा ने स्वयं राज्य भोग करने की इच्छा से, अभिचार द्वारा नन्दिगुप्त को मारने का प्रयत्न किया। दुःख है कि वह दुराचारिणी अपनी दुरभिलाषा सफल करने में समर्थ भी हुई। १ वर्ष १ महीना ११ दिन राजासन पर बैठ कर नन्दिगुप्त परलोकवासी हुए। (राजतरङ्गिणी)

नन्दिनी=यह कामधेनु सुरभी की कन्या थी। महर्षि वसिष्ठ के यहाँ यह रहती थी। इसीकी सेवा से अयोध्याधिपति दिलीप को रघु नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था। इसीके कारण विश्वामित्र और वसिष्ठ के बीच विरोध उत्पन्न हुआ था।

नन्दी=महादेव का अनुचर। इन पर महादेव ने द्वाररक्षा का भार सौंपा था।

नमुचि=(१) दैत्यविशेष। यह महासुर शुम्भ का तीसरा भाई था।
(वामनपुराण)

(२) प्रसिद्ध दानवराज। एक समय नमुचि इन्द्र के भय से भयभीत हो कर सूर्य की किरणों में जा छिपा। यह देख इन्द्र ने उससे मित्रता की और कहा—मित्र! मैं सच कहता हूँ दिन या रात में भींगी या सूखी वस्तुओं से मैं तुम्हारा वध कभी नहीं करूँगा। एक दिन कुहरे से संसार ढका था। इन्द्र ने सुयोग पा कर जलफेन के द्वारा उसका सिर काट डाला। उस समय वह कटा हुआ मस्तक—"अरे पापी! तूने मित्र का वध किया है"—कहता हुआ इन्द्र के पीछे दौड़ा। इन्द्र ब्रह्मा की शरण गये। ब्रह्मा ने विधिपूर्वक यज्ञ कर के और अरुणा नाम की नदी में स्नान कर के पाप से मुक्त होने की आज्ञा दी। ब्रह्मा की आज्ञा से देवराज इन्द्र ने अरुणा के तीर पर विधिपूर्वक यज्ञ किया और उस नदी में स्नान किया। सरस्वती नदी की एक शाखा का नाम अरुणा है। नमुचि का भी मस्तक उस नदी में पड़ा जिससे उसे अक्षयलोक प्राप्त हुआ।
(महाभारत)

नर=(१) भागवत में ये भगवान् के चौथे अवतार बतलाये गये हैं। धर्म की पत्नी मूर्ति के गर्भ से इनकी उत्पत्ति है। नर और नारायण ये दो मूर्ति होने पर भी समान आकार के हैं। दूसरे युग में नरसिंह ने दो मूर्ति धर कर यह अवतार ग्रहण किया था। महाभारत में लिखा है कि स्वायम्भुव मनु के अधिकार के समय नारायण ने धर्म के पुत्ररूप से नर और नारायण हरि और श्रीकृष्ण रूप ग्रहण किया था। इनमें नर और नारायण ने बदरिकाश्रम में जा कर कठोर तपस्या की थी। एक समय इनको उपासना करते देख नारद को बड़ा आश्चर्य हुआ था और इन्होंने पूछा भी था—जिसकी उपासना सभी मुक्ति के लिये करते हैं, वह किसकी उपासना करता है? भगवान् ने उत्तर दिया यह अत्यन्त गोपनीय बात है। तथापि तुमको भक्त जान कर बतलाता हूँ—जो सूक्ष्म, अविज्ञेय, कार्यविहीन, अचल, नित्य और त्रिगुणातीत हैं, जिनसे सत्व आदि गुण उत्पन्न हुए हैं, जो अव्यक्त होने पर भी व्यक्तरूप से अवस्थान करते तथा "प्रकृति" इस नाम से पहचाने जाते हैं, वे ही परमात्मा हम लोगों की उत्पत्ति के कारण हैं, हम उन्हींकी माता पिता जान कर उपासना करते हैं। (महाभारत)

नरनारायण की कठोर तपस्या देख कर इन्द्र आदि देवता डर गये, उन लोगों ने कामदेव के साथ अप्सराओं को इनकी तपस्या में विघ्न डालने के लिये भेजा। अप्सराओं को देखते ही इन लोगों ने देवताओं की चालाकी समझ ली और देवता तथा अप्सराओं का अभिमान चूर्ण करने के लिये उर्वशी की सृष्टि की। उर्वशी की सुन्दरता अप्सराओं में

सबसे बढ़ कर थी। उर्वशी को बना कर उन्होंने उसे देवलोक में भेज दिया। ये ही द्वापर के अन्त में अर्जुन और श्रीकृष्ण के रूप से प्रकट हुए थे। (भागवत)

(२) काश्मीर के एक राजा। ये बड़े साहसी राजा थे। इनके शासनसमय में काश्मीर की अत्यन्त श्रीवृद्धि हुई थी कितने ही मठ अग्रहार इन्होंने बनवाये थे वितस्ता नदी के तीर पर एक नगर इन्होंने बनवाया था। इनका यश किन्नर गाते थे।

इसी नगर में विशाखदत्त नामक एक ब्राह्मण युवक रहता था। उसने नागराज सुश्रवा का उपकार कर के उसकी कन्या चन्द्रलेखा को ब्याहा था। राजा नर ब्राह्मण की स्त्री चन्द्रलेखा की सुन्दरता आदि की प्रशंसा सुनी। राजा ने उसकी प्राप्ति के लिये अनेक उपाय किये, परन्तु कोई भी सफल नहीं हुआ अतएव उन्होंने बलपूर्वक उसका हरण करना ही निश्चित किया। राजा की सेना आ कर ब्राह्मण के द्वार पर खड़ी हुई। ब्राह्मण दूसरे मार्ग से स्त्री के साथ भाग कर अपने ससुर नागराज सुश्रवा के निकट चला गया और उसने राजा के अत्याचार की बातें नागराज से कहीं। सुन कर नागराज बड़े क्रुद्ध हुए। उन्होंने वज्रवृष्टि द्वारा राजा और उनके नगरों को जला डाला। राजा नर ३६ वर्ष ६ मास राज्य कर अपनी दुर्नीति से अन्त में विनष्ट हुए। (राजतरङ्गिणी)

(३) काश्मीर के एक राजा। ये द्वितीय नर के नाम से विख्यात हैं। ये कामशास्त्रप्रणेता वसुनन्द के पुत्र थे। इन्होंने काश्मीर का शासन ६० वर्ष तक किया था। (राजतरङ्गिणी)

नरक=(१) कलि के पौत्र। भय के औरस और मृत्यु के गर्भ से इसकी उत्पत्ति हुई थी।

(२) दानवविशेष। पृथिवी के गर्भ से यह उत्पन्न हुआ था। (देखो कृष्ण)

नरनारायण=(१) शरभरूपी महादेव ने दन्ताघात से नरसिंह के दो टुकड़े कर दिये। देहार्द्ध नर शरीर से महातपा नर, और देहार्द्ध सिंह शरीर से महातपा नारायण ऋषि उत्पन्न हुए। (कालिकापुराण)

(२) ब्रह्मा के हृदय से धर्म उत्पन्न हुए थे। धर्म ने दक्ष प्रजापति की दस कन्याओं से ब्याह किया था। उन्हींके गर्भ से हरि कृष्ण नर और नारायण चार पुत्र उत्पन्न हुए थे, हरि और कृष्ण योगस्थ हो गये, और नर नारायण बदरिकाश्रम में जा कर तपस्या करने लगे। इसी कारण बदरिकाश्रम को नरनारायणाश्रम कहते हैं। (देवीभागवत)

नरवाहन जी कवि=ये हिन्दी के एक कवि थे और भौगाँव के निवासी थे। सं० १६०० में, ये उत्पन्न हुए थे। ये हितहरिवंशराय जी के शिष्य थे। इनकी कथा भक्तमाल में भी है।

नरसिंह=(१) भगवान् का चतुर्थ अवतार। दैत्यराज हिरण्यकशिपु के वध के लिये भगवान् ने यह रूप धारण किया था। इनका आधा शरीर मनुष्य के समान और आधा सिंह के समान था। ब्रह्मा के वर से हिरण्यकशिपु अवध्य हो गया था, और ब्रह्मा के वर के कारण देवता उसे शाप भी नहीं दे सकते थे। अस्त्र शस्त्र आदि उसके शरीर पर काम नहीं कर सकते थे। ब्रह्मा से वर पा कर दैत्यराज हिरण्यकशिपु एक महा अभिमानी हो गया, देवताओं को पीड़ा देना ही उसने अपना कर्तव्य समझ लिया। इस प्रकार पीड़ित हो कर देवगण विष्णु की शरण गये। विष्णु ने अभय दे कर देवताओं को बिदा किया और हिरण्यकशिपु का वध कैसे होगा इसकी चिन्ता वे करने लगे। अन्त में नृसिंह मूर्ति धारण करने का उन्होंने सङ्कल्प किया। यही भयङ्कर मूर्ति धारण कर के नृसिंह हिरण्यकशिपु की सभा में उपस्थित हुए। दैत्यराज के पुत्र प्रह्लाद ने नृसिंह को देख कर कहा—इस नृसिंह मूर्ति को देखने से मालूम पड़ता है कि इसीके द्वारा दानवकुल का विनाश होगा। हिरण्यकशिपु ने नृसिंह को मारने की आज्ञा दी, दैत्यराज के अनुचर उनकी ओर लपके सही, परन्तु वे मारे गये। अनन्तर हिरण्यकशिपु ने स्वयं नृसिंह पर आक्रमण किया, और वह मारा गया। (हरिवंश)

भागवत में लिखा है—हिरण्यकशिपु ने तपोबल के प्रभाव से ब्रह्मा से वर पाया और

वह स्वर्गराज्य से देवताओं को हटा कर स्वयं इन्द्र बन गया। दैत्यराज के ४ पुत्र थे, उनमें प्रह्लाद बड़ा विष्णुभक्त था। दैत्यगुरु शुक्राचार्य के पुत्र षण्ड और अमर्क दैत्यराज के पुत्रों को पढ़ाने के लिये नियुक्त हुए। एक दिन दैत्यराज ने परीक्षा लेने के लिये अपने पुत्रों को बुलाया। पूँछने पर प्रह्लाद विष्णु का गुण गाने लगा। दैत्यपति अपने भाई हिरण्याक्ष को मारने से विष्णु पर अत्यन्त क्रुद्ध था, पुत्र के मुख से शत्रु का गुण कीर्तन सुन कर दैत्यराज प्रह्लाद को डाँटने लगा। परन्तु उसके डाँटने का फल कुछ भी नहीं हुआ। प्रह्लाद ने विष्णुभक्ति नहीं छोड़ी। इस कारण हिरण्यकशिपु प्रह्लाद को अनेक प्रकार की पीड़ा देने लगा, परन्तु प्रह्लाद की रक्षा भगवान् की कृपा से होती गयी। प्रह्लाद के साथ अनेक दैत्यबालक भी विष्णुभक्त हो गये। अन्त में दैत्यपति ने प्रह्लाद को अपने समीप बुलवाया और उससे कहा—मूर्ख! तू किसके बल पर मेरी आज्ञा का अनादर करता है? तेरे इस दुस्साहस का कारण क्या है? तेरा हरि कहाँ है? प्रह्लाद ने उत्तर दिया। हरि सर्वत्र विद्यमान हैं। हिरण्यकशिपु बोला—हरि, यदि सर्वत्र सब वस्तुओं में वर्तमान हैं तो इस खंभे में भी अवश्य वर्तमान होंगे। यह कह कर दैत्यराज ने उस खंभे में लात मारी, उसी समय भीम गर्जन करते हुए नृसिंह वहाँ प्रकट हुए और उन्होंने बड़ी सरलता से हिरण्यकशिपु को मार डाला अनन्तर प्रह्लाद की स्तुति से प्रसन्न हो कर भगवान् अन्तर्हित हो गये।

(भागवत)

(२) खँडेला राज्यखण्ड के एक अधीश्वर। इनके पिता का नाम गोविन्दसिंह था। गोविंदसिंह के मारे जाने पर नरसिंह उसके अधीश्वर हुए। जयपुर के राजा ने इनसे कर लेने के लिये नन्दराम हलदिया की अध्यक्षता में एक सेना भेजी, नरसिंहदास आमेरराज को कर देना पहले ही अस्वीकृत कर चुके थे, अतएव ये उनकी आँखों पर चढ़ चुके थे। सेनापति नन्दराम हलदिया ने, खँडेला के एक दूसरे अधीश्वर इन्द्रसिंह के पुत्र प्रतापसिंह को नरसिंह के अधिकृत देशों का अधिकार दिलवा दिया। पुनः कुछ दिनों के बाद नरसिंह ने नन्दराम हलदिया को धन दे कर वश में किया और उसीके प्रयत्न से नरसिंह का अधिकार पुनः उसके पैतृक राज्य पर हो गया। पुनः जब आमेरराज का एक दूत इनसे कर उगाहने के लिये आया, तब नरसिंह ने उसे मार पीट कर अपने दरबार से निकाल दिया। यह दूत आमेरराज की सभा में जा कर अपने अपमान की बातें कहने लगा, सुनते ही आमेरराज को अत्यन्त क्रोध हुआ। उन्होंने मन्त्री आशाराम को वहाँ भेजा। आशाराम ने चतुरता से नरसिंहदास और प्रतापसिंह को क़ैद कर के आमेर भेज दिया। बहुत दिनों तक ये वहाँ ही क़ैद थे। ये पुनः छूटे और मारवाड़ के प्रसिद्ध युद्ध में मारे गये।

(टाडस् राजस्थान)

नरसिया कवि=ये भट्ट कवि जूनागढ़ काठियावाड़ के रहने वाले थे। इनके पद रागसागरोद्भव में पाये जाते हैं।

नरहरि=बङ्गाल के राजा आदिशूर के राज्यकाल में कान्यकुब्ज से पाँच श्रोत्रिय ब्राह्मण बुलाये गये थे, उनमें से एक का नाम भट्ट नारायण था। भट्ट नारायण की दशवीं पीढ़ी में नरहरि उत्पन्न हुए थे, इन्हींके वंशज नदिया का राजवंश है।

नरहरिसहाय बन्दीजन=ये हिन्दी के कवि असनी के वासी थे और सं० १५८८ में उत्पन्न हुए थे। ये जलालउद्दीन अकबर बादशाह के दरबार में थे। असनी गाँव इनको माफ़ी में मिला था। इनके पुत्र हरिनाथ महाकवि और उदार थे। इस समय भी इनके वंशज बनारस आदि स्थानों में पाये जाते थे। असनी वाला इनका घर खंडहर पड़ा हुआ है। इनके किसी ग्रन्थ का पता नहीं लगा है। हाँ, इनके अनेक छप्पय सुने जाते हैं।

नरिन्द कवि (प्राचीन)=(१) ये हिन्दी के एक प्राचीन कवि थे और सं० १७८८ में उत्पन्न हुए थे।

(२) ये पटियाला के महाराज थे और

हिन्दी के कवि थे । ये सं० १८१४ में उत्पन्न हुए थे इनकी कविता सरस होती थी ।

नरेन्द्रादित्य=(१) ये काश्मीरराज गोकर्ण के पुत्र थे। इन्होंने भूतेश्वर नामक शिव और अक्षयिनी नामक देवी की प्रतिष्ठा की थी। नरेन्द्रादित्य ने ३६ वर्ष ३ महीना और १० दिन राज्य किया था। (राजतरङ्गिणी)

(२) ये भी काश्मीर के राजा थे। ये द्वितीय नरेन्द्रादित्य कहे जाते थे । इनके पिता का नाम नरेन्द्रादित्य था और माता का नाम पद्मावती । इनका दूसरा नाम लक्ष्मण था । वज्र और कनक नामक दो इनके मन्त्री थे । नरेन्द्रादित्य ने नरेन्द्रस्वामी नामक एक शिवलिङ्ग और राज्य के कागज पत्र रखने के लिये एक गृह बनवाया था। इन्होंने १३ वर्ष काश्मीर का राज्य किया था। (राजतरङ्गिणी)

नरेश कवि=ये हिन्दी के एक कवि थे। लोगों का अनुमान है कि इन्होंने नायिकाभेद की कोई पुस्तक लिखी होगी । क्योंकि इनके पद्य उसी प्रकार के पाये जाते हैं ।

नरोत्तमदास=ये एक हिन्दी के कवि थे । ब्राह्मण बाड़ी ज़िला सीतापुर के रहने वाले थे । इनका बनाया एक ग्रन्थ है, जिसका नाम सुदामाचरित्र है। सुदामाचरित्र की कविता मधुर है ।

नल=निषध देश के राजा। स्वयम्वर रीति से इन्होंने विदर्भराज भीम की कन्या दमयन्ती को व्याहा था। दमयन्ती के रूप की प्रशंसा सुन कर नल उस पर आसक्त हो गये थे । एक दिन राजा नल बगीचे में घूम रहे थे, उसी समय एक सुवर्णहंस को देख कर नल ने उसे पकड़ लिया । हंस ने मनुष्यवचन से नल से कहा—आप मुझे छोड़ दें, मैं आपका उपकार करूँगा । भीम की कन्या दमयन्ती के पास जा कर आपके गुणों की मैं प्रशंसा करूँगा, जिससे वह आपको पति वरण कर ले। नल ने हंस को छोड़ दिया, वह हंस दमयन्ती के निकट जा कर नल की प्रशंसा की, दमयन्ती नल के गुणों पर आसक्त हो गयी । राजा भीम ने कन्या को युवती देख कर स्वयम्बर-सभा निमन्त्रित की, इस सभा में देवता भी आये थे, परन्तु दमयन्ती ने नल को वरण किया । (महाभारत)

नलकूवर=यक्षराज कुवेर का पुत्र। इनके भाई का नाम मणिग्रीव था। एक समय दोनों भाई मदमत्त हो कर कैलास के समीप गङ्गातीरस्थ तपोवनों में स्त्रियों के साथ क्रीड़ा कर रहे थे । यह देख नारद ने इनको शाप दिया था नारद के शाप से ये दोनों भाई अर्जुन वृक्ष के रूप में परिणत हुए। (देखो यमलार्जुन)

एक समय स्वर्ग की अप्सरा रम्भा अभिसारिका वेश में नलकूवर के पास जा रही थी रावण ने बलात्कार से रम्भा को रोक रखा, इससे क्रुद्ध हो कर रम्भा ने रावण को शाप दिया कि यदि रावण किसी स्त्री पर बलात्कार करेगा तो उसका सिर फट जायगा।

(रामायण)

नवखान कवि=ये हिन्दी के कवि थे और बुन्देलखण्ड के रहने वाले थे । सं० १७१२ में इनका जन्म हुआ था। इनकी कविता सुन्दर होती है ।

नवनिधि=ये हिन्दी के कवि थे । इनकी कविता अत्यन्त मधुर होती थी ।

नवलकिशोर मुंशी=यह एक साधारण व्यक्ति थे, किन्तु निज अध्यवसाय और प्रतिभा से ये बहुत बड़े धनी हुए। इन्होंने लखनऊ में एक छापाख़ाना सन् १८५८ ई० में खोला । उत्तरी भारत में यह प्रथम ही छापाख़ाना है जिसने भाषा के ग्रन्थों के प्रकाशन की ओर सबसे पहले ध्यान दिया है । आज मुंशी नवलकिशोर का छापाख़ाना सारे भारतवर्ष में सबसे बड़ा पब्लिशिङ्ग हाउस है । इसने हिन्दी, उर्दू, फारसी और संस्कृत के सब मिला कर चार हज़ार से अधिक ग्रन्थ प्रकाशित किये हैं और इस प्रेस के वर्तमान अधिपति रायबहादुर मुंशी प्रयागनारायण साहब भी नित्य नये नये ग्रन्थ प्रकाश कर रहे हैं ।

जिस समय यह प्रेस स्थापित किया गया था, उस समय अवध सिपाही विद्रोह के उपद्रवों से भले प्रकार शान्त नहीं हो पाया था । इस छापेख़ाने ने अङ्गरेज़ सरकार के सदुद्देश्यों का सर्वसाधारण में प्रचार कर चिरस्मरणीय देशसेवा

की । उसीके फल से और ब्रिटिश सरकार की कृपादृष्टि से इस प्रेस की उत्तरोत्तर उन्नति होती गयी । इसके मालिक सरकार के विशेष कृपापात्र बने और इन्हें मान प्रतिष्ठा भी मिली ।

जिस समय यह प्रेस खोला गया था, उस समय इस देश में रेल का प्रसार नहीं हो पाया था, तथापि मुंशी जीने सरकारी उच्च कर्मचारियों की सहायता से, कलकत्ते से छापेख़ाने की भारी भारी कलें तथा टाइप आदि अन्य सामान लखनऊ तक मँगवा लिये ।

सन् १८५९ ई० में इस छापेख़ाने से एक पत्र अङ्गरेज़ी में निकाला गया । इसका उद्देश्य था कि प्रजा के उत्तेजित चित्त को सरकार की शान्त नीति समझा कर शान्त स्थापित करें । जब यह उद्देश्य पूर्ण हो चुका तब वह बन्द कर दिया गया । तथापि उसके शून्य आसन को उर्दू भाषा के एक दैनिक पत्र "अवध समाचार" ने ग्रहण किया । इसकी नीति प्रजा के मन में सरकार की ओर से विश्वास उत्पन्न कराना है ।

सरकार ने मुंशी जी की राजभक्ति और देशसेवा देख कर उनको सी. आई. ई. की सूपाधि से अलंकृत किया था ।

नवलसिंह कायस्थ=ये हिन्दी के कवि झाँसी के निवासी थे और राजा समथर के दरबार में नौकर थे । इनका जन्म सं० १९०८ में हुआ था । ये बड़े कवियों में थे । नामरामायण और हरिनामावली नामक दो ग्रन्थ भी इनके बनाये हैं ।

नवलदास क्षत्रिय=ये जाति के क्षत्रिय और हिन्दी के कवि थे । गूढ़गाँव ज़िला बाराबङ्की के रहने वाले थे । सं० १३१९ में ये उत्पन्न हुए थे । इनके बनाये ग्रन्थ का नाम "ज्ञानसरोवर" है ।

नवीन कवि=ये हिन्दी के कवि थे । इनके बनाये शृङ्गार रस के सुन्दर कवित्त पाये जाते हैं ।

नबी कवि=ये हिन्दी के कवि थे और इन्होंने नखसिखवर्णन पर एक ग्रन्थ बनाया है ।

नहुष=चन्द्रवंशी आयु नामक राजा के पुत्र । इन्होंने तपस्या और यज्ञ आदि के अनुष्ठान से इन्द्रत्व प्राप्त किया था । महर्षि अगस्त्य के शाप से ये इन्द्रपद से भ्रष्ट हो गये और भूतल में दस हज़ार वर्ष तक साँप हो कर रहे । नहुष के बहुत विनय करने पर अगस्त्य प्रसन्न हुए और उन्होंने कहा कि तुम्हारे वंश में युधिष्ठिर नामक एक राजा होंगे उन्हींके अनुग्रह से तुम्हारी गति होगी । वनवास के समय भीम को नहुषरूपी सर्प ने पकड़ लिया । भीम के आने में विलम्ब देख कर उन्हें ढूँढ़ने के लिये युधिष्ठिर बाहर गये और उन्होंने भीम को उस अवस्था में देखा । युधिष्ठिर ने सर्प का परिचय पूँछा और क्या देने से वह भीमसेन को छोड़ देगा यह भी पूँछा । सर्प ने अपना परिचय दिया और शापमुक्त होने के कारण दिव्य शरीर धारण कर वह स्वर्ग को प्रस्थित हुआ ।

(महाभारत)

नागर=ये हिन्दी के एक कवि थे । इनका जन्म सं० १६४२ में हुआ था । इनके बनाये कुछ कवित्त हज़ारा में हैं ।

नागोजी भट्ट=ये महाराष्ट्र ब्राह्मण काशीनिवासी थे और प्रसिद्ध वैयाकरण थे । इनके पिता का नाम शिव भट्ट और माता का नाम सती देवी था । ये शृङ्गवेरपुर (सिंगरौर) के राजा रामसिंह के आश्रित थे और भट्टोजी के पौत्र हरि दीक्षित के शिष्य थे । इन्होंने संस्कृत में अनेक ग्रन्थ बनाये हैं । बृहल्लघुमञ्जूषा, लघुमञ्जूषा, लघुशब्देन्दुशेखर, परिभाषेन्दुशेखर, लघुशब्दरत्न आदि व्याकरण ग्रन्थ, प्रायश्चित्तेन्दुशेखर, आचारेन्दुशेखर, तीर्थेन्दुशेखर, श्राद्धेन्दुशेखर आदि बारह धर्मशास्त्र विषयक शेखर ग्रन्थों के अतिरिक्त कई ग्रन्थों की इन्होंने टीका भी की है । इनमें से वाल्मीकीयरामायण पर "रामाभिरामी", काव्यप्रदीप पर "उद्योत" नाम की टीका प्रसिद्ध हैं । दुर्गा सप्तशती की भी इनकी बनायी एक उत्तम टीका है । कहते हैं कि सोलह वर्ष की अवस्था तक इन्होंने कुछ भी विद्याभ्यास नहीं किया था । परन्तु पीछे किसी के उपदेश से वागीश्वरी देवी की आराधना कर इन्होंने विद्या पायी । इनका समय १७वीं सदी माना जाता है ।

नाचिकेता=प्रसिद्ध तपस्वी उद्दालक ऋषि के पुत्र। एक समय उद्दालक भ्रम से कुश पुष्प आदि नदी के किनारे भूल आये थे। घर आ कर उन्होंने अपने पुत्र नाचिकेता को ले आने के लिये नदी किनारे भेजा। नाचिकेता नदी किनारे गये, परन्तु वहाँ फल पुष्प आदि न पा कर खाली हाथों लौट आये। पुत्र को खाली हाथ लौटते देख कर और क्रुद्ध हो कर उद्दालक मुनि ने शाप दिया—तुम्हें शीघ्र ही यम का दर्शन हो, पिता के शाप से नाचिकेता प्राण-हीन हो कर भूमि पर गिर पड़े। महर्षि उद्दालक पुत्र को मरा देख विलाप करने लगे। एक दिन और एक रात वह शव कुशासन पर पड़ा रहा। दूसरे दिन अकस्मात् उस शव में जीवन सञ्चार होने लगा। उद्दालक ने पुत्र को यह कह कर प्रणाम किया—पुत्र ! तुम अपने तपोबल के प्रभाव से समस्त स्वर्गलोक देख आये हो। तुम्हारा यह शरीर मनुष्यशरीर नहीं है। नाचिकेता बोले—मैं पिता के शाप से शरीर त्याग कर के यमलोक में गया, और यमराज से मैंने पूछा—मुझे कहाँ जाना होगा, तब यम बोले—पिता ने आपको यमदर्शन होने का शाप दिया था, सो हो चुका, अब आप घर जा सकते हैं। तब नाचिकेता ने अपने पुण्योपार्जित लोक देखने की इच्छा प्रकट की। यम की आज्ञा से एक दिव्य रथ उपस्थित हुआ उस रथ पर चढ़ कर नाचिकेता ने पुण्यलोकों का दर्शन किया। नाचिकेता ने कहा—सब लोकों की अपेक्षा गोदान से जो लोक प्राप्त होता है, वह अत्यन्त रमणीय है। उन लोक देख कर नाचिकेता लौट आये।

(महाभारत)

कठोपनिषद् में नाचिकेता की कथा दूसरे प्रकार से लिखी है। ये वाजश्रवस नामक राजा के पुत्र थे। वाजश्रवस का दूसरा नाम गौतम था। एक समय गौतम ने विश्वजित् नामक यज्ञ किया। इस यज्ञ में राजा ने अपनी समस्त सम्पत्ति ब्राह्मणों को दे दी। उस समय नाचिकेता बालक थे। बालक नाचिकेता पिता को दान करते देख बहुत ही आनन्दित हुए, उन्होंने अपने पिता से कहा कि मुझे भी किसी ब्राह्मण को दे दो। परन्तु राजा ने बालक नाचिकेता के कहने पर ध्यान नहीं दिया। तथापि बालक कहता ही गया। इससे क्रुद्ध हो कर राजा वाजश्रवस बोले—" मृत्यवे त्वां ददामीति " राजा ने अपना वचन सत्य करने के लिये पुत्र को यमराज के समीप भेज दिया। नाचिकेता ने यमराज के यहाँ तीन दिन वास किया, उस समय यमराज ब्रह्मलोक में गये हुए थे, अतः नाचिकेता को उनका दर्शन नहीं हो सका। यम ने ब्रह्मलोक से लौट कर देखा कि उनके घर पर अतिथि तीन दिन से उपवास कर रहा है। यम बोले—तुमने तीन दिन हमारे यहाँ उपवास किया है अतएव तुम तीन वर माँगो।

नाचिकेता ने तीन वर ये माँगे—

(क) मेरे पिता सर्वदा इसी चिन्ता में पड़े रहते हैं कि मैं (नाचिकेता) यमलोक में किस प्रकार रहता हूँ, मेरी प्रार्थना है कि मेरे पिता की यह चिन्ता दूर हो और वे मुझ पर पहले के समान प्रसन्न रहें और आपकी दया से जब मैं वहाँसे लौटूँ तब मेरे पिता को यह ज्ञान बना रहे कि मैं यमराज के यहाँसे लौट आया हूँ।

(ख) जो लोग स्वर्गलोक में जाँय, उन्हें जरा, मृत्यु, क्षुत्पिपासा आदि का कष्ट न रहे। यमराज ने ये दो वर दिये। तदनन्तर नाचिकेता ने तीसरा वर यह माँगा—

(ग) कोई कोई कहते हैं कि मनुष्य की मृत्यु होने पर शरीर इन्द्रिय मन बुद्धि से अतिरिक्त जीवात्मा रहता है, और कोई कोई कहते हैं कि जीवात्मा नहीं है। इस विषय में हमको सन्देह है, आप मेरे इस सन्देह को दूर करें। यही मेरी तीसरी प्रार्थना है।

यम ने अनेक प्रकार के ऐश्वर्यों का लोभ दिखा कर नाचिकेता से तीसरे वर को छुड़वाने की चेष्टा की, परन्तु किसी भी प्रकार से नाचिकेता ने उसे नहीं छोड़ा। अन्त में प्रसन्न हो कर नाचिकेता को यम ने परमात्मविषयक उपदेश दिया।

(कठोपनिषद्)

नाथ कवि=(१) ये हिन्दी के एक कवि थे। मालूम नहीं इनका पूरा नाम क्या था। उदयनाथ, शिवनाथ, शम्भुनाथ आदि कवियों ने अपना नाम पद्यों में केवल नाथ ही लिखा है।

(२) ये एक हिन्दी के कवि थे और सं० १७३० में उत्पन्न हुए थे। ये नव्वाब फजल अलीखाँ के यहाँ रहते थे।

(३) हिन्दी के कवि। ये सं० १८०३ में उत्पन्न हुए थे और मानिकचन्द के यहाँ रहते थे।

(४) हिन्दी के कवि। इनके जन्म का समय सं० १८११ बताया जाता है, और राजा भगवन्तराय खींची के साथ रहते थे।

(५) ये गुजराती ब्राह्मण काशी में रहते थे। इनका पूरा नाम हरनाथ था। सं० १८३६ में ये उत्पन्न हुए थे। अलङ्कारदर्पण नामक इनका बनाया ग्रन्थ उत्तम है।

(६) ये हिन्दी के एक कवि थे। इनकी कविता सुन्दर होती थी।

(७) हिन्दी के कवि। ये ब्रजवासी थे और ऊँचेगाँव वाले गोपाल भट्ट के पुत्र थे। सं० १६४१ में इनका जन्म हुआ था। इनका षट्ऋतुवर्णन सुन्दर है।

नादिरशाह=पारस देश के एक अधिपति का नाम। सन् १६८७ ई० में फारस के खुरासान नामक स्थान में एक मेषपालक के यहाँ इनका जन्म हुआ था। फ्रांस के विख्यात नेपोलियन बोनापार्ट की तरह इन्होंने भी एक दरिद्र बालक हो कर राजपद पाया था। फारस अफगानिस्तान आदि देशों पर अधिकार कर के इन्होंने अपनी शासनशक्ति बढ़ायी थी। दिल्ली के सम्राट् महम्मदशाह के समय फारस के अधिपति नादिरशाह भारत में भी आये थे। सन् १७३६ ई० में मुगलसेना के साथ नादिरशाह का युद्ध हुआ। इस युद्ध में २० हज़ार मुगल मारे गये और उनके प्रधान सेनापति भी इसी युद्ध में निहत हुए। दूसरी गति न देख महम्मदशाह ने नादिरशाह की अधीनता स्वीकार की। नादिर ने दिल्ली में प्रवेश किया और दिल्ली में जा कर नादिर ने "कत्ले आम" की आज्ञा दे दी। इससे १ लाख बीस हज़ार नगरवासी मारे गये। नादिरशाह दिल्ली के ख़ज़ाने से धन रत्न और मोरपंखी सिंहासन ले कर चला गया। कहते हैं नादिरशाह ने भारत से ६ करोड़ रुपये का माल असबाब लूटा था। इस अत्याचार का फल उसे जीवन के अन्त में भोगना पड़ा था। वह पागल हो कर अत्याचार करने लगा। उसके अत्याचार से लोग घबड़ा गये। अनन्तर १७४७ ई० में एक घातक के द्वारा उसकी मृत्यु हुई। नादिरशाह का पहला नाम नादिर कुलीख़ाँ था। पारस के अधिपति होने पर उसका नाम नादिरशाह हुआ था।

(इतिहास)

नानक=सिखों के गुरु। सन् १४६६ ई० में पञ्जाब की इरावती नदी के तीरस्थ तलवन्दी नामक गाँव में नानक का जन्म हुआ था। नानक के पिता का नाम कालू था। ७ वर्ष की अवस्था में कालू ने अपने पुत्र को पढ़ने के लिये विद्यालय में भेजा। ६ वर्ष की अवस्था में जब नानक के यज्ञोपवीत का आयोजन होने लगा, तब नानक ने कहा कि लौकिक यज्ञोपवीत से क्या लाभ है? भगवान् का नाम ही श्रेष्ठ उपवीत है। कालू की सांसारिक अवस्था अच्छी नहीं थी। धन के अभाव से उन्हें सर्वदा कष्ट होता था। एक समय कालू ने अपने नौकर के साथ कुछ द्रव्य दे कर नानक को बाज़ार भेजा था। नानक ने वह द्रव्य गरीबों को बाँट दिया। घर आने पर पिता ने उन्हें बहुत धमकाया। उसके उत्तर में नानक बोले—मनुष्यों के साथ लेन देन से जो लाभ होता है, उससे कहीं अधिक ईश्वर के साथ लेन देन से लाभ होता है। उस समय नानक की अवस्था १५ वर्ष की थी। एक दिन किसी देवमन्दिर की ओर पैर फैला कर नानक सोये थे, लोगों ने आश्चर्य से इसका कारण पूँछा—नानक ने उत्तर दिया मैं जिधर पैर फैलाऊँगा उधर ही ईश्वर का मन्दिर है। इन सब बातों से देखा जाता है कि भावी सिखगुरु का धर्मभाव बाल्यकाल ही में स्फुरित हो गया था।

नानक एकेश्वरवादी थे। कोई कोई कहते हैं कि ये कबीर के शिष्य थे, और कोई कोई कहते हैं कि सैयदहुसेन नामक एक मुसलमान फकीर से इन्होंने दीक्षा ली थी। हिन्दू और मुसल्मानों का धार्मिक सामाजिक विरोध मिटाना ही नानक के धर्म का उद्देश्य था। इस विषय में इन्होंने सफलता भी पायी थी, नानक हिन्दुओं के अवतारों को मानते थे और महम्मद को ईश्वर का दूत समझते थे। वे कभी हिन्दू संन्यासियों के वेष में और कभी मुसलमान फकीरों के वेष में घूमा करते थे। सन् १५३८ ई० में नानक की मृत्यु हुई।

४० वर्ष की अवस्था में इन्हें "सिखगुरु" की पदवी मिली थी। इनके मृतदेह के लिये इनके मुसलमान और हिन्दू शिष्यों में झगड़ा हुआ था। अन्त में निश्चित हुआ कि यह देह जल में डुबादिया जाय। जल में डुबाने के समय देखा गया कि मृतशरीर नहीं है। तब हिन्दू और मुसलमान शिष्यों ने कफन आधा आधा फाड़ कर अपनी अपनी रीति के अनुसार गुरु की अन्तिम क्रिया की। इनका उपदेश ग्रन्थ-साहब के नाम से प्रसिद्ध है, नानकपन्थियों में ग्रन्थसाहब का बड़ा आदर होता है।

नानासाहब=ये बाजीराव पेशवा के दत्तक पुत्र थे। इनका नाम धुन्धूपन्थ था। सन् १८१८ ई० में बाजीराव ने अंग्रेज़ गवर्नमेंट को आत्मसमर्पण किया, और कानपुर से १२ मील की दूरी पर गवर्नमेंट के वृत्तिभोगी रूप से विठूर नामक गाँव में वे रहने लगे। गवर्नमेंट से बाजीराव को तीन लाख रुपये की वृत्ति मिलती थी। उन्होंने अपने अन्तिम पत्र में धुन्धूपन्थ को अपना उत्तराधिकारी बनाया। सन् १८५१ ई० में बाजीराव की मृत्यु हुई। तदनन्तर २७ वर्ष की अवस्था में धुन्धूपन्थ अंग्रेज़ गवर्नमेंट की आज्ञा से पेशवा की गद्दी पर बैठे। धुन्धूपन्थ को गद्दी पर बैठने के समय बाजीराव के छोड़े २० लाख रुपये नक़द और बहुमूल्य आभूषण आदि प्राप्त हुए। बाजीराव ने धुन्धूपन्थ को गवर्नमेंट की आज्ञा से दत्तक लिया था, उस समय गवर्नमेंट ने कहा था कि धुन्धूपन्थ पेशवा कहे जाँयगे, और उनको सरकार से वृत्ति मिलेगी। धुन्धूपन्थ ने गवर्नमेंट से प्राप्य वार्षिक वृत्ति पाने की प्रार्थना की। इस समय टामसन साहब युक्त प्रदेश के छोटे लाट थे और लार्ड डलहौसी भारत के बड़े लाट थे। टामसन ने नानासाहब की प्रार्थना अस्वीकृत की। बड़े लाट ने भी टामसन की युक्ति का समर्थन किया। उन्होंने कहा बाजीराव को ४३ वर्ष तक गवर्नमेंट ने ८ लाख रुपये वार्षिक वृत्ति दी है और बाजीराव पेशवा की मृत्यु के समय धुन्धूपन्थ को बहुत धन भी मिला है, उसी धन से उसे परिवार पालन करना उचित है। यहीं नानासाहब के असन्तोष का कारण हुआ। इसी असन्तोष ने सन् १८५७ ई० में सिपाही-विद्रोह भड़काया था जिसमें असंख्य जनों का क्षय हुआ। उस समय लार्ड कैनिङ्ग शासक थे। नानासाहब ही सिपाहियों के प्रधान नेता थे। कानपुर में ही सबसे अधिक जनसंहार हुआ था। बड़े परिश्रम से सिपाही-विद्रोह का दमन हुआ। १८५९ में ताँतियाटोपी को फाँसी होने पर नानासाहब वन में भाग गये। (इतिहास)

नाभाग=करुप के सात पुत्र थे, उनमें एक दिष्ट भी थे, महाराज दिष्ट के पुत्र नाभाग थे। नाभाग ने पिता के निषेध करने पर भी एक वैश्यकन्या को व्याहा था और किसी मुनि के वर से इन्हें क्षत्रियत्व प्राप्त हुआ था।

(मार्कण्डेयपुराण)

नाभादास कवि=ये हिन्दी के कवि दक्षिणी ब्राह्मण थे और सं० १५४० में उत्पन्न हुए थे। जयपुर गलता गादी के महन्थ अग्रदास जी ने इन्हें शिष्य बनाया था। ये भक्त और कवि थे। इनके बनाये ग्रन्थ का नाम "भक्तमाल" है। इसमें १०८ छप्पय हैं। इस ग्रन्थ में भक्तों की विचित्र कथा है।

नायक कवि=हिन्दी के एक कवि। दिग्विजय-भूषण नामक ग्रन्थ में इनके बनाये पद्य पाये जाते हैं।

नारद=ब्रह्मा के मानसपुत्र। ब्रह्मा ने पहले मरीचि, अत्रि आदि की और सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार तथा नारद की सृष्टि की। नारद की

कथा प्रायः सभी पुराणों में देखी जाती है। नार शब्द का अर्थ है जल, सर्वदा तर्पण करने के कारण इनका नाम नारद पड़ा। प्रजापति दक्ष ने प्रजा सृष्टि की उत्कट इच्छा के कारण वीरण प्रजापति की कन्या असिक्नी को व्याहा और उसके गर्भ से ५ हज़ार कन्याएँ उत्पन्न कीं। हर्यश्व शबलाश्व आदि दक्ष-पुत्रों को योग-शास्त्र का उपदेश दे कर संसारत्यागी बना दिया। इससे दक्ष अत्यन्त क्रुद्ध हुए और शाप दे कर उन्होंने नारद का नाश कर दिया। दक्ष के निकट आ कर ब्रह्मा ने नारद के जीवन की प्रार्थना की, तब दक्ष ने अपनी एक कन्या ब्रह्मा को दे कर कहा कि कश्यप इस कन्या को व्याहें और इसीके गर्भ से पुनः नारद उत्पन्न होगा। ब्रह्मा ने दक्षकन्या कश्यप को दी और उसके गर्भ से पुनः नारद उत्पन्न हुए।

(हरिवंश)

श्रीमद्भागवत में नारद ने भगवान् व्यास से अपने पूर्वजन्म के वृत्तान्त कहे हैं, वे इस प्रकार हैं—

वह (नारद) वेदज्ञ ब्राह्मणों की एक दासी के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। बाल्यकाल ही से वे उन वेदज्ञ ब्राह्मणों की सेवा करने लगे। ऋषियों का भी उन पर अधिक स्नेह था। एक दिन ऋषियों का उच्छिष्ट खाने से वह पापमुक्त हो गया, उसकी चित्तशुद्धि हो गयी। ऋषियों द्वारा उच्चारित हरिगुण के गान में उनका चित्त अत्यन्त अनुरक्त हो गया। उस समय उनकी अवस्था ५ वर्ष की थी। एक दिन साँप के काटने से अकस्मात् उसकी माता की मृत्यु हुई। माता के मरने के अनन्तर इसने स्वाधीनभाव से उस आश्रम को छोड़ कर उत्तर की ओर प्रस्थान किया और घूमते घूमते वह एक वन में चला गया। अत्यन्त क्षुधातुर और तृष्णार्त होने के कारण एक सरोवर में उसने स्नान और जलपान किया। तदनन्तर वह एक वट वृक्ष के नीचे बैठ कर भगवान् की आराधना करने लगा। एकाग्र चित्त से ध्यान करते करते उसने हृदय में भगवान् का दर्शन पाया, परन्तु शीघ्र ही भगवान् के अन्तर्हित हो जाने से नारद व्याकुल हो गये। भगवान् ने आकाशवाणी द्वारा नारद को सान्त्वना देते हुए कहा—नारद, इस जन्म में तुम हमको नहीं देख सकते क्योंकि अजितेन्द्रिय योगी हमको नहीं देख सकता, तो भी जो मैंने तुम्हें दर्शन दिया वह केवल तुम्हारी भक्ति की दृढ़ता के लिये। मेरी भक्ति से साधुजन इन्द्रिय जय कर के मुझको प्राप्त कर सकते हैं। अतएव साधुसेवा द्वारा तुम अपनी भक्ति दृढ़ करो, इस प्रकार तुम शीघ्र ही इस निन्दित लोक को छोड़ कर हमारे पार्श्वचर होओगे। हमारे अनुग्रह से तुमको प्रलयकाल में भी हमारी स्मृति बनी रहेगी। तबसे नारद हरिनाम का जप करते करते पृथ्वीपरिक्रमा करने लगे। अनन्तर भोग के शेष होने पर इनका पाञ्चभौतिक शरीर नष्ट हो गया। पुनः सृष्टि के अनन्तर विष्णु के मानसपुत्ररूप से नारद उत्पन्न हुए।

(श्रीमद्भागवत)

ब्रह्मवैवर्तपुराण के मत से नारद ब्रह्मा के मानसपुत्र थे। ये ब्रह्मा के कण्ठ से उत्पन्न हुए थे। ब्रह्मा ने नारद तथा अन्य अपने मानसपुत्रों से सृष्टिकार्य करने के लिये कहा। नारद ने देखा कि सृष्टिकार्य में लगने से ईश्वरचिन्ता में बाधा होगी। इस कारण उन्होंने पिता की आज्ञा का पालन नहीं किया। इससे क्रुद्ध हो कर ब्रह्मा ने नारद को शाप दिया। ब्रह्मा के शाप से नारद गन्धमादन पर्वत पर गन्धर्वयोनि में उत्पन्न हुए और इनका नाम उपबर्हण था। इस जन्म में उन्होंने गन्धर्वराज चित्ररथ की ५० कन्याओं को व्याहा था। उन स्त्रियों में मालावती सब से प्रधान थी। एक समय स्वर्गवेश्या रम्भा ब्रह्मा की सभा में नाच रही थी। उसको देखने से नारद का वीर्यपात हो गया, इससे क्रुद्ध हो कर ब्रह्मा ने नारद को शाप दिया। ब्रह्मा के शाप से नारद गन्धर्वदेह छोड़ कर नरदेह में उत्पन्न हुए। ये कान्यकुब्जवासी गोपराज द्रुमिल की स्त्री कलावती के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। कलावती वन्ध्या थी। काश्यप नारद नामक

ऋषि स्वर्ग की अप्सरा मेनका को देख कर काममोहित हुए और उनका रेतःपात हो गया। किसी प्रकार से कलावती ने उस रेत को खा लिया। उससे उसके गर्भ रहा और उसी गर्भ से नारद उत्पन्न हुए। काश्यप नारद के वीर्य से उत्पन्न होने के कारण इनका नाम नारद पड़ा। ये बालकों को जलदान तथा ज्ञानदान करते थे और ये जातिस्मर और महाज्ञानी थे इस कारण इनका नाम नारद हुआ।

" ददाति नारं ज्ञानं च बालकेभ्यश्च नित्यशः।
जातिस्मरो महाज्ञानी तेनायं नारदः स्मृतः॥ "

(ब्रह्मवैवर्तपुराण)

ब्राह्मणों ने इन्हें विष्णुमन्त्र का उपदेश दिया था। इनकी आराधना से प्रसन्न हो कर भगवान् विष्णु ने इन्हें दर्शन दिया और शीघ्र ही अन्तर्द्धान हो गये। नारद के व्याकुल होने पर आकाशवाणी हुई—तुम इस नश्वरदेह के अन्त में मुझको पा सकोगे। यथासमय शरीर त्याग कर के नारद ब्रह्म में लीन हुए। महाभारत में लिखा है कि नारद ने ब्रह्मा से सङ्गीतविद्या सीखी थी और दक्ष के पुत्र को सांख्ययोग का ज्ञानोपदेश कर के संसार त्याग किया।

(महाभारत)

एक समय विष्णु की सभा में नारद और तुम्बरु उपस्थित हुए। विष्णु की आज्ञा से तुम्बरु गान करने लगे। तुम्बरु का गान सुन कर नारद को ईर्षा उत्पन्न हुई, अतएव विष्णु की आज्ञा से उलूकेश्वर के निकट जा कर नारद गानविद्या सीखने लगे। गीत वाद्य में शिक्षा पा कर नारद तुम्बरु को जीतने की इच्छा से उनके घर की ओर जा रहे थे, मार्ग में उन्होंने लूले लंगड़े अनेक स्त्री पुरुषों को देखा। उन स्त्री पुरुषों ने कहा—हमलोग राग रागिणी हैं नारद के गान से हमलोगों का अङ्गभङ्ग हो गया, तुम्बरु के दर्शन के लिये हमलोग यहाँ खड़े हैं। यह सुन नारद लज्जित हुए, नारद ने विष्णु के समीप जा कर समस्त वृत्तान्त कहा। विष्णु बोले, गीतशास्त्र में तुम्हें अभी अभिज्ञता नहीं प्राप्त हुई, जब हम यदुवंश में श्रीकृष्णरूप से अवतीर्ण होंगे तब तुम गानविद्या की शिक्षा प्राप्त करना। भगवान् श्रीकृष्ण के अवतीर्ण होने पर नारद वहाँ उपस्थित हुए। श्रीकृष्ण की आज्ञा से नारद ने पहले जाम्बवती और सत्यभामा के निकट दो वर्ष तक गान किया तथापि वे स्वर नहीं सीख सके। तदनन्तर इन्होंने रुक्मिणी के निकट दो वर्ष तक वीणा से गान सीखा।

एक समय नारद ने विष्णु से माया का स्वरूप पूछा। ब्राह्मण का रूप धारण कर के विष्णु ने ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य आदि के घर में जा कर माया के विविध रूप दिखाये। इसी यात्रा में एक सरोवर में स्नान करने से नारद को स्त्रीत्व प्राप्त हुआ। स्त्रीवेशी नारद १२ वर्ष तक राजा तालध्वज की पत्नी हो कर रहे। अनन्तर विष्णु आये और तालजङ्घ की पत्नी को सरोवर में स्नान करा कर उसे पुनः नारद बना लिया। (भागवत)

विद्वानों का अनुमान है कि नारद नाम का एक व्यक्ति पहले हुआ होगा, परन्तु पीछे से उस व्यक्ति के धर्ममत तथा सिद्धान्तों के आधार पर एक सम्प्रदाय गठित हुआ। उस सम्प्रदाय के लोग नारद कहे जाते हैं। क्योंकि सृष्टि की आदि से ले कर श्रीकृष्ण जी पर्यन्त नारद नामक देवर्षि का पता लगता है। नारद कभी देवर्षियों में और कभी ब्रह्मर्षियों में भी देखे जाते हैं, ऐसी स्थिति में एक नारद का होना वे विद्वान् स्वीकार करना नहीं चाहते। नारद के बनाये ग्रन्थ का नाम नारद-पाञ्चरात्र और नारदसूत्र है।

नारायण=(१) (देखो नर)

(२) एक ज्योतिषी पण्डित। मुहूर्तमार्तण्ड नामक जो संस्कृत का प्रसिद्ध ग्रन्थ है उसके रचयिता नारायण हैं। इन्होंने अपने ग्रन्थ पर " मार्तण्डवल्लभा " नामक एक टीका भी की है। पं० सुधाकर द्विवेदी जी के मत से इन ग्रन्थों का निर्माणकाल शाके १४९३ (१५७१ ई०) है। यही समय स्वयं नारायण ने अपने ग्रन्थ में लिखा है। मुहूर्तमार्तण्ड ग्रन्थ के

अन्त में अपना कुछ विशेष परिचय भी इन्होंने दिया है। यथा—

"श्रीमत्कौशिकपावनो हरिपदद्वन्द्वार्पितात्मा हरिस्तज्जोऽनन्त इलासु रोचितगुणो नारायणस्तत्सुतः।
ख्यातं देवगिरेः शिवालयमुदक् तस्माद्दुदक् टापरो ग्रामस्तद्वसतिर्मुहूर्तभवनं मार्तण्डमत्राकरोत्॥"

इससे विदित होता है कि इनके पिता का नाम अनन्त और निवासस्थान देवगिरि से कुछ दूर पर टापर एक गाँव था। सन् १५७१ ई० और सन् १५७२ ई० में ग्रन्थ बनाने से इनका समय ख्रीष्टीय १६ वीं सदी का पिछला भाग मान लेने में कुछ भी बाधा नहीं।

नारायणराय=ये बनारस के सरदार कवि के शिष्य थे। "भाषाभूषण" की टीका और "कविप्रिया" की "वार्तिक" टीका इन्होंने बनायी। शृङ्गाररस के इनके अनेक कवित्त पाये जाते हैं।

नारायणदास=ये भाषा के कवि थे सं० १६१५ में उत्पन्न हुए थे। इन्होंने हितोपदेश को भाषा छन्दों में बनाया।

नारायणदास वैष्णव=ये हिन्दी के कवि थे। छन्दसार नामक एक पिङ्गल ग्रन्थ भी इन्होंने बनाया है।

नारायण वन्दीजन=ये हिन्दी के कवि थे और काकूपुर ज़िला कानपुर के रहने वाले थे। सं० १८०९ में ये उत्पन्न हुए थे। इन्होंने शिवराजपुर के चन्देल राजाओं की वंशावली बनायी है।

नारायण भट्ट=ये गोकुलस्थ गोसाईं थे और ऊँचगाँव बरसाने के समीप के रहने वाले थे। सं० १६२० में इनका जन्म हुआ था। रागसागरोद्भव में इनके पद पाये जाते हैं। ये महाराज बड़े भक्त थे। वृन्दावन, मथुरा, गोकुल आदि तीर्थों में जो तीर्थ लुप्त हो गये थे उन सबको प्रकट कर रासलीला की जड़ इन्होंने प्रथम डाली है।

निकुम्भ=(१) दैत्यविशेष। यह श्रीकृष्ण के द्वारा मारा गया था।

(२) कुम्भकर्ण के पुत्र का नाम। यह रावण का मन्त्री था, लङ्का के युद्ध में यह मारा गया था, इसके भाई का नाम कुम्भ था।

(रामायण)

निदाघ=ये पुलस्त्य के पुत्र थे। इनके गुरु का नाम ऋभु था, देविका नाम की नदी के किनारे वीरपुर नामक गाँव में ये रहते थे। इन्होंने ऋभु के द्वारा अद्वैत तत्त्व की शिक्षा पायी थी।

(विष्णुपुराण)

निधान कवि=(१) ये हिन्दी के कवि सं० १७०८ में उत्पन्न हुए थे। इनकी कविता सरस होती थी, हज़ारा में इनका उल्लेख किया गया है।

(२) ये ब्राह्मण हिन्दी के कवि थे। अली अकबरखाँ बहादुर के यहाँ ये राजकवि थे। इनका बनाया शालिहोत्र नामक ग्रन्थ उत्तम है।

निपटनिरञ्जन स्वामी=ये सं० १६५० में उत्पन्न हुए थे। ये एक सिद्ध हो गये हैं। इन्होंने कितने ही ग्रन्थ बनाये हैं, इसका ठीक पता नहीं लगता। शान्तसरस और निरञ्जनसंग्रह आदि ग्रन्थ देखे जाते हैं।

निमि=सीता के पिता कुशध्वज जनक के पूर्वपुरुष। निमि के पुत्र मिथि थे, इन्होंने ही मिथिला बसाया था। मिथि के पुत्र का नाम जनक था। इन्हीं जनक से उनके वंशज जनक नाम से प्रसिद्ध हुए। (देखो कुशध्वज)

निम्बादित्य=वैष्णवों के चार प्रसिद्ध सम्प्रदायों का नाम पद्मपुराण में लिखा मिलता है। उनमें से पहला श्रीरामानुज सम्प्रदाय है, जिसका सिद्धान्त विशिष्टाद्वैतवाद है, दूसरा माध्व सम्प्रदाय है, जिसके मत में जीव और ब्रह्म भिन्न हैं। तीसरा विष्णुस्वामी का सम्प्रदाय है, जो माध्व से बहुत कुछ मिलता है, दोनों भेदवादी हैं, चौथा वैष्णवों का सम्प्रदाय इन्हीं निम्बादित्य का प्रवर्तित है। इनके सिद्धान्त को द्वैताद्वैतवाद कहते हैं। इनके मतानुसार जैसे डाल पत्ते आदि वृक्ष से भिन्न हैं और अभिन्न भी हैं उसी प्रकार जीव भिन्न भी है और अभिन्न भी है।

इनका निम्बादित्य नाम पड़ने का यह कारण सुनने में आता है कि किसी जैन से इनका शास्त्रार्थ होता था। वाद विवाद करते सन्ध्या हो गयी। जब सन्ध्या हो जाने के कारण जैन संन्यासी ने भोजन करने का विचार त्याग दिया। तब इन्हीं आचार्य ने सूर्य को एक नीम के पेड़ पर उस संन्यासी के भोजन करने तक रोक

रखा। इसी कारण इनका नाम निम्बार्क या निम्बादित्य पड़ा।

निम्बादित्य के रचित ग्रन्थ का नाम "धर्माब्धिबोध"—है। मथुरा के पास ध्रुवतीर्थ नामक स्थान है। वहीं पर निम्बादित्य की गद्दी है। लोग कहते हैं कि उनकी गद्दी पर उनके शिष्य हरिव्यास जी के सन्तान आज तक विराजमान हैं। ये लोग निम्बार्कस्वामी का समय १४२० वर्ष से भी पूर्व बताते हैं। परन्तु उनका कहना ठीक नहीं माना जा सकता क्योंकि तीसरे वैष्णवसम्प्रदायप्रवर्तक वल्लभाचार्य १५३५ में उत्पन्न हुए थे, निम्बादित्य इनसे अवश्य पीछे के हैं। अतएव इनका समय १६ वीं सदी का अन्तिम भाग, और १७ वीं सदी का प्रथम भाग माना जा सकता है। इनके केशव और हरिव्यास नामक दो शिष्य थे।

निवाज कवि=(१) ये हिन्दी के कवि जाति के जुलाहे थे और बिलग्राम के रहने वाले थे। शृङ्गाररस के ये अच्छे कवि थे।

(२) ये अन्तरवेदनिवासी और जाति के ब्राह्मण और हिन्दी के कवि थे। महाराज छत्रसाल बुन्देला पन्ना नरेश के दरबार में ये रहते थे। आज़मशाह की आज्ञा से इन्होंने शकुन्तलानाटक का संस्कृत से हिन्दी में अनुवाद किया था।

(३) ये भी हिन्दी के एक कवि थे और बुन्देलखण्डी ब्राह्मण थे। ये भगवन्तराय खींची ग़ाज़ीपुर वाले के यहाँ रहते थे।

निवातकवच=दैत्यविशेष। यह दैत्य संह्लाद का पुत्र और दैत्यपति हिरण्यकशिपु का पौत्र था। इसके वंशज भी निवातकवच कहे जाते हैं। महाभारत में इनकी संख्या तीन कोटि लिखी है। यह दानवसमूह इन्द्र आदि देवताओं का घोर शत्रु है। पाण्डवों के वनवास के समय अर्जुन इन्द्र के निकट अस्त्रविद्या सीखने के लिये स्वर्ग गये हुए थे। उन्होंने देवों से, अस्त्रविद्याविशारद यक्षों से और गन्धर्वों से भी अस्त्रविद्या सीखी। अस्त्रविद्या सीख लेने पर अर्जुन ने इन्द्र से गुरुदक्षिणा देने के लिये प्रार्थना की। इन्द्र ने इनसे गुरुदक्षिणा में निवातकवच आदि का वध किया जाना ही माँगा। अर्जुन मातली द्वारा परिचालित रथ पर बैठ कर निवातकवच के स्थान पर गये और उनका समूल नाश किया। (महाभारत)

निशाकर मुनि=एक तपस्वी। इनका उल्लेख रामायण में किया गया है। दक्षिण समुद्र के किनारे विन्ध्य पर्वत पर इनका आश्रम था। इन्हींके साथ इनके आश्रम में रह कर सम्पाति ने अपनी आयु के ६० हज़ार वर्ष व्यतीत किये थे। (रामायण)

निशुम्भ=विख्यात दानव। यह दानव, महर्षि कश्यप के औरस और उनकी स्त्री दनु के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। इसके बड़े भाई का नाम शुम्भ और छोटे का नमुचि था। नमुचि इन्द्र के द्वारा मारा गया था। कनिष्ठ भाई की मृत्यु से क्रुद्ध हो कर महावीर शुम्भ और निशुम्भ दोनों भाइयों ने स्वर्ग पर आक्रमण किया तथा देवताओं को पदच्युत कर के वे स्वयं स्वर्ग के राजा बने। महिषासुर के मन्त्री रक्तबीज से इनकी भेंट हुई। रक्तबीज से इन लोगों ने सुना कि विन्ध्याचल पर्वत की कात्यायनी देवी ने महिषासुर को मारा है, और उसके सेनापति चण्ड तथा मुण्ड उसी देवी के भय से जल में छिपे हैं। शुम्भ और निशुम्भ ने कात्यायनी को मार डालने का सङ्कल्प किया। उन लोगों ने सुग्रीव नामक दूत को देवी के पास भेजा। देवी के पास जा कर वह दूत बोला—पृथिवी में शुम्भ और निशुम्भ सब से श्रेष्ठ वीर हैं, तुम भी त्रिलोक में सर्वोत्तम सुन्दरी हो, अतः इन दोनों भाइयों में से जिसको चाहो उसीको वर दे सकती हो। देवी ने दूत से कहा—तुम जो कहते हो वह बहुत ठीक है परन्तु मैंने एक प्रतिज्ञा की है कि जो युद्ध में मुझ को परास्त कर देगा उसीको मैं अपना पति बनाऊँगी। ऐसा दूत के कहने पर शुम्भ निशुम्भ ने धूम्रलोचन नामक दैत्य को—देवी को पकड़ कर ले आने के लिये भेजा। धूम्रलोचन के मारे जाने पर दैत्यपति निशुम्भ ने सेनापति चण्ड और मुण्ड को भेजा। परन्तु

वे दोनों भी मारे गये, तब इन लोगों ने तीस कोटि अक्षौहिणी सेना ले कर रक्तबीज को भेजा। रक्तबीज ने घोर युद्ध किया। इसके एक एक रक्तबिन्दु से एक एक दानव उत्पन्न हो कर लड़ने लगते। परन्तु अन्त में समस्त सेना के साथ रक्तबीज मारा गया और इन्द्र को स्वर्ग का राज्य मिला।

(वामनपुराण)

मार्कण्डेयपुराणान्तर्गत देवीमाहात्म्य में शुम्भ और निशुम्भ की उत्पत्ति की बात नहीं लिखी है।

नील=(१) माहिष्मती पुरी के राजा। अग्निदेव ने इनकी सुन्दरी कन्या को ब्याहा था। अग्नि ने राजा नील को वर दिया था कि जो इस नगरी पर चढ़ाई करेगा वह अग्नि द्वारा भस्म हो जायगा। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के समय सहदेव ने इनकी नगरी पर आक्रमण किया था। सहदेव ने जब देखा कि उनकी सेना आग से घिर गयी, तब वे अग्नि की उपासना करने लगे। प्रसन्न हो कर अग्नि ने सहदेव को नीलराज से पूजा दिला दी और लौट जाने के लिये कहा।

(महाभारत)

(२) वानरसेनापति। रामचन्द्र के सेतु बाँधने के समय इसी वानर ने सहायता की थी।

नीलकण्ठ=ये एक प्रसिद्ध ज्योतिषी थे। इनकी बनायी "ताजिक नीलकण्ठी" नाम की पुस्तक का विशेष आदर है। इनके पिता का नाम अनन्त और पितामह का नाम चिन्तामणि था। प्रसिद्ध रामदैवज्ञ—जिन्होंने "मुहूर्तचिन्तामणि" नामक ग्रन्थ बनाया है—इन्हींके कनिष्ठ भाई थे। नीलकण्ठ के पुत्र एक प्रसिद्ध ज्योतिषी थे जिन्होंने मुहूर्तचिन्तामणि की पीयूषधारा नाम की टीका लिखी है। ग्रन्थारम्भ में ये अपने पिता का वर्णन इस प्रकार करते हैं—

"सीमा मीमांसकानां कृतसुकृतचयः कर्कशस्तर्कशास्त्रे,
ज्योतिःशास्त्रे च गर्गः फणिपतिभणितिव्याकृतौ शेषनागः।
पृथ्वीशाकब्बरस्य स्फुरदतुलसभामण्डनं पण्डितेन्द्रः,
साक्षात् श्रीनीलकण्ठः समजनि जगतीमण्डले नीलकण्ठः॥"

इससे मालूम होता है कि ये मीमांसक नैयायिक ज्योतिषी और वैयाकरण थे और अकबर शाह के सभासद् भी थे। इनका निवासस्थान विदर्भ देश और उनकी स्त्री का नाम पद्मा था।

अकबर बादशाह के समकालीन होने के कारण इनका समय १६ वीं सदी का पिछला भाग ही निश्चित है।

नीलकण्ठ मिश्र=ये अन्तरवेद के रहने वाले थे और सं० १६४८ में उत्पन्न हुए थे। ये व्रजभाषा के उत्तम पण्डित और कवि भी थे।

नीलकण्ठ त्रिपाठी=ये टिकमापुर के रहने वाले थे, प्रसिद्ध कवि मतिराम के भाई थे और स्वयं कवि थे। इनके बनाये किसी ग्रन्थ का पता नहीं लगा है।

नीलसखी=ये हिन्दी के कवि थे। जैतपुर बुन्देलखण्ड के रहने वाले और सं० १९०२ में उत्पन्न हुए थे। इनके बनाये पद रसीले होते हैं।

नीलाधर=हिन्दी के एक प्राचीन कवि। सं० १७०५ में ये उत्पन्न हुए थे। पुराने कवियों ने इनकी प्रशंसा की है।

नेही कवि=ये हिन्दी के कवि थे। इनकी कविता सरस होती थी।

नैसुक कवि=हिन्दी के एक प्राचीन कवि। ये बुन्देलखण्ड के वासी थे और सं० १९०४ में इनकी उत्पत्ति हुई थी। ये शृङ्गाररस की सुन्दर कविता करते थे।

नोने कवि=ये बन्दीजन थे। बाँदा (बुन्देलखण्ड) के रहने वाले थे। इनके पिता का नाम कवि विहारीलाल था। मालूम नहीं ये विहारीलाल कौन हैं। ये भाषासाहित्य में अत्यन्त प्रवीण थे। इनकी उपलब्ध कविताओं से इनके अगाध पाण्डित्य तथा साहित्यनैपुण्य का परिचय मिलता है। मालूम नहीं इनका कोई ग्रन्थ है कि नहीं।

नृग राजा=ये एक प्राचीन राजा थे। पयोष्णी नामक नदी के किनारे सोमयज्ञ कर के राजा नृग ने इन्द्र को प्रसन्न किया था। राजा नृग ने सात अश्वमेध यज्ञ भी किये थे। इन सातों यज्ञों में राजा नृग ने बहुत धन व्यय किया था। यज्ञपात्र तथा आवरण आदि सभी सुवर्ण

के बनाये गये थे। एक एक यज्ञ में सात सात यूप (यज्ञस्तम्भ) सुवर्ण के बनवाये थे। ब्राह्मणों को बहुत दक्षिणा दी गयी थी। राजा नृग ने इन यज्ञों में सुवर्ण की गौ बनवा कर दी थीं। उन्हीं यज्ञों के प्रताप से राजा नृग को इन्द्रलोक प्राप्त हुआ था। (महाभारत)

इनके विषय में और भी कथा प्रचलित हैं, परन्तु उनके मूल का कहीं पता नहीं मिलता।

प

पक्षधर मिश्र=उद्भट नैयायिक। ये न्यायशास्त्र के बड़े पण्डित और असामान्य बुद्धिमान् थे। इनके विषय में अनेक किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं। बहुतों का कहना है कि पक्षधर मिश्र और प्रसन्नराघवकर्त्ता जयदेव दोनों एक ही थे। ये मिथिला के वासी थे। प्रसिद्ध वङ्गीय नैयायिक इन्हींके शिष्य थे।

पक्षिल स्वामी=अतिप्राचीन नैयायिक पण्डित। ये गौतमविरचित न्यायसूत्र पर भाष्य करने वालों में सबसे प्राचीन हैं। इनका बनाया भाष्य भी अन्य भाष्यों की अपेक्षा उत्तम समझा जाता है। ये बहुत प्राचीन हैं। ख्रीष्टीय सदी के पूर्व चौथी सदी में इनकी विद्यमानता का पता लगता है। हेमचन्द्र ने अपने अभिधान में पक्षिल स्वामी और चाणक्य को एक व्यक्ति माना है, इनका दूसरा नाम वात्स्यायन था। ये चन्द्रगुप्त की सभा में विद्यमान थे।

पजनेश कवि=ये कवि पन्ना बुन्देलखण्ड के रहने वाले थे। सं० १८७२ में इनकी उत्पत्ति हुई थी। इनका बनाया "मधुप्रिया" नामक ग्रन्थ भाषासाहित्य में उत्तम है। इनकी अनूठी उपमा अनूठे पद अनुप्रास यमक आदि प्रशंसा के योग्य हैं। इन्होंने नखसिखवर्णन भी बनाया है।

पञ्चजन=असुरविशेष। यह असुर पाताल में रहता था। श्रीकृष्ण ने इसे मार कर इसके अस्थि से पाञ्चजन्य नामक शङ्ख बनवाया था।

पञ्चम कवि प्राचीन=ये जाति के बन्दी थे और बुन्देलखण्ड के रहने वाले थे। इनका जन्म सं० १७३५ में हुआ था। पन्ना के महाराज छत्रसाल बुन्देला के दरबार में ये थे।

पञ्चम कवि नवीन=ये बन्दीजन और अजयगढ़ (बुन्देलखण्ड) के वासी थे। इनका जन्म सं० १९११ में हुआ था। ये अजयगढ़ के राजा गुमानसिंह के दरबारी कवि थे।

पञ्चशिख=ये साङ्ख्यदर्शन के सम्प्रदाय में एक प्रसिद्ध दार्शनिक थे। इनके गुरु विख्यात दार्शनिक महात्मा आसुरि थे। आसुरि के गुरु सांख्यदर्शनप्रणेता महर्षि कपिल थे। पञ्चशिख ही ने सांख्यदर्शन के सिद्धान्तों का प्रचार किया था। आसुरि की स्त्री का नाम कपिला था। पञ्चशिख पुत्ररूप से गुरुपत्नी कपिला का स्तन्य पीते थे। इस कारण ये कपिलापुत्र भी कहे जाते थे।

पतञ्जलि=ये प्राचीन वैयाकरण महाभाष्य के रचयिता हैं। इनका निवास गोनर्द देश में था। इनकी माता का नाम गोणिका था। महाभाष्य के कतिपय वाक्यों को उद्धृत कर के भाण्डारकर और गोल्डस्टुकर ने इनका समय निर्णय करने का प्रयत्न किया है, और यह सिद्ध किया है कि पतञ्जलि यूनानी मिनेण्डर और पाटलीपुत्र के राजा पुष्पमित्र के समकालीन हैं। उन महाशयों के कथनानुसार पतञ्जलि का समय सन् ई० के १४० वर्ष पूर्व से १२० वर्ष पूर्व तक निश्चित होता है। पतञ्जलि ने जो "मौर्यैर्हिरण्यार्थिभिरर्चाः प्रकल्पिताः" अर्थात् मौर्यवंशी राजाओं ने सुवर्ण की कामना से पूजा की पद्धति चलायी—ऐसा वाक्य लिखा है। इससे गोल्डस्टुकर साहब समझते हैं कि वे मौर्यवंशीय प्रथम राजा चन्द्रगुप्त से पहले न रहे होंगे। अर्थात् सन् ई० के ३१५ वर्ष पूर्व के समय की अपेक्षा प्राचीन न रहे होंगे। प्रत्युत सम्भव है कि उस वंश के अन्तिम राजा के भी पीछे अर्थात् सन् ई० से १८० वर्ष के पूर्व रहे हों। क्या इस अनुमान को भी असम्भव कहने का साहस किया जायगा।

"अरुणद्यवनः साकेतम्," यवन राजा ने अयोध्यापुरी को घेरा, "अरुणद्यवनो माध्यमिकान्" यवन राजा ने माध्यमिकों को घेरा है, इन वाक्यों से अनुमान किया जाता है कि यूनान वालों ने पतञ्जलि ही के समय

अयोध्या पर आक्रमण किया था। माध्यमिक नागार्जुन के शिष्यों का एक सम्प्रदाय है जो शून्यवादी बौद्धों के नाम से विशेष प्रसिद्ध हैं। अब विचारना चाहिये कि यूनान वालों ने अयोध्या पर कब चढ़ाई की। प्राचीन यूनान के इतिहास से मालूम पड़ता है कि सबों के वर्णनानुसार राजा मिनेण्डर ने यमुना नदी तक के देशों को विजय किया। मथुरा में इसके नाम के सिक्के भी पाये जाते हैं। मिनेण्डर का राज्यकाल प्रोफेसर लासेन के मतानुसार सन् ई० से १४४ वर्ष पूर्व है। निदान इन सब बातों से निःसन्देह यह बात प्रतीत होती है कि पतञ्जलि सन् ई० की पिछली दूसरी शताब्दी में वर्तमान थे।—

किसी किसी का कहना है कि योगशास्त्रकार पतञ्जलि व्याकरण-महाभाष्य-कार पतञ्जलि से भिन्न हैं और ये महाभाष्यकार ही वैद्यक ग्रन्थ के प्रणेता हैं। इनके मत से योगशास्त्रकर्ता पतञ्जलि पाणिनि की अपेक्षा प्राचीन हैं सुतरां पतञ्जलि की अपेक्षा प्राचीन भी हुए ही। किसी का मत है कि ये तीनों ग्रन्थों के कर्ता पतञ्जलि भिन्न भिन्न हैं। किसी का कहना है कि इन तीनों ग्रन्थों के कर्ता एक ही पतञ्जलि हैं। पतञ्जलि का योगसूत्र चार भागों में विभक्त है। ये २६ तत्त्व मानते हैं। कपिल ने ईश्वर को न मान कर २५ तत्त्व माने थे और ये एक अधिक ईश्वर को भी मानते हैं।

पतिराम=ये हिन्दी के कवि थे और सं० १७०१ में उत्पन्न हुए थे। इनके बनाये पद्य हज़ारा में पाये जाते हैं।

पद्मनाभ जी=ये व्रजवासी थे और कृष्णदास जी पयअहारी गलता वाले के शिष्य थे। सं० १५६० में ये उत्पन्न हुए थे। इनके बनाये पद रागसागरोद्भव में पाये जाते हैं।

पद्मपुराण=पुराणों में इसका दूसरा स्थान है। इस महापुराण के पाँच खण्ड हैं। (१) सृष्टिखण्ड, (२) भूमिखण्ड, (३) स्वर्गखण्ड, (४) पातालखण्ड, (५) उत्तरखण्ड। सृष्टिखण्ड में भीष्म के प्रश्नों के उत्तर में पुलस्त्य ऋषि ने जो धर्मतत्त्व की व्याख्या की है वह लिखी गयी है। पुष्करतीर्थ का माहात्म्य-वर्णन, ब्रह्मयज्ञ वेद-पाठ-विधि, दान-तत्त्व, विविध व्रत-कथा, शैल-जाया का विवाह, गो-माहात्म्य, ताड़का का उपाख्यान, कालकेय प्रभृति दैत्यों का विनाश प्रसङ्ग, ग्रहों की पूजापद्धति, सृष्टिखण्ड में प्रधानतः इन्हीं विषयों की आलोचना की गयी है। भूमिखण्ड में पृथिवी का वर्णन है। पृथु, नहुष, ययाति, प्रभृति राजाओं का उपाख्यान, शिवशर्मा, सुव्रत, च्यवन आदि की कथा, पितृमातृपूजा, धर्म की आलोचना, हुण्ड आदि दैत्यों के वध का विवरण—ये विषय भूमिखण्ड में विवेचित हुए हैं। भूमिखण्ड भूतत्त्व और पुरातत्त्व मिला है। अतएव यह खण्ड किसी समय का भूगोल और इतिहास माना जाता है। यह खण्ड सूत और शौनक के कथोपकथनरूप से बनाया गया है। इसमें १२७ अध्याय हैं। शौनक आदि ऋषियों के प्रश्न करने पर व्यास-शिष्य सूत ने स्वर्ग का वर्णन किया है, वही बात स्वर्गखण्ड में लिखी गयी है। इसमें ४६ अध्याय हैं। स्वर्गखण्ड में पहले सृष्टि-तत्त्व लिखा गया है। तदनन्तर अनेक प्रकार के तीर्थों के माहात्म्य, धर्मालोचना, वर्णाश्रमधर्म, योगधर्म, व्रत आदि की आलोचना, और बहुत सी स्तुतियाँ लिखी गयी हैं। इस खण्ड के तीसरे अध्याय में भारतवर्ष का परिमाण नद नदी पर्वत और अधिवासियों का विवरण लिखा है। चतुर्थ अध्याय में समग्र भूमण्डल का आभास पाया जाता है। इस खण्ड में दिलीप पृथु युधिष्ठिर आदि राजाओं का वर्णन है और निःसन्तान होने के कारण सन्तान प्राप्ति के उपाय के प्रसङ्ग में श्रीधर राजा का उपाख्यान, लक्ष्मी व्रत के प्रसङ्ग में भद्रश्रवा राजा का उपाख्यान, ब्राह्मण की प्राणरक्षा की फलोक्ति के प्रसङ्ग में दीननाथ राजा का नरमेध यज्ञ और श्रीकृष्णजन्माष्टमी व्रत के प्रसङ्ग में चित्रसेन राजा का उपाख्यान वर्णित है। पातालखण्ड ७२ अध्यायों में सम्पूर्ण हुआ है। इस खण्ड में ऋषियों के समीप महाभाग सूत रामचरित का वर्णन करते हैं। राज्याभिषेक तथा अश्वमेध

यज्ञ से इस खण्ड का प्रारम्भ किया गया है। मध्य में अनेक तीर्थ और कृष्णचरित्र का भी उल्लेख किया गया है। भारद्वाज आश्रम से आतिथ्य ग्रहण कर के श्रीरामचन्द्र का अयोध्या जाना, तथा कौशल्या का मासिक श्राद्ध आदि का वर्णन कर के इस खण्ड की समाप्ति की गयी है। उत्तरखण्ड में शिव पार्वती के कथोपकथनरूप से अनेक धर्मतत्वों का विवरण दिया गया है। सगर राजा का उपाख्यान, देवशर्मा का उपाख्यान, जालन्धरोपाख्यान, नानातीर्थमाहात्म्य, श्रीभागवतमाहात्म्य, गीतामाहात्म्य, भक्तिमाहात्म्य, विष्णुसहस्रनाम, श्रीरामशतनाम, नृसिंह और मत्स्य प्रभृति अवतारों का वर्णन इस खण्ड में है।

(भारतवर्षीय इतिहास)

पद्मवर्ण=महाराज यदु के पुत्र, ये नागकन्या के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। इनकी माता का नाम धुम्रवर्णा है। (हरिवंश)

पद्माकर भट्ट=ये बाँदा बुन्देलखण्ड के वासी मोहन भट्ट के पुत्र थे। सं० १८३८ में इनका जन्म हुआ था। ये प्रथम बापा साहब रघुनाथ राव पेशवा के यहाँ थे। इनके एक कवित्त से प्रसन्न हो कर बापा साहब ने इन्हें एक लाख रुपये पारितोषिक दिये। पुनः वहाँ से ये जयपुर गये और वहाँ सवाई जगतसिंह के नाम जगद्विनोद नामक ग्रन्थ बनाया। इस ग्रन्थ को बना कर इन्होंने जयपुर के राजा से बहुत धन पाया। वृद्धावस्था में इन्होंने गङ्गासेवन किया था। उसी समय का बनाया इनका गङ्गालहरी नामक स्तुतिग्रन्थ विशेष आदरणीय है।

पद्मिनी=भीमसिंह की प्रधान रानी। सन् १२७५ ई० में लक्ष्मणसिंह मेवाड़ की राजधानी चित्तौर में सिंहासन पर बैठे। लक्ष्मण कम अवस्था के थे इस कारण उनके चाचा भीमसिंह ही राज्यशासन करते थे। पद्मिनी रूपवती गुणवती और पतिव्रता थी, पतिव्रता के गुण ही उसके लिये काल हुए। पद्मिनी के गुणाग्नि में पड़ कर मेवाड़ की राजधानी जल कर भस्म हो गयी।

खिलजी वंशी दिल्ली के सम्राट् ने पद्मिनी के रूप गुणों की प्रशंसा सुनी। उसने पद्मिनी के पाने की आशा से चित्तौर पर आक्रमण तो किया परन्तु उस पर वह अधिकार न कर सका। अन्त में छल और विश्वासघात कर के भीमसिंह को उसने क़ैद कर लिया। अलाउद्दीन ने समझा था कि भीमसिंह को क़ैद करने से पद्मिनी अनायास ही मिल जायगी, परन्तु उसकी आशा निष्फल हुई। पद्मिनी ने धूर्तशिरोमणि से भी धूर्तता की। उसने सम्राट् से कहलाया—मैं आत्मसमर्पण करने को तैयार हूँ। परन्तु आत्मसमर्पण करने के पहले आपको अपनी सेना हटा लेनी पड़ेगी। आपके डेरे तक मुझको पहुँचाने के लिये मेरी अनेक सहेलियाँ जाँयगी। उनकी किसी प्रकार की अप्रतिष्ठा न हो। कुलीन स्त्रियों के प्रति उचित सम्मान दिखाया जाय, इसका आपको पूर्ण प्रबन्ध करना पड़ेगा, आपको, अन्तिम विदाई के लिये स्वामी से मेरी एक बार भेंट करानी होगी। अलाउद्दीन ने पद्मिनी की सभी बातें मान लीं। नियत दिन हज़ार शस्त्रधारी रणबाँकुरे राजपूत वीर परदादार डोलियों पर चढ़ कर बादशाह के डेरे में एकत्रित होने लगे। थोड़ी देर के लिये पद्मिनी से भेंट करने के लिये भीमसिंह भी उसी कैम्प में बुलाये गये। पद्मिनी भीमसिंह को अपनी सवारी में बैठा कर ले गयी। पद्मिनी की सहेलियों की सवारी है यह समझ कर किसीने रोका टोका तक नहीं। भीमसिंह के लौटने में विलम्ब हुआ। तब तो अलाउद्दीन घबड़ाया। उसने शीघ्र ही डोलियों के परदे हटवाये। परदे हटाने पर जो उसने देखा उससे उसे बड़ा कष्ट हुआ। क्रोध से उसका हृदय जलने लगा। वीर राजपूतों ने भी शीघ्र ही बादशाह की सेना पर आक्रमण किया और उन लोगों को पद्मिनी और भीमसिंह का पीछा करने का अवसर न दिया। मार्ग में एक तेज़ घोड़े पर चढ़ कर भीमसिंह भी निरापद चित्तौर के क़िले में पहुँच गये। किन्तु इतना करने पर भी पद्मिनी स्वामी को न बचा सकी। अलाउद्दीन ने बड़े ज़ोर शोर से चित्तौर पर आक्रमण किया। राजपूत वीर भी क़िले की रक्षा करने लगे। पद्मिनी के चचा गोरा और उसके भतीजे बादल ने इस युद्ध में जो वीरता

दिखायी, यह सत्य सत्य राजपूत वीरों के लिये उचित है। १२ वर्ष के बादल ने रणरङ्ग में जो अभिनय दिखाया था, वह अर्जुनपुत्र अभिमन्यु के युद्ध का स्मारक था। भीमसिंह ने स्वप्न देखा कि चित्तौर की अधिष्ठात्री देवी १२ राजपुत्रों का खून पीने के लिये व्याकुल हैं। एक एक करके ग्यारह पुत्रों को भीम ने रण में भेजा, सबके सब मारे गये। अन्त में वंश लोप होने के भय से बचे हुए एक पुत्र को न भेज कर स्वयं भीमसिंह रणक्षेत्र में अवतीर्ण हुए। चित्तौर की राजपूत वीराङ्गनाएँ जुहार व्रत करने के लिये उद्यत हुईं। पद्मिनी बहुत दिनों के लिये पति से बिदा हो कर चिता में जल गयी। अन्य राजपूतललनाओं ने पद्मिनी का साथ दिया। भीमसिंह युद्ध में मारे गये चित्तौरगढ़ वीरशून्य हो गया। नहीं हुआ एक सती का सतीत्व-हरण। दिल्ली के बादशाह ने जिसके लिये इतना प्रयत्न किया था वह पद्मिनी उनको न मिल सकी। अलाउद्दीन ने देखा पद्मिनी की चिता से धूम निकल रहा है।

पद्मेश कवि=हिन्दी के एक कवि। सं० १८०३ में इनका जन्म हुआ था। इनकी कविता सुन्दर होती थी।

परताप साहि=ये बुन्देलखण्ड के वासी और कवि रतनेश के पुत्र थे। ये बन्दीजन थे। १७६०.सं० में इनका जन्म हुआ था। ये महाराजा छत्रसाल के दरबारी कवि थे। इन्होंने कई एक ग्रन्थ भी बनाये हैं। भाषासाहित्य में इनका बनाया "काव्यविलास" नामक ग्रन्थ मनोहर है। विक्रम साहि की आज्ञा से इन्होंने "भाषाभूषण" और बलभद्र के नखसिख की टीका बनायी है। इनके "विज्ञार्थ-कौमुदी" नामक ग्रन्थ की बड़ी प्रशंसा है।

परम कवि बन्दी=ये कवि महोबे के रहने वाले थे और सं० १८७१ में उत्पन्न हुए थे। इन्होंने नखसिखवर्णन बनाया है जो उत्तम है।

परमानन्ददास=ये व्रजवासी और वल्लभाचार्य के शिष्य थे और सं० १६०१ में उत्पन्न हुए थे। ये कुछ कविता भी करते थे। "रागसागरोद्भव" में इनके अनेक पद हैं। ये अष्टछाप के कवियों में गिने जाते हैं।

परमानन्दलाल पुराणिक=ये अजयगढ़ बुन्देलखण्ड के वासी थे। सं० १८८४ में ये उत्पन्न हुए थे। इनका बनाया नखसिख सुन्दर है।

परमेश कवि प्राचीन=ये हिन्दी के कवि थे और सं० १८६८ में उत्पन्न हुए थे। इनके कवित्त हजारा में पाये जाते हैं।

परमेश बन्दीजन=ये कवि बतावाँ ज़िला रायबरेली के रहने वाले थे। सं० १८१६ में इनका जन्म हुआ। फुटकल इनकी कविताएँ पायी जाती हैं।

परशुराम=महर्षि जमदग्नि के पुत्र। इनकी माता रेणुका थीं। इनके पितामह महर्षि ऋचीक ब्राह्मण-पुत्र थे, किन्तु इनकी पितामही क्षत्रियकन्या थीं। (देखो ऋचीक)

परशुराम ने अपनी माता रेणुका का सिर काट लिया था, और इक्कीस बार पृथ्वी निःक्षत्रिय करने पर भी क्षत्रियकुल का समूल नाश नहीं कर सके थे। अनेक क्षत्राणियों ने अपना वंश बचा ही लिया था, (पौरव जाति विदूरथ के पुत्र ऋक्षवान् की पर्वतों ने तथा भल्लुकों ने रक्षा की थी। भल्लुकों की लड़ाई रामायण में लिखी है। विद्वान् कहते हैं कि ये भल्लुक अनार्य जाति के थे, पशु नहीं। अनार्य जातियों में भल्लुक व्याघ्र आदि की पूजा प्रचलित है। जो जाति जिस जन्तु या पदार्थ की पूजा करती है उस जाति को उस पूज्य जन्तु या पदार्थ से हानि होने का भय नहीं रहता और वह जाति भी अपने उसी पूज्य के नाम से पुकारी जाती है। आज भी सौ तालों में व्याघ्र और सुपारी गोत्र के मनुष्य देखे जाते हैं।) महर्षि पराशर ने सौदास के पुत्र सर्वकर्मा की रक्षा की थी। प्रतर्दन का पुत्र गोवत्सों द्वारा रक्षित हुआ था। महर्षि कश्यप ने इन सब राजकुमारों का राज्याभिषेक किया था। (देखो जामदग्न्य) (महाभारत)

परशुराम कवि=(१) ये हिन्दी के एक कवि हैं। दिग्विजयभूषण में इनके कवित्त पाये जाते हैं।

(२) ये भी हिन्दी के एक कवि थे और व्रज के रहने वाले थे। सं० १६६० में इनका जन्म हुआ था। इनके पद "रागसागरोद्भव"

में मिलते हैं। ये बड़े भक्त थे । श्रीभट्ट और हरिव्यास जी के सिद्धान्त के ये अनुयायी थे। इन्होंने अपनी सुन्दर कवित्वशक्ति का उपयोग भगवद्गुणवर्णन में किया है ।

परसाद कवि=ये भाषा के कवि थे। सं० १६८० में इनका जन्म हुआ था। ये उदयपुर के महाराना के दरबारी कवि थे। इनकी कविता की प्रसिद्धि कुछ कम नहीं है।

पराग कवि=ये भाषा के कवि थे। काशीनरेश महाराज उदयनारायणसिंह की सभा में ये रहते थे। इन्होंने अमरकोश के तीनों काण्डों का भाषा में अनुवाद किया है।

पराशर=महर्षि वशिष्ठ के पौत्र और शक्ति के पुत्र। इनकी माता का नाम अदृश्यन्ती था। इनका जन्मविवरण महाभारत में इस प्रकार लिखा है—

एक समय इक्ष्वाकुवंशी राजा कल्माषपाद एक गली से जा रहे थे, वशिष्ठपुत्र शक्ति भी उसी मार्ग से जाने लगे। राजा ने उन्हें मार्ग छोड़ देने के लिये कहा परन्तु शक्ति ने नहीं माना, इससे क्रुद्ध हो कर राजा कल्माषपाद ने शक्ति के एक कोड़ा मारा। शक्ति ने राजा को शाप दिया—"तुमने एक तपस्वी वेदज्ञ ब्राह्मण को राक्षस के समान मारा है, अतएव तुम नरमांसभक्षी राक्षस हो कर मारे मारे फिरोगे।" महर्षि शक्ति के शाप से राजा कल्माषपाद सबसे पहले शक्ति को ही खा गया, तदनन्तर वशिष्ठ के अन्यान्य पुत्रों को। वशिष्ठ के पुत्रों का नाश करने में उनके प्रसिद्ध शत्रु विश्वामित्र का भी सङ्केत था। विश्वामित्र ने राक्षसरूपी कल्माषपाद को खुल्लमखुल्ला इस कार्य को करने के लिये उभाड़ा था। महर्षि वशिष्ठ इस बात को जानते थे कि महर्षि बनने के प्रयासी विश्वामित्र की प्रेरणा से यह ब्राह्मण-वध किया जा रहा है, परन्तु उन्होंने इस दुष्कर्म का उत्तर देना उचित नहीं समझा, क्योंकि ये महर्षि थे ही और महर्षि बनना नहीं चाहते थे। महर्षि वशिष्ठ ने पुत्रशोक से कातर हो कर शरीर त्याग करने के लिये अनेक प्रयत्न किये। परन्तु सब निष्फल हुए। अन्त में हार कर ये घर लौटे आते थे कि उन्हें पीछे से वेदध्वनि सुनायी पड़ी। वशिष्ठ ने पूँछा हमारे पीछे कौन आ रहा है। पीछे से उत्तर मिला—आपकी ज्येष्ठपुत्रवधू अदृश्यन्ती। अदृश्यन्ती बोली—हमारे गर्भ में आपका पौत्र वर्तमान है, वह गर्भ में १२ वर्ष से वेदाध्ययन कर रहा है। इससे वशिष्ठ को आश्वास हुआ। उन्होंने समझा कि अब वंशरक्षा होने की आशा हो गयी। वे प्रसन्न हो कर पुत्रवधू के साथ लौटे आ रहे थे कि मार्ग में एक राक्षस अदृश्यन्ती को निगल जाने के लिये दौड़ा। वशिष्ठ ने योगबल से जान लिया कि यह राक्षस नहीं है किन्तु हमारे पुत्र के शाप से राक्षस बना हुआ कल्माषपाद नामक राजा है। वशिष्ठ ने अपनी पुत्रवधू को अभय दिया, और मन्त्रपूत जल के अभिषेक से राजा को शापमुक्त किया। वशिष्ठ ने राजा को पुत्र होने का वर दिया, और अयोध्या में जा कर राज्य करने के लिये कहा। यथासमय अदृश्यन्ती ने एक पुत्र उत्पन्न किया। वशिष्ठ ने उस पुत्र का नाम पराशर रखा। बड़े होने पर पराशर ने अपने पिता की मृत्यु का हाल सुना। तदनन्तर वे राक्षसकुल का नाश करने के लिये यज्ञ करने लगे। राक्षसों के प्राणरक्षार्थ पुलस्त्य पुलह आदि महर्षि पराशर के यहाँ गये, और जा कर बोले—वत्स, तुम जिनको पितृहत्या का दोषी समझते हो, असल में वे दोषी नहीं हैं, तुम्हारे पिता ही अपने वध का स्वयं कारण थे, तुम्हारे पिता को मारने वाला कल्माषपाद शापमुक्त हो कर स्वर्ग में है, तुम क्रोध दूर करो, व्यर्थ हत्या की आवश्यकता नहीं है। ऋषियों के उपदेश से पराशर अपने सङ्कल्प से विरत हुए। (महाभारत)

वेद-विभाग-कर्त्ता कृष्णद्वैपायन पराशर के पुत्र थे। पराशर तीर्थ-यात्रा के लिये अनेक देशों में घूमते फिरते यमुना नदी के तीर पर उपस्थित हुए। नदी पार कराने को पराशर ने धीवर से कहा। धीवर ने अपनी कन्या मत्स्यगन्धा को इस काम के लिये नियुक्त किया। नदी के बीच में नाव के पहुँचने पर पराशर कामातुर हुए और उन्होंने उससे सङ्गम करना चाहा। मत्स्यगन्धा ने उस पार चल कर पराशर

की अभिलाषा पूरी करने के लिये कहा । शीघ्र ही नौका यमुना के उस पार गयी । मत्स्यगन्धा ने रात तक महर्षि को ठहरने के लिये कहा, क्योंकि दिवाविहार शास्त्रविरुद्ध है । महर्षि ने तपोबल से वहाँ कोहरा फैला दिया, और मत्स्यगन्धा के अनुरोध करने पर उसका शरीर सुगन्धयुक्त कर के उसके साथ विहार किया । इसी सङ्गम से वेदव्यास की उत्पत्ति हुई । इनका जन्म द्वीप में हुआ था, इस कारण ये द्वैपायन नाम से भी प्रसिद्ध हैं । द्वैपायन जन्म लेते ही माता की आज्ञा से तपस्या के लिये वन में चले गये । वन जाने के समय द्वैपायन अपनी माता से कहते गये कि जब तुम स्मरण करोगी तभी मैं आ जाऊँगा ।

परीक्षित्—तृतीय पाण्डव अर्जुन के पौत्र और वीरबालक अभिमन्यु के पुत्र । मत्स्यदेशाधिपति विराट की कन्या उत्तरा के गर्भ से ये उत्पन्न हुए थे । एक समय राजा परीक्षित् ने सुना कि हमारे राज्य में कलि ने प्रवेश किया है । वे कलि को दण्ड देने के लिये सरस्वती नदी के तीर पर उपस्थित हुए । वहाँ उन्होंने देखा कि राजोचित वस्त्र से सुसज्जित एक शूद्र एक गौ और एक बैल को डण्डों से मार रहा है । उस वृषभ के तीन पैर नष्ट हो चुके थे, केवल एक रह गया था । राजा परीक्षित् ने सोचा कि यह वृष ही त्रिपादहीन धर्म है, गौ पृथिवी और दण्डधारी शूद्र ही कलि है । वृष से परिचय पा कर राजा ने कलि का वध करने के लिये खड्ग उठाया । कलि राजवेश छोड़ कर उनके पैरों पर गिर गया, और उसने शरण हो प्राण की भिक्षा चाही और अपने रहने के लिये राजा से स्थान बताने को भी कहा । राजा परीक्षित् बड़े दयालु थे, उन्होंने अपने पैरों पर कलि को पड़ा देख दयावश उसको क्षमा किया । उन्होंने कलि के रहने के लिये द्यूत, मद्यपान, स्त्री, हिंसा आदि स्थान बता दिये । इसीसे इन चारों स्थानों में चार प्रकार के अधर्म विद्यमान हैं । द्यूत में मिथ्या, मद्यपान में मत्तता के कारण तपोनाश, स्त्री में शुद्धता का नाश, और हिंसा में क्रूरता के कारण तपोनाश । (भागवत)

एक समय राजा परीक्षित् मृगया के लिये वन में गये हुए थे । एक मृग के बाण मार कर उसके पीछे पीछे राजा दौड़े जा रहे थे । मृग दूर निकल गया था । मार्ग में एक मुनि मिले । राजा ने उनसे मृग के विषय में पूछा । वह मुनि मौनी थे अतएव उन्होंने कुछ उत्तर नहीं दिया । वृद्ध, क्षुधातुर और श्रान्त राजा को इससे बड़ा कष्ट हुआ । क्रुद्ध होकर राजा ने एक मरा साँप मुनि के गले में माला की तरह पहना दिया । तो भी मुनि ने कुछ उत्तर नहीं दिया, इससे दुःखी हो कर राजा अपनी राजधानी में लौट आये । इस मुनि के शृङ्गी नामक एक महातेजस्वी पुत्र था, उसके एक मित्र ने हँसी में उससे कहा—"शृङ्गिन् ! तुम्हें अभिमान करने का कोई कारण नहीं है, तुम्हारे पिता ने मृत सर्प को गले में धारण किया है ।" यह सुन कर शृङ्गी ने शाप दिया—जिस पापी ने हमारे निरपराध पिता के गले में मरा साँप डाला है, वह आज से सात दिन के बीच तक्षक के काटने से मर जायगा । इस शाप की बात जब पुत्र के मुख से शृङ्गी के पिता ने सुनी, तब उन्होंने अपने पुत्र को अनेक उपदेश दिये और शापानुग्रह करने के लिये भी कहा । परन्तु पुत्र शापानुग्रह करने को प्रस्तुत नहीं हुआ । तब ऋषि ने गौरमुख नामक एक शिष्य के द्वारा शाप का वृत्तान्त राजा से कहला दिया और तक्षक से सावधान होने के लिये भी कहा । देखते देखते सातवाँ दिन उपस्थित हुआ । तक्षक ने देखा कि एक ब्राह्मण बड़ी तेज़ी से राजधानी की ओर जा रहा है । उससे तक्षक ने पूछा, क्यों जी ब्राह्मण ! तुम कहाँ जा रहे हो । ब्राह्मण बोला, आज हमारे राजा परीक्षित् को सर्प काटेगा, मैं उनको आरोग्य करने के लिये जा रहा हूँ । तक्षक ने अपना परिचय दे कर एक वृक्ष को काटा, उसी क्षण वृक्ष भस्म हो गया तदनन्तर तक्षक ने उस वृक्ष को ब्राह्मण से पुनः जीवित करने के लिये कहा । उस ब्राह्मण का नाम काश्यप था । काश्यप ने शीघ्र ही उस वृक्ष को मंत्रबल से हरा भरा कर दिया । तक्षक, ब्राह्मण की शक्ति देख कर कुछ चिन्तित हुआ ।

ब्राह्मण से बातचीत करने पर उसे मालूम हुआ कि धनलाभ की इच्छा से वह राजा के पास जा रहा है। यह जान कर तक्षक ने ब्राह्मण को बहुत अधिक धन दिया, और राजा की चिकित्सा करने को मना भी किया। नियत समय पर तक्षक ने काटा और राजा ने प्राणत्याग किया। (महाभारत)

देवीभागवत में मूल कथा इसी प्रकार ही लिखी गयी है। परन्तु वहाँ अधिक यह लिखा है कि राजा ने सतखना एक अटारी बनवायी थी, मणिमन्त्रौषधि के प्रभाव जानने वाले बड़े बड़े विद्वान् उसके रक्षक थे। तक्षक ने कई एक सर्पों को तपस्वी का वेष धारण करा कर उनके हाथों में फल दिये, और उन्हीं फलों में वह स्वयं जा कर बैठा। परन्तु पहरे वालों ने उन तपस्वीवेषधारी सर्पों को राजभवन में घुसने नहीं दिया। तब उन लोगों ने अपने फल भिजवा दिये। राजा ने उन पके हुए फलों में से ज्यों हीं एक फल तोड़ा, त्यों हीं देखा कि उस में एक छोटा कीट बैठा है। उस समय सन्ध्या हो गयी थी। राजा ने देखा ब्रह्मशाप व्यर्थ हुआ। इसीसे उस छोटे कीट से कटवा कर उन्होंने ब्रह्मशाप को सम्मानित करना चाहा। राजा ने उस कीट को अपनी ग्रीवा पर रखा। तब तक्षक ने अपनी भयङ्कर मूर्ति धारण की और राजा को काट कर वह चला गया। राजा परीक्षित् की मृत्यु हुई। (देवीभागवत)

पर्वत=एक ऋषि। ये नारद के साथी थे। नारद और पर्वत दोनों ने अम्बरीष की कन्या को व्याहना चाहा था। (देखो अम्बरीष) (महाभारत)

पर्वगुप्त=काश्मीर के एक राजा का नाम। ये वक्राङ्घ्रि संग्राम गुप्त के पुत्र थे। सं० २४ में इन्होंने अपने कुकृत्यों से राज्य पाया था। इन्होंने पहले तो अभिचार कराया परन्तु वह निष्फल हुआ। अन्त में इन्होंने चढ़ाई की और अपने पिता को मार कर ये स्वयं राजा बन गये। इन्होंने प्रजा को सता कर अधिक धन उपार्जन किया था। एक स्त्री के फेर में पड़ने से इनके प्राण गये। (राजतरङ्गिणी)

पवहारी बाबा=एक विख्यात योगी। ये सन् १८४० ई० में जौनपुर ज़िला के अन्तर्गत प्रेमापुर नामक स्थान में जन्मे थे। इनके पिता का नाम अयोध्या तिवारी था। अयोध्या तिवारी एक निष्ठावान् थे। अयोध्या तिवारी के बड़े भाई लक्ष्मीनारायण संसारवासना छोड़ गाज़ीपुर के ज़िले में कुर्थाना नामक गाँव में गङ्गा के तीर पर एक कुटी बना कर उसमें भजन पूजन किया करते थे। पवहारी बाबा पिता के दुलारे पुत्र थे। इनका नाम था रामभजनदास। पिता माता आदर से इनको शुकाचार्य कहते थे। बाल्यावस्था ही में चेचक के कारण इन की दाहिनी आँख फूट गयी थी। पाँचवें वर्ष में इनका यज्ञोपवीत हुआ था। इनके चाचा योगी लक्ष्मीनारायण कठिन रोग के कारण अन्धे हो गये थे। ये अपने पिता की आज्ञा से उनकी सेवा करने के लिये गये। उस समय इनकी अवस्था १० वर्ष की थी। वहाँ रह कर इन्होंने बड़े बड़े पण्डितों से संस्कृत का अध्ययन किया। वेदान्तदर्शन का इन्होंने बड़े मनोयोग से अध्ययन किया, सन् १८५६ ई० में योगी लक्ष्मीनारायण का स्वर्गवास हुआ। तब शुकाचार्य अनेक तीर्थों में घूमने लगे। बदरिकाश्रम से ले कर सेतुबन्ध रामेश्वर तक जितने तीर्थ थे उन सबमें ये पैदल गये। तीर्थों से लौट कर इन्होंने अन्न खाना छोड़ दिया था वे केवल दूध और बिल्वपत्र का रस पी कर रहते थे। तभीसे लोग उन्हें पवहारी बाबा कहने लगे। कुछ दिनों के बाद इन्होंने दूध और पत्ररस भी छोड़ दिया, तथा ५० मिरचों को पीस कर उन्हींका रस पी जाते थे। वे एक घर में द्वार बन्द कर के योगसाधन करते थे। योगसाधन कर के जब वे बाहर निकलते थे तब देखने वालों को मालूम पड़ता था मानों उनके शरीर से ज्योति निकल रही है। ये बड़े महात्मा हो गये हैं। इनके वेष भूषा साधुओं जैसे नहीं थे। ये अन्नदान को बड़ा पुण्य समझते थे और सर्वदा इनके यहाँ अन्न बाँटा जाता था।

पाटलीपुत्र=मगध राज्य की प्राचीन राजधानी। सर्व प्रथम अजातशत्रु ने इस नगर में अपनी

राजधानी स्थापित की थी। जिस समय यह नगर अजातशत्रु की राजधानी बना, उस समय इसका नाम पाटलीग्राम था। सुनिध और भापाकार नामक अजातशत्रु के मन्त्रियों ने वहाँ दुर्ग परिखा आदि बनवाया। अजातशत्रु के राज्यकाल में भगवान् बुद्धदेव विद्यमान थे। मन्त्रियों ने नयी राजधानी में भगवान् बुद्ध को पधराया। भगवान् बुद्ध ने पाटलीपुत्र में आ कर अपने अनुचर आनन्द से कहा था—" यह नगर किसी समय अत्यन्त प्रसिद्ध होगा, यह वाणिज्य का एक विख्यात नगर होगा। " गौतम बुद्ध की यह भविष्यद्वाणी सफल हुई थी। चन्द्रगुप्त और अशोक की राजधानी बन कर पाटलीपुत्र ने बड़ी उन्नति की थी।

पाटलीपुत्र की स्थापना के विषय में अनेक प्रकार के मत देखे जाते हैं। ग्रीक ऐतिहासिक डायडोरस का मत है कि हेरोक्लस ने इस नगरी की प्रतिष्ठा की थी। पाश्चात्य पण्डितों का सिद्धान्त है कि श्रीकृष्ण के भाई बलराम और हेरोक्लस दोनों एक ही मनुष्य के नाम हैं। हम इस पाश्चात्य पण्डितों के सिद्धान्त का अनुसरण करना उचित नहीं समझते हैं। पुराणादि ग्रन्थों में पाटलीपुत्र की स्थापना के विषय में जो लिखा है उसीकी आलोचना हम यहाँ करेंगे। वायुपुराण में भविष्य राजवंशवर्णन के प्रसङ्ग में लिखा है—क्षेमवर्मा के राज्यकाल के पचीस वर्ष के पश्चात् राजा अजातशत्रु का राज्यकाल प्रारम्भ होगा, अनन्तर राजा क्षत्रौजा ४० वर्ष पर्यन्त राज्यशासन करेंगे। तदनन्तर राजा बिंबिसार का अट्ठाइस वर्ष, राजा दर्भक का पचीस वर्ष, और नरपति उदायी का ३३ वर्ष राज्य रहेगा। राजा उदायी कुसुमपुर नामक एक प्रसिद्ध नगर की स्थापना करेंगे। कुसुमपुर की स्थापना गङ्गा के दक्षिण तीर पर होगी। राजा उदायी के राज्यशासन के चौथे वर्ष इस नगर की प्रतिष्ठा होगी। महावंश नामक एक बौद्धग्रन्थ में लिखा है कि राजा अजातशत्रु के पुत्र उदय ने कुसुमपुर या पाटलीपुत्र नाम का नगर बनवाया। वायुपुराण का महावंश के साथ मिलान करते समय वंशावली में अजातशत्रु और उदय का स्थान बतलाना बहुत कठिन है। विष्णुपुराण में अजातशत्रु के पुत्र का नाम दर्भक लिखा है। वायुपुराणोक्त बिंबिसार के पुत्र दर्भक और विष्णुपुराणोक्त अजातशत्रु के पुत्र दर्भक ये दोनों एक हैं कि नहीं यह बतलाना भी बड़ा कठिन है। क्योंकि वायुपुराण के बिंबिसार और विष्णुपुराण के विम्बसार को यदि एक मान लें तो अजातशत्रु के लिये बड़ी गड़बड़ी होगी। वायुपुराणानुसार अजातशत्रु बिंबिसार के पौत्र हैं, और विष्णुपुराण में लिखा है कि अजातशत्रु बिंबिसार के पुत्र थे। सम्भव है अधिक समय बीतने के कारण लिपि कर के प्रमाद से बीच के एक दो नाम छूट गये हों। अथवा वंशावली लिखने ही में उलटा पलटा हो गया हो। बौद्धग्रन्थों से यह मालूम होता है—बुद्धदेव जब अन्तिम बार गङ्गापार कर के राजगृह से वैशाली नगर में गये, उस समय मगधराज अजातशत्रु के दो मन्त्री पाटलीपुत्र में दुर्ग बनवा रहे थे। उस समय व्रिजीवासी उज्जिहानगण बड़े पराक्रमी हो गये थे। उनके अत्याचारों से रक्षा पाने के लिये मगधराज ने दुर्ग बनवाना प्रारम्भ किया था। उस समय बुद्ध भगवान् ने भविष्यवाणी भी कही थी। इन सब बातों से यह सिद्धान्त स्थिर किया जा सकता है कि राजा अजातशत्रु ही ने इस नगर का बनवाना प्रारम्भ किया हो, परन्तु उसकी समाप्ति उनके पुत्र या पौत्र के समय में हुई हो।

पाणिनि=प्रचलित संस्कृत व्याकरण के कर्ता ऋषि। प्रोफेसर मैक्समूलर के कथनानुसार पाणिनि, कात्यायन वररुचि के समकालीन तथा सन् ई० से ३५० वर्ष पूर्व के सिद्ध होते हैं। कात्यायन वररुचि का वर्णन ऊपर हो चुका है और वहीं पर पाणिनि को भी प्रायः उनका समसामयिक ही कहा है। मैक्समूलर अपने मत को प्रमाणित करने के लिये सोमदेव भट्ट रचित कथा सरित्सागर से प्रमाण उद्धृत करते हैं। परन्तु कथा सरित्सागर का ऐतिहासिक विषयों में कितना प्रामाण्य है इस विषय में सन्देह है। क्या काश्मीर में रचे जाने के कारण राजतरङ्गिणी

के समान कथा सरित्सागर प्रामाणिक माना जा सकता है। जिस प्रकार राजतरङ्गिणी लिखने के लिये कल्हण ने ऐतिहासिक सामग्री एकत्रित की थी, क्या सोमदेव भट्ट ने भी कथा सरित्सागर के लिये ऐतिहासिक सामग्री एकत्रित की थी ? अभी तक तो यही मालूम हुआ है कि काश्मीरराज अनन्तदेव की पटरानी सूर्यवती के मनस्तोष के लिये कथा सरित्सागर रचा गया था। क्या मनोविनोद के लिये स्त्रियाँ इतिहास का अनुशीलन करती हैं ? इस ग्रन्थ में ऐसी कहानियाँ भरी पड़ी हैं जिनके मूल इतिहास समझना बड़ी भूल है। इन्हीं कात्यायन वररुचि के वर्णनप्रकरण में प्रोफ़ेसर मैक्समूलर ने कुछ बातों को ऐतिहासिक सत्य माना है परन्तु सबको नहीं। मालूम नहीं प्रोफेसर साहब किस आधार पर अनुमान करते हैं। प्रोफ़ेसर मैक्समूलर के अनुमान की मात्रा यहाँ तक बढ़ी है कि जिससे उन्होंने सिद्ध करना चाहा है कि ३५० वर्ष ई० से पूर्व भारतवासियों को लिखने का ज्ञान नहीं था। गोल्डस्टुकर साहब ने प्रोफेसर मैक्समूलर के इस अनुमान की भूल दिखाने की बड़ी चेष्टा की है। उन्होंने पाणिनि के शब्दों द्वारा अपने विरोधी मत का खण्डन किया है। वे शब्द नीचे लिखे जाते हैं।

" यवनानी " अर्थात् यवनों की लिखावट।

" लिपिकर " अर्थात् लिखने वाला।

पाटल, काण्ड, सूत्र और पत्र, इन शब्दों से मुख्य कर वृक्ष के अवयवों का निर्देश होता है। पर यह असम्भव नहीं कि पुस्तक के अर्थ में भी इनका प्रयोग होता रहा हो।

" वर्ण, और कार " ये दो शब्द अक्षर के लिये आये हैं।

" लोप " अक्षर का लुप्त या दृष्टि से बहिर्गत होना।

इन शब्दों को देखने और उनके ग्रन्थों को विचारने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि पाणिनि के समय में भी भारत में लिखने का प्रचार था। गोल्डस्टुकर साहब कहते हैं कि सम्भव है जिस समय यूनान देश में प्लेटो और एरिस्टाटल सरीखे प्रसिद्ध लेखक उन्नति को प्राप्त हुए हों उस समय हिन्दुस्तान वालों को लिखने की वैसी उपयोगी विद्या प्राप्त न हुई हो। मैं इसके उत्तर में कहूँगा कि नहीं, फिर पाणिनि के समय में तो लिखने की विद्या बहुत उन्नति कर चुकी थी इसके प्रमाण अनेक मिल चुके हैं।

निदान पाणिनि के समय-निरूपण के विषय में प्रोफ़ेसर मैक्समूलर का सिद्धान्त गोल्डस्टुकर के कथनानुसार असत्य प्रतीत होता है। परन्तु आश्चर्य तो इसका है कि बोथलिङ्क साहब भी पाणिनि को ३५० ई० वर्ष के पूर्व का व्यक्ति समझते हैं। वे कहते हैं कि काश्मीर के इतिहास राजतरङ्गिणी में लिखा है कि राजा अभिमन्यु ने चन्द्र तथा अन्यान्य वैयाकरणों को पतञ्जलि विरचित महाभाष्य का प्रचार करने का आदेश दिया था। अभिमन्यु का समय सन् ई० से १०० वर्ष पूर्व का है। अतः पाणिनि के सूत्रों के महाभाष्य को अभिमन्यु से ५० वर्ष और पूर्व का मान लेने में कोई बाधा नहीं है। पतञ्जलि के अतिरिक्त वार्तिककार कात्यायन और सूत्रकार पाणिनि, यदि इनमें से प्रत्येक के लिये ५० वर्ष रख दिये जाँय तो कथा सरित्सागर के निर्णयानुसार पाणिनि का समय सन् ई० से ३५० वर्ष पूर्व का आ जाता है। बोथलिङ्क के इस अनुमान को अत्यन्त दुर्बल समझ कर गोल्डस्टुकर उसकी उपेक्षा करते हैं।

गोल्डस्टुकर साहब का मत है कि पाणिनि कात्यायन की अपेक्षा प्राचीन हैं। अतएव उन्होंने अपने मत की पुष्टि करने के लिये नीचे लिखी चार युक्तियाँ दी हैं।

(१) कतिपय शब्द पाणिनि के समय में प्रचलित तथा व्याकरणानुसार शुद्ध थे, परन्तु कात्यायन के समय वे अप्रचलित और अशुद्ध हो गये।

(२) कात्यायन के समय में कतिपय शब्दों के ऐसे अर्थ लगाये जाने लगे, जैसे पाणिनि के समय में नहीं लगते थे।

(३) शब्द और उनके अर्थों का जैसा प्रयोग पाणिनि के समय में था वैसा पीछे कात्यायन के समय में नहीं रह गया।

(४) संस्कृत विद्या ने कात्यायन के समय एक नवीन अर्थात् पाणिनि के समय से भिन्न रूप धारण किया ।

इन युक्तियों को सिद्ध करने के लिये उक्त लेखक ने प्रमाण के स्थान पर पाणिनिरचित सूत्रों को उदाहरण के स्थान पर दिखाया है । उनसे यह अनुमान किया जा सकता है कि पाणिनि और कात्यायन दोनों के समय में संस्कृत भाषा की अवस्था समान नहीं रही होगी । अतएव विद्वान् गोल्डस्टुकर कहते हैं कि पाणिनि कात्यायन से प्राचीन हैं ।

गोल्डस्टुकर साहब कहते हैं कि पाणिनि के ग्रन्थों से नहीं विदित होता है कि उनके समय में वेदों का आरण्यक भाग प्रचलित था । क्यों कि उनके ग्रन्थ में आरण्यक शब्द का अर्थ वन में रहने वाला मनुष्य लिखा है । पीछे से इस शब्द का अर्थ वन का मार्ग बनैला मार्ग आदि भी हो गया । परन्तु अब " आरण्यक " शब्द का अर्थ वेद का प्रचलित वह भाग बतलाते हैं जो उपनिषदों से पूर्व रचा गया । ऐसे आरण्यक ऐतरेयारण्यक बृहदारण्यक आदि बहुत से हैं । पर पाणिनि ने ऐसा अर्थ नहीं किया । सम्भव है पाणिनि को यह अर्थ विदित न रहा हो, या उनके ग्रन्थ में इसका उल्लेख न होने पर यह भी सम्भव है कि उस समय वेद के ये भाग न रहे हों, या पाणिनि उन्हें जानते न हों ।

इसी प्रकार गोल्डस्टुकर साहब नाना प्रकार के प्रमाणों का उपन्यास कर के यह सिद्ध करना चाहते हैं कि पाणिनि को अधोलिखित ग्रन्थ विदित न थे, अथवा उनका पता पाणिनि के ग्रन्थों से नहीं लगता । वे ग्रन्थ ये हैं—" वाजसनेयीसंहिता, शतपथब्राह्मण, उपनिषद्, अथर्ववेद, और षड्दर्शन " ।

पर इनका यह सिद्धान्त कहाँ तक ठीक है इसमें वैसा ही सन्देह है जैसा कि पाणिनि को सन् ई० से ३५० वर्ष पूर्व मान लेने में पड़ता है । वास्तव में भारतीय पण्डितों के विश्वासानुसार व्यास जैमिनि कपिल आदि षड्दर्शनकारों से पाणिनि नवीन ही हैं । हाँ पतञ्जलि उनसे पीछे के हो सकते हैं और हैं ।

गोल्डस्टुकर के मत में " प्रातिशाख्य ", और " फिट्सूत्र " पाणिनि से प्राचीन हैं । उणादि गण और धातुपाठ उन्हींकी रचना हैं, पर उणादि सूत्र पाणिनि की अपेक्षा नवीन हैं । इन सब बातों से मालूम पड़ता है कि पाणिनि संस्कृत व्याकरण के कितने बड़े सहायक थे । यह तो विदित होता है, परन्तु पाणिनि के समय के विषय की कोई ठीक मीमांसा नहीं होती ।

पाणिनि बुद्धदेव की अपेक्षा भी प्राचीन हैं । पर कितने पुराने हैं—इसका ठीक निर्णय नहीं किया जा सकता । बुद्ध का जन्मकाल सन् ई० से ६२३ वर्ष पूर्व अनुमान किया जाता है । अतएव पाणिनि इससे भी प्राचीन हुए । पर यह ठीक नहीं कहा जा सकता कि पाणिनि कितने प्राचीन थे ।

पाणिनि का निवास गान्धार देश में शालातुर नामक स्थान में था । इनकी माता का नाम दाक्षी था ।

रमेशचन्द्रदत्त के अनुमान से पाणिनि का समय सन् ई० से पूर्व ८ वीं सदी में सिद्ध होता है । यास्क इनसे भी सौ वर्ष पहले के हैं । यद्यपि इसका कोई पता प्रमाण नहीं मिलता है कि पाणिनि का ठीक ठीक समय वही है जो दत्त महाशय ने लिखा है तो भी यह सम्भव है कि पाणिनि का समय प्रायः उसीके लगभग होगा । क्योंकि यदि कात्यायन का समय ई० से ३५० वर्ष पूर्व माना जाय तो असम्भव न होगा, क्योंकि अष्टाध्यायी जैसे ग्रन्थ को उस समय भारत भर में प्रसिद्ध होने के लिये अधिक समय अपेक्षित है ।

पाणिनि ने एक काव्य भी बनाया है । जिसका नाम " जाम्बवतीजय " है । बहुतों का कहना है कि काव्यकर्ता पाणिनि और व्याकरणकर्ता पाणिनि दोनों भिन्न व्यक्ति हैं । परन्तु ऐसे कहने वाले अपने मत को पुष्ट करने के लिये कुछ प्रमाण नहीं देते ।

"नमः पाणिनये तस्मै यस्य रुद्रप्रसादतः ।
आदौ व्याकरणं काव्यमनु जाम्बवतीजयम् ॥ "

इस श्लोकसे काव्य और व्याकरण दोनों के

कर्ता एक ही पाणिनि सिद्ध होते हैं । जाम्बवती-जय के उदाहरणार्थ कतिपय श्लोक लिखे जाते हैं ।

"क्षपाः क्षामीकृत्य प्रसभमपहृत्याम्बुसरिताम्,
प्रताप्योर्वीं कृत्स्नां तरुगहनमुच्छोष्य सकलम् ।
क्व सम्प्रत्युष्णांशुर्गत इति समालोकनपरा-
स्तडिद्दीपा लोका दिशि दिशि चरन्तीह जलदाः ॥"

इस श्लोक में ग्रीष्म का अन्त और वर्षा का वर्णन विलक्षण रीति से किया गया है ।

"विलोक्य सङ्गमे रागं पश्चिमाया विवस्वतः ।
कृतं कृष्णं मुखं प्राच्या न हि नार्यो विनेर्ष्यया ॥
सरोरुहाक्षीणि निमीलयन्त्या रवौ गते साधु कृतं नलिन्याः ।
अस्यां हि दृष्ट्वापि जगत्समग्रं फलं प्रियालोकनमेकमेव ॥
प्रकाश्य लोकान् भगवान् स्वतेजसा,
प्रभादरिद्रः सवितापि जायते ।
अहो चला श्रीर्बलमानदामहो
स्पृशन्ति सर्वे हि दशा विपर्यये ॥
ऐन्द्रं धनुःपाण्डुपयोधरेण शरद्दधानार्द्रनखक्षताभम् ।
प्रसादयन्ती सकलङ्कमिन्दुं तापं रवेरभ्यधिकं चकार ॥"

इन श्लोकों से पाणिनि की कवित्वशक्ति का अनुमान किया जा सकता है ।

पाण्डु=विचित्रवीर्य के क्षेत्रजपुत्र । महर्षि कृष्ण द्वैपायन व्यास के औरस और विचित्रवीर्य की विधवा पत्नी अम्बालिका के गर्भ से इनकी उत्पत्ति हुई थी । इनके दो स्त्रियाँ थीं कुन्ती, और माद्री । भोजकन्या कुन्ती ने स्वयम्वर में पाण्डु को वरण किया था, तदन्तर भीष्म ने मद्रदेश की राजकन्या माद्री को पाण्डु से व्याह दिया । भीष्म ही धृतराष्ट्र पाण्डु और विदुर के रक्षक थे । युधिष्ठिर भीम और अर्जुन ये कुन्ती के गर्भ से उत्पन्न हुए थे, और माद्री के गर्भ से नकुल सहदेव उत्पन्न हुए थे । ये पाँचों पाण्डु के क्षेत्रज पुत्र थे । युधिष्ठिर धर्म के औरस से, भीम वायु के औरस से, अर्जुन इन्द्र के औरस से और नकुल सहदेव अश्विनीकुमार द्वय के औरस से उत्पन्न हुए थे । पाण्डु के क्षेत्रजपुत्र पाण्डव कहे जाते हैं ।

पाण्डु ने शन्तनु की नष्टप्राय कीर्ति का उद्धार किया । उन्होंने अनेक राजाओं को परास्त कर के प्रचुर अर्थसञ्चय किया, और पाँच यज्ञों के अनुष्ठान किये । यज्ञ समाप्त कर के पाण्डु दोनों स्त्रियों के साथ वन चले गये । उसी वन में एक महातेजस्वी ऋषिपुत्र मृगरूप धारण कर के मृगी के साथ सङ्गम करता था । राजा पाण्डु ने उस काममोहित मृग और मृगी के पाँच बाण मारे, मृगरूपधारी ऋषिपुत्र ने राजा को शाप दिया—मैं फल मूल खाने वाला मुनि हूँ, मेरा नाम किमिन्दम है, मैं लोकलज्जा से मृगरूप धारण कर के मृगी के साथ मैथुनाचरण करता था, तुमने अतृप्तिकाल ही में मुझे मार दिया है । मृग के रूप में तुमने मुझको मारा है, अतएव ब्राह्मणवध का पातक तो तुम्हें नहीं होगा । परन्तु मैं शाप देता हूँ कि स्त्रीसङ्गम करने के समय अतृप्तावस्था ही में तुम्हारी मृत्यु होगी । इसी शाप के डर से पाण्डु ने स्त्री-सङ्गम करना ही छोड़ दिया । कुन्ती ने दुर्वासा से एक मन्त्र पाया था, जिसके प्रभाव से वह देवताओं को बुला कर गर्भाधान करा सकती थीं । पाण्डु के कहने से कुन्ती ने माद्री को भी वही मन्त्र सिखा दिया । उसी मन्त्र के प्रभाव से माद्री ने अश्विनीकुमारों द्वारा नकुल और सहदेव दो पुत्र पाये थे । वसन्त ऋतु में एक दिन पाण्डु कामार्त हो कर माद्री के निषेध करने पर भी उससे भोग करने लगे और मुनि के शाप से मर गये । माद्री पाण्डु के साथ सती हो गयी । वनवासी महर्षि, कुन्ती और पञ्च पाण्डवों के साथ दोनों शव हस्तिनापुर लाये । भीष्म और धृतराष्ट्र ने इनकी मृत्यु पर बहुत शोक प्रकट किया अनन्तर उनकी आज्ञा से विदुर ने मृतदेहों की अन्तिम क्रिया की ।

पातञ्जलदर्शन=संसार को दुःख का हेतु मान कर पतञ्जलि ने उन दुःखों को दूर करने के उपाय बताये हैं । योगसूत्र या पातञ्जलदर्शन में वे ही उपाय लिखे गये हैं । पतञ्जलि ने सांख्यमत का अनुसरण किया है । पातञ्जलदर्शन कहता है कि प्रकृति पुरुष के भेदज्ञान के लिये योग की आवश्यकता है । विना योग के तत्त्वज्ञान प्राप्त नहीं होता कैवल्य या मोक्षप्राप्ति असम्भव है । पदार्थतत्त्वनिरूपण विषय में भी सांख्य से पातञ्जल में थोड़ा ही भेद है । सांख्य के पचीस तत्त्वों के अतिरिक्त पातञ्जल एक पुरुष या ईश्वर नामक एक छब्बीसवाँ पदार्थ

मानते हैं। इसका मत है कि पचीस तत्त्वों के अतिरिक्त एक पुरुष है जो–क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः–है। अर्थात् जिनका अविद्यामूलक क्लेशकर्म विपाक और आशय से सम्बन्ध नहीं है। वही ईश्वर और ज्ञानाधार हैं। पातञ्जल के मत से–सामान्य पुरुष रागद्वेषादि क्लेश, पाप पुण्य आदि कर्म, जन्म मृत्यु आयु भोग आदि कर्मफल, तथा तदनुरूप संस्कारों के अधीन हैं। किन्तु विशेष या ईश्वर इनसे परे हैं। योग के प्रभाव से वही ज्ञान की पराकाष्ठा प्राप्त होती है उसी ज्ञान की प्राप्ति ही कैवल्य है। कैवल्य का निरूपण करना ही पातञ्जलदर्शन का उद्देश्य है। इसी कारण पहले स्थूल भाव से पदार्थों का विचार कर के योगाङ्गकरण तथा योगप्रभाव से किस प्रकार कैवल्य प्राप्त होता है यही विषय इस दर्शन में बतलाया गया है। पतञ्जलि ने "योग" शब्द का अर्थ बताया है "योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः" जिसके द्वारा चित्तवृत्ति का निरोध किया जा सके वही योग है। योग के आठ अङ्ग हैं। यथा–यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि। अर्थात् यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। इनमें पहले पाँच बहिरङ्ग हैं और तीन अन्तरङ्ग हैं। क्योंकि यम नियमादि के साथ शरीर का और धारणा ध्यान के साथ चित्त का सम्बन्ध है। योग के चार सोपान हैं हेय, हेयहेतु, हान, और हानोपाय। पतञ्जलि के मत से संसार हेय है क्योंकि दुःखमय है। प्रकृति पुरुष का संयोग ही दुःख का हेतु है क्योंकि उससे अविद्या उत्पन्न होती है। प्रकृति पुरुष का वह संयोगविच्छेद ही हान है क्योंकि इससे अविद्या का हनन होता है। प्रकृति पुरुष का भेदज्ञान ही हानोपाय है, क्योंकि उसके द्वारा तत्त्वज्ञान होने से मिथ्या ज्ञान नष्ट होता है। योग द्वारा ही हानोपाय निश्चित किया जा सकता है। इसके अनन्तर पातञ्जलदर्शन में चित्त की अवस्था तथा उसकी वृत्तियों की आलोचना की गयी है। उनके मत से चित्त की अवस्था और वृत्तियाँ पाँच हैं। वे पाँच अवस्थाएँ ये हैं–क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त, एकाग्र और निरुद्ध। जिस समय चित्त में अधिक चञ्चलता होती है उस समय चित्त क्षिप्त है अर्थात् उसमें रजोगुण की अधिकता है। चित्त में मोह होने पर मूढ़ावस्था होती है अर्थात् उस समय तमोगुण की अधिकता होती है। जब कभी चित्त में स्थिरता कभी चञ्चलता होती है तब उस अवस्था का नाम मूढ़ है। दृढ़ रूप से ध्येयवस्तु की ओर जब चित्त लग जाता है तब वह चित्त की एकाग्र अवस्था है। इन वृत्तियों का निरोध होना ही चित्त की निरुद्धावस्था कही जाती है। वृत्तिपञ्चक–प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति। प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द ये चार प्रमाण हैं। मिथ्याज्ञान को विपर्यय कहते हैं। इच्छानुसार कल्पना विकल्प कही जाती है इत्यादि। योगद्वारा ये चित्त की वृत्तियाँ रोकी जा सकती हैं अर्थात् पुरुष में विकार होने की कोई सम्भावना नहीं रह जाती। इसी कारण योगसूत्र में पतञ्जलि ने चित्त की वृत्ति को निरोध करने के अनेक उपाय बताये हैं। उनका मत है कि विक्षिप्तावस्था से योग का आरम्भ होता है। चित्त का निरोध हो जाना ही पूर्ण योग है। परन्तु चित्तवृत्ति का निरोध किन उपायों से हो सकता है इसके उत्तर में पातञ्जल कहता है " अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः " अर्थात् अभ्यास वैराग्य के द्वारा ही चित्तवृत्ति का निरोध किया जा सकता है। उसी चित्तवृत्ति निरोध ही का दूसरा नाम " समाधि " है। अनेक प्रकार से समाधि की सिद्धि होती है। ईश्वरप्रणिधान से समाधि होती है, चित्तस्थिरता से समाधि होती है, जिस समाधि में समस्त वृत्तियाँ निरुद्ध हो जाँय, उसे निर्बीज समाधि कहते हैं। उसी समाधि के प्राप्त होने ही से पुरुष शुद्ध मुक्त हो जाता है। इसी अवस्था का नाम है " पुरुष की कैवल्य प्राप्ति "। कैवल्य लाभ करने पर पुरुष किस अवस्था में रहता है इसका उत्तर पतञ्जलि देते हैं–" पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तेरिति " अर्थात् गुणों से पुरुष का सम्बन्ध टूट जाने से पुनः उसमें विकार नहीं

होता। उसी अवस्था में कैवल्य अर्थात् आत्मस्वरूप में अवस्थिति होती है। उस अवस्था में भेदज्ञान नष्ट हो जाता है, आत्मस्वरूप की प्राप्ति होती है। कपिल आदि जिस अवस्था को निःश्रेयस या मोक्ष कहते हैं। पतञ्जलि का कैवल्य भी वही पदार्थ है। पतञ्जलि के मत से सुख दुःख आत्मधर्म नहीं हैं, किन्तु वे चित्त के धर्म हैं, केवल वे आत्मा में प्रतिबिम्बित होते हैं। अतएव राग द्वेष आदि वृत्तियों से चित्त का सम्बन्ध दूर करने पर आत्मस्वरूप में अवस्थान करने ही से मोक्ष या कैवल्य की प्राप्ति है।

पातञ्जलदर्शन के चार पाद हैं। १ समाधिपाद, २ साधनपाद, ३ विभूतिपाद, ४ कैवल्यपाद। इसके भाष्यों में व्यासभाष्य सर्वोत्तम है, भोजदेव की वृत्ति भी इस पर है।

पार्थ=काश्मीर के एक राजा। ये निर्जितवर्मा के औरस तथा मृगावती के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। दस वर्ष की अवस्था में ये काश्मीर के राजसिंहासन पर बैठे। उस समय काश्मीर में दो प्रधान दल थे। एक का नाम तन्त्री और दूसरे का नाम एकाङ्ग था। इनका राजा से धन हथियाना ही कर्तव्य था। ये इतने प्रभावशाली हो गये थे कि जिसको चाहते राज्यच्युत कर देते और जिसको चाहते उसीको राजा बना देते। उन्हींमें के तन्त्रीदल की सहायता से पार्थ को राज्य मिला था। पार्थ के बालक होने के कारण इनके पिता निर्जितवर्मा ही राज्यकार्य चलाते थे। इनके समय में बड़ा अनर्थ होने लगा था। तन्त्री और पदाती दोनों दल प्रजा का लुण्ठन करने लगे।

निर्जितवर्मा की दो रानियाँ थीं—वप्पटदेवी और मृगावती। इनका मन्त्री सुगन्धादित्य से निन्दित व्यवहार था। दोनों अपने पुत्र को राजा बनाना चाहती थीं। इसी कारण सुगन्धादित्य के प्रयत्न से पार्थ राजासन से उतार दिये गये, और वप्पटदेवी का पुत्र चक्रवर्मा गद्दी पर बैठाया गया। तदनन्तर मन्त्रियों ने चक्रवर्मा को राज्यच्युत कर के मृगावती के पुत्र शूरवर्मा को राजा बनाया। परन्तु शूरवर्मा के राजा होने पर मन्त्रियों का अधिकार घट गया, और उनका अभीष्ट सिद्ध नहीं होने लगा, इस कारण पार्थ ने अधिक धन देने की प्रतिज्ञा कर के पुनः राजासन प्राप्त किया। शाम्बवती नाम की एक वेश्या से पार्थ का प्रेम था; वह इन दलों की अभिसन्धि जानती थी। उसने सब बातें पार्थ से कह दीं। इसी कारण तन्त्रीदल पार्थ पर असन्तुष्ट हो गया, और उन्हें पुनः राज्यच्युत कर दिया। पार्थ ने दोनों बार मिला कर १६ वर्ष १ महीना १३ दिन राज्य किया था।

(राजतरङ्गिणी)

पालकाप्य=गजायुर्वेदवेत्ता प्राचीन ऋषि। अग्निपुराण में गजचिकित्सा के विषय में पालकाप्य का उल्लेख किया गया है। इन्होंने लोमपाद ऋषि को गजायुर्वेद की शिक्षा दी थी। इन्होंने एक ग्रन्थ भी बनाया था परन्तु दुःख है कि वह अभी तक उपलब्ध नहीं हुआ है।

पिप्पलायन=ये ऋषभदेव के पुत्र बड़े भागवत थे। ऋषभदेव ने बहुत प्रयत्न किया था कि उनके लड़के धार्मिक और भगवद्भक्त हों। वे अपने प्रयत्न में सफल भी हुए।

पुण्ड कवि=संस्कृत और हिन्दी के प्राचीन कवि। ये उज्जैन के निवासी थे और सं० ७७० में उत्पन्न हुए थे। उस समय के अवन्ती के राजा मानसिंह के ये दरबारी कवि थे और इन्हीं राजा से इन्होंने काव्य की शिक्षा पायी थी। इन्होंने भाषा में प्रथम प्रथम कविता की। क्योंकि इनके पहले के अन्य किसी कवि का पता नहीं लगता। इस कवि का दूसरा नाम पुष्पभाट था।

पुण्डरीक कवि=ये बुन्देलखण्डी भाषा के कवि थे। सं० १७६६ में ये उत्पन्न हुए थे। इनकी कविता सुन्दर है।

पुण्ड्र=बलिराज का क्षेत्रजपुत्र (देखो अङ्ग)

पुन्यपाल=जयसलमेर के एक राजा का नाम। इनके पिता का नाम लाखनसेन था। लाखनसेन की मृत्यु होने पर पुन्यपाल के सिर पर जयसलमेर का राजमुकुट स्थापन किया गया। परन्तु ये बड़े क्रोधी और रूखे स्वभाव के थे। इनके व्यवहारों से सभी सामन्त अप्रसन्न थे, इसी कारण इनको सामन्तों ने राज्य से अलग कर दिया। राज्यच्युत हो कर ये जयसलमेर के पास किसी गाँव

में जा कर रहने लगे। इनका समय १२ वीं सदी का अन्तिम भाग है। (राजस्थान)

पुरञ्जय=एक प्राचीन सूर्यवंशीय राजा। पहले देवासुरसंग्राम में देवगण दैत्यों से पराजित हो कर विष्णु की शरण गये और विष्णु की आज्ञा से उन लोगों ने पुरञ्जय से सहायता माँगी। पुरञ्जय ने देवताओं की प्रार्थना स्वीकार की और उन्होंने इन्द्र से वृषभरूप धारण करने के लिये कहा। इन्द्र ने पहले तो लज्जा से स्वीकार नहीं किया परन्तु पीछे देवताओं के कहने से वे भी सम्मत हो गये। राजा पुरञ्जय ने वृषरूपी इन्द्र पर चढ़ कर दैत्यों को पराजित किया। तभी से पुरञ्जय का नाम "ककुत्स्थ" हुआ। और उनके वंशज "काकुत्स्थ" कहे जाने लगे। (विष्णुपुराण)

पुरन्दर=देवराज इन्द्र का नामान्तर। ये शत्रु के नगर का विदारण करते हैं इस कारण इनको पुरन्दर कहते हैं।

पुराण=कल्प के इतिहास को पुराण कहते हैं। पुराणों में हिन्दुओं के दैनिक धर्मानुष्ठान की रीति लिखी गयी है। पुराणों में प्राचीन इतिहास का सार निहित है। पुराणों में हिन्दूजाति की प्रतिष्ठा, गौरव, महत्त्व, वीरत्व, साहस, न्यायनिष्ठा, दया, दाक्षिण्य आदि का खाका खींचा गया है। कर्म अकर्म धर्म अधर्म पाप पुण्य आदि मनुष्य जीवन की गति निश्चित करने का मूलमन्त्र दृष्टान्त आदि पुराणों में बड़े सुन्दर दिये गये हैं। पुराणों की संख्या, आकार, विषय परम्परा धर्म तत्त्व कवित्व लेखनशैली आदि पर विचार करने से अचम्भित होना पड़ता है। पुराणों के समान उपयोगी और बृहत्काय ग्रन्थ किसी देश की किसी भी भाषा में नहीं लिखे गये हैं। पुराण शब्द का अर्थ है प्राचीन-पुरातन। अर्थात् जिसमें पुराने समय का राजनैतिक सामाजिक और प्राकृतिक अवस्था का वर्णन किया गया हो, जो मनुष्यों के चित्त को धर्म की ओर खींच लावे, उसे पुराण कहते हैं। किसी किसीके मत से पुराणों में पाँच लक्षण होने की आवश्यकता है और किसीके मत से दश लक्षण। जो पुराणों को पञ्चलक्षणाक्रान्त मानते हैं उनमें भी दो प्रकार के मत प्रचलित हैं। वाराहपुराण में लिखा है—

"सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि तु।
वंशानुचरितञ्चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्॥"

अर्थात् सर्ग प्रतिसर्ग, वंश मन्वन्तर और वंशानुचरित इन पाँच लक्षणों से युक्त ग्रन्थ को पुराण कहते हैं। परन्तु अमरकोश में पुराण के पाँच लक्षण इनसे कुछ भिन्न हैं। सृष्टिविषय, प्रलयविषय, देवतत्त्व, अवतारतत्त्व, मनु और मन्वन्तर का विवरण तथा चन्द्र सूर्य वंश का आधुनिक और प्राचीन विवरण जिसमें लिखे गये हों उसे पुराण कहते हैं। भागवत में पुराण के दशविध लक्षण का उल्लेख है। यथा—१—सर्ग, अर्थात् प्रकृति के तीन गुणों से किस प्रकार पदार्थसमूह और उसके अधिष्ठाता देवों की उत्पत्ति होती है। २—विसर्ग, अर्थात् कर्मफल के अधीन हो कर किस प्रकार चराचर की सृष्टि होती है। ३—वृत्ति, अर्थात् विधिवश किन उपायों से प्राणियों की जीवनरक्षा होती है। ४—रक्षा, अर्थात् वेदविरोधी राक्षसों के आक्रमण से किस प्रकार देवता और ऋषियों की रक्षा के लिये नारायण अवतार ग्रहण करते हैं। ५—मन्वन्तर, अर्थात् मनु, देवगण, मनुपुत्रगण, सुरेश्वर ऋषि तथा नारायण के अवतार किस प्रकार अपने अपने अधिकारों को पालन करते हैं। ६—वंश, अर्थात् ब्रह्मा से उत्पन्न विशुद्ध राजवंश का भूत भविष्यत् और वर्तमान चित्र। ७—वंशानुचरित, अर्थात् राजवंशियों का चरित्र। ८—संस्था, अर्थात् नित्य नैमित्तिक प्राकृतिक आत्यन्तिक विश्व के चार प्रकार के प्रलय। ९—हेतु, अर्थात् अज्ञानता के कारण कर्मवश जीव किस प्रकार संसार का हेतु होता है। १०—अपाश्रय, अर्थात् सब अवस्थाओं में जीव का ब्रह्म के साथ सम्बन्ध। कालक्रम से आज पुराणों में विकृति हो गयी है, अतएव इन लक्षणों को मिला लेना आवश्यक है।

पुरु=(१) ययाति के पुत्र और नहुष के पौत्र। ययाति की दो स्त्रियाँ थीं देवयानी और शर्मिष्ठा। देवयानी दैत्यगुरु शुक्राचार्य की कन्या थी और शर्मिष्ठा दैत्यपति वृषपर्वा की। देवयानी के

गर्भ से यदु और तुर्वसु नामक ययाति के दो पुत्र हुए थे। और शर्मिष्ठा के गर्भ से द्रुह्यु अनु और पुरु तीन पुत्र उत्पन्न हुए थे। शुक्राचार्य ने राजा ययाति को जराग्रस्त हो जाने का शाप दिया था। परन्तु ययाति की प्रार्थना से प्रसन्न हो कर उन्होंने कहा कि तुम अपनी वृद्धावस्था उसकी सम्मति से किसी दूसरे पर रख सकते हो। देवयानी ने एक एक कर के सभी पुत्रों से ययाति का बुढ़ापा ग्रहण करने के लिये कहा, परन्तु सब से छोटे पुरु के अतिरिक्त किसीने स्वीकार नहीं किया। ययातिने पुरु को बुढ़ापा दे उनको राज्य का अधिकारी बनाया।

पिता की आज्ञापालन करने के कारण पुरु सब से छोटा होने पर भी और ज्येष्ठ भाइयों के रहते भी राज्यके अधिकारी हुए। पुरु के तीन पुत्र उत्पन्न हुए थे। प्रवीर, ईश्वर और रौद्राश्व। (महाभारत)

(२) हस्तिनापुर के चन्द्रवंशी राजा। अलकजेंडर के भारताक्रमण के समय इन्होंने वितस्ता नदी के किनारे उसे रोका था। यद्यपि युद्ध में पुरु पराजित हो गये थे, तथापि उनकी वीरता से प्रसन्न हो कर अलकजेंडर ने उनका राज्य उन्हें लौटा दिया। (इतिहास)

पुरुकुत्स=राजा मान्धाता के पुत्र। ये राजा शशबिन्दु की कन्या इन्दुमती के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। इनके बड़े भाई का नाम मुचकुन्द था। पुरुकुत्स की स्त्री ऋषि के शाप से नदी हो गयी थी। महर्षि सौभरि को इनकी पचास बहिनें व्याही गयी थीं। पुरुकुत्स नर्मदा नदी के उत्तर देशों के राजा थे। नर्मदा के गर्भ से पुरुकुत्स को एक पुत्र उत्पन्न हुआ था। जिसका नाम त्रसदस्यु था। नर्मदा के कहने से पुरुकुत्स ने पाताल में जा कर अनेक गन्धर्वों का नाश किया था। (हरिवंश)

पुरूरवा=बुध के पुत्र और चन्द्रमा के पौत्र। चन्द्रमा ने बृहस्पति-पत्नी तारा को हर लिया था। उस समय तारा के गर्भ से चन्द्र को एक पुत्र हुआ। उस पुत्र का नाम बुध था। बुध का व्याह राजपुत्री इला से हुआ। इला के गर्भ से बुध को पुरूरवा नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। उर्वशी इन्द्र के शाप से मर्त्यलोक में उत्पन्न हुई, और पुरूरवा की स्त्री बनी। राजा ठहरावों का पालन नहीं कर सके इस कारण उर्वशी ने पुरूरवा को छोड़ दिया। पुरूरवा उर्वशी के वियोग से अधीर हो गये और वे इधर उधर घूमने लगे। घूमते घूमते वे कुरु-क्षेत्र पहुँचे वहाँ उनकी उर्वशी से भेंट हुई। राजा ने उससे घर में लौट आने के लिये अनुरोध किया। राजा के कष्ट को जान कर उर्वशी बोली मैं आपके द्वारा गर्भवती हुई हूं, वर्ष दिन के बाद कतिपय पुत्र उत्पन्न होंगे, उनको देने के लिये मैं आपके घर आऊँगी और उसी समय आपके यहाँ एक रात रहूँगी। उर्वशी के गर्भ से आयु, श्रुतायु, विश्वायु आदि सात पुत्र उत्पन्न हुए थे। उर्वशी इन पुत्रों को ले कर राजा को दे आयी, और एक रात उनके यहाँ रही भी। प्रयाग में पुरूरवा की राजधानी थी। यह नगर गङ्गा तीर पर स्थापित हुआ था। इस कारण इसका नाम प्रतिष्ठान हुआ। पुरूरवा ने गन्धर्वों से एक अग्निपूर्ण स्थान पाया था। उसी अग्नि के बल से इन्होंने अनेक यज्ञ कर के अन्त में गन्धर्वलोक प्राप्त किया।

पुरुषोत्तम कवि=ये कवि बुन्देलखण्डी थे और सं० १७३० में उत्पन्न हुए थे। ये बन्दीजन तथा पन्ना नरेश छत्रसाल के दरबारी थे।

पुरोचन=दुर्योधन का मित्र और कर्मचारी। दुर्योधन की आज्ञा से इसने पाण्डवों को विनष्ट करने के लिये वारणावत नगर में जतुगृह बनाया था, विदुर के सङ्केत से पाण्डव पुरोचन के दुर्व्यवहार को ताड़ गये थे। भीमसेन पुरोचन के घर में तथा उस जतुगृह में आग लगा कर माता और भाइयों को ले कर सुरङ्ग से भाग गये। उसी घर में पुरोचन जल कर मर गया। (महाभारत)

पुलस्त्य=सप्तर्षियों में से एक। ये एक ब्रह्मा के मानसपुत्र हैं और प्रजापतियों में गिने जाते हैं। पुलस्त्य के पुत्र का नाम विश्रवा था। विश्रवा की पहली स्त्री से कुबेर, और केकसी के गर्भ से रावण आदि तीन भाई उत्पन्न हुए थे। (रामायण)

पुलह=ये भी ब्रह्मा के मानसपुत्र हैं और सप्तर्षियों में से एक हैं। पुलह की स्त्री का नाम गति है, जिसके गर्भ से कर्मश्रेष्ठ, वरीयान् और सहिष्णु नामक तीन पुत्र उत्पन्न हुए थे।

किसीके मत से पुलह की स्त्री का नाम क्षमा है। उसके गर्भ से कर्दम, अर्वरवीज और सहिष्णु तीन पुत्र उत्पन्न हुए।

(भागवत)

पुलोम=राक्षसविशेष। देवराज इन्द्र ने इसकी कन्या को व्याहा था।

पुलोमा=महर्षि भृगु की पत्नी और च्यवन की माता। इसके पिता का नाम दैत्यराज वैश्वानर था।

पुषी कवि=ये भाषाकवि और जाति के ब्राह्मण थे और मैनपुरी के समीप के रहने वाले थे। ये सं० १८०३ में उत्पन्न हुए थे। इनकी कविता-शैली उत्तम है।

पुष्कर=(१) निषधराज नल का छोटा भाई। इसने कलि की सहायता से अपने बड़े भाई नल को जूए में जीत लिया था और उनको राज्यच्युत कर के स्वयं राजा बन गया था।

(महाभारत)

(२) ये हिन्दी के एक कवि थे। साहित्य विषयक "रसरत्न" नामक एक ग्रन्थ इन्होंने बनाया है।

पुष्पदन्त=(१) शिव का अनुचरविशेष। यह एक बार छिप कर शिव और पार्वती की बातें सुन रहा था, इससे पार्वती बहुत अप्रसन्न हुईं। उनके शाप से पुष्पदन्त मर्त्यलोक में कौशाम्बी नगरी के एक ब्राह्मण के यहाँ उत्पन्न हुआ। इस ब्राह्मण का नाम था सोमदत्त और सोमदत्त के पुत्र का नाम कात्यायन था।

(कथा सरित्सागर)

(२) एक प्रधान गन्धर्व। यह पार्वती की सहेली जया का स्वामी था। किसी कारण से शिव इस पर अप्रसन्न हुए और उन्होंने इस की आकाश में गमन करने की शक्ति नष्ट कर दी। पुनः महादेव की बहुत कुछ स्तुति करने पर इसे खेचरत्व प्राप्त हुआ। पुष्पदन्त का बनाया शिवस्तोत्र "महिम्नस्तोत्र" कहा जाता है।

(३) अष्टदिग्गजों में का एक दिग्गज। उत्तर और पश्चिम दिशा के अधिपति वायु इस पर चढ़ कर उन दिशाओं की रक्षा करते हैं।

पूतना=दानवीविशेष। इसीको कंस ने श्रीकृष्ण को मारने के लिये गोकुल भेजा था। यह गोकुल में आ कर माया से सुन्दर स्त्री बनी और नन्द के घर में गयी। पूतना ने श्रीकृष्ण को यशोदा के अङ्क से अपनी गोदी में ले लिया और उनको अपना स्तन पिलाने लगी। इसने अपने स्तनों में विष लगा रखा था। उसकी यही भीतरी इच्छा थी कि इस प्रकार मैं श्रीकृष्ण को मार डालूँगी। यह भला श्रीकृष्ण को क्या पहचान सकती थी, उसने श्रीकृष्ण को सामान्य बालक समझा और इस प्रकार उनको मारने का प्रयत्न किया। श्रीकृष्ण स्तन पान करने लगे। बाल-घातिनी पूतना मारे पीड़ा के व्याकुल हो गयी। अन्त में वह उस यन्त्रणा को न सह सकी, अतः वह अपनी भयङ्कर मूर्ति धारण कर के श्रीकृष्ण के मुख से स्तन छुड़ाने का प्रयत्न करने लगी। परन्तु वह अपने कार्य में सफल न हो सकी। वह दानवी अत्यन्त व्याकुल हो कर तथा भयङ्कर नाद से दिशाओं को प्रतिध्वनित करती हुई कटे वृक्ष के समान गिर पड़ी और उसी समय मर गयी। श्रीकृष्ण दानवी की छाती पर चढ़ कर नाचने लगे।

(भागवत)

हरिवंश में पूतना का वृत्तान्त दूसरे प्रकार से लिखा है। पूतना कंस की धाय थी। कंस की आज्ञा से पूतना गोकुल में गयी और चील्ह पक्षी का वेश धर कर आधी रात को वह नन्द के घर पहुँची, तथा श्रीकृष्ण को स्तन पिलाने लगी। आधी रात हो गयी थी, नगर सूनसान हो गया था, सभी नगरवासी निद्रा के अधीन अचेत हो रहे थे। श्रीकृष्ण स्तन पीने लगे। पूतना के स्तन पीड़ा से मानो फटने लगे, पूतना ज़ोर ज़ोर से चिल्लाने लगी, शीघ्र ही उसके स्तन कट गये और वह भी मर गयी। नन्द के घर में सभी जाग गये, और मृत पूतना को देख कर वे विस्मित हुए। पूतना क्यों मरी इसका कारण कोई नहीं जान सका।

(हरिवंश)

पूतना एक बालग्रह समझी जाती है । जन्म-दिन से बालकों को जो कुछ पीड़ा होती है वह पूतना की अप्रसन्नता ही से होती है, यह कुछ हिन्दुओं का विश्वास है । दिन महीना और वर्ष के अनुसार पूतना का उपद्रव होता है । पूतना के उपद्रवों को शान्त करने के लिये बलिदान आदि की विधि हिन्दू शास्त्रों में लिखी है ।

पृथा=कुन्ती का दूसरा नाम । यदुवंशी राजा शूर की यह कन्या थी । शूर ने इसका नाम पृथा रखा था । राजा कुन्तिभोज शूर के मित्र तथा फुफेरे भाई थे । उनके कोई सन्तान न थी । अतएव राजा शूर ने उनसे प्रतिज्ञा की थी कि मेरे जो पहला सन्तान होगा उसे मैं तुमको दूँगा । इसी प्रतिज्ञा के अनुसार उन्होंने अपनी बड़ी कन्या पृथा कुन्तिभोज को दे दी थी । (देखो कुन्ती) (महाभारत)

पृथिवीसिंह=मारवाड़ के राजा यशवन्तसिंह का ज्येष्ठ पुत्र । जब औरङ्गज़ेब ने यशवन्तसिंह को विद्रोही अफ़गानों का दमन करने के लिये काबुल भेजा, उस समय यशवन्तसिंह ने इन्हींको राज्य का भार सौंपा था । ये ही उस समय मारवाड़ का शासन करते थे । इनको औरङ्गज़ेब ने एक बार अपनी राजसभा में बुलवाया । पृथिवीसिंह सम्राट् की आज्ञा नहीं टाल सके, वे दिल्ली पहुँचे । सम्राट् ने उनका बड़े सम्मान से स्वागत किया, रीति के अनुसार पृथिवीसिंह बादशाह के समीप ही बैठते थे । एक दिन वे सभा में आये और बादशाह को सलाम कर के अपने आसन पर बैठने जाते ही थे इतने में बादशाह ने उन्हें हँस कर बुलाया । पृथिवीसिंह भी बादशाह के समीप जा कर खड़े हो गये । बादशाह ने उनके हाथ पकड़ कर धीरे धीरे कहा—राठौर ! सुना है तुम इन भुजाओं में अपने पिता के समान बल रखते हो, अच्छा कहो, इस समय तुम क्या करोगे ? पृथिवीसिंह ने उत्तर दिया—ईश्वर दिल्लीश्वर का कल्याण करें । बादशाह ! जब साधारण राजा और प्रजाओं पर आपका हाथ फैलता है तो उनकी सभी इच्छाएँ पूरी होती हैं, परन्तु सौभाग्यवश आपने इस सेवक के हाथ स्वयं ही पकड़ लिये हैं, अतएव अब मैं समस्त पृथिवी को जीत सकता हूँ । इतना कहते कहते राठौर वीर के शरीर में मानों नया बल आ गया । उस समय बादशाह ने कहा—देखते हैं यह जवान दूसरा कुट्टन है । औरङ्गज़ेब यशवन्तसिंह को कुट्टन कहा करता था । बादशाह ने पृथिवीसिंह को ख़िल्लत दी, पृथिवीसिंह ने रीति के अनुसार बादशाह के दिये कपड़े वहीं पहन लिये और वे अपने आसन पर जा बैठे ।

किन्तु वही दिन उस नवयुवक के उल्लासमय जीवन का अन्तिम दिन था । राजसभा से घर लौटते लौटते पृथिवीसिंह व्याकुल हो गये । उनके हृदय में ऐंठन होने लगी, सिर काँपने लगा । देखते देखते यशवन्त के हृदय का आनन्द, राठौर कुल का होनहार वीर कुमार पृथिवीसिंह सदा के लिये विदा हो गये ।

कहते हैं बादशाह ने उन ख़िल्लत के कपड़ों में इस प्रकार विष का योग कर दिया था, जिनके पहनने के कारण पृथिवीसिंह का अन्त हुआ । (टाडस् राजस्थान)

पृथिव्यापीड़=(१) काश्मीर के एक राजा का नाम । इनके पिता का नाम राजा वज्रादित्य था और माता का नाम मञ्जरिका । ये राजा हो कर प्रजापीड़न करने लगे । ४ वर्ष १ महीना इन्होंने राज्य किया अनन्तर इनके सौतेले भाई संग्रामापीड़ ने इन्हें राज्यच्युत कर दिया । (राजतरङ्गिणी)

(२) काश्मीर के एक राजा । ये द्वितीय पृथिव्यापीड़ कहे जाते हैं । जयापीड़ के औरस और कल्याणदेवी के गर्भ से ये उत्पन्न हुए थे । इनका नाम संग्रामापीड़ था । इनके बड़े भाई ललितापीड़ के परलोकगत होने पर ये पृथिव्यापीड़ नाम बदल कर काश्मीर के सिंहासन पर बैठे । उनका राज्यकाल ७ वर्ष है । (राजतरङ्गिणी)

पृथुराज=वेन राजा के पुत्र । इन्होंने बाहुबल से समस्त राजाओं को जीत लिया था । इन्होंने पृथिवीतल को प्रोथित-समतल-बनाया था इस कारण ये पृथु कहे जाते थे । इनके राजसूय यज्ञ

में महर्षिगण उपस्थित हुए थे और इनका राज्याभिषेक किया था। उनके शासनकाल में विना जोती हुई भी भूमि अन्न उत्पन्न करती थी। धेनुसमूह कामदुहा हुई थी। प्रबल प्रतापी महाराज पृथु ने अनेक यज्ञ सम्पादन कर के समस्त प्राणियों को अभिलषित द्रव्य दे कर सन्तुष्ट किया था। इसी दानी राजा ने अपने अश्वमेध यज्ञ में पृथिवी के समस्त पदार्थों की स्वर्णप्रतिमाएँ बना कर ब्राह्मणों को दी थीं। उन्होंने ६६ हज़ार सुवर्णछत्र और मणिरत्नभूषित सुवर्णमय पृथिवी दान की थी।

(महाभारत)

पहले समय में अत्रिवंशी अङ्ग नामक एक प्रजापति थे। धर्मराज की कन्या सुनीथा के गर्भ से उन्हें वेन नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ। वेन महादुराचारी राजा था। वह समझता था कि संसार में मुझसे बढ़ कर दूसरा कोई पूज्य नहीं है। अतएव देवता के लिये याग यज्ञ आदि करना व्यर्थ है।

वेन के अत्याचार से प्रजा पीड़ित होने लगी। अनन्तर एक समय मरीचि आदि ऋषियों ने इसके अत्याचार न सह कर अत्याचार न करने के लिये इसे समझाया। परन्तु दुराचारी वेन ने इनकी बातों को हँस कर उड़ा दिया। इससे ऋषिगण मारे क्रोध के जल गये, और एकत्रित हो कर बलगर्वित वेन को दमन करने लगे। ऋषिगण वेन का ऊरु रगड़ने लगे। उससे नाटे क़द का एक मनुष्य उत्पन्न हुआ। वह पुरुष ऋषियों के सामने भय से काँपता हुआ खड़ा हो गया। ऋषिश्रेष्ठ अत्रि इसको भीत देख कर बोले—निषीद, (उपवेशन करो) यही पुरुष निषादवंश का आदिपुरुष है। अनन्तर ऋषिगण वेन का दक्षिण बाहुमन्थन करने लगे। इसी बाहु से प्रदीप्त अग्नि के समान पृथु उत्पन्न हुए। पृथु कवच धनु और दिव्य शर ले कर उत्पन्न हुए थे। सत्पुत्र पृथु के उत्पन्न होने से वेन पुन्नाम नरक से रक्षा पा कर स्वर्ग गये। अनन्तर ब्रह्मा देवताओं के साथ वहाँ उपस्थित हुए और उन्होंने पृथु को चक्रवर्ती राजा बनाया। पृथिवीस्थ मनुष्यों का सुख स्वाच्छन्द्य विधान कर के उन्होंने राज्य किया था। एक समय प्रजा राजा के समीप उपस्थित हो कर अपनी अपनी वृत्ति निश्चित कर देने के लिये प्रार्थना की। पृथु ने उनकी प्रार्थना से शर सन्धान कर के पृथिवी पर आक्रमण किया। पृथिवी पृथु के भय से गोरूप धारण कर के भागी, पृथु भी उसके पीछे पीछे दौड़े। गोरूपधारिणी पृथिवी ब्रह्मलोक आदि में घूमती हुई कहीं नहीं ठहर सकी। पृथु भी धनुर्बाण ले कर सब स्थानों में उसका अनुसरण करने लगे। अन्त में पृथिवी महाराज पृथु की शरण आयी। पृथु बोले—पृथिवी! तुम सब प्रजाओं को जीविका प्रदान करो, और मेरी पुत्री बनो। पृथिवी बोली—मैं आपके प्रस्ताव से सहमत हूँ, परन्तु किस प्रकार आप प्रजारक्षा करना चाहते हैं यह पहले स्थिर कर लें। प्रजा की जीविका विधान करने के लिये मुझको दोहन करना। दोहन करने के लिये बछड़ों की आवश्यकता होती है। बछड़ों के विना कभी दूध नहीं निकलता। और हमको समतल भी करना पड़ेगा, नहीं तो हमारा दूध कैसे सब स्थानों में फैलेगा।

पृथु ने पृथिवी की बात सुन कर धनु के अग्रभाग से अनेक पर्वतों को उलट दिया। इस प्रकार समस्त पृथिवी समतल हुई। अनन्तर महाराज पृथु ने भगवान् स्वायम्भुव मनु को वत्स बना कर अपने हाथ से गोरूपधारिणी पृथिवी से अनेक शस्य दोहन करे। उसी अन्न द्वारा प्रजा जीवन धारण कर रही है। अनन्तर ऋषियों ने सोमदेव को वत्स बना कर पुनः पृथिवी का दोहन किया था। इस बार देवगुरु बृहस्पति दोहनकर्त्ता बने थे। तदनन्तर इन्द्र आदि देवताओं ने मिल कर पुनः पृथिवी को दुहा था, इस बार इन्द्र स्वयं वत्स बने थे, और सविता दोग्धा बने थे। यज्ञीय हवि इस बार क्षीर रूप से दुहा गया था। भूमि पृथु की पुत्री हुई थी इस कारण भूमि का नाम पृथ्वी पड़ा। महाराज पृथु इस प्रकार अलोकसामान्य प्रताप से राजाओं में अग्रणी हुए थे।

(हरिवंश)

श्रीमद्भागवत में पृथु की कथा इस प्रकार लिखी है। ब्राह्मणों ने अपुत्रक वेन के दोनों बाहुओं को मन्थन किया, एक बाहु से पुरुष और दूसरे से एक स्त्री उत्पन्न हुई। उस समय ऋषियों ने कहा था—तुम सब से प्रथम राजा हो, अतएव तुम्हारा नाम पृथु होगा और कन्या का नाम अर्चि होगा। ऋषियों के कहने से आर्चि और पृथु का व्याह हुआ। अनन्तर पृथु को कुवेर ने सुवर्णमय आसन, वरुण ने श्वेत छत्र, वायु ने दो व्यजन, ब्रह्मा ने वेदमय कवच, हरि ने सुदर्शन चक्र, और लक्ष्मी ने सम्पत्ति दी। भगवान् रुद्र ने एक तलवार दी। अतःपर अग्नि ने पृथु को छाग, सूर्य ने रश्मिमय बाण, और भूमि ने योगमयी पादुका उपहार में दीं।

महाराज पृथु भगवान् के अंश से उत्पन्न हुए थे। इन्होंने समस्त प्रजाओं पर भगवान् दिवाकर के समान अपना प्रताप फैलाया था। पृथु ने उत्तम कार्यों द्वारा सभी को प्रसन्न कर दिया था। वे परस्त्री को माता और अपनी स्त्री को अपने शरीरार्द्ध के समान समझते थे। इन्होंने सौ अश्वमेध यज्ञ किये थे। अन्तिम यज्ञ के समाप्त होने के पहले ही देवराज इन्द्र ने उनका यज्ञीय अश्व चुरा लिया था। महाराज पृथु ने सनत्कुमार की आराधना कर के ब्रह्मज्ञान प्राप्त किया था और यथासमय उन्होंने सद्गति पायी थी।

(भागवत)

पृथ्वीराज=(१) भारत के अन्तिम हिन्दू सम्राट्। (देखो जयचन्द और चन्द कवि)

(२) बीकानेर के राजा। ये बड़े वीर और सत्कवि थे। इनका व्याह मेवाड़ के राणा प्रतापसिंह के भाई सक्तसिंह की कन्या के साथ हुआ था। यद्यपि ये अकबर के दरबार में सामन्तों की प्रतिष्ठा से रहते थे, तथापि राजपूत स्वाधीनता के एकान्त उपासक थे। जिस समय बालिका का दुःख देख कर महासागर समान महाराणा का हृदय क्षुभित हुआ था, हिन्दू गौरव और स्वाधीनता का एकमात्र टिमटिमाता हुआ दीपक जिस समय बुझने को तैयार था, उस समय इसी वीर कवि की कविता ने उसे प्रकृतिस्थ बनाया। इन्हींकी कविता को देख कर महाराणा प्रताप ने अकबर की अधीनता स्वीकार न की।

महाराणा प्रताप ने एक बार एक पत्र लिखा था, जिसमें लिखा गया था कि मैं भी दिल्ली सम्राट् की अधीनता स्वीकार करने को तैयार हूँ। वह पत्र राजसभा में आया। बादशाह बड़े प्रसन्न हुए। बादशाह ने पृथ्वीराज से कहा—अब तो तुम्हारा "अणदागल" असवार दागा जायगा। पृथ्वीराज महाराणा प्रताप को अणदागल असवार कहा करते थे। अण दागल का अर्थ है विना दागा हुआ अर्थात् स्वाधीन। इस पर पृथ्वीराज बोल उठे—यह पत्र उनका नहीं है। किसी वैरी ने उनके नाम से लिख दिया है। अतएव इस पत्र के अनुसार तब तक कोई काररवाई न की जाय, जब तक मैं इस विषय के सत्यासत्य का निर्णय न कर लूँ। पृथ्वीराज ने उत्तेजनापूर्ण कई दोहे लिख कर प्रतापसिंह को उत्तेजित किया। वीरहृदय पुनः वीरता से उद्भासित हो गया। मोहरात्रि का अन्त हो गया। महाराणा प्रताप भी अपनी प्रतिज्ञा के पालन में दृढ़ हो गये।

पृथ्वीसिंह=ये जयपुर के महाराज माधोसिंह के पुत्र थे। इनकी छोटी अवस्था ही में इनके पिता की मृत्यु हुई। अतः पिता के मरने पर छोटी अवस्था ही में इनका राज्याभिषेक सम्पादित हुआ। पृथ्वीसिंह छोटी रानी के पुत्र थे। पटरानी के पुत्र प्रतापसिंह थे। अतएव पटरानी हीं उस समय राजकाज करने लगी। ये चन्द्रावंश की कन्या थीं। परन्तु फ़िरोज नामक एक फ़ीलवान से गुप्त प्रणय कर के इन्होंने अपने को कलङ्कित कर दिया था। महारानी ने उसे राजसभा का सदस्य बना दिया। इससे सभी सामन्त अप्रसन्न हो गये। वे जयपुर का रहना छोड़ अपने घर में जा कर रहने लगे। महाराष्ट्र अम्बा जी ने सुअवसर देख कर एक वेतनभोगी सेना कर वसूल करने के लिये भेज दी। यद्यपि उस समय भी आरतराम और खुशहालीराम बोहरा आदि राजनीतिपटु सज्जन जयपुर में वर्तमान थे तथापि फ़िरोज के सामने किसीकी

कुछ चलती नहीं थी, सभी हीनबल हो गये थे, इसी प्रकार नौ वर्ष तक आमेर का राज्य चला। अनन्तर एक दिन पृथ्वीसिंह घोड़े से गिर कर मर गये। बहुत लोग सन्देह करते हैं कि पटरानी ने इनको विषप्रयोग द्वारा मरवा डाला है। बीकानेर और कृष्णगढ़ की राजकुमारियों से इनका ब्याह हुआ था। कृष्णगढ़ की राजकुमारी के गर्भ से मानसिंह नामक इन्हें एक पुत्र भी हुआ था।

(टाडस् राजस्थान)

पृषध्र=वैवस्वत मनु के पुत्र। इन्होंने व्याघ्र के धोखे से गोवध किया था, इस कारण ये शूद्र हो गये। तदनन्तर पश्चात्तापरूपी दवाग्नि में भस्म हो कर इन्होंने परब्रह्म प्राप्ति की थी।

पौण्ड्र=यह एक प्राचीन राज्य था। पुण्ड्रवर्द्धन, पौण्ड्र, पुण्ड्रक, पौण्ड्रवर्द्धन आदि नामों से इसका पुराण इतिहासों में उल्लेख है। बौधायन सूत्र में लिखा है—पुण्ड्र, सौवीर, वङ्ग, कलिङ्ग प्रभृति जनपदों के अधिवासियों को देख कर पुनष्टोम नामक प्रायश्चित्त करना चाहिये। इससे मालूम पड़ता है कि पहले किसी नीचकर्म करने के कारण पौण्ड्रवासी समाजच्युत कर दिये गये थे, मनुसंहिता आदि में भी ऐसी ही बातें लिखी पायी जाती हैं। मनु कहते हैं कि पौण्ड्रक, ओड्र, द्राविड़, कम्बोज, यवन, शक, पारद, पह्लव, चीन, किरात, दरद और खश, इन देशों के उत्पन्न क्षत्रिय संस्कारहीन हैं तथा यज्ञ अध्ययन आदि भी वे नहीं करते इस कारण वे शूद्र हो गये हैं। रामायण किष्किन्धाकाण्ड में भी पौण्ड्र को दक्षिण देश का एक जनपद लिखा है। सीता को ढूँढ़ने के लिये अङ्गद, सुषेण, जाम्बवान् आदि को दक्षिण दिशा में भेजने के समय सुग्रीव ने कहा था—दक्षिण दिशा में गोदावरीप्रदेश, पौण्ड्र, केरल, चोल आदि राज्यों में सीता को ढूँढ़ना। महाभारत में सञ्जय ने जहाँ देश, जनपद आदि का वर्णन किया है—वहाँ पौण्ड्र उत्तर भारत के राज्यों में परिगणित हुआ है। युधिष्ठिर के राजसूय और अश्वमेध यज्ञ के समय भी पौण्ड्र राज्य का पता लगता है। यज्ञाश्व की रक्षा करने के लिये उसके साथ साथ अर्जुन बङ्ग, पौण्ड्र आदि जनपदों में हो कर कोशल राज्य में पहुँचे थे। महाभारत में यही लिखा है। महाभारत में पुण्ड्रक नाम लिखा है। मत्स्यपुराण में लिखा है कि पुण्ड्रवर्द्धन राज्य पूर्व देश में है। ब्रह्माण्डपुराण के मत से पौण्ड्र देश की स्थिति भारत के पूर्व भाग में निश्चित होती है। वहाँ उसका नाम पौण्ड्र लिखा है। गरुड़पुराण में लिखा है कि पुण्ड्र राज्य भारत के पूर्व दक्षिण कोन में विद्यमान है। बृहत्संहिता में वराहमिहिर ने पुण्ड्र राज्य को पूर्व देश के अन्तर्गत लिखा है। इन सब लेखों से यह बात प्रतिपन्न होती है कि पुण्ड्रवंशीय राजा भिन्न भिन्न समय में अनेक नगरों में वास करते थे, या उन उन देशों पर उनका आधिपत्य विस्तृत हुआ था। इसी कारण कभी भारतवर्ष के उत्तर भाग में, कभी दक्षिण भाग में और कभी पूर्व भाग में पौण्ड्र राज्य की स्थिति का परिचय पाया जाता है। इस समय अनुसन्धान के द्वारा जो पौण्ड्रवर्द्धन की स्थिति का परिचय पाया जाता है, उससे यह जनपद पूर्व देश ही का मालूम पड़ता है। इस राज्य की प्रतिष्ठा के विषय में लिखा है कि चन्द्रवंशी पुण्ड्र नामक राजा ने इस राज्य की जड़ रोपी। ययाति-पुत्र पुरु के वंश में तीसवीं पीढ़ी में बलिराज के क्षेत्र में दीर्घतमा ऋषि ने अङ्ग, बङ्ग, कलिङ्ग, सुह्म, पौण्ड्र और ओड्र नामक पुत्र उत्पन्न किये। उनमें से जो जिस देश का अधिपति हुआ वह देश भी उसीके नाम से प्रसिद्ध हुआ। पुण्ड्र का राज्य पौण्ड्र नाम से प्रसिद्ध हुआ। पुण्ड्र के सन्तान आदि के विषय का कुछ पता नहीं मिलता। पुराणादि ग्रन्थों को देखने से विदित होता है कि पुण्ड्र का वंश इन्हींसे समाप्त हो गया, अथवा उस वंश का और कोई राजा न हो सका हो। अतएव पुण्ड्र के बाद कौन पुण्ड्रवर्द्धन यहाँ के राजा हुए थे, इसको जानने के लिये कोई उत्तम उपाय नहीं है बौद्ध ग्रन्थों को देखने से मालूम होता है कि इस धर्म की उत्पत्ति के समय पुण्ड्रवर्द्धन की बड़ी प्रतिष्ठा थी। खीष्ट जन्म के २६४ वर्ष पूर्व राजा बिन्दुसार की मृत्यु होने पर राधागुप्त ने

अशोकवर्द्धन को राजासन पर बैठाया और अशोकवर्द्धन का राज्य निष्कण्टक करने के लिये उनके स्वजन सम्बन्धियों को उस मन्त्री ने मार डाला। उस समय अशोकवर्द्धन के भाई वीताशोक प्राणरक्षा करने के लिये भाग कर पुण्ड्रवर्द्धन के राज्य में चले गये थे। उस समय बङ्गाल के उत्तर भाग का नाम पुण्ड्रवर्द्धन था। मौर्यवंश के राज्यशासन के अन्त में पुण्ड्रवर्द्धन की क्या अवस्था हुई थी, यह जानने का उपाय नहीं है।

चीन परिव्राजक हुएनत्सङ्ग जिस समय पौण्ड्र राज्य में उपस्थित हुए थे उस समय यह राज्य समृद्धिशाली था। उस समय पुण्ड्रवर्द्धन की परिधि ८ सौ माइल समझी जाती थी। परिव्राजक ने इस राज्य में तीन सौ बौद्धभिक्षु और बीस सङ्घाराम देखे थे। निर्ग्रन्थी (नङ्गा) सम्प्रदाय के संन्यासी ही यहाँ अधिक रहते थे। बौद्धमठ और सङ्घाराम को छोड़ कर सौ देवमन्दिर उस समय यहाँ विद्यमान थे। परिव्राजक के वर्णन से पौण्ड्रवर्द्धन नामक किसी जनपद का परिचय नहीं पाया जाता किन्तु वहाँ पौण्ड्रवर्द्धन राज्य का उल्लेख है प्रत्नतत्त्ववेत्ता कनिंहम कहते हैं कि पौण्ड्रवर्द्धन और इस समय का पावना दोनों एक ही प्रदेश के दो नाम हैं। गङ्गा नदी के दूसरे पार काकजोल नामक प्राचीन राज्य से एक सौ मील की दूरी पर पावना है। परिव्राजक के वर्णन में देखा जाता है कि काकजोल राज्य से चल कर और गङ्गापार कर के वे पौण्ड्रवर्द्धन में पहुँचे थे। काकजोल से पौण्ड्रवर्द्धन की दूरी उन्होंने ६०० लि, अर्थात् एक सौ माइल लिखी है। अतएव कनिंहम कहते हैं कि पावना और पौण्ड्रवर्द्धन दोनों एक ही हैं। काश्मीर के इतिहास में लिखा है कि पुण्ड्रवर्द्धन गौड़ राज्य के राजा जयन्त की राजधानी थी। राजा जयन्त ने सन् ७८२ ई० से सन् ८१३ ई० तक राज्य किया था।

(भारतवर्षीय इतिहास)

पौण्ड्रक=पुण्ड्र देश के एक राजा। ये पौण्ड्रक वासुदेव के नाम से प्रसिद्ध थे। जरासन्ध के ये परममित्र थे। इनके पिता का नाम वसुदेव था। वसुदेव की दो स्त्रियाँ थीं, सुतनु और नाचाटी। सुतनु के गर्भ से पौण्ड्रक और नाचाटी के गर्भ से कपिल उत्पन्न हुए थे। कपिल ने संसार त्याग कर के संन्यास ग्रहण किया और पौण्ड्रक वासुदेव नाम धारण कर के राज्य करने लगे। वासुदेव श्रीकृष्ण उस समय द्वारका में थे। इसकी ढिठाई इन्होंने भी सुनी। श्रीकृष्ण भी वासुदेव कहे जाते हैं यह पौण्ड्रक को अच्छा नहीं मालूम होता था। पौण्ड्रक सोचा करता था मैं शङ्खचक्रगदाधारी हूँ। शार्ङ्ग धनु हमारा है, हमारे जैसा बली कोई नहीं है, तब मेरे रहते रहते दूसरा वासुदेव नाम धारण करने का अधिकारी कौन हो सकता है? इसी प्रकार वह अपना अहङ्कार दिखाया करता था। वह यह भी कहता था कि जगत् में जो वासुदेव नाम था उसे एक अहीर के छोकड़े ने धारण किया है। श्रीकृष्ण को दमन करने के लिये, उसने द्वारका पर चढ़ाई की, अनेक यादवों को उसने मार गिराया। अन्त में श्रीकृष्ण के साथ उसका युद्ध हुआ और वह मारा गया। (हरिवंश)

पौष्य=(देखो उत्तङ्क)

प्रचेतस्=ब्रह्मा के पुत्र। लोकपितामह ब्रह्मा ने अपने देह से वेदवेदाङ्गवित् पुत्रों की सृष्टि की। उनके नाम ये हैं—अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, मरीचि, भृगु, अङ्गिरा, क्रतु, वशिष्ठ, वोढु, कपिल, आसुरि, कवि, शङ्कु, शङ्ख, पञ्चशिख और प्रचेतस्। (ब्रह्मवैवर्त)

विष्णुपुराण में लिखा है—प्राचीनबर्हि नामक एक प्रजापति से दस पुत्र उत्पन्न हुए। उनका नाम प्रचेतस् था। प्राचीनबर्हि ने अपने पुत्रों को प्रजा सृष्टि करने के लिये अनुरोध किया। ये धनुर्वेद के बड़े ज्ञाता थे। इन्हों ने पिता की आज्ञा पा कर समुद्र में जा कर घोर तपस्या की। दस हज़ार वर्षों तक उनलोगों ने समुद्र में रह कर भगवान् विष्णु की आराधना की। भगवान् विष्णु प्रसन्न हो कर वहाँ उपस्थित हुए। विष्णु को आये देख प्रचेतसों ने उनको प्रणाम किया, तब भगवान् बोले-अभिलषित वर माँगो, मैं प्रसन्न हो कर तुम लोगों को वर देने आया हूँ। भगवान् वर दे कर अन्तर्हित हुए।

जिस समय ये लोग तपस्या कर रहे थे, उस समय बढ़ कर वृक्षों ने संसार को घेर लिया। अतः इन लोगों ने मुख से अग्नि और वायु की सृष्टि की। वायु और अग्नि दोनों ने मिल कर वृक्षों को सुखाना और जलाना प्रारम्भ किया। इससे दुःखी हो कर वृक्षों के राजा सोम वहाँ उपस्थित हुए और उन्होंने वृक्षकन्या मरिषा से प्रचेतसों का व्याह करा दिया। उसी मरिषा के गर्भ से दक्ष प्रजापति उत्पन्न हुए थे।

(विष्णुपुराण)

प्रतापसिंह (महाराणा)=(१) मेवाड़ के प्रसिद्ध धर्मरक्षक महाराणा। ये चित्तौर के महाराणा उदयसिंह के पुत्र थे। इन्होंने अपने हिन्दूगौरव की रक्षा के लिये जो आत्मत्याग किया है, जो तपस्या की है, वह इतिहास के पृष्ठों पर सुवर्णाक्षरों से लिखा है। बादशाह अकबर ने सन् १५६८ ई० में चित्तौर के क़िले पर अधिकार कर लिया और उसे नष्ट भ्रष्ट कर दिया। उदयसिंह चित्तौर से भाग कर गुहिलौतों की शरण गये। अपनी प्रिय मातृभूमि के वियोग से उदयसिंह का हृदय फट गया था। उन्होंने ४ वर्ष के बाद मातृभूमि के शोक से शरीर त्याग किया। उदयसिंह की मृत्यु के बाद, प्रतापसिंह शिशोदिया कुल के गौरव के अधिकारी हुए, परन्तु राज्य शत्रुहस्तगत हो गया और उनकी राजधानी शत्रुसेना द्वारा विध्वस्त हो गयी। उस समय अधिकांश राजपूत राजा बादशाह की कृपा के भिक्षुक हो कर देशद्रोही हो गये थे। आर्य राजाओं के हृदय से आत्मगौरव की महिमा बिदा हो चुकी थी। अक्षय कीर्ति की उपेक्षा कर के इन लोगों ने धन राज्य आदि का अर्जन करना ही अपना कर्तव्य समझ लिया था। बादशाह की कृपा पाने के लिये राजाओं ने अपनी कुलकन्यकाओं को भी बादशाहों को अर्पण किया था। देश की ऐसी दशा में प्रताप ने स्वाधीनता की रक्षा के लिये, मातृभूमि का उद्धार करने के लिये, व्रत प्रारम्भ किया। जो थोड़े से राजपूत देश के लिये प्राण देने को सहर्ष प्रस्तुत थे, प्रताप उन्हीं के नेता बने। प्रताप सोने चाँदी के बर्तनों को दूर फेंक कर पत्तल में भोजन करते थे। राजधानी का जब तक उद्धार नहीं होगा, तब तक के लिये प्रताप ने विलाससामग्रियों को छोड़ दिया था। वे तृणशय्या पर सोते थे तथा शोक का चिह्न लम्बे केश और दाढ़ी उन्होंने रखी थी। प्रताप की आज्ञा से उनकी सेना अरवली पर्वतमाला के जङ्गली प्रदेशों में घूमा करती थी, और अवसर पाते ही वहाँ से निकल कर मुगल सेना पर आक्रमण करती और उनके धन लूट लेती थी। अकबर ने प्रताप को दण्ड देने के लिये अपनी प्रधान सेना अजमेर में रखी थी।

राजस्थान के राजाओं ने मुगल सम्राट् के हाथ अपनी स्वाधीनता तथा वंशमर्यादा बेंच दी, परन्तु प्रताप ने अपनी स्वाधीनता के लिये जीवन न्योछावर कर दिया है—चाहे कुछ हो जाय, प्रताप मुगल सम्राट् की अधीनता स्वीकार नहीं करेंगे।

एक समय आमेर के राजकुमार मानसिंह (अकबर पुत्र सलीम के साले) गुजरात से लौटते हुए प्रताप की राजधानी कमलभीर में ठहर गये। प्रताप ने राजा मानसिंह का आदर सम्मान किया। किन्तु जब भोजन का समय उपस्थित हुआ, और मानसिंह भोजन करने बैठे तब प्रताप के पुत्र अमरसिंह उनके सम्मान के लिये वहाँ खड़े थे। वहाँ प्रतापसिंह को उपस्थित न देख कर मानसिंह बार बार पूँछने लगे महाराणा जी कहाँ हैं, अमरसिंह ने उत्तर दिया उनके सिर में इस समय पीड़ा है इसी कारण वह उपस्थित न हो सके। मानसिंह को अब समझने में देर न लगी। वे बोले—अन्न का मैं अपमान नहीं करता। अन्न देवता तुमको मैं सिर चढ़ाता हूँ यह कह कर उन्होंने भोजन को प्रणाम किया, तदनन्तर वे अमरसिंह से बोले—महाराणा से कह देना मैं सिर की पीड़ा की दवा शीघ्र ही ले कर आता हूँ। तब तक प्रताप भी वहाँ पहुँच गये। उन्होंने कड़क कर कहा—जो राजपूत कुलाङ्गार मुसल्मानों से अपनी बहिन व्याहता है और तुर्कों के साथ भोजन करता है, सूर्यवंशी राजा उसके साथ भोजन नहीं करते। मानसिंह

बोले—इसका उत्तर देने के लिये मैं शीघ्र लौटता हूँ, महाराणा ने कहा—युद्धक्षेत्र में आपको देख कर प्रसन्नता होगी। इतने ही में एक राजपूत बोल उठा—अपने फूफा और बहनोई को साथ लिये आना।

मानसिंह अकबर के सामने गये, उन्होंने अपने अपमान की बातें कहीं, और कहा—यह हमारा अपमान नहीं हुआ, किन्तु भारत के सम्राट् का अपमान हुआ, क्योंकि सेवक की प्रतिष्ठा या अपमान प्रभु ही की प्रतिष्ठा और अपमान समझा जाता है। हुजूर के प्रताप ने संसार का सिर नीचा किया, परन्तु इस एक प्रताप को जब तक बादशाह सर नहीं करेंगे तब तक हुजूर के प्रताप में यह एक बड़ा धब्बा है। इसी प्रकार अनेक बातों से उन्होंने प्रताप के विरुद्ध अकबरको उभाड़ा। प्रतापसे अपने अपमान का बदला चुकाने के लिये उन्होंने बहुत कुछ प्रयत्न किया। और भी राजपूत राजा—जो प्रताप के गौरव से जला करते थे—मानसिंह के सहायक बने। सम्राट् का पुत्र सलीम बड़ी सेना के सेनापति हो कर अरवली प्रदेश में आ कर उपस्थित हुआ। प्रताप भी २२ हज़ार स्वदेशभक्त वीर राजपूतों को ले कर अरवली की पहाड़ी पर मुगल सेना की राह देख रहे थे। कमलभीर के दक्षिण पर्वत और वनाकीर्ण ४० माइल की विस्तृत भूमि प्रताप की सेना की केन्द्रभूमि बनी। इस भूमि के चारों ओर पर्वतमाला है। इस प्रदेश को हलदीघाटी कहते हैं। यहीं दोनों सेनाओं का भयङ्कर युद्ध हुआ। दोनों दल के योद्धा आपस में लड़ रहे थे। मुसलमान सेना अपना विक्रम दिखला रही थी, स्वदेशभक्त मातृभूमि के उद्धार के लिये उन्मत्त सिंह के समान शत्रुसेना का विनाश कर रहे थे। इसी समय प्रताप के सम्मुख हाथी पर चढ़ा हुआ सलीम आ गया। उसका हाथी रक्षकों से घिरा हुआ था, तथापि प्रताप का विजयी घोड़ा "चेतक" सेना को चीरता फाड़ता आगे की ओर बढ़ा। प्रताप के युद्धकौशल से रक्षक सेना मारी गयी। सलीम हाथी पर बैठा हुआ था। प्रताप ने उसे ताक कर भाला चलाया प्रताप का भाला हौदे में लगा। हाथीवान मारा गया, हौदा चूर हो गया, सलीम के प्राण बच गये। उस हाथी को छोड़ कर, सलीम दूसरे हाथी पर गये। तथा रणस्थल भी उन्होंने छोड़ दिया। प्रताप ने मानसिंह को बहुत ढूँढ़ा परन्तु वे नहीं मिले। कुछ ऐतिहासिकों का कहना है कि मानसिंह हलदीघाटी के युद्ध में गये ही नहीं, परन्तु दूसरा पक्ष कहता है कि मानसिंह भी युद्ध में गये थे, परन्तु वे डेरे पर ही बैठे रहे, युद्ध में नहीं गये। अगणित मुसलमान सेना के सामने राजपूत सेना नहीं ठहर सकी। तीन बार प्रताप के जीवन का सन्देह उपस्थित हुआ, क्योंकि महाराणा प्रताप के सिर पर मेवाड़ का श्वेतच्छत्र सुशोभित था। राजभक्त झालापति मन्ना ने प्रताप के सिर का राजछत्र और मुकुट खींच कर अपने सिर पर धारण किया। मुगलों ने मन्ना ही को प्रताप समझा और उन पर आक्रमण कर के उन्हें मार डाला। महाराणा प्रताप के अङ्ग छिन्न भिन्न हो गये थे, चेतक के भी अङ्गों में कितने ही घाव लगे थे, तथापि वह प्रभुभक्त घोड़ा अपने प्रभु को बड़े वेग से एक निरापद स्थान में ले गया। प्रभु को वहाँ पहुँचा कर चेतक भूमि पर गिरा और मर गया। प्रताप ने उस घोड़े के स्मरणार्थ वहाँ एक छतरी बनवा दी। सन् १५७६ ई० में इस युद्ध का अन्त हुआ। कमलभीर का गिरिदुर्ग मुगलों के अधीन हुआ। तथापि प्रताप हताश नहीं हुए, पुनः युद्ध करने के लिये वे सेना और अर्थ एकत्रित करने लगे। लगातार ५ वर्ष युद्ध हुआ। कमलभीर के दुर्ग पर प्रताप ने पुनः अधिकार कर लिया। तदनन्तर शनैः शनैः ३२ गिरिदुर्गों पर उन्होंने अधिकार कर लिया। इसी प्रकार १ वर्ष ही में प्रताप ने समस्त मेवाड़ से मुसलमान सेना को भगा दिया। इस समय भी चित्तौर अजमेर और मण्डलगढ़ पर मुसलमानों ही का अधिकार था। इसी समय महाराणा प्रताप ने मानसिंह के राज्य आमेर प्रदेश पर आक्रमण किया, और उसी राज्य के अन्तर्गत मालपुर गाँव को लूट लिया। तदनन्तर उदयपुर को भी महाराणा ने अपने अधिकार में

कर लिया। बादशाह ने भी अब युद्ध बन्द करना उचित समझा। प्रताप ने उदयपुर को मेवाड़ राज्य की राजधानी बनाया, परन्तु चित्तौर का उद्धार वे न कर सके। समस्त जीवन युद्ध तथा और भी अनेक कष्टों के कारण प्रताप का शरीर शिथिल हो गया था। महाराणा प्रताप मृत्युशय्या पर सोये हैं, वीर सामन्त खड़े हैं, पुत्र अमरसिंह सामने हाथ जोड़े खड़े हैं। महाराणा की चेष्टाओं से मालूम होता है वे कुछ कहना चाहते हैं। सालूम्ब्रा सरदार ने पूँछा, क्या आज्ञा है, महाराणा बोले—अमरसिंह मेरे सामने प्रतिज्ञा करें कि इस भोग विलास में लिप्त न होगें, और तुम भी प्रतिज्ञा करो कि इनको भोग विलास में लिप्त न होने दोगे और चित्तौर के उद्धार में इनकी सहायता करोगे, दोनों ने प्रतिज्ञा की, महाराणा प्रताप चित्तौर का उद्धार न कर सके इसका कष्ट उनको रहा ही। चित्तौर का उद्धार और स्वजाति की स्वाधीनता ही उनके जीवन के उद्देश्य थे। इनमें से उन्होंने एक सिद्ध किया था, परन्तु दूसरा सिद्ध न कर सके, इसी कारण वह राजभवन में नहीं रहते थे। कुटी ही उनका वासस्थान थी। अमरसिंह स्वभाव ही से विलासी थे, इसी कारण प्रतापसिंह समझते थे कि यह देश की स्वाधीनता की रक्षा करने योग्य नहीं है। मृत्यु के पहले उन्होंने कई बार अपना इस प्रकार का अभिप्राय प्रकाशित किया था। इसी कारण प्रताप ने मृत्यु के समय प्रधान सामन्तों से तलवार छुला कर यह प्रतिज्ञा करायी थी कि—हमलोग सर्वदा कुमार अमरसिंह के साथ रहेंगे, और उनको विलासी न बनने देंगे। सन् १५६७ ई० में यह भारत का सूर्य राजपूताने में अस्त हुआ था। १७ पुत्र छोड़ कर प्रताप सुरधाम पधारे थे। उन में अमरसिंह सबसे बड़े थे।

(टाडस् राजस्थान)

(२) ये मेवाड़ के महाराणा थे। ये दूसरे प्रतापसिंह कहे जाते थे। इनके पिता का नाम दूसरे जगत्सिंह था। ये सन् १७५२ ई० में मेवाड़ के सिंहासन पर बैठे। पाठको! आप लोग पहले प्रताप के समान इन प्रताप को न समझें, यह गुणों में ठीक उनके विपरीत थे। वे स्वजाति के मुख उज्ज्वल करने वाले थे, और ये स्वजाति के मुख में कालिमा पोतने वाले थे। प्रताप नाम में जो स्वर्गीय भाव है उसे नष्ट करने के लिये ही ये उत्पन्न हुए थे। इनके समय में कोई ऐसी बात ही नहीं हुई जो लिखने योग्य हो। तीन वर्ष तक इन्होंने राज्य किया। इनके राज्य काल में तीन बार महाराष्ट्रों ने इन पर चढ़ाई की। मेवाड़ राज्य को लुटेरे महाराष्ट्रों ने नष्ट भ्रष्ट कर डाला। आमेर के राजा जयसिंह की कन्या से इनका ब्याह हुआ था, जिसके गर्भ से राजसिंह नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ था।

(टाडस् राजस्थान)

(३) ये आमेर (वर्तमान जयपुर) के राजा थे, इनके पिता का नाम माधोसिंह था। माधोसिंह के परलोक वास होने पर इन प्रतापसिंह के सौतेले भाई पृथ्वीसिंह राजासन पर बैठाये गये। परन्तु पृथ्वीसिंह अकाल ही में घोड़े से गिर कर मर गये। तदनन्तर प्रतापसिंह आमेर के राजा बनाये गये। उस समय राजा खुशहालीराम आमेर के प्रधान मन्त्री थे। वे राजनीति में बड़े चतुर थे। अतएव राजा खुशहालीराम फ़िरोज़ की शक्ति नष्ट करने का प्रयत्न करने लगे। फ़िरोज़ माधोसिंह की विधवा रानी का उपपति था। राजा खुशहालीराम पहले माचेरी के सामन्त की अधीनता में थे। परन्तु आमेर के राजमन्त्री हो कर भी खुशहालीराम अपने पूर्वप्रभु को भूल नहीं गये थे। वे भीतर ही भीतर माचेरी सामन्त को स्वाधीन बनाने का भी प्रयत्न करते जाते थे। अनेक छल बल कर के फ़िरोज़ को खुशहालीराम ने मरवा डाला। इस समय माचेरी सामन्त और खुशहालीराम इन दोनों में स्वार्थ का झगड़ा उपस्थित हुआ। एक दल ने लुटेरे महाराष्ट्रों का आश्रय लिया। छोटे महाराष्ट्रों ने अच्छा अवसर पाया। वे प्रजा पर मन माना अत्याचार करने लगे और लूटने लगे। प्रतापसिंह जब तक बालक थे, तब तक आमेर इसी प्रकार की अशान्तियों से उद्विग्न हो गया था। जब महाराज प्रताप ने अपने हाथ

में राज्य का भार लिया, तब उन्होंने समस्त विपत्तियों को छिन्न भिन्न कर दिया, और महाराष्ट्रों को दमन करने का भी उन्होंने दृढ़ सङ्कल्प कर लिया।

इसी समय अत्याचारी मूर्ख महाराष्ट्रों ने प्रत्येक प्रान्त में भयङ्कर लूट प्रारम्भ कर दी थी। इन लुटेरों के भय से समस्त भारत कम्पित हो गया था। महाराज प्रतापसिंह ने यह निश्चित कर लिया था कि अब विना महाराष्ट्रों के दमन किये राजपूताने के राज्यों का मङ्गल नहीं है। सन् १७८७ ई० में मारवाड़ के सिंहासन पर महाराज विजयसिंह विराजमान थे। प्रतापसिंह ने मारवाड़राज के पास दूत द्वारा एक पत्र भेजा "भयानक अत्याचारी और हम लोगों के शत्रु महाराष्ट्र हृदयभेदी अत्याचारों से हमको पीड़ित कर रहे हैं। इस कारण उनको दमन करना हमारा परम कर्तव्य है। सभी राजपूत राजाओं को चाहिये कि मिल कर युद्ध में अपने शत्रु को परास्त करें, और पुनः निश्चिन्त हो कर राज्य करें। मैंने स्वयं रणभूमि में जा कर महाराष्ट्रों को दण्ड देने का विचार पक्का कर लिया है। अतः यदि आप अपनी राठौर सेना को मेरी सहायता के लिये भेज दें तो सरलता से मैं अपनी जाति के शत्रुओं का अहङ्कार मिट्टी में मिला दूँ"। मारवाड़पति विजयसिंह ने इस पत्र को पा कर ही सेना को तैयार होने की आज्ञा दी। इसके पहले ही महाविपत्ति में पड़ कर अजमेर का अधिकार महाराष्ट्रों को दे दिया था। इस समय प्रतापसिंह को विशेष उद्योगी देख कर पुनः अजमेर पर अधिकार करने की इच्छा से वे आगे बढ़े। बलवान् राठौर सेना के सेनापति जवानदास नियत हुए।

तुंगा नामक स्थान में महाराष्ट्रों के नेता सेंधिया, और उनके शिक्षित फरासीसी सेनापति डिवाइन ने बड़े वेग से मारवाड़ और जयपुर की मिली सेनाओं पर आक्रमण किया। दोनों ओर से युद्ध होने लगा। अपनी जाति की रक्षा के लिये वीर राठौर और कछवाहे लड़ने लगे, और लुटेरे महाराष्ट्र अपने लुटेरेपन की रक्षा के लिये लड़ने लगे। सेंधिया भाग गया, उसकी सेना तितर बितर हो गयी। महाराष्ट्र सेना अस्त्र शस्त्र द्रव्य आदि छोड़ कर भाग गयी। विजयी राठौर और कछवाहों ने उस धन को आपस में बाँट लिया, इस युद्ध के विजय के उपलक्ष में प्रतापसिंह ने एक बहुत बड़ा उत्सव किया और २४ लाख रुपये दीन दुखियों को बाँट दिये। प्रतापसिंह की वीरता और युद्धकौशल से महाराष्ट्र तस्करों का गर्व चूर्ण हुआ। पुनः राजपूताने में शान्ति विराज गयी। परन्तु जिस प्रकार यक्ष्मा के द्वारा जर्जरित और शिथिल अङ्गों में हिरण्यगर्भ आदि औषध कुछ ही काल तक फल दिखाते हैं, जब तक ओषधि की शक्ति वर्त्तमान रहती है, तभी तक यक्ष्मा रोगी के अङ्गों में स्फूर्ति दीख पड़ती है, उसी प्रकार गृहकलह और विजातीय आक्रमणों से जर्जरित राजपूताने के राजाओं में इस विजय की शान्ति बहुत दिनों तक नहीं रह सकी।

प्रतापसिंह की सम्मति से मारवाड़राज ने अपनी सेना तुंगार के युद्ध में भेज दी थी। इस समय माधोजी सेंधिया मारवाड़ पर चढ़ आया। मारवाड़राज ने प्रतापसिंह से सहायता माँगी। इन्होंने भी अपनी सेना भेज दी। परन्तु सेना के पहुँचने पर राठौर भाटों ने कछवाहों की निन्दा गायी, इससे वे क्रुद्ध हो गये, उनका क्रोध इतना बढ़ा कि वे इस बात को भी भूल गये कि हमको क्या करना है। राठौर और महाराष्ट्र सेना में युद्ध होने लगा, कछवाहों की सेना बैठी तमाशा देखती रही। महाराष्ट्र जीत गये, यदि इस बार भी दोनों सेना मिल जातीं तो महाराष्ट्रीय दर्प सदा के लिये चूर्ण हो जाता। इस वृत्तान्त को सुन कर प्रतापसिंह को बड़ा दुःख हुआ था। सन् १८०३ ई० में महाराज प्रताप इस लोक से विदा हो गये।

(टाडस् राजस्थान)

(४) खण्डेला के राजा राव इन्द्रसिंह के पुत्र। राव इन्द्रसिंह के मारे जाने के समय ये बिलकुल बालक थे। इनके मन्त्रियों ने महाराष्ट्रों को किसी प्रकार धन दे कर इनकी रक्षा की। उस समय खण्डेला के दो अधीश्वर थे, प्रतापसिंह और नरसिंहदास। प्रतापसिंह से जब आमेर के

राजा कर माँगते थे तब वे अपना देय कर दे दिया करते थे। परन्तु नरसिंहदास नहीं देते थे। इस कारण आमेरराज के सेनापति नन्दराम हलदिया सेना ले कर आये। प्रतापसिंह ने अच्छा अवसर जान कर आमेरराज के सेनापति से कहा था कि मैं समस्त खण्डेला का कर दूँगा, यदि यह प्रदेश हमारे अधिकार में करा दिया जाय। सेनापति ने स्वीकार कर लिया। यहाँ तक कि प्रतापसिंह को समस्त खण्डेला राज्य का अधिकार-पत्र दे दिया गया। प्रतापसिंह ने भी उस राज्य पर अपना अधिकार कर लिया। नरसिंहदास गोविन्दगढ़ में जा कर रहने लगे। प्रतापसिंह ने गोविन्दगढ़ पर भी चढ़ाई की, परन्तु नन्दराम हलदिया ने घूँस ले कर पुनः नरसिंह को राज्य दिला दिया। नन्दराम हलदिया के भाग जाने पर आमेरराज का सेनापति आशाराम पुनः इस प्रदेश में आया और उसने धोखे से प्रतापसिंह और नरसिंह दोनों को बन्दी कर लिया। प्रतापसिंह कैसे बन्दी हुए इसका कुछ भी पता नहीं बताया जा सकता। अस्तु, प्रतापसिंह बहुत दिनों तक क़ैद रहे। जब मारवाड़राज और आमेरराज दोनों में युद्ध प्रारम्भ हुआ, तब प्रतापसिंह और नरसिंह दोनों छोड़ दिये गये। नरसिंहदास तो मारवाड़ के युद्ध में मारे गये, परन्तु प्रतापसिंह का पता नहीं। (टाडस् राजस्थान)

प्रतापनारायण मिश्र=ये कात्यायनगोत्री कान्यकुब्ज ब्राह्मण और बैजेगाँव के मिश्र थे। इनके पूर्वज बैजेगाँव के रहने वाले थे। परन्तु इनके पिता पण्डित सङ्कटाप्रसाद जी कानपुर में आ बसे थे। वे एक प्रवीण ज्योतिषी थे। इस कारण उनकी आर्थिक अवस्था भी अच्छी होती गयी। क्रमशः उन्होंने कुछ धन उपार्जन कर लिया। पं० प्रतापनारायण मिश्र का जन्म आश्विन कृष्ण ९मी सं० १९१३ (सन् १८५६ ई०) में हुआ था। पिता की इच्छा थी कि वे अपने पुत्र को ज्योतिषी बनावें, परन्तु उधर इनकी रुचि न होने के कारण अगत्या पिता इनको अंग्रेज़ी पढ़ाने लगे। सन् १८७५ ई० में इन्होंने पढ़ना छोड़ दिया था। इतने दिनों में अंग्रेज़ी भाषा में इनको कुछ अभिज्ञता प्राप्त हो गयी थी। संस्कृत फ़ारसी का भी इन्हें कुछ कुछ ज्ञान हो गया था। काव्याङ्कुर इनके हृदय में पहले ही जम चुका था। भारतेन्दु की कवि-वचन-सुधा को ये मन लगा कर पढ़ते थे। कवियों का साथ तथा कवि-दल के जमाव में ये आया जाया करते थे। इस प्रकार ये भी एक कवि हो गये, इन्होंने ललित कवि से छन्दःशास्त्र के नियम भी पढ़े थे।

एक दो मित्रों की सहायता से सन् १८८३ ई० में इन्होंने "ब्राह्मण" नाम का एक मासिक पत्र निकाला। "ब्राह्मण" के लेख हास्यमय तथा शिक्षाप्रद होते थे। संस्कृत और फ़ारसी में भी ये हिन्दी के समान कविता कर सकते थे। सन् १८८९ में पण्डित प्रतापनारायण कालाकाँकर गये और वहाँ "हिन्दोस्थान" के सहकारी सम्पादक के पद पर नियुक्त हुए। परन्तु ये स्वतन्त्र प्रकृति के होने के कारण वहाँ बहुत दिनों तक नहीं रह सके। मिस्टर ब्रैडला के भारतागमन के उपलक्ष में इन्होंने कविता की थी इसकी बड़ी प्रशंसा हुई थी। १२ पुस्तकों का इन्होंने भाषानुवाद किया है और २० पुस्तकें लिखी हैं। सं० १९५१ में इनकी मृत्यु हुई।

प्रतापादित्य=(१) काश्मीर के एक राजा। युधिष्ठिर नामक राजा के राज्यच्युत होने पर काश्मीर का सिंहासन शून्य हो गया। तब मन्त्रियों ने मिल कर देशान्तर से विक्रमादित्य की ज्ञाति के प्रतापादित्य को काश्मीर के राजासन पर बैठाया। ये विक्रमादित्य शकप्रवर्तयिता नहीं थे। प्रतापादित्य ने इस प्रकार राज्यशासन किया था कि कोई इन्हें नया राजा नहीं कह सकता था। इन्होंने ३२ वर्ष राज्य कर के परलोक वास किया था। (टाडस् राजस्थान)

(२) ये यशोहर के अधिपति और गुहवंशी बङ्गीय कायस्थ थे। सन् १५६४ ई० में इनका जन्म गौरनगर में हुआ था। उस समय बङ्गाल बिहार और उड़ीसे का शासन पठान कर रहे थे। प्रताप के पिता श्रीहरि और चाचा जानकीवल्लभ थे। उस समय सुलेमानशाह बङ्गाल के नव्वाब थे। श्रीहरि और जानकीवल्लभ दोनों नव्वाब के यहाँ नौकरी कर के धनशाली

हो गये थे। नव्वाब सुलेमानशाह ने श्रीहरि को "विक्रमादित्य" और जानकीवल्लभ को "वसन्तराय" की उपाधि दी, तब से ये दोनों भाई उपाधिनाम ही से प्रसिद्ध हुए।

सन् १५७३ ई० में सुलेमान का छोटा पुत्र दाऊद खाँ बङ्गाल विहार और उड़ीसे का नव्वाब हुआ। दाऊद खाँ ने यथासमय दिल्ली के सम्राट् को कर नहीं दिया। इस कारण दोनों में युद्ध होने की तैयारियाँ होने लगीं। यह देख कर विक्रमादित्य ने यमुना और इच्छामती नदी के वियोगस्थान पर क़िला बनवा लिया और वहाँ एक नगर भी बसा लिया। उनके बन्धु बान्धव जो पूर्व बङ्गाल में रहा करते थे, उनको भी वहीं बुला लिया। यही वर्तमान यशोहर ज़िला है। यहाँ पहले चाँद खाँ की जागीर थी, चाँद खाँ के कोई उत्तराधिकारी न होने के कारण यह स्थान जनशून्य हो गया। सिंह बाघ आदि हिंस्र जन्तुओं की वह निवासभूमि हो गया था। धन रत्न की रक्षा के लिये विक्रमादित्य ने उस स्थान को पसन्द किया था। दाऊद के साथ सम्राट् सेना का युद्ध हुआ। दाऊद गौर छोड़ कर उड़ीसे भाग गया और सम्राट् सेनापति मुनीम खाँ से पराजित हो कर विहार और बङ्गाल सम्राट् को दे कर उसने सन्धि कर ली। तबसे वह उड़ीसे में रहने लगा। गौर छोड़ने के समय वह अपने धन की यशोहर में रक्षा करने के लिये श्रीहरि और जानकीवल्लभ को कहता गया। मुनीम खाँ ने उड़ीसे पर अधिकार किया तो सही, परन्तु शीघ्र ही वह बीमार पड़ कर मर गया। दाऊद ने शीघ्र ही उड़ीसा से आ कर बङ्गाल पर अधिकार कर लिया। दिल्ली के सम्राट् ने हुसेनकुली खाँ नामक सेनापति को बङ्गाल की रक्षा करने के लिये भेजा। हुसेनकुली खाँ के साथ दाऊद का पुनः युद्ध हुआ। इस युद्ध में दाऊद का सेनापति काला पहाड़ और स्वयं दाऊद भी मारा गया। गौर छोड़ने के समय दाऊद ने जो सम्पत्ति यशोहर भेजी थी वह वहाँ ही रही। वहाँ से लौटी नहीं। विक्रमादित्य अतुल ऐश्वर्य के स्वामी हुए। बङ्गाल का प्रबन्ध करने के लिये टोडरमल गौर आये। विक्रमादित्य यशोहर शासन का भार वसन्तराय को दे कर स्वयं गौर आये, और कागज पत्र बनाने में टोडरमल की सहायता करने लगे। कागज बन जाने पर विक्रमादित्य ने टोडरमल से विदा माँगी, पुनः नौकरी करने की इच्छा उन्होंने प्रकाशित नहीं की। टोडरमल ने पारितोषिक में विक्रमादित्य को बहुमूल्य वस्तु दीं। विक्रमादित्य यशोहर पहुँच कर अनेक याग यज्ञ कर के नये राज्य का शासन करने लगे। यशोहर में बड़ी बड़ी सुन्दर अटारियाँ बन गयीं। इसी समय विक्रमादित्य को एक पुत्र हुआ। उस पुत्र का नाम विक्रमादित्य के पिता भवानन्द ने "प्रतापादित्य" रखा। युवक प्रताप शिकार खेलने वन में जाया करते थे। उस समय उनका साहस बुद्धि और कष्ट सहिष्णुता आदि देख कर लोगों को आश्चर्य होता था। सन् १५७५ ई० में महामारी के कारण वह गौर भी जनशून्य हो गया, परन्तु यशोहर की इससे श्रीवृद्धि हुई। गौर का यश हरण करने के कारण यशोहर नाम सार्थक हुआ था। क्रमशः प्रताप का स्वभाव उद्धत हो गया। वे बातचीत में पिता और चाचा की आज्ञा का तिरस्कार कर दिया करते थे। विक्रमादित्य पुत्र के इस दुर्व्यवहार से चिन्तित हुए। प्राणसम भाई वसन्तराय का प्रताप अपमान करेगा, विक्रमादित्य यही सोचा करते थे। पीछे पुत्र के कारण भाई से किसी प्रकार का विवाद न हो इसलिये उन्होंने युक्ति से पुत्र को कहीं दूर हटा देने का विचार किया। उन्होंने अकबर की राजधानी आगरे में प्रताप को भेज दिया। वसन्तराय का प्रताप में बड़ा स्नेह था, उन्होंने भाई से प्रताप को आगरा न भेजने के लिये कहा था। परन्तु प्रताप ने समझ लिया था कि चाचा ही के कारण मैं निकाला जा रहा हूँ। जो हो, आगरे जाने से प्रताप का मन्त्रियों के साथ परिचय हुआ, और इनकी सहायता से बादशाह अकबर के साथ भी उनका परिचय हुआ। प्रताप का भाग्य खुला, धीरे धीरे प्रताप कुमार सलीम और टोडरमल आदि के मित्र हो गये। यशोहर की मालगुज़ारी बादशाह के ख़ज़ाने

में जमा करने के लिये विक्रमादित्य प्रताप के यहाँ भेज दिया करते थे। प्रताप ने जब देखा कि मैं सम्राट् और उनके मन्त्रियों का विश्वासी हो गया हूँ तब उन्होंने मालगुज़ारी दाख़िल करना बन्द कर दिया। यशोहर से यथासमय राजकोष में दाख़िल करने के लिये रुपये भेजे जाते थे, परन्तु वे दाख़िल नहीं होने पाते थे। इसी प्रकार मालगुज़ारी बाकी पड़ने पर सम्राट् प्रताप को बुला कर इसका कारण पूँछा। प्रताप ने उत्तर दिया—हमारे पिता वृद्ध हो गये हैं इस कारण चाचा ही राज्य का प्रबन्ध करते हैं। मालूम पड़ता है किसी कारण से चाचा माल-गुज़ारी नहीं भेजते, और उनकी अयोग्यता के कारण राज्य में भी सर्वदा अराजकता फैली रहती है। यह सुन कर बादशाह अप्रसन्न हुए और राजकर देने पर प्रताप ही को राजा बनाने की उन्होंने अपनी सम्मति प्रकाशित की। बहुत शीघ्र ही प्रताप ने बाकी राज्य कर दे दिया। बादशाह ने उसमें से तीन लाख रुपये उनको लौटा दिये, और उनको राजा के सनद पत्र दे कर उन्हें यशोहर भेजा। सम्राट् से २२ हज़ार सेना ले कर प्रताप प्रस्थित हुए। प्रताप के यशोहर के समीप पहुँच जाने पर विक्रमादित्य और वसन्तराय ने सुना कि सम्राट् की आज्ञा से प्रताप राज्य लेने आ रहे हैं, वे यह सुन कर अत्यन्त प्रसन्न हुए। पुत्र को राज्य देने के लिये विक्रमादित्य अत्यन्त हर्षित हुए। विक्रमादित्य और वसन्तराय बड़े हर्ष के साथ प्रताप की बाट जोह रहे थे। उनके आने से नगरनिवासी अत्यन्त प्रसन्न हुए। परन्तु आते ही प्रताप ने नगर घेर लिया और राजकोष पर अधिकार कर लिया। प्रताप को डर हुआ था कि वसन्तराय उसे रोकेंगे। परन्तु वहाँ तो कुछ नहीं हुआ। पिता और पितृव्य प्रताप के व्यवहार से दुःखी हुए और नगरवासी भी विस्मित हुए। विक्रमा-दित्य और वसन्तराय दोनों प्रताप के डेरे में गये और उसकी दुष्टता की कोई बात न कह कर तथा अनेक प्रकार के उपदेश दे कर राज्य ग्रहण करने के लिये उससे कहा। प्रताप पिता के साथ राजमहल में आया। प्रताप को राज्य दे कर विक्रमादित्य और वसन्तराय दोनों धर्मचर्चा करने लगे। प्रताप ने अपने राज्य का सुप्रबन्ध कर के पोर्तुगीज लुटेरों का दमन किया। प्रताप के पराक्रम की चारों ओर प्रसिद्धि हो गयी। इसी समय विक्रमादित्य का परलोकवास हुआ। प्रताप ने चाचा के कहने से उत्कल से उत्कलेश्वर नामक महादेव और गोविन्ददेव नामक श्रीकृष्ण की मूर्ति यशोहर में स्थापित की। प्रताप की इच्छा थी कि आस पास के राजाओं को मिला कर दिल्ली के सम्राट् से स्वाधीन हो जाँय। इसी लिये वे उड़ीसे गये थे। वहीं से के राजाओं से मित्रता स्थापित कर के वे अपने राज्य में लौट आये। दिन दिन प्रताप की योग्यता बढ़ने लगी। बङ्ग देश में कोई उसका सामना करने वाला नहीं रह गया। पीछे से किसी प्रकार का गृहकलह न हो इस लिये विक्रमा-दित्य ने यशोहर राज्य को (१० आना भाग प्रताप को और ६ आना वसन्तराय को इस प्रकार) दो भागों में बाँट दिया था। विक्रमादित्य के मरने पर पहले वसन्तराय प्रताप से मिल कर राज्यशासन करते थे, परन्तु पीछे प्रताप की दुष्टता से उन्हें अलग होना पड़ा। प्रताप ने उचित बदला दे कर वसन्तराय से चकसीरी परगना माँगा था। मग और फिरङ्गियों के आक्रमण से राज्य की रक्षा करने के लिये प्रताप को इन स्थानों की आवश्यकता थी। वसन्तराय ने जब चकसीरी परगना देने की नाहीं कर दी, तब प्रताप अत्यन्त क्रुद्ध हुए। गृहकलह का यही प्रारम्भ है। प्रताप ने अपनी कन्या बिन्दुमती का चन्द्रद्वीप के राजा कन्दर्प-नारायण के पुत्र रामचन्द्र के साथ व्याह किया था, कोई कोई कहते हैं कि दुरभिलाषी राज्य-लोलुप प्रताप ने अपने जामाता को मार कर उसका राज्य लेने की इच्छा की थी। रामचन्द्र अपने साले उदयादित्य की सहायता से भाग कर अपने राज्य में गये थे। गृहकलह का मूल कारण वसन्तराय को जान कर प्रताप ने उनको और उनके पुत्रों को मार डाला। वसन्तराय के एक छोटा पुत्र था। उसका नाम था राघव। वसन्तराय की स्त्री उस पुत्र को ले कर एक वन

में छिप गयी थी, इसी कारण वह बचा रहा। राघव छिपा छिपा दिल्ली जा कर बादशाह के शरण गया और बादशाह की सहायता से प्रताप को जीत वह यशोहर का राजा हुआ। बादशाह ने उसे "यशोहरजित्" की उपाधि दी थी।

प्रतिबाहु=यदुवंशी राजा नाम के ये पुत्र थे। नाम के स्वर्ग जाने पर प्रतिबाहु जयसलमेर के राजा हुए थे।

प्रतीप=कुरुवंशी एक राजा। ये शन्तनु के पिता थे।

प्रद्युम्न=श्रीकृष्ण के पुत्र। ये रुक्मिणी के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। कामदेव, महादेव के कोपाग्नि में भस्म हो कर श्रीकृष्ण के औरस और रुक्मिणी के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। जन्म होने के सातवें दिन श्रीकृष्ण के प्रबल शत्रु शम्बरासुर ने उसे हर लिया। यह बात श्रीकृष्ण को मालूम तो हो गयी, परन्तु उन्होंने इसका कुछ भी प्रतिविधान नहीं किया। दैत्यपति शम्बर की रानी का नाम मायावती था। मायावती के कोई पुत्र नहीं था। अतएव शम्बर ने प्रद्युम्न को मायावती के हाथ में सौंप दिया और उसे पोसने पालने के लिये कहा। मायावती कोई दूसरी नहीं है यह स्वयं रति है। प्रद्युम्न को देखते ही मायावती को अपने पूर्व जन्म के वृत्तान्त स्मरण हो आये। वह पति का लालन पालन स्वयं करना उचित न समझ कर धाय के द्वारा उसे पालने पोसने लगी। प्रद्युम्न जब जवान हुए, तब मायावती उनसे स्त्री के समान भाव प्रकट करने लगी। यह देख प्रद्युम्न ने एक दिन मायावती से पूँछा—तुम मेरे प्रति पुत्रभाव छोड़ कर इस प्रकार का विपरीत भाव क्यों प्रकाशित करती हो? प्रद्युम्न को एकान्त में ले जा कर मायावती कहने लगी, नाथ! तुम हमारे पुत्र नहीं हो, शम्बर भी तुम्हारा पिता नहीं है। तुम्हारा जन्म वृष्णिवंश में हुआ है। तुम्हारी माता रुक्मिणी और पिता श्रीकृष्ण हैं। तुम्हारे जन्म के सातवें दिन सौर घर से शम्बर तुम्हें उठा लाया है। मैं तुम्हारे रूप पर मोहित हुई हूँ तुम शम्बर को मारो और हमारा मनोरथ पूर्ण करो। यह सुन कर प्रद्युम्न ने किसी प्रकार शम्बर का क्रोध बढ़ाया और युद्ध में वैष्णवास्त्र द्वारा उसे मार डाला। तदनन्तर मायावती को ले कर वे द्वारका गये।

प्रद्वेषी=महर्षि दीर्घतमा की स्त्री का नाम।

प्रधान केशवराय=ये भाषा के कवि थे। इन्होंने शालिहोत्र नामक अश्वचिकित्साविषयक ग्रन्थ भाषा में बनाया है।

प्रधान कवि=ये भाषा के कवि थे और सं०१७७४ में उत्पन्न हुए थे। इनके कवित्त मनोहर होते थे।

प्रभाकरवर्द्धन=प्राचीन एक राजा। थानेश्वर में इनकी राजधानी थी। कहते हैं कन्नौजराज हर्षदेव के ये पिता थे। जिस समय प्रभाकरवर्द्धन थानेश्वर प्रदेश का शासन करते थे, उस समय उनके जामाता ग्रहवर्मा कन्नौज के राजा थे। हर्षवर्द्धन जब कन्नौज के राजा हुए तब थानेश्वर कन्नौज राज्य में मिला दिया गया था।

प्रभास=प्राचीन एक तीर्थ। महाभारत से मालूम होता है कि यह तीर्थ द्वारका के अन्तर्गत था। यज्ञाश्व के पीछे अर्जुन प्रभासक्षेत्र हो कर द्वारकापुरी में गये थे। पुराणों से यद्यपि यह बात सिद्ध है कि श्रीकृष्ण के स्वर्गारोहण करने पर द्वारकापुरी समुद्र में लीन हुई। यही बात प्रभासक्षेत्र के लिये भी है। तथापि बहुत दिनों से लोगों ने एक द्वारकापुरी और एक प्रभासक्षेत्र निर्दिष्ट कर लिया है। यह निर्देश कब हुआ और किसने किया, इसका पता नहीं है। आज भी प्रभासक्षेत्र गुजरात काठियावाड़ के विलावल बन्दर के पास वर्तमान है। यह यज्ञीयस्थान समझा जाता है।

प्रमद्वरा=एक ऋषिपत्नी। गन्धर्वराज विश्वावसु के औरस और मेनका नाम की अप्सरा के गर्भ से इसकी उत्पत्ति हुई थी। यह प्रमितिपुत्र रुरु को व्याही गयी थी, इसके गर्भ से महर्षि शुनक की उत्पत्ति हुई थी। प्रमद्वरा को किसी साँप ने काट खाया था, जिससे यह मर गयी। तभी से क्रोध के कारण रुरु ने सर्पवंश का नाश करना प्रारम्भ कर दिया था। (महाभारत)

प्रमारवंश=क्षत्रियों के अग्निकुल की एक शाखा। अग्निकुल की प्रधान शाखाएँ प्रमार, पुरिहर, चौहान और चालुक्य या शोलङ्की ये चार हैं। प्रमार में भी ३५ शाखाएँ हैं।

प्रयाग=तीर्थराज। रामायण में लिखा है, मध्य भारत में इल नामक राजा ने प्रतिष्ठानपुर नामक नगर बसाया। यहाँ किसी समय पुरूरवा की राजधानी थी। वह प्रतिष्ठाननगर इस समय कहाँ है? बहुत लोग कहते हैं कि उसी प्रतिष्ठानपुर के भग्नावशेष पर ही प्रयाग या इलाहाबाद नगर स्थापित हुआ है। मत्स्यपुराण में लिखा है—ययाति ने जिस समय पुरु को राज्य दिया उस समय उन्होंने कहा था—"गङ्गायमुनयोर्मध्ये कृत्स्नोऽयं विषयस्तव" इस उक्ति से भी प्रतिष्ठान या प्रयाग ही का बोध होता है। इससे पुरूरवा से ले कर ययाति पर्यन्त यह राज्य चन्द्रवंशी राजाओं के अधिकार में था यह मालूम पड़ता है। ययाति ने पुरु को अपने राज्य का श्रेष्ठ भाग दिया था, इससे यह नगर उस समय विशेष सम्पत्तिशाली था यह अनुमान किया जाता है। महाराज युधिष्ठिर के समय में भी प्रतिष्ठान नामक जनपद का पता मिलता है। उस समय प्रतिष्ठान की राजधानी प्रयाग में थी। राजा युधिष्ठिर ने प्रयागमाहात्म्य सुन कर इस विषय में मार्कण्डेय मुनि से कई एक प्रश्न पूँछे थे। उन्हीं प्रश्नों के उत्तर में महर्षि मार्कण्डेय कहते हैं—प्रयाग में प्रतिष्ठान से ले कर वासुकीह्रद पर्यन्त जो स्थान है उसे प्रजापतिक्षेत्र कहते हैं। इस क्षेत्र में कम्बल, अश्वतर और बहुमूल नामक नाग का वास है। मत्स्यपुराण में भी इसी प्रकार लिखा गया है। कूर्मपुराण में महर्षि मार्कण्डेय युधिष्ठिर के प्रति कहते हैं—गङ्गा के पूर्व तीर पर त्रिभुवन प्रसिद्ध सर्वसमुद्र नामक एक खोह है तथा प्रतिष्ठान नगरी भी वहीं विद्यमान है। प्रतिष्ठान के उत्तर और गङ्गा के वाम भाग में हंसप्रपतन नामक प्रसिद्ध तीर्थ है। इस वर्णन से गङ्गा के दूसरे पार और गङ्गा के पूर्व ओर प्रतिष्ठान विद्यमान है। कालप्रभाव से वह नगर नष्ट हो गया अथवा इलाहाबाद ही में मिल गया इसका कुछ निश्चय नहीं किया जा सकता। प्रतिष्ठाननगर के लुप्त होने पर प्रयाग की प्रसिद्धि हुई है। यद्यपि प्रयाग कभी किसी स्वाधीन राज्य की राजधानी नहीं था, हो भी तो उसका उल्लेख पुराणों में नहीं देखा जाता, तथापि सृष्टि के आदिकाल ही से प्रयाग मुक्तिक्षेत्र माना जाता है। रामायण में भी प्रयाग और प्रागवट का उल्लेख है। अयोध्याकाण्ड के ५४वें सर्ग में प्रयाग में भरद्वाजाश्रम गङ्गा यमुना का सङ्गम आदि का उल्लेख है। वहाँ श्रीरामचन्द्र ने लक्ष्मण से कहा था—सौमित्रे! यह देखो, प्रयागतीर्थ के चारों ओर से अग्नि का केतुस्वरूप धूम उठ रहा है। मालूम पड़ता है मुनि आश्रम में ही हैं। ठीक ठीक हमलोग गङ्गा यमुना के सङ्गमस्थान पर पहुँच गये हैं। क्योंकि दोनों नदियों के सङ्गम से जलध्वनि हो रही है। परन्तु उस समय यह नगर किस राजा की राजधानी था इसका पता नहीं लगता। इससे मालूम पड़ता है कि प्रतिष्ठानपुर के नष्ट होने पर प्रयाग कोशल राज्य ही के अन्तर्गत था। महाभारत में लिखा है—प्रयाग महाराज दुर्योधन के राज्य के अन्तर्गत था। महाराज युधिष्ठिर, दुर्योधन को सुयोधन कहा करते थे। दुर्योधन के मरने पर प्रयाग की बात स्मरण कर के युधिष्ठिर विलाप करते हैं—हाय, एक दिन इस राज्य के सुयोधन राजा थे यह एकादश अक्षौहिणी के अधीश्वर थे इत्यादि। मत्स्यपुराण और कूर्मपुराण में यह बात लिखी है।

भारतवर्ष के अन्यान्य प्रसिद्ध स्थानों के समान प्रयाग में भी एक समय बौद्धों की प्रधानता विस्तृत हुई थी। प्रयाग के क़िले में एक धातुनिर्मित स्तम्भ (लाट) विद्यमान है। इस देश पर एक समय राजा अशोक का शासन था। यही बात उस लाट से पायी जाती है। बौद्धधर्म की नीति और उपदेश उस स्तम्भ में खुदे हुए हैं अशोक के अनन्तर प्रयाग गुप्तवंशियों के अधिकार में था। गुप्तवंशी राजा समुद्रगुप्त ने अशोक के स्तम्भ पर अपना भी स्मृतिचिह्न अङ्कित किया है। समुद्रगुप्त ने अपने पितृकुल का परिचय तथा अपने राज्य की गौरवकथा उस स्तम्भ पर खुदवायी है। सम्राट् अकबर के शासनसमय में प्रयाग में एक क़िला बना जिसका नाम "इलाहाबाद" रखा गया। शाहजहाँ के समय में उस क़िले का नाम अलहाबाद हुआ और अब इलाहाबाद

हो गया है । जो हो, पहले सम्राट् अशोक के स्तम्भ का जो उल्लेख किया गया है, उसके कितने ही अंश सम्राट् जहाँगीर ने तोड़ फोड़ डाले, तदनन्तर पुनः उसका संस्कार कराया और उस पर फारसी में अपने राज्य की महिमा गायी, इलाहाबाद के क़िले में जो स्तम्भ इस समय वर्त्तमान है उसमें भिन्न भिन्न राजाओं के शासन का भिन्न भिन्न प्रकार का उल्लेख पाया जाता है । चीनपरिव्राजकों के भ्रमण वृत्तान्त से प्रयाग का जो परिचय मिलता है, उससे मालूम होता है कि फाहियान और हुएनत्सङ्ग दोनों ही अयोध्या हो कर प्रयाग पहुँचे थे । परन्तु इनके मार्ग भिन्न भिन्न थे । हुएनत्सङ्ग का वर्णन इस प्रकार है, अयुतो अर्थात् अयोध्या से नाव पर चढ़ कर ५० मील चलने पर चीनी परिव्राजक गङ्गा के उत्तर तीरस्थ ओयीमुखी अर्थात् हयमुख नामक स्थान में पहुँचे । कहते हैं कि हय नामक दानव की राजधानी होने के कारण इस नगर का हयमुख नाम पड़ा । चन्द्रवंश की शाखा यदुवंश में हय नामक एक राजा थे, सम्भव है उनकी ही यह राजधानी हो । भागवत में हय नामक यवन राजा द्वारा पुरञ्जन के राज्य पर आक्रमण किये जाने का उल्लेख है । हयमुख उसी यवन राजा ही का राज्य हो ऐसा भी अनुमान किया जा सकता है । अस्तु, वहाँ से हुएनत्सङ्ग दक्षिण पूर्व की ओर एक सौ सोलह मील जा कर प्रयाग पहुँचे । हुएनत्सङ्ग ने प्रयाग के विषय में लिखा है । दो नदियों के सङ्गम स्थान पर यह नगर विद्यमान है और इसके पश्चिम की ओर बालुकामय समतल भूमि है । नगर के बीच में ब्राह्मणों का एक देवमन्दिर है । कहते हैं उस मन्दिर में एक पैसा चढ़ाने से हज़ार पैसे मिलते हैं । मन्दिर के आँगन में एक बहुत बड़ा वृक्ष है, लोग कहते हैं कि उस वृक्ष पर एक नरभक्षी दैत्य रहता है, वृक्ष के चारों ओर नरकङ्काल फैला हुआ था, जो यात्री मन्दिर के सामने आत्मबलिदान करते थे उन्हींका कङ्काल वृक्ष के आजू बाजू पड़ा था । हुएनत्सङ्ग कहते हैं बहुत दिनों से इस वृक्ष के आस पास नरकङ्काल रखा जाता है । कनिंहम का मत है कि जिस वृक्ष का उल्लेख परिव्राजक ने किया है वह वृक्ष "अक्षयवट" ही है । क़िले में अक्षयवट आज भी वर्त्तमान है, परन्तु परिव्राजक कथित मन्दिर का पता नहीं चलता, ऐसी स्थिति में उन्हीं स्तम्भों ही को मन्दिर का भग्नावशेष माना जा सकता है । अक्षयवट तथा उसके आस पास के स्तम्भों को देखने से वहाँ एक प्राचीन नगर के होने का पता लगता है । अधिक समय होने के कारण वहाँ की भूमि ऊँची हो गयी हो और मन्दिर भूमि में दब गया हो । अतएव आज क़िले में अक्षयवट के समीप जाने के लिये सीढ़ियों से नीचे उतरना पड़ता है । रसीद प्रणीत "जामै उत्तवारीख़" में अक्षयवट का विवरण लिखा है । उन्होंने लिखा है-प्रयाग का यह वृक्ष (अक्षयवट) गङ्गा और यमुना के सङ्गम पर विद्यमान है । रसीद उद्दीन ने आबूरिहाण लिखित अनेक विषयों का अपने ग्रन्थों में उल्लेख किया है । आबूरिहाण के ग्रन्थ में महमूद ग़ज़नी के समय का विवरण रहना सम्भव है । परन्तु सप्तम शताब्दी के हुएनत्सङ्ग ने लिखा है-प्रयागनगर और गङ्गा यमुना के सङ्गम के बीच में दो कोस बालू का मैदान है । जब उन्होंने अक्षयवट को नगर के मध्य में लिखा है तब कम से कम नगर से एक माइल की दूरी पर गङ्गा यमुना का सङ्गम-क्षेत्र का होना सम्भव माना जा सकता है । परन्तु हुएनत्सङ्ग की भारत यात्रा से नौ सदी बाद अकबर के राज्य काल के अब्दुलक़ादिर ने लिखा है- इसी वृक्ष से लोग गङ्गा में कूदते थे । इससे मालूम पड़ता है हुएनत्सङ्ग के समय गङ्गा नगर से दूर थीं और अकबर के समय समीप । मालूम पड़ता है कि अकबर के राज्य के बहुत पहले से लोगों ने नगर छोड़ रखा था । क्योंकि अकबर के राज्य के एकीसवें वर्ष अर्थात् १५७२ ई० में जब इलाहाबाद क़िला बना तब वहाँ अक्षयवट के अतिरिक्त और किसी का चिह्न तक भी नहीं था । आबूरिहाण के वर्णन में प्रयाग का उल्लेख नहीं है किन्तु केवल वट वृक्ष ही का उन्होंने वर्णन किया है । अतः इससे भी

उस समय नगरी के जनशून्य होने का प्रमाण पाया ही जाता है। अकबर और आबूरिहाण के मध्यवर्ती किसी भी ऐतिहासिक ने इस नगर का उल्लेख नहीं किया है इससे भी पूर्वोक्त बात ही पायी जाती है।

प्रयाग की प्रतिष्ठा के विषय में एक अद्भुत किंवदन्ती प्रसिद्ध है। प्रयाग नामक एक ब्राह्मण अकबर के राज्य काल में यहाँ वास करते थे। उन्हींके नामानुसार प्रयाग की उत्पत्ति हुई है। कहा जाता है कि सम्राट् अकबर जिस समय इलाहाबाद क़िला बनवा रहे थे, उस समय नदी की धार से क़िले की एक दीवार टूट गयी। उस दीवार को कारीगर किसी भी प्रकार से नहीं बना सकते थे। अकबर ने कई मनुष्यों से इस विषय में सम्मति पूँछी, उससे निश्चित हुआ कि विना नरबलि दिये दीवार का बनाया जाना कठिन है। तदनन्तर घोषणा प्रचारित की गयी कि कौन मनुष्य इस क़िले के बनने में सहायता पहुँचाने की इच्छा से प्राणदान करने को तैयार है। उसका नाम चिरस्थायी करने के लिये उसीके नाम पर नगर का नाम रखा जायगा। इस घोषणा को सुन कर वही प्रयाग नामक ब्राह्मण बादशाह की सहायता करने की इच्छा से प्राण देने के लिये उद्यत हुआ। प्रयाग के प्राणदान करने से यह क़िला बना है इसी कारण नगर का नाम प्रयाग रखा गया। कनिंहम कहते हैं कि जो यात्री अक्षय वट का दर्शन करने जाता है उससे यही प्रयाग नाम की उत्पत्ति या प्रतिष्ठा विषयक उपाख्यान कहा जाता है। परन्तु कनिंहम इस उपाख्यान पर विश्वास नहीं करते। उन्होंने इसका प्रतिवाद करते हुए कहा है कि सप्तम शताब्दी के हुएनत्सङ्ग के वर्णन में भी प्रयाग नाम देखा जाता है। ई० सन् के २३५ वर्ष पूर्व अशोक ने जो स्तम्भ निर्माण कराया है उसमें भी प्रयाग नाम पाया जाता है। अत एव १६ वीं सदी में प्रयाग निर्माण के विषय में जो किंवदन्ती प्रसिद्ध है वह असत्य है।

प्रयागनारायण भार्गव मुंशी, रायबहादुर (माननीय)=यह भार्गववंशीय एक धनी पुरुष हैं और लखनऊ के रहने वाले हैं। आप लखनऊ के प्रसिद्ध नवलकिशोर-मुद्रण-यन्त्रालय के वर्तमान स्वामी हैं। इनका जन्म सन् १८७१ ई० में प्रयाग में हुआ था और आपने लखनऊ एवं आगरे के विद्यालयों में शिक्षा पायी थी। विद्याध्ययन समाप्त कर, आपने मुंशी नवलकिशोर के तत्वावधान में काम सीखा। मुंशी जी के परलोक वास होने पर आप ही उनकी विशाल सम्पत्ति के अधिकारी हुए और बड़ी योग्यता से मुंशी जी के खोले हुए कारख़ानों को केवल चलाया ही नहीं, बल्कि उनकी बहुत कुछ उन्नति की और कई नये कामों में भी हाथ डाला।

मुंशी प्रयागनारायण जी के अधिकार में ज़मींदारी भी है। यह ज़मींदारी केवल एक ही ज़िले में नहीं किन्तु अलीगढ़, गोंडा, बाराबङ्की, उन्नाव, कानपुर, हमीरपुर आदि कई एक ज़िलों में है। नवलकिशोर प्रेस की शाखाएँ भी हैं जो कानपुर और लाहौर में अच्छा काम कर रही हैं। इन शाखाओं में अनेक पुस्तकें तो प्रकाशित होती ही हैं, पर साथ ही बहुत सा सरकारी रियासतों का तथा रेलों का भी काम छापा जाता है। ग्रन्थ केवल अङ्गरेज़ी भाषा ही में नहीं किन्तु अनेक देशी भाषाओं में भी छपते हैं। लखनऊ आइरनवर्क्स भी इस समय उन्नतावस्था में है। नवलकिशोर आइसफेक्टरी का काम भी बड़ी सफलता के साथ चल रहा है। इस समय मुंशी जी के कारख़ाना में सब मिला कर लग भग एक हज़ार आदमी नौकर हैं। प्रयागनारायण जी उत्तरी भारत में कोठी वाली का काम भी कर रहे हैं। आपको कृषि और वनस्पति विज्ञान में भी बड़ा अनुराग है और आपने अपने अनुभव से कृषि-सम्बन्धी अनेक नयी नयी बातें निकाली हैं। आपको सन् १६०६ ई० में सरकार ने रायबहादुर की उपाधि प्रदान कर सम्मानित किया था। आप बड़े उदार हैं और सर्वसाधारण के हितकर कार्य्यों के लिये आप मन खोल कर चन्दे देते हैं। आपने हिन्दूविश्वविद्यालय को तीस हज़ार रुपये दिये हैं। हाल ही में आपने गोमती के तट पर "माई जी सरस्वती घाट" नामक एक ठाकुरद्वारा भी अपनी स्नेहमयी

माता की स्मृति में बनवाया है। इस ठाकुरद्वारे में संस्कृत की एक पाठशाला भी खोली गयी जिसमें विना कुछ लिये विद्यार्थियों को विद्या पढ़ाने का प्रबन्ध और जो योग्य विद्यार्थी होते हैं, उन्हें रहने की जगह भी मिलती है। राय बहादुर मुंशी प्रयागनारायण जी लखनऊ के आनरेरी मेजिस्ट्रेट हैं। अवधब्रिटिश इण्डियन एसोसियशन् और अपर इण्डिया चेम्बर आफ कामर्स के मेम्बर हैं। अपरइण्डिया पेपरमिल, भार्गव कमर्शियल बेङ्क, दिल्ली भारत नेशनल बेङ्क के आप डाइरेक्टर हैं। लखनऊ के प्रसिद्ध अवध अख़बार के आप भी प्रोप्राइटर हैं। सन् १६१६ ई० में आप छोटे लाट की व्यवस्थापक सभा के सदस्य निर्वाचित हुए हैं।

प्रलम्ब=एक अत्यन्त दुराचारी दानव। श्रीकृष्ण बलराम और गोपबालक जिस समय खेल रहे थे उस समय यह दानव गोपवेश धारण कर के उनके साथ जा मिला। श्रीकृष्ण प्रलम्बासुर की अभिसन्धि ताड़ गये, और वे गोपबालकों के साथ कृत्रिम मल्लयुद्ध करने लगे। इस कृत्रिम युद्ध में यह ठहराव हुआ कि जो हार जायगा वह जेता को अपने कन्धे पर रख कर निर्दिष्ट स्थान तक ले जायगा। प्रलम्बासुर बलराम के साथ युद्ध में पराजित हो कर उनको अपने कन्धे पर चढ़ा कर ले चला थोड़ी दूर ले जा कर बलराम को वध कर देने ही की प्रलम्बासुर की इच्छा थी। यह समझ कर बलराम इतने भारी हुए कि प्रलम्ब उनको ढो नहीं सका। अन्त में प्रलम्ब अपनी मूर्ति धारण कर के बलराम की ओर बढ़ा किन्तु शीघ्र ही युद्ध में बलराम द्वारा मारा गया।

(भागवत)

प्रवरसेन=(१) काश्मीर के एक राजा। इनका दूसरा नाम श्रेष्ठसेन था। लोग इन्हें तुजीन भी कहा करते थे। ये बड़े वीर थे। इन्होंने प्रवरेश्वर नामक शिव तथा मातृचक्र की प्रतिष्ठा की थी। इसके अतिरिक्त और भी अनेक पुरातन मन्दिरों का इन्होंने संस्कार कराया। प्रवरेश्वर शिव को इन्होंने त्रिगर्त देश दिया था। इन्होंने ३० वर्ष राज्य किया था।

(राजतरङ्गिणी)

(२) ये द्वितीय प्रवरसेन के नाम से प्रसिद्ध हैं। इनके पिता का नाम तोरमान था। प्रथम प्रवरसेन के ये पौत्र थे। प्रथम प्रवरसेन की मृत्यु होने पर उनके बड़े पुत्र हिरण्य काश्मीर के सिंहासन के अधिपति हुए। तोरमान छोटे थे अतएव वे युवराज के पद पर आसीन हुए। युवराज तोरमान ने अपने नाम का सुवर्ण का सिक्का चलाया इस बात से राजा बहुत अप्रसन्न हुए। उन्होंने तोरमान को क़ैद कर लिया। उस समय तोरमान की स्त्री अञ्जना गर्भवती थी, वह पति की आज्ञा से एक कुम्भकार के घर में रहने लगी। वहीं उसे एक पुत्र हुआ। वही पुत्र द्वितीय प्रवरसेन हुआ। प्रवरसेन की बाल्यावस्था की क्रीड़ाओं से मालूम किया जा सकता था कि वह उच्चवंशी तथा भावी राजा है। वह अपने साथियों के साथ खेल में राजा बनता था और सबका शासन करता था। एक समय इसके मामा जयेन्द्र ने इसे देखा। आकार आदि देखने से उन्हें सन्देह हुआ, वे उस बालक के पीछे पीछे गये। वहाँ अञ्जना को देखने से जयेन्द्र का सन्देह दूर हुआ। जयेन्द्र से सभी बातें जान कर प्रवरसेन अत्यन्त क्रुद्ध हुए, परन्तु मामा के यह कहने पर कि समय के द्वारा बलवान् बनाया हुआ कार्य अधिक अच्छा होता है—प्रवरसेन ने क्रोध शान्त किया और वे तीर्थयात्रा के लिये चले गये।

हिरण्यगुप्त के मरने पर काश्मीर का राजसिंहासन कुछ दिनों तक शून्य ही था। पुनः उज्जयिनीपति विक्रमादित्य की आज्ञा से मातृगुप्त काश्मीर के राजा हुए।

प्रवरसेन तीर्थाटन करते करते श्रीपर्वत पर पहुँचे। वहाँ उन्होंने अपने राज्य की दुर्दशा और पिता की मृत्यु की बात सुनी। उनको बड़ा कष्ट हुआ। वे इसके प्रतिकार का उपाय सोच ही रहे थे कि अश्वपाद नामक सिद्ध वहाँ गया। उसने प्रवरसेन को सम्बोधन कर के कहा—आप मेरे पहले के गुरु हैं। मैंने आप ही से सिद्धि लाभ की है। उस समय मैंने आपसे पूँछा था कि आप क्या चाहते हैं, तो आपने कहा था—मुझे राज्य चाहिये। मैंने आपका मनोरथ पूर्ण

करने के लिये भगवान् चन्द्रशेखर से प्रार्थना की है। उन्होंने कहा—वह मेरा अनुचर है, मैं उसका अभीष्ट पूरा करूँगा। इतना कह कर वह सिद्ध चला गया। प्रवरसेन भी तपस्या करने लगा। महादेव यथासमय आये और प्रवरसेन को वर दे कर चले गये।

प्रवरसेन भी कारमीर के समीप पहुँचे। राज्य के मन्त्री प्रवरसेन के समीप गये, और उनसे मातृगुप्त के विरुद्ध युद्ध करने के विषय में परामर्श करने लगे। प्रवरसेन ने कहा—मेरा हृदय विक्रमादित्य का नाश करने के लिये शीघ्रता कर रहा है, मातृगुप्त से मेरा कुछ विरोध नहीं है। जो क्लेश सहन कर सकते हैं, यदि वे शत्रु भी हैं तो उनको पीड़ा देने से क्या लाभ है। जो छोटे छोटों को जीत कर जगत् में वीर के नाम से प्रसिद्ध हैं उनको नाश करने वाले ही सच्चे वीर कहे जा सकते हैं। यह कह कर प्रवरसेन मन्त्रियों के साथ विक्रमादित्य से युद्ध करने के लिये प्रस्थित हुए। मार्ग ही में इन्होंने सुना कि विक्रमादित्य का परलोकवास हो गया। इससे प्रवरसेन को बड़ा दुःख हुआ। उसी समय यह संवाद आया कि काश्मीरराज विक्रमादित्य राज्य छोड़ कर कहीं जा रहे हैं। प्रवरसेन ने समझा कि कदाचित् मेरे पक्ष वालों ने इन्हें राज्य से उतार दिया है। अतः इसका निर्णय करने के लिये वे स्वयं मातृगुप्त के समीप गये, और अत्यन्त नम्रता से उन्होंने राज्य छोड़ने का कारण उनसे पूँछा मातृगुप्त ने कहा—राजन्! जिसने मुझे राजा बनाया था वह अब इस संसार में नहीं रहा, अतः अब मेरा भी राज्य भोग करना अन्याय्य और कृतघ्नता है। प्रवरसेन ने मातृगुप्त को बहुत समझाया कि आप राज्य न छोड़ें, परन्तु मातृगुप्त ने कुछ भी न सुना और वे काशी जा कर संन्यासी हो गये। प्रवरसेन काश्मीर के राजा तो हुए परन्तु राज्य की जो कुछ आय थी वह सब वे मातृगुप्त के पास काशी को भेज देते थे, दस वर्ष के बाद मातृगुप्त का परमधाम हुआ।

प्रवरसेन काश्मीर का राज्य करने लगे। उनकी सेनाओं ने भारत के अन्यान्य प्रान्तों को भी अपने अधीन कर लिया था। विक्रमादित्य के पुत्र शिलादित्य को शत्रुओं ने राज्यच्युत कर दिया था। प्रवरसेन ने शिलादित्य को उसका पितृराज्य दिला दिया और काश्मीर का जो सिंहासन विक्रमादित्य ले गये थे, उसे वे लौटा लाये इन्होंने वितस्ता नदी पर नौकाओं का पुल बँधवा दिया था। अपने नाम का एक नगर भी इन्होंने बनवाया था। इसके अतिरिक्त और भी कितने ही महान् राजोचित कार्य प्रवरसेन ने किये। इनका राज्यकाल ६० वर्ष है। (राजतरङ्गिणी)

प्रवीण कविराय=हिन्दी के एक कवि। ये सं० १६६२ में उत्पन्न हुए थे। हज़ारा में इनके बनाये कवित्त पाये जाते हैं। नीति और शान्त रस के ये अच्छे कवि थे।

प्रवीण ठाकुरप्रसाद्=ये कवि अवध के रहने वाले और पयासी के मिश्र थे। इनका जन्म सं० १६२४ में हुआ था। इनके गाँव का नाम परिया था जो शाहगंज के समीप है। ये महाराजा मानसिंह के दरबार में रहते थे। इनकी कविता सुन्दर होती थी।

प्रवीणराय पातुरि=बुन्देलखण्ड ओरछा की यह रहने वाली थी। सं० १६५० में इसकी उत्पत्ति हुई थी। यह कवि थी और ओरछे के राजा इन्द्रजीत के यहाँ रहा करती थी। राजा इन्द्रजीत भी कवि थे, अतएव इनमें प्रेम हो गया था। केशवदास जी ने कविप्रिया नामक ग्रन्थ में इसकी बड़ी प्रशंसा की है जिससे यह मानने में कोई सन्देह नहीं रहता कि यह एक उत्तम कवि थी। कहते हैं, सम्राट् अकबर ने इसकी प्रशंसा सुन कर इसे अपनी सभा में बुलवाया था। पहले तो राजा इन्द्रजीत ने इसे नहीं जाने दिया। परन्तु जब यवनराज ने अपनी त्योरी बदली तब प्रवीणराय ने जाना ही उचित समझा, उसने सोचा व्यर्थ, हमारे कारण एक प्रबल बादशाह से विरोध होना अच्छा नहीं। प्रवीणराय बादशाह के दरबार में गयी। वहाँ अकबर और इससे नीचे लिखी बातें हुईं—

बादशाह—युवन चलत तिय देह ते चटकि चलत किहि हेत।
प्रवीण—मन्मथ वारि मसाल को सैनि सिहारो लेत॥

बादशाह—ऊँचे है सुर बस किये सम है नर बस कीन ।
प्रवीण—अब पताल बस करन को ढरकि पयानो कीन ॥

तदनन्तर प्रवीण ने यह दोहा पढ़ा—

विनती रायप्रवीण की सुनिए शाह सुजान ।
जूठी पतरी भखत हैं बारी बायस स्वान ॥

यह सुन कर बादशाह ने प्रसन्नतापूर्वक इसे विदा किया । वहाँ से प्रवीण राजा इन्द्रजीत के पास लौट आयी ।

प्रशस्त पादाचार्य=प्राचीन नैयायिक पण्डित । इन्होंने "पदार्थधर्मसंग्रह" नामक वैशेषिक दर्शन का भाष्य बनाया है ।

प्रसूति=दक्ष की पत्नी और सती की माता । जब महादेव ने दक्ष और उनके यज्ञ का नाश किया, तब प्रसूति के कहने से महादेव ने दक्ष को पुनः जीवन प्रदान किया था ।

प्रसिद्ध कवि=ये भाषा के कवि प्राचीन प्रसिद्ध कवि कहे जाते थे । सं० १५९० में इनका जन्म हुआ था । ये बड़े कवि थे और खानखाना के यहाँ रहते थे ।

प्रहस्त=रावण के सेनापति का नाम । यह रावण के सामने अपनी बहुत बड़ी वीर कहानी गाता था । परन्तु युद्ध में मारा गया ।

प्रह्लाद=दैत्यपति हिरण्यकशिपु के पुत्र । ये अत्यन्त विष्णुभक्त थे । बाल्यावस्था ही में इनकी विष्णुभक्ति प्रकाशित हो गयी थी । दैत्यराज ने पुरोहित षण्ड और अमर्क को प्रह्लाद को शिक्षा देने के लिये नियत किया । प्रह्लाद के गुरु विष्णु नाम न लेने के लिये सर्वदा प्रह्लाद को उपदेश दिया करते थे, परन्तु उसका कुछ भी फल नहीं हुआ, किन्तु प्रह्लाद के साथ से अन्य भी दैत्य बालक विष्णुभक्त हो गये । इससे अनर्थ होने की सम्भावना देख कर षण्डामर्क ने दैत्यराज से कह दिया । दैत्यराज ने डाँट कर प्रह्लाद को मना किया, परन्तु प्रह्लाद बड़ी नम्रता से पिता के सामने विष्णुगुण गान करने लगे । दैत्यराज ने क्रुद्ध हो कर प्रह्लाद को मरवा डालने के लिये अनेक उपाय किये, परन्तु भगवान् की कृपा से प्रह्लाद की कुछ भी हानि नहीं हुई । दैत्यराज अपने उपायों को निष्फल होते देख बड़े दुःखी हुए । अन्त में प्रह्लाद ने अपने पिता के सामने कहा कि जगत् के ऊपर ईश्वर हैं वे सबकी रक्षा करते हैं । इससे हिरण्यकशिपु अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और बोला—अरे मूर्ख ! तेरा मृत्युकाल आया है । यदि तेरा ईश्वर सब स्थानों में वर्तमान है तो इस खम्भे में क्यों नहीं है । प्रह्लाद ने उस खम्भे की ओर देखा और प्रणाम किया, तदनन्तर वे बोले—यहीं तो हरि देखे जा रहे हैं । हिरण्यकशिपु को वहाँ कुछ भी नहीं दीख पड़ता था । उसने प्रह्लाद को बहुत भला बुरा कह कर उस खम्भे पर एक लात मारी लात के लगते ही उस खम्भे से भयङ्कर शब्द हुआ । प्रह्लाद ने खम्भे में नृसिंह भगवान् को देखा, परन्तु अब भी हिरण्यकशिपु को कुछ दिखायी नहीं पड़ता था । अतएव वह भौंचक्का हो कर चारों ओर देखने लगा कि यह भयङ्कर शब्द कहाँ हुआ ? इसी समय खम्भे से भयङ्कर नृसिंह उत्पन्न हुए । हिरण्यकशिपु गदा ले कर उस ओर दौड़ा, नृसिंह ने उसे उठा कर अपनी जङ्घा पर रख लिया, तथा नखों से उसका पेट फाड़ कर उसे मार डाला, तदनन्तर अन्यान्य दानव जो शस्त्र ले कर हिरण्यकशिपु के उद्धार के लिये प्रस्तुत थे उन्हें भी मार डाला । इसके पश्चात् देव गन्धर्व आदि क्रोधशान्ति के लिये नृसिंह की स्तुति करने लगे । ब्रह्मा के कहने से प्रह्लाद ने नृसिंह के कोप की शान्ति के लिये स्तव किया । प्रह्लाद की स्तुति से प्रसन्न हो कर भगवान् बोले—भद्र प्रह्लाद ! तुम्हारा मङ्गल हो मैं तुम पर प्रसन्न हुआ हूँ । वर माँगो, प्रह्लाद बोले—भगवन् ! मैं स्वभाव ही से कामासक्त हूँ । अतः इन वरों का लोभ आप न दिखावें, यदि आप मुझको वर देना चाहते ही हैं तो यही दीजिये कि मेरे हृदय में काम का अंकुर कभी उत्पन्न न हो । भगवान् के कहने से प्रह्लाद ने दूसरा वर यह माँगा—हमारे पिता ने जो आपका स्वरूप न जान कर आपकी निन्दा की है, उसके पाप से वे मुक्त हों । भगवान् बोले—केवल तुम्हारे पिता का ही उद्धार नहीं हुआ, किन्तु उनके २१ पूर्वजों का भी उद्धार हो गया, क्योंकि, उनके वंश में तुम्हारा जन्म हुआ । (भागवत)

प्रागृज्योतिष=प्राचीन एक राज्य का नाम। यद्यपि सूत्रग्रन्थ तथा संहिताओं में इस राज्य का उल्लेख नहीं है तथापि रामायण महाभारत पुराण और तन्त्र के ग्रन्थों में इसका वर्णन पाया जाता है। मनुसंहिता में प्रागृज्योतिष का नाम नहीं लिखा है किन्तु वहाँ भी किरातनिषेवित एक प्राच्य राज्य का उल्लेख है। महाभारत में प्रागृज्योतिष को किरातों की निवासभूमि लिखा है। अतएव ऐसा मालूम होता है कि मनु का किरातनिषेवित राज्य और महाभारत का प्रागृज्योतिष दोनों एक ही हैं। किन्तु मनु ने प्रागृज्योतिष का नाम क्यों नहीं लिया इस प्रश्न का उत्तर देना इस समय कठिन है। मनु ने किरातदेशवासियों को क्षत्रिय बतलाया है किन्तु उनका उपनयन आदि संस्कार न होने के कारण वे शूद्रवत् हो गये हैं। रामायण में प्रागृज्योतिष एक नगर लिखा है और उसका होना पश्चिम की ओर लिखा है। त्रेतायुग में रावण ने सीता को हर लिया था उन्हें ढूँढ़ने के लिये सेनापति सुग्रीव ने वानरों को चारों ओर भेजा था। सुषेण मारीच आदि वानरों को पश्चिम की ओर भेजने के समय सुग्रीव कहते हैं—

"योजनानि चतुःषष्टिर्वराहो नाम पर्वतः ।
सुवर्णशृङ्गः सुमहानगाधे वरुणालये ॥
तत्र प्रागृज्योतिषं नाम जातरूपमयं पुरम् ।
तस्मिन् वसति दुष्टात्मा नरको नाम दानवः ॥"

अर्थात् अगाध समुद्र में ६४ योजन विस्तृत सुवर्णशिखर विशिष्ट वराह नामक महापर्वत विद्यमान है। वहीं सुवर्णनिर्मित प्रागृज्योतिष नामक पुरी भी है। उसी पुरी में नरक नाम का दुरात्मा दानव रहता है। रामायण वर्णित यह प्रागृज्योतिषपुरी इस समय कहाँ है उसका कुछ चिह्न है या नहीं आदि बातें बतलाना बहुत ही कठिन है। इस समय प्रागृज्योतिष नाम से जो प्रदेश या नगर समझा जाता है वह पूर्व बङ्गाल का आसाम प्रदेश है। आसाम प्रदेश में बड़े बड़े पर्वत हैं अवश्य, परन्तु उसके समुद्र मध्य में होने के प्रमाण नहीं मिलते। त्रेतायुग से आज तक बहुत समय बीत गये, इसमें कितने नये नगर बने और कितने पुराने नगर नष्ट हुए कितने जलमय प्रदेश स्थल हो गये और कितने ही स्थलमय प्रदेश जलमय हो गये। अतः यह सम्भव है कि त्रेतायुग में श्रीरामचन्द्र के अवतार ग्रहण करने के समय प्रागृज्योतिष का भारत भूमि से सम्बन्ध न हो, और वह समुद्र के बीच में रहा हो। वही जलमय प्रदेश क्रमशः आज स्थलरूप में परिणत हो गया हो। महाभारत में लिखा है—युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के समय जब अर्जुन दिग्विजय के लिये निकले तब उनसे प्रागृज्योतिष के राजा भगदत्त ने किरात, चीन तथा सागरतीरस्थ अन्यान्य अनूपदेशवासियों की बड़ी सेना ले कर युद्ध किया था। कुरुक्षेत्र के युद्ध में भी भगदत्त ने किरात, चीन आदि सेनाओं द्वारा दुर्योधन की सहायता की थी। युधिष्ठिर के अश्वमेध यज्ञ के समय भी प्रागृज्योतिषाधिपति भगदत्त के पुत्र वज्रदत्त ने युधिष्ठिर का यज्ञाश्व बाँध लिया था, पुनः अर्जुन से युद्ध में परास्त हो कर वह उनका करद राजा हो गया। महाभारत में सभापर्वकथित जनपदों में प्रागृज्योतिष का नाम नहीं है। वहाँ किरात देश का उल्लेख हुआ है। पुराण ग्रन्थों में प्रागृज्योतिष का विशेष परिचय वर्तमान है। मत्स्यपुराण में प्रागृज्योतिष प्राच्य जनपदों में लिखा गया है। वायुपुराण ब्रह्माण्डपुराण वामनपुराण और ब्रह्मपुराण आदि पुराणों में प्रागृज्योतिष का होना भारत के पूर्व भाग में लिखा है। विष्णुपुराण में प्रागृज्योतिष का नाम नहीं लिखा है वहाँ प्रागृज्योतिष के स्थान में कामरूप राज्य का उल्लेख पाया जाता है। वहाँ भारत के नद नदियों का नाम तथा स्थान निर्देश करते हुए महर्षि पराशर मैत्रेय से कहते हैं कि कामरूपनिवासी और दक्षिणदेशनिवासी इन नदियों का जल पीते हैं। इससे मालूम पड़ता है कि प्राचीन काल में पूर्वदेशी राज्यों में कामरूप राज्य ही प्रसिद्ध था और पीछे वही प्रागृज्योतिष के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसके प्रमाणस्वरूप कुछ श्लोक कालिकापुराण से नीचे उद्धृत किये जाते हैं।

"करतोया सदा गङ्गा पूर्वभागावधिश्रिता ।
यावल्ललितकान्तारित तावद्देव पुरं तव ॥

अत्र देवी महामाया योगनिद्रा जगत्प्रसूः ।
कामाख्यारूपमास्थाय सदा तिष्ठति शोभना ॥
अत्रास्ति नदराजोऽयं लौहित्यो ब्रह्मणः सुतः ।
अत्रैव दश दिक्पालाः स्वे स्वे पीठे व्यवस्थिताः ॥
अत्र स्वयं महादेवो ब्रह्मा चाहं व्यवस्थितः ।
चन्द्रः सूर्यश्च सततं वसतोऽत्र च पुत्रक ॥
सर्वे क्रीडार्थमायाता रहस्यं देशमुत्तमम् ।
अत्र धार्वसते भद्रा भोग्यमात्रं तथा बहु ॥
अस्य मध्ये स्थितो ब्रह्मा प्राग् नक्षत्रं ससर्ज ह ।
ततः प्राग्ज्योतिषाख्येयं पुरी शक्रपुरीसमा ॥
अत्र त्वं वस भद्रं ते ह्यभिषिक्तो मया स्वयम् ।
कृतदारः सहामात्यै राजा भूत्वा महाबलः॥ "

"भगवान् नरकासुर से कहते हैं—हे पुत्र ! जिस स्थान में करतोया नाम की गङ्गा नदी सर्वदा प्रवाहित हो रही है और जहाँ ललितकान्ता देवी विराजती हैं, वहाँ तक तुम्हारी पुरी होगी। इसी स्थान पर जगत्प्रसविनी योगनिद्रा महामाया देवी कामाख्या रूप धारण कर के सर्वदा विराजती हैं। इसी स्थान पर स्वयं महादेव ब्रह्मा और मैं रहता हूँ। चन्द्र सूर्य भी यहाँ ही रहते हैं यह स्थान रहस्यमय है। अतः क्रीड़ार्थ सभी देवता यहाँ आये हैं। यहाँ सर्वतोभद्रा नाम की लक्ष्मी विद्यमान हैं। पहले इस नगर में ब्रह्मा ने एक नक्षत्र रखा था, इसीसे इन्द्रपुरी के समान इस पुरी का नाम प्राग्ज्योतिष हुआ। तुम विवाह कर के अमात्यों के साथ यहाँ राज्य करो, मैंने तुम्हारा अभिषेक किया"। गरुड़पुराण में प्राग्ज्योतिष का नाम नहीं पाया जाता है। वहाँ कामरूप को महातीर्थ बतलाया है। पुराणों को छोड़ कर तन्त्रशास्त्रों में भी कामरूप का माहात्म्य वर्णित है। तन्त्रशास्त्रों में लिखा है। कामरूप देवीक्षेत्र है, और ऐसा स्थान दूसरा नहीं है। दूसरी जगह देवी का दर्शन असम्भव हो सकता है किन्तु कामरूप में घर घर देवी विराजती हैं। योगिनीतन्त्र में लिखा है—महापीठ कामरूप अत्यन्त गुप्ततीर्थ है। इन सब उदाहरणों से जाना जाता है कि त्रेता से ले कर भिन्न भिन्न युगों में कामरूप अथवा प्राग्ज्योतिष का माहात्म्य परिकीर्तित होने आता है। वराह मिहिर के भारतीय विभाग वर्णन में कामरूप का नाम नहीं है। वहाँ प्राग्ज्योतिष ही का नाम लिखा गया है। परन्तु कालिदास के रघुवंश में दोनों का नाम पाया जाता है। यथा—

" चकम्पे तीर्णलौहित्ये तस्मिन् प्राग्ज्योतिषेश्वरः ।
तद्गजालानतां प्राप्तैः सह कालागुरुद्रुमैः ॥
न प्रसेहे स रुद्धार्कमसारावर्षदुर्दिनम् ।
रथवर्त्म रजोऽप्यस्य कुत एव पताकिनीम् ॥
तमीशः कामरूपाणामत्याखण्डलविक्रमम् ।
भेजे भिन्नकटैर्नागैरन्यानुपरुरोध यैः ॥
कामरूपेश्वरस्तस्य हेमपीठाधिदेवताम् ।
रत्नपुष्पोपहारेण छायामानर्च पादयोः ॥"

"अर्थात् उनके (रघु के) लौहित्य नदी के पार होने पर सेना के हाथियों के बाँधने से जिस प्रकार कृष्णागुरु वृक्ष काँपते थे प्राग्ज्योतिष के राजा भी उसी प्रकार काँपने लगे। रघु के रथों घोड़ों तथा हाथियों से उड़ायी धूलि से बिना मेघ के भी आकाश आच्छन्न हो गया। रघु की सेना का आक्रमण तो दूर रहा, प्राग्ज्योतिषाधिपति उस धूलि को भी नहीं सह सके। प्राग्ज्योतिषाधिपति जिन मदस्रावी मातङ्गों से दूसरों पर आक्रमण करते थे, वे ही मातङ्ग उन्होंने इन्द्र से भी अधिक बलशाली रघु को उपहार में दिये। रघु सुवर्णपीठ पर बैठे थे, उनकी चरणप्रभा से वह पीठ शोभा पा रहा था, कामरूपेश्वर आकर रत्नरूपी पुष्पोपहार उनके चरणों की पूजा की"। इस वर्णन से मालूम पड़ता है कि कामरूप राज्य कितने दिनों से वर्तमान है तथा वह कभी कामरूप नाम से और कभी प्राग्ज्योतिष नाम से प्रसिद्ध था। किन्तु कालिकापुराण के एक श्लोक से विदित होता है कि प्राग्ज्योतिष कामरूप का एक भाग था। कामरूप एक प्रदेश था और उसकी राजधानी का नाम प्राग्ज्योतिष था। कामरूप नाम के सम्बन्ध में कालिकापुराण में लिखा है-महादेव की कोपाग्नि में जल कर कामदेव ने यहीं रूप प्राप्त किया था तभीसे इस पीठ का नाम "कामरूप" हुआ। ब्रह्मा ने पहले यहाँ एक नक्षत्र की सृष्टि की थी इस कारण इसका प्राचीन नाम प्राग्ज्योतिष है। (भारतवर्षीय इतिहास)

प्राणनाथ कवि=(१) ये कवि ब्राह्मण थे और बैसवारे के रहने वाले थे। सं० १८५१ में इनका जन्म हुआ था। इनका बनाया "चक्रव्यूह इतिहास" नामक ग्रन्थ उत्तम है।

(२) ये कोटा के रहने वाले थे और कवि भी थे। इनका जन्म १७८१ सं० में हुआ था, ये कोटे के राव के दरबार में राजकवि थे। इनकी कविता सुन्दर होती थी।

प्राधा=प्रजापति ऋषि कश्यप की भार्या। इनके गर्भ से गन्धर्व और अप्सराओं की उत्पत्ति हुई है। (हरिवंश)

प्रियदर्शी=प्रसिद्ध भारत सम्राट् अशोक का नामान्तर। सम्राट् अशोक का राज्य भारत भर में तो विस्तृत था ही, किन्तु भारत की सीमाओं पर भी उनका राज्य था, यह बात उनके लेखों से मालूम होती है। सम्राट् अशोक के लेख दो प्रकार के अक्षरों में लिखे मिलते हैं। एक प्रकार के अक्षर वे हैं जो वाम भाग से दक्षिण की ओर लिखे जाते हैं (जैसे कि देवनागरी बङ्गला गुजराती आदि) और दूसरे दक्षिण से वाम ओर को लिखे जाते हैं (जैसे फ़ारसी अरबी के अक्षर) भारत में अशोक के जो शिलालेख मिले हैं वे देवनागरी आदि के समान अक्षरों में लिखे मिलते हैं और जो भारत की सीमाओं पर या पारस आदि देशों में मिलते हैं वे फ़ारसी आदि के समान अक्षरों में लिखे गये हैं। भारतीय शिलालेखों में अशोक का नाम प्रियदर्शी (पियदसी) लिखा है यथा-"इयं धम्म लिपि देवानं पियेण रयणा पिय दसिना लेहापिता" और बौद्ध धर्मग्रन्थों में अशोक का नाम प्रियदर्शी ही लिखा मिलता है। इससे ऐसा समझने का अवसर मिलता है कि सम्राट् अशोक का बौद्ध धर्मसम्बन्धी नाम प्रियदर्शी था। जिस प्रकार आज भी धार्मिक सम्प्रदायों का अपना अपना नाम रहता है, और उस सम्प्रदाय की दीक्षा लेने वालों को वही नाम दे दिया जाता है। उसी प्रकार अशोक का साम्प्रदायिक नाम प्रियदर्शी था।

प्रियव्रत=स्वायम्भुव मनु के ज्येष्ठ पुत्र। ये प्रजापति थे। प्रजापति विश्वकर्मा की कन्या बर्हिष्मती को इन्होंने ब्याहा था। इसी स्त्री के गर्भ से आग्नीध्र आदि दस पुत्र उत्पन्न हुए थे। भागवत में यही लिखा है परन्तु विष्णुपुराण में लिखा है-प्रियव्रत का ब्याह कर्दम की कन्या से हुआ था और उसके गर्भ से सम्राट्, तथा कुक्षी नाम की दो कन्याएँ और दस पुत्र उत्पन्न हुए थे। इन दस पुत्रों के अतिरिक्त प्रियव्रत के दूसरी स्त्री से उत्तम, तामस और रैवत नामक तीन पुत्र उत्पन्न हुए थे। भागवत में लिखा है, ये ही पुत्र मन्वन्तर के अधिपति हुए। प्रियव्रत के प्रथमोक्त दस पुत्रों में से तीन पुत्र संन्यासी हो गये थे और अन्य सात पुत्र राजा हुए थे। प्रियव्रत समस्त पृथिवी के अधीश्वर थे, उन्होंने पृथिवी को सात भागों में बाँट कर सातों भाग अपने सातों पुत्रों को दे दिये थे। उन सात भागों के नाम ये हैं-जम्बूद्वीप, प्लक्षद्वीप, शाल्मलीद्वीप, कुशद्वीप, क्रौञ्चद्वीप, शाकद्वीप और पुष्करद्वीप। इन द्वीपों के चारों ओर लवणसमुद्र, इक्षुसमुद्र, सुरासमुद्र, घृतसमुद्र, क्षीरसमुद्र, दधिसमुद्र और जलसमुद्र हैं। इन सात द्वीपों में से जम्बूद्वीप के अधिपति प्रियव्रत ने अपने बड़े पुत्र आग्नीध्र को अपना उत्तराधिकारी बनाया। उसने इध्मजिह्व को प्लक्षद्वीप, यज्ञबाहु को शाल्मलीद्वीप, हिरण्यरेता को कुशद्वीप, घृतपृष्ठ को क्रौञ्चद्वीप, मेधातिथि को शाकद्वीप और वीतिहोत्र को पुष्करद्वीप दिया था। प्रियव्रत सभी बातों में पुरुषश्रेष्ठ थे। भागवत में लिखा है कि प्रियव्रत ने ग्यारह अर्बुद वर्षों तक राज्यशासन किया था। प्रियव्रत की स्तुति में अनेक कथाएँ प्रचलित और प्रसिद्ध हैं। आधी पृथिवी पर प्रकाश होता है, और आधी पृथिवी पर अन्धकार-इस प्रकार की अपने साम्राज्य में प्राकृतिक विषमता, देख कर प्रियव्रत ने अन्धकार दूर करने की प्रतिज्ञा की-मैं अपने तेज से रात्रि को भी दिन कर दूँगा। तदनन्तर द्रुतगामी ज्योतिर्मय रथ पर चढ़ कर द्वितीय सूर्य के समान उन्होंने सूर्य का पीछा किया। उस समय रथचक्र से जो सात खात बनें वे सात समुद्र हुए और उन्हीं सात समुद्रों से घिरे रहने के कारण पृथिवी के सात भाग हुए। पुराणों में जो इनके विषय में लिखा है उसका यही अभिप्राय है कि राजा

प्रियव्रत ने जिन कामों को किया है, वे काम ईश्वर के बिना दूसरे किसीसे सिद्ध नहीं हो सकते । अन्त में ये आत्मज्ञान प्राप्त कर मोक्ष के अधिकारी हुए थे ।

प्रियादास स्वामी=भाषाकवि और महात्मा । ये वृन्दावन में वास करते थे । इनकी उत्पत्ति सं० १८१६ में हुई थी । नाभा जी रचित भक्तमाल की इन्होंने पद्यमय टीका बनायी है ।

प्रेमनाथ कवि=ये कवि फुलवा ज़िला खीरी के रहने वाले ब्राह्मण थे । सं० १८२४ में इनका जन्म हुआ था । ये राजा अली अकबर मुहम्मद के दरबार में थे और वहीं इन्होंने प्रश्नोत्तरखण्ड का भाषा किया था ।

प्रेमसिंह=कोटे का एक राजा । महाराव जगत्सिंह के अपुत्रावस्था ही में स्वर्गवासी होने पर माधोसिंह के चौथे पुत्र कनीराम के (जो कोइला प्रदेश के जागीरदार थे) पुत्र प्रेमसिंह का कोटे के सिंहासन पर अभिषेक हुआ । परन्तु इनके भाग्य में राज्यशासन नहीं बदा था, अतएव एक महीने भी राज्य करने पर ये अपने उद्धत और निन्द्य आचारों के कारण सर्वसाधारण की दृष्टि से उतर गये । अतएव वहाँ के सामन्तों ने इन्हें गद्दी से पृथक् कर के " पुनस्तथैव वेतालः " की कथा चरितार्थ की ।

(टाडस् राजस्थान)

प्रेमी यवन=ये हिन्दी के कवि और दिल्ली के रहने वाले थे । ये यद्यपि मुसलमान थे, तथापि हिन्दी के प्रति इनका अतुल अनुराग था । इनका जन्म सं० १७६८ में हुआ था । इन्होंने अनेकार्थ-नाममाला नामक एक कोष बनाया है ।

प्लक्षद्वीप=पृथिवी के सात भागों में से एक भाग का नाम । यह द्वीप जम्बूद्वीप से सटा हुआ है। प्लक्षद्वीप का विस्तार जम्बूद्वीप से द्विगुण है । जम्बूद्वीप का विस्तार लाख योजन है और प्लक्षद्वीप का विस्तार दो लाख योजन है । प्लक्षद्वीप के अन्तर्गत भी सात वर्ष हैं । प्लक्षद्वीप के अधिपति मेधातिथि के सात पुत्र थे, जिनके नाम शान्तभय, शिशिर, सुखोदय, आनन्द, शिव, क्षेमक और ध्रुव थे । इन्हीं सात पुत्रों के नामानुसार प्लक्षद्वीप के सात वर्षों के भी नाम रखे गये हैं । प्लक्षद्वीप में भी अनेक नद नदी पर्वत आदि विद्यमान हैं । प्लक्षद्वीप के एक ओर लवणसमुद्र और दूसरी ओर इक्षुसमुद्र वर्तमान हैं ।

फ

फतहसिंह=उदयपुर के महाराणा । सज्जनसिंह जी के निःसन्तान परलोक वास होने पर श्रीमान् फतहसिंह जी उदयपुर के महाराणा हुए । सन् १८८४ ई० की २४ वीं दिसम्बर को फतहसिंह जी राजगद्दी पर विराजे । एक हिन्दू महाराजा में जो गुण होने चाहिये, वे सभी महाराणा साहब में हैं । आपके आदर्श जीवन और शुद्ध सदाचार से पहले के क्षत्रिय महाराजाओं का स्मरण होता है । महाराणा साहब बड़े पराक्रमी, श्रमशील, संयमी, बुद्धिमान्, गम्भीर, मितभाषी, दूरदर्शी, दृढ़प्रतिज्ञ और न्यायशील हैं । ये शस्त्रसंचालन और अश्वारोहण में सुदक्ष हैं । आपको सिंह के आखेट में बड़ा अनुराग है । परन्तु आप सिंहिनी या मृग आदि पर शस्त्र नहीं चलाते । राज्य के मुख्य मुख्य काम आप स्वयं देखते, और प्रतिदिन प्रायः सात घंटे राजकाज करते हैं । आपके शासनकाल में मेवाड़ की प्रजा शान्त और सुखी है । राजपूताने के एजेंट गवर्नर जनरल ने अपने व्याख्यान में एक बार उदयपुर के महाराणा को लक्ष्य कर के कहा था—"महाराणा फतहसिंह आदर्श नरेश हैं। वर्तमान अन्य महाराजाओं को इनका अनुकरण करना चाहिये "। महाराणा साहब को अपने महत्त्व और कुल मर्यादा का पूर्ण ध्यान रहता है । प्राचीन हिन्दू राजाओं की छटा आपमें पूर्णरूप से वर्तमान है । महारानी विक्टोरिया के जुबली उत्सव में श्रीमान् महाराणा साहब को जी. सी. एस्. आई. की पदवी मिली ।

आपके अब एक महाराजकुमार और दो महाराजकुमारियाँ हैं । कुमार का चिरञ्जीव नाम श्रीभूपालसिंह जी है ।

(टाडस् राजस्थान)

फहीम कवि=ये भाषा के प्रसिद्ध कवि थे । इनके बड़े भाई का नाम शेख अबुलफ़जल फ़ैजी था। इनका जन्म सं० १५८० में हुआ था और ये

बादशाह अकबर के वज़ीर थे। इनके किसी ग्रन्थ का तो पता नहीं है, परन्तु इनके बनाये कुछ दोहे पाये जाते हैं, जो मनोहर और शिक्षाप्रद हैं।

फालका राव अनोवा=ये महाराष्ट्र ब्राह्मण और ग्वालियर के निवासी थे। इनका जन्म सं० १६०१ में हुआ था। ये लछिमना राव के मन्त्री थे और भाषा के सुकवि थे। केशवदास विरचित कविप्रिया की इन्होंने सुन्दर टीका लिखी है।

फ़ैज़ी शेख़ अबुलफ़ज़ल=इनके पिता का नाम नागौरी शेख़ मुबारक था। ये अकबर के दरबार के कवि थे। छोटे बड़े सभी विद्वानों में इनकी प्रसिद्धि है। ये अरबी फ़ारसी तथा संस्कृत के निपुण पण्डित थे। इनके बनाये कोई ग्रन्थ तो देखने में नहीं आये हैं, हाँ, इनके कुछ दोहे मिलते हैं जिनसे इनके सुकवि होने का परिचय मिलता है।

फ़्रेडरिकपिंकोट=ये थे तो अंग्रेज़ परन्तु थे बड़े हिन्दीप्रेमी। इनका जन्म सन् १८३६ ई० में इंग्लैण्ड में हुआ। इनके पिता की आर्थिक अवस्था अच्छी नहीं थी अतएव इनकी यथोचित शिक्षा नहीं हो सकी। प्रारम्भ में ये एक स्कूल में पढ़ने लगे, परन्तु धनाभाव के कारण शीघ्र ही इनको पढ़ना छोड़ना पड़ा। स्कूल से निकल कर पहले पहल इन्होंने एक प्रेस में कम्पोज़िटरी करना प्रारम्भ किया और वहीं कुछ काल के अनन्तर ये प्रूफ़रीडर के काम पर नियत हुए। इसी समय इन्हें संस्कृत भाषा सीखने की इच्छा उत्पन्न हुई। इस भाषा का अध्ययन ये अंग्रेज़ी पुस्तकों की सहायता से कर सकते थे, परन्तु उन पुस्तकों का दाम अधिक होने के कारण इनका प्रयत्न कुछ शिथिल सा हो गया। परन्तु ये हताश नहीं हुए, अपने प्रयत्न में लगे रहे, अन्त में एक मित्र की सहायता से इन्हें कुछ पुस्तकें मिल गयीं और इन्होंने संस्कृत पढ़ना प्रारम्भ कर दिया। थोड़े ही दिनों में इन्होंने संस्कृत में अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली। विद्योन्नति के साथ साथ इनकी आर्थिक अवस्था भी सुधरती गयी। तदनन्तर एलन कम्पनी के छापेख़ाने में ये मैनेजर नियत हुए। इस पद पर रह कर इन्होंने कई अच्छी अच्छी पुस्तकें लिखीं। देशी भाषाओं में पहले पहल इन्होंने उर्दू का अध्ययन किया। तदनन्तर गुजराती, बंगला, तामील तैलंगी, मलयालम कनाड़ी आदि भाषाओं का इन्होंने अध्ययन किया। इन भाषाओं की शिक्षा होने पर इनका अनुराग हिन्दी पर बढ़ा। हिन्दी पर आपकी प्रीति इतनी बढ़ी कि ये हिन्दीपत्रों के पाठक बने, और पुनः वे हिन्दीपत्रों में लेख देने लगे। इनका हिन्दीप्रेम प्रसिद्ध हो गया। इनकी बनायी पुस्तकें सिविल सर्विस परीक्षा में नियत हुईं। अच्छी अच्छी हिन्दीपुस्तकों पर इनकी सम्मति विलायती पत्रों में छपा करती थी इस कारण भारतीय हिन्दीरसिकमण्डली के हृदय में इनको उच्च आसन मिला। मृत्यु के कतिपय वर्ष पहले ये गिलवर्ट और रेमिंगटन कम्पनी के पूर्व विभाग के मन्त्री नियत हुए और अन्त काल तक वहीं काम करते रहे। सन् १८९५ ई० में ये भारतवर्ष में रीहा घास की खेती करने आये और लखनऊ में इनकी मृत्यु सन् १८९६ ई० में हुई।

ब

बक=असुरविशेष। यह श्रीकृष्ण के हाथ से मारा गया। श्रीकृष्ण धेनु चराने वन में गये थे, उनके साथ गोपबालक भी थे। प्यासी गौओं को जल पिलाने के लिये वे एक जलाशय पर गये हुए थे। इसी समय एक बकरूपी राक्षस श्रीकृष्ण को निगल गया। परन्तु श्रीकृष्ण का तेज न सह सकने के कारण उसने श्रीकृष्ण को उगल दिया। अन्त में श्रीकृष्ण ने उसकी ऊपर नीचे की चोंच पकड़ कर उसे मार डाला।

(भागवत)

बदरीनारायण चौधरी=पण्डित बदरीनारायण चौधरी भारद्वाजगोत्री सरयूपारीण ब्राह्मण खोरिया के उपाध्याय हैं। ये मिर्ज़ापुर के वासी थे। इनके पितामह पण्डित शीतलप्रसाद उपाध्याय एक प्रतिष्ठित रईस, महाजन, व्यापारी और ज़मींदार थे। इन्होंने अपने परिश्रम से बहुत धन और प्रतिष्ठा प्राप्त की थी। इनके पिता का नाम गुरुचरण उपाध्याय है। ये

आदर्श ब्राह्मण हैं और अब तक वर्तमान हैं। अब ये त्रिवेणी तट पर झूँसी के निकट वाले एक गाँव में रहते हैं और आध्यात्मिक चिन्ता तथा भगवदाराधन में समय व्यतीत करते हैं। आपने अनेक संस्कृत पाठशालाएँ खोल रखी हैं।

पं० बदरीनारायण चौधरी जी का जन्म सं० १९१२ भाद्रकृष्ण षष्ठी को हुआ। पाँच वर्ष की उम्र होने के पहले ही इनकी सुशीला और विदुषी माता ने इन्हें हिन्दी पढ़ाना आरम्भ कर दिया था, तथापि पाठशाला में भी इन्हें हिन्दी की शिक्षा प्राप्त करनी पड़ी। सं० १९१७ में इन्हें फ़ारसी प्रारम्भ करायी गयी, तदनन्तर ये अंग्रेज़ी पढ़ने लगे, परन्तु कई कारणों से इनकी पढ़ाई का सिलसिला ठीक नहीं चल सका। कुछ दिनों तक इन्होंने गोंडे में विद्याभ्यास किया था। गोंडे में इनका और अवधेश महाराज सर प्रतापनारायणसिंह लाल त्रिलोकीनाथसिंह और राजा उदयनारायणसिंह आदि का साथ हो गया। इस कारण अश्वारोहण, गजसंचालन, लक्ष्यवेध, मृगया आदि से इनका अनुराग हो गया। ये अपने सहचरों के साथ घुड़दौड़ करते और अहेर खेलते थे।

संवत् १९२४ में ये गोंडे से फ़ैज़ाबाद आये, और वहाँ के ज़िला स्कूल में पढ़ने लगे। उसी वर्ष इनका विवाह भी बड़ी धूम से जौनपुर के समंसा ग्राम में हुआ। संवत् १९२५ में इनके पितामह का स्वर्गवास हो गया, अतः बदरीनारायण जी को मिर्ज़ापुर लौट जाना पड़ा और वहीं के ज़िला स्कूल में ये पढ़ने लगे। तदनन्तर सं० १९२७ के आरम्भ में ये स्कूल का पढ़ना छोड़ घर पर स्वतन्त्र मास्टर से पढ़ने लगे, और घर के कार्यों की देखभाल भी करने लगे। पुनः इनके पिता ने इन्हें संस्कृत पढ़ाना आरम्भ किया क्योंकि संस्कृत की ओर इनका झुकाव अधिक था, इन्हें समय समय पर अन्य नगरों में भ्रमण करना पड़ता था अतएव इनके पिता ने इन्हें पढ़ाने के लिये पण्डित रामानन्द पाठक जी को नियुक्त किया जो एक अच्छे विद्वान् थे। पं० रामानन्द पाठक जी के साथ से चौधरी जी का मन कविता की ओर झुका, और ये ही पण्डित जी इनके कविता के गुरु भी हुए। परन्तु घर के कामों में फँसने के कारण इनकी प्रकृति में भी परिवर्तन होने लगा आनन्द विनोद मन बहलाव की सामग्रियाँ एकत्रित होने लगीं, किन्तु इनमें विशेषता यह थी कि साहित्य चर्चा भी साथ ही साथ होती रही। सङ्गीत पर इनका अधिक अनुराग हुआ, और उसमें इन्होंने निपुणता भी प्राप्त कर ली। संवत् १९२८ में ये पहले पहल कलकत्ते गये, और वहाँ से लौट आने पर, वर्षों तक बीमार पड़े रहे। इसी समय साहित्यसम्बन्धी विशेषतः ब्रजभाषा की अनेक पुस्तकों को इन्होंने देख डाला। सं० १९२९ में पं० इन्द्रनारायण शंगलू से इनकी मित्रता हुई। पण्डित इन्द्रनारायण जी बुद्धिमान् कुशाग्रबुद्धि कार्यपटु तथा देशहितैषी थे। तभी से चौधरी जी का सभा समाज और समाचारपत्र तथा उर्दू शायरी में भी अनुराग बढ़ा। उक्त पण्डित जी ने ही चौधरी जी का भारतेन्दु जी से परिचय कराया। चौधरी जी और भारतेन्दु जी का वही परिचय मित्रता के रूप में बदल गया जिसमें उत्तरोत्तर वृद्धि ही होती गयी। सं० १९३० में इन्होंने सद्धर्मसभा, और सं० १९३१ में रसिक समाज स्थापित किया। इसी प्रकार और भी कई सभाएँ स्थापित कीं। सं० १९३२ में इन्होंने कविताएँ लिखना आरम्भ किया, उन कविताओं में से कुछ कविवचनसुधा में भी छपी हैं। सं० १९३८ में आनन्दकादम्बिनी की प्रथम माला प्रकाशित हुई और सं० १९४९ से "नागरीनीरद" नामक साप्ताहिक पत्र भी सम्पादित होने लगा। इनके कई एक लेख कविता और ग्रन्थ आदि इन्हीं पत्रों में निकले हैं। परन्तु इनकी कविता का उत्तमांश अभीतक प्रकाशित नहीं हो सका है। समयानुरोध से जो अत्यावश्यक कविताएँ निकल गयीं, जैसे "भारतसौभाग्य," "हार्दिकहर्षादर्श," "भारतबधाई," "आभाभिनन्दन," "वर्षाबिन्दु" आदि ही प्रकाशित हो सकी हैं। इनकी कविताओं के अप्रकाशित रहने का कारण यह है कि ये केवल मनोविनोद के लिये कविता करते थे, न कि उससे धन अथवा यश-

कवि की प्रतिष्ठा पाने की इनकी इच्छा थी। पारिवारिक परतन्त्रता इनके विद्याव्यसन की बाधक हुई। कविताओं में ये अपना नाम "प्रेमघन" लिखा करते हैं।

(हिन्दीकोविदरत्नमाला)

चौधरी जी हिन्दी साहित्य सम्मेलन के तृतीय अधिवेशन के जो कलकत्ते में हुआ था सभापति निर्वाचित हुए थे।

बभ्रु=एक यादव। यदुवंश के नाश होने पर श्रीकृष्ण की आज्ञा से ये यादवस्त्रियों की रक्षा के लिये जा रहे थे, किन्तु मार्ग में दस्युओं ने इन्हें मार डाला।

(महाभारत)

बभ्रुवाहन=अर्जुन के पुत्र। ये मनीपुर की राजकन्या चित्राङ्गदा के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। नाना की मृत्यु होने पर ये ही मनीपुर के राजा हुए। अर्जुन के तिरस्कार और अपनी सौतेली माता नागकन्या उलूपी के उत्साहित करने से बभ्रुवाहन ने पिता अर्जुन से युद्ध किया था तथा इसी युद्ध में अर्जुन को मार भी डाला था। चित्राङ्गदा ने रणक्षेत्र में आ कर बभ्रुवाहन और उलूपी को बहुत धिक्कारा तथा पति के साथ मरने के लिये वह उद्यत हुई। बभ्रुवाहन भी प्राणत्याग करने के लिये उद्यत हुए। उलूपी ने इनको प्राणत्याग के लिये उद्यत देख सञ्जीवनी मणि का स्मरण किया। स्मरण करते ही वह मणि उसके पास उपस्थित हुई। उलूपी के कहने से बभ्रुवाहन ने अर्जुन के वक्षःस्थल पर सञ्जीवनी मणि रख दी। अर्जुन भी पुनः जी उठे। बभ्रुवाहन की माता चित्राङ्गदा और उलूपी दोनों युधिष्ठिर के यज्ञ में गयी थीं।

महाभारत के युद्ध में अन्याय से अर्जुन ने भीष्म का वध किया था। इस कारण गङ्गा की आज्ञा ले कर वसुओं ने अर्जुन को शाप दिया था। उस शाप के वृत्तान्त को जान कर उलूपी ने अपने पिता से कहा। नागराज वसुगण के निकट गये, और उन लोगों से शापानुग्रह करने के लिये कहा परन्तु वसुगण ने कहा—भीष्म के मारने से अर्जुन का पाप सञ्चित हुआ है। अपने पुत्र बभ्रुवाहन के द्वारा मारे जाने पर उनका वह पाप नष्ट होगा। इसीसे अर्जुन का मङ्गल करने के लिये ही उलूपी ने बभ्रुवाहन को उत्साहित किया था।

बर्हिषद्=राजा विजिताश्व के ये पौत्र थे। इनको प्राचीनबर्हि भी कहते हैं। यज्ञ और कर्मकाण्ड में इन्होंने बड़ी अभिज्ञता प्राप्त की थी। इनके यज्ञ के कुशों से पृथिवी भर गयी थी और इन्होंने समस्त पृथिवी को यज्ञवेदी बना दिया था।

बलदेवप्रसाद=ये मुरादाबाद के वासी कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इनका जन्म पौष शुक्ल ११ सं० १६२६ में हुआ था। इनके पिता का नाम सुखनन्दन मिश्र था।

पण्डित बलदेवप्रसाद मिश्र को पहले पहल हिन्दी की शिक्षा दी गयी थी, तदनन्तर इन्होंने अंग्रेज़ी का अध्ययन करना प्रारम्भ किया। इसके अतिरिक्त इन्होंने संस्कृत, फ़ारसी, बङ्गला, मरहठी, गुजराती आदि भाषाओं का भी अभ्यास किया था। आप जिन जिन भाषाओं को जानते थे उनसे हिन्दी में अनुवाद भी कर सकते थे।

ये समाचारपत्रों के पढ़ने के बड़े अनुरागी थे। अपनी जानी हुई भाषाओं के दो दो चार चार समाचारपत्र मँगाते थे। इसीसे इन्होंने १८–२० वर्ष में समाचारपत्र सम्पादन की योग्यता प्राप्त कर ली थी। "साहित्यसरोज," "सत्यसिन्धु," "भारतवासी," "भारतभानु," "सोलजर" पत्रिका आदि कई पत्रों का इन्होंने सम्पादन किया था। ये तन्त्रविद्या के बड़े प्रेमी थे। तन्त्रशास्त्र के उद्धार के लिये इन्होंने "तन्त्रप्रभाकर" नामक एक प्रेस भी खोला था और उससे तन्त्रसम्बन्धी कई ग्रन्थ भी छापे थे। परन्तु पीछे शायद अनुराग कम हो गया या और किसी कारण से इन्होंने इस विषय से हाथ खींच लिया था।

मिस्मेरेज़म से भी इनका बड़ा प्रेम था। कहते हैं उस विद्या का इन्हें अच्छा अभ्यास था। "जागती जोति" नामक मिस्मेरेज़म की एक पहली पुस्तक भी इन्होंने लिखी है। तबसे ये ग्रन्थ लिखने के आदी हो गये।

सब मिला कर इन्होंने २५ पुस्तकें लिखी हैं ।

बाण भट्ट=ये महाकवि कन्नौज के अधिपति श्रीहर्ष-वर्द्धन के सभापण्डित थे । इन्होंने स्वरचित "हर्षचरित" नामक ग्रन्थ में अपने जीवन की कतिपय घटनाओं का उल्लेख किया है । ये शोण-तीरवासी सारस्वतवंशी ब्राह्मण थे । बाल्य काल ही में पितृ-मातृ-हीन होने के कारण ये उच्छृङ्खल प्रकृति के हो गये थे । नागरिकों के साथ रहने के कारण इनके आचार में सन्देह किया जा सकता है, जो नितान्त निर्मूल भी नहीं है । यद्यपि दुर्व्यसनों में फँस जाने के कारण इनका अध्ययन छूट गया, तथापि इस समय के नागरिकों के समान ये भारत के नागरिक नहीं थे । बाण भट्ट यद्यपि उच्छृङ्खल प्रकृति के हो गये थे तथापि उनका चरित्र नीच नहीं हुआ । बाण भट्ट के जहाँ तमोली, अत्तार आदि साथी थे, वहाँ धातु-परीक्षक और धातुव्यवहारविद् भी इनके मित्र थे । उच्छृङ्खलता का प्रवाह अनिवारित नहीं बहता है, क्योंकि उसकी सीमा है, उसका बाँध है । मन की अशान्ति ही उच्छृङ्खलता की सीमा या बाँध है । बाण भट्ट का मन अपने साथियों से ऊब गया । वे उनका साथ छोड़ कर श्रीहर्षवर्द्धन की सभा में उपस्थित हुए । विद्याव्यसनी राजा ने इनको उचित आश्रय दिया ।

"हर्षचरित," "कादम्बरी का पूर्वभाग," "चण्डिकाशतक" और "पार्वतीपरिणय" ये ग्रन्थ इनके बनाये प्रसिद्ध हैं । अनेक विद्वानों का मत है कि पार्वतीपरिणय के कर्ता ये बाण भट्ट नहीं हैं । हर्षचरित और कादम्बरी ये दोनों गद्य काव्य हैं । चण्डिकाशतक में सौ श्लोकों से भगवती की स्तुति की गयी है । पार्वतीपरिणय नाटक है । कहा जाता है कि इन ग्रन्थों के अतिरिक्त पद्य कादम्बरी भी बाण भट्ट ने बनायी थी । परन्तु वह ग्रन्थ अभी तक न तो कहीं प्रकाशित हुआ है और न उसका कहीं पता ही लगा है । बाण भट्ट की रचना के विषय में एक श्लोक प्रचलित है, जिससे इनकी रचनाशैली का पूर्ण ज्ञान हो जाता है । यथा—

"शब्दार्थयोः समो गुम्फः पाञ्चालीरीतिरुच्यते ।
शिलाभट्टारिका वाचि बाणोक्तिषु च सा यदि ॥"

शब्द और अर्थ इन दोनों पर ध्यान रख कर समान रचना पाञ्चाली रीति कही जाती है । वह पाञ्चाली रीति शिलाभट्टारिका के वचन में अथवा बाण की उक्ति में यदि हो ।

ऊपर कहा गया है कि बाण भट्ट हर्षदेव के सभापण्डित थे । काव्यप्रकाश के टीकाकार पण्डितों ने बाण भट्ट और हर्षदेव के सम्बन्ध में एक विलक्षण झमेला डाल दिया है । काव्य-प्रकाश की वृत्ति में एक स्थान पर लिखा है " श्रीहर्षादेर्धावकादीनामिव धनम् " अर्थात् श्रीहर्ष से जिस प्रकार धावक आदि को धन प्राप्त हुआ था । काव्यप्रकाश के टीकाकार महेश्वर इसका अर्थ करते हैं— " श्रीहर्षो राजा, धावकेन रत्नावलीं नाटिकां तन्नाम्ना कृत्वा बहुधनं लब्धम् ।" काव्यप्रकाश की टीका में वैद्यनाथ ने लिखा है—" श्रीहर्षाख्यस्य राज्ञो नाम्ना रत्नावलीनाटिकां कृत्वा धावकाख्यः कविर्बहुधनं लेभे " दूसरे टीकाकारों ने भी इसी प्रकार का अपना मत प्रकाशित किया है । काव्यप्रकाश के टीकाकार प्रसिद्ध विद्वानों ने जो लिखा है उसको मानने के पहले कुछ विचार करना आवश्यक है । कालिदास रचित मालविकाग्निमित्र नामक नाटक की प्रस्तावना में लिखा है—" प्रथितयशसां धावकसौमिल्लकविपुत्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य वर्तमानकवेः कालिदासस्य कृतौ किं कृतो बहुमानः" । अर्थात् प्रसिद्ध विद्वान् धावक सौमिल्ल कविपुत्र आदि के बनाये नाटकों के रहते हुए भी वर्तमान कवि कालिदास के नाटक का इतना आदर क्यों किया जाता है । इससे दो बातों का पता लगता है एक तो यह कि धावक एक प्रसिद्ध नाटक लेखक थे, और कालिदास से प्राचीन थे । अतः सातवीं सदी के हर्षदेव के नाम से कालिदास से भी प्राचीन धावक कवि ने रत्नावली नाम की नाटिका बनायी हो, यह किसी भी प्रकार उचित नहीं समझा जा सकता है । इस उलझन को सुलझाने के लिये दो उत्तर दिये जा सकते हैं एक तो यह कि मालविकाग्निमित्र के कर्ता कालिदास रघुवंशकर्ता कालिदास से भिन्न हैं, क्योंकि रघुवंशकर्ता कालिदास

विनयी थे, और मालविकाग्निमित्रकर्ता कालिदास उद्धत । इसके लिये प्रमाण दोनों के श्लोक ही दिये जा सकते हैं ।

" मन्दः कवियशःप्रार्थी गमिष्याम्युपहास्यताम् ।
प्रांशुलभ्ये फले लोभादुद्बाहुरिव वामनः ॥ "
(रघुवंश)

" पुराणमित्येव न साधु सर्वं न चापि सर्वं नवमित्यवद्यम् ।
सन्तः परीक्ष्यान्यतरद्भजन्ते मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः ॥"
(मालविकाग्निमित्र)

अतः यह मान लेने पर कि मालविकाग्निमित्र के कर्ता कालिदास भोजराज के सभापण्डित थे, जिनका कि उल्लेख भोजप्रबन्ध में किया गया है, तो पूर्वोक्त प्रश्न का उत्तर एक प्रकार से दिया जा सकता है । परन्तु धावक और श्रीहर्ष के समकालीनत्व का प्रमाण और किसी स्थान में नहीं पाया जाता और इसके विपरीत हर्षदेव तथा बाण भट्ट के समकालीनत्व और हर्षदेव से बाण भट्ट को धन प्राप्ति के भी अनेक प्रमाण मिलते हैं—यथा—

"हालेनोत्तमपूजया कविवृषा श्रीपालितो लालितः,
ख्यातिं कामपि कालिदासकवयो नीताः शकारातिना ।
श्रीहर्षो विततार गद्यकवये बाणाय वाणीफलम्,
तद्वत्सत्क्रिययाभिनन्दमपि च श्रीहारवर्षोऽग्रहीत् ॥ "

अर्थात् हाल नामक राजा ने कविश्रेष्ठ श्रीपालित को उत्तम पूजा से प्रसन्न किया । शकाराति ने (विक्रमादित्य) कालिदास नामक कवियों की प्रसिद्धि की । राजा श्रीहर्ष ने गद्यकवि बाण भट्ट को वाणी फल प्रदान किया । उसी प्रकार श्रीहारवर्ष नामक राजा ने अभिनन्द कवि को सत्कार द्वारा अपनाया । इससे स्पष्ट ही जाना जाता है कि गद्यकवि बाण को श्रीहर्ष ने धन दिया ।

"हेम्नो भारशतानि वा मदमुचां वृन्दानि वा दन्तिनाम्,
श्रीहर्षेण समर्पितानि गुणिने बाणाय कुत्राद्य तत् ।
या बाणेन तु तस्य सूक्तिनिकरैरुट्टङ्किताः कीर्तय—
स्ताः कल्पप्रलयेऽपि यान्ति न मनाग्मन्ये परिम्लानताम् ॥"

अर्थात् कई सौ भार सुवर्ण मत्त हाथियों का समूह जो श्रीहर्ष ने गुणी बाण को दिये थे, वे आज कहाँ हैं, और बाण ने जो सुन्दर वचनों से उसकी (श्रीहर्ष की) कीर्ति गायी है वह प्रलय काल में भी म्लान नहीं होगी । इस श्लोक से भी बाण और श्रीहर्ष का सम्बन्ध प्रमाणित होता है । इन्हीं प्रमाणों को ले कर विद्वानों ने श्रीहर्ष के सिर एक कलङ्क मढ़ दिया । वह यह कि काव्यप्रकाश में "श्रीहर्षादेर्धावकादीनां" पाठ अशुद्ध है, उसके स्थान में "बाणादीनां" पाठ ही शुद्ध है । हाल साहब ने इसी पाठ को शुद्ध समझ कर अपनी वासवदत्ता की अंग्रेज़ी भूमिका में लिखा है—बाण भट्ट ही रत्नावलीकार हैं । अपने इस सिद्धान्त को पुष्ट करने के लिये हाल साहब ने अनेक युक्तियों का उल्लेख किया है । उन सब युक्तियों में हाल साहब की प्रबल युक्ति यह है कि, एक ही श्लोक रत्नावली और हर्षचरित दोनों ग्रन्थों में पाया जाता है । वह श्लोक यह है—

"द्वीपादन्यस्मादपि मध्यादपि जलनिधेर्दिशोऽप्यन्ततात् ।
आनीय झटिति घटयति विधिरभिमतमभिमुखीभूतः ॥"
(रत्नावली)

यह श्लोक रत्नावली और हर्षचरित दोनों में एक ही रूप से पाया जाता है । बस इसी कारण हाल साहब कहते हैं बाण भट्ट ही रत्नावलीकर्ता हैं । परन्तु मेरी समझ से साहब की यह युक्ति सारहीन है । कुमारसम्भव नामक काव्य में महाकवि कालिदास ने शिवपुराण से ज्यों के त्यों कई श्लोक उद्धृत किये हैं, तो क्या इस कारण कुमारसम्भव और शिवपुराण दोनों का कर्ता एक ही माना जायगा । कवियों की यह रीति है कि अपने प्रस्तुत विषय में यदि अपने भावानुसार दूसरे का श्लोक मिल जाय तो वे उसे अपना लिया करते हैं । इसके अनेक प्रमाण दिये जा सकते हैं । अस्तु, वक्तव्य यह है कि, " श्रीहर्षादेर्धावकादीनामिव धनम् " यहाँ " बाणादीनामिव धनम् " पाठ ही शुद्ध है । किन्तु बाण को रत्नावलीकार मानना, और श्रीहर्ष के नाम से रत्नावली नाटिका बनाने के कारण उनकी धनप्राप्ति कहना निर्मूल है क्योंकि ऊपर उद्धृत श्लोक में अभिनन्द ने कहा है "गद्यकवये बाणाय" अर्थात् गद्यकवि बाण को, यहाँ बाण को गद्यकवि कह कर अभिनन्द इस बात को सूचित करता है कि गद्यकाव्य

बनाने के कारण बाण को हर्ष ने पारितोषिक दिया था। दूसरे श्लोक से तो यह बात साफ ही प्रतिपन्न होती है कि हर्ष ने अपनी कीर्तिगान करने के कारण बाण को सुवर्ण हाथी आदि से सम्मानित किया था।

बाण भट्ट का समय ७वीं सदी है। कहा जाता है कि हुएनसङ्ग के भारत आने के समय बाण भट्ट वर्तमान थे। सूर्यशतककर्ता मयूरभट्ट बाण के जामाता थे। और जैन पण्डित मानतुङ्गाचार्य इनके मित्र थे। ये तीनों ही हर्षवर्द्धन के सभापण्डित थे।

बालकृष्ण भट्ट=इनके पूर्वपुरुष मालवा छोड़ कर कालपी के पास बेतावा नदी के किनारे जटकरी नामक एक गाँव में आ बसे। इनके प्रपितामह का नाम पं० श्याम जी था। ये बड़े चतुर विद्वान् थे। अतएव इन्होंने कुलपहाड़ के राजा के यहाँ एक नौकरी कर ली। पण्डित श्याम जी के छोटे पुत्र का नाम बिहारीलाल था, इन पर पण्डित जी का बड़ा प्रेम था। अतएव पण्डित श्याम जी ने अपने छोटे पुत्र बिहारीलाल ही को अपना उत्तराधिकारी बनाया। पण्डित बिहारीलाल जी जटकरी से आ कर प्रयाग रहने लगे, इनके दो पुत्र थे जानकीप्रसाद और बेणीप्रसाद। बालकृष्ण भट्ट के पिता का नाम बेणीप्रसाद जी था।

इनका जन्म सं० १९०१ में हुआ था। इनकी माता विदुषी थीं। माता की प्रेरणा से भट्ट जी का पढ़ने में मन लग गया। इनके पिता ने चाहा था कि यह दूकानदारी के काम में लगें। परन्तु माता की प्रेरणा से इनका चित्त पढ़ने ही में लगा रहा। १५–१६ वर्ष तक इन्होंने संस्कृत का अध्ययन किया।

सिपाहीविद्रोह के अनन्तर भारत में अंग्रेज़ी राज्य की जड़ जमी, साथ ही साथ अंग्रेज़ी भाषा का भी प्रचार बढ़ा। अतएव विदुषी माता के परामर्श से भट्ट जी ने अंग्रेज़ी पढ़ना प्रारम्भ किया। पहले पहल ये मिशन स्कूल में भरती हुए। वहाँ इन्होंने एन्ट्रेंस तक की शिक्षा पायी। इन्होंने बायबिल की परीक्षा में कई बार इनाम भी पाया था। परन्तु बायबिल के अध्ययन से इनकी अपने धर्म पर श्रद्धा नहीं घटी, अपनी धर्मश्रद्धा के कारण ही इनका हेड मास्टर से कुछ विरोध हो गया और इन्होंने पढ़ना छोड़ दिया। अंग्रेज़ी पढ़ना छोड़ने पर ये पुनः संस्कृत साहित्य का अध्ययन करने लगे। इसी बीच में ये यमुना मिशन स्कूल में अध्यापक हो गये, परन्तु धर्मविवाद के कारण इन्हें अध्यापकत्व छोड़ना पड़ा।

स्वतन्त्रता की उपासना करते हुए इन्होंने कुछ दिन बेकार बैठ कर गँवाये। परन्तु जब इनका ब्याह हुआ तब पुनः इनकी अर्थ उपार्जन करने की इच्छा हुई। व्यापार करने की इच्छा से ये कलकत्ते गये, परन्तु वहाँ से शीघ्र ही लौट आये। कलकत्ते लौट आने पर ये चुपचाप बैठे नहीं रहे, किन्तु इन्होंने संस्कृत साहित्य के अध्ययन में मन लगाया और उस समय के प्रसिद्ध मासिक और साप्ताहिक पत्रों में ये लिखने लगे। इसी समय प्रयाग के कुछ उत्साही नवयुवकों को ले कर इन्होंने हिन्दीप्रवर्द्धिनी नाम की एक सभा स्थापित की और इसी सभा से हिन्दीप्रदीप नाम का एक मुखपत्र निकाला। जिसके सम्पादक भट्ट जी स्वयं हुए। हिन्दीप्रदीप को भट्ट जी बहुत दिनों तक चलाते रहे। इनके लिखे हुए। "कलिराज की सभा," "रेल का विकट खेल," बालविवाह नाटक," "सौ अजान एक सुजान," "नूतन ब्रह्मचारी," "जैसा काम वैसा परिणाम," "आचारविडम्बना," "भाग्य की परख," "षड्दर्शनसंग्रह" का भाषानुवाद "गीता" और "सप्तशती" की समालोचना आदि लेख देखने ही योग्य हैं।

पण्डित बालकृष्ण भट्ट जी कायस्थपाठशाला में संस्कृत के अध्यापक थे। परन्तु किसी कारण से भट्ट जी को उक्तपद छोड़ना पड़ा। आपने नागरीप्रचारिणी सभा काशी के कोशविभाग में भी उपसम्पादक का काम कुछ दिनों किया था।

बालमुकुन्द गुप्त=ये अग्रवाल वैश्य थे। इनका जन्म सन् १८६५ ई० में पञ्जाब के रोहतक ज़िले के गुरयानी नामक गाँव में हुआ था।

जिस समय बालमुकुन्द गुप्त बाल्यावस्था में थे उस समय पञ्जाब में हिन्दी का प्रचार नहीं था। अतएव आपने उर्दू और फारसी ही का पहले अध्ययन किया था। पुनः वयःप्राप्त होने पर आपने हिन्दी का स्वतन्त्र अध्ययन किया। बाल्यकाल से ही प्रबन्ध लिखने का इन्हें अच्छा अभ्यास था। बाल्यकाल ही से आप लखनऊ के "उर्दू अख़बार," और "अवध पंच," लाहौर के "कोहनूर," मुरादाबाद के "रहबर," और स्यालकोट के "विक्टोरिया पेपर" आदि पत्रों में लेख लिखा करते थे। तभी से इनकी गणना प्रसिद्ध लेखकों में होने लगी।

जब चुनार के प्रसिद्ध रईस बाबू हनुमान्-प्रसाद ने चुनार से "अख़बारे चुनार" नामक पत्र प्रकाशित करना आरम्भ किया, तब बाल-मुकुन्द गुप्त को बुला कर उसका सम्पादक नियत किया, गुप्त जी ने उस पत्र का बड़ी योग्यता से सम्पादन किया। परन्तु कुछ दिनों के बाद आप लाहौर चले गये, और वहाँ से सप्ताह में तीन बार निकलने वाले "कोहनूर" नामक पत्र के सम्पादक हुए। कुछ दिनों में आपने उसे दैनिक कर दिया।

उन्हीं दिनों कालाकाँकर से "हिन्दोस्थान" नामक पत्र हिन्दी में प्रकाशित होता था। उसके सम्पादक थे पण्डित मदनमोहन मालवी। श्रीभारतधर्ममहामण्डल के अधिवेशन में मालवी जी वृन्दावन गये हुए थे और बालमुकुन्द गुप्त भी आये हुए थे, पण्डित दीनदयालु ने दोनों में परिचय कराया। जब मालवी जी हिन्दो-स्थान का सम्पादन छोड़ने लगे, तब मालवी जी ने गुप्त जी को बुला कर हिन्दोस्थान की सम्पादक समिति में नियुक्त करवा दिया। राजा साहब स्वयं सम्पादक थे और पण्डित प्रतापनारायण, पण्डित राधारमण चौबे आदि उपसम्पादक थे।

कुछ दिनों के बाद गुप्त जी कालाकाँकर से घर चले गये; उन्हीं दिनों कलकत्ते में हिन्दी बङ्गवासी का जन्म हुआ। भारतधर्ममहामण्डल के अधि-वेशन के समय हिन्दीबङ्गवासी के सञ्चालक काशी आये हुए थे, उनसे वहीं गुप्त जी से भेंट हुई। उन्हीं दिनों हिन्दीबङ्गवासी में "शिक्षित हिन्दूबाला" नाम का एक उपन्यास निकलता था। काशी से लौट कर गुप्त जी घर आये, और वहाँ से इन्होंने उक्त उपन्यास की आलोचना करते हुए हिन्दीबङ्गवासी के सम्पादक बाबू अमृतलाल चक्रवर्ती को एक पत्र लिखा। उस पत्र के उत्तर में चक्रवर्ती जी ने कृतज्ञता प्रकट की और इनको कलकत्ते बुला कर अपना सह-कारी बनाया। यह बात सन् १८९३ ई० की है।

कुछ दिनों के बाद गुप्त जी बङ्गवासी के सम्पादक हुए। वहाँ सात वर्ष तक गुप्त जी ने बड़ी योग्यता से अपना काम किया। परन्तु उक्त पत्र के मालिकों में जब झगड़ा होने लगा तब गुप्त जी नौकरी छोड़ कर घर चले गये। इनके घर पहुँचते ही भारतमित्र के मालिक ने इन्हें पुनः कलकत्ते बुला लिया और भारतमित्र के सम्पा-दन का भार इन पर छोड़ा। तबसे आप भारतमित्र का अपने अन्तिम समय तक सम्पा-दन करते रहे। आपका परलोक वास सन् १९०७ ई० में भादों शुक्ला एकादशी बुधवार को दिल्ली में हुआ। गुप्त जी बड़े चतुर थे। आपकी निष्पक्ष और रसीली समालोचना प्रणाली प्रशंसनीय थी। इन्होंने कई एक ग्रन्थों का अनुवाद किया है तथा स्वतन्त्र ग्रन्थ भी लिखे हैं। "रत्नावली" नाटिका, हरिदास, शिव-शम्भु का चिट्ठा स्फुटकविता और खिलौना आदि पुस्तकें आपकी प्रसिद्ध हैं। आपका आन्दोलन प्रभावशाली होता था।

बाल्हीक=भारत के एक प्राचीन राज्य का नाम। महाभारत आदि पुरातन ग्रन्थों में इसका उल्लेख पाया जाता है। महाभारत के युद्ध में बाल्हीकराज सम्मिलित हुए थे। बाल्हीकराज के पुत्र सोमदत्त ने सात्यकि के साथ भीम पराक्रम से युद्ध किया था। बाल्हीकराज के पिता का नाम प्रतीप था। काश्मीर के इतिहास "राजतरङ्गिणी" नामक ग्रन्थ में राजपुरी नाम की एक नगरी का परिचय पाया जाता है। वहाँ के राजा संग्रामपाल ने जब अपनी स्वाधीनता की घोषणा की तब काश्मीराधिपति हर्षदेव ने उस राज्य पर अधिकार करने के लिये दण्ड-

नायक नाम के सेनापति को भेजा था। वह सेनापति अठारह महीने चल कर वहाँ से लौटा था। राजपुरी अथवा राजगृह दोनों एक ही के दो नाम हैं। राजतरङ्गिणी में लिखा है कि दण्डनायक सेनापति वाल्हीक राज्य को डाँक कर काश्मीर राज्य पहुँचा था। इससे ऐसा अनुमान किया जा सकता है कि काश्मीर राज्य और मगध राज्य की राजधानी राजपुरी या राजगृह के मध्य में वाल्हीकराज स्थित है।

विशेष अनुसन्धान करने पर यह बात निश्चित रूप से मालूम होती है कि बाल्हीक राज्य का ही परिवर्ती समय में "व्याकट्रिया" नाम पड़ गया। वाल्हीक राज्य ही का व्याकट्रिया और उससे बालख नाम पड़ा। पारस जीत कर लौटने के समय महावीर अलकजेंडर के साथी प्रायः १४ सौ सैनिकों ने व्याकट्रिया में उपनिवेश स्थापन किया और वे वहीं रहने लगे। ग्रीकों के राजत्वकाल में व्याकट्रिया के राजाओं के चलाये कितने ही सिक्के पाये गये हैं। उन सिक्कों से प्राचीन काल की बहुतसी बातें मालूम हुई हैं। बहुत पहले व्याकट्रिया में संस्कृत भाषा प्रचलित थी यह बात उन सिक्कों से मालूम होती है। संस्कृत भाषा का उत्पत्तिस्थान भारतवर्ष है। पहले अति दूर व्याकट्रिया या वाल्हीक राज्य में भारतवर्ष का प्रभाव विस्तृत हुआ था इससे यह बात प्रमाणित होती है। चन्द्रगुप्त के आविर्भाव के प्रायः ६०४२ वर्ष पूर्व व्याकट्रिया में "डाईनिसस" नामक राजा के होने का पता लगता है। पाश्चात्य देश के इतिहासों में डाईनिसस नामक अनेक राजाओं का उल्लेख पाया जाता है। इससे मालूम होता है कि उस समय "डाईनिसस" नाम एक उपाधि हो गया था। अतएव व्याकट्रिया के डाईनिसस का असली नाम क्या था इसका पता लगाना कठिन है। दीनेश या दानवेश किसी हिन्दू राजा का नाम या विशेषण डाईनिसस के रूप में बदल जा सकता है यह भी असम्भव नहीं है। सन्ड्रोकटस (Sandrocottus) या कान्ड्रेगुपस् (Kandragupso) का जब चन्द्रगुप्त हो सकता है तब डाईनिसस का दानवेश या दीनेश होना भी असम्भव नहीं है।

पाश्चात्य पण्डितों का सिद्धान्त है कि यह राज्य हिन्दूकुश पर्वत के पश्चिम भाग में अवस्थित है। उसके उत्तर या उत्तर पश्चिम की ओर अक्षासनद इसको सेकडियाना से बिलगाये हुआ है। उनके मत से व्याकट्रिया हिन्दू और इन्डु यूरोपियनों का आदि वासस्थान है। वहीं से पृथिवी के अन्यान्य भागों में आगे सभ्यता फैली है। इतिहास में व्याकट्रिय गण का जो परिचय मिलता है, उससे यह जाना जाता है कि मिडी और पारसियों के साथ इनकी पूर्ण समानता थी। उनकी मातृभाषा "जेन्द" भाषा थी। पहले यह पराक्रमी और ऐश्वर्यशाली राज्य था। उस समय फारस देश के पूर्व तक इसकी सीमा थी। यह राज्य एशिया महादेश में स्थलपथ का एक बड़ा वाणिज्य का केन्द्र समझा जाता था। व्याकट्रिय राजवंश नष्ट होने पर उस जनपद के स्थान पर बालख राज्य या बालकन राज्य स्थापित हुआ है।

बिहारीलाल=भाषा के प्रसिद्ध और प्रधान कोश काव्य सतसई के कर्ता। प्रसिद्ध प्राचीन कवि विद्वान् वीर आदि का जीवन प्रायः विवादमय देखा जाता है। अर्थात् उनके जीवनीलेखकों का मत आपस में नहीं मिलता। मेरी समझ से इसका कारण यही जचता है कि प्रसिद्ध मनुष्य को अपने से किसी न किसी प्रकार सम्बन्धयुक्त करना सभी चाहते हैं। ऐसी इच्छा होने पर लोग अपने मत को पुष्ट करने के लिये प्रमाण ढूँढ़ने लगते हैं, प्रमाण का मिल जाना कोई असम्भव नहीं है। यही हाल कविवर बिहारीलाल के विषय में भी हुआ है।

सरयूपारीण पण्डित महेशदत्त ने "भाषा काव्यसंग्रह" नामक एक ग्रन्थ लिखा है। उसमें उन्होंने लिखा है कि बिहारीलाल कान्यकुब्ज और श्रीवृन्दावन के रहने वाले थे। वृन्दावनवासी गोस्वामी राधाचरण जी एक सतसई के दोहे को उद्धृत कर के उसके अनुसार बिहारी को "केशव" नामक भाट का पुत्र बताते हैं। वह दोहा यह है—

"जनम लियो द्विजराजकुल बसे प्रगट ब्रज आय ।
मेरे हरो कलेश सब केशव केशवराय ॥"

इन दोनों मतों में कौन मत प्रामाणिक है यह जानना कठिन है । "भाषाकाव्यसंग्रह-"कार ने सरयूपारीण और कान्यकुब्ज कवियों ही का अपने ग्रन्थ में वर्णन किया है । उन्हींके साथ उन्होंने बिहारीलाल को भी कान्यकुब्ज बना डाला है, परन्तु इसमें उन्होंने प्रमाण कुछ भी नहीं दिया है । गोस्वामी जी का अनुमान कहाँ तक ऐतिहासिक दृष्टि से सत्य है यह जान लेना भी आवश्यक है । यद्यपि लल्लूलाल हरिचरणदास आदि ने भी बिहारी को केशव का पुत्र बतलाया है, तथापि उनको राय वा भाट कहना किसी प्रकार उचित नहीं जान पड़ता । क्योंकि भाटों को छोड़ कर अन्य भी-हुलासराय, कल्याणराय आदि--राय पदवी धारण करते हैं और जिसने अपने आश्रयदाता जयसिंह की प्रशंसा ७ । ८ दोहों में कर के भाटों की तरह चापलूसी नहीं की है वह भाट कैसे हो सकता है और भाट हो कर वह अपने को "द्विजराज" लिखने का साहस भी कैसे कर सकता ?

इनके कुलनिर्णय के विषय में दो भिन्न भिन्न मत और प्रचलित हैं । काशीवासी श्रीराधाकृष्णदास अपने "कविवर बिहारीलाल" नामक लेख में बिहारी को कवि केशवदास का पुत्र बतलाते हैं, और उनका दूसरा नाम केशवराय था यह भी मानते हैं । ये केशवदास टेहरी के रहने वाले सनाढ्य ब्राह्मण थे । बुन्देलखण्ड ओड़छाधिराज से सम्मान पा कर इन्होंने "कविप्रिया," "रसिकप्रिया," "रामचन्द्रिका," "ज्ञानगीता," आदि भाषासाहित्य के अनूठे ग्रन्थ रचे । दूसरा मत बिहारीलाल के चौबे होने का है । डाक्टर ग्रीयर्सन, ठाकुर शिवसिंह, राजा शिवप्रसाद आदि इसी मत के पोषक हैं । जो हो, इनके कुल के विषय में कुछ निश्चय नहीं कहा जा सकता कि ये अमुक जाति के थे ।

जयपुर के राजा मिर्ज़ा जयशाह सं० १६७६ में राजगद्दी पर बैठे, और वे नवविवाहिता रानी के प्रेम में मुग्ध हो गये । संयोगवश घूमते घामते बिहारी भी वहाँ पहुँचे थे । कामदारों ने बिहारी को इस काम पर नियुक्त किया कि तुम महाराज का चित्त रानी के प्रेम की ओर से हटा दो । बिहारीलाल ने जाते ही महाराज को यह दोहा सुनाया--

"नहिं पराग नहिं मधुर मधु नहिं विकास इहि काल ।
अली कली ही पै लगे आगे कौन हवाल ॥"

इस दोहे का प्रभाव महाराज पर खूब पड़ा, इन्होंने बिहारी से कहा कि ऐसे दोहे जितने बना सको, लाओ । बिहारी के चले जाने पर कामदारों ने एक दोहे के लिये बिहारी को १०० मोहर भेंट देने के लिये प्रस्ताव किया, और अन्य दोहों के लिये प्रति दोहे एक एक मोहर देने का विचार प्रकट किया । महाराज ने कहा मैंने तो इस दोहे के बदले गाँव देना भी थोड़ा समझा था । इस प्रकार बिहारीलाल की जयपुर दरबार में पहुँच हुई ।

एक समय की बात है, दरबार में सभी बैठे थे, एक चित्रकार एक चित्र बना कर ले आया । इस चित्र में ज्येष्ठ की कठोर धूप से तड़फड़ाया हुआ एक साँप मयूर की छाया में जा कर बैठा था, बाघ और मृग साथ साथ घूम रहे थे, इस चित्र को देख कर किसी ने कुछ नहीं समझा । महाराज पूँछने लगे--

"किहि लाने एकत बसत अहि मयूर मृग बाघ ।"

चट बिहारीलाल जी बोल उठे--

जगत तपोवन सो कियो दीरघ दाघ निदाघ ।

महाराज बहुत प्रसन्न हुए और कहने लगे कवि और चित्रकार दोनों ही प्रकृति के प्यारे सन्तान हैं ।

संवत् १७१६ में महाराज जयसिंह का देहान्त हुआ । उस समय जयपुरराज्य में बड़ी गड़बड़ी मची । मालूम नहीं उस समय राज्य का कौन अधिकारी हुआ । कृष्ण कवि के मतानुसार उस समय कृष्णसिंह और रामसिंह का होना पाया जाता है । परन्तु जयनगर पञ्चरङ्ग में मिर्ज़ा जयसिंह के पीछे विष्णुसिंह का होना लिखा है । कौन जाने कृष्णसिंह और रामसिंह दोनों ही उस समय अपने अपने राजा होने का प्रयत्न करते रहे हों । इन सब बातों को देख कर बिहारी का चित्त जयपुर में नहीं लगा, यह बात उनके एक दोहे से प्रमाणित होती है--

"जिन जिन देखे वे कुसुम गई सु बीति बहार ।
अब अलि रही गुलाब की अपत कटीली डार ॥
चले जाहु ह्याँ को करै हाथिन को ब्योपार ।
नहिं जानत इहिं पुर बसत धोबी ओड कुम्हार ॥
चुप करि रे गन्धी चतुर अतर दिखावत काहि ।
करि फुलेल को आचमन मीठो कहत सराहि ॥
अरे हंस या नगर में जैयो आय विचार ।
कागनि सों जिन प्रीति करि कोइल दई बिडार ॥"

जयपुर छोड़ने के बाद बिहारी कृष्ण कवि को साथ ले कर मारवाड़ गये । जब वे राजदरबार में गये तो उन्होंने देखा कि एक दो कवि बिहारी की सतसई के नाना प्रकार के अर्थ कर रहे हैं । बिहारीलाल जी ने कृष्ण से कहा बेटा चलो, यहाँ यदि हम अपने को बिहारी प्रकट करते हैं तो अवश्य ही ये लोग इन दोहों का अर्थ पूछेंगे । इन दोहों के कई अर्थ तो इन्हीं लोगों ने कर डाले हैं । यहाँ से बिहारी धन की आशा से वञ्चित हो कर चले गये । सं० १७१८ तक इन्होंने तीन वर्षों में सतसई पूरी कर दी । तदनन्तर बिहारी कवि ने अपना चित्त भगवान् के भजन में लगाया । अन्यान्य कवियों के समान बिहारीलाल में भी आत्मश्लाघा करने का दोष पाया जाता है । आप कहते हैं—

"सतसय्या के दोहरे ज्यों नावक के तीर ।
देखत के छोटे लगें बेधें सकल शरीर ॥
जो कोऊ रसरीति को समुझत चाहे सार ।
पढ़ै बिहारी सतसई कविता को शृङ्गार ॥"

सतसई पर कितनी ही टीकाएँ हो चुकीं, जिनमें कुछ टीकाकारों के नाम नीचे लिखे जाते हैं । १ सूरति मिश्र, २ चन्द्र, ३ गोपालशरण, ४ कृष्ण, ५ करण, ६ अनवरखाँ, ७ पठान सुलतान (कुण्डलिया), ८ जुलफिक्कार, ९ यूसफखाँ, १० रघुनाथ, ११ लाला, १२ सरदार, १३ लल्लूलाल, १४ गङ्गाधर, १५ रामबक्श, १६ परमानन्द (संस्कृत में), १७ जोधूदास (कुण्डलिया), १८ छोटू (वैद्यक टीका) ।

बाबू राधाकृष्णदास ने अपने लेख में बिहारीलाल का उत्पत्तिस्थान ग्वालियर बताया है । इसमें उन्होंने प्रमाण दिया है—

"जनम ग्वालियर जानिये खण्ड बुन्देलेपाल ।
तरुनाई आई सुभग मथुरा बसि ससुराल ॥"

माथुर समाज में भी ऐसी ही जनश्रुति पायी जाती है । एक प्रकार से ग्वालियर ही के अन्तर्गत बसुआ गोविन्दपुर में बिहारी की जन्मभूमि बतायी जाती है । बिहारी के चाचा इसी गाँव में रहते थे ।

कहते हैं बिहारीलाल एकाक्ष थे । अतएव लड़के उन्हें "कौआ कौआ" कहा करते थे । महाराज जयसिंह को भी यह बात मालूम हुई । उन्होंने कहा कौआराम, तुमने कौए की आँख पर कोई कविता नहीं की । बिहारीलाल ने यह दोहा सुनाया—

"हीन को हितउ नहीं बनै कोऊ करो अनेक ।
फिरत काग गोलक भयो दुहूँ देह जिय एक ॥"

गोवर्द्धन की आर्या सप्तशती और सात वाहन की गाथा-सप्तशती देख कर बिहारी के हृदय में सतसई बनाने का सङ्कल्प उत्पन्न हुआ था । बिहारी ने इन संस्कृत और प्राकृत के अनूठे ग्रन्थों से अपनी सतसई में अनेक भाव लिये हैं । कई स्थानों पर सूरदास के सूरसागर के भी भाव पाये जाते हैं ।

बीका जी=बीकानेर के आदि स्थापनकर्ता । ये मारवाड़ राज्य के प्रतिष्ठाता राठौर वीर जोधा जी के पुत्र थे । जिस समय प्राचीन राजधानी मंडोर राज्य को छोड़ कर ये मारवाड़राज की नवीन राजधानी जोधपुर में आये, उस समय उनके दूसरे कुमार बीका अपने चाचा काँधल के साथ तीन सौ राठौर सेना ले कर पिता के राज्य की सीमा को बढ़ाने के लिये बाहर निकले । परन्तु इनके जाने के पहले इनके भाई बीदा ने मोहिलों की प्राचीन निवास-भूमि पर आक्रमण कर के उस देश को जीत लिया था । अपने भाई की जयप्राप्ति से उत्साहित हो कर बीका दिग्विजय के लिये प्रस्थित हुए ।

मारवाड़ राजकुमार बीका जी पहले पहल तीन सौ राठौर वीरों को साथ ले कर दिग्विजय के लिये चले । सर्व प्रथम उन्होंने जाङ्गल नामक स्थान के अधिवासी साँखला नाम की प्राचीन जाति पर आक्रमण किया और

उन्हें जीत लिया। इस विजय से और इनके साहस तथा इनकी वीरता के गौरव से मरुस्थल गौरवान्वित हो गया। उस युद्ध में विजय प्राप्त करने के कारण पुंगलदेश के भाटियों से इनका परिचय हुआ। पुंगलपति ने बीका को वीर तथा एक होनहार युवक जान कर अपनी कन्या ब्याह दी। पुंगलपति ने समझ लिया था कि युद्ध से अपनी स्वाधीनता नहीं बचायी जा सकती। इसी कारण सुचतुर पुंगलपति ने अपनी कन्या दे कर स्वाधीनता की रक्षा की। बीका भाटियों के साथ किसी प्रकार का भी उपद्रव न कर के और वहीं कोडमदेसर नामक स्थान में क़िला बनवा कर वहीं रहने लगा और वहीं से धीरे धीरे अन्य प्रदेशों पर अधिकार कर के अपने राज्य की सीमा बढ़ाने लगे। विजयी वीर राठौरों ने देखते देखते ही उस प्रदेश में एक प्रभावशाली राष्ट्र गठित किया। उस समय बीकानेर राज्य के अधिकांश भागों में जाट जाति के लोग बसते थे।

इस समय बीकानेर राज्य की बस्ती इस शीघ्रता से बढ़ रही थी कि बीका जी अपने पिता के वासस्थान मंडोर को छोड़ कर थोड़े ही दिनों में २६७० ग्रामों के अधीश्वर हो गये। इतने बड़े प्रदेश पर विजय प्राप्त करने के लिये बीका जी को विशेष शक्ति का प्रयोग नहीं करना पड़ा था। क्योंकि वहाँ के वासियों ने विना युद्ध ही के इच्छापूर्वक बीका जी की अधीनता स्वीकार की।

मारवाड़ के जिन भागों पर अधिकार करने के लिये बीका जी राजधानी से निकले थे, उस प्रान्त के जाट तथा जोहियागण सामान्य वृत्ति से अपना निर्वाह किया करते थे। गाय भैंस भेड़ आदि वे पोसा करते थे और गाय भैंस का घी तथा भेंड़ों का ऊन सारस्वत ब्राह्मणों के हाथ बेचते थे। इन्हीं द्रव्यों की बिक्री से जो लाभ होता था उससे उनकी जीविका चलती थी।

नवीन राज्य स्थापन करने की इच्छा से जाट और जोहियों के अधिकृत देश में अधिकार करने के लिये बीका जी जिस समय वीर गर्व से आगे बढ़ रहे थे, उस समय उनके कार्य में सहायता पहुँचाने वाले बहुत से सुयोग उपस्थित हो गये। इसी कारण उन्होंने अनायास ही एक बड़े राज्य पर अपना प्रभुत्व विस्तारित कर लिया। अत्याचारी राजा के अत्याचारों से पीड़ित हो कर उस देश के वासियों ने इच्छापूर्वक बीका को आत्मसमर्पण किया।

इस प्रकार विजयी बीका ने थोड़ी सी सेना की सहायता से एक बड़े राज्य को अपने हस्तगत कर लिया। तदनन्तर आप दिग्विजय करने के लिये पश्चिम की ओर आगे बढ़े। बीका ने अपनी सेना के साथ बागार देश पर आक्रमण किया जो भारी राज्य के अधिकार में था। उन्होंने उसको अपने अधिकार में किया, इस प्रकार बीका ने मंडोर छोड़ने के बीसवें वर्ष बागार देश में राजधानी स्थापित करने का विचार किया और नेरा नामक जाट से पूर्वोक्त भूखण्ड को ले कर संवत् १५४५ सन् १४८६ ई० की १५ मई को वैशाख मास में अपनी नयी राजधानी स्थापित की।

महाराज बीका नवीन राजधानी स्थापित करके बहुत दिनों तक जीवित नहीं रहे। उन्होंने भारतवर्ष में एक नवीन राज्य की स्थापना कर के सं० १५५१ में इस लोक को छोड़ दिया। उनके लूनकरन और गड़सी नाम के दो पुत्र उत्पन्न हुए थे।

(टाडस् राजस्थान)

वृषपर्वा=असुरराज। इन्हींकी कन्या शर्मिष्ठा थी, जो देवयानी की दासी बनायी गयी थी।

(महाभारत)

वृहदश्व=प्राचीन कोशलपति, इनका दूसरा नाम कल्मापपाद था। (देखो कल्मापपाद)

वृहद्रथ=मगध के एक राजा का नाम। इन्हींका पुत्र प्रसिद्ध जरासन्ध था।

वृहद्बल=सूर्यवंशी एक राजा। महाभारत के युद्ध में ये अभिमन्यु के हाथ से मारे गये थे।

वृहस्पति=देवगुरु महर्षि। शास्त्रीय ग्रन्थों में अनेक वृहस्पति नामक ऋषियों का पता लगता है। ऋग्वेद में दो वृहस्पति ऋषियों का उल्लेख है। एक आङ्गिरस और दूसरे लौक्य अर्थात् एक अङ्गिरा के वंश में उत्पन्न और दूसरे लोक

के वंश में उत्पन्न । तैत्तिरीयसंहिता में देव-पुरोहित एक बृहस्पति का उल्लेख पाया जाता है। मैत्रेयी उपनिषद् में लिखा है कि असुरों की बुद्धि भ्रष्ट करने के लिये बृहस्पति ने नास्तिक दर्शन का प्रचार किया था । इसी कारण उन्होंने शुक्राचार्य का रूप धारण कर के अविद्या उत्पन्न की । जिससे अज्ञानी असुरों ने वेदादि सत् शास्त्रों के उपदेशों पर अवज्ञा प्रकाशित की, अतएव उनका पतन हुआ। संहिताकारों में भी एक बृहस्पति की प्रसिद्धि है । बृहस्पतिसंहिता उन्नीस संहिताओं के अन्तर्गत समझी जाती है महाभारत में भी दो बृहस्पतियों का परिचय पाया जाता है। उनमें एक "अहिंसा परमोधर्मः" के प्रचारक हैं, और दूसरे वज्रनाशास्त्र के प्रणेता हैं। मैत्रेयी उपनिषद् और महाभारत के बृहस्पति दोनों एक ही हैं ऐसा अनेक विद्वानों का मत है और वेही चार्वाकदर्शन के आदिप्रणेता हैं।

देवगुरु बृहस्पति की स्त्री का नाम तारा था। एक समय चन्द्रमा उनकी स्त्री को हर ले गया। इसके लिये बृहस्पति ने देवताओं के सामने अभियोग उपस्थित किया। देवताओं की सभा जुड़ी, विष्णु ब्रह्मा शिव आदि सभी उपस्थित हुए। सभी ने चन्द्रमा से अनुरोध किया कि तुम तारा को लौटा दो। परन्तु चन्द्रमा ने किसी के कहने पर ध्यान नहीं दिया । चन्द्रमा का यह औद्धत्य भूतपति शिव जी से नहीं देखा गया । वे युद्ध करने के लिये तैयार हो गये। ब्रह्मा ने जब बात को बिगड़ते देखा तब उन्होंने चन्द्रमा को समझा कर बृहस्पति के हवाले तारा को करा दिया। उस समय तारा ने कहा कि मेरे चन्द्रमा का गर्भ है बृहस्पति की आज्ञा से तारा ने गर्भ को निकाल दिया और वह बृहस्पति के साथ चली गयी।

बृहस्पतिसंहिता=यह संहिता ८० अस्सी श्लोकों की है। देवराज इन्द्रने १ सौ यज्ञ कर के वाग्मी-प्रवर बृहस्पति से पूछा—भगवन्! किन किन वस्तुओं के दान करने से मनुष्य सर्वदा सुखी रहते हैं सो कृपया मुझसे कहिये । इसके उत्तर में बृहस्पति ने जो दानमाहात्म्य कहा है, वही इस संहिता में लिखा गया है। इससे यह बात पायी जाती है कि इस संहिता के कर्ता बृहस्पति हैं । परन्तु इस समय जो बृहस्पतिसंहिता के नाम से संहिता प्रसिद्ध है, वह पीछे की बनी है यही बहुतों का विश्वास है । इस संहिता में "दानधर्म" का माहात्म्य विस्तृतरूप से लिखा गया है । तालाब, कुआ, पोखरा, बागीचा आदि के बनाने का माहात्म्य इस संहिता में बड़े विस्तार से लिखा है । इस संहिता के मत से जो मनुष्य पोखरा खनवाता है, अथवा उसका जीर्णोद्धार करवाता है वह अपने कुल का उद्धार कर के स्वर्गलोक पाता है "यस्तटाकं नवं कुर्यात् पुराणं वापि खानयेत्। ससर्वं कुलमुद्धृत्य स्वर्गे लोके महीयते" ब्राह्मण को दान देने का माहात्म्य इस संहिता में लिखा है। ब्राह्मण के क्रोध से कुलक्षय होता है—यह बात संहिताकार ने स्पष्ट ही कही है।

बेनी कवि=(१) ये भाषा के कवि थे और असनी ज़िला फतेहपुर के निवासी थे। इनका जन्म सं० १६९० में हुआ था, ये महान् कवीश्वर हुए हैं । इनका बनाया नायिकाभेद का एक अत्युत्तम ग्रन्थ पाया जाता है । इनकी कविता बहुत ही सरस, सरल, मधुर और ललित है।

(२) ये कवि वन्दीजन बेनी, ज़िला राय-बरेली के निवासी थे । संवत् १८४४ में ये उत्पन्न हुए थे। ये लखनऊ के नव्वाब के दीवान महाराज टिकैतराय के यहाँ रहते थे। इनकी मृत्यु सं० १८९२ में हुई।

बेनी प्रवीण=ये भाषा के कवि कान्यकुब्ज वाज-पेयी ब्राह्मण थे और लखनऊ के निवासी थे। इनका जन्म सं० १८७६ में हुआ था। इनकी कविता उत्तम होती थी। इनका बनाया नायिका विषयक ग्रन्थ देखने योग्य है।

बेनीप्रगट=ये कवि ब्राह्मण थे और लखनऊ निवासी कविन्द कवि के पुत्र थे। ये सं० १८८० में उत्पन्न हुए थे । इनकी कविता अत्यन्त सुन्दर है।

ब्रह्मकवि=राजा वीरवर का यह दूसरा नाम था। ये जाति के ब्राह्मण और अन्तर्वेद के रहने वाले थे। इनका पिता माता का रखा हुआ नाम महेशदास था। ये कान्यकुब्ज दुबे ब्राह्मण थे। अन्तर्वेद हमीरपुर ज़िले के किसी गाँव में इनका वासस्थान था। ये काव्य पढ़ लिख कर राजा भगवान्‌दास आमेर के यहाँ कवियों में भर्ती हो गये। आमेरराज भगवान्‌दास इनकी कविता से बहुत प्रसन्न हुए और इनको, अपनी सबसे प्रिय तथा उत्तम वस्तु जान कर उन्होंने बादशाह अकबर को उपहार में दे दिया। ये कवि कविता में अपना नाम ब्रह्म लिखा करते थे। गुणी बादशाह ने एक उत्तम कवि होने के अतिरिक्त इनमें अन्य प्रकार की योग्यताओं को देख कर इन्हें अपना मुसाहब बनाया और "कविराय" की पदवी दी। तदनन्तर पंच हज़ारी का इन्हें मनसब मिला। इन्हें "राजा वीरवर" का भी ख़िताब मिला था। इनकी जीवनी तवारीख़ों में लिखी है। सन् ९९० हिजरी, बिजौर इलाके काबुल के युद्ध में पठानों के हाथ से मारे गये। राजा वीरवर ने बादशाह अकबर की आज्ञा से कानपुर ज़िले में अकबरपुर नामक एक गाँव बसाया था, और वहीं आप भी रहते थे। नारनौल क़सबे में इनके पुराने घर अभी तक वर्तमान हैं। अपने समय में इन्होंने बादशाह से चौधराना पद ब्राह्मणों को दिलवाया, गोवध बन्द करवाया और हिन्दू मुसल्मानों का भेद मिटाया। (शिवसिंहसरोज)

ब्रह्मदत्त=एक प्राचीन राजा। रामायण में इनकी विलक्षण कथा लिखी है। वहाँ लिखा है गौतम नामक एक ब्राह्मण राजा के यहाँ अतिथि हुआ। उस अतिथि के भोजन में दैवयोग से भोजन मिल गया। अतिथि भोजन पर बैठा। भोजन में मांस का योग मालूम होते ही उसने "गीध होजाओ" राजा को शाप दिया। बहुत प्रार्थना करने पर ब्राह्मण ने राजा को शापमुक्ति का उपाय भी बता दिया। भविष्य में श्रीरामचन्द्र के स्पर्श से तुम्हारी मुक्ति होगी। श्रीरामचन्द्र के राज्य के समय में एक उलूक और एक गृध्र में विवाद होने लगा। उनका विवाद रहने के स्थान के लिये था। श्रीरामचन्द्र जी के निकट दोनों का विवाद न्याय के लिये उपस्थित किया गया। अपना पक्ष समर्थन करते हुए उलूक बोला—पृथिवी की सृष्टि के समय से मैं इस स्थान पर रहता हूँ गीध बोला—मनुष्य सृष्टि के समय से इस स्थान पर मेरा अधिकार है। श्रीरामचन्द्र जी ने निर्णय किया कि वृक्षों की सृष्टि ही आदि सृष्टि है, मानव सृष्टि उसके बाद की है। अतएव श्रीरामचन्द्र जी ने गीध ही को दोषी ठहराया और वे उसको मारने के लिये चले। उसी समय श्रीरामचन्द्र के स्पर्श से गीध शापमुक्त हो गया। रामायण में इसके अतिरिक्त ब्रह्मदत्त का और कुछ परिचय नहीं पाया जाता है। महाभारत के शान्तिपर्व में एक दूसरे ब्रह्मदत्त का उपाख्यान लिखा गया है। शत्रुओं पर विश्वास करना अनुचित है, और विना विश्वास किये शत्रु जीते भी नहीं जा सकते—इसी प्रश्न का उत्तर देते हुए भीष्मपितामह ने राजा युधिष्ठिर से ब्रह्मदत्त का उपाख्यान कहा है। ब्रह्मदत्त काम्पिल्य देश के राजा थे। उनके पुत्र ने पूजनी नाम की पक्षिणी के पुत्र को मार डाला। इस कारण पक्षिणी ने पुत्रहन्ता राजपुत्र की दोनों आँखें निकाल डालीं। इस बात को सुन कर राजा कुछ भी अप्रसन्न नहीं हुए। राजा उस पक्षिणी से बोले—मेरे पुत्र ने जो निन्दित कर्म किया है इस लिये उसको दण्ड दे कर तुमने उचित ही किया है। यह कह कर उस पक्षिणी को पहले के समान अपने घर में रहने के लिये कहा, परन्तु उस पक्षिणी ने स्वीकार नहीं किया उसने स्पष्ट ही कह दिया कि—किसी का अनिष्ट कर के उसके आश्रय में रहना अनुचित है। अर्थात् किसीके साथ शत्रुता कर के पुनः उसीका आश्रय ग्रहण करना नीति के विरुद्ध है। यह कह कर राजा के बहुत अनुरोध करने पर भी, उस पक्षिणी ने न माना और वह राजा का राज्य छोड़ कर दूसरे स्थान पर चली गयी।

ब्रह्मपुराण=अष्टादश पुराणों में यह पुराण प्रथम समझा जाता है। सूत और शौनक मुनि के कथोपकथनरूप में यह पुराण बनाया गया है। यह पुराण पूर्व और उत्तर दो भागों में विभक्त

है। पूर्वभाग में सृष्टिप्रसङ्ग, देवता और असुरों का जन्मविवरण और चन्द्र सूर्य वंश का वर्णन है। सूर्यवंश के वर्णन के समय इस पुराण में श्रीरामचन्द्र जी के चरित्र का वर्णन किया गया है और चन्द्रवंश के वर्णन के समय श्रीकृष्णचन्द्र का चरित्र लिखा गया है। प्रियव्रत, उत्तानपाद, वेन, पृथु और पुरूरवा आदि राजाओं का भी इसमें वर्णन है। प्रजापति दक्ष का जन्मवृत्तान्त पार्वती का जन्म और विवाह भी ब्रह्मपुराण में लिखा गया है। द्वीप, वर्ष, स्वर्ग, नरक और पाताल वर्णन तथा सूर्य प्रभृति देवताओं की स्तुति ब्रह्मपुराण के पूर्वभाग में देखी जाती है। उत्तरखण्ड में—पुरुषोत्तम तीर्थ का विस्तृत वर्णन श्रीकृष्ण का चरित्र तथा गुणानुवाद और धर्मतत्त्व, दर्शनतत्त्व आदि आलोचित हुए हैं। पुरुषोत्तम वर्णन के प्रसङ्ग में उड़ीसा और जगन्नाथ मन्दिर के पुरातत्त्व तथा मन्दिर और निकुञ्ज समूह किस प्रकार सूर्य शिव और जगन्नाथ देव के नाम से समर्पित हुए हैं, आदि बातें लिखी गयी हैं। ब्रह्मपुराण के उत्तरखण्ड में जो श्रीकृष्ण का चरित्र लिखा गया है वह विष्णुपुराण के श्रीकृष्णचरित्र से मिलता जुलता है। इस पुराण के उपसंहार में योग का विषय उठाया गया है, योग के अङ्गों प्रत्यङ्गों का निरूपण कर के योग पर आलोचना की गयी है। युग के अनुसार धर्म में परिवर्तन, ह्रास, वृद्धि आदि, तीर्थप्रसङ्ग, गङ्गा की उत्पत्ति का वर्णन, वर्ण और आश्रम तथा उसके धर्म, मृत्यु, मृत्यु का स्वरूप तथा कारण और पितृश्राद्ध आदि की कथाएँ प्रसङ्गानुसार इस पुराण में वर्णित हुई हैं।

ब्रह्मवैवर्तपुराण—यह पुराण बारहवाँ पुराण समझा जाता है, ब्रह्मखण्ड, प्रकृतिखण्ड, गणेशखण्ड, श्रीकृष्णजन्मखण्ड इन चार खण्डों में यह पुराण समाप्त है। नैमिषारण्यतीर्थ में शौनकादि ऋषियों के समक्ष परमपौराणिक सूत ने इस पुराण को कहा है, इसी पुराण में श्रीकृष्ण और राधा का लीलाप्रसङ्ग विस्तार से लिखा गया है। अनेकों का विश्वास है कि राधा के संबन्ध में आज तक जितने ग्रन्थ बने हैं उन सब का मूल यही ब्रह्मवैवर्तपुराण ही है। क्योंकि ब्रह्मवैवर्तपुराण को छोड़ कर और किसी भी पुराण में राधा के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं लिखा है। इस पुराण के ब्रह्मखण्ड में सृष्टिनिरूपणप्रकरण में लिखा है—श्रीकृष्ण के शरीर से नारायण आदि उत्पन्न हुए हैं रासमण्डल में राधा उत्पन्न हुई और राधा कृष्ण की देह से गौ, गोपी और गोपों की उत्पत्ति हुई। तदनन्तर चराचर विश्व की सृष्टि हुई। प्रकृतिखण्ड में—सृष्टिकार्य में दुर्गा, राधा, लक्ष्मी, सरस्वती और सावित्री इन पाँच प्रकृतियों का माहात्म्य कहा गया है। प्रसङ्गवश, सावित्री सत्यवान् सुरभि स्वाहा और स्वधा का उपाख्यान, देवीमाहात्म्य में सुरथ का वंश वर्णन, गङ्गा का उपाख्यान, रामायण आदि की कथाएँ, इन्द्र के प्रति दुर्वासा का शाप, और लक्ष्मीपूजा आदि का भी उल्लेख पाया जाता है। गणेशखण्ड में प्रधानतः गणेश का माहात्म्य लिखा गया है। प्रसङ्गतः जमदग्नि, कार्तवीर्य, परशुराम आदि का भी उपाख्यान लिखा गया है। श्रीकृष्णजन्मखण्ड में श्रीकृष्णलीला लिखी गयी है। व्रजलीला, मथुरालीला, राधा कृष्ण का पुनर्मिलन, गोकुलवासियों का गोलोक-गमन आदि भी इसी कृष्णजन्मखण्ड में आ गये हैं। ब्रह्मवैवर्तपुराण के अन्तिम अध्याय में महापुराण और उपपुराणों के लक्षण, महापुराणों की श्लोकसंख्या और उपपुराणों के नाम निर्देश किये गये हैं। अधिकांश में श्रीमद्भागवत के साथ इसका मत मिलता है। इस अन्तिम अध्याय के पहले के अध्याय में ब्रह्मवैवर्तपुराण में क्या क्या विषय हैं इसका निर्देश किया गया है। ब्रह्मवैवर्त पुराण के मत से महापुराणों के दश लक्षण हैं। यथा—सृष्टि, स्थिति, प्रलय, पालन, कर्म, वासना वर्णन, चतुर्दश मनुओं में से प्रत्येक का नाम और वंशवर्णन, मोक्षनिरूपण, श्रीहरि का गुण कीर्तन और पृथक् पृथक् देवों की महिमा का वर्णन। ये दश महापुराण के विशेष लक्षण हैं, परन्तु पाँच लक्षण युक्त पुराणों और उपपुराणों में जो लक्षण समानतः रहेंगे, वे ये हैं—सृष्टि,

प्रलय, चन्द्र और सूर्यवंश के वर्णन के साथ ही चतुर्दश मनुओं का अधिकार कीर्तन और चन्द्रसूर्यवंशी राजाओं का वंशवर्णन।

ब्रह्मसम्प्रदाय=इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक मध्वाचार्य हैं। मध्वाचार्य सन् ११९९ ई० में दक्षिण देश के तुलव नामक गाँव में उत्पन्न हुए थे। इनके पिता का नाम मधीजी भट्ट था। अनन्तेश्वर मठ में विद्याभ्यास कर के नव वर्ष की अवस्था में मध्वाचार्य ने संन्यास ग्रहण किया। इनके गुरु अच्युतप्रोच्च सनक के वंशधर माने जाते हैं। संन्यासाश्रम ग्रहण के समय मध्वाचार्य ने भगवद्गीता का एक भाष्य बनाया था। कहा जाता है उस भाष्य को देख कर स्वयं व्यासदेव ने प्रसन्नता प्रकाशित की थी और इसके उपलक्ष में उन्होंने शालिग्राम शिला की तीन मूर्तियाँ मध्वाचार्य को उपहार में दी थीं। वे तीनों मूर्तियाँ उड़पी मध्यतल और सुब्रह्मण्य नामक स्थानों में स्थापित की गयीं। उड़पी मठ में मध्वाचार्य ने एक श्रीकृष्ण की भी मूर्ति स्थापित की थी। कहा जाता है कि वह श्रीकृष्ण की मूर्ति अर्जुन ने बनवायी थी। द्वारका से मालावार जाने के समय एक वाणिज्य का जहाज़ डूब गया था, उसी जहाज़ में वह कृष्ण मूर्ति भी थी, जो उसी जहाज़ के साथ डूब गयी। मध्वाचार्य ने ध्यान से जान कर उस मूर्ति को निकलवाया। इसी कारण ब्रह्मसम्प्रदाय के वैष्णवों का उड़पी प्रधान तीर्थ माना जाता है। अपनी जन्मभूमि तुलव गाँव में भी मध्वाचार्य ने आठ मठों की स्थापना की है। एक में राम और सीता, एक में सीता लक्ष्मण, एक में चतुर्भुज कालियमर्दन, एक में द्विभुज कालियमर्दन, एक में सुवितल, एक में शूकर, एक में नृसिंह और एक में वसन्त सुवितल की प्रतिष्ठा की। पद्मनाभतीर्थ नामक एक शिष्य की सहायता से मध्वाचार्य ने और भी अनेक मठों की प्रतिष्ठा की है। मध्वाचार्य ने प्रायः ३७ ग्रन्थ लिखे हैं। उन ग्रन्थों में ऋग्भाष्य, सूत्रभाष्य, गीताभाष्य, दशोपनिषद्भाष्य, भागवततात्पर्य, तन्त्रसार, कृष्णनामामृत महार्णव आदि ग्रन्थ विशेष प्रसिद्ध हैं। मध्वाचार्य सम्प्रदाय के संन्यासी पीले कपड़े पहन कर भिक्षा वृत्ति से निर्वाह करते हैं। इनके तिलक में एक विशेषता है। तिलक के बीच में ये काली रेखा लगाते हैं। इस सम्प्रदाय में नारायण सब कारणों के कारण तथा अद्वितीय ईश्वर माने जाते हैं। इस सम्प्रदाय में जीव और ईश्वर का अभेद नहीं माना जाता है। इस सम्प्रदाय के वैष्णव कहते हैं कि परमात्मा से इस जगत् की रचना अवश्य हुई है परन्तु जीव और परमात्मा ये दोनों पृथक् पृथक् और स्वतन्त्र हैं। इस विषय में वे दृष्टान्त देते हैं—

"यथा पक्षी च सूत्रञ्च नानावृक्षरसा यथा।
यथा नद्यः समुद्रश्च शुद्धोदलवणे यथा॥
चौरापहार्यौ च यथा यथा पुंविषयावपि।
तथा जीवेश्वरौ भिन्नौ सर्वदैवविलक्षणौ॥"

अर्थात् पक्षी और सूत्र, वृक्ष और रस, नदी और समुद्र, विशुद्ध जल और लवण, चोर और चोरी का द्रव्य, पुरुष और इन्द्रिय जिस प्रकार भिन्न भिन्न हैं, उसी प्रकार जीव और परमात्मा में भी परस्पर विभिन्नता वर्तमान है। एक कारण है, दूसरा कर्म है। एक कर्ता है, दूसरा क्रिया है। जीव ईश्वर में इसी प्रकार का सम्बन्ध है। परमात्मा और जीवात्मा को पृथक् पृथक् मानते हैं इस कारण मध्वाचार्य द्वैतवादी कहे जाते हैं और उनका सिद्धान्त द्वैतवाद कहा जाता है। वे कहते हैं—आत्मा अविनश्वर और अद्वितीय अवश्य है, परन्तु वह सब प्रकार से परमात्मा के अधीन है। परमात्मा के साथ जीवात्मा का अविच्छिन्न सम्बन्ध अवश्य है परन्तु इनमें अभेद नहीं है। ब्रह्मसम्प्रदायी मोक्ष या निःश्रेयस नहीं चाहते हैं। इनके मत से मोक्ष पाना मनुष्य के सामर्थ्य से बाहर है। इस मत में नारायण गुणातीत हैं, माया के संयोग से सत्त्व, रज और तम, ये त्रिगुण ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर रूप धारण कर के संसार की सृष्टि स्थिति और लय करते हैं। इनकी उपासना प्रणाली तीन प्रकार की है। अङ्कन, नामकरण, और भजन। शरीर में शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म आदि का चिह्न धारण करना अङ्कन कहा जाता है। विष्णु के नामानुसार अपने पुत्र पौत्र आदि का नाम

रखना नामकरण है। भजन दस प्रकार का है। अर्थात् सत्यवाक्य, हितकथा, प्रियवचन, स्वाध्याय, दान, परिरक्षण, दया, स्पृहा और श्रद्धा। विष्णु का अनुग्रह लाभ, उनके उत्कर्ष का ज्ञान आदि इस सम्प्रदाय का चरमलक्ष्य है। वेद रामायण महाभारत पञ्चरात्र और मध्वाचार्य प्रणीत ग्रन्थों का इस सम्प्रदाय में बड़ा आदर है। विष्णु इनके प्रधान आराध्य देव हैं। इस सम्प्रदाय के वैष्णवों के साथ शैवों का विरोध नहीं देखा जाता। क्योंकि इनके मन्दिर में शिव और विष्णु की एक स्थान पर पूजा की जाती है। इस सम्प्रदाय के अनुयायी तप्त लौहशलाका द्वारा अपने शरीर पर शङ्ख चक्र का चिह्न अकवाते हैं। "अतप्ततनुर्न तदा मोक्षमश्नुते" शङ्कराचार्य ने इस श्रुति की व्याख्या की है कि तपस्या द्वारा जिनका शरीर शुद्ध नहीं हुआ है वे मोक्ष के अधिकारी नहीं हैं। परन्तु मध्वाचार्यसम्प्रदायी इस अर्थ को नहीं मानते हैं। वे कहते हैं तप्त शलाका द्वारा शङ्ख चक्र अङ्कित कराना ही इस श्रुति का तात्पर्य है। इस सम्प्रदाय की प्रधानतः दो शाखाएँ हैं—व्यासकूट और दासकूट। व्यासकूट के वैष्णवों ने मध्वाचार्य के उपदेशों को कनाडी भाषा में गद्यपद्य में प्रकाशित किया है। उनकी उपासना में कनाडी भाषा ही का व्यवहार होता है। दासकूट संस्कृत भाषा की प्रधानता मानते हैं।

(भारतवर्षीय इतिहास)

ब्रह्माण्डपुराण=यह पुराण अठारहवाँ पुराण समझा जाता है। इस समय इस पुराण के अनेक अंश असंलग्न रूप से पाये जाते हैं, अतएव इस समय सम्पूर्ण ब्रह्माण्डपुराण का मिलना कठिन है। अध्यात्मरामायण इसी ब्रह्माण्ड पुराण के अन्तर्गत है। परन्तु आज जो ब्रह्माण्डपुराण प्रकाशित हुआ है उसमें अध्यात्मरामायण नहीं देखा जाता। अन्य पुराणों के वर्णन से जाना जाता है कि ब्रह्माण्डपुराण चार पादों में विभक्त है। प्रक्रियापाद, अनुपङ्गपाद, उपोद्घातपाद और उपसंहारपाद। इस समय जो ब्रह्माण्डपुराण पाया जाता है उसमें प्रक्रियापाद और अनुपङ्गपाद का कुछ भाग पाया जाता है। अध्यात्मरामायण तो इस समय एक पृथक् ग्रन्थ ही समझा जाता है। महाभाग सूत ने दृषद्वती नदी के तीर पर यक्षक्षेत्र में इस पुराण को वर्णित किया है। उनके वर्णन से विदित होता है कि उन्होंने इस पुराण को वेदव्यास से सुना था और उसके पहले वायु ने इस पुराण का वर्णन किया था। इस पुराण में कौन कौन विषय हैं यह बात इस पुराण के पहले अध्याय में लिखी गयी है। इस समय प्रधानतः नीचे लिखे विषय ब्रह्माण्डपुराण में पाये जाते हैं। सृष्टिप्रकरण, कल्पनिरूपण, युगभेद और मन्वन्तर-क्रम-कथन, जम्बूद्वीप-वर्णन और भारतवर्ष वर्णन, किम्पुरुष, अनुद्वीप, केतुमालवर्ष आदि का विवरण, भरतवंश, पृथुवंश, देववंश, ऋषिवंश, अग्निवंश और संहिताकारों का वंश वर्णन आदि विषय ब्रह्माण्डपुराण के हैं। ब्रह्माण्डपुराणान्तर्गत अध्यात्मरामायण के सात काण्ड हैं। प्रथम काण्ड में श्रीराम का ब्रह्मस्वरूपत्व कथन, राक्षसपीडित पृथिवी के उद्धार के लिये श्रीराम का अवतार ग्रहण, बाललीला, अहल्या उद्धार, भार्गवदर्पध्वंस आदि विषय वर्णित हैं। अयोध्याकाण्ड में श्रीरामचन्द्र का वनगमन, दशरथ का प्राणत्याग, आरण्यकाण्ड में मायामृग का वध, और सीताहरण, किष्किन्धाकाण्ड में बालीवध, सीता का अन्वेषण, सुन्दरकाण्ड में हनुमान् का लङ्काप्रवेश और राम के समीप सीता का संवाद आनयन, लङ्काकाण्ड में रावण-वध और श्रीराम का राज्याभिषेक और उत्तरकाण्ड में रावण आदि का जन्मविवरण सीता का वनवास, लक्ष्मण का त्याग, लव कुश आदि का राज्याभिषेक और रामचन्द्र का वैकुण्ठगमन आदि विषय वर्णित हैं। अध्यात्मरामायण में अनेक दार्शनिक तत्वों की व्याख्या की गयी है। इसमें रामगीता के दार्शनिक तत्वों का समावेश है। यहाँ के दर्शनतत्व की आलोचना से यह उपदेश पाया जाता है—

जिस प्रकार स्फटिक मणि किसी वस्तु का सम्बन्ध होने पर उसीके समान वर्ण

धारण करता है उसी प्रकार अन्नमय आदि कोषों के सम्बन्ध से जीव भी एक अन्य वस्तु के समान प्रतीत होता है । परन्तु "तत्त्वमसि" आदि वाक्यों के विचार करने से—जीव सम्बन्ध-शून्य, अज और अद्वितीय है यह बात मालूम पड़ती है । अध्यात्मरामायण में भी इसी उपदेश का उल्लेख किया गया है, वही उपमा भी वहाँ दी गयी है ।

"केषेष्वयं तेषु तु तत्तदाकृति-
विभाति सङ्गात् स्फटिकोपलो यथा ।
असङ्गरूपोयमजो यतोऽद्वयो
विज्ञायतेऽस्मिन् परितो विचारिते ॥"

ब्रह्माण्डपुराण का मुक्तिविचार रामगीता के विचार से बहुत मिलता है । ब्रह्म में लीन होने के विषय में रामगीता का उपदेश है—जीव अपने स्वरूप को हमसे अभिन्न समझता हुआ समुद्र में जलबिन्दु के समान, दूध में दूध के बिन्दु के समान, महाकाश में खण्ड आकाश के समान—मुझ में मिल जाता है ।

"आत्मन्यभेदेन विभावयन्निदं
भवत्यभेदेन मयात्मना तदा ।
यथा जलं वारिनिधौ यथा पयः
क्षीरे वियद्व्योम्न्यनिले यथानिलः ॥"

(भारतवर्षीय इतिहास)

ब्रह्मावर्त=भारत के प्राचीन एक भाग का नाम । मनुसंहिता में लिखा है सरस्वती और दृषद्वती इन दो देवनदियों के मध्य में जो देवनिर्मित देश है उस देश को विद्वान् ब्रह्मावर्त कहते हैं । यथा —

"सरस्वतीदृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम् ।
तं देवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्तं विदुर्बुधाः ॥"

(मनुसंहिता)

ब्राह्मण (ग्रन्थ)=वेद का एक भाग । कालानुसार शनैः मनुष्यों की धारणा शक्ति में ह्रास होते देख कर कारुणिक महर्षियों ने पहले तो वेदों को लिपिबद्ध किया, तदनन्तर वेद का कौन सूक्त याग यज्ञ आदि में किस प्रकार व्यवहृत होता है यह बात बताने के लिये वेदों के ब्राह्मण भाग की सृष्टि की । ब्राह्मणभाग गद्य में लिखे गये हैं वेद की शाखाओं की संख्या के अनुसार ब्राह्मणों की भी संख्या है । ब्राह्मणभाग पीछे से वेदों का उपसंहार भी समझा जाने लगा था ।

ऋग्वेद के दो ब्राह्मण हैं । एक का नाम ऐतरेय ब्राह्मण और दूसरे का नाम साङ्ख्यायन ब्राह्मण है । यजुर्वेद के भी दो ब्राह्मण हैं । शुक्लयजुर्वेद के ब्राह्मण का नाम शतपथ ब्राह्मण और कृष्णयजुर्वेद के ब्राह्मण का नाम तैत्तिरीय ब्राह्मण है । सामवेद के आठ ब्राह्मण हैं । कोई कोई कहते हैं कि "अद्भुत ब्राह्मण" नामक एक नवाँ ब्राह्मण सामवेद का था । जिनमें "ताण्ड्य महाब्राह्मण" आदि कतिपय ग्रन्थ पाये जाते हैं । अथर्ववेद के ब्राह्मण का नाम गोपथ ब्राह्मण है ।

ऊपर कहा गया है कि ब्राह्मण ग्रन्थ पीछे से वेदों के उपसंहार समझे जाने लगे । वैदिक मन्त्रों का कर्मकाण्ड में किस प्रकार उपयोग करना चाहिये प्रधानतः यही विषय ब्राह्मणों का प्रतिपाद्य है । प्रसङ्गतः कर्मकाण्ड तत्त्वों के उपदेश व्याज से और भी अनेक कथाएँ इनमें पायी जाती हैं । ब्राह्मणों में सृष्टितत्त्व की कथा वर्तमान है और भी अनेक पौराणिक कथाओं के मूल इनमें पाये जाते हैं । ब्राह्मणों में बलिदान प्रथा की प्रधानता देखी जाती है । जलप्लावन का उपाख्यान सर्व प्रथम ब्राह्मणों ही में लिखा मिलता है यह उपाख्यान शतपथ ब्राह्मण में इस प्रकार लिखा गया है—वैवस्वत मनु एक दिन तर्पण करते थे । उनकी अञ्जलि में एक छोटा मत्स्य आया और उसने कहा—आप मेरी रक्षा करें, मेरे द्वारा आपका उपकार होगा। मनु उस मत्स्य की रक्षा करने लगे । इसी बीच में वह मत्स्य इतना बड़ा हुआ कि अगत्या मनु उसको समुद्र में रखने के लिये बाध्य हुए । उसी समय उस मत्स्य ने मनु को सम्बोधन कर के कहा—अमुक वर्ष के अमुक दिन जलप्लावन से महाप्रलय होगा, आप एक समुद्री जहाज़ बनवा कर अपनी रक्षा का उपाय करें । मत्स्य की उस भविष्यवाणी के अनुसार जलप्लावन उपस्थित हुआ मनु ने जहाज़ पर चढ़ कर आत्मरक्षा की । जलप्लावन के समय मनु के जहाज़ को चला कर उस मत्स्य ने उत्तरीय पर्वत के शिखर पर एक वृक्ष के निकट

मनु की रक्षा की। उसी वृक्ष में जहाज़ बाँध कर मनु जलप्लावन के समय वहाँ ही ठहरे थे। पुनः जलप्लावन का वेग कम होने पर मनु वहाँ से नीचे उतरे। उस समय संसार के सभी पदार्थ नष्ट हो चुके थे। केवल एक मनु ही अपनी रक्षा कर सके थे। पुनः उन्हीं मनु से संसार के मनुष्यों की सृष्टि हुई। मन्वन्तर की भी उत्पत्ति उन्हींसे हुई। शतपथ ब्राह्मण के इसी उपाख्यान का पुराणों में दूसरा रूप बदला गया है और दूसरे देशों के ग्रन्थों में भी इस उपाख्यान का विशेष प्रभाव पड़ा है। बायबिल के नोया की कथा जो जानते हैं, इस उपाख्यान को पढ़ कर वे अवश्य ही समझ सकते हैं कि जलप्लावन के समय अरारत पर्वत पर नोया के जहाज़ का ठहरना शतपथ ब्राह्मण के इस उपाख्यान का दूसरा रूप है, अधिक क्या इसी कारण नोया और मनु को एक व्यक्ति प्रमाणित करने की अनेक विद्वान् चेष्टा करते हैं। शतपथ ब्राह्मण और ऐतरेय ब्राह्मण में सृष्टि-सम्बन्धी इसी प्रकार का एक और उपाख्यान देखा जाता है, उस उपाख्यान का सार यह है—सृष्टिकर्ता प्रजापति ने अपनी कन्या ऊषा से मनुष्य सृष्टि की। ऋग्वेद के ऊषा और सूर्य के स्तोत्र ही से इस कल्पना की सृष्टि हुई है। यह बात स्पष्ट ही जानी जाती है। ऋग्वेद में लिखा है सूर्य ऊषा के पीछे पीछे दौड़ रहे हैं। ऊषा के अनन्तर सूर्य की किरणें विस्तृत होती हैं इसका यही साफ़ अर्थ है। परन्तु कविकल्पना में ऊषा सुन्दरी कन्या बनायी गयी, सूर्य पिता प्रजापति बनाये गये, और इन दोनों का दुर्व्यवहार वर्णन कर के बीभत्सता की पराकाष्ठा दिखायी गयी। केवल मैं ही इस कल्पना को बीभत्स नहीं बता रहा हूँ। किन्तु शङ्कराचार्य के पहले जिन्होंने बौद्धों का घोर विरोध किया था, और हिन्दूधर्म की प्रधानता स्थापित की थी वह कुमारिल भट्ट भी इस कल्पना को बीभत्स बता गये हैं (देखो कुमारिल) तैत्तिरीय ब्राह्मण में यही सृष्टिप्रणाली दूसरे रूप से लिखी गयी है। सृष्टि के प्रारम्भ काल में जल के अतिरिक्त और कुछ भी पदार्थ नहीं था। उसी जल में एक कमल का पत्ता था। वराहरूप धारण कर के प्रजापति जल में घुस गये और भीतर से मिट्टी निकाल कर उन्होंने चारों तरफ़ फैला दी, उस समय पत्थरों के साथ मिल कर वह मिट्टी ही इस पृथिवी के रूप में परिवर्तित हुई। शतपथ ब्राह्मण में यह उपाख्यान दूसरे रूप से लिखा गया है। वहाँ लिखा है कि सृष्टि के पश्चात् प्रजापति से असुर और देवता उत्पन्न हुए। उस समय अपनी अपनी प्रधानता के लिये वे आपस में लड़ने लगे, उनके युद्ध से पृथिवी पद्मपत्र के समान काँपने लगी। इसी ब्राह्मण में एक स्थान पर लिखा है—सृष्टि के प्रारम्भ ही से प्रजापति ब्रह्मा विद्यमान थे। उन्होंने पहले जीव सृष्टि की, तदनन्तर पक्षी आदि की सृष्टि की। जब भोजन के अभाव से वे सभी मर गये तब ब्रह्मा ने स्तन में दूध उत्पन्न किया शतपथ और कौषीतकी ब्राह्मणों में शिव और रुद्र की प्रधानता कही गयी है। दक्ष पार्वती का पूजा प्रसङ्ग पहले पहल शतपथ ब्राह्मण ही में देखा गया था। असुरों को जीत कर देवताओं ने समस्त पृथिवी पर अपना अधिकार कर लिया यह विषय ऐतरेय और शतपथ ब्राह्मण में लिखा है। शतपथ ब्राह्मण के प्रारम्भ में विष्णु की प्रधानता देखी जाती है। इन्द्र ने विष्णु का सिर काट लिया था यह उपाख्यान भी शतपथ ब्राह्मण में है। सामवेद के ताण्ड्य ब्राह्मण में व्रात्य ब्राह्मणों का अर्थात् जो ब्राह्मण हो कर भी ब्राह्मण व्यवहार छोड़ कर दूसरा व्यवहार करते हैं—वर्णन लिखा है। ये व्रात्यगण ब्राह्मण वृत्ति छोड़ कर दूसरी वृत्ति ग्रहण करने से ब्राह्मणत्व-भ्रष्ट नहीं होते। ताण्ड्य ब्राह्मण में इसका उल्लेख है। यज्ञमाहात्म्य और यज्ञ की प्रणाली के वर्णन सम्बन्ध में ब्राह्मणभागों में और भी अनेक आख्यायिकाओं का उल्लेख पाया जाता है। ऐतरेय ब्राह्मण में हरिश्चन्द्र और शुनःशेप के प्रसङ्ग में नरबलि का उल्लेख है। वहाँ लिखा है कि राजा हरिश्चन्द्र अपने पुत्र रोहितक को बलि देना चाहते थे, परन्तु पुत्र ने पिता का कहना न माना अतएव राजा हरिश्चन्द्र ने शुनःशेप को समझा बुझा कर उनके पुत्र शुनःशेप

की बलि देने की व्यवस्था की। शुनःशेप देवताओं की स्तुति कर के उससे बच गये। रामायण भागवत विष्णुपुराण आदि में भी शुनःशेप की कथा वर्तमान है। रामायण में लिखा है कि शुनःशेप के पिता का नाम ऋचीक था और अयोध्या के राजा के निकट वह बेचा गया था। परन्तु विश्वामित्र के कहने से उसने देवताओं की स्तुति की और वह बच गया। सम्भव है कि ऋग्वेद के एक सूक्त को अवलम्बन कर के ऐतरेय ब्राह्मण में शुनःशेप के बलिदान की कथा लिखी गयी है। वैदिक काल में नरमेध प्रथा प्रमाणित करने वाले के लिये शुनःशेप की कथा एक ब्रह्मास्त्र है। इस कथा के प्रचारक सायणाचार्य हैं, ऋग्वेद नहीं।

भ

भगदत्त=प्राग्ज्योतिषपुर के राजा। यह नरकासुर का ज्येष्ठ पुत्र था। श्रीकृष्ण ने नरक को मार कर उसके पुत्र भगदत्त को प्राग्ज्योतिषपुर के सिंहासन पर बैठाया। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के समय यज्ञीय अश्व प्राग्ज्योतिषपुर में उपस्थित हुआ था। अर्जुन उसके रक्षक थे। भगदत्त ने उस घोड़े को रोक लिया, और वह अर्जुन के साथ ८ दिनों तक युद्ध करता रहा अन्त में परास्त हो कर भगदत्त ने युधिष्ठिर की अधीनता स्वीकार की। महाभारत युद्ध के समय इसने कौरवों का पक्ष ले कर पाण्डवों से युद्ध किया था। इसने युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, घटोत्कच, अभिमन्यु, विराट, सात्यकि आदि वीरों से घोर युद्ध किया था। यह कौरव पक्ष का प्रधान वीर समझा जाता था। द्रोण के सेनापतित्व में इसने अर्जुन से घोर युद्ध किया था, और उसी युद्ध में यह मारा गया। अर्जुन को मारने के लिये भगदत्त ने वैष्णवास्त्र का प्रयोग किया था परन्तु श्रीकृष्ण ने उस अस्त्र को स्वयं अपनी छाती से रोक लिया।

(महाभारत)

भगवतरसिक=ये भाषा के भक्त कवि वृन्दावन के निवासी थे। इनके पिता का नाम माधवदास जी था और ये हरिदास जी के शिष्य थे। सं० १६०१ में ये उत्पन्न हुए थे। इनकी बनायी कुण्डलियों का कविसमाज में बड़ा आदर है।

भगवतीदास=ये भाषा के कवि और ब्राह्मण थे। इनका जन्म संवत् १६८८ में हुआ था। इनका बनाया भाषा में "नचिकेतोपाख्यान" है जिसकी कविता मनोरम है।

भगवन्तराय=ये भाषा के कवि थे। इन्होंने तुलसीदास कृत मानसरामायण के सातों काण्डों का कवित्तों में अनुवाद किया है। इनकी रचना अद्भुत है, कविता भी सरस और मनोहर है। इनके विषय में इससे अधिक और कुछ पता नहीं लगा है।

भगवानदास=ये कवि मथुरा के निवासी थे और सं० १५६० में उत्पन्न हुए थे। इनके बनाये पद रागसागरोद्भव में पाये जाते हैं।

भगवानदास निरञ्जनी=ये भाषा के कवि थे। भर्तृहरिशतक का भाषा कवित्तों में इन्होंने अनुवाद किया है। इनके नाम में "निरञ्जनी" पद देख कर ऐसा सन्देह करने का अवसर मिलता है कि ये निरञ्जन सम्प्रदाय के संन्यासी थे परन्तु इसका कोई पुष्ट प्रमाण न मिलने के कारण इस सन्देह का न उठाया जाना ही अच्छा है।

भगवानहित=ये भाषा के कवि थे। इनका पूरा नाम भगवानहितरामराय था। इनके पद रागसागरोद्भव में पाये जाते हैं।

भगीरथ=सूर्यवंशी एक राजा। इनके पिता का नाम दिलीप और पितामह का नाम अंशुमान् था। महाराज दिलीप भगीरथ को राज्यभार दे कर हिमालय के शिखर पर तपस्या करने के लिये चले गये। वहाँ उन्होंने बहुत दिनों तक तपस्या की, तदनन्तर देहपात कर के स्वर्ग प्राप्त किया। पिता की मृत्यु के बाद भगीरथ राज्य पा कर चिन्ता करने लगे कि किस प्रकार गङ्गा स्वर्ग से लायी जा सकती हैं। भगीरथ प्रजावत्सल और धर्मात्मा राजा थे, परन्तु अभाग्यवश उनके कोई पुत्र नहीं था। मन्त्रियों को राज्य का भार सौंप कर गङ्गा को ले आने के लिये वे निकल पड़े। भगीरथ हिमालय के गोकर्ण तीर्थ पर उपस्थित हुए और वहाँ ऊर्ध्वबाहु हो कर घोर तपस्या करने लगे। भगवान्

ब्रह्मा, भगीरथ की सहस्र वर्ष की तपस्या से प्रसन्न हो कर उन्हें वर देने के लिये उपस्थित हुए। भगीरथ ने ये दो वर माँगे। (१) कपिल के शाप से भस्म हुए हमारे साठ हज़ार प्रपितामह गङ्गा के जल से पवित्र हो कर स्वर्गगामी हों। और (२) सन्तान के अभाव से हमारा वंश लुप्त न होने पावे। ब्रह्मा ने प्रथम वर के उत्तर में कहा—तुम्हारी कामना पूर्ण होगी, परन्तु गङ्गा के पतनवेग को पृथिवी सहन नहीं कर सकेगी और महादेव के अतिरिक्त और कोई उस वेग को धारण भी नहीं कर सकेगा। अतः महादेव गङ्गा को धारण करना स्वीकार करें इसका प्रबन्ध तुम करो। द्वितीय वर के उत्तर में ब्रह्मा ने कहा—तुम्हारे वंश की रक्षा होगी। ब्रह्मा के कहने से भगीरथ तप द्वारा महादेव को प्रसन्न करने का प्रयत्न करने लगे। एक वर्ष कठोर तपस्या करने पर महादेव उनके समीप आये। महादेव बोले—"तुम्हारी इच्छा के अनुसार मैं गङ्गा को धारण करूँगा।" महादेव के मस्तक पर बड़े वेग से गङ्गा गिरने लगीं। एक बार गङ्गा की इच्छा हुई थी कि तीव्र वेग से गिर कर महादेव को लिये हुए पाताल चली जाऊँ, परन्तु भूतनाथ महादेव ने गङ्गा का यह गर्वभाव जान कर अपनी जटा ही में गङ्गा को हज़ार वर्ष तक छिपा रखा। महादेव के जटाजूट से गङ्गा को बाहर निकलते न देख कर भगीरथ पुनः महादेव की स्तुति करने लगे। भगीरथ की स्तुति से प्रसन्न हो कर महादेव ने अपने जटाजूट से गङ्गा को बाहर निकाल दिया गङ्गा महादेव के मस्तक से सात स्रोत ले भूमि पर उतरीं। ह्लादिनी, पावनी और नलिनी नामक तीन प्रवाह पूर्व की ओर बहे और वङ्क्षु, सीता तथा सिन्धु नामक तीन प्रवाह पश्चिम की ओर गये और बचा हुआ एक प्रवाह भगीरथ के बताये मार्ग से चला। भगीरथ पैदल गङ्गा के साथ नहीं चल सकते इस कारण उन्हें एक रथ दिया गया था। भगीरथ की कामना पूर्ण हुई। भगीरथ के बताये मार्ग से जो गङ्गा का प्रवाह चला वह भागीरथी नाम से प्रसिद्ध हुआ। (रामायण)

महात्मा भगीरथ अत्यन्त दानी थे। वे ब्राह्मणों को अधिक धन दिया करते थे।

भट्ट कल्लट=ये काश्मीरी संस्कृत पण्डित हैं। इनके गुरु का नाम वसुगुप्त है। वसुगुप्त ने "स्पन्दकारिका" नाम का एक ग्रन्थ बनाया था और उस पर "स्पन्दसर्वस्व" नाम की टीका भट्ट कल्लट ने लिखी है। ये काश्मीर के राजा अवन्तिवर्मा के समकालीन हैं अवन्तिवर्मा का समय राजतरङ्गिणी के निर्देशानुसार सन् ८५५ ई० से ८८४ ई० तक विदित होता है। अतः भट्ट कल्लट ख्रीष्टीय नवीं सदी के पिछले भाग के माने जा सकते हैं। इनके पुत्र का नाम मुकुल था और वे प्रसिद्ध आलङ्कारिक थे। भट्ट कल्लट शैवमत के थे।

भट्ट नारायण=शाण्डिल्यगोत्रज वङ्गीय बन्द्योपाध्याय ब्राह्मणों के आदिपुरुष तथा विख्यात नाटक वेणीसंहार के रचयिता। बङ्गाल के सेनवंशीय प्रथम राजा आदिशूर ने कान्यकुब्ज से जो पाँच ब्राह्मण बुलवाये थे, उनमें एक भट्ट नारायण भी हैं। आदिशूर के यज्ञ समाप्त होने पर वे पाँचों ब्राह्मण अपने देश में लौट आना चाहते थे। परन्तु राजा ने उन्हें किसी प्रकार आने नहीं दिया, राजा के सविनय प्रार्थना करने पर उन ब्राह्मणों ने भी बङ्गाल में रहना ही स्थिर किया। राजा ने प्रत्येक ब्राह्मण को आदरपूर्वक एक एक गाँव दिया। उन ग्रामों के नाम ये हैं—पञ्चकोटि, कामकोटि, हरिकोटि, कङ्कग्राम और वटग्राम। अन्य चार ब्राह्मणों के समान भट्ट नारायण केवल कान्यकुब्ज से स्त्री पुत्र ही ले कर नहीं गये थे किन्तु वे अधिक धन रत्न भी अपने साथ ले गये थे। राजा आदिशूर ने जब अपने दिये हुए ग्राम को ग्रहण करने के लिये कहा तब भट्ट नारायण ने बड़े अहङ्कार से दान ग्रहण करना अस्वीकार किया। उन्होंने कहा—मेरे पास अधिक धन है, मैं उससे गाँव ख़रीद सकता हूँ। कहते हैं भट्ट नारायण ने राजा का दिया गाँव न ले कर अपने धन से गाँव ख़रीदा था।

डा० राजेन्द्रलाल मित्र के कथनानुसार आदिशूर ही का नामान्तर वीरसेन है उक्त महाशय

तथा रमेशचन्द्रदत्त के भी निर्देशानुसार बङ्गाल में राजा वीरसेन का समय सन् ९८६ ई० से १००६ ई० तक अनुमित होता है । भट्ट नारायण जी ने आदिशूर को अपना परिचय नीचे लिखे श्लोक द्वारा दिया था ।

"वेणीसंहारनामा परमरसयुतो ग्रन्थ एकः प्रसिद्धो,
भो राजन् मत्कृतोऽसौ रसिकगुणवता यत्नतो गृह्यते सः ।
नाम्नाहं भट्टनारायण इति विदितश्चारुशाण्डिल्यगोत्रो
वेदे शास्त्रे पुराणे धनुषि च निपुणःस्वस्ति ते स्यात्किमन्यत्॥"

इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि बङ्गाल में आने के पहले ही भट्ट नारायण "वेणीसंहार" नामक नाटक बना चुके थे और यह ग्रन्थ प्रसिद्ध भी हो चुका था । निदान बङ्गाल के राजा आदिशूर के समसामयिक होने के कारण भट्ट नारायण का समय ख़ीष्टीय १० वीं सदी निश्चित होता है । इनके रचित वेणीसंहार के श्लोक बहुधा काव्यप्रकाश में उद्धृत किये गये हैं । भट्ट नारायण के बनाये एक ग्रन्थ का नाम "प्रयोगरत्न" है । मालूम नहीं "प्रयोगरत्न" का पता अभी किसी को लगा है कि नहीं।

भट्ट नारायण के पिता का नाम भट्ट माहेश्वर था । क्योंकि "भट्टमाहेश्वरसुतो भट्टनारायणः सुधीः" ऐसा श्लोकार्ध सुनने में आता है ।

ब्यूलर साहब ने काश्मीर के शैवदार्शनिक लक्ष्मण गुप्त को उत्पल और भट्ट नारायण का शिष्य बतलाया है । ये लक्ष्मण गुप्त सन् ९५० ई० में विद्यमान थे । आश्चर्य नहीं कि ये भट्ट नारायण "वेणीसंहार" के रचयिता ही हों। वेणीसंहार के श्लोक "ध्वन्यालोक" नामक ग्रन्थ में आनन्दवर्द्धन ने उद्धृत किये हैं ।

भट्ट लोल्लट=काव्यप्रकाशकार ने "रसनिरूपण" में इनकी सम्मति उद्धृत की है। राजा नकरुय्यक ने भी "अलङ्कारसर्वस्व" में इनके मत को उठाया है, अतएव ये मम्मट भट्ट से प्राचीन सिद्ध होते हैं । इनके रचित किसी ग्रन्थ का पता अभी तक नहीं लगा है । इनके नाम से मालूम पड़ता है कि ये काश्मीरी हैं । इनका समय ख़ीष्टीय ११ वीं सदी से पहले नहीं हो सकता, परन्तु उसके पूर्व कब तक इनके होने की सम्भावना है यह बात नहीं बतलायी जा सकती ।

भट्टोजी दीक्षित=संस्कृत व्याकरण के प्रसिद्ध ग्रन्थ "सिद्धान्तकौमुदी" के रचयिता । सिद्धान्तकौमुदी बना कर इन्होंने पाणिनी व्याकरण को प्राञ्जल और सुपाठ्य बना दिया है । इनके पिता का नाम लक्ष्मीधर सूरि, और पुत्र का नाम भानुजी दीक्षित था । भट्टोजी दीक्षित ने सिद्धान्तकौमुदी को छोड़ कर और ३३ ग्रन्थ बनाये हैं । जिनमें कतिपय ग्रन्थों का नाम नीचे लिखा जाता है—अद्वैतकौस्तुभ, धातुपाठ, आचारप्रदीप, लिङ्गानुशासनसूत्रवृत्ति, अशौचनिर्णय, आह्निककारिका, तिथिनिर्णय, प्रौढ़मनोरमा, मासनिर्णय, तीर्थयात्राविधि, शब्दकौस्तुभ और उणादिसूत्रवृत्ति ।

भट्टोत्पल=ये एक प्रसिद्ध ज्योतिषी हैं । इन्होंने वराहमिहिर के प्रायः सभी ग्रन्थों पर टीका लिखी है । वराहमिहिर की "पञ्चसिद्धान्तिका" पर इनकी बनायी टीका नहीं मिलती, इससे लोग अनुमान करते हैं कि पञ्चसिद्धान्तिका पर की इनकी बनायी टीका लुप्त हो गयी हो अथवा इन्होंने बनायी ही न हो । प्राचीन ज्योतिषियों ने इन्हें भट्टोत्पल नाम से स्मरण किया है, परन्तु इन्होंने अपना नाम केवल उत्पल ही लिखा है । बृहज्जातक की टीका में इन्होंने अपना समय ८८८ शाके अर्थात् सन् ९६६ ई० लिखा है अतएव इनका समय १० वीं सदी ही निश्चित है ।

भट्टोद्भट=संस्कृत के एक विद्वान् और कवि । राजतरङ्गिणी के चौथे अध्याय में लिखा है "भट्टोऽभूदुद्भटस्तस्य भूमिभर्तुः सभापतिः" जिससे जान पड़ता है कि ये महाशय काश्मीर के राजा जयापीड़ के सभासद् थे । महाराज जयापीड़ का राज्यकाल सन् ७७९ ई० से ले कर ८१२ ई० तक निश्चित हुआ है । अतएव भट्टोद्भट का समय भी काश्मीर के राजा जयापीड़ के समयानुसार ख़ीष्टीय आठवीं सदी का आरम्भ माना जाना ही उचित है ।

इनके बनाये ग्रन्थ का नाम "अलङ्कारसार-संग्रह" है जिसकी टीका प्रतीहारेन्दुराज ने रची है। इनका बनाया "कुमारसम्भव" नामक कोई काव्य भी था, जिसका एक श्लोक नीचे उद्धृत किया जाता है—

"या शैशिरी श्रीस्तपसा मासेनैकेन विश्रुता।
तपसा तां सुदीर्घेणादूर्णवद्दधतीमधः॥"

इस श्लोक के एक "तपस" शब्द का अर्थ माघ मास है, और दूसरे का शरीर को कष्ट देने वाली तपस्या है। उक्त श्लोक से इनकी प्रौढ़ कवित्वशक्ति स्पष्ट ही मालूम पड़ती है। इनके समसामयिक "कुट्टनीमत" के रचयिता दामोदर गुप्त और वामन आदि विद्वान् हैं। ये काश्मीरी थे, व्याकरण अलङ्कार और काव्य में इनकी अनुपम अभिज्ञता थी।

काव्यप्रकाश के टीकाकारों ने कहीं इन्हें उद्भट कहीं उद्भट भट्ट और किसी किसी स्थान में उद्भटाचार्य लिखा है। "अलङ्कारसारसंग्रह" और "कुमारसम्भव काव्य" इन ग्रन्थों को छोड़ कर भट्टोद्भट के अन्य किसी ग्रन्थ का पता नहीं चलता।

भद्रकाया=प्राचीन एक आयुर्वेदवेत्ता। चरक संहिता में भिषक्सम्मिलन के उपलक्ष में इनका नाम आया हुआ है।

भद्राश्ववर्ष=राजा प्रियव्रत के पुत्र अग्नीध्र के नौ पुत्र थे। राजा अग्नीध्र ने अपने नौ पुत्रों को अपना राज्य जम्बुद्वीप समभाग में बाँट दिया। उनके आठवें पुत्र का नाम भद्राश्व था। भद्राश्व को जो जम्बुद्वीप का भाग मिला वह भद्राश्ववर्ष नाम से प्रसिद्ध हुआ। विष्णु-पुराण में लिखा है कि भद्राश्व को मेरु का पूर्व भाग दिया गया था वही भद्राश्ववर्ष नाम से भी प्रसिद्ध है।

भरत=(१) नाट्यशास्त्रप्रवर्तक आचार्य। महर्षि वाल्मीकि के समय में महर्षि भरत नाट्यशास्त्र के प्रधान अध्यापक थे इसका प्रमाण पाया जाता है। इनके समय में नाट्यशास्त्र की विशेष उन्नति हुई थी इसके प्रमाण पाये जाते हैं। परन्तु नाट्याचार्य भरत मुनि और वाल्मीकि के समय के भरत मुनि दोनों एक हैं कि नहीं इसका पता लगाना कठिन है क्योंकि एक ही वंश में दो भरत मुनि का होना पाया जाता है। परन्तु प्रमाणों से यह बात निश्चित है कि नाट्यशास्त्र के प्रधान आचार्य ये ही हैं। महाकवि कालिदास अपने विक्रमोर्वशी में लिखते हैं—

"मुनिना भरतेन यः प्रयोगो भवतीष्वष्टरसाश्रयो निबद्धः।
ललिताभिनयं तमद्यभर्ता मरुतां द्रष्टुमना सलोकपालः॥"

अर्थात् तुम लोगों को (अप्सराओं को) भरत मुनि ने जो आठो रसों का अभिनय बताया है, उस ललित अभिनय को देखने के लिये लोकपालों के साथ देवराज इन्द्र उत्कण्ठित हैं। इससे भरत की प्राचीनता और नाट्यशास्त्रों की प्रवर्तकता स्पष्ट ही सिद्ध है। भरत मुनि का बनाया नाट्यसूत्र प्रसिद्ध ही है। भरत मुनि ने नाट्यशास्त्र की उत्पत्ति का क्रम इस प्रकार बतलाया है—

पूर्वं कृतयुगे विप्रा वृत्ते स्वायम्भुवेऽन्तरे।
त्रेतायुगे संप्रवृत्ते मनोर्वैवस्वतस्य च॥
ग्राम्यधर्मे प्रवृत्ते तु कामलोभवशं गते।
ईर्ष्याक्रोधादिसंमूढे लोके सुखितदुःखिते॥
देवदानवगन्धर्वरक्षोयक्षमहोरगैः।
जम्बूद्वीपे समाक्रान्ते लोकपालप्रतिष्ठिते॥
महेन्द्रप्रमुखैर्देवैरुक्तः किल पितामहः।
क्रीडनीयकमिच्छामो दृश्यं श्रव्यञ्च यद्भवेत्॥
न च वेदविहारोऽयं संश्राव्यः शूद्रजातिषु।
तस्मात्सृजापरं वेदं पञ्चमं सार्ववर्णिकम्॥
एवमस्त्विति तानुक्त्वा देवराजं विसृज्य च।
सस्मार चतुरो वेदान् योगमास्थाय तत्त्ववित्॥
धर्म्यमर्थ्यं यशस्यञ्च सोपदेशं ससंग्रहम्।
भविष्यतश्च लोकस्य सर्वकर्मानुदर्शकम्॥
सर्वशास्त्रार्थसम्पन्नं सर्वशिल्पप्रवर्तकम्।
नाट्याख्यं पञ्चमं वेदं सेतिहासं करोम्यहम्॥
सङ्कल्पभगवानेवं सर्वान् वेदाननुस्मरन्।
नाट्यवेदं ततश्चक्रे चतुर्वेदाङ्गसम्भवम्॥
जग्राह पाठ्यमृग्वेदात् सामभ्यो गीतमेव च।
यजुर्वेदादभिनयान् रसानाथर्वणादपि॥
वेदोपवेदैः संबद्धो नाट्यवेदो महात्मना।
येन नारदसंयुक्तो वेदवेदाङ्गकारणम्॥
उपस्थितोऽहं लोकेशं प्रयोगार्थं कृताञ्जलिः।
नाट्यस्य ग्रहणं प्राप्तं ब्रूहि किं करवाण्यहम्॥

इन श्लोकों का भावार्थ यह है महर्षि भरत, मुनियों को सम्बोधन कर के कहते हैं—पहले स्वायम्भुव मन्वन्तर बीत जाने पर जब वैवस्वत मन्वन्तर आया ग्राम्य धर्म प्रवृत्त हुआ, काम और लोभ के कारण मनुष्यों में ईर्ष्या द्वेष उत्पन्न हुआ, मनुष्यों में सुख दुःख की समानता हुई, जम्बूद्वीप में देव दानव गन्धर्व यक्ष राक्षस आदि जब बस गये, तब इन्द्र प्रमुख देवताओं ने ब्रह्मा से कहा—हमलोग एक प्रकार का खेल चाहते हैं जो दृश्य और श्रव्य दोनों हों, वेद शूद्रों को नहीं सुनाये जा सकते अतएव आप एक ऐसा पाँचवाँ वेद बनावें जिसे सब वर्ण के लोग सुन सकें। यह सुन कर ब्रह्मा ने "एवमस्तु" कहा और इन्द्र को बिदा कर के चारों वेदों का स्मरण किया। तदनन्तर ब्रह्मा ने सङ्कल्प किया कि इतिहास सहित नाट्य नामक पाँचवाँ वेद मैं बनाऊँगा जिससे धर्म अर्थ यश और उपदेश भी प्राप्त होंगे। जिसमें सभी शास्त्रों के रहस्य रहेंगे। ऐसा सङ्कल्प कर के ब्रह्मा ने चारों वेदों से नाट्यशास्त्र बनाया। गद्य ऋग्वेद से, सामवेद से गीत, यजुर्वेद से अभिनय और अथर्ववेद से रस लेकर नाट्यशास्त्र ब्रह्मा ने बनाया। मैं नारद के संबन्ध से इस शास्त्र को जानता हूँ। आप लोगों के सामने अभिनय के लिये उपस्थित हूँ क्या आज्ञा है।

(२) ये अयोध्याधिपति महाराज दशरथ के पुत्र थे, महारानी केकयी के गर्भ से इनकी उत्पत्ति हुई थी। श्रीरामचन्द्रजी तो आदर्श पुरुषोत्तम थे ही, लक्ष्मण की भ्रातृभक्ति संसार में बेजोड़ है, परन्तु इसमें भी सन्देह नहीं कि भरत की महत्ता और उदारता संसार में कहीं भी नहीं मिलेगी। जिस राज्य के लिये लालायित हो कर कितने ही राजपुत्र अत्यन्त निन्दित और घृणित कार्य करने से भी नहीं रुकते, वही राज्य, सो भी छोटा मोटा नहीं—कोशल राज्य भरत को मिला है परन्तु महात्मा भरत उसे नहीं चाहते हैं। जिस समय अयोध्या में राज्य के लिये अकाण्ड ताण्डव हुआ था उस समय उदारहृदय महात्मा भरत अयोध्या में नहीं थे, वे अपने मामा युधाजित के यहाँ केकय देश में गये हुए थे। आने पर उन्होंने सब वृत्तान्त सुना, उसके लिये उन्होंने अपनी परमपूज्य माता को कितनी ही उलटी सीधी सुनायीं। इस काण्ड स भरत का हृदय चूर चूर हुआ ही था। ऊपर से कौशल्या के उपालम्भ युक्त वचनों की वृष्टि ने उन्हें और भी अधमरा बना दिया। ऐसी स्थिति में सम्भव है, दूसरा घबड़ा जाय और लक्ष्यच्युत हो जाय, परन्तु महात्मा भरत उस पर भी प्रकृतिस्थ ही रहे। भरत जब रामचन्द्र को अयोध्या में लौटा ले आने के लिये गये और नन्दीग्राम में श्रीरामचन्द्र से मिले, तब लक्ष्मण की सन्देहदृष्टि का बोध होने पर भरत ने उधर कुछ भी ध्यान नहीं दिया था। भरत का चरित देवतुल्य है। अतएव दशरथ ने कहा है—

"गुणैः श्लाघ्यो हि मे रामो भरतस्तु विशिष्यते।"

(३) पुरुवंशी दुष्यन्त राजा के पुत्र। राजा दुष्यन्त ने महर्षि कण्व की कन्या शकुन्तला को गान्धर्वविधि से व्याहा था। राजधानी में जा कर राजा दुष्यन्त शकुन्तला को भूल गये। कण्व के आश्रम ही में शकुन्तला के एक पुत्र उत्पन्न हुआ। वह पुत्र महाउद्धत था, सिंह के बच्चों को पकड़ लिया करता था इस कारण उसका नाम महर्षियों ने सर्वदमन रखा था। तदनन्तर शकुन्तला पुत्र को ले कर राजा के पास गयी, राजा ने पहले तो शकुन्तला को रखने में अपनी असम्मति प्रकट की, परन्तु पुनः देववाणी होने पर उन्होंने शकुन्तला और पुत्र को भी रख लिया। राजा ने पुत्र का नाम भरत रखा क्योंकि देववाणी हुई थी कि "तुम पुत्र का भरण करो"। इसी कारण शकुन्तलापुत्र सर्वदमन का नाम भरत पड़ा। भरत चक्रवर्ती राजा थे। ब्रह्मपुराण में लिखा है कि इन्हीं भरत के नाम पर भारतवर्ष की सृष्टि हुई है। भरत ने गङ्गा के तीर पर ५५ अश्वमेध यज्ञ किये थे और यमुनातीर पर ७८ अश्वमेध यज्ञ के घोड़े उन्होंने बाँधे थे। दिग्विजययात्रा कर के उन्होंने किरात, हूण, यवन, पौण्ड्र, कङ्क, खश, शक और भी अनेक म्लेच्छ-

जातीयों का नाश किया था। पहले जो दानव देवाङ्गनाओं को जीत कर पाताल में ले गये थे भरत ने उन सब का उद्धार किया। उनके राज्य के समय में प्रजाओं के सभी अभिलाष पूर्ण होते थे। भरत की तीन महारानियाँ थीं जो विदर्भदेश की रहने वाली थीं। उनके गर्भ से भरत को नौ पुत्र उत्पन्न हुए थे परन्तु वे पुत्र निस्तेज थे इसी कारण महारानियों ने उन पुत्रों को मार डाला।

(४) राजा ऋषभ के पुत्र। राजा ऋषभ ने इसके लिये विशेष प्रयत्न किया था कि उनके पुत्र धार्मिक हों। राजा ऋषभ अपने प्रयत्न में सफल भी हुए थे। भरत ऋषभ के ज्येष्ठ पुत्र थे। ये भी अपने पिता की शिक्षा के अनुसार राज्य पालन करते थे। इनकी प्रजावत्सलता प्रसिद्ध हो गयी थी। ये याग यज्ञ आदि में सर्वदा रत रहा करते थे। बहुत दिनों तक राज्य भोग कर के राजा भरत ने हरिक्षेत्र पुलस्त्याश्रम में जा कर संन्यास ग्रहण किया। परन्तु उस समय तक भी इनके हृदय से वासना नहीं हटी थी, अतएव वे मुक्तिमार्ग से पीछे हट गये। (देखो जड़भरत)

भरत मल्लिक=वैद्यकुलोत्पन्न विख्यात संस्कृतज्ञ पण्डित। ये बङ्गाल के निवासी थे। इनके पिता का नाम गौराङ्गमल्लिक था। इन्होंने अपनी विद्वत्ता के कारण "महामहोपाध्याय," और "यशश्चन्द्रराय" की उपाधि प्राप्त की थी। बहुत लोग इन्हें भरतसेन भी कहते हैं। इनकी बनायी मुग्धबोधबोधिनी, भट्टी काव्य की टीका, नलोदय की टीका, किरातार्जुनीय की टीका और कुमारसम्भव की टीका प्रसिद्ध हैं। इन पाँच टीकाओं के अतिरिक्त उपसर्गवृत्ति कारकोल्लास, द्रुतबोध व्याकरण आदि ग्रन्थ इनके बनाये हैं। उपसर्गवृत्ति में लिखा है कि १७५८ शाके अर्थात् १८३६ ई० में ये वर्तमान थे।

"शाकेऽष्टशरसप्तेन्दुमिते चाषाढके कुजे।
समाप्ता चोपसर्गाणां वृत्तिः प्रतिपदिन्दुभे॥"

भरद्वाज=विख्यात प्राचीन आर्यऋषि। उतथ्य की पत्नी ममता के गर्भ से और उसके सहोदर बृहस्पति के वीर्य से इनकी उत्पत्ति हुई थी। ममता गर्भवती थी उसी समय छिप कर बृहस्पति उसके पास गये। गर्भ ने निषेध भी किया था परन्तु बृहस्पति ने नहीं माना। गर्भस्थ बालक ने क्रुद्ध हो कर चरण द्वारा शुक्र प्रवेश का मार्ग रोक दिया। इससे शुक्र भूमि में गिर पड़ा। बृहस्पति के शाप से गर्भस्थ बालक अन्धा हो गया और उसका नाम दीर्घतमा पड़ा। भूमिपतित शुक्र से एक पुत्र उत्पन्न हुआ। ममता इस पुत्र का त्याग करना चाहती थी, परन्तु बृहस्पति ने ऐसा करने से निषेध किया। बृहस्पति ने कहा इसका भरण करो, इस कारण दोनों में विवाद होने लगा। विवाद का फल यह हुआ कि उस बालक को छोड़ कर दोनों चले गये। अनन्तर देवताओं ने उस पुत्र को ले कर दुष्यन्तपुत्र राजा भरत को अर्पण किया। देवताओं ने उस पुत्र को राजा के हाथ में समर्पण करने के समय "भर" कहा था और वह दो से उत्पन्न था ही इस कारण उसका नाम भरद्वाज पड़ा। इनका दूसरा नाम वितथ था क्योंकि राजा भरत के कोई सन्तान नहीं था उनका वंश वितथ होना ही चाहता था। इसी कारण भरद्वाज का दूसरा नाम वितथ पड़ा।

ये आयुर्वेद के एक आचार्य थे। भावप्रकाश में लिखा है कि व्याधिग्रस्त प्राणियों का दुःख दूर करने के लिये मुनियों के परामर्श से महर्षि भरद्वाज इन्द्रपुरी गये और वहाँ इन्होंने आयुर्वेद का अध्ययन किया। वहाँ से समग्र आयुर्वेद का अध्ययन कर के ये पुनः मर्त्यलोक में लौट आये, और इन्होंने आयुर्वेद की शिक्षा मुनियों को दी। उनसे शिक्षा पा कर मुनियों ने आयुर्वेद का प्रचार किया।

भर्तृहरि=ये उज्जयिनी के राजा विक्रमादित्य के ज्येष्ठ भ्राता थे। विक्रमादित्य के पिता गन्धर्वसेन के औरस और एक दासी के गर्भ से इनकी उत्पत्ति हुई थी। कुछ दिनों तक इन्होंने उज्जयिनी का राज्य भी किया था। तदनन्तर अपनी स्त्री की दुश्चरित्रता से खिन्न हो कर इन्होंने राज्य छोड़ कर संन्यास ग्रहण किया। इनका

नाम "हरि" था। अतएव कैय्यट ने कहा है "तथापि हरिबद्धेन सारेण ग्रन्थसेतुना"। इनके नाम के साथ जो भर्तृ पद का प्रयोग किया गया है वह प्रजापालन करने के कारण है। व्याकरण महाभाष्य की सार नाम की एक व्याख्या इन्होंने बनायी थी। वाक्यप्रदीप और शतकत्रय भी इन्हींका बनाया है। सार ग्रन्थ की सारवत्ता संसार प्रसिद्ध है। उसीके आधार पर काश्मीरी पण्डित कैय्यट ने महाभाष्य पर प्रदीप नाम की व्याख्या की है। वाक्यप्रदीप में वाक्य और पद का विचार किया गया है। यह व्याकरण विज्ञान का बे जोड़ ग्रन्थ है। वाक्यप्रदीप पर हेलाराज और पुञ्जराज की बनायी टीका है। हेलाराज कल्हण से प्राचीन हैं।

भवभूति=संस्कृत के एक प्रधान नाटककार। इनके बनाये तीन प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। वीरचरित, उत्तरचरित और मालतीमाधव। यद्यपि इन नाटकों में क्रमशः वीर करुण और शृङ्गार रस निबद्ध किये गये हैं तथापि भवभूति करुण रस के प्रधान लेखक हैं। जिस प्रकार अन्यान्य कवियों ने शृङ्गार रस को आदि रस माना है। उसी प्रकार भवभूति करुण रस को ही आदि मानते हैं। इन्होंने उत्तरचरित में कहा है—

"एको रसः करुण एव निमित्तभेदाद्
भिन्नः पृथक् पृथगिव श्रयते विवर्तान्।
आवर्तबुद्बुदतरङ्गमयान् विकारान्
अम्भो यथा सलिलमेव हि तत्समस्तम्॥"

अर्थात् एक ही करुण रस निमित्तभेद से भिन्न हो कर दूसरे रसों के रूप में परिणत होता है, जिस प्रकार एक ही जल कभी आवर्त बुद्बुद तरङ्ग आदि अनेक विकारों का रूप धारण करता है। प्रसिद्ध "आर्या सप्तशती" के कर्ता गोवर्द्धनाचार्य भवभूति के विषय में यों लिखते हैं—

"भवभूतेःसम्बन्धाद्भूधरभूरेव भारती भाति।"
"एतत्कृतकारुण्ये किमन्यथा रोदिति ग्रावा॥"

इससे स्पष्ट है कि भवभूति करुणारस के कितने पुष्ट लेखक थे।

अन्यान्य कवियों के समान भवभूति का समय निश्चित करना भी कुछ सहज नहीं है। काश्मीर के इतिहास, राजतरङ्गिणी के चौथे तरङ्ग में लिखा है।

"कविर्वाक्पतिराजश्रीभवभूत्यादिसेवितः।
जितो ययौ यशोवर्मा तत्पदस्तुति वन्यताम्॥"

अर्थात् वाक्पतिराज और भवभूति आदि से सेवित राजा यशोवर्मा पराजित हो कर जिसकी स्तुति गान करने लगा। ये यशोवर्मा "रामाभ्युदय" नामक काव्य के रचयिता हैं। यशोवर्मा नामक राजा सन् ६९३ ई० से ७२९ ई० तक कन्नौज के राजासन पर आसीन था। इस राजा को काश्मीर के राजा ललितादित्य ने परास्त किया और वह भवभूति को अपने साथ काश्मीर ले गया। अतएव भवभूति का होना अष्टम शताब्दी का प्रारम्भ ही निश्चित किया जाता है।

"गौडवहो" (गौड़वध) नामक प्राकृत काव्य जिसके कर्ता भवभूति के साथी वाक्पतिराज हैं। वाक्पतिराज ने गौड़वध में यशोवर्मा की बड़ी प्रशंसा की है, और उनके द्वारा गौड़ देश के राजा का परास्त होना भी उसमें लिखा है। उसीमें वाक्पतिराज ने अपनी रचना के विषय में इस प्रकार लिखा है—

"भवभूइ जलहि निगाय कव्वामयरसकणा इव स्फुरन्ति
जस्स विशेषा अज्जवि वियडेसु कहापबन्धेसु।

इसका संस्कृत अनुवाद इस प्रकार है—

भवभूतिजलधिनिर्गतकाव्यामृतरसकणा इव स्फुरन्ति,
यस्य विशेषा अद्यापि विकटेषु कथाप्रबन्धेषु।

अर्थात् भवभूतिरूपी जलनिधि से निकले हुए काव्यरूपी अमृत के कणों के समान जिसके निबन्धों में अनेक विशेष गुण अद्यापि चमक रहे हैं। इससे वाक्पतिराज के साथ भवभूति का यशोवर्मा के यहाँ अष्टम शताब्दी के आदि में होना सूचित होता है। और उसी गौडवहो की भूमिका में लिखा है कि इन्दौर में मालतीमाधव की एक हस्तलिखित पुस्तक मिली है उसके अन्त में "भट्टकुमारिलशिष्यकृते" लिखा हुआ है। कुमारिल भट्ट सप्तम शताब्दी के अन्त में हुए थे। इसके द्वारा भी भवभूति का उक्त समय ही पाया जाता है।

शङ्करदिग्विजय में लिखा है कि विद्धशालभञ्जिका बाल रामायण आदि के कर्ता राजशेखर

के यहाँ गये थे और उनके बनाये नाटक आचार्य ने देखे भी थे। इस बात से राजशेखर और शङ्कर की समकालीनता प्रमाणित होती है। राजशेखर अपने बालरामायण में लिखते हैं—

"बभूव वल्मीकभवः पुरा कवि-
स्ततः प्रपेदे भुवि भर्तृमेण्ठताम्।
स्थितः पुनर्यो भवभूतिरेखया
विराजते सम्प्रति राजशेखरः ॥"

अर्थात् पहले वाल्मीकि कवि हुए पुनः वही भर्तृमेण्ठ के रूप में प्रकट हुए। तदनन्तर जो भवभूति नाम से प्रसिद्ध था वह अब राजशेखर के रूप में वर्तमान है। शङ्कर का समय अष्टम शताब्दी का अन्त निश्चित हुआ है, सुतरां राजशेखर का भी वही समय मानना होगा। भवभूति को राजशेखर से पहले का होना चाहिये। अतएव ऊपर जो भवभूति का समय अष्टम शताब्दी का अन्त लिखा गया है वह इससे भी सिद्ध होता है।

ऊपर कहा गया है कि भवभूति ने तीन नाटक लिखे हैं। उनकी प्रस्तावना में इन्होंने अपना स्वल्प परिचय भी दिया है। महावीरचरित की प्रस्तावना में भवभूति ने इस प्रकार लिखा है—

"अस्ति दक्षिणापथे पद्मपुरं नाम नगरम्, तत्र केचित्तैत्तिरीयिणः काश्यपाश्चरणगुरवः पङ्क्तिपावनाः पञ्चाग्नयो धृतव्रताः सोमपीथिन उदुम्बरा ब्रह्मवादिनः प्रतिवसन्ति। तदामुष्यायणस्य तत्रभवतो वाजपेययाजिनो महाकवेः पञ्चमः सुगृहीतनाम्नो भट्टगोपालस्य पौत्रः पवित्रकीर्तेर्नीलकण्ठस्यात्मसम्भवः श्रीकण्ठपदलाञ्छनो भवभूतिर्नाम जतुकर्णीपुत्रः।

श्रेष्ठः परमहंसानां महर्षीणामिवाङ्गिरा।
यथार्थनामा भगवान् यस्य ज्ञाननिधिर्गुरुः ॥"

अर्थात् दक्षिण में पद्मपुर नामक नगर है, जहाँ यजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा का अध्ययन करने वाले व्रतधारी सोमयज्ञकारी पङ्क्तिपावन पञ्चाग्निक ब्रह्मवादी काश्यपगोत्रीय उदुम्बर ब्राह्मण रहते हैं। उनके यहाँ वाजपेय यज्ञ करने वाले पुण्यशील भट्टगोपाल नामक महाकवि का प्रादुर्भाव हुआ। भट्टगोपाल के पौत्र और पवित्रकीर्ति पिता नीलकण्ठ तथा माता जतुकर्णी के पुत्र श्रीकण्ठपदभूषित भवभूति का वहीं जन्म हुआ। परमहंसों में श्रेष्ठ और महर्षियों में अङ्गिरा के समान जिसके भगवान् ज्ञाननिधि नाम के गुरु हुए जो यथार्थ में ज्ञाननिधि ही हैं। इन तीन नाटकों के अतिरिक्त भी भवभूति का बनाया कोई ग्रन्थ अवश्य होगा। क्योंकि शार्ङ्गधरपद्धति आदि ग्रन्थों में कई श्लोक भवभूति के नाम से उद्धृत हैं परन्तु वे श्लोक इन नाटकों में नहीं पाये जाते हैं यथा—

"निरवद्यानि पद्यानि यदि नाट्यस्य का क्षतिः।
भिक्षुकक्षाविनिक्षिप्तः किमिक्षुर्नीरसो भवेत् ॥"

यह श्लोक उक्त नाटकों में नहीं पाया जाता है और शार्ङ्गधरपद्धति में भवभूति के नाम से यह श्लोक उद्धृत हुआ है।

रसपुष्टि तथा वर्णनचातुर्य के तारतम्य से विद्वानों ने अनुमान किया है कि महावीरचरित भवभूति की प्रथम रचना है तदनन्तर मालती-माधव और फिर उत्तरचरित लिखा गया है। निःसन्देह यह बात मानने योग्य और युक्ति-युक्त है। क्योंकि इन नाटकों में उत्तरोत्तर श्रेष्ठता बढ़ती गयी है। इनमें उत्तरोत्तर अभ्यास का कौशल देखा जाता है। मालती-माधव का श्मशान-वर्णन तथा कपालकुण्डला के द्वारा मालती का हरण किया जाना आदि बातें ऐसी हैं जो नाट्यशास्त्र जानने वालों की आँखों में अवश्य खटकती हैं, परन्तु उनका श्मशान-वर्णन तथा विप्रलम्भ शृङ्गार-वर्णन ऐसा अच्छा हुआ है कि लक्षण दोष रहने पर भी उनसे सहृदयों के चित्त में आनन्द ही होता है।

भवभूति ने नाटक क्यों बनाये इसका उत्तर न तो भवभूति ही ने अपने ग्रन्थों में दिया है और न उसका कुछ अनुसन्धान ही कहीं से पाया जाता है। परन्तु उस समय की स्थिति पर ध्यान देने से इस प्रश्न का उत्तर मिल जाता है। उस समय लोगों का मन बौद्ध धर्म से हट रहा था, लोगों में धार्मिक पिपासा जागृत हो रही थी, वैदिक विद्वान् बौद्धधर्म को निर्मूल करने का प्रयत्न कर रहे थे। भवभूति ने भी इन नाटकों द्वारा उन्हीं वैदिक विद्वानों के कार्य में सहायता पहुँचायी। इन्होंने बौद्धधर्म का

खण्डन नहीं किया है, और न इन धर्मों के विषय में कुछ स्पष्ट ही कहा है। परन्तु उदाहरणों द्वारा वैदिक धर्म की श्रेष्ठता और बौद्धधर्म की हीनता दिखलाते हुए दोनों प्रकार के धार्मिकों का चित्र खींच दिया, जिससे वैदिक धर्म पर श्रद्धा और बौद्धधर्म पर घृणा आप ही आप हो जाती है।

कामन्दकी मालती-माधव की एक पात्री है, वह बौद्ध संन्यासिनी थी। वह अपने आश्रम-धर्म का कुछ भी विचार न कर के मालती और माधव को विवाह-सूत्र में गूँथने के लिये व्याकुल है। उसकी शिष्या सौदामिनी बौद्धधर्म छोड़ कर अघोरघण्ट और कपालकुण्डला के तान्त्रिकजाल में फँसी थी। ये तान्त्रिक बड़े ही दुराचारी और नृशंस थे। नरबलि देना इनके लिये कोई बात ही न थी। यही मालतीमाधव में बौद्धधर्म के अधःपात का चित्र है। महावीर-चरित और उत्तरचरित में वैदिकधर्म की श्रेष्ठता का चित्र है। श्रीरामचन्द्र के आदर्श चरित्र, लक्ष्मण का भ्रातृप्रेम और सीता का सतीत्व आदि एक से एक बढ़ कर अतुलनीय और स्पृहणीय आदर्श हैं।

भविष्यपुराण=यह पुराण अष्टादश पुराणों में ग्यारहवाँ पुराण है। यह पाँच पर्वों में विभक्त है। प्रथम पर्व में सृष्टिप्रक्रिया, तिथि-माहात्म्य और विष्णु शिव और सूर्य पूजा का प्रसङ्ग है। द्वितीय तृतीय और चतुर्थ पर्व में यथाक्रम शिवमाहात्म्य विष्णुमाहात्म्य और सूर्यमाहात्म्य विस्ताररूप से वर्णित है। पञ्चम पर्व में स्वर्ग का वर्णन है। इस पुराण में सब धर्मों के विरोधपरिहार करने की चेष्टा की गयी है, इससे बहुतों का विश्वास है कि और देवताओं की अपेक्षा ब्रह्म की प्रधानता सिद्ध करना ही पुराणकार का लक्ष्य था। इस पुराण में शाकद्वीपवासी सूर्योपासक मग जाति का उल्लेख देख कर पाश्चात्य पण्डित कहते हैं कि वह ईरानवासी अग्निपूजकों के लिये लिखा गया है। अन्यान्य पुराणों के समान इस पुराण में भी प्राचीन राजागण और चन्द्र-सूर्य-वंश का वर्णन पाया जाता है। परन्तु आज कल जो भविष्यपुराण बम्बई से प्रकाशित हुआ है उसमें मुग़ल बादशाह अकबर की कथा, कलकत्ता राजधानी का वर्णन और ब्राह्म धर्मप्रचारक सुप्रसिद्ध केशवचन्द्र सेन का नामोल्लेख पाया जाता है। भविष्यपुराण में इन आधुनिक बातों को देख कर अनेक विद्वान् इस पुराण को अन्ततः इस पुराण में आये हुए विषय विशेष को आधुनिक या प्रक्षिप्त समझते हैं।

(भारतवर्षीय इतिहास)

भागवत=यह आठवाँ पुराण है परन्तु यह सब पुराणों में श्रेष्ठ समझा जाता है। वैष्णव सम्प्रदायी बड़ी भक्ति से इसकी पूजा किया करते हैं। इस महापुराण की रचना इतनी सुन्दर और मधुर है कि साहित्य संसार में भी इसने ऊँचा आसन पाया है। श्रीकृष्ण का माहात्म्यप्रचार और मानव-हृदय में धर्मभाव का जागरण भागवत के ये ही दो प्रधानतम उद्देश्य हैं। भागवत के दशमस्कन्ध में जो श्रीकृष्ण की लीला का वर्णन किया गया है वह अत्यन्त मधुर है। विद्वान् मात्र उस मधुरता के लोभ को संवरण नहीं कर सकते। भागवत बारह स्कन्धों में विभक्त है। प्रथम स्कन्ध में ऋषियों के प्रश्न के उत्तर में लोमहर्षण-नन्दन उग्रश्रवा सूत ने भगवान् के गुणों का वर्णन कर के भगवान् के अवतार धारण करने का प्रसङ्ग उठाया है। नारद का पूर्वजन्म, युधिष्ठिर का राज्यलाभ, श्रीकृष्ण का द्वारका-गमन, युधिष्ठिर आदि का स्वर्गारोहण और परीक्षित को ब्रह्मशाप आदि कथाएँ प्रथम स्कन्ध में वर्णित हैं। द्वितीय स्कन्ध में सृष्टि-वर्णन के अनन्तर भागवत के विषय में परीक्षित के प्रश्न से शुकदेव ने भागवत का आरम्भ किया है। तीसरे स्कन्ध में श्रीकृष्ण का बाल्यचरित्र वर्णन, सृष्टि-तत्त्व, वराहरूप से भगवान् द्वारा जल से पृथिवी का निकाला जाना, कपिल का जन्म और उनका सांख्य-योग कथन आदि अनेक विषय वर्णित हैं। चतुर्थ स्कन्ध में मनु की कन्याओं का वंश-वर्णन, सती का देह-त्याग, ध्रुवचरित्र, वेन, पृथु, पुरञ्जन और प्रचेता आदि का चरित्र वर्णन प्रभृति विविध विषय हैं। यहीं से उपाख्यानों का आरम्भ है। पञ्चम

स्कन्ध में प्रियव्रत, अग्निध्र, जड़भरत, और भरतवंशी राजाओं का वृत्तान्त लिखा है । वर्ष-वर्णन, भारतवर्ष की श्रेष्ठता, ज्योतिषतत्त्व और पाताल का विवरण इसी पञ्चम स्कन्ध ही में है। षष्ठ स्कन्ध में अजामिल का जन्म और चरित्र, दक्ष-कथा, वृत्रासुर का विवरण और सविता प्रभृति देवों का वंश कीर्तन है। सप्तम स्कन्ध में हिरण्यकशिपु और प्रह्लाद के प्रसङ्ग में देश-काल-भेद से धर्म के विशेष विशेष माहात्म्यों का वर्णन है। आठवें स्कन्ध में मन्वन्तर वर्णन, बलि के निकट वामन का तीन पैर भूमि की प्रार्थना करना, बलि का पाताल जाना और मत्स्यचरित वर्णित हुआ है। नवम स्कन्ध में मनुपुत्रों का वंशवृत्तान्त, अम्बरीष-वंश, सगर-वंश, रामतनय कुश का वंश, सोमवंश, विश्वामित्रवंश, पुरुवंश, यदुवंश प्रभृति वंशों का विवरण है। भगीरथ का गङ्गा का ले आना, श्रीरामचन्द्र का यज्ञानुष्ठान, परशुराम द्वारा कार्तवीर्य अर्जुन का वध, आदि कथा इसी स्कन्ध के अन्तर्गत हैं। दशम स्कन्ध, श्रीकृष्ण की लीलाओं के वर्णन से पूर्ण है । कंस के कारागार में देवकी के गर्भ में भगवान् का आविर्भाव और बाल्यक्रीड़ा से ले कर कौरव-युद्ध तक के भगवत्सम्बन्धी सभी चरित इस स्कन्ध में वर्णित हैं। गोपियों का वस्त्र-हरण, रासलीला, रुक्मिणी-हरण प्रभृति इसी स्कन्ध में हैं । ग्यारहवें स्कन्ध में धर्मालोचना, मुक्ति-प्रसङ्ग और यदुवंश-ध्वंस की कथा है। द्वादश स्कन्ध में भविष्य राजवंश का वर्णन और कलि का धर्म कहा गया है। इसी द्वादश स्कन्ध के द्वादश अध्याय में भागवत में जिन विषयों की आलोचना हुई है उन विषयों का दिग्दर्शन कराया गया है। भागवत का कोई कोई अंश गद्य में लिखा गया है, भागवत की भाषा अन्य पुराणों की अपेक्षा दुर्बोध है। भागवत में भगवान् के सोलह अवतारों का वर्णन है । भागवत भक्ति-प्रधान ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में महर्षि नारद के कहने से भगवान् का गुण-कीर्तन किया गया है। महर्षि वेदव्यास जब पुराण के अनेक ग्रन्थ बना चुके और महाभारत भी बना चुके तब नारद ने उनसे कहा—तुमने धर्म-अधर्म सभी विषयों का वर्णन किया है, तुमने बहुत पुराण और काव्य भी बनाये, परन्तु बिना भगवान् के यशोगान के परितोष नहीं होता, क्योंकि—

"न यद्वचश्चित्रपदं हरेर्यशो जगत्पवित्रं प्रगृणीत कर्हिचित्। तद्वायसं तीर्थमुशन्ति मानसा न यत्र हंसा निरमन्त्यशिक्क्षयाः॥ तद्वाग्विसर्गो जनताघविप्लवो यस्मिन् प्रतिश्लोकमबद्धवत्यपि। नामान्यनन्तस्य यशोङ्कितानि यत्शृण्वन्ति गायन्ति गृणन्ति साधवः॥"

अर्थात् मनोहर पदों से युक्त वाक्य-रचना व्यर्थ है यदि उसमें भगवान् का गुण-कीर्तन न हो। राजहंस वायस-सेवित अपरिष्कृत जलाशय छोड़ कर निर्मल स्वच्छ सरोवर में विहार करते हैं। भगवद्भक्त परमहंस उस प्रकार की वाक्य-रचना का तिरस्कार करते हैं और हरि-गुणानुवाद-पूर्ण रचना का आदर करते हैं। जिस ग्रन्थ के प्रति श्लोक में भगवान् का गुण-कीर्तन है वही ग्रन्थ सर्वसाधारण का पाप नष्ट कर सकता है। क्योंकि उस ग्रन्थ के पाठ से साधुगण भगवान् का नामस्मरण, गुण-कीर्तन आदि कर सकते हैं। भागवत के मत से भक्ति ही प्रधान है। भक्ति ही से ज्ञान उत्पन्न होता है। इसी कारण भागवत-कर्त्ता ने भगवान् के कार्यों को सर्वश्रेष्ठ बतलाया है।

आज कल भागवत के कर्त्ता के विषय में बड़ा गोलमाल हो रहा है। यह विवाद है तो पुराना। पुराने पण्डितों को भी इसके कर्त्ता के विषय में सन्देह था । परन्तु उन लोगों ने अपना सन्देह मिटा लिया अतएव वे अब इस विषय में बिलकुल चुप हैं । परन्तु आज कल नई रोशनी के कुछ विद्यादिग्गज उत्पन्न हुए हैं जो अङ्गरेज़ों की बराबरी करना चाहते हैं। दर्शन, पदार्थविद्या तथा शिल्पकला सम्बन्धी नये आविष्कार तो इन छिछोरे इन्द्रिय-दासों के बूते हो ही नहीं सकते, अतएव आविष्कर्ता की श्रेणी में अपना नाम लिखाने की लिप्सा पूरी करने के लिये ये मनमानी हाँका करते हैं । भागवत के कर्त्ता के विषय में ये कहते हैं भागवत वोपदेव का बनाया है—व्यासदेव का नहीं। यह उक्ति है तो सुहावनी, परन्तु

ऐतिहासिक दृष्टि से निरी पोली ही है। जिन्हें कुछ भी ग्रन्थों के उलटने का समय मिला है वे अनायास ही इस उक्ति की असारता समझ सकते हैं। वोपदेव का समय तेरहवीं सदी है। ये वैद्यवर केशव के पुत्र और धनेश मिश्र के शिष्य थे। वोपदेव देवगिरि के महाराज महादेव के दरबारी पण्डित थे। इस राजा ने सन् १२६० ई० से ले कर १२७१ ई० तक राज्य किया था। वोपदेव भी इसी समय रहे और उनके ग्रन्थ भी इसी समय के बने हैं। वोपदेव ने इतने ग्रन्थ बनाये हैं—हरिलीला, मुक्ताफल, परमहंस-प्रियाशत-श्लोकचन्द्रिका, मुग्धबोध व्याकरण, कविकल्पद्रुम, काव्य-कामधेनु और रामव्याकरण। यदि भागवत वोपदेव का बनाया होता तो वह भी इसी समय में बनाया गया होता परन्तु इसके अनेक प्रमाण पाये गये हैं कि वोपदेव के बहुत पहले लोगों ने भागवत को आदर की दृष्टि से देखा था। यह बात सभी पढ़े लिखे लोग मानते हैं कि शङ्कराचार्य वोपदेव से बहुत पहले के हैं। उन्होंने भी अपने विष्णुसहस्रनाम के भाष्य में और चतुर्दशमत-विवेक में भागवत का उल्लेख किया है और शङ्कराचार्य से भी प्राचीन हनुमत् और चित्सुख मुनि ने भागवत पर टीका की है। इन बातों को देख कर भी वोपदेव भागवत के कर्त्ता कैसे माने जा सकते हैं। सिद्धान्तदर्पण नामक ग्रन्थ में लिखा है—

> " वोपदेवकृतत्वे वोपदेवपुराभवैः ।
> कथं टीका कृता वै स्युर्हनुमच्चित्सुखादिभिः ॥"

अर्थात् यदि भागवत वोपदेव कृत होता तो उनके पूर्ववर्ती हनुमत् चित्सुखाचार्य आदि उसकी टीका कैसे बनाते। विद्वानों ने रामानुजाचार्य का समय १०४१ ई० निश्चित किया है। इन्होंने भी भागवत का प्रमाण उद्धृत किया है। काश्मीरी पण्डित क्षेमेन्द्र ने भी भागवत का नामोल्लेख किया है। राजतरङ्गिणीकार की अपेक्षा क्षेमेन्द्र प्राचीन हैं। इतने प्रमाणों के रहने पर भी जिनकी इच्छा हो कि हम भागवत को वोपदेव कृत मानें, वे मान सकते हैं परन्तु उनका सिद्धान्त प्रमाण-रहित और अशुद्ध समझा जायगा।

भानदास कवि=ये चरखारी के रहने वाले बन्दीजन थे। सन् १८५५ ई० में ये उत्पन्न हुए थे। खुमानसिंह बुन्देला राजा चरखारी के दरबार में रहते थे। इन्होंने रूपविलास नामक एक पिङ्गल का ग्रन्थ बनाया है।

भानुगुप्त=गुप्तवंशी एक राजा। सन् ५१० ई० पर्यन्त इन्होंने मालवे का राज्य किया था। हूण सर्दार तोरामान ने इन पर चढ़ाई की, और परास्त कर के इनके हाथ से मालवा राज्य छीन लिया।

भारवि=ये संस्कृत के महाकवि हैं। इनके बनाये "किरातार्जुनीय" नामक महाकाव्य का संस्कृतज्ञ समाज में बड़ा आदर है। महाकवि भारवि की प्रशंसा में यह श्लोक प्रचलित है—

> " माघेन विघ्नितोत्साहा न क्षमन्ते पदक्रमे ।
> स्मरन्तो भारवेरेव कवयः कपयो यथा ॥ "

अर्थात् माघ की रचना-शैली देख कर कवियों का पदविन्यास करने का उत्साह जाता रहा और भारवि का स्मरण कर के तो वे कवि कपि हो जाते हैं।

महाकवि भारवि कब और कहाँ हुए, इस का निरूपण उपलब्ध प्रमाणों द्वारा किया जाता है। "प्राचीन लेखमाला" नामक प्राचीन लेखों के संग्रह की पुस्तक में एक दानपत्र मुद्रित हुआ है, वह दानपत्र महाराज श्रीपृथ्विकोङ्गणि का है। उसमें लिखा है—

" किरातार्जुनीय पञ्चदश सर्गादिकोकारो दुर्विनीत नामधेयः"

यह शिलालेख शक ६६८ का लिखा हुआ है। उसी ग्रन्थ में एक दूसरा लेख मुद्रित हुआ है, जो चालुक्यवंशोद्भूत श्रीपुलकेशिन का शिलालेख कहा जाता है। उस लेख के अन्त में यह पद्य लिखा है—

> " येनायोजिनवेश्म स्थिरमर्थविधौ विवेकिनाजिनवेश्म ।
> स विजयतां रविकीर्तिः कविताश्रितभारविकालिदासकीर्तिः ॥"

यह लेख शक ५५६ का लिखा हुआ है। इन दोनों लेखों से तो यह बात निःसन्देह प्रमाणित होती है कि ख्रीष्टीय सप्तम शतक के प्रारम्भ में भारवि और उनके काव्य "किराता-

र्जुनीय" की उतनी ही प्रसिद्धि थी जितनी कवि-कुल-गुरु कालिदास की । अतएव भारवि का समय ख्रीष्टीय ६वीं सदी के भी पहले मानना चाहिये । पाश्चात्य पण्डित याकोबी अंग्रेज़ी के एक त्रैमासिक पुस्तक में लिखते हैं कि माघ पवि ६०० सन् के मध्यभाग से किसी प्रकार नवीन नहीं हैं और भारवि तो उनसे भी प्राचीन हैं । बस, भारवि के समय के विषय में इससे अधिक और कुछ भी नहीं कहा जा सकता । इनके वासस्थान के विषय में कुछ चर्चा न छेड़ना ही अच्छा है। क्योंकि उसका ठीक ठीक कुछ पता तो नहीं है और पता लगाने के लिये कोई उचित उपाय भी नहीं है । कतिपय विद्वानों ने भारवि के वासस्थान के विषय में अपना यह मत प्रकाशित किया है कि इन्होंने सह्य पर्वत का वर्णन किया है इस कारण इनका वासस्थान दक्षिण ही में कहीं रहा होगा । परन्तु क्या यह अनुमान ठीक कहा जायगा, अथवा अनुमान करने की यही रीति हैं । यदि यही रीति है तो बाणभट्ट ने विन्ध्याटवी का वर्णन किया है तदनुसार वे विन्ध्याटवी के वासी थे, रत्नाकर ने हरविजय महाकाव्य में स्वर्ग का वर्णन किया है अतः वे स्वर्गवासी थे । पाताल जाने का मार्ग वर्णन करने वाले परिमल पातालवासी थे । इत्यादि बातें भी उसी प्रकार कही जायँगी, परन्तु ये कवि अपने वर्णनीय स्थान के वासी नहीं थे । महाकवि भारवि का बनाया एक किरातार्जुनीय नामक महाकाव्य ही मिलता है, इनके दूसरे ग्रन्थ का पता नहीं लगता है । किरात का अर्थ-गौरव प्रसिद्ध है । किसी ने कहा है—

" उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम् ।
दण्डिनः पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः ॥"

प्राचीन कवियों की रुचि शृङ्गार की ओर विशेषतः पायी जाती है । परन्तु किरातार्जुनीय इस दोष से मुक्त है । इस ग्रन्थ में नीति के उत्तम उपदेश हैं ।

भावन कवि=ये भाषा के कवि थे और इनका पूरा नाम भवानीप्रसाद पाठक था । इनका वासस्थान मरौंवा ज़िला उनाव था । सं० १८८१ में ये वर्तमान थे । ये एक प्रसिद्ध कवि हो गये हैं । इन्होंने "काव्यशिरोमणि" नामक ग्रन्थ बनाया है, जिसमें प्रायः काव्य के सभी विषयों का वर्णन किया गया है । इस ग्रन्थ का दूसरा नाम "काव्यकल्पद्रुम" भी है ।

भावसिंह=बूँदी के राव राजा छत्रसाल के ज्येष्ठ पुत्र । संवत् १७१५ में छत्रसाल की मृत्यु हुई । इसके बाद राव भावसिंह के सिर पर बूँदी का राजमुकुट रखा गया, प्रसिद्ध स्वार्थी बादशाह औरङ्गज़ेब ने छत्रसाल की शत्रुता का बदला उनके पुत्र भावसिंह से चुकाने का अवसर पा कर राजा आत्माराम को आज्ञा दी कि उद्धत-स्वभाव और सदा असन्तुष्ट हाड़ा जाति को जा कर दण्ड दो और बूँदी राज्य को रणथम्भौर के अधीन कर दो; बूँदी पर अधिकार और हाड़ा जाति को दण्ड देते ही मैं दक्षिण की यात्रा करूँगा । उस समय बूँदी राज्य से आपका सम्बन्ध करा दूँगा । बादशाह की आज्ञा पा कर राजा आत्माराम १२ सौ शिक्षित सिपाहियों को ले कर हड़ौती प्रदेश में पहुँचे और तलवार तथा अग्नि की सहायता से देश को नष्ट भ्रष्ट करना उन्होंने प्रारम्भ किया । राजा आत्माराम ने सब से पहले वहाँ के प्रधान सामन्त के इन्द्रगढ़ पर आक्रमण किया । परन्तु हाड़ा वीरों का आक्रमण आत्माराम न सह सके, उनकी सेना छिन्न भिन्न हो गयी, आत्माराम भी प्राण ले कर भाग गये । राजा आत्माराम परास्त और अपमानित हो कर औरङ्गज़ेब की सभा में उपस्थित हुए और उन्होंने अपनी सब करतूतों का वर्णन किया । औरङ्गज़ेब ने उनके अत्याचारों को सुन कर बड़ी घृणा प्रकाशित की और उनका तिरस्कार भी किया ।

कपटी औरङ्गज़ेब ने हाड़ा जाति के विक्रम का विशेष परिचय पा कर वहाँ के राजा को अपने हस्तगत करने की इच्छा से उन्हें बुला भेजा । राव भावसिंह ने पहले तो किसी प्रकार कुचक्री औरङ्गज़ेब की बातों पर विश्वास न किया । परन्तु पीछे से औरङ्गज़ेब के शपथ करने पर राव भावसिंह दिल्ली गये । औरङ्गज़ेब ने इनका बड़े आदर से स्वागत किया और

शाहज़ादा मोअज़्ज़म की अधीनता में उनको औरङ्गाबाद का प्रधान शासनकर्त्ता बनाया।

हाड़ा जाति के इतिहास से जाना जाता है कि राव भावसिंह ने औरङ्गाबाद के प्रधान-शासक-पद पर अधिष्ठित हो कर स्वजातीय राजपूत तथा बुँदेला राजपूत दल के साथ कई एक युद्धों में बड़ा विक्रम प्रकाशित किया है। बीकानेर के राजा करणसिंह के प्राणनाश करने के लिये जो षडयन्त्र रचा गया था, उसका दमन राव भावसिंह ने ही अपनी असीम शक्ति से किया था। संवत् १७३८ में राव भावसिंह को औरङ्गाबाद में परलोक-प्राप्ति हुई।

भास्करवर्मा=कामरूप के एक राजा का नाम, खीष्टीय सातवीं सदी में जब हुएनत्सङ्ग भारतवर्ष में आये थे, तब कामरूप में भास्करवर्मा नामक एक राजा राज्य करता था। कन्नौजराज हर्षवर्द्धन के ये बड़े मित्र थे। हुएनत्सङ्ग ने उन्हें ब्राह्मण बतलाया है। भास्करवर्मा के राज्यकाल में कामरूप में अनेक हिन्दू देवी देवताओं के मन्दिर थे। संन्यासी ने कामरूप में एक भी सङ्घाराम अथवा बौद्धमन्दिर नहीं देखा था। भास्करवर्मा का दूसरा नाम कुमारराज था। ५६५ शाके में नालन्दाँ में जो बौद्धसभा का अधिवेशन हुआ था उसमें भास्करवर्मा भी सम्मिलित हुए थे और वहाँ इनका बड़ा सम्मान हुआ था।

भास्कराचार्य=भारत के विख्यात ज्योतिर्वेत्ता पण्डित और गणितज्ञ। इनके पिता का नाम महेश आचार्य था। इनका वासस्थान सह्य पर्वत के समीप विज्जडविड नामक गाँव में था। १११४ खीष्टाब्द में ये उत्पन्न हुए थे। इन्हों ने ३६ वर्ष की अवस्था में, ११५० ई० में, अपने प्रसिद्ध "सिद्धान्त-शिरोमणि" नामक ग्रन्थ की रचना की। यह ग्रन्थ चार खण्डों में विभक्त है। (१) लीलावती या पाटीगणित, (२) बीजगणित, (३) ग्रहगणित, (४) गोलाध्याय। इनके लक्ष्मीधर नामक पुत्र और लीलावती नाम की कन्या थी।

भास्करानन्द सरस्वती=ये विख्यात वेदान्ती संन्यासी १८६० संवत् में कानपुर के अन्तर्गत मैथे लालपुर नामक गाँव में उत्पन्न हुए थे। जन्म से ले कर मृत्यु पर्यन्त इनके जीवन की घटनाएँ आश्चर्यमय हैं। इनके पिता का नाम पं० मिश्रीलालजी था। इनके जन्म के दिन सन्ध्या को अपरिचित तीन संन्यासी पं० मिश्रीलालजी के घर पर आये हुए थे और उन लोगों ने यह भी कहा था कि आज ही रात को तुम्हारे एक सौभाग्यशाली पुत्र उत्पन्न होगा। सभी को विस्मित करते हुए आधी रात को भास्करानन्द उत्पन्न हुए। पं० मिश्रीलालजी की आज्ञा से तीनों संन्यासी सूतिकागृह में गये और वहाँ कुछ हवन कर के बाहर निकल गये। इसके बाद उन संन्यासियों को किसी ने नहीं देखा कि वे किधर गये। मिश्रीलाल ने अपने पुत्र का नाम मतिराम रखा। ६वें वर्ष में मतिराम का उपनयन संस्कार विधिपूर्वक हुआ। उपनयन होने के अनन्तर मतिराम सारस्वतचन्द्रिका और कालिदास का रघुवंश पढ़ कर वेदान्तदर्शन पढ़ने लगे। वेदान्तदर्शन पढ़ने के साथ ही साथ उनको संसार से विराग भी होने लगा। उनका हृदय वैराग्यभाव से पूर्ण हो गया। पं० मिश्रीलाल ने पुत्र की ऐसी दशा देख कर छोटी अवस्था ही में उसका विवाह करा दिया। विवाह होने के थोड़े ही दिनों के बाद मतिराम वेदान्तदर्शन पढ़ने के लिये काशी गये। वहाँ वेदान्त तथा अन्यान्य दर्शनों में विद्वत्ता प्राप्त कर के मतिराम अपनी जन्मभूमि का दर्शन करने के लिये मैथे लालपुर में आये। देश में आने पर उनकी गणना बड़े बड़े पण्डितों में होने लगी। इस समय उनकी अवस्था १७ वर्ष की थी। घर रहने पर भी वे संसार के मोह में नहीं फँसे। वे संसार से सम्बन्ध छोड़ने का अवसर ढूँढ़ने लगे। माता पिता स्त्री बन्धु बान्धव आदि को वे अपनी आध्यात्मिक उन्नति के बाधक समझने लगे। उनकी स्त्री को गर्भ था, यथासमय स्त्री ने एक पुत्र प्रसव किया। जिस रात्रि को पुत्र उत्पन्न हुआ, उसी रात्रि को मतिराम ने घर छोड़ा। गृह छोड़ कर मतिराम अनेक स्थानों में घूमते हुए अन्त में उज्जयिनी नगरी में पहुँचे। इस

महानगरी में महाकालेश्वर शिव का मन्दिर है। यह मन्दिर काशी के विश्वनाथ के मन्दिर की अपेक्षा बहुत बड़ा है। मतिराम उसी मन्दिर में शिव की पूजा करते तथा नगर के पास ही एक निर्जन स्थान में जा कर ध्यान करते थे। इसी प्रकार कुछ दिन बीतने पर उनको योग सीखने की इच्छा हुई। जिस रात्रि को उनको ऐसी इच्छा हुई उसके दूसरे ही दिन दक्षिण के प्रधान परमहंस स्वामी पूर्णानन्दजी वहाँ उपस्थित हुए। मतिराम उन्हीं योगिराज से योग की शिक्षा ग्रहण करने लगे। उन्हों ने बड़े परिश्रम से प्राणायाम में सिद्धि प्राप्त की और शनैः शनैः उन्हें अन्य प्रकार की भी सिद्धि प्राप्त हुई। इस प्रकार अनेक प्रकार की योग-विभूति पा कर मतिराम ने कुछ दिनों तक उज्जयिनी ही में वास किया। तदनन्तर आप गुजरात गये, और वहाँ एक मठ में ठहर कर वेदादि शास्त्रों का अध्ययन किया। पुनः आप अनेक तीर्थों में घूमते फिरे। तीर्थभ्रमण करने पर इन्हों ने संन्यास ग्रहण करने की इच्छा की और उसी अपने योगशिक्षक स्वामीजी से संन्यास धर्म की दीक्षा ली। संन्यास ग्रहण करने पर मतिराम ने अपना नाम, यज्ञसूत्र, कुल, मान-संभ्रम आदि सभी का त्याग किया। अब उनका गुरुदत्त नाम पड़ा स्वामी भास्करानन्द सरस्वती। इस समय स्वामीजी की अवस्था २७ वर्ष की थी। संन्यास ग्रहण करने पर वे कुछ समय रेवा नदी के तीर एक श्मशान में रहे थे। तदनन्तर वहाँ से आप जाह्नवी के तीर पर शृङ्गिरामपुर गये। इसी स्थान पर स्वामीजी को अपने पुत्र की मृत्यु का संवाद मिला। इनका पुत्र ग्यारह वर्ष का हो कर मर गया। आज स्वामीजी को घर से निकले ग्यारह वर्ष हो गये थे। पुत्र की मृत्यु का संवाद सुन कर भी स्वामीजी विचलित नहीं हुए। उसके बाद अपनी दुःखिनी स्त्री को देखने के लिये स्वामीजी अपने घर भी आये थे। गाँव के लोग स्वामीजी को देख कर कृतार्थ हुए। उन्होंने गाँव के वासियों को वेदान्त का उपदेश दिया और गृह त्याग किया। इसके पश्चात् तीन वर्ष तक मौनी हो कर उन्होंने कठोर साधना की। आप भारत के प्रसिद्ध और दुर्गम तीर्थों में पैदल गये। द्वारका से बम्बई के मध्य के समस्त तीर्थों में घूम कर अन्त में स्वामीजी सेतुबन्ध रामेश्वर गये। वहाँ से मद्रास होते हुए आप जगन्नाथपुरी में उपस्थित हुए। वहाँ से वङ्गदेश, आसाम और बिहार के तीर्थों में घूमते हुए स्वामीजी पुनः प्रयाग आये। प्रयाग से पुनः हरिद्वार गये। इसी प्रकार स्वामीजी ने १३ वर्षों में भारत के समस्त तीर्थ देखे भाले। इनका हरिद्वार में पं० अनन्तरामजी से परिचय हुआ। यद्यपि स्वामीजी वेदान्त के विद्वान् थे तथापि वेदान्त का अधिक ज्ञान अर्जन उन पण्डितजी से करने लगे। स्वामीजी ने पं० अनन्तरामजी से गीताभाष्य, पञ्चदशी, वेदान्त परिभाषा, दशोपनिषद् आदि ग्रन्थों का अध्ययन किया। उनके साथ स्वामीजी का कुछ समय बड़े आनन्द से बीता। हरिद्वार से स्वामीजी पुनः काशी आये। इस समय उनकी अवस्था ४० वर्ष की थी। यहाँ वे गङ्गा के तीर पर विश्वनाथ की उपासना करने लगे। इस समय उनके मुँह से रात दिन केवल विश्वनाथ शब्द निकला करता था। वे आप ही आप कभी हँसते और कभी रोने लगते थे। उनको देखने के लिये लोगों की भीड़ एकत्रित होने लगी। धीरे धीरे आने जाने वालों की संख्या बढ़ने लगी। स्वामीजी की इच्छा इस स्थान को छोड़ कर दूसरे स्थान में जाने की हुई। अमेठी के राजा लाल माधवसिंह के कहने से स्वामीजी उन्हीं के "आनन्दबाग़" में गये, यह आनन्दबाग़ काशी में दुर्गाकुण्ड के पास है। राजा ने स्वामीजी की सेवा के लिये १० भृत्य नियुक्त कर दिये। अब स्वामीजी आनन्दबाग़ में सदानन्द करने लगे।

स्वामीजी के रहने का स्थान निर्जन अवश्य था, परन्तु यहाँ भी स्त्री पुरुषों की भीड़ एकत्रित होने लगी। स्वामीजी के भक्तों की वृद्धि होने लगी। अब बड़े बड़े घर की स्त्रियाँ, रानी महारानी, आदि पालकी पर चढ़ कर स्वामीजी के दर्शन के लिये आने लगीं। कहते हैं एक किसी राजा ने स्वामीजी के चरित्र

की परीक्षा के लिये काशी की तीन वेश्याओं को एक हज़ार रुपये पारितोषिक दे कर स्वामी जी के यहाँ भेजा था । स्वामीजी के हुङ्कार से दो वेश्या तो उसी समय वहाँ से भाग गयीं परन्तु तीसरी के पैर में साँप लिपट गया । वह "त्राहि त्राहि" करने लगी और स्वामीजी की दया-प्रार्थना करने लगी । यह देख राजा तो मारे डर के भाग गया । वह वेश्या चार घण्टे तक उसी प्रकार पड़ी रही, प्रभात होने पर सर्प चला गया, और वह भी अपने घर गयी । घर लौट कर वह पश्चात्ताप करने लगी और अपनी सम्पत्ति बेच कर वह तीर्थयात्रा को गयी, तीर्थयात्रा से लौट कर उसने वेश्यावृत्ति छोड़ दी । इस घटना के बाद आनन्दबाग़ में सभी का आना जाना बन्द हो गया । इस समय स्वामीजी गुफा में दो तीन महीने तक अनाहार ही पड़े रहे, यहाँ तक कि उन्होंने जलपान भी नहीं किया । गुफा से निकल कर स्वामीजी ने कौपीन का भी त्याग कर दिया, अब से आप नङ्गे रहने लगे । संसार या समाज से उन्होंने बिलकुल ही सम्बन्ध छोड़ दिया । स्वामीजी के पास पुनः दर्शनार्थी लोग आने लगे । किसी दर्शनार्थिनी स्त्री के आने पर स्वामीजी बैठे हुए अपने भक्तों में से किसी का दुपट्टा ले कर लपेट लिया करते थे और स्त्री के चले जाने पर जिसका कपड़ा होता उसे ही दे देते । माघ की रात्रि में भी स्वामीजी बाहर नङ्गे ही पड़े रहते थे । बङ्गाल के विजयकृष्ण गोस्वामीजी भी परमहंस भास्करानन्द सरस्वतीजी के भक्तों में से थे । दक्षिण की एक रानी ने स्वामीजी से दीक्षा ली थी । किसी प्रकार के मुकद्दमे के कारण वह रानी अपनी सम्पत्ति से अलग कर दी गयी, तब वह स्वामीजी के शरण आयी । स्वामीजी ने कहा कि इस मुकद्दमे में तुम्हारा विरोधी हार जायगा । स्वामीजी की भविष्यवाणी सफल हुई । रानी मुकद्दमा जीत गयी । रानी ने जय प्राप्त कर के स्वामीजी की सेवा में डेढ़ लाख रुपये भेज दिये परन्तु स्वामीजी ने उन्हें छुआ भी नहीं । रानी ने उन्हीं रुपयों से आनन्दबाग़ के पास एक शिवमन्दिर बनवाया और अतिथिशाला तथा उसी में स्वामीजी की मूर्त्ति की भी प्रतिष्ठा की । स्वामीजी के आनन्दबाग़ में आने के प्रायः ५ वर्ष पहले उनके पिता मिश्रीलाल काशी आये । यहाँ आ कर उन्होंने भी संन्यास आश्रम ग्रहण किया और उनकी मृत्यु भी यहीं हुई और स्वामीजी की माता बदरिकाश्रम गयीं और वहीं उनका शरीर-पात भी हुआ । बदरिकाश्रम में जब स्वामीजी की माता रोग-पीड़ित हुईं तब स्वामीजी योगबल से जान कर शीघ्र ही बदरिकाश्रम गये । माता की मृत्यु के बाद स्वामीजी पुनः आनन्दबाग़ में लौट आये । प्रतिदिन स्वामीजी की प्रसिद्धि होने लगी । आनन्दबाग़ में सर्वदा मानों मेला लगा रहता था । काशी के राजा ईश्वरीप्रसादसिंह बहादुर ने स्वामीजी के प्रति भक्ति-प्रदर्शन करने के लिये उनकी पत्थर की मूर्त्ति अपने राजभवन में स्थापित की थी । अयोध्या के महाराज प्रतापनारायणसिंह ने स्वामीजी से दीक्षा ग्रहण की थी । स्वामीजी का भी उन पर विशेष स्नेह था । एक दिन महाराज को एक टेलिग्राम काशी में मिला जिसमें लिखा था कि यहाँ राजकीय एक विशेष कार्य है आप चले आवें । महाराज ने स्वामीजी से जाने की अनुमति माँगी, परन्तु स्वामीजी ने किसी भी प्रकार से अनुमति नहीं दी । महाराज बड़ी आफ़त में फँसे, इधर गुरु की आज्ञा, उधर राजकार्य की गुरुता, इन दोनों में किस को मानें और किस को न मानें । महाराज कुछ भी स्थिर नहीं कर सके । महाराज पुनः स्वामीजी के पास गये । स्वामीजी ने कहा, यदि राजधानी में जाने का कोई बड़ा भारी आवश्यक काम हो, तो इस गाड़ी से न जा कर दूसरी गाड़ी से जाना । महाराज ने स्वामीजी की आज्ञा पालन की । दूसरी गाड़ी से जाने के लिये जब आप स्टेशन पर गये तब सुना कि पहिली गाड़ी (जिससे महाराज ने जाना निश्चित किया था) जौनपुर के पास एक दूसरी गाड़ी से लड़ गयी जिससे बहुत मनुष्य मरे और घायल हुए । अब महाराज की बुद्धि में स्वामीजी के रोकने का अर्थ आया । काशी

और अयोध्या के राजाओं के अतिरिक्त भारत के अन्य राजा भी यथा—रीवाँ, नाटौर, भिनगा, डुमराँव, बेतिया, दरभङ्गा आदि के राजा, हैदराबाद के निज़ाम, मुर्शिदाबाद के नव्वाब आदि मुसलमान राजा-गण और भारत के बड़े लाट, उत्तर-पश्चिम प्रदेश के छोटे लाट और भारत के प्रधान सेनापति आदि राजपुरुष—स्वामीजी के दर्शनों के लिये आनन्दबाग़ में गये थे और वे सभी स्वामीजी में भक्ति करते थे। कलकत्ता भवानीचरणदत्त लेन के डाक्टर भादुड़ी १४ वर्षों से अम्लशूल रोग से पीड़ित थे, उन्होंने अन्त में स्वामीजी की शरण ली। स्वामीजी ने डाक्टर भादुड़ी के पेट पर हाथ फेरा। स्वामी जी के हाथ फेरते ही डाक्टर भादुड़ी की सभी पीड़ा जाती रही। एक समय पश्चिमोत्तर प्रदेश के एक ज़मींदार स्वामीजी के दर्शनों के लिये आनन्दबाग़ में आये। वे स्त्री पुरुष दोनों ही स्वामीजी के शिष्य थे। स्त्री को दस मास का गर्भ था। पति स्त्री को काशी ले आना नहीं चाहता था, परन्तु स्त्री के बहुत अनुरोध करने पर वह स्त्री को भी साथ ले आया था। आनन्दबाग़ में आने पर स्त्री को प्रसव-वेदना हुई। ज़मींदार बिचारा बड़ी आफ़त में फँसा। उसने अभी तक स्वामीजी को इस विपत्ति का कुछ भी हाल नहीं कहा था। उस समय स्वामी जी के पास बहुत लोग बैठे थे। उन्हींमें मानकी नाम की एक वृद्धा स्त्री भी वहीं उपस्थित थी। उसको देख कर ही स्वामी जी उठ खड़े हुए और मानकी को अपने पीछे पीछे आने का सङ्केत कर के वे जहाँ ज़मींदार की स्त्री प्रसव-वेदना से पीड़ित हो रही थी वहाँ उपस्थित हुए। स्वामीजी ने उस स्त्री के माथे पर हाथ रखने के लिये मानकी को कहा। तदनन्तर मानकी ने स्वामीजी की आज्ञा से कहा कि गर्भस्थ पुत्र दस दिन के बाद उत्पन्न हो। स्वामीजी की आज्ञा से मानकी के ऐसा कहते ही ज़मींदार की स्त्री की प्रसव-वेदना शान्त हो गयी। पुनः स्वामीजी ने उस स्त्री को घर भिजवा दिया। स्वामीजी का वचन सत्य हुआ था। दस दिन के बाद ज़मींदार की स्त्री ने एक पुत्र उत्पन्न किया। इसी प्रकार कितनी ही अलौकिक घटनाएँ घटी हैं, जिनकी संख्या नहीं की जा सकती। भारतवर्ष तथा यूरप के भिन्न भिन्न प्रदेश अमेरिका, अफ़्रीका, चीन आदि महादेशों से कितने ही लार्ड, लेडी काउन्ट, बैरन, मार्किस, जनरल कर्नल आदि उपाधिधारी स्वामीजी के दर्शन के लिये आनन्दबाग़ में आ गये हैं। सन् १८९९ ई० में स्वामी जी ने समाधिस्थ हो कर रविवार की अर्धरात्रि को देह त्याग किया था। बृहस्पतिवार ही को स्वामीजी ने अपने विशिष्ट भक्तों से कह दिया था कि अब शीघ्र ही मैं शरीर त्याग करूँगा। शिष्यों के अनुरोध से तार द्वारा यह समाचार सब स्थानों में भेज दिया गया। अनेक स्थानों से भक्तवृन्द स्वामीजी का अन्तिम दर्शन करने के लिये आने लगे। परम भक्त गयाप्रसाद, प्रयाग के चौधरी महादेवप्रसाद, अयोध्या के महाराज प्रतापनारायणसिंह, काशी के महाराज और उनके दीवान, नागौद के महाराज यादवेन्द्रसिंह, मैनपुर के महाराज तेजसिंह आदि राजा, महाराज, ज़मींदार, तालुक़दार, मजिस्ट्रेट, जज और अन्य बहुत लोग स्वामीजी के दर्शन के लिये उपस्थित हुए। उनकी बनायी दशोपनिषद्—स्वाराज्य सिद्धि आदि की व्याख्या आदर के साथ दार्शनिक पण्डितों में पढ़ायी जाती है।

भीमसेन=(१) द्वितीय पाण्डव। ये पाण्डु के क्षेत्रज पुत्र थे। ये कुन्ती के गर्भ से और पवनदेव के औरस से उत्पन्न हुए थे। भीम और दुर्योधन ये दोनों समवयस्क थे। ये दोनों एक ही दिन उत्पन्न हुए थे। भीम अत्यन्त बलवान् थे, दुर्योधन आदि कोई भी मल्लयुद्ध में भीम की बराबरी नहीं कर सकते थे। इस कारण दुर्योधन सदा भीम से जला करता था और भीम को मारने के लिये सदा प्रयत्न किया करता था। एक दिन छिप कर दुर्योधन ने भीम को विष पिला कर जल में फेंकवा दिया। बहते बहते भीम नागलोक में पहुँचे। वहाँ नागों ने उपचार कर के भीम के प्राण बचाये। नागलोक से लौट कर भीम ने युधिष्ठिर से दुर्योधन

के दुराचारों का वर्णन किया। दुर्योधन ने अन्य पाण्डवों के साथ भीम को वारणावत नगर में लाक्षागृह में जला देने का प्रयत्न किया था। भीम ने दुर्योधन के बुरे भावों को शीघ्र ही जान लिया, और वे लाक्षागृह में अग्नि लगा कर माता कुन्ती, द्रौपदी तथा अपने भाइयों को ले कर द्रुपदराज्य में चले गये। द्रुपद के राज्य में जाने के पहले भीम ने हिडिम्ब राक्षस को मार कर उसकी भगिनी हिडिम्बा को व्याहा था। हिडिम्बा के गर्भ से भीम को घटोत्कच नामक एक पराक्रमी पुत्र उत्पन्न हुआ था। पाञ्चाल नगरी में द्रौपदी की प्राप्ति होने के पश्चात् भीम युधिष्ठिर आदि को साथ ले कर इन्द्रप्रस्थ गये, वहाँ युधिष्ठिर ने बड़े समारोह से राजसूय यज्ञ का अनुष्ठान किया। श्रीकृष्ण और अर्जुन के साथ भीमसेन मगध राज्य गये, और वहाँ उन्होंने जरासन्ध का वध किया। दुर्योधन ने कपट जुए के खेल में युधिष्ठिर को परास्त कर के द्रौपदी का तिरस्कार किया था। भीम ने द्रौपदी के अपमान का बदला लेने के लिये सभास्थान में सब के सामने प्रतिज्ञा की कि मैं दुर्योधन को समस्त भाइयों के साथ मार डालूँगा। दुःशासन का हृदय तोड़ कर रुधिर पीऊँगा, और गदा की मार से दुर्योधन के ऊरु देश को तोड़ डालूँगा। कुरुक्षेत्र के युद्ध में भीम ने अपनी प्रतिज्ञा का पालन किया था। पाण्डवों के महाप्रस्थान के समय द्रौपदी, सहदेव, नकुल और अर्जुन के पतन के अनन्तर भीम का पतन हुआ था। उस समय युधिष्ठिर बोले, तुम भोजन दूसरों को न दे कर स्वयं अधिक भोजन करते थे और अपने को अद्वितीय बलशाली समझ कर अहङ्कार करते थे इसी कारण तुम यहाँ पतित हुए हो। भीमसेन ने वहीं माया त्याग किया। (महाभारत)

(२) विदर्भराज। ये दमयन्ती के पिता थे।

(३) महाराणा भीमसिंह। ये उदयपुर के महाराणा थे। हमीर की अकाल मृत्यु के पश्चात् उनके छोटे भाई भीमसिंह सन् १७७८ ई० में मेवाड़ के सिंहासन पर बैठे। भीमसिंह बहुत दिनों तक अपनी माता की अधीनता में रहे। स्वाधीनता का समय प्राप्त होने पर भी भीमसिंह को स्वाधीनता नहीं मिली। अतएव वे स्वभाव ही से निस्तेज और उत्साहहीन हो गये थे। महाराणा की बुद्धि इतनी छोटी हो गयी थी कि उनमें सामर्थ्य और विचार का नाम भी नहीं रह गया था। इसी कारण एक कुचक्री के द्वारा भीमसिंह परिचालित होने लगे। राणाजी ने चन्द्रावत सर्दारों को राज्य के ऊँचे पद दे रखे थे। चन्द्रावतों ने अपने पुराने शत्रु शक्तावतों से वैर का बदला चुकाने का यत्न किया। इस आपसी झगड़े से मेवाड़ की बड़ी हानि हुई। बालक भीमसिंह उस झगड़े को रोकना चाहते थे परन्तु अपनी असमर्थता के कारण वे रोक न सके। शक्तावत और चन्द्रावतों का पुराना वैर दिन प्रतिदिन बढ़ने लगा। चन्द्रावत तो महाराणा के प्रिय थे ही, इन्हींका एक सर्दार मेवाड़ का प्रधान मन्त्री था। परन्तु बुद्धिहीन भीमसिंह ने इस ऊँचे पद का अपमान किया। चित्तौर और उदयपुर की राजकीय भूमि, जिन्की सेना के अधीन कर दी गयी थी। यह सेना मन्त्री ही के अधिकार में थी। मन्त्री और राणा में कुछ भी सहानुभूति नहीं थी। क्योंकि जिस समय महाराणा धन के अभाव से कष्ट पा रहे थे, उस समय मन्त्री अपने इष्ट मित्रों के साथ गुलछर्रे उड़ा रहा था। राज्य का धन इस प्रकार नष्ट किया जा रहा था कि राणा भीम को ईडर में अपने विवाह के लिये कर्ज लेना पड़ा था। परन्तु इस विश्वासघाती सामन्त ने अपनी कन्या के ब्याह में दस लाख रुपये उड़ा दिये। यह देख कर राजमाता चन्द्रावतों से बहुत अप्रसन्न हुईं। उन्होंने शक्तावत सम्प्रदाय के सामन्तों को बुलाया तथा राज्य के ऊँचे पद पर प्रतिष्ठित किया। शक्तावतों को राजमाता का दिया हुआ राजकीय अधिकार तो मिला सही, परन्तु उनके पास अधिक सेना न होने के कारण वे कुछ कर न सके। इस कारण कोटे के सर्दार ज़ालिमसिंह से इन लोगों ने सहायता की प्रार्थना की। ज़ालिमसिंह चन्द्रावतों

से बहुत ही बिगड़ा हुआ था। शक्तावतों से ज़ालिमसिंह का वैवाहिक सम्बन्ध था। अतएव उनका अभिप्राय जान कर ज़ालिमसिंह उनके पक्ष में हो गया और वह अपने महाराष्ट्र मित्र नानाजी बल्लाल के साथ १०००० सेना ले कर अपने कुटुम्बियों के पक्ष में जा मिला। इस समय शक्तावतों के दो कर्त्तव्य कार्य हुए। प्रथम तो विद्रोही चन्दावतों का दमन, और राजा रतनसिंह को कमलमेर से भगाना। चन्द्रावत लोग सिन्धियों के साथ मिल कर चित्तौर के प्राचीन दुर्ग में स्थित हो कर राणा के विरुद्ध अनेक प्रकार के कपट जाल फैला रहे थे। अतएव सब से पहले उनका दमन करना ही शक्तावतों ने उचित समझा।

मेवाड़ में जिस समय ये बातें हो रही थीं उस समय माधोजी सेंधिया की प्रभुता नष्ट हो गयी थी। मारवाड़ और जयपुर के मिले हुए विक्रम से सेंधिया का पराक्रम नष्ट हो गया।

भीमसिंह ने उचित अवसर जान कर उन देशों पर आक्रमण करने का निश्चित किया जिन पर महाराष्ट्रों ने अधिकार कर लिया था। मेवाड़ में फिर भी प्राचीन वीरता की झलक एक बार दिखायी पड़ी। राणाजी के दीवान मालदास महता और उनके सहकारी मौजीराम दोनों ही विशेष साहसी और बुद्धिमान् थे। इन्होंने सब से पहले नीमचहेड़ा तथा उसके आसपास के स्थानों पर—जहाँ महाराष्ट्रों ने अधिकार कर लिया था—अपना अधिकार जमा लिया। इस प्रकार थोड़े ही समय में अपने निकले हुए देशों पर मेवाड़ का अधिकार पुनः स्थापित हुआ। परन्तु मेवाड़ के दुर्भाग्य से उसका यह गौरव बहुत दिनों तक नहीं रह सका। राजपूत अपने देशों पर अधिकार कर के महाराष्ट्र देशों पर लपके। यह बात वीररमणी अहल्याबाई से नहीं देखी गयी, इन्होंने अपनी सेना सेंधिया की सहायता के लिये भेजी। फिर क्या था, राजपूतों ने अपने जिन क़िलों का उद्धार किया था वे भी इनके हाथ से निकल गये। अन्त में भीमसिंह को अपनी अकर्मण्यता का फल चखना पड़ा था। (टाड्स राजस्थान)

भीम गुप्त=काश्मीर के एक राजा। इनके पिता का नाम अभिमन्यु गुप्त था। भीम गुप्त अभिमन्यु गुप्त के सब से छोटे पुत्र थे। भीम गुप्त के बड़े दो भाई जब क्रमशः इनकी दुराचारिणी पितामही दिद्दा के द्वारा मारे गये, तब भीम गुप्त काश्मीर के राजसिंहासन पर बैठे। शिशु राजा भीम गुप्त जब कुछ बड़े हुए, जब इन्हें भला बुरा समझने की बुद्धि हुई, तब इनकी माता ने दिद्दा का व्यवहार तथा राज्य की व्यवस्था इन्हें समझायी। भीम गुप्त उसको दूर करने का प्रयत्न करने लगे। परन्तु दिद्दा ने उनके मन के भावों को समझ लिया तथा ब्राह्मणों द्वारा कृत्या करवा कर उसे मरवा डाला।

(राजतरङ्गिणी)

भीमसिंह=(१) (देखो पद्मिनी)।

(२) मारवाड़ के राजा। मारवाड़ के राजा विजयसिंह की मृत्यु होने पर उनके पौत्र भीमसिंह जयसलमेर से मारवाड़ जोधपुर आये, और आ कर उन्होंने राज्य पर अपना अधिकार जमा लिया। विजयसिंह के मध्यम पुत्र ज़ालिमसिंह मारवाड़ के सिंहासन के अधिकारी थे, वे भी पिता की मृत्यु का समाचार पा कर चले। परन्तु वे मेरता नामक स्थान में शुभ दिन और शुभ मुहूर्त्त में राजधानी में प्रवेश करने के लिये ठहर गये। ज़ालिमसिंह जैसे ही नगर द्वार पर आये वैसे ही उन्होंने सुना कि भीमसिंह के मस्तक पर मारवाड़ का मुकुट शोभा दे रहा है। ज़ालिमसिंह की सभी आशाएँ धूलि में मिल गयीं। जब भीमसिंह ने सुना कि ज़ालिमसिंह आया है तब उसने अपनी सेना को उसे पकड़ने के लिये भेजा। ज़ालिमसिंह भाग कर उदयपुर के राणा की शरण में गये। भीमसिंह ने मारवाड़ के सिंहासन पर बैठते ही पैशाचिक अत्याचार करना प्रारम्भ कर दिया था। इसने अपने चाचाओं को भी मरवा डाला था। मानसिंह से लड़ाई बहुत दिनों तक चली, इसका विषैला फल यहाँ तक हानिकारी हुआ कि भीमसिंह तो ख़राब हुए ही, समूचा मारवाड़ नष्टभ्रष्ट हो गया।

(टाड्स राजस्थान)

(३) कोटे के एक राजा । रामसिंह के मरने के उपरान्त भीमसिंह कोटे के राजा हुए । हाड़ा जाति के इतिहास में लिखा है कि भीमसिंह के राज्य के समय में कोटा राज्य की बड़ी उन्नति हुई । बादशाह बहादुरशाह के मरने पर और फ़र्रुखसियर के दिल्ली के सिंहासन पर बैठने के समय दोनों सैयद भाई प्रबल शक्ति से भारत का शासन कर रहे थे। राव भीमसिंह ने उन्हींका पक्ष ग्रहण किया और उनकी नीति का अनुकरण कर के अपनी उन्नति का भी उपाय निकाल लिया । माधोसिंह के समय में कोटे का राज्य तीसरी श्रेणी का समझा जाता था परन्तु भीमसिंह की बुद्धिमत्ता से उसे प्रथम श्रेणी का पद मिला । इस अतर्कित उन्नति के लिये राव भीमसिंह पर स्वार्थीपन अथवा स्वजाति-द्रोह का भी कलङ्क लगाया जा सकता है ।

कोटे के इतिहास से जाना जाता है कि प्रसिद्ध कुलीचख़ाँ ने, जिसने इतिहास में अपना निज़ामुलमुल्क नाम धारण कर के हैदराबाद का राज्य स्थापन किया था, दिल्ली के बादशाह की अधीनता न मान कर दिल्ली के अधीन देशों को लूटना खसोटना आरम्भ कर दिया । बादशाह ने उसको दमन करने के लिये जयपुर के राजा जयसिंह, कोटे के राजा भीमसिंह और नरवर के राजा भीमसिंह की अधीनता में एक सेना भेजी । भीमसिंह कुलीच ख़ाँ के मित्र थे । अतएव कुलीचख़ाँ ने उन्हें एक पत्र भेजा जिसमें लिखा था कि मैं दिल्ली के बादशाह की कुछ भी हानि नहीं करता । षड्यन्त्री जयसिंह की यह चालाकी है । इस कारण आप उन पर विश्वास न करें और मेरी दक्षिण की यात्रा में रोक टोक न करें । भीमसिंह ने उत्तर दिया—मुझे स्वामी की आज्ञा मिली है, उसका पालन मैं अवश्य करूँगा, आप तैयार हो जायँ, भीमसिंह और गजसिंह दोनों कुलीचख़ाँ के कुचक्र से मारे गये ।

(टाड्स राजस्थान)

कवि=ये हिन्दी के एक कवि थे और इन का जन्म सं० १६८१ में हुआ था । इनके बनाये कवित्त हज़ारा में पाये जाते हैं ।

भीषमदास=ये हिन्दी के भक्त कवि थे। रागसागरोद्भव तथा रागकल्पद्रुम में इनके पद पाये जाते हैं ।

भीष्म पितामह=महाराज शन्तनु के ज्येष्ठ पुत्र थे गङ्गा के गर्भ से उत्पन्न हुए थे । राजा शन्तनु ने गङ्गा से विवाह करने के समय यह प्रतिज्ञा की थी कि वे अपनी स्त्री के किसी कार्य में बाधा नहीं देंगे और कभी उसको कुवचन नहीं कहेंगे । गङ्गा के गर्भ से आठ पुत्र उत्पन्न हुए थे । उनमें सात पुत्रों को गङ्गा ने जल में डुबो दिया । पत्नी के वियोग-भय से शन्तनु कुछ भी नहीं बोल सके । आठवें गर्भ से भीष्म उत्पन्न हुए । इस पुत्र की रक्षा के लिये शन्तनु ने पत्नी के प्रति कटु वाक्यों का प्रयोग किया । गङ्गा उसी समय पहली प्रतिज्ञा के अनुसार शन्तनु को छोड़ कर चली गयीं । शन्तनु ने पुत्र का नाम गाङ्गेय या देवव्रत रखा । तदनन्तर शन्तनु एक दिन यमुना के तीर गये और वहाँ वसु नामक दासराज की कन्या को देख कर उस पर मुग्ध हुए और उन्होंने दासराज की कन्या सत्यवती को ब्याहने का प्रस्ताव किया । दासराज ने कहा—मुझे अपनी कन्या का विवाह कर देने में कुछ आपत्ति नहीं है, परन्तु इसके लिये आपको एक प्रतिज्ञा करनी पड़ेगी और वह यह कि मेरी कन्या से जो पुत्र हो वही आपका उत्तराधिकारी समझा जाय । शन्तनु ने दासराज के प्रस्ताव पर अपनी सम्मति न दी, और वे दुःखित हो कर राजधानी में लौट आये । यह बात छिप न सकी । देवव्रत ने भी इस बात को जान लिया । वे दासराज के समीप गये और उन्होंने प्रतिज्ञा की कि मैं विवाह नहीं करूँगा, और सत्यवती के गर्भ से उत्पन्न पुत्र ही राजा होगा । इस भीषण प्रतिज्ञा को सुन कर स्वर्ग से देवों ने उन पर पुष्पवृष्टि की । देवव्रत ने इस भीषण प्रतिज्ञा का पालन किया था । इसी कारण वे भीष्म नाम से प्रसिद्ध हुए । भीष्म के कहने से शन्तनु ने सत्यवती को ब्याहा । शन्तनु की मृत्यु होने

पर भीष्म ने विमाता सत्यवती के अनुरोध से राज्य का शासन किया था क्योंकि उस समय विचित्रवीर्य बालक थे। भीष्म ने काशीराज की अम्बिका और अम्बालिका नाम की दो कन्याओं को ले आ कर उनसे विचित्रवीर्य का ब्याह कर दिया था। कुरुक्षेत्र के युद्ध में कौरव पक्ष की ओर से भीष्म प्रतिदिन पाण्डवों की दस हज़ार सेना का नाश करते थे। दस दिन युद्ध करने पर भीष्म ने अर्जुन के बाणों से व्यथित हो कर शरशय्या ग्रहण की। उस समय सूर्य दक्षिणायन थे इस लिये उन्होंने प्राण त्याग नहीं किया। कुरुक्षेत्र युद्ध के अन्त में युधिष्ठिर ने भीष्म से अनेक उपदेश ग्रहण किये थे। महाभारत के समस्त शान्तिपर्व में यही उपदेश भरा है।

भीष्मक=विदर्भ राज्य का राजा। यह रुक्मिणी का पिता था।

भूधर कवि=भाषा के कवि। ये काशी के वासी थे। इनका जन्म १७०० सं० में हुआ था। इनके बनाये कवित्त हज़ारा में पाये जाते हैं।

भूपति कवि=ये भाषा के कवि अमेठी के महाराज थे। इनका असली नाम राजा गुरुदत्तसिंह बन्धल था। सं० १८०३ में इनका जन्म हुआ था। ये महाराज स्वयं तो कवि थे ही इसके अतिरिक्त ये कवियों के प्रधान आश्रयदाता भी थे। कवीन्द्र आदि कवि इनकी ही सभा में थे।

भूपनारायण कवि=ये कवि जाति के भाट थे और काकूपुर ज़िले कानपुर के रहने वाले थे। ये सं० १८५६ में उत्पन्न हुए थे। शिवराजपुर के चन्देले क्षत्रिय राजाओं की वंशावली इन्होंने बनायी है।

भूरिश्रवा=महावीर एक राजा। ये चन्द्रवंशी राजा सोमदत्त के पुत्र थे। महाभारत के युद्ध में इन्होंने दुर्योधन का पक्ष ग्रहण किया था। इन्होंने बड़ी वीरता से युद्ध किया था। उसी युद्ध में अर्जुन ने इनके हाथ काट डाले थे, अनन्तर सात्यकि ने इनका सिर काट डाला।

(महाभारत)

इनके विषय में जनश्रुति यह है कि काशी रामनगर के पास भुइली नामक गाँव में इनकी राजधानी थी। अभी उस गाँव में टूटे फूटे खँडहर वर्तमान हैं, जो इस बात के साक्षीस्वरूप हैं कि यहाँ किसी समय एक बड़े प्रभावशाली राजा की राजधानी थी। वहाँ एक हनुमान्‌जी की बड़ी विशाल मूर्ति है। जिसके विषय में लोग कहते हैं कि राजा भूरिश्रवा जीत कर इस मूर्ति को ले आये थे।

भूमिहार=एक जातिविशेष। यह मैथिल ब्राह्मणों की एक शाखा है। इनकी उत्पत्ति के विषय में यह किंवदन्ती प्रचलित है—परशुराम ने जब समस्त पृथिवी को क्षत्रियों से हीन कर दिया, और पृथिवी से क्षत्रिय नाम उठ गया, तब ब्राह्मणों ने क्षत्रियों की सम्पत्ति ले ली। उन लोगों ने ब्राह्मणोचित क्रिया कर्म त्याग कर के राज्य शासन करना आरम्भ कर दिया। ब्राह्मणों के आचार विचार उनसे लुप्त होने लगे, और क्षत्रियों के क्रिया कर्म आचार विचार उनमें आने लगे। कुछ दिनों तक तो उनका परिचय ब्राह्मण शब्द से होता रहा, परन्तु अधिक समय बीत जाने से उनके नाम और जाति की नयी सृष्टि हुई। अब वे भूमिहार ब्राह्मण नाम से परिचित होते हैं।

भूषण कवि=ये काश्यपगोत्री कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। कानपुर ज़िले के अन्तर्गत टिकमापुर नामक गाँव में ये रहते थे। संस्कृत के पण्डित लोग त्रिविक्रमपुर का अपभ्रष्ट रूप टिकमापुर बताते हैं। इन वीर कवि के पिता का नाम रत्नाकर था।

शिवसिंहसरोज में लिखा है—रत्नाकरजी अपने गाँव से आध कोस दूर एक देवीजी के स्थान पर नित्य दुर्गापाठ करने जाते थे। देवी का नाम था "वनकी भुंइया" एक दिन भगवती प्रसन्न हुईं और उन्होंने चार भक्तों के मुण्ड दिखा कर कहा—देखो ये ही चारों तुम्हारे पुत्र होंगे। देवी की वाणी सच्ची हुई। रत्नाकरजी को चार पुत्र उत्पन्न हुए। जिनके नाम ये थे।—चिन्तामणि, भूषण, मतिराम और जटाशङ्कर या नीलकण्ठ।

कहते हैं भूषण को पहले कविता का कुछ भी बोध नहीं था। इनके बड़े भाई चिन्तामणि

दिल्लीपति औरङ्गज़ेब के प्रसिद्ध दरबारी कवि थे। चिन्तामणि के अर्जित धन से भूषण का भी काम चलता था। लोग कहते थे कि चिन्तामणि कमाऊ पूत है, और भूषण "घररहा" कुपूत है। एक दिन भूषण की भौजाई ने अपने पति के कमाऊ पूत होने का और भूषण के कुपूत होने का बड़े तीक्ष्ण शब्दों में ताना दिया, भूषण उस ताने को न सह सके। वे घर छोड़ कर कुमायूँ नरेश के दरबार में पहुँचे। इस बीच में उन्होंने कविता रचने का अभ्यास कर लिया, कुमायूँ नरेश ने उनके "उदलत मद अनुमद जो जलधि जल" कवित्त पर प्रसन्न हो कर उन्हें एक लाख रुपये दिये और कहा—"तुम्हें ऐसा दानी नहीं मिलेगा।" भूषण ने भी इस गर्वोक्ति का उचित उत्तर दिया—"आप जैसे दाता तो बहुत हैं, परन्तु मुझ जैसा त्यागी याचक आपको नहीं मिलेगा।" यह कह कर भूषण ने उस धनराशि को तृण के समान त्याग दिया।

पन्ना के महाराज प्रातःस्मरणीय छत्रसाल के दरबार में आप छः महीने तक रहे थे और उन्हींके नाम पर भूषण ने "छत्रसाल दशक" बनाया। औरङ्गज़ेब को हिन्दी कविता से बड़ा प्रेम था। वह समझता था कि बिना इनकी सहायता के मेरे अत्याचार छिप नहीं सकते। कवीश्वर अपनी कविता से बादशाह को प्रसन्न किया करते थे। कवीश्वर लोग औरङ्ग को नौरङ्ग कहा करते थे। एक दिन औरङ्गज़ेब ने मयूरसिंहासन पर बैठ कर कहा—"तुम लोग मेरी प्रशंसा ही किया करते हो, क्या मुझ में कोई ऐब नहीं है। मेरे दोषों को भी कहो तब मालूम पड़े कि तुम सत्यवादी हो।" बादशाह का अभिप्राय यह था कि वे इस बहाने अपने निन्दकों का पता लगावें। कवि समाज चुप। चिन्तामणि के साथ रहने से भूषण भी दरबार में आया जाया करते थे। सब कवियों को चुप देख भूषण बोले—"जहाँपनाह, खुशामद खुदा को भी प्यारी है, इसी कारण हम लोग आपके दोषों को छिपा कर केवल गुण ही बखानते हैं। परन्तु जब आप हम लोगों की सत्यवादिता की परीक्षा लेना चाहते हैं तब आपके दोषों को कहने में कोई डर नहीं करना चाहिये। आप सत्य ही सुनना चाहते हों तो सुनिये मैं हाज़िर हूँ। आप मर्द हों तो सुनें।

औरङ्गज़ेब सोचने लगा, न मालूम यह नौजवान कवि क्या कह उठे। पर कह चुका था इससे बोला—"इसी समय मेरी सच्ची तारीफ़ करो।" भूषण ने कहा—"बादशाह सलामत, मैं जानता हूं कि सच्ची तारीफ़ करने से मेरा सिर धड़ से अलग किया जायेगा, अतः आप अपनी इस आज्ञा को रद्द करें।" बादशाह बोला—"अच्छा वही होगा।" पुनः भूषण बोला—"इस समय तो आप मेरी बात मानते चले जाते हैं, परन्तु जिस समय सच्ची प्रशंसा सुनेंगे उस समय ये सब बातें भूल जायँगी। अतः मेरा वध न करने का फरमान लिख दें और सब दरबारी अमीरों की उस पर गवाही लिखवा दें।" तब भूषण ने कहा—

"किबले की ठौर बाप बादशाह शाहजहाँ (१) हाथों तसबीह लिये प्रात उठि बन्दगी को (२)" ये दो कवित्त पढ़ कर "सौ सौ चूहे खाय कै बिलारी चली तप कौं" पर समाप्त किया औरङ्गज़ेब इन कवित्तों को सुन कर व्याकुल हो ही रहा था कि उधर कवि और राजपूतों ने कहा—"शाबाश भूषण, धन्य भूषण।" बादशाह के क्रोधाग्नि में मानो घृताहुति पड़ी, तलवार खींच कर बादशाह स्वयं भूषण को मारने को उठा। पर न्यायी मुसाहब और सरदारों ने अपकीर्ति और प्रतिज्ञा लङ्घन का डर दिखा कर उसे रोक दिया। बादशाह ने कहा "जा भूषण मुँह मत दिखा।" भूषण घर आये, और उन्होंने अपनी केसर नाम की घोड़ी सजाई। औरङ्गज़ेब खुशामदी कवियों को साथ में ले कर जामा मसजिद में गया। इतने में भूषण कवि भी अपनी घोड़ी पर सवार हो कर उधर ही से निकले। बादशाह को उन्होंने सलाम नहीं किया, परन्तु उसके साथी एक कवीश्वर को उन्होंने नमस्कार किया। इससे औरङ्गज़ेब और भी जल गया उसने एक कवि को सङ्केत

किया कि इससे पूछो अब यह कहाँ जायगा। कवि ने कहा—"है. रङ्क नौरङ्गशाह को और न दूजो रङ्क" भूषण समझ गये उन्होंने उत्तर दिया—

"कितेक देश जिते दल के बल * * *
सो रङ्क है शिवराज बली
जिन नौरङ्ग में रँग एक न राख्यो।"

इस समय औरङ्गज़ेब की जैसी दशा हुई उसे कौन बतला सकता है। उस समय उसके मुँह से निकला—"हाय मैंने भूषण को क्यों न मरवा डाला।' इसका अर्थ यह था शिवाजी एक तो वैसे ही वीर हैं जब उसे भूषण जैसा कवि वीरत्व का बढ़ावा देगा, उस समय न मालूम उसकी सेना क्या कर डालेगी। यदि मैं भूषण को मरवा डालता तो अच्छा होता।

शिवाजी और भूषण का सम्मिलन अपने लिये भयङ्कर समझ उसने कई सवार भूषण को पकड़ने के लिये भेजे थे। परन्तु वे भूषण की घोड़ी को न पा सके, अन्त में वे छूछेहाथ लौट आये। भूषण जङ्गली और पहाड़ी मार्गों से रायगढ़ पहुँचे। नगर के बाहर ही एक देवी के मन्दिर के समीप विश्राम करने के लिये ये उतरे। इतने में एक तेजस्वी सवार घोड़े को टहलाता हुआ भूषण को दिखायी पड़ा। उसका उन्नत तथा तेजस्वी स्वरूप देख कर भूषण ने जाना यह कोई राजपुरुष है। उस पुरुष ने पूछा—"तुम कौन हो," भूषण ने अपनी सब कहानी कह सुनायी।

तब उस पुरुष ने कहा—"अवश्य ही आपने शिवाजी की प्रशंसा के कवित्त सुनाये होंगे।" भूषण ने कहा—"आप पहले यह तो बतावें कि आप हैं कौन?" उसने उत्तर दिया—"मैं शिवाजी महाराज का सेनापति हूँ। अतः अपने स्वामी की प्रशंसा अवश्य सुनूँगा।" भूषण ने अपना यह कवित्त पढ़ा—

"इन्द्र जिमि जम्भ पर वाडव सुअम्भ पर
रावण सदम्भ पर रघुकुलराज है।
पौन वारिवाह पर शम्भु रतिनाह पर
ज्यों सहस्रबाह पर राम द्विजराज है॥
दावा द्रुम दुण्ड पर चीता मृग झुण्ड पर
भूषन वितुण्ड पर जैसे मृगराज है।
तेज तिमिरंश पर कान्ह जिमि कंस पर
त्यों म्लेच्छ वंश पर सेर शिवराज है॥"

यह कवित्त क्या था मानो इन्द्रजाल था। उस पुरुष का हृदय वीरता से फूल उठा। बोला—"फिर पढ़ो, फिर पढ़ो," इस प्रकार उसने इस कवित्त को बावन बार पढ़वाया। बार बार कवित्त सुनने पर भी उस पुरुष की तृप्ति नहीं हुई परन्तु भूषण कहते कहते थक गये थे। तब "आप दरबार में आइये" कह कर वह पुरुष चला गया।

दूसरे दिन भूषण दरबार में गये, वहाँ उस सेनापति को बहुत ढूँढ़ा परन्तु पता नहीं लगा। अन्त में भूषण ने अपने कवित्त पढ़े। सारी सभा मुग्ध हो गयी, तदनन्तर एक सेनानी उठा और भूषण को योग्य आसन पर बैठा दिया। भूषण ने जब ध्यान से देखा तो उन्हें मालूम पड़ा कि वह सेनापति स्वयं महाराज शिवाजी ही थे। इससे भूषण ज़रा घबड़ाये। महराज शिवाजी ने कहा "घबड़ाओ मत। तुम मेरे दरबार की शोभा बढ़ाओ। यहाँ औरङ्ग का कुछ भी भय नहीं है। आप जैसे कवि की मुझे आवश्यकता थी।" महाराज की यह अभय वाणी सुन कर भूषण ने तीन और कवित्त पढ़े। वह सभा वीरोल्लास से गरज उठी। महाराज ने बावन गाँव हाथी आदि की उन्हें ख़िल्लत दी। भूषण ने कहा—"मुझे इन सब की आवश्यकता नहीं। मैं आपको धर्मरक्षक और गोपालक समझ कर आया हूँ। आप उनकी रक्षा करें।" भूषण कवि शिवाजी के साथ स्वयं युद्ध में जाते थे, और वीरों का उत्साह बढ़ाते थे। इस कविराज का भूषण नाम नहीं था, इनके असली नाम का किसीको कुछ पता भी नहीं है। इन्होंने शिवराजभूषण में लिखा है कि "चित्रकूट नरेश सोलङ्की महाराज ने मुझे कवि-भूषण की उपाधि दी।" कई वर्षों के बाद जब आप घर जाने लगे, तब महाराज ने बड़े सम्मान से आपको बिदा किया, मार्ग में आप बुन्देला राज्य हो कर निकले। महाराज छत्रसाल ने इनकी पालकी कन्धे पर रख कर ढोई। उन्होंने कहा "मैं दे तो

करा सकता हूँ इससे मैं आपकी सेवा ही करूँगा।" तब महाराज की गुणग्राहकता को सराह कर आपने एक कवित्त पढ़ा—

"साहु को सराहूँ कि सराहूँ छत्रसाल को।"

दिल्ली के बादशाह को भूषण के घर आने की ख़बर मिली। बादशाह ने इन्हें बुलाया। आपने कहवाया—"मैं शिवाजी की प्रशंसा करता हूँ यदि आपको वह सुनना हो तो मैं आसकता हूँ।" बादशाह ने कहलाया—"आओ, तुम्हारी सभी बातें हमें स्वीकृत हैं।" भूषण ने शिवराज की प्रशंसा के कवित्त पढ़े। शिवाजी ने जब सुना कि भूषण दिल्ली गये तब उन्होंने अपने यहाँ उनको बुला लिया। तब से भूषण वहीं रहे। भूषण हजारा, भूषण उल्लास, और दूषण उल्लास ये तीन ग्रन्थ भूषण के बनाये और भी सुने जाते हैं। परन्तु वे अभी तक मिले नहीं हैं। हजारा में भी भूषण के नवरसमय ७० कवित्त हैं। पर रौद्र वीर भयानक अद्भुत इन्हीं रसों पर आपके कवित्त अधिक हैं। आपने अपने कवित्तों में रूसी फ्रांसीस आदि का भी वर्णन किया है, परन्तु वे भी अब नहीं मिलते।

भारत में कवि बहुत हुए, परन्तु मेरी समझ से कविपद की मर्यादा रखने वाले थोड़े ही कवि हुए हैं। जो हुए हैं उनमें भूषण को भी प्रधान स्थान मिलना योग्य है, क्योंकि इनके काव्य शक्तिमान् हैं।

भृगु=विख्यात मुनि। प्राचीन काल में रुद्र वारुणी मूर्ति धारण कर के एक यज्ञ का अनुष्ठान करते थे, उस यज्ञ में देवपत्नी और देवकन्या गण उपस्थित हुई थीं। उस समय ब्रह्मा दीक्षित हो कर यज्ञाग्नि में आहुति देते थे। देवकन्याओं को देख कर ब्रह्मा कामातुर हुए और उनका रेतःपात हुआ। अनन्तर ब्रह्मा ने अपनी किरणों से उस रेत को ले कर अग्नि में आहुति दी। आहुति देते ही अग्निशिखा के साथ भृगु, धूमयुक्त अङ्गिरा और निर्धूम अङ्गार से कवि की उत्पत्ति हुई। वारुणीमूर्तिधारी महादेव बोले—"जब यह यज्ञ हमारे द्वारा आरम्भ किया गया है तब ये हमारे पुत्र हैं।" अग्नि बोले—"जब ये हमको आश्रय कर के हमारे अङ्ग से उत्पन्न हुए तब ये मेरे ही पुत्र हैं।" ब्रह्मा बोले—"ये हमारे वीर्य से उत्पन्न हुए हैं अतः हमारे ही ये पुत्र हैं।" इसी प्रकार तीनों देवताओं में विवाद होने लगा, तब अन्य देवताओं ने मध्यस्थ बन कर तीनों को एक एक पुत्र दिलवा दिया। भृगु महादेव को, अङ्गिरा अग्नि को और कवि ब्रह्मा को मिले।

एक बार भृगु मुनि ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर में कौन श्रेष्ठ है, इसकी परीक्षा लेने गये। सब से पहले वे ब्रह्मा के निकट गये, और उन्होंने ब्रह्मा के प्रति कुछ भी सम्मान नहीं दिखाया। इससे ब्रह्मा क्रुद्ध हुए और उन्होंने भृगु का तिरस्कार किया। भृगु मुनि महादेव के निकट भी गये और भृगु ने महादेव के प्रति भी कुछ भी सम्मान नहीं दिखाया। महादेव भी इन पर अप्रसन्न हुए। भृगु ने स्तुति कर के महादेव का क्रोध शान्त किया और आप विष्णु के यहाँ चले गये। उस समय विष्णु सोये थे। भृगु ने विष्णु की छाती में एक लात मारी जिससे विष्णु जाग उठे। लात मारने से क्रोध करना तो दूर रहा, विष्णु उठ कर मुनि की चरणसेवा करने लगे। हमारी कठोर छाती में लात मारने से मुनि के चरण में चोट आयी होगी यह समझ कर विष्णु बहुत ही दुःखित हुए। इस प्रकार की ब्राह्मण भक्ति के कारण ही विष्णु सब देवों में श्रेष्ठ समझे जाते हैं। इनके बारह पुत्र थे, जो देवता समझे गये। उनके नाम ये थे। भुवन, भौवन, सुजन्य, सुजन, क्रतु, वसु, मूर्द्धा, त्याज्य, वसुद, प्रभव, अव्यय और दक्ष। भृगु के अन्य पुत्र च्यवन और आप्लुवान विप्र कोटि के थे।

दुराचारी और उद्धत राजा वेन को इन्हीं भृगु मुनि ने राजसिंहासन पर बैठाया था।

भेल=आयुर्वेदप्रचारक प्राचीन महर्षि। चरक से यह बात प्रमाणित होती है कि भेल ऋषि प्रणीत चिकित्सा शास्त्र इसके पहले प्रचलित था। आत्रेय आदि ऋषि भेल के शिष्य थे और भेल पुनर्वसु के शिष्य थे। अष्टाङ्गसंहिताकार वाग्भट ने भेल के ग्रन्थों को देखा था।

भोज=वसुदेव के एक पुत्र का नाम। इन्हींसे यदुवंश में भोज नामक एक शाखा प्रचलित हुई है।

भोज कवि=(१) इनका दूसरा नाम विहारीलाल वन्दीजन था। ये चरखारी के रहने वाले थे और जाति के भाट थे। सं० १६०१ में ये उत्पन्न हुए थे। चरखारी के महाराजा रतनसिंह के ये दरबारी कवि थे। इनकी कविता अद्भुत होती थी। इनका बनाया "भोजभूषण" नामक ग्रन्थ उत्तम है। ये शरफो नाम की एक वेश्या पर आसक्त थे। उसकी प्रशंसा में भी इन्होंने बहुत कवित्त बनाये हैं। इन्होंने एक और ग्रन्थ बनाया था जिसका नाम रसविलास है।

(२) ये कवि ब्राह्मण थे, और इन्हें मिश्र की उपाधि थी। ये महाराव बुद्ध बून्दी के दरबार में थे। इनका जन्म सं० १७८१ में हुआ था। मिश्रश्टङ्गार नामक इनका बनाया एक ग्रन्थ भी है।

भोजभद्र=ये विदर्भ के राजा थे। इन्होंने नागार्जुन की वक्तृता और धर्मव्याख्या सुन कर बौद्धधर्म ग्रहण किया था। भोजभद्र ईसवी सन् के ५६ वर्ष पूर्व उत्पन्न हुए थे।

भोजराज=इतिहासप्रसिद्ध विद्वान् और वीर राजा। इनके पिता का नाम सिन्धुराज था। भोजराज कवि और ग्रन्थकार थे। भोजराज के बनाये ग्रन्थों में पातञ्जल दर्शन की वृत्ति विशेष प्रसिद्ध है। यह वृत्ति भोजवृत्ति नाम से प्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त अमरटीका, चम्पूरामायण, चारुचर्या, सरस्वतीकण्ठाभरण, और राजवार्तिक भोजराज के बनाये ग्रन्थ हैं। इनके शासन समय में अलङ्कार ज्योतिष और व्यवहार विधि के अनेक ग्रन्थ बने थे, भोज ने विक्रमादित्य के बत्तीस सिंहासनों का उद्धार किया था। बहुत लोग भोज और विक्रमादित्य को एक ही समझते हैं और कालिदास आदि को इन्हींकी सभा के नवरत्न बतलाते हैं। परन्तु यह बात ऐतिहासिक दृष्टि से प्रमाणित नहीं होती। पहले उज्जयिनी के सिंहासन पर भोज और विक्रमादित्य नाम के अनेक राजा हो गये। भोज और विक्रमादित्य एक प्रकार से राजाओं की उपाधि हो गया था। सम्भव है कि विद्यानुरागी भोज ने भी कोई नवरत्नसभा स्थापित की हो। भोजप्रबन्ध में लिखा है कि भोजराज के पिता का नाम सिन्धुल था और मुञ्जराज उनके छोटे चाचा थे। सिन्धुल की मृत्यु होने पर मुञ्ज को सिंहासन मिला। उस समय भोजराज विद्या अर्जन कर के यशस्वी हो रहे थे। मुञ्ज को अपने राज्यच्युत होने का भय हुआ। उन्होंने अपने विश्वासी वत्सराज को भोज को मारने के लिये नियुक्त किया। परन्तु दयावान् वत्सराज गुणी भोजराज को मार न सका। भोज को छोड़ कर पशु के रुधिर से अपनी तलवार रङ्ग कर वह आया, मुञ्ज को भोज के मारे जाने का संवाद सुना कर उन्हें एक पत्र दिया। उस पत्र में नीचे लिखी हुई बात लिखी थी। नृपशिरोमणि मान्धाता, रावणारि श्रीरामचन्द्र और पाण्डवश्रेष्ठ युधिष्ठिर इन सभी ने पृथिवी यहीं छोड़ कर प्रस्थान किया है, परन्तु अब यह पृथिवी मुञ्ज के साथ पाताल जायगी। इन बातों को सुन कर मुञ्ज को बोध हुआ। वे अपने कुकर्म पर पछताने लगे। उनकी दुर्दशा देख कर वत्सराज ने सभी बात कह सुनायी और भोज को ले आ कर उनके सामने कर दिया। मुञ्ज भोज को राज्य दे कर भगवद्भजन करने लगे। परन्तु न मालूम भोजप्रबन्ध कर्ता बल्लालसेन को यह बात कहाँ से मिली। उन्होंने ऐसी बेतुकी बात किस आधार पर लिखी। भोजराज के पिता सिन्धुराज थे और मुञ्जराज उनके छोटे भाई तथा उनके बाद राजगद्दी पर बैठे यह बात सिन्धुराज के जीवनचरितरूप नवसाहसाङ्क से विरुद्ध है। यह बात तो सिद्ध ही है कि मुञ्ज की सभा में धनिक धनञ्जय पद्मगुप्त आदि कवि थे। पद्मगुप्त ही ने नवसाहसाङ्कचरित बनाया है, उन्होंने उसमें लिखा है—

> दिवं यियासुर्मम वाचि मुद्रा-
> मदत्त यां वाक्पतिराजदेवः।
> तस्यानुजन्मा कविबान्धवस्य
> भिनत्ति तां सम्प्रति सिन्धुराजः॥

अर्थात् वाक्पतिराजदेव (मुंज) के स्वर्ग जाने पर मेरी वाणी रुक गयी थी, मानो उन्होंने मेरी वाणी में ताला लगा दिया था। आज उन्हीं कवि बान्धव के छोटे भाई सिन्धुराज मेरी वाणी का ताला खोल रहे हैं।

इससे स्पष्ट प्रमाणित है कि सिन्धुराज मुञ्जराज के छोटे भाई थे।

भोजराज जिस प्रकार विद्वान् थे उसी प्रकार वीर भी थे। महमूद गज़नी ने जब कालिञ्जर दुर्ग पर आक्रमण किया था तब युद्ध कर के आपने अधिक प्रतिष्ठा पायी थी। इन्होंने चेदि और चालुक्य राज्यों को भी अपने अधिकार में कर लिया था। इसी कारण चेदि और चालुक्य के राजा गुजरात के राजा के साथ मिल कर इन पर चढ़ आये थे। इसी युद्ध में भोजराज १०६२ ई० में मारे गये।

भोज राज्य=महाभारत तथा पुराणादि अन्य ग्रन्थों में राजा भोज तथा भोज राज्य का उल्लेख पाया जाता है। भोज राज्य किस समय प्रतिष्ठित हुआ था, इस विषय में दो प्रकार के मत प्रचलित हैं। यदुकुल में वसुदेव के एक पुत्र का नाम भोज था। उसीके नामानुसार भोज राज्य का नामकरण हुआ था ऐसा अनुमान बहुतों का है। कोई कोई कहते हैं—परमारवंशी राजपूत नृपति राजा भोज सब से अधिक प्रसिद्ध थे। उन्हींके नामानुसार भोज राज्य का नाम पड़ा है। परन्तु यह बात ठीक नहीं मालूम पड़ती, क्योंकि परमारवंशी राजा भोज ख्रीष्टीय १० वीं सदी में उत्पन्न हुए थे। परन्तु उसके बहुत पूर्व काल से भोज राज्य और राजा भोज की प्रसिद्धि चली आती है। महाभारत में धृतराष्ट्र के प्रश्न के उत्तर में सञ्जय ने भोज राज्य का उल्लेख किया था। वहाँ भोज राज्य उत्तर देश का जनपद बतलाया गया है। मत्स्यपुराण में भी भोज राज्यका प्रसङ्ग उठाया गया है। वहाँ इस राज्य को विन्ध्याचल के पीछे स्थित जनपद बतलाया गया है। इन सब बातों से बड़े प्राचीन समय से इस राज्य की स्थिति का पता लगता है। परन्तु प्राचीन भोज राज्य इस समय भारत के किस प्रदेश को कहते हैं? प्रत्नतत्त्ववेत्ताओं का मत है कि विक्रमादित्य के समय में जो मालव या उज्जयिनी राज्य था अति प्राचीन काल में वही भोज राज्य नाम से प्रसिद्ध था और पुनः पीछे से वही भोज राज्य नाम से प्रसिद्ध हुआ। विक्रमादित्य के समय में अथवा उनके कुछ पहले ही से भोज राज्य का नाम लुप्त हो गया था, उनके पीछे जब राजा भोज हुए तो उनकी प्रसिद्धि के साथ ही साथ भोज राज्य की कीर्ति भी चमक उठी। यदुवंशी राजा भोज ने किस नगरी में अपनी राजधानी बनायी थी और इस समय उसका क्या नाम है, यह बतलाना कठिन है। परन्तु राजा भोज ने किस नगर में राज्य किया था उसका परिचय इस समय तक भी वर्तमान है। मालवा प्रदेश में धार नामक जो नगर वर्तमान है, उसी नगर में राजा भोज की प्राचीन राजधानी थी। परमारवंशी राजा भोज महमूद गज़नी के समकालिक थे। ख्रीष्टीय नवम शताब्दी के प्रारम्भ में आबू पर्वत के निकटस्थ अचलगढ़ गिरिदुर्ग से परमारवंशी राजपूत क्षत्रियों ने जा कर मालवा में अपनी राजधानी स्थापित की थी। परमारवंशी राजा उपेन्द्र ने सब से पहले मालवा के धार नगर में अपनी राजधानी स्थापित की थी। उपेन्द्र से पाँचवीं पीढ़ी में राजा हर्षदेव उत्पन्न हुए थे। उसी समय राष्ट्रकूटवंशियों का अभ्युदय हुआ था। इस कारण राज्य रक्षा के लिये हर्षदेव को बड़े बड़े कष्ट उठाने पड़े थे, हर्षदेव के पुत्र का नाम मुञ्जराज था। ये कवि और विद्याग्राही थे। उनके राज्यकाल में धनिक धनञ्जय हलायुध पद्मगुप्त आदि ग्रन्थकार राजसभा की शोभा बढ़ा रहे थे। राजा मुञ्ज ने त्रिपुर के चेदियों को परास्त किया था। कल्याण के राजा तैलप को इन्होंने युद्ध में सोलह बार हराया था, परन्तु १७ वें युद्ध में वे पकड़े गये सन् ९९३ ई० में ये भागने की चेष्टा में मारे गये।

भोलानाथ ब्राह्मण=ये कन्नौज के निवासी और भाषा के कवि थे। इन्होंने छन्दों में बैताल-पचीसी बनाया है।

(दोहा)-कोई जो विक्रय करे, वस्तु सुधन के हेत ।
सदा चकरिया आपनो, तन विक्रय करि देत ॥

भोलासिंह=ये भाषा के कवि थे और पन्ना बुन्देलखण्ड के रहने वाले थे। सं० १८६६ में ये उत्पन्न हुए थे।

भौरिडकेय=हैहयवंश की एक शाखा।

भौन कवि=ये नरहरिवंशी बन्दी थे और बेती ज़िला रायबरेली के रहने वाले थे। सं० १८८१ में ये उत्पन्न हुए थे। ये महान् कवि श्रृङ्गाररस के वर्णन में बड़े सत्कवि और सिद्धहस्त लेखक थे। अलङ्कार में "श्रृङ्गाररत्नाकर" नाम का ग्रन्थ इनका बनाया बहुत ही सुन्दर है। इनके पुत्र दयाल कवि भी एक सुकवि थे।

म

मकरन्दकर=एक प्राचीन ज्योतिषी और गणितज्ञ। इनके बनाये ज्योतिष के ग्रन्थ भी प्रसिद्ध हैं।

मकरन्द कवि=(१) ये भाषा के कवि थे और सं० १८१४ में उत्पन्न हुए थे। श्रृङ्गाररस के ये सिद्धहस्त कवि थे। इनके बनाये कवित्त बड़े ललित हैं।

(२) ये कवि भाट थे और पुवाँया ज़िला शाहजहाँपुर के रहने वाले थे। ये चन्दन कवि के कुल में थे। हास्यरस नामक एक ग्रन्थ भी इन्होंने बनाया है।

मकराक्ष=रावण के सेनापति का नाम। यह खर नामक राक्षस का पुत्र था। खर भी रावण का एक सेनापति था, परन्तु यह श्रीरामचन्द्र के हाथ से जनस्थान में मारा गया था।

मगध राज्य=महाभारत के पश्चात् जो राज्य गौरवशाली थे, उनमें सब से अधिक प्रतापशाली मगध राज्य था। पुराणों में लिखा है कि भारतवर्ष में जिस समय अनेक छोटे छोटे राज्य स्थापित हुए थे उस समय ३२ राजाओं ने मगध में राज्य किया था। उन्हींके समय में २४ इक्ष्वाकु, २७ पाञ्चाल, २४ काशेय, २८ हैहय, ३२ कलिङ्ग, २५ अश्मक, २६ कुरु, २८ मैथिल, २३ शूरसेन, और २० वीतिहोत्रवंश के राजा भिन्न भिन्न जनपदों का शासन करते थे। उनका नाश करने के लिये महानन्दीतनय महापद्म उत्पन्न हुए। ये कलि के अंश से उत्पन्न हुए थे। इन्होंने एकछत्र राज्य स्थापित किया। ये मगध के राजा थे। कुरुक्षेत्र युद्ध के दो हज़ार सात सौ तीस वर्ष बीतने पर ये विद्यमान थे इसका प्रमाण पाया जाता है। इस वंश के नाश होने पर चन्द्रगुप्त ने मगध का सिंहासन अलंकृत किया था। मगध के सिंहासन पर नन्दवंश के नाश होने पर मौर्यवंश प्रतिष्ठित हुआ। मगध के सिंहासन पर जरासन्धवंश का अन्तिम राजा रिपुञ्जय था। मन्त्री सुनीक ने उन्हें मार कर अपने पुत्र प्रद्योत को राज्य दे दिया इस प्रकार जरासंन्ध से अट्ठाइस राजा होने के पश्चात् शिशुनाग मगध के राजा हुए। शिशु-नाग-वंशी दस राजाओं के शासन बीतने पर महापद्म का शासनाधिकार आरम्भ हुआ था।

जरासन्ध के परवर्ती मगध के राजाओं के परिचय तथा राज्य काल के सम्बन्ध में बहुत मतभेद पाया जाता है। मत्स्यपुराण में लिखा है—महाभारत युद्ध में जरासन्धपुत्र सहदेव के मारे जाने पर सोमाधि नामक उसका दायाद गिरिव्रज का राजा हुआ। उसने पाँच सौ आठ वर्ष तक राज्य किया। विष्णुपुराण में भविष्य राजवंश के वर्णन में लिखा है—जरासन्ध पुत्र सहदेव को सामापि नामक एक पुत्र उत्पन्न होगा और उसका वंश मगध के राजसिंहासन पर बैठेगा। उस समय उनकी राजधानी कहाँ थी, और कितने दिनों तक उन्होंने राज्य किया था इस विषय में विष्णुपुराण में कुछ भी नहीं लिखा है। परन्तु वायुपुराण में लिखा है। प्रसिद्ध महाभारत के युद्ध में जरासन्धपुत्र सहदेव के मारे जाने पर उसका पुत्र राजर्षि सोमाधि गिरिव्रज के सिंहासन पर बैठा। उसने ५८ वर्ष राज्य किया था। उसके पुत्र श्रुतश्रवा ने ६४ वर्ष, श्रुतायु के पुत्र अयुतायु ने २६ वर्ष, उनके पुत्र निरमित्र ने सौ वर्ष, उनके पुत्र सुकृत्य ने ५६ वर्ष, और उनके पुत्र बृहत्कर्मा ने २३ वर्ष राज्य किया। बृहत्कर्मा के पुत्र (नाम नहीं लिखा) इस समय मगध

राज्य के सिंहासन को शोभित कर रहे हैं। ये भी २३ वर्ष राज्य करेंगे। इनके पुत्र श्रुतञ्जय २४ वर्ष, उनके पुत्र महाबाहु ३५ वर्ष, उनके पुत्र सूची ५८ वर्ष, उनके पुत्र क्षेम २८ वर्ष, उनके पुत्र भुवन ६४ वर्ष, उनके पुत्र धर्मनेत्र ५८ वर्ष, उनके पुत्र सुव्रत ३८ वर्ष, तदनन्तर दृढ़सेन ५८ वर्ष, सुमति ३३ वर्ष, सुबल २२ वर्ष, सुनेत्र ४० वर्ष, सत्यजित ८३ वर्ष, वीरजित् ३५ वर्ष, और अन्त में अरिञ्जय (रिपुञ्जय) ५० वर्ष राज्य करेंगे। इसी प्रकार बृहद्रथ से ले कर ३२ राजा एक के बाद एक उत्पन्न हो कर पूर्ण एक हज़ार वर्ष पृथिवी पालन करेंगे। इन सब राजाओं के नाम और राज्य के सम्बन्ध में मत्स्यपुराण में अन्य प्रकार से लिखा हुआ है। सोमाधि ५०८ वर्ष, श्रुतश्रवा ६४ वर्ष, अप्रतीप २५ वर्ष, निरमित्र २४ वर्ष, सुरक्ष ५०८ वर्ष, बृहत्कर्मा २३ वर्ष, सेनाजित् ५० वर्ष, श्रुतञ्जय ४० वर्ष, विभु २८ वर्ष, सूची ६४ वर्ष, क्षेम २८ वर्ष, अनुव्रत ६० वर्ष, सुनेत्र २५ वर्ष, निर्वृत्ति ५८ वर्ष, त्रिनेत्र २८ वर्ष, द्युमत्सेन ४० वर्ष, महीनेत्र ३३ वर्ष, अचल ३२ वर्ष, और पचास वर्ष, इस प्रकार इनका राज्य-शासन काल है मत्स्यपुराण में मगधराजवंश का इसी प्रकार का परिचय दिया गया है। अन्त में लिखा है—

> द्वात्रिंशति नृपा ह्येते भवितारो बृहद्रथाः।
> पूर्णं वर्षसहस्रन्तु तेषां राज्यं भविष्यति ॥

वायुपुराण में लिखा है—

> द्वात्रिंशच्च नृपा ह्येते भवितारो बृहद्रथाः।
> पूर्णं वर्षसहस्रं वै तेषां राज्यं भविष्यति ॥

यद्यपि राजाओं की संख्या और राज्य काल के विषय में इन पुराणों में मतभेद नहीं है, तथापि प्रसङ्गोक्त बातों में मिलान करना कठिन है। परन्तु इससे इतना पता तो अवश्य लगता है कि बृहद्रथ से ले कर (जरासन्ध के पिता का नाम बृहद्रथ था) अरिञ्जय पर्यन्त ३२ राजाओं ने हज़ार वर्ष तक मगध का राज्य किया। परन्तु पहले हमने जो अंश उद्धृत किया है उससे यह स्पष्ट ही मालूम पड़ता है कि सोमापि से रिपुञ्जय पर्यन्त अट्ठारह (वायुपुराण के मत से २१) राजा मगध राज्य के शासक हुए थे और उन सब का शासन समय मत्स्य-पुराण के मत से ११४४ और वायुपुराण के मत से ६१३ वर्ष है। इन दोनों के अन्तर का ठिकाना नहीं है। परन्तु इनका अन्तर मिटाने के लिये हम दो उपायों का अवलम्बन कर सकते हैं। पहला तो यह—पूर्वोक्त अट्ठारह या एकीस राजाओं के अतिरिक्त और चौदह या ग्यारह राजा मगध के शासक थे, और उनका शासनकाल एक हज़ार वर्ष का था। दूसरा यह कि पूर्वोक्त राजाओं के अतिरिक्त बत्तीस राजा और हुए जिनका शासनकाल हज़ार वर्ष का है। इस प्रकार मत्स्यपुराण के मतानुसार जरासन्धपौत्र सोमाधि से बृहद्रथ वंश के शेषराजा का राज्य काल १४४ वर्ष बताया जा सकता है। मत्स्यपुराण के मत से—पुलक ने बृहद्रथवंश का नाश किया था। पुलक ने अपने स्वामी को मार कर अपने पुत्र को राज्य पर बैठाया था। उसने केवल २३ वर्ष राज्य किया था। वह कपटी धूर्त था इस कारण सामन्तगण उसका सम्मान नहीं करते थे। मत्स्यपुराण में उसका नाम तक नहीं लिखा गया है। पुलक के अनन्तर पालक २८ वर्ष, विशाखयूप ५३ वर्ष, और सूर्यक २१ वर्ष, राज्यशासन करते रहे। सूर्यक ने अपने पुत्र को वाराणसी का राजा बनाया था और स्वयं वे गिरिव्रज का शासन करते रहे। इसके पश्चात् शिशुनाग ने ४० वर्ष, और उनके पुत्र काकवर्ण ने २६ वर्ष राज्य किया, तदनन्तर क्षेमधामा ने ४६ वर्ष, क्षेमजित् ने २४ वर्ष, विन्ध्यसेन ने २८ वर्ष, काण्वायन ने ६ वर्ष, भूमिमित्र ने १४ वर्ष, अजातशत्रु ने २७ वर्ष, वंशक ने २४ वर्ष, उदासी ने ३३ वर्ष, नन्दी-वर्द्धन ने ४० वर्ष और महानन्दी ने ४३ वर्ष राज्य किया था। वायुपुराण में लिखा है कि बृहद्रथवंश के अवसान होने पर वीतिहोत्र-वंश का अभ्युदय हुआ था। उस समय मुनिक नामक एक कर्मचारी ने राजा प्रद्योत को मार कर अपने पुत्र को राजा बनाया। प्रद्योत के

पुत्र ने कुछ अनीति का काम नहीं किया था, अतएव सामन्तों का उसमें अनुराग था। उसने २३ वर्ष राज्य किया था।

इन राजाओं के राज्य काल में भारतवर्ष के अन्यान्य प्रदेशों में और भी अनेक राजाओं का अभ्युदय हुआ था। उस समय इक्ष्वाकु, पाञ्चाल, कालक, हैहय, कलिङ्ग, शक, कुरु, मैथिल, शूरसेन आदि वंश के राजा भिन्न भिन्न प्रदेशों में राज्य करते थे। इन क्षत्रिय राजाओं के अन्त होने पर राजा महानन्दी की शूद्रा स्त्री के गर्भ से उत्पन्न महापद्म राजा हुए। कुछ दिनों के बाद वे ही भारत के एकछत्र सम्राट् हो गये। उन्होंने अट्ठाईस वर्ष राज्य किया था परन्तु मत्स्य-पुराण में लिखा है—

इत्येते भवितारो वै दशद्वौ शिशुनागजाः।
शतानि त्रीणि पूर्णानि षष्टिवर्षाधिकानि तु॥

अर्थात् शिशुनागवंशी १२ राजाओं ने ३६० वर्ष राज्य किया। मत्स्यपुराण के उद्धृत अंश से शिशुनागवंश के काकवर्ण से महानन्दी पर्य्यन्त ग्यारह राजा होते हैं और उनका राज्य काल तीन सौ चार वर्ष होता है। सुतरां तीन सौ साठ वर्ष शासन काल और शिशुनागवंशी १२ राजाओं का अस्तित्व स्वीकार करने के लिये एक राजा और उनका ५६ वर्ष राज्य काल मानना पड़ेगा। अस्तु शिशुनागवंश के नाश होने पर महा-पद्मानन्द मगध के राजा हुए। कुरुक्षेत्र युद्ध में पाण्डवों के एकछत्र राज्य के नष्ट होने पर वे ही भारतवर्ष के प्रथम एकछत्र सम्राट् प्रसिद्ध हुए।

सहदेवपुत्र सोमापि की राज्यप्राप्ति के ३३५१ अथवा २८२ वर्ष के पश्चात् शिशुनाग ने मगध का सिंहासन पाया था, इस वंश ने तीन सौ बासठ वर्ष मगध का शासन किया था। शिशुनागवंशी महानन्दी की शूद्रा स्त्री के गर्भ से महापद्मानन्द उत्पन्न हुए थे। उनके पुत्र १०० वर्ष तक राजा रहे। कौटिल्य की सहायता से उनका विनाश कर के चन्द्रगुप्त मगध के सिंहासन का अधिकारी हुआ। उसीसे मगध में मौर्यवंश की प्रतिष्ठा हुई। इससे यह बात प्रमाणित होती है कि सहदेवपुत्र सोमापि की राज्यप्राप्ति के ३७४२ वर्ष के पश्चात् चन्द्रगुप्त मगध के सिंहासन पर बैठे। किन्तु पाश्चात्य पण्डितों ने चन्द्रगुप्त की राज्य-प्राप्तिकाल ३१२ वर्ष ख्रीष्टाब्द के पूर्व से ३२० वर्ष ख्रीष्टाब्द के पूर्व तक निश्चित किया है। चन्द्रगुप्त के राज्य पाने के थोड़े दिनों के बाद अलकज़ेण्डर भारतवर्ष में आया था। उसके आने की बात प्राच्य और पाश्चात्य अनेक ग्रन्थों में लिखी है। उन सबके मिलान ही से चन्द्रगुप्त का समय निर्देश किया जाता है। इस हिसाब से यह बात मालूम पड़ती है कि ख्रीष्टजन्म से ४०६२ वर्ष पूर्व सहदेवपुत्र सोमापि वर्तमान थे। कुरुक्षेत्र का युद्ध उसके पहले की बात है।

अस्तु, सोमापि से ले कर शिशुनागवंशी बिम्बिसार और अजातशत्रु के पूर्ववर्ती अनेक राजाओं की उतनी प्रसिद्धि नहीं पायी जाती है। इतिहास में बिम्बिसार और अजातशत्रु का नाम विशेष प्रसिद्ध है। राजा बिम्बिसार ने राजगृह में मगध की राजधानी स्थापित की थी। विदेह क्षत्रियों के आक्रमण से पीड़ित हो कर बिम्बिसार ने अपनी राजधानी बदल दी थी। बिम्बिसार के राज्य काल में मिथिला के विदेह क्षत्रिय पराक्रमी हो गये थे। वे बीच बीच में मगध राज्य पर चढ़ाई करते थे। उन्हींके आक्रमण से रक्षा पाने के लिये गङ्गा और शोण के सङ्गम स्थान पर राजगृह नामक नगर को सुदृढ़ और सुरक्षित बना कर बिम्बि-सार ने वहाँ अपनी राजधानी स्थापित की। इसके पहले जरासन्ध के पिता ने गिरिव्रज में मगध की राजधानी बनायी थी, बिम्बिसार गिरिव्रज से राजगृह में राजधानी उठा ले गये। इस समय जो प्रदेश दक्षिण विहार के नाम से प्रसिद्ध है वह पहले मगध राज्य के अन्त-र्गत था। गङ्गा के दक्षिण तीर से ले कर सोन नदी के दोनों तीरों पर यह राज्य विस्तृत था। उस समय गङ्गा के उत्तर भाग में लिच्छवि गण मागधों के शत्रु हो गये थे। गङ्गा के दक्षिण तीर पर राजगृह में बिम्बिसार की

राजधानी थी और गङ्गा के उत्तर भाग में वैशाली नगरी में लिच्छवि गण की राजधानी स्थापित थी। उसके पूर्व की ओर उस समय अङ्ग की राजधानी चम्पा (भागलपुर) में थी। उत्तर पश्चिम की ओर कोशल राज्य—अयोध्या से और उत्तर की ओर श्रावस्ती नगरी में उसकी राजधानी थी। बिम्बिसार के समय प्रसेनजित् कोशल के राजा थे।

काशी का दक्षिण भाग उस समय कोशल राज्य के अधिकार में था। श्रावस्ती के राजा प्रसेनजित् का प्रतिनिधि उस समय काशी राज्य का शासन करता था। कोशल राज्य के कुछ पूर्व की ओर एक धर्म मानने वाली दो जातियाँ रहती थीं। उनका नाम था शाक्य और कोलिय। रोहिणीनदी के दोनों तीर पर ये दोनों जातियाँ वास करती थीं। यद्यपि वे स्वाधीन कही जाती थीं, तथापि मगध और कोशलराज के सामने सर्वदा उनको नीचा देखना पड़ता था। शाक्यों की राजधानी का नाम था "कपिलवस्तु"। शाक्यकुलपति शुद्धोदन वहाँ राज्य करते थे। उस समय कोलीयों के साथ शाक्यों की मित्रता थी। राजा शुद्धोदन ने कोलीयवंश की दौहित्री से व्याह कर के दोनों जातियों में प्रेमबन्धन स्थापित किया था। कोलीयों के राजा का नाम सुभूति था। "देवरहो" नामक नगर में उनकी राजधानी थी। उस समय दिल्ली में कुरुवंशी राजा राज्य करते थे। उस समय दाक्षिणात्य राज्य अनेक खण्डों में विभक्त हुआ था। बिम्बिसार जिस समय मगध में राज्य करते थे उस समय आर्यावर्त और दाक्षिणात्य दोनों प्रदेश अनेक छोटे छोटे राज्यों में विभक्त हो गये थे।

बिम्बिसार के लोकान्तर होने पर उनके पुत्र अजातशत्रु मगध के सिंहासन के अधीश्वर हुए। कहा जाता है पिता बिम्बिसार को मार कर इसने मगध राज्य पाया। अजातशत्रु ने बहुत दूर तक अपना राज्य फैलाया था। कोशल और पश्चिम भारत के अनेक राज्यों ने उनकी अधीनता स्वीकृत की थी। तूराणवंशी भज्जियान जाति के लोगों ने हिमालय को टाँक कर इसी समय विहार पर अपनी प्रभुता स्थापित की थी। अपने अधिकृत देशों में साधारण तन्त्रशासनप्रणाली स्थापित कर के वे बलवान् हो गये थे और मगध की ओर उनकी सर्वदा दृष्टि रहती थी। अपने राज्य की अधिक दृढ़ता सम्पादन करने के लिये और भज्जियानों को दमन करने के अभिप्राय से राजा अजातशत्रु ने पाटलीपुत्र में अपनी राजधानी स्थापित की। (देखो पाटलीपुत्र)

मङ्गलदास नाथूभाई=ये एक प्रसिद्ध स्वदेशहितैषी तथा दाता थे, सन् १८३२ ई० में बम्बई महानगर में इनका जन्म हुआ था। धनी होने के कारण इनके पितामह का सर्वत्र आदर था। पिता की मृत्यु के समय मङ्गलदास की अवस्था ११ वर्ष की थी। इनके पितामह का नाम रामदास मनोहरदास और पिता का नाम नाथूभाई रामदास था। गुजराती नामों में पिता का भी नाम रहता है। पहले अपना नाम तदनन्तर पिता का नाम और तदनन्तर व्यवसाय अथवा जातिगत नाम होता है। अनेक स्थानों में तीसरा नाम रहता ही नहीं है। मङ्गलदास उनके पिता और पितामह के नामों की ओर दृष्टि करने से गुजराती नाम का रहस्य बहुत कुछ समझ में आ जायगा। मङ्गलदास एक अध्यापक से घर ही पर अंग्रेज़ी पढ़े थे। १६ वर्ष की अवस्था में रुक्माबाई से इनका व्याह हुआ और व्याह होने के दो वर्ष के बाद इन पर गृहकृत्यों का भार पड़ा। वे जाति के कपोल बनिया थे। होली के समय उस जाति में कितनी ही कुरीतियाँ प्रचलित थीं मङ्गलदास ने अपने प्रयत्न से उन्हें दूर कर दिया। शिक्षा की उन्नति की ओर उनका विशेष ध्यान था। सन् १८६२ ई० में उन्होंने बम्बई में एक विद्यालय स्थापित किया था। इसी वर्ष में वे रायल एशियाटिक सोसायटी और रायल जियाग्रफिकल सोसायटी के मेम्बर हुए। सन् १८६३ ई० में हिन्दू ग्रेजूयेटों के लिये उन्होंने एक वृत्ति स्थापन करने की इच्छा से बम्बई विश्वविद्यालय में २० हज़ार रुपये

दिये। सन् १८६७ ई० में उनके उद्योग से "बाम्बे एसोसियेशन" नामक सभा पुनः खड़ी हुई। वे नव वर्ष तक बम्बई के लाट साहब की सभा के सदस्य थे। इस सभा में वे सर्वदा लोकोपकार करने की चेष्टा करते रहते थे। स्वास्थ्य बिगड़ जाने के कारण उन्होंने इस पद को छोड़ दिया था। सन् १८७२ ई० में उन्हें सी. एस. आई. की उपाधि मिली थी। और १८७५ ई० में उन्हें नाइट की उपाधि मिली उसी वर्ष सम्राट् एडवर्ड युवराज के रूप में भारतवर्ष आये थे, मङ्गलदास के दो पुत्रों के विवाह के समय युवराज उनके घर गये थे। १८९० ई० में मङ्गलदास का स्वर्गवास हुआ।

मञ्चित कवि=ये भाषा के कवि थे, और इनकी कविता अत्यन्त सरस होती थी। सं० १७७५ में इनका जन्म हुआ था।

मणिग्रीव=धनपति कुबेर के पुत्र का नाम। यह नलकूबर से छोटा था।

मणिदेव वन्दीजन=ये भाषा के कवि तथा जाति के भाट थे। इनका वासस्थान बनारस था और सं० १८९६ में जन्म हुआ था। इनकी गिनती प्रसिद्ध कवियों में होती थी। सुनते हैं इन्होंने अनेक ग्रन्थ बनाये हैं, जिनमें एक का नाम "रामरावणयुद्ध" है।

मणिपुर=एक प्राचीन राज्य। इस राज्य का उल्लेख महाभारत में है। युधिष्ठिर के यज्ञाश्व के साथ अर्जुन मणिपुर गये थे। वहाँ उनके पुत्र बभ्रुवाहन मणिपुर के राजा थे। मणिपुर का राज्य बभ्रुवाहन को अपने नाना से मिला था।

मणिमान्=कुबेर के एक कर्मचारी का नाम। एक बार अज्ञान से इसने अगस्त्य मुनि के सिर पर थूक दिया था। इससे क्रुद्ध हो कर मुनि ने शाप दिया मनुष्य के हाथ से तुम्हारी मृत्यु होगी। गन्धमादन पर्वत पर रहने के समय यह द्वितीय पाण्डव भीम के हाथ से मारा गया था। भीमसेन उस पर्वत पर द्रौपदी के लिये सुवर्ण का कमल लेने गये थे। कुबेर के अनुचरों ने उन्हें बाधा दी। युद्ध छिड़ गया, भीम ने कितनों को मार गिराया।

मण्डन कवि=ये भाषा के कवि जैतपूर बुन्देलखण्ड के रहने वाले थे। सं० १७१६ में ये उत्पन्न हुए थे। ये बुन्देलखण्ड के कवियों में महाकवि समझे जाते थे। ये राजा मङ्गदसिंह के दरबारी कवि थे। इनके बनाये तीन ग्रन्थ हैं। जिनके नाम ये हैं—(१) रसरत्नावली, (२) रसविलास, (३) नयनपचासा। रसरत्नावली, साहित्य के उत्तम ग्रन्थों में से है।

मण्डन मिश्र=भारत के एक प्राचीन रत्न। इनके वंश के विषय में कुछ विशेष पता नहीं है। माहिष्मती पुरी में ये रहते थे। यह नगरी जब्बलपुर के पास नर्मदा के किनारे पर थी। ये प्रसिद्ध भट्ट कुमारिल के प्रिय शिष्यों में से थे। इनका नाम तो विश्वरूप था। परन्तु शास्त्रार्थ में अजेय होने के कारण लोग इन्हें मण्डन मिश्र कहने लगे थे।

भट्ट कुमारिल के अन्तिम समय शङ्कराचार्य जी उपस्थित हुए थे। उस समय भट्ट कुमारिल ने कहा—यदि आप भारत के समाज को वैदिक रीति पर गठित करना चाहते हैं तो आप मण्डन मिश्र को किसी प्रकार अपना साथी बनावें। बिना उसकी सहायता के आपकी इष्टसिद्धि होना कठिन है। वह महाविद्वान् और हमारा शिष्य है। आप उसके पास जाँय, और उसे शास्त्रार्थ में परास्त कर सकें तो आपको उससे बड़ी सहायता मिलेगी। शङ्कराचार्य प्रयाग से माहिष्मती पुरी गये और वहाँ मण्डन मिश्र से इनका शास्त्रार्थ होने लगा। इनका शास्त्रार्थ बड़े महत्त्व का है। मण्डन की एक एक युक्ति बड़े महत्त्व की है। इस शास्त्रार्थ में मण्डन की सहधर्मिणी शारदा मध्यस्थ बनी थीं। अन्त में शङ्कराचार्य ने कौशल से मण्डन मिश्र को परास्त किया। मण्डन मिश्र ने पूर्वप्रतिज्ञा के अनुसार शङ्कराचार्य से संन्यास की दीक्षा ली थी। संन्यासी होने पर मण्डन मिश्र का नाम सुरेश्वराचार्य हुआ। शङ्कराचार्य के साथ ये भी उनकी शिक्षा का प्रचार करते फिरे। इन्होंने व्याससूत्र पर भाष्य भी बनाया था, परन्तु

इन्हींके समय में दुष्टों ने उस रत्न को नष्ट कर डाला। बृहदारण्यक उपनिषद् पर इन्होंने वार्तिक लिखा है, जो "तात्पर्यवार्तिक" टीका के नाम से प्रसिद्ध है। ये शृङ्गेरी मठ के अधिपति बनाये गये थे।

मण्डन मिश्र के वासस्थान के विषय में भ्रमात्मक मत फैल पड़ा है। इस भ्रम का मूल केवल कल्पना ही है। मण्डन मिश्र को लोग मिथिला के वासी समझते हैं। शायद इस लिये कि मण्डन मिश्र बड़े पण्डित और मिश्र थे। क्योंकि इसके अतिरिक्त उन लोगों के पास कुछ भी प्रमाण नहीं है। इस भ्रम में बड़े बड़े लोगों को भी पड़ना पड़ा है। अम्बिकादत्त व्यास सामवत नाटक में मिथिला के वर्णन में लिखते हैं—

"आखण्डलः पण्डितमण्डलेषु
यत्राभवन्मण्डनमिश्रनामा।
आर्या च भार्या च सती यदीया
समध्यगच्छत्सकलं हि शास्त्रम्॥"

यह श्लोक मिथिला के वर्णन में है। परन्तु आश्चर्य यह है कि शङ्करदिग्विजय में साफ ही माहिष्मती पुरी में मण्डन मिश्र का होना लिखा है।

"ततः प्रतस्थे भगवान् प्रयागात्तं
मण्डनं पण्डितमाशु जेतुम्।
गच्छन् खसृत्या पुरमालुलोके
माहिष्मतीं मण्डनमण्डितां सः॥"

यह माहिष्मती पुरी वही है जहाँ हैहयवंशी राजाओं की राजधानी थी। नर्मदा नदी के तीर पर उसका होना प्रसिद्ध है। ऐसी स्थिति में मण्डन को मैथिल समझना या कहना कहाँ तक उचित है।

मतङ्ग=ऋष्यमूक पर्वत पर रहने वाले एक ऋषि। वानरराज बाली ने दुन्दुभि नामक असुर को मार डाला था और मार कर उसका शव फेंक दिया। उसके शरीर का एक रक्तबिन्दु मतङ्ग मुनि के शरीर पर जा कर पड़ा, इससे क्रुद्ध हो कर मुनि ने बाली को शाप दिया कि इस स्थान पर आने से तुम्हारी मृत्यु होगी। तभी से बाली ऋष्यमूक पर्वत पर नहीं जाता था। इसी कारण सुग्रीव जब किष्किन्धा से निकाल दिये गये, तब वे बाली के भय से ऋष्यमूक पर्वत पर जा कर रहने लगे थे।

मतिराम त्रिपाठी=ये कवि टिकमापुर ज़िला कानपुर के रहने वाले थे। ये भूषण कवि के भाई थे। ये भाषाकाव्य के आचार्य माने जाते हैं। बड़े बड़े राजाओं के दरबार में ये रहे थे, ललितललाम, छन्दसार और रसराज नाम के तीन ग्रन्थ इन्होंने बनाये थे।

मत्स्य=विष्णु का पहला अवतार। भागवत में लिखा है कि प्रलयकाल में भूलोक आदि समस्त लोकों के जल निमग्न होने पर महासमुद्र में सोये हुए विधाता के मुख से वेदों की उत्पत्ति हुई। उस समय हयग्रीव ने समस्त वेद चुरा लिये थे। यह जान कर भगवान् विष्णु ने वेदों के उद्धार के लिये विष्णुरूप धारण किया। एक समय विवस्वान् के पुत्र सत्यव्रत नामक महर्षि नदी में तर्पण करते थे। उसी समय एक मत्स्य उनकी अञ्जलि में आया। सत्यव्रत ने उसे जल में फेंक दिया। तब वह बोला मैं बड़े बड़े हिंस्र जन्तुओं से डर कर आपकी शरण में गया था, अब आप ऐसा करें जिससे मुझे पुनः जल में न जाना पड़े। सत्यव्रत पर अनुग्रह करने के लिये भगवान् विष्णु ने मत्स्य का रूप धारण किया था, परन्तु सत्यव्रत यह नहीं जानते थे। सत्यव्रत ने मत्स्य को उठा कर एक घड़े में रख दिया। परन्तु थोड़ी देर बाद देखा गया कि बढ़ कर वह मत्स्य घड़े में भर गया, अनन्तर मत्स्य की प्रार्थना से सत्यव्रत ने उसे एक सरोवर में रख दिया। थोड़े दिनों के बाद शरीर बढ़ने के कारण वह इस सरोवर में भी नहीं अमा सका। अनन्तर ऋषि ने उसको एक झील में रख दिया। महर्षि ने जब देखा कि उस झील में भी वह मत्स्य नहीं अँट रहा है तब महर्षि ने उसे समुद्र में रख आना चाहा। उस समय मत्स्यरूपी विष्णु ने सत्यव्रत पर प्रसन्न हो कर अपना परिचय दिया। विष्णु बोले—आज के ७ वें दिन समस्त त्रिभुवन प्रलय-पयोधि-जल में डूब जायगा, उस समय मैं एक बड़ी नौका भेजूँगा। तुम समस्त ओषधियों और बड़े बीजों

तथा अन्यान्य प्राणियों को ले कर सप्तर्षियों के साथ उस पर आश्रय लेना। जब तुम्हारी नौका प्रचण्ड वायु के झकोरे में फँसेगी तब मैं तुम्हारे पास उपस्थित होऊँगा। तुम महासर्परूपी रज्जु द्वारा उस नौका को हमारे शृङ्ग में बाँध देना। जब तक ब्रह्मा की रात नहीं बीतेगी, तब तक मैं उस नौका को ले कर समुद्र में घूमता फिरूँगा। मत्स्यरूपी विष्णु इतना कह कर चले गये। अनन्तर ७वें दिन विष्णु के कहने के अनुसार प्रलय-काल उपस्थित हुआ। सत्यव्रत ने देखा एक बड़ी नौका उनके निकट आ कर खड़ी है। वे सभी पदार्थों को ले कर सप्तर्षियों के साथ उस नौका पर चढ़ गये। अनन्तर समुद्र में अयुत योजन बड़ा एक सोने का मत्स्य उत्पन्न हुआ। राजर्षि सत्यव्रत ने एक सर्परज्जु द्वारा उसी मत्स्य के शृङ्ग में अपनी नाव को बाँध दिया। उसी समय मत्स्यरूपी विष्णु ने सत्यव्रत को तत्त्वज्ञान का उपदेश दिया था। राजा सत्यव्रत ने ऋषियों के साथ उसी नौका में रह कर आत्मतत्त्व तथा सनातन वेद का श्रवण किया था। अनन्तर प्रलय के पश्चात् मत्स्यरूपी विष्णु ने हयग्रीव का वध कर के ब्रह्मा को वेद दिलवा दिया था। राजर्षि सत्यव्रत विष्णु के अनुग्रह से वैवस्वत मनु के नाम से प्रसिद्ध हुए।

महाभारत में भी मत्स्यावतार की कथा प्रायः इसी प्रकार लिखी गयी है। वहाँ लिखा है कि वैवस्वत मनु ने क्रमशः छोटे छोटे जलाशयों में से उठा कर गङ्गा में रखा और अन्त में वहाँ से उठा कर समुद्र में रखा। उस बड़े मत्स्य को उठा कर ले जाने में वैवस्वत मनु को कुछ कष्ट नहीं होता था। महाभारत में लिखा है—मत्स्यरूपी विष्णु की आज्ञा से मनु ने प्रलय के पहले ही एक नौका बनवा ली थी। वह नौका जल में डाली गयी। विष्णु, शृङ्गधारी मत्स्य का रूप धारण कर वहाँ उपस्थित हुए। मनु ने एक रज्जु से नौका को मत्स्य के शृङ्ग में बाँध दिया। मनु सप्तर्षियों के साथ अनेक प्रकार के उद्भिज्जों के बीज ले कर उस नाव पर चढ़े थे और कोई उनके साथ नहीं था। बहुत वर्ष बीतने पर मत्स्य की आज्ञा से मनु ने हिमालय की चोटी पर अपनी नाव लगायी। आज भी हिमालय की वह चोटी नौका-बन्धन चोटी के नाम से प्रसिद्ध है। मत्स्यावतार सतयुग में हुआ था। इस अवतार के शरीर के नीचे का भाग मत्स्य के समान और ऊपर का भाग मनुष्य के समान था।

मत्स्यगन्धा=राजा उपरिचर की कन्या। उस राजा का दूसरा नाम वसु था। इस राजा ने बड़ी कठोर तपस्या की थी। इनकी उग्र तपस्या से देवराज इन्द्र डर गये। इन्द्र के कहने से इन्होंने तपस्या करनी छोड़ दी। तदनन्तर इन्द्र ने इन्हें स्फटिकमय आकाश-गामी रथ और वैजयन्ती की माला दी। वसु की स्त्री का नाम था गिरिका। अहेर के समय काम-पीड़ित वसु का रेतःपात हुआ। उस रेतः को वसु ने एक श्येन पक्षी द्वारा अपनी रानी को भेजा था; परन्तु मार्ग में दूसरे पक्षी से आक्रान्त होने के कारण वह रेतः यमुना जल में गिर पड़ा। अद्रिका नाम की एक अप्सरा ब्रह्मा के शाप से मत्सी हो कर यमुना जल में रहती थी। रेतः के यमुना जल में गिरते ही उसने उसे पी लिया। उस मत्सी के गर्भ रहा। मछुओं ने उस मत्सी को पकड़ कर राजा वसु को अर्पण किया। उसके पेट में एक पुत्र और एक कन्या पायी गयी। यही पुत्र पीछे मत्स्य नाम से प्रसिद्ध राजा हुए थे। राजा वसु ने मछुओं को कन्या दे दी, उसके शरीर में मत्स्य की गन्ध थी, इस कारण उसका नाम मत्स्यगन्धा पड़ा।

(देखो पराशर)

मत्स्यपुराण=यह अष्टादश पुराणों में सोलहवाँ पुराण समझा जाता है। महाप्रलय में भगवान् विष्णु ने मत्स्यरूप धारण कर के मनु तथा संसार के समस्त पदार्थों की जो बीज-रक्षा की थी—प्रधानतः यही विषय इस पुराण में लिखा है। सृष्टि-रक्षा के लिये भगवान् ने यह अवतार धारण किया था। मनु और मत्स्य का शतपथ ब्राह्मण में जो संक्षेप से उल्लेख किया है, इस पुराण में उसी का विस्तृत विवरण है। मत्स्यपुराण में प्रधानतः नीचे लिखे विषयों

का प्रसङ्गतः विवरण किया गया है । नरसिंह-माहात्म्य, विष्णु के दशावतार प्रसङ्ग में अनन्त तृतीया आदि व्रतों का तथा प्रयाग आदि तीर्थों का माहात्म्य, चन्द्रवंश, सूर्यवंश, कुरुवंश, हुताशनवंश, और ययाति-कार्त्तवीर्य आदि का उपाख्यान, कल्प और युग विवरण, प्रतिमा-लक्षण, देवमण्डपलक्षण, सावित्री-चरित, ग्रहादिकों की शुभाशुभ यात्रा का फल, पार्वती का जन्म, मदनभस्म, शिव का विवाह, कार्त्तिकेय का जन्म, राजधर्म, भविष्य राजाओं का विवरण आदि, मत्स्यरूपधारी विष्णु के द्वारा इस पुराण में पूर्ववर्ती सप्त कल्पों का वर्णन देखा जाता है । महाप्रलय के समय मनु पर्वत पर अपनी नाव को रख कर बैठे थे उसी समय मत्स्यरूपधारी विष्णु ने इस पुराण के विषयों का वर्णन किया ।

मथुरापुरी=मथुरा राज्य और मथुरा नगरी की प्रतिष्ठा के विषय में रामायण के उत्तरकाण्ड में बहुत कुछ लिखा गया है । पहले सतयुग में मधु नामक महा असुर यहाँ का राजा था । वह ब्राह्मणभक्त धर्मपरायण और उदारचरित था, इससे प्रसन्न हो कर महादेव ने उसे उपहार में एक शूल दिया था । उस शूल के प्रताप से कोई उसको जीत नहीं सकता था । वह शूल ले कर जिस युद्ध में जाता था शत्रु सब भस्म हो जाते थे । पिता के मरने पर उसके पुत्र लवण नामक असुर को वह शूल प्राप्त हुआ । लवण उद्धत, धर्मद्वेषी और अत्याचारी था । शूल के प्रभाव से वह किसी को कुछ नहीं गिनता था । उससे ऋषियों के यज्ञ में बड़ा विघ्न होता था, ब्राह्मण विकल हो गये थे । श्रीरामचन्द्र उस समय अयोध्या के सिंहासन पर विराजते थे । असुर लवण के अत्याचार से पीड़ित हो कर भार्गव आदि ब्राह्मण, श्रीरामचन्द्र के समीप उपस्थित हुए । ब्राह्मणों ने लवण के अत्याचारों का वर्णन कर, उसे दूर करने की प्रार्थना की । ऋषियों से लवण के अत्याचार सुन कर श्रीराम ने उसको दमन करने को, शत्रुघ्न से मथुरा पर चढ़ाई करने के लिये कहा । शत्रुघ्न ने मथुरा पर आक्रमण किया । बहुत दिनों तक इनमें युद्ध होता रहा । अन्त में शत्रुघ्न ने उस दैत्य को मार डाला । देवताओं के अनुग्रह से शत्रुघ्न लवण का नाश कर सके थे । यह देवनिर्मित रमणीय मथुरापुरी राक्षस के भय से जन-शून्य हो गयी थी, वह अब जनाकीर्ण हो गयी । इस के अनन्तर सुन्दर नगर बनाया गया । यह नगर यमुना के किनारे सुशोभित हो रहा है । इस प्रकार मथुरा नगर को भयशून्य कर के और वहाँ बारह वर्ष तक रह कर शत्रुघ्न अयोध्या लौट आये । अयोध्या से मथुरा जाने के समय शत्रुघ्न को यमुना पार होना पड़ा था और उन्होंने मथुरा में प्राचीन ब्राह्मणों के यज्ञों का स्तूप देखा था । रामायण में ऐसा ही लिखा है । यद्यपि शत्रुघ्न ने इस नगरी को बसाया, तथापि यह नगरी पहले से वर्तमान थी, यह बात रामायण के वर्णन से सिद्ध होती है । मधु दैत्य के राज्यकाल में वह "मधुवन" नाम से प्रसिद्ध है । लवणासुर के अधिकार के समय वह मधुपुरी नाम से प्रसिद्ध थी । शत्रुघ्न ने जब इसका उद्धार किया तब यह मथुरापुरी के नाम से प्रसिद्ध हुई । मनुसंहिता में मथुरा का नाम शूरसेन लिखा है । मथुरा के अधिवासी बड़े युद्धकुशल थे । यह मनु ने लिखा है । मथुरापुरी के स्थापन के विषय में पूर्वोक्त विवरण ही संक्षेप रूप से विष्णुपुराण में लिखा है । वराहपुराण में मथुरामाहात्म्य विशद रूप से लिखा है । इस पुराण के मत से मथुरा का परिमाण बीस योजन है । मथुरा के अन्तर्गत द्वादश वनों का जो दर्शन करते हैं उनको कभी नरक का दर्शन नहीं करना पड़ता । भागवत, ब्रह्मवैवर्त पुराण और हरिवंश में मथुरा का माहात्म्य अनेक प्रकार से लिखा है ।

उग्रसेन, कंस और श्रीकृष्ण आदि के समय पुराणों में मथुरा की बड़ी प्रतिष्ठा है । उग्रसेन मथुरा के राजा थे । उनके पुत्र का नाम कंस था और श्रीकृष्ण उग्रसेन के दौहित्र थे । शत्रुघ्न का राज्य मथुरा में किस प्रकार उग्रसेन के पितृ-पितामहों के अधिकार में गया, इसका कुछ भी

पता नहीं है। परवर्तीकाल में जब हम लोग मथुरा का परिचय पाते हैं तब द्वापर के अन्त में मथुरा समृद्धिशाली देश, और उसके राजा उग्रसेन पाते हैं। उग्रसेन का पुत्र कंस अपनी दुष्टता के लिये प्रसिद्ध था। अपने पिता को क़ैद कर के वह स्वयं मथुरा का राजा बन गया। सिंहासन आरोहण के समय उसने देववाणी सुनी थी कि उसकी भगिनी देवकी के आठवें गर्भ से उसकी मृत्यु होगी। इसी लिये उसने देवकी और देवकी के पति वसुदेव को क़ैद कर लिया। उसी कारागार ही में श्रीकृष्ण उत्पन्न हुए। वसुदेव उनको गोकुल में नन्द के घर रख आये। वहीं श्रीकृष्ण का लालन पालन हुआ। माता पिता और मातामह कारागार में दुःख पा रहे हैं। जब श्रीकृष्ण ने यह जाना तब वे कंस को मारने के लिये उपाय सोचने लगे। वसुदेव की दूसरी स्त्री के गर्भ से बलराम उत्पन्न हुए थे। बलराम बड़े और श्रीकृष्ण छोटे थे। वसुदेव के कारागार में रुद्ध रहने के समय रोहिणी ने भी अपने पुत्र को नन्द के घर रख दिया था। श्रीकृष्ण को मरवा डालने के लिये कंस ने अनेक उपाय किये थे, परन्तु उसके सभी उपाय निष्फल हुए। अन्त में कंस ने एक धनुषयज्ञ करना विचारा। उसी यज्ञ में बलराम और श्रीकृष्ण को बुला कर, पहलवानों से उन्हें मरवा डालेंगे यही कंस ने सोचा था। इसी लिये उसने अक्रूर को बलराम और श्रीकृष्ण को मथुरा ले आने के लिये भेजा था, परन्तु बलराम और श्रीकृष्ण ने मथुरा में आ कर जिस वीरत्व का परिचय दिया, उसे देख कर लोग आश्चर्य करने लगे। चाणूर, मुष्टिक आदि वीरों को उन्हों ने मार गिराया। कुवलयापीड़ नामक मत्त हाथी को मार कर कंस को भी उन लोगों ने मार डाला। कंस के मारे जाने पर पुनः उग्रसेन मथुरा के राजा हुए। कंस को मारने के कारण मगधपति जरासन्ध श्रीकृष्ण पर अत्यन्त कुपित हुआ। कंस उसका जामाता था। अपने जामाता को मारने वाले यादवों को मारने के लिये जरासन्ध ने अठारह बार मथुरा पर आक्रमण किया। परन्तु उसका मनोरथ सफल नहीं हुआ। अन्त में जरासन्ध ने कालयवन के साथ मैत्री की। कालयवन उस समय एक पराक्रमी राजा था। कालयवन की अगणित सेना के साथ मिल कर जरासन्ध ने पुनः मथुरा पर आक्रमण किया। यादव बड़े भयभीत हुए। क्योंकि कालयवन महादेव के वर से अजेय था। बिना मथुरा छोड़े कल्याण न देख कर श्रीकृष्ण पहले ही मथुरा से चले गये थे और नयी राजधानी स्थापित करने का उपाय करते थे। कालयवन और जरासन्ध के भय से मथुरा नगरी पुनः उजड़ गई। यादवों की नयी राजधानी द्वारावती स्थापित हुई। इस घटना के बाद पुराणों में मथुरा का कुछ विशेष उल्लेख नहीं पाया जाता। इससे मालूम पड़ता है तब से मथुरा जनशून्य हो गयी। तदनन्तर यह नगरी मगधराज्य के अन्तर्गत हो गयी।

ग्रीस देश के ऐतिहासिक एरियान ने मथुरा को शूरसेन राज्य की राजधानी बतलायी। उन के मत से शूरसेन राज्य में दो प्रसिद्ध नगर विद्यमान हैं। एक का नाम मेथोरास; और दूसरे का नाम क्लिसोबोरास था। ये दोनों नगरों के बीच से योवारेस नाम की नदी बहती थी। ऐतिहासिक प्लिनि ने—जोमानस नदी के तीर मेथोरा और क्लिसोबोरा नगरी का होना बतलाया है। उन्होंने इस नाम का अर्थ देवताओं की नगरी लिखा है। परिव्राजक फ़ाहियान नगरहार तथा अन्यान्य स्थानों में घूम कर और सिन्धु नद को पार कर मथुरा नगरी में घुसे थे। मथुरा के समीप बहने वाली यमुना के बाएँ और दहिने दोनों ओर उस समय बीस बौद्धों के सङ्घाराम थे। उस समय मथुरा में बौद्ध धर्म का विशेष प्रचार था। जिस समय हुएनत्सङ्ग मथुरा में आये थे उस समय भी बौद्धों का प्रभाव लुप्त नहीं हुआ था। बीस सङ्घाराम उस समय भी वर्तमान थे। परन्तु उनमें केवल दो हज़ार बौद्ध धर्मयाजक वर्तमान थे। परिव्राजक ने लिखा है कि मथुरा के अधिवासी विनयी तथा सरल प्रकृति के थे। वे धर्म को सम्मान की दृष्टि से देखते थे। वे प्राकृतिक वीर तथा व्यवसायी और अध्यवसायी थे।

मदनगोपाल कवि=ये कवि जाति के ब्राह्मण और फतुहाबाद के रहने वाले थे। ये सं० १८७६ में उत्पन्न हुए थे। गनवारवंशी राजा अर्जुनसिंह बलिरामपुर के यहाँ ये थे। राजा अर्जुनसिंह की आज्ञा के अनुसार इन्होंने "अर्जुनविलास" नामक एक ग्रन्थ भी बनाया है। इनका बनाया एक और ग्रन्थ है जिसका नाम "वैद्यरत्न" है। यह ग्रन्थ वैद्यक विषय का है।

मदनमोहन कवि=ये कवि बुन्देलखण्ड चरखारी के रहने वाले थे। इनका जन्म सं० १८८२ में हुआ था। ये महाराज चरखारी के दरबारी कवि और मन्त्री भी थे।

मदनमोहन मालवीय=आज से क़रीब तीन सौ वर्ष के हुए होंगे कि मालवा के कुछ ब्राह्मण अनेक प्रकार के उत्पीडनों से घबड़ा कर अपनी प्रिय जन्मस्थली मालवा की उर्वरा भूमि को छोड़ कर देशान्तर को चले। उनमें से एक प्रसिद्ध कुल ने प्रयाग में आ कर आश्रय लिया। मालवा के सम्बन्ध से यह कुल मालवी कुल के नाम से प्रसिद्ध हुआ। यह वंश अपनी स्वाभाविक उदारता, सादगी, धर्मनिष्ठा, और परम्परागत विद्वत्ता के लिये प्रसिद्ध है। पण्डित मदनमोहन मालवीय जी के पिता का नाम पण्डित बैजनाथ मालवीय था, ये संस्कृत के बड़े अच्छे पण्डित थे। मालवीय जी का जन्म सन् १८६२ ई० में हुआ। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा घर ही पर मातृभाषा में हुई। आप प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त कर के अंग्रेज़ी गवर्नमेंट स्कूल में पढ़ने लगे। वहाँ से आपने एंट्रेंस परीक्षा पास की। तदनन्तर आप म्योर सेंट्रल कालेज में पढ़ने लगे। सन् १८८४ ई० में आपने बी. ए. परीक्षा पास की। इस परीक्षा में उत्तीर्ण होने पर आप गवर्नमेंट स्कूल में अध्यापक के पद पर नियत हुए। यहाँ आप तीन वर्षों तक काम करते रहे। तदनन्तर आप को कालाकांकर के "तत्र भवान् सदा समरविजयी" राजा रामपालसिंह ने हिन्दी भाषा के दैनिक पत्र "हिन्दोस्थान" का सम्पादन भार सौंपा। "हिन्दोस्थान" को आप ने अढ़ाई वर्ष तक बड़ी योग्यता से सम्पादित किया। तब से फिर हिन्दी भाषा में वैसे लेख पढ़ने को नहीं मिले। इनकी लेख प्रणाली की ओजस्विता और सरलता ये प्रधान गुण हैं। अढ़ाई वर्षों के बाद आपने क़ानून पढ़ने की इच्छा की। राजा रामपालसिंह ने प्रसन्नता से आप को बिदा किया और आप को पढ़ने में उपयुक्त सहायता भी दी। तीन वर्ष तक पढ़ कर आप ने एल, एल, बी, की परीक्षा पास की। तब से आप इलाहाबाद हाईकोर्ट में वकालत करते रहे।

आप देश के सच्चे सेवक और बुद्धिमान् हितैषी हैं। सर एंटनी मेकडानल के समय में आप ही के परिश्रम से हिन्दी भाषा को अदालतों में स्थान मिला।

आप के प्रयत्न से प्रयाग में एक हिन्दू बोर्डिङ्ग हाऊस बना है। लाहौर वाली कांग्रेस के आप सभापति चुने गये थे। आप बड़े लाट की कौन्सिल के सभासद हैं। आप प्रजा के पक्ष का पोषण, उसके अभावों का निवेदन सदा करते हैं। बसु बाबू के बिल के प्रतिवाद में और "प्रेस-एक्ट" के विरुद्ध जो आपने कौन्सिल में वक्तृताएँ दीं, उनसे पूर्वी और पश्चिमी साहित्य शास्त्र सम्बन्धी आप के पूर्ण ज्ञान का परिचय मिलता है। आप सनातनधर्मी हैं। परन्तु समाज को हानि पहुँचाने वाली कुरीतियों को सुधारना भी चाहते हैं। आप के द्वारा काशी में हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना भी हो गयी है।

मदनसिंह=कोटे राज्य के राणा। ये माधोसिंह के पुत्र थे। इनके समय में कोटा राज्य के महाराव कोटे के प्रधान मन्त्री कहे जाते थे। महाराव और रावराणा में बड़ा भेद होता था। एक समय इनमें प्रबल विवाद उठ खड़ा हुआ। इसी समय कोटा राज्य को दो खण्डों में विभक्त कर के अंग्रेज़ी गवर्नमेंट ने झालावाड़ की सृष्टि की और मदनसिंह को उसका राजा बनाया। (टाड्स राजस्थान)

मदालसा=ये एक विदुषी रमणी थीं। ये गन्धर्व-कन्या थीं। राजा ऋतध्वज के साथ इनका ब्याह हुआ था। मदालसा विदुषी और ज्ञानवती स्त्री थीं। इनके गर्भ से विक्रान्त, सुबाहु,

शत्रुमर्दन और अलर्क नाम के चार पुत्र उत्पन्न हुए थे। ये अपने पुत्रों को स्वयं शिक्षा देती थीं। माता के उपदेश ही से विक्रान्त, सुबाहु और शत्रुमर्दन संसार-विरागी संन्यासी हो गये। ये अपने पुत्रों को किस प्रकार शिक्षा देती थीं यह बात नीचे लिखी घटना से मालूम होगी।

मदालसा के बड़े पुत्र विक्रान्त को किसी ने एक दिन मारा। वह रोते रोते घर गया और अपनी माता से रो कर कहने लगा "मा, हमको अमुक अमुक ने मिल कर पीटा है। मैं राजपुत्र हूँ, वे दीन हीन प्रजा के पुत्र हैं। उन्होंने मेरी प्रतिष्ठा पर कुछ भी ध्यान न दे कर मुझको मारा है। आप इसका प्रतिविधान करें।"

मदालसा पुत्र के प्रश्न का उत्तर देने लगी। उसने कहा—"वत्स, तुम शुद्ध आत्मा हो, आत्मा की प्रकृति नाम के द्वारा कलुपित नहीं हो सकती। राजपुत्र या विक्रान्त तुम्हारी उपाधि है। अतएव अपने को राजपुत्र समझ कर तुम्हें अभिमान नहीं करना चाहिये। तुम्हारा यह परिदृश्यमान शरीर पाञ्चभौतिक है। तुम्हारा यह देह नहीं है, फिर देह पर मार खाने से रोते क्यों हो?"

महारानी की शिक्षा से जब तीन राजपुत्र संसार-विरागी संन्यासी हो गये तब राजा ऋतध्वज एक दिन मदालसा से प्रार्थना करने लगे। मदालसा! तीन पुत्रों को उपदेश दे कर तुम वनवासी कर चुकी हो अब इस छोटे पुत्र अलर्क को ऐसी शिक्षा दो जिससे वह अपने भाइयों के मार्ग का अनुसरण न करे। यदि वह भी संन्यासी हो जायगा तो फिर राज्य-शासन कौन करेगा।

मदालसा अपने छोटे पुत्र अलर्क को राज-नीति की शिक्षा देने लगी। उनके उपदेशों से अलर्क राजनीति विद्या में निपुण हो गया। मार्कण्डेय पुराण में ऋतध्वज और मदालसा के सम्बन्ध में एक उपाख्यान लिखा है।

दैत्यों के उपद्रव से महर्षि गालव की तपस्या में विघ्न होने लगा। यह संवाद सुन कर राजा शत्रुजित् के पुत्र ऋतध्वज यज्ञरक्षा के लिये उनके आश्रम में उपस्थित हुए। एक दिन गालव ईश्वराराधन कर रहे थे, ऐसे समय में तपस्या में विघ्न डालने के लिये एक दानव शूकर का रूप धर कर आश्रम में उपस्थित हुआ। ऋतध्वज ने उसे देख कर बाण चलाया और उसे घायल किया। शूकर भागा, राजकुमार ऋत-ध्वज ने भी कुवलय नामक अश्व पर चढ़ कर उसका पीछा किया। शूकर भागता भागता बड़ी दूर चला गया परन्तु राजपुत्र ने उसका साथ नहीं छोड़ा। अन्त में वह एक बिल में घुस गया, साथ साथ राजकुमार भी भीतर गये। बिल में गहरा अन्धकार था। बहुत देर तक अन्धेरे में चलने के बाद राजपुत्र एक मैदान में पहुँचे। उन्होंने देखा कि वहाँ इन्द्रपुरी के समान सौ सौ प्रासाद सुशोभित हो रहे हैं। वे वहाँ शूकर को ढूँढ़ते ढूँढ़ते एक महान् भवन में उपस्थित हुए। उन्होंने एक सुन्दरी युवती को देखा। वह युवती ऋतध्वज को देखते ही मूर्च्छित हुई। सखियों की सेवा से जब उसकी मूर्च्छा भङ्ग हुई तब राजपुत्र ने उसका परिचय पूछा। एक सखी बोली—ये गन्धर्वराज विश्वावसु की कन्या मदालसा है। एक दिन ये बाग़ में घूमती थी उस समय वज्रकेतु दानव का पुत्र पातालकेतु माया फैला कर इनको पाताल ले गया। इनसे विवाह करने के लिये दैत्य ने तभी से इनको क़ैद रखा है। सखी ने राज-कुमारी का परिचय दे कर राजपुत्र का परिचय पूछा। आप कौन हैं और किस लिये इस पातालपुरी में आये हैं। ऋतध्वज के आदि अन्त से कह सुनाने पर सखी बोली—तब आप हमारी सखी की रक्षा कीजिये, ये आप के प्रति अनुरागिणी हुई हैं। देवकन्या तुल्य मदालसा को पत्नी पा कर कौन अपने को भाग्यवान् नहीं समझेगा, और आप के समान पति तो हमारी सखी ही के योग्य है।

मदालसा को व्याह कर ऋतध्वज आ रहे थे, मार्ग में दैत्यों ने उन पर आक्रमण किया। युद्ध होने लगा। अकेले ऋतध्वज ने समस्त दैत्य-सेना को उन्मत्त हस्ती के समान मथ डाला और वे जय प्राप्त कर निर्विघ्न स्त्री के

साथ अपने पिता के राज्य में उपस्थित हुए। राजा शत्रुजित् और राज्य के बड़े कर्मचारीगण ने मदालसा को बड़े आदर से ग्रहण किया।

कुछ दिनों के बाद ऋतध्वज पिता की आज्ञा से तपस्वियों की रक्षा के लिये पुनः यमुना के किनारे घूमने लगे। वहीं पातालकेतु का छोटा भाई तालकेतु माया से मुनि का रूप धर कर रहता था। तालकेतु ने अपने भ्रातृहन्ता ऋतध्वज को देखते ही पहचान लिया और उनसे बदला चुकाने के लिये अवसर ढूँढ़ने लगा। वह ऋतध्वज को देख कर कहने लगा—राजकुमार! आप ऋषियों की तपस्या की रक्षा करने के लिये तत्पर हैं। मैं एक यज्ञ करना चाहता हूँ परन्तु दक्षिणा देने की शक्ति मुझ में नहीं है अतएव मैं यज्ञ भी नहीं कर सकता हूँ। यदि आप अपना यह मणिमय हार हमें दे दें तो हमारा अभीष्ट सिद्ध हो जायगा। यह सुन कर ऋतध्वज ने अपना हार उस ऋषिरूपधारी दानव को दे दिया। हार पा कर दानव ने कहा—मैं इस समय जल में जा कर वरुण देवता की उपासना करूँगा। जब तक मैं फिर कर न आऊँ तब तक आप मेरे आश्रम की रक्षा करें।

राजपुत्र ने दानव की बातों पर किसी प्रकार का सन्देह नहीं किया। राजपुत्र का हार ले कर तालकेतु राजा शत्रुजित् की सभा में आया। वही हार दिखा कर कहने लगा कि ऋतध्वज दानवों के युद्ध में मारा गया। इस भयङ्कर संवाद को सुन कर मदालसा स्थिर न रह सकी। उस संवाद को सुनते ही मदालसा मूर्च्छित हुई और फिर न उठी।

तालकेतु यमुना तट पर लौट आया और युवराज से बोला। हमारा यज्ञ समाप्त हो गया, अब आप जा सकते हैं। आपने मेरा बहुत दिनों का मनोरथ पूर्ण किया, आपका मङ्गल हो।

ऋतध्वज ने राजधानी में आ कर सब बातें सुनीं। मदालसा अब इस संसार में नहीं है, उसने स्वामी के वियोग से प्राण छोड़ दिये। यह सुन वे और भी अचेत हुए। मेरा अमङ्गल सुन कर के ही मदालसा ने प्राण छोड़ दिये और मैं उससे विमुक्त हो कर अभी तक जीता हूँ आदि कह कर वे विलाप करने लगे। ऋतध्वज की ऐसी अवस्था देख कर उनके मित्र नागराज-पुत्रों ने अपने मित्र के दुःख को दूर करने की प्रतिज्ञा की। मदालसा से पुनः ऋतध्वज का मिलन हो इसलिये वे अपने पिता से विशेष अनुरोध करने लगे। नागराज हिमालय पर्वत पर जा कर तपस्या करने लगे। सरस्वती और महादेव को तुष्ट कर के उन्होंने वर पाया और मदालसा जिस अवस्था में मरी थी ठीक उसी अवस्था में वह नागराज के घर उत्पन्न हुई। मदालसा जैसी थी वैसी ही नागराज के गृह में उत्पन्न हुई। तदनन्तर नागराज ने ऋतध्वज को अपनी पुरी में बुला कर मदालसा से उनका मिलन करा दिया। मदालसा और ऋतध्वज का यह मिलन स्थिर हुआ था।

मदुरा=मथुरा का नामान्तर।

मद्रदेश=भारतवर्षीय प्राचीन जनपदों में मद्रदेश एक विशेष प्रसिद्ध जनपद है। प्राचीन मद्रदेश के अवस्थान के विषय में चार प्रकार का मत प्रचलित है। महाभारत में सञ्जय की उक्ति में मद्रदेश उत्तरीय जनपदों में गिना गया है। ब्रह्माण्डपुराण में मद्रक नामधेय और गरुड़पुराण में मद्र नामक भारत के उत्तर प्रान्त में स्थित प्रदेश का उल्लेख है। इन दोनों पुराणों में तथा मत्स्यपुराण के इस वचन के—"गान्धारा यवनाश्चैव सिन्धुसौवीरमद्रकाः" अनुसार मद्रदेश गान्धार आदि देशों के पार्श्व में स्थित समझा जाता है। इस मत के अनुसार पाश्चात्य पण्डितों ने इरावती और वितस्ता नदियों के मध्य में मद्रदेश की स्थिति का अनुमान किया है। प्रायः यही मत सर्वसाधारण का भी है। दूसरा मत यह है कि विराट और पाण्ड्यराज्य के मध्य यह पूर्व दक्षिण तक फैला हुआ जनपद मद्रदेश के नाम से प्रसिद्ध है। शक्ति-सङ्गम तन्त्र में मद्रदेश की स्थिति में इसी प्रकार का सिद्धान्त पाया जाता है। यथा—

"वैराटपाण्ड्ययोर्मध्ये पूर्वदक्षक्रमेण तु।
मद्रदेशः समाख्यातो माद्री हा तत्र तिष्ठति॥"

तीसरा मत यह है कि प्राचीन मिडिया राज्य ही प्राचीनतर मद्रदेश है। चौथा मत यह है कि वर्तमान मन्द्रास प्रदेश ही मद्र शब्द के अपभ्रंश से बना है। जो हो, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि प्राचीन भारत में मद्रदेश नाम से प्रसिद्ध कोई प्रान्त या राज्य अवश्य था। परन्तु प्रमाणों द्वारा यह जाना जाता है उत्तरमद्र हिमालय की तराई में था, और दक्षिणमद्र दाक्षिणात्य में है।

मधु=एक दैत्य का नाम।

मधुपुरी=देखो मधुरापुरी।

मध्वाचार्य=माध्वमत-प्रवर्तक एक आचार्य (देखो ब्रह्म सम्प्रदाय)

मनभावन ब्राह्मण=ये कवि मुंडिया ज़िले शाहजहाँपुर के निवासी थे। सं० १८३० में ये उत्पन्न हुए थे। ये चन्दनराय के १२ शिष्यों में से सब से प्रधान शिष्य थे। इनका बनाया ग्रन्थ श्रृङ्गाररत्नावली देखने योग्य है।

मनसा कवि=ये हिन्दी के कवि थे। यह कविता-लालित्य और अनुप्रासों के लिये प्रसिद्ध हैं।

मनसाराम कवि=ये हिन्दी के प्रसिद्ध कवि थे। इनका बनाया नायिकाभेद का ग्रन्थ उत्तम है।

मनियारसिंह क्षत्री=ये काशी के निवासी क्षत्री थे। सं० १८६१ में इनका जन्म हुआ था। इन्होंने कई ग्रन्थ भी बनाये हैं। जिनमें से हनुमत्-छब्बीसी और भाषा-सौन्दर्य-लहरी, शिवसिंह-सरोज-कर्ता की लायब्रेरी में हैं।

मनीराम कवि=ये भाषा के कवि थे और श्रृङ्गार रस की सुन्दर कविता करते थे।

मनु=ब्रह्मा के पुत्र और मनुष्य जाति के आदि पुरुष। प्रत्येक कल्प में चौदह मनु उत्पन्न होते हैं। इनके नाम ये हैं—स्वायम्भुव, स्वारोचिष, औत्तम, तामस, रैवत, चाक्षुष, वैवस्वत, सावर्णि, दक्षसावर्णि, धर्मसावर्णि, रुद्रसावर्णि, देवसावर्णि और इन्द्रसावर्णि। इस समय सप्तम वैवस्वत मनु का अधिकार चलता है। मत्स्य पुराण में चतुर्दश मनुओं के नाम में कुछ भेद देखा जाता है। प्रथम मनु स्वायम्भुव हैं, गायत्री और ब्रह्मा से इनकी उत्पत्ति हुई थी। द्वितीय स्वारोचिष, तृतीय औत्तमि, चतुर्थ तामस, पंचम रैवत, षष्ठ चाक्षुष, सप्तम वैवस्वत मनु, अष्टम सावर्णि मनु, नवम रौच्य, ये रुचि प्रजापति के पुत्र थे। दशम भौत्य, ये भूति नामक प्रजापति के पुत्र थे। एकादश मेरु सावर्णि, ये ब्रह्मा के पुत्र थे। द्वादश मनु ऋभु, त्रयोदश ऋतुधामा, और चतुर्दश विष्वक्सेन।

मनुसंहिता=स्मृतियों में सर्वप्रधान स्मृति मनुसंहिता ही है। मनु के साथ मनुष्यों के अनेक प्रकार के सम्बन्ध हैं। ब्रह्मा के पुत्र मनु, मनुष्यों के आदि पुरुष मनु, स्वायम्भुव आदि चतुर्दश मनु, सूर्यपुत्र मनु, पृथिवी के प्रथम राजा मनु, धर्मसूत्र-प्रणेता मनु। परन्तु किस मनु ने किस समय मनुसंहिता की रचना की इसका निर्णय कौन करेगा। लिखा है कि संसारी मनुष्यों के जानने तथा करने योग्य विषयों का उपदेश मनु ने अपने शिष्यों को दिया था। पीछे से शिष्यों ने उन्हीं उपदेशों को लिपिबद्ध कर दिया। इस संहिता में जगत् की उत्पत्ति का विवरण, जातकर्मादि संस्कार-विधि, ब्रह्मचर्य विवरण, गुरु का अभिवादन और स्नानविधि, दाराधिगमन, विवाह और विवाह लक्षण, महायज्ञ विधान, सनातन श्राद्ध-विधान, ब्राह्मण आदि चतुर्वर्णों की जीविका के लक्षण, गृहस्थ का कर्त्तव्य, भक्ष्याऽभक्ष्य-विचार, शौच, द्रव्य आदि की शुद्धि, स्त्रीधर्म, यति-संन्यासी और राजाओं के धर्म, ऋणदान आदि का विचार-निर्णय, साक्षियों का प्रश्न-विधान, स्त्री और पुरुष का धर्म, दायभाग, द्यूतक्रीड़ा, तस्कर आदि को दण्डविधान, वैश्य और शूद्र का कर्त्तव्य-विधान, सङ्कर जातियों की उत्पत्ति-विवरण, चतुर्वर्णों का आपद्धर्म, प्रायश्चित्तविधि, कर्मजनित देहान्तर-प्राप्तिरूप उत्तम मध्यम अधम त्रिविध गति, मोक्षोपाय, कर्मों का दोष और गुण, देश-धर्म, जातिधर्म, कुलधर्म और और वेदविरोधी पाखण्डियों के धर्म आदि इसमें विवेचित हुए हैं। मनुसंहिता के कर्ता महर्षि मनु हैं ऐसा अनेकों का विश्वास है। परन्तु सच्ची बात यह नहीं है। मनुसंहिता में देखा जाता है कि महर्षि मनु ने अपने शिष्यों को जो शास्त्रतत्त्व

बतलाये थे, कुछ दिनों तक ये उपदेश गुरुपरम्परा से प्रचलित थे; अन्त में इन्हीं उपदेशों को किसी शिष्य ने लिपिबद्ध किया । आज कल की प्रचलित मनुसंहिता मनु रचित नहीं है यह बात मनुसंहिता के प्रथम अध्याय के अन्तिम श्लोक से जानी जाती है । महर्षि मनु के किसी शिष्य ने इस शास्त्र का जिस प्रकार वर्णन किया है उससे यह बात स्पष्ट ही मालूम होती है । मनुस्मृति के प्रथम अध्याय का अन्तिम श्लोक यह है—

" यथेदमुक्तवान् शास्त्रं पुरा पृष्टो मनुर्मया ।
तथेदं यूयमप्यद्य मत्सकाशान्निबोधत ॥"

अर्थात् पुराकाल में भगवान् मनु ने हमारे प्रश्न के उत्तर में जो शास्त्र कहा है, वही मैं यथायथरूप से कहता हूँ आप लोग श्रवण करें । मनुसंहिता के अन्तिम श्लोक से भी यही बात पायी जाती है । " इत्येतन्मानवं शास्त्रं भृगुप्रोक्तं पठन् द्विजः " अर्थात् मनु के शिष्य भृगु ने जिस शास्त्र को विस्तृत किया था वही मनुसंहिता कही जाती है । इससे यह बात भी समझी जाती है कि मनु के बाद ये उपदेश-समूह लिपिबद्ध किये गये थे । वे उपदेश पहले सूत्ररूप में " मानव धर्मसूत्र " के नाम से प्रसिद्ध थे वे ही पीछे से संहिता के आकार में ग्रथित हुए । यह संहिता वेदानुकूल है । यथा—

" वेदार्थोपनिबन्धत्वात्प्राधान्यं हि मनोः स्मृतेः ।
मन्वर्थविपरीता च या स्मृतिः सा न शस्यते ॥"

सुतरां इससे मनुस्मृति की प्रधानता प्रतिपन्न होती है । मनुसंहिता बारह अध्यायों में समाप्त है । उन अध्यायों में सब मिला कर २७०४ श्लोक हैं । उन अध्यायों में जो विषय विवेचित हुए हैं, उनका संक्षेप में नीचे निर्देश किया जाता है । प्रथम अध्याय में—मुनियों की धर्म-जिज्ञासा, उसके सम्बन्ध में मनु का उत्तर, सृष्टि-प्रकरण, मनु की आज्ञा से भृगु का मानव धर्म कथन, दैवादिकाल-निर्णय, वर्ण-धर्म-कथन और ग्रन्थ की अनुक्रमणिका; द्वितीय अध्याय में—धर्म का चतुर्विध प्रमाण, ब्रह्मचर्य-विधि, शिष्यों का कर्त्तव्य, बड़ों को अभिवादन करने की रीति; तृतीय अध्यायमें—चतुर्वर्णों की विवाहविधि, ब्राह्म आदि आठ प्रकार के विवाहों के लक्षण, पञ्च-महायज्ञ, अतिथि-सत्कार, श्राद्ध आदि का नित्यत्व कथन; चतुर्थ अध्याय में—उञ्छशील-वृत्ति आदि जीविका के उपाय, गार्हस्थ्य नियम; पञ्चम अध्याय में—भक्ष्याभक्ष्यविचार, अशौच-निर्णय, द्रव्यशुद्धि और स्त्रीधर्मकथन; षष्ठ अध्याय में—आश्रमधर्म की विधि-व्यवस्था; सप्तम अध्याय में—राजधर्म और राज्यरक्षा के उपायों का वर्णन; अष्टम अध्याय में—व्यवहार दर्शन, अष्टादश-विवाद पद का निर्णय, साक्षिविवरण, दण्डनिर्णय, राजदण्ड की पापनाशकता; नवम अध्याय में—स्त्री-पुरुषों का धर्म विचार, दाय-विभाग, द्यूतक्रीड़ा, वैश्य और शूद्रों का कर्त्तव्य कथन; दशम अध्याय में—सङ्कर वर्णों की उत्पत्ति तथा चतुर्वर्णों की उत्पत्ति का विवरण; एकादश अध्याय में—प्रायश्चित्तविधि; द्वादश अध्याय में—कर्म के अनुसार जन्मान्तर-प्राप्ति का विवरण, ज्ञान और मोक्ष आदि का विवरण है । (भारतवर्षीय इतिहास)

मनोहर कवि=इनका पूरा नाम राजा मनोहर-दास कछवाहा था । ये अकबर शाह के मुसाहबों में थे और फ़ारसी तथा संस्कृत भाषा के एक बड़े कवि थे । फ़ारसी कविता में ये अपना नाम तोसनी रखते थे ।

(२) इनका दूसरा नाम काशीराम रिसालदार था । ये भरतपुर के रहने वाले थे । इन्होंने एक ग्रन्थ बनाया है, जिसका नाम मनोहरशतक है । मनोहरशतक की मनोहरता में किसी को सन्देह नहीं हो सकता । शिवसिंह-सरोजकार के समय में ये कवि जीवित थे ।

मनोहरदास निरञ्जनी=इन्होंने भाषा में ज्ञान-चूर्णवेचनिका नामक एक वेदान्त की पुस्तक लिखी है ।

मन्थरा=दशरथ की महारानी कैकेयी की दासी । इसी के परामर्श से महारानी कैकेयी ने राम का वनवास और भरत का राज्याभिषेक ये दो वर माँगे थे । मन्थरा कैकेयी के साथ ही आयी थी ।

मन्दपाल=धार्मिक तपस्वी और वेदपारग महर्षि ।

बहुत दिनों तक तपस्या की । अन्तिम श्रेणी में उत्तीर्ण हो कर ये पितृलोक को गये थे । सन्तान उत्पादन न करने के कारण इनको ईप्सितलोक की प्राप्ति नहीं हुई । इन्हें अपने कर्म-फलों के भोग से वञ्चित होना पड़ा । अतएव थोड़े समय में अनेक पुत्र उत्पादन करने की इच्छा से महर्षि विहङ्गम-मण्डल में गये, और वहाँ उन्होंने शार्ङ्गक का रूप धर कर जरिता नाम की एक शार्ङ्गिका के गर्भ से ४ पुत्र उत्पन्न किये । खाण्डव वनदाह के समय इनके दग्ध होने की सम्भावना हुई थी अतएव मन्दपाल ने अग्नि की स्तुति की । इस स्तुति से प्रसन्न हो कर अग्नि ने मन्दपाल के चारों पुत्रों की रक्षा की ।

(महाभारत)

मन्दोदरी=लङ्केश्वर रावण की पटरानी । यह मय नामक दानव के औरस और हेमा नाम की अप्सरा के गर्भ से उत्पन्न हुई थी । रावण का प्रसिद्ध पराक्रमी पुत्र मेघनाद इसी के गर्भ से उत्पन्न हुआ था ।

यह पञ्चकन्याओं में है । रावण के मरने पर इसका विभीषण से ब्याह हुआ था ।

(रामायण)

मम्मट=संस्कृत के अलङ्कारशास्त्र के प्रधान पुस्तक काव्यप्रकाश के कर्ता । मम्मट ने किस संवत् में काव्यप्रकाश बनाया, इस प्रश्न के उत्तर में एक मत ऐसा प्रचलित है, जो १३३५ के पूर्व ही उनका समय बतलाता है, क्योंकि १३वीं शताब्दी के माधवाचार्य ने सर्वदर्शन-संग्रह में काव्यप्रकाश का उल्लेख किया है ।

परन्तु मम्मट का समय ११वीं सदी का अन्तिम भाग मानना ही मेरी समझ से उत्तम है । क्योंकि ये मालवाधीश सिन्धुराज के पुत्र भोजराज से नवीन और काव्यप्रकाश के टीकाकार माणिक्यचन्द्र से प्राचीन हैं । भोजराज का समय नवीं सदी का अन्त और दसवीं सदी का प्रारम्भ माना गया है । मम्मट ने काव्यप्रकाश के दशम उल्लास में उदात्तालङ्कार के उदाहरण में—" भोज नृपतेस्तत्त्यागलीलायितम् " यह पद्य उद्धृत किया है जिससे भोजराज से मम्मट अर्वाचीन सिद्ध होते हैं । माणिक्यचन्द्र से मम्मट की प्राचीनता के विषय में कुछ कहने की आवश्यकता ही नहीं है क्योंकि इन्होंने काव्यप्रकाश की सङ्केता नाम की टीका लिखी है । खीष्टीय ११६० ई० में माणिक्यचन्द्र ने काव्यप्रकाश की टीका सङ्केता बनायी । माणिक्यचन्द्र ने अपना समय काव्यप्रकाश की टीका में लिखा है—

" रसवक्त्रग्रहाधीशवत्सरे(१२१६)याति माधवे ।
काव्ये काव्यप्रकाशस्य सङ्केतोऽयं समर्थितः ॥ "

माणिक्यचन्द्र ने अपना समय १२१६ विक्रमी संवत् बतलाया है । इसके अनुसार उनका समय ११६० खीष्टीय ई० होता है ।

काव्यप्रकाशकार मम्मट का कुछ विशेष वृत्तान्त नहीं मालूम पड़ता । काव्यप्रकाश की निदर्शन नामक टीका से इतना मालूम पड़ता है कि ये शैवागमानुयायी शैव थे और " शब्दव्यापार-विचार " नामक ग्रन्थ भी इन्होंने बनाया है ।

मम्मट का जन्म किस जनपद में हुआ था इसके उत्तर में यह कहा जा सकता है कि काश्मीर में । जैयट-कैयट आदि काश्मीरियों के नाम के सदृश इनका भी नाम मम्मट है । मम्मट ने परिकरालङ्कार पर्यन्त काव्यप्रकाश बनाया था, आगे का अंश अल्लटसूरि ने पूरा किया । काव्यप्रकाश की निदर्शन नामक टीका में लिखा है—

"कृतः श्रीमम्मटाचार्यवर्यैः परिकरावधि ।
प्रबन्धः पूरितः शेषो विधायाल्लटसूरिणा ॥ "

मय दानव=शिल्पशास्त्रज्ञ दानव । यह शिल्प का निपुण अभिज्ञ पारदर्शी था । इसी ने युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ की सभा बनायी थी, जिसको देख कर बड़ों बड़ों की बुद्धि चकरा गयी थी । मन्दोदरी इसी की कन्या थी, जो रावण को ब्याही गयी थी । इसके दो पुत्र थे । एक का मायावी और दूसरे का दुन्दुभि नाम था । दुन्दुभि, वानरराज बालि के हाथ मारा गया था ।

मरीचि=ब्रह्मा के मानस पुत्र । ये सप्तर्षियों में से एक हैं ।

मरुत्त=दिति के गर्भ और कश्यप के औरस से इस देवता की उत्पत्ति हुई थी । दिति के पुत्र दैत्यों के मारे जाने पर दिति ने देवताओं से

अजेय एक पुत्र की प्रार्थना स्वामी से की। कश्यप के वर से उसके एक पुत्र उत्पन्न हुआ। यह जान कर देवराज इन्द्र ने गर्भावस्था ही में वज्र द्वारा उसके ४९ टुकड़े कर दिये। परन्तु गर्भ के कई खण्ड हो जाने पर भी कश्यप के वर से इनका विनाश नहीं हुआ। इसी कारण ये ४९ मरुत के नाम से प्रसिद्ध हुए।

मलूकदास=ये भाषा के कवि और कड़ा मानिकपुर के रहने वाले थे। सं० १८८५ में इनकी उत्पत्ति हुई थी। इनकी कविता बहुत ललित होती है।

मलैसी जी=जयपुर के प्राचीन राजा। इनके पिता का नाम पजोनी था। महाराज पजोनी ने कन्नौज के स्वयम्बर के समय पृथ्वीराज की ओर से युद्ध किया था। पजोनी और मलैसी ये दोनों उस युद्ध में सम्मिलित हुए थे। पजोनी जी उस युद्ध में मारे गये। उनके अनन्तर मलैसी जी आँबेर की गद्दी के अधीश्वर हुए।

(टाड्स राजस्थान)

महादेव=ये हिन्दुओं के एक प्रधान देवता हैं। ब्रह्मा विष्णु और महादेव ये ही तीन प्रधान देव हैं। परमात्मा की सृष्टिशक्ति ब्रह्मा नाम से, पालनीशक्ति विष्णु नाम से और संहारशक्ति महादेव नाम से प्रसिद्ध है। महादेव का प्रधान अस्त्र त्रिशूल है और उनके धनुष का नाम पिनाक है। महादेव के एक दूसरे प्रसिद्ध अस्त्र का नाम पाशुपत है। महादेव ने प्रसन्न हो कर यही अस्त्र अर्जुन को दिया था। त्रिपुर का विनाश कर के वे त्रिपुरारि नाम से प्रसिद्ध हुए। समुद्र-मन्थन से उत्पन्न विष पीने के कारण उनका नीलकण्ठ नाम पड़ा। परशुराम ने महादेव से अस्त्रविद्या की शिक्षा पायी थी। महादेव ने दक्षयज्ञ का नाश किया था।

महानन्द वाजपेयी=ये बैसवारे के रहने वाले थे और भाषा तथा संस्कृत के पण्डित थे। ये परम शैव थे। इन्होंने बृहत् शिवपुराण की भाषा की है।

महापुराण=प्रधानतः पुराणों के दो भेद हैं। महापुराण और उपपुराण। महर्षि व्यास के बनाये और दस हज़ार से अधिक श्लोक वाले पुराण महापुराण कहे जाते हैं। वैसे महापुराण अट्ठारह हैं, जिनके नाम ये हैं—१ ब्रह्मपुराण, २ पद्मपुराण, ३ विष्णुपुराण, ४ शिवपुराण, ५ लिङ्गपुराण, ६ गरुड़पुराण, ७ नारदीयपुराण, ८ श्रीमद्भागवत, ९ अग्निपुराण, १० स्कन्दपुराण, ११ भविष्यपुराण, १२ ब्रह्मवैवर्तपुराण, १३ मार्कण्डेयपुराण, १४ वामनपुराण, १५ वराहपुराण, १६ मत्स्यपुराण, १७ कूर्मपुराण, और १८ ब्रह्माण्डपुराण।

महाभारत=भारतवर्ष का एक इतिहास और महाकाव्य। कुरु-पाण्डव युद्ध होने के पश्चात् पराशर-पुत्र महर्षि वेदव्यास ने इस महाकाव्य की रचना की। महाभारत के विषय में प्रधानतः यह प्रसिद्धि है कि यह ग्रन्थ एक लाख श्लोकों का है। महाभारत के आदिपर्व के प्रथम अध्याय में यह बात इस प्रकार लिखी है। पहले उपाख्यान भाग को छोड़ कर २४ हज़ार श्लोकों में वेदव्यास ने भारतसंहिता बनायी। पण्डितगण उसी चौबीस हज़ार श्लोक वाली संहिता ही को भारत कहते हैं। तदनन्तर समस्त पर्वों का सार संग्रह कर के उन्होंने १५० सौ श्लोकों में अनुक्रमणिका अध्याय बनाया। व्यास ने पहले यह संहिता अपने पुत्र को दी तदनन्तर अन्य शिष्यों को भी इस संहिता का अध्ययन कराया। इस संहिता के बनाने पर इन्होंने साठ लाख श्लोकों की एक और बड़ी संहिता बनायी। उसके तीस लाख श्लोकों का देवलोक में, पन्द्रह लाख श्लोकों का पितृलोक में, चौदह लाख श्लोकों का गन्धर्वलोक में और एक लाख श्लोकों का मर्त्यलोक में प्रचार हुआ। व्यास-शिष्य वैशम्पायन ने जनमेजय के सर्पमेध नामक यज्ञ में उस लक्ष श्लोक वाली संहिता का कीर्तन किया था। वही आज महाभारत के नाम से प्रसिद्ध है। महाभारत में १८ पर्व हैं। आदि, सभा, वन, विराट्, उद्योग, भीष्म, द्रोण, कर्ण, शल्य, सौप्तिक, स्त्री, शान्ति, अनुशासन, आश्वमेधिक, आश्रमवासिक, मौसल, महाप्रा-

स्थानिक और स्वर्गारोहण। ये पर्व-समूह एक सौ उपपर्वों में विभक्त हैं।

महाभारत तथा अन्यान्य पुराणों में वर्णित एक विषय के साथ कभी कभी दूसरे विषयों का विरोध पाया जाता है। यही कारण है कि आज कल पुराणों में क्षेपक बतलाने का लोगों को साहस होने लगा है। समस्त पुराण उपपुराणों के प्रक्षिप्त अंश की आलोचना हम यहाँ नहीं करेंगे। महाभारत के समान बड़े ग्रन्थ के प्रक्षिप्त अंश की आलोचना भी इस स्थान पर असम्भव है, तथापि किस कारण से प्रक्षिप्त प्रसङ्ग उठाया जाता है, और साधारणतः महाभारत के किस किस अंश को विद्वान् प्रक्षिप्त समझते हैं यही बात यहाँ दिखलायी जायगी। महाभारतीय क्षेपक के विषय में प्रधानतः चार कारण बतलाये जाते हैं। १म,—महाभारत के आदि पर्व में, पर्व अध्यायों के संग्रह प्रसङ्ग में, महाभारत में वर्णन किये जाने वाले विषयों का जहाँ उल्लेख है, उसके साथ किसी किसी स्थान का मेल न होना। पर्वाध्याय-संग्रह में अनुगीता और ब्राह्मणगीता का नाम नहीं है, परन्तु आश्वमेधिक पर्व में ये दोनों गीताएँ देखी जाती हैं। इतने बड़े दो विषयों का अनुक्रमणिका में उल्लेख क्यों नहीं हुआ? २रा—लिखा है जनमेजय के सर्पयज्ञ में पढ़ा गया महाभारत एक लाख श्लोकों का है, और इस समय वही महाभारत प्रचलित है। परन्तु गणना करने से महाभारत में इस समय ८४ हज़ार ८ सौ ३६ श्लोक मात्र पाये जाते हैं। यदि हरिवंश को मिला दें तो श्लोकों की संख्या बढ़ जाती है। इससे यह अनुमान अवश्य किया जाता है कि पीछे के समय में महाभारत के श्लोकों में कुछ घटाव बढ़ाव हुआ है। ३रा—महाभारत का समस्त अंश वेदव्यास रचित नहीं है, यह बात आदिपर्व के कतिपय अध्यायों से प्रमाणित होती है। नैमिषारण्य में शौनकादि ऋषियों के प्रश्न के उत्तर में लोमहर्षण-पुत्र उग्रश्रवा महाभारत का वर्णन करते हैं—ऐसा लिखा है। वहाँ और भी यह लिखा मिलता है, प्रश्नकर्ता महर्षिगण कहते हैं "महर्षि द्वैपायन ने जिस पुराण की रचना की, सर्पयज्ञ में राजा जनमेजय के सामने वैशम्पायन ने जिस महाभारत को गाया था, वेदव्यासप्रणीत उसी महाभारत को सुनने की हम लोग इच्छा करते हैं।" इस प्रकार महाभारत के अनेक स्थानों में सूत शौनक उग्रश्रवा जनमेजय आदि का प्रश्नोत्तर जहाँ देखा जाता है वहाँ उन अंशों को वेदव्यास रचित कैसे कहा जा सकता है। ४था—चरित्रगत असङ्गति। वेदव्यास के समान सुपण्डित और सुकवि अपने ग्रन्थों में चरित्रों का सामञ्जस्य विधान नहीं कर सकते। इस बात पर विश्वास कैसे किया जा सकता है। उन्होंने युधिष्ठिर को आदर्श सत्यवादी कह कर वर्णन किया है। उन्हीं के मुख से गुरुहत्या-मूलक असत्य कहलाना अनुचित हुआ है। यहाँ चरित्र का सामञ्जस्य भङ्ग हो गया है। आधुनिक विद्वानों का यही मत है। मैं यह कहना नहीं चाहता कि महाभारत में या अन्य पुराणों में प्रक्षिप्त अंश या वेदव्यास के पश्चात् की रचना नहीं है। अवश्य है—यह मैं भी कहना चाहता हूँ। परन्तु प्रक्षिप्त अंश के लिये जो चार प्रकार के कारण दिखाये जाते हैं, उनके विषय में मेरा मतभेद है। द्रोणवध के लिये युधिष्ठिर से असत्य कहला कर उनका चरित्र कलङ्कित किया गया है। अतएव वह विषय प्रक्षिप्त है। परन्तु मैं इस बात को नहीं मान सकता। इसका उत्तर दो प्रकार से दिया जा सकता है—महाभारत जब इतिहास है तब तो जैसा हुआ वैसा ही लिखा गया है यही मानना उचित है। यदि इतिहास से इस बात को निकाल दें तब इतिहास की यह एक बड़ी भारी भूल रह जायगी। यदि महाभारत को महाकाव्य मानें तो, इस प्रकार के चरित्रचित्रण से कवि-प्रतिभा की उज्ज्वलता ही विदित होती है। युधिष्ठिर सत्यवादी थे, उन्होंने कभी मिथ्या वचन नहीं कहे,—यह उक्ति जितनी हृदयङ्गम होगी उससे कहीं अधिक सत्यवादी युधिष्ठिर से द्रोणवध के लिये असत्य बुलवा के तथा उस असत्य कहने का फल बताना हृदयङ्गम

होगा। इस प्रकार सत्य ज्योति का अधिक प्रकाश होगा। जिस अवस्था में युधिष्ठिर से अश्वत्थामा के वध का वृत्तान्त कवि ने प्रकाशित कराया है, यदि वह कल्पना है तो भी उच्च कवि-हृदय की उच्च कल्पना है, इसमें सन्देह नहीं। इस घटना से युधिष्ठिर के चरित्र से एक विलक्षण प्रकार की लोकशिक्षा मिलती है। युधिष्ठिर मनुष्य थे, कवि ने भी मनुष्य-चरित्र ही अङ्कित किया है। मनुष्य-चरित्र दिखा कर कवि ने दिखाया है कि युधिष्ठिर के समान मनुष्य को भी किस प्रकार अवस्था का दास बनना पड़ता है। यह देख दूसरों को सावधान होना चाहिये सम्भव है कवि का यह भी लक्ष्य हो और इस घटना से महाभारत की अनेक घटनाएँ जुड़ी हैं। यदि महाभारत से यह घटना निकाल दी जाती या निकाल दी जाय, तो महाभारत एक दूसरे रूप में परिणत हो जाता, या हो जायगा। अतएव व्यासदेव ने युधिष्ठिर से कहलाया है—

"तव तथ्यभये मग्नो जयेऽशक्तो युधिष्ठिरः।
अव्यक्तमब्रवीद्राजन् हतः कुञ्जर इत्युत ॥"

अतः इसको मिथ्या या प्रक्षिप्त कहना किसी प्रकार उचित नहीं कहा जा सकता।

दूसरा सन्देह श्लोकों की संख्या के विषय में है। इस विषय में अनेक बातें हैं। पहले तो श्लोकसंख्या गिनने की रीति अनेक प्रकार की प्रचलित है। कोई कोई "जनमेजय उवाच" को भी एक श्लोक गिन लिया करते हैं। कोई केवल श्लोकों ही को गिनते हैं। महाभारत की श्लोक-गणना किस रीति के अनुसार की गयी है, इसका उत्तर कोई कोई ही दे सकते हैं। कोई नारायणं नमस्कृत्य से, कोई आस्तिकपर्व से, कोई राजा उपरिचर के उपाख्यान से, महाभारत का आरम्भ मानते हैं। ऐसी स्थिति में मनमाना हिसाब लगाना केवल उपहासास्पद है। जो श्लोकों की कम संख्या बतलाते हैं उन्होंने किस प्रदेश में प्रचलित महाभारत की श्लोक-संख्या की गणना की है यह नहीं कहा जा सकता। बङ्गाल के महाभारत, बम्बई प्रदेश में प्रचलित महाभारत तथा दाक्षिणात्य प्रदेश में प्रचलित महाभारत का जब एक दूसरे से मिलान किया जाता है, तब इनमें अनेक कमी बेशी पायी जाती है। इसके अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं। भीष्मपर्व में जहाँ भगवद्गीता की समाप्ति हुई है वहाँ उसके बाद के वैशम्पायनोक्त साढ़े पाँच श्लोक बङ्गाल के महाभारत में नहीं पाये जाते हैं। यह बात नीलकण्ठ ने अपनी महाभारत की टीका में लिखी है—"गीता सुगीता कर्त्तव्या इत्यादयः पञ्च-श्लोकाः गौडैर्न पठ्यन्ते।" बम्बई प्रदेश में जो महाभारत प्रचलित है उसमें इनसे भी अधिक और दो श्लोक पाये जाते हैं। इसी प्रकार भिन्न भिन्न प्रदेशों में प्रचलित महाभारतों में कमी बेशी पाई जाती है। अस्तु, दूसरे प्रदेश के महाभारतों के अधिक श्लोकों को गिन लेने पर भी महाभारत की श्लोक-संख्या ठीक नहीं होती। इससे ऐसा मालूम पड़ता है कि जिस समय महाभारत की श्लोक-गणना हुई थी, उससे परवर्ती समय में लेखकों के प्रमाद से कुछ श्लोक छूट गये और "महाभारत में लाख श्लोक हैं" इसका यह अर्थ नहीं है कि महाभारत में लाख ही श्लोक हैं, एक भी कमोबेश नहीं। तथापि महाभारत में भी प्रक्षिप्त अंश है, एक सिद्धान्त के विरुद्ध दूसरी बात को देख कर ही यह कहा जाता है।

महाराष्ट्र राज्य=दाक्षिणात्य का प्रसिद्ध जनपद। अनेक शास्त्रीय ग्रन्थों में महाराष्ट्र का उल्लेख पाया जाता है। ब्रह्माण्डपुराण में महाराष्ट्र दक्षिण देश का जनपद लिखा गया था। किसी किसी पुराण में "राष्ट्रवासिन," शब्द देखा जाता है। इसका अर्थ टीकाकारों ने सौराष्ट्र और महाराष्ट्र देश के अधिवासी किया है। हुएनत्सङ्ग के भारतागमन के समय महाराष्ट्र एक प्रसिद्ध जनपद था। हुएनत्सङ्ग कोङ्कण देश से उत्तर पश्चिम की ओर चार सौ मील जा कर महाराष्ट्र देश में गये थे। हुएनत्सङ्ग ने लिखा है कि कोङ्कण देश से महाराष्ट्र देश में जाने का मार्ग बड़ा ही कठिन है। यह मार्ग बनैला है और हिंस्र जन्तु तथा चोरों से अत्यन्त भयानक है। उन्होंने महाराष्ट्र देश की लम्बाई

चौड़ाई एक हज़ार मील बतायी है। इस राज्य की राजधानी की परिधि पाँच मील है। राजधानी के पश्चिम ओर एक बड़ी नदी बहती है। हुएनत्सङ्ग के वर्णनानुसार कनिंहम ने महाराष्ट्र देश की यह सीमा बतलायी है। उत्तर में मालव, पूर्व में आन्ध्र या कोशल, दक्षिण में कोङ्कण, और पश्चिम में समुद्र। इस सीमा के अन्तर्गत का स्थान ही महाराष्ट्र राज्य है। परन्तु हुएनत्सङ्ग ने महाराष्ट्र देश की राजधानी के विषय में जो कुछ लिखा है उस विषय में कनिंहम को बड़ा सन्देह है। कनिंहम कहते हैं कि गोदावरी के तीर स्थित पैथान या प्रतिष्ठान ही सप्तम शताब्दी में महाराष्ट्र राज्य की राजधानी रहा होगा। परन्तु महाराष्ट्र देश की राजधानी से पारिपार्श्वक स्थान (भरोच) की जो दूरी हुएनत्सङ्ग ने बतलायी है वह नहीं मिलती। अतएव यह अनुमान किया जाता है कि कल्याणी नगरी ही को हुएनत्सङ्ग ने महाराष्ट्र देश की राजधानी बताया है। इसी नगरी में चालुक्यवंशी राजाओं की राजधानी थी। इस नगरी के पश्चिम की ओर कैलास नामक एक नदी भी बहती है। अजगुण्डी और भरोच की दूरी के हिसाब से भी इस नगरी को हुएनत्सङ्ग की देखी महाराष्ट्र की राजधानी मान सकते हैं। कल्याण या कल्याणी का नाम बहुत दिनों से प्रसिद्ध है। छठवीं शताब्दी में "काल्येना" नामक स्थान में ईसाई धर्मगुरुओं का अड्डा था। हुएनत्सङ्ग ने अपने वर्णन में लिखा है—महाराष्ट्र देश की भूमि उर्वरा है, वहाँ खेती बारी बड़ी सावधानी से होती है। यहाँ के वासी सज्जन दृढ़प्रतिज्ञ और बदला लेने में बड़े दक्ष हैं। उपकारियों के प्रति वे कृतज्ञ होते हैं और शत्रुओं के प्रति वे अत्यन्त ही निर्दय होते हैं। अपमानित होने पर वे प्राण दे कर भी बदला लेते हैं। जो कोई उनकी शरण जा कर सहायता चाहता है, उसे वे आत्म-विस्मृति-पूर्वक सहायता देते हैं। महाराष्ट्र जब किसी शत्रु से बदला लेने के लिये उस पर आक्रमण करते हैं, तब वे शत्रुओं को सावधान कर दिया करते हैं, पुनः सावधान शत्रु पर वे आक्रमण करते हैं। यदि कोई महाराष्ट्र सेनापति युद्ध में हार जाता है तो वे उसको कुछ भी विशेष दण्ड नहीं देते। किन्तु पराजित सेनापति को स्त्रियों जैसे कपड़े पहिनने पड़ते हैं, और उसी लज्जा से वह प्राण त्याग कर देता है। जिस समय हुएनत्सङ्ग महाराष्ट्र में गये थे उस समय पुलकेशि नामक एक क्षत्रिय वहाँ का राजा था। वह बड़ा ही प्रसिद्ध राजा था। उसकी कीर्ति चारों ओर फैल गयी थी। उसकी प्रजा राजा में बड़ी भक्ति करती थी। उसी समय कन्नौज के राजा शिलादित्य ने आसपास के समस्त स्थानों पर अपना अधिकार जमाया था। परन्तु महाराष्ट्र देश पर उनका अधिकार नहीं जम सका था। शिलादित्य ने अनेक प्रदेशों से बड़े बड़े वीरों को बुला कर अपनी सेना में रखा था। युद्ध के समय सेना का निरीक्षण वे स्वयं करते थे, तथापि वे महाराष्ट्र देश को अपने हाथ में नहीं कर सके। राजा पुलकेशि को रण में पराजित करना तो दूर रहा, किन्तु वे स्वयं पुलकेशि से परास्त हो गये थे। महाराष्ट्र जाति की स्वाधीनता रक्षित रही थी। पीछे के समय में भी महाराष्ट्र जाति ने विलक्षण वीरता का परिचय दिया है। पुलकेशि के उत्तराधिकारियों ने हज़ार वर्ष के बाद भी मुग़ल सम्राट् औरङ्गज़ेब का अभिमान चूर कर दिया था।

महाराष्ट्र देश के प्राचीन इतिहास की आलोचना में प्रायः ऐतिहासिकों को बड़ी बड़ी बाधाओं का सामना करना पड़ता है। महाराष्ट्र जाति के इतिहास-प्रणेता ग्रेन्ट डफ़ कहते हैं—अन्य प्राचीन जातियों के समान महाराष्ट्र जाति का भी प्राचीन इतिहास अन्धकार में लीन है। मुसल्मानों का महाराष्ट्र देश पर अधिकार होने के पहले महाराष्ट्र देश में दो तीन बार राष्ट्र-परिवर्तन हुआ था। पुराणों में लिखा है कि कावेरी और गोदावरी के बीच का स्थान दण्डकारण्य कहा जाता है। जिस समय रावण का आधिपत्य चारों ओर फैला था उस समय रावण ने यह प्रदेश अपने गायकों को दान में दिया था। लोगों का विश्वास है कि

महाराष्ट्र देश के आदिम वासी गुरशी थे, वे नीच वंश के थे । परन्तु गीत-वाद्य में वे बड़े निपुण थे । ऐतिहासिक, महाराष्ट्र देश में टगर नामक एक नगर का प्रथम उल्लेख करते हैं। कहते हैं वही महाराष्ट्र देश की राजधानी थी। खीष्ट जन्म के अढ़ाई सौ वर्ष पहले मिसर के व्यापारी इस नगर में व्यापार करने आते थे। खीष्टीय १२वीं सदी के ताम्र-शासन से इस नगर की प्रधानता विदित होती है। इस नगर में शीलार वंशी किसी राजपूत राजा की राजधानी थी और उसने आसपास के राज्यों पर अपना अधिकार जमा लिया था। इस समय टगर नगर का कुछ भी पता नहीं है। प्रत्न-तत्ववेत्ता कहते हैं कि टगर वर्तमान वीर-नगर के उत्तर पूर्व की ओर गोदावरी नदी के तीर पर वर्तमान था। इस नगर के प्रतिष्ठाता राजाओं ने कितने दिनों तक यहाँ राज्य किया था इसके विषय में कुछ भी विदित नहीं है। परन्तु खीष्टीय ७७–७८ ई० में शालिवाहन ने इस राज्य पर अधिकार किया था। कहते हैं शालिवाहन किसान के पुत्र थे, परन्तु लोग इन्हें महादेव का अवतार समझते हैं। शालि-वाहन टगर नगर से अपनी राजधानी प्रति-ष्ठान में ले गये थे। तभी से टगर नगर का नाश होना प्रारम्भ हुआ। प्रतिष्ठान में राज-धानी स्थापित कर के शालिवाहन ने बड़ी दूर तक अपना अधिकार फैला दिया। मालवा के राजा विक्रमादित्य उनसे हार गये थे ऐसा भी सुना जाता है। कोई कोई कहते हैं कि शालिवाहन ने जब मालवा पर आक्रमण किया तब वहाँ के राजा विक्रमादित्य ने सन्धि कर ली। उसी सन्धि के नियमानुसार नर्मदा नदी के उत्तर का देश शालिवाहन के अधीन और नर्मदा नदी के दक्षिण का देश विक्रमादित्य के अधीन रहा। परन्तु बहुत लोग इस बात पर विश्वास नहीं करते क्योंकि विक्रमादित्य खीष्ट जन्म के ५७ वर्ष पूर्व हुए थे, और शालिवाहन खीष्ट जन्म के ७७ वर्ष पश्चात् उत्पन्न हुए थे, इन दोनों के समय में १३४ वर्ष का व्यवधान है। अतएव उनके युद्ध और सन्धि की कल्पना नितान्त असत्य है। शालिवाहन के बाद बहुत दिनों तक महाराष्ट्र देशी किसी राजा का कुछ भी परिचय नहीं पाया जाता है। खीष्टीय १२वीं सदी के प्रारम्भ में यादववंशियों ने देवगढ़ में नयी राजधानी की स्थापना की थी।

(भारतवर्षीय इतिहास)

महावीर=जैनियों के अन्तिम तीर्थङ्कर । जैन ग्रन्थों में लिखा है कि ये सात धनुष लम्बे थे और ७२ वर्ष तक जीवित रहे थे। ये अन्तिम तीर्थङ्कर थे। इनके जन्म और संसार-त्याग के विषय में जैन ग्रन्थों में लिखा है। महावीर के पिता का नाम सिद्धार्थराज और माता का नाम त्रिशला देवी था। त्रिशला वैशाली के राजा केतक की बहिन थी। सिद्धार्थराज कुन्द ग्राम के सर्दार थे। महावीर का जन्मकाल खीष्ट जन्म के छः सौ वर्ष पूर्व बतलाया जाता है। जिस रात्रि को महावीर का जन्म हुआ उस रात्रि को अनेक अलौकिक घटनाएँ घटी थीं। उनतीस वर्ष की अवस्था में महावीर ने घर छोड़ दिया। घर छोड़ने के समय उन्होंने दरिद्रों को बहुत से दान दिये थे। बारह वर्ष वनवास करने के पश्चात् ये योगी अथवा तीर्थङ्कर नाम से प्रसिद्ध हुए। ७२ वर्ष की अवस्था में इन्होंने शरीर त्याग किया।

(भारतवर्षीय इतिहास)

महेशदत्त ब्राह्मण=ये भाषा के कवि, धनौली ज़िला बाराबंकी के निवासी थे। संस्कृत भी जानते थे।

माखन कवि=सं० १८१७ में ये उत्पन्न हुए थे। इनकी कविता बहुत ही ललित और सरल होती थी।

मागध=वैश्य पिता और क्षत्रिया माता से उत्पन्न पुत्र। एक प्रकार की सङ्कर जाति। धर्मशास्त्रों में सङ्कर जाति दो प्रकार की होती है। एक अनुलोम और दूसरी प्रतिलोम। उच्चवर्ण के पिता और नीचवर्ण की माता के गर्भ से उत्पन्न जाति अनुलोम सङ्कर कही जाती है और नीचवर्ण के पिता तथा उच्चवर्ण की माता से उत्पन्न पुत्र प्रतिलोम सङ्कर जाति का होता है। मागधजाति प्रतिलोम सङ्कर है।

माघ—ये महाकवि संस्कृत साहित्य में बड़े प्रसिद्ध तथा आदरणीय हैं । इनके बनाये महाकाव्य शिशुपाल-वध का संस्कृत-साहित्य-वाटिका में बहुत ही ऊँचा स्थान है । इस महाकाव्य की सुमधुर तथा मनोमुग्धकारी कविता की छटा पर संस्कृत-साहित्य-निकुञ्जवासी अनेक पिक लुब्ध हैं और उन्होंने इसका गुणगान भी किया है । किसी कवि ने कहा है—

"उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम् ।
दण्डिनः पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः॥"

कालिदास उपमा के लिये, अर्थ-गुरुता के लिये भारवि, और पदलालित्य के लिये दण्डी प्रसिद्ध हैं परन्तु माघ में ये तीनों गुण वर्तमान हैं ।

एक कवि ने श्लेषालङ्कार से माघ की प्रशंसा की है । वह श्लोक ऐसा है—

मुरारिपदचिन्ता चेत्तदा माघे रतिं कुरु ।
मुरारिपदचिन्ता चेत्तदा माघे रतिं कुरु ॥

मुरारिपदचिन्ता—भगवत्-चरण की यदि चिन्ता हो तो—मा अघे रतिं कुरु—पाप में अनुराग न करो, मुरारिपदचिन्ता—मुरारि नामक कवि के पदों, श्लोकों को समझने की यदि चिन्ता हो, तो माघ नामक ग्रन्थ में रति अनुराग करो ।

अन्यान्य संस्कृत कवियों के समान माघ के विषय का भी ज्ञान लोगों को कम ही है । महाकाव्य शिशुपाल-वध के अन्त में माघ कवि ने अपना कुछ वृत्तान्त लिखा है । वह भी अपूर्ण ही है उससे केवल इतना ही पता चलता है—श्रीवर्मल नाम के एक राजा थे, उनके प्रधान मन्त्री का नाम सुप्रभदेव था । सुप्रभदेव के पुत्र दत्तक हुए, जिनके पुत्र माघ ने शिशुपाल-वध नामक महाकाव्य बनाया । परन्तु श्रीवर्मल नामक राजा कहाँ के थे, उनकी राजधानी कहाँ थी, आदि बातों की चर्चा वहाँ नाम मात्र की भी नहीं की गयी है । बल्लाल पण्डित विरचित भोजप्रबन्ध में माघ कवि के विषय में एक कथा लिखी है । यद्यपि ऐतिहासिक दृष्टि से उस कथा का कुछ भी महत्त्व नहीं है तथापि माघ की असीम उदारता का परिचय इस कथा से मिलता है ।

माघ कवि गुजरात के रहने वाले थे । एक समय गुजरात में बड़ा अकाल पड़ा । उन्होंने गुजरात छोड़ दिया और मालवा के राजा भोजराज की राजधानी धारा नगरी में पहुँचे । माघ पण्डित ने एक पत्र देकर अपनी स्त्री को राजा के समीप भेजा । पत्र में यह श्लोक लिखा था—

"कुमुदवनमपश्रि श्रीमदम्भोजषण्डम्,
त्यजति मुदमुलूकः प्रीतिमाँश्चक्रवाकः ।
उदयमहिमरश्मिर्याति शीतांशुरस्तम्,
हतविधिलसितानां ही विचित्रो विपाकः॥"

अर्थात् कुमुदवन शोभाहीन हो गया, कमलों की शोभा बढ़ रही है । उलूक अपनी प्रसन्नता छोड़ रहे हैं, चक्रवाक प्रसन्न हो रहे हैं, सूर्य उदय हो रहा है, चन्द्रमा अस्त हो रहा है—दुर्दैव के विलासों का विपाक बड़ा ही विचित्र है । यह श्लोक प्रभात के वर्णन में है । इस श्लोक को पढ़ कर भोजराज बड़े प्रसन्न हुए । उन्होंने तीन लाख रुपये माघ पण्डित की स्त्री को दिये और स्वयं जा कर माघ पण्डित के दर्शन करने की प्रतिज्ञा भी की ।

माघ पण्डित की स्त्री इन रुपयों को ले कर जा रही थी, मार्ग में दीन याचक मिले । माघ की स्त्री ने सब धन उन ग़रीबों को दे दिया । पुनः छूछे हाथ वह पति के पास पहुँची और उसने सब हाल कह सुनाया । माघ कवि यह सुन कर बड़े प्रसन्न हुए । एक दिन माघ की फटी टूटी हालत देख कर किसी याचक कवि ने कहा था—

"आश्वास्य पर्वतकुलं तपनोष्मतप्त-
मुद्दामदावविधुराणि च काननानि ।
नानानदीनदशतानि च पूरयित्वा,
रिक्तोऽसि यज्जलद, सैव तवोत्तमा श्रीः ॥"

अर्थात् सूर्य की किरणों से तप्त पर्वतों को आश्वासन कर के दावानल से दग्ध हुए वनों को लहलहा बना कर और नदी तथा नदों को पूरा कर के जो तुम ख़ाली हो गये हो, जलद, वही तुम्हारी सर्वोत्तम शोभा है । माघ पण्डित का नाम सुन कर माघ पण्डित के यहाँ दूर दूर से याचक जुटने लगे । जब तक धन इनके पास था तब तक तो इन्होंने अर्थियों को ख़ूब धन

दिया, अन्त में माघ पण्डित छूछे हो गये और अब याचक उनके घर से निराश हो कर फिर जाने लगे । इससे दुःखी हो कर माघ पण्डित ने कहा—

" दारिद्र्यानलसन्तापः शान्तः सन्तोषवारिणा ।
याचकाशाविघातान्तर्दाहः केनोपशाम्यति ॥"

अर्थात् दारिद्र्यरूपी अग्नि का सन्ताप तो सन्तोषरूपी जल से बुझ गया, परन्तु याचकों के आशा-विघात से उत्पन्न दाह किस प्रकार शान्त होगी ? इसका दुःख माघ पण्डित को इतना हुआ कि इसी दुःख से उनका प्राणान्त हो गया । माघ के प्राणान्त होने पर उनकी स्त्री ने यह श्लोक कहा था—

" सेवन्ते स्म गृहं यस्य दासवद्भूभुजः पुरा ।
हाय भार्यासहायोऽयं मृतो वै माघपण्डितः ॥"

राजा भोज माघ कवि की मृत्यु सुन कर बड़े दुःखी हुए और वे स्वयं वहाँ आये, और उनका सब संस्कार कराया । माघ की स्त्री भी पति की अनुगामिनी हुई ।

प्रबन्ध-चिन्तामणि में भी इसी बात से मिलती जुलती ही बात लिखी है ।

इस कथा के आधार पर महाकवि माघ का समय राजा भोज के समकाल ही सिद्ध होता है ।

परन्तु भोजप्रबन्ध अथवा प्रबन्ध-चिन्तामणि के आधार पर किसी का समय निर्णय करना ऐतिहासिक दृष्टि से कभी उचित नहीं मालूम पड़ता । क्योंकि उसमें कालिदास, भारवि और भास सभी को एक ही समय का लिखा है ।

ध्वन्यालोककर्त्ता काश्मीरक आनन्दवर्द्धनाचार्य ने माघ काव्य का एक श्लोक अपने ध्वन्यालोक नामक ग्रन्थ में उद्धृत किया है । आनन्दवर्द्धनाचार्य काश्मीर के महाराज अवन्ति वर्मा के समय में थे । अवन्ति वर्मा का समय नवम शताब्दी का अन्तिम भाग है यह बात राजतरङ्गिणी से सिद्ध है । माघ का एक श्लोक है—

" अनुत्सूत्रपदन्यासा सद्वृत्तिः सन्निबन्धना ।
शब्दविद्येव नो भाति राजनीतिरपस्पशा ॥"

इस श्लोक में जिस न्यास ग्रन्थ का उल्लेख किया गया है उसका कर्त्ता जिनेन्द्रबुद्धिपादाचार्य था । न्यास नामक ग्रन्थ काशिका वृत्ति की टीका है । चीन देश के परिव्राजक ईत्सिंग ने लिखा है कि जयादित्य की मृत्यु ६६१-६६० के बीच हुई थी, यह जयादित्य बौद्ध था और काशिका वृत्ति का कर्त्ता था । परन्तु न्यास ग्रन्थ के कर्त्ता का उसने कुछ भी उल्लेख नहीं किया है । इससे यह बात प्रमाणित होती है कि उसके समय में जिनेन्द्रबुद्धि नामक पण्डित विद्यमान नहीं था । विद्वानों का अनुमान है अष्टम शताब्दी के आरम्भ में न्यास नाम का ग्रन्थ रचा गया होगा । अष्टम शताब्दी के रचित ग्रन्थ का उल्लेख माघ ने अपने ग्रन्थ में किया है और नवम शताब्दी के अन्त में उत्पन्न आनन्दवर्द्धन ने अपने ग्रन्थ में माघ से एक श्लोक उद्धृत किया है । इससे यह बात प्रमाणित होती है कि अष्टम शताब्दी का अन्त अथवा नवम शताब्दी का मध्य माघ कवि का समय होगा ।

माण्डवी=कुशध्वज जनक की कन्या और भरत की स्त्री । इनके गर्भ से तक्ष और पुष्कर नामक भरत के दो पुत्र उत्पन्न हुए थे ।

मातङ्गी=नव महाविद्या । इनके चार हाथ और तीन नेत्र हैं । सिर में अर्धचन्द्र वर्तमान है । इनका वस्त्र रक्तवर्ण का है । ये खड्ग चर्म पाश और अङ्कुश ये ही अस्त्र अपने हाथों में धारण करती हैं ।

मातली=देवराज इन्द्र का सारथि । इसकी कन्या गुणकेशी सुमुख नामक नाग को ब्याही गयी थी ।

मातादीन शुक्ल=ये सरयूपारी ब्राह्मण थे । अजगरा ज़िला प्रतापगढ़ के रहने वाले थे । राजा अजीत सिंह सोमवंशी प्रतापगढ़ वाले के यहाँ थे । इन्होंने छोटे छोटे कई ग्रन्थ बनाये हैं । शिवसिंहसरोजकार के समय में ये जीवित थे ।

मातादीन मिश्र=ये सराय मीरा के रहने वाले थे । इन्होंने शाहनामा का भाषा में अनुवाद किया है । कविरत्नाकर नामक एक संग्रह ग्रन्थ भी इन्होंने बनाया है । शिवसिंह जी लिखते हैं कि इस ग्रन्थ (सरोज) के बनाने में मातादीन मिश्र ने हमको बड़ी सहायता दी है ।

(शिवसिंहसरोज)

मातृका—एक देवीगण। इस देवीगण में योगेश्वरी माहेश्वरी आदि आठ देवियाँ हैं । काम-योगेश्वरी, क्रोध-माहेश्वरी, लोभ-वैष्णवी, मद-ब्रह्माणी, मोह-कौमारी, मात्सर्य-ऐन्द्राणी, पैशुन्य दण्ड-धारिणी और असूया-वाराही आदि नाम से इनकी प्रसिद्धि है।

मातृगुप्त—संस्कृत के एक कवि । इन्होंने उज्जयिनी के राजा हर्षदेव की कृपा से काश्मीर का राज्य पाया था । काश्मीर के इतिहास राजतरङ्गिणी में इनकी कथा इस प्रकार लिखी है ।

राजा हर्षदेव की सभा में एक दिन मातृगुप्त नामक कवि आये । मातृगुप्त अनेक राजाओं की सभाओं में गये थे, और सब से निराश हो कर हर्षदेव की प्रशंसा सुन कर इनकी सभा में आये थे । राजा को देखने तथा उनके सद्व्यवहार से मातृगुप्त बड़े प्रसन्न हुए और उनकी सभा में रहने का निश्चय किया ।

राजा भी इनकी कविता सुन कर बड़े प्रसन्न हुए। राजा ने मातृगुप्त को देख कर जान लिया कि ये महात्मा केवल गुणवान् ही नहीं हैं । इनकी गम्भीर प्रकृति देखने से विदित होता है कि ये सम्मानार्ह कोई महात्मा हैं, मातृगुप्त इनके यहाँ रहना चाहते हैं । यह बात जान कर राजा ने उनकी परीक्षा लेने की इच्छा से उनका विशेष कुछ सम्मान नहीं किया । मातृगुप्त रहने लगे। जिस प्रकार स्वामी की सेवा करनी चाहिये उसी प्रकार सर्वतोभाव से मातृगुप्त राजा की सेवा में रहने लगे । इस प्रकार मातृगुप्त को तीन वर्ष बीत गये ।

एक दिन राजा बाहर घूमने निकले थे । उन्होंने मातृगुप्त की दुरवस्था देखी । यह देख कर राजा को बड़ा ही कष्ट हुआ। हाय ! मैंने इस गुणी पर धन के उन्माद से बड़ा ही अत्याचार किया। मैं अभी तक इसके लिये कुछ भी प्रबन्ध नहीं कर सका । मैं क्या इसे अमृत दे दूँगा, या चिन्तामणि, जो इसकी इतनी कड़ाई से परीक्षा ले रहा हूँ। धिक्कार है मुझको, यह विचार कर राजा ने उन्हें सम्मानित करना चाहा । परन्तु किस वस्तु से उन्हें सम्मानित करें, यह बहुत विचारने पर भी राजा निश्चित नहीं कर सके ।

एक दिन शीतकाल की रात में एक पहर रात बाक़ी थी, उसी समय सहसा राजा की निद्रा उचट गयी । घर के दीपकों का प्रकाश क्षीण हो रहा था । राजा ने भृत्यों को बाहर से बुलाया परन्तु सभी भृत्य सोये हुए थे। उस समय बाहर से उत्तर आया—महाराज, मैं मातृगुप्त हूँ। राजा ने उनको अन्दर बुलाया। मातृगुप्त अन्दर गये और राजा की आज्ञा से उन्होंने दीपकों को प्रज्वलित कर दिया। मातृगुप्त वहाँ का काम कर के बाहर निकले आ रहे थे, उसी समय राजा ने उनसे ठहरने को कहा । मातृगुप्त ठहर गये। राजा ने पूछा, कितनी रात है। मातृगुप्त ने उत्तर दिया, एक पहर। राजा ने पूछा, क्यों रात को तुम्हें निद्रा नहीं आती, मातृगुप्त ने इस प्रश्न का उत्तर इस प्रकार दिया—मैं इस कठिन शीतकाल में अग्नि सेवन के द्वारा समय बिता रहा हूँ, मेरा शरीर शिथिल है और थरथरा रहा है, भूख के मारे बोली नहीं निकलती। मैं चिन्ता के समुद्र में डूब रहा हूँ। इसी कारण निद्रा अपमानित दयिता के समान मुझको छोड़ कर कहीं चली गयी और सत्पात्र-प्रदत्त राज्य के समान रात्रि का भी अन्त नहीं होता । यह सुन कर राजा ने उन्हें धन्यवाद दिया और विदा किया । राजा सोचने लगे कि इनको क्या दूँ । उसी समय उनको स्मरण हुआ कि काश्मीर राज्य का सिंहासन इस समय सूना पड़ा है । यद्यपि काश्मीर राज्य हमसे अनेक हमारे आश्रित राजा माँग रहे हैं, तथापि वह राज्य इन्हींको देना उत्तम है। यह सोच कर राजा ने एक दूत काश्मीर के मन्त्रियों के पास भेजा और उसके द्वारा यह कहलाया कि मातृगुप्त नाम का एक मनुष्य हमारा शासनपत्र ले कर आवेगा, तुम लोग उसे ही अपना राजा मानना । दूत को भेज कर राजा ने उसी रात को मातृगुप्त के नाम काश्मीर के लिये शासनपत्र भी लिखवाया। प्रातःकाल होने पर राजा ने मातृगुप्त को शासन पत्र दे कर काश्मीर जाने की आज्ञा दी । वे

बेचारे करते ही क्या, उसी फटी टूटी हालत में कारमीर जाने के लिये तैयार हुए।

मातृगुप्त यथासमय कारमीर पहुँचे, मन्त्रियों ने इनका बड़ा आदर सत्कार किया तदनन्तर इन्हें राजसिंहासन पर बैठाया। मातृगुप्त ने ४ वर्ष ६ महीने १ दिन तक काश्मीर का राज्य किया। इसी समय मालवाधिपति का स्वर्गवास हुआ। काश्मीर राज्य के प्रकृत अधिकारी प्रवरसेन ने इनको राज्य न छोड़ने के लिये बहुत कहा, परन्तु मातृगुप्त ने कहा कि जिसने हमको राज्य दिया था अब उसके न रहने पर राज्य-भोग करना हमारे लिये नितान्त अनुचित है। मातृगुप्त काशी में जा कर संन्यासी हो गये।

(राजतरङ्गिणी)

माद्री=मद्रदेशाधिपति की कन्या और राजा पाण्डु की स्त्री। इन्हींके गर्भ से और अश्विनीकुमारों के औरस से नकुल-सहदेव का जन्म हुआ था। पाण्डु की मृत्यु होने पर माद्री ने अपने पति का साथ दिया था अर्थात् वह सती हो गयी थी।

माधवदास ब्राह्मण=सं० १५८० में ये उत्पन्न हुए थे। इनके बनाये पद रागसागरोद्भव में पाये जाते हैं। ये जगन्नाथपुरी में अधिक रहा करते थे। कहते हैं ये एक बार व्रज में भी आये थे।

माधवराव=इनका पूरा नाम था राजा सर माधवराव के. सी. एस्. आई.। इनका जन्म १८२४ ई० में कुम्भकोणम् नामक नगर में एक उच्चवंशी महाराष्ट्र कुल में हुआ था। इनके पिता ट्रावङ्कोर राज्य के दीवान थे। माधवराव बाल्यकाल में मद्रास के प्रेसिडेंसी कालेज में पढ़े थे, पढ़ने के समय ये एक परिश्रमी विद्यार्थी थे। गणित और सायन्स में माधवराव बहुत चढ़े बढ़े थे। १८४६ ई० में विश्वविद्यालय से पदवी पा कर माधवराव ने कुछ दिनों तक शिक्षा-विभाग ही में काम किया। तदनन्तर वे मद्रास के एकाउंटेंट-जनरल के आफ़िस में काम करने लगे। वहाँ ही से ट्रावङ्कोर के राजकुमार के शिक्षक-पद पर नियुक्त हो कर वे ट्रावङ्कोर गये। इस पद पर उन्होंने चार वर्ष तक काम किया, तदनन्तर उसी राज्य के एक उच्च पद पर वे नियुक्त हुए। इस पद से वे दीवान के पेश्कार हुए। इसी समय ट्रावङ्कोर राज्य के दक्षिण विभाग के शासन का भार उनको सौंपा गया। उन्होंने बड़ी योग्यता से इस काम को सँभाला। इस समय ट्रावङ्कोर राज्य की अवस्था अत्यन्त शोच्य हो गयी थी। महाराज स्वयं राज्य का कुछ भी काम नहीं करते थे। प्रायः सभी कर्मचारी घूस लेने लग गये थे। नौकरों को समय पर वेतन नहीं दिया जा सकता था, गवर्नमेंट का नियत कर भी बाक़ी पड़ने लगा। राज्य का ख़ज़ाना ख़ाली हो गया था। इसी कारण बड़े लाट लार्ड डैलहौसी ट्रावङ्कोर राज्य को गवर्नमेंट के राज्य में मिला लेना चाहते थे। माधवराव ने बड़े लाट से मिल कर पूर्वोक्त विचार त्यागने के लिये उनसे अनुरोध किया। बड़े लाट प्रसन्न हुए और उन्हें ७ वर्ष की अवधि उन्होंने दी। निश्चित हुआ कि ७ वर्ष के मध्य में यदि माधवराव ट्रावङ्कोर राज्य की अवस्था नहीं सुधारेंगे तो इस राज्य पर गवर्नमेंट का अधिकार हो जायगा। माधवराव अब ट्रावङ्कोर के सर्वप्रधान मन्त्री हुए। वे अनेक प्रकार से राज्य की आमदनी बढ़ाने लगे। सन् १८६५ ई० में उन्होंने भारत गवर्नमेंट से ट्रावङ्कोर और कोचीन के लिये वाणिज्य विषयक सन्धि स्थापित की। इस काम के लिये गवर्नमेंट ने उन्हें के. सी. एस्. आई. की उपाधि दी। इसी वर्ष वे मद्रास विश्वविद्यालय के फ़ेलो भी नियत हुए। इस समय माधवराव के छात्र राजकुमार ट्रावङ्कोर के महाराज हुए। नये महाराज को सिखा पढ़ा कर बहुतों ने माधवराव के विरुद्ध भड़काया। इसका फल यह हुआ कि दोनों में मनोमालिन्य बढ़ गया और १८७२ ई० में माधवराव को काम छोड़ना पड़ा। ट्रावङ्कोर के राजा ने माधवराव को मासिक हज़ार रुपये की पेंशन दी। १६ वर्ष तक माधवराव को यह वृत्ति मिलती रही। अब वे मद्रास ही में रहने लगे, उन्होंने सोचा था कि अब

जीवन का शेष भाग शान्ति से बिताऊँगा। बड़े लाट ने उन्हें अपनी सभा का सभासद् बनाना चाहा था, परन्तु माधवराव ने इस पद को ग्रहण करना अस्वीकृत किया। तदनन्तर गवर्नमेंट के अनुरोध से माधवराव इन्दौर के तुकोजी हुल्कर के यहाँ दीवानी के पद पर नियत हुए। इस पद पर उन्होंने दो वर्ष तक काम किया था। इसी समय बरौदा के गायकवाड़ मल्हारराव पदच्युत किये गये थे। भारत गवर्नमेंट ने हुल्कर से माधवराव को माँग कर बरौदा के नये महाराज के शिक्षक तथा उनके प्रतिनिधि पद पर नियत किया। इस समय बरौदा राज्य की दशा बहुत बिगड़ गयी थी। कर्मचारियों की प्रतारणा धूर्तता आदि से बरौदा राज्य श्मशान हो रहा था। सर्दार ज़मींदार आदि प्रजाओं पर अत्याचार तथा लूट पाट आदि के द्वारा धन सञ्चय कर रहे थे। माधवराव ने इन अत्याचारों को रोक दिया तथा मालगुज़ारी वसूल करने की उन्होंने अच्छी रीति प्रचलित की। ज़मींदारगण दर्बार को कुछ कर देते थे और जागीर का स्वयं उपभोग करते थे। माधवराव ने उनसे १७। १८ वर्ष का बाक़ी का कर वसूल किया। जिन सर्दारों ने सिर उठाया उन्हें माधवराव ने निकाल दिया। इन्हीं उपायों से शीघ्र ही राज्य में शान्ति स्थापित हो गयी। उन्होंने राज्य के प्रत्येक विभाग का संस्कार किया।

सन् १८७७ ई० में नाबालिग़ गायकवाड़ को ले कर माधवराव दिल्ली दर्बार में गये थे। इसी दर्बार में माधवराव को राजा की उपाधि मिली थी। सन् १८८२ ई० में गायकवाड़ को राज्य भार मिला। तदनन्तर माधवराव और गायकवाड़ में मतभेद होने लगा, इसी कारण माधवराव ने यहाँ का काम करना छोड़ दिया। काम छोड़ने के समय महाराज ने उन्हें तीन लाख रुपये दिये थे। माधवराव अपने परिवार के साथ मद्रास में रहने लगे। सन् १८८७ ई० में मद्रास में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ था, उसकी स्वागत-कारिणी सभा के सभापति माधवराव बनाये गये थे। सन् १८९० ई० में इनका परलोकवास हुआ।

माधव विद्यारण्य=वेद के विख्यात भाष्यकार सायणाचार्य के बड़े भाई। ख्रीष्टीय १४वीं सदी में दक्षिण की तुङ्गभद्रा नदी के तीरस्थित पम्पा नगरी में इनका जन्म हुआ था। इनके पिता का नाम मायण और माता का नाम श्रीमती था। विजयानगरम् के राजा बुक्कराय के ये कुलगुरु तथा प्रधान मन्त्री थे। भारती तीर्थ के पास इन्होंने संन्यास की दीक्षा ली थी। सन् १३३१ ई० में ये शृङ्गेरी मठ के शङ्कराचार्य के पद पर अभिषिक्त हुए। ९० वर्ष की अवस्था में इनका परलोकवास हुआ। इन्होंने पराशर-संहिता का एक भाष्य भी बनाया है जो पराशरमाधव के नाम से प्रसिद्ध है। इस भाष्य में माधवाचार्य ने अपना परिचय इस प्रकार दिया है:—

"श्रीमती जननी यस्य सुकीर्तिर्मायणः पिता ।
सायणो भोगनाथश्च मनोबुद्धी सहोदरौ ॥"

माधव विद्यारण्य अथवा माधवाचार्य विजयानगरम् के राजा बुक्कराय के मन्त्री थे। सायण नाम का कोई था ही नहीं। कहा जाता है इन्हींका नामान्तर सायण था। इसका कारण यही बताया जाता है कि माधवाचार्य के बहुत पहले सायण नाम के कोई वेदभाष्यकर्ता थे, उन्हींके बनाये वेदभाष्य के आधार पर माधव विद्यारण्य ने वेदभाष्य बना कर सायण के नाम से उसे प्रसिद्ध किया। कृष्ण यजुर्वेद के ब्राह्मण के टीकाकार का नाम सायण माधव लिखा है, और शुक्ल यजुर्वेद के ब्राह्मण के टीकाकार का नाम सायणाचार्य लिखा है। इससे बहुतों का ऐसा विश्वास है कि सायण और माधव दोनों भिन्न भिन्न दो व्यक्ति थे। सम्भव है माधवाचार्य के पाण्डित्य पर रीझ कर सायण से उनके पाण्डित्य की तुलना की गयी हो और सायण माधव नाम से उनकी प्रख्याति हुई हो तदनन्तर उनका वही नाम प्रसिद्ध हो गया हो।

माधवाचार्य के विषय में ऊपर लिखे ये ही दो मत प्रचलित हैं। इन्होंने शङ्करदिग्विजय नामक एक और भी ग्रन्थ लिखा है।

माधवसिंह—(१) ये बूँदीराज राव रतन के पुत्र थे। बादशाह जहाँगीर का पुत्र खुर्रम कुछ राजपूत राजाओं की सहायता पा कर जिस समय अपने पिता को राज्य से अलग कर के स्वयं बादशाह बनना चाहता था और बुरहानपुर में जा कर उसने अत्याचार करना प्रारम्भ किया था उस समय बूँदीराज राव रतन अपने माधवसिंह और हरिसिंह नाम के दोनों पुत्रों को साथ ले कर बुरहानपुर गये, और युद्ध में उसको हराया। इस युद्ध में राव रतन और माधवसिंह ने बड़ी वीरता की थी, इसके लिये माधवसिंह को बादशाह ने कोटे राज्य का शासन-भार वंशपरम्परा के लिये दिया।

माधवसिंह का जन्म सन् १५६५ ई० में हुआ था। चौदह वर्ष की अवस्था में बुरहानपुर की लड़ाई में इन्होंने जो असीम साहस और वीरता दिखायी उससे प्रसन्न हो कर बादशाह जहाँगीर ने उन्हें तीन सौ साठ गाँवों का राज्य कोटाराज्य दिया। माधवसिंह ने अपने पराक्रम से कोटे राज्य की सीमा बढ़ा ली। माधवसिंह के मरने के समय तक मालवा और हाड़ौती की सीमा तक कोटे राज्य का विस्तार हो गया था। माधवसिंह सं० १६८० ई० में पाँच योग्य पुत्रों को छोड़ कर मर गये।

(टाड्स राजस्थान)

(२) जयपुर के राजा। जयपुर नरेश महाराज रामसिंह के कोई पुत्र नहीं था, और उनकी मृत्यु का समय आ गया। उस समय गवर्नमेंट से आज्ञा पा कर राजा रामसिंह ने अपने कुटुम्बी एक युवक ठाकुर क़ायमसिंह को दत्तक लिया। प्रचलित रीति के अनुसार क़ायमसिंह का नाम माधवसिंह रखा गया, और वे १८८० ई० के सितम्बर महीने में आमेर की राजगद्दी पर बैठे। जिस समय ये राजगद्दी पर विराजे उस समय इनकी अवस्था १६ वर्ष की थी। इस समय के जयपुर के रेज़िडेण्ट ने लिखा है कि जिस समय महाराज गद्दी पर विराजे उस समय उनको उपयुक्त शिक्षा नहीं मिली थी इस कारण दो वर्ष तक जयपुर राज्य रेज़िडेण्ट और एक मन्त्रिसमाज के द्वारा शासित हुआ। इसी अवसर में महाराज माधवसिंह ने आमेर राज्य के शासन की उपयुक्त शिक्षा पा ली।

महाराज माधवसिंह ने कृष्णगढ़ और काठियावाड़ के अन्तर्गत ध्रांगद्रा की दो राजकुमारियों से व्याह किया था। आप १८८१ ई० में गयाजी और कलकत्ते गये। कलकत्ते से लौट कर इसी वर्ष के अगस्त महीने में महाराज ने जयपुर में इकानामिक और इण्डस्ट्रियल म्यूज़ियम स्थापित किये। इस म्यूज़ियम की प्रतिष्ठा से विशेष उपकार हुआ। सन् १८८२ ई० में महाराज माधवसिंह को राज्य-शासन का पूर्ण अधिकार मिल गया। यद्यपि महाराज राज्य के काम चलाने में अब सुदक्ष हो गये थे, तथापि राजकीय बड़े बड़े काम पोलिटिकल एजेंट की सम्मति से महाराज को करने पड़ते थे। आप ही की शुभ इच्छा से जयपुर में एक शिल्प-प्रदर्शिनी स्थापित हुई। इस प्रदर्शिनी को स्थापित करने में महाराज ने कई लाख रुपये खर्च किये थे। (टाड्स राजस्थान)

(३) जयपुर के महाराज जयसिंह के उदयपुर की राजकन्या के गर्भ से उत्पन्न पुत्र। जयसिंह का एक बड़ा पुत्र था जिसका नाम ईश्वरीसिंह था। जयसिंह के मरने के बाद ईश्वरीसिंह पिता की गद्दी पर बैठा। माधवसिंह को आमेर राज्य के अधीन टोंक आदि कई परगने जयपुर से और उदयपुर से रामपुरा तथा भानपुरा नाम के दो प्रदेश मिले। माधवसिंह की जागीर से ८४ लाख की आमदनी थी।

ईश्वरीसिंह ने पाँच ही वर्ष में अपनी अयोग्यता सिद्ध कर दी। सभी सामन्त उनसे अप्रसन्न हो गये और उन सब लोगों ने मिल कर माधवसिंह तथा उदयपुर के राणा के पास इस आशय का प्रस्ताव किया कि ईश्वरीसिंह राज्यच्युत किये जायँ, तथा माधवसिंह जयपुर के राज्य पर बैठाये जाएँ। महाराणा जगत्सिंह ने जयपुर के महाराज से कहला भेजा कि आप से वहाँ के सामन्त अप्रसन्न हैं, गृह-कलह बढ़ने की सम्भावना है, अतः आप राज-सिंहासन माधवसिंह को दे दीजिये। ईश्वरीसिंह ने

इसे बड़ी भारी आपत्ति समझी, उन्होंने इस आपत्ति से रक्षा पाने के लिये आपाजी सेन्धिया से सन्धि कर ली। उदयपुर के राणा ने जब देखा कि ईश्वरीसिंह यों मानने वाले नहीं हैं तब उन्होंने भी युद्ध की घोषणा कर दी। कोटा और बूँदी के अधीश्वरों ने भी माधवसिंह का पक्ष लिया। राजमहल नामक स्थान पर दोनों ओर से घोर युद्ध हुआ। राणा की सेना हार गयी। विजयी महाराष्ट्र सेना की विजय से ईश्वरीसिंह ने अपनी रक्षा कर ली। माधवसिंह के भाग्याकाश में निराशारूपी मेघों की घटा छा गयी।

महाराणा ने उसी उपाय का अवलम्बन करना उचित समझा, जिस उपाय से ईश्वरीसिंह ने विजय पाया था। महाराणा ने ४६ लाख हुलकर को तब देना निश्चित किया जब वह ईश्वरीसिंह को राज्य से हटा कर माधवसिंह को राज्य दिला दें। लोभी हुलकर सम्मत हो गया, परन्तु ईश्वरीसिंह को जब इस बात की खबर हुई उसी समय उसने विष खा कर प्राण त्याग दिये। माधवसिंह का मार्ग निष्कण्टक हुआ। राज्य पर बैठ कर माधवसिंह ने हुलकर को देय भाग दे दिया।

माधवसिंह क्षत्रिय वीर थे। साहस वीरता नीतिज्ञता वचाभिलाप आदि सभी उत्तम गुण उनमें वर्तमान थे। माधवसिंह के शासन-समय में आमेर राज्य की दिनों दिन श्री-वृद्धि होने लगी। माधवसिंह इस बात को समझते थे कि महाराष्ट्र जाति का विना दमन किये अथवा इस जाति को विना रजवाड़े से निकाले कल्याण नहीं। वे अपने उद्देश्य की पूर्ति में अवश्य ही सफल होते, यदि जाटों से उनकी भिड़न्त न हो जाती।

माधवसिंह ने १७ वर्ष तक राज्य किया तदनन्तर ये उदरामय रोग से पीड़ित हुए और उसी रोग से मरे। (टाड्स राजस्थान)

माधवानन्द भारती=ये संन्यासी थे और काशी में रहते थे। ये सं० १६०२ में उत्पन्न हुए थे। संस्कृत शङ्करदिग्विजय को इन्होंने भाषा में बनाया था। (शिवसिंहसरोज)

मान कवि=(१) ये राजपूताने के रहने वाले कवीश्वर थे। सं० १७५६ में ये उत्पन्न हुए थे। व्रजभाषा के ये बड़े निपुण कवि थे। राणा राजसिंह मेवाड़वाले की आज्ञा से इन्होंने उदयपुर का इतिहास राजदेव-विलास नामक ग्रन्थ बनाया था। इस ग्रन्थ में राणा राजसिंह और औरङ्गज़ेब की अनेक लड़ाइयों का वर्णन है।

(२) ये कवि चरखारी के रहने वाले वन्दीजन थे। ये विक्रमशाह बुन्देला राजा चरखारी के दरबार में थे।

मानराय=ये वन्दीजन असनी के रहने वाले थे। सं० १५८० में ये उत्पन्न हुए थे। ये अकबर के दरबारी थे।

मानदास कवि=ये कवि व्रजवासी थे। सं० १६८० में ये उत्पन्न हुए थे। इनके पद रागसागरोद्भव नामक ग्रन्थ में पाये जाते हैं। वाल्मीकि रामायण और हनुमान नाटक आदि ग्रन्थों से सार ले कर इन्होंने भाषा में रामचरित बनाया है। इनका बनाया रामचरित बड़ा ही ललित है। इनकी रचनाशैली विलक्षण है। ये एक महान् कवि माने जाते थे।

मान कवि=ये कवि बैसवारे के रहने वाले ब्राह्मण थे। ये सं० १८१८ में उत्पन्न हुए। इन्होंने कृष्णकल्लोल नामक एक ग्रन्थ बनाया है और कृष्णखण्ड का अनेक छन्दों में भाषा किया। इस ग्रन्थ में इन्होंने कई राजाओं की वंशावली भी दी है। (शिवसिंहसरोज)

मानसिंह=जयपुर के महाराज। ये जयपुर के राजा भगवान्दास के भाई जगत्सिंह के पुत्र थे। भगवान्दास स्वयं निःसन्तान थे अतएव उन्होंने मानसिंह को गोद लिया। भगवान्दास ने अपनी कन्या अकबर को दे दी थी। मानसिंह ने भी मुग़ल बादशाह से सम्मान पाने की इच्छा से अपनी बहिन शाहज़ादे सलीम को व्याही थी। इसी कारण मानसिंह अकबर के बड़े प्रिय थे। इन्होंने सम्राट् के सहकारी बन कर अनेक कठिन काम किये थे। इन्हींकी तलवार ने अनेक देशों पर बादशाह का अधिकार करवाया था। उड़ीसा तथा आसाम को जीत कर उन देशों पर बादशाह का अधिकार

करा दिया था। इन्हींके पराक्रम से काबुल पर भी बादशाह का अधिकार हुआ था।

मानसिंह की दिनों दिन बढ़ती हुई। प्रभुता देख कर बादशाह के हृदय में एक प्रकार की चिन्ता ने स्थान पाया। इससे भयभीत हो कर बादशाह ने मानसिंह को विष प्रयोग द्वारा मार डालना चाहा परन्तु उसका फल उलटा हुआ। उस विष से स्वयं अकबर ही की मृत्यु हुई। राजा मानसिंह ने अपने भानजे खुसरो को राजगद्दी दिलाने के लिये एक षड्यन्त्र रचा था। इस षड्यन्त्र को दबाने की इच्छा से बादशाह ने मानसिंह को बङ्गाल का शासन करने के लिये भेज दिया, और खुसरो यावज्जीवन के लिये क़ैद किया गया। मानसिंह बड़े ही बुद्धिमान् थे। उन्होंने प्रकाश रूप से इसका कुछ भी उत्तर नहीं दिया, परन्तु छिपे छिपे वे अपने भानजे का पक्ष पुष्ट करते रहे। राजा मानसिंह बीस हज़ार राजपूत सेना के अधिनायक थे। उनकी सेना अपनी वीरता के लिये प्रसिद्ध थी, अतएव उनको दमन करना बादशाह की शक्ति से भी बाहर था। कहते हैं बादशाह ने दस करोड़ रुपये दे कर मानसिंह को अपने वश में किया था। मुसलमान इतिहासवेत्ता कहते हैं कि सन् १०२४ हिजरी अर्थात् सन् १६१५ ई० में बङ्गाल में मानसिंह की मृत्यु हुई थी। मानसिंह के समय में जयपुर राज्य की बड़ी प्रसिद्धि हुई। इन्होंने स्वदेशी-भक्त स्वधर्म-संन्यासी स्वाधीनता-उपासक वीर-केसरी महाराणा प्रताप को नीचा दिखाने के अनेक प्रयत्न किये थे।

(टाड्स राजस्थान)

मानिक दास=ये मथुरा के निवासी और ब्रज के वासी थे। इन्होंने मानिकबोध नामक एक ग्रन्थ लिखा है, जिसमें श्रीकृष्ण की लीला वर्णित की गयी है।

मान्धाता=सूर्यवंशी राजा युवनाश्व के पुत्र। पहले राजा युवनाश्व के कोई पुत्र नहीं था, इससे दुःखी हो कर वे राजधानी छोड़ ऋषियों के आश्रम में गये और सन्तान-प्राप्ति के निमित्त एक यज्ञ करने का अनुरोध उन्होंने मुनियों से किया। ऋषियों ने राजा के अनुरोध से एक यज्ञ किया। आधी रात को यज्ञ समाप्त हुआ, मुनि मध्यवेदी पर एक कलशी में जल रख कर सो गये। रात को युवनाश्व को प्यास लगी और वे उस कलशी का जल पी गये। सबेरे महर्षियों ने जाना कि जो जल महारानी के लिये रखा गया था उसे स्वयं महाराज ने पी लिया है। मन्त्रपूत जल के प्रभाव से राजा के गर्भ रहा। समय पर राजा का पेट फटा और उससे एक पुत्र उत्पन्न हुआ। इससे राजा की कोई हानि नहीं हुई। अब कठिनाई यह हुई कि लड़का दूध किसका पीवे। उसी समय देवराज इन्द्र वहाँ आये और उन्होंने कहा "मां धास्यति" अर्थात् मुझको पान करेगा। तब से उस लड़के का नाम मान्धाता हुआ। इन्द्र ने इस बालक को पीने के लिये एक अमृतस्रावी अँगुली दी। उसको पी कर यह बालक एक ही दिन में बड़ा हो गया। मान्धाता चक्रवर्ती राजा थे।

शशिबिन्दु की कन्या बिन्दुमती को राजा मान्धाता ने ब्याहा था। इसके गर्भ से मान्धाता को पुरुकुत्स, अम्बरीष और मुचकुन्द ये तीन पुत्र और ५० कन्याएँ उत्पन्न हुई थीं।

(विष्णुपुराण)

मायापुर=हरिद्वार का नामान्तर (देखो हरिद्वार)

मायावती=शम्बरासुर की कन्या। कामदेव की स्त्री रति दूसरे जन्म में मायावती हुई थी।

मायावी=असुर विशेष। दुन्दुभि नामक असुर का पुत्र। यह असुर कपिराज बालि के हाथ से मारा गया।

मारीच=ताड़का नाम की राक्षसी का पुत्र। यह लङ्काधिपति रावण का एक सेनापति था। यही रावण की आज्ञा से मृग बन कर पञ्चवटी में गया था। इसीकी सहायता से रावण सीताहरण कर सका।

मार्कण्डेय मुनि=मृकण्डु मुनि के पुत्र। इनकी स्त्री का नाम धूमावती था। धूमावती के गर्भ से वेदशिरा नाम का इन्हें एक पुत्र हुआ था।

मार्कण्डेय विष्णु की आराधना कर के चिरजीवी हुए थे। नृसिंहपुराण में मार्कण्डेय के दीर्घजीवन-प्राप्ति की कथा इस प्रकार लिखी है—

मार्कण्डेय का जन्म होने पर मृकण्डु मुनि ने जाना कि यह बालक बारह वर्ष का हो कर मर जायगा। इससे मार्कण्डेय के पिता माता सदा दुःखित ही रहा करते थे। एक दिन मार्कण्डेय ने अपने पिता माताओं के दुःख का कारण पूछा। मृकण्डु ने सभी बातें साफ़ साफ़ कह दीं। मार्कण्डेय ने पिता को धीरज बँधाया और वे बोले मैं यम को जीत कर दीर्घजीवी होऊँगा। यह कह कर मार्कण्डेय वन में चले गये और वहाँ विष्णु की आराधना कर के उन्होंने दीर्घ जीवन प्राप्त किया।

पद्मपुराण में मार्कण्डेय के दीर्घ जीवन प्राप्त करने की कथा दूसरे प्रकार से लिखी है। मार्कण्डेय के उपनयन संस्कार होने के अनन्तर एक दिन सप्तर्षि उनके पिता के घर आये हुए थे। मार्कण्डेय ने सप्तर्षियों को प्रणाम किया, सप्तर्षियों ने " दीर्घजीवी होओ " कह कर आशीर्वाद दिया। आशीर्वाद देने के अनन्तर ही सप्तर्षियों को मालूम हुआ कि मार्कण्डेय अल्पायु है। इसलिये वे मार्कण्डेय को साथ ले कर ब्रह्मा के निकट गये। ब्रह्मा के वर से दीर्घ जीवन प्राप्त कर के मार्कण्डेय घर लौट आये।

मालदेव=मारवाड़ का एक राजा। गांगा के मरने पर संवत् १५८८ सन् १५३२ ई० में मालदेव मारवाड़ के सिंहासन पर बैठे। मालदेव ने अपने पराक्रम और साहस से मारवाड़ राज्य की सीमा को बहुत बढ़ाया। मारवाड़ और दिल्ली की सीमा पर कई एक क़िले बने थे। उन पर दिल्ली के राजाओं का अधिकार था, मालदेव ने अवसर पा कर उन क़िलों पर अपना अधिकार जमा लिया। मालदेव निष्कण्टक हो कर दिन प्रति दिन अपना गौरव बढ़ाने लगे। इतिहास-लेखक फ़रिश्ता ने लिखा है कि उस समय हिन्दुस्तान में मालदेव सब से बड़ा राजा था।

मालदेव ने राज्य प्राप्त कर के अपने पूर्वपुरुषों की भूमि का, जो मुसल्मानों के अधिकार में चली गयी थी, उद्धार किया। नागौर और अजमेर पर भी इन्होंने अपना अधिकार कर लिया। राठौरों के अधीनस्थ जो राजा स्वाधीन बन गये थे, राजा मालदेव ने उन राजाओं को पुनः अपने अधीनतारूपी सूत्र में बाँध लिया। इनको अपने अधीन कर के राठौरराज मालदेव अपनी सेना ले कर उत्तर की ओर बढ़ा, भाटियों के साथ उसका युद्ध बहुत दिनों तक होता रहा। विक्रमपुर पर उसने अपना अधिकार कर लिया। आमेर राजधानी से दस कोस की दूरी पर वर्तमान चाटसू नगर को उसने जीत लिया तथा उसको रक्षित रखने की इच्छा से उसके चारों ओर शहरपनाह बनवा दिया। साँतलमेर को जीत कर उसने नये जीते हुए पोकर्ण को दृढ़ तथा सुसज्जित किया।

इस प्रकार अपने राज्य का विस्तार मालदेव ने आठ वर्षों में किया। अब समय आया था कि वह अपने उपार्जित राज्य का उपभोग करता। परन्तु इसी समय उसे एक बड़े भारी सङ्कट में फँसना पड़ा। शेरसिंह को जब मालूम हुआ कि मारवाड़ राज्य एक बड़ा ऐश्वर्यशाली राज्य है तब उसने सोचा कि उसकी राजधानी के पास इतने बलशाली राज्य का रहना उसके लिये अत्यन्त हानिकारी है। अतएव उसने मारवाड़ पर चढ़ाई की। मालदेव को जब इसकी ख़बर लगी तब उसने न तो शेरसिंह की सेना को रोकने का प्रयत्न किया और न अपने यहाँ की सेना ही को कुछ आज्ञा दी। शेरसिंह की सेना जब बहुत पास आ गयी तब मालदेव ने अपनी विजयिनी पचास हज़ार राठौरसेना ले कर प्रस्थान किया। दोनों सेना आमने सामने पड़ी हुई हैं। शेरसिंह राठौरसेना को देख बहुत घबड़ाया, उसने एक पत्र लिख कर मालदेव के डेरे में फेंकवा दिया। उस पत्र को पढ़ते ही मालदेव का अपने सर्दारों पर अविश्वास उत्पन्न हो गया।

देखते देखते लड़ाई का दिन उपस्थित हुआ। परन्तु राजा मालदेव इस समय भी सोये हैं। सर्दार देख रहे हैं कि युद्ध के लिये अब राजा की आज्ञा होती है, परन्तु कुछ नहीं, राजा ने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। अब सर्दार घबड़ाये। इसका कारण सर्दारों ने शीघ्र ही जान लिया। राजा की आज्ञा के विना भी वे

लड़ने लगे । मुट्ठी भर राठौर वीर अगणित यवनसेना को ध्वंस-विध्वंस करने लगे । देखते देखते अनेक यवन वीर कट कर गिर गये । जो यवन वीर युद्ध में कटते थे उनकी पूर्ति शीघ्र ही हो जाती थी, परन्तु राठौर वीरों का जो स्थान सूना होता था वह स्थान सदा के लिये सूना ही रहता था । अब मालदेव की भी आँखें खुलीं, परन्तु इस समय हो ही क्या सकता था । मालदेव परास्त हुआ, मालदेव अपमानित हुआ । यद्यपि इस युद्ध के बाद भी मालदेव बहुत दिनों तक जीवित रहा परन्तु वह अपने इस अपमान का बदला न ले सका ।

(टाड्स राजस्थान)

मालव राज्य—प्राचीन एक राज्य । प्राचीन अनेक ग्रन्थों में इस राज्य का उल्लेख पाया जाता है । प्राचीन सूत्र ग्रन्थों से लेकर आधुनिक पुराणादि ग्रन्थों तक में इस राज्य का उल्लेख वर्तमान है। बौधायन सूत्र में मालव देश के वासियों को मिश्र जाति बतलाया है । रामायण में सीता को ढूँढ़ने के लिये वानर जब भेजे जाते थे तब सुग्रीव ने उनको मालव राज्य में सीता को ढूँढ़ने के लिये कहा था । वहाँ मालव राज्य को पूर्व देशों में स्थित बतलाया गया है । महाभारत में सञ्जय-कथित जनपदों में मालव राज्य का भी नाम देखा जाता है । मत्स्यपुराण में मालव प्राच्य जनपदों में गिनाया गया है । वहाँ लिखा है—

"सुह्मोत्तराः प्रविजया मार्गमागेयमालवाः ।
शाल्वमागधगोनर्दाः प्राच्या जनपदाः स्मृताः ॥"

अर्थात्—सुह्म, प्रविजय, मार्ग, मागेय, मालव, शाल्व, मगध, गोनर्द, आदि प्राच्य जनपद हैं। वायुपुराण में मालव पर्वतीय देशों में गिनाया गया है । इसी प्रकार अन्यान्य पुराणों में भी भारतवर्ष के वर्णन के प्रसङ्ग में मालव राज्य का उल्लेख हुआ है । इन सब बातों से मालव राज्य की प्राचीनता स्पष्ट ही मालूम होती है । अनेक मनुष्य मालव और अवन्ती इन दोनों को एक ही राज्य प्रमाणित करने का प्रयत्न करते हैं । परन्तु पुराण आदि शास्त्रों को देखने से ये दोनों राज्य भिन्न भिन्न ही प्रतीत होते हैं । परन्तु हाँ, यह हो सकता है कि एक ही राज्य का कभी मालव और कभी अवन्ती नाम रहा हो । मालव राज्य किसके द्वारा और कब स्थापित हुआ था, इसका कुछ भी पता नहीं है । परन्तु इतिहास से जाना जाता है कि बौद्धों के समय में बौद्ध राज्य की बड़ी प्रसिद्धि हुई थी । उस समय इस राज्य का गौरव चारों ओर प्रसिद्ध हो गया था । हर्षवर्द्धन के समय में मालव राज्य कन्नौज राज्य के अधीन था । सुलतान मुहम्मद के द्वारा मालवराज के नाश होने की बात प्रसिद्ध ही है। गुलामवंशी राजाओं के राज्यकाल में मालव मुसल्मानों के अधीन था । परन्तु पुनः मुहम्मद तुग़लक़ के राज्यकाल में मालव राज्य स्वाधीन हो गया था । पुनः दिल्लीश्वर अकबर के समय यह राज्य मुसल्मानों के अधीन हुआ।

चीनी परिव्राजक हुएनत्सङ्ग ने लिखा है—पूर्व दक्षिण की ओर मालव राज्य और उत्तर पूर्व की ओर मगध राज्य उस समय शिक्षा के प्रधान स्थान थे । परिव्राजक और भी कहते हैं कि मालव राज्य के इतिहास से जाना जाता है कि प्रायः साठ वर्ष पहले सुशिक्षित और ज्ञानवान् शिलादित्य उत्पन्न हुए थे । इससे हुएनत्सङ्ग के भारतागमन के समय दूसरे शिलादित्य मालव के सिंहासन पर विराजमान थे यह बात सिद्ध होती है । उनका राज्यकाल ६१० ई० पर्यन्त था । हुएनत्सङ्ग के आने के समय मालव राज्य में हिन्दू और बौद्ध इन दोनों धर्मों की प्रधानता थी । उस समय भी एक सौ मन्दिर और एक सौ सङ्घाराम मालव में विद्यमान थे । इस समय भी एक मालव नगर का परिचय अवश्य पाया जाता है, परन्तु आज मालव की वह शोभा नहीं, आज मालव की वे ऊँची अट्टालिकाएँ देवमन्दिर तथा सङ्घाराम आदि सभी चूर्ण विचूर्ण हो गये हैं।

परिव्राजक हुएनत्सङ्ग ने लिखा है कि माही नदी के दक्षिण पूर्व की ओर और भरोच से तीन सौ तेंतीस माइल उत्तर पश्चिम की ओर प्राचीन मालव राज्य वर्तमान है ।

(भारतवर्षीय इतिहास)

माल्यवान्=राक्षस विशेष। यह माली और सुमाली का भाई था। इसके पिता का नाम सुकेश और माता गन्धर्व-कन्या वेदवती थी।

मिथि=मिथिला राज्य के प्रतिष्ठापक राजा। इनका जन्मवृत्तान्त बड़ा विलक्षण है। इक्ष्वाकु के द्वितीय पुत्र निमि थे। सहस्र वर्ष व्यापी यज्ञ का अनुष्ठान करने के लिये उन्होंने अपने कुलगुरु वशिष्ठ को होता के पद पर वरण किया परन्तु पाँच सौ वर्ष में समाप्त होने वाले इन्द्र के एक यज्ञ में वे लिप्त थे इस कारण वशिष्ठ ने उस यज्ञ के समाप्त होने तक निमि को ठहरने के लिये कहा। निमि ने इसका कुछ भी उत्तर नहीं दिया। वशिष्ठ ने इससे समझ लिया कि निमि को हमारा कहना स्वीकृत है। अतएव वशिष्ठ इन्द्र के यज्ञ में लग गये। इधर निमि ने गौतम को होता बना कर यज्ञ आरम्भ कर दिया। इस से क्रुद्ध हो कर निद्राप्राप्त राजा को वशिष्ठ ने शाप दिया। वशिष्ठ के शाप से राजा का शरीर नष्ट हो गया। राजा ने भी वशिष्ठ को शाप दिया जिससे वशिष्ठ का भी शरीर नाश हो गया, तैल गन्ध आदि के द्वारा राजा का शरीर सुरक्षित रखा गया और यज्ञ समाप्त किया गया। राजा निमि के कोई पुत्र नहीं था, अतः अराजकता के भय से मुनियों ने अरणि द्वारा निमि का शरीर मन्थन किया, उस शरीर से एक कुमार उत्पन्न हुआ। मृत देह से यह पुत्र उत्पन्न हुआ था इस कारण इसका नाम जनक पड़ा। पिता की विदेहावस्था में उत्पन्न होने से इस कुमार का नाम वैदेह हुआ। मन्थन द्वारा उत्पन्न होने के कारण उस कुमार का नाम मिथि पड़ा। इन्होंने ही मिथिला पुरी निर्माण किया था।

मिथिला=मिथि के द्वारा स्थापित विदेह राज्य। यह राज्य सदानीरा (गण्डकी) नदी के उस पार स्थित है। राजर्षि जनक की प्रसिद्धि के साथ ही साथ मिथिला राज्य की प्रसिद्धि संसार में फैल गयी थी। इस राज्य के मिथिला विदेह आदि नाम राजा मिथि के नामानुसार हुए थे। मिथिला राज्य की राजधानी मिथिला नगरी में थी। रामायण में लिखा है राजा निमि ने वैजयन्त नाम का एक सुन्दर नगर स्थापित किया था। गौतमाश्रम के निकट यह नगर स्थित है। वही नगर मिथिला की राजधानी है। वैजयन्त मिथिला नगरी का दूसरा नाम था। राजा जनक के नामानुसार उसको जनकपुर भी कहते हैं। तिरहुत ज़िले में जो जनकपुर वर्त्तमान है इस समय बहुत लोग उसीको मिथिला समझते हैं। सीतामढ़ी और सीताकुण्ड नाम के दो तीर्थस्थान जनकपुर में वर्त्तमान हैं। कहते हैं सीतामढ़ी में सीता का जन्म हुआ था। कहते हैं व्याह के पहले सीता देवी सीताकुण्ड में स्नान करती थीं। मिथिला के सभी राजागण प्रायः विद्वान् और ज्ञानी के नाम से प्रसिद्ध हैं। उपनिषद् की आलोचना के लिये जनक की राजधानी प्रसिद्ध है। शतपथब्राह्मण, बृहदारण्यक उपनिषद्, कौषीतकी उपनिषद् आदि में जनक और विदेह राज्य का विवरण देखा जाता है। शतपथब्राह्मण में लिखा है कि विद्वत्ता और ज्ञान के कारण राजर्षि जनक ने ब्राह्मणत्व प्राप्त किया था।

(भारतवर्षीय इतिहास)

मिहिरकुल=काश्मीर के एक राजा। इनके पिता का नाम वलुकुल था। ये अपनी क्रूरता के लिये प्रसिद्ध थे। इनके राज्यकाल में हत्या की अधिकता व्याप्त हो गयी थी। वृद्ध और बालक की हत्या करना इनके लिये कोई बात ही न थी। एक दिन इनकी महारानी सिंहल देश के कपड़े का कुरता पहने हुए थीं, सिंहल देश के कपड़े में पैर का चिह्न बना हुआ था। महारानी के स्तन पर पैर का चिह्न देख कर राजा को बड़ा क्रोध हुआ। परन्तु कञ्चुकी के कहने पर राजा का सन्देह दूर हुआ। यह सुन कर राजा ने सिंहल देश को जीतने के लिये प्रस्थान किया। मिहिरकुल ने सिंहलराज को राज्यच्युत कर के वहाँ एक प्रबल राजा को प्रतिष्ठित किया। सिंहल से लौट कर मिहिरकुल ने चोल द्रविड कर्णाट आदि देशों को जीतने के लिये प्रस्थान किया। परन्तु उस देश के रहने वाले राजा मिहिरकुल के आने से पहले ही देश छोड़ कर भाग गये थे। मिहिरकुल काश्मीर

लौट आये और वहाँ उन्होंने मिहिरपुर नामक एक विशाल नगर तथा श्रीनगर में मिहिरेश्वर नामक शिव की स्थापना की थी। इस राजा ने ७० वर्ष राज्य किया था।

(राजतरङ्गिणी)

मीमांसासूत्र=महर्षि जैमिनि-प्रणीत दर्शन-शास्त्र। मीमांसा दर्शन में वेदों का नित्यत्व बतलाया गया। वेद अभ्रान्त और अपौरुषेय हैं वेद अनादि और अनन्त हैं वेद स्वतःसिद्ध हैं—वेदों में ये ही बातें लिखी गयी हैं मीमांसा शास्त्र के अनुसार कर्मकाण्ड ही सर्वप्रधान है। कर्मकाण्ड के अतिरिक्त वेदों में जो कुछ है वह कर्मकाण्ड में प्रवृत्ति दिलाने के लिये है। वेद पाँच भागों में विभक्त है विधि, निषेध, नामधेय, मन्त्र और अर्थवाद। वेद के जिन वाक्यों में मनुष्यों का कर्तव्य बतलाया है वह विधि है। ऐसा करो यही विधि है। जिन वाक्यों में अकर्तव्य कर्म लिखे हैं वे निषेध हैं। उत्पत्ति विनियोग प्रयोग आदि भेद से विधि अनेक प्रकार की है। कौन यज्ञ किसके उद्देश्य से करना चाहिये उसके लिये किन किन सामग्रियों की आवश्यकता है आदि बातें विधि-चतुष्टय के द्वारा जानी जाती हैं। कल्पना करो अग्निहोत्र यज्ञ करना है। उस समय यह जानना आवश्यक है कि किन द्रव्यों से देवता की उपासना की जाती है और यह भी जानना चाहिये कि यज्ञ में किस क्रिया के पश्चात् कौन क्रिया करनी चाहिये। यजमान उस यज्ञ करने का अधिकारी है कि नहीं जो वह करना चाहता है। कौन मनुष्य किस यज्ञ का अनधिकारी है आदि बातें भी विधिचतुष्टय के द्वारा जानी जाती हैं। नियम तथा परि-संख्या के द्वारा इन विधियों का विचार हुआ करता है। मन्त्रों के द्वारा मन्त्रार्थदेवताओं का आवाहन होता है उनके क्रमभङ्ग शब्द-विपर्यय तथा उच्चारण दोष आदि विघ्नकारक हैं। जिस अभिप्राय से जो यज्ञ किया जाता है वही उस यज्ञ का नाम है। अर्थवाद के द्वारा विधि निषेधों की निन्दा तथा प्रशंसा सूचित होती है। अर्थवाद तीन प्रकार का है। १ गुणवाद २ अनुवाद और ३ भूतार्थवाद। मीमांसाशास्त्र के प्रतिपाद्य के विषय में संक्षेपतः यही कहा जा सकता है कि—वेदों में क्या क्या विषय हैं, उनके द्वारा यागादिकों की प्रधानता किस प्रकार सूचित होती है, प्रधानतः यही बात मीमांसाशास्त्र में लिखी है। मीमांसा के मत से यही प्रधान है और सब बातें गौण हैं। यही बात इस सूत्र के द्वारा कही गयी है "आम्नायस्य क्रियार्थत्वादानर्थक्यमतदर्थानाम्", अर्थात् कर्म ही वेदों के सार हैं, वेदों में कर्म से भिन्न जो अन्य बातें देखी जायँ वे अनर्थक हैं। अधिक क्या कहा जाय, मीमांसकों ने देवताओं का भी अस्तित्व स्वीकार नहीं किया है। वे कहते हैं मन्त्र ही देवता हैं। देवता कभी शरीरी नहीं हो सकते, यदि देवताओं को शरीरी माना जाय तो एक ही समय में भिन्न भिन्न स्थानों में उनका आवाहन कैसे किया जा सकता। और शरीरी होने पर उनको प्रत्यक्ष भी होना चाहिये। जैमिनि के मत से यज्ञादि कर्मों के द्वारा ही मोक्ष प्राप्त होता है। यज्ञों की क्रियापद्धति में अथवा मन्त्रों के उच्चारण में दोष होने से फल-प्राप्ति में विघ्न होने की सम्भावना रहती है। जैमिनि-दर्शन में ईश्वर का अस्तित्व नहीं देखा जाता। इसी कारण शङ्कराचार्य मीमांसा दर्शन को नास्तिक दर्शन कहते हैं। परन्तु अन्यान्य दर्शन-कार मीमांसा को उस दृष्टि से नहीं देखते, वे कहते हैं—यद्यपि मीमांसा दर्शन में ईश्वर का नाम नहीं है तथापि उसे नास्तिक दर्शन कहना अत्यन्त भूल है क्योंकि "ब्रह्मापीति चेत्" इस सूत्र से मीमांसाकार ने ब्रह्म का अस्तित्व स्वीकार किया है। मीमांसा में अधिकारिभेद माना जाता है, मीमांसा वेदों का एकान्त पक्ष-पाती है परन्तु ईश्वर को वेदों का कर्त्ता वे नहीं मानते उनका कहना है कि वेदों का कर्त्ता कोई हो ही नहीं सकता, शब्द नित्य हैं; शब्दों की नित्यता प्रमाणित करने के लिये उन्होंने अनेक सूत्रों की रचना की है। उनका तात्पर्य यह है। उच्चारण के अनन्तर ही उनका अर्थ ज्ञान होता है शब्दों का नाश नहीं होता अत-

एव शब्द नित्य हैं। सब शब्दों का और सब स्थानों पर एक ही अर्थ समझा जाता है। इससे शब्दों की एकता और नित्यत्व दोनों बातें प्रमाणित होती हैं। शब्दों में क्षय वृद्धि भी नहीं है, क्योंकि एक ही वस्तु के लिये बार बार एक शब्द के उच्चारण करने पर भी उस की संख्या में वृद्धि नहीं देखी जाती, शब्दों के नाश होने का भी कोई कारण नहीं देखा जाता, यह अपौरुषेय और नित्य शब्द ही वेद हैं। वेदविहित कर्मों का अनुष्ठान ही मोक्ष-प्राप्ति का एकमात्र उपाय है।

(भारतवर्षीय इतिहास)

मीराबाई=मेवाड़ के अधिपति महाराणा कुम्भ की स्त्री। सन् १८२० ई० में मारवाड़ राज्य के एक सामन्त के घर इनका जन्म हुआ था। मीरा विष्णु की उपासिका थीं, परन्तु उसका पति-कुल शक्ति का उपासक था। मीराबाई की सास ने विष्णु की उपासना छोड़ने के लिये उसे दबाया, जब राजमाता ने देखा कि मेरी आज्ञा का पालन नहीं हुआ तब उन्होंने उसे राजभवन का परित्याग करने के लिये कहा। राणा कुम्भ ने भी माता की आज्ञा के प्रतिकूल काम करना नहीं विचारा, मीरा राजभवन छोड़ कर तापसी के वेष से राजमहल से बाहर हुईं। मीरा को स्वामी से जो अर्थ मिला था उससे उन्होंने स्थान स्थान पर धर्मशालाएँ बनवायीं तथा दीन दुखियों को खिलाया। राणा कुम्भ ने मीरा की प्रसन्नता के लिये चित्तौर में गोविन्द जी का मन्दिर बनवाया था। मीरा सर्वसाधारण के साथ श्रीकृष्ण-प्रेम में मत्त हो कर रास्तों में कीर्तन करतीं, मीरा के मधुर स्वर से जनसमूह मुग्ध हो जाया करता था। "बिना प्रेम से मिले न नन्दलाला" वाला मीरा का गाना सुन कर नर-नारी-वृन्द भक्तिरस में गोते खाने लगता था। राणा कुम्भ ने किसी कारण से मीरा को चित्तौर से निकाल दिया, उस समय मीरा राजपूताने में घूमती फिरीं। मीरा जिस प्रकार अनुपम सुन्दरी थी उसी प्रकार उसका कण्ठ भी मधुर था, राजपूताने के स्त्री-पुरुष मीरा को स्वर्गभ्रष्ट देवाङ्गना समझते थे। मीराबाई के विषय में एक भ्रमपूर्ण प्रवाद इतिहासों में पाया जाता है। प्रवाद यही है—एक बार सम्राट् अकबर तानसेन को साथ ले कर मीरा का गाना सुनने को आये थे। मीरा के गाने से प्रसन्न हो कर बादशाह ने एक लाख रुपये मूल्य का हार उन्हें भेंट किया। यह सुन कर राणा कुम्भ ने उसे असती समझा और अनेक उपायों से उसे मरवा डाला। सम्राट् अकबर के जन्म से १२२ वर्ष पहले विद्यमान थीं, इस स्थिति में ऊपर लिखा हुआ प्रवाद सत्य कैसे हो सकता है। मीरा की सुललित पदावली भारत के प्रत्येक प्रान्त में प्रसिद्ध है। मीरा के चरित्र पर राणा कुम्भ श्रद्धा रखते थे। कुछ दिनों तक राणा कुम्भ का मीरा पर सन्देह था, और उन्होंने मीरा को चित्तौर से बाहर भी कर दिया था। परन्तु पीछे से उन्हें अपनी भूल मालूम हुई। तब उन्होंने ब्राह्मण दूत भेज कर मीरा को बुलवा लिया। मीरा के लिये राणा ने अनेक कृष्णमन्दिर बनवा दिये थे। मीरा प्रतिदिन मन्दिर में जाती और कीर्तन करती। कहते हैं कि मीरा ने भगवान् को प्रत्यक्ष किया था। इस समय भी रणछोड़ जी के साथ चित्तौर में मीराबाई की पूजा होती है।

मुकुन्दसिंह=राजा मुकुन्दसिंह कोटे के प्रथम राजा माधवसिंह के प्रथम पुत्र थे। माधवसिंह के मरने के पश्चात् ये कोटे के राजा हुए थे। हाड़ौती और मालवे की सीमा पर इन्होंने एक धारा बनवाया है, जिसका नाम "मुकुन्दधार" है। कोटे के इतिहास में मुकुन्दसिंह की बड़ी कीर्ति गायी गयी है। इन्होंने अपने राज्य के अनेक स्थानों पर दुर्भेद्य क़िले तथा सर्वसाधारण के उपयोगी तालाब बनवाये हैं।

जिस समय औरङ्गज़ेब ने अपने पिता के विरुद्ध तलवार उठायी थी उस समय मुकुन्दसिंह ने अपने पाँचों भाइयों के साथ बूढ़े बादशाह शाहजहाँ का पक्ष लिया था और एक युद्ध में वे मारे गये। (टाड्स राजस्थान)

मुकुन्दलाल=ये कवि बनारस के रहने वाले और रघुनाथ कवीश्वर के गुरु के शिष्य थे।

सं० १८०३ में ये उत्पन्न हुए थे। इनका बनाया काव्य उत्तम है। (शिवसिंहसरोज)

मुकुलजी=राणा लाखा का पुत्र और मेवाड़ का राणा। (देखो चण्ड)

मुचकुन्द=महाराज मान्धाता के पुत्र। कहा जाता है कि इन्होंने देवताओं का पक्ष ले कर असुरों का विनाश किया था। इससे प्रसन्न हो कर देवताओं ने इन्हें वर देना चाहा। मुचकुन्द ने वर माँगा कि जो कोई हमको निद्रा से जगावेगा, वह मेरे देखते ही भस्म हो जायगा। मथुरा पर विजय प्राप्त कर के कालयवन श्रीकृष्णचन्द्र को ढूँढ़ते ढूँढ़ते गिरनार पहुँचा, उसने मुचकुन्द को कृष्ण समझ कर लात मारी और भस्म हो गया।

मुबारक=इनका पूरा नाम सैयद मुबारकअली बिलग्रामी था। ये मुसल्मान थे परन्तु हिन्दी की कविता इनकी उत्तम होती थी।

मुरारि=संस्कृत नाटक अनर्घराघव के रचयिता। इस ग्रन्थ का नामोल्लेख नवम शतक के रत्नाकर कवि ने अपने हरविजय नामक काव्य में किया है। अतएव नवीं सदी के पहले के ये कवि हैं।

मूकजी कवि=ये राजपूताने के रहने वाले वन्दीजन थे। सं० १७५० में इनका जन्म हुआ था। इस महाकवि ने चौहानों की एक शाखा खींची जाति की वंशावली लिखी है। इस पुस्तक में प्राचीन और नवीन राजाओं की जीवनी इस ग्रन्थ में लिखी है।

मूनब्राह्मण कवि=ये भाषा के कवि ज़िले ग़ाज़ीपुर असोथर के रहने वाले थे। सं० १८६० में इनका जन्म हुआ था। ये बड़े विख्यात कवि थे। सुनते हैं इन्होंने अनेक ग्रन्थ बनाये हैं। राम-रावणयुद्ध नामक इनका बनाया ग्रन्थ पाया जाता है।

मूलराज=जयसलमेर के एक रावल। ये रावल जैतसी के पुत्र थे। जैतसी के मरने पर सं० १३५० (सन् १२६४ ई०) में मूलराज गद्दी पर बैठे।

जिस समय मूलराज का जयसलमेर के रावल पद पर अभिषेक हुआ था, उस समय जयसलमेर का क़िला मुसल्मान सैनिकों से घिरा हुआ था। उस यवनसेना का सेनापति नव्वाब महबूबखाँ था। यवनसेना क़िले पर आक्रमण करने लगी और यादवसेना क़िले की रक्षा में नियुक्त हुई। इस भयानक युद्ध में नौ हज़ार यवनसेना मारी गयी इससे घबड़ा कर यवनसेनापति नव्वाब महबूबखाँ प्राणों के भय से बची हुई सेना ले कर भाग गया और पुनः सेना एकत्रित कर के उसने क़िले पर धावा किया। एक वर्ष तक यवनसेना क़िले को घेरे रही, इतने समय तक अन्न के अभाव से यादवसेना को कष्ट पहुँचने लगा। तब जयसलमेर-पति मूलराज ने सर्दारों को बुलाया और उनसे कहा—"अब तक हम लोगों ने अपनी स्वाधीनता की रक्षा की, परन्तु अब भोजन के लिये कुछ भी नहीं है, और कोई भी उपाय नहीं है जिससे हम लोग अपनी रक्षा कर सकें, इसलिये हम लोगों को इस समय क्या करना चाहिये इसका निर्णय आप लोग करें"। सर्दारों ने उत्तर दिया, स्त्रियों को जुहार व्रत का अवलम्बन करना चाहिये और हम लोगों को रण में अपनी वीरता दिखा कर स्वर्गपुर चलने को तैयार हो जाना चाहिये। क़िले में इस प्रकार का विचार हो रहा था, उधर मुसल्मानों ने समझा कि क़िले पर अधिकार होना बड़ा कठिन है क्योंकि इतने दिन हो गये और हमारी सेना भी दिनोंदिन घट रही है अतः क़िले को घेर कर पड़ा रहना व्यर्थ है यह सोच कर यवनसेना लौट पड़ी। इसी समय रतसी ने सेनापति के छोटे भाई को क़िले के भीतर बुलाया, और उसका आदर सत्कार कर बातें करने लगे। उसे क़िले में आने से मालूम हुआ कि क़िले में सेना के भोजन के लिये कुछ नहीं है। वह वहाँ से भाग कर दौड़ा दौड़ा सेनापति के पास पहुँचा और क़िले की सब बातें कह सुनायीं। सेनापति लौट आया और उसने पुनः क़िले को घेर लिया। उस समय का कर्त्तव्य तो पहले निश्चित ही हो चुका था स्त्रियों ने जुहार व्रत का अवलम्बन किया। और पुरुषों ने अगणित यवनसेना का विनाश कर के स्वर्ग प्राप्त किया।

देखते देखते सुरपुर सदृश जयसलमेर का राजभवन श्मशान तुल्य हो गया। सं० १३५१ (सन् १२९५ ई०) में यह युद्ध समाप्त हो गया। रतसी के दो लड़के सेनापति महबूबख़ाँ के द्वारा रक्षित थे, उन्होंने मूलराज तथा रतसी आदि का अन्तिम सत्कार किया। क़िले में ताले बन्द कर नव्वाब चला गया।

(टाड्स राजस्थान)

मूलसिंह=इनका नाम मूलराजसिंह था, परन्तु लोग इन्हें मूलसिंह के नाम से पुकारते थे। अखैसिंह की मृत्यु होने पर मूलसिंह जयसलमेर की गद्दी पर बैठे। इनके तीन पुत्र थे-रायसिंह, जैतसिंह और मानसिंह। रावल मूलराज के मन्त्री का नाम स्वरूपसिंह था। वह बड़ा अधमी तथा दुराचारी था। उसकी स्वेच्छाचारिता से जयसलमेर की क्या प्रजा क्या सामन्त-मण्डली सभी अप्रसन्न रहा करते थे। स्वरूपसिंह के अत्याचार से पीड़ित सर्दारसिंह नामक एक सर्दार ने युवराज रायसिंह से प्रार्थना की कि आप ऐसा कोई प्रबन्ध करें जिससे इस दुःख से हम लोगों को छुटकारा मिले। रायसिंह भी उससे अप्रसन्न थे ही वे सहज ही सम्मत हो गये। एक दिन राजसभा में रायसिंह ने स्वरूपसिंह को मारने के लिये म्यान से तलवार निकाली, वह दौड़ कर मूलराज की शरण में जाना चाहता था, परन्तु युवराज की तलवार ने बड़ी शीघ्रता से उसका काम तमाम कर दिया। उसी समय सर्दारसिंह ने मूलराज को भी मारने का प्रस्ताव किया था, परन्तु युवराज रायसिंह ने उसी समय इस प्रस्ताव को अस्वीकृत किया।

रायसिंह की संहारमूर्ति देख कर रावल मूलराज अन्तःपुर में चले गये। इधर सर्दारों ने विचारा कि मूलराज के सिंहासन पर बैठे रहने से अब हम लोगों का कल्याण नहीं है, और हम लोगों ने उन्हींके सामने उनको मारने का प्रस्ताव किया था ऐसी स्थिति में क्या हम लोग उनसे अपने कल्याण की आशा कर सकते हैं यह सोच कर सर्दारों ने युवराज से यह प्रस्ताव किया कि आपको हम लोग राजतिलक देते हैं अब आप ही राज्यभार ग्रहण कीजिये। सब सामन्तों की सम्मति जान कर राजपुत्र ने पिता को क़ैद करा लिया और स्वयं राज काज करने लगा, परन्तु वह राजसिंहासन पर नहीं बैठा।

तीन महीने चार दिन क़ैद रहने के बाद अनूपसिंह की स्त्री के उद्योग से मूलराज क़ैद से छूट कर पुनः राजगद्दी पर बैठे, राजगद्दी पर बैठते ही उन्होंने अपने पुत्र रायसिंह को निर्वासित कर दिया। रायसिंह अढ़ाई वर्ष के बाद जब पुनः जयसलमेर लौटे तब मूलराज ने उनसे तथा उनके अनुचरों से अस्त्र छीन कर उन्हें देवा के क़िले में क़ैद करा लिया। मूलराज ने उस क़िले में आग भी लगवा दी थी, जिसके फल से रायसिंह अपनी स्त्री के साथ जल कर मर गये। सन् १८१८ ई० में उन्होंने ईस्ट इण्डिया कम्पनी के साथ सन्धि कर ली थी। सन्धि करने के बाद मूलराज दो वर्ष जीवित रह कर मर गये। (टाड्स राजस्थान)

मेघनाद=लङ्केश्वर रावण का पुत्र। देवराज इन्द्र को युद्ध में पराजित करने के कारण इसकी इन्द्रजित् नाम से भी प्रसिद्धि थी। इसने लङ्का के युद्ध में दो बार राम लक्ष्मण को हराया था। अनन्तर भयङ्कर युद्ध होने पर यह लक्ष्मण के हाथ मारा गया। (रामायण)

मेघवाहन=काश्मीर के एक राजा का नाम। ये तृतीय गोनर्द के वंश के थे। काश्मीर के राजा के न रहने पर मन्त्री गान्धार देश से इन्हें लाये थे। ये बड़े दयालु थे, राजगद्दी पर बैठते ही इन्होंने ढिंढोरा पिटवा दिया कि कोई जीवहिंसा न करने पावे। यज्ञों में पशुहिंसा के बदले घृतपशु तथा पिष्टपशु की बलि दी जाने लगी। मेघवाहन ने मेघवन नामक का अग्रहार पुष्ट नामक गाँव और मेघ नामक मठ बनवाया था। राजा मेघवाहन की रानियों ने भी अपने अपने नाम से मठ अग्रहार चतुःशाल आदि बनवाये थे।

एक दिन राजा बाहर घूमने के लिये निकले थे, उसी समय उन्होंने सुना कि कोई दुःखी व्यक्ति चोर चोर कह कर पुकार रहा है। यह सुन कर राजा ने आज्ञा दी कौन है, चोरों को बाँधो। राजा के यह कहने पर चोर चोर की

चिल्लाहट बन्द हो गयी। इस घटना के एक दो दिन के बाद पुनः राजा एक दिन बाहर घूमने निकले। उस समय दो सुन्दरी स्त्रियाँ राजा के सामने उपस्थित हो कर कहने लगीं। देव! हम लोगों के स्वामी नागगण उस दिन मेघ हो कर आकाशमण्डल में फैल गये थे, मेघ को देख कर कृषकों को भय हुआ कि कहीं पत्थर न पड़ें इससे वे चोर चोर कह कर पुकारने लगे, तब आपने कहा चोर को बाँधो, आपके यह कहते ही हमारे स्वामी पाशबद्ध हो कर पड़े हैं। आप जगत् के पालक हैं कृपा कर हमारे स्वामियों को बन्धन-मुक्त कीजिये। राजा के कहने से नागगण बन्धन-मुक्त कर दिये गये। इसी प्रकार इनके विषय में अनेक अलौकिक कथाएँ राजतरङ्गिणी में लिखी हैं। लङ्का तक का देश इन्होंने जीता था। अहिंसा-प्रचार के लिये ही इन्होंने अपनी विजययात्रा की थी। राजतरङ्गिणी में लिखा है वरुणदेव से इनका साक्षात्कार हुआ था, राजा मेघवाहन ने ३४ वर्ष तक काश्मीर का राज्य किया था। (राजतरङ्गिणी)

मेदलराव=कछवाहों के आदिपुरुष दूलेराव के पौत्र और कांकिलदेव के पुत्र। पिता के मरने के उपरान्त पिता का सिंहासन मेदल जी को मिला। मेदल जी अत्यन्त साहसी वीर तथा पराक्रमी थे। इस समय सुसावत्त मीनों के राज्य में आमेर के राव भत्तो रहते थे। राव भत्तो समस्त मीना जाति के सम्प्रदाय में श्रेष्ठ और प्रभावशाली थे। मेदलराव ने सेना को साथ ले कर आमेर राज्य पर आक्रमण किया। मेदलराव के पराक्रम को मीना न सह सके, वे रण छोड़ कर भागने लगे मेदल जी ने मीनाओं को परास्त कर के आमेर के क़िले पर अपना अधिकार कर लिया। मेदलराव इसी प्रकार अपने पिता के राज्य को बढ़ाने लगे। तदनन्तर नन्दला नामक मीना जाति को अपने अधिकार में कर के गतोर नामक देश को भी उन्होंने अपने अधीन कर लिया। इसी प्रकार दूलेराव के वंशधरों का सौभाग्य सूर्य धीरे धीरे मेघ-निर्मुक्त हो कर प्रकाशित होने लगा। मेदलराव की प्रतिपत्ति देखते देखते ही राजपूताने में बढ़ गयी। मेदलराव एक प्रभावशाली राजा समझे जाने लगे। इस प्रकार राज्य का विस्तार कर के मेदलराव स्वर्ग को सिधारे।

मेधा कवि=भाषा के एक कवि। इनका जन्म सं० १८६७ में हुआ था। इन्होंने चित्रभूषण नामक ग्रन्थ चित्रकाव्य का बड़ा ही सुन्दर बनाया है।

मेधातिथि=मनुसंहिता के विख्यात टीकाकार। इनके पिता का नाम वीरस्वामि भट्ट था।

मेनका=अप्सरा विशेष। इसी अप्सरा को इन्द्र ने महर्षि विश्वामित्र की तपस्या में विघ्न डालने के लिये भेजा था। यह अपने काम को पूरा भी कर सकी थी इसीके गर्भ और विश्वामित्र के औरस से शकुन्तला का जन्म हुआ था।

मेना=हिमवान् की स्त्री। यह पितरों की मानसी कन्या थी। इसीके गर्भ से मैनाक नामक पुत्र और गङ्गा तथा उमा नाम की कन्या की उत्पत्ति हुई थी।

मैत्रेय=ये एक ऋषि थे। विष्णुपुराण में इनका उल्लेख हुआ है। इन्होंने प्रह्लाद के चरित्र विषयक विष्णुपुराण में अनेक प्रश्न किये हैं।

मैत्रेयी=योगिराज याज्ञवल्क्य की स्त्री। ज्ञान और विद्या में मैत्रेयी याज्ञवल्क्य के समान ही थी। याज्ञवल्क्य ने संन्यास ग्रहण करने की इच्छा से एक दिन मैत्रेयी से कहा कि मैं अब संन्यास ग्रहण करने जाता हूँ अतः मैं चाहता हूँ कि जो कुछ धन है वह तुमको और कात्यायनी को आधा आधा बाँट दूँ। नहीं तो हमारे न रहने पर सम्भव है तुम लोगों में झगड़ा हो। मैत्रेयी ने कहा—इन नश्वर पदार्थों को ले कर मैं क्या करूँगी। मुझे इन पदार्थों से कुछ भी प्रयोजन नहीं, आप उस ब्रह्मज्ञान का उपदेश मुझे दें जिससे यथार्थ कल्याण हो। मैत्रेयी के कहने पर याज्ञवल्क्य ने ब्रह्मज्ञान का उपदेश दिया। मैत्रेयी पति के संन्यास ग्रहण करने पर वहाँ ही रह कर अध्यात्मतत्त्व का अनुशीलन करने लगी।

मैथिलवंश=इक्ष्वाकु के पुत्र निमि का नाम तथा उनके वंश का विवरण विष्णुपुराण और

श्रीमद्भागवत में देखा जाता है। निमि इक्ष्वाकु के पुत्रों में बारहवें हैं। विष्णुपुराण और श्रीमद्भागवत में लिखा है निमि के पुत्र का नाम जनक था। जनक का दूसरा नाम वैदेह और मिथि था। परन्तु रामायण में लिखा है निमि के पुत्र का नाम मिथि और मिथि के पुत्र का नाम जनक था। रामायण और भागवत में जनक के पुत्र का नाम उदावसु लिखा है। परन्तु विष्णुपुराण में उनका नाम नन्दीवर्द्धन लिखा है। रामायण और भागवत में नन्दीवर्द्धन उदावसु के पुत्र लिखे हैं। इसी प्रकार रामायण और विष्णुपुराण में स्थल स्थल पर मतभेद पाया जाता है।

पुराणों में सीरध्वज का नाम ही जनक लिखा है। परन्तु रामायण में सीरध्वज जनक के पूर्वपुरुष लिखे हैं। सीरध्वज सीता के पितामह थे। रामायण और हरिवंश में सीरध्वज के भाई का नाम कुशध्वज लिखा है। परन्तु श्रीमद्भागवत में सीरध्वज के पुत्र का नाम कुश है। जिधर देखो उधर ही शास्त्रों में मैथिल वंश के विषय में मतभेद देखा जाता है।

मोतीलाल कवि=ये बाँसी राज्य के रहने वाले भाषा के कवि थे। इनका जन्म सं० १५६७ में हुआ था। इन्होंने गणेशपुराण का भाषान्तर किया है। (शिवसिंहसरोज)

मोहन कवि=ये कवि जयपुर के महाराज सवाई जयसिंह के दरबारी कवि थे। इनका जन्म सं० १८७५ में हुआ था।

मोहन भट्ट=ये भाषा के कवि और बाँदा के रहने वाले थे। इन्हींके पुत्र प्रसिद्ध पद्माकर कवि थे। ये पहले बुंदेला पन्नानरेश के दरबार में थे तदनन्तर जयपुर के महाराज सवाई प्रतापसिंह और जगतसिंह के दरबार में थे। इनकी कविता बहुत सरस और मधुर होती थी।

मोहनलाल पराड्या=गुजरात की प्रथा के अनुसार इनका पूरा नाम मोहनलाल विष्णुलाल पराड्या था। इनके पूर्वपुरुष गुजरात के रहने वाले थे, परन्तु किसी कारणवश वे अपनी जन्मभूमि को छोड़ कर दिल्ली में आ कर बस गये। उन्हींमें एक पण्डित निर्भयराम जी थे, इन्होंने आगरे में अपना रहना स्थिर किया। परन्तु मोहनलाल जी के पिता विष्णुलाल जी आगरे से मथुरा आये; और वहाँ इन्होंने सेठ लक्ष्मीचन्द्र के यहाँ पहले दरजे के मुनीबों में नौकरी कर ली।

पं० मोहनलाल जी का जन्म संवत् १९०७ अगहन बदि ३ मङ्गलवार को हुआ था। सात वर्ष की अवस्था में इनका यज्ञोपवीत हुआ। तदनन्तर हिन्दी और संस्कृत की इन्हें शिक्षा दी जाने लगी। इसके दो वर्ष के बाद आप आगरे के स्कूल में भर्ती हुए और अंग्रेज़ी पढ़ने लगे। तदनन्तर जहाँ जहाँ आपके पिता की बदली हुई, वहाँ वहाँ आप अपने पिता के साथ रह कर पढ़ते रहे।

इनको अच्छी शिक्षा देने के अभिप्राय से इनके पिता ने काशी में इनकी बदली करवा ली, काशी में क्वींस कालेज के स्कूल में मोहनलाल जी पढ़ने लगे। परन्तु वहाँ के मास्टर पं० मथुराप्रसाद जी मिश्र से कुछ खटपट हो जाने के कारण आपने जयनारायण स्कूल में अपना नाम लिखवाया। जयनारायण स्कूल में पढ़ने वाले बङ्गाली विद्यार्थी थे। इसी कारण पराड्या जी को भी दूसरी भाषा बङ्गला लेनी पड़ी। परन्तु बङ्ग भाषा में ये बार बार फेल हुए। अन्त में इन्होंने स्कूल से नाम कटवा लिया और घर पर ही अभ्यास करने लगे। काशी में रहने के समय ही मोहनलाल जी का बाबू हरिश्चन्द्र से परिचय हुआ।

मोहनलाल जी के पिता ने देहान्त के समय इनको अपने मित्र मुमताजुद्दौला नव्वाब सरफ़ैज़अलीख़ाँ के सपुर्द किया। नव्वाब साहब बड़ौदा कमीशन के समय अपने साथ रख कर इन्हें राजकार्य की शिक्षा देने लगे। तदनन्तर आपने उदयपुर राज्य में नौकरी कर ली। श्रीनाथ द्वारा तथा काँकरौली के महाराजों की नाबालगी में आपने उन राज्यों का अच्छा प्रबन्ध किया। तदनन्तर आप उदयपुर की सदर अदालत के दीवानी काम पर नियत हुए। वहाँ से कौंसिल की मेम्बरी और सेक्रेटरी के पद पर आप गये। १३ वर्ष तक आपने उदयपुर राज्य की सेवा कर के वहाँ इस्तिफा दे दिया, और

प्रतापगढ़ के राज्य पर आप नियत हुए। प्रतापगढ़ से आप बहुत दिनों तक पेंशन पाते रहे।

महारानी विक्टोरिया की जुबली के समय आपने भारत सरकार को १००० रुपये इसलिये दिये कि दो पदक प्रति वर्ष कलकत्ता यूनिवर्सिटी में सब से प्रथम उत्तीर्ण होने वाले दो विद्यार्थियों को दिये जायँ।

आपने हिन्दी में सब मिला कर १२ पुस्तकें लिखी हैं। पृथ्वीराजरासो का भी आपने सम्पादन किया है। सन् १९१२ ई० में मथुरा में आपकी मृत्यु हुई।

मौनीबाबा=सन् १८५६ ई० में नदिया ज़िले के अन्तर्गत आबुदिया नामक गाँव में कायस्थ वंश में मौनीबाबा का जन्म हुआ था। इनके पिता का नाम रामचन्द्र घोष था। वे परम वैष्णव और हरिभक्तिपरायण थे गृहस्थी अच्छी न होने के कारण रामचन्द्र पावना में रह कर काम काज किया करते थे। रामचन्द्र के दो पुत्र थे। बड़े का नाम प्यारीलाल और छोटे का नाम हीरालाल था। ये दोनों भाई भी पावना के अंग्रेज़ी स्कूल में पढ़ते थे। उस स्कूल के एक अध्यापक ब्राह्मो थे। वे प्यारीलाल का पवित्र जीवन देख कर ईश्वरभक्ति तथा ब्राह्म धर्म का उपदेश उन्हें दिया करते थे।

ये दोनों बालक ज्यों ज्यों बढ़ने लगे त्यों त्यों उनका धर्मभाव प्रबल होने लगा। इसी समय उनके माता पिता का वियोग हुआ। माता पिता की मृत्यु के अनन्तर इन बालकों ने प्रकाशरूप से ब्राह्म धर्म ग्रहण कर लिया।

ब्राह्म धर्म ग्रहण करने के साथ ही साथ हिन्दू धर्म से इनका सम्बन्ध टूट गया। इससे इन्हें अर्थ का कष्ट होने लगा। प्यारीलाल ने अपने छोटे भाई के पढ़ने का खर्च चलाने के लिये पढ़ना छोड़ कर एक नौकरी कर ली। वह पहले पहल जलपाईगुड़ी के विद्यालय में शिक्षक नियत हुआ। तदनन्तर रङ्गपुर के अन्तर्गत गोपालपुर के अंग्रेज़ी स्कूल में प्रधान शिक्षक का काम करने लगा। बहुत दिनों तक वह यही काम करता रहा।

प्यारीलाल ने अध्यापक होते ही अपना ब्याह कर लिया था। गोपालपुर रहने के समय उनकी स्त्री तथा एक बहिन उनके साथ रहती थी। संसार में रह कर भी वह आधी रात को उठ कर साधन भजन किया करता था। अधिक देर तक निद्रा न आवे इसलिये वह एक बेञ्च पर सोया करता था। दिन रात मिला कर वह ३।४ घण्टे ही सोता था। वह कभी उत्तम भोजन नहीं करता था। सामान्य भोजन पर ही वह निर्वाह करता था। बीच बीच में वह उपवास भी करता था। प्यारीलाल घर में रह कर घर के काम धन्धों से जो कुछ समय पाता उसमें वह भगवद्भजन किया करता था।

इस प्रकार साधन भजन तथा संसार का काम करते करते प्यारीलाल को बारह वर्ष बीत गये। इसी समय उसकी स्त्री भी मर गयी। स्त्री के मरने से वह कुछ व्याकुल अवश्य हुआ था, परन्तु उसकी व्याकुलता वैराग्य के रूप में परिणत हो गयी। स्त्री के मरते ही उसने घर के काम धन्धे छोड़ दिये और एकान्त में रह कर वे भजन पूजन करने लगे।

प्यारीलाल की स्त्री के मरने पर उसके मित्रों ने उससे पुनः ब्याह करने के लिये अनुरोध किया था परन्तु उन सभी को संसार की अनित्यता और धार्मिक उपदेश दे कर प्यारीलाल ने समझा दिया।

प्यारीलाल की स्त्री के मरने के थोड़े दिनों के बाद इनके छोटे भाई पढ़ना छोड़ कर रुपया कमाने लगे। प्यारीलाल ने अच्छा अवसर देख कर छोटे भाई को घर का काम सौंप दिया और आप चित्रकूट भजन करने के लिये चले गये। प्यारीलाल ने निःसाहाय्य अवस्था में ब्राह्म धर्म ग्रहण किया था, परन्तु उनके हृदय में हिन्दू धर्म के लिये पिपासा जागृत थी इसी कारण उन्होंने पर्वत गुहा में जा कर योग साधने का विचार ठान लिया।

तीन वर्ष तक चित्रकूट के पर्वत पर योग साध कर प्यारीलाल ॐकारनाथ पर्वत पर योग साधन करने के लिये चले गये। ॐकारनाथ पर्वत योग साधन के लिये एक उत्तम स्थान है

वहाँ जा कर अनेक साधु संन्यासी योगसाधन तथा तपस्या करते हैं। प्यारीलाल ने उस पर्वत पर अपने लिये एक उत्तम स्थान बना लिया। एक वर्ष तक उन्होंने बड़ी कठिन तपस्या की थी। इस बीच में आसन छोड़ कर उठते उन्हें किसीने नहीं देखा था। उनकी कठिन तपस्या देख कर लक्ष्मीनारायण सेठ नामक एक धनी ने उनके लिये एक गुफा बनवा दी थी। इस गुफा में जा कर प्यारीलाल पहले की अपेक्षा और अधिक दृढ़ता से योगसाधन करने लगे। इसी समय उन्होंने मौन व्रत का अवलम्बन किया था। वे किसीसे बातचीत नहीं करते थे, इसी प्रकार छः महीने के बाद मौनीबाबा के नाम से उनकी प्रसिद्धि हुई।

मौनीबाबा के दर्शन के लिये समय समय उनकी गुहा के बाहर बड़ी भीड़ लग जाया करती थी। सभी अपने अपने दुःख के निवारण के लिये मौनीबाबा के समीप जाया करते थे। पूर्वोक्त धनी ने एक बार कहा था पहले मैं बड़ा दरिद्र था जिस दिन से मौनीबाबा की कृपा हुई है उसी दिन से हमारे धन की वृद्धि होने लगी है। हमारे ऐश्वर्य के मूल मौनीबाबा ही हैं। ॐकारनाथ के महन्त जी कहते थे कि मैंने बहुत साधु देखे हैं परन्तु मौनीबाबा के समान साधु हमारे देखने में नहीं आया। मौनीबाबा अपने शरीर की रक्षा का कुछ भी प्रयत्न नहीं करते थे। वे पाव दूध और छटाक बिल्वपत्र का रस पीते थे। ७१ वर्ष की अवस्था में सन् १८९६ ई० में उनकी मृत्यु हुई।

य

यक्ष=यक्षगण का उल्लेख पुराण आदि शास्त्र ग्रन्थों में लिखा पाया जाता है। परन्तु इस समय इस बात का पता लगाना बड़ा कठिन है कि उनका स्थान कहाँ था, इस समय वे किसी रूप में वर्तमान हैं कि नहीं। मनुसंहिता में लिखा है कि वर्हिषद् नामक अत्रिपुत्र से यक्षों की उत्पत्ति हुई।

अधिक समय बीतने के कारण वस्तु में विकार होना स्वाभाविक है। यही कारण है कि यक्षों के विषय में एक विभिन्न प्रकार की धारणा सर्व साधारण के हृदय में बद्धमूल हुई है। लोग समझते हैं यक्षगण एक अलौकिक प्राणी हैं। इस धारणा का मूल क्या है इसका पता लगाना कठिन ही नहीं, किन्तु नितान्त असम्भव भी है। पुराणों तथा कथा सरित्सागर आदि ग्रन्थों में ऐसी अनेक कथाएँ लिखी हैं, जिनमें मनुष्यों के साथ यक्षों के वैवाहिक सम्बन्ध का वर्णन है। शास्त्र ग्रन्थों में ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य आदि वर्णों के वंशवर्णन के साथ ही यक्षवंश का भी वर्णन पाया जाता है। इन सब बातों को देखते इस बात को मानने में कुछ भी सङ्कोच नहीं होता कि यक्षगण अलौकिक थे। यक्षों के विषय में आज कल के विद्वानों में दो प्रकार के मत प्रचलित हैं। कतिपय विद्वानों का अनुमान है यू अथवा यहूदियों को मिसरवासी हिक्सो (Hykso) कहा करते थे। यक्ष शब्द ही उच्चारण भेद अथवा उच्चारण वैकल्प से इस रूप में परिणत हुआ है। यक्षगण कुबेर के धनरक्षक थे। आज भी हमलोगों में "यक्ष का धन" यह प्रवाद प्रसिद्ध है। इस प्रवाद का अर्थ समझा जाता है "महाकृपण का धन।" इस प्रवाद के द्वारा भी यक्षों का महाकृपण होना प्रतिपन्न होता है। उस समय के यू अथवा यहूदी भी सूद खाते और महाकृपण हुआ करते थे। मरचेंट ऑफ़ वेनिस् नामक नाटक में महाकवि सेक्सपीयर ने शाईलाक नाम के जिस यहूदी का चित्र अङ्कित किया है उससे भी पूर्वोक्त बात प्रमाणित होती है। मालूम पड़ता है इसी कारण यक्ष और यू अथवा यहूदियों को एक पर्याय में लोग मानते हैं।

दूसरे पक्ष का कहना है कि हिक्स (ह्यक्ष) यक्ष ये शब्द सादृश्यवाचक अवश्य हैं परन्तु हिक्स शब्द यहूदियों का वाचक नहीं है। मिसर देश का एक राजवंश हिक्स नाम से प्रसिद्ध है। हिक्स जिस देश पर आक्रमण करते उसे छार खार कर के छोड़ देते थे। दुर्धर्षता और अत्याचारपरायणता के कारण ही भारतीय उनको यक्ष कहने लगे होंगे। हिक्स अथवा यक्ष कभी मिसर के राजा थे यह बात इतिहास से सिद्ध

है। मिसर देश के शिलालेखों तथा स्तम्भों से यह बात प्रमाणित है।

(भारतवर्षीय इतिहास)

यदु=महाराज ययाति के पुत्र। ये देवयानी के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। शुक्राचार्य की कन्या देवयानी के गर्भ से ययाति के यदु और तुर्वसु नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए थे। ययाति के सब से बड़े पुत्र यदु ही थे। एक समय ययाति शुक्राचार्य के शाप से जराग्रस्त हो गये थे। ययाति के बहुत प्रार्थना करने पर शुक्राचार्य ने कहा—"दूसरे की सम्मति से तुम अपनी वृद्धावस्था को उसे दे कर युवा हो सकते हो" ययाति ने पहले यदु से अपनी वृद्धावस्था लेने के लिये कहा। यदु ने उनके उत्तर में साफ नाहीं कर दी। इससे क्रुद्ध हो कर ययाति ने यदु को शाप दिया कि तुम हमारे पुत्र हो कर भी अपनी अवस्था नहीं दे सकते। इस कारण तुम और तुम्हारे वंशज कोई भी राज्याधिकारी नहीं हो सकेंगे। इन्हींसे यादव वंश की उत्पत्ति हुई है।

यदुवंश=यदु के पुत्रों में क्रोष्टु और सहस्रजित् का वंश विशेष प्रसिद्ध है। सहस्रजित् के पुत्र का नाम हैहय था। हैहय से दसवें पुरुष में कार्तवीर्यार्जुन उत्पन्न हुआ था। दत्तात्रेय की आराधना से इन्हें वर मिला था। कतिपय पुराणों में दत्तात्रेय विष्णु के अवतार लिखे गये हैं। कार्तवीर्य ने दत्तात्रेय से अधर्म द्वारा सेवा का दूर करना, धर्म द्वारा पृथिवी का जीतना, शत्रु से पराजित न होना, भुवनविख्यात पुरुष के द्वारा अपनी मृत्यु और युद्धक्षेत्र में हज़ार बाहु की प्राप्ति आदि का वर पाया था। कार्तवीर्य ने दस हज़ार यज्ञ किये थे और सप्तद्वीपा वसुमती को अपने अधिकार में कर लिया था। उनके राज्य में किसीके द्रव्य को कोई नहीं चुराता, तथा कोई दुःखी भी नहीं होता। वे धर्म से राज्य पालन करते थे। एक समय वे नर्मदा में जलक्रीड़ा करते थे, इसी समय लङ्काधिपति रावण ने उनकी राजधानी पर आक्रमण किया, इससे क्रुद्ध हो कर इन्होंने रावण को पशुवों के समान बाँध रखा था। कर्कोटकवंशी नागों को परास्त कर के इन्होंने माहिष्मती नगरी की स्थापना की थी। ८५ हज़ार वर्ष राज्य करने के पश्चात् ये परशुराम के हाथ से मारे गये। कार्तवीर्य के सौ पुत्रों में से जयध्वज आदि पाँच पुत्र जीवित थे। जयध्वज अवन्ती के राजा थे। उनके तालजङ्घ नामक एक पुत्र था। तालजङ्घ के भी सौ पुत्र थे और वे भी तालजङ्घ नाम ही से परिचित होते थे। उनमें से अधिकांश के सगर के हाथ मारे जाने पर भरत को राज्य मिला, भरत के पुत्र का नाम वृष था। वृष के पुत्र मधु और मधु के वृष्णि आदि एक सौ पुत्र उत्पन्न हुए। इसी वंश की यदु के पश्चात् यादव संज्ञा हुई। इस वंश की मधु से माधव और वृष्णि से वृष्णि संज्ञा हुई। इसी हैहयवंश ही की वीतिहोत्र, सुव्रत, भोज, अवन्ति, शौण्डिकेय, तालजङ्घ, भरत और सुजात आदि अनेक शाखाएँ हुईं। यदु के दूसरे पुत्र क्रोष्टु की माद्री और गान्धारी नाम की दो स्त्रियाँ थीं। क्रोष्टु के पुत्रों में अनमित्र, युधाजित्, देवमीढुष और वृजिनीवान ये प्रसिद्ध हैं। वृजिनीवान के वंशज शशबिन्दु चतुर्दश रत्नों के स्वामी और चक्रवर्ती हुए थे। शशबिन्दु की दस हज़ार स्त्रियाँ थीं और एक एक स्त्री से एक एक लाख पुत्र उत्पन्न हुए थे। इनके प्रपौत्र उशना ने एक सौ अश्वमेध यज्ञ किये थे। उशना के पौत्र का नाम ज्यामघ था ये बड़े स्त्रैण थे। इनकी स्त्री का नाम शैब्या था। उस समय किसी बड़े स्त्रीवश मनुष्य की तुलना करनी होती तो ज्यामघ से की जाती थी। यद्यपि ज्यामघ की कोई सन्तति नहीं थी, परन्तु स्त्री के भय से वे विवाह नहीं कर सके थे। एक समय राजा ज्यामघ ने शत्रुसेना के साथ युद्ध करते करते एक नगर पर आक्रमण किया। नगरवासी सभी भाग गये। एक सुन्दरी राजकन्या किसी प्रकार नहीं भाग सकी, ब्याह करने की इच्छा से ज्यामघ उसे अपने घर ले आये। परन्तु उस कन्या को देखते ही जब रानी शैब्या ने त्योरी चढ़ायी, तब ज्यामघ ने अपना अभिप्राय छिपा कर कहा—मैं इसे अपनी पतोहू बनाने के लिये लाया हूँ। उस समय भी ज्यामघ को कोई पुत्र नहीं था। जब ज्यामघ को पुत्र हुआ तब

उसीसे उस कन्या का व्याह हुआ था। उस पुत्र का नाम ज्यामघने विदर्भ रखा था। विदर्भ ने पिता की आज्ञा से बड़ी अवस्था वाली कन्या को व्याहा था। इसी वंश में सात्वत उत्पन्न हुए थे। सात्वत के सात पुत्र थे। उनमें भज्यमान, अन्धक, वृष्णि, देवावृध आदि अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। देवावृध और उनके पुत्र बभ्रु की पुराणों में बड़ी प्रशंसा लिखी है। इनके सम्बन्ध में एक श्लोक कहा जाता है—"बभ्रुः श्रेष्ठो मनुष्याणां देवैर्देवावृधः समः" अर्थात् बभ्रु मनुष्यों में श्रेष्ठ हैं तथा देवावृध देवों के तुल्य हैं। इनके उपदेश से कितने ही मनुष्यों ने मोक्ष पाया था। विदर्भ के एक दूसरे पुत्र का नाम लोमपाद था। ये अङ्गदेश के राजा थे। राजा दशरथ के साथ इनकी मित्रता थी। एक बार लोमपाद के पाप से उनके राज्य में बारह वर्ष तक निर्वर्षण रहा अतएव उन्होंने वेश्याओं के द्वारा लुभा कर ऋष्यश्रृङ्ग मुनि को अपने देश में बुलाया जिससे उनके राज्य में वृष्टि हुई। दशरथ की कन्या को जिसे लोमपाद ने दत्तक लिया था मुनि को उन्होंने व्याह दी। सात्वत के दूसरे पुत्र महाभोज भी बड़े धर्मात्मा थे। उन्हींसे भोज वंश की सृष्टि हुई। इसी वंश में सुप्रसिद्ध राजा श्वफल्क उत्पन्न हुए थे, जहाँ वे रहते थे वहाँ व्याधि तथा अनावृष्टि का भय नहीं रहता था। एक बार काशी राज्य में तीन वर्ष तक वृष्टि नहीं हुई, इसलिये काशीराज श्वफल्क को अपनी राजधानी में ले गये। श्वफल्क के आते ही काशी राज्यमें बड़ी वृष्टि हुई। काशी-राज ने अपनी कन्या गान्दिनी को उनसे व्याह दिया। उसी गान्दिनी के गर्भ से अक्रूर का जन्म हुआ था। वृष्णि के वंश में प्रसेन और सत्राजित का जन्म हुआ था। स्यमन्तक मणि के उपाख्यान प्रसङ्ग में इन दोनों से पुराणों के वक्ता तथा श्रोता मात्र परिचित हैं। सूर्य की उपासना करने से सत्राजित को स्यमन्तक मणि प्राप्त हुआ था। उस मणि को गले में पहन कर सत्राजित द्वारकापुरी में गये, उस मणि को देख कर यादव चकित हो गये। श्रीकृष्ण ने भी कहा—राजा उग्रसेन के गले ही में इस मणि की शोभा होती। उस मणि पर सभी की स्पृहा देख कर तथा श्रीकृष्ण के माँगने पर नहीं नहीं कहा जा सकता, यह समझ कर सत्राजित ने वह मणि अपने छोटे भाई प्रसेन को दे दिया। जो कोई शुद्धता और यत्नपूर्वक उस मणि को रखता उसे उस मणि से आठ भार सुवर्ण प्रतिदिन प्राप्त होता था और उस मणि के प्रभाव से राज्य के समस्त विघ्न दूर होते थे। परन्तु यदि कोई शरीर की अशुद्धावस्था में उस मणि को धारण करता तो उसका नाश हो जाता। एक दिन अशुद्ध अवस्था ही में उस मणि को धारण कर प्रसेन अहेर खेलने बन में गये और वे वहाँ एक सिंह के द्वारा मारे गये। उस सिंह को जाम्बवान् ने मारा। इस प्रकार वह जाम्बवान् के हाथ में गया। परन्तु इस बात को कोई भी द्वारका-वासी नहीं जानता था। उस मणि के विषय में श्रीकृष्ण को कलङ्क लगा। सब लोगों का यह विश्वास दृढ़ हो गया कि श्रीकृष्ण ही ने प्रसेन को मार कर मणि ले लिया है। इस कलङ्क को दूर करने के लिये श्रीकृष्ण मणि ढूँढ़ने निकले। श्रीकृष्ण ने ढूँढ़ढाँढ़ कर के अन्त में जाम्बवान् को पाया। इक्कीस दिन तक श्रीकृष्ण का जाम्बवान् से मल्लयुद्ध हुआ। युद्ध में जाम्बवान् पराजित हुआ और वह मणि श्रीकृष्ण को मिल गया। जाम्बवान् ने अपनी कन्या भी श्रीकृष्ण को व्याह दी। श्रीकृष्ण का कलङ्क दूर हुआ। सत्राजित ने श्रीकृष्ण पर कलङ्क लगाया था, अतएव अपने कर्म से लज्जित हो कर उन्होंने भी अपनी कन्या सत्य-भामा का व्याह श्रीकृष्ण से कर दिया। स्यमन्तक मणि पर सत्राजित ही का अधिकार रहा। पहले सत्यभामा से शतधन्वा, कृतवर्मा और अक्रूर विवाह करना चाहते थे। अतः श्रीकृष्ण के साथ सत्यभामा के व्याही जाने से उन लोगों ने अपना अपमान समझा। उसी अपमान का संशोधन करने के लिये शतधन्वा ने सत्राजित को मार डाला और स्यमन्तक मणि को ले लिया। इसी समय पाण्डवों के जतु-गृह-दाह के उपलक्ष में श्रीकृष्ण वारणावत नगर

में गये थे। सत्यभामा ने श्रीकृष्ण के समीप जा कर अपने पिता के मारे जाने तथा मणि के अपहरण का वृत्तान्त कहा। तदनन्तर श्रीकृष्ण ने शतधन्वा को मार डाला परन्तु स्यमन्तक मणि उनको नहीं मिल सका क्योंकि शतधन्वा ने पहले ही वह मणि अक्रूर को दे दिया था। अक्रूर ने जब मणिरक्षा का दूसरा उपाय न देखा तब उन्होंने श्रीकृष्ण को वह मणि दे दिया। उस मणि पर बहुतों की आँखें लगी थीं इस कारण श्रीकृष्ण ने उसे अक्रूर के पास ही रहने दिया। श्रीकृष्ण ने कहा—राज्य की रक्षा के लिये आप इसे अपने पास ही रखें। सात्वतपुत्र अन्धक के कुकुर, भज्यमान आदि पुत्र उत्पन्न हुए थे। कुकुर के वंश में उग्रसेन तथा कंस आदि हुए। भज्यमान से देवमीढुष और देवमीढुष के पुत्र शूर हुए। शूर की स्त्री का नाम मारिषा है। मारिषा के गर्भ से वसुदेव आदि दस पुत्र और पृथा, श्रुतदेवा आदि पाँच कन्याएँ उत्पन्न हुई थीं। कुन्तिभोज वसुदेव के पिता शूर के मित्र थे। कुन्तिभोज के कोई वंशधर नहीं था इस कारण शूर ने उन्हें अपनी पुत्री पृथा पुत्रीरूप से दे दी। इसी पृथा का नाम कुन्ती पड़ा था और यह पाण्डु को ब्याही गयी थी। वसुदेव की दूसरी बहिन श्रुतदेवा कारुषवृद्धशर्मा को ब्याही गयी थी, उसके दो पुत्र हुए थे; दन्तवक्र और महाशूर। श्रुतकीर्ति केकयराज को ब्याही गयी थी उसके प्रतर्दन आदि केकय नामक पाँच पुत्र उत्पन्न हुए थे। राजाधिदेवी को अवन्तीराज ने ब्याहा था। उससे बिन्दु और अनुविन्दु नाम के दो पुत्र उत्पन्न हुए थे। श्रुतश्रवा से चेदिराज दमघोष का विवाह हुआ था। उससे शिशुपाल का जन्म हुआ था। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में यही शिशुपाल श्रीकृष्ण के हाथ से मारा गया था। देवकी आदि कंस की सात बहिनें वसुदेव को ब्याही गयी थीं। श्रीकृष्ण और बलराम ये ही दो वसुदेव के पुत्र थे। रोहिणी के गर्भ से बलराम और देवकी के गर्भ से श्रीकृष्ण उत्पन्न हुए थे। कंस के कारागार में श्रीकृष्ण का जन्म हुआ था। कंस को मालूम था कि देवकी के आठवें गर्भ से हमारी मृत्यु होगी। इसी कारण वसुदेव और देवकी को उसने क़ैद कर लिया था और उनकी सन्तानों को उत्पन्न होते ही वह मरवा डालता था। परन्तु श्रीकृष्ण के जन्म के समय सभी पहरुए सो गये थे, वसुदेव श्रीकृष्ण को गोकुल में नन्द के घर रख आये। संयोगवश उसी दिन नन्द के एक कन्या उत्पन्न हुई थी। पुत्र को रख कर और कन्या को ले कर वसुदेव मथुरा के कारागार में चले आये। वह कन्या स्वयं योगमाया थी। कंस ने योगमाया को मरवा डालने की इच्छा से उसे पत्थर पर पटकने की आज्ञा दी। पत्थर के ऊपर पटकने के समय योगमाया आकाश में जा कर अन्तर्हित हो गयी, और उस समय उसने कहा—"तुम्हारा नाश करने वाला गोकुल में बढ़ रहा है।" तब से नन्द-पालित श्रीकृष्ण को मारने के लिये कंस ने अनेक चेष्टा कीं परन्तु उसे किसी एक में भी सफलता प्राप्त नहीं हुई। अन्त में योगमाया की भविष्य वाणी पूर्ण हुई। श्रीकृष्ण के हाथ कंस मारा गया। अपने पिता उग्रसेन को राज्य-च्युत कर के कंस स्वयं सिंहासन पर बैठा था। कंस के मारे जाने पर उग्रसेन को पुनः राज्य मिला। देवकी और वसुदेव बन्धन-मुक्त हुए। श्रीकृष्ण के सोलह हज़ार एक सौ स्त्रियाँ थीं। उनमें आठ पटरानी थीं। श्रीकृष्ण के आठ अयुत और आठ लक्ष पुत्र हुए थे और उन पुत्रों की वंशवृद्धि से यदुवंश में असंख्य मनुष्य हो गये थे। यदुवंश की संख्या नहीं की जा सकती। अन्त में यदुवंशी उच्छृङ्खल हो कर ब्राह्मणशाप से दग्ध हो गये।

यम=सूर्य के पुत्र। संज्ञा के गर्भ से इनकी उत्पत्ति हुई थी। (देखो छाया)

यमसंहिता=इस संहिता में ७८ श्लोक हैं। विधि निषेध तथा प्रायश्चित्त तत्त्व ही इस संहिता में आलोचित हुए हैं। इस संहिता में रजक, चर्मकार, नट, कैवर्त, भिल्ल आदियों को अन्त्यज वर्ण लिखा है। इस संहिता में सन्ध्या समय आहार करना, सोना, वेद पाठ करना आदि कामों को न करने की आज्ञा दी गयी है। इस संहिता के

प्रवर्तक यम हैं। परन्तु कौन यम इसका पता नहीं मिलता। कोई कहते हैं यम नामक ऋषि ने इस संहिता को निबद्ध किया है, परन्तु कतिपय विद्वान् इस पक्ष को सत्पक्ष नहीं कहते। वे यम नामक ऋषि को इस संहिता का कर्ता मानते हैं। पाश्चात्य पण्डितों के मत से यह संहिता नवीन है।

ययाति=चन्द्रवंशी राजा नहुष के पुत्र। इनकी दो स्त्रियाँ थीं देवयानी और शर्मिष्ठा। देवयानी दैत्यगुरु शुक्राचार्य की कन्या थी और शर्मिष्ठा दैत्यपति वृषपर्वा की। देवयानी के गर्भ से यदु और तुर्वसु नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए थे। शर्मिष्ठा के गर्भ से द्रुह्यु, अनु और पुरु नामक तीन पुत्र उत्पन्न हुए थे। शुक्राचार्य के शाप से ययाति जराग्रस्त हुए थे। ययाति ने अपनी जरा पुत्रों को देने की इच्छा से सब पुत्रों से सम्मति पूछी, शर्मिष्ठागर्भजात पुरु के अतिरिक्त और किसीने भी जरा लेना स्वीकृत नहीं किया। आज्ञा उल्लङ्घन करने वाले पुत्रों को ययाति ने शाप दिया और पुरु को अपनी जरा अवस्था दे कर वे बोले कि मैं तुम्हारे यौवन से कुछ दिनों तक विषय भोग करता हूँ पीछे एक हज़ार वर्ष होने पर मैं तुम्हारा यौवन तुम्हें लौटा दूँगा और अपनी जरा ले लूँगा। सहस्र वर्ष बीतने पर ययाति ने अपने पुत्र पुरु को बुला कर कहा—मैंने हज़ार वर्ष तक विषय सुख भोगे, परन्तु मेरी तृप्ति नहीं हुई मालूम पड़ता है अग्नि में घृताहुति के समान विषय सुख से कभी किसीकी तृप्ति नहीं हो सकती अतएव अब विषय सुख भोगना व्यर्थ है—यह कह कर ययाति ने पुत्र को यौवन लौटा दिया और वे स्वयं वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण कर के कठिन तपस्या करने लगे। उसी तपस्या के फल से ययाति स्वर्ग में गये और वहाँ कुछ दिनों तक इन्होंने सुख से वास किया। पुनः ये देवराज इन्द्र के शाप से स्वर्गभ्रष्ट हुए, स्वर्गभ्रष्ट हो कर अन्तरिक्ष पथ से आने के समय उनकी अष्टशिवि आदि अपने दौहित्रों से भेंट हुई। उन लोगों ने अपने अपने पुण्यफल से ययाति को स्वर्ग में भेज दिया और उन्हींके पुण्यबल से ययाति ने मुक्ति लाभ किया।

ययातिकेसरी=मगध के एक हिन्दू राजा। जिस समय बौद्धों के अत्याचार और उत्पीडनों से उत्कलवासी व्यस्त हो रहे थे, जिस समय बौद्ध धर्म की प्रज्वलित आग हिन्दू धर्म को धाँय धाँय कर के जला रही थी उस समय मगधराज ययातिकेसरी उत्कल देश में गये और उन्होंने उत्कल में पुनः हिन्दू धर्म की प्रतिष्ठा की। वीर और धर्मप्रेमी ययातिकेसरी के प्रभाव से असंख्य बौद्धमन्दिरों में हिन्दू देवताओं की मूर्तियाँ स्थापित की गयीं। ये केसरी वंश के आदिपुरुष थे।

(भारतवर्षीय इतिहास)

ययातिपुर=केसरी वंश के आदि राजा ययातिकेसरी ने इस नगर की प्रतिष्ठा की थी। ६ वीं सदी के प्रारम्भ में यह नगर बसाया गया था और इसी नव निर्मित नगर में केसरी वंश की राजधानी स्थापित हुई। यह नगर वैतरणी नदी के तीर पर स्थित है। इस समय ययातिपुर की याजपुर नाम से प्रसिद्धि है।

(भारतवर्षीय इतिहास)

यवनाचार्य=ये एक ज्योतिष के प्रसिद्ध विद्वान् थे। इनके बनाये हुए ग्रन्थ का नाम "यवनसिद्धान्त" है। बलभद्र नामक एक ज्योतिर्वेत्ता ने "सद्धायनरत्न" नामक एक ग्रन्थ बनाया है, उस ग्रन्थ में ग्रन्थकार ने यवनाचार्य का परिचय इस प्रकार दिया है। यवनाचार्य ने जातक स्कन्ध विषयक "ताजिक" नामक एक ग्रन्थ बनाया है। यह ग्रन्थ फारसी भाषा में था। मेवाड़ के महाराणा संग्रामसिंह ने इस ग्रन्थ का संस्कृत भाषा में अनुवाद करवाया है। इनकी प्रसिद्धि यवन नाम से भी है।

यशवन्तसिंह बघेले=ये तिरवा ज़िला कानपुर के रहने वाले थे। इनका जन्म सं० १८५५ में हुआ था। ये संस्कृत, भाषा और फारसी के बड़े पण्डित थे। इन्होंने नायिकाभेद का शृङ्गारशिरोमणि नामक ग्रन्थ, अलङ्कार का भाषाभूषण और अश्वचिकित्सा का शालिहोत्र नामक तीन ग्रन्थ बनाये हैं। सं० १८७१ में इनका स्वर्गवास हो गया। (शिवसिंहसरोज)

यशवन्तसिंह=(१) मारवाड़ के एक राजा । ये महाराज गजसिंह के द्वितीय पुत्र थे । राजपूताने की चिर प्रचलित रीति के अनुसार महाराज गजसिंह के बड़े पुत्र अमरसिंह ही राज्य के अधिकारी थे। परन्तु अमरसिंह की उद्दण्डता के कारण महाराज गजसिंह ने उनको राज्याधिकार से च्युत कर के देशनिकाला दे दिया, और यशवन्तसिंह को अपना उत्तराधिकारी बनाया।

महाराज गजसिंह की मृत्यु होने पर यशवन्तसिंह का मारवाड़ की गद्दी पर अभिषेक हुआ। यशवन्तसिंह उदयपुर की राजकन्या के गर्भ से उत्पन्न हुए थे । यशवन्तसिंह विद्याप्रेमी और धार्मिक थे । भाट कवि कहते हैं कि राजा यशवन्तसिंह एक आदर्श राजा थे, उन्होंने अपने ऐश्वर्य से देश की मूर्खता और अज्ञानता दूर की थी । उनकी कृपा से अनेक हिन्दू धर्मशास्त्र के ग्रन्थ भी बन गये थे।

इनके पिता और पितामह का दक्षिण देश रणस्थल था । यशवन्तसिंह भी इसी देश को अपना रणस्थल बना कर अपने महत् चरित्रों को प्रकाशित करना चाहते थे। इसके लिये इन्हें सहायता की आवश्यकता थी । यदि उस समय बादशाह महाराज यशवन्तसिंह के महत् चरित्रों को कुछ भी समझ सकते तो, इसमें सन्देह नहीं कि इतिहास बदल जाता । परन्तु बादशाह तो अपनी मौज में मस्त थे, उनके पुत्र ही जो चाहते सो करते थे । इसी कारण बादशाह ने सब से पहले उनको गोंड़वाने में भेजा । औरङ्गज़ेब के अधीनस्थ विशाल सेना के एक अंश का सेनापति हो कर महाराज यशवन्तसिंह युद्धकार्य में लिप्त रहा करते थे। यद्यपि इन युद्धों में ये स्वाधीन नहीं थे, तथापि बादशाह की सहायता के लिये अन्य सेनापतियों की अपेक्षा इनकी तथा इनकी सेना की ही वीरता प्रकाशित हुई थी । इस प्रकार राठौर वीर यशवन्तसिंह की शूरता वीरता आदि प्रकाशित होने लगी । इसी समय बादशाह बीमार पड़े, उनके रोग बढ़ने के साथ ही साथ यशवन्तसिंह का भाग्य भी बढ़ने लगा । बादशाह शाहजहाँ जब सान्निपातिक रोग से पीड़ित हुए तब उन्होंने दारा को अपना प्रतिनिधि बनाया। दारा ने यशवन्तसिंह की बहादुरी का परिचय पा कर उन्हें पंचहज़ारी का ख़िताब दिया, और मालवा प्रदेश का अपना प्रतिनिधि बनाया ।

बादशाह के रोग बढ़ने के साथ ही उनके पुत्रों में राज्य पाने की इच्छा प्रबल हो उठी। इस समय वृद्ध बादशाह चारो ओर अन्धकार ही अन्धकार देखने लगे । उस समय बादशाह ने राजपूतों ही को अपना रक्षक बनाया । औरङ्गज़ेब को दमन करने के लिये राठौर वीर यशवन्तसिंह तीस सहस्र राजपूत और मुगल सेना के सेनापति हो कर आगरे से चले। उज्जैन से लगभग आठ कोस दूर पर जब इनकी सेना पहुँची, तब ही पता मिला कि औरङ्गज़ेब भी पास ही पहुँच गया है। अतएव यशवन्तसिंह ने अपनी सेना वहीं ठहरायी। देखते देखते विद्रोहियों की सेना नर्मदा पार कर बहुत पास आ गयी । परन्तु यशवन्तसिंह ने उसकी कुछ भी परवाह न की । मौक़ा पा कर औरङ्गज़ेब की सेना मुराद की सेना से मिल कर बलवान् हो गयी, तौ भी यशवन्तसिंह ने किसी प्रकार की बाधा विद्रोहियों को न दी। वे समझते थे कि मैं बात की बात में विद्रोहियों को दमन कर लूँगा। परन्तु यशवन्तसिंह के इस अभिमान का फल बड़ा ही विषम हुआ । इसी उपेक्षा के फल से इनका सम्मान और गौरव नष्ट हो गया। औरङ्गज़ेब ने यशवन्तसिंह की अधीनस्थ मुगल सेना को षड्यन्त्र कर के अपने वश में कर लिया । जब यशवन्तसिंह ने लड़ाई करने की आज्ञा दी, उसी समय मुगल सेना औरङ्गज़ेब के पक्ष में जा कर खड़ी हो गयी परन्तु इससे यशवन्तसिंह हताश नहीं हुए वे अपनी तीस हज़ार राजपूत सेना ले कर युद्ध के लिये खड़े हुए। यशवन्तसिंह भयङ्कर रूप धारण कर के रणभूमि में निर्भय विचरण करने लगे तथा यवनसेना का संहार करने लगे । उस युद्ध में १० हज़ार मुगल मारे गये और मुराद तथा औरङ्गज़ेब बड़े कष्ट से प्राण ले कर भागे। उस समय

यशवन्तसिंह भूखे सिंह के समान अपने शिकार को इधर उधर ढूँढ़ने लगे।

राजा यशवन्तसिंह युद्ध से राजधानी में लौट आये। राज्य में लौट आने पर एक बड़ा विषम काण्ड उपस्थित हुआ। मेवाड़ की राजकन्या से यशवन्तसिंह का ब्याह हुआ था उसने जब सुना कि महाराज रणस्थल से शत्रुओं का नाश किये बिना चले आये हैं, तब उसने अपने घर के किवाड़ बन्द करा दिये और कहलाया—महाराणा के दामाद या तो रणस्थल में मर कर स्वर्ग चले जाते हैं, नहीं तो शत्रुओं का नाशकर घर लौटते हैं। महाराणा की पुत्री ऐसे पति का मुँह देखना नहीं चाहती जो रणस्थल से बिना शत्रुओं को नष्ट किये लौट आता है। यशवन्तसिंह बड़ी विपद में पड़े। महारानी ने बिना खाये पीये नौ दिन बिता दिये। अन्त में महारानी की माता ने उसे समझाया कि अब महाराज जायँगे, और पुनः अपने गौरव को लौटावेंगे, महाराज यशवन्तसिंह मालवे चले गये। इसी बीच में वृद्ध बादशाह का भाग्य सूर्य अस्त हो गया वे क़ैद कर लिये गये और औरङ्गज़ेब स्वयं बादशाह बन गया।

यशवन्तसिंह दारा के पक्ष में थे। औरङ्गज़ेब अपने अन्य शत्रुओं को दमन कर के दारा को दमन करने के लिये मेरता की ओर बढ़ा क्योंकि उन दिनों दारा उधर ही भटकता फिरता था। यशवन्तसिंह की सेना दारा के साथ थी। औरङ्गज़ेब ने मारवाड़राज से कहलाया कि यदि आप चुप हो जायँ तो आपके सब अपराध क्षमा किये जायँगे और साथ ही आपको गुजरात की सूबेदारी भी दी जायगी। यशवन्तसिंह ने औरङ्गज़ेब के इस प्रस्ताव को मान लिया। वे दक्षिण की ओर भेज दिये गये। वहाँ वे शिवा जी से मिल कर काम करने लगे। कहते हैं यशवन्तसिंह के प्रबन्ध ही से सेनापति शाइस्ताख़ाँ मारा गया था। औरङ्गज़ेब यशवन्तसिंह के सब कुचक्र जानता था। तौभी शाइस्ताख़ाँ के मारे जाने पर उसने यशवन्तसिंह को प्रधान सेनापति बनाया। यह उसकी एक चाल थी यशवन्तसिंह को इस समय उभाड़ना उसने उत्तम न समझा। परन्तु दो वर्ष बीतने पर औरङ्गज़ेब ने यशवन्तसिंह को पदच्युत कर के वह पद आमेरराज जयसिंह को दे दिया। जयसिंह से अप्रसन्न हो कर बादशाह ने पुनः प्रधान सेनापति का पद यशवन्तसिंह ही को दिया था। प्रधान सेनापति का पद पा कर यशवन्तसिंह मुअज़्ज़म के साथ मिल कर षड्-यन्त्र करने लगे। इसकी ख़बर पाते ही बादशाह ने दिलेरख़ाँ को अपना प्रधान सेनापति बनाया। प्रधान सेनापति के मार्ग में यशवन्त-सिंह के द्वारा अनेक विघ्न पड़ने लगे अतएव बादशाह ने उन्हें गुजरात का सूबेदार बना कर भेज दिया। अनन्तर बादशाह ने अफ़ग़ानों को दमन करने के लिये यशवन्तसिंह को काबुल भेज दिया। वहीं हिन्दूकुश की तराई में सन् १६८१ में इनका परलोकवास हुआ।

(टाडस राजस्थान)

(२) मारवाड़ के एक राजा। ये महाराज तख़्तसिंह के पुत्र थे। उनकी मृत्यु होने पर सन् १८७१ ई० में इनका जोधपुर के राज्यासन पर अभिषेक हुआ। इसी समय से निःशङ्क हो कर ये मारवाड़ का शासन करने लगे। महाराज ने अपनी नीतिज्ञता बुद्धिमत्ता आदि के कारण गवर्नमेण्ट को प्रसन्न किया। अपने राज्य की सुव्यवस्था की, सामन्तों को प्रसन्न किया और अन्य राजकीय उत्तम प्रबन्ध किये।

सन् १८७५ ई० में जब स्वर्गीय सम्राट् प्रिन्सऑफ़वेल्स के रूप में पधारे थे, उस समय भारत के बड़े बड़े राजा कलकत्ते बुलाये गये थे। कलकत्ते ही में मारवाड़पति महाराज यशवन्त-सिंह को के.सी. एस्. आई., की उपाधि मिली। आपको यह उपाधि स्वयं प्रिन्सऑफ़वेल्स के करकमलों से मिली थी। दिल्ली के पहले दर-बार में भी आप उपस्थित हुए थे और वहाँ आपका बड़ा आदर हुआ था।

(टाडस राजस्थान)

यशोदा—नन्द की पत्नी। इन्होंने गोकुल में श्रीकृष्ण का पालन किया था। इनके पूर्व जन्म के विषय में अनेक प्रकार के मत प्रचलित हैं।

सती ने पति की निन्दा सुन कर दक्ष यज्ञ में प्राण त्याग किया । तदनन्तर पुनः उनको पाने के लिये उनकी माता प्रसूति ने हिमालय में बड़ी कठिन तपस्या की थी । तपस्या से प्रसन्न हो कर भगवती ने कहा—"मैं द्वापर के अन्त में पृथिवी में उत्पन्न होऊँगी परन्तु उत्पन्न हो कर मैं आप लोगों की कन्या बन कर रह नहीं सकती ।" यह कह कर भगवती अन्तर्द्धान हो गयी । दक्ष नन्दरूप से और प्रसूति यशोदारूप से गोकुल में उत्पन्न हुए थे ।

(भागवतपुराण)

वसुश्रेष्ठ द्रोण और उसकी स्त्री धरा भगवान् का दर्शन करने के लिये गन्धमादन पर्वत पर तपस्या करते थे । उनकी तपस्या से प्रसन्न हो कर भगवान् ने कहा—तुम लोग दूसरे जन्म में हमारा दर्शन कर सकोगे । वही द्रोण नन्दरूप से और धरा यशोदारूप से उत्पन्न हुए थे ।

(ब्रह्मवैवर्तपुराण)

यशोदानन्द कवि=ये भाषा के एक कवि थे । संवत् १८२८ में इनका जन्म हुआ था । इन्होंने एक भाषा का ग्रन्थ बनाया है जिसका नाम " बरवै नायिकाभेद " है । यह ग्रन्थ बरवै छन्दों ही में लिखा गया है ।

यशोधर्म=उज्जयिनीपति विक्रमादित्य का नामान्तर । (देखो विक्रमादित्य)

यशोवर्मन्=कनौज के प्रसिद्ध राजा । विख्यात कवि भवभूति इन्हींके सभापण्डित थे । इन्होंने गौड़ देश को जीत कर नर्मदा के किनारे कार्तवीर्य के नगर को देखा था । वहाँ से ये मारवाड़ तथा थानेश्वर गये थे । यहाँ से कुरुक्षेत्र हो कर अयोध्या होते अपनी राजधानी कनौज में उपस्थित हुए । काश्मीराधिपति ललितादित्य के साथ इनका युद्ध हुआ था और इस युद्ध में हार कर इन्होंने ललितादित्य से सन्धि कर ली । इन्हीं यशोवर्मा ने "रामाभ्युदय " नामक काव्य बनाया है ।

यशोवती=काश्मीरराज दामोदर की स्त्री । दामोदर अपने पितृहन्ता श्रीकृष्ण को मारने के लिये कुरुक्षेत्र के पास युद्ध करने गये और उसी युद्ध में वे मारे गये । दामोदर के मारे जाने पर उनकी गर्भवती स्त्री यशोवती काश्मीर के राजसिंहासन पर आरूढ़ हुई । यशोवती ने काश्मीर का पालन बड़ी खूबी से किया था । इन्हींके पुत्र द्वितीय गोनर्द थे ।

(राजतरङ्गिणी)

याजलि=आयुर्वेदज्ञ एक प्राचीन ऋषि ।

याज्ञवल्क्य=ब्रह्मज्ञ और धर्मशास्त्रकार एक ऋषि । इन्होंने जनक को ब्रह्मोपदेश दिया था । (देखो याज्ञवल्क्यसंहिता)

याज्ञवल्क्यसंहिता=इस संहिता के प्रवर्तक योगीश्वर याज्ञवल्क्य हैं । उन्होंने सामश्रवा आदि मुनियों से वर्णाश्रम धर्म, व्यवहारशास्त्र तथा प्रायश्चित्त आदि का उपदेश दिया है । राजर्षि जनक की राजसभा में भी एक याज्ञवल्क्य का परिचय पाया जाता है । याज्ञवल्क्यसंहिताकार तथा जनक के सभासद दोनों याज्ञवल्क्य एक हैं या दो हैं इस विषय में मतभेद है । कोई कहते हैं जनक के सभासद याज्ञवल्क्य ही इस धर्मसंहिता के प्रवर्तक हैं । कोई कहते हैं—उनके वंशधर दूसरे याज्ञवल्क्य ने इस संहिता को बनाया था । परन्तु इस संहिता के प्रारम्भ के दो श्लोकों से विदित होता है कि इस संहिता के कर्ता मिथिला के रहने वाले योगीश्वर याज्ञवल्क्य थे । अतएव जनकराजसभा के याज्ञवल्क्य ही इस संहिता के कर्ता माने जा सकते हैं । इस संहिता में राजधर्म व्यवहारविधि, दाय भाग आदि विषयों में जो तत्त्व लिखे गये हैं उनको देखने से यह बात स्पष्ट ही मालूम होती है कि यह संहिता किसी आदर्श राजा के शासनसमय में बनायी गयी होगी, इस संहिता में तीन अध्याय हैं और एक हज़ार बारह श्लोक हैं । पहले अध्याय में गर्भाधान, विवाह, यज्ञ, श्राद्ध और वर्णसङ्कर की उत्पत्ति लिखी है और भक्ष्याभक्ष्यप्रकरण, शुद्धिप्रकरण तथा अनेक प्रकार की पूजा का विधान भी वर्णित है । द्वितीय अध्याय में व्यवहारशास्त्र का विषय अर्थात् ऋण लेना, ऋण देना, प्रतिभू-ज़ामिन प्रकरण, साक्षिप्रकरण, लेख्यप्रकरण, दिव्यप्रकरण, दायभागप्रकरण, दण्डपारुष्यप्रकरण, साहसप्रकरण, सम्भूयसमु-

स्थानप्रकरण, स्त्रीसंग्रहप्रकरण आदि अनेक विषय लिखे हैं। तीसरे अध्याय में अशौचप्रकरण, आपद्धर्मप्रकरण, यतिप्रकरण, अध्यात्मप्रकरण, प्रायश्चित्तप्रकरण आदि बातों का उल्लेख किया गया है। याज्ञवल्क्यसंहिता का दायभागप्रकरण आज भी क़ानून के रूप में माना जाता है। दायभाग के वचनों को ले कर विज्ञानेश्वर भट्टारक ने "मिताक्षरा" और जीमूतवाहन ने "दायभाग" नामक ग्रन्थ सङ्कलन किया है। आज भी भारतवर्ष में पितृपितामह आदि स्वजन परित्यक्त धन मिताक्षरा और दायभाग के अनुसार ही बाँटा जाता है। इधर मिताक्षरा प्रचलित है और बङ्गदेश में दायभाग का आदर है। मनुसंहिता में उच्च वर्ण को निम्न वर्ण की कन्या से विवाह करने की आज्ञा है, परन्तु याज्ञवल्क्य ने उसे निषेध किया है।

(भारतवर्षीय इतिहास)

यास्काचार्य=महामुनि यास्क निरुक्त के कर्ता हैं। इनका बनाया निरुक्त इस समय भी प्रचलित है। इस समय इन्हींका बनाया निरुक्त ही वेदों के अर्थ करने का विद्वानों के लिये प्रधान साधन है। पाश्चात्य पण्डितों का अनुमान है कि ख्रीष्ट जन्म के पूर्व पाँचवीं शताब्दी में महामुनि यास्क विद्यमान थे। निरुक्त के देखने से मालूम पड़ता है कि महामुनि यास्क के पहले भी अनेक निरुक्तकार हो चुके थे। उनमें शाकपूणि, उर्णनाभ, स्थूलाष्ठिवी आदि कतिपय निरुक्तकारों का उल्लेख महामुनि यास्क ने किया है।

युगल कवि=ये भाषा के कवि थे। इनका जन्म सं० १७५५ में हुआ था। इनके बनाये हुए पद अति अनूठे और ललित हैं।

युगलकिशोर भट्ट=ये महाराज कैथल के रहने वाले और भाषा के कवि थे। इनका जन्म सं० १७६५ में हुआ था। ये महम्मदशाह बादशाह के यहां मुसाहिबों में थे। सं० १८०३ में इन्होंने अलङ्कारनिधि नामक एक अलङ्कार का ग्रन्थ बनाया था। इसमें ६६ अलङ्कारों के लक्षण तथा उनके उदाहरण बतलाये गये हैं। उसी ग्रन्थ में इन्होंने अपना वृतान्त दोहों में लिखा है—

" ब्रह्मभट्ट हौं जाति में, निपट अधीन निदान।
राजा पद मोंको दयो, महमदशाह सुजान॥
चारि हमारी सभा में, कोविद कवि मतिचारु।
सदा रहत आनँद बढ़े, रस को करत विचारु॥
मिश्र रुद्रमणि विप्रवर, औ सुखलाल रसाल।
शतंजीव गुणमान हैं, शोभित गुणनि विशाल॥"

युगराज कवि=ये भाषा के कवि थे। इनकी कविता बहुत ही सरस तथा मनोहर होती है।

युगलप्रसाद चौबे=ये भाषा के कवि थे। इन्होंने दोहावली नामक सरस और सुन्दर पुस्तक बनायी है। (शिवसिंहसरोज)

युधामन्यु=ये पाञ्चालदेश के राजा थे। महाभारत के युद्ध में इन्होंने पाण्डवों का पक्ष ग्रहण किया था। इनका ठीक नाम क्या था इसका पता नहीं है। ये युद्धक्षेत्र में शत्रुओं के प्रति क्रोधातुर हो कर युद्ध करते थे। इस कारण युधामन्यु नाम से इनकी प्रसिद्धि हो गयी थी। इनके दूसरे भाई का नाम उत्तमौजा था। ये दोनों भाई बड़े वीर और साहसी थे।

युधिष्ठिर=(१) चन्द्रवंशी सुप्रसिद्ध राजा। इनकी एक राजधानी इन्द्रप्रस्थ में और दूसरी हस्तिनापुर में थी। पाण्डवों में ये सब से बड़े थे। महाराज पाण्डु की ज्येष्ठ महारानी कुन्ती के गर्भ से युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन उत्पन्न हुए थे और दूसरी स्त्री माद्री के गर्भ से सहदेव और नकुल उत्पन्न हुए थे। दुर्वासाप्रदत्त वर के प्रभाव से कुन्ती ने धर्मराज के औरस से युधिष्ठिर को उत्पन्न किया था। (देखो कुन्ती)

युधिष्ठिर के जन्मसमय देववाणी हुई थी कि—यह पाण्डु का प्रथम पुत्र धार्मिकों में सर्वश्रेष्ठ विक्रमी सत्यवादी पृथिवी का चक्रवर्ती त्रिलोकविश्रुत यशस्वी तेजस्वी और व्रतपरायण तथा युधिष्ठिर नाम का होगा। अनन्तर मुनि के शाप से राजा पाण्डु की मृत्यु हुई, पिता की मृत्यु होने पर पाँचो पाण्डुपुत्र हस्तिनापुर आये, और भीष्म पितामह की देख रेख में रह कर धृतराष्ट्र पुत्रों के साथ लालित पालित और शिक्षित होने लगे। थोड़े ही दिनों में पाण्डव और कौरवगण अस्त्रविद्याविशारद हो गये। युधिष्ठिर महारथी हुए। शिक्षा समाप्त होने पर धृतराष्ट्र ने

युधिष्ठिर को युवराज बनाया। पिता के इस व्यवहार से असन्तुष्ट हो कर दुर्योधन पाण्डवों का सौभाग्य नष्ट करने की चेष्टा करने लगा। दुःशासन, कर्ण और शकुनि के साथ सलाह कर उसने कुन्ती के साथ पाण्डवों को वारणावत नगर में भस्म करा देने का प्रयत्न किया था, परन्तु इसका समाचार पा कर पाण्डव सजग हो गये और वहाँ से भाग गये। वहाँ से भाग कर पाण्डवगण कुछ दिनों तक एक सघन वन में रहे थे तदनन्तर द्रौपदी के स्वयम्वर के समय दरिद्र ब्राह्मण का वेष बना कर वे द्रुपद राज्य में उपस्थित हुए। निविड वन में रहने के समय भीम ने हिडिम्ब नामक राक्षस को मार कर उसकी भगिनी हिडिम्बा को व्याहा था। हिडिम्बा के गर्भ से घटोत्कच नामक एक बड़ा पराक्रमी पुत्र उत्पन्न हुआ था, द्रौपदीस्वयम्बर में अर्जुन ने लक्ष्य भेद कर के द्रौपदी को पाया और माता की आज्ञा के अनुसार पाँचो भाइयों ने द्रौपदी को व्याह लिया। एक भाई दो दिन द्रौपदी के घर में रहता था परन्तु अज्ञात वास या वनवास के समय द्रौपदी के घर में कोई नहीं रहा।

धृतराष्ट्र आदि कौरवों ने सुना कि पाण्डवों का विवाह द्रौपदी के साथ हुआ है। उस समय विदुर ने धृतराष्ट्र से कहा पाण्डव बड़े प्रतापी हैं, श्रीकृष्ण उनके मन्त्री हैं और उस पर भी इस समय पाञ्चालराज द्रुपद के साथ उनका घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया है। यदि इस समय उनको राज्य नहीं दिया जायगा तो निःसन्देह युद्ध होगा और शीघ्र ही कौरववंश का नाश हो जायगा। द्रोण और भीष्म ने विदुर की बातों का समर्थन किया था। यद्यपि कर्ण और दुर्योधन ने विदुर की बातों पर आपत्ति की, तथापि परिणामदर्शी धृतराष्ट्र ने उन लोगों की बातों पर ध्यान न दे कर विदुर के परामर्श को ग्रहण किया। धृतराष्ट्र की आज्ञा से विदुर रत्न, धन, सम्पत्ति ले कर द्रुपद और पाण्डवों के निकट गये और कुशलप्रश्न पूँछ कर उन्होंने रत्न,धन आदि उपहार दिये। विदुर ने द्रुपद से कहा—धृतराष्ट्र और कौरव इस विवाह संवाद को सुन कर बड़े प्रसन्न हुए हैं। कौरव पाण्डवों को देखने के लिये अत्यन्त उत्सुक हुए हैं। उनकी इच्छा है कि पाण्डव हस्तिनापुर में आवें। द्रुपद की आज्ञा तथा श्रीकृष्ण के परामर्श से द्रौपदी और कुन्ती को साथ ले कर पाण्डवगण श्रीकृष्ण और विदुर के साथ हस्तिनापुर में उपस्थित हुए। वहाँ पहुँच कर पाण्डवों ने भीष्मपितामह, धृतराष्ट्र आदि बड़ों को नमस्कार किया। धृतराष्ट्र ने पाण्डवों से कहा—तुमलोग आधा राज्य ले कर खाण्डवप्रस्थ में जा कर के रहो, ऐसा होने से दुर्योधन के साथ पुनः तुम लोगों का विवाद होने की सम्भावना न रहेगी। धृतराष्ट्र की आज्ञा सिर पर रख कर पाण्डव खाण्डवप्रस्थ को चले गये। वहाँ जा कर पाण्डवों ने इन्द्रप्रस्थ नामक एक सुन्दर नगर बनाया। एक दिन नारद मुनि वहाँ आये और उन्होंने सुन्द, उपसुन्द की कथा सुना कर द्रौपदी के लिये भाइयों में परस्पर विरोध न हो इस लिये एक नियम बना लेने के लिये उपदेश दिया।

नारद के सामने ही पाण्डवों ने प्रतिज्ञा की कि पाँचो भाइयों में से एक जब द्रौपदी के पास रहेगा, तब दूसरा कोई वहाँ नहीं जा सकेगा। जो कोई इस नियम का भङ्ग करेगा। उसे ब्रह्मचारी रह कर बारह वर्ष तक वन में रहना पड़ेगा। युधिष्ठिर के शासनसमय में प्रजा बड़ी सुखी थी, उस समय की पृथिवी सुखमयी और धन धान्य पूर्ण थी। अकस्मात् एक दिन वहाँ एक दुर्घटना हो गयी। युधिष्ठिर के घर में अस्त्र शस्त्र रखे रहते थे। अर्जुन अस्त्र लेने के लिये युधिष्ठिर के घर में सहसा चले गये। वहाँ द्रौपदी के साथ युधिष्ठिर बैठे थे। नियमभङ्ग करने के कारण अर्जुन को बारह वर्ष के लिये वन को जाना पड़ा। युधिष्ठिर अर्जुन को वन में नहीं जाने देना चाहते थे। उन्होंने कहा, पिता के न रहने पर बड़ा भाई छोटे भाई के लिये पिता के तुल्य है, ऐसी स्थिति में अर्जुन का गृहप्रवेश किसी प्रकार निन्दित नहीं समझा जा सकता, परन्तु अर्जुन विनीत भाव से युधिष्ठिर की आज्ञा के पालन में अपनी असमर्थता बतला कर वन के लिये प्रस्थित हुए। वन से

अर्जुन के लौट आने पर युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ का आयोजन किया था। इस यज्ञ के करने के पहले दिग्विजय करने की आवश्यकता होती है। दिग्विजय के समय मगधराज जरासन्ध ने पाण्डवों की अधीनता स्वीकार नहीं की अतएव वह कृष्ण की चतुरता से भीम के हाथों मारा गया। राजसूय यज्ञ में युधिष्ठिर का ऐश्वर्य और दबदबा देख कर दुर्योधन को बड़ी ईर्षा हुई। वह किस प्रकार पाण्डवों का नाश करेगा इसके लिये वह शकुनि और कर्ण के साथ विचार करने लगा। अन्त में जुए में युधिष्ठिर को हरा कर उनका अपमान करना यही निश्चित हुआ। धृतराष्ट्र की आज्ञा ले कर दुर्योधन ने जुआ खेलने के लिये युधिष्ठिर को बुलाया। विदुर ने युधिष्ठिर को जुआ खेलने के लिये मना किया था। परन्तु युधिष्ठिर ने उनकी बातों पर ध्यान नहीं दिया। युधिष्ठिर और शकुनि का जुआ खेलना निश्चित हुआ। इस प्रकार दुर्योधन का प्रतिनिधि बन कर शकुनि जुआ खेलने लगा। युधिष्ठिर बाज़ी हार कर शकुनि के दास हुए। बाज़ी में युधिष्ठिर द्रौपदी को भी हार गये थे, अतः वह भी शकुनि की दासी हुई। केश पकड़ कर दुःशासन द्रौपदी को राजसभा में खींच लाया। द्रौपदी के अपमान से धृतराष्ट्र के अन्तःपुर में खलबली पड़ गयी, धृतराष्ट्र के कानों तक इसकी ख़बर पहुँच गयी। द्रौपदी सभा में लायी जा कर अपमानित की गयी। दुर्योधन ने द्रौपदी को लक्ष्य कर अपने जङ्घे का कपड़ा हटाया और इङ्गित से उसे बैठने के लिये कहा। भीम से यह नहीं सहा गया वे उठना चाहते ही थे, परन्तु युधिष्ठिर के कहने से शान्त हो कर बैठ गये।

वृद्ध महाराज धृतराष्ट्र ने द्रौपदी को अपने समीप बुला कर बहुत समझाया बुझाया, द्रौपदी के स्वामी तथा वह स्वयं महाराज की आज्ञा से दासत्व से मुक्त हुई। महाराज पाण्डवों के सामने अपने पुत्रों के दुर्व्यवहार के लिये दुःखित हुए और उन्होंने इन सब बातों को भूल जाने के लिये पाण्डवों से अनुरोध किया। पाण्डव भी द्रौपदी के साथ इन्द्रप्रस्थ चले गये। तदनन्तर दुर्योधन पाण्डवों की शक्ति उनकी भावी उन्नति और उससे कौरवों की भावी विपत्ति की बातें समझा कर धृतराष्ट्र को युधिष्ठिर के विरुद्ध उभाड़ने लगा। अबकी बार युधिष्ठिर के राज्य छीनने की भी वह चेष्टा करेगा यह भी उसने धृतराष्ट्र को समझाया। धृतराष्ट्र उसकी बातों में आ गया। पुनः जुआ खेलने के लिये युधिष्ठिर आमन्त्रित किये गये। इस बार युधिष्ठिर राज्य, धन, रत्न आदि सभी हार गये। अन्त की बाज़ी में हार कर पाण्डव स्त्री के साथ बारह वर्ष वन में रहने के लिये और एक वर्ष अज्ञात वास के लिये बाध्य हुए। वे दरिद्री के वेश में हस्तिनापुर से चले। वनवास के समय दुर्योधन के बहनोई जयद्रथ ने द्रौपदी को हर लिया था, परन्तु भीम ने उन्हें मार्ग में जा कर पकड़ा और युद्ध में उन्हें परास्त कर के अत्यन्त अपमानित किया। अज्ञात वास का समय पाण्डवों ने मत्स्यराज्य के राजा विराट के यहाँ गुप्त रूप से रह कर बिताया था। विराट के यहाँ युधिष्ठिर अक्षक्रीड़ा निपुण ब्राह्मण के वेश में, भीम रसोइया के रूप में, अर्जुन नपुंसक के रूप में, नकुल अश्वचिकित्सक के रूप में, सहदेव ग्वाला के रूप में और द्रौपदी सैरन्ध्री के रूप में रहती थी। सैरन्ध्री रूपिणी द्रौपदी विराट के साले तथा उसके प्रधान सेनापति कीचक द्वारा अपमानित हुई थी, अतएव भीम ने कीचक को विराट की नाट्यशाला में मार डाला। विराट के पराक्रमी सेनापति कीचक के मारे जाने के संवाद के प्रसिद्ध होते ही दुर्योधन ने विराट के गोगृह पर आक्रमण करने के लिये त्रिगर्तराज सुशर्मा को सेना के साथ भेजा। सुशर्मा विराट के दक्षिण गोगृह पर आक्रमण कर के गौओं को ले जा रहा है। विराट ने गोपाध्यक्ष से यह संवाद सुन कर स्वयं सुशर्मा पर आक्रमण किया। सुशर्मा विराट को परास्त कर अपने रथ पर बैठा कर अपने नगर की ओर चला। यह देख कर युधिष्ठिर ने भीम को विराट के उद्धार के लिये भेजा। भीम ने विराट को छुड़ा कर सुशर्मा को क़ैद कर लिया। इस उपकार के बदले राजा विराट

युधिष्ठिर और भीम को मत्स्यराज्य देना चाहते थे, परन्तु युधिष्ठिर ने नहीं लिया। इधर दुर्योधन कर्ण, भीष्म आदि वीरों के साथ विराट के उत्तर गोगृह पर आक्रमण कर के ६० हज़ार गौ ले कर जा रहा था। यह संवाद पा कर विराट ने अपने पुत्र उत्तर को कौरव सेना का सामना करने के लिये भेजा। परन्तु विराट का सारथि सुशर्मा के साथ युद्ध में मारा गया था अतएव सैरन्ध्री और विराटकन्या उत्तरा के परामर्श से उत्तर ने बृहन्नला रूपी अर्जुन को अपना सारथि बनाया। कौरव सेना को देखते ही उत्तर का हृदय काँप गया। उस समय अपना परिचय दे कर अर्जुन स्वयं रथी हुए और उत्तर को सारथि बना कर उन्होंने कौरव सेना में रथ ले चलने की आज्ञा दी। अर्जुन ने कुरुवीरों को हरा कर विराट की गौओं का उद्धार किया। दुर्योधन आदि सभी ने अर्जुन को पहचान लिया। अब प्रश्न यह हुआ कि अर्जुन के अज्ञात वास की अवधि पूरी हुई है कि नहीं? परन्तु भीष्म ने हिसाब लगा कर बता दिया कि नहीं अज्ञात वास की अवधि को पूरे हुए पाँच महीने छः दिन हो गये, अर्जुन के कहने से उत्तर ने सर्वत्र प्रसिद्ध कर दिया कि हम ही ने युद्ध में जय पाया है। तदनन्तर पाण्डवों के साथ विराट का परिचय हुआ। राजा विराट की कन्या उत्तरा अर्जुनपुत्र अभिमन्यु को व्याही गयी। इस प्रकार पाञ्चालराज के समान राजा विराट भी पाण्डवों के एक बड़े सहायक हो गये। पाण्डवों ने पाञ्चालराज के पुरोहित को दूत बना कर धृतराष्ट्र के पास भेजा। कौरव सभा में जा कर उस दूत ने कहा—पाण्डव युद्ध करना नहीं चाहते, वे बिना हिंसा किये अपने राज्य का आधा भाग चाहते हैं। परन्तु दुर्योधन ने साफ़ ही कह दिया कि बिना युद्ध के सूची की नोक के बराबर भी भूमि मैं नहीं दूँगा। दोनों ओर से रणभेरी बजने लगी, कुरुक्षेत्र के महायुद्ध का आरम्भ हो गया। युधिष्ठिर ने बड़ी वीरता से राजा शल्य को पराजित किया और इसी युद्ध में एक बार असत्य भी कहा था।

(महाभारत)

(२) काश्मीर के एक राजा। इनके पिता का नाम नरेन्द्रादित्य था। पिता की मृत्यु के अनन्तर युधिष्ठिर का काश्मीर के सिंहासन पर अभिषेक हुआ, कुछ दिनों तक तो इन्होंने पूर्व प्रचलित रीति के अनुसार राज्य शासन किया। परन्तु पीछे से ये ऐश्वर्य के मद से मत्त हो कर मनमाने काम करने लगे। उनकी सभी बातों में विपरीतता पायी जाने लगी। बुद्धिमानों का आदर करना वे भूल गये, अनुचरों की सेवा समझने की बुद्धि उनकी जाती रही। सभासद् पण्डितों ने अपने तुल्य मूर्खों को भी सम्मानित होते देखा तब वे राजसभा छोड़ कर चले गये। अवसर पा कर राजसभा में धूर्त घुस गये और राजा को उलटा सीधा समझा कर अपना काम साधने लगे। राजा के इन व्यवहारों से अनुजीवी गण अप्रसन्न हो गये। थोड़े ही दिनों में राज्य में उच्छृङ्खलता देख कर मन्त्रीगण राजा से विरोधाचरण करने लगे। मन्त्रियों ने मिल कर राजा को पदच्युत करने के लिये षड्यन्त्र करना प्रारम्भ किया। आसपास के राजा भी राज्य लोभ से मन्त्रियों के षड्यन्त्र में सम्मिलित हुए। इन सब बातों को जान कर राजा युधिष्ठिर बहुत ही डर गये, उन्होंने शान्ति स्थापन करने के लिये बहुत प्रयत्न किया परन्तु वे सफल नहीं हो सके। इस समय यदि मन्त्री चाहते तो अवश्य ही शान्ति स्थापित हो जाती, परन्तु मन्त्रियों को इस बात का बड़ा भय था कि युधिष्ठिर के अधिकारारूढ़ रह जाने से हम लोगों पर बहुत बुरी बीतेगी, क्योंकि हम लोगों के षड्यन्त्र की बात उन्हें मालूम हो गयी है। अनन्तर सेना संग्रह कर के मन्त्रियों ने राजभवन को घेर लिया, और राजा से कहला भेजा कि आप शीघ्र ही राज्य छोड़ कर यहाँ से चले जायँ, तभी कल्याण है। राजा ने शीघ्र ही राज्य छोड़ कर प्रस्थान किया, काश्मीर छोड़ कर युधिष्ठिर पहाड़ी मार्ग से चले। मार्ग में उनको बड़े बड़े कष्ट भोगने पड़े। रानियों के कष्ट देख कर पक्षी भी रोने लगे। अनन्तर युधिष्ठिर ने अपने पूर्व मित्र एक राजा का आश्रय ग्रहण किया। युधिष्ठिर ने ३४ वर्ष राज्य किया था।

(राजतरङ्गिणी)

युधिष्ठिर और भीम को मत्स्यराज्य देना चाहते थे, परन्तु युधिष्ठिर ने नहीं लिया। इधर दुर्योधन कर्ण, भीष्म आदि वीरों के साथ विराट के उत्तर गोगृह पर आक्रमण कर के ६० हज़ार गौ ले कर जा रहा था। यह संवाद पा कर विराट ने अपने पुत्र उत्तर को कौरव सेना का सामना करने के लिये भेजा। परन्तु विराट का सारथि सुशर्मा के साथ युद्ध में मारा गया था अतएव सैरन्ध्री और विराटकन्या उत्तरा के परामर्श से उत्तर ने बृहन्नला रूपी अर्जुन को अपना सारथि बनाया। कौरव सेना को देखते ही उत्तर का हृदय काँप गया। उस समय अपना परिचय दे कर अर्जुन स्वयं रथी हुए और उत्तर को सारथि बना कर उन्होंने कौरव सेना में रथ ले चलने की आज्ञा दी। अर्जुन ने कुरुवीरों को हरा कर विराट की गौओं का उद्धार किया। दुर्योधन आदि सभी ने अर्जुन को पहचान लिया। अब प्रश्न यह हुआ कि अर्जुन के अज्ञात वास की अवधि पूरी हुई है कि नहीं? परन्तु भीष्म ने हिसाब लगा कर बता दिया कि नहीं अज्ञात वास की अवधि को पूरे हुए पाँच महीने छः दिन हो गये, अर्जुन के कहने से उत्तर ने सर्वत्र प्रसिद्ध कर दिया कि हम ही ने युद्ध में जय पाया है। तदनन्तर पाण्डवों के साथ विराट का परिचय हुआ। राजा विराट की कन्या उत्तरा अर्जुनपुत्र अभिमन्यु को व्याही गयी। इस प्रकार पाञ्चालराज के समान राजा विराट भी पाण्डवों के एक बड़े सहायक हो गये। पाण्डवों ने पाञ्चालराज के पुरोहित को दूत बना कर धृतराष्ट्र के पास भेजा। कौरव सभा में जा कर उस दूत ने कहा—पाण्डव युद्ध करना नहीं चाहते, वे बिना हिंसा किये अपने राज्य का आधा भाग चाहते हैं। परन्तु दुर्योधन ने साफ़ ही कह दिया कि बिना युद्ध के सूची की नोक के बराबर भी भूमि मैं नहीं दूँगा। दोनों ओर से रणभेरी बजने लगी, कुरुक्षेत्र के महायुद्ध का आरम्भ हो गया। युधिष्ठिर ने बड़ी वीरता से राजा शल्य को पराजित किया और इसी युद्ध में एक बार असत्य भी कहा था।

(महाभारत)

(२) काश्मीर के एक राजा। इनके पिता का नाम नरेन्द्रादित्य था। पिता की मृत्यु के अनन्तर युधिष्ठिर का काश्मीर के सिंहासन पर अभिषेक हुआ, कुछ दिनों तक तो इन्होंने पूर्व प्रचलित रीति के अनुसार राज्य शासन किया। परन्तु पीछे से ये ऐश्वर्य के मद से मत्त हो कर मनमाने काम करने लगे। उनकी सभी बातों में विपरीतता पायी जाने लगी। बुद्धिमानों का आदर करना वे भूल गये, अनुचरों की सेवा समझने की बुद्धि उनकी जाती रही। सभासद् पण्डितों ने अपने तुल्य मूर्खों को भी सम्मानित होते देखा तब वे राजसभा छोड़ कर चले गये। अवसर पा कर राजसभा में धूर्त घुस गये और राजा को उलटा सीधा समझा कर अपना काम साधने लगे। राजा के इन व्यवहारों से अनुजीवी गण अप्रसन्न हो गये। थोड़े ही दिनों में राज्य में उच्छृङ्खलता देख कर मन्त्रीगण राजा से विरोधाचरण करने लगे। मन्त्रियों ने मिल कर राजा को पदच्युत करने के लिये षड्यन्त्र करना प्रारम्भ किया। आसपास के राजा भी राज्य लोभ से मन्त्रियों के षड्यन्त्र में सम्मिलित हुए। इन सब बातों को जान कर राजा युधिष्ठिर बहुत ही डर गये, उन्होंने शान्ति स्थापन करने के लिये बहुत प्रयत्न किया परन्तु वे सफल नहीं हो सके। इस समय यदि मन्त्री चाहते तो अवश्य ही शान्ति स्थापित हो जाती, परन्तु मन्त्रियों को इस बात का बड़ा भय था कि युधिष्ठिर के अधिकारारूढ़ रह जाने से हम लोगों पर बहुत बुरी बीतेगी, क्योंकि हम लोगों के षड्यन्त्र की बात उन्हें मालूम हो गयी है। अनन्तर सेना संग्रह कर के मन्त्रियों ने राजभवन को घेर लिया, और राजा से कहला भेजा कि आप शीघ्र ही राज्य छोड़ कर यहाँ से चले जायँ, तभी कल्याण है। राजा ने शीघ्र ही राज्य छोड़ कर प्रस्थान किया, काश्मीर छोड़ कर युधिष्ठिर पहाड़ी मार्ग से चले। मार्ग में उनको बड़े बड़े कष्ट भोगने पड़े। रानियों के कष्ट देख कर पक्षी भी रोने लगे। अनन्तर युधिष्ठिर ने अपने पूर्व मित्र एक राजा का आश्रय ग्रहण किया। युधिष्ठिर ने ३४ वर्ष राज्य किया था।

(राजतरङ्गिणी)

का नाम हरिहर भट्टाचार्य था। इनके पिता भी स्मृति शास्त्र के पण्डित थे, और नवद्वीप में पढ़ाते थे। उन्होंने २५ वर्ष परिश्रम कर के अपना स्मृति ग्रन्थ बनाया था। इस ग्रन्थ के बनाने के थोड़े दिनों के बाद पिण्डदान करने के लिये रघुनन्दन गया गये थे। इन्होंने अपने जीवन भर शास्त्रों का अनुशीलन ही किया था।

रघुनाथ कवि=(१) ये काशी के रहने वाले वन्दीजन थे और भाषा के कवि थे। इनका जन्म सं० १८०२ में हुआ था। बरिवंडसिंह नरेश के दरबारी कवि थे। इनकी गणना भाषा साहित्य के आचार्यों में होती है। इनके बनाये ग्रन्थ बड़े मनोहर हैं—वे ये हैं—

१ रसिकमोहन, २ जगमोहन, ३ काव्यकलाधर, ४ इश्कमहोत्सव।

(२) रघुनाथ इनका छाप नाम था। इनका नाम पण्डित शिवदीन था। ये रसूलाबाद के रहने वाले ब्राह्मण थे। इनके बनाये भाषा महिम्न आदि कई छोटे छोटे ग्रन्थ हैं।

(३) ये कवीश्वर राजा अमरसिंह जोधपुर के दरबार में थे। इनका जन्म सं० १६२५ में हुआ था। इनका पूरा नाम रघुनाथराय था।

(४) इनका पूरा नाम महन्त रघुनाथदास था। ये भक्त कवि अयोध्या में रहते थे। ये ब्राह्मण थे और पैंतेपुर ज़िला सीतापुर के निवासी थे। तदनन्तर संसार से चित्त उपराम होने के कारण अयोध्या जी में रहने लगे। इन्होंने रामचन्द्र की स्तुति में अनेक कवित्त दोहे बनाये हैं।

रघुनाथदास=जिस समय चैतन्यदेव बङ्गाल में अपनी प्रसिद्धि कर रहे थे उसी समय हरिदास और गोवर्द्धनदास नामक दो व्यक्ति गौड़ के नव्वाब के यहाँ से सप्तग्राम ठेके में लिये हुए थे। उससे इन्हें बहुत आमदनी थी। गोवर्द्धनदास के पुत्र का नाम रघुनाथ था। रघुनाथ ने पाँच वर्ष की अवस्था में विद्यारम्भ किया था और सात वर्ष की अवस्था से वह पढ़ने के लिये गुरु जी के यहाँ जाने लगा।

चाँदपुर नामक एक छोटा पुरवा सप्तग्राम के अन्तर्गत था। वहीं इनके कुलपुरोहित बलराम आचार्य रहते थे। रघुनाथ इन्हीं बलराम आचार्य से विद्याभ्यास करते थे। रघुनाथ की अवस्था १२ वर्ष की है। उसी समय हरिदास नामक एक यवन जिसने हिन्दू धर्म के महामन्त्र को ग्रहण किया था—काज़ियों की मार से व्याकुल हो कर बलराम के आश्रम में आया। बलराम का आश्रय पा कर हरिदास निर्विघ्न साधन करने लगा। हरिदास भगवद्भजन में इतना विभोर हो जाया करता था कि लोग उसे पागल समझते थे।

आचार्य के यहाँ जितने लड़के पढ़ने आते थे प्रायः वे हरिदास को पागल समझ कर उस पर धूल कीचड़ फेंका करते थे। परन्तु हरिदास के मुख से भगवान् का नाम सुन कर रघुनाथ के हृदय में एक विलक्षण भाव उत्पन्न होता था। रघुनाथ का चित्त अब पढ़ने लिखने में नहीं लगता था। आचार्य महाशय के न रहने पर रघुनाथ हरिदास के साथ भगवत्कीर्तन करता था। गोवर्द्धनदास के मित्र तथा आत्मीय स्वजनसम्बन्धी रघुनाथ की ऐसी दशा देख आपस में चर्चा करने लगे। वे कहने लगे—देखो न यह पाखण्डी मुसलमान एक भले मानस के वंश को पागल बना रहा है। इन लोगों के दिक करने से हरिदास सप्तग्राम छोड़ कर शान्तिपुर जा कर रहने लगे।

हरिदास ने सप्तग्राम छोड़ तो दिया सही, परन्तु उससे रघुनाथ के व्यवहार में कुछ परिवर्तन नहीं हुआ। वयोवृद्धि के साथ साथ उसमें धर्मभाव भी प्रबल होता जाता था। बाल्य काल ही से सांसारिक सुखों की ओर उसका झुकाव नहीं था।

इस समय चैतन्यदेव शान्तिपुर में रहते थे। रघुनाथ भी वहाँ जा कर साधुसेवा और सहवास से दिन काटने लगे। रघुनाथ भगवान् से प्रार्थना करता था कि प्रभो, मैं किस प्रकार इस संसार से मुक्त हो कर साधुसेवा में दिन बिताऊँगा। रघुनाथ के हृदय का भाव जान कर चैतन्यदेव ने शान्तिपुर छोड़ने के समय रघुनाथ को उपदेश दिया।

रघुनाथ, चैतन्यदेव से गूढ़ स्नेहपूर्ण उपदेश पा कर अपने को भाग्यवान् समझने लगा और यत्नपूर्वक उनकी आज्ञा पालन करने लगा। तदनन्तर रघुनाथ घर जा कर घर का काम काज करने लगा। एक दिन रघुनाथ ने सुना कि कलकत्ता से चार कोस पर नित्यानन्द हरिनाम का प्रचार कर रहे हैं। रघुनाथ ने वहाँ जाने के लिये पिता से आज्ञा माँगी, पिता ने आज्ञा दे दी। रघुनाथ वहाँ गया और जा कर प्रणाम किया तथा अपनी इष्टसिद्धि के लिये प्रार्थना भी की। प्रसन्न हो कर नित्यानन्द ने आशीर्वाद दिया। रघुनाथ अपने घर चला आया।

वहाँ से आ कर रघुनाथ ने भगवत्कीर्तन में मन लगाया। एक दिन आधी रात को घर से निकल कर अनेक कष्ट सहता हुआ वह श्रीक्षेत्र में चैतन्यदेव के समीप पहुँचा वहाँ इसके सद्व्यवहार से चैतन्यदेव बड़े सन्तुष्ट हुए। चैतन्यदेव के तिरोधान के बाद रघुनाथ वृन्दावन चला आया था। इन्होंने कई एक ग्रन्थ भी बनाये हैं जिनका वैष्णव समाज में बड़ा आदर है। वे पुस्तकें ये हैं—

१ उपदेशामृत, २ मनःशिक्षा, ३ श्रीचैतन्यस्तवकल्पवृक्ष, ४ विलापकुसुमाञ्जलि, ५ श्री प्रेमाम्बुजमकरन्दाख्य स्तवराज।

रघुनाथशिरोमणि=ये नवद्वीप के विख्यात नैयायिक थे। ख्रीष्टीय १५वीं शताब्दी के शेष भाग में नवद्वीप में इनका जन्म हुआ था। वैदिक संवादिनी नामक एक ग्रन्थ में लिखा है कि इनका जन्म श्रीहट्ट में हुआ था और इनके ज्येष्ठ भाई रघुपति का ब्याह उसी ज़िले के एक राजा की कन्या रूपवती से हुआ था। इनकी माता का नाम सीतादेवी था। रघुनाथ के पिता अत्यन्त दरिद्र थे, इनकी माता भीख माँग कर इनका पालन बड़े कष्ट से करती थी। पाँच वर्ष की अवस्था में ये पढ़ने के लिये गुरुगृह में गये। दरिद्रता से व्याकुल हो कर इनकी माता ने अपने ज्येष्ठ पुत्र का ब्याह राजा के यहाँ कर दिया। वह राजा कुल में न्यून था, इस कारण अन्यान्य ब्राह्मण पण्डित उनकी निन्दा करने लगे। यह देख कर सीतादेवी रघुनाथ को ले कर नवद्वीप चली गयी। उस समय नवद्वीप सरस्वती का क्रीडाक्षेत्र था। नवद्वीप की प्रसिद्धि चारों ओर हो गयी थी। नाना स्थानों से आ आ कर लोग वहाँ से अध्ययन कर के पण्डित हो कर जाते थे। वहाँ जा कर प्रसिद्ध वासुदेव सार्वभौम के यहाँ ठहर कर रघुनाथ उन्हींके आश्रम में पढ़ने लगे, सार्वभौम महाशय रघुनाथ की प्रतिभा देख कर विस्मित हो गये। थोड़े ही दिनों में रघुनाथ ने न्यायशास्त्र में प्रगाढ़ व्युत्पत्ति प्राप्त कर ली। इस समय रघुनाथ अपने अध्यापक वासुदेवकृत "सार्वभौम निरुक्ति", और गङ्गेशोपाध्यायकृत "चिन्तामणि" पढ़ते थे। रघुनाथ इन ग्रन्थों के अध्ययन के समय उनमें अनेक भूल बतलाने लगे। वासुदेव अपने विद्यार्थी की बुद्धि की प्रखरता देख कर अवाक् रह गये।रघुनाथ उन ग्रन्थों का भ्रम बता कर अपना सिद्धान्त छात्रावस्था ही में प्रचार करने लगे इससे नवद्वीप के पण्डित समाज में हड़बड़ी उपस्थित हुई। श्रीचैतन्य और रघुनाथ दोनों सहाध्यायी थे। वे दोनों बड़े बुद्धिमान् और आपस में मित्र थे। सब मिला कर रघुनाथशिरोमणि ने ३८ ग्रन्थ लिखे हैं जिनमें ये प्रसिद्ध हैं—

व्युत्पत्तिवाद, लीलावतीटीका, क्षणभङ्गुरवाद, तत्त्वचिन्तामणिदीधिति, पदार्थमण्डल, प्रामाण्यवाद, ब्रह्मसूत्रवृत्ति, अद्वैतेश्वरवाद, अवयवग्रन्थ, आकाङ्क्षावाद, केवलव्यतिरेकी, पक्षता, आख्यातवाद, न्यायकुसुमाञ्जलिटीका ये ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। ये षोडश शताब्दी के मध्यभाग में परलोकवासी हुए।

रघुराजसिंह=ये बान्धवगढ़ के महाराज बघेले क्षत्रिय थे, ये महाराज बड़े कवि थे। श्रीमद्भागवत का इन्होंने अनेक छन्दों में अनुवाद किया है। (शिवसिंहसरोज)

रङ्गचार्लू=इनका पूरा नाम चेटिपनियम वीरवल्लि रङ्गचार्लू सी. आई. ई. था। इनका जन्म मद्रास प्रदेश के चिंलेपट ज़िला में सन् १८३१ ई० में हुआ था। इनके पिता का नाम चेटिपनियम राघव चेटियाट था। ये चिंलेपट की कलक्टरी में एक क्लर्क थे। बाल्यकाल में

इनकी बुद्धि बड़ी तीव्र थी परन्तु लिखने पढ़ने में इनका मन बहुत कम लगता था। इसी कारण मद्रास में हाईस्कूल की पढ़ाई समाप्त कर के ये नौकरी करने लगे। वहाँ बहुत दिनों तक काम कर के ये रेलवे विभाग में गये। तदनन्तर सन् १८६४ ई० में कालिकट के डिपुटी कलक्टरी का पद इन्हें मिला। इसी समय महीशूर राज्य की दशा अत्यन्त शोच्य थी। पदच्युत राजा कृष्णराय उदियार ने एक पोष्य पुत्र ग्रहण किया था। भारत गवर्नमेंट ने इसी पोष्य पुत्र को राज्यगद्दी पर बैठाया, और उसी समय यह निश्चित हुआ कि १८ वर्ष की अवस्था में इन्हें राज्य का भार दिया जायगा। गवर्नमेंट की ओर से रङ्गचार्लू वहाँ के कन्ट्रोलर (प्रबन्धकर्ता) बनाये गये। इस पद पर रह कर इन्होंने अनेक राजकीय बातों में सुधार किया। राज्य के नाशकर्ता स्वार्थियों को इन्होंने निकाल बाहर कर दिया। सन् १८७४ ई० में इन्होंने "महीशूर में अंग्रेज़शासन" नामक एक छोटी पुस्तक अंग्रेज़ी में लिखी, और उसे इङ्गलैण्ड में प्रकाशित कराया। इससे रङ्गचार्लू की बड़ी प्रसिद्धि हुई। राज्य के प्रबन्ध में अनेक सुधार करने के कारण सरकार से इन्हें सी. आई. ई. की उपाधि मिली। सन् १८८१ई० में ये महीशूर के दीवान नियत हुए। १८८२ई० में कठिन रोग के कारण इनकी मृत्यु हुई।

रज=एक राजकुमार। ये भरतवंशी विराज के पुत्र थे।

रजनी=यह रैवत की पुत्री थी और वैवस्वत की स्त्री थी।

रजि=एक प्राचीन राजा। विष्णुपुराण में लिखा है कि एक समय देवासुर संग्राम उपस्थित हुआ। देवों ने ब्रह्मा के पास जा कर पूँछा कि इस देवासुर संग्राम में कौन पक्ष विजयी होगा, ब्रह्मा ने उत्तर दिया जिस पक्ष का नेता राजा रजि होगा। दैत्यगण राजा रजि के पास सहायता के लिये उपस्थित हुए। रजि ने कहा मैं सहायता देने को प्रस्तुत हूँ परन्तु देवताओं के परास्त होने पर यदि हमको इन्द्र का पद देना तुम लोग स्वीकार करो। दैत्यों ने कहा कि हम लोग सदा सत्य बोलते हैं। हमारे इन्द्र प्रह्लाद हैं उन्हींके लिये हम लोग उद्योग करते हैं। अतएव आपकी बातों को हम स्वीकार नहीं कर सकते। यह कह कर दैत्य चले गये। देवताओं ने आ कर उनसे सहायता माँगी। रजि ने उन लोगों से भी वही कहा। युद्ध में जा कर रजि ने दैत्यों का विनाश किया, तदनन्तर इन्द्र आये और उनके पैरों पर पड़ कर उन्हें प्रसन्न किया। रजि उनकी बातों से प्रसन्न हो गये और इन्द्र ही को इन्द्रपद पर रहने दिया।

(विष्णुपुराण)

रणजीतसिंह=पंजाब के प्रसिद्ध भूतपूर्व महाराज। पंजाबकेसरी महाराज रणजीतसिंह का जन्म सन् १७८० ई० में हुआ था। इनके पिता का नाम महासिंह और माता का नाम मलवाई था। बाल्यावस्था ही में चेचक निकलने के कारण रणजीतसिंह की एक आँख मारी गयी थी। सन् १७८५ ई० में रणजीतसिंह का व्याह महताबकुँवरि नाम की एक राजकुमारी के साथ हुआ। रणजीतसिंह के पिता महासिंह ने बड़े समारोह से राजकुमार का विवाह सम्पन्न किया। सन् १७९२ ई० में महासिंह का परलोकवास हुआ। बारह वर्ष की अवस्था में रणजीतसिंह अपने पिता के स्थान में सर्दार पद पर अभिषिक्त हुए। ये नाममात्र ही के लिये सर्दार हुए। राज्य का शासन इनकी माता तथा मन्त्री लखपतराय मिल कर करते थे, पिता के मरने पर माता के लाड़ चाव से रणजीतसिंह ने पढ़ने की ओर बिलकुल ही ध्यान नहीं दिया। मृगया आदि व्यसन ही में इनका समय जाता था। १७वर्ष की अवस्था में रणजीतसिंह ने राज्यशासन का भार अपने हाथ में लिया और मन्त्रिपद पर अपने मामा दलसिंह को रखा। इनकी माता का चरित्र भूतपूर्व मन्त्री लखपतराय के सम्बन्ध से कलङ्कित हो गया था। नवीन मन्त्री दलसिंह ने केतस के युद्ध में लखपतराय को मार डाला, परन्तु इससे राजमाता का चरित्र शुद्ध नहीं हुआ। मन्त्री के मारे जाने पर राजमाता का कुत्सित सम्बन्ध लायक मिश्र के साथ हो गया। यह जान कर रणजीतसिंह ने माता का सिर काट डाला। पहले तो लायक

मिश्र भाग गया था परन्तु पीछे से वह भी पकड़ा और मारा गया।

रणजीतसिंह का सौभाग्य-सूर्य दिनों दिन बढ़ने लगा। सन् १७९९ ई० में रणजीतसिंह ने लाहौर पर अधिकार कर लिया। सन् १८०० ई० में काश्मीर के अन्तर्गत जम्बु को जीतने के लिये ये प्रस्थित हुए, रणजीतसिंह के जम्बु के समीप पहुँच जाने पर वहाँ के राजा ने २० हज़ार रुपये और हाथी रणजीतसिंह को उपहार में दिया। रणजीतसिंह जम्बुराज को ख़िलत दे कर चले आये। तदनन्तर इन्होंने स्यालकोट और दिलावर पर अधिकार कर लिया। सन् १८०१ ई० में रणजीतसिंह ने बड़े समारोह से दरबार किया और उन्होंने "महाराज" की उपाधि ग्रहण की। इस दरबार में सभी सामन्त राजा तथा सर्दार उपस्थित थे। शास्त्रानुसार रणजीतसिंह का महाराज पद पर अभिषेक हुआ था, लाहौर में टकसाल खड़ा हुआ, अभिषेक के दिन से रणजीतसिंह के नाम से रुपये ढलने लगे। उन्होंने एक सिख सर्दार की कन्या को व्याहा था। इस व्याह से रणजीतसिंह को सन् १८०२ में एक पुत्र उत्पन्न हुआ। पुत्र के जन्मोपलक्ष में लाहौर में बहुत दिनों तक उत्सव हुआ था। दीन दुखियों को प्रचुर अर्थ दिया गया प्रत्येक सिपाही को एकलरा सोने का हार दिया गया। तदनन्तर महाराज रणजीतसिंह मोरान नाम की एक रूपवती मुसलमान युवती के प्रेम में फँस गये। इस प्रेम में फँसने के कारण वे कुछ दिनों के लिये राज्यकार्य भूल गये, पुनः उस मुसलमान स्त्री के साथ मुसलमानी रीति के अनुसार रणजीतसिंह का व्याह हुआ। उस मुसलमान स्त्री ने बहुत शीघ्र ही महाराज पर अपना अधिकार जमा लिया। सिक्कों पर महाराज के नाम के साथ उसका भी नाम अङ्कित होता था। महाराज मोरान को लेकर हरिद्वार तीर्थ करने गये थे और अनेक प्रकार के धर्मकार्य में लाखों रुपये उन्होंने व्यय किये। तीर्थ पर से लौट कर महाराज ने क्रमशः मुलतान और अमृतसर को जीता। इसी समय अफ़ग़ानिस्तान में तैमूरशाह के पुत्रों में सिंहासन के लिये विवाद प्रारम्भ हुआ था। इस अवसर को पा कर सन् १८०३ ई० में सेना के साथ महाराज वहाँ उपस्थित हुए और झङ्ग साहिवाल आदि चार स्थानों पर अपना अधिकार कर लिया। सन् १८०५ ई० में महाराज ने विपाशा और चन्द्रभागा नदियों के तीरवर्त्ती मुसलमान सर्दारों के साथ सन्धि स्थापित कर ली। अभी तक पञ्जाब के मुसलमान सर्दार काबुल के अधीन थे, परन्तु उन लोगों ने अब से महाराज रणजीतसिंह ही को अपना प्रधान माना। इसी वर्ष में महाराज ने अंग्रेज़ी गवर्नमेंट से सन्धि कर ली। इसी समय यूरप में नेपोलियन बोनापार्ट के साथ अंग्रेज़ों का भयानक युद्ध हो रहा था। उस समय के भारत के बड़े लाट लार्ड मिंटो फ़रासियों द्वारा भारताक्रमण की आशङ्का से सीमान्तस्थित राजाओं से मैत्री स्थापन करने की चेष्टा कर रहे थे। इस लिये उन्होंने सन् १८०८ ई० में एलफिनस्टन साहब को काबुल-दरबार में, सर जान म्यालकम को फ़ारस के दरबार में और सर चार्ल्स मटकाफ को लाहौर के दरबार में रणजीतसिंह के निकट भेजा था। सन् १८०९ ई० में रणजीतसिंह से अंग्रेज़ गवर्नमेंट का कुछ मन मुटाव हो गया था, परन्तु शीघ्र ही उसकी मीमांसा हो गयी। इसी वर्ष की २५ अप्रेल को रणजीतसिंह के साथ अंग्रेज़ गवर्नमेंट की पुनः सन्धि हुई। सन्धि तो हो गयी, परन्तु आपस में किसीका किसी पर विश्वास नहीं हुआ। १८१२ ई० में रणजीतसिंह ने अपने पुत्र खड्गसिंह के विवाह के समय बड़ी धूमधाम से उत्सव मनाया। इस उत्सव में अंग्रेज़ सेनापति अक्टारलोनि निमन्त्रित हो कर आये थे। सन् १८३८ ई० में अंग्रेज़ गवर्नमेंट के साथ काबुल का विवाद उपस्थित हुआ। इसी वर्ष के नवम्बर मास में बड़े लाट लार्ड अकलेण्ड ने एक सर्व-साधारण का दरबार किया और दूसरे अप्रेल मास में सिख और अंग्रेज़ सेना मिल कर दोनों ने क़न्धार पर अधिकार कर लिया तथा उसी साल के मई महीने में शाहशुजा क़न्धार के सिंहासन पर बैठाये गये। सन् १८३९ ई० में २७ जून को

महाराज रणजीतसिंह का परलोक-वास हुआ।

(२) जयसलमेर के रावल। महारावल गजसिंह अपुत्रावस्था ही में परलोक सिधारे। तदनन्तर उनकी विधवा रानी ने उनके छोटे भाई के पुत्र रणजीतसिंह को गोद लिया। रणजीतसिंह ने सिंहासन पर बैठ कर बड़ी सावधानी से राज्य-शासन किया, इन्हींके शासन-समय में भारत में सिपाही-विद्रोह हुआ था। उस समय रणजीतसिंह ने भारत गवर्नमेंट की सहायता करने में त्रुटि नहीं की। देशी रजवाड़ों को दत्तक लेने की सनद देने के समय भारत गवर्नमेंट से महारावल रणजीतसिंह को भी सनद मिली थी, इनके शासन-समय में राज्य में किसी प्रकार की राजनैतिक घटना नहीं हुई। सन् १८६४ ई० में महारावल रणजीतसिंह का परलोकवास हुआ।

(टाड्स राजस्थान)

रणादित्य=काश्मीर के एक राजा। ये राजा युधिष्ठिर के पुत्र और नरेन्द्रादित्य के अनुज थे। राजा नरेन्द्रादित्य के परलोकवास होने पर, रणादित्य का काश्मीर के सिंहासन पर अभिषेक हुआ, राजा रणादित्य तुञ्जीन नाम से भी प्रसिद्ध थे। इनकी स्त्री रणारम्भा स्वयं वैष्णवी शक्ति भूतल में अवतीर्ण हुई थी। राजा रणादित्य के पूर्व जन्म की कथा राजतरङ्गिणी में लिखी हुई है।

राजा रणादित्य पूर्व जन्म के जुआड़ी थे। वे किसी समय में जुए में अपना सर्वस्व हार कर विशेष दुःखी हुए। अनन्तर वह धन-प्राप्ति की आशा से शरीर त्याग करने पर उद्यत हुए। धूर्त मृत्यु के समय भी स्वार्थ साधन करने से नहीं हिचकते। विन्ध्याचल की देवी भ्रमरवासिनी के दर्शन करने से इष्टसिद्धि होती है इस कारण वे उनका दर्शन करने के लिये उद्यत हुए। परन्तु भ्रमरवासिनी देवी का दर्शन करना बड़ा कठिन है, क्योंकि वहाँ का मार्ग बड़ा कठिन है, भवरें और मधुमक्खियों के कारण पाँच योजन मार्ग काटना बड़ा ही कठिन है। अतएव उसने लोहे का कवच, उस पर भैंसे का चमड़ा और उस पर गोबर मिट्टी का लेप लगा कर अभेद्य कवच बनाया। वे उसी कवच को पहन कर बड़े वेग से चले, इस कवच से यद्यपि उनकी पूर्णतः रक्षा नहीं हुई, तथापि इससे उन्हें सहायता अधिक मिली, इसमें सन्देह नहीं। वह भगवती के पास पहुँचे, उनके साहस से प्रसन्न हो कर भगवती ने उन्हें दर्शन दिये। वह भगवती के रूप पर मोहित हुए और उन्होंने भगवती के साथ सङ्गम की प्रार्थना की, भगवती ने उसे बहुत समझाया, परन्तु समझे कौन? कामियों में समझने की बुद्धि नहीं होती। अन्त में उसका दृढ़ निश्चय देख कर भगवती ने कहा कि दूसरे जन्म में तुम्हारी यह अभिलाषा पूर्ण होगी। वह द्यूतकार वहाँ से चला आया, और प्रयाग के अक्षयवट की शाखा से वही भावना करते हुए गिर कर मर गया। वैष्णवीदेवी रणारम्भा रूप से उत्पन्न हुई और द्यूतकार रणादित्य के रूप में।

(राजतरङ्गिणी)

रतन कवि=ये भाषा के कवि श्रीनगर बुन्देलखण्ड के निवासी थे। सं० १७६८ में इनका जन्म हुआ था। ये कवि राजा फतेशाह बुन्देला श्रीनगर के दरबार में थे। इन्होंने अपने आश्रयदाता राजा के नाम पर फतेशाहभूषण और फतेप्रकाश नामक दो ग्रन्थ लिखे हैं।

रतन राव=बूंदी के राव राजा। ये राव राजा भोज के प्रथम पुत्र थे। राव रतन के राज्यकाल में अकबर की मृत्यु हो गयी थी, उस समय जहाँगीर के सिर पर मुग़ल-राज-छत्र शोभित हो रहा था। जहाँगीर ने अपने पुत्र परवेज़ को दक्षिण के शासनकर्ता का पद दिया, इससे उनके दूसरे पुत्र खुर्रम ने द्वेष के वशवर्त्ती हो कर अपने सौतेले भाई परवेज़ को मार डाला। तदनन्तर उसने अपने पिता को भी मारने के लिये आयोजन किया। खुर्रम राजपूत-नन्दिनी के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। अतएव उसे राजपूत राजाओं से सहायता मिली थी। इस अवस्था में बादशाह जहाँगीर को गद्दी से उतारने के लिये यह कुचक्रियों का दल उद्योग कर रहा था, परन्तु इस दुःख के समय भी राव रतन ने बादशाह जहाँगीर का पक्ष ग्रहण किया

था, इनके सम्बन्ध में हाड़ा कवि ने कहा है—
"सरवर फूटा जल वहा, अब क्या करो यतन।
जाता घर जहाँगीर का, राखा राव रतन ॥"
राव रतनसिंह ने अपने दोनों पुत्रों के साथ जहाँगीर के उस महादुःख के समय बुरहानपुर में जा कर पितृद्रोही खुर्रम और उसके साथी राजाओं को युद्ध में एक बारही परास्त किया। यह युद्ध सन् १५७६ ई० में हुआ था। इसी विजय के उपलक्ष में जहाँगीर ने राव रतन को बुरहानपुर का शासन-भार दे दिया। राव रतन ने बुरहानपुर के शासन करने के समय वहाँ "रतनपुर" नामक एक गाँव भी स्थापित किया था। बुरहानपुर के दूसरे युद्ध में ये मारे गये थे। (टाड्स राजस्थान)

रति=कन्दर्प की पत्नी। महादेव की नेत्राग्नि में कन्दर्प के भस्म होने पर रति ने कन्दर्प की रक्षा के लिये मर्त्यलोक में मायावती के रूप में जन्म ग्रहण किया था। (देखो मायावती, अनिरुद्ध, कन्दर्प)

रतुल=एक राजकुमार, ये इक्ष्वाकुवंशी शुद्धोदन के पुत्र थे।

रन्तिदेव=ये सङ्कीर्ति के पुत्र थे। श्रीमद्भागवत में भी इनका उल्लेख हुआ है। ये बड़े धर्मिष्ठ तथा कर्मपरायण राजा थे। इनके यज्ञीय पशुओं की रुधिर धारा से एक नदी वह निकली थी, जिसका नाम चर्मण्वती है, जो आज चम्बल के नाम से प्रसिद्ध है।

रन्तिनर=एक राजकुमार। पुरुवंशी ऋतेय के पुत्र थे।

रत्नकुमारी=ये प्रसिद्ध सितारे हिन्द राजा शिवप्रसाद की दादी थीं। ये बड़ी विदुषी थीं। संस्कृत तथा फ़ारसी साहित्य में इनका ज्ञान बहुत चढ़ा बढ़ा हुआ था। सङ्गीतशास्त्र तथा चिकित्साशास्त्र में भी इनका पूर्ण ज्ञान था। राजा शिवप्रसाद कहा करते थे—"हमारे पास जो कुछ ज्ञान है वह सब मेरी पूज्या दादी का दिया हुआ है।" इनकी कविता बहुत सुन्दर और भक्तिपूर्ण हुआ करती थी। इन्होंने "प्रेमरतन" नाम की एक पुस्तक बनाई। इनके बनाये कुछ दोहे यहाँ उद्धृत किये जाते हैं—
"परम रम्य वे वन सघन, कुञ्ज पुञ्ज छविधाम।
वेई तृण तरु हरित अरु, लता सुललित ललाम॥
वेई वर्हो नटत वर, कूकत कोकिल कीर।
वे मराल कलरव करत, वे यमुना के तीर॥
वे खग मृग गीलत विविध, वहत त्रिविध सुसमीर।
प्रफुलित वे कैरव कमल, वे तरङ्ग वे नीर॥
वेई विपिन वसन्त नित, वेई गोपीचन्द।
वे रजनी रस रास वर, करत नवल व्रजचन्द॥"

रत्नगर्भ=ये विष्णुपुराण के एक टीकाकार थे। इनके बनाये ग्रन्थ का नाम "वैष्णवाकूत-चन्द्रिका" है। इनके समय के विषय में कुछ निश्चित नहीं कहा जा सकता।

रत्नजी=ये चित्तौर के महाराणा थे। महाराणा संग्रामसिंह के ये तीसरे पुत्र थे। महाराणा संग्रामसिंह के मरने पर ये मेवाड़ के सिंहासन पर बैठे। इन्होंने सिंहासन पर बैठते ही अपने क्षत्रियोचित गुणों का परिचय दिया। यदि ये थोड़े दिन भी युवावस्था के वेग को रोक सकते तो इसमें सन्देह नहीं कि इनसे राजपूताने का बड़ा उपकार होता। परन्तु युवावस्था के वेग को न रोक सकने के कारण इनकी अकाल में मृत्यु हुई, और राजपूताना ने इनसे जो आशा की थी वह सदा के लिये विलीन हो गयी।

इन्होंने आमेर के राजा पृथ्वीराज की कन्या से गुप्त व्याह कर लिया था, इस बात की कानों कान भी किसीको ख़बर नहीं थी। अतएव कन्या के व्याह योग्य अवस्था प्राप्त करने पर महाराज पृथ्वीराज ने उसका व्याह बूँदी-नरेश सूरजमल से पक्का किया। वह कन्या भी मारे लाज के पहली बात नहीं कह सकी। व्याह हो जाने पर इसकी ख़बर महाराणा रत्नसिंह को लगी। इस संवाद को पाते ही वे बदला लेने के लिये अधीर हो गये। अहेरिया का समय उपस्थित हुआ। महाराणा ने अपने वैर का बदला लेने का उचित अवसर पाया। सूरजमल और रत्नजी दोनों अहेर खेलने के लिये आगे निकल गये। वहाँ इन दोनों के अतिरिक्त तीसरा कोई नहीं था। मौका देखकर महाराणा रत्नजी ने सूरजमल पर वार किया, सूरजमल घोड़े से गिर गया। परन्तु थोड़ी ही

देर में सम्हल कर उठने पर सूरजमल ने देखा कि रत्नजी भागा जा रहा है। सूरजमल ने कहा—"भाग जा, भाग जा, रे कायर! तेरी इस कापुरुषता ने मेवाड़ के श्वेत यश में सदा के लिये कलङ्क लगा दिया।" रत्नजी जानता था कि सूरजमल मर गया इसी लिये वह भागा जाता था, परन्तु जब उसे मालूम हुआ कि वह जीता है, तब वह लौटा, आ कर वह सूरजमल पर वार करना चाहता ही था कि इतने में सूरजमल ने रत्नजी की छाती पर चढ़ कर उसका काम तमाम कर डाला।

(टाड्स राजस्थान)

रत्नसिंह=बीकानेर के एक महाराज। ये महाराज सूरतसिंह के पुत्र थे और उनका परलोकवास होने पर ये बीकानेर के सिंहासन पर आरूढ़ हुए। महाराज रत्नसिंह के अधिकारारूढ़ होते ही सामन्त और प्रजाओं के मन का भाव सहसा बदल गया। उनके हृदय में नयी नयी आकाङ्क्षाएँ उत्पन्न होने लगीं। उस समय बीकानेर का राजनैतिक आकाश अनेक प्रकार के बादलों से घिर गया। सिंहासन पर बैठने के थोड़े ही दिनों बाद इन्हें एक बड़े भारी युद्ध में फँसना पड़ा। जयसलमेर की प्रजा और कर्मचारियों ने अराजक बीकानेर की सीमा में लूट खसोट करना प्रारम्भ कर दिया। इससे रत्नसिंह ने अत्यन्त कुपित हो कर जयसलमेर के राजा को युद्ध के लिये निमन्त्रण पत्र भेजा और जयपुर तथा मेवाड़ के महाराजों से सहायता माँगी। जयसलमेर के राजा युद्ध के लिये दुगुने उत्साह से तैयार हो गये। जयसलमेर की सीमा पर इनकी सेना एकत्रित हुई। इसी समय अंग्रेज़ी गवर्नमेंट ने रत्नसिंह के पास एक पत्र भेजा तथा इस युद्ध को अपनी सन्धि का भङ्ग करना बताया। इस पत्र से महाराज रत्नसिंह युद्ध से निवृत्त हो गये। गवर्नमेंट की सम्मति के अनुसार मेवाड़ के महाराणा ने इन दोनों राज्यों के बीच पड़ कर झगड़ा तय करा दिया।

इस विवाद के शान्त होने पर महाराज रत्नसिंह १८३० ई० में राज्य के भीतरी झगड़ों में फँसे। राज्य के सामन्त विद्रोही हो गये। महाराज रत्नसिंह इससे बड़े भीत हुए और उन्होंने गवर्नमेंट से सेना की सहायता माँगी, रेज़िडेंट सहायता देने के लिये प्रस्तुत भी हो गये थे परन्तु बड़े लाट के रोकने से वे रुक गये।

गवर्नमेंट की सहायता से निराश हो कर रत्नसिंह ने अपने ही बल से उस विद्रोह को दमन करना ठाना। परन्तु इसी समय जयसलमेर वाला झगड़ा पुनः खड़ा हो गया। इस झगड़े को शान्त करने के लिये गवर्नमेंट ने एक अंग्रेज़ भेजा, और दोनों का झगड़ा तय हो गया।

इसी बीच महाराज रत्नसिंह ने अपने राज्य की सीमा बढ़ाने का भी प्रयत्न किया था, परन्तु बृटिशसिंह के निषेध करने से रुक गये। महाराज रत्नसिंह ने २५ वर्ष तक राज्य किया था। सन् १८५२ ई० में इनका शरीरान्त हुआ।

(टाड्स राजस्थान)

रथकृत्=एक यक्ष का नाम।

रथचित्र=एक नदी का नाम। इस नदी का वर्णन पुराणों में हुआ है, परन्तु यह नदी है कहाँ इसका पता नहीं है।

रथन्तर=(१) ऋग्वेद के एक अध्यापक, ये सत्यश्री के शिष्य थे।

(२) सामवेद का एक नाम।

रथीनर=अङ्गिरावंश के एक ऋषि का नाम।

रमणक=आठ द्वीपों में एक द्वीप, जिसका उल्लेख श्रीमद्भागवत में हुआ है। इस द्वीप में म्लेच्छ रहते हैं और वे हिन्दू देवताओं की पूजा करते हैं।

रमेशचन्द्र दत्त=आपका जन्म बङ्गाल के एक प्रसिद्ध वंश में १३ अगस्त सन् १८४८ में कलकत्ते में हुआ था। इनके पिता डिप्टी कलेक्टर थे। बाल्यावस्था में आप अपने पिता के साथ रहते थे जिससे आपको अनेक विषयों की शिक्षा अनायास ही प्राप्त हुई थी।

जब आपके पिता माता का स्वर्गवास हुआ तबसे आप अपने चचा के साथ रहने लगे। इनके चचा एक विद्याव्यसनी मनुष्य थे, उनके साथ से रमेशचन्द्र दत्त जी बड़े मनोयोग से पढ़ने लगे। सन् १८६४ ई० में इन्होंने मेट्रीक्यूलेशन परीक्षा पास की, तदनन्तर १८६६ ई० में एफ. ए. परीक्षा में यूनिवर्सिटी में द्वितीय

हुए थे। आप बी. ए. परीक्षा देने वाले ही थे कि सहसा आपको विलायत जाने की सूझी। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी और विहारीलाल गुप्त विलायत जाने के लिये तैयार हुए। सुरेन्द्र बाबू को विलायत जाने के लिये इनके पिता ने आज्ञा दे दी थी, परन्तु रमेश बाबू किसीसे बिना पूछे ताछे विलायत जाने के लिये प्रस्थित हुए। विलायत जा कर रमेश बाबू ने सिविल सर्विस की परीक्षा पास की और वहाँ से कलेक्टरी के पद पर नियुक्त हो कर भारत लौट आये।

सन् १८७१ ई० से १८९७ ई० तक रमेशचन्द्र दत्त जी बङ्गाल के अनेक ज़िलों में काम करते रहे। बरीसाल, बाकरगंज, मैमनसिंह आदि ज़िलों में आपने बड़ी योग्यता से कलेक्टरी की। आपने बङ्गाल टेनेंसी एक्ट के पास होने में लार्ड मेकडानल्ड को बड़ी सहायता दी थी। आपकी योग्यता देख कर सरकार ने आपको उड़ीसे का कमिश्नर बनाया। सन् १८८६ ई० में छुट्टी ले कर आपने सकुटुम्ब योरप के प्रसिद्ध प्रसिद्ध स्थानों की यात्रा की।

आपने ऋग्वेद का अंग्रेज़ी में अनुवाद किया था, भारत का इतिहास भी आपने अंग्रेज़ी में लिखा है। आपने अंग्रेज़ी और बङ्गभाषा में अनेक ग्रन्थ लिखे हैं। आप अंग्रेज़ी भाषा के महान् विद्वान् होने पर भी मातृभाषा बङ्गला के परमभक्त थे। बाबू बङ्किमचन्द्र आपके मित्र थे।

सन् १८८७ ई० में आपने पेंशन ले ली और तदनन्तर आप देशहित के कामों में अनवरत लगे रहे। सन् १८९७ ई० से सन् १९०४ ई० तक आप इंगलैण्ड में रह कर राजनैतिक विषयों पर लेख लिखा करते थे। उसी समय आपने लण्डन यूनिवर्सिटी में अध्यापक का भी काम किया था। सन् १८९९ ई० में आप लखनऊ की कांग्रेस में सभापति चुने गये थे। सन् १९०४ में गुणग्राही गायकवाड़ ने आपको अपना मन्त्री बनाया। सन् १९०५ ई० में आप बनारस इंडस्ट्रियल कानफ्रेंस के सभापति निर्वाचित हुए। इसी प्रकार आप देशहित के अनेक कामों में योग देते रहे। आपका देहान्त नवम्बर सन् १९१० ई० में हुआ।

रम्भा=स्वर्ग की प्रसिद्ध अप्सरा। यह अप्सरा अपूर्व लावण्यवती और सङ्गीतशास्त्रज्ञा थी। एक समय रम्भा अभिसारिका के वेष में नलकूबर के पास जाती थी, मार्ग में रावण ने इस पर आक्रमण किया। रम्भा ने उसे शाप दिया कि यदि अब तू किसी स्त्री पर बलात्कार करेगा तो तेरा सिर फट जायगा।

रम्य=राजा अग्निधर के नौ पुत्रों में से एक पुत्र का नाम। ये रम्य पीछे से नीलगिरि के राजा हुए थे।

रम्यक=उत्तर मेरु का एक जनपद।

रसखान कवि=इनका नाम सय्यद इब्राहीम था। ये पिहानी के रहने वाले थे। सं० १६३० में इनका जन्म हुआ था। ये थे तो मुसल्मान परन्तु भगवान् में इनकी अनुपम भक्ति थी। ये वृन्दावन में रह कर भगवद्गुणगान किया करते थे। भक्तमाल में इनकी कथा लिखी हुई है। (शिवसिंहसरोज)

रसलीन कवि=ये मुसल्मान कवि थे। इनका नाम सय्यद गुलामनबी बिलग्रामी था। ये अरबी फारसी के विद्वान् तो थे ही, भाषा के भी बड़े विद्वान् और निपुण कवि थे। "रसप्रबोध" नामक भाषा अलङ्कार का एक ग्रन्थ इन्होंने लिखा है जिसका कविसमाज में बड़ा आदर है। (शिवसिंहसरोज)

रसायन=रसायनशास्त्र के नौ भागों में से एक भाग का नाम।

रहीम=इस नाम के, भाषा के दो कवि हुए थे। ये दोनों बड़े निपुण कवि थे। रहीम के दोहे प्रसिद्ध हैं। परन्तु इसका पता लगाना अत्यन्त कठिन है कि कौन कविता किस रहीम की बनायी हुई है।

राजगृह=रामायण में लिखा है कि केकय राज्य की राजधानी का नाम राजगृह अथवा गिरिव्रज था। यह राजगृह अथवा गिरिव्रज मगध के अन्तर्गत गिरिव्रज से भिन्न है इसमें तो कुछ सन्देह ही नहीं। परन्तु वह राजगृह अथवा गिरिव्रज इस समय कहाँ है इसका पता लगाना कठिन है। अयोध्या से दूत राजगृह गया था और वहाँ से भरत अयोध्या आये थे,

इनके आने जाने के मार्ग का उल्लेख रामायण में किया गया है । केकय राज्य में जाने के समय राजदूत अयोध्या से पश्चिम की ओर चला था । रामायण में लिखा है—पश्चिम की ओर अपरताल देश और उत्तर की ओर प्रलम्ब नामक जनपद के बीच बहने वाली मालिनी नदी की शोभा देखता हुआ वह दूत चला । हस्तिनापुर के सामने गङ्गा पार कर पाञ्चाल देश को डाँक कर वह कुरुजाङ्गल देश के बीच से हो कर चला। तदनन्तर शरदण्ड नाम्नी नदी को पार कर वह कुलिङ्ग नाम की नगरी में प्रविष्ट हुआ । तदनन्तर उसने अभिकाल और भोजाभिभव नामक जनपदों को डाँक कर इक्ष्वाकुवंशियों के पितृपितामहादि से सेवित इक्षुमती नाम की नदी को पार किया । इसके पश्चात् वाल्हीक देश को पार करता हुआ वह सुदामा पर्वत पर पहुँचा । विपाशा, शाल्मली आदि नदियाँ अतिक्रम कर के वह राजगृह पहुँचा । जाने के समय दूत जिस जिस स्थान से होता हुआ गया था, लौटने के समय उन स्थानों में से एक दो स्थानों को भरत ने देखा था। इससे यह बात निश्चित होती है कि दोनों भिन्न भिन्न मार्ग से आये और गये ।

कनिंहम कहते हैं कि वितस्ता (झेलम) नदी के उस पार स्थित जलालपुर तथा उसके समीप के स्थान प्राचीन केकय राज्य के अन्तर्गत थे । अकबर के शासन-समय में उस प्राचीन नगरी का नाम जलालपुर रखा गया । जलालपुर के पास गिर्जाक नामक जो पर्वतश्रेणि है, उसका पुराना नाम गिरिव्रज होना भी सम्भव है । जलालपुर पञ्जाब के झेलम ज़िला के अन्तर्गत वितस्ता नदी के दक्षिण तीर पर स्थित है । पाश्चात्य पण्डित उसीको केकय राज्य बतलाते हैं । किसी किसी का मत है कि काश्मीर के प्रदेश विशेष का नाम ही केकय राज्य है । महाभारत हरिवंश तथा तन्त्रशास्त्रों में अनेक बार काश्मीर का उल्लेख हुआ है परन्तु रामायण में काश्मीर का नाम नहीं देखा जाता। अतः रामायण के समय वर्तमान काश्मीर राज्य का केकय राज्य आदि के नाम से परिचित होना असम्भव नहीं है। काश्मीर के इतिहास राजतरङ्गिणी नामक ग्रन्थ में राजपुरी नामक एक ग्रन्थ का उल्लेख देखा जाता है । संग्रामपाल ने उसी नगर में जब अपनी स्वाधीनता की घोषणा की, तब काश्मीराधिपति हर्षदेव ने राजपुरी पर अधिकार करने के लिये दण्डनायक नाम के सेनापति को सेना के साथ भेजा था । यह सेनापति अठारह महीने के बाद लौट आया, तदनन्तर सेनापति कन्दर्प ने उस नगरी पर काश्मीर राज्य का अधिकार जमाया । बहुतों का यह विश्वास है कि वह रामायण-ख्यात राजगृह ही पीछे से राजपुरी के नाम से परिचित हुआ । (भारतवर्षीय इतिहास)

राजशेखर=ये संस्कृत के प्रसिद्ध नाटककार थे । इनके बनाये विद्धशालभञ्जिका, बालभारत अथवा प्रचण्डपाण्डव और बालरामायण इन नाटकों का संस्कृत साहित्यज्ञों में बड़ा आदर है। प्राकृत में भी कर्पूरमञ्जरी नामक एक नाटक इन्होंने लिखा है । ये कवि भवभूति के पश्चात् हुए थे । इनका समय दशम शतक तक माना गया है ।

राजा रणधीरसिंह=ये शिरमौर जाति के क्षत्रिय थे । ये सिंगरामऊ के रहने वाले थे । इनके यहाँ कवियों का बड़ा सम्मान होता था । "भूषण-कौमुदी" और "काव्य रत्नाकर" दो ग्रन्थ भी इन्होंने बनाये हैं । ये सिंगरामऊ वाले के नाम से कविसमाज में बड़े आदर की दृष्टि से देखे जाते हैं ।

राजेन्द्रलाल मित्र=इनका पूरा नाम राजा राजेन्द्रलाल मित्र सी. आई. ई. था । ये बङ्गाल के प्रसिद्ध प्रत्नतत्त्ववेत्ता थे । इनका जन्म सन् १८२४ ई० में हुआ था । इनके पिता का नाम जनमेजय मित्र था । ये राजवंशज थे । जनमेजय के पितामह का नाम था राजा पीताम्बर मित्र । राजेन्द्रलाल अपनी विधवा चाची के यत्न से लालित पालित और शिक्षित हुए थे । बाल्यावस्था में ये गोविन्द बैसाक के स्कूल में अंग्रेज़ी पढ़ने के लिये भर्ती हुए । १८४० ई० में ये कलकत्ता के मेडिकल कालेज में भर्ती हुए । सन् १८४१ ई० में ये द्वारकानाथ ठाकुर की

सहायता से विलायत जाने को प्रस्तुत हुए थे, परन्तु पिता के निषेध करने से रुक गये। मेडिकल कालेज की पढ़ाई न समाप्त होने पर भी इन्हें यह कालेज किसी कारण वश छोड़ना पड़ा। तदनन्तर ये कानून पढ़ने लगे, परन्तु कानून की परीक्षा में फेल हो गये। इस प्रकार डाक्टरी और कानून दोनों ओर से हतमनोरथ होने पर आप भिन्न भिन्न भाषाएँ सीखने लगे। फ़ारसी भाषा का इन्हें पूर्ण परन्तु संस्कृत भाषा का थोड़ा ज्ञान था। इस कारण संस्कृत भाषा सीखने के लिये परिश्रम करने लगे। थोड़े दिनों में इन्हें संस्कृत का पूरा ज्ञान हो गया। इसके बाद इन्होंने ग्रीक लैटिन जर्मन फ्रेञ्च आदि भाषाओं का ज्ञान प्राप्त कर लिया। हिन्दी और उर्दू के भी वे पूर्ण विद्वान् थे। भाषा-तत्त्व सम्बन्धी किसी प्रश्न के उपस्थित होने पर इनके अगाध ज्ञान तथा अद्भुत विचारशक्ति का परिचय मिलता था। तदनन्तर ये १८४६ ई० में एशियाटिक सोसायटी के सहकारी सम्पादक के पद पर नियुक्त हुए। इस पद पर रह कर उन्होंने अपने ज्ञान को और भी बढ़ाया। सन् १८५० ई० से ये विविधार्थ-संग्रह नामक एक मासिकपत्रिका प्रकाशित करने लगे। सात वर्ष तक इस पत्रिका को इन्होंने नियमित रूप से चलाया। इसी समय से ये प्रत्नतत्त्व की आलोचना में प्रवृत्त हुए। एशियाटिक सोसायटी से प्रकाशित मासिकपत्रिका में तथा अन्यान्य अंग्रेज़ी मासिकपत्रिकाओं में प्रत्नतत्त्वसम्बन्धी गवेषणा-पूर्ण इनके लेख प्रकाशित होने लगे। इनके प्रत्नतत्त्वसम्बन्धी लेखों में "उड़ीसा का प्राचीन तत्त्व," और "बुद्धगया" ये दोनों प्रधान हैं। पीछे से इनके प्रबन्ध ग्रन्थाकार में प्रकाशित हुए थे। वे प्रबन्ध सङ्कलित हो कर Indo Aryans नाम से दो खण्डों में प्रकाशित हुए। ये कलकत्ता म्यूनिसिपलिटी के कमिश्नर चुने गये थे। महात्मा कृष्णदास पाल की मृत्यु के अनन्तर इन्होंने "हिन्दू पेट्रियट" का सम्पादन किया था। अनन्तर ये एशियाटिक सोसायटी के सभापति भी हुए थे। कलकत्ता विश्वविद्यालय से इनकी विद्वत्ता के लिये इन्हें डी. एल्. की उपाधि मिली थी, भारत गवर्नमेंट से सी. आई. ई., राय बहादुर और राजा की उपाधि मिली थी। ६७ वर्ष की अवस्था में वातरोग से इनकी मृत्यु हुई।

राज्यवर्द्धन=एक राजकुमार, ये दाम के पुत्र थे, जो मरुत के वंशज थे।

राधाकृष्णदास=ये भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के फुफेरे भाई थे। बाबू राधाकृष्णदास भारतेन्दु की फुआ गङ्गाबीबी के दूसरे पुत्र थे। इनके पिता का नाम कल्याणदास था और बड़े भाई का नाम जीवनदास।

इनका जन्म श्रावण सुदि पूर्णिमा सं० १९२२ में हुआ था। इनकी जब केवल १० महीने की अवस्था थी तब ही इनके पिता का स्वर्गवास हो गया। तदनन्तर थोड़े दिनों के बाद इनके बड़े भाई भी चल बसे। अतः बाबू हरिश्चन्द्र ने इन्हें अपने घर बुला लिया, और वे ही इनका लालन पालन करने लगे। इनकी शिक्षा का भी प्रबन्ध स्वयं भारतेन्दु ने ही किया था। हिन्दी और उर्दू की साधारण शिक्षा हो जाने पर ये स्कूल में अंग्रेज़ी पढ़ने के लिये बैठाये गये। सर्वदा रोगाक्रान्त रहने के कारण इनकी अच्छी शिक्षा तो नहीं हो सकी, तथापि सत्रह वर्ष की अवस्था में इन्होंने इन्ट्रेंस क्लास तक का अभ्यास कर लिया। बङ्गला और गुजराती भाषाओं का भी ज्ञान इन्होंने सम्पादन कर लिया था। दुःखिनी बाला, निःसहाय हिन्दू, महारानी पद्मावती, प्रताप नाटक आदि कोई २५ पुस्तकें इन्होंने हिन्दी में लिखी हैं। बाबू राधाकृष्णदास काशी नागरीप्रचारिणी सभा के मुख्य सञ्चालकों में से थे। ये अपने एक मित्र के साथ ठेकेदारी का काम करते थे। चौखम्भा बनारस में इनकी एक दूकान भी है। ४२ वर्ष की अवस्था में इनका देहान्त हुआ।

राधाचरण गोस्वामी=ये गौड़ ब्राह्मण और वृन्दावन के रहने वाले हैं। इनका जन्म सन् १८५९ ई० के फरवरी महीने में हुआ था। इनके पिता का नाम गोस्वामी लल्लू जी था।

इनकी माता बड़ी विदुषी थी, अतएव छोटी अवस्था ही से इनकी शिक्षा प्रारम्भ हो गयी थी।

व्याकरण और कतिपय काव्यों के पढ़ने पर इन्होंने श्रीमद्भागवत तथा अपने सम्प्रदाय के धर्मग्रन्थ पढ़े।

सन् १८७४ ई० में आप फर्रुखाबाद के पण्डित उमादत्त जी से विद्याध्ययन करने लगे। उसी समय अंग्रेज़ी पढ़ने की भी आपकी इच्छा हुई थी, परन्तु शिष्यों के डाँट बताने पर आपने अंग्रेज़ी पढ़ना छोड़ दिया। सन् १८७६ ई० में आप और गोस्वामी मधुसूदनलाल जी दोनों ने मिल कर "कविकुलकौमुदी" नाम की सभा स्थापित की। इस समय भी इनके शिष्यों ने इस कार्य का विरोध किया था, परन्तु इन्होंने उधर ध्यान ही नहीं दिया।

पहली स्त्री के देहान्त होने पर आपने अपना दूसरा ब्याह किया और उस स्त्री को पढ़ा लिखा कर पण्डिता बनाया। आप ब्राह्म धर्म के पक्षपाती लेख भी हिन्दूबान्धव नामक पत्र में प्रकाशित कराते थे। आपने दयानन्दजी के ग्रन्थों को पढ़ कर कहा था—"स्वामी दयानन्द जी के वाक्य मुझे वेदवाक्यवत् मान्य हैं और उनकी प्रत्येक बात मेरे लिये उदाहरण स्वरूप है"।

आपके लेख प्रायः हिन्दी के सभी पत्रों में छप चुके हैं। इन्होंने सन् १८८३ में "भारतेन्दु" नाम का एक मासिकपत्र निकाला था परन्तु सहायता के अभाव से वह थोड़े दिनों चल कर बन्द हो गया। सन् १८८४ में प्रयाग में जो हिन्दी पत्रसम्पादकों की सभा हुई थी उसके आप ही मन्त्री हुए थे। ये कलकत्ते में कांग्रेस के प्रतिनिधि हो कर गये थे। वहाँ से लौट कर आपने "विदेशयात्राविचार" और "विधवाविवाहविवरण" नामक दो ग्रन्थ विलायत-यात्रा और विधवा-विवाह के पक्ष में सामाजिक सुधार पर लिखे। सन् १८८९ में ये वृन्दावन के म्युनिसिपल कमिश्नर नियत हुए थे।

आप सनातनधर्मी भी हैं, ब्राह्म धर्म के पक्षपाती और दयानन्द स्वामी के वाक्यों को वेदवाक्यवत् मानने वाले भी हैं और आप समाजसुधारकों में से भी हैं।

राधा=श्रीकृष्णप्रेमिका एक गोपी। भागवत में राधा का कहीं उल्लेख नहीं देखा जाता। इस ग्रन्थ में श्रीकृष्णप्रेममत्ता एक गोपी का केवल निर्देशमात्र है। परन्तु अन्य पुराणों में राधा का नाम देखा जाता है। ब्रह्मवैवर्तपुराण के मतानुसार राधा गोलोक में भगवान् श्रीकृष्ण के वाम अङ्ग से उत्पन्न हुई हैं। ये श्रीकृष्ण के प्राणों की अधिष्ठात्री देवता हैं, और उनके वाम अङ्ग से उत्पन्न होने के कारण उनकी अत्यन्त प्रियतमा हैं। श्रीराधा उत्पन्न होते ही सोलह वर्ष की युवती हो गयीं। तदनन्तर राधा श्रीकृष्ण से वार्ता कर के रत्नसिंहासन पर उनके वाम अङ्ग में आसीन हुईं। इसी समय राधा के अङ्ग से लक्षकोटि गोपाङ्गना, गोप और कभी वृद्ध न होने वाली गौ उत्पन्न हुईं। गोलोक की राधा सुदामा के शाप से वृन्दावन में उत्पन्न हुई थी। एक समय इच्छामय श्रीकृष्ण ने रम्य वन में रमण करने की अभिलाषा की। इच्छा करते ही उनके अङ्ग से राधा उत्पन्न हुई।

सुदामा के शाप से गोकुल में वैश्य के घर राधा का जन्म हुआ।

(ब्रह्मवैवर्तपुराण)

रानडे=इनका पूरा नाम था महादेव गोविन्द रानडे एम्. ए., एल्.एल्. बी., सी. आई. ई.। ये बम्बई हाईकोर्ट में जज थे। इनका जन्म सन् १८४२ ई० २० जनवरी को महाराष्ट्र ब्राह्मण कुल में हुआ था। इनके पिता का नाम अमृत गोविन्द रानडे था। इनके पिता का देहान्त सन् १८७७ ई० में बम्बई में हुआ था। महादेव गोविन्द ने बम्बई के एलफिनस्टन कालेज में शिक्षा पायी थी। इसी कालेज से इन्होंने सन् १८६२ ई० में बी.ए. परीक्षा में विश्वविद्यालय भर में सर्वोच्च स्थान पाया था, और सन् १८६४ ई० में एम्. ए. परीक्षा पास की, तथा उसी उपलक्ष में इन्हें स्वर्णपदक भी मिला। सन् १८६६ ई० में ये एल्.एल्. बी. परीक्षा में प्रथम वर्ग में उत्तीर्ण हुए। विश्वविद्यालय की परीक्षाओं में सर्वोच्च स्थान प्राप्त करने के कारण ये उपाधिधारियों के राजा (Prince of Graduates) कहे

जाते थे। सन् १८६६ ई० में ये शिक्षाविभाग में मराठी भाषा के अनुवादक बनाये गये। तदनन्तर ये सोलापुर के अस्थायी जज नियत हुए। पुनः सन् १८६८ ई० में ये एलफिनस्टन कालेज में अंग्रेज़ी साहित्य के अध्यापक नियत हुए। इस पद पर रानडे ने सन् १८७१ ई० तक काम किया। इसी वर्ष में ये हाईकोर्ट की "एडवोकेट" परीक्षा के प्रथम वर्ग में उत्तीर्ण हुए। यह परीक्षा विलायत की बारिस्टरी परीक्षा के समान समझी जाती है। इस परीक्षा के पास करने के अनन्तर रानडे १० वर्ष तक अनेक स्थानों में सबजज का काम करते रहे। सन् १८८४ ई० में इनका १०००) मासिक वेतन हो गया, और ये छोटी अदालत में जज का काम करने लगे। सन् १८८६ ई० में ये "भारतीय आय-व्यय-समिति." के मेम्बर हुए। कई बार ये बम्बई व्यवस्थापक सभा के सभ्य हुए थे। सन् १८९३ ई० में ये हाईकोर्ट के जज नियत हुए। ये मरने तक इसी पद पर काम करते रहे। सन् १९०१ ई० में इनकी मृत्यु हुई। इन्होंने अंग्रेज़ी में कई एक ग्रन्थ लिखे हैं।

(१) विधवाविवाह की शास्त्रीयता।
(२) महाराष्ट्रीय जाति का इतिहास।
(३) खज़ानाक़ानूनसम्बन्धी पुस्तिका।
(४) राजाराममोहन राय की वक्तृता।

ये ब्राह्मधर्म के उत्साही मेम्बर थे और बम्बई विश्व-विद्यालय की "सिण्डिकेट" सभा के मेम्बर थे।

राम=अयोध्याधिपति महाराज दशरथ के ज्येष्ठ पुत्र थे। पिता की आज्ञा से सीता और लक्ष्मण को साथ ले कर रामचन्द्र १४ वर्ष के लिये वन गये। उस समय भरत अपने मामा के यहाँ गये थे, वहाँ से आ कर उन्होंने अपने पिता का अन्त्येष्टि संस्कार किया। अयोध्या आते ही भ्रातृ-वत्सल भरत ने सुना कि कैकयी के कारण ही रामचन्द्र को वन जाना पड़ा है, अतएव उन्होंने अपनी माता को बहुत धिक्कारा। राज्यशासन करने के लिये मन्त्रियों ने भरत से कहा, परन्तु उनके प्रस्ताव को उन्होंने अस्वीकार कर दिया। सेना ले कर रामचन्द्र को लौटाने के लिये उन्होंने दक्षिण की यात्रा की। इधर जटा-वल्कल धारण कर के रामचन्द्र सीता और लक्ष्मण के साथ रथ पर चढ़ कर अयोध्या के समीप गुह की राजधानी शृङ्गवेरपुर में उपस्थित हुए। राजा गुहक ने रामचन्द्र के आतिथ्य के लिये अपने यहाँ सामग्री तैयार की थी, रामचन्द्र ने कुछ सामान्य जलपान कर के वहीं वह रात्रि बितायी। प्रातःकाल होते ही सुमन्त्र रोता हुआ लौट गया। लक्ष्मण के कहने से गुह ने नाव मँगवायी और वहीं रामचन्द्र ने गङ्गा पार की। यहीं से रामचन्द्र के दुःखमय वनवास का प्रारम्भ हुआ। वन के कण्टकाकीर्ण महा-दुःखदायी मार्ग पर चल कर उन लोगों ने बड़े कष्ट से पहला दिन और रात बितायी। वे चलते चलते चित्रकूट पहुँचे, यहाँ पर्णशाला बना कर वे रहने लगे। एक दिन सेना का कोलाहल सुन कर लक्ष्मण ने एक पेड़ पर चढ़ कर देखा कि भरत सेना लिये हमारी ओर आ रहे हैं। लक्ष्मण ने भरत से अमङ्गल की आशङ्का कर के पहले ही से भरत का मार्ग रोकने के लिये रामचन्द्र जी से कहा। परन्तु रामचन्द्र जी ने किसी प्रकार भरत का अनिष्ट करना नहीं चाहा। थोड़ी ही देर में भरत रामचन्द्र के समीप आ कर उनके पैरों पर गिर गये। भरत ने अयोध्या लौट चलने के लिये रामचन्द्र जी से बहुत कहा, परन्तु प्रतिज्ञा भङ्ग होने के भय से रामचन्द्र ने अवधि के भीतर लौटना अस्वीकृत किया। राम ने अनेक प्रकार से समझा कर भरत को १४ वर्ष राज्यशासन करने के लिये कहा, परन्तु भरत ने उसे उचित नहीं समझा। भरत तब निराश हो कर रोने लगे। रामचन्द्र ने भरत को अनेक प्रकार से समझाया, वशिष्ठ और जाबालि आदि ऋषियों ने भी अयोध्या लौट आने के लिये रामचन्द्र से विशेष अनुरोध किया। जाबालि के नास्तिक उपदेशों को सुन कर रामचन्द्र बड़े अप्रसन्न हुए। अनन्तर बहुत वाद-विवाद होने पर स्थिर हुआ कि अवधि के भीतर रामचन्द्र लौट कर नहीं आयँगे,

भरत रामचन्द्र की पादुका सिंहासन पर रख कर प्रतिनिधि रूप से १४ वर्ष तक राज्यशासन करें। भरत रामचन्द्र की पादुका ले कर बड़े दुःख से अयोध्या लौट आये। रामचन्द्र ने सोचा, चित्रकूट अयोध्या से बहुत दूर नहीं है, यहाँ अयोध्या वाले आ कर बीच बीच में हमें चलने के लिये तङ्ग करेंगे इस कारण चित्रकूट छोड़ कर वे दक्षिण की ओर प्रस्थित हुए। रामायण के समय में चित्रकूट वनमय था। रामचन्द्र के समय दक्षिण का अधिकांश भाग जङ्गलमय तथा वहाँ के आदिम अधिवासियों के अधिकार में था, वे आदिम अधिवासी रामायण में राक्षस वानर, गोलाङ्गूल ऋक्ष आदि नाम से लिखे गये हैं। वाल्मीकि ने अयोध्या से चित्रकूट तक के मार्ग का सुन्दर वर्णन किया है परन्तु चित्रकूट से दक्षिण के मार्गों का वर्णन वैसा नहीं किया। उधर के किसी जनपद का उल्लेख उन्होंने नहीं किया है। चित्रकूट छोड़ कर रामचन्द्र दण्डकारण्य के अन्तर्गत पञ्चवटी में पहुँचे और वहाँ कुटी बना कर रहने लगे। राक्षस और भयङ्कर हिंस्रजन्तु-समाकुल वन में होते हुए रामचन्द्र पञ्चवटी में पहुँचे थे। यहीं लङ्केश्वर रावण की बहिन सूपनखा की नाक और कान काटे जाने पर रामचन्द्र का राक्षसों के साथ युद्ध हुआ, दण्डकारण्य में रावण के सेनापति खर दूषण १४ हज़ार सेना ले कर राज्यरक्षा के लिये रहते थे, वे सब रामचन्द्र के द्वारा मारे गये। भगिनी की दुर्दशा तथा अपने सेनापतियों के मारे जाने की बात सुन कर संन्यासी के वेष में आ कर रावण ने सीता का हरण किया। मारीच के मृत्युसमय की बातें सुन कर रामचन्द्र के मन में सन्देह उत्पन्न हुआ था, मार्ग में लक्ष्मण को अकेले आते देख कर रामचन्द्र का सन्देह और भी बढ़ गया। वे लक्ष्मण के साथ शीघ्रता से कुटी की ओर आये, परन्तु कुटी में उन्होंने सीता को नहीं देखा। विलाप करते हुए दोनों भाई सीता को ढूँढ़ने के लिये वन में इधर उधर घूमने लगे। थोड़ी दूर आगे बढ़ने पर उन लोगों ने मरते हुए जटायु को देखा, जटायु बोले, रावण सीता को हरण किये हुए आ रहा था, मैंने सीता की रक्षा के लिये उससे युद्ध किया, परन्तु मैं सफल नहीं हो सका। रावण ने सीता और मेरे प्राण, दोनों को हर लिया। यह टूटा हुआ रथ छत्र और दण्ड जो देखते हो, सो रावण के हैं। मैंने रावण के सारथि को मार डाला है। परन्तु मेरे थक जाने पर उसने तलवार से मेरे पर काट डाले। दुरात्मा रावण सीता को ले कर दक्षिण की ओर गया है। वह विश्रवा मुनि का पुत्र और कुबेर का भाई है—यह कहते कहते जटायु ने प्राण त्याग किया। वहीं राम और लक्ष्मण ने जटायु की अन्तिम क्रिया कर के दक्षिण की ओर यात्रा की। अनन्तर वे क्रौञ्चारण्य में गये, और वहाँ राम ने कबन्ध नामक राक्षस का वध किया। कबन्ध के मारने के पहले रामचन्द्र ने पम्पा सरोवर के तीर पर ऋष्यमूक पर्वत पर उपस्थित हो कर कपीन्द्र सुग्रीव के साथ मित्रता स्थापन करने का परामर्श स्थिर किया, अनन्तर तापसी शबरी से रामचन्द्र की भेंट हुई। चिराभिलषित रामचन्द्र का दर्शन पा कर शबरी ने यथाशक्ति उनकी सेवा की और उन्हीं के सामने ही उसने अग्नि में प्रवेश किया। शबरी के आश्रम से राम लक्ष्मण ऋष्यमूक पर्वत पर उपस्थित हुए। दोनों भाइयों को आते देख कर सुग्रीव डर गये, और उन्होंने हनुमान् को उनका परिचय जानने के लिये भेजा। ब्राह्मण के वेष में हनुमान् उनके समीप उपस्थित हुए। हनुमान् ने उनके साथ विशुद्ध भाषा में बातें कीं। दोनों का परिचय पा कर हनुमान् कन्धे पर ले कर सुग्रीव के समीप उनको ले गये। रामचन्द्र ने सुग्रीव से सीता का अलङ्कार और उत्तरीय पाया। दोनों में मैत्री स्थापित हो जाने पर रामचन्द्र ने वालिवध की प्रतिज्ञा की। राम ने अपने बल का परिचय देने के लिये एक बाण में सात ताल के वृक्षों का भेदन किया। राम और लक्ष्मण सुग्रीव के साथ किष्किन्धा में गये, राम के कहने से सुग्रीव वालि के साथ युद्ध करने लगा। वृक्ष की ओट में बैठ कर रामचन्द्र वालि सुग्रीव का मल्लयुद्ध देखने लगे।

रामचन्द्र ने जब देखा कि सुग्रीव वालि के साथ युद्ध में अब नहीं ठहर सकता, तब उन्होंने बाण मार कर वालि को गिरा दिया। छिप कर मारने के कारण वालि ने रामचन्द्र को बहुत दुर्वाक्य कहे। राम ने वालि को इस प्रकार उत्तर दिया—मैंने तुमको मार कर अन्याय नहीं किया, किन्तु यह काम मैंने बहुत ही उचित किया है। मैंने तुम्हारे योग्य दण्ड तुमको दिया है। शास्त्रों में छोटे भाई की स्त्री, बहिन और पुत्र की स्त्री ये कन्या के समान कही गयी हैं। तुमने अपने छोटे भाई की स्त्री को रख कर धर्मशास्त्र-विरुद्ध काम किया है। धर्मशास्त्रों की रक्षा करना राजा का काम है। जो प्रजा, धर्मशास्त्र के विरुद्ध काम करती है, राजा उसे दण्ड देता है। मैंने तुम्हें वही दण्ड दिया है। हम इक्ष्वाकुवंशी राजा हैं, हमारे छोटे भाई भरत अयोध्या में हैं और राज्य करते हैं। विचार की दृष्टि से देखा जाय तो तुम भरत ही की प्रजा माने जा सकते हो। मैं भरत की आज्ञा से पापियों को दण्ड देने के लिये नियत हूँ। अतएव मेरा दिया हुआ दण्ड राजदण्ड ही है। अपराधी के प्रति क्षात्रधर्म का आचरण करना आवश्यक नहीं है। वालि मर गया और उसका अन्तिम संस्कार समाप्त हुआ। वालि के वध के अनन्तर रामचन्द्र ने सुग्रीव का किष्किन्धा के सिंहासन पर अभिषेक किया। राम लक्ष्मण पास ही माल्यवान् पर्वत पर रहने लगे। राज्य पा कर सुग्रीव पहले की बात भूल गये। राज्य और स्त्री को पा कर सुग्रीव विलासिता में डूब गये। सीता के अन्वेषण करने की बात वे भूल गये। इधर रामचन्द्र सीता के वियोग से व्याकुल हो गये थे। वर्षांत के चार महीने काटने रामचन्द्र के लिये सौ वर्ष हो गये। वर्षांत बीत गयी शरदृऋतु आयी। इसी समय सीता के अन्वेषण करने का ठहराव था। परन्तु सुग्रीव का कुछ पता न पा कर राम ने लक्ष्मण को किष्किन्धा में भेजा। लक्ष्मण किष्किन्धा में उपस्थित हुए। लक्ष्मण ने किष्किन्धा की अपूर्व शोभा देखी। यहाँ आ कर उन्होंने हनुमान् आदि के घर देखे। सात खण्ड पार कर लक्ष्मण सुग्रीव के अन्तःपुर में उपस्थित हुए, कोई बाधा नहीं दे सका। वहाँ अनेक रूपवती स्त्रियों से वेष्टित हो कर सुग्रीव अनेक प्रकार के सुखभोग में लिप्त थे। वहाँ अनेक प्रकार के बाजे बजते थे। स्त्रियाँ गाने में मस्त थीं। एकाएक लक्ष्मण के पहुँच जाने से सभी ठठक गये। तारा लक्ष्मण के समीप आयीं, और मधुर बातों से उनका क्रोध शान्त किया। लक्ष्मण के शान्त होने पर सुग्रीव उनके पास गये। सुग्रीव लक्ष्मण के साथ राम के समीप आये। रामचन्द्र के साथ परामर्श होने पर सुग्रीव ने हनुमान् को दक्षिण दिशा में, सुषेण आदि को पश्चिम दिशा में, शतवलि को उत्तर दिशा में और विनत नामक वानरपति को पूर्व दिशा में भेजा, हनुमान् को छोड़ कर और वानर सीता का अनुसन्धान न पा कर लौट आये, हनुमान् अङ्गद आदि वानरगण जटायु के भाई सम्पाति से रावण के रहने का पता पा कर समुद्र के तीर गये। अगाध सागर को देख वानर भीत हो कर आपस में विचार करने लगे। समुद्र के पार जाने के लिये हनुमान् ने महेन्द्र पर्वत पर चढ़ कर अपना शरीर बढ़ाया और वहाँ से कूद कर वे समुद्रस्थ मैनाक पर्वत पर गये और वहाँ से कूद कर पुनः लङ्का में उपस्थित हुए।

लङ्का में पहुँच कर हनुमान् ने अशोकवाटिका में सीता को देखा। राक्षसस्त्रियों का सौन्दर्य देख कर हनुमान् विस्मित हो गये। पहले मन्दोदरी ही को हनुमान् ने सीता समझा था। हनुमान् ने नन्दनकाननसदृश रावण के प्रमोदवन को उजाड़ डाला। प्रमोदवन के उजाड़े जाने का संवाद पा कर रावण ने हनुमान् को पकड़ने के लिये राक्षसों और सेनापतियों को आज्ञा दी। हनुमान् के हाथ से राक्षससेना और जम्बुमाली विरूपाक्ष आदि सेनापति मारे गये। अन्त में रावण ने इन्द्रजित् को भेजा। ब्रह्मास्त्र के द्वारा हनुमान् को बाँध कर इन्द्रजित् ने रावण के सामने उपस्थित किया। रावण ने पहले हनुमान् को मार डालने की आज्ञा दी थी परन्तु विभीषण के कहने से पुनः उसने आज्ञा दी कि हनुमान्

की पूँछ में कपड़े लपेट कर उसमें आग लगा दो । हनुमान् की पूँछ में आग लगा दी गयी, हनुमान् ने उसी अग्नि से लङ्का भस्म कर के सीता का दर्शन किया । सीता से बिदा हो कर हनुमान् अरिष्ट पर्वत पर चढ़ गये । वहाँ से वानरों के साथ मिल कर रामचन्द्र के समीप हनुमान् उपस्थित हुए । रामचन्द्र उनसे बड़े प्रेम से मिले । हनुमान् ने लङ्कापुरी का जैसा ऐश्वर्य और सुदृढ़ होने का वर्णन किया उससे अमरावती का स्मरण होता है, रामचन्द्र ने सुग्रीव की सेना सजा कर समुद्रतीर की यात्रा की । रावण के गुप्तचरों ने शायद बनैले फलों में विष का योग न कर दिया हो इस कारण रामचन्द्र ने अपनी सेना में आज्ञा प्रचारित की कि बिना परीक्षा किये कोई वन्य फल न खाने पावे । इसी समय रावण से अपमानित हो कर विभीषण राम की शरण में आया । सुग्रीव आदि वानरों ने इस अज्ञातकुलशील राक्षस को शिविर में रखने की सम्मति नहीं दी, परन्तु रामचन्द्र ने शरणागत का त्याग करना उचित नहीं समझा । रामचन्द्र समुद्र के तीर पर उपस्थित हुए समुद्र की विशालता देख कर रामचन्द्र सोचने लगे कि समुद्र को कैसे पार किया जायगा । रामचन्द्र तीन दिन तक उपवास कर के समुद्र की उपासना करने लगे । रामचन्द्र ने प्रतिज्ञा की थी कि या तो मैं समुद्र पार होऊँगा या वहीं प्राणत्याग करूँगा । जब रामचन्द्र ने देखा कि उपासना से कुछ फल नहीं हुआ, समुद्र आया तक नहीं, तब क्रुद्ध हो कर समुद्र शोषण के लिये बाण निक्षेप किया । रामचन्द्र के बाण से समुद्रस्थ प्राणी व्यथित हुए, इससे डर कर समुद्र रामचन्द्र के समीप उपस्थित हुआ । विश्वकर्मा-पुत्र कपि-सेनापति नल द्वारा सेतु निर्माण कराने के लिये उसने रामचन्द्र को सम्मति दी । नल ने समुद्र पर एक सेतु बनाया, नल की आज्ञा में रह कर वानर-सेना ने शिला वृक्षादि द्वारा सेतु निर्माण किया सेतु के तैयार हो जाने पर रामचन्द्र ने समुद्र पार हो कर लङ्का पर आक्रमण किया । सुग्रीव और राम में विरोध करने के लिये रावण ने शुक नामक एक गुप्तचर को भेजा था । परन्तु रावण कृतकार्य नहीं हो सका । इसी समय सीता को अपने वश में करने के लिये रावण ने राम के मारे जाने की खबर प्रचारित की, और सीता को विश्वासित करने के लिये विद्युज्जिह्व नामक राक्षस की माया से बनाया गया राम का मस्तक उन्हें दिखलाया । रामचन्द्र की मृत्यु सुन कर सीता विलाप करने लगी । उसी समय विभीषण की स्त्री सरमा सीता के पास गयी, और उसने समझाया, कि रामचन्द्र के मरने की खबर झूठी है रामचन्द्र मरे नहीं, जो मस्तक दिखलाया गया है वह रामचन्द्र का नहीं है किन्तु मायावियों की माया द्वारा वह बनाया गया है । तदनन्तर दोनों ओर से युद्ध होने लगा ।

एक दिन अङ्गद ने युद्ध में इन्द्रजित् को परास्त कर दिया । तदनन्तर इन्द्रजित् ने राम लक्ष्मण को नागपाश से बाँध लिया । गरुड़ के स्पर्श से राम लक्ष्मण नागपाश से मुक्त हुए । रणक्षेत्र में राक्षससेना और सेनापति कट कट कर के गिरने लगे । धूम्राक्ष, वज्रदंष्ट्र, अकम्पन, प्रहस्त आदि सेनापति युद्ध में मारे गये । अनन्तर स्वयं रावण युद्धक्षेत्र में अवतीर्ण हुआ । रावण का सुग्रीव आदि के साथ पहले युद्ध आरम्भ हुआ । तदनन्तर राम के साथ उसका युद्ध होने लगा । उस युद्ध में पराजित हो कर रावण घर लौट आया । कुम्भकर्ण राम के साथ लड़ने आया, भयङ्कर युद्ध होने के बाद कुम्भकर्ण मारा गया । तदनन्तर इन्द्रजित् ने माया की सीता का रामचन्द्र के सामने वध किया । यह देख रामचन्द्र व्याकुल हो कर विलाप करने लगे । विभीषण ने रामचन्द्र को समझाया कि सीता के मारे जाने की बात बिलकुल माया है । अनन्तर लक्ष्मण विभीषण के साथ निकुम्भिला देवी के समीप गये, जहाँ इन्द्रजित् यज्ञ करता था, लक्ष्मण ने उससे युद्ध किया और उसे मार डाला । पुत्र के मारे जाने का दारुण संवाद सुन कर रावण को बड़ा क्रोध आया, और उसने पुत्रहन्ता

लक्ष्मण को मारने की प्रतिज्ञा की और युद्धक्षेत्र में अवतीर्ण हुआ । उसने एक शक्ति के आघात से लक्ष्मण को मूर्च्छित किया । सुषेण नामक वानरसेनापति ने लक्ष्मण की चिकित्सा कराने के लिये हनुमान् को महोदय पर्वत से विशल्यकरणी नामक जड़ी लाने के लिये भेजा । हनुमान् महोदय पर्वत पर तो गये परन्तु वे विशल्यकरणी ओषधि को पहचान नहीं सके । अतएव उस पर्वत का शिखर उखाड़ कर वे ले आये । उस औषध के सेवन से लक्ष्मण की मूर्च्छा दूर हो गयी । अनन्तर राम रावण में घोर युद्ध होने लगा, राम ने रावण को मार डाला । रावण का अन्तिम संस्कार हो जाने पर रामचन्द्र ने विभीषण को लङ्का का राज्य दे दिया । तदनन्तर राम की आज्ञा से हनुमान् ने अशोकवन में जा कर राम के विजयी होने का समाचार सुनाया । इस शुभ संवाद से सीता को बड़ा आनन्द हुआ । थोड़ी देर तक तो सीता कुछ भी बोल न सकीं, अनन्तर उन्होंने रामचन्द्र को देखने की अपनी इच्छा प्रकट की । हनुमान् ने आ कर सीता का अभिप्राय रामचन्द्र से कहा । रामचन्द्र ने कहा वेशभूषा से सज्जित हो कर सीता आवें । स्वयं जा कर विभीषण ने रामचन्द्र की आज्ञा सीता से कही । सीता उसी वेष ही में रामचन्द्र का दर्शन करना चाहती थीं । परन्तु विभीषण ने कहा रामचन्द्र जी ने जो कहा है वैसा करना ही उचित है । अनन्तर नहा धो कर कपड़े पहन कर सीता रामचन्द्र के सामने उपस्थित हुईं । सीता को देख कर रामचन्द्र ने कहा—आज मेरा सब परिश्रम सफल हुआ । मैं मानी हूँ । रावण ने मेरे मान में आघात पहुँचाया था, मैंने उसका उत्तर दे दिया । पवित्र इक्ष्वाकुवंश के गौरव की रक्षा के लिये मैंने राक्षसकुल का नाश कर दिया । तुम राक्षस के घर में रही हो अतएव तुम्हारे चरित्र में मुझे सन्देह है । मैंने तुम्हारे लिये नहीं, किन्तु वैर चुकाने के लिये युद्ध किया है । तुमको रखने से हमारे कुल में भी कलङ्क लगेगा । अतएव अब तुम्हारी जहाँ इच्छा हो वहाँ तुम जा सकती हो । रामचन्द्र की इन विषैली बातों से सीता को जो कष्ट हुआ वह सीता ही जान सकती है । सीता ने चिता बनाने के लिये लक्ष्मण को आज्ञा दी । चिता तैयार हुई सीता जलने के लिये चिता में पैठ गयीं । स्वयं अग्निदेव ने सीता की शुद्धता के लिये रामचन्द्र के सामने साक्ष्य दे कर सीता को ग्रहण करने के लिये राम से अनुरोध किया । रामचन्द्र लक्ष्मण, सीता, सुग्रीव आदि के साथ पुष्पक विमान पर चढ़ कर अयोध्या के लिये प्रस्थित हुए । वन जाने के ठीक १४ वें वर्ष रामचन्द्र प्रयाग में भरद्वाज मुनि के आश्रम पर पहुँचे । रामचन्द्र ने हनुमान् को भरत के पास उन लोगों के आने का संवाद देने के लिये भेजा । रामचन्द्र यथासमय अयोध्या में पहुँचे, और उनका राज्याभिषेक हुआ । राजा हो कर श्रीरामचन्द्र ने चाहा था कि लक्ष्मण को युवराज का पद दें, परन्तु उन्होंने उक्त पद लेना अस्वीकार कर दिया । लक्ष्मण ने कहा आप भरत को युवराज बनावें, हमें तो आपकी सेवा ही में बड़ी प्रसन्नता है ।

राम कवि=इनका नाम रामबक्स था । ये राना सिरमौर के दरबार में थे । इनका बनाया "रससागर" नामक एक ग्रन्थ भाषा-साहित्य में उत्तम है । इन्होंने सतसई की टीका भी लिखी है ।

रामकृष्ण परमहंस=बङ्गाल हुगली ज़िला के अन्तर्गत एक गाँव में इनका जन्म हुआ था । माता पिता के स्नेह और यत्न से रामकृष्ण ने सब बाधा विघ्नों को अतिक्रम कर के आठवें मास में पैर रखा । इनकी माता ने इनका नाम गदाधर रखा, परन्तु यह नाम परिवार के अन्य लोगों को अच्छा नहीं लगा । इस कारण इनका नाम बदल "रामकृष्ण" रखा गया । पाँच वर्ष की अवस्था में इनको विद्यारम्भ कराया गया और गाँव की एक पाठशाला में ये पढ़ने के लिये बैठाये गये । लिखने पढ़ने में इनका मन तादृश नहीं लगता था, पाठ की ओर कुछ ध्यान न दे कर ये सर्वदा खेल कूद में लगे रहते थे । गाने बजाने में इनका बड़ा

अनुराग था। कहीं गाना या कथा हो वहाँ ये अवश्य ही जाते थे । एक दिन इनके एक बाल सहचर ने कहा था कि भाई, तुम्हारा गला बड़ा ही मधुर है, तुम कुछ गाओ। उस दिन से रामकृष्ण सङ्गीत का अभ्यास करने लगे और किसीकी सहायता न ले कर ये सङ्गीतविद्या में निपुण हो गये।

रामकृष्ण के पिता का नाम था खुदिराम चट्टोपाध्याय। चट्टोपाध्याय पण्डित थे, संसार-निर्वाह के लिये उन्हें बड़ा कष्ट उठाना पड़ा था। इन्हें तीन पुत्र और दो कन्याएँ थीं । ज्येष्ठ पुत्र का नाम रामकुमार, मध्यम का रामेश्वर और छोटे का नाम रामकृष्ण था । पिता के कार्य में योग देने के लिये रामकुमार कलकत्ता चले गये और झामापुकुर नामक स्थान में उन्होंने पाठशाला स्थापित की।

गाँव में रहने के कारण रामकृष्ण का पढ़ना लिखना ठीक नहीं होता इस लिये रामकुमार ने अपने छोटे भाई को कलकत्ते बुला लिया । इस समय रामकृष्ण की अवस्था १४ वर्ष की थी । कलकत्ते में आने पर भी रामकृष्ण का मन पढ़ने लिखने में नहीं लगा । उन्होंने जो कुछ सीखा भी सो अपनी इच्छा से नहीं, किन्तु भाई के डर से। यद्यपि इनका चित्त पढ़ने लिखने में नहीं लगता, तथापि इनकी मेधा-शक्ति और इनका प्रत्युत्पन्नमतित्व विलक्षण था। पौराणिक पण्डितों से रामायण महाभारत आदि की कथा सुन कर उन विषयों का इन्हें पूर्ण ज्ञान हो गया था।

रामकृष्ण की अवस्था जिस समय प्रायः १८ वर्ष की थी उसी समय रामकुमार कलकत्ता से प्रायः तीन कोस उत्तर दक्षिणेश्वर नामक स्थान में काली जी के पुजारी नियत हुए। मारवाड़वंशी, रानी रासमणि ने भागीरथी के तीर पर काली का एक मन्दिर बनवाया था, रामकुमार उसी मन्दिर में पुजारी नियत हुए। इस मन्दिर में पुजारी होने पर रामकुमार ने कलकत्ते की पाठशाला को तोड़ दिया, और रामकृष्ण को ले कर वे वहाँ ही रहने लगे । वहाँ ही हुगली ज़िला के रहने वाले रामचन्द्र मुखोपाध्याय की कन्या शारदा सुन्दरी से रामकृष्ण का ब्याह हुआ। दक्षिणेश्वर में दो तीन वर्ष रहने के पश्चात् रामकुमार का परलोक-वास हो गया । रानी रासमणि और उनके दामाद रामकुमार को पुत्र के समान समझते थे । अतएव उनकी मृत्यु से इन्हें बड़ा कष्ट हुआ । उनके परिवार पालन के लिये उन्होंने रामकृष्ण को उसी पद पर नियत किया। देवी की पूजा के विषय में रामकृष्ण को कुछ भी ज्ञान नहीं था। अतः वे पूजा की विधि पढ़ कर बड़े उत्साह से भगवती की पूजा करने लगे।

इसी प्रकार कई वर्ष पूजा करने के अनन्तर रामकृष्ण योगाभ्यास करने के लिये उत्कण्ठित हुए । अतएव उन्होंने उसी बाग़ में एक कुटी बनायी और वहाँ योगाभ्यास करने लगे । योगसाधन करने के पहले उन्होंने एक संन्यासी से संन्यास ग्रहण किया। उसी समय से इन्होंने कामिनी काञ्चन का सम्बन्ध छोड़ दिया । लोगों ने इनकी अनेक प्रकार से परीक्षा भी ली, परन्तु आग में पड़ने से सुवर्ण की द्युति ही बढ़ती है। ५२ वर्ष की अवस्था में इनकी मृत्यु हुई। मृत्यु के कुछ महीने पहले इनके गले में एक घाव हो गया था। उससे इनको बड़ा कष्ट हुआ और उसी रोग से इनकी मृत्यु हुई।

इनके अनेक शिष्य थे, जिनमें सर्वप्रधान शिष्य स्वामी विवेकानन्द जी थे।

रामकृष्ण वर्मा=इनके पिता हीरालाल खत्री सन् १८४० ई० में पंजाब से पैदल काशी आये। यहाँ आ कर उन्होंने परचून की दूकान खोली, और ५० वर्ष की अवस्था में आज़मगढ़ में उन्होंने अपना ब्याह किया। जिससे राधाकृष्ण, जयकृष्ण और रामकृष्ण नाम के तीन पुत्र उत्पन्न हुए।

बाबू रामकृष्ण वर्मा का जन्म सन् १८५९ में हुआ था। ७० वर्ष की अवस्था में इनके पिता का देहान्त हुआ । उस समय इनके बड़े भाई की अवस्था १६ वर्ष की थी, और इनकी अवस्था केवल एक वर्ष एक महीने की थी । अतएव इनकी माता पर इन तीनों पुत्रों के पालन पोषण का भार पड़ा।

कुछ बड़े होने पर ये गुरु के यहाँ हिन्दी पढ़ने लगे। जब इन्होंने हिन्दी पढ़ना लिखना सीख लिया, तब ये जयनारायण कालेज में अंग्रेज़ी पढ़ने के लिये बैठाये गये। पढ़ने में इनका मन ख़ूब लगता था बायबिल की परीक्षा में ये सदा प्रथम रहा करते थे। उक्त कालेज से एंट्रेंस पास कर लेने पर इन्होंने क्वींस कालेज में नाम लिखवाया क्वींस कालेज में इन्होंने बी.ए. क्लास तक पढ़ा। ये बी.ए. की परीक्षा पास नहीं कर सके। ये घर पर एक पण्डित से संस्कृत पढ़ा करते थे। बायबिल पर इनकी अधिक श्रद्धा देख कर इनके अध्यापक ने अपने धर्म पर इनका अनुराग दृढ़ किया।

छात्रावस्था में ट्यूशन कर के ये अपना निर्वाह करते थे। पढ़ना छोड़ने के बाद हरिश्चन्द्र स्कूल में ये अध्यापक हुए, परन्तु वहाँ थोड़े दिनों काम करने के पश्चात् इन्होंने उक्त पद को त्याग दिया। तदनन्तर आपने पुस्तकों की एक छोटी सी दूकान कर ली। बाबू हरिश्चन्द्र तथा गोपालमन्दिर के महाराज की इन पर विशेष कृपा थी, क्योंकि ये कुशाग्रबुद्धि और हिन्दी भाषा के स्वाभाविक कवि थे। इनकी किताबों की दूकान अच्छी चली, उससे इन्हें लाभ भी हुआ। सन् १८८४ ई० में इन्होंने एक प्रेस ख़रीदा इस प्रेस से पहले पहले "ईसाई मतखण्डन" नाम की एक पुस्तक छपी, उस पुस्तक की बड़ी बिक्री हुई, शीघ्र ही इनका छापाख़ाना प्रसिद्ध हो गया। इसी साल के मार्च महीने से "भारतजीवन" नामक पत्र निकालना इन्होंने प्रारम्भ कर दिया।

ये शतरञ्ज खेलने में बड़े प्रवीण थे। अतएव इन्होंने पण्डित अम्बिकादत्त व्यास की सहायता से कचौरी गली में "चेसक्लब" स्थापित किया था। ताश खेलने का भी इन्हें अभ्यास था। सन् १८८१ ई० में इन्होंने ताशकौतुकपचीसी नाम की एक पुस्तक लिखी और छपवायी थी। लोगों ने उसे बहुत पसन्द किया और उसकी बिक्री भी ख़ूब हुई।

यों तो इन्होंने हिन्दी गद्य में अनेक पुस्तकें लिखीं, परन्तु इनका सब से बड़ा काम "कथा सरित्सागर" का अनुवाद है। इसके दस भाग आपने अनुवाद किये थे, परन्तु पुनः अधिक अस्वस्थ होने के कारण वे उस कार्य को आगे नहीं कर सके। सन् १९०६ ई० में जलोदर रोग से इनका शरीरान्त हुआ।

मनुष्य में कितनी शक्ति होती है, उसके उपयोग करने से मनुष्य क्या क्या कर सकता है, बाबू रामकृष्ण इसके आदर्श थे।

रामगिरि=एक प्राचीन पर्वत का नाम। यह नागपुर के पास है। जो इस समय "रामटेक" नाम से प्रसिद्ध है।

रामचरण कवि=ये गणेशपुर ज़िला बाराबङ्की के रहने वाले ब्राह्मण थे। संस्कृत और भाषा के ये निपुण कवि थे। संस्कृत में इनका बनाया "कायस्थकुलभास्कर" नामक ग्रन्थ है, भाषा में भी "कायस्थधर्मदर्पण" नामक ग्रन्थ इन्होंने लिखा है। इनकी रचना-शैली और विषय-प्रतिपादन के ढङ्ग अनोखे होते थे। आपकी कविता में अनुप्रास ख़ूब पाये जाते हैं।

रामदास स्वामी=महाराष्ट्रीय एक महात्मा। ये छत्रपति शिवाजी के गुरु थे। महाराष्ट्र देश में प्रसिद्धि है कि ये हनुमान् जी के अवतार थे। वे अपने मत को पुष्ट करने के लिये भविष्यपुराण का यह श्लोक प्रमाण में देते हैं—

"कृते तु मारुताख्यश्च त्रेतायां पवनात्मजः।
द्वापरे भीमसंज्ञश्च रामदासः कलौ युगे॥"

चारो युगों में हनुमान् जी का कौन अवतार हुआ यही बात इस श्लोक में लिखी है। सत्ययुग में मारुत, त्रेता में पवनात्मज, द्वापर में भीम और कलियुग में रामदास नाम से हनुमान् के अवतार होंगे।

गोदावरी नदी के किनारे कृष्णाजी पन्त ठोसर नामक एक देशस्थ ब्राह्मण रहते थे। उनके चार पुत्र थे। बड़े पुत्र दसरथ पन्त अपने पिता के धन में भाग लेना उचित न समझ कर वहाँ से कुछ दूर बड़गाँव नामक गाँव में चले गये। वह गाँव उजड़ हो गया था। केवल कुछ गवल गाय चराने के लिये रहते थे। दसरथ पन्त ने ग्वालों के मुखिया लखमा जी को वहाँ का ज़मींदार बनाया और आप वहाँ के

पटवारी और पुरोहित का काम करने लगे। धीरे धीरे उस प्रान्त में अनेक गाँव बस गये, उस इलाक़े के पटवारी और पुरोहित का काम दसरथ पन्त को ही मिला। दसरथ पन्त बड़े भगवद्भक्त थे। वे रामचन्द्र के उपासक थे। उनके छः पुत्र थे। बड़े का नाम रामाजी पन्त था। पिता जी की मृत्यु के पश्चात् रामाजी पन्त को उस इलाक़े की पटवारगिरी और पुरोहिती का काम मिला। इन्हींके वंश में सूर्याजी पन्त नामक भगवद्भक्त और ब्रह्मज्ञानी पुरुष उत्पन्न हुए। उनकी स्त्री का नाम राणूबाई था। सूर्याजी पन्त सूर्यनारायण के एकान्त उपासक थे, पटवारी के काम से जो अवसर इन्हें मिलता था उसमें ये सूर्यनारायण की उपासना किया करते थे। सूर्याजी पन्त को सूर्य ने दो पुत्र होने का वर दिया था। सूर्याजी का दूसरा पुत्र सन् १६०८ ई० में उत्पन्न हुआ। उसका नाम नारायण रखा गया। इसी नारायण की बड़े होने पर समर्थ रामदास के नाम से प्रसिद्धि हुई। इनके जन्मदिन ही से सूर्याजी पन्त की सुखसमृद्धि बढ़ने लगी। उस समय महाराष्ट्र देश में एकनाथ महाराज नाम के एक ब्रह्मज्ञानी साधु रहते थे। सूर्याजी पन्त अपनी स्त्री के साथ प्रतिवर्ष उनके दर्शनों के लिये जाया करते थे, इनके आने के समय एकनाथ महाराज कहते थे कि तुम्हारे घर में दो महात्मा अवतार लेने वाले हैं। इस साल नारायण का जन्म हुआ और सूर्याजी पन्त उनके दर्शनों के लिये गये। आने के समय एकनाथ जी महाराज ने दोनों को सम्बोधन कर के कहा—तुम धन्य हो, तुम्हारा वंश भी धन्य है, तुम्हारी भक्ति और उपासना अनुपम है। इसी लिये हनुमान् जी के अंश से यह बालक तुम्हारे यहाँ उत्पन्न हुआ है। हमारे उठाये कार्य को यह पूर्ण करेगा। अब हम अपना अवतार समाप्त करने वाले हैं। इस भविष्यद्वाणी के कुछ ही दिनों बाद महात्मा एकनाथ जी ने प्रस्थान किया।

नारायण बालपन में बड़े चञ्चल और नटखट थे। खेल कूद में वे सर्वदा लगे रहते थे। वे गाँव के लड़कों को अपने साथ ले कर गोदावरी के किनारे चले जाते, और बड़े बड़े वृक्षों पर चढ़ते एक वृक्ष से दूसरे पर कूद कर चढ़ने का उन्हें पूरा अभ्यास था जब वे गाँव में रहते तब भी शान्त नहीं रहते। गाँव में भी एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर, इस भीत से उस छप्पर पर कूदा करते थे। बालकपने में इनका उपद्रव तथा खटपट देख यदि लोगों ने इन्हें हनुमान् का अवतार कहा तो इसमें आश्चर्य क्या है।

सूर्याजी पन्त ने पाँचवें वर्ष में इनका यज्ञोपवीत संस्कार बड़ी धूमधाम से किया, यज्ञोपवीत के बाद उनके पिता ने उनकी शिक्षा के लिये एक वैदिक ब्राह्मण नियत किया। नारायण ने उन्हींसे उत्तम अक्षर लिखना नित्य-नैमित्तिक कर्म तथा कुछ संस्कृत का अभ्यास किया। इसी समय इनके पिता सूर्याजी पन्त का स्वर्गवास हो गया। दोनों भाइयों ने मिल कर पिता की उत्तरक्रिया सम्पन्न की। तब से नारायण के बड़े भाई गङ्गाधर उनके पढ़ाने लिखाने पर ध्यान रखने लगे। यद्यपि नारायण संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित नहीं थे, तथापि उपनिषद् और भागवत आदि ग्रन्थों का अर्थ वे समझ लेते थे।

समर्थ रामदास तो बालकपन ही से विरक्त थे, परन्तु पिता की मृत्यु के अनन्तर उनका वैराग्य बढ़ गया। रामदास के बड़े भाई का नाम गङ्गाधर था। लोग उन्हें श्रेष्ठ भी कहते थे। जिस प्रकार स्वामी रामदास हनुमान् के अवतार समझे जाते हैं, उसी प्रकार उनके बड़े भाई भी सूर्य के अवतार समझे जाते थे। वंशपरम्परा के अनुसार श्रेष्ठ भी रामचन्द्र के उपासक थे। श्रेष्ठ शिष्यों को मन्त्रोपदेश भी दिया करते थे। एक दिन रामदास ने देखा कि इनके बड़े भाई श्रेष्ठ ने एक मनुष्य को मन्त्रोपदेश दिया यह देख कर रामदास को भी मन्त्रग्रहण करने की बड़ी अभिलाषा उत्पन्न हुई। उन्होंने अपने बड़े भाई से मन्त्रोपदेश करने के लिये कहा। बड़े भाई ने उत्तर दिया, आपकी

अवस्था अभी छोटी है । मन्त्रोपदेश के लिये जो योग्यता चाहिये वह आप में अभी नहीं है । इस प्रकार का उत्तर सुन कर रामदास हनुमान् जी के मन्दिर में चले गये । उसी गाँव के बाहर गोदावरी के किनारे एक राम जी का मन्दिर था, उस मन्दिर में जा कर रामदास हनुमान् जी की प्रार्थना करने लगे । उनकी भक्ति और निष्ठा से प्रसन्न हो कर हनुमान् जी ने उन्हें दर्शन दिया । हनुमान् जी ने धीरज दे कर उनसे कहा—आप मन्त्रग्रहण करने की इतनी शीघ्रता क्यों कर रहे हैं । परन्तु रामदास ने कुछ सुना ही नहीं । अन्त में हनुमान् जी ने दूसरी गति न देख कर उनको रामचन्द्र का दर्शन कराया । रामचन्द्र ने उन्हें त्रयोदशाक्षर मन्त्र का उपदेश किया । कृष्णा नदी के तीर तपस्या करने की आज्ञा दे कर श्रीरामचन्द्र अन्तर्हित हो गये ।

संसार में जन्म और ब्याह दो ही उत्सव बड़े मङ्गल के समझे जाते हैं । नारायण की माता राणूबाई बहुत चाहती थीं कि नारायण का ब्याह हो जाय । परन्तु ब्याह की बात उठते ही नारायण बिगड़ उठते थे, इससे उनकी माता की चिन्ता बढ़ जाती थी । नारायण के बड़े भाई ने माता को समझाया भी, परन्तु माता का चित्त ठहरा वह माने कैसे, एक दिन राणूबाई नारायण को एकान्त में ले गयीं, और उन्होंने पूछा क्या बेटा, तुम हमारा कहना न करोगे । नारायण ने उत्तर दिया, मा, यदि तुम्हारा कहना नहीं करेंगे, तो किसका कहना करेंगे । माता ने कहा बेटा, सप्तवेदी होने तक विवाह में 'ना' न करो, यह सुन कर रामदास घबड़ा गये, थोड़ी देर सोच कर उन्होंने उत्तर दिया । अच्छा सप्तवेदी होने तक मैं 'ना' न करूँगा । माता ने नारायण की पेचीली बातों का अर्थ नहीं समझा उन्होंने जाना कि पुत्र विवाह करने के लिये प्रस्तुत हो गया । उन्होंने अपने बड़े पुत्र से जा कर सभी बातें कहीं । उन्होंने हँस कर कहा—ठीक है ।

राणूबाई ने एक कुलीन कन्या से ब्याह निश्चित किया । बरात सजी, मण्डप में वर गया, सब कृत्य होने लगा, देखते देखते सप्तवेदी की बारी आयी । उस समय पुरोहित ने कहा सावधान । नारायण ने सोचा मैं तो सर्वदा सावधान रहता हूँ तौ भी ये सावधान करते हैं । इनके सावधान करने में कुछ अर्थ होगा अवश्य, यही सोचते उन्हें माता की बात याद आयी । उन्होंने सोचा मैंने अपनी प्रतिज्ञा पूरी की, अब मैं दोषी भी नहीं हो सकता, यही सोच कर विवाह-मण्डप से निकल कर भाग गये । इनके पीछे बहुत लोग दौड़े भी परन्तु किसीने उनको पाया नहीं । यह संवाद सुन कर माता राणूबाई बड़ी दुःखिनी हुईं । श्रेष्ठ ने उन्हें समझाया, आप नारायण के लिये कोई चिन्ता न करें वह जहाँ रहेगा वहाँ आनन्द ही में रहेगा । मैंने तो पहले ही कहा था कि उसके ब्याह करने का प्रयत्न निरर्थक है, अच्छा जो हुआ सो अच्छा ही हुआ ।

मण्डप से भाग कर नारायण कुछ दिनों तक तो अपने गाँव के पास वन में छिपे रहे अनन्तर वहाँ से नासिक पञ्चवटी में चले गये, वहाँ से पूर्व की ओर दो तीन मील पर टकाली गाँव में गये । वहाँ गाँव के बाहर एक वृक्ष के नीचे कुटी बना कर रहने लगे । वहाँ उन्होंने तप करना प्रारम्भ किया । प्रातःकाल वे गोदावरी स्नान करने जाते और वहाँ दोपहर तक कटि पर्यन्त जल में खड़े रह कर जप किया करते थे । तदनन्तर पञ्चवटी में जा कर ये भिक्षा माँग लिया करते और रामचन्द्र को नैवेद्य लगा कर भोजन करते । भोजनोपरान्त पुनः भजन पूजन करने लगते । सन्ध्या होने पर वे जप और ध्यान में मग्न हो जाते थे । इस प्रकार वे बड़ी कठिन तपस्या करने लगे । जल में रहने के कारण कमर के नीचे का चाम और मांस मत्स्य आदि जलजन्तुओं ने काट खाया था । स्वयं स्वामी रामदास ने अपने इस कठिन तप का वर्णन किया है—

कष्टें विण फल नाहीं कष्टें विण राज्य नाहीं,
आधीं कष्टाचें दुःख सोसिती ते पुढें सुखाचें भोगिती ।

अर्थात् विना कष्ट के फल नहीं होता, कष्ट किये विना राज्य नहीं मिलता । जो पहले

जयपुर राज्य का शासन इसी प्रकार होता रहा । जयपुर राज्य की अराजकता इस समय दूर हो गयी थी । महाराज की शिक्षा के लिये भी उचित प्रबन्ध किया गया । पण्डित शिवधन महाराज के शिक्षक नियत हुए ।

सन् १८५७ ई० में महाराज को अपने राज्यशासन का सम्पूर्ण भार मिल गया । परन्तु महाराज को अनुभव न होने के कारण उन्हें पोलिटिकल एजेंट की सम्मति ले कर काम करना पड़ता था । महाराज ने ख़र्चालू अपने पूर्व मन्त्री को हटा कर उस पद पर अपने भाई लक्ष्मणसिंह को नियत किया और राजस्व विभाग के मन्त्री पण्डित शिवधन नियत हुए । परन्तु महाराज ने मन्त्रिमण्डल को तोड़ा नहीं उन्होंने उसी मन्त्रिमण्डल की सहायता ही से राज्य का शासन किया ।

इसी समय गवर्नमेंट को एक बड़ी भारी विपद् से सामना करना पड़ा था । जिस समय महाराज रामसिंह को शासन का भार मिला, उसी साल भारत में सिपाही-विद्रोह हुआ था । सिपाही-विद्रोह के समय महाराज रामसिंह ने गवर्नमेंट की बड़ी सहायता की । जिसके पुरस्कार में इन्हें गवर्नमेंट से कोटा कासिम परगना मिला था ।

महाराज रामसिंह के समय राजधानी की बड़ी उन्नति हुई । जयपुर का निर्माण म्युनिस्पालिटी आदि अनेक प्रबन्ध महाराज ने प्रजा के लिये उपयोगी किये । वे गवर्नमेंट के बड़े प्रीतिपात्र थे । इनकी योग्यता से जयपुर राज्य एक बार पुनः सुखी हो गया । सन् १८८० ई० में सुयोग्य महाराजा रामसिंह का स्वर्गवास हुआ । (टाड्स राजस्थान)

(४) जयपुर के महाराज । इनके पिता का नाम था महाराज जयसिंह । महाराज जयसिंह मिर्ज़ाराजा के नाम से प्रसिद्ध थे । अकबर के समय में जिस प्रकार मानसिंह ने प्रतिष्ठा प्राप्त की थी, उसी प्रकार औरङ्गज़ेब के समय में महाराज जयसिंह की प्रतिष्ठा थी । महाराज जयसिंह को छः हज़ारी मनसब प्राप्त था, परन्तु उनके पुत्र रामसिंह को छः हज़ारी मनसब न मिला । ये बादशाह की आज्ञा से आसाम निवासियों के साथ युद्ध करने गये थे और वहीं मारे गये । महाराज रामसिंह की मृत्यु सन् १७४६ ई० में आसाम में हुई । महाराज मानसिंह को एक पुत्र था । जिसका नाम विशनसिंह था । (टाड्स राजस्थान)

(५) ये जोधपुर के राजा थे । इनके पिता का नाम अभयसिंह था । रामसिंह बड़े क्रोधी तथा उग्रस्वभाव के मनुष्य थे । अभयसिंह की मृत्यु के पश्चात् रामसिंह का जोधपुर के सिंहासन पर अभिषेक हुआ । इनके अभिषेकोत्सव में सब सामन्त उपस्थित हुए थे, परन्तु न मालूम किस कारण इनके चचा बख़्तसिंह नहीं आये । उन्होंने अपनी धाय को भेज दिया था, उस धाय को देख कर रामसिंह जल गये, उन्होंने कहा, क्या चाचा साहब ने हमें बन्दर समझा है, जो उन्होंने हमारे अभिषेक में इस डाकिन को भेजा है । इस घटना से रामसिंह बड़े उत्तेजित हो गये थे । उन्होंने एक बड़ी कड़ी चिट्ठी बख़्तसिंह को लिख भेजी, तथा सेना को भी तैयार हो जाने की उन्होंने आज्ञा दी ।

इस समय रामसिंह ने किसीकी बात नहीं सुनी उनके प्रधान सामन्त आ कर उनको समझाने लगे, परन्तु रामसिंह के कठोर वचन से विरक्त हो कर वे चले गये । वे प्रधान कवि के गाँव में गये, उसी समय बख़्तसिंह आ कर उनसे मिले और उन्हें अपने पक्ष में कर लिया । युद्ध में रामसिंह हार गये । इस समय सभी ने रामसिंह का साथ छोड़ दिया था, परन्तु राजपुरोहित ने रामसिंह को उग्रस्वभाव जानते हुए भी न छोड़ा, राजपुरोहित ने महाराष्ट्र सेना से मिल कर उसे अपने पक्ष में कर लिया था, परन्तु उस समय राजनीतिज्ञ बख़्तसिंह ने ऐसा प्रबन्ध कर लिया था जिससे महाराष्ट्रसेना का उत्साह टूट गया । परन्तु आमेर की महारानी की चतुरता से बख़्तसिंह का अन्त हो गया । रामसिंह का पथ अपेक्षाकृत कुछ निष्कण्टक हो गया सही, परन्तु उनके सभी कण्टक दूर नहीं हुए । बख़्तसिंह के पुत्र विजयसिंह और रामसिंह के युद्ध ने मारवाड़ को विध्वंस कर दिया ।

बख़्तसिंह के मरने पर रामसिंह ने राज्यप्राप्ति का पुनः उद्योग किया । महाराष्ट्र सेना की सहायता से रामसिंह को जोधपुर की गद्दी कुछ दिनों के लिये मिल गयी । परन्तु उनके सहायक महाराष्ट्र सेनापति जयअप्पा वहीं मारे गये, इससे महाराष्ट्रों का सन्देह राजपूतों पर बढ़ गया । उन लोगों ने रामसिंह का पक्ष छोड़ दिया ।

तदनन्तर विजयसिंह ने रामसिंह को मारवाड़ राज्य के अधीन साँभर प्रदेश का राज्य दे दिया, और वे भी इसीसे सन्तुष्ट हुए ।

रामसनेही=एक धर्मपन्थ । रामचरण नामक एक मनुष्य इस पन्थ का प्रवर्तक है । रामचरण मूर्तिपूजा का विरोधी था । इसी कारण उसके प्रवर्तित सम्प्रदाय में रामचन्द्र देवता माने जाते हैं सही, परन्तु उनकी मूर्ति की ये पूजा नहीं करते । राजपूताने के अन्तर्गत शाहपुर में इनका प्रधान मठ है। बूँदी,कोटा, जयपुर,जोधपुर,चित्तौर आदि स्थानों में इस मत के उपासनामन्दिर हैं ।

सन् १७१८ ई० में इस रामसनेही पन्थ के प्रवर्तक रामचरण का जन्म जयपुर राज्य के अन्तर्गत सूरसेन नामक गाँव में हुआ था । इस सम्प्रदाय के उपासक विदेही और मोहिनी नामक दो भागों में विभक्त हैं । विदेही तो नङ्गे रहते हैं, और मोहिनीगण के साधु लाल रङ्ग के दो कपड़े रखते हैं । ये मिट्टी के पात्र से पानी पीते हैं और पत्थर के बर्तन में खाते हैं ।

रामानन्द=रामानन्दी सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्य (देखो रामानन्दी) ।

रामानन्दी=रामोपासक सम्प्रदाय । इस सम्प्रदाय में राम ही विष्णुस्वरूप माने जाते हैं । विष्णु के अन्य अवतार भी पूज्य अवश्य हैं परन्तु वे कहते हैं कि रामावतार सब अवतारों में श्रेष्ठ है । रामसीता अथवा सीताराम और हनुमान् की पूजा इस सम्प्रदाय में विशेष रूप से प्रचलित है । श्रीवैष्णवों के समान ये भी शालग्राम और तुलसीपत्र को बड़ा पवित्र समझते हैं । जिस प्रकार दक्षिण देश में श्रीसम्प्रदाय का प्रादुर्भाव हुआ है, उसी प्रकार उत्तर भारत में इस सम्प्रदाय की प्रधानता है । इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक रामानन्द हैं इस कारण यह रामानन्दी सम्प्रदाय नाम से परिचित होता है । कोई कोई कहते हैं कि रामानन्द रामानुज स्वामी के शिष्य थे । परन्तु मतान्तर से जाना जाता है कि श्रीरामानुज पीछे पाँचवीं पीढ़ी के समय रामानन्द उत्पन्न हुए थे । कोई कहते हैं रामानन्द तेरहवीं शताब्दी में वर्तमान थे, और किसी के मतानुसार १४वीं सदी के अन्त और १५वीं सदी के प्रारम्भ में रामानन्द का अस्तित्व प्रमाणित होता है । रामानन्दी सम्प्रदाय की सृष्टि का इतिहास इस प्रकार है—रामानन्द एक समय तीर्थयात्रा करने के लिये बाहर गये हुए थे । भारत के अनेक स्थानों में घूम कर जब वे अपने मठ में आये, तब उनके साथियों ने उनके साथ भोजन करने में अपनी असम्मति प्रकाशित की । उन लोगों ने कहा दूसरों के सामने भोजन करना रामानुज सम्प्रदाय की रीति के विरुद्ध है । रामानन्द ने परिभ्रमण के समय उस रीति का उल्लङ्घन किया है, अतः उनको अब से पृथक् खाना पड़ेगा । मठाधिकारी रामानन्द ने भी शिष्यों की बात को पुष्ट किया और उन्होंने रामानन्द को अन्यत्र भोजन करने के लिये कहा । इससे अपने को अपमानित समझ कर रामानन्द उस मठ को छोड़ कर दूसरी जगह चले गये । रामानन्द ने नया अपना मठ स्थापित किया और नये धर्म मत का प्रचार करना प्रारम्भ कर दिया । थोड़े ही दिनों में इनके अनेक शिष्य हो गये । काशी में पञ्चगङ्गाघाट पर इन्होंने एक मठ स्थापित किया । कहते हैं मुसलमान बादशाहों के समय रामानन्द के मठ समूह नष्ट कर दिये गये थे । परन्तु जिस स्थान पर रामानन्द का आदि मठ था वहाँ आज भी रामानन्द का पदचिह्न वर्तमान है । इस सम्प्रदाय को शृङ्खलित रखने के लिये रामानन्दियों की एक पञ्चायत है । उन्हीं पञ्चों के ठहराव के अनुसार रामानन्दी सम्प्रदाय के काम होते हैं । रामानन्दी सम्प्रदाय के इष्टदेवता श्रीरामचन्द्र हैं । इस सम्प्रदाय में किसी कठोर नियम का पालन नहीं करना पड़ता । रामानुजसम्प्रदाय के अनेक बन्धनों को इन्होंने शिथिल कर दिया था । इस सम्प्रदाय से अनेक नूतन सम्प्रदायों की सृष्टि हुई है । इनके शिष्यों ने

भिन्न भिन्न धर्ममत चलाये हैं । भक्तमाल नामक ग्रन्थ में रामानन्दी सम्प्रदाय के विषय में यह बात लिखी हुई है कि-रामानन्द सभी जाति के मनुष्यों को शिष्य करते थे, वे जातिभेद नष्ट करने के लिये प्रयत्न करते थे । उनके मत से भक्त और भगवान् में कोई भेद नहीं है, जब भगवान् ही ने मत्स्य कूर्म वराह आदि नीच योनियों में जन्म लिया है तब भक्त भी नीच योनियों में जन्म लें इसमें सन्देह ही क्या है । इसी कारण वे सभी जाति के मनुष्यों को शिष्य करते तथा मन्त्रोपदेश दिया करते थे । परन्तु रामानन्द ने जो ग्रन्थ अथवा टीका बनाये हैं उनमें कहीं भी ब्राह्मण भिन्न अन्य जाति को धर्मोपदेशक का पद नहीं दिया गया है । उन्होंने संस्कृतभाषा में ग्रन्थ लिखे थे। परन्तु परवर्ती उनके शिष्यों ने नये नये ग्रन्थ बना कर सब जातियों के लिये इस सम्प्रदाय का द्वार मुक्त कर दिया । अन्य धार्मिक सम्प्रदायों के समान इस सम्प्रदाय में भी गृहस्थ और विरक्त दो श्रेणियाँ होती हैं । इस सम्प्रदाय के अनेक मठ हैं, उन मठों के प्रधान अधिकारी महन्त कहे जाते हैं । ये लोग बड़े धनी हैं। एक एक मठ छोटा मोटा राज्य कहा जा सकता है । रामानन्द के शिष्यों की माहात्म्यकथा भक्तमाल नामक ग्रन्थ में वर्णित है । रामानन्दियों का प्रधान तीर्थ-स्थान अयोध्यापुरी है ।

रामानुजाचार्य=भगवान् रामानुजाचार्य श्री सम्प्रदाय को पुष्ट करने वालों में प्रधान थे । उनका जन्म जिस स्थान पर हुआ था वह एक तीर्थ-क्षेत्र है । स्कन्दपुराण में सत्यव्रतक्षेत्र भूतपुरी और उस स्थान पर अनन्तसागर नाम के एक जलाशय का वर्णन पाया जाता है ।

एक बार महर्षि अगस्त्य ने भगवान् स्कन्द से सत्यव्रतक्षेत्र और अनन्तसरोवर का इतिहास कहने के लिये अनुरोध किया । महर्षि के अनुरोध करने पर स्कन्द ने जो इतिहास कहा था उससे मालूम होता है कि स्वायम्भुव मन्वन्तर के प्रजापति ब्रह्मा ने जम्बूद्वीप के अन्तर्गत पुण्यक्षेत्र भारतवर्ष में, वेङ्कटाद्रि के दक्षिण भागस्थ पापनाशक क्षेत्र में एक बार अश्वमेध यज्ञ किया । तबसे वह स्थान तीर्थ हो गया । एक बार, भगवान् रुद्र नङ्गे हो कर और जटा खोले उन्मत्त की तरह नाच रहे थे। उनकी यह दशा देख उनके अनुचर भूत प्रेत हँस पड़े ।

इस अपमान को न सह कर महादेवजी ने अपने अनुचरों को शाप देते हुए कहा तुमने हमारा अपमान किया है । इस लिये अब हमारे पास न रहने पाओगे । क्योंकि जो बड़ों का अपमान करता है उसको स्थानच्युत होना पड़ता है ।

महादेव जी के भूतगण, उनके शाप से डर कर ब्रह्मा जी की शरण में गये । तब ब्रह्मा जी ने उनको आज्ञा दी कि तुम जा कर सत्यव्रतक्षेत्र में तपस्या करो । ब्रह्मा जी की आज्ञा को सिर पर रख वे वहाँ गये, और नारायण का ध्यान करते करते उन्होंने एक हज़ार वर्ष बिता दिये ।

एक दिन आकाश में अचानक देवताओं की दुन्दुभि बजती हुई सुनायी पड़ी । देखते देखते श्रीमन्नारायण उन भूतों के सामने प्रकट हुए। तपस्या छोड़ कर भूतगण खड़े हो गये और भगवान् का स्तव करने लगे । तब भगवान् ने उनसे कहा वर माँगो । इस पर भूतों ने अपने दुःख की सारी कथा कह सुनायी ।

उनकी कथा सुन कर नारायण ने महादेव जी को स्मरण किया । स्मरण करते ही महादेव जी बैल पर चढ़ कर वहाँ जा पहुँचे और हाथ जोड़ कर भगवान् की आज्ञा की प्रतीक्षा करने लगे ।

भगवान् ने मुसकुरा कर महादेव जी से कहा—देवदेव, आपने इन भूतों का अभिमान तोड़ने के लिये जो शाप दिया वह न्यायसङ्गत ही है, किन्तु अब आप इन पर प्रसन्न हूजिये । ये सब बहुत दिनों से सत्यव्रतक्षेत्र में तपस्या कर रहे हैं, अब आप फिर इनको अपने पास रहने की आज्ञा दीजिये । क्योंकि कभी न कभी भूल सभी से हुआ ही करती है ।

महादेव जी ने भगवान् का कहना मान लिया । तब भगवान् ने नागराज अनन्त से कहा । नागराज, तुम यहाँ एक सरोवर बनाओ। आज्ञा पाते ही उस पुण्यक्षेत्र में नागराज ने एक सरोवर बनाया । उस सरोवर में बड़ा सुन्दर जल उत्पन्न हुआ । कमल आदि जल में उत्पन्न

होने वाले सभी पुष्पों से सरोवर सुशोभित हुआ। तब नारायण ने भूतों को लक्ष्य कर के कहा, अरे भूतो! तुम श्रद्धा भक्ति सहित इस सरोवर में स्नान करो हमारी आज्ञा से नागराज ने यह सरोवर तुम्हारे लिये ही बनाया है।

वे भूत भगवान् की आज्ञा से उस सरोवर के पवित्र जल में धँसे और उनके शरीर पवित्र हो गये। फिर उन्होंने शङ्कर की परिक्रमा की और शङ्कर के चरणों पर अपना मस्तक रखा। तब प्रसन्न हो कर महादेव जी ने अपने पास रहने की पुनः आज्ञा दी।

इसके बाद भूतों ने हाथ जोड़ कर और साष्टाङ्ग कर श्रीमन्नारायण की प्रार्थना करते हुए कहा। हे देवेश! आप सब प्राणियों के अभीष्ट फलों को देने के लिये आज से इसी क्षेत्र में रहिये।

यह सुन कर नारायण ने एक बार शङ्कर की ओर देखा। शङ्कर श्रीमन्नारायण का सङ्केत समझ कर कहने लगे— "हे चराचरस्वामिन्! जितने दिनों स्वारोचिष मनु को अधिकार रहे, उतने दिनों आप इस क्षेत्र में विराजिये।" श्रीमन्नारायण ने शङ्कर के इस प्रस्ताव का अनुमोदन किया। इसके बाद उन भूतों ने भगवान् का उत्सव करने के लिये वहाँ एक नगरी बनायी। वह नगरी तीन योजन में बसायी गयी और उत्सव देखने के अर्थ आने वाले देवताओं के ठहरने के लिये बहुत सुन्दर रङ्ग बिरङ्गे और चारों ओर चारदीवारी से घिरे हुए मनोहर हर्म्य और बड़े ऊँचे २ प्रासाद बनाये। इसके बाद उन भूतों ने महादेव जी समेत वहाँ पहुँच कर वैशाखी शुक्ला द्वादशी से भगवान् का उत्सव मनाना आरम्भ किया। जब दूर दूर से आये हुए देवता ऋषि और सिद्ध गण, उत्सव देख कर अपने अपने निवास-स्थान को लौट गये। तब उस नगरी में ब्राह्मणादि सब वर्णों के मनुष्य, बसाये गये।

इसके बाद श्रीमन्नारायण ने महादेव जी से कहा—"शङ्कर! अब तुम अपने इन भूतों के साथ जा कर कैलास पर्वत पर सुख से रहो किन्तु अपने गणों सहित प्रतिवर्ष वैशाखी शुक्ला द्वादशी के दिन हमारा उत्सव करने के लिये यहाँ आना न भूल जाना। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि देव मनुष्य यक्ष किन्नर आदि जो कोई वैशाखी शुक्ला द्वादशी को उपवास करेगा और अनन्तसरोवर में स्नान कर के हमारी पूजा करेगा हम उसके सारे अभीष्ट पूरे करेंगे।" इस प्रकार वर दे कर श्रीमन्नारायण ने महादेव को उनके अनुचरों सहित वहाँ से विदा किया। यह पुरी भूतों ने बनायी थी। इस लिये इसका नाम भूतपुरी पड़ा। इसी पुण्यक्षेत्र के अनन्त नामक सरोवर में स्नान कर और आदिकेशव की आराधना कर के अनेक राजर्षियों ने मनोवाञ्छित फल पाया था (देखो स्कन्दपुराणान्तर्गत भूतपुरीमाहात्म्य)।

श्रीरामानुज स्वामी के जन्मस्थान का यह तो पुराना वृत्त हुआ। अब हम उस स्थान की वर्त्तमान अवस्था का दिग्दर्शन कराते हैं। ऊपर के पौराणिक इतिहास से जाना जाता है कि भगवान् रामानुजाचार्य जिस क्षेत्र में भूमिष्ठ हुए; वह ग्राम बड़ा प्राचीन है और उस पवित्र स्थान पर अश्वमेधादि विविध यज्ञानुष्ठान हो चुके हैं। इस समय वही स्थान श्रीपेरम्बधूरम् नाम से प्रसिद्ध है। यह स्थान मदरास हाते के चेङ्गलपत ज़िले के अन्तर्गत है और वर्त्तमान मदरास नगरी से छब्बीस मील के अन्तर पर अवस्थित है। यह मदरास रेलवे के त्रिमेलोर स्टेशन से दस मील के अनन्तर पर अवस्थित है। मदरास रेलवे के त्रिमेलोर स्टेशन से दस मील के अनन्तर पर श्रीपेरम्बधूरम् ग्राम पूर्व दक्षिण के कोने में अवस्थित है। अब इस स्थान पर, इसके नगर होने के कोई भी चिह्न विद्यमान नहीं हैं। चारो ओर नयन-प्रसन्नकारी शस्य-श्यामला भूमि है। नारियल, ताल, खर्जूर, गुवाक, वट, अश्वत्थ, पुन्नाग, नागकेसर आदि अनेक प्रकार के वृक्षों से सुशोभित यह एक छोटा सा ग्राम है। दूर से इस ग्राम को देखने से मन आनन्द से परिपूर्ण हो जाता है। रेलवे स्टेशन से उतर कर, इस ग्राम में प्रवेश करने के लिये एक चक्करदार सड़क पर चल कर, वहाँ

पहुँचना होता है। इसी सड़क से कुछ दूर आगे बढ़ कर, आचार्य का जन्मक्षेत्र है। पहले स्वामी जी महाराज का जन्मस्थान मिलता है उसके बाद उनके उपास्य देव श्रीकेशवदेव जी के मन्दिर में जाना होता है। उसके पास ही उनके भ्रातुष्पुत्र कूरेशस्वामी के रहने का घर है। उसके सामने बड़ा लम्बा चौड़ा एक तालाब है। उसी का नाम अनन्तसरोवर है। उस विशाल पर्वत सदृश अत्युच्च मन्दिर के सामने उस सरोवर के होने से उस स्थान का सौन्दर्य और माधुर्य कितना बढ़ गया है इस बात को लिख कर हम समझा नहीं सकते। इस ग्राम में इस मन्दिर के अतिरिक्त और भी ऊँचे गृह और अनेक झोपड़ियाँ हैं। उनमें बहुत से लोग भी रहते हैं। प्रधानतः उनकी दो श्रेणियाँ हैं। इनमें अधिक संख्यक श्रीरामानुज सम्प्रदायस्थ शुद्धाचारयुक्त श्रीवैष्णव हैं। शङ्कराचार्य के मतावलम्बी स्मार्त ब्राह्मणों का भी यहाँ अभाव नहीं है, किन्तु उनकी संख्या बहुत कम है। स्कन्दपुराण में महादेव और उनके अनुचरों द्वारा वैशाखी शुक्लादशमी के दिन जिस उत्सव की कथा लिखी है वह अब भी प्रतिवर्ष वहाँ बड़ी धूमधाम के साथ होता है। इसी उत्सव का नाम "ब्रह्मोत्सव" है।

ब्रह्मोत्सव देखने के लिये अनेक यात्री वहाँ जाते हैं। इस उत्सव के अतिरिक्त प्रति अमावस को वहाँ एक छोटा उत्सव होता है। इन दिनों वहाँ के मठ के तत्त्वावधायक श्रीत्रिवेङ्कट रामानुजाचारी हैं। आचार्य की जन्मभूमि वाले मठ की दशा मन्द नहीं है। वहाँ नियमितरूप से देवार्चन और अतिथिसेवा होती है। मठ से कुछ हट कर एक संस्कृतछात्रनिलय है। उसके प्रधानाध्यापक श्रीवेङ्कट नृसिंहाचारी जी हैं। इस ग्राम में एक "अन्नक्षेत्र" अथवा भोजनालय भी है। तीर्थयात्रियों को वहाँ ब्राह्मणों के हाथ के बने हुए सुन्दर खाद्य पदार्थ मूल्य देने पर मिलते हैं। क्षेत्र में भोजन करने की प्रथा आधुनिक नहीं है। सुनते हैं यह प्रथा वहाँ बहुत दिनों से प्रचलित है।

भगवान् रामानुजाचार्य का जन्म हारीतगोत्रीय ब्राह्मणवंश में हुआ। किन्तु वैदिक श्रौतसूत्र में ब्राह्मणों के जो अष्टत्रिंशत् गोत्र बतलाये गये हैं और जिनका उल्लेख धनञ्जय कृत धर्मप्रदीप में पाया जाता है उनमें हारीत गोत्र का नाम नहीं पाया जाता है। किन्तु स्वामी जी ब्राह्मणवंश ही में उत्पन्न हुए थे इसमें सन्देह करने का कारण नहीं है। इस सम्बन्ध में भूतपुरीमाहात्म्य में एक रहस्यकथा लिखी है। उसे हम क्रमशः आगे लिखते हैं। हारीतगोत्रीय ब्राह्मणों के पूर्वपुरुष क्षत्रिय थे, पीछे भगवान् का आराधन कर के वे ब्राह्मण हुए।

प्राचीन काल में युवनाश्व नाम का एक परमधार्मिक राजा भारतवर्ष में राज्य करता था उसीके पुत्र प्रसिद्ध महाराज मान्धाता हुए। मान्धाता के विषय में ऋषियों का बनाया एक श्लोक है, जिसका भावार्थ यह है कि "जहाँ से सूर्य उदय होता है और जहाँ अस्त होता है वह सारा स्थान महाराज मान्धाता के राज्य में था"।

राजा युवनाश्व जब बूढ़े हुए और उनके कोई सन्तान न हुई, तब सन्तान की कामना से उन्होंने एक यज्ञ किया; किन्तु अनवधानता के कारण अध्वर्यु ब्रह्मतेजोवर्द्धक मन्त्र का जप करने लगा। जब राजा को यह बात मालूम हुई तब उन्होंने अध्वर्यु से पूछा—द्विजवर! यह आप क्या करते हैं? हमने तो क्षत्रिय सन्तान की कामना से यह यज्ञ आरम्भ किया है। क्या आप इस बात को भूल गये?

अध्वर्यु ने उत्तर दिया—देवताओं की इच्छा से मुझे यह भ्रान्ति हुई। क्या चिन्ता है आपके घर में ब्राह्मणोचित प्रकृतिसम्पन्न सत्त्वगुणप्रधान पुत्र उत्पन्न होगा। इस पर धार्मिक राजा ने कुछ न कहा और वे पुत्र के जन्म ग्रहण करने की प्रतीक्षा करने लगे। कालक्रम से राजा युवनाश्व की महिषी के सर्वाङ्गसुन्दर एक पुत्र जन्मा। पुरोहित वसिष्ठजी ने उसका नाम "हरीत" रखा। राजकुमार "हरीत" अल्प आयास से सब शास्त्रों के ज्ञाता हो गये। उनका विवाह काशीराज की कन्या के साथ हुआ। कुछ दिनों के बाद राजा युवनाश्व वानप्रस्थ हो कर और पुत्र हरीत को राज्यसिंहासन पर

अभिषिक्त कर के अपनी महिषी सहित हिमालय पर्वत पर चले गये। राजा हरीत के राज्यशासन में सारी प्रजा बड़े आनन्द से काल यापन करने लगी।

एक बार आखेट के लिये वन में गये हुए राजा हरीत ने पर्वत कन्दरा के भीतर किसी की कातर ध्वनि सुनी। उसे सुन कर उनके हृदय में करुणा का वेग उमँगा। उन्होंने उस कन्दरा के समीप पहुँच कर देखा कि एक भयङ्कर व्याघ्र ने एक गौ को पकड़ रखा है। राजा ने उस विपन्ना गौ की रक्षा करने के लिये तुरन्त व्याघ्रको लक्ष्य करके एक तीर चलाया। व्याघ्र ने बाण के आघात से कुपित हो कर गौ की गर्दन मरोड़ डाली, और वह स्वयं भूतल पर गिर पड़ा। बाघ और गौ दोनों एक साथ ही मर गये। इस घटना से राजा को बड़ा दुःख हुआ, वे सोचने लगे,. हाय! मैंने कैसा दुष्कर्म किया बाघ को मार कर मैंने गौ की हत्या की। अब मैं इस पाप से क्यों कर छुटकारा पाऊँ। मुझे गोहत्यारा कह कर लोग मेरी घोर निन्दा करेंगे इस लिये मेरे जीवन को धिक्कार है।

जिस समय राजा इस प्रकार अपने को धिक्कार रहे थे, उस समय आकाशवाणी हुई। राजन्! तुम दुःखी मत हो, तुम तुरन्त सत्यव्रतक्षेत्र को चल दो। वहाँ भूतपुरी में जो अनन्तसरोवर है, उसमें स्नान करने से तुम्हारा सारा पाप छूट जायगा और तुम्हारा कल्याण होगा।

इस देववाणी को सुन कर राजा हरीत अपनी राजधानी में पहुँचे और सब पुरोहितों और मन्त्रियों को बुला कर उन्होंने उनसे सारा हाल कहा। फिर वसिष्ठ जी से पूँछा, महर्षे! सत्यव्रतक्षेत्र,भूतपुरी और अनन्तसरोवर कहाँ हैं और वहाँ जा कर कौन सा मन्त्र जप करना चाहिये। महर्षि ने उस पुण्यक्षेत्र का पता बतला कर कहा—राजन्! आप वहाँ जा कर वासुदेव मन्त्र का जप करो। इस मन्त्र के जप करने से तुम्हें सिद्धि मिलेगी।

उन्होंने फिर क्षण भर भी विलम्ब नहीं किया और मन्त्रियों को राज्य का भार दे, वे दक्षिण की ओर चल दिये। उन्होंने वेङ्कटाचल, सत्यव्रतक्षेत्र,काञ्चीपुरी,अरुणारण्य और अनन्तसरोवर के दर्शन करने ही से अपने को कृतकृत्य समझा। राजा ने देखा उस समय भूतपुरी हीनदशा को प्राप्त है। उसके चारों ओर बड़ा भारी वन है। उस वन में रहने वाले अनेक सिंह व्याघ्र आदि पशु प्यास से व्याकुल हो अनन्तसरोवर का जल पीते हैं। वे उस जीर्ण नगरी के भग्न प्रासादों का दर्शन कर बहुत खिन्न हुए। इसके बाद राजा हरीत विशेष नियमों का पालन करते हुए अतिशय संतप्तचित्त हो कठोर तपस्या करने लगे। पहले दस वर्ष उन्होंने फल मूल खा कर, फिर बीस वर्ष पत्र पुष्प खा कर, चालीस वर्ष सूखे पत्ते खा कर और फिर ६० वर्ष जल और वायु खा कर बिताये। इसके बाद राजा निराहार रह कर गुरूपदिष्ट मन्त्र का जप करने लगे। एक दिन सहसा दिग्मण्डल निर्मल हो गया और सुखस्पर्श पवन चलने लगा। फिर आकाश में नगाड़ों के बजने का शब्द सुनायी पड़ा। इसके बाद एक अपूर्व विमान में बैठ कर भगवान् नारायण हरीत के आश्रम में पहुँचे। राजा आँखें बन्द कर के नारायण का ध्यान कर रहे थे। इतने में बड़ी मीठी ध्वनि से किसी ने कहा—राजन्! एक बार आँखें तो खोलो, देखो तुम्हारी तपस्या का फल तुम्हारे सामने है। भगवान् नारायण तुम्हें दर्शन देने के लिये आये हैं।

यह सुन कर राजा सचेत हुए। उनका हृदय आनन्द से भर गया। इससे बढ़ कर इस संसार में और कौन सी वस्तु है, जिसकी मनुष्य अपेक्षा कर सकता है। वे जगत् के सर्वस्व आज राजा के सामने खड़े हैं। इससे बढ़ कर राजा का आनन्द बढ़ाने वाला और उन्हें कृतकृत्य करने के लिये और कौन सी वस्तु अपेक्षित है?

राजा ने विमान में कोटि सूर्यमण्डल की तरह देदीप्यमान भगवान् नारायण को अपने सामने देख कर भक्ति में भर भूतल पर गिर कर प्रणाम किया और हाथ जोड़ कर वे उनकी स्तुति करने लगे। उनकी स्तुति सुन भगवान् राजा हरीत पर प्रसन्न हुए और उनसे कहने लगे—राजन्! हम तुम्हारी कठोर तपस्या और

स्तव से तुम पर अत्यन्त प्रसन्न हैं। अब तुम वर माँगो।

राजा बोले—देव! मैं आखेट खेलने के लिये वन में जा कर असावधानता प्रयुक्त गोवध पाप से लिप्त हूँ। अब जिस उपाय से मैं उस महापाप से छूटूँ, वह उपाय कृपा कर बतलाइये। नारायण ने कहा—राजन्! तुमने विपन्ना गौ की रक्षा करने के लिये व्याघ्र के तीर मारा। तीर के आघात से कुपित हो कर व्याघ्र ने गौ को मार डाला इस लिये इस बात की तुम तिल भर भी चिन्ता मत करो। हमारे दर्शन करते ही तुम्हारा वह पाप नष्ट हो गया। तुमने जैसी कठोर तपस्या की है उस पर प्रसन्न हो कर हम तुम्हें "ब्राह्मण्य" प्रदान करते हैं। तुम इसी शरीर से ब्राह्मणत्व प्राप्त करो और तुम्हारे हृदय में ब्राह्मणोचित सकल मन्त्र प्रकाशित हों। हमारे अंश से सम्भूत कोई महापुरुष जगत् के कल्याणार्थ तुम्हारे वंश में जन्म ग्रहण करेगा और उसके नीचे के लोग भक्तिमान् और ब्रह्मविदों में श्रेष्ठ होंगे। वेद वेदान्त का सारा तत्त्व उसकी जिह्वा पर विराजेगा। तुम्हारे वंशजों के प्रति अनुग्रह प्रदर्शनार्थ मैं वैवस्वत मनु के अधिकार काल के अन्त तक यहीं रहूँगा। राजन्! स्वारोचिष मन्वन्तर में शङ्कर के अनुचर भूतों ने यह पुण्यमयी नगरी बनायी, अब इसका जीर्णोद्धार कर के तुम फिर इसे पूर्ववत् बना दो। इस अनन्तसरोवर के पूर्व भाग में रत्नखचित एक मन्दिर हमारे लिये बनाओ। आज चैत्र मास की शुक्ला सप्तमी है। इससे आज ही से उत्सव आरम्भ करो और पूर्णिमा के दिन यज्ञस्नान कर के उत्सव समाप्त कर देना। तुमने हमको प्रसन्न करने के लिये जो स्तव पढ़ा है, उसे नित्य सन्ध्यासमय शुद्धचित्त हो कर जो मनुष्य पढ़ेगा, हमारी कृपा से उसके सारे अभीष्ट पूरे होंगे। आज से तुम हमारी आराधना में तत्पर हो कर इसी पुरी में रहो और अपना वंश विस्तार करो, तुम्हारे वंश वाले हमारे परम भक्त होंगे और अति सुख से यहाँ रहेंगे।

राजा हरीत ने भगवान् की अनुकम्पा पर परम प्रीतिमान् हो कर, उस नगरी का जीर्णोद्धार किया। अनन्तसरोवर के तीर पर बनाया हुआ मनोहर मन्दिर मणि माणिक्य की प्रभा से चारो ओर से प्रकाशमान हो गया। राजा ने यथाविधान उस मन्दिर में भगवान् की शङ्खचक्रगदापद्मधारिणी चतुर्भुज मूर्ति की प्रतिष्ठा की और तभी से वहाँ उत्सव होने लगा। इस प्रकार प्रतिवर्ष भगवान् का उत्सव करते हुए राजा हरीत देहान्तरित हुए और उन्हें सायुज्य मुक्ति मिली। उन्हीं हरीत के वंश वाले ब्राह्मण गण भूतपुरी में भगवान् की अर्चना करते हैं।

इसी सुप्रसिद्ध भूतपुरी या श्रीपेरम्बधूरम् में पूर्वोक्त हारीतगोत्रीय ब्राह्मणवंश में यजुर्वेदोक्त आपस्तम्बशाखाध्यायी केशव याज्ञिक ने जन्म ग्रहण किया। केशव ज्ञानी और सदाचारी थे। इन्द्रियसंयम क्षमाशीलता और सत्यनिष्ठा के लिये जनसमाज में उनका विशेष आदर था। जैसे वे मिताहारी थे वैसे ही मितभाषी भी थे। कभी किसी ने उन्हें प्रतिज्ञाभङ्ग करते देखा सुना नहीं था। इस विष्णुभक्त और हरिपरायण ब्राह्मण की अवस्था ढल चली, किन्तु पुत्रमुखदर्शन का सौभाग्य उन्हें तब भी प्राप्त नहीं हुआ। तब वे पुत्र की कामना से भगवान् का आराधन करने लगे। एक बार चन्द्रग्रहण पड़ा। ग्रहण स्नान करने के लिये केशव अपनी सहधर्मिणी कान्तिमती के साथ कैरविनी नदी के उस स्थान पर पहुँचे, जहाँ वह समुद्र से मिलती है। पवित्रतोया कैरविनी और महोदधि के सङ्गम में स्नान कर, केशव ने पार्थसारथि नाम की विष्णुमूर्ति की सन्निधि में पुत्रप्राप्ति की कामना से पुत्रेष्टि यज्ञ किया। कहा जाता है होम समाप्त होने पर श्रीमन्नारायण ने केशव से कहा—अरे भक्त केशव! मैं तुझ पर प्रसन्न हुआ। बहुत शीघ्र पुत्र के रूप में मैं तेरे यहाँ जन्मूँगा। केशव इस प्रकार के आश्वासवाक्य से आशान्वित हो कर घर लौट गये। कुछ दिनों बाद सुलक्षणा केशवपत्नी ने अतिसुलक्षणयुक्त गर्भ धारण किया। उसके मुख की प्रसन्नता और देह का लावण्य देख कर सब लोग अनुमान करने लगे कि उसके गर्भ में कोई महापुरुष वास कर रहा

है। धीरे धीरे दशवाँ महीना भी पूरा हुआ। बन्धु बान्धव किसी अलौकिक चरित्रसम्पन्न शिशु के जन्म की प्रतीक्षा करने लगे। चैत्र मास में वसन्त समागम से प्रकृति अभिनव शोभा से सज्जित हुई। वृक्ष नवजात पल्लवों से द्विगुण शोभा को प्राप्त हुए। रसाल मुकुल के अपूर्व रूप से मुग्ध हो कर कोकिल सङ्गीत में मग्न हुई। भौंरे मधुपान की आशा से फूलों पर मड़राने लगे। ऐसे ही सुसमय समय में और शकाब्द ९३८ में (सन् १०१७ में) अर्थात् आज से ८९६ वर्ष पहले, चैत्र मास में बृहस्पतिवार को दोपहर के समय शुक्ल पक्ष की पञ्चमी को आर्द्रा नक्षत्र और कर्कट लग्न में केशवपत्नी कान्तिमती के एक पुत्ररत्न उत्पन्न हुआ। जननी नवोदित प्रभाकर की तरह पुत्र को देख कर हर्षोत्फुल्ल हो गयी। बन्धु बान्धव मिल कर आनन्द मनाया करने लगे। भूतपुरी के रहने वालों के घर घर आनन्द बधाई बजने लगी। कान्तिमती के भाई शैलपूर्ण स्वामी भगिनी के पुत्रोत्पत्ति का समाचार सुन कर तुरन्त भूतपुरी में पहुँचे। स्वयं लक्षण सम्पन्न नवजात शिशु को देख के आनन्द से विह्वल हो गये। ज्योतिषियों ने कहा—इस शिशु के उत्पत्तिकाल में ग्रहों की चाल देख कर कहना पड़ता है कि समय पा कर यह बालक अद्वितीय होगा।

अनन्तर जातकर्म समाप्त कर के केशव ने बारहवें दिन पुत्र का नाम रखा। उस दिन सारे भाईबन्द और ग्रामवासी केशव के घर पर एकत्र हुए। बालक के मामा शैलपूर्ण स्वामी ने कौतूहल प्रयुक्त बालक के हाथ में शङ्ख चक्र गदा और पद्म अर्पण कर के उसका नाम "श्रीरामानुज" रखा।

नवजात शिशु शुक्लपक्षीय शशधर की तरह धीरे धीरे परिवर्द्धित होने लगा। पिता ने क्रमशः श्रीरामानुज के चूड़ा मौञ्जीबन्धन संस्कार कराये। इसके बाद जब श्रीरामानुज आठ वर्ष के हुए तब उनका उपनयन संस्कार कराया गया और उनके पिता केशव स्वयं उन्हें वेदाध्ययन कराने लगे। धीरे धीरे श्रीरामानुज १६ वर्ष के हुए और पिता ने उनका विवाह कर के पुत्रवधू के मुखकमल को देखना चाहा। उनकी अभिलाषा पूरी हुई। उनके सांसारिक सुख की सीमा न रही। पतिव्रता भार्या, मेधावी पुत्र और नवपरिणीता पुत्रवधू को घर में ला कर वे परमानन्द से समय काटने लगे।

यह संसार क्षणभङ्गुर है। स्त्री पुत्रादि के साथ सम्बन्ध मेघच्छाया की तरह अचिरस्थायी है। केशव का आयुष्काल शेष हुआ। वे कुछ दिनों बाद पतिप्राणा सहधर्मिणी, स्नेहमय पुत्र और नयनानन्ददायिनी पुत्रवधू के स्नेहपाश को काट कर विष्णुलोक को चल दिये। यदि कोई और व्यक्ति होता तो पितृविच्छेद से विकल हो बहुत दिनों तक शोक प्रकाश करता। किन्तु श्रीरामानुज पितृवियोग से अधीर न हुए। उन्होंने विवेक के साथ शोक को मन से दूर कर के बड़ी श्रद्धा के साथ पितृदेव का और्ध्वदैहिक कृत्य पूरा किया और वे कुछ दिनों तक स्नेहमयी जननी और सहधर्मिणी के साथ भूतपुरी में रहे।

पितृवियोग होने पर भी श्रीरामानुज स्वामी को सांसारिक सुख स्वच्छन्दता के उपयोगी विभव का अभाव न था। वे अपनी पैतृक सम्पत्ति द्वारा अनायास बहुत दिनों तक समय बिता सकते थे, किन्तु उनकी ज्ञानपिपासा अतिप्रबल थी। उसको चरितार्थ करने के लिये स्वामी जी बड़े उत्सुक थे। सब शास्त्रों का अध्ययन कर के विपुल ज्ञान की प्राप्ति के लिये श्रीरामानुज स्वामी ने दृढ़ सङ्कल्प किया। उस समय द्रविड़ प्रदेश की राजधानी काञ्चीनगरी विद्या और धर्मचर्चा के लिये दक्षिण प्रान्त में बहुत प्रसिद्ध थी। यादवप्रकाश नाम का एक वेदान्ती संन्यासी उन दिनों वहाँ की पण्डितमण्डली में बड़ा श्रेष्ठ था। श्रीरामानुज स्वामी सपरिवार काञ्चीपुरी में जा कर यादवप्रकाश के पास अध्ययन करने लगे। श्रीरामानुज नित्य जब यादवप्रकाश के पास अध्ययन करने जाते, तब अध्यापक उनके सौन्दर्य, उनकी प्रतिभा और वाक्चातुरी देख सुन कर मुग्ध हो जाते थे।

जिन दिनों श्रीरामानुज स्वामी यादवप्रकाश

के पास पढ़ने जाते थे, उन्हीं दिनों वहाँ के रा की कन्या पर एक ब्रह्मराक्षस ने अधिकार जमाया था। तब राजा ने राक्षस को हटाने के लिये यादव को बुलाया। यादव श्रीरामानुज प्रमुख अपने शिष्यों को ले कर वहाँ गया। उसके अनेक यत्न करने पर भी जब राक्षस नहीं हटा, तब श्रीरामानुज स्वामी ने कन्या के मस्तक पर अपना चरण छुलाया और उसकी ब्रह्मराक्षसबाधा दूर कर दी। राजा ने प्रसन्न हो कर स्वामी जी को बहुत द्रव्य दिया। इस पर यादवप्रकाश को डाह उपजा और मन ही मन वह स्वामी जी के साथ द्वेष करने लगा। इतने में स्वामी जी के मौसेरे भाई गोविन्दाचार्य भी यादवप्रकाश की पाठशाला में स्वामी जी के साथ पढ़ने के लिये आये।

एक दिन यादवप्रकाश वेदान्त पढ़ा रहा था। उसने "सर्वं खल्विदं ब्रह्म, नेह नानास्ति किञ्चन" की व्याख्या इस प्रकार की। यह जगत् ब्रह्म है, ब्रह्मभिन्न कुछ भी नहीं है। हम लोग जो भिन्न भिन्न पदार्थ देखते हैं वे मायामात्र हैं। यह विलक्षण अर्थ सुन कर रामानुज स्वामी का मन विरक्त सा हो गया और उनसे न रहा गया। उन्होंने कहा—महानुभाव! आप तो श्रुति की व्याख्या न कर अपव्याख्या करते हैं। वस्तुतः इस श्रुति की व्याख्या वह नहीं है, जो आपने अभी की है। उसकी व्याख्या यह है—यह सारा जगत् ईश्वर द्वारा अधिष्ठित है। प्रत्येक पदार्थ में ईश्वर विराजमान हैं। ईश्वर जगत् का आत्मा है। उससे पृथक् हो कर कोई भी वस्तु ठहर नहीं सकती। यह अर्थ सुन यादवप्रकाश अग्निशर्मा बन गया। उसका सारा शरीर काँपने लगा। वह ऊँच नीच बातें कह कर स्वामी जी से कहने लगा—अरे शठ! दुराशय! तू क्या मेरा शिक्षक या गुरु है जो मेरी व्याख्या को अपव्याख्या बता कर मेरी निन्दा करता है। स्वामी जी ने इस अपमान को चुपचाप सह लिया; किन्तु उनके मन में बड़ा खेद उत्पन्न हुआ और यादवप्रकाश से पढ़ना बन्द कर के अपने घर ही पर वेदान्त तत्त्व की गम्भीर आलोचना स्वयं करने लगे।

कई मास व्यतीत हो गये गुरु शिष्य का साक्षात्कार नहीं हुआ। दोनों शास्त्रालोचना में लगे रहते। श्रीरामानुज सदा सन्तुष्ट रहते। वे उस झगड़े को भी भूल गये किन्तु यादवप्रकाश निश्चिन्त नहीं था। वह सदा वैर का बदला लेने का उपाय सोचा करता था। एक दिन उसने शिष्यों को बुला कर कहा—वत्सगण! तुम लोग जानते हो कि काञ्ची के पण्डितों में मेरी कैसी प्रतिष्ठा है। बड़े बड़े पण्डित मेरे किये हुए अर्थों को निर्विवाद स्वीकार करते हैं। तब मैं क्यों कर श्रुति की अपव्याख्या करने लगा। तुम लोगों ने रामानुज की धृष्टता देखी, उस दिन राजा के सामने भी उसने मेरा जैसा अपमान किया वह भी तुम्हें मालूम ही है। रामानुज शिष्य होने पर भी मेरा शत्रु हो रहा है। उसकी बुद्धि बड़ी तीक्ष्ण है, यदि वह कुछ दिनों और जीता रहा, तो अद्वैत मत का मूलोच्छेद कर द्वैत मत को पुष्ट कर देगा। अतएव इस शत्रु को किसी उपाय से मार डालना चाहिये। क्योंकि जब तक यह जीता रहेगा तब तक मेरे मन को शान्ति न मिलेगी।

सरलमति शिष्य गुरु को प्रसन्न करने के लिये कहने लगे—गुरुदेव! आप दुःखित न हों, आपके हम जैसे प्रिय शिष्य के रहते आपको चिन्ता नहीं करनी चाहिये। अवसर मिलते ही हम लोग रामानुज का प्राणनाश कर के आपको निष्कण्टक बना देंगे, आप निश्चिन्त रहें। यह सुन यादव कहने लगा—वत्सगण! तुम लोगों ने जो कहा वह रत्ती रत्ती सत्य है; तुम लोग गुरु के उपकार के लिये सब कुछ करोगे। पर मैंने उसके प्राणनाश का एक उपाय सोचा है। चलो, हम लोग उसे साथ ले कर त्रिवेणीस्नानार्थ प्रयाग को चलें। वहाँ हम सब मिल कर भागीरथी के प्रबल प्रवाह में उसे डुबो दें। ऐसा करने से उसकी सद्गति होगी और हम लोगों को भी ब्रह्महत्याजनित पाप में लिप्त न होना पड़ेगा, इस प्रकार षड्यन्त्र रच कर, श्रीरामानुज स्वामी को बातों में फँसा यादव उनको साथ ले शिष्यमण्डली सहित प्रयाग की ओर चल दिया, उसकी शिष्यमण्डली में श्रीरामानुज स्वामी के मौसेरे भाई गोविन्दाचार्य भी थे।

वे लोग चलते चलते विन्ध्याचल की तराई

के विकट वन में पहुँचे। यादवप्रकाश अपनी शिष्यमण्डली को साथ लिये हुए आगे आगे जा रहा था और श्रीरामानुज अपने मौसेरे भाई गोविन्दाचार्य के साथ पीछे पीछे जा रहे थे। अवसर देख गोविन्दाचार्य ने सारा हाल श्री रामानुज से कहा और उन्हें सावधान कर वे झट जा कर शिष्यमण्डली में मिल गये। गोविन्दाचार्य से सारा हाल सुन श्रीरामानुज ने उसी समय से उन दुष्टों का साथ छोड़ दिया, और रास्ता छोड़ वे उस विकट वन में घुसे। चलते चलते जब वे थक गये तब एक वृक्ष के नीचे सुस्ताने के लिये बैठे। बादल तो आकाश में छाये ही हुए थे इतने में वर्षा भी होने लगी। यादवप्रकाश ने जब देखा कि रामानुज साथ में नहीं हैं तब उसने उन्हें बहुत ढुँढ़वाया, पर जब उनका कुछ भी पता न चला, तब उसने समझ लिया किसी वनैले जन्तु ने उन्हें खा डाला। यह विचार वह मन ही मन बड़ा प्रसन्न हुआ।

उधर श्रीरामानुज स्वामी को भगवान् वरदराज और जगज्जननी लक्ष्मीजी ने बहेलिया और बहेलिन का रूप धर काञ्ची पहुँचाया। काञ्ची में पहुँच कर स्वामी जी ने अपना सारा हाल अपनी माता से कहा। माता पुत्र के सङ्कट को कटा देख बहुत प्रसन्न हुई और उन्हें एकान्त में ले जा कर बोली—बेटा! इस नगरी में काञ्चीपूर्ण नामक एक भक्त हैं। वे वरदराज के कृपापात्र हैं। तुम उनके साथ मेल करो और उनसे जा कर यह सारा हाल कहो। रामानुज स्वामी ने माता के कथनानुसार काञ्चीपूर्ण के पास जा कर सारा हाल कहा, जिसे सुन उन्होंने कहा—सुधीवर रामानुज! तुम पर भगवान् वरदराज की बड़ी कृपा हुई नहीं तो तुम्हारा बचना कठिन था। अब तुम भगवान् के लिये स्वर्णकुम्भ में जल भर कर भगवान् को अर्पण किया करो। यह हाल लौट कर स्वामी जी ने माता से कहा। माता कान्तिमती के आदेशानुसार स्वामी जी शालकूप से जल ला कर भगवान् वरदराज की सेवा करने लगे।

श्रीरङ्गनाथ के कृपाभाजन श्रीयामुनाचार्य बड़े पण्डित थे। उनके पास अनेक शिष्य वेद वेदाङ्ग की शिक्षा प्राप्त किया करते थे। एक दिन उन्होंने अपने शिष्यों से कहा—शिष्यगण! तुम घूम फिर कर एक ऐसे व्यक्ति का पता लगाओ जो सुलक्षण कान्तियुक्त नवयुवक हो, सर्वशास्त्रपारदर्शी, मधुरभाषी, सदाचारी और भगवद्भक्त हो। शिष्यगण गुरु की आज्ञानुसार वहाँ से चल दिये। अन्त में वे काञ्ची में पहुँचे, वहाँ श्रीरामानुज स्वामी को देख और उनके सम्बन्ध की सारी घटनावली को सुन वे श्रीयामुनाचार्य के पास लौट गये और उनसे सारा हाल कहा। वे श्रीयामुनाचार्य स्वामी जी को देखने के लिये उत्सुक हुए। परन्तु अचानक बीमार हो जाने के कारण वे स्वयं काञ्ची न जा सके।

उधर यादवप्रकाश ने लौट कर जब स्वामी जी के सकुशल काञ्ची लौट आने का समाचार सुना, तब वह दुष्ट मन ही मन लज्जित हुआ, और लोगों को धोखा देने के लिये उसने फिर श्रीरामानुज स्वामी से मेल कर लिया। स्वामी जी भगवान् वरदराज की सेवा करते हुए, फिर उसके पास विद्याध्ययन करने लगे।

श्रीयामुनाचार्य जब रोग से मुक्त हुए तब अपने शिष्यों समेत वे काञ्ची में आये। काञ्चीपूर्ण अपने गुरु के आगमन का समाचार सुन कर नगरवासियों समेत उनके आगत स्वागत के लिये आगे बढ़े। दोनों भक्तों का मिलन अपूर्व सुख का कारण हुआ। काञ्चीपूर्ण अपने गुरु को साथ लिये हुए भक्तवत्सल भगवान् वरदराज के मन्दिर में गये। श्रीयामुनाचार्य ने प्रेमार्द्रचित्त हो हस्तगिरिस्थ भगवान् वरदराज की भक्ति गद्गद स्वर से स्तुति करनी आरम्भ की। अनन्तर स्तुति समाप्त कर जब वे श्री रामानुज स्वामी से मिलने के लिये वहाँ से चले, तब उन्हें रास्ते में शिष्यमण्डली समेत यादवप्रकाश आता हुआ दिखलायी पड़ा उसी मण्डली में श्रीरामानुज स्वामी थे। यामुनाचार्य ने काञ्चीपूर्ण द्वारा उन सब का परिचय पाया। फिर काञ्चीपूर्ण ने विन्ध्यारण्य वाली सारी घटना श्रीयामुनाचार्य को सुनायी, उसे सुन श्रीयामुनाचार्य के मन में श्रीरामानुज के प्रति स्नेह उत्पन्न हुआ। वे बार बार उनकी ओर

देखने लगे। श्रीयामुनाचार्य ने विचारा कि स्वामी जी को बुला कर बात चीत करें किन्तु यादवप्रकाश के साथ उन्हें देख उस समय बुलाना उचित नहीं समझा। किन्तु श्रीरामानुज स्वामी के अभ्युदय के अर्थ श्रीयामुनाचार्य बारम्बार भगवान् वरदराज से प्रार्थना करने लगे, और शिष्यों सहित वे श्रीरङ्गक्षेत्र को लौट गये।

एक दिन यादवप्रकाश अपने अन्य शिष्यों को पढ़ा रहा था। उस समय श्रीरामानुज स्वामी उसके शरीर में तेल लगा रहे थे। पढ़ाते पढ़ाते वह एक श्रुति का अर्थ करने लगा। अर्थ न कर उसने अनर्थ कर डाला। श्रीरामानुज स्वामी यादवप्रकाश की अपव्याख्या सुन इतने व्याकुल हुए कि उनसे न रहा गया, और उनके नेत्रों से अश्रु बहने लगे और यादवप्रकाश के शरीर पर अश्रु की उष्ण बूँदें गिरीं, तब यादवप्रकाश का ध्यान श्रीरामानुज स्वामी की ओर गया। अश्रुपात का कारण पूछने पर श्रीरामानुज स्वामी ने कहा—गुरुदेव! आपने श्रुति का जो अर्थ अभी किया है वह नितान्त असङ्गत है। अतएव आपकी की हुई अपव्याख्या सुन मेरे हृदय में दारुण दुःख उत्पन्न हुआ इसीसे ये अश्रु बह रहे हैं। यह सुन यादवप्रकाश के क्रोध की सीमा न रही। उसका शरीर क्रोध से काँपने लगा। वह कहने लगा—"रामानुज! मैंने तो उस श्रुति की अपव्याख्या की। अच्छा देखूँ तो तुम उसकी कैसी स्वाभाविक सद् व्याख्या करते हो।" इस पर रामानुज स्वामी ने कहा—महाशय! सुनिये, मैं श्रुति का यथार्थ अर्थ कहता हूँ। यह कह उन्होंने श्रुति का ठीक ठीक अर्थ कर दिया। तब यादवप्रकाश बोला—अरे द्विजाधम! तू मेरे पास रहने योग्य नहीं, तू शीघ्र मेरे सामने से चला जा। यादवप्रकाश ने कलि के प्रभाव से विवेकभ्रष्ट हो श्रीरामानुज स्वामी को वहाँ से निकलवा दिया। किन्तु महात्मा श्रीरामानुज स्वामी चुपचाप वहाँ से चले आये और काञ्चीपूर्ण के आदेशानुसार भगवान् वरदराज की सेवा करने लगे।

उधर श्रीयामुनाचार्य ने श्रीरामानुज स्वामी से मिलने के लिये उत्सुक हो उन्हें श्रीरङ्गक्षेत्र लिवाने के लिये अपने शिष्य पूर्णाचार्य को काञ्ची भेजा। श्रीयामुनाचार्य ने जाते समय पूर्णाचार्य को अपना बनाया आलवन्दारस्तोत्र दिया और कहा—जा कर इसे श्रीरामानुज की उपस्थिति में वरदराज को सुनाना। पूर्णाचार्य ने ऐसा ही किया। उस स्तोत्र के अपूर्व छन्द मधुर पद-विन्यास, भक्तिपूर्ण भाव और सर्वोपरि अमृतनिष्यन्दी स्वर से मन्दिरस्थ सब जन मोहित हो गये। उसे सुन श्रीरामानुज स्वामी विमल आनन्द में मग्न हो गये और उन्होंने पूर्णाचार्य से स्तोत्र के निर्माता का नाम सादर पूँछा। तब पूर्णाचार्य ने श्रीयामुनाचार्य का परिचय देते हुए कहा—महानुभाव! श्रीरङ्गक्षेत्र में श्रीयामुनाचार्य नामक एक वेदवेदाङ्ग-पारग ब्राह्मण रहते हैं। वे निखिल वैष्णव सिद्धान्त के पारगामी एवं पञ्च संस्कार द्वारा संस्कृत हो कर संन्यासी हुए हैं। श्रीयामुनाचार्य आशैशव जितेन्द्रिय हैं। उनके हृदय में ईर्ष्या द्वेष का स्पर्श भी नहीं हुआ है। तब भी किसी ने उन्हें आज तक किसी पर क्रोध करते नहीं देखा। वे ही परम भगवद्भक्त इस स्तोत्र के निर्माता हैं।

श्रीरामानुज स्वामी को तो ऐसे गुरु की आवश्यकता थी ही, वे तुरन्त श्रीयामुनाचार्य के दर्शन करने के लिये श्रीरङ्ग जी की ओर पूर्णाचार्य के साथ चल दिये। जब वे पुण्य-तोया कावेरी के तट पर पहुँचे, तब उन्होंने श्रीयामुनाचार्य के परम पद प्राप्त होने का समाचार सुना। इस दुःखदायी समाचार को सुन कर वे दोनों बड़े दुःखी हुए। अन्त में वे दोनों वहाँ पहुँचे। जहाँ श्रीयामुनाचार्य मृत्यु-शय्या पर शयन कर रहे थे। उन्हें देख, श्री रामानुज स्वामी कहने लगे—हमारे भाग्य में यतिवर से वार्तालाप करनी नहीं लिखी थी, इसीसे वे हमारे यहाँ आने के पहले चल दिये। जो होनहार था सो हुआ। हे वैष्णवगण! अब तुम हमारी बात पर ध्यान दो, हम इस लोकवासियों के लिये ऐसी सोपान परम्परा तैयार करेंगे जिसके सहारे जीवगण अनायास श्रीहरि के चरणों के समीप पहुँच सकें, यह

सुन उपस्थित श्रीवैष्णवमण्डली बारम्बार उनकी प्रशंसा करने लगी ।

अनन्तर श्रीयामुनाचार्य के हाथ की तीन अंगुलियाँ आकुञ्चित देख श्रीरामानुज स्वामी को बड़ा आश्चर्य हुआ और उपस्थित श्रीवैष्णवों से इसका कारण पूँछा । श्रीवैष्णवों ने कहा—जन्म भर यतिवर की अंगुलियाँ स्वाभाविक अवस्था में रहीं । अभी ये आकुञ्चित हुई हैं । यह बड़े आश्चर्य की बात है । इसका कारण समझ में नहीं आता । तब श्रीरामानुज स्वामी ने श्रीयामुनाचार्य का अभिप्राय समझ, श्रीवैष्णवमण्डली के बीच खड़े हो कर उच्चैः स्वर से कहा—मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं सदा श्रीवैष्णव सम्प्रदाय में रह कर अज्ञानान्ध जनों को पञ्च संस्कार सम्पन्न और द्राविड सम्प्रदाय में पारदर्शी एवं धर्मनिरत करूँगा । आवश्यकता होने पर सब प्रकार की विपत्तियों को झेल कर श्री वैष्णवों की रक्षा करूँगा । यह बात समाप्त होते ही श्रीयामुनाचार्य की एक अंगुली पूर्ववत् स्वाभाविक अवस्था में परिणत हो गयी । तब श्रीरामानुज स्वामी ने कहा—मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं सर्व साधारण श्रीवैष्णवों के हितार्थ तत्त्वज्ञानसंक्रान्त निखिल अर्थ संग्रह पूर्वक ब्रह्मसूत्र पर श्रीभाष्य प्रणयन करूँगा । इसे सुन श्रीयामुनाचार्य की दूसरी अंगुली पूर्ववत् हो गयी । तब श्रीरामानुज स्वामी ने फिर कहा—महामुनि पराशर ने मनुष्यों के हितार्थ जीव ईश्वर एवं ईश्वर प्राप्ति के उपाय प्रभृति प्रदर्शन पूर्वक श्रीवैष्णव मत के अनुकूल जो पुराण बनाये हैं उनके गूढ़ार्थ प्रदर्शन करने के लिये मैं एक अभिधान बनाऊँगा । यह कहते ही यामुनाचार्य की तीसरी अंगुली भी पूर्ववत् हो गयी, अनन्तर श्रीरामानुज स्वामी श्रीरङ्ग मन्दिर में न जा कर उल्टे पैरों काञ्ची को लौट आये । वहाँ पहुँच सारा हाल काञ्चीपूर्ण से कहा। काञ्चीपूर्ण गुरुदेव की वैकुण्ठयात्रा का हाल सुन कर दुःखी हुए ।

कुछ दिनों बाद काञ्चीपूर्ण स्वामी के कथनानुसार दीक्षाग्रहणार्थ श्रीरामानुज स्वामी पूर्णाचार्य के पास श्रीरङ्गक्षेत्र को गये । उधर श्रीरङ्गक्षेत्रवासी श्रीवैष्णवों ने श्रीरङ्गक्षेत्र के महाक्षेत्र का शून्य आसन देख, आग्रहपूर्वक पूर्णाचार्य को श्रीरामानुज स्वामी को साथ ले आने के लिये काञ्ची भेजा । रास्ते में मदुरा के पास उन दोनों की भेंट हुई । दोनों ने एक दूसरे से अपनी अपनी यात्रा का कारण कहा । अन्त में श्रीरामानुजाचार्य ने पूर्णाचार्य स्वामी से संस्कार करने के लिये प्रार्थना की । पूर्णाचार्य की इच्छा थी कि वे उनके पञ्च संस्कार काञ्ची में श्रीवरदराज भगवान् की सन्निधि में करें । किन्तु श्रीरामानुज स्वामी के बारम्बार आग्रह करने पर पूर्णाचार्य ने उनके संस्कार वहीं किये । महापूर्ण स्वामी ने महापण्डित श्रीरामानुज स्वामी को श्रीहरि के दास्यसाम्राज्य का नायक बनाया और कहा—इस लोक में श्रीयामुनाचार्य श्रीवैष्णव जगत् के गुरु थे । उनके तिरोभाव होने पर अब तुम उनके स्थानापन्न हो और प्रच्छन्न बौद्धों के सम्प्रदाय को समूल उन्मूलित कर के श्रीवैष्णवों की रक्षा करो । तुम्हें इस कार्य के योग्य समझ मैं तुमसे यह कहता हूँ । यह सुन श्रीरामानुज स्वामी ने नीचे माथा नवा कर "मौनं सम्मतिलक्षणम्" की उक्ति चरितार्थ की और गुरु समेत वे काञ्ची लौट गये । श्रीरामानुज स्वामी ने अपने गुरु को अपने घर के पास ही ठहराया और उनसे अनेक साम्प्रदायिक ग्रन्थ पढ़े ।

एक दिन कौशल पूर्वक श्रीरामानुज स्वामी ने अपनी स्त्री को उसके पित्रालय भेजा और वे स्वयं अपनी जन्मभूमि भूतपुरी को चल दिये । वहाँ घर द्वार वित्त आदि सब पार्थिव सम्पद् को छोड़ कर श्रीरामानुज स्वामी ने कमण्डलु और काषाय वस्त्र धारण कर अनन्तसरोवर में स्नान किये और आदिकेशव की सन्निधि में संन्यास ग्रहण किया । फिर वे काञ्ची लौटे । वहाँ उन्हें उस आश्रम में देख काञ्चीपूर्ण को बड़ा आनन्द हुआ । उसी समय से उनका नाम "यतिराज" पड़ा ।

यतिराज के भानजे और अनन्त भट्ट के पुत्र कूरेष सब से प्रथम रामानुज स्वामी के शिष्य हुए । अनन्तर स्वामी जी ने यादवप्रकाश

के संशयों को दूर किया। तब अपनी माता की प्रेरणा से वह श्रीस्वामी जी की शरण में गया। श्रीस्वामी जी ने उसके पञ्च संस्कार कर उसे शिष्य किया और उसका गोविन्ददास नाम रखा। फिर गोविन्ददास से कहा अभी तक तुमने श्रीवैष्णव यतियों के मत पर अनेक प्रकार के दोषारोप किये हैं। उन दोषों के परिहारार्थ श्रीवैष्णवमत समर्थनपूर्वक तुम ग्रन्थ रचो। उस समय गोविन्ददास का मन भगवद्भक्ति से परिपूर्ण था। अतः उसने किसी प्रकार की आपत्ति उपस्थित न कर "यतिधर्मसमुच्चय" नामक श्रीवैष्णवमतसमर्थक एक पुस्तक रची। इसके बाद थोड़े ही दिनों में गोविन्ददास का वैकुण्ठवास हुआ।

श्रीस्वामी जी सशिष्य रङ्गक्षेत्र में पहुँचे। पूर्णाचार्य उनके आगमन से बहुत प्रसन्न हुए। सारी श्रीवैष्णवमण्डली समेत श्रीस्वामी जी श्रीरङ्गनाथ जी के दर्शन करने मन्दिर में गये, दर्शन कर चुकने पर महापूर्ण स्वामी ने श्री वैष्णवमण्डली के मध्य में खड़े हो कर उन से कहा—यतिराज! भगवान् की इच्छा है कि तुम चिरकाल यहाँ रहो। इस संसार के मोहविमुग्ध जीवों का उद्धार करो। तुम असाधुओं को साधु बना कर निखिल मानव समाज की भक्ति पुष्पाञ्जलि ग्रहण करो। इस पर स्वामी जी ने कहा—महात्मन्! आपही मेरे दीक्षादाता और सत्पथप्रदर्शक हैं। मेरा जो कुछ वैभव है, उसका आदिकारण आपकी कृपा है। मैं तो आपका दास हूँ। आपकी आज्ञापालन के अतिरिक्त मेरा और कौन सा कर्तव्य हो सकता है। अतएव आपकी आज्ञानुसार यह शरीर जब तक है तब तक श्रीरङ्गनाथ की सेवा और उनके प्रिय कार्य में नियुक्त रहेगा, इसके अनन्तर जब श्रीवैष्णव-मण्डली से वेष्टित यतिराज गरुडस्तम्भ के पास विश्रामार्थ बैठे तब मन्दिर के पूजक, पाचक, ज्योतिर्विद्, भाण्डारी, वाहक, गायक आदि सेवाधिकारियों को बुला कर उन्होंने उनसे कहा—आज से तुम लोग बड़ी सावधानी से अपना अपना कार्य करना। ऐसा न हो कि सेवा में कहीं कोई त्रुटि हो। इस पर सब सेवकों ने एक स्वर से यतिराज के आज्ञा पालन की प्रतिज्ञा की। तब से बहुत दिनों तक यतिराज श्रीरङ्गनाथ की सेवा करते रहे।

एक दिन पूर्णाचार्य ने यतिराज से कहा—गोष्ठीपूर्ण नामक एक विद्वान् श्रीवैष्णव हैं। गुरुदेव श्रीयामुनाचार्य उन्हें मन्त्रार्थ बता गये हैं। अतः तुम जा कर उनसे मन्त्रार्थ सीख आओ। यतिराज महात्मा गोष्ठीपूर्ण के पास गये और मन्त्रार्थ उपदेश के लिये प्रार्थना की। किन्तु गोष्ठीपूर्ण सरल मनुष्य नहीं थे, उन्होंने यतिराज की परीक्षा करने के लिये नाना प्रकार के आडम्बर रचे। एक दो बार नहीं, अठारह बार यतिराज ने गोष्ठीपूर्ण से मन्त्रार्थोपदेश के लिये प्रार्थना की, परन्तु प्रत्येक बार किसी न किसी बहाने से गोष्ठीपूर्ण ने उन्हें टाल दिया। अन्तिम बार जब गोष्ठीपूर्ण ने कहा—जाओ, जाओ, तब यतिराज नितान्त क्लान्त हो गये और उनके दोनों नेत्रों से अजस्र अश्रु-धारा बहने लगी। विवश हो वे श्रीरङ्ग जी को लौट गये। फिर एक श्रीवैष्णव के मुख से यतिराज के हताश हो कर सन्तप्त होने का हाल सुन गोष्ठीपूर्ण को दया आयी और उन्होंने एकान्त में ले जा कर उन्हें मन्त्रार्थ का उपदेश दिया। किन्तु मन्त्र देने के पूर्व गोष्ठीपूर्ण ने उनसे कहा—यह मन्त्रार्थ अतिशय गोपनीय है। अतः अधिकारी को छोड़ अन्य किसी को कभी मत बतलाना। इस प्रकार कई बार उन्हें समझा और उनसे प्रतिज्ञा करा कर गोष्ठीपूर्ण ने उन्हें मन्त्रार्थ उपदेश किया। यतिराज महामहि-मान्वित मन्त्रार्थ प्राप्त कर कृतार्थ हुए।

उसी दिन गोष्ठीपुर में नृसिंह स्वामी के मन्दिर में उत्सव था। उस उत्सव को देखने के लिये बड़ी बड़ी दूर के श्रीवैष्णव एकत्र हुए थे। यतिराज को उन पर बड़ी दया आयी, और रात्रि रहते ही वे निद्रा को छोड़ उठ बैठे। फिर मन्दिर के द्वार पर बैठ वे उच्चैः स्वर से मन्त्ररहस्य का बारम्बार पाठ करने लगे। उसे सुन चौहत्तर विष्णुभक्त ब्राह्मण उस मन्त्ररहस्य को पा कर कृतार्थ हुए। जब गोष्ठीपूर्ण ने यह हाल सुना, तब वे अपने मन में अत्यन्त विरक्त

हुए और दूसरे दिन शिष्यों द्वारा श्रीरामानुज स्वामी को बुलवा कर उनसे पूँछा । हे यतिराज ! मैंने तुमको अतिगोपनीय मन्त्ररहस्य बतलाया था । बतलाने के पूर्व अधिकारी को छोड़ अन्य किसी को न बतलाने की अनेक बार तुमसे शपथ भी करा ली थी । किन्तु बड़े आश्चर्य की बात है कि तुमने तिस पर भी मेरी आज्ञा के सर्वथा विरुद्ध कार्य किया । अच्छा बतलाओ तो गुरु के साथ द्रोह करने वाले को क्या फल मिलता है ? श्रीरामानुज स्वामी ने कहा—प्रभो ! गुरुद्रोह करने से नरक में पड़ना पड़ता है । तब गोष्ठीपूर्ण ने पूँछा, तब जान बूझ कर तुमने ऐसा घोर पाप क्यों किया ? इसके उत्तर में श्रीरामानुज स्वामी ने कहा—गुरो ! गुरुद्रोह के कारण मैं अकेला भले ही नरक में पड़ूँ किन्तु आपकी कृपा से और सब तो परमपद पावेंगे । इस उदारतापूर्ण उत्तर को सुन गोष्ठीपूर्ण स्वामी का सारा क्रोध दूर हो गया और प्रसन्न हो कर यतिराज को गले लगा कर उपस्थित श्रीवैष्णवों को सम्बोधन कर के कहा—आज से समुदय श्रीवैष्णवसिद्धान्त "श्रीरामानुजसिद्धान्त" के नाम से प्रसिद्ध होंगे । तभी से श्रीवैष्णव दर्शन का नाम "श्रीरामानुजदर्शन" पड़ा ।

कुछ दिनों बाद श्रीरामानुज स्वामी देशाटन को निकले और वेङ्कटगिरि होते हुए उत्तर को चले । दिल्ली, बदरिकाश्रम आदि स्थानों में श्रीसम्प्रदाय का प्रचार करते हुए वे अष्टसहस्र नामक ग्राम में पहुँचे । वहाँ उन्होंने वरदाचार्य और यज्ञेश नामक अपने दो शिष्यों को मठाधिपति नियुक्त किया । फिर हस्तिगिरि में पूर्णाचार्यादि के मिलने के अनन्तर वे कपिलतीर्थ को गये । वहाँ के राजा विट्ठलदेव को उन्होंने अपना शिष्य बनाया । राजा ने तोंडीर मण्डल आदि अनेक ग्राम उनको भेंट किये ।

फिर बोधायन वृत्ति संग्रह करने के लिये वे कूरेश सहित शारदापीठ को गये और वहाँ के पण्डितों को शास्त्रार्थ में परास्त किया । यतिराज ने भगवती वीणापाणि की स्तुति कर उन्हें प्रसन्न किया । फिर बोधायन वृत्ति को ले वे श्रीरङ्गजी की ओर चल दिये । किन्तु काश्मीरी पण्डितों को उस पुस्तक का इस प्रदेश में आना अच्छा न मालूम पड़ा । अतः रास्ते ही में वे यतिराज से उस पुस्तक को छीन कर ले गये । इस घटना से स्वामी जी को बड़ा दुःख हुआ । उन्हें दुःखी देख कूरेश ने कहा—प्रभो ! आप दुःखित न हों । मैंने उसे मनोयोग पूर्वक आद्यन्त देख लिया है । आपकी कृपा से वह सम्पूर्ण ग्रन्थ मेरे हृदयस्थ है—यह सुन स्वामी जी बहुत प्रसन्न हुए ।

यतिराज स्वामी ने वेदान्तसूत्र पर "(१) श्रीभाष्य, (२) वेदान्तप्रदीप, (३) वेदान्तसार, (४) वेदान्तसंग्रह, (५) गीताभाष्य, (६) गद्यत्रय" आदि बहुत से ग्रन्थ बनाये ।

यतिराज ने श्रीभाष्यादि ग्रन्थों को बना कर और बहुत से शिष्यों को साथ ले चोलमण्डल, पाण्ड्यमण्डल, कुरङ्ग आदि देशों में जैनियों एवं मायावादियों को परास्त कर उन्हें अपना शिष्य बनाया । कुरङ्ग देश के राजा को दीक्षित कर उन्होंने केरल देश के कट्टर वैष्णवद्वेषी पण्डितों को परास्त किया, वहाँ से वे क्रम से द्वारका, मथुरा, काशी, अयोध्या, बदरिकाश्रम, नैमिषारण्य आदि तीर्थों में हो कर काश्मीर पहुँचे । वहाँ के पण्डितों को भी शास्त्रार्थ में परास्त किया । काश्मीर के नरेश उनका नाम सुन उनके पास गये और उनके शिष्य हो गये । वहाँ के पण्डितों को यह बात अच्छी न लगी उन्होंने स्वामी जी पर अभिचार प्रयोग किया । शिष्यों ने इसका समाचार श्रीस्वामी जी को दिया । पर इसे सुन श्रीस्वामी जी ज़रा भी विचलित न हुए । पण्डितों का सारा परिश्रम व्यर्थ हो गया और वे पागल हो गये तथा सड़कों पर गालियाँ बकते हुए घूमने लगे । राजा को दया आयी उन्होंने स्वामी से निवेदन कर उनका पागलपन दूर कराया । फिर वे सब पण्डित यतिराज के शिष्य हो गये । स्वयं विद्यादेवी सरस्वती ने उनके भाष्य की प्रशंसा कर उन्हें "भाष्यकार" की सूपाधि प्रदान की । राजा भाष्य के प्रति सम्मान प्रदर्शनार्थ शूर सामन्तों की सेना सहित पहुँचाने के लिये

दो योजन तक उनके पीछे पीछे आया ।

वहाँ से स्वामी जी द्वारका गये । फिर काशी हो कर वे पुरुषोत्तमक्षेत्र पहुँचे । वहाँ बौद्ध पण्डितों को परास्त कर वे श्रीरामानुज मठ में रहने लगे । भाष्यकार ने चाहा कि वहाँ जगदीश के अर्चनविधान में कुछ वैदिकरीत्या हेर फेर किया जाय, पर जगदीश की इच्छा न देख वे वेङ्कटगिरि पर पहुँचे । फिर चोल देश के कृमिकण्ठ राजा ने उन्हें शास्त्रार्थ के लिये बुलाया। यतिराज उसके पास जाते थे कि मार्ग में चेला चलाम्बा और उसके पति को दीक्षित किया, फिर अनेक बौद्धों को उन्होंने परास्त किया। इस प्रकार कुछ दिन वे भक्तों के नगरों में रहे । वहाँ स्वप्न देखने से इन्होंने यादवाचल पर जा कर वहाँ की छिपी हुई भगवान् की मूर्ति को निकाला और शाके १०.१२ में उस मूर्ति की वहाँ प्रतिष्ठा की ।

एक बार यतिराज ने दिल्ली में जा कर तत्कालीन मुसल्मान सम्राट् के महल में एक विष्णु मूर्ति को निकाला था ।

श्रीरामानुज स्वामी के ७४ शिष्य बड़े प्रसिद्ध हो गये हैं इनमें अन्नपूर्ण की बड़ी महिमा है ।

इस प्रकार यतिराज भाष्यकार श्रीरामानुज स्वामी ने जीवधारियों के प्रति कृपा दिखाने के लिये इस धराधाम पर एक सौ बीस वर्ष तक वास किया । इस अवस्था का आधा समय अर्थात् साठ वर्ष तक तो उन्होंने भूतपुरी, काञ्ची, वेङ्कटगिरि, यादवाचल आदि अनेक देशों में दिग्विजय करने के लिये पर्यटन किया। अनन्तर उन्होंने अपनी आयु का शेष आधा भाग (अर्थात् साठ वर्ष) श्रीरङ्गनाथ जी की सेवा में व्यतीत किया । सेतुबन्ध से हिमालय तक और पश्चिम समुद्र से पूर्व समुद्र तक ऐसा कोई स्थान न था जहाँ पर यतिराज के शिष्य न हों । वैकुण्ठयात्रा के पूर्व यतिराज ने श्री रङ्गनाथ भगवान् से प्रार्थना की थी—प्रभो ! प्रसन्न हो कर मुझे यह वर दीजिये कि शैशवावस्था से ले कर अन्तिम समय तक मेरे शिष्य भक्त अनुगत आश्रित शत्रु मित्र अर्थात् जिस किसी से मुझसे कुछ भी सम्बन्ध रहा हो वे सब शरीरान्त होने पर आपकी कृपा से वैकुण्ठ को जायँ ।

प्रार्थना के अनन्तर वे अपने मठ में पहुँचे, जहाँ अनेक श्रीवैष्णवों का समुदाय उनके आगमन की प्रतीक्षा कर रहा था । यतिराज ने उन्हें शास्त्रों के वाक्यों का सार उपदेश किया । उनके ये महावाक्य उच्च नीति और भगवद्भक्ति से पूर्ण हैं । अनन्तर उन्होंने दीन दुखियों को दान देना प्रारम्भ किया । दान देने के पश्चात् उन्होंने अपने प्रधान शिष्यों को बुलाया और उन्हें शास्त्रों के निगूढार्थ सम्बन्धी अनेक उपदेश दिये । इस कार्य में उनके तीन दिन और तीन रात व्यतीत हुईं । यह देख श्रीवैष्णवों को सन्देह हुआ । उन्होंने समझा कि यतिराज जीवन के समस्त कर्त्तव्य पूरा कर चुके । तब वे अपने मानसिक भाव को गोपन न कर सके और पूँछने लगे—प्रभो ! पहले तो आपने हमें ये सब बातें नहीं बतायी थीं आज इतनी शीघ्रता में बतलाने का क्या कारण है । यतिराज ने कहा—हे श्रीवैष्णवगण ! आज से चौथे दिन पृथिवी त्याग करने की हमारी इच्छा है । श्री रङ्गनाथ स्वामी से निवेदन किया था उन्होंने हमारी प्रार्थना स्वीकार कर ली है । यह भीषण संवाद सुन श्रीवैष्णव कहने लगे—प्रभो ! आपकी सेवा विना हम एक मुहूर्त भी जीवन धारण नहीं कर सकते । अतः गुरुदेव ! इसका तो कोई उपाय बताइये । यह सुन श्रीरामानुज स्वामी ने शिल्पियों को बुलवा अपनी प्रतिमा बनवायी। उस मूर्ति को निज शरीर से छुला कर उन्होंने उसकी प्रतिष्ठा की, उस मूर्ति को देख सब लोग प्रसन्न हुए । फिर दाशरथि के पुत्र श्रीरामानुजदास के कहने पर एक मूर्ति भूतपुरी के लिये भी बनवा दी । अनन्तर शिष्यों के आचार सम्बन्धी कई प्रश्नों के उत्तर दिये ।

महायात्रा का जब एक दिन बाक़ी रह गया तब यतिराज ने कूरेशतनय पराशर भट्टाचार्य को बुला कर भगवान् श्रीरङ्गनाथ के दास्य साम्राज्य के सम्राट् पद पर उन्हें अभिषिक्त किया । अनन्तर उनको उचित शिक्षा दी । तदनन्तर रघुनाथ के पुत्र के सिर पर हाथ रख कर कहा—पश्चिम

दिशा में वेदान्ती नामा एक महापण्डित है वह अभी तक इस सम्प्रदाय में नहीं आया। अतएव तुम बहुत शीघ्र जा कर उसे परास्त कर वहाँ श्रीसम्प्रदाय का प्रचार करो उन्होंने इस आज्ञा को शिरोधार्य किया।

इसके बाद महायात्रा का दिन उपस्थित हुआ। प्रभात होते ही शिष्य प्रातः स्नान कर जब लौटे, तब यतिराज ने उनको भोजन करने के लिये आदेश दिया। अनन्तर उन्होंने स्वयं संयतचित्त हो कर भगवदाराधना किया। अनन्तर श्रीरङ्गनाथ के अर्चकों को बुला कर कहा—पूजकगण! तुम लोग हमारा अपराध क्षमा करो। सेवकों ने कहा—प्रभो! आप तो हमारे रक्षक हैं भला आपका क्या अपराध है। आप तो जगत् के हितैषी बन्धु हैं। इतने दिनों हमारा पुत्रवत् पालन किया। आपके विना हम कैसे जीवित रहेंगे, हम इसी लिये व्याकुल हैं। यतिराज ने कहा—हमारे पश्चात् तुम बड़ी सावधानी से भगवान् का अर्चन करना। इसके बाद उन्होंने सब श्रीवैष्णवों को सम्बोधन कर के कहा—हे प्रिय शिष्यगण एवं श्रीवैष्णववर्ग! आप लोग हमारे लिये शोक न कीजियेगा आप लोग जीवन के इस अन्तिम मुहूर्त में प्रसन्न हो कर हमको विदा कीजिये। सब लोग शोकार्त और निश्चल भाव से खड़े रहे। यतिराज गोविन्द की गोद में सिर और अन्नपूर्णा की गोद में चरण रख लेट गये। शिष्यवर्ग उदात्त स्वर से भृगुवल्ली, ब्रह्मवल्ली और श्रीपराङ्कुश निर्मित प्रबन्धों का पाठ करने लगे। भेरी मृदङ्ग बजने लगी। हरि नाम कीर्तन होने लगा। यतिराज पूर्णाचार्य की पादुकाओं की ओर नेत्र स्थिर कर हृदय में यामुनाचार्य का कुछ देर तक ध्यान करते रहे। देखते देखते उनका प्राण वायु ब्रह्मरन्ध्र को भेद कर परब्रह्म में लीन हो गया। शून्य शरीर पड़ा रहा। माघ मास की शुक्ला दशमी को शनिवार के दिन मध्याह्न काल में यतिराज पृथिवी को त्याग वैकुण्ठ सिधारे।

(आदर्श महात्मा)

रायचन्द्र कवि=ये गुजरात के रहने वाले और नागर ब्राह्मण थे। राजा डालचन्द मुर्शिदाबाद के जगत्सेठ के यहाँ ये रहते थे, और वहीं गीतगोविन्दादर्श नामक भाषा गीतगोविन्द और लीलावती अनेक छन्दों में इन्होंने बनाये हैं। वे ग्रन्थ इनके पाण्डित्य के प्रमाण हैं।

रायमल=चित्तौड़ के महाराणा। ये महाराणा कुम्भा के द्वितीय पुत्र थे। एक बार युवराज रायमल ने महाराणा से एक अनुचित प्रश्न पूछा। इससे अप्रसन्न हो कर महाराणा ने उन्हें देश-निकाले का दण्ड दिया। पितृपरित्यक्त युवराज ने ईदर देश में जा कर आश्रय लिया, वहाँ एक चारण ने इनकी बड़ी सहायता की। वह चारण भी महाराणा द्वारा निर्वासित किया गया था। उसकी सहायता से युवराज बड़े प्रसन्न हुए।

महाराणा कुम्भा अपने ज्येष्ठ पुत्र ऊदा के द्वारा मारे गये थे। ऊदा पिता को मार कर स्वयं चित्तौड़ के सिंहासन पर बैठ गया था। परन्तु उसे शीघ्र ही पितृहत्या का प्रायश्चित्त भोगना पड़ा। (देखो ऊदा) अपने विक्रम और सामर्थ्य के प्रभाव से महाराणा रायमल संवत् १५३० (सन् १४७४ ई०) में चित्तौड़ के पूज्य और पवित्र सिंहासन पर बैठे। सिंहासन पर बैठने के पहले ही इन्होंने पितृघाती ऊदा के विरुद्ध खड्ग धारण किया था, इससे डर कर वह दिल्ली के बादशाह की शरण में गया, और वहाँ बादशाह को कन्या देने की शर्त पर अपनी सहायता के लिये प्रस्तुत किया। परन्तु ऊदा की आकस्मिक मृत्यु हो जाने से मेवाड़ के गौरव की रक्षा हो गयी। ऊदा के सिंहेशमल्ल और सूरजमल्ल नामक दो पुत्र थे, ऊदा की मृत्यु के पीछे उन्हीं दोनों पुत्रों को ले कर बादशाह मेवाड़ पर चढ़ आये। मेवाड़ के सर्दार सामन्त भी राणा रायमल की ओर हो गये थे। दोनों ओर से शीघ्र ही भयङ्कर युद्ध प्रारम्भ हो गया। पहले तो ऊदा के पुत्रों ने बड़ा विक्रम प्रकाशित किया, परन्तु पीछे वे रायमल के विक्रम को सह नहीं सके। अन्त में सिंहेशमल्ल और सूरजमल्ल ने राणा की अधीनता स्वीकार कर ली। बादशाह भी इस युद्ध में ऐसा परास्त हुआ कि फिर उसने

मेवाड़ पर चढ़ाई करने का नाम तक नहीं लिया।

राणा रायमल के दो कन्या और तीन पुत्र थे। राणा ने भली भांति अपने पूर्वजों के गौरव की रक्षा की थी। मालवे के स्वामी ग़यासुद्दीन के साथ राणा का प्रचण्ड वैर हो गया था। इस कारण कई युद्ध हुए, सभी युद्धों में राणा की ही जीत हुई। इन युद्धों में राणा के भतीजे सिंहेशमल्ल और सूरजमल्ल ने बड़ी वीरता दिखायी थी। अन्त में मालवपति ग़यासुद्दीन ने जीतने की कोई सम्भावना न देख कर राणा से सन्धि के लिये प्रार्थना की, राणा ने भी उदारतापूर्वक सन्धि कर ली। तब से निष्कण्टक हो कर राणा जी राज्यशासन करने लगे। उस समय भारत में कोई भी राजा राणा जी का सामना करने वाला न था। अन्त में राणा ने पुत्रशोक से अपना प्राण त्याग किया।

(टाड्स राजस्थान)

रायसिंह=(१) जयसलमेर के रावल मूलराज के बड़े पुत्र। इनके पिता अपने स्वरूपसिंह के वश में थे। स्वरूपसिंह विलक्षण प्रकृति का मनुष्य था। उसको उत्पीडन करना बड़ा उत्तम मालूम पड़ता था। औरों के विषय में तो कहना ही क्या था, सर्दार तथा राजकुमार पर भी वह अपनी नीति का प्रयोग करने लगा। सर्दारों ने इसका प्रतीकार करने के लिये राजकुमार से निवेदन किया। युवराज तथा सामन्त मण्डली ने मिल कर निश्चय किया कि स्वरूपसिंह को विना मारे काम नहीं चलेगा।

एक दिन राजसभा जुड़ी थी, राजा मूलराज उस सभा की शोभा बढ़ा रहे थे। समस्त सामन्त सर्दार बैठे थे। इसी समय राजकुमार रायसिंह म्यान से तलवार निकाल कर स्वरूपसिंह की ओर बढ़े। स्वरूपसिंह घबड़ा कर भागना ही चाहता था कि इतने में राजकुमार की तलवार ने उसका काम तमाम कर दिया। सामन्तों ने मूलराज को भी उसी समय समाप्त करने का प्रस्ताव किया, परन्तु रायसिंह के निषेध करने से वे थम गये।

तदनन्तर सामन्तों की सहायता से रायसिंह ने पिता को क़ैद कर स्वयं राज्य भार ग्रहण किया। जब मूलराज क़ैद से छूटे तब उन्होंने रायसिंह को देशनिकाले का दण्ड दिया। पिता द्वारा निर्वासित हो कर रायसिंह जोधपुर में जा कर रहने लगे। परन्तु ये अपने उद्दण्ड स्वभाव के कारण वहाँ भी नहीं रह सके। जोधपुर से लौट कर ये पुनः जयसलमेर आये। इस समय ये पिता द्वारा क़ैद किये गये, तथा उस मकान में आग लगने से ये जल गये।

(टाड्स राजस्थान)

(२) बीकानेर के महाराज। इनके पिता का नाम कल्याणमल था। पिता की मृत्यु के पश्चात् रायसिंह के मस्तक पर बीकानेर का राजछत्र सुशोभित हुआ।

रायसिंह ने अपने शासन के समय में बीकानेर का गौरव बढ़ाया। आज तक बीकानेर की गिनती छोटे राज्यों में होती थी, परन्तु साहसी देशकालज्ञ नीतिचतुर रायसिंह के प्रयत्न से बीकानेर की गणना बड़े राज्यों में होने लगी। इस समय दिल्ली के सिंहासन पर बादशाह अकबर सुशोभित थे। यह बात चतुर रायसिंह से छिपी नहीं थी, कि भारतवर्ष के राजपूत राजाओं ने बादशाह की अधीनता में रह कर अपने राज्य की सीमा और गौरव बढ़ाया है। इन्हीं सब बातों को सोच कर रायसिंह ने स्थिर किया कि केवल बीकानेर के शासन से ही सन्तुष्ट हो कर समय नहीं बिताना चाहिये, किन्तु इस समय के बराबर वाले अन्यान्य राजाओं के समान यश और सम्मान पाने का प्रयत्न करना चाहिये। रायसिंह इस बात को भी जानते थे कि एक न एक दिन यह अवश्य ही होगा कि दिल्ली के बादशाह बीकानेर पर चढ़ आवेंगे और हम से अपनी अधीनता स्वीकार कराने के लिये प्रयत्न करेंगे। अतः जब भारत के प्रधान और बलशाली राजाओं ही ने अपनी स्वाधीनता को तिलाञ्जलि दे दी है, तब हम अपनी स्वाधीनता की रक्षा कर सकेंगे यह आशा करना भी निरर्थक और हानिकारी है अतः पहले ही से बादशाह के साथ मित्रता कर लेना उचित है। रायसिंह के सिंहासनारूढ़ होने के समय तक इस देश के

जाट अपने स्वत्वों की रक्षा करते आते थे। परन्तु समय के क्रम से राठौरों की संख्या क्रमशः बढ़ती गयी, और जाटों के राजनैतिक अधिकार घटते गये। इसी प्रकार बीकानेर एक शक्तिशाली राज्य हो गया। परन्तु जाटों की स्वाधीनता के अपहरण करने वाले इस राज्य को भी दिल्ली राज्य की परतन्त्रता की बेड़ी से जकड़ाना पड़ा।

पिता के परलोकवास होने पर स्वयं रायसिंह उनका अस्थिसञ्चय करने गङ्गा जी गये। जयसलमेर की जिस कन्या के साथ रायसिंह ब्याहे गये थे, उसकी दूसरी बहिन को अकबर ने ब्याहा था। इस प्रकार सम्राट् अकबर और रायसिंह का सम्बन्ध पहले ही से था। वे गङ्गा जी में पिता का अस्थिसञ्चय कर के यवनराज की राजधानी में चले आये। पहले का सम्बन्ध होने के कारण इनको बादशाह के निकट अपना परिचय देने में बड़ा सुबीता हुआ। इस समय आमेर के महाराज मानसिंह की अकबर के यहाँ बड़ी प्रतिष्ठा थी। राजा मानसिंह ने बीकानेर के राजा रायसिंह का सम्राट् अकबर से परिचय करा दिया। रायसिंह का भाग्य खुल गया, सम्राट् अकबर ने बड़े आदर से उनका स्वागत किया। सम्राट् ने रायसिंह को चार हज़ार सेना का सेनापति बना कर हिसार देश के शासन का भार दिया। बीका ने सामन्य राव की उपाधि धारण कर के बीकानेर की स्थापना की थी, इस समय सब से पहले रायसिंह को राजा की उपाधि मिली। सम्राट् का प्रसाद पाने के कारण बीकानेर राज्य और वहाँ के राजा की ख्याति भारतवर्ष भर में फैल गयी। इसी समय बादशाह ने मारवाड़ पर आक्रमण किया था, और नागौर प्रदेश को जीत कर बादशाह ने उसके शासन का भार रायसिंह को दे दिया। इससे रायसिंह की प्रतिपत्ति और भी बढ़ गयी। भाग्यवान् रायसिंह इस प्रकार बादशाह से सम्मान पा कर अपने राज्य को लौट आये। महाराज रायसिंह ने बीकानेर में आ कर अपने छोटे भाई रामसिंह को सेना के साथ भाटियों के प्रधान स्थान भटनेर पर अधिकार करने के लिये भेजा। रामसिंह ने बड़ी सरलता से पराक्रमी राठौर सेना के साथ उन देशों पर अधिकार कर लिया।

इसी प्रकार इनकी प्रतिपत्ति दिनों दिन बढ़ने लगी, बड़े बड़े युद्धों में इनकी वीरता का परिचय लोगों को मिला था। अपने भाग्य सूर्य को और भी चमकाने के लिये इन्होंने अपनी कन्या अकबर पुत्र सलीम को दी थी। सुनते हैं विवाह की तैयारियाँ बड़ी धूम धाम से हुई थीं। सन् १६३२ ई० में इनका देहान्त हुआ। (टाड्स राजस्थान)

रावण=(१) त्रिलोकप्रसिद्ध लङ्काधिपति। यह विश्रवा का पुत्र था और इसकी माता केकसी थी। पुराणों में इसको महापराक्रमी कह कर वर्णन किया है। कहते हैं इसके दस सिर और बीस भुजाएँ थीं। इसका चरित्र महानिन्दित था। एक बार इसने रम्भा नाम की अप्सरा पर कुदृष्टि डाली थी, वह नलकूबर के यहाँ अभिसारिका के वेष में जाती थी। रावण के अत्याचार से क्रुद्ध हो कर रम्भा ने उसे शाप दिया कि यदि तुम अब से किसी रमणी पर बलात्कार करोगे तो तुम्हारा मस्तक फट जायगा। रावण ने राम की स्त्री सीता को पञ्चवटी से हर लिया था, इस दुष्कर्म का फल भी उसे खूब मिला। इसी अपराध के कारण एक विभीषण को छोड़ उसका समस्त वंश नष्ट हो गया।

यह रावण त्रिलोकविजयी था। परन्तु कार्तवीर्य और बाली से इसे हार खानी पड़ी थी, रावण के पूर्व जन्म की कथा बड़ी अच्छी है। कहते हैं—एक बार सनक सनन्दन आदि विष्णु के दर्शन के लिये वैकुण्ठ गये। परन्तु द्वारपाल जय और विजय ने उन्हें भीतर जाने नहीं दिया। इससे अप्रसन्न हो कर उन्होंने शाप दिया, तुम्हारी प्रकृति राक्षसों के समान है अतः तुम दोनों शीघ्र ही राक्षस हो जाओ। इस प्रकार ब्रह्मर्षि की क्रोधाग्नि में पड़ कर वे बड़े भयभीत तथा चिन्तित हुए। परन्तु पुनः विष्णु के बहुत प्रार्थना करने पर महर्षियों ने कहा तीन जन्म के बाद तुम पुनः इस पद को पा सकोगे,

परन्तु यदि तुम भगवान् विष्णु के हाथ मारे जाओ तो इस प्रकार शापानुग्रह कर के महर्षि लोग चले गये। पहले जन्म में विष्णु के द्वारपाल जय विजय, हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु हुए थे, दूसरे जन्म में रावण कुम्भकर्ण, और तीसरे जन्म में शिशुपाल दन्तवक्त्र हुए थे।

(२) काश्मीरका एक राजा। इनके पिता का नाम इन्द्रजित् था। इसने ३० वर्ष ६ महीने काश्मीर का राज्य किया था। रावण काश्मीर में जिस शिवलिङ्ग की पूजा करते थे आज भी वह शिवलिङ्ग वर्तमान है। राजा रावणने उसी शिवलिङ्ग को स्थापित कर के समस्त काश्मीर का राज्य दान कर दिया था।

राव राना कवि=ये चरखारी के निवासी वन्दीजन थे। सं० १८६१ में ये उत्पन्न हुए थे। राजा रतनसिंह के दरबार में इनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। इनका वंश बुन्देलों का प्राचीन कवि है।

राहु=चन्द्र और सूर्य को ग्रहण करने वाला असुर विशेष। विप्रचित्ति के औरस और सिंहिका के गर्भ से इसका जन्म हुआ था। समुद्र मन्थन से जब अमृत निकला, तब एक असुर देवताओं के दल में मिलकर अमृत पीने लगा। चन्द्रमा और सूर्य ने उसे देख लिया, और इसका संवाद उन्होंने विष्णु को दिया। विष्णु ने चक्र द्वारा उसका सिर काट लिया। परन्तु उसने अमृत पी लिया था इस कारण उसकी मृत्यु नहीं हुई। मस्तक भाग का नाम राहु और शरीर भाग का नाम केतु पड़ा। राहु इसी कारण चन्द्रमा और सूर्य का ग्रास करता है।

(भागवत)

राहुल=बुद्धदेव का पुत्र। गोपा के गर्भ से इसका जन्म हुआ था। इसके जन्म के सातवें दिन बुद्धदेव ने संसार त्याग किया। सात वर्ष की अवस्था में राहुल बुद्धदेव के समीप जा कर बुद्धसङ्घ में सम्मिलित हुए और वीस वर्ष की अवस्था में बौद्धभिक्षु बन गया।

रुक्मिव्=विदर्भराज भीष्मक के पुत्र का नाम। (देखो रुक्मिणी)

रुक्मिणी=विदर्भराज भीष्मक की कन्या और श्रीकृष्ण की स्त्री। ये लक्ष्मी का अवतार थीं। श्रीकृष्ण ने इनके साथ राक्षस विवाह विधि से व्याह किया था। इनके भाई का नाम रुक्मी था। यौवन के प्रारम्भ होतेही रुक्मिणी असाधारण सुन्दरी हो गयी। रुक्मिणी की सुन्दरता आदि का वर्णन सुन कर श्रीकृष्ण उन पर मोहित हो गये थे और रुक्मिणी भी श्रीकृष्ण के गुणों को सुन कर उन पर मोहित हो गयी थीं। रुक्मिणी ने श्रीकृष्ण को पति बनाने की इच्छा प्रकट की, परन्तु उनके भाई रुक्मी के विरोध करने के कारण पिता ने भी रुक्मिणी के प्रस्ताव पर अपनी सम्मति नहीं दी। रुक्मी श्रीकृष्ण को बहुत बुरा समझता था।

इधर मगधाधिपति प्रबल पराक्रमी राजा जरासन्ध ने दमघोष के पुत्र शिशुपाल के लिये राजा भीष्मक से रुक्मिणी प्रदान करने का प्रस्ताव कर भेजा। राजा भीष्मक ने जरासन्ध का प्रस्ताव स्वीकृत भी कर लिया। चेदिराज दमघोष और मगधाधिपति जरासन्ध दोनों ही एक ही वंश में उत्पन्न हुए थे। जरासन्ध ने दमघोष के पुत्र शिशुपाल को अपने पास रख कर पुत्रों के समान उसका लालन पालन किया था। श्रीकृष्ण ने जरासन्ध के जामाता कंस को मार डाला था इस कारण शिशुपाल भी श्रीकृष्ण से द्वेष करता था। कृष्णविद्वेषी रुक्मी के परामर्श से भीष्मक ने जरासन्ध के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। कुण्डिननगर में विवाह की तैयारियाँ धूम धाम से होने लगीं। शिशुपाल श्रीकृष्ण की बुआ का लड़का था। अतएव अपनी बुआ को प्रसन्न करने के लिये श्रीकृष्ण, बलराम तथा अन्य वृष्णिवंशियों को ले कर कुण्डिनपुर उपस्थित हुए। विवाह के पहले दिन रुक्मिणी रथ पर चढ़ कर देवपूजा के लिये मन्दिर में जाती थीं, मार्ग में श्रीकृष्ण ने उन्हें देख पाया। दोनों ने आपस में दोनों को देखा। श्रीकृष्ण ने बलराम से परामर्श कर के रुक्मिणी को हरण करने का सङ्कल्प किया। देवता की पूजा कर के द्रौपदी जब घर लौट आ रही थी, तब श्रीकृष्ण ने वहाँ जा कर रुक्मिणी को अपने रथ पर बैठा लिया। श्रीकृष्ण रुक्मिणी को हर कर ले जा रहे हैं यह देख कर शिशुपाल जरासन्ध

रुक्मी आदि उनसे युद्ध करने के लिये उद्यत हुए। रुक्मी ने अपने पिता के सामने प्रतिज्ञा की थी कि विना श्रीकृष्ण को मारे और विना रुक्मिणी का उद्धार किये मैं घर में नहीं लौटूँगा । श्रीकृष्ण के साथ युद्ध में शिशुपाल जरासन्ध रुक्मी आदि वीरगण हार गये । श्रीकृष्ण के शर से मूर्च्छित हो कर रुक्मी गिर गया । रुक्मिणी के कहने से श्रीकृष्ण ने उसका वध नहीं किया और छोड़ दिया । रुक्मी ने अपनी प्रतिज्ञा का पालन नहीं किया इस कारण वह पुनः अपने घर भी नहीं लौटा । विदर्भ देश के पास ही एक नगरी बना कर वह वहीं रहने लगा ।

श्रीकृष्ण द्रौपदी को द्वारका ले गये और वहाँ जा कर उन्होंने विधिवत् विवाह किया । रुक्मिणी ही श्रीकृष्ण की पटरानी थीं । रुक्मिणी के गर्भ से श्रीकृष्ण के प्रद्युम्न, चारुदेष्ण और सुषेण आदि दश पुत्र उत्पन्न हुए थे । रुक्मिणी के बड़े पुत्र प्रद्युम्न ने रुक्मी की कन्या शुभाङ्गी को व्याहा था । (हरिवंश)

रुचिरथी=एक राजकुमार । इनके पिता का नाम संकृति था जो भरत के वंश में थे ।

रुद्र=एक देवता का नाम । इस देवता की उत्पत्ति के विषय में कूर्मपुराण में लिखा है—सृष्टि करने की इच्छा से ब्रह्मा ने कठोर तपस्या की परन्तु फल कुछ भी नहीं हुआ, वे कुछ भी सृष्टि नहीं कर सके । इससे उन्हें बड़ा क्रोध हुआ और क्रोध के कारण उनके नेत्रों से दो बिन्दु अश्रु टपक पड़े । उन्हीं अश्रुबिन्दुओं से भूत प्रेत उत्पन्न हुए । अनन्तर ब्रह्मा के मुख से प्राणमय रुद्रदेव उत्पन्न हुए । इन रुद्रदेव का तेज कोटि सूर्य तथा प्रलयकाल के अग्नि के समान था । उत्पन्न होते ही रुद्रदेव रोदन करने लगे । ब्रह्मा ने कहा—तुम रोदन मत करो । जन्मते ही रोने के कारण इनका नाम रुद्र पड़ा (कूर्मपुराण)। पद्मपुराण के अनुसार ब्रह्मा के भ्रूमध्य से रुद्रदेव की उत्पत्ति हुई । इस पुराण में लिखा है कि इरावती दीक्षा धृति आदि स्त्रियों के गर्भ से रुद्रदेव ने भूत प्रेत आदि को उत्पन्न किया था । कूर्मपुराण में लिखा है कि यदि कोई विष्णु और रुद्र में भेदबुद्धि करता है, वह नरक में जाता है और उक्त दोनों देवों को अभेदबुद्धि से देखने पर मुक्ति प्राप्त होती है । ऋग्वेद में रुद्र और अग्नि का अभेदरूप से वर्णन किया गया है ।

रुद्रकाली=उमा का नामान्तर । वीरभद्र के साथ मिल कर जब उमा ने दक्ष का यज्ञ नष्ट किया उसी समय इनका नाम रुद्रकाली पड़ा ।

रुद्रलोक=शिव का लोक । कैलास का नामान्तर ।

रुमा=कपिराज सुग्रीव की स्त्री का नाम ।

रुरु=महर्षि च्यवन के पौत्र और प्रमिति के पुत्र । प्रमिति के औरस और घृताची नाम की अप्सरा के गर्भ से इसकी उत्पत्ति हुई थी । रुरु की स्त्री का नाम प्रमद्वरा था । प्रमद्वरा के गर्भ से रुरु के शुनक नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ था । प्रमद्वरा की मृत्यु होने पर रुरु ने अपनी आधी आयु दे कर उसे जीवित कर दिया था । महर्षि शुनक वेदाध्ययनसम्पन्न तपोनिरत ब्रह्मज्ञानी सत्यवादी और जितेन्द्रिय थे । द्वादश वर्षव्यापी यज्ञ करने वाले नैमिषारण्यस्थ विख्यात कुलपति शौनक इन्हीं शुनक के पुत्र थे ।

रुरुका=एक राजकुमार का नाम । इनके पिता का नाम विजय था । ये राजा सगर के वंशज थे ।

रुषद्रु=स्वाही के पुत्र और शशबिन्दु का पितामह ।

रूप=एक नदी का नाम । यह नदी शक्तिमत् पर्वत से निकली है ।

रूपसाहि कायस्थ=ये भाषा के कवि थे, और बागमहल पटना के समीप के रहने वाले थे । ये हिन्दूपति बुन्देला पन्ना महाराज के दरबार में रहते थे । इनके बनाये ग्रन्थ का नाम "रूपविलास" है । इस ग्रन्थ का हिन्दी कवियों में बड़ा आदर है ।

रेणुका=परशुराम की माता का नाम ।

रेवत=रोहिणीपुत्र बलराम के श्वशुर का नाम । ये एक राजा थे । कुशस्थली नाम की नगरी इनकी राजधानी थी । इनकी कन्या रेवती बड़ी ही सुन्दरी थी । कन्या के युवती होने पर रेवत उसके योग्य वर ढूँढ़ने लगे । बहुत दिनों तक कोई उपयुक्त वर न मिलने के कारण ये स्वर्ग में लोकपितामह ब्रह्मा के निकट गये । ब्रह्मा

की आज्ञा के अनुसार पृथिवी में आ कर उन्होंने बलराम को कन्या दी ।

(हरिवंश)

रेवती=कुशस्थली के राजा रैवत की पुत्री । रेवती के गर्भ से बलराम को निशठ और उल्मूक नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए थे । यादवों के नाश होने पर बलराम ने देह त्याग किया, और रेवती भी उनके साथ सती हुईं । सहमरण की प्रथा रामायण में नहीं देखी जाती, परन्तु महाभारत के समय वह प्रथा चल पड़ी थी । राम की माता साध्वी कौशल्या मृतपति के साथ चिता में नहीं बैठी थी, परन्तु पाण्डु के साथ पतिप्रिया माद्री ने प्राण त्याग किया था । रेवती भी पति के साथ मर कर पतिप्रेम का उदाहरण बनी है ।

रैवत=(१) राजा प्रियव्रत के पुत्रों में से एक पुत्र का नाम । ये पाँचवें मन्वन्तर के मनु थे ।

(२) एक पर्वत का नाम ।

(३) राजा रैवत के बड़े पुत्र का नाम । ये रेवती के बड़े भाई थे ।

रोमपाद=अङ्गदेश के अधिपति । (देखो ऋष्यशृङ्ग)

रोहिणी=(१) दक्ष की कन्या और चन्द्र की स्त्री ।

(२) वसुदेव की पत्नी और बलराम की माता । ये कंस के डर से बलराम को ले कर गोकुल में वसुदेव के मित्र नन्द के घर रहती थीं । यदुवंश के नाश होने पर वसुदेव ने शरीर त्याग किया और रोहिणी भी उनके साथ सती हुईं ।

रोहित=(१) कतिपय पुराणों में इनका उल्लेख मनु के नाम से हुआ है । ये नवें मन्वन्तर के मनु हैं ।

(२) हरिश्चन्द्र के पुत्र का नाम ।

रोहिताश्व=इनको कुछ लोग रोहित भी कहते हैं। ये राजा हरिश्चन्द्र के पुत्र थे । आज भी विहार तथा पञ्जाब में इनका नाम वर्तमान है । भागवत में लिखा है कि इनके पिता ने इनको वरुणदेव की प्रसन्नता के लिये बलि देने की मानता की थी । क्योंकि उनके कोई पुत्र नहीं होता था । परन्तु पुत्र होने पर उन्होंने पुत्र का बलिदान नहीं किया । इससे वरुण अप्रसन्न हो गये, तथा वरुण की अप्रसन्नता से राजा हरिश्चन्द्र को जलोदर का रोग हो गया । इसी समय इन्द्र के उपदेश से रोहिताश्व वन में चला गया । वर्ष दिन के बाद पुनः रोहिताश्व घर लौटा आ रहा था । उस समय भी इन्द्र ने उसे आने नहीं दिया । तदनन्तर राजा हरिश्चन्द्र ने यज्ञ किया और उनका जलोदर रोग छूट गया ।

रौच्य=तेरहवें मन्वन्तर के मनु का नाम । ये प्रजापति रुचि के औरस और मानिनी के गर्भ से उत्पन्न हुए थे । मत्स्य तथा पद्मपुराण में लिखा है कि रौच्य नवें मन्वन्तर के मनु थे ।

रौद्रश्व=एक राजकुमार का नाम । इनके पिता का नाम अहंयाति था । ये पुरु के वंश के थे ।

ल

लक्ष्मण=अयोध्याधिपति दशरथ के पुत्र और श्रीरामचन्द्र के सौतेले छोटे भाई । लक्ष्मण महारानी सुमित्रा के गर्भ से उत्पन्न हुए थे । ये रामचन्द्र के साथ वन गये थे और वहाँ स्वयं अनेक कष्ट सह कर उन्होंने रामचन्द्र की सेवा की थी । लक्ष्मण बड़े भाई के प्रेम में इतने विभोर हो गये थे कि वे स्वयं अपने को भूल गये थे । इन्होंने इन्द्रजित् का वध किया था । श्रीराम के परित्याग करने पर इन्होंने सरयू में शरीर त्याग कर के स्वर्ग की यात्रा की ।

लक्ष्मण भट्ट=प्रसिद्ध पुष्टिमार्ग सम्प्रदाय के प्रवर्तक श्रीवल्लभाचार्य के पिता का नाम । ये तैलङ्गी ब्राह्मण । १५ वीं सदी के अन्त में ये तैलङ्ग देश से व्रज की ओर आये थे ।

लक्ष्मणसिंह (राणा)=मेवाड़ के महाराणा । ये सन् १२७५ ई० में मेवाड़ के राजसिंहासन पर बैठे थे । उस समय चित्तौड़ की अवस्था अत्यन्त शोच्य थी । अलाउद्दीन के आक्रमण से चित्तौड़ छार खार हो गया था । इस हिन्दू वैरी ने चित्तौड़ पर दो बार आक्रमण किया था, पहिली ही लड़ाई में चित्तौड़ के प्रधान प्रधान वीर काम आ चुके थे, और दूसरी लड़ाई में तो चित्तौड़ उजाड़ हो गया ।

राजा लक्ष्मणसिंह छोटी अवस्था में मेवाड़ के सिंहासन पर बैठे । जब तक ये राजकार्य करने योग्य नहीं हुए तब तक इनके चाचा भीमसिंह ही राज्य का शासन करते थे । इन्हीं

भीमसिंह की स्त्री का नाम पद्मिनी था। (देखो पद्मिनी और भीमसिंह)।

अलाउद्दीन ने पुनः चित्तौड़ पर चढ़ाई की। दोनों ओर के वीर योद्धा प्रबल वेग से लड़ने लगे। एक दिन दिन भर के घोर युद्ध करने के अनन्तर आधी रात को महाराणा लक्ष्मणसिंह अपने शयनगृह में बैठे थे। ठीक आधी रात हो गयी है। चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ है। महाराणा चित्तौड़ भविष्य सोच रहे हैं, इसी समय सहसा एक शब्द महाराणा को सुनायी पड़ा। इस घोर निस्तब्धता को भेदन करता हुआ यह शब्द महाराणा को सुनायी पड़ा—"मैं भूखी हूँ" महाराणा का चिन्तास्रोत उलट गया। वे चकित हो कर जिधर से शब्द आया था उधर ही ओर देखने लगे। दीपक की क्षीण प्रभा में महाराणा ने देखा कि पत्थर के खम्भों के बीच में चित्तौड़ की अधिष्ठात्री देवी विकटरूप से आविर्भूत हुई हैं। देवी को देखते ही महाराणा का हृदय विषादपूर्ण हो गया।

महाराणा ने कड़क कर के कहा—अब तक तुम्हारी क्षुधा शान्त नहीं हुई। अभी थोड़े ही दिन हुए राजवंश के आठ हज़ार वीर पुरुषों ने संग्रामभूमि में प्राण त्याग किये, परन्तु तो भी तुम्हारा खप्पर पूरा नहीं हुआ तुम्हारी पिपासा दूर नहीं हुई। मैं राजबलि चाहती हूँ। राजमुकुटधारी १२ राजकुमार चित्तौड़ की रक्षा करने के लिये संग्रामभूमि में यदि प्राण त्याग न करेंगे, तो मेवाड़ का राज्य शिशोदिया के हाथ से निकल जायगा—यह कह कर देवी जी अन्तर्हित हो गयीं।

महाराणा बड़ी विपद् में पड़े। भर रात जाग कर उन्होंने सबेरा किया। प्रातःकाल होते ही राज्य के सामन्त सर्दारों को बुला कर उन्होंने सब हाल कहा। परन्तु महाराणा की बातों पर किसी को विश्वास नहीं हुआ। तब महाराणा ने कहा—तुम लोग आज रात को यहीं रहो, फिर मेरी बात की सत्यता तुम लोगों को मालूम हो जायगी।

सभी ने राणा की कही हुई बात की सत्यता की परीक्षा की। पुनः राजकुमार रणस्थल में भेजे जाने लगे। राजकुमार युद्ध में बड़ी वीरता दिखा कर प्राण त्याग करने लगे। देखते देखते महाराणा के ग्यारह राजकुमार रणदेवी के बलि हुए। अब केवल एक राजकुमार अजयसिंह बचे हुए थे। महाराणा ने उनको थोड़ी सेना ले कर वहाँ से चले जाने के लिये कहा। तदनन्तर महाराणा स्वयं युद्धक्षेत्र में उपस्थित हुए और अनेक शत्रु वीर को रणभूमि में गिरा कर आप भी वहीं अनन्त निद्रा में अभिभूत हुए।

(टाड्स राजस्थान)

लक्ष्मणसिंह—ये यदुवंशी क्षत्रिय थे। इनका जन्मस्थान आगरा था। सन् १८२६ ई० में इनका जन्म हुआ था। पाँच वर्ष की अवस्था में निधिवत् इन्हें विद्यारम्भ कराया गया था। नागरी अक्षरों के लिखने का पूर्ण अभ्यास हो जाने पर इन्हें संस्कृत और फ़ारसी की शिक्षा दी जाने लगी। ये तीव्रबुद्धि के तो थे ही इसी कारण १२ वर्ष की अवस्था में इन्होंने अवस्था के अनुसार अच्छी शिक्षा प्राप्त कर ली। बारह वर्ष की अवस्था में इनका यज्ञोपवीत संस्कार हुआ, तदनन्तर अंग्रेज़ी पढ़ने के लिये आप आगरा कालेज में बैठाये गये। उस समय केवल सीनीयर और जूनीयर नाम की दो परीक्षाएँ होती थीं। इन्होंने सीनीयर परीक्षा पास की। कालेज में अंग्रेज़ी के साथ इनकी दूसरी भाषा संस्कृत थी और घर पर हिन्दू अरबी तथा फ़ारसी ये पढ़ते थे। कालेज छोड़ने पर इन्होंने बङ्गला भाषा का भी अच्छा अभ्यास कर लिया था। इस प्रकार २४ वर्ष की अवस्था में कई एक भाषाओं में इन्होंने अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली थी।

राजा लक्ष्मणसिंह कालेज से निकल कर पश्चिमोत्तर प्रदेश के छोटे लाट के दफ्तर में १०० रुपये मासिक वेतन पर अनुवादक नियत हुए। तीन वर्ष के बाद इनका वेतन १५० हुआ और तब से ये सदर बोर्ड के दफ्तर में काम करने लगे। इसके दो वर्ष के पश्चात् इन्हें इटावे की तहसीलदारी मिली। उस समय ह्यूम साहब इटावे के कलक्टर थे, वे राजा साहब के गुणों से अत्यन्त प्रसन्न रहा करते थे। ह्यूम साहब

की सहायता से राजा साहब ने इटावे में ह्यूम हाई स्कूल स्थापित किया जो अब तक विद्यमान है तथा उससे अच्छे अच्छे योग्य विद्यार्थी प्रति वर्ष निकलते हैं। इनके कार्यों से प्रसन्न हो कर ह्यूम साहब ने इनकी बड़ी तारीफ लिख कर गवर्नमेंट को भेजी। गवर्नमेंट ने इन्हें डिप्टी कलक्टर बना दिया और इटावे से बाँदे भेज दिया।

राजा साहब बाँदे से छुट्टी ले कर अपने घर आगरे जा रहे थे उसी समय बलवा हो गया। जब आप इटावे के पास पहुँचे तब सुना कि यहाँ भी बड़ा उपद्रव मचा हुआ है। आप शीघ्र ही ह्यूम साहब के पास पहुँचे और उनके कहने से अनेक अङ्गरेज़ बालक तथा मेमों को सकुशल आगरे के क़िले में पहुँचा दिया। घर पर आ कर इन्होंने कतिपय राजपूतों को एकत्रित किया, और उन्हें ले कर ह्यूम साहब की रक्षा के लिये इटावे जाने ही वाले थे कि वे स्वयं इनके घर पहुँच गये। राजा साहब ने उनको अपनी ही रक्षा में रखा और जब दिल्ली पर अधिकार कर के सरकारी फौज ने इटावे पर धावा किया, तब राजा साहब ने उसका साथ दिया और उस लड़ाई में सम्मिलित भी रहे।

इसके लिये सरकार ने इन्हें सरका का इलाक़ा माफ़ी में देना चाहा। परन्तु इन्होंने नम्रता पूर्वक यह कह कर अस्वीकार कर दिया कि मैंने जो कुछ किया सो जातीय धर्म के अनुसार किया, इसके लिये पुरस्कार की कोई आवश्यकता नहीं है। तब इन्हें पहले दरजे की डिप्टी कलक्टरी दी गयी और ८०० रु० मासिक वेतन कर के ये बुलन्द शहर बदल दिये गये। यहाँ इन्होंने बीस वर्ष काम किया और सन् १८८९ ई० में पेंशन ले कर ये अपनी जन्मभूमि आगरे में रहने लगे। सन् १८७७ ई० के प्रथम दिल्ली दरबार के समय इन्हें गवर्नमेंट से "राजा" की उपाधि मिली।

डिप्टी कलक्टरी के कामों से यद्यपि इन्हें बहुत कम समय मिलता था, तथापि जो कुछ भी समय इन्हें मिलता था, उस समय में ये हिन्दी की सेवा किया करते थे। इन्होंने गवर्नमेंट की बहुतेरी पुस्तकों का अंग्रेज़ी और फ़ारसी से हिन्दी में अनुवाद किया, जिनमें से ताज़ीरात हिन्द का अनुवाद दण्डसंग्रह है। इन्होंने बुलन्द शहर का एक इतिहास भी लिखा है जो हिन्दी उर्दू और अंग्रेज़ी तीनों भाषाओं में छपा है। हिन्दी जगत् में आपके नाम अमर करने वाले शाकुन्तल, रघुवंश और मेघदूत के भाषानुवाद हैं। इन पुस्तकों के अनुवाद में जो राजा साहब ने अपनी विद्वत्ता दिखलायी है वह प्रसिद्ध ही है। भारतवर्ष तथा यूरप के विद्वानों ने भी आपको हिन्दी का अच्छा ज्ञाता और कवि माना है। इनके लिखने में यह खूबी है कि गद्य की कौन कहे पद्य में भी उर्दू या फ़ारसी का एक भी शब्द नहीं आने पाता। इनका देहान्त ६४ वर्ष की अवस्था में सन् १८९६ ई० में हुआ।

लक्ष्मणसेन=वङ्गीय कौलीन्य प्रथा के प्रवर्तक प्रसिद्ध राजा बल्लालसेन के पुत्र। लक्ष्मणसेन भी एक प्रसिद्ध दिग्विजयी राजा थे। इन्होंने वाराणसी, प्रयाग तथा धर्मक्षेत्र में अपना विजय स्तम्भ स्थापित किया था। आज भी मिथिला में लक्ष्मणसेन का अब्द प्रचलित है। लक्ष्मणसेन के प्रधान मन्त्री हलायुध ने "ब्राह्मणसर्वस्व" नामक स्मृति ग्रन्थ की रचना की। वङ्ग के विख्यात कवि जयदेव ने इन्हींकी सभा में रह कर अपने प्रसिद्ध गीतगोविन्द काव्य का निर्माण किया था। उमापतिधर शरण और गोवर्द्धनाचार्य ये तीन और भी लक्ष्मणसेन की सभा में वर्तमान थे। राजेन्द्रलाल मित्र कहते हैं कि लक्ष्मणसेन के पिता का नाम बल्लालसेन और पितामह का नाम विजयसेन था। उनके मत से लक्ष्मण से ११०१ ई० में राज्य करते थे। इनके प्रपौत्र अशोकसेन अथवा शूरसेन वङ्ग के शेष राजा थे। इनका दूसरा नाम लक्ष्मणीया था। ये १२०३ ई० में बख्तियार खिलजी के द्वारा परास्त हुए थे।

लक्ष्मी=सृष्टि के पहले रासमण्डलस्थ परमात्मा श्रीकृष्ण के वाम भाग से लक्ष्मी की उत्पत्ति हुई थी। ये देवी बड़ी सुन्दरी थीं। ये उत्पन्न होते ही ईश्वर की इच्छा से दो रूपों में विभक्त हुईं। ये दोनों मूर्तियाँ; अवस्था, आकार, भूषण, सुन्दरता आदि सभी बातों में समान

थीं। एक मूर्ति का नाम पड़ा लक्ष्मी और दूसरी मूर्ति का नाम राधिका पड़ा। लक्ष्मी श्रीकृष्ण के वाम भाग से उत्पन्न हुई थीं, और राधिका भगवान् के दक्षिण भाग से उत्पन्न हुई थीं। इन दोनों मूर्तियों की अभिलाषपूर्ति के लिये भगवान् ने भी दक्षिणांश से द्विभुज और वामांश से चतुर्भुज मूर्ति धारण की। द्विभुज मूर्ति राधाकान्त और चतुर्भुज मूर्ति नारायण हुई। श्रीकृष्ण तो राधा तथा गोप गोपियों को ले कर वहीं रह गये और नारायण लक्ष्मी को ले कर वैकुण्ठ चले गये। वैकुण्ठ में ही उनका रहना निश्चित हुआ। लक्ष्मी जी नारायण को अपने वश में कर के सब रमणियों में प्रधान हो गयीं। ये देवी लक्ष्मी, स्वर्ग में इन्द्र की सम्पत्तिरूपिणी स्वर्गलक्ष्मी के रूप से, पाताल और मर्त्य के राजाओं के पास राजलक्ष्मी के रूप से, गृहस्थों के यहाँ गृहलक्ष्मी के रूप से, चन्द्र, सूर्य, अलङ्कार, रत्न, फल, महारानी, अन्न, वस्त्र, देवप्रतिमा, मङ्गल, घट, हीरा, चन्दन, नूतन मेघ आदि में शोभारूप से वर्तमान रहती हैं। लक्ष्मी देवी ही शोभा का आधार हैं। जिस स्थान पर लक्ष्मी नहीं हैं वह स्थान शोभाशून्य है।

एक बार महर्षि दुर्वासा वैकुण्ठ से कैलास जा रहे थे। देवराज इन्द्र ने उन्हें बड़े आदर के साथ प्रणाम किया। दुर्वासा ने प्रसन्न हो कर देवराज को पारिजात पुष्प की भेंट की। इन्द्र ने अहङ्कार के कारण उस माला को ऐरावत के सिर पर रख दिया और ऐरावत ने उस माला को भूमि पर फेंक दिया। यह देख दुर्वासा क्रुद्ध हुए और उन्होंने इन्द्र को शाप दिया कि—तुम शीघ्र ही लक्ष्मीभ्रष्ट हो जाओ। मैं और भी कहता हूँ कि जिसके मस्तक पर यह माला रखी गयी है, उसकी आज से सर्व प्रथम पूजा होगी। दुर्वासा के शाप से स्वर्गलक्ष्मी भ्रष्ट हो गयी। तब इन्द्र आदि देवगण ब्रह्मा की शरण में गये। इन्द्र आदि देवों को ले कर ब्रह्मा वैकुण्ठ में श्रीनारायण के समीप गये। ब्रह्मा ने दुर्वासा के शाप से देवों की दुर्दशा का हाल विष्णु से कहा—विष्णु ने देवताओं को आश्वासन देते हुए कहा—देवगण! तुम कुछ भी चिन्ता मत करो। बहुत शीघ्र ही तुम लोगों को ऐश्वर्यशालिनी लक्ष्मी प्राप्त होगी। तदनन्तर विष्णु ने कहाँ कहाँ लक्ष्मी रहती हैं और कहाँ कहाँ नहीं रहती हैं इसका उपदेश दिया देवताओं को यह कह कर विष्णु ने लक्ष्मी को समुद्र में जन्म ग्रहण करने की आज्ञा दी और ब्रह्मा से कहा—समुद्र मन्थन कर के आप लोग लक्ष्मी का उद्धार करने का प्रयत्न करें। तदनन्तर देवों ने समुद्र मन्थन किया और वहाँ से लक्ष्मी का उद्धार किया। (ब्रह्मवैवर्त)

लक्ष्मीधर=भास्कराचार्य के पुत्र। ये सर्वशास्त्रज्ञ तथा ब्रह्मयोगविशारद थे। पाटन के राजा जैत्रपाल ने उनके पाण्डित्य का परिचय पा कर उन्हें अपने यहाँ बुला लिया।

लक्ष्मीबाई=मध्यप्रदेश के अन्तर्गत झाँसी के अधिपति परलोकगत गङ्गाधर राव की विधवा रानी। राजा गङ्गाधर राव की मृत्यु होने पर उस समय के भारत के बड़े लाट डलहौसी ने इस राज्य को गवर्नमेंट के राज्य में मिला दिया। इससे लक्ष्मीबाई बहुत अप्रसन्न हुई और सिपाहीविद्रोह के समय इसने विद्रोही सैन्य के साथ मिल कर अंग्रेज़ी सेना के साथ घोर युद्ध किया। अंग्रेज़ सेनापति सर हिरोज इस वीर रमणी की वीरता देख कर आश्चर्यित हुए थे। सन् १८५८ ई० में यह वीर रमणी गवालियर से थोड़ी दूर पर अंग्रेज़ सेना के साथ अत्यन्त घोर युद्ध कर के परास्त हुई। युद्धक्षेत्र से लौटने के समय एक अंग्रेज़ की गोली लग जाने के कारण इसने शरीर त्याग किया।

लटकन मिश्र=भावप्रकाश नामक वैद्यक ग्रन्थ के सङ्कलनकर्ता भाव मिश्र के ये पिता थे।

ललनदास ब्राह्मण=ये डलमऊ के रहने वाले ब्राह्मण थे। सं० १८३१ में ये उत्पन्न हुए थे। ये बड़े महात्मा हो गये हैं। इनकी शान्त रस की कविता उत्तम है।

ललितादित्य=काश्मीर के एक राजा का नाम। काश्मीरराज तारापीड़ की मृत्यु के अनन्तर ये काश्मीर के सिंहासन पर विराजमान हुए थे। जिस समय राजा तारापीड़ का परलोकवास हुआ, उस समय ललितादित्य काश्मीर के

अन्तर्गत काश्मीर के एक शासक थे। ललितादित्य को स्वप्न में भी यह विश्वास नहीं था कि मुझे समस्त काश्मीर के शासन का भार मिलेगा।

काश्मीर के सिंहासन पर बैठ कर ललितादित्य ने समस्त जम्बू द्वीप पर अपना अधिकार कर लिया। दिग्विजय के लिये जब वे युद्ध यात्रा करते थे तब भीत हो कर शत्रुदल उनके अधीन हो जाता था।

ललितादित्य ने कान्यकुब्जराज यशोवर्मा पर आक्रमण किया था। अगणित सेना एकत्रित कर के यशोवर्मा युद्धक्षेत्र में अवतीर्ण हुए। परन्तु यशोवर्मा की अगणित सेना राजा ललितादित्य की प्रतापाग्नि में भस्म हो गयी। अन्त में यशोवर्मा दूसरा कोई उपाय न देख रणक्षेत्र से भाग गये। इन्हीं कन्नौजपति राजा यशोवर्मा की सभा में भवभूति आदि महाकवि थे। कन्नौज पर अधिकार कर के राजा ललितादित्य ने पूर्व की ओर की दिग्विजय यात्रा की। इसी प्रकार इन्होंने दिग्विजय यात्रा कर के अपनी प्रभुता विस्तृत कर दी। दिग्विजय में इन्हें जो धन प्राप्त हुआ था। उससे इन्होंने कई मन्दिर अग्रहार आदि बनवाये थे। इन्होंने परिहासपुर नामक एक नगर बसाया था और उसमें इन्द्रध्वज नाम का एक कीर्तिस्तम्भ प्रतिष्ठित किया था, वह स्तम्भ पत्थर का था और ५४ फ़ीट ऊँचा था। इन्होंने ३६ वर्ष ७ महीने ११ दिन राज्य किया था। (राजतरङ्गिणी)

ललितापीड=काश्मीर के एक राजा का नाम। ये राजा जयापीड की रानी दुर्गा के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। ललितापीड बड़े ही इन्द्रियपरायण थे, राजकार्य की ओर उनका कुछ भी ध्यान नहीं था। इनके शासन समय में राज्य में दुराचार की वृद्धि हुई थी और वेश्याओं की प्रधानता हो गयी थी। इनके नारकी पिता जयापीड ने पापकर्मों के द्वारा जो अर्थोपार्जन किया था, इस समय पुत्र ललितापीड उसका उचित व्यय करने लगा। धूर्त दुराचारियों ने राजा को वेश्या विद्या में निपुण कर दिया। वीर अथवा पण्डितों का आदर करना वे भूल गये। भँडुओं और मसखरों ही का उस दरबार में आदर होता था। ललितापीड इतना दुर्वृत्त हो गया कि एक मुहूर्त भी स्त्रियों को बिना देखे उसे चैन नहीं पड़ता था। जो राजा सर्वदा दिग्विजय में प्रवृत्त रह कर अपने राज्य बढ़ाने में लगे रहते थे ललितापीड उन्हें मूर्ख कह कर हँसता था। उसके पिता राज्य को जीत कर जितेन्द्रियता पूर्वक लौट आये थे यह सुन कर वह अपने पिता को मूर्ख कहा करता था। वह वेश्याओं को साथ ले कर सिंहासन पर बैठता था। यदि कोई मन्त्री उसे सदुपदेश देता तो वह अपने सहचर गुण्डों से उसकी हँसी कराता था। रण्डियों के पैर पोंछ कर ललितापीड गुण्डों के द्वारा माननीय मन्त्रियों को पहनवा दिया करता था और स्वयं उससे प्रसन्न होता था। इससे दुःखित हो कर स्वाभिमानी मन्त्री मनोरथ ने मन्त्रित्व पद छोड़ दिया था। इस राजा ने ब्राह्मणों को दी हुई भूमि छीन ली थी। इस दुराचारी राजा का शासन काश्मीर में १२ वर्ष तक रहा। (राजतरङ्गिणी)

लल्लाचार्य=भारतीय एक प्राचीन ज्योतिषी। इनका सिद्धान्त आर्य ज्योतिष में बड़े आदर से देखा जाता है।

लव=(१) अयोध्याधिपति राजा रामचन्द्र के ज्येष्ठ पुत्र। रामचन्द्र ने उत्तरकोशल के अन्तर्गत श्रावस्ती नगरी निर्माण कर के वहाँ का इन्हें अधिपति बनाया था।

(२) काश्मीर के एक राजा। काश्मीर के इतिहास राजतरङ्गिणी में मध्यकालीन कतिपय राजाओं का नाम अज्ञात है। उन्हीं अज्ञातनामा राजाओं के राज्य काल के अनन्तर लव काश्मीर के सिंहासन पर बैठे। लव अत्यन्त प्रतापी तथा जेता राजा थे। इन्होंने लोलोर नामक एक गाँव बसाया था। उस गाँव में ८४ लाख पत्थर की अटारियाँ बनवायी गयी थीं। लेवार नामक अग्रहार ब्राह्मण को दे कर इन्होंने स्वर्ग के लिये प्रस्थान किया। ये काश्मीरराज के वंश के नहीं थे।

लवणासुर=यह मधु राक्षस का पुत्र था। यह राक्षस रावण की मौसी कुम्भीनसी के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। पितृदत्त शूल के प्रभाव से यह दानव देव और मनुष्यों से अजेय हो गया था। प्रसिद्ध

राजा मान्धाता को इसने मार डाला था। महर्षिगण इसके अत्याचार से पीड़ित हो कर अयोध्याधिपति महाराज रामचन्द्र की शरण में गये। रामचन्द्र ने लवणासुर को दमन करने के लिये महर्षियों के साथ शत्रुघ्न को भेजा। वीर शत्रुघ्न ने लवणासुर का वध किया।

लाखनसेन=जयसलमेर के एक राजा का नाम। इनके पिता का नाम कर्णसी था। पिता की मृत्यु होने पर लाखनसेन सन् १२७२ ई० में जयसलमेर के राज्यसिंहासन पर विराजे। ये बड़े सीधे सादे थे। इनको सर्वदा एक प्रकार का उन्माद रोग रहा करता था। एक दिन माघ के महीने में गीदड़ बहुत ज़ोर से चिल्ला रहे थे। लाखनसेन ने सभासदों को बुला कर कहा—कि, ये क्यों चिल्ला रहे हैं। एक सभासद् ने उत्तर दिया कि जाड़े से व्याकुल हो कर ये चिल्लाते हैं। लाखनसेन ने उत्तर दिया कि इनको वस्त्र बनवा दिये जायँ। कई दिनों के पीछे राजा ने पुनः उनका चिल्लाना सुना। तब राजा ने अपने उसी सभासद् को बुला कर पूछा—अब ये क्यों चिल्लाते हैं क्या इनके कपड़े अभी तक नहीं बनवाये गये। सभासद् ने उत्तर दिया कपड़े तो बन गये अन्नदाता। लाखनसेन बोले, तब ये शोर क्यों मचा रहे हैं। अच्छा इनको रहने के लिये मकान बनवा दिये जायँ। इतिहास लेखक लिखते हैं कि राजकर्मचारियों ने शीघ्र ही राजा की इस आज्ञा का पालन किया। सोढा जाति की रानी इन पर अपनी विशेष प्रभुता रखती थीं, रानी ने अपने पिता की राजधानी अमरकोट से बहुत से अपने कुटुम्बी बुलाये थे और उनके हाथ में राज्य का एक एक काम सौंप दिया था। परन्तु एक दिन बिना कारण ही लाखनसेन ने उन सभी को मार डाला। इतिहास में लिखा है कि इस निर्बोध राजा ने चार वर्ष तक राज्य किया था। इसके पुत्र का नाम पुण्यपाल था।

(टाड्स राजस्थान)

लाल कवि=(१) ये भाषा के कवि प्राचीन लाल कवि नाम से प्रसिद्ध हैं। ये राजा छत्रसाल हाड़ा कोटे वाले के दरबार में थे। जिस समय दाराशिकोह और औरङ्गज़ेब बादशाही के लिये आपस में फतुहा में लड़ रहे थे, और जिस युद्ध में राजा छत्रसाल मारे गये हैं उस युद्ध में ये कवि उपस्थित थे। इन्होंने नायिकाभेद का "विष्णुविलास" नामक एक भाषा का ग्रन्थ भी बनाया है।

(२) इनका नाम बिहारीलाल था। ये ब्राह्मण थे और टिकमापुर के रहने वाले थे। इनका छाप नाम "लाल कवि" था। ये सं० १८८५ में उत्पन्न हुए थे। ये महाकवि मतिराम के वंशधरों में से थे। ये ही अपने वंश के अन्तिम महाकवि कहे जा सकते हैं।

(३) ये कवि वन्दी थे और बनारस के रहने वाले थे। ये काशीनरेश राजा चेतसिंह के दरबार में रहते थे। नायिकाभेद "आनन्दरस" और सतसई की टीका "लालचन्द्रिका" नाम के दो ग्रन्थ इन्होंने बनाये हैं।

(४) ये भाषा के कवि थे और संस्कृत भाषा भी जानते थे। इन्होंने चाणक्यनीति का भाषान्तर किया है।

(५) इनका पूरा नाम लल्लूलाल जी था। ये गुजराती थे परन्तु आगरे में रहते थे। सं० १८६२ में ये उत्पन्न हुए थे। कहते हैं कि आधुनिक हिन्दी के यही आचार्य थे। वे इस बात के प्रमाण में इनका बनाया हुआ प्रेम-सागर नामक ग्रन्थ उपस्थित करते हैं। जो हो, इन्होंने "सभाविलास, माधवविलास, प्रेमसागर वार्तिक राजनीति" आदि कई ग्रन्थ बनाये हैं।

(शिवसिंहसरोज)

लालगिरिधर=ये भाषा के कवि और बैसवारे के रहने वाले ब्राह्मण थे। सं० १८०७ में ये उत्पन्न हुए थे। इन्होंने नायिकाभेद का एक ग्रन्थ बनाया है जिसे भाषा के कवि उत्तम समझते हैं।

(शिवसिंहसरोज)

लालचन्द कवि=ये भाषा के कवि थे। कवित्त और कुण्डलिया छन्दों में इनकी कविता बहुत सुन्दर हुई है। इनकी कविता प्रायः कूटमय होती थी।

लालमुकुन्द कवि=ये भाषा के कवि थे। सं० १७७४ में ये उत्पन्न हुए थे। ये कवि सरस तथा मधुर

कविता करते थे। इनकी कविता प्रायः शृङ्गार ही की पायी जाती है।

लाला पाठक=ये भाषा के कवि थे और रुकुमनगर के रहने वाले थे। इनका जन्म सं० १८३१ में हुआ था। इन्होंने "शालिहोत्र" नामक भाषा की एक उत्तम पुस्तक बनायी है।

लिखितसंहिता=एक स्मृति ग्रन्थ। महर्षि लिखित इस संहिता के कर्ता हैं। इस संहिता में ९२ श्लोक हैं। लिखितसंहिता के मत से पोखरा खुदवाना और ब्राह्मणों के लिये अग्निहोत्र करना बड़े पुण्य के कार्य हैं। ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य जो कोई जलदान करेगा, उसे मुक्ति अवश्य मिलेगी यह महर्षि लिखित का उपदेश है। इस संहिता के मत से काशी में वास करना तथा गया में पिण्डदान करना बड़ा उत्तम है। महर्षि लिखित कहते हैं कि जो जो कार्य अपने को बुरे मालूम पड़ें उनके प्रायश्चित्त के लिये एक सौ आठ बार गायत्री का जप करने से उसका कल्याण होगा।

लिङ्गपुराण=यह पुराण अष्टादश पुराणों में पाँचवाँ पुराण है। शिवमाहात्म्य तथा लिङ्गपूजा का प्रचार करना ही इस पुराण का उद्देश्य है। इस पुराण के दो भाग हैं पूर्व और उत्तर। पूर्व भाग में सृष्टिविवरण, लिङ्ग की उत्पत्ति और पूजा-प्रसङ्ग, दक्षयज्ञ, मदनभस्म, शिवविवाह, वराह-चरित्र, नृसिंहचरित्र, सूर्य और सोमवंश का विवरण है। उत्तर भाग में विष्णुमाहात्म्य, शिवमाहात्म्य, स्नान-दानादिमाहात्म्य और गायत्रीमाहात्म्य आदि विषय लिखे गये हैं। इस पुराण में अष्टाविंशति अवतारों की कथा और श्रीकृष्ण के अवतार पर्यन्त राजवंश का वर्णन लिखा है। इस पुराण के मत से प्रलय के पश्चात् अग्निमय शिवलिङ्ग की उत्पत्ति होती है और उसी शिवलिङ्ग से वेदादि शास्त्र उत्पन्न होते हैं। ब्रह्मा विष्णु आदि देवगण इसी शिवलिङ्ग के तेज से ही तेजस्वी हुए हैं। बहुतों का विश्वास है कि इसी पुराण के अनुसार ही इस देश में लिङ्गपूजा और मूर्तिपूजा की पद्धति प्रचलित है।

लिङ्गायत=शैवसम्प्रदाय की एक शाखा का नाम। इस सम्प्रदाय के लोग लिङ्गावत, लिङ्गावन्त, लिङ्गधारी तथा जङ्गम नाम से परिचित हैं। खीष्टीय ग्यारहवीं सदी में दक्षिण भारत में वासव नामक एक शैव उत्पन्न हुआ था और उसीने यह सम्प्रदाय चलाया है। वासव श्रीशैलाधिपति के मन्त्री थे। वासव ने लिङ्गायत सम्प्रदाय को प्रतिष्ठित करने के लिये बड़ा परिश्रम किया था। मदुरा के जैन मन्दिर की चारदिवारी पर जैनों ने जो मूर्तियाँ स्थापित की थीं वासव ने उनको तुड़वा डाला। मुसलमानों के भारत आक्रमण करने के पहले यहाँ लिङ्गायत सम्प्रदाय की प्रतिष्ठा हो गयी थी इसके प्रमाण पाये जाते हैं। महमूद ग़ज़नी ने जिस समय भारत पर आक्रमण किया था, उस समय भारत के भिन्न भिन्न स्थानों में बारह शिवलिङ्ग की प्रतिष्ठा हो गयी थी। तैलङ्ग भाषा में वासवेश्वर पुराण तथा प्रभुलिङ्ग-लीला आदि ग्रन्थ इस सम्प्रदाय के बने हैं। लिङ्गायत संन्यासी "घेदार" अथवा "प्रभु" कहे जाते हैं।

(भारतवर्षीय इतिहास)

लूनकरण=बीकानेर राज्य के प्रतिष्ठाता बीका जी के ये पुत्र थे। बीका जी के दो पुत्र थे। लूनकरण और गड़सी। बीका जी के परलोकवास होने पर राजाओं की रीति के अनुसार उनके बड़े पुत्र सिंहासन पर बैठे। राजा लूनकरण ने अपने राज्य की सीमा बढ़ाने के लिये भाटियों के अधिकृत कितने ही देशों पर अपना अधिकार कर लिया था। इनके बड़े पुत्र ने एक स्वतन्त्र राज्य की स्थापना की और वह पिता की आज्ञा से वहीं जा कर रहने लगा। लूनकरण की मृत्यु सं० १५६६ में हुई।

(टाड्स राजस्थान)

लेखराज कवि=ये भाषा के कवि थे। गँधौली ज़िला सीतापुर के रहने वाले थे। "रसरत्नाकर, लघुभूषण अलङ्कार, गङ्गाभूषण" ये तीन ग्रन्थ इन्होंने बनाये हैं।

लोकनाथ ब्रह्मचारी=इन ब्रह्मचारी जी का जन्म पश्चिम बङ्ग में ब्राह्मण कुल में हुआ था। ये दस वर्ष की अवस्था तक गाँव की पाठशाला में पढ़ कर संस्कृत पढ़ने के लिये गुरुगृह में गये। इसी समय इनका यज्ञोपवीत संस्कार हुआ

था। इनके दीक्षा और शिक्षा गुरु का नाम भगवान्चन्द्र गांगूली था। भगवान्चन्द्र षड्-दर्शन के अद्वितीय पण्डित थे।

यज्ञोपवीत होने के कई वर्षों के बाद लोकनाथ ने गुरु के साथ अपनी जन्मभूमि का त्याग किया। वेणीमाधव वन्द्योपाध्याय नामक एक और व्यक्ति उनके साथी हो गये थे। भगवान् दोनों शिष्यों को साथ ले कर कालीघाट पहुँचे। उस समय कालीघाट जङ्गल था। अनेक साधु संन्यासी उस वन में योगसाधन करते थे। कालीघाट में रह कर भगवान्चन्द्र अपने दोनों शिष्यों द्वारा कठिन ब्रह्मचर्य व्रत का अनुष्ठान कराने लगे।

कहा जाता है कि लोकनाथ ब्रह्मचर्य की अवस्था में अपनी किसी सहचरी को स्मरण कर के ब्रह्मचर्य का फल नष्ट करता था—यह जान कर भगवान्चन्द्र दोनों शिष्यों को साथ ले कर घर लौट आये और जहाँ लोकनाथ की सहचरी रहती थी वहाँ रहने लगे। भगवान्चन्द्र ने पता लगा लिया कि लोकनाथ की सहचरी बालविधवा है और उसने अपना चरित्र कलङ्कित कर दिया है। भगवान्चन्द्र ने उस बालविधवा से लोकनाथ का मनोरथ पूर्ण करने के लिये कहा। उसने भगवान्चन्द्र का कहना मान लिया। जब लोकनाथ की स्त्री से तृप्ति हो गयी तब उन दोनों शिष्यों को ले कर भगवान्चन्द्र वहाँ से चले गये।

गुरु ने अनेक प्रकार के व्रत कर के अनेक शिष्यों का मनःसंयम कराया था। बहुत दिनों तक इस प्रकार व्रत करने से दोनों ब्रह्मचारी जातिस्मर हो गये थे। उन्होंने कहा था मैं पूर्वजन्म में वर्द्धमान ज़िला के वेडु नामक गाँव में "सीतानाथ वन्द्योपाध्याय" नाम का मनुष्य था। जाँच करने पर उनकी बातें सत्य मालूम हुई थीं।

भगवान्चन्द्र, लोकनाथ और वेणीमाधव को साथ में ले कर अनेक स्थानों में घूमते हुए अन्त में काशी आये। काशी में मणिकर्णिका घाट पर भगवान्चन्द्र ने योगसाधन द्वारा शरीर त्याग किया। शरीर त्याग करने के पहले भगवान्चन्द्र ने अपने दोनों शिष्यों को तैलङ्ग स्वामी को सौंप दिया था।

लोकनाथ और वेणीमाधव स्वामी जी के निकट कुछ दिनों तक योगसाधन सीख कर हिमालय के किसी निर्जन स्थान में योगसाधन करने के लिये चले गये। वहाँ बहुत दिनों तक योगसाधन कर के वे सिद्ध हो गये। दोनों महापुरुष पर्वतशृङ्ग से पहले चन्द्रनाथ गये। वेणीमाधव चन्द्रनाथ से कामाख्या की ओर चले गये और लोकनाथ बारदी गाँव में उतरे।

ढाका ज़िला के नारायणगंज के अन्तर्गत मेघना नदी के तीर बारदी गाँव है। बारदी में आ कर वे रहे थे इस कारण लोग उन्हें "बारदीर ब्रह्मचारी जी" कहते हैं।

पहले ही कहा गया है कि लोकनाथ ब्रह्मचारी जातिस्मर थे और इसके अतिरिक्त वे अपने शरीर से जीवात्मा को बाहर निकाल सकते थे। प्राणियों के मन के भाव वे समझ जाते थे। अन्त में क्षय रोग से इनकी मृत्यु हुई।

लोकायत दर्शन=चार्वाक दर्शन का दूसरा नाम। यह दर्शन ईश्वर नहीं मानता, इस कारण इसका नाम लोकायत दर्शन है।

लोने कवि=ये बुन्देलखण्ड के रहने वाले वन्दीजन थे। ये कवि सं० १८७६ में उत्पन्न हुए थे। शृङ्गार रस में इनकी सुन्दर कविता है।

लोनेसिंह=ये भाषा के कवि थे और बाछिल मितौली ज़िला खीरी के रहने वाले थे। ये बड़े कवि और साहसी एक क्षत्रिय थे। इन्होंने भागवत के दशम स्कन्ध का नाना छन्दों में भाषा किया है। ये एक लड़ाई में मारे गये।

(शिवसिंहसरोज)

लोपामुद्रा=महर्षि अगस्त्य की पत्नी। (देखो अगस्त्य)

लोमश=विख्यात ब्रह्मर्षि। एक समय इन ब्रह्मर्षि ने इन्द्र की सभा में जा कर देखा कि अर्जुन इन्द्र के आसन पर बैठा है। यह देख उनके मन में शङ्का हुई। देवराज इन्द्र ने ब्रह्मर्षि के हृदय का भाव जान कर कहा—महाराज! आपके मन में जो प्रश्न उठा है उसका उत्तर सुनिये। यह अर्जुन केवल मनुष्य ही नहीं है, इसमें देवत्व भी है। यह हमारे औरस और कुन्ती के गर्भ से उत्पन्न

हुआ है । आश्चर्य है कि आप इस पुरातन ऋषि को नहीं जानते । हृषीकेश और नारायण ये दोनों नरनारायण के नाम से त्रिलोक में प्रसिद्ध हैं । कार्य के लिये ये पृथिवी पर अवतीर्ण हुए हैं । बदरी आश्रम में इनका निवास स्थान है । यह कह कर अर्जुन का समाचार युधिष्ठिर से कहने के लिये इन्द्र ने ब्रह्मर्षि को युधिष्ठिर के पास काम्यक वन में भेजा ।

लोमहर्षण=प्रसिद्ध प्राचीन ऋषि । इनके पिता का नाम सूत था । सूत वेदव्यास के शिष्य थे । कल्किपुराण में लिखा है कि परशुराम ने इन्हें मार डाला था ।

व

वक=काश्मीर के एक राजा का नाम । इनके पिता का नाम मिहिरकुल था । मिहिरकुल के परलोक वास होने पर काश्मीर के सिंहासन पर वक का अभिषेक हुआ । राज्य पाने के थोड़े ही दिनों के बाद वक ने प्रजाओं का चित्त प्रसन्न कर लिया । इनके पिता के राज्यकाल में प्रजा को जो दुःख हुआ था, उस दुःख को प्रजा इनको पा कर भूल गयी । इनका राज्य धर्म और न्याय पर स्थापित हुआ । इन्होंने वकेश्वर नामक शिव की प्रतिष्ठा की थी । वकवती नाम की एक नदी और लवणोत्संस नाम का एक नगर बनवाया था । इन्होंने ६३ वर्ष १३ दिन काश्मीर का राज्य किया था । एक दिन सन्ध्या के समय भट्टा नाम की एक योगिनी सुन्दर वेष धारण कर के राजा वक के पास पहुँची और उन्हें अपने वचनों से मोहित करने के लिये उसने यागोत्सव देखने का निमन्त्रण दिया । राजा अपने पुत्र पौत्रों को साथ ले कर दूसरे दिन प्रातःकाल उस योगिनी के आश्रम में गये । योगिनी ने उन सभी का बलिदान किया ।

(राजतरङ्गिणी)

वकदाल्भ्य=एक महातपा मुनि । इन्होंने जिस स्थान पर तपस्या की थी वह स्थान बड़ा ही पवित्र तथा शान्तिप्रद है । वहाँ जाने से अन्य जाति के भी लोग ब्राह्मण हो जाते हैं । उनका आश्रम धृतराष्ट्र के राज्य में था ।

एक समय मुनियों ने राजा विश्वजित् के लिये बारह वर्ष में समाप्त होने वाला यज्ञ किया था । उस यज्ञ में पाञ्चाल देश के मुनि वकदाल्भ्य भी गये हुए थे । मुनि को उस यज्ञ में बड़े बलिष्ठ २१ बैल दक्षिणा में मिले । मुनि ने अन्य मुनियों से कहा—तुम लोग इन बैलों को ले लो । मैं जा कर राजा धृतराष्ट्र से दूसरे बैल ले लूँगा । मुनि ने राजा धृतराष्ट्र के पास पहुँच कर बैल माँगे । राजा ने क्रोध कर के कहा, ब्राह्मणाधम ! देखो, हमारी गायें मरी पड़ी हैं चाहो इन्हींमें से ले जाओ । इससे वकदाल्भ्य बड़े बिगड़े उन्होंने कहा—देखो तो इस मूर्ख राजा को, मुझे गाली देता है । अच्छा अब मैं इसका राज्य नष्ट किये देता हूँ ।

वकदाल्भ्य उन्हीं मरी गायों को ले गये और उन्हींका मांस काट काट कर हवन करने लगे । यथासमय यह भयङ्कर यज्ञ समाप्त हुआ । उधर धृतराष्ट्र का राज्य नष्ट होने लगा । तब राजा धृतराष्ट्र मुनि के शरण में गये । मुनि ने क्षमा कर दिया ।

(महाभारत)

वक्राङ्घ्रि संग्रामदेव=ये काश्मीरराज यशस्कर के पुत्र थे । राजा यशस्कर जब बहुत बीमार पड़े तब उन्होंने पहले अपने पुत्र को छोड़ कर अपने चाचा के नाती वर्णट को राज्य दिया था । परन्तु यशस्कर के जीते-जी जब वर्णट मन माना करने लगा तब मन्त्रियों की सलाह से यशस्कर ने वर्णट को अलग कर के अपने पुत्र को राज्य दिया ।

राजा यशस्कर के मर जाने पर संग्रामदेव की अवस्था कम होने के कारण उनकी पितामही अभिभाविका हो गयी । पर्वगुप्त उन दिनों राज्य लेने के लिये बहुत व्याकुल हो रहा था । उसने एक दिन अवसर देख कर राजभवन पर चढ़ाई की और संग्रामदेव को मार डाला तथा उनके गले में पत्थर बँधवा कर उन्हें किसी नदी में फेंकवा दिया । इनके पैर टेढ़े थे इस कारण इनका नाम वक्राङ्घ्रि पड़ गया था, इन्होंने ६ महीने १ दिन राज्य किया था ।

(राजतरङ्गिणी)

बख्तसिंह=जोधपुर के राजा अभयसिंह के चे छोटे भाई थे। अभयसिंह के स्वर्गवासी होने पर उनके पुत्र रामसिंह पिता की गद्दी पर बैठे। बख्तसिंह नागौर के जागीरदार थे। रामसिंह के अभिषेक समय बख्तसिंह को आना आवश्यक था, क्योंकि वे कुल में बड़े थे। परन्तु न मालूम किस कारण से उस समय न तो बख्तसिंह आये और न किसी अपने प्रतिनिधि ही को भेजा। रामसिंह के अभिषेक में नागौर के ठाकुर के यहाँ से केवल उनकी एक धाय आयी थी। यह देख राजा रामसिंह बड़े अप्रसन्न हुए। इन्होंने उस धाय का बड़ा अपमान किया और अभिषेक होने के बाद ही उन्होंने नागौर पर चढ़ाई करने की सेना को आज्ञा दी। अपने चाचा बख्तसिंह को सेना एकत्रित करने का भी अवकाश नहीं दिया। दोनों ओर से घोर युद्ध होने लगा। छः स्थानों में बड़े भयङ्कर युद्ध हुए, अन्त में युवक रामसिंह ने अपनी मूर्खता का फल पाया। वे हार गये। बख्तसिंह को मारवाड़ का सिंहासन मिला। अन्त में बख्तसिंह को आमेर की महारानी ने मार डाला। (देखो रामसिंह)

(टाड्स राजस्थान)

वज्रनाभ=सुमेरु पर्वत के शिखर पर रहने वाला एक महा असुर। लोकपितामह ब्रह्मा के वर से यह असुर देवों से अवध्य हुआ था। ब्रह्मा के वर ही से इसे वज्रपुर नाम की नगरी भी मिली थी। तब से वज्रनाभ सुमेरु शिखर पर रहना छोड़, वज्रपुर में रहने लगा। थोड़े दिनों के बाद यह मस्त हो कर चारों ओर अत्याचार करने लगा और इन्द्र से स्वर्ग से चले जाने के लिये भी इसने कहलाया। इन्द्र ने इस विषय में बृहस्पति से परामर्श किया और वे बृहस्पति तथा वज्रनाभ को साथ ले कर महर्षि कश्यप के समीप गये। महर्षि कश्यप ने वज्रनाभ से कहा—बेटा ! मैं बहुत शीघ्र ही बारह वर्ष का एक यज्ञ करने वाला हूँ—तब तक तुम शान्तिपूर्वक वज्रपुर ही में रहो, पीछे जैसी तुम्हारी इच्छा हो सो करना।

वज्रादित्य=काश्मीर के एक राजा का नाम। इनके पिता का नाम ललितादित्य था। ये कुवलयादित्य के छोटे भाई थे। कुवलयादित्य के मरने पर ये काश्मीर के राजा हुए। वज्रादित्य को बप्पियक और ललितादित्य भी कहते हैं। यह राजा बड़ा ही दुराचारी और क्रूर था। इसने परिहासपुर नामक गाँव से अपने पिता का बहुत सा अमूल्य धन हरण किया था। इसके राज्य में सर्वत्र म्लेच्छाचार हो गया था। म्लेच्छों के हाथ इसने अनेक मनुष्यों को बेचा था। यह पापी राजा सर्वदा रानियों के साथ रह कर अपना समय बिताता था। इसने ७ वर्ष तक राज्य किया था। अन्त में क्षयी रोग से इसकी मृत्यु हुई।

वनवीर=यह सिसोदिया वीरवर पृथ्वीराज की उपपत्नी के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। राणा विक्रमाजीत और सर्दारों में कुछ मनमुटाव हो गया। अतएव सर्दारों ने राणा को मेवाड़ के सिंहासन से राणा विक्रमाजीत को उतार कर उस पर वनवीर का अभिषेक किया।

राज्य में कौन सी मोहिनी शक्ति है इस बात का उत्तर तो राजा ही दे सकते हैं। परन्तु हमको इतना तो अवश्य मालूम पड़ता है कि राज्य में कोई न कोई मोहिनी शक्ति है अवश्य। इसी से जो वनवीर पहले मेवाड़ के सिंहासन पर बैठना नहीं चाहता था, अब वही वनवीर सिंहासन पर बैठते ही निष्कण्टक होने के लिये प्रयत्न करने लगा। राणा विक्रमाजीत तो उसकी आँखों में गड़ते ही थे। दूसरा संग्रामसिंह का छोटा लड़का उदयसिंह भी शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा के समान बढ़ रहा था। वह भी वनवीर का एक बहुत दृढ़ कण्टक था। वनवीर ने अन्त में अपने कण्टकों को निकाल देना ही निश्चित किया, एक दिन वनवीर अपना विचार पक्का कर रात के आने की बाट देखने लगा। धीरे धीरे रात आ गयी। इस समय कुमार उदयसिंह भोजन कर के सोये हैं। उनकी धाय बिस्तरे पर बैठी सेवा कर रही है। उसी समय रनिवास में रोने पीटने का शब्द सुनायी पड़ने लगा। धाय उठना ही चाहती थी कि उसी समय बारी राजकुमार की जूठन उठाने के लिये वहां आया।

उसने कहा—बहुत बुरा हुआ, वनवीर ने राणा विक्रमाजीत को मार डाला। धाय का हृदय काँपने लगा, वह समझ गयी कि वह दुष्ट राणा को मार कर ही चुप नहीं रहेगा। राजकुमार को मारने भी इधर आवेगा। उसे एक उपाय सूझ पड़ा। उसने एक टोकरे में राजकुमार को लेटा कर और ऊपर पत्ता आदि से ढाँप कर बारी के द्वारा राजकुमार को स्थानान्तरित कर दिया। उसी समय वनवीर रुधिर से सनी तलवार ले कर वहाँ आ गया। उसने पूछा—राजकुमार कहाँ? धाय ने अपने पुत्र को बतला दिया। बिचारा बालक छटपटा कर वहीं रह गया। वनवीर ने अपने को निष्कण्टक समझ लिया।

उस धाय का पवित्र नाम पन्ना था। वह उस बारी को ढूँढ़ते राजमहल से बाहर निकली पूर्व निश्चित स्थान पर उसने राजकुमार और बारी को पाया। धाय ने कमलमीर नामक स्थान में पहुँच राजकुमार को आशासाह नामक एक जैनी के घर में रख दिया। राजकुमार वहीं बढ़ने लगे। सामन्त सर्दारों ने राजकुमार को अपना राजा स्वीकार किया। जब वनवीर को इसकी ख़बर लगी तब वह चिन्तित हुआ परन्तु इस समय वह चिन्ता कर के कर ही क्या सकता था। सर्दारों ने कौशल द्वारा राजकुमार उदयसिंह का अभिषेक किया और वनवीर भाग कर दक्षिण की ओर चला गया। नागपुर के भोंसले उसीकी सन्तान हैं।

(टाड्स राजस्थान)

वल्लभाचार्य=पुष्टिमार्ग नामक सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्य। इस सम्प्रदाय को रुद्रसम्प्रदाय वा वल्लभाचारी सम्प्रदाय भी कहते हैं। इस सम्प्रदाय के आराध्य देवता बालगोपाल जी हैं। इस सम्प्रदाय के गुरु जो वल्लभाचार्य के वंशज हैं वे गुसाईं जी कहे जाते हैं। इस सम्प्रदाय के ग्रन्थों में लिखा है कि वेदभाष्यकार विष्णुस्वामी ने बहुत पहले इस सम्प्रदाय के निगूढ़ धर्मतत्त्व प्रकाशित किये थे। विष्णुस्वामी के अनन्तर ज्ञानदेव, नामदेव और त्रिलोचनदेव ने यथाक्रम इस सम्प्रदाय के रहस्यों को प्रकाशित किया। ब्राह्मण भिन्न अन्य जाति इस सम्प्रदाय में दीक्षित नहीं होते थे ब्राह्मण संन्यासियों ही ने इस सम्प्रदाय को चलाया था। अन्त में वल्लभाचार्य ने इस सम्प्रदाय की पताका उड़ायी। इनके पिता का नाम लक्ष्मण भट्ट था। ये तैलङ्ग ब्राह्मण थे। ख़्रीष्टीय सोलहवीं सदी में वल्लभाचार्य उत्पन्न हुए थे। मथुरा से तीन कोस पूर्व यमुना नदी के उस पार गोकुल नामक एक ग्राम है, वल्लभाचारी पहले वहीं रहते थे। गोकुल में कुछ दिनों तक रह कर वल्लभाचार्य तीर्थयात्रा के लिये बाहर निकले। भक्तमाल नामक ग्रन्थ में लिखा है—तीर्थयात्रा के लिये निकल कर वल्लभाचार्य विजयनगर के राजा कृष्णराय की राजसभा में उपस्थित हुए। कृष्णराय सन् १५२० ई० में विजयनगर के सिंहासन पर बैठे थे। वहाँ स्मार्त पण्डितों के साथ वल्लभाचार्य का शास्त्रार्थ हुआ उस शास्त्रार्थ में जय प्राप्त करने के कारण इनकी गणना वैष्णव आचार्यों में होने लगी तभी से इनका नाम वल्लभाचार्य पड़ा विजयनगर से चल कर वल्लभाचार्य उज्जयिनी में पहुँचे और वहाँ शिप्रा नदी के किनारे एक पीपल वृक्ष के नीचे कुछ दिनों तक ठहरे रहे। कहते हैं वह स्थान आज भी वर्तमान है और महाप्रभु की बैठक के नाम से प्रसिद्ध है। महाप्रभु की और भी अनेक बैठकें हैं। मथुरा में यमुना के तीर पर वल्लभाचार्य की एक बैठक है। चुनार के क़िले से दो मील उत्तर आचार्यकूआँ नामक एक स्थान है। इस प्रकार अनेक स्थानों में घूम कर अन्त में वल्लभाचार्य वृन्दावन गये। कहते हैं वहाँ श्रीकृष्ण का उन्हें साक्षात्कार हुआ। उस समय श्रीकृष्ण ने बालगोपाल की उपासना तथा उपासना की विधि उन्हें बतलायी। तभी से वल्लभाचार्य के सम्प्रदाय में बालगोपाल की पूजा पद्धति प्रचारित हुई। वृद्धावस्था में वल्लभाचार्य काशी में आ कर रहने लगे। इस समय भी उनका वासस्थान काशी में वर्तमान है। काशी ही में वल्लभाचार्य की मृत्यु हुई। इनके मृत्युकाल की एक अद्भुत कथा प्रचलित है। एक दिन वल्लभाचार्य हनुमान्घाट पर स्नान

करने गये थे। वहाँ सब लोगों के देखते देखते ही अदृश्य हो गये। जहाँ वे स्नान कर रहे थे वहीं से एक उज्ज्वल ज्योति उत्पन्न हुई असंख्य देखने वालों ने देखा कि सशरीर वल्लभाचार्य आकाश की ओर जा रहे हैं।

वल्लभाचार्य के सम्प्रदाय में श्रीकृष्ण ही जगत् के सार हैं। उनका गोपाल रूप ही सब रूपों में श्रेष्ठ है। गोपाल ही से इस विश्व की उत्पत्ति हुई है, अतएव गोपाल की उपासना ही से प्राणियों की मुक्ति होती है। दिन प्रति दिन सृष्टि को लय की ओर जाते देख गोलोक-विहारी श्रीकृष्ण ने त्रिगुण समन्वित माया या प्रकृति की सृष्टि की। उसी माया अथवा प्रकृति ही से संसार की उत्पत्ति हुई है। श्रीवल्लभाचार्य ने श्रीमद्भागवत पर सुबोधिनी, व्याससूत्र पर भाष्य, सिद्धान्तरहस्य, भागवतलीलारहस्य, एकान्त-रहस्य, आदि ग्रन्थ बनाये हैं। इनके अतिरिक्त और भी अनेक ग्रन्थ इन्होंने भाषा में बनाये हैं। वल्लभाचार्य जीव और ब्रह्म का अभेद मानते थे।

(भारतवर्षीय इतिहास)

वर्णट=ये कुछ दिनों के लिये काश्मीर के राजा हुए थे। राजा यशस्कर का रोग जब अधिक बढ़ गया जब उन्हें अपने जीवन की आशा जाती रही; तब उन्होंने अपने पितृव्य पौत्र और रामदेव के पुत्र वर्णट को काश्मीर के सिंहासन पर अभिषिक्त किया। राजा यशस्कर ने अपने पुत्र संग्रामदेव को इस कारण राज्य नहीं दिया कि इसे बालक जान कर विरोधी वर्ग षड्यन्त्र रचेगा और अनायास ही इसे राज्यच्युत कर के राज्य अपने हस्तगत कर लेगा। वर्णट के राजा होने से विरोधियों की आशा पर एक बार ही पानी फिर गया। सभी निराश हो गये परन्तु वर्णट राज्य पाते ही उद्धत हो गये। राज्यदाता यशस्कर की ओर से उनका ध्यान बिलकुल ही जाता रहा, यहाँ तक कि उन्होंने राज्य पाने के पश्चात् राजा से आरोग्य प्रश्न भी नहीं पुछवाया। इससे राजा भीतर ही भीतर दुःखित होने लगे। मन्त्रियों ने राजा के हृदय की बात जान ली, उन लोगों ने संग्रामदेव को राज्य देने के लिये राजा यशस्कर को उत्तेजित किया। अन्त में हुआ भी वही, वर्णट एक दिन सभा में बैठे थे, मन्त्रियों ने वहीं उन्हें क़ैद कर लिया तद-नन्तर वे निर्वासित किये गये।

(राजतरङ्गिणी)

वल्लालसेन=गौड़ीय सेनवंशी राजाओं में एक प्रसिद्ध राजा। कोई कहते हैं कि वल्लालसेन विष्वक्सेन के क्षेत्रज पुत्र थे और आदिशूर के वंशध्वंस होने पर इनका जन्म हुआ था। ढाका ज़िला के विक्रमपुर में यह किंवदन्ती प्रसिद्ध है कि वल्लाल वैद्यवंश में उत्पन्न हुए थे। परन्तु वल्लाल ने दानसागर और अद्भुतसागर नामक दो ग्रन्थ बनाये हैं उनमें और आनन्द भट्ट रचित वल्लालचरित में लिखा हुआ है कि ये चन्द्रवंशी क्षत्रिय थे और इनके पिता का नाम विजयसेन, पितामह का नाम हेमन्तसेन और प्रपितामह का नाम सामन्तसेन था। कोई कोई तो यह कहते हैं कि वल्लाल कायस्थ थे। वे अपने इस मत में प्रमाण यह देते हैं कि यदि वे कायस्थ नहीं होते, तो कायस्थ को कन्या किस प्रकार देते। वे और भी अपने मत में प्रमाण देते हैं कि यदि वल्लाल क्षत्रिय होते तो वे अवश्य ही ब्राह्मणों के अनुसार क्षत्रियों में भी कुलानुसार श्रेणि-विभाग करते, परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया इससे स्पष्ट ही मालूम पड़ता है कि न तो वे क्षत्रिय थे और न क्षत्रियों से उनका कोई सम्बन्ध ही था। जो वल्लाल को वैद्यवंशोत्पन्न बतलाते हैं उनका कहना है कि कुलजि नामक ग्रन्थ में "अम्बष्ठकुलनन्दनः" "वैद्यकुलोद्भूतः" आदि विशेषण वल्लालसेन के लिये दिये गये हैं इससे उनका वैद्यवंशोत्पन्न होना स्वतः सिद्ध है। दूसरी बात यह है कि सेनवंशी राजाओं के राज्यकाल में वैद्य जाति की बड़ी उन्नति हुई थी उस समय चिकित्सा शास्त्र काव्य अलङ्कार आदि शास्त्रीय ग्रन्थों के प्रणेता वैद्यवंश में उत्पन्न हुए थे। उनका मत है कि वल्लालसेन आदिशूर के दौहित्रवंशी थे।

राजा राजेन्द्रलाल मित्र के मत से वल्लाल-सेन विजयसेन के पुत्र थे। वे सन् १०६६ ख्रीष्टाब्द में बङ्गाल में राज्य करते थे। उन्होंने दानसागर और अद्भुतसागर नामक दो ग्रन्थ

बनाये थे। आईन-ए-अकबरी के मत से राजा बल्लालसेन का राज्यकाल सन् ११०० ई० से है। राजा बल्लालसेन ने बङ्गाल में ब्राह्मणादि जातियों के सामाजिक सम्मान की व्यवस्था कर दी है। आईन-ए-अकबरी में लिखा है कि बल्लालसेन ने पचास वर्ष राज्य किया था।

वसिष्ठ=ब्रह्मा के मानस पुत्र। ये महर्षि सप्तर्षियों में से हैं। कर्दमकन्या अरुन्धती इनको व्याही गयी थी। राक्षस-भावापन्न अयोध्यापति कल्मापपाद ने इनके सौ पुत्रों को खा डाला था। पुत्रशोक से व्याकुल हो कर ये एक नदी में डूब कर मर जाना चाहते थे। उन्होंने रस्सी से अपने को बाँधा तदनन्तर वे एक नदी में कूद पड़े। परन्तु नदी की धारा में पड़ने से उनका बन्धन टूट गया और वे एक रेत पर चले गये। उस नदी में महर्षि के बन्धन-पाश टूट गये थे इस कारण महर्षि ने उस नदी का नाम विपाशा रखा। तदनन्तर हैमवती नाम की नदी में भी मरने के लिये वे कूदे, परन्तु वहाँ भी उनकी मृत्यु नहीं हुई। महर्षि के तेज से उस नदी की धारा शतधा द्रुत हुई, इस कारण उस नदी का नाम शतद्रु पड़ा। महर्षि आत्महत्या न कर सकने के कारण अपने आश्रम में लौटे आ रहे थे। पीछे पीछे उनकी पुत्रवधू अदृश्यन्ती आ रही थी। वेदाध्ययन का शब्द सुन कर महर्षि ने उसका परिचय पूँछा अदृश्यन्ती बोली—मैं आपकी पुत्रवधू हूँ। मेरे गर्भ से आपके बड़े पुत्र शक्ति का एक पुत्र उत्पन्न हुआ है, बारह वर्ष हमारे साथ रह कर उसने षडङ्ग वेदों का अध्ययन किया है। आपने उसीके उच्चारित वेद-मन्त्र सुने हैं। अदृश्यन्ती के यह कहने पर महर्षि ने मरने की इच्छा छोड़ दी। वंश रक्षा होने की सम्भावना है, यह देख कर महर्षि को बड़ा आनन्द हुआ। इस पुत्र का नाम वसिष्ठ ने पराशर रखा।

वसु=(१) गणदेवता विशेष। वसु नाम से आठ देवता प्रसिद्ध हैं। उनके नाम ये हैं—धर, ध्रुव, सोम, विष्णु, अनिल, अनल, प्रत्यूष और प्रभास। ये आठ देवता अष्टवसु नाम से प्रसिद्ध हैं। महाभारत में एक स्थान पर विष्णु के स्थान पर सावित्र लिखा हुआ देखा जाता है। अग्निपुराण में धर के स्थान पर आप नामक वसु का उल्लेख है। महर्षि वसिष्ठ की धेनु नन्दिनी को एक बार वसुओं ने हर लिया था। इस कारण महर्षि ने उन्हें मर्त्यलोक में वास करने का शाप दिया। वसुओं के कहने से भगवती गङ्गा महाराज शन्तनु की स्त्री हुईं और उनके गर्भ से वसुओं की उत्पत्ति हुई। सन्तान के उत्पन्न होते ही गङ्गा देवी उसको जल में डाल दिया करती थीं इस प्रकार एक एक वसु शापमुक्त होने लगे। इस प्रकार सात पुत्रों को गङ्गा ने जलमग्न कर दिया। आठवें पुत्र को भी वे जलमग्न करने के लिये जाती थीं, परन्तु पुत्र-शोक-कातर राजा शन्तनु ने स्त्री को बहुत ही भर्त्सित किया। उस समय गङ्गा अपना परिचय दे कर अन्तर्हित हो गयीं। अष्टम सन्तान बहुत दिनों तक पृथिवी में वास कर भीष्म नाम से प्रसिद्ध हुआ। वसिष्ठ के शाप देने के अनन्तर वसुओं ने उनकी बड़ी स्तुति की उससे प्रसन्न हो कर वसिष्ठ ने कहा—जिस वसु ने हमारी गौ चुरायी थी उसे ही मर्त्यलोक में वास करना पड़ेगा औरों को केवल एक एक वर्ष ही वास करना पड़ेगा। (महाभारत)

(२) चेदिदेश के एक राजा का नाम। यह पुरुवंश में उत्पन्न हुआ था। इन्द्र की कृपा से चेदिदेश पा कर वे उसका शासन करते थे। कुछ दिनों के बाद वसु ने राज्य छोड़ कर कठोर तपस्या करना प्रारम्भ किया। तपस्या से डर कर इन्द्र उनके समीप उपस्थित हुए और अनेक प्रकार के मधुर वचनों से उन्हें समझा कर उन्हें राज्य करने का परामर्श दिया, इन्द्र के कहने से इन्होंने तपस्या छोड़ दी और पुनः ये राज्यशासन करने लगे। इन्द्र ने इनसे मित्रत्व स्थापित किया था। भूलोक में रह कर ही ये इन्द्र के मित्र हो गये थे। देवराज इन्द्र ने इन्हें आकाशचारी विमान दिया था। उस पर चढ़ कर ये आकाश में घूमा करते थे, इस कारण इनका दूसरा नाम "उपरिचर" पड़ा था।

(महाभारत)

वसुकुल=काश्मीर के एक राजा का नाम। इन्होंने साठ वर्ष तक राज्य किया था। इनके विषय में इतना ही मालूम है।

(राजतरङ्गिणी)

वसुनन्द=काश्मीर के एक राजा का नाम। इनके पिता का नाम क्षितिनन्द था। इन्होंने काम शास्त्र सम्बन्धी एक ग्रन्थ भी लिखा था। इन्होंने ५२ वर्ष २ महीने काश्मीर का शासन किया था। (राजतरङ्गिणी)

वाण=यह दैत्यराज बलि का ज्येष्ठ पुत्र था। इसकी राजधानी का नाम शोणितपुर था। श्रीकृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध ने इसकी कन्या उषा को व्याहा था।

वाप्पा रावल=मेवाड़ राज्य के स्थापनकर्त्ता। वलभी राज्य के ध्वंस होने के समय राजा कनकसेन के वंशधर इधर उधर मारे मारे फिरते थे। राजा शिलादित्य के वंशधर ग्रहादित्य ने ईडर प्रदेश में एक छोटा सा राज्य स्थापित कर लिया था। परन्तु यह देखिये तो समय का परिवर्तन !! आज ग्रहादित्य के वंश में एक तीन वर्ष का बालक वाप्पा ही शेष रह गया है। इसके पिता नागादित्य को स्वाधीनताप्रिय भीलों ने मार डाला। आज यह प्राचीन वंश का लोप हुआ चाहता है। भला उस तीन वर्ष के बालक की रक्षा कौन करेगा। आज विदेश में एक प्रसिद्ध और पवित्र राजवंश के एकमात्र अंकुर का यह अवसाद !!

वाप्पा के पूर्वपुरुष शिलादित्य की प्राणरक्षा कमला नाम की एक ब्राह्मणी ने की थी, यह बात इतिहास के पाठकों से छिपी नहीं है। ब्राह्मण क्षत्रियों का सम्बन्ध भारत में जब तक चिरस्थायी रहेगा तब तक क्षत्रिय राजाओं का कोई बाल भी टेढ़ा नहीं कर सकता है। आज भी उस पवित्रचरित्रा ब्राह्मणरमणी कमला के वंशधर वर्तमान हैं। कमला के ही वंशधर इस राजवंश के पुरोहित थे। आज पुरोहितों ने निश्चित कर लिया है कि चाहे जो हो परन्तु इस राजवंश की रक्षा हम लोग अवश्य करेंगे। राजकुमार को ले कर ब्राह्मणों ने भांडेर नामक ज़िले में आश्रय लिया। यहाँ के यदुवंशी भील ने उन लोगों को आश्रय दिया। जब ब्राह्मणों को वहाँ रहने में भी शङ्का उत्पन्न हुई तब वे वहाँ से बालक को ले कर पराशर नामक स्थान में गये। यह स्थान त्रिकूट पर्वत के सघन वन में था। उसी त्रिकूट पर्वत की तलहटी में नागेन्द्र नामक एक गाँव बसा हुआ था। वहाँ शिवोपासक ब्राह्मण रहते थे, उन्हींके हाथ में वाप्पा सौंपा गया। वहाँ ब्राह्मणों द्वारा सुरक्षित राजकुमार निर्भय हो कर वन में विचरने लगा।

यह एक साधारण बात है कि महान् पुरुषों का जीवन अद्भुत तथा कटीला होता है। कभी वह बिलकुल अन्धकार सा प्रतीत होता है, परन्तु उसकी यह अवस्था चिरस्थायिनी नहीं रहती। बीच बीच में उसमें प्रकाश भी दिखायी पड़ जाता है। वाप्पा रावल आज उन ब्राह्मणों के यहाँ गौ चराता है। उस प्रदेश का राजा एक सोलङ्की क्षत्रिय था। वहाँ सावन का झूलनोत्सव उत्साह से मनाया जाता है। आज झूलने के लिये अपनी सखियों को लिये राजकुमारी वन में आयी हैं। परन्तु भूल से उनके पास रस्सी नहीं है वे झूला डालें तो कैसे ? उसी समय अचानक वाप्पा रावल वहाँ चला गया। उन लोगों ने उससे रस्सी माँगी। वाप्पा बड़ा ही चञ्चल तथा हँसोड़ था उसने कहा—हम से व्याह करो तो हम रस्सी ला दें। एक और तमाशा प्रारम्भ हुआ। उन कन्याओं के साथ राजकुमार के व्याह की विधि बर्ती जाने लगी। ग्रन्थीबन्धन हुआ। क्या उस समय किसीने यह समझा था कि यह नक़ली व्याह ही किसी समय असली व्याह होगा। परन्तु इसमें सन्देह नहीं उसी दिन से वाप्पा के भाग्य के कटीले मार्ग साफ़ होने लगे।

सोलङ्की राजकुमारी की अवस्था व्याह के योग्य हो गयी है। सोलङ्कीराज कन्यादाय से चिन्तित हैं। उन्होंने वर ढूँढ़ने को देश विदेश मनुष्य भेजे हैं। परन्तु इसी समय एक ऐसी घटना हुई जिससे सब को चकित होना पड़ा। एक ज्योतिषी ने राजकुमारी का जन्मपत्र देख कर कहा कि इस राजकुमारी का व्याह हो गया है। सोलङ्कीराज के आश्चर्य का ठिकाना नहीं। इसकी ख़बर कुमार वाप्पा को भी लगी।

अतएव डर कर वालीय और देव नामक दो भील बालकों को साथ ले कर कुमार विजन वन में चले गये।

भट्ट ग्रन्थों में कुमार के नगेन्द्रनगर के छोड़ने का एक दूसरा ही कारण लिखा है। वाप्पा जिस ब्राह्मण के यहाँ रहते थे; उसी ब्राह्मण की गायों के चराने का वे काम करते थे उनमें से एक गाय घर आ कर कुछ भी दूध नहीं देती थी इससे ब्राह्मण को वाप्पा पर सन्देह हुआ। वाप्पा को भी यह बात मालूम हो गयी, उस दिन से वह उस गाय पर कड़ी दृष्टि रखने लगा। दोपहर के समय में वाप्पा ने देखा कि वह गाय एक कुञ्ज में गयी और वहाँ उसके थनों से अनायास ही दूध की धारा पड़ने लगी। उस स्थान को ध्यान से देखने पर वाप्पा को मालूम हुआ कि वहाँ एक शिवलिङ्ग है। वहीं एक योगी भी ध्यानमग्न दीख पड़े। उस दिन से वाप्पा प्रतिदिन वहाँ जाते और उन योगी की सेवा करते। योगिराज उन पर बड़े ही प्रसन्न हुए। कैलास जाने के दिन योगिराज हारीत ने अपने शिष्य को प्रातःकाल ही बुलाया था। परन्तु उस दिन वाप्पा को निद्रा आ गयी, अतएव वह समय से नहीं पहुँच सके। योगिराज का विमान आकाश की ओर जा रहा था उस समय वाप्पा दौड़े दौड़े उस स्थान पर पहुँचे। गुरु ने अपने शिष्य को देख कर रथ रोका और शिष्य को ऊपर उठने के लिये कहा। शिष्य ऊपर उठा सही, परन्तु गुरु जी के पास तक वह नहीं पहुँच सका। तब गुरु जी ने उसे मुँह खोलने के लिये कहा। गुरु ने शिष्य के मुख में थूक दिया। उस समय वाप्पा ने घृणा से मुँह बन्द कर लिया। अतएव गुरु का प्रसाद उसके पैर पर पड़ा। अभाग्य वश गुरु शिष्य को जो देना चाहते थे वह शिष्य नहीं ले सका तथापि उसका शरीर दृढ़ हो गया।

उन दिनों चित्तौड़ में मौर्य कुल के राजा मान राज्य करते थे। वाप्पा उनका भानजा होता था। यह बात वाप्पा को मालूम थी। अतएव अपने साथियों को साथ ले कर वाप्पा वहाँ पहुँचे। राजा ने बड़े आदर से उनको रखा और अपना सामन्त बनाया। इससे पहले के सामन्तों को बड़ी ईर्ष्या हुई। यहाँ तक कि एक समय जब शत्रुओं ने चित्तौड़ पर चढ़ाई की तब उन सामन्तों ने साफ़ ही कह दिया कि जिसका आदर करते हो उसको लड़ने के लिये भेजो। वाप्पा ने उस लड़ाई में जय प्राप्त किया।

राजा मान से तिरस्कृत सामन्त इसी चिन्ता में लगे थे कि कोई अच्छा सर्दार मिले तो उसे चित्तौड़ की गद्दी दे दें और राजा मान को पदच्युत कर दें। अन्त में सामन्तों ने वाप्पा ही को इस काम के लिये स्थिर किया। वाप्पा ने भी इस कार्य में अपनी सम्मति दे दी। यही स्वार्थ है। आज वाप्पा ने अपने आश्रयदाता मामा के उपकार का कैसा सुन्दर बदला दिया। संसार के नियम कैसे अनोखे हैं? यदि पहले ही पहल वाप्पा ने ऐसे काम किये होते तो अवश्य ही उसका नाम इतिहास के पृष्ठों पर काली से लिखा जाता, परन्तु न मालूम कितने राजा कितने महात्मा इस प्रकार के स्वार्थ के जघन्य उदाहरण दिखा चुके हैं। अतएव कहना पड़ता है कि यह भी स्वार्थ ही की महिमा है!!!

पचास वर्ष से अधिक अवस्था होने पर वाप्पा रावल चित्तौड़ का राज्य अपने पुत्रों को दे कर खुरासान चले गये। वहाँ इन्होंने बहुतसी मुसल्मान स्त्रियों से ब्याह किया था।

वीर केसरी महाराजा वाप्पा रावल ने एक सौ वर्ष की पूरी आयु पायी थी। इन्होंने काश्मीर, ईराक, ईरान, तुरान और काफरिस्तान आदि देशों को जीता था और उन उन देशों के राजाओं की कन्याओं को ब्याहा था। इन्हें ३० पुत्र उत्पन्न हुए थे

(टाड्स राजस्थान)

वालादित्य=काश्मीर के एक राजा का नाम। इनके पिता का नाम विक्रमादित्य था। पिता के परलोक वास होने पर प्रतापी वालादित्य का काश्मीर के सिंहासन पर अभिषेक हुआ था। ये बड़े प्रतापी महावीर थे। आज भी उनके अनेक जयस्तम्भ पूर्व समुद्र के किनारे वर्तमान हैं। इन्होंने बङ्गाल देश को जीत कर वहाँ काश्मीरियों के रहने के लिये कालम्ब नामक

एक उपनिवेश स्थापित किया था। उनकी स्त्री बिम्बा ने प्रजाओं के अमङ्गल दूर करने के अर्थ बिम्बेश्वर नाम के एक शिव की प्रतिष्ठा की थी। खङ्ग शत्रुघ्न और मालव नामक तीन मन्त्री थे। इन मन्त्रियों ने भी अपने अपने नाम बिहार, मठ, सेतु आदि बनवाये थे।

राजा वालादित्य की कन्या का नाम अनङ्गलेखा था। वह बड़ी सुन्दरी तथा गुणवती थी। एक दिन ज्योतिषी ने उसका जन्मपत्र देख कर राजा से कहा—"महाराज! अब इसी कन्या का पति काश्मीर का राजा होगा।" इस बात से राजा बड़े चिन्तित हुए, उन्होंने सोचा कि यदि राजा से हम कन्या को व्याहेंगे तो वह हमारा राज्य ले सकता है और राजा से नहीं व्याहें तो चिन्ता काहे की। यही सोच कर राजा ने अनङ्गलेखा का व्याह दुर्लभवर्द्धन नामक एक मनुष्य से किया। (देखो प्रज्ञावर्द्धन और दुर्लभवर्द्धन)

(राजतरङ्गिणी)

वालि=कपिराज । इनकी राजधानी का नाम किष्किन्धा है।

एक समय ब्रह्मा मेरु पर्वत पर योगासन से बैठे थे। उस समय सहसा उनके नेत्रों से अश्रुबिन्दु पतित हुए। उन्हींसे एक वानर उत्पन्न हुआ। एक समय उसी वानर ने एक सुन्दरी स्त्री का रूप धारण किया। देवराज इन्द्र और सूर्य दोनों उस स्त्री को देख कर उस पर मोहित हो गये इन्द्र का वीर्य उस स्त्री के सिर पर पड़ा और सूर्य का वीर्य उसके गले पर। उसी सिर पर के वीर्य से वालि और ग्रीवा पर के वीर्य से सुग्रीव की उत्पत्ति हुई। थोड़े दिनों के बाद उस स्त्री ने पुनः वानर का रूप धारण किया। एक दिन वह अपने पुत्रों को ले कर ब्रह्मा के समीप गया। ब्रह्मा ने आज्ञा दी कि किष्किन्धा में जा कर राज्य करो। वालि की महारानी का नाम तारा और सुग्रीव की स्त्री का नाम रुमा था।

एक समय मायावी दैत्य का वध करने के लिये वालि पाताल गया था। उसके आने में विलम्ब होते देख सुग्रीव ने समझ लिया कि वालि मर गया और यह समझ कर पाताल द्वार को पत्थर से बन्द कर के वह किष्किन्धा में लौट आया। मन्त्रियों ने मिल कर सुग्रीव को राजा बनाया। राजासन पा कर सुग्रीव वालि की स्त्री के साथ सुख विलास करने लगा। कुछ दिनों के बाद दैत्य का विनाश कर वालि लौटा और पैर से मार कर उसने द्वार पर के पत्थर को हटा दिया। तदनन्तर वह राजधानी में लौट आया। यहाँ की लीला देख कर वालि चुप, उन्होंने सुग्रीव को मारना चाहा, सुग्रीव प्राणभय से राजधानी छोड़ कर भाग गया। वालि को अपना राज्य और अपनी स्त्री तो मिली ही नफ़े में सुग्रीव की स्त्री रुमा भी वालि ही को मिली। पुनः सुग्रीव ने रामचन्द्र से मैत्री कर के अपने भाई वालि का वध कराया।

(रामायण)

वाल्मीकि=विख्यात रामायणरचयिता महामुनि। ये महर्षि अयोध्याधिपति महाराज रामचन्द्र के समकालिक थे परन्तु अवस्था में उनसे बड़े थे। रामचन्द्र के पिता दशरथ इनके हमजोली थे। अयोध्या से दक्षिण की ओर गङ्गा बहती हैं, गङ्गा के दक्षिण तीर पर अनौंया की बस्ती है, वहाँ वन भी है। उसी वन में से हो कर तमसा नदी निकली है। इसी तमसा नदी के तीर पर महर्षि वाल्मीकि का आश्रम है। उसी आश्रम में बैठ कर महर्षि वाल्मीकि ने अपने विश्वविदित काव्य की रचना की थी। कोई कोई वाल्मीकि के आश्रम को अयोध्या और मथुरा के बीच में बतलाते हैं। रामायण में भी लिखा है कि लवणासुर को मारने के लिये मथुरा जाते समय शत्रुघ्न वाल्मीकि के आश्रम में ठहरे थे। जो हो, वाल्मीकि ही भारत के आदिकवि हैं और उनकी रामायण ही आदिकाव्य है।

वाल्मीकि के डाँकू होने की कथा प्रसिद्ध है परन्तु उसका मूल कहीं नहीं मिलता।

वासुकि=सर्पराज। ये प्रजापति कश्यप के औरस और कद्रू के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। इनकी बहिन का नाम जरत्कारु था। सर्पकुल की रक्षा के लिये इन्होंने अपनी भगिनी जरत्कारु, जरत्कारु मुनि से व्याही थी। उन्हें मालूम हुआ था कि इससे जो सन्तान उत्पन्न होगी

उसीसे सर्पकुल की रक्षा होगी । यथासमय जरत्कारु के गर्भ से आस्तीक का जन्म हुआ था। सर्पयज्ञ के समय आस्तीक ने राजा जनमेजय से कह कर सर्पकुल की रक्षा की । समुद्रमन्थन के समय में वासुकि मन्थन रज्जु बने थे ।

विक्रमाजीत=मेवाड़ के एक महाराणा । ये संग्रामसिंह के मध्यम पुत्र थे । अपने बड़े भाई राणा रत्नसिंह के मारे जाने पर ये सन् १५३५ई० में चित्तौड़ के सिंहासन पर बैठे । इनके बड़े भाई राणा रत्नसिंह जी में जो गुण थे उनके विपरीत विक्रमाजीत में दुर्गुण थे । ये क्षमाहीन और प्रतिहिंसा-परायण परले दरजे के थे । इनका यह दोष इतना बढ़ा कि जिससे मेवाड़ के सभी सर्दार विक्रमाजीत से अप्रसन्न हो गये । सर्दारों के अप्रसन्न होने का एक और भी कारण था, वह यह कि राणा उनके साथ एक क्षण भी नहीं बैठते थे । वे सर्वदा पहलवानों की कुश्ती और तरह तरह की कसरतें देखा करते थे । विशेष कर राजपूत सर्दारों ने जिस सम्मान को बहुत दिनों से पा रखा था उनसे उस सम्मान को छीन कर राणा ने उन पहलवानों तथा नीचे पद वालों को दे दिया । इस अपमान से दुःखित हो कर सर्दार लोग बड़े दीन भाव से अपना समय बिताते थे ।

इस प्रकार सर्दारों का हृदय राणा की ओर से फिर गया । परन्तु राणा की आँखें अभी भी नहीं खुलीं, उन्होंने अपने भावी की ओर एक बार भी आँखें उठा कर नहीं देखा राणा की इस अविचारिता से राज्य में चारों ओर पूर्ण अराजकता छा गयी । दिन दोपहर प्रजा लूटी जाने लगी, चारों ओर हाहाकार मच गया । एक दिन राणा ने सर्दारों को बुला कर उनसे कहा—देश में लुटेरे बढ़ गये हैं, आप लोग उनका दमन करें । सर्दारों ने एकस्वर से उत्तर दिया-आप अपने सम्मानित पायकों को भेजें ।

इसी प्रकार मेवाड़ में दिनों दिन अराजकता बढ़ने लगी । अच्छा मौक़ा देख कर गुजरात के सुलतान बहादुर शाह ने मेवाड़ पर चढ़ाई की । उस समय राणा विक्रमाजीत बूँदी राज्य के अन्तर्गत लैंचा नामक स्थान में थे । बहादुर के वहीं सेना के साथ जा कर उन्हें घेरा । यद्यपि राणा अयोग्य थे परन्तु वे मेवाड़ के राणा थे, वाप्पा रावल के वंशधर थे, वीरवर संग्रामसिंह के पुत्र थे । वे बहादुर की सेना को देख कर कुछ भी भयभीत नहीं हुए । दोनों दल में युद्ध होने लगा । परन्तु महाराणा की किराये की सेना नहीं ठहर सकी । सर्दार लोग भी महाराणा को उनकी निर्बुद्धिता का फल चखाने के लिये छोड़ कर चित्तौड़ की रक्षा करने के लिये चले आये ।

बहादुर ने चित्तौड़ पर चढ़ाई की । सर्दारों ने बड़ी वीरता दिखायी, परन्तु अगणित सेना में वे थे ही कितने जिनके जय की आशा की जाय?

महाराणा संग्रामसिंह की महारानी कर्णावती से बादशाह हुमायूँ का धर्म भाई और बहिन का नाता था । इस विपत्ति से रक्षा पाने के लिये महारानी ने अपने धर्म भाई को स्मरण किया । बादशाह हुमायूँ बङ्गाल विजय को छोड़ धर्म भगिनी की रक्षा के लिये चित्तौड़ पहुँचे । उनके आने की ख़बर पाते ही बहादुर घबड़ा गया । हुमायूँ ने उसे मेवाड़ की सरहद से निकाल बाहर कर दिया और मालवे की राजधानी माण्डू नगर को भी छीन लिया । इस प्रकार चित्तौड़ का उद्धार कर के हुमायूँ ने वहाँ के सिंहासन पर महाराणा विक्रमाजीत को पुनः बैठाया ।

अनेक कष्ट भोगने के बाद राणा विक्रमाजीत पुनः चित्तौड़ के सिंहासन पर बैठे । परन्तु इनका चाल चलन नहीं बदला । कहते हैं ठोकर लगने से आदमी सावधान हो जाता है परन्तु राणा ने अपने आचरणों से उसे झूठा बना दिया । पुनः इन्होंने अपना कठोर अत्याचार प्रारम्भ कर दिया । राणा अपनी पद-मर्यादा को भी भूल गये और पशुओं के समान व्यवहार करने लगे । एक दिन राणा ने करमचन्द परमार को भरी सभा में मारा । इस व्यवहार को देख कर सभी सामन्त अपने अपने आसन से उठ कर चले गये ।

सर्दारों ने सम्मति कर के राणा को गद्दी से उतार दिया और बनबीर नामक एक मनुष्य

को गद्दी पर तब तक के लिये बैठाया, जब तक महाराणा संग्रामसिंह का कनिष्ठ पुत्र उदयसिंह राज्य करने योग्य न हो जाय। यह बनवीर पृथ्वीराज की उपपत्नी के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। अन्त में महाराणा विक्रमाजीत बनवीर के हाथ से मारे गये।

(टाडस राजस्थान)

विक्रमादित्य=(१) उज्जयिनी के विख्यात विद्यानुरागी राजा, विक्रमादित्य स्वयं पण्डित थे, तथा इन की सभा में अनेक पण्डित वर्तमान थे। कहते हैं इनकी सभा में नौ विख्यात पण्डित थे जो नवरत्न के नाम से प्रसिद्ध थे। वे नवरत्न ये हैं—कालिदास, वररुचि, अमरसिंह, धन्वन्तरि, क्षपणक, वेताल भट्ट, घटकर्पर, शंकु और वराहमिहिर।

परन्तु पुरातत्ववेत्ताओं का कहना है कि या तो यह नवरत्न की कल्पना ही मिथ्या है या नवरत्न के रत्नों का नाम मिथ्या है। क्योंकि आज यह बात प्रमाणित हो गयी है वराहमिहिर और अमरसिंह कालिदास और धन्वन्तरि इनके समय में बहुत अन्तर है। फिर इनका एक साथ विक्रमादित्य की सभा में रहना और नवरत्न की उपाधि से भूषित होना नितान्त असङ्गत जान पड़ता है। (देखो कालिदास)

(२) काश्मीर के एक राजा का नाम। इनके पिता का नाम रणादित्य था। पिता के परलोकवासी होने पर विक्रमादित्य काश्मीर के सिंहासन पर अभिषिक्त हुए। इन्होंने ४२ वर्ष राज्य किया था।

(राजतरङ्गिणी)

विचित्रवीर्य=महाराज शन्तनु के पुत्र। काशीराज की कन्या अम्बालिका और अम्बिका इनको व्याही गयी थी। अम्बालिका के गर्भ से पाण्डु और अम्बिका के गर्भ से धृतराष्ट्र उत्पन्न हुए थे।

विजय=काश्मीर के एक राजा का नाम। दयालु राजा तुञ्जीन के परलोकवास होने पर विजय को काश्मीर का सिंहासन मिला। ये अन्यवंशीय थे। इन्होंने आठ वर्ष काश्मीर का राज्य किया। विजयेश्वर महादेव के चारों ओर इन्होंने नगर बसाये थे।

विजयसिंह=मारवाड़ जोधपुर का एक राजा। ये महाराज बख़्तसिंह के पुत्र थे। जब महाराज बख़्तसिंह ने विषमय वस्त्र पहन कर प्राण त्याग किया उस समय उनके पुत्र विजयसिंह बीस वर्ष की अवस्था में मारवाड़ के राजा हो गये। उस समय यद्यपि दिल्ली के बादशाह की प्रभुता दुर्बल हो गयी थी, तथापि विजयसिंह ने प्रचलित रीति के अनुसार दिल्ली के बादशाह के समीप अपने अभिषेक का संवाद भिजवाया। दिल्ली के बादशाह ने उससे अपना आनन्द प्रकाशित किया इसी प्रकार भारत के सभी प्रधान प्रधान राजाओं ने उन्हें मारवाड़ का अधिपति सहर्ष स्वीकार किया। मारवाड़ के मारोठ नामक स्थान में विजयसिंह का अभिषेक हुआ था। महाराज विजयसिंह वहाँ से जा कर मेरता में अशौच निवृत्ति होने तक रहे।

इनको राज्यच्युत रामसिंह से बहुत दिनों तक युद्ध में लिप्त रहना पड़ा था। अन्त में बहुत परिश्रम के बाद रामसिंह की आशा व्यर्थ हुई और विजयसिंह मारवाड़ के सर्वसम्मत अधीश्वर हुए। (टाडस राजस्थान)

विदुर=कृष्ण द्वैपायन व्यास के औरस और विचित्रवीर्य की महारानी अम्बिका की दासी के गर्भ से इनकी उत्पत्ति हुई थी। ये यद्यपि अन्धराज धृतराष्ट्र के मन्त्री थे, तथापि पाण्डवों की सर्वदा भलाई चाहते थे। ये अत्यन्त न्यायपरायण तथा सत्यवादी थे। दुर्योधन आदि जब पाण्डवों को वारणावत नगर में भेजने तथा वहाँ जतुगृह में आग लगा कर उन्हें मार डालने का विचार कर रहे थे, उस समय विदुर की मन्त्रणा से ही उनकी रक्षा हुई। पाण्डवों के व्याह होने के अनन्तर धृतराष्ट्र की आज्ञा से विदुर पाञ्चाल राज्य में गये थे और वहाँ से पाण्डवों को हस्तिनापुर ले आये। महाभारत का युद्ध समाप्त होने पर जब पाण्डव राजा हुए तब विदुर हस्तिनापुर में पन्द्रह वर्ष तक रहे थे तदनन्तर ये धृतराष्ट्र के साथ वन गये और वहीं इन्होंने योग से शरीर त्याग किया। कहते हैं ये पहले जन्म के धर्मराज थे। धर्मराज के शाप से इन्हें शूद्रयोनि में उत्पन्न होना पड़ा था

विदुला=महाराज सौवीर की महारानी का नाम। यह वीरबाला तथा गुणवती थी। इसके स्वामी की मृत्यु होने पर सिन्धुराज ने इसके राज्य पर आक्रमण किया था। प्रबल शत्रु के आक्रमण से इसका पुत्र सञ्जय बड़ा भीत हुआ था। परन्तु माता विदुला के उत्साह से उत्साहित हो कर सञ्जय ने युद्ध किया और अपने पिता के राज्य का उद्धार किया। विदुला के उपदेश प्रत्येक सत्पुत्र कहलाने के अभिलाषियों को सर्वदा स्मरण रखना चाहिये।

(महाभारत)

विद्यापति=विख्यात मैथिल कवि। इन्होंने "पुरुषपरीक्षा" नामक संस्कृत ग्रन्थ बनाया है। इनके पिता का नाम गणपति और पितामह का नाम जयदत्त था। ये मिथिला के राजा शिवसिंह के आश्रित और उनके सभापण्डित थे। राजा और रानी दोनों ही इनको बहुत मानते थे। राजा ने प्रसन्न हो कर इन्हें बिसपी नामक गाँव दिया था। इनके वंशधरों के पास उसका दानपत्र अभी भी वर्तमान है। निश्चित प्रकार से इनके समय का निरूपण नहीं किया जा सकता। परन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि ये चैतन्यदेव के पूर्ववर्ती चण्डीदास के समसामयिक थे। किसी किसी का कहना है कि इनका सन् १३१८ ई० में जन्म हुआ था। इनकी बनायी पदावली का समाज में बड़ा आदर है। "पुरुषपरीक्षा," और "पदावली" के अतिरिक्त "दुर्गाभक्तितरङ्गिणी," "दानवाक्यावली," "विवादसार," "गयापत्तन" आदि संस्कृत के ग्रन्थ बनाये थे। ये ग्रन्थ मिथिला में आज भी प्रचलित हैं। इनकी मनोहर पदावली नीचे उद्धृत की जाती है—

"कत चतुरानन मरि मरि जावत,
नतु या आदि अवसाना।
तोहे जनमि पुनि तोहे समावत,
सागर लहरी समाना।
अरुण पुरब दिस, बहल सगर निश,
गगन मगन भेल चन्दा।
मुनि गेल कुमुदिनि तइओ तोहर धनि,
मूनल मुख अरविन्दा।
कमर वदन कुवलय दुइ लोचन,
अधर मधुर निरमाणे।
सकल शरीर कुसुम तुअ सिरजिल,
किअ दई हृदय परवाने।
जनम अवधि हम रूप निहारव,
नयन न तिरपित भेल।
सेई मधुर बोल श्रवणहि सूनव,
श्रुतिपथ परसि न गेलो।

चैतन्यदेव के सम्प्रदाय में विद्यापति की पदावली का बड़ा आदर है। चैतन्यदेव भी इन पदावलियों का बड़ा आदर करते थे। विद्यापति के मैथिल होने के प्रमाणों को मानते हुए भी न मालूम क्यों बङ्गाली लोग इन्हें बङ्गाली बनाने का निरर्थक परिश्रम करते हैं। विद्यापति के वंशधरगण आज भी मिथिला के बिपसी ग्राम में वर्तमान हैं। विद्यापति विहार प्रदेश के कवि और गौरव हैं। परन्तु विहार के गौरवमय रत्न को बङ्गाली अपनाया चाहते हैं।

विनता=प्रजापति कश्यप की स्त्री और पक्षियों की माता। अरुण और गरुड़ नामक इसके प्रबल पराक्रमी दो पुत्र उत्पन्न हुए थे। पण में हार जाने के कारण इनको अपनी सौत कद्रू की ५० वर्ष तक दासी बन कर रहना पड़ा था। परन्तु गरुड़ ने अपने प्रयत्न से माता को दासी-बन्धन से मुक्त किया था।

विभीषण=(१) लङ्केश्वर रावण के छोटे भाई। रावण से अपमानित हो कर अपने कुलध्वंसाभिलाषी ये भगवान् रामचन्द्र की शरण गये थे, इन्हींके परामर्श से रामचन्द्र रावण का वध कर सके थे। रावण को मार कर रामचन्द्र जी ने इन्हें लङ्का का राज्य दिया था।

(२) ये काश्मीर के राजा थे। ये तृतीय गोनर्द के पुत्र थे। इन्होंने ५३ वर्ष ६ महीना काश्मीर का शासन किया था।

(राजतरङ्गिणी)

(३) ये काश्मीर के राजा थे। ये द्वितीय विभीषण कहे जाते थे। इनका राज्यकाल ३५ वर्ष ६ महीने था।

विम्बिसार=मगध के प्राचीन राजा। ये बुद्धदेव के समसामयिक थे। बुद्धदेव ने इन्हें बौद्धधर्म

में दीक्षित किया था । इनके पुत्र का नाम अजातशत्रु था ।

विराट=मत्स्यदेशाधिपति । पाण्डवगण इन्हीं के यहाँ अज्ञातवास में रहे थे । ये ऐश्वर्यशाली और पराक्रमी राजा थे । इनके साले का नाम कीचक था और वहीं इनका प्रधान सेनापति था । कीचक बड़ा भारी योद्धा था । उसने त्रिगर्तदेश के राजा सुशर्मा को परास्त कर के उनका राज्य ले लिया था । राज्यभ्रष्ट हो कर सुशर्मा दुर्योधन के आश्रय में हस्तिनापुर में रहते थे । भीम ने कीचक को मार डाला । कीचक के मारे जाने का वृत्तान्त चारों ओर फैल गया । सुशर्मा ने कौरव सेना के साथ विराट के दक्षिण गोगृह पर आक्रमण किया । परन्तु विराट उसके सामने ठहर नहीं सका । सुशर्मा विराट को क़ैद करने के लिये जा रहा था परन्तु युधिष्ठिर के कहने से भीम ने उन्हें छुड़ा दिया । उसी समय दुर्योधन एक बड़ी सेना ले कर विराट के उत्तर गोगृह पर चढ़ आया । अपने पराक्रम से अर्जुन ने कुरुसेना को मथ डाला और विराट की गौवों का उद्धार किया । अज्ञातवास की अवधि समाप्त होने पर विराट का पाण्डवों से परिचय हुआ । कुरुक्षेत्र के युद्ध में विराट ने सेना के साथ पाण्डवों की ओर से युद्ध किया था । ये युद्ध के १५वें दिन द्रोण के हाथ से मारे गये ।

(महाभारत)

विराध=राक्षस विशेष । वनवास के समय शरभङ्ग के आश्रम में जाते हुए श्रीरामचन्द्र ने इनको मारा था ।

विवेकानन्द=कलकत्ता के सिमूलिया नामक स्थान में स्वामी विवेकानन्द उत्पन्न हुए थे । इनके पिता का नाम विश्वनाथ दत्त था । वे कलकत्ता में हाई कोर्ट के एटार्नी थे । विश्वनाथ के तीन पुत्र थे । सब से बड़े का नाम नरेन्द्र, मध्यम का नाम महेन्द्र, और छोटे का नाम भूपेन्द्र था । विश्वनाथ दत्त के ज्येष्ठ पुत्र नरेन्द्र ही स्वामी विवेकानन्द थे ।

नरेन्द्र बाल्य काल में बड़ा खिलाड़ी था परन्तु दुष्ट नहीं था । बालकपने ही में स्मरण-शक्ति की अधिकता, प्रत्युत्पन्नमतित्व सरल-हृदयता आदि को देख लोग चकित हो जाया करते थे । नरेन्द्र को यह बात मालूम नहीं थी कि कुटिलता और स्वार्थपरता आदि किसका नाम है । अपने बन्धु बान्धव अथवा किसी पड़ोसी के किसी कष्ट को देख कर शीघ्र ही उसको कष्ट से उबारने का प्रयत्न करने लग जाते थे ।

यद्यपि नरेन्द्र खेल तमाशा परोपकार आदि कार्यों में लगे रहते थे तथापि इससे वे अपना काम कभी भूलते नहीं थे । बीस वर्ष की अवस्था में वे एफ़. ए. पास कर के बी. ए. में पढ़ने लगे इसी समय उनकी चित्तवृत्ति धर्म की ओर झुकी । धर्म किसको कहते हैं और कौन धर्म सत्य है इस बात को ढूँढ़ने के लिये उनका हृदय व्याकुल हो गया । हेष्टि साहब नामक एक पादड़ी थे । वे जनरल एसम्ब्ली कालेज के अध्यापक थे नरेन्द्र उन्हींके पास प्रति दिन घण्टों बैठ कर धर्मसम्बन्धी कथोपकथन करते थे । परन्तु इससे उनकी शङ्का नहीं मिटी । चारों ओर धार्मिकों की वञ्चकता देख कर वे नितान्त संशयात्मा हो गये । अन्त में हृदय का संशय दूर कर वे साधारण ब्रह्मसमाज में भर्ती हुए । जिस समय नरेन्द्र धर्मानुसन्धान के चक्कर में पड़ कर इधर उधर भटकते फिरते थे उसी समय रामकृष्णदेव परमहंस का उन्हें दर्शन हुआ । नरेन्द्र के एक मित्र परमहंस देव के शिष्य थे । वे ही नरेन्द्र को एक दिन दक्षिणेश्वर की काली बाड़ी में परमहंस देव के पास ले गये और परिचय करा कर बोले प्रभो ! यह छोकड़ा नास्तिक होता जा रहा है ।

परमहंस देव श्यामा विषयक और वेदतत्त्व-सम्बन्धी गीत बड़े प्रेम से सुनते थे । बहुत देर तक आलाप होने के अनन्तर गुरु की आज्ञा से नरेन्द्र के मित्र ने उन्हें गीत गाने के लिये कहा । नरेन्द्र का कण्ठ स्वर बड़ा ही मधुर और हृदय-ग्राही था । वे अपने मित्र के कहने से परमहंस देव के सामने गाने लगे । नरेन्द्र का गाना सुन कर परमहंस देव बड़े प्रसन्न हुए । उन्होंने नरेन्द्र से कहा नरेन्द्र तुम आया करो । परमहंस देव के कहने के अनुसार प्रायः ही नरेन्द्र

उनके यहाँ आते जाते थे और परमहंस देव से शङ्का समाधान करते थे । परमहंस देव जो कहते थे नरेन्द्र उसका युक्तियों से खण्डन कर दिया करता था । एक दिन परमहंस देव ने नरेन्द्र से कहा था, नारायण, यदि तुम हमारी बातें मानते ही नहीं हो तो फिर हमारे यहाँ आते क्यों हो । नरेन्द्र ने उत्तर दिया—मैं आपको देखने आता हूँ, आपकी बातें सुनने के लिये मैं नहीं आता ।

परमहंस देव के पास आने जाने से नरेन्द्र का सन्देह कुछ कुछ दूर होने लगा, इसी समय बी. ए. परीक्षा पास कर के वे कानून पढ़ने लगे । थोड़े दिनों के बाद नरेन्द्र के पिता का स्वर्गवास हो गया । पिता के मरने पर नरेन्द्र का स्वभाव बिलकुल बदल गया । वे परमहंस देव के समीप जा कर बोले—महाराज ! मुझे योग सिखाओ । मैं समाधिस्थ हो कर रहना चाहता हूँ आप मुझे उसकी शिक्षा दें । परमहंस देव ने कहा—नरेन्द्र ! इसके लिये चिन्ता क्या है । सांख्य, वेदान्त, उपनिषद् आदि धर्मग्रन्थों को पढ़ो आप ही सब सीख जाओगे । तुम तो बुद्धिमान् हो । तुम्हारे जैसे बुद्धिमानों से धर्म-समाज का बड़ा उपकार हो सकता है । उसी दिन से परमहंस देव के कहने के अनुसार नरेन्द्र धर्मग्रन्थ पढ़ने लगा और योग सीखने लगा ।

नरेन्द्र की माता अपने पुत्र को उदास देख उसका ब्याह कर देना चाहती थी, परन्तु नरेन्द्र ने किसी प्रकार स्वीकार न किया । सुना जाता है कि परमहंस देव ने नरेन्द्र के ब्याह की बात सुन कर काली जी से कहा था "मा ! इन उपद्रवों को दूर करो, नरेन्द्र को बचाओ "।

परमहंस देव की कृपा से नरेन्द्र महाज्ञानी संन्यासी हो गये । परमहंस देव के परलोक वास होने पर गुरु की आज्ञा से नरेन्द्र ने अपना नाम विवेकानन्द स्वामी रखा ।

परमहंस देव के देह त्याग करने के अनन्तर विवेकानन्द स्वामी हिमालय के आर्यावर्ती प्रदेश में जा कर योगसाधन करने लगे । दो वर्ष के बाद तिब्बत और हिमालय के अनेक प्रदेशों में वे घूमें । वहाँ से पुनः स्वामी जी राजपूताने के आबू पहाड़ पर आये, वहीं खेतड़ी महाराज के मन्त्री मुंशी जगमोहनलाल स्वामी जी के किसी भक्त के साथ उनके दर्शन के लिये आये । मुंशी जी ने जा कर खेतड़ी महाराज से स्वामी जी की विद्या बुद्धि आदि की प्रशंसा की । स्वामी जी की प्रशंसा सुन कर खेतड़ी के महाराज ने स्वामी जी के दर्शन करने की इच्छा की । मुंशी जी ने खेतड़ी महाराज की इच्छा स्वामी जी को जनायी, इससे महाराज के सम्मान रक्षा करने के लिये स्वयं स्वामी जी खेतड़ी गये । स्वामी जी से मुलाकात होने पर महाराज ने स्वामी जी से पूँछा—स्वामी जी ! जीवन क्या है । स्वामी जी ने उत्तर दिया—मानव अपना स्वरूप प्रकाशित करना चाहता है । और कतिपय शक्तियाँ उसको दबाने की चेष्टा कर रही हैं इन प्रतिद्वन्द्वी शक्तियों को परास्त करने के लिये प्रयत्न करना ही जीवन है । महाराज ने स्वामी जी से इसी प्रकार अनेक प्रश्न पूँछे और स्वामी जी से यथार्थ उत्तर पा कर बड़े ही प्रसन्न हुए । स्वामी जी के वे एकान्तभक्त हो गये । महाराज के कोई पुत्र नहीं था । उसी समय महाराज के हृदय में यह भाव उत्पन्न हुआ कि यदि स्वामी जी महाराज आशीर्वाद दें तो अवश्य ही वे पुत्र-वान् होंगे यही विचार कर स्वामी जी के जाने के समय महाराज ने बड़े विनय से कहा "स्वामी जी ! यदि आप आशीर्वाद दें तो हमको एक पुत्र हो " स्वामी जी ने अन्तःकरण से आशीर्वाद दिया । इसके दो वर्ष के बाद स्वामी जी के आशीर्वाद से महाराज के घर में एक पुत्र उत्पन्न हुआ ।

महाराज चाहते थे कि स्वामी जी के आशीर्वाद से पुत्र उत्पन्न हुआ है अतः स्वामी जी ही आ कर उसका जन्मोत्सव करें । महाराज ने स्वामी जी को ले आने के लिये मुंशी जगमोहनलाल को भेजा । उस समय स्वामी जी मद्रास में थे, परन्तु मद्रास में कहाँ इस बात का पता किसी को नहीं था । अस्तु बहुत खोज करने पर मुंशी जी ने स्वामी जी का दर्शन पाया उन्होंने खेतड़ी महाराज का अभिलाष

स्वामी जी से कहा उस समय सन् १८९३ ई० में अमेरिका में एक महाधर्म सम्मेलन होने वाला था। उस सभा में संसार भर के धर्म के प्रतिनिधि निमन्त्रित किये गये थे परन्तु हिन्दू धर्म का कोई प्रतिनिधि उस सभा में नहीं बुलाया गया था। उस सभा का शायद यह उद्देश्य था कि संसार के धर्मों से तुलना कर के ईसाई धर्म की श्रेष्ठता स्थिर की जाय। उस सभा के सभापति थे रेवरण्ड ब्यारो। ब्यारो साहब ने शायद समझा था कि हिन्दू मूर्ख बर्बर हैं उनको निमन्त्रण देना व्यर्थ है। इस अपमान को न सह कर कतिपय भारत सन्तानों ने स्वामी विवेकानन्द को वहाँ भेजना स्थिर किया और वे इसके लिये प्रबन्ध भी करते थे।

स्वामी जी ने मुंशी जगमोहनलाल से कहा कि इस समय तो मैं अमेरिका जाने का प्रबन्ध कर रहा हूँ अतएव महाराज के अनुरोध की रक्षा करने में मैं असमर्थ हूँ। मुंशी जी ने कहा—आपके जाने का सब प्रबन्ध महाराज कर देंगे आप निश्चिन्त रहें। अगत्या स्वामी जी ने जगमोहनलाल का कहना मान लिया। मद्रास के मित्रों से विदा हो कर स्वामी जी खेतड़ी आये। खेतड़ी के महाराज ने स्वामी जी का बड़ा आदर सत्कार किया। स्वामी जी चिकागो के धर्ममहामण्डल में धार्मिक गूढ़ रहस्यों को समझाने जाने वाले हैं, इससे महाराज बड़े प्रसन्न हुए।

स्वामी जी कुछ दिनों तक खेतड़ी में रहे, तदनन्तर आप अमेरिका जाने के लिये प्रस्तुत हुए। महाराज ने उनके अमेरिका जाने के आवश्यक प्रबन्ध कर दिये। महाराज की आज्ञा से मुंशी जगमोहनलाल जी बम्बई तक स्वामी जी को पहुँचाने के लिये गये और स्वामी जी का सब प्रबन्ध उनके अधीन हुआ।

बम्बई में जा कर मुंशी जगमोहनलाल ने सभी सामग्रियों का प्रबन्ध कर के स्वामी जी को जहाज़ पर बैठा दिया। स्वामी जी को बिदा करने के लिये जो लोग जहाज़ पर गये थे वे लौट आये। जहाज़ भी समुद्र को चीरता फाड़ता चला।

स्वामी विवेकानन्द चिकागो की धर्मसभा में हिन्दूधर्म के प्रतिनिधि बन कर गये, सही, परन्तु इन्हें उस सभा से निमन्त्रण नहीं मिला था। अमेरिका में इनका कोई परिचित भी नहीं था जहाँ जा कर स्वामी जी ठहरते, तथापि स्वामी जी अमेरिका के लिये प्रस्थित हुए।

यथासमय जापान होता हुआ जहाज़ अमेरिका के बन्दर में पहुँचा। अन्यान्य यात्रियों के समान स्वामी जी भी जहाज़ से उतर कर चिकागो शहर की ओर चले। स्वामी जी का वेशभूषा देख कर वहाँ के वासियों को बड़ा आश्चर्य हुआ। कौतुक वश हो कर लोग स्वामी जी की ओर देखने लगे और उनका परिचय पूँछने लगे। स्वामी जी ने भी अपने आने का पूरा पूरा वृत्तान्त उनसे कह सुनाया। उन पूँछने वालों में सभी बटोही ही नहीं थे, कतिपय गण्यमान्य व्यक्तियों ने स्वामी जी की विद्वत्ता और गुणों से आकृष्ट हो कर उन्हें अपने यहाँ ठहराया और उन लोगों ने धर्मसभा में स्वामी जी को भी निमन्त्रण देने के लिये उक्त सभा के सभापति ब्यारो साहब से अनुरोध किया। पहले तो ब्यारो साहब हीला हवाला करने लगे परन्तु पीछे से उन लोगों के विशेष दबाव डालने पर ब्यारो साहब ने स्वामी जी को निमन्त्रण दिया।

देखते देखते धर्मसभा के अधिवेशन का समय उपस्थित हुआ। इंग्लैण्ड और अमेरिका के प्रसिद्ध पण्डित, विख्यात धार्मिक और धर्म याजकों ने उस सभा में अपने धर्म की महिमा गायी। बङ्गाल के ब्राह्म समाज के प्रसिद्ध प्रचारक प्रतापचन्द्र मजूमदार (इस समय के स्वर्गीय) इस सभा में निमन्त्रित हो कर गये थे। उन्होंने भी इस सभा में व्याख्यान दिया।

ब्राह्मधर्म की वक्तृता समाप्त होते ही स्वामी विवेकानन्द व्याख्यान-मञ्च पर खड़े हुए। एक अपरिचित अज्ञातनामा संन्यासी इस समारोह में हिन्दूधर्म की विशेषता बतलाने के लिये खड़ा हुआ है—यह देख कर अन्यान्य विद्वान् चकित हो गये। औरों की बात क्या कही जाय, स्वयं प्रतापचन्द्र मजूमदार भी इससे आश्चर्यित हो गये।

स्वामी जी ने धीरे धीरे व्याख्यान देना प्रारम्भ किया और हिन्दूधर्म की विशेषता लोगों को समझा दीं । उन कट्टर युवकों की धारणा शीघ्र ही बदल गयी जो हिन्दूधर्म को बर्बर धर्म और पौत्तलिक धर्म समझे हुए थे ।

स्वामी जी की वक्तृताशक्ति शास्त्रज्ञान अकाट्य युक्ति और तर्कप्रणाली को देख कर विद्वन्मण्डली और साधुसमाज को चकित होना पड़ा था । चारों ओर से धन्य धन्य की बौछार आने लगी । समस्त अमेरिका में स्वामी जी की वक्तृता की प्रशंसा होने लगी । सब लोगों ने जान लिया कि स्वामी जी सत्य सत्य ज्ञानी पुरुष हैं । अमेरिका के सभी पत्रों ने स्वामी जी की प्रशंसा की ।

स्वामी जी की कीर्ति चारों ओर फैल गयी। अमेरिका के अन्यान्य स्थानों से वक्तृता देने के लिये स्वामी जी के पास निमन्त्रण आने लगे प्रायः दो वर्ष अमेरिका के अनेक स्थानों में व्याख्यान दे कर और धर्म की सार्वजनीनता समझा कर " हिन्दूधर्म ही आदि और सत्य है " यह बात अमेरिका वालों के हृदय में दृढ़रूप से अङ्कित कर अमेरिकावासी स्त्री पुरुषों को ब्रह्मचर्य अवलम्बन द्वारा वेदान्त शिक्षा दे कर और उनको धर्म प्रचार कार्य में नियुक्त कर के स्वामी जी अमेरिका से इंग्लैण्ड गये ।

स्वामी जी ने अमेरिका जा कर पहले ही वर्ष अमेरिकावासी मैडम लूइस और मिस्टर सैण्डेस वार्ग को ब्रह्मचर्य ग्रहण करा कर वेदान्त की शिक्षा दी । इस समय वे स्वामी अभयानन्द और स्वामी कृपानन्द नाम धारण कर के अमेरिका और यूरप में वेदान्त का प्रचार कर रहे हैं ।

स्वामी विवेकानन्द अपने कतिपय यूरोपीय शिष्यों के साथ सन् १८९६ ई० में इंग्लैण्ड से भारत आने के लिये प्रस्थित हुए । भारत आने के समय सिंहलवासियों की ओर उन्हें कोलम्बो में आने के लिये निमन्त्रण पत्र मिला । अतएव स्वामी जी सिंहल की ओर रवाना हुए ।

सिंहल की राजधानी का नाम कोलम्बो है । स्वामी विवेकानन्द जी कोलम्बो जा कर उपस्थित हुए । उस देश के बड़े बड़े विद्वान् और धनियों ने स्वामी जी का अभिवादन किया, सभी लोग स्वामी जी की वक्तृता सुनने के लिये लालायित हो रहे थे । कोलम्बो में वक्तृता दे कर स्वामी जी कान्दी नामक स्थान में गये । कान्दीनिवासियों ने स्वामी जी को एक अभिनन्दन पत्र दिया, स्वामी जी ने भी उसका उचित उत्तर दिया । तदनन्तर वहाँ के दर्शनीय स्थानों का दर्शन कर स्वामी दाम्बूल नामक स्थान में गये । इसी प्रकार सिंहल के अनेक स्थानों में जा कर स्वामी जी ने व्याख्यान दिया । वहाँ से स्वामी जी मद्रास सेतुबन्ध रामेश्वर होते हुए कलकत्ते आये । कलकत्ते में उनकी अभ्यर्थना के लिये बड़ी सभा हुई । कलकत्ते में कुछ दिनों रह कर वे तदनन्तर ढाका चट्टग्राम और कामरूप गये ।

सन् १९०० ई० में स्वामी जी पेरिस धर्म सभा से निमन्त्रित हो कर वहाँ गये । वहाँ तीन महीने रह कर वहाँ से जापान होते हुए स्वामी जी कलकत्ते लौट आये । इसी समय से उनका स्वास्थ्य बिगड़ने लगा । सन् १९०२ ई० में कलकत्ते के पास बेलूड़ मठ में स्वामी जी ने नश्वर शरीर का त्याग किया ।

विशनसिंह=जयपुर के एक महाराजा । इनके पिता का नाम महाराज रामसिंह था रामसिंह की मृत्यु होने पर विशनसिंह आमेर के राजा हुए । इन दिनों आमेर का गौरव प्रतिदिन क्षीण होता जाता था । अब दिल्ली के बादशाह के यहाँ उनका वह सम्मान नहीं रहा । इसी कारण विशनसिंह को " तीन हज़ारी मनसब " मिला था । परन्तु अभाग्यवश विशनसिंह ने बहुत दिनों तक राज्य सुख नहीं भोगा । महाराज विशनसिंह सं० १७५६ में बहादुरशाह के साथ काबुलियों को दमन करने के लिये काबुल गये और वहीं इनकी मृत्यु हुई ।

(टाड्स राजस्थान)

विशुद्धानन्द स्वामी=सन् १८०५ ई० में दक्षिण के कल्याणी ग्राम में स्वामी विशुद्धानन्द का जन्म हुआ था । इनके पिता का नाम सङ्गम-

लाल और माता का नाम य[illegible] था। सङ्गमलाल ब्राह्मण थे। आर्याव[illegible] के बौढ़ी नामक गाँव में इनके पितृ पिता[illegible] आदि का वास था। छोटी अवस्था ही [illegible] सङ्गमलाल के पिता मर गये। इस कारण [illegible]व छोड़ कर सङ्गमलाल दक्षिण के कल्याणी नामक गाँव में सबसुख नामक एक ब्राह्मण के यहाँ जा कर रहने लगे सबसुखराम नवाब मोहनशाह के सेनापति के यहाँ नौकर थे। सबसुख की एक बहिन [illegible] जिसका [illegible] यमुना का अभी तक व्याह नहीं हुआ था। अतएव सबसुख चाहते थे कि सङ्गमलाल से यमुना को व्याह दें। परन्तु इसके लिये सङ्गमलाल के कुल आदि का परिचय मिल जाना आवश्यक है। सबसुखराम ने गुप्तरूप से अनुसन्धान कर के यमुना को सङ्गमलाल से व्याह दी। इसी व्याह से स्वामी विशुद्धानन्द उत्पन्न हुए थे।

व्याह के बाद दो वर्ष के भीतर ही यमुना के दो लड़के हुए, परन्तु थोड़े दिन जी कर वे दोनों मर गये। स्वामीजी यमुना के तीसरे पुत्र हैं। इनकी एक वर्ष की अवस्था होने पर हवन यज्ञ आदि करा के सङ्गमलाल ने इनका नाम वंशीधर रखा। वंशीधर को मृगी का रोग था। अतएव पुत्र के जीवन से निराश होकर यमुना देवी सर्वदा चिन्तित रहा करती थी।

इसी प्रकार कुछ दिन बीत गये। एक दिन कल्याणी में एक क्षत्रिय स्त्री पति के साथ सती हो रही थी। कहते हैं सती स्त्री का अन्तिम आशीर्वाद मिथ्या नहीं होता। इसी कारण हज़ारों स्त्री पुरुष अपने पुत्र कन्याओं के लिये आशीर्वाद प्राप्त करने के अर्थ वहाँ जाते हैं। यहाँ भी वही हुआ था। यमुना देवी अन्यान्य स्त्रियों के साथ वंशीधर को ले कर वहाँ गयी। वंशीधर को देख कर यमुना से कहा—बहिन ! तुम बड़ी भाग्यवती हो। तुम्हारा पुत्र एक प्रसिद्ध योगी है। अकाल मृत्यु इसे स्पर्श भी नहीं करेगी। सती के आशीर्वाद से वंशीधर का मृगीरोग कुछ दिनों के लिये छूट गया। परन्तु पुनः वह ज्यों का त्यों हो गया।

जिस समय वंशीधर की अवस्था चार वर्ष की थी उस समय उसने एक दिन अपनी माता से कहा था—माँ मुझे पोथी दो। बालक बार बार यही कहने लगा। यमुना ने ला कर उसे एक पुस्तक दी, परन्तु बालक ने—यह हमारी नहीं है—कह कर उसे फेंक दिया और चिल्ला चिल्ला कर वह रोने लगा। सबसुख ने अनेक खिलौने आदि दे कर बालक को चुप कराया और एकान्त में उन्होंने उस बालक से पूछा—वंशी तुम पोथी क्या करोगे। वंशी ने कहा—पोथी लेने से हमारा रोग छूट जायगा और वह पोथी झोंपड़ी में है। बालक के मुख से यह अद्भुत बात सुन कर सबसुख ने पूछा—किसकी झोंपड़ी में ? वंशीधर ने इसका उत्तर कुछ भी नहीं दिया।

कल्याणी से १०। ११ कोस उत्तर की ओर कौशी नदी के सङ्गमस्थान पर प्रतिवर्ष चैत के महीने में एक मेला होता है। बहुत यात्री स्नान करने के लिये वहाँ प्रतिवर्ष जाते हैं। वहीं सङ्गम के पास ही एक झोंपड़ी में एक योगी रहते थे। सबसुखराम तथा उसके परिवार के समस्त लोग इस साल स्नान करने वहाँ गये थे। बालक वंशीधर उस झोंपड़ी को देखते ही बोल उठा—इसी झोंपड़ी में हमारी पोथी है। बालक की बात सुन कर सभी को आश्चर्य हुआ और सभी बालक को ले कर उस झोंपड़ी में आये तथा सबसुख ने योगी से कहा—महाराज ! यह बालक क्या कहता है, सो सुनिये। बालक थोड़ी देर तक तो उस योगी की ओर देखता रहा और बोला—हमारी पोथी इसी झोंपड़ी में है। योगी ने कुतूहल से पुस्तक ढूँढ़ने के लिये कहा। बहुत खोज करने पर सबसुखराम ने छाँद से एक हस्तलिखित पुरानी पुस्तक निकाली। उस पुस्तक को पा कर वंशीधर बड़ा ही आनन्दित हुआ।

अत्यन्त विस्मित हो कर उस कुटी में रहने वाले योगी ने कहा था—भाई ! ये हमारे गुरु हैं। जब हमारे गुरु जी बीमार पड़े थे तब उन्होंने हम से यही पुस्तक माँगी थी। उनका विश्वास था कि इस पुस्तक के पाते ही हमारा रोग दूर हो जायगा। परन्तु हमारे अभाग्य से

बहुत ढूँढ़ने पर भी यह पुस्तक हमें नहीं मिली । इस समय इस बालक के कार्य और अपने गुरु जी का अन्तिम हाल दोनों बातों को मिलाने से यही बात निश्चित होती है कि ये हमारे गुरु हैं । देखना ये एक बड़े भारी योगी होंगे । आश्चर्य तो यह है कि उस पुस्तक के पाते ही वंशीधर का रोग दूर हो गया।

वंशीधर पाँच वर्ष की अवस्था में एक भट्ट जी के यहाँ विद्याभ्यास करने के लिये बैठाया गया और उसको फ़ारसी पढ़ाने के लिये एक मौलवी साहब भी नियत किये गये । वंशीधर एक बार जो सुनते थे उसे याद कर लेते थे । इसी कारण भट्ट जी इनको श्रुतिधर कहा करते थे । वंशीधर की सात वर्ष की अवस्था में इनके पिता की मृत्यु हुई। उसके थोड़े ही दिनों के बाद इनकी माता भी परलोकगामिनी हुई । १३ वर्ष की अवस्था में मराठी और फ़ारसी पढ़ कर ये शास्त्र पढ़ने लगे । १६ वर्ष की अवस्था में अस्त्रविद्या और घोड़े पर चढ़ना इन्होंने सीखा । इसी समय नवाब को किसी व्यापारी ने एक घोड़ा भेंट किया । वह घोड़ा बड़ा ही बदमाश था। सवार उसको अपने वश में नहीं कर सकता था अतएव उसने स्वामी जी से उसे ठीक करने के लिये कहा, स्वामी जी ने घोड़े को ठीक तो कर दिया, परन्तु अधिक मार पड़ने और परिश्रम होने के कारण घोड़ा मर गया। नवाब साहब ने घोड़े के मरने का कारण वंशीधर ही को समझा, और उन्होंने वंशीधर को क़ैद कर दिया। थोड़े दिनों जेल में रहने के बाद स्वामी जी के भाव बिलकुल बदल गये। वे संसार की असारता का अनुभव करने लगे । इस प्रकार उनका हृदय वैराग्यपूर्ण हो गया । जेल से छूटने पर वंशीधर पुनः अपने मामा के यहाँ सुख से रहने लगा । एक दिन उन्होंने अपने मामा के नाम एक पत्र लिख कर रख दिया । उस पत्र में उन्होंने संसार की नश्वरता और अपने को न ढूँढ़ने का अनुरोध किया था। वंशीधर कल्याणी छोड़ कर नासिक आये । वहाँ एक नैष्ठिक ब्राह्मण से ब्रह्मचर्य ग्रहण कर के वे वेदाध्ययन करने लगे । इस समय वंशीधर की अवस्था १७ वर्ष की थी । कई वर्ष तक रह कर वंशीधर नासिक परित्याग कर पैदल ओङ्कारनाथ आये। यहाँ से वे उज्जयिनी में जा कर महाकालेश्वर के मन्दिर में पञ्चाक्षर मन्त्र का जप करने लगे । कहते हैं यहाँ पञ्चाक्षर मन्त्र जपने से लोगों का अभिलाष पूर्ण होता है। महाकालेश्वर के मन्दिर में अपने व्रत का उद्यापन कर के वंशीधर गवालियर आये । उस समय गवालियर राज्य में [illegible] में स्वामी जी पकड़े गये, परन्तु विचार होने पर उन्हें छुटकारा मिल गया ।

पुनः वंशीधर चित्रकूट आये और वहाँ कई वर्ष रह कर हरिद्वार और वहाँ से कनखल गये। कनखल में कुछ दिन रह कर वंशीधर बदरिकाश्रम गये। वहाँ विष्णुप्रयाग के किसी एकान्त स्थान में एक योगी रहते थे। वंशीधर ने उन्हीं योगी के पास रह कर योग सीखा। इस समय इनकी योगसाधन की इच्छा बलवती हुई । वे हृषीकेश चले आये । वहाँ गोविन्द स्वामी नामक एक योगी रहते थे, उनके निकट १५ वर्ष रह कर वंशीधर ने योग सीखा। वहाँ से ये काशी आये। उस समय काशी में गौड़ स्वामी नामक एक असाधारण महापुरुष काशी में दशाश्वमेध घाट पर रहते थे। वंशीधर ने उन्हीं से संन्यास ग्रहण किया तब से इनका नाम "विशुद्धानन्द सरस्वती" पड़ा।

इनके अतिरिक्त गौड़ स्वामी के और भी तीन शिष्य थे। उनमें विश्वरूप स्वामी सर्व-प्रधान और योग्य शिष्य थे। एक दिन विश्वरूप और विशुद्धानन्द में तर्क वितर्क होने लगा। यद्यपि उस शास्त्रार्थ में विशुद्धानन्द ही विजयी हुए, तथापि इन्होंने उस समय उग्रमूर्ति धारण की। यह देख गौड़ स्वामी बड़े दुःखित हुए और उन्होंने विशुद्धानन्द को समझाया। तब से विशुद्धानन्द विश्वरूप स्वामी को अपने बड़े भाई के समान समझते थे और उनकी बड़ी भक्ति करते थे।

गौड़ स्वामी का परलोकवास होने पर गुरु की आज्ञा से विशुद्धानन्द ही गद्दी पर बैठे।

इनके समय में इनके समान दर्शनों का पण्डित दूसरा नहीं था । दूर दूर देशों के दार्शनिक इनके यहाँ विचार करने के लिये आते थे । सन् १८९८ ई० में स्वामी जी का परलोक वास हुआ ।

विश्रवस्=कुबेर और रावण के पिता । इनके पिता का नाम महर्षि पुलस्त्य था ।

विश्वामित्र=विख्यात महर्षि । विश्वामित्र का जन्म राजकुल में हुआ था । वे गाधिराज के पुत्र थे । राजवंश में जन्म ले कर भी विश्वामित्र बड़ी कठोर तपस्या कर के महर्षि हो गये थे ।

एक बार राजा विश्वामित्र बहुत सी सेना ले कर वशिष्ठ के आश्रम में गये थे । वशिष्ठ ने अपनी धेनु की सहायता से राजा विश्वामित्र तथा उनके साथियों को खूब खिलाया पिलाया । राजा विश्वामित्र ने धेनु का यह प्रभाव देख कर वशिष्ठ से उस धेनु की याचना की । परन्तु वशिष्ठ ने धेनुदान करने के लिये अपने को असमर्थ बताया, तब राजा विश्वामित्र बल-पूर्वक उसे ले जाने लगे । वशिष्ठ की आज्ञा से कामधेनु ने असंख्य सेना की सृष्टि की जिससे विश्वामित्र परास्त हो गये । तदनन्तर विश्वा-मित्र के पुत्रों ने ऋषि पर आक्रमण किया, परन्तु वे भी ऋषि के शाप से नष्ट हो गये । तब विश्वामित्र ने समझा कि ब्राह्म और क्षात्र बल में कौन श्रेष्ठ है । अतएव वे अपने एक पुत्र को राज्य दे कर दिव्यास्त्र प्राप्त करने के लिये वन गये, वहाँ जा कर उन्होंने महादेव की आराधना की और उनसे धनुर्वेद प्राप्त किया । धनुर्वेद प्राप्त कर के विश्वामित्र ने पुनः वशिष्ठ पर आक्र-मण किया, परन्तु वशिष्ठ के ब्रह्मदण्ड के सामने विश्वामित्र को हार खानी पड़ी । तब विश्वा-मित्र ने समझा कि योगबल के सामने अस्त्र बल कोई चीज़ नहीं है । अतः राज्य छोड़ कर वे ब्राह्मणत्व लाभ के लिये तपस्या करने लगे । दक्षिण दिशा की ओर जा कर वे कठोर तपस्या करने लगे । उनकी तपस्या से प्रसन्न हो कर ब्रह्मा ने उन्हें राजर्षि का पद दिया, इसी समय राजा त्रिशंकु सशरीर स्वर्ग जाने की इच्छा से एक यज्ञ करना चाहते थे अतः वे वशिष्ठ के यहाँ गये । वशिष्ठ ने यज्ञ कराना अस्वीकार किया, तब राजा त्रिशंकु अपने गुरुपुत्रों के यहाँ गये, परन्तु गुरुपुत्रों ने भी इस कार्य में अपने को असमर्थ बतलाया । अगत्या राजा त्रिशंकु को राजर्षि विश्वामित्र के यहाँ जाना पड़ा । विश्वा-मित्र त्रिशंकु को सशरीर स्वर्ग में भेजने के लिये तैयार हुए । इस लिये विश्वामित्र और देवताओं में विवाद उत्पन्न हुआ । इस विवाद में विश्वामित्र को नीचा देखना पड़ा । आधे मार्ग में नक्षत्रमण्डल ही में त्रिशंकु को ठहरना पड़ा । इस प्रकार दक्षिण दिशा में तपस्या में विघ्न होने के कारण विश्वामित्र पश्चिम की ओर जा कर तपस्या करने लगे । परन्तु वहाँ भी विश्वामित्र को शुनःशेप के कारण अपने पुत्रों को शाप देना पड़ा । तदनन्तर ब्रह्मा के वर से ऋषित्व प्राप्त कर के विश्वामित्र ब्रह्मर्षि बनने के लिये कठिन तपस्या करने लगे । इसी समय विश्वामित्र के औरस और मेनका नाम की अप्सरा के गर्भ से शकुन्तला का जन्म हुआ । इन्द्रियलोलुपता के कारण तपस्या क्षय होने से विश्वामित्र बड़े दुःखी हुए और उन्होंने उस दिशा को भी छोड़ दिया वहाँ से उत्तर दिशा में आ कर हिमालय पर्वत के समीप कौशिकी नदी के तीर पर तपस्या करने लगे । वहाँ ब्रह्मा के वर से वे ब्रह्मर्षि हो गये । उनकी तपस्या में विघ्न डालने के लिये देवराज इन्द्र ने रम्भा नाम की अप्सरा को भेजा । विश्वामित्र ने उसे शाप दे कर पत्थर बना दिया । परन्तु उस स्थान पर भी विश्वामित्र जी महाराज नहीं ठहर सके, शाप देने के हेतु इनकी तपस्या में हानि हुई । अतएव वे पूर्व दिशा में जा कर वहाँ तपस्या करने लगे । वहाँ उन्हें तपःसिद्धि प्राप्त हुई । देवताओं के सहित आ कर ब्रह्मा ने उन्हें ब्राह्मण बनाया । अनन्तर वशिष्ठ के साथ भी उनकी मित्रता हो गयी । अयोध्या के राजा हरिश्चन्द्र की परीक्षा लेने के लिये उन्होंने उसे बड़ा कष्ट दिया था विश्वामित्र अपने यज्ञ-विघ्नों के नाश के लिये दशरथ से रामचन्द्र को माँग लाये थे । दशरथ की आज्ञा से राम लक्ष्मण को ले कर ताड़का के वन में आये । महर्षि ने राम

को बला और अतिबला अस्त्रविद्या की शिक्षा दी। इसी मन्त्रबल से राम ने ताड़का का नाश किया था । ताड़कावध होने के अनन्तर विश्वामित्र राम लक्ष्मण को ले कर मिथिलाधिपति जनक के यहाँ गये थे।

(रामायण)

विष्णु=हिन्दुवों के प्रधान तीन देवताओं में से एक देवता। इनके ऊपर सृष्टि की रक्षा का भार है। प्रजापति कश्यप के औरस और अदिति के गर्भ से इनकी उत्पत्ति हुई है । इनकी स्त्री का नाम लक्ष्मी है । ये सृष्टि के कल्याण के लिये युग युग में उत्पन्न होते हैं । पुराणों में इनके दश अवतारों की बात लिखी है।

विष्णुशर्मा=पञ्चतन्त्र नामक ग्रन्थ के प्रणेता।

विष्णुसिंह=बूँदी के राजा । इनको लोग प्रायः विशनसिंह कहा करते थे। इनके पिता का नाम अजितसिंह था । पिता के मारे जाने के समय ये बालक थे। अतएव इनके पितामह उमेदसिंह जो उस समय तीर्थयात्रा के लिये गये हुए थे उन्होंने एक धाभाई को राज्य शासन की सुव्यवस्था का उपदेश दे कर बालक राजा का अभिभावक नियत किया।

बालक राजा को लोग अपने अपने मत में ढालने के लिये विशेष प्रयत्न किया करते हैं, यह एक स्वाभाविक नियम सा हो गया है । राज्य के शुभचिन्तक राजा को सदुपदेश देते हैं और वे उसे प्रजारञ्जन में लगा कर लोक कल्याण करना चाहते हैं। मतलबी लोग राजा को अपने ढङ्ग में ढालने का प्रयत्न करते हैं। इस द्वन्द्वयुद्ध में अन्त में जय मतलबियों ही का होता है । विशनसिंह को भी यारों ने अपने फन्दे में फाँस लिया । उन लोगों ने समझ लिया था कि उमेदसिंह के समान चतुर राजनीतिज्ञ की देख रेख में रहने से अवश्य ही विशनसिंह से हम लोगों का स्वार्थ साधन नहीं हो सकेगा । अतएव जिस प्रकार हो इन पितामह और पौत्र में कलह उत्पादन करा देने ही से अपनी इष्टसिद्धि हो सकेगी, इसी प्रकार के विचार वालों ने षड्यन्त्र कर के और विशनसिंह को समझा बुझा कर अपने स्वार्थ साधन का मार्ग साफ कर लिया । विशनसिंह कुछ पढ़े लिखे तो थे ही नहीं, अतएव वे उनके कहने में आ गये और अपने पितामह से एक लेखक द्वारा कहला भेजा कि आप बूँदी छोड़ कर काशी में जा कर रहिये। उमेदसिंह के साथ विशनसिंह ने जो यह दुर्व्यवहार किया था इसका संवाद शीघ्र ही राजपूताने में फैल गया। इधर उमेदसिंह जाने की तैयारी करने लगे। उसी समय आमेरराज प्रतापसिंह का दूत उनकी सेवा में पहुँचा और उसने निवेदन किया कि जयपुर के राजा ने पुत्रभाव से प्रार्थना की है कि आप राजधानी में पधार कर हम लोगों को पवित्र करें। उमेदसिंह जी जयपुर गये।

महाराज प्रतापसिंह ने उमेदसिंह जी का जयपुर में बड़ा आदर किया । प्रतापसिंह को विशनसिंह पर बड़ा क्रोध आया था। उन्होंने श्री जी उमेदसिंह जी से कहा—यदि श्री जी अब भी राज्य शासन करना चाहते हों तो हमें आज्ञा दें हम इसी समय अपने बाहुबल और आमेर की समस्त सेना की सहायता से कोटा और बूँदी दोनों राज्यों को जीत कर आपके चरणों में अर्पण करूँ पवित्रात्मा श्री जी ने उत्तर दिया कि ये दोनों राज्य तो हमारे ही हैं एक में हमारा भतीजा राज्य करता है और दूसरे में हमारा पोता।

उमेदसिंह के बूँदी से चले जाने के थोड़े ही दिनों के बाद प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ मन्त्री ज़ालिमसिंह कार्यक्षेत्र में अवतीर्ण हुए। उन्होंने विशनसिंह को समझाया और अपने पितामह से क्षमा प्रार्थना करने के लिये उद्यत किया। ज़ालिमसिंह ने उमेदसिंह जी को आमेर से बूँदी ले आने के लिये लाला जी पण्डित को भेजा।

महात्मा उमेदसिंह जी शीघ्र ही बूँदी चले आये। दोनों के सम्मिलन से जैसे दृश्य देखने की सम्भावना की गयी थी उसे लोगों ने प्रत्यक्ष देखा। उमेदसिंह ने अपने पोते का आलिङ्गन कर के और उसके हाथ में तलवार दे कर कहा—यह तलवार लो, मैं तुम्हारा अनिष्ट चाहने वाला नहीं हूँ । यदि तुम्हारा विश्वास है कि मैं तुम्हारा अशुभचिन्तक हूँ तो इसी तलवार से

मेरे जीवन को समाप्त कर दो । मुझे वृथा कलङ्कित न करना । विशनसिंह चिल्ला चिल्ला कर रोने लगे और उन्होंने क्षमा प्रार्थना की । उमेदसिंह ने शीघ्र ही उसे क्षमा कर दिया, श्री जी उमेदसिंह के परलोकवास करने पर विशन-सिंह राज्य शासन करने लगे ।

अंग्रेज़ी गवर्नमेंट की सहायता करने के कारण इन्हें होलकर का कोपभाजन भी बनना पड़ा था । सब से प्रथम इन्होंने ही अंग्रेज़ी गवर्नमेंट से सन्धिबन्धन किया था । १७ वर्ष तक इन्होंने राज्य किया था । सन् १८२१ ई० के जुलाई महीने में इनका परलोकवास हुआ ।

(टाड्स राजस्थान)

विश्वम्भरनाथ=पण्डित विश्वम्भरनाथ जी का जन्म सन् १८३८ ई० की ७ वीं नवम्बर को दिल्ली में हुआ था । दिल्ली के काश्मीरी ब्राह्मणों में आपके पिता पण्डित बदरीनाथ जी बड़े प्रतिष्ठित और धनाढ्य थे । ब्राह्मण हो कर भी उस समय की प्रथा के अनुसार पण्डित विश्वम्भरनाथ जी ने प्रारम्भिक शिक्षा फ़ारसी में पायी । सब से पहले पं० विश्वम्भरनाथ जी ने एक मकतब में पढ़ा और विद्याध्ययन की ओर बड़ी अभिरुचि दिखायी । थोड़े ही समय के बीच में आपने फ़ारसी के अनेक अच्छे अच्छे ग्रन्थ देख डाले । इस समय नवीन दिल्ली कालेज की ओर नवयुवकों का ध्यान आकर्षित हो रहा था । कुछ लोग उसमें शिक्षा भी पा चुके थे । परन्तु कालेज खैराती था इस कारण अनेक लोग पहले उसमें पढ़ने के लिये अपने बालकों को भेजने में हिचकते थे, तो भी सन् १८४३ ई० में विश्वम्भरनाथ जी के पिता ने इनको उक्त कालेज में भरती कराया । इस कालेज में उन दिनों दो विभाग थे । एक विभाग में फ़ारसी और दूसरे विभाग में अंग्रेज़ी की शिक्षा दी जाती थी । पण्डित जी ने पहले चार वर्ष तक कालेज में फ़ारसी और अरबी की शिक्षा प्राप्त की । इनके अध्यापक इनकी योग्यता से बहुत प्रसन्न रहा करते थे । इस विभाग में कई पुरस्कार पा कर सन् १८४७ ई० में इन्होंने अंग्रेज़ी विभाग में प्रवेश किया । इस विभाग में भी आपने प्रशंसनीय उन्नति की । ६ वर्षों में विश्वम्भरनाथ जी ने अंग्रेज़ी साहित्य विज्ञान और इतिहास का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था । शेक्सपियर, मिल्टन, पोप, ड्राइडन, बेकन एडिसन, ह्यूम, एडमस्मिथ अवरक्राम्बी पैले मेकाले और एलफिन्स्टर आदि के अनेक ग्रन्थ उन्होंने देख डाले ।

सन् १८५३ ई० में उन्होंने कालेज छोड़ा । ज़िला आरा की जजी में उस समय एक अनुवादक की ज़रूरत पड़ी । दिल्ली कालेज के प्रधानाध्यापक ने इस पद के लिये विश्वम्भरनाथ जी को नामज़द किया ।

पण्डित जी दिल्ली में कितने ही प्रकार के प्रलोभनों के रहते, संसारयात्रा निबाहने के लिये इच्छा न रहने पर भी दुःख सहित दिल्ली छोड़ने पर विवश हुए । जजी में अनुवादक का काम आपने बड़ी योग्यता से सम्पादन किया और शीघ्र ही जज के प्रियपात्र बन गये । जज साहब उनके पढ़ने लिखने की योग्यता देख कर बहुत प्रसन्न हुए । जज के साथ बैठ कर आप प्रायः शेक्सपियर की रचनाएँ पढ़ा करते थे । एक दिन सन्ध्या के समय बैठे बैठे उस उदारमना जज ने कहा—आप इंग्लैंड जा कर विशेष शिक्षा प्राप्त करें मैं आपको विलायत आने जाने और पढ़ाई का खर्च दूँगा । परन्तु पण्डित जी ने बड़े नम्र भाव से इंग्लैंड जाना अस्वीकार किया । सन् १८५६ ई० में पण्डित जी के पिता का शरीरान्त हुआ । आपको आरा छोड़ कर पुनः दिल्ली आना पड़ा । इसके थोड़े ही दिनों बाद आप आगरे की जजी में भाषान्तर कर्ता नियुक्त हुए । इसी बीच में सन् १८५७ ई० का बलवा हुआ । बलवे के समय आप पुलिस विभाग में बक्सी के पद पर थे । परन्तु यह पद आपको पसन्द नहीं था ज्यों ही देश में पुनः शान्ति स्थापित हुई, त्यों ही आप सदर दिवानी अदालत में बेञ्च रीडर नियुक्त हुए । सन् १८५६ ई० में आप क़ानून की परीक्षा में उत्तीर्ण हुए और पुनः अनुवाद विभाग में काम करने लगे ।

अनन्तर जिस दिन से संयुक्त प्रदेश की अदालत खुली उसी दिन से आपने वकालत

आरम्भ की । अंग्रेज़ी और आईन में आपको पूर्ण ज्ञान तो था ही । आपने अपनी स्वाभाविक प्रतिभा के प्रभाव से इस कार्य में बहुत जल्द प्रसिद्धि प्राप्त कर ली २० वर्ष तक आपने वकालत की । आपके समकालीन प्रसिद्ध वकील सुप्रसिद्ध पं० अयोध्यानाथ और हनुमान्प्रसाद थे । संयुक्त प्रान्त में देशी जज नियुक्त करने की चर्चा चलने पर उस समय उस पद के लिये आपका भी नाम लिया गया था । सन् १८९३ ई० से शरीर की गड़बड़ी के कारण वकालत का काम आपने बहुत ही कम कर दिया था ।

पण्डित जी लोकहित के कामों में योग दिया करते थे । आपने शान्ति एवं गम्भीरता के साथ देश की बहुत कुछ सेवा की थी । पं० अयोध्यानाथ जी से पहले आप कांग्रेस में शामिल हुए थे । सन् १८८२ ई० की कांग्रेस जो प्रयाग में हुई थी, उसकी स्वागतकारिणी कमेटी के आप सभापति थे । शारीरिक निर्बलता रहते हुए भी उस समय आपकी स्पीच बड़े मार्के की हुई थी । इसके अनन्तर आप प्रान्तीय छोटे लाट की आईन सभा के सभ्य चुने गये । पश्चात् छ वर्ष तक आप भारत के बड़े लाट की सुप्रीम कौन्सिल में इस प्रान्त की ओर से प्रतिनिधि हो कर रहे । बड़े लाट की सभा में आपने जो व्याख्यान दिये वे आपके पक्के स्वाधीन तथा बुद्धिमत्तापूर्ण विचारों के ज्वलन्त दृष्टान्त हैं । जिस समय "राजद्रोह" सम्बन्धी पाण्डुलिपि सुप्रीम कौन्सिल के सामने स्वीकृति के लिये रखी गयी उस समय आपने ऐसे व्याख्यान दिये जिनकी सर्वत्र सराहना हुई ।

बड़े लाट की कौन्सिल से लौटने के पश्चात् आपने नेत्रों की रुग्णता के कारण एकान्त सेवन करना आरम्भ किया । परन्तु अत्यन्त आवश्यकता पड़ने पर और लोगों के विशेष अनुरोध करने से आपको समय समय पर कुछ कहना भी पड़ता था । कलकत्ता यूनिवर्सिटी की कान्वेन्शन वाली लार्ड कर्जन की अशान्तिकारिणी स्पीच का प्रतिवाद करने के लिये प्रयाग में जो सभा हुई थी, उसके सभापति आप ही बनाये गये थे । काशी की कांग्रेस में भी आप उपस्थित थे और एक छोटी सी वक्तृता भी आपने वहाँ दी थी ।

पण्डित विश्वम्भरनाथ जी का स्वभाव अत्यन्त सरल और भला था । प्रभाव डालने वाली कहावतें, छोटे छोटे क़िस्से, हँसी के निर्दोष चुटकुले तथा साहित्यालङ्कारों से युक्त शुद्ध उर्दू बोलने में आप कदाचित् अद्वितीय थे । इतिहास पर आपका प्रगाढ़ प्रेम था और दिल्ली की पुरानी बातों के तो आप मानो अटूट भाण्डार थे । दिल्ली के प्रसिद्ध उर्दू शायर ज़ौक़ ग़ालिब और मोमिन आदि आपके समकालीन थे और आप छात्रावस्था में इन लोगों के मुशायरे में सम्मिलित हो वहाँ का आनन्द लेते थे । पण्डित जी ने अपने जीवन काल में अंग्रेज़ी और उर्दू के असंख्य ग्रन्थ पढ़ डाले थे और पुस्तकावलोकन का व्यसन आपका अन्त तक कम नहीं हुआ था । समाचारपत्रों को आप निरन्तर पढ़ा करते थे । मान और नाम पाने की आपने कभी इच्छा नहीं की, परन्तु संयुक्त प्रान्त में जितना मान और नाम आपका हुआ उतना और किसीका नहीं । क्या नवयुवक, क्या वृद्ध, क्या हिन्दू, क्या मुसल्मान, सब आपका अत्यन्त सम्मान करते थे । विलायत जाने से प्रथम संयुक्त प्रान्त के प्रजाप्रिय छोटे लाट सर जेम्स डिगिस लाटूस पण्डित जी के घर पर मिलने के लिये गये थे । स्वभाव और रहन सहन की सरलता विविध विषयों के विशाल ज्ञान तथा अनुभव, चरित्र की शुद्धता और सत्यप्रियता के कारण पं० विश्वम्भरनाथ जी सब के आदरणीय थे । चाहे उनके जीवन में कोई विचित्र घटना न हो, परन्तु ज्ञानार्जन के लिये उनका निरन्तर प्रयत्न, उनकी सत्यप्रियता उनके चरित्र की पवित्रता और उनका पक्का स्वदेश प्रेम दूसरे के लिये आदर्श हैं । दुःख है कि ऐसे पुरुष अब इस संसार में नहीं रहे ।

बीजलदेव=ये यदुवंशी शालिवाहन के प्रथम पुत्र थे । एक समय सिरोही देवरा मानसिंह ने रावल शालिवाहन को अपनी कन्या देने का प्रस्ताव कर के उनके पास नारियल भेजा ।

शालिवाहन अपने ज्येष्ठ कुमार वीजलदेव को राज्य भार अर्पण कर के आप ब्याह करने के लिये सिरोही चले गये । उस समय वीजलदेव के धाभाई ने राज्य में यह संवाद प्रचारित करा दिया कि शालिवाहन बाघ के शिकार करते मारे गये। इस संवाद के प्रचारित होने पर उस धाभाई ने वीजलदेव को विधिवत् राज्य पर अभिषिक्त किया। वीजलदेव भी अपने धाभाई के कथनानुसार ही काम करता था । रावल शालिवाहन ने सिरोही से आ कर देखा कि उनका पुत्र राजशक्ति को धारण कर के दृढ़ भाव से सिंहासन पर बैठा है। पुत्र वीजलदेव ने पिता की कुछ भी भक्ति नहीं दिखायी । उसने कहला दिया कि जयसलमेर के सिंहासन पर आपका अब कोई अधिकार नहीं है, अतः जहाँ आपकी इच्छा हो आप जा सकते हैं। रावल शालिवाहन ने अपनी प्रजा को भी उसी राजा में जब अनुरक्त देखा तब आप वहाँ से चल दिये । वीजलदेव अपने पिता को निकाल कर बहुत दिनों तक राज्य सुख नहीं भोग सके । एक समय किसी द्वेष के कारण इन्होंने अपने धाभाई पर तलवार चला दी, धाभाई ने उसी प्रकार का उत्तर दिया। इससे वीजलदेव बहुत लज्जित हुआ और उसने आत्महत्या कर ली। (टाड्स राजस्थान)

वीरकेतु=पाञ्चालराज के पुत्र । ये महाभारत के युद्ध में पाण्डवों की ओर से युद्ध करते थे । इन्होंने उस युद्ध में बड़ी वीरता दिखायी थी, परन्तु अन्त में द्रोणाचार्य के हाथ से मारे गये।

बुधसिंह=बूँदी के एक राजा का नाम। ये अनिरुद्धसिंह के ज्येष्ठ पुत्र थे । पिता की मृत्यु के अनन्तर बुधसिंह को बूँदी का सिंहासन प्राप्त हुआ । उसी समय बादशाह औरङ्गज़ेब का जीवनान्त हो गया, यद्यपि बादशाह औरङ्गज़ेब शाहआलम ही को अपना अधिकारी बना गये थे, तथापि आज़िमशाह भी दक्षिणी सेना की सहायता से राज्य पाने के लिये प्रयत्न करने लगा । धौलपुर के रणक्षेत्र में दोनों ने अपने भाग्य की परीक्षा करना निश्चित किया । बुधसिंह इस युद्ध में शाहआलम के साथ थे। यह कहना कुछ भी अनुचित नहीं है कि बुधसिंह की वीरता ने ही शाहआलम के भाग्य को चमका दिया था। उस युद्ध में बुधसिंह ने प्रधान नेता के पद पर रह कर बड़ी वीरता प्रकाशित की थी।

जाजौ के युद्ध में भी हाड़ा वीर बुधसिंह ने असीम वीरता प्रकाश की थी इससे प्रसन्न हो कर शाहआलम ने इन्हें राव राजा की उपाधि दी थी । शाहआलम के स्वर्गवासी होने पर फ़र्रुख़सियर और दो सैयदों से युद्ध छिड़ा । जब बुधसिंह ने जान लिया कि अब फ़र्रुख़सियर का उद्धार होना कठिन है तब वे आत्मरक्षा के लिये राजधानी छोड़ कर भाग गये ।

महाराव बुधसिंह ने आमेर के महाराज जयसिंह की भगिनी को ब्याहा था। महाराज जयसिंह की वह बहिन इस शर्त से बुधसिंह को ब्याही गयी थी कि उसके गर्भ से जो पुत्र होगा वही सिंहासन पावेगा । परन्तु उसके कोई पुत्र ही नहीं उत्पन्न हुआ। अतः रानी ने महाराज बुधसिंह की अनुपस्थिति में अपने गर्भवती होने का संवाद प्रचारित किया और यथासमय दूसरे के पुत्र को ले कर अपने पुत्र होने का भी संवाद प्रकाशित करा दिया । बुधसिंह जब लौट कर राजधानी में आये तब वह लड़का उनकी गोद में दिया गया। महाराव को इस चक्र के समझने में देर नहीं लगी। उन्होंने यह वृत्तान्त महारानी के भाई जयपुर के महाराज जयसिंह को लिख भेजा। बूँदी जा कर जयसिंह ने इस बात की पूँछ ताछ की, रानी इससे बहुत बिगड़ीं और उन्होंने जयसिंह पर तलवार उठा कर वार करना चाहा। जयसिंह बच गये । उसी दिन से जयसिंह ने महाराव बुधसिंह को गद्दी से उतारने की ठान ली। इसके लिये जयसिंह ने चक्र भी रचा, जिसका फल भी हुआ। महाराव बुधसिंह ने पैतृक राज्य का उद्धार करने के लिये अनेक बार प्रयत्न भी किये थे परन्तु वे बराबर असफल होते गये। इससे राजधानी छोड़ कर वे अपनी ससुराल में रहने लगे और वहीं इनका शरीरान्त हुआ। महाराव बुधसिंह उमेदसिंह और दीपसिंह नामक दो पुत्र छोड़ गये थे। (टाड्स राजस्थान)

बुद्धदेव—विख्यात धर्मप्रचारक और भगवान् का दशवाँ अवतार । प्राचीन समय में हिमालय पर्वत की तराई में कपिलवस्तु नाम का एक नगर था । उस नगर में शाक्यवंशीय राजा शुद्धोदन की राजधानी थी । इस समय कपिलवस्तु "कोहना" नाम से प्रसिद्ध है ।

महाराज शुद्धोदन की पाँच महारानियाँ थीं, उनमें मायादेवी सर्वप्रधान थीं । मायादेवी के समान रूपवती और गुणवती दूसरी रानी नहीं थी, महाराज शुद्धोदन उसके अलौकिक रूप पर इतने मुग्ध थे, कि एक क्षण के लिये भी उसको अपनी आँखों की ओट में नहीं रहने देते थे । महाराज केवल उसकी सुन्दरता पर ही लट्टू थे यह बात नहीं है, उसकी कर्तव्यप्रियता आत्मसंयम धर्मनिष्ठा आदि सद्गुणों को देख कर भी महाराज स्वर्गीय सुख का अनुभव करते थे । यद्यपि महाराज शुद्धोदन अपनी सुगृहिणी के सद्गुणों से अत्यन्त सुखी थे, तथापि एक मनोहर आशा उनकी आँखों के सामने नाचा करती थी, इसी कारण उनके इतने सुखी होने पर भी उन्हें शान्ति नहीं थी, बीच बीच में उनके सभी सुख फीके पड़ जाते हैं । सती स्त्रियाँ कभी भी, यहाँ तक कि एक क्षण भी अपने पति का दुःख नहीं देख सकतीं, स्वामी की निन्दा नहीं सुन सकतीं । स्वामी को सुखी करने के लिये ही वे सदा प्रयत्न किया करती हैं । एक दिन मायादेवी ने महाराज को दुःखी देख कर पूँछा—नाथ ! आज कल आपको बहुत दुःखी देखती हूँ । शरीर तो अच्छा है ? महाराज ने मायादेवी को उत्तर दिया था—प्रिये ! यद्यपि मैं शरीर से अच्छा हूँ, परन्तु एक मानसिक कष्ट से मैं व्याकुल हो रहा हूँ । यदि पुन्नामक नरक से मेरा उद्धार नहीं हो सका, तो इस वैभव और राज्य से क्या लाभ ? मायादेवी ने स्वामी से उत्तर सुन कर जब देखा कि इस दुःख का दूर करना मेरी शक्ति से बाहर है, तब उन्होंने पति से कहा—महाराज ! जो वाक्य के द्वारा प्रकाशित नहीं किया जाता है किन्तु जिसके द्वारा वाक्य प्रकाशित होता है आप उसकी आराधना करें । मन के द्वारा जिसकी चिन्ता नहीं हो सकती परन्तु जिससे मन चिन्ता करता है आप उसकी आराधना करें । जो चक्षु के द्वारा नहीं देखा जा सकता किन्तु जिसके द्वारा चक्षु देखते हैं आप उसकी आराधना करें । जो कानों द्वारा नहीं सुना जा सकता किन्तु जिसकी सहायता से कान सुनते हैं आप उसकी आराधना करें । आपकी कामना सिद्ध होगी । मायादेवी के उपदेश से राजा को ज्ञान हुआ और उसी समय से वे परब्रह्म की उपासना करने लगे ।

भगवान् भक्तों की अभिलाषा सर्वदा पूर्ण करते हैं । एक दिन मायादेवी अपने प्रमोदगृह के छत पर सखी के साथ बातचीत करती हुई सो गयीं । वहाँ उन्होंने एक विलक्षण स्वप्न देखा । एक श्वेत छः दाँत का सुन्दर हाथी सूँड़ में एक श्वेत कमल लिये आया और शनैः शनैः रानी के पेट में घुस गया । रानी की निद्रा खुली, बहुत प्रसन्न हो कर उन्होंने अपने स्वप्न का वृत्तान्त राजा से कहा । महाराज ने उसी समय शकुनज्ञ ज्योतिषियों को बुलवाया । ज्योतिषियों ने स्वप्न सुन कर कहा—महाराज ! एक महापुरुष मायादेवी के गर्भ से उत्पन्न होने वाला है । वृद्धावस्था में पुत्र होने की सम्भावना देख महाराज और महारानी दोनों बहुत प्रसन्न हुए ।

यथासमय मायादेवी का गर्भ पूर्ण हुआ उसी समय उन्होंने एक दिन अपने पिता के घर जाने की पति से आज्ञा माँगी । राजा अपनी गर्भवती स्त्री का मनोरथ पूर्ण करने के लिये सर्वदा प्रस्तुत रहा करते थे, इसी कारण उनकी इच्छा न रहने पर भी उन्होंने महारानी का कहना मान लिया । शुभ दिन और शुभ मुहूर्त में यात्रा हो इस लिये राजा ने ज्योतिषियों से मुहूर्त निकलवाया । उसी दिन पिता के घर जाने के लिये मायादेवी प्रस्थित हुईं । महारानी प्राकृतिक सौन्दर्य को देखना बहुत अधिक पसन्द करती थीं । जिस समय लुम्बिनी नामक उपवन के पास से इनकी सवारी जाती थी उस समय उन्होंने वन की शोभा देखने के लिये रथ रुकवाया और वे वहाँ उतर पड़ीं ।

उस वन में बहुत देर तक इधर उधर घूमने से थक कर महारानी एक वृक्ष के नीचे बैठ कर विश्राम करती थीं उसी समय उन्हें प्रसव-वेदना होने लगी । वहीं महारानी ने एक सुलक्षण पुत्र उत्पन्न किया । महाराज इस सुसंवाद को सुनते ही प्रसूति को राजमहल में ले आये । आज राजभवन में एक स्वर्गीय आनन्द की तरङ्गें लहरा रही हैं ।

महाराज शुद्धोदन पुत्र को देख कर प्रसन्न हुए थे सही, परन्तु वह प्रसन्नता एक विशेष घटना से किरकिरी हो गयी । पुत्रजन्म के सातवें दिन मायादेवी का स्वर्गवास हो गया। नवजात शिशु दिन दिन बढ़ने लगा । महाराज ने अपने पुत्र का नामकरण और अन्नप्राशन संस्कार बड़े समारोह से किया । पुत्र के उत्पन्न होने से राजा और रानी की सब कामनायें सिद्ध हुई थीं, इस कारण शुद्धोदन ने अपने पुत्र का नाम " सर्वार्थसिद्ध " रखा ।

सिद्धार्थ अलौकिक बुद्धि के बल से थोड़े ही दिनों में समस्त विद्याओं के ज्ञाता हो गये । अन्यान्य बालकों के समान वे खेल तमाशे में लगे रहना पसन्द नहीं करते थे । समय पाते ही एकान्त में जा कर वे ईश्वर-चिन्तन में निमग्न हो जाते थे । एक दिन अपने कतिपय साथियों के साथ सिद्धार्थ गाँव देखने गये । मार्ग में उन्होंने एक निर्जन वन देखा । साथियों को छोड़ कर वे वहीं घूमने लगे । बहुत देर तक घूमने के कारण श्रान्त हो कर राजकुमार एक वृक्ष के नीचे बैठ गये । उपयुक्त स्थान देख कर उनका चित्त ईश्वर-प्रेम में मग्न हो गया । राजा शुद्धोदन ने कुमार को नहीं देखा तब वे चारों ओर कुमार को ढुँढ़वाने लगे । उसी समय एक मनुष्य ने आ कर कुमार का पता बतलाया । राजा स्वयं उस वन में आये और कुमार को उस अवस्था में देख कर चकित हो गये । बहुत आदमियों के आने के कोलाहल से राजकुमार का ध्यान भङ्ग हुआ । पिता को पास खड़े देख कर वे लज्जित हुए और उन्हीं के साथ घर लौट आये ।

यौवनावस्था के प्रारम्भ में पुत्र की ऐसी दशा देख कर शुद्धोदन ने शीघ्र ही कुमार का ब्याह कर देना निश्चित किया । विवाह के विषय में कुमार की सम्मति जानने के लिये राजा ने प्रधान मन्त्री को आज्ञा दी । सिद्धार्थ ने सातवें दिन उत्तर देने के लिये कह कर मन्त्री को बिदा किया । " विवाह करना चाहिये कि नहीं ? " इस विषय को ले कर उन्होंने छः दिनों तक विचार किया । अन्त में यह निश्चित हुआ कि वन में रह कर धर्म पालन करना कुछ कठिन नहीं है । परन्तु संसाराश्रम में रह कर अनेक पापमय प्रलोभनों से अपनी रक्षा कर धर्म पालन करना अत्यन्त कठिन है, तथापि गृही हो कर हमें धर्म पालन करना ही पड़ेगा इस लिये विवाह करना ही उचित है । सातवें दिन सिद्धार्थ ने मन्त्री से कहा—ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य अथवा शूद्र चाहे किसी की कन्या क्यों न हो, परन्तु जो गुणवती होगी उसीसे मैं अपना ब्याह करूँगा । जो कन्या गुण, सत्य और धर्म में बड़ी है वही हमारे लिये श्रेष्ठ है । जिस कन्या में ईर्ष्या नहीं है जो सर्वदा सत्यवादिनी है रूपवती और यौवनवती होने पर भी जिसे अपने रूप यौवन का अभिमान न हो, इसी प्रकार की कन्या से मैं ब्याह करूँगा ।

मन्त्री ने राजकुमार का अभिप्राय महाराज से कहा । राजकुमार ब्याह करना चाहते हैं यह सुन कर महाराज शुद्धोदन बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने कुमार की अभिमत कन्या ढूँढ़ने के लिये ब्राह्मणों को नियत किया । एक ब्राह्मण ने आ कर महाराज से कहा—मैं कुमार के योग्य कन्या देख आया हूँ वह दण्डपाणि शाक्य की कन्या है । अन्य ब्राह्मणों ने भी इसी प्रकार के संवाद दिये । किसी ने एक, किसी ने दो, किसी ने तीन इसी प्रकार कई कन्याओं का संवाद राजा ने पाया सभी अपनी देखी कन्याओं की प्रशंसा करने लगे । यह देख कर मन्त्री ने ब्राह्मणों से कहा—मैं चाहता हूँ कि स्वयं कुमार ही गुणवती कन्या को पसन्द कर ले, इसके लिये एक उपाय किया जाना चाहिये । सोना चाँदी मूँगा आदि विविध रत्नों का अशोकभाण्ड कुमार आमन्त्रित कन्याओं

को देंगे, उस समय जिस कन्या पर कुमार की दृष्टि पड़ेगी उसीका वरण किया जायगा। इस बात को उचित जान कर महाराज शुद्धोदन ने राज्य में घोषणा करा दी कि आज के सातवें दिन कुमार सिद्धार्थ आमन्त्रित कुमारियों को अशोकभाण्ड देंगे । उस समय कुमारियों को उपस्थित होना चाहिये । नियत दिन आ पहुँचा। कुमार रत्नसिंहासन पर बैठ कर अशोकभाण्ड बाँटने लगे। इस समय कुमार के मानसिक भाव जानने के लिये महाराज ने वहाँ गुप्तचर नियुक्त किया । अशोकभाण्ड बाँटा जाने लगा। एक एक कुमारी सिद्धार्थ के सामने खड़ी होती और उसकी सहचरी उसका गुण वंश आदि का वर्णन करती । वर्णन के अन्त में अशोकभाण्ड दिया जाता।

अशोकभाण्ड का बाँटा जाना समाप्त हो गया । इसी समय दण्डपाणि की कन्या गोपा ने कुमार के समीप आ कर अशोकभाण्ड की प्रार्थना की । उस समय अशोकभाण्ड शेष हो गया था कुमार ने गोपा से कहा—सुन्दरि ! तुम सब के अन्त में क्यों आयी हो यह कह कर उन्होंने अपनी अगूँठी दे दी।

सिद्धार्थ ने गोपा की पवित्र मूर्ति देख कर उसके साथ विवाह करने की इच्छा प्रकाशित की। पुत्र ने गोपा का वरण किया है यह सुन कर महाराज शुद्धोदन अत्यन्त प्रसन्न हुए । महाराज ने दण्डपाणि के निकट दूत भेज कर सम्बन्ध स्थिर करवाया । अनन्तर दोनों पक्षों के मत स्थिर हो जाने पर १६ वर्ष की अवस्था में बड़े समारोह के साथ गोपा के साथ राजकुमार का व्याह सम्पन्न हुआ।

विवाह को हुए कई वर्ष बीत गये । गोपा ने सोचा था कि स्वर्गीय मधुर प्रेम और सेवा यत्न से स्वामी को प्रसन्न कर के शान्ति और सुख से दोनों की जीवन-नौका को संसार समुद्र से पार करूँगी । महाराज शुद्धोदन ने सोचा था कि पुत्र को राज्य दे कर निश्चिन्त हो कर अन्तिम जीवन भगवान् की चिन्ता में बिताऊँगा । परन्तु इस संसार में किसकी इच्छा पूर्ण हुई है । एक दिन कामिनीकण्ठ-निःसृत गान सुन कर सिद्धार्थ की निद्रा भङ्ग हुई। निद्रा भङ्ग होने पर बड़ी सावधानी से वे उस ज्ञानपूर्ण गान को सुनने लगे। उस गान के सुनने से उनका हृदय पिघल गया। वे जीवन की अनित्यता पर विचार करने लगे। इस अनित्य संसार में निश्चय ही कोई नित्य पदार्थ है, जिसको पाने से मनुष्य को शान्ति प्राप्त होती है । इस प्रकार की चिन्ता से दिन रात उनका हृदय डाँवा डोल रहा करता था।

एक दिन राजकुमार सिद्धार्थ गाड़ी पर चढ़ कर उत्तर द्वार से निकल कर घूमने जाते थे। उस समय उन्होंने देखा कि एक वृद्ध चला जा रहा है, उसके केश पक गये हैं शरीर पर सिकुड़न पड़ गयी है हाथ पैर काँपते हैं दाँत गिर गये और कमर नवी हुई है । उसको देखते ही युवराज का चित्त व्याकुल हो गया। युवराज ने सारथि से पूँछा—छन्दक ! यह कौन जन्तु है, मैंने तो ऐसा कभी नहीं देखा था। सारथि ने विनीत भाव से उत्तर दिया—युवराज ! यह वृद्ध मनुष्य है, वृद्धावस्था आने पर सभी की यही दशा होती है । वृद्धावस्था में शरीर की शक्ति जाती रहती है, इन्द्रियाँ अपने अपने कामों में असमर्थ होजाती हैं । प्राणिमात्र की यही दशा होती है । यह सुन कर राजकुमार का चित्त चञ्चल हो गया। उन्होंने कहा—ओह, हम लोग कैसे मूर्ख हैं। यौवन मद से उन्मत्त हो कर शरीर की भावी अवस्था की ओर एक बार भी नहीं देखते । अब मैं घूमना नहीं चाहता लौट चलो। घर आने पर सिद्धार्थ की चिन्ता और भी बढ़ गयी ।

इस घटना के कुछ दिनों के बाद सिद्धार्थ ने प्रमोदवन जाने की इच्छा प्रकाशित की। छन्दक पहले ही कुमार का अभिप्राय जानता था अतः उसने पहले ही दक्षिण तोरण द्वार पर उस दिन रथ खड़ा किया था । दक्षिण तोरण द्वार से प्रमोदवन जाते समय रास्ते में कुमार ने देखा कि एक मनुष्य वमन कर रहा है तथा मारे यन्त्रणा के छटपटा रहा है । उस मनुष्य की अवस्था को देख कर कुमार ने सारथि से पूँछा-छन्दक ! यह मनुष्य ऐसा क्यों करता है। छन्दक

ने बड़ी नम्रता से उत्तर दिया—प्रभो ! यह मनुष्य रोगी है, रोग के कष्ट को नहीं सह सकने के कारण इसकी यह दुर्दशा हो रही है । प्राणी का जीवन सर्वदा एक रूप से नहीं रहता । हम लोगों की भी कभी न कभी यही अवस्था होने वाली है । सारथि की बातें सुन कर सिद्धार्थ घर लौट आये ।

और एक दिन पश्चिम तोरणद्वार से घूमने के लिये सिद्धार्थ बाहर निकले । भाग्यवश उन्होंने मार्ग में देखा कि कतिपय मनुष्य एक मनुष्य के मृत शरीर को वस्त्र में लपेटे ले जा रहे हैं और कतिपय उसके पीछे रोते चिल्लाते चले जा रहे हैं । इस शोकमय दृश्य को देख कर सिद्धार्थ की आँखें पानी से भर गयीं उन्होंने पूछा—छन्दक ! यह मनुष्य कपड़े में क्यों लपेटा गया है, और उसके साथी इस प्रकार चिल्ला क्यों रहे हैं ।

सारथि ने उत्तर दिया—कुमार ! इसके प्राण-वायु निकल गये हैं । इस निर्जीव शरीर को अग्नि में जलाने के लिये वे ले जा रहे हैं । इस संसार में वह अब देखा नहीं जायगा इसी कारण उसके साथी रोते हैं । कुमार ने फिर पूछा—छन्दक ! क्या सभी की मृत्यु होती है ? और सभी क्या इसी प्रकार रोते हैं । सारथि ने पुनः उत्तर दिया, हाँ इस पाञ्चभौतिक शरीर का यही परिणाम है । जिस प्रकार वृक्ष का फल अवश्य ही एक दिन गिरता है, उसी प्रकार जन्म ग्रहण करने पर एक न एक दिन मृत्यु भी अवश्य ही होगी । जिस प्रकार नदियाँ सर्वदा समुद्र की ओर दौड़ी जा रही हैं, उसी प्रकार यह जीव भी सर्वदा काल समुद्र की ओर अग्रसर हो रहा है । आप इस संसार में जिधर देखें उधर ही केवल क्रन्दन ही क्रन्दन दिखायी और सुनायी पड़ेगा । महाराज की अटारी से ले कर दरिद्र के झोंपड़े तक, तापस के आश्रम से ले कर विलासी के सुसज्जित विलास भवन तक, विचार कर देखने से केवल हाहाकार ही सुनायी पड़ता है । रोने के सिवाय इस संसार में और कुछ नहीं है । मालूम पड़ता है कि रोने के लिये ही हम लोगों का जन्म हुआ है ।

कुमार सारथि की बातें सुन कर लौट आये उसी दिन शय्या पर पड़े पड़े वे सोचने लगे । काल ! तुमने यह महाशक्ति कहाँ पायी, जिधर देखो उधर तुमहीं दीख पड़ते हो । जो तुम्हारे चपेटे में पड़ा उसीको तुमने धर दबाया । कौन कह सकता है कि जो आज हँस रहा है, जिसकी आँखें आनन्द छटा से पूर्ण हैं, उसीको तुम कल नहीं रुलादोगे उसका आँखें विपाक्त जल से पूर्ण न होंगी । काल ! क्या इस संसार में तुम्हारे शासन से कोई छुटकारा पा सकता है ?

एक दिन और सिद्धार्थ घूमने के लिये पूर्व तोरणद्वार से बाहर गये । थोड़ी दूर जाने पर उन्होंने एक संन्यासी को देखा । उसकी सौम्य-मूर्ति, सर्वाङ्गविभूतिभूषित, हाथ में कमण्डलु तथा धर्मचिन्ता में आसक्ति देख कर राजकुमार ने सारथि से पूछा—छन्दक ! ये कौन हैं ? छन्दक ने उत्तर दिया—कुमार ! ये संन्यासी हैं, इन्होंने बन्धु बान्धव, गृहविषयवासना आदि को छोड़ कर जीवन उत्सर्ग किया है । संसार के सभी मनुष्य इनके आत्मीय हैं, और भिक्षा ही इनकी जीविका है ।

सारथि की बात सुन कर कुमार बड़े आनन्द से बोले—इतने दिनों पर मैंने जाना है कि इस संन्यासी के समान होने पर इस संसार में मनुष्य सुखी हो सकता है । छन्दक ! रथ लौटाओ, अब घूमने की आवश्यकता नहीं है । रथ लौट आया । घर आ कर सिद्धार्थ सो गये । उनके चित्त में अनेक प्रकार की चिन्ता उत्पन्न होने लगी ।

अनेक प्रकार की चिन्ता करने के अनन्तर सिद्धार्थ ने संसाराश्रम का त्याग करना ही निश्चित किया । किन्तु पिता और स्त्री से छिप कर चले जाने पर उनको बहुत कष्ट होगा यह सोच कर उन्होंने अपना मत स्त्री और पिता से कहलाया । पुत्रवत्सल महाराज शुद्धोदन पुत्र के इस प्रस्ताव को सुनते ही अवाक् हो गये । उन्हें बोलने तक की शक्ति नहीं रही । बहुत देर के बाद उन्होंने कहा—बेटा ! संसार छोड़ने से तुम्हें क्या लाभ है । तुम्हें कष्ट क्या है तुम्हारे पास क्या नहीं है ? तुम अतुल ऐश्वर्य के अधिकारी हो ।

कितने दास दासी तुम्हारी आज्ञा पालने के निमित्त उत्कण्ठित हैं। गुणवती और रूपवती गोपा तुम्हारे जीवन की सहचरी है, फिर तुम किस दुःख से संसार को छोड़ कर वन जाने के लिये प्रस्तुत हो। तुमको पा कर मैंने स्वर्ग पाया है, तुम्हारे पाने ही से मैं अपनी प्राणसमा पत्नी को भूल गया हूँ तुम्हीं हमारे सर्वस्व हो यदि तुम हमको छोड़ कर जावो तो हमारा जीना कठिन है। यह कहते कहते महाराज मूर्च्छित हो कर गिर गये। सिद्धार्थ भी कुछ क्षण तक पिता के दुःख से दुःखित हुए। पुनः उन्होंने पिता को इस प्रकार समझाया। पिता! यदि आप व्याधि और मृत्यु से हमारी रक्षा कर सकें तो मैं कभी संसार न छोड़ूँगा। पुत्र की बातें सुन कर महाराज अकचका कर बोले—बेटा! प्रकृति के नियम को लङ्घन करने की किसमें शक्ति है। बड़े बड़े योगी कठिन तपस्या कर के व्याधि और मृत्यु से रक्षा नहीं पाते। वे भी प्रलोभनमय संसार को धर्मसाधन के विरोधी जान कर निर्जन गिरिकन्दरा में अथवा वृक्षराजिसमाकुल वन में साधन करते थे। परन्तु क्या वे मृत्यु से बच गये। बेटा! मेरी बात मान लो मुझे छोड़ना नहीं। सिद्धार्थ ने कहा—इस अनित्य संसार की घटनावलियों पर जब हम निविष्टचित्त से विचार करते हैं तब स्वभावतः यह प्रश्न उपस्थित होता है कि इस अनित्य संसार में नित्य कौन है? हमारा सदा का साथी अपना पदार्थ कौन है? इन प्रश्नों के उदय होते ही बन्धु बान्धवों की प्रीति नष्ट हो जाती है। सांसारिक माया शिथिल हो जाती है। संसार की अनित्यता पर विचार करना ही धर्माङ्कुर है। मकान को गिरते देख कर जिस प्रकार मकान में रहने वाले उसे छोड़ कर निरापद स्थान ढूँढ़ते हैं। उसी प्रकार जरा मरण संकुल इस संसार की अनित्यता देख कर बुद्धिमान् मनुष्य उसे छोड़ देते हैं। आप मुझे आज्ञा दें मैं सदानन्दमय शोक ताप जरा मरण शून्य निर्विकल्प अमृतधाम की ओर जाऊँ। गोपा ने भी बहुत समझाया, परन्तु सिद्धार्थ ने कुछ भी नहीं सुना।

इस घटना के कुछ दिनों के बाद सिद्धार्थ को एक पुत्र हुआ, जिसका नाम राहुल रखा गया। पुत्र पर अधिक प्रीति उत्पन्न होने के कारण और उद्देश्य भ्रष्ट होने के भय से उन्होंने उसी रात को घर छोड़ने का निश्चय किया। आधी रात बीत जाने पर सिद्धार्थ शय्या त्याग कर धीरे धीरे गोपा के घर में गये। उन्होंने देखा दुग्धफेन सदृश शय्या पर गोपा सो रही है, उसके वाम भाग में कुमार राहुल सोता है। सिद्धार्थ कुछ देर तक टकटकी लगाये ही पुत्र को देखते रहे पुनः वे बोले—यह बालक जिस अलौकिक माधुर्य का प्रतिबिम्ब है, न मालूम उसकी मधुरता कितनी है। इसी प्रकार गोपा के विषय में भी कुछ देर तक वे सोचते रहे। अन्त में मन ही मन माता पिता को उद्देश्य कर के प्रणाम किया और छन्दक के अतिरिक्त और सबसे छिप कर २८ वर्ष की अवस्था में सिद्धार्थ नित्य वस्तु को ढूँढ़ निकालने के लिये निकले। ये कई घण्टों तक लगातार चलने पर सूर्योदय के पहले "अनोमा" नदी के तीर उपस्थित हुए। वहाँ घोड़े से उतर कर रत्नजटित अपने वस्त्र आभूषण आदि उतार कर उन्होंने छन्दक को दे दिये। तुम हमारे वृद्ध पिता माता को समझाना, यह कह कर सिद्धार्थ ने उसे लौटा दिया।

छन्दक को लौट आने पर सिद्धार्थ निष्कण्टक हो गये। उन्होंने अपनी तलवार से सुन्दर केशों को काट डाला। इसी प्रकार कुछ दूर और जाने पर उन्होंने एक व्याध को देखा। उस व्याध को उन्होंने अपना वस्त्र दे दिया और उन्होंने उसके वस्त्र स्वयं ले लिये। ओह, कैसा विलक्षण परिवर्तन है। सूर्योदय के पहले जो राजराजेश्वर था, वही मनुष्यों के मङ्गल के लिये आज वनवासी भिक्षुक हुआ। पिता का अतुल वैभव, राज्य, धन, ऐश्वर्य, रूपवती और गुणवती भार्या तथा बालक शिशु सब को एक ओर रख कर संसार के मनुष्यों को मुक्त करने के लिये राजकुमार ने संन्यास ग्रहण किया।

सिद्धार्थ दरिद्र के वेश में इधर उधर घूमते वैशाली नामक नगर में आये। वहाँ उन्होंने एक

पण्डित से हिन्दू शास्त्रों का अध्ययन किया । वहाँ मनोरथ पूर्ण न होने के कारण वे राजगृह आये और वहाँ रुद्रक नाम एक ऋषि के शिष्य हुए । इस समय राजगृह में मगधेश्वर बिम्बिसार राज्य करते थे ।

अपने गुरुओं से शास्त्र और योगप्रणाली सीख कर कौण्डिन्य, वाप्पा, भद्रीय, महानाम और अश्वजित् नामक अपने पाँच शिष्यों के साथ सिद्धार्थ गया प्रान्तवर्ती उरुविल्व नामक ग्राम में आये । उस स्थान की प्राकृतिक शोभा देख कर सिद्धार्थ बड़े प्रसन्न हुए । उन्होंने उस शान्तिपूर्ण स्थान को तपस्या के लिये उचित समझा । वहीं निरञ्जन नदी के तीर पर वे घोर तपस्या करने लगे । इस स्थान पर छः वर्ष तक उन्होंने तपस्या की । कहते हैं इन छः वर्षों में वे कभी तिल कभी तण्डुल खा लिया करते थे । इस कठिन तपस्या के कारण उनका सुन्दर शरीर कङ्कालमात्रावशिष्ट हो गया । इस प्रकार कठोर व्रत करने पर भी इष्टसिद्धि नहीं हुई । यदि इस प्रकार थोड़े दिन और रहें तब प्राणान्त होना निश्चित है और ऐसी स्थिति में अभिलषित की प्राप्ति नितान्त असम्भव है । यह सोच कर वे कुछ कुछ आहार करने लगे । उरुविल्व ग्राम की रहने वाली स्त्रियाँ प्रायः ही उनके दर्शन के लिये आश्रम में आती थीं, उनमें कतिपय श्रद्धा स्त्रियाँ सिद्धार्थ के भोजन का जुगाड़ किया करती थीं । पुनः भोजन करने के कारण सिद्धार्थ का शरीर सबल हो गया । इस प्रकार गुरु को भोजन करते तथा सबल होते देख उनके पाँचों शिष्य वहाँ से चले गये । उन मूर्खों ने गुरु को भ्रष्टयोग समझ लिया ।

पाँचों शिष्यों के चले जाने पर सिद्धार्थ बड़े दुःखित हुए । इस समय अनेक प्रकार की चिन्ता उनके हृदय को डाँवाँडोल करने लगी । राज्य, ऐश्वर्य, धन, गौरव, संसार, सुख, आत्मीय स्वजन आदि की स्मृति उनके सामने आने लगी । चलने के समय का पिता का कष्ट, माता की अश्रुधारा गोपा का विरह मुख की स्मृति ने उन्हें अधीर कर डाला । यद्यपि इस समय वे अधीर हो गये तथापि वे अपनी प्रतिज्ञा से पश्चात्पद नहीं हुए, इन विघ्नों को दूर करके वे उरुविल्वग्राम से कुछ दूर एक वट वृक्ष के नीचे आसन जमा कर बैठ गये और पुनः बड़े उत्साह से कठोर तपस्या करने लगे । भक्तवत्सल दयामय ने भक्त की परीक्षा कर के जब देखा कि यह भक्त अपने निश्चय से हटने वाला नहीं है, तब उन्होंने हृदय के अन्धकार को दूर कर के ज्ञान प्रकाशित कर दिया । उनके सुख का निर्वाण, दुःख का निर्वाण, इन्द्रियों का निर्वाण और इच्छा का भी निर्वाण हो गया उन्होंने बौद्धत्व प्राप्त कर लिया । जिस वृक्ष के नीचे उन्होंने सिद्धि प्राप्त की थी वह बोधिद्रुम के नाम से प्रसिद्ध हुआ । इस समय वह स्थान बोधगया के नाम से प्रसिद्ध है । सिद्धार्थ ने शाक्यवंश में सब से श्रेष्ठ स्थान अधिकार किया था इस कारण वे शाक्यसिंह कहे जाने लगे । बौद्धत्व प्राप्त करने के कारण वे बुद्ध भी कहे जाने लगे ।

स्वयंमुक्त हो कर बुद्धदेव जीवन का दूसरा उद्देश्य साधन के लिये उद्यत हुए । अज्ञानी मनुष्यों को मुक्ति का मार्ग बतलाना ही उनके जीवन का दूसरा उद्देश्य था । इस उद्देश्य को सिद्ध करने के लिये वे मृगदाव नामक स्थान में आये । यह स्थान काशी से तीन मील उत्तर की ओर है । इस समय यह स्थान "सारनाथ" नाम से प्रसिद्ध है । वहाँ उन्होंने पूर्व पाँच शिष्यों को नूतन धर्म में दीक्षित किया । उनको नये धर्म में दीक्षित होते देख और भी सात आदमियों ने इस नये धर्म को ग्रहण किया । प्रथम ही शिष्यों की अधिक संख्या देख कर बुद्धदेव बड़े प्रसन्न हुए । उन्होंने अपने शिष्यों को बौद्ध धर्म प्रचार करने के लिये कहा । धर्म प्रचार करने के समय इनके शिष्य कहते थे कि अपनी उन्नति करना ही बौद्ध धर्म का उद्देश्य है । उस उद्देश्य का साधन करने के लिये दयावृत्ति का परिचालन करना आवश्यक है । सद्दृष्टि, सत्सङ्कल्प, सद्वाक्य, सद्व्यवहार और सदुपाय से जीविका अर्जन करना आदि धर्मार्जन के उपाय हैं । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र आदि सभी जातियों को अपनी उन्नति करने के लिये एक जाति होना आवश्यक है ।

अपने शिष्यों को बौद्ध धर्म का प्रचार करने के लिये कह कर स्वयं बुद्धदेव राजा बिम्बिसार की सभा में आये और तर्क तथा युक्तिद्वारा उनको समझा कर नये धर्म में दीक्षित किया। राजा को नया धर्म ग्रहण करते देख उनकी प्रजाओं ने भी उस धर्म को ग्रहण किया, बुद्धदेव कितनों ही से निन्दा और कितनों ही से स्तुति सुनते हुए बड़े उत्साह से अपने नये धर्म का उपदेश करने लगे। शनैः शनैः उनका नाम चारों ओर व्याप्त हो गया। महाराज शुद्धोदन ने अपने पुत्र को दिव्य ज्ञानी हुआ जान कर उसको कपिलवस्तु में ले आने के लिये आठ दूत भेजे। परन्तु वे उनके उपदेश की मोहिनी शक्ति से मुग्ध हो कर उसी नये धर्म में दीक्षित हो गये। इन दूतों में से सिद्धार्थ का संवाद ले कर कोई देश को लौट गया और कोई उन्हींके साथ रहने लगा। उन्हीं दूतों में चरक नामक एक राजमन्त्री था। वह मगध से देश को लौट गया और उसने इस प्रकार महाराज को संवाद दिया। महाराज! सिद्धार्थ अब राजमहल में नहीं रहेंगे। आप उनके रहने के लिये एक मठ बनवा दें। वे तीन चार महीने के मध्य ही में यहाँ आवेंगे। मन्त्री के कहने से महाराज ने न्यग्रोध नामक स्थान में एक मठ बनवा दिया।

सिद्धार्थ मगध में अपना उद्देश्य पूर्ण कर के पिता की अभिलाषा पूर्ण करने के लिये कपिलवस्तु में आये। उनके देश में आने पर हज़ार हज़ार आदमी उनके दर्शनों के लिये आने लगे। महाराज शुद्धोदन बहुत दिनों पर पुत्र को देख कर बड़े आनन्दित हुए। उन्होंने राजभवन में रहने के लिये पुत्र से कहा, परन्तु सिद्धार्थ ने वहाँ रहना स्वीकृत नहीं किया। कपिलवस्तु में जा कर सिद्धार्थ ने पिता के बनाये मठ में वास किया और अनायास प्राप्त अन्न के द्वारा जीविका निर्वाह करने लगे।

बहुत दिनों पर स्वामी देश में आये हैं यह सुन कर गोपा चार दासियों को सङ्ग ले कर पतिदर्शन करने के लिये न्यग्रोध मठ में गयी, गोपा की सङ्गिनियों में से एक ने कहा—देव! जिस दिन से आपने इस नगरी को छोड़ा उसी दिन से आपकी स्त्री इस यौवनावस्था में कठोर ब्रह्मचर्य अवलम्बन कर के अनाहार और अनिद्रा से दिन काट रही है, इनके कष्टों को देख कर पाषाण भी गल जाता है। इस कार्य से इनको विरत करने की अनेकों ने चेष्टा की परन्तु फल कुछ भी नहीं हुआ। बुद्धदेव चुप हो कर उसकी कथा सुनते रहे। अन्त में उन्होंने धर्मोपदेश द्वारा अपनी स्त्री को शान्त किया। गोपा के आत्मसंयम करने पर बुद्धदेव ने उसे भी अपने धर्म में दीक्षित कर लिया था।

एक दिन अपने पुत्र राहुल को कपड़े लत्ते पहना कर गोपा ने कहा—बेटा राहुल! तुम अपने पिता के पास जा कर अपनी पैतृक सम्पत्ति के विषय की बातें पूछ लो। राहुल माता के कहने से एक दासी के साथ पिता के पास न्यग्रोध मठ में गया। उसने प्रणाम करके पिता से कहा—पिता! आज आपके दर्शन से हम धन्य हुए। आप हमें हमारी पैतृक सम्पत्ति की बात बतलाईं। मेरी माता ने ऐसा ही कहा है। बुद्धदेव पुत्र की बातें सुन कर उसके साथ इधर उधर की बातें करने लगे जिससे वह पैतृक सम्पत्ति की बात भूल जाय। परन्तु पुत्र के बार बार अनुरोध करने पर बुद्धदेव ने अपने शिष्य सरीपुत्र को बुला कर कहा—सरीपुत्र! राहुल अभी बालक है। साधन द्वारा हमने जो धन एकत्र किया है उसको प्राप्त कर इसने नष्ट भ्रष्ट कर दिया। इस समय इसको उपदेश देना चाहिये, पीछे अवस्था प्राप्त होने पर इसे बौद्ध धर्म की दीक्षा दी जायगी। सरीपुत्र ने गुरुदेव की बातें सुन कर कहा—हाँ, यही उत्तम होगा। राहुल पिता से उपदेश प्राप्त कर घर लौट आया। सिद्धार्थ प्रायः डेढ़ महीने तक कपिलवस्तु में रहे और पिता तथा अन्यान्य मनुष्यों के साथ धर्मचर्चा करते रहे। तदनन्तर धर्म प्रचार के लिये पुनः वे बाहर घूमने चले। इसी समय आनन्द, देवदत्त, कपाली और अनिरुद्ध को सिद्धार्थ ने बौद्धधर्म में दीक्षित किया।

बुद्धदेव वर्ष में आठ महीने देश विदेश में घूम घूम कर धर्म प्रचार करते और चार महीने

अर्थात् वर्षाकाल में मठ में रह कर शिष्यों को उपदेश देते। जिस समय वे श्रावस्ती के निकट पूर्वाराम नामक स्थान में रहते थे उसी समय किसी धनी की कृष्णा नाम की पतोहू का पुत्र मर गया। सन्तान के प्रति माता का प्रेम अत्यन्त प्रबल होता है। माता अपने पुत्रवियोग से कातर हो कर सिर पटक पटक रो रही थी उसी समय एक भिक्षु द्वार पर आ कर खड़ा हुआ। कृष्णा ने द्वार पर आये हुए संन्यासी को खिड़की से देखा, लज्जा और भय को छोड़ कर वह बाहर निकल आयी और साधु के पैर पकड़ कर कहने लगी। महाराज! आप लोगों में दैवी शक्ति होती है। हमारा एकमात्र पुत्र इसी समय मर गया है आप उसे मन्त्रबल से जीवित कर दें। साधु ने उत्तर दिया। मृत मनुष्य को जिला देने की शक्ति मुझे अभी तक प्राप्त नहीं हुई है। यदि आप अपने मृत पुत्र को ले कर हमारे गुरु के निकट जा सकती हों तो वहाँ आपको सञ्जीविनी ओषधि मिलेगी। कृष्णा साधु के कहने से बुद्धदेव के समीप गयी, और अपना सब हाल कह कर उसने अपने मृत पुत्र के लिये सञ्जीविनी ओषधि की प्रार्थना की। बुद्धदेव ने कहा वत्स! मैं इसकी उत्तम ओषधि जानता हूँ। परन्तु एक वस्तु की आवश्यकता है जो हमारे पास नहीं है, यदि तुम उसे ला दो तो तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण हो जायगी, कृष्णा ने बड़ी व्यग्रता से पूछा–प्रभो! वह कौन वस्तु है? हमारे घर में किसी वस्तु का अभाव नहीं है, सोना रूपा हीरा आदि जो आप कहें वही मैं ला दूँ।

बुद्धदेव ने कहा–हमें उन वस्तुओं की आवश्यकता नहीं है। एक मुट्ठी यदि सरसों तुम ले आ सको तो तुम्हारा पुत्र अभी जी उठे। परन्तु बात यह है कि जिस घर में कभी कोई मरा न हो उसी घर से सरसों ले आना। कृष्णा सरसों ले आने के लिये चली। पुत्र के पुनर्जीवन की आशा से उसने लोकलज्जा छोड़ कर पगली के समान घर घर एक मुट्ठी सरसों माँगी। वह जिस घर में जा कर सरसों माँगती, वहाँ उसे बहुत सर्षप मिलता। परन्तु जब वह पूछती कि आपके यहाँ किसी की मृत्यु तो नहीं हुई, तब कोई तो अपने पुत्र की, कोई पिता की–इसी प्रकार किसी न किसी की मृत्यु की बात कहता। इससे वह दूसरे द्वार पर चली जाती। सब घरों में इसी प्रकार शोकवार्त्ता सुन कर और बुद्धदेव के अभीप्सित सर्षपों को न पा कर कृष्णा दुःखित हो कर बुद्धदेव के समीप आयी। बुद्धदेव ने पूछा–सर्षप ले आयी हो? कृष्णा ने उत्तर दिया नहीं प्रभु, वैसे सर्षप कहीं नहीं मिलते। तब बुद्धदेव ने कृष्णा से कहा–काल ने केवल तुम्हारे पुत्र ही का हरण नहीं किया है। इस प्रकार के अनेक माता पिता इस संसार में हैं जो तुम्हारे समान कष्टसमुद्र में निमग्न हैं। पुत्रि! तुम शोक छोड़ो, और जरा व्याधि के हाथ से मुक्ति प्राप्त करो। बुद्ध के उपदेश से कृष्णा पुत्रशोक भूल गयी। उसने कहा–प्रभो! मैं आपके शरणागत हुई हूँ। बुद्धदेव ने उसको अपने नवीन धर्म में दीक्षित कर लिया।

एक दिन बुद्धदेव खप्पर हाथ में लिये भिक्षा करते करते भरद्वाज नामक वणिक् के द्वार पर उपस्थित हुए। भरद्वाज ने बुद्धदेव को भिक्षा करते देख कर कहा–ऐ श्रमण! तुम देखने में तो बड़े हृष्ट पुष्ट मालूम पड़ते हो, फिर भिक्षा क्यों माँगते हो। तुम स्वयं परिश्रम न कर दूसरे के परिश्रम से उपार्जित धन अनायास ही प्राप्त करना चाहते हो। तुम क्या जानते नहीं कि अन्न कितने कष्ट से उत्पन्न होता है। हम लोग कड़ी, धूप और वृष्टि में अनेक कष्ट उठा कर खेत बोते हैं और अन्न उत्पन्न करते हैं, तुम विना काम किये ही उसमें भाग बटाना चाहते हो। तुम्हें उचित है कि तुम हम लोगों के समान परिश्रम करो। तुम्हारे समान जब हृष्ट पुष्ट मनुष्य भीख माँगेगा, तब अन्धे लँगड़ों की क्या गति होगी। मैं तुम्हें भूमि देता हूँ तुम उसे जोत बो कर उसीसे जीविका करो।

बनिये की बातें सुन कर बुद्धदेव बोले–तुम्हारा कहना ठीक है, मैं भी भूमि जोतता हूँ, परन्तु मेरा जोतना किसी दूसरे प्रकार का है। हमारी भूमि और शस्य भी विलक्षण है। मानव हृदय ही हमारी भूमि है, ज्ञान हमारा हल है, विनय

उसका फाल है और उद्यम तथा उत्साह ये दोनों बैल हैं। हृदयरूपी भूमि को जोत कर विश्वासरूपी बीज बो दिया जाता है, इस बीज के अङ्कुरित होने पर निर्वाणरूपी अन्न उत्पन्न होता है। इसी अन्न से हमारी तृप्ति होती है।

बुद्धदेव की महदर्थसूचक बातें सुन कर भरद्वाज अपने निष्ठुर वाक्य के लिये पश्चात्ताप करने लगा। उसने क्षमा प्रार्थना करके दीक्षा ग्रहण की।

बुद्धदेव धर्म प्रचार के लिये जब बाहर गये हुए थे तब उन्होंने सुना कि महाराज शुद्धोदन बहुत बीमार हैं। इस संवाद को सुन कर वे अपने शिष्यों के साथ पिता के दर्शन के लिये गये। जिस समय वे राजभवन में उपस्थित हुए उस समय महाराज शुद्धोदन की अवस्था शोचनीय थी। वे मृत्युशय्या पर सोये हुए थे, पुत्र के मुख से धर्मोपदेश सुनते सुनते उन्होंने शरीर त्याग किया। बुद्धदेव ने पिता की अन्त्येष्टि क्रिया की। वहाँ उन्होंने औरों को भी अपने धर्म में दीक्षित किया।

४८ वर्ष धर्म प्रचार करने के अनन्तर अस्सी वर्ष की अवस्था में ५३४ खी० के पूर्व कुशीनगर में किसी शाल वृक्ष के नीचे उदरामय रोग से बुद्धदेव का शरीर पात हुआ। एक समय शिष्यों के साथ वे राजगृह से कुशीनगर जा रहे थे, अकस्मात् मार्ग में उन्हें उदरामय हो गया। बुद्धदेव ने उसी समय समझ लिया कि इस रोग से छुटकारा पाना कठिन है। इस लिये उन्होंने अपने शिष्यों को आगे चलने के लिये निषेध किया। शिष्यों ने शाल वृक्ष के नीचे गुरुदेव की शय्या तैयार कर दी और वे शुश्रूषा करने लगे। बुद्धदेव क्रमशः दुर्बल होते गये, अन्त में वहीं उनका शरीर त्याग हुआ। मृत्यु के समय उन्होंने अपने शिष्यों को चार उपदेश दिये।

(१) वत्स! चक्षु, कर्ण, नासिका और जिह्वा को सर्वदा वश में रखना। इन्द्रियों को वश में रखने से शीघ्र ही निर्वाण राज्य की प्राप्ति होती है।

(२) हे भिक्षुगण! तुम अपने को स्वयं ही जागृत करना। अपनी परीक्षा स्वयं करना। इसी प्रकार सावधान और अपने द्वारा रक्षित होने पर तुम लोग सुखी हो सकोगे। पाप नहीं करना। सत्कार्य में सर्वदा तत्पर रहना। दूसरों का हृदय संशोधन करना।

(३) जिस प्रकार जल से कीचड़ उत्पन्न होता है, और जल ही द्वारा वह धो भी दिया जाता है उसी प्रकार मन ही से पाप उत्पन्न होते हैं और मन ही के द्वारा उनका नाश भी होता है।

(४) जिस प्रकार छाया मनुष्यों को त्याग नहीं करती उसी प्रकार जिनकी चिन्ता वाक्य और कार्य पवित्र हैं उनका त्याग सुख और शान्ति कभी नहीं करते।

बुद्धदेव ने शिष्यों को ये चार उपदेश दे कर योगावलम्बन से शरीर त्याग किया। उनके निर्वाण प्राप्त होने पर शिष्यों ने चन्दन काठ से उनकी चिता बनायी। भिक्षुओं ने उनका चिता भस्म सुवर्ण पात्र में रख कर राजगृह, वैशाली, कपिलवस्तु, अलकासुर, रामग्राम, अन्यद्वीप, पावया और कुशीनगर इन आठ स्थानों में ले आये और भूमि में गाड़ कर वहाँ एक चैत्य बनवाया।

वृत्रासुर=प्रबल पराक्रान्त असुर। इसने स्वर्ग से इन्द्र को हटा कर उस पर अपना अधिकार कर लिया था। महर्षि दधीचि की अस्थि से निर्मित वज्र द्वारा इन्द्र ने इसका नाश किया था।

(महाभारत)

वृन्दावनदास=शेखावाटी के अन्तर्गत खण्डेला राज्य के अधीश्वर। जिस समय वृन्दावनदास खण्डेला राज्य के अधीश्वर हुए उस समय आमेर के सिंहासन के लिये ईश्वरीसिंह और माधवसिंह में प्रबल युद्ध की अग्नि प्रज्वलित हो गयी थी। वृन्दावनदास पहले ही से माधवसिंह का पक्ष समर्थन करते थे और सामर्थ्य के अनुसार उनकी सहायता भी करते थे। जिस समय माधवसिंह को आमेर का सिंहासन मिला उस समय उन्होंने वृन्दावनदास के पूर्व उपकारों को स्मरण कर के उनका भी उपकार करना चाहा। वृन्दावनदास ने प्रार्थना की कि खण्डेला राज्य दो अधीश्वरों के अधीन है अतएव उनमें सर्वदा झगड़ा होता ही रहता है। यदि वह समस्त प्रदेश एक के

अधीन हो जाय, यह रोज का झगड़ा भी मिट जाय। इस समय खण्डेला के अन्यान्य अंशों के अधीश्वर इन्द्रसिंह थे। माधवसिंह ने वृन्दावनदास जी की प्रार्थना के अनुसार इन्द्रसिंह को भगाने के लिये पाँच हज़ार सेना आमेरराज ने वृन्दावनदास को दी। उस सेना ने इन्द्रसिंह पर आक्रमण किया। इन्द्रसिंह भी कई महीने तक प्रबल पराक्रम के साथ लड़ते रहे परन्तु अन्त में जब इन्होंने प्रबल शत्रुओं के ग्रास से रक्षा पाना कठिन समझा तब वे क़िला छोड़ पारासोली नामक स्थान को चले गये वृन्दावनदास ने वहाँ भी उन पर आक्रमण किया। अब इन्द्रसिंह ने दूसरी गति न देख कर आत्मसमर्पण कर दिया। परन्तु उसी समय एक ऐसी विचित्र घटना हुई जिससे इन्द्रसिंह ने अपना और अपने राज्य का भी उद्धार कर लिया। आमेरराज की पाँच हज़ार सेना को वेतन देने का भार वृन्दावनदास ही पर था। परन्तु वृन्दावनदास के पूर्व पुरुष खजाने की रक्षा नहीं कर सके थे इस कारण वृन्दावनदास को सेना का वेतन चुकाने के लिये किसी दूसरे उपाय का अवलम्बन करना पड़ा। वृन्दावनदास ने सर्वसाधारण प्रजा से और विशेषतः देवालयों से दण्ड लेना प्रारम्भ किया। अन्यायपूर्वक उसने ब्राह्मणों से दण्ड लिया था इस कारण वे क्रुद्ध हो कर उसको धिक्कारने लगे। परन्तु वृन्दावनदास ने कुछ भी ध्यान नहीं दिया क्योंकि इस समय किसी उपाय से धन ग्रहण करना ही उसने निश्चित किया था, बलपूर्वक कर ग्रहण करते देख कर चिर प्रचलित रीति के अनुसार ब्राह्मण लोग आत्मघात करने के लिये उद्यत हुए। परन्तु तो भी उसने ध्यान नहीं दिया। अब क्या था। धड़ाधड़ उसके सामने ब्राह्मणों के मस्तक कटने लगे। वृन्दावनदास ब्रह्महत्या के दोष से दूषित हुए और जातिच्युत हुए। आमेरपति ने इस बात को सुनते ही अपनी सेना बुला ली और ब्राह्मणों को बुला कर उन्हें बीस हज़ार रुपये उन्होंने दिये। इस प्रकार वृन्दावनदास हीनबल हो गये इन्द्रसिंह का छुटकारा अनायास ही हो गया। उसी समय माचेड़ी के राव ने आमेर के विरुद्ध सिर उठाया था। उसको दमन करने के लिये खुशाली बोहरा की अध्यक्षता में आमेर की सेना जा रही थी। इन्द्रसिंह बिना निमन्त्रण ही के उस सेना के साथ हो गये। आमेरपति को पचास हज़ार रुपये भेंट दे कर इन्द्रसिंह ने अपना पैतृक राज्य पा लिया।

वृन्दावनदास जिस प्रकार सैनिक बल से तथा अपनी वीरता से बलवान् थे, उसी प्रकार इन्द्रसिंह भी प्रजा के ऊपर असीम प्रेम दिखा कर बलवान् हो गये थे। एक समय इन्द्रसिंह अपनी सेना ले कर वृन्दावनदास के उदयगढ़ नामक क़िले पर अधिकार करने के लिये चले। उसी समय वृन्दावनदास के पुत्र रघुनाथसिंह ने अपने पिता के शत्रु इन्द्रसिंह का साथ दिया। वृन्दावनदास ने अपने पुत्र रघुनाथ को कुचोर नामक देश का अधिकार दिया था। परन्तु पुत्र ने पिता की आज्ञा के बिना भी तीन और देश अपने अधिकार में कर लिये थे। यही कारण था कि पिता से क्रुद्ध हो कर पुत्र रघुनाथ ने इन्द्रसिंह का साथ दिया था। इन्द्रसिंह के बल को घटाने की इच्छा से वृन्दावनदास ने गुप्तरूप से कुचोर पर आक्रमण करने का विचारा। उस समय रघुनाथ इन्द्रसिंह का साथ छोड़ कर उनके भानजे पृथ्वीसिंह को साथ ले कर कुचोर की ओर चला। वृन्दावनदास पहले ही असफल मनोरथ हो चुके थे। वे खण्डेला की ओर जा रहे थे कि रघुनाथ और इन्द्रसिंह ने जा कर उनका मार्ग रोक लिया। उसी समय उधर उदयगढ़ पर चढ़ाई हो गयी। इस प्रकार बहुत दिनों तक युद्ध चलने के कारण दोनों पक्ष हीनतेज हो गये। अन्त में वृन्दावनदास को भी इन्द्रसिंह का उचित अधिकार देना पड़ा।

अब खण्डेला राज्य में शान्ति तो हो गयी। परन्तु धनलोभी ब्राह्मण प्रतिदिन वृन्दावनदास को अनेक पापों का भय दिखा कर प्रायश्चित्त के बहाने धन लूटने लगे। प्रतिदिन एक न एक प्रायश्चित्त होता ही था और प्रत्येक प्रायश्चित्त में बिना एक गाँव दान किये बनता ही नहीं था।

इसका विरोध उनके पुत्र ने किया । अन्त में वृन्दावनदास पुत्र को राज्य देकर आप राज्य से अलग हो गये । (टाड्सराजस्थान)

वृषसेन=अङ्गराज कर्ण के पुत्र का नाम । महाभारत के युद्ध में जिस समय कर्ण और अर्जुन का युद्ध हो रहा था उसी समय भीम के हाथ से यह मारा गया । (महाभारत)

वेङ्कटाध्वरी=ये श्रीरामानुजसम्प्रदायावलम्बी एक दाक्षिणात्य विद्वान् हैं । इन्होंने अपने बनाये "विश्वगुणादर्श" नामक चम्पू में अपना परिचय इस प्रकार दिया है । इनके पिता का नाम रघुनाथ दीक्षित था । अप्पय गुरु इनके मातामह थे। परन्तु ये अप्पय गुरु कुवलयानन्द चित्र मीमांसा आदि के कर्त्ता अप्पय दीक्षित से भिन्न हैं । क्योंकि वे द्राविड ब्राह्मण थे, ये अप्पय गुरु ताताचार्य के भानजे थे । ये ताताचार्य कर्णाट देशी राजा कृष्णराय के गुरु थे इन्होंने "सात्त्विक ब्रह्मविद्याविलास" नामक वेदान्त का प्रसिद्ध ग्रन्थ बनाया है ।

ये नीलकण्ठ दीक्षित के समकालीन तथा सहाध्यायी थे । ये नीलकण्ठ दीक्षित अप्पय दीक्षित के पौत्र और नारायण दीक्षित के पुत्र थे । नीलकण्ठ ने नीलकण्ठविजय नामक एक ग्रन्थ बनाया है । उसमें इन्होंने उसका निर्माण काल इस प्रकार लिखा है—

"अष्टात्रिंशदुपस्कृत-
सप्तशताधिकचतुःसहस्रेषु ।
कलिवर्षेषु गतेषु
ग्रथितः किल नीलकण्ठविजयोऽयम् ॥"

इससे निश्चित होता है कि सन् १६३७ ई० में नीलकण्ठ विजय बना था । उन्हींके समकालीन वेङ्कटाध्वरी थे । अतः आज से अढ़ाई सौ वर्ष से भी अधिक इस ग्रन्थ के कर्ता कवि को हुए, हो गये । इस ग्रन्थ का ठीक ठीक निर्माण काल बतलाना कठिन है ।

ये काञ्ची के पास अर्शनफल नामक अग्रहार में रहते थे । ये वडहल सम्प्रदाय के थे । इस महाकवि ने विश्वगुणादर्श, हस्तिगिरि चम्पू और लक्ष्मीसहस्र नामक काव्य बनाया था । ये भी दाक्षिणात्य कवियों के समान शब्दालङ्कार की ओर झुके हुए हैं । प्रणयकावेरी नामक किसी राजा की सभा के ये प्रधान पण्डित थे । कहते हैं विश्वगुणादर्श चम्पू बनाने के कारण ये अन्धे हो गये थे, अतः इन्होंने लक्ष्मीसहस्र से लक्ष्मी की स्तुति की; पुनः लक्ष्मी के प्रसाद से इनकी आँखें ठीक हो गयीं ।

वेदवती=राजा कुशध्वज की कन्या का नाम । राजा ने सोचा था कि मैं अपनी कन्या को भगवान् से ब्याहूँगा, परन्तु उनका मनोरथ पूर्ण नहीं हुआ । दैत्यपति शुम्भ के द्वारा महाराज कुशध्वज मारे गये । रानी ने भी उनका साथ दिया । मातृपितृहीना बालिका वेदवती दुःखसागर में निमग्न हुई, परन्तु अपने पिता का मनोरथ पूर्ण करने की इच्छा से कठोर तपस्या करने के लिये उसने दृढ़ सङ्कल्प कर लिया था । इसी प्रकार बहुत दिन बीतने पर एक दिन लङ्केश्वर रावण वहाँ आया और उसकी सुन्दरता पर मुग्ध हो कर उसे पत्नी बनाने की इच्छा प्रकाशित की । वेदवती ने अपना अभिप्राय प्रकाशित करके रावण का प्रस्ताव अस्वीकृत किया । परन्तु रावण पर उसका कुछ भी फल नहीं हुआ वह बलपूर्वक वेदवती को पकड़ने के लिये आगे बढ़ा । वेदवती ने सामने विपत्ति को देख कर प्रज्वलित चिता में प्रवेश किया । चिता में प्रवेश करने के समय वेदवती ने रावण से कहा कि दूसरे जन्म में मैं राक्षस वंश के नाश का कारण होऊँगी । यही वेदवती दूसरे जन्म में सीता के रूप में मिथिलेश जनक के यहाँ उत्पन्न हुई थी ।

किसी किसी पुराण में लिखा है कि वेदवती बृहस्पतिपुत्र कच की कन्या थी ।

वेदव्यास=(देखो कृष्ण द्वैपायन) ।

वेनराज=एक प्राचीन राजा । इनके पिता का नाम अङ्गराज था । इन्होंने अपने राज्य में बलि और देवार्चन का निषेध किया था । इससे क्रुद्ध हो कर ब्राह्मणों ने उस आज्ञा को प्रत्याहार करने के लिये राजा से कहा परन्तु राजा ने उनकी एक भी नहीं सुनी । अन्त में ब्राह्मणों ने मन्त्रपूत कुश द्वारा राजा का विनाश किया । अनन्तर उन ब्राह्मणों ने राजा वेन के मृत देह पर कुशर्पण

किया । इस घर्षण से पृथुराज की उत्पत्ति हुई । ब्राह्मणों ने वेन के सिंहासन पर पृथु का अभिषेक किया । (विष्णुपुराण)

वैरीशाल=जयसलमेर के महारावल । महारावल रणजीतसिंह ने जब अपुत्रावस्था में प्राण त्याग किया उस समय इनकी महारानी ने अपने देवर वैरीशाल को गोद ले लिया । उस समय महारावल वैरीशाल १५ वर्ष के थे ।

परन्तु उस समय इन्होंने जयसलमेर के सिंहासन पर बैठना किसी प्रकार भी स्वीकार नहीं किया। इससे वहाँ की प्रजा को बड़ा कष्ट हुआ और जब उन लोगों ने वैरीशाल को बहुत दबाया तब महारावल ने यह कह कर सब लोगों को शान्त कर दिया कि—मुझे विश्वास है कि जयसलमेर के सिंहासन पर बैठ कर मैं सुखी नहीं हो सकूँगा । महारावल वैरीशाल के ऐसा कहने में कारण यही था कि उन्होंने दो राजाओं को उस सिंहासन पर बैठते और शीघ्र ही मरते देखा था । अस्तु, परन्तु इस बात से सभी अप्रसन्न हुए । अन्त में गवर्नमेंट से पूछने पर उत्तर मिला कि महारावल अभी लड़के हैं, थोड़े दिन बीतने पर वे आप ही आप स्वीकार कर लेंगे । अतः इस समय इस प्रस्ताव को छोड़ देना ही उचित है। गवर्नमेंट के कहने से उस समय यह स्थगित कर दिया गया और महारावल के पिता केसरीसिंह पुत्र के नाम से राज्यशासन करने लगे।

महारावल वैरीशाल की बुद्धि के पलटने में अधिक देर नहीं लगी । दूसरे ही वर्ष अर्थात् सन् १८६५ ई० में उन्होंने कह दिया कि मैं सिंहासन पर बैठने को तैयार हूँ । इससे राजधानी में बड़ा आनन्द हुआ । वैरीशाल का बड़े धूम धाम से अभिषेक हुआ ।

(टाड्स राजस्थान)

वैशम्पायन=कृष्ण द्वैपायन व्यास का प्रिय शिष्य । इन्होंने जनमेजय के सर्पयज्ञ के समय सभा में महाभारत का पाठ किया था । इनके शिष्य का नाम महर्षि याज्ञवल्क्य था ।

(महाभारत)

बौद्धसम्प्रदाय=भगवान् गौतम बुद्ध द्वारा प्रवर्तित एक धर्म सम्प्रदाय । यद्यपि बौद्ध धर्म की प्रतिष्ठा महात्मा गौतम बुद्ध ने की, तथापि इस सम्प्रदाय की प्राचीनता के प्रमाण शास्त्रों में देखे जाते हैं । बुद्ध नामक भगवान् का अवतार प्रत्येक युग में अवतीर्ण होता है इस बात का शास्त्रों में उल्लेख पाया जाता है । बौद्धों के धर्मशास्त्रों में चौबीस अवतारों की कथा लिखी है। उसमें लिखा है कि कपिलवस्तु के बुद्ध अन्तिम बुद्ध थे। बुद्धदेव ने चार प्रधान सत्य का आविष्कार किया था । वे ये हैं—(१) जीवन धारण ही दुःख है । (२) जीवन धारण की कामना दुःख का आदिकारण है । (३) जीवन धारण की कामना के नाश होने पर ही दुःख का नाश होता है । (४) आठ प्रकार के उपायों से दुःखों का नाश किया जा सकता है । वे आठ उपाय ये हैं—सत्विश्वास, सत्प्रतिज्ञा, सत्वाक्य, सत्कर्म, सत्जीवन, सत्चेष्टा, सत्चिन्ता और सत्उपासना । जीवन धारण करना ही दुःख का कारण है इसी कारण धर्मविश्वासी बौद्धगण माला जपने के समय—अनित्य, दुःख और असत्य कहा करते हैं । अर्थात् जीवन अनित्य है, सभी दुःखमय है और संसार असत्य है । शाप के कारण ही मनुष्यों को जीवन धारण करना पड़ता है । अतः निर्वाण अथवा लय की कामना करना प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है । बौद्धों की कोई उपासना प्रणाली नहीं है। बौद्ध सृष्टिकर्ता का अस्तित्व नहीं मानते हैं । वे कहते हैं—कर्म ही सर्वनियन्ता, मनुष्य कर्मवश ही जन्म जरा और मृत्यु के पथ पर अग्रसर होते हैं । बुद्धदेव ने किसी की उपासना सुनी ही नहीं क्योंकि उन्होंने निर्वाण प्राप्त कर लिया था ।

व्युषिताश्व=कुरुवंशी प्राचीन एक राजा । ये बड़े प्रतापी और पुण्यात्मा राजा थे । इन्होंने सोम नामक यज्ञ में देवताओं को प्रसन्न किया था । ये बड़े बलवान् थे । कहते हैं कि इनके शरीर में दश हाथी के समान बल था । इन्होंने अपने अश्वमेध यज्ञ में चारो दिशा के राजाओं को जीत लिया था । इन्होंने समुद्र पर्यन्त पृथिवी को अपने वश में कर लिया था । कक्षीवान् की कन्या भद्रा इनको ब्याही गयी

थी। थोड़े ही दिनों के बाद क्षयरोग हो जाने के कारण इनका शरीरान्त हो गया महाभारत में लिखा है कि इनकी मृत्यु के समय तक भद्रा को कोई पुत्र या कन्या उत्पन्न नहीं हुई थी। अतः वह फूट फूट कर अपने पति के शव के पास रोने लगी बहुत रोने पीटने पर आकाशवाणी हुई कि, तुम चिन्ता मत करो, हमारे ही औरस से तुम्हारे पुत्र उत्पन्न होंगे। अष्टमी और चतुर्दशी को ऋतुस्नान कर के तुम हमारी प्रतीक्षा करना। कहते हैं उसी शव के वीर्य से भद्रा के तीन शाल्व, चार भद्र इस प्रकार सब मिला कर सात सन्तान उत्पन्न हुए। कहते हैं यह मानसी सृष्टि है।

(महाभारत)

श

शक=प्राचीन एक जाति। इस जाति की उत्पत्ति का विषय पुराणों में इस प्रकार लिखा गया है। सूर्यवंशी राजा नरिष्यन्त से इस जाति की उत्पत्ति हुई थी यह बात वंशलता की आलोचना करने से प्रतीत होती है। राजा सगर ने जिनको राज्यच्युत तथा देश से निर्वासित किया था। शक भी उन्हींमें से हैं। क्रियापालन न करने के कारण तथा ब्राह्मणों के दर्शनाभाव से वे म्लेच्छ हो गये। शास्त्रों में यह बात लिखी हुई है। आधुनिक पण्डितों का मत है कि पहले एशिया शकद्वीप से प्रसिद्ध था। ग्रीकगण इस देश को सीदिया कहते थे। उसी मध्य एशिया के रहने वाले शक कहे जाते हैं। किसी समय शक जाति बड़ी प्रतापशालिनी हो गयी थी। खीष्ट जन्म के दो सौ वर्ष पहले शकों ने मथुरा और महाराष्ट्र तक अपना अधिकार फैलाया था। कनिष्क, हविष्क आदि प्रतापशाली शकवंशी राजा भारत का भी शासन कर चुके हैं। १६० वर्ष तक इस वंश ने यहाँ राज्य किया था। ये लोग अपने को "देवपुत्र" कहते थे।

शकुनि=गान्धारराज सुबल के पुत्र और दुर्योधन के मामा। यही कुरुवंश के नाश का कारण हैं। (देखो दुर्योधन)

शकुन्तला=पौरव वंशी विख्यात राजा दुष्यन्त की महारानी। यह विश्वामित्र के औरस और मेनका नाम की अप्सरा के गर्भ से उत्पन्न हुई थी। इसके जन्मते ही इसको मालिनी के तीर पर छोड़ कर मेनका स्वर्ग चली गयी। तब से महर्षि कण्व ने इसका पालन किया। इसीके गर्भ से प्रसिद्ध राजा भरत की उत्पत्ति हुई जिनके नाम से यह वर्ष भारतवर्ष के नाम से प्रसिद्ध हुआ। महर्षि दुर्वासा के शाप से राजा दुष्यन्त शकुन्तला को भूल गये थे, परन्तु पीछे खोई हुई अंगूठी के मिलने से उन्हें स्मरण आया।

शक्ति=महर्षि वशिष्ठ के ज्येष्ठ पुत्र। इन्होंने राजा कल्मापपाद को राक्षस होने का शाप दिया था। उसी राक्षसभावापन्न राजा कल्मापपाद ने शक्ति को खा डाला। इन्हींके पुत्र पराशर थे।

शङ्करवर्मा=काश्मीर के एक राजा का नाम। इनके पिता का नाम अवन्तिवर्मा था। अवन्तिवर्मा के परलोकवासी होने पर राज्य के लिये बड़ी गड़बड़ी मची। परन्तु प्रतीहार रत्नवर्द्धन के प्रयत्न से शङ्करवर्मा को अपने पिता का सिंहासन मिला। इस समय मन्त्रियों ने ईर्ष्यावश हो कर राज्य को नष्ट भ्रष्ट करने का निश्चय कर लिया था। दीवान ने शूरवर्मा के पुत्र सुखवर्मा को युवराज बना दिया। राजा और युवराज दोनों में झगड़ा चलने लगा। अन्त में शङ्करवर्मा किसी न किसी प्रकार सबको परास्त कर निष्कण्टक हुए।

इस प्रकार स्वस्थचित्त हो कर शङ्करवर्मा दिग्विजय के लिये निकले। उस समय काल प्रभाव से देश की जनसंख्या अल्प हो गयी थी। अतएव उनके साथ ६ लाख पैदल सेना चली। जाने के समय रणकर्म में अनिपुण सैनिकों को शङ्करवर्मा ने शिक्षित कर लिया था। जिस प्रकार छोटी छोटी नदियों के मिलने से एक बड़ी नदी तैयार हो जाती है उसी प्रकार अन्यान्य राजाओं की सेना आ आ कर शङ्करवर्मा की सेना को पुष्ट करने लगी। इस प्रकार शङ्करवर्मा की सैन्य संख्या ३०० हाथी, १ लाख घोड़े, ९ लाख पैदल हुई। गुर्जरराज को जीतने के लिये वे इस समय व्यस्त हुए। इसी समय त्रिगर्तराज पृथ्वीराज ने निर्बुद्धि के कारण अपने

पराजय होने के डर से एक विलक्षण उपाय किया । उन्होंने अपने पुत्र भुवनचन्द्र को शङ्कर-वर्मा के निकट बन्धक कर के भेजा । अनन्तर वह भी उनकी अधीनता स्वीकार करने के लिये चला । परन्तु जब उसने उस बड़ी सेना को आते देखा तब तो वह मारे डर के कायरों के समान भाग गया । यद्यपि शङ्करवर्मा अपनी सुन्दरता के लिये प्रसिद्ध थे, तथापि शत्रु उनको यमराज के समान देखते थे । उन्होंने एक सामान्य युद्ध से गुजरात के राजा अलखान को जीत लिया । अलखान ने टक्क प्रदेश दे कर अपने राज्य की रक्षा की । थक्किय वंशियों का राज्य भोजराज ने छीन लिया था । इस कारण वे शङ्करवर्मा की शरण गये थे और उनकी बड़ी सेवा की थी । शङ्करवर्मा ने भोजराज से उनका राज्य दिलवा दिया ।

इस प्रकार दिग्विजय कर के महाराज शङ्कर-वर्मा अपने देश में लौट आये और पञ्चतत्र प्रदेश में अपने नाम से एक गाँव बनवाया । उनकी स्त्री का नाम सुगन्धा था । शङ्करवर्मा अपनी स्त्री सुगन्धा के साथ उसी नये नगर में रहते थे और उसी नगर में शिव गौरीश्वर तथा सुगन्धेश्वर नामक महादेव की प्रतिष्ठा की थी । इन दोनों मन्दिरों के मध्य में नायक नामक एक चतुर्वेदज्ञ ब्राह्मण द्वारा राजा ने सरस्वती की प्रतिष्ठा करवायी थी । राजा ने इस नगर को बनवाने के लिये परिहासपुर नामक एक नगर उजाड़ दिया था । परिहास की सामग्री ही से उन्होंने अपने नये नगर का निर्माण कराया था ।

अनन्तर राजा शङ्करवर्मा लोभ में पड़ कर प्रजा पीड़न करने लगे । अनेक प्रकार के व्यसनों में आसक्ति होने के कारण उनका खजाना खाली पड़ा हुआ था । अनेक प्रकार की युक्तियों से वे देवता का धन अपहरण करने लगे । मन्दिरों के धूप चन्दन तेल आदि बिचवा कर वे पैसा पैदा करने लगे । देवताओं के लिये जो ग्राम दिये गये थे उन सब ग्रामों को इन्होंने राज्य में कर लिया । यद्यपि उस समय काश्मीर राज्य में सभी वस्तुओं का दाम अधिक हो गया था तथापि शङ्करवर्मा ने अपने कर्मचारियों का वेतन घटा दिया । राजा के इस प्रकार अत्याचारी होने पर कायस्थों की खूब चल गयी ।

प्रजा को इस प्रकार पीड़ित देख कर दयालु राजपुत्र गोपालवर्मा ने अपने पिता से कहा— पिता ! आप सत्यवादी हैं । आपने पहले हमको एक वर देने के लिये कहा था । उस समय हमने वर नहीं लिया । आज मैं वही वर चाहता हूँ । आपने कायस्थों के परामर्श से जो प्रजाओं को कष्ट पहुँचाया है उससे हमारा सत्यानाश हो गया । आज केवल उनका जीवन-मात्र ही अवशिष्ट है । महाराज ! इस प्रकार प्रजापीड़न करने से क्या इस लोक में और क्या परलोक में कहीं भी आपका कल्याण नहीं होगा । परलोक की बात कौन कह सकता है । वह दुर्ज्ञेय है । परन्तु जो बात मालूम पड़ती है उससे भी यह बात स्पष्ट है कि इससे आपका कल्याण नहीं हो सकता । इधर तो दुर्भिक्ष महामारी आदि से प्रजा पीड़ित हो रही है उस पर राजा का लोभ, भला इससे उनकी रक्षा की क्या सम्भावना है । दान और मधुर वाक्य के द्वारा ही राजा जगत् को अपने वश में कर सकता है । प्रजानाथ ! कृपा कर इस अन्याया-चरण से प्रजा की रक्षा कीजिये ।

राजा शङ्करवर्मा अपने पुत्र का सौजन्यपूर्ण वचन सुन कर थोड़ा हँस कर बोले—बेटा ! तुम्हारे अत्याचारविरोधी मधुर इन वाक्यों को सुन कर हमें अपनी पुरानी बात स्मरण आती है बाल्यावस्था में हमारा भी हृदय तुम्हारे ही समान दयालु था । हमारे पिता गरमी के दिनों में ठण्ढा और शीत के दिनों में गरम कपड़ा नहीं देते थे । मैं जूते भी तो नहीं पहन सकता था, पिता इसी प्रकार हमको ले कर घूमते थे । घोड़े के साथ घूमने से हमारे पैर कट जाते थे । यदि इसका कारण कोई पिता से पूछता तो वे कहते कि—मैंने छोटी अवस्था से राज्य पाया है इसी कारण हम भृत्यों के परिश्रम का अनुभव कर सकते हैं । यदि यह बालक इस प्रकार दुःख भोग नहीं करेगा तो कभी भृत्यों का दुःख नहीं समझ

सकता। पिता ने यद्यपि हमको इस प्रकार की शिक्षा दी है तथापि मैं प्रजा पीड़न करता हूँ। जन्म प्राप्त कर के मनुष्य जिस गर्भवास के कष्टों को भूल जाता है उसी प्रकार राज्य पाने पर पहले की बातें भूल जाती हैं। अतएव, बेटा! मैं ही तुमसे एक वर माँगता हूँ कि तुम राजा हो कर हमसे अधिक प्रजा पर अत्याचार नहीं करना।

अन्त में एक चाण्डाल के बाण द्वारा इनकी मृत्यु हुई। इन्होंने १८ वर्ष ७ महीने १६ दिन राज्य किया था। (राजतरङ्गिणी)

शङ्कराचार्य=विख्यात अद्वैतमतप्रवर्तक आचार्य। केरल राज्य में विद्याधिराज नामक एक ब्राह्मण रहा करते थे। उनके पुत्र का नाम शिवगुरु था। शिवगुरु की स्त्री का नाम सुभद्रा था। एक दिन सुभद्रा ने अपने पति से कहा—नाथ! अब हम लोगों का यौवन ढल चला। परन्तु अभी तक पुत्र का सुख देखने का सौभाग्य नहीं है। जिस स्त्री के गर्भ से पुत्र उत्पन्न नहीं होता वह वन्ध्या समझी जाती है तथा लोग उससे घृणा करते हैं। शास्त्रों में लिखा है कि भगवान् शङ्कर की आराधना करने से किसी का मनोरथ निष्फल नहीं होता, अतः हमलोगों को भी शिव की आराधना करनी चाहिये। शिवगुरु अपनी स्त्री की बातें सुन कर बड़े दुःखी हुए और उन्होंने अपना अभीष्ट पूर्ण होने के लिये सपत्नीक शिव की आराधना करने का सङ्कल्प किया। बहुत दिनों तक आराधना करने के अनन्तर एक दिन शिवगुरु ने स्वप्न देखा कि एक वृद्ध ब्राह्मण उनके सिरहाने खड़े हो कर कहते हैं—बेटा! तुम्हारी आराधना से हम प्रसन्न हुए हैं, इस समय वर माँगो। शिवगुरु ने स्वप्न में ही यह वर माँगा—देवादिदेव! आपके समान गुणी एक पुत्र मेरे उत्पन्न हो। "तथास्तु" कह कर ब्राह्मण अन्तर्हित हो गया। यथासमय उनकी स्त्री ने एक पुत्र उत्पन्न किया। सुभद्रा ने शङ्कर की आराधना से पुत्र पाया था इस कारण उस पुत्र का नाम शङ्कर रखा गया।

शङ्कर शुक्लपक्ष के चन्द्रमा के समान दिन दिन बढ़ने लगा। एक वर्ष की अवस्था में उस ने मातृभाषा सीख ली। दूसरे वर्ष में माता की गोद में बैठे बैठे उसने स्मरण शक्ति के प्रभाव से माता की कही हुई समस्त पौराणिक कथाओं को स्मरण कर लिया। तीसरे वर्ष में इनके पिता का परलोकवास हुआ। चौथे वर्ष में इनको आप ही आप समस्त विद्याओं का ज्ञान हो गया। पाँचवें वर्ष में इनका यज्ञोपवीत संस्कार हुआ और ये गुरुगृह में पढ़ने के लिये बैठाये गये। छठवें वर्ष में महात्मा शङ्कराचार्य एक प्रकाण्ड पण्डित हो गये।

एक दिन गुरुगृह में वास के समय शङ्कराचार्य भिक्षा के लिये निकले। इधर उधर घूम कर अन्त में वे एक ब्राह्मण के द्वार पर उपस्थित हुए। उस समय उस मकान का मालिक ब्राह्मण घर में नहीं था। आपने उसी दरिद्र ब्राह्मण के घर भिक्षा की प्रार्थना की। वह ब्राह्मण भी अत्यन्त दरिद्रता के कारण भिक्षा के लिये बाहर गया हुआ था। ब्राह्मण-पत्नी अपने द्वार पर भिक्षुक को देख कर बहुत घबड़ायी और बड़े कष्ट से बोली—बेटा! हम लोग बड़े अभागे हैं। भिक्षा देने की भी शक्ति परमेश्वर ने हम लोगों को नहीं दी है। अतिथि को विमुख नहीं फेरना इस कारण मैं तुम्हें यह आँवला देती हूँ। वृद्धा ब्राह्मणपत्नी का विलाप सुन शङ्कराचार्य को बड़ा कष्ट हुआ और उसी समय वे लक्ष्मी की स्तुति करने लगे, शङ्कर के स्तव से प्रसन्न हो कर लक्ष्मी शङ्कराचार्य के समीप आयी और उनसे वर माँगने के लिये कहा। महात्मा शङ्कराचार्य ने लक्ष्मी को प्रसन्न कर के उनसे यही वर माँगा कि यह दरिद्र ब्राह्मण अतुल धन के अधिपति हों। लक्ष्मी भी "तथास्तु" कह कर अन्तर्हित हो गयी। देखते ही देखते ब्राह्मण का घर महल बन गया। इससे शङ्करा-चार्य की विभूति की चारों ओर प्रसिद्धि हो गयी। उस देश के राजा राजशेखर अपुत्रक थे। वे शङ्कर के महत्त्व की बातें सुन कर दस हज़ार रुपये ले कर उनसे मिलने आये और उनके चरणों पर रुपये रख कर उन्होंने प्रणाम किया। शङ्कर ने उन्हें आशीर्वाद दिया और उन रुपयों को दरिद्रों को बाँट देने के लिये कहा। शङ्कराचार्य के आशीर्वाद से राजा को पुत्र उत्पन्न हुआ।

आठ वर्ष की अवस्था में शङ्कराचार्य ने संन्यास ग्रहण करने के लिये माता से आज्ञा माँगी । एकमात्र पुत्र को छोड़ कर माता किस प्रकार अपना जीवन पालन करेगी यही सोच कर वे व्याकुल हो गयीं । उन्होंने संन्यास ग्रहण करने के पहले पुत्र से गृहस्थ आश्रम ग्रहण करने का अनुरोध किया । जब शङ्कर ने देखा कि माता संन्यास ग्रहण करने की आज्ञा नहीं देंगी तब उन्होंने युक्ति से काम लिया ।

एक दिन शङ्कराचार्य अपनी माता के साथ नदी पार कर के किसी आत्मीय के घर गये हुए थे । जाने के समय वे अनायास ही नदी पार हो गये थे । आने के समय शङ्कर नदी पार होने के लिये नदी में घुसे । गले भर जल में आ कर उन्होंने अपनी माता को पुकार कर कहा—माता! यदि तुम अब हमें संन्यासी होने की आज्ञा न दोगी तो मैं इसी जल में डूब मरूँगा । यह सुन शङ्करजननी ने प्रत्यक्ष भय को देख तुरन्त संन्यास ग्रहण की अपने पुत्र को आज्ञा दे दी ।

शङ्कराचार्य जननी से आज्ञा ले पहले गोविन्द स्वामी के शिष्य हुए । फिर वहाँ ब्रह्मत्व लाभ कर के गुरु के आज्ञानुसार, वे काशी गये । वहाँ पर चोलदेशवासी सनन्दन उपनाम पद्मपाद को सबसे प्रथम अपना शिष्य बनाया ।

एक दिन शङ्कराचार्य मणिकर्णिका घाट पर स्नान कर निदिध्यासन करते थे । इतने में एक वृद्ध ब्राह्मण उनके सामने जा खड़ा हुआ और बोला—"सुना है तुमने ब्रह्मसूत्रों पर व्याख्या की है किसी किसी सूत्र की व्याख्या करने में तो तुम्हें बड़ा कष्ट हुआ होगा ।" इसके उत्तर में शङ्कराचार्य ने कहा—"यदि आप उस भाष्य का कोई स्थल न समझे हों तो बतलावें, हम उसका स्पष्टीकरण कर के समझावेंगे ।" इस पर उस वृद्ध ब्राह्मण ने एक सूत्र पढ़ा । तदनन्तर उसका अर्थ पूछा । शङ्कराचार्य जब उसका अर्थ कर चुके, तब उनके अर्थ से भिन्न उस ब्राह्मण ने उसका अर्थ किया । इस पर शङ्कराचार्य आपे से बाहर हो गये और काशी के शास्त्रार्थ की प्रथानुसार शास्त्रार्थ करने को उद्यत हुए और अपने शिष्य पद्मपाद को आज्ञा दी कि वह उस बूढ़े को वहां से हटा दे । इस पर पद्मपाद ने गुरु को नमस्कार किया और कहा—

"शङ्करः शङ्करः साक्षात् व्यासो नारायणः स्वयम् ।
तयोर्विवादे सम्प्राप्ते, न जाने किं करोम्यहम् ॥"

यह सुन शङ्कराचार्य को बोध हुआ और उन्होंने अपने किये के लिये व्यासजी से क्षमा प्रार्थना की और स्तुति की । तब व्यासदेव ने प्रसन्न हो कर उनको वर दिया—"तुम ब्रह्मसूत्र के तात्पर्य के सहारे जगत् में अद्वैतवाद का प्रचार करने में समर्थ हो ।" इस पर शङ्कराचार्य ने कहा—"मैं अल्पायु हो कर जन्मा हूँ । मेरी आयु अब केवल सोलह वर्ष और है । अतः इतने कम समय में मैं क्या क्या कर सकता हूँ" । इसके उत्तर में व्यासदेव जी ने कहा—"हम तुम्हें ऐसे कार्यों के करने के लिये सोलह वर्ष की अतिरिक्त आयु और देते हैं, क्योंकि हमने जो कार्य करने की तुम्हें आज्ञा दी है । वह इस समय तुम्हें छोड़ दूसरा कर नहीं सकता ।" आयु वृद्धि होने के कारण शङ्कराचार्य ने दशोपनिषद्, गीता और वेदान्तसूत्रों का भाष्य बनाया । तदनन्तर नृसिंहतापिनी की व्याख्या और उपदेशसाहस्री आदि ग्रन्थ बनाकर वे दिग्विजय के लिये बाहर निकले ।

काशी में रहने के समय शङ्कराचार्य ने कर्मवादी चन्द्रोपासक ग्रहोपासक त्रिपुरसेवी गरुडोपासक आदि उपासक सम्प्रदायों को परास्त कर अपने मत में दीक्षित किया वे काशी से कुरुक्षेत्र होते हुए बदरिकाश्रम गये । वहाँ बदरिनारायण का दर्शन कर के वे कुछ दिनों तक रहे । वहाँ उन्होंने एक मठ स्थापित किया और अथर्ववेद के प्रचार के लिये अथर्ववेदज्ञ नन्द नामक एक शिष्य को वहाँ रख दिया । यह मठ ज्योतिर्मठ के नाम से प्रसिद्ध हुआ ।

बदरिकाश्रम में मठ स्थापित कर के हस्तिनापुर के अग्निकोण में विद्यालय नामक एक प्रदेश में शङ्कराचार्य आये । विद्यालय का दूसरा नाम विजिलबिन्दु है । इसी विजिलबिन्दु के तालवन में मण्डन मिश्र नामक एक महापण्डित रहते थे । वे ज्ञानकाण्डावलम्बियों के घोर विरोधी थे । जिस समय शङ्कराचार्य मण्डन मिश्र के यहाँ

आये उस समय मण्डन मिश्र घर का द्वार बन्द कर के श्राद्ध करते थे और स्वयं व्यासदेव श्राद्ध कार्य देख रहे थे ।

द्वार बन्द देख कर शङ्कराचार्य योगबल से घर के भीतर पहुँचे । संन्यासी को देखते ही मण्डन मिश्र को बड़ा क्रोध हुआ । कुछ देर तक व्यङ्ग्योक्तिपूर्ण बातें होने पर और व्यासदेव के कहने पर स्थिर हुआ कि भोजन करने के उपरान्त शास्त्रार्थ होगा और जो परास्त होगा, वह जेता का मत ग्रहण करेगा । मण्डन मिश्र की स्त्री शारदा मध्यस्थ होंगी । दोनों का शास्त्रार्थ हुआ । मण्डन और संन्यासी दोनों प्रबल युक्तियों का प्रयोग करने लगे । अन्त में मण्डन की समाधि लग गयी और मण्डन संन्यासी हो गये । पति के संन्यास ग्रहण करने पर शारदा परलोक जाने को उद्यत हुईं । इस समय शङ्कराचार्य ने कहा—शारदा ! तुम को भी हम से पराजय स्वीकार करना पड़ेगा । यह सुन कर शारदा भी शास्त्रार्थ करने के लिये प्रस्तुत हो गयी । शारदा ने कामशास्त्रसम्बन्धी प्रश्न पूछे । शङ्कराचार्य इन प्रश्नों को सुन कर घबड़ा गये, और उन्होंने शारदा से कहा—माता ! आप मुझे छः महीने का अवकाश दें तो मैं कामशास्त्र का अध्ययन कर आऊँ । यह कह कर कामशास्त्र सीखने के लिये शङ्कराचार्य चले गये ।

शङ्कराचार्य ने रास्ता चलते मार्ग में देखा कि एक राजा का मृत देह श्मशान में जा रहा है । यह देख कर मृतसञ्जीवनी विद्या के प्रभाव से शङ्कराचार्य ने उस मृत शरीर में प्रवेश किया और अपने शरीर की रक्षा के लिये चार शिष्यों को नियत किया । राजा के शरीर में प्रविष्ट हो कर शङ्कराचार्य ने रानी से कामशास्त्र के तत्त्व सीखे । रानी बड़ी चतुरा थी, उसे राजा का आचार व्यवहार अच्छा नहीं लगता था । उसके हृदय में एक प्रकार का सन्देह हो गया । एक दिन रानी ने कर्मचारियों को आज्ञा दी कि तुम लोग चारो तरफ ढूँढ़ो कहीं किसी का मृत शरीर तो नहीं पड़ा है, यदि पड़ा हो तो उसे जला डालो कर्मचारियों ने शङ्कर का शरीर पाया, और शिष्यों से छीन कर उसे दाह करने के लिये उद्योग करने लगे । उसी समय शिष्यों ने आ कर छद्मवेशी शङ्कर को खबर दी । शङ्कर ने देखा उनका शरीर चिता में जल रहा है । शीघ्र ही राजदेह छोड़ कर शङ्कर अपने शरीर में प्रवेश कर चिता पर से उठ भागे । अपने शरीर को दग्ध देख कर वे लक्ष्मीनृसिंह की स्तुति करने लगे, लक्ष्मीनृसिंह के प्रसाद से शरीर अच्छा होने पर वे शारदा के समीप आये । अश्लील विचार होने की सम्भावना देख कर सरस्वती बिना विचार ही पराजय स्वीकार कर के ब्रह्मलोक जाने के लिये प्रस्तुत हुईं । परन्तु शङ्कराचार्य ने उनकी गति रोक दी । शङ्कर सरस्वती को इस प्रकार अपने अधीन कर के शृङ्गगिरि नामक स्थान पर गये । शृङ्गगिरि तुङ्गभद्रा नदी के किनारे है । शङ्कराचार्य ने वहाँ मठ स्थापित कर के सरस्वती से कहा तुम चिरकाल के लिये यहाँ स्थित रहो । इस मठ का नाम विद्यामठ रखा गया और इस मठ की शिष्यमण्डली का नाम भारतीसम्प्रदाय हुआ ।

तदनन्तर शङ्कराचार्य कुछ दिनों तक वहीं रहे, पुनः उस मठ की देख रेख का भार सुरेश्वर नामक एक अपने शिष्य को दे कर आप धर्म प्रचार के लिये चले । विधर्मियों को अपने धर्म में दीक्षित करते हुए आप प्रयाग पहुँचे । प्रयाग से शङ्कराचार्य उज्जयिनी आये, यहाँ आ कर वे कापालिक और भैरवोपासकों के हाथ में पड़ गये । कापालिक उन पर अत्याचार करने लगे, उस समय उन्होंने सुधन्वा नामक राजा से प्रार्थना की । सुधन्वा की सेना के सामने कापालिक हार गये और उन लोगों ने शङ्कराचार्य का मत ग्रहण किया । वहाँ से सौराष्ट्र में धर्म प्रचार करते हुए शङ्कराचार्य द्वारका पहुँचे । द्वारका में उन्होंने शारदा नामक एक मठ स्थापित किया । उस मठ के आचार्य पद पर उन्होंने सामवेदज्ञ विश्वरूप नामक अपने शिष्य को बैठाया । जहाँ से आप पुरुषोत्तम तीर्थ में गये ।

इसी समय बौद्ध धर्म की प्रभा से हिन्दू धर्म निष्प्रभ हो गया था । महात्मा शङ्कराचार्य हिन्दू

धर्म की ऐसी दशा देख कर "बौद्ध धर्म मिथ्या" का प्रचार करने लगे। इससे क्रुद्ध हो कर बौद्ध राजा के यहाँ शङ्कराचार्य को ले गये। शङ्कराचार्य ने वहाँ बौद्ध धर्म का मिथ्यात्व प्रमाणित करने के लिये विचार की प्रार्थना की। सभा हुई, उस सभा में शङ्कराचार्य ने युक्तिबल से बौद्धों के तर्क को छिन्न भिन्न कर के उनको परास्त कर दिया। परास्त हो कर बौद्ध पण्डित और पुरोहितों ने शङ्कराचार्य का मत ग्रहण किया। इस प्रकार बौद्ध धर्म धीरे धीरे निस्तेज होने लगा और हिन्दू धर्म पुष्ट होने लगा।

एक दिन शङ्कराचार्य ने समाधि से अपनी माता का अभिप्राय जाना। योगशक्ति के प्रभाव से वे शीघ्र ही माता के समीप उपस्थित हुए। माता ने बहुत दिनों पर अपने पुत्र को देखा, और उनका पुत्र ईश्वरी शक्ति सम्पन्न हुआ है इससे वे बहुत प्रसन्न हुईं। माता ने कहा—"मैं बहुत वृद्धा हो गयी हूँ अब मुझे इस शरीर को धारण करने की इच्छा नहीं है, अतः तुम हमारी गति करा दो"। माता की बात सुन कर शङ्कर ने महादेव की स्तुति करना प्रारम्भ किया। महादेव प्रसन्न हो कर शङ्कर की माता को अपने लोक में ले आने के लिये जटाजूटधारी प्रमथ को भेजा। शङ्कर की माता ने कहा—पुत्र! शिवलोक में हमारी जाने की इच्छा नहीं है। मैं भगवान् का दर्शन कर के शिवलोक में जाना चाहती हूँ। शङ्कराचार्य भक्तिपूर्ण माता की बातें सुन नारायण की स्तुति करने लगे। तब शङ्कर की माता ने विष्णुलोक में प्रस्थान किया। तदनन्तर माता की अन्त्येष्टि क्रिया कर आप पुनः पुरुषोत्तम क्षेत्र को आये। वहाँ ऋग्वेद के प्रचार के लिये गोवर्द्धन नामक एक मठ स्थापित किया, पादपद्म नामक एक ऋग्वेदज्ञ आचार्य को वहाँ रख कर आप मध्वार्जुन नामक स्थान पर आये। जाने के समय प्रभाकर नामक एक ब्राह्मण के यहाँ आपने विश्राम किया। वह ब्राह्मण शङ्कर को साक्षात् भगवान् जानता था। अतः अपने पुत्र को शङ्कर के सामने ले जा कर उसने रोग की बात उन्हें आद्योपान्त कह सुनायी। शङ्कराचार्य ने उस लड़के को रोगमुक्त कर के संन्यासी बना लिया। उस बालक का नाम हस्तामलक रखा गया।

काञ्चीदेश का अधिपति हिमशीतल नामक राजा बौद्ध धर्म का नितान्त पक्षपाती था। उसकी सभा में बड़े बड़े बौद्ध पण्डित वर्तमान थे। शङ्कराचार्य राजा के समीप जा कर बौद्ध धर्म का मिथ्यात्व प्रमाणित करने लगे। इससे क्रुद्ध हो कर बौद्ध पण्डित बड़े क्रुद्ध हुए और उन लोगों ने शङ्कराचार्य को दण्ड देना निश्चित किया। शङ्कराचार्य ने शास्त्रार्थ की प्रार्थना की और शास्त्रार्थ में परास्त होने पर दण्ड भोगने के लिये प्रस्तुत हुए। राजा ने अनेक स्थानों से बड़े बड़े पण्डितों को बुलाया। उनके साथ शङ्कराचार्य का शास्त्रार्थ हुआ। शास्त्रार्थ में बौद्ध पण्डित परास्त हो गये। राजा ने बौद्ध पण्डितों को उचित दण्ड दे कर शङ्कर का मत ग्रहण किया। इस प्रकार घूमते घामते शङ्कराचार्य कामरूप तीर्थ में गये। कामरूप में अभिनव गुप्त नामक एक प्रसिद्ध पण्डित रहते थे। शङ्कर ने उनको शास्त्रार्थ में परास्त किया। अभिनव गुप्त ने इससे अपने को अपमानित समझा और शङ्कराचार्य को मारने का विचार करने लगे।

इस घटना के थोड़े ही दिनों के बाद शङ्कराचार्य भगन्दर रोग से पीड़ित हुए। कहते हैं कि अभिनव गुप्त ने प्रतिहिंसा चरितार्थ करने के लिये अभिचार किया था, उसी अभिचार के फल से शङ्कराचार्य को रोग हो गया। उस समय शङ्कराचार्य के प्रधान शिष्य ने जप कर के गुरु का रोग दूर कर दिया।

तदनन्तर शङ्कराचार्य काश्मीर जाने के लिये प्रस्तुत हुए। मार्ग में गौड़पाद स्वामी के साथ उनकी भेंट हुई। उन्होंने शङ्कराचार्य से कहा—शङ्कर! तुम्हारे भाष्य रचना की बात सुन कर मैं बहुत प्रसन्न हुआ हूँ। इसके पहले मैंने माण्डूक्योपनिषद् पर वार्तिक बनाया है। मैंने सुना है तुमने उस पर भाष्य बनाया है। उस भाष्य को सुनने के लिये मैं तुम्हारे यहाँ जा रहा था। गौड़पाद स्वामी की बातें सुन कर शङ्कराचार्य ने अपना भाष्य उन्हें अर्पण किया। गौड़पाद ने भाष्य पढ़ कर बड़ी प्रसन्नता प्रकट की और वे अपने

घर चले गये । शङ्कराचार्य भी काश्मीर में उपस्थित हुए ।

एक दिन वे विद्या-भद्रासन पर आरोहण करने जा रहे थे उसी समय शारदा ने आकाश-वाणी से कहा—शङ्कर ! तुम्हारा शरीर अशुद्ध है। इस पीठ पर आरोहण करने के लिये शरीरशुद्धि की आवश्यकता है । स्त्रीसम्भोग कर के तुमने कामशास्त्र सीखा है । इसी कारण तुम्हारा शरीर अशुद्ध हो गया है । दैवी वाणी सुन कर शङ्कराचार्य ने कहा—देवी ! आजन्म इस शरीर से मैंने कुछ भी पाप नहीं किया है । दूसरे शरीर से जो मैंने किया है उससे यह शरीर अशुद्ध नहीं होसकता। देवी ! पहले जन्म में जो शूद्र है और वही दूसरे जन्म में ब्राह्मण हुआ तो क्या वह वेद के लिये अनधिकारी समझा जा सकता है, केदारनाथ पर्वत के समीप शङ्कराचार्य का शरीरपात हुआ।

शङ्कु=(१) उज्जयिनी के राजा विक्रमादित्य के नवरत्न नामक पण्डितों में से एक ।

(२) ब्रह्मवैवर्तपुराण श्रीकृष्णखण्ड के तीसवें अध्याय में लिखा है कि पितामह ब्रह्मा ने ब्रह्मज्ञान बल से ब्रह्मतेजप्रदीप्त वेदवेदाङ्गवित् तपस्यानिरत पुत्रों की सृष्टि की । उन्हीं में एक शङ्कु भी हैं ।

शङ्खचूड=असुर विशेष । यह असुर महादेव के हाथ मारा गया था । इसकी स्त्री का नाम तुलसी था ।

शची=देवराज इन्द्र की स्त्री का नाम । यह दानवराज पुलोमा की कन्या थी ।

शतानन्द=महर्षि गौतम के ज्येष्ठ पुत्र । ये अहल्या के गर्भ से उत्पन्न हुए थे । जिस समय रामचन्द्र धनुर्भङ्ग के लिये मिथिला में सीरध्वज जनक के यहाँ गये थे उस समय शतानन्द जनकराज के पुरोहित थे ।

शतानीक=(१) मत्स्यदेशाधिपति विराट का छोटा भाई ।

(२) चतुर्थ पाण्डव नकुल का पुत्र । यह द्रौपदी के गर्भ से उत्पन्न हुआ था । भारत युद्ध के अन्तिम दिन रात्रि को अश्वत्थामा ने पाण्डव शिबिर में घुस कर इसकी हत्या की थी ।

शत्रुघ्न=अयोध्याधिपति राजा दशरथ के सबसे छोटे पुत्र । सुमित्रा के गर्भ से इनका जन्म हुआ था । ये लक्ष्मण के सहोदर भाई थे और रामचन्द्र के वैमात्रेय भाई थे । कुशध्वज जनक की कन्या श्रुतिकीर्ति को इन्होंने व्याहा था । शत्रुघ्न ने मधुनामक राक्षस का विनाश कर के मथुरा को नये सिरे से बसाया था । नवनिर्मित पुरी में अपने दोनों पुत्रों को रख कर आप अयोध्या लौट आये । इन्होंने राम के साथ सरयू में देहविसर्जन किया ।

शनि=सूर्य के पुत्र । सूर्य की स्त्री छाया के गर्भ से इनकी उत्पत्ति हुई थी ।

शमीक=एक क्षमाशील तपःप्रभावसम्पन्न ऋषि । महाराज परीक्षित् एक दिन अहेर खेलने वन में गये, वहाँ एक मृग का पीछा करते करते वे एक ऋषि के निकट उपस्थित हुए और उन्होंने ऋषि से मृग के विषय में पूछा । मौनी ऋषि ने राजा के प्रश्न का कुछ भी उत्तर नहीं दिया। इससे क्रुद्ध हो कर राजा ने एक मृत सर्प ऋषि के गले में डाल दिया । इस प्रकार अपमानित होने पर भी क्षमाशील महर्षि कुछ भी नहीं बोले । इसी समय शमीक के पुत्र शृङ्गी ने अपने साथी बालकों से पिता की दुर्दशा सुनी। शृङ्गी ने क्रुद्ध हो कर शाप दिया । जिसने हमारे पिता के गले में मृत सर्प लपेटा है उसकी आज के सातवें दिन, तक्षक के काटने से मृत्यु होगी । इस बात को सुन कर शमीक ने पुत्र का बहुत तिरस्कार किया और अनेक प्रकार के उपदेश दे कर शाप प्रत्याहार करने के लिये कहा । परन्तु पुत्र ने किसी भी प्रकार शाप प्रत्याहार नहीं किया।

शम्बर=असुर विशेष । श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न के हाथ यह मारा गया था । (देखो प्रद्युम्न)

शम्बुक=त्रेतायुग के शूद्रजातीय एक तपस्वी । शूद्र को तपस्या करने का अधिकार नहीं है । यह शास्त्रमर्यादा लङ्घन कर के तपस्या करता था, इस कारण राम के राज्य के समय एक ब्राह्मण का पुत्र मर गया था । अकाल मृत्यु से मृत उस ब्राह्मण बालक को जीवित करने के लिये रामचन्द्र घर से निकले । उन्होंने शम्बुक को तपस्या करते देख उसका सिर काट लिया ।

शम्भु जी=छत्रपति शिवा-जी के ज्येष्ठ पुत्र । ये सन् १६५८ ई० में उत्पन्न हुए थे । दिल्ली के पादशाह औरङ्गज़ेब की चालाकी से शिवा जी जब दिल्ली में क़ैद हुए उस समय पिता के साथ ये भी भाग गये थे । शिवा जी की मृत्यु होने पर सन् १६८० ई० से सन् १६८६ ई० तक इन्होंने राज्य किया था । तदनन्तर मोगल सेना इनको क़ैद कर दिल्ली ले आयी और दिल्ली में औरङ्गज़ेब ने बड़ी निर्दयता से इन्हें मार डाला। ये विषयासक्त और मद्यप थे ।

शम्भुनाथ पण्डित=कलकत्ता हाईकोर्ट के सर्व प्रथम देशी जज । शम्भुनाथ कश्मीरी ब्राह्मण थे । उनके पिता का नाम सदाशिव पण्डित था । सन् १८२० ई० में कलकत्ते में शम्भुनाथ का जन्म हुआ । इनके चचा कलकत्ता की सदर अदालत में पेश्कार का काम करते थे । चाचा अपुत्र थे । इस कारण उन्होंने बड़े भाई की सम्मति से शम्भुनाथ को दत्तक ग्रहण किया । कलकत्ते में शम्भुनाथ का स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहता था । इस कारण वे लखनऊ पढ़ने के लिये भेज दिये गये । वहाँ कुछ उर्दू और फ़ारसी पढ़ कर अङ्गरेज़ी पढ़ने के लिये वे काशी आये । काशी से कलकत्ते जा कर वे ओरियेन्टल सेमिनरी में भर्ती हुए । इस समय उनकी अवस्था १४ वर्ष की थी । वहाँ उन्होंने अङ्गरेज़ी साहित्य में विशेष ज्ञान प्राप्त कर लिया । उन्हें १८४१ ई० में सदर अदालत में २० मासिक का एक क्लर्क का पद मिला । १८४६ सन् में वे डिगरी जारी कराने के मुहर्रिर हुए । इसी समय उन्होंने डिगरी जारी कराने के सम्बन्ध में एक ग्रन्थ लिखा, जिस के कारण जजों ने उनकी बड़ी प्रशंसा की । १८४८ सन् में उन्होंने वकालत की परीक्षा दी और वे उसमें उत्तीर्ण हुए । इसी वर्ष नवम्बर महीने से वे वकालत करने लगे । थोड़े ही दिनों में फौजदारी मुक़दमे में इनकी बड़ी प्रसिद्धि हुई । १८५५ ई० में ये जुनीयर सरकारी वकील नियत हुए । इसी समय ४०० मासिक वेतन पर वे प्रेसिडेंसी कालेज में क़ानून के अध्यापक हुए । इसके थोड़े दिनों के बाद वे हाईकोर्ट के जज हो गये । १८६७ ई० में पिड़की रोग से इनकी मृत्यु हुई । ये स्त्रीशिक्षा के पक्षपाती थे । सबसे पहले इन्हों ही ने अपनी कन्या को बेथून कालेज में पढ़ने के लिये भेजा था । इन्होंने भवानीपुर में एक अस्पताल बनवाया है, जो शम्भुनाथ हास्पिटल के नाम से प्रसिद्ध है ।

शम्भुसिंह=मेवाड़ के महाराणा । इनके पिता का नाम शार्दूलसिंह था । महाराणा स्वरूपसिंह की मृत्यु होने पर उनके भतीजे शम्भुसिंह मेवाड़ की राजगद्दी पर बैठे । सन् १८६१ ई० में इनका राज्याभिषेक हुआ था । उस समय ये बालक थे इस कारण एक शासक समिति स्थापित की गयी और वही शासन करने लगी । परन्तु उस शासक समिति के सदस्य मनमाने व्यवहार करने लगे । इस कारण गवर्नमेंट को दूसरी व्यवस्था करनी पड़ी । अबकी बार तीन आदमियों की एक समिति बनी इसके सभापति हुए स्वयं पोलिटिकल एजेंट साहब ।

महाराणा शम्भुसिंह को १८६५ ई० के नवम्बर महीने में शासन का अधिकार प्राप्त हुआ । परन्तु दुःख की बात है कि महाराणा शम्भुसिंह का अधिकार मेवाड़ पर बहुत दिनों तक नहीं रहा । बहुत थोड़े ही दिनों में सन् १८७४ के अक्टूबर महीने की ७ वीं को २७ वर्ष की अवस्था में इनका परलोक वास हो गया । प्रजा ने सोचा था कि महाराणा शम्भुसिंह के शासन में सुख से समय बीतेगा किन्तु उसकी वह मधुर आशा ज्यों की त्यों रह गयी ।

(टाड्स राजस्थान)

शम्भुनाथसिंह=ये सोलङ्की क्षत्रिय थे । ये सीतारागढ़ के रहने वाले थे । सं० १७३८ में इनका जन्म हुआ था । ये मतिराम त्रिपाठी के बड़े मित्र थे । ये कवियों का बड़ा आदर करते थे । इन्हों ने नायिकाभेद का कोई ग्रन्थ भी बनाया है ।

(शिवसिंहसरोज)

शम्भुनाथ मिश्र=(१) ये भाषा के कवि थे और इनका जन्म १८०३ संवत में हुआ था । ये भगवन्तराय खीची के यहाँ असोथर में रहते थे । इन्होंने अनेक शिष्यों को कवि बना दिया है । "रसक-

श्लोल," "रसतरङ्गिणी," और "अलङ्कारदीपक" नामक तीन ग्रन्थ इन्होंने बनाये हैं।

(२) ये बैसवारे के रहने वाले और भाषा के कवि थे। सं० १६०१ में इनका जन्म हुआ था। ये राना यदुनाथसिंह खजूरगाँव के यहाँ रहते थे। ये थोड़ी ही अवस्था में मरे थे। बैशवंशावली और शिवपुराण के चतुर्थखण्ड का इन्होंने भाषान्तर किया है।

शम्भुनाथ कवि=ये भाषा के कवि वन्दीजन थे। ये संवत् १७६८ में उत्पन्न हुए थे। "रामविलास" नामक एक बहुत सुन्दर ग्रन्थ इन्होंने बनाया है। इस ग्रन्थ में अनेक छन्द हैं।

शम्भुनाथ त्रिपाठी=ये भाषा के कवि डौड़ियाखेरा के रहने वाले थे। इनका जन्म सं० १८०६ में हुआ था। ये राजा अचलसिंह के दरबारी कवि थे। इन्होंने राव रघुनाथसिंह के नाम से बेतालपचीसी को संस्कृत से भाषा में अनूदित किया है। मुहूर्तचिन्तामणि का भी नाना छन्दों में इन्होंने भाषानुवाद किया है।

शम्भुप्रसाद कवि=ये भी भाषा के कवि थे। इनकी श्रृङ्गाररस सम्बन्धी कविता उत्तम होती थी। (शिवसिंहसरोज)

शरभङ्ग=एक महर्षि। ये दक्षिण में रहते थे। वनवास के समय रामचन्द्र इनका दर्शन करने गये थे। ये उन महर्षियों में से एक हैं जिन लोगों ने अरण्यानी परिवृत्त दक्षिण देश में आर्यसभ्यता का विस्तार किया था।

(रामायण)

शर्मिष्ठा=दैत्यपति वृषपर्वा की कन्या। (देखो देवयानी)

शर्याति=एक राजा का नाम। इन्हींकी कन्या सुकन्या महर्षि च्यवन को व्याही गयी थी।

शल्य=मद्र देश के अधिपति। द्रौपदी के स्वयंवर के समय ये भीमसेन के साथ मल्लयुद्ध में हार गये थे। कुरुक्षेत्र के युद्ध में इन्होंने दुर्योधन का पक्ष ग्रहण किया था। युद्ध के १६ वें औ १७ वें दिन महावीर कर्ण के ये सारथि हुए थे। कर्ण की मृत्यु होने पर युद्ध के १८ वें दिन ये सेनापति बनाये गये और युधिष्ठिर के हाथ से मारे गये।

शवरी=एक शवर तपस्विनी। सीताजी को ढूँढ़ने के लिये रामचन्द्र जब वन वन घूमते थे उस समय वे इस तापसी के आश्रम में गये थे। इन्होंने रामचन्द्र की अभ्यर्थना की और उन्हीं की अनुमति से उन्हींके सामने चिता में देहविसर्जन की।

शाकटायन=एक प्राचीन व्याकरणप्रणेता ऋषि। इनके ग्रन्थ इस समय दुर्लभ हैं। किन्तु इस समय के प्रचलित व्याकरणों में इनका सिद्धान्त उद्धृत किया हुआ मिलता है।

शाक्त=एक सम्प्रदाय का नाम। शक्ति के उपासक भी शाक्त कहे जाते हैं। इस सम्प्रदाय का मत है कि चाहे कोई मनुष्य भगवान् की जिस किसी रूप में पूजा क्यों न करें, परन्तु उन्हें भी शक्ति का सहारा लेना पड़ता है। अर्थात् वे भी भगवान् की शक्ति की ही उपासना करते हैं। वेद पुराण आदि समस्त शास्त्रों में शक्ति की प्रधानता कीर्तित है। शक्ति की उपासना सृष्टि के आदिकाल से प्रचलित है। तन्त्रशास्त्रों में लिखा है कि शक्ति के उपासक ही प्रधानतः ब्राह्मण हैं। शक्ति को उद्देश्य कर के ही गायत्री मन्त्र का विधान है। शास्त्रों में शक्ति और परब्रह्म का अभेद बताया गया है। ब्रह्मवैवर्तपुराण के प्रकृतिखण्ड में नारद और नारायण के कथोपकथन में इसी तत्त्व का उपदेश किया गया है। नारद ने पूछा—सृष्टिकार्य में दुर्गा, राधा, लक्ष्मी, सरस्वती, सावित्री इन पाँच प्रकृतियों की उपयोगिता बतलायी गयी है, परन्तु ज्ञानी लोग प्रकृति ही को सर्वश्रेष्ठ बतलाते हैं। उनका लक्षण क्या है? और उनमें पाँच भेद क्यों हुए? नारायण ने उत्तर दिया—प्र शब्द का अर्थ प्रकृष्ट है और कृति शब्द का अर्थ सृष्टि है। अतएव सृष्टि कार्य में जो प्रधान है उसे प्रकृति कहते हैं। श्रुतियों में प्र शब्द का अर्थ सत्त्वगुण, कृ शब्द का अर्थ रजोगुण और ति शब्द का अर्थ तमोगुण है। अतः त्रिगुणात्मिका सर्वशक्तिसम्पन्ना देवी को प्रकृति कहते हैं। प्र शब्द का अर्थ प्रथम और कृति शब्द का अर्थ सृष्टि है, सृष्टि की आदिभूत देवी को प्रकृति कहते हैं। पूर्वोक्त प्रश्नोत्तर से मालूम पड़ता है कि परब्रह्म

ही मूल प्रकृति के नाम से अभिहित होते हैं और वे ही दुर्गा आदि पाँच भागों में विभक्त हुई हैं । नारायण के उत्तर में यह बात भी देखी जाती है कि प्रधान पुरुष परमात्मा योग के द्वारा दो भागों में विभक्त हुए । उनके दक्षिण भाग से पुरुष और वाम भाग से स्त्री उत्पन्न हुई। सामवेद में भी प्रकृति पुरुष का यही स्वरूप लिखा है । सामवेद में लिखा है—वे (परमात्मा) सृष्टि करने की इच्छा से प्रकृति और पुरुष के रूप में विभक्त हुए । ऋग्वेद के दशम मण्डल में भी इसी प्रकार का एक सूक्त देखा जाता है। जिससे मालूम पड़ता है कि केवल नाम रूप का ही भेद है । तन्त्रशास्त्रों में शक्ति उपासना की पद्धति बड़े विस्तार से लिखी है अधिकारि-भेद के अनुसार जिसके लिये जैसी उपासना कल्याणप्रद है उस उपासना का वर्णन है। आचारतत्त्व और भावतत्त्व का ज्ञान होने से शक्ति उपासना के तत्त्व जाने जा सकते हैं। तन्त्रों में नव प्रकार के आचार लिखे गये हैं । कौलाचार सब आचारों में श्रेष्ठ समझा जाता है। कौलाचार नामक ग्रन्थ में शिव ने पार्वती के प्रति कौल का लक्षण इस प्रकार बतलाया है—जिनको दिक् काल का नियम नहीं है तीर्थ आदि का भी नियम नहीं है और न महामन्त्र साधन ही का कोई नियम है, कभी उत्तम कभी भ्रष्ट कभी भूत प्रेत के समान रूप धारण कर के विचरण करते हैं, जिन्हें कीचड़ और चन्दन में भेद ज्ञान नहीं, शत्रु मित्र, श्मशान भवन, स्वर्ण तृण आदि को जो समान दृष्टि से देखते हैं वे ही कौलाचारी हैं । तन्त्रशास्त्रों में वर्णित भाव तीन प्रकार के हैं—दिव्यभाव, वीरभाव, और पशुभाव ।

(भारतवर्षीय इतिहास)

शान्तनु=महाभारत युद्ध के विख्यात योद्धा महावीर भीष्मपितामह के पिता का नाम । शान्तनु के पिता का नाम प्रतीप था । गङ्गा देवी ने शान्तनु की स्त्री होना स्वीकार किया और उनके गर्भ से भीष्म नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ (देखो वसु) वसुराज की कन्या सत्यवती के रूप से मोहित हो कर शान्तनु ने उसे ब्याहने की इच्छा प्रकट की, परन्तु सत्यवती का पिता उनसे सहमत नहीं हुआ । परन्तु पीछे से उसने कहा यदि शान्तनु सत्यवती के पुत्र को राज्य देना स्वीकार करें तो मैं अपनी लड़की ब्याह दूँ । वृद्ध राजा शान्तनु दासराज की इस बात को सुन कर अन्तस्तप्त होने लगे । यह सुन कर भीष्म अपने पिता से ब्याह कर लेने के लिये दृढ़ता से अनुरोध करने लगे, और उन्होंने प्रतिज्ञा की कि मैं राज्य नहीं लूँगा और अपना ब्याह भी नहीं करूँगा । इसी सत्यवती के गर्भ से शान्तनु को विचित्र-वीर्य और चित्राङ्गद उत्पन्न हुए थे ।

शान्ता=अयोध्याधिपति दशरथ की कन्या और महर्षि ऋष्यशृङ्ग की पत्नी । दशरथ ने अपने मित्र अङ्गदेशाधिपति लोमपाद को अपनी कन्या शान्ता पोष्यपुत्रिकारूप में दी थी । (देखो ऋष्यशृङ्ग)

शाम्ब=श्रीकृष्ण के पुत्र । ये जाम्बवती के गर्भ से उत्पन्न हुए थे । दुर्योधन की कन्या लक्ष्मणा को इन्होंने ब्याहा था ।

शार्ङ्गदेव=एक प्राचीन कलापारङ्गत विद्वान् । इन्होंने सङ्गीतरत्नाकर नाम की एक पुस्तक बनायी है । इस पुस्तक में सङ्गीतशास्त्र के नियमों तथा तत्त्वों का सन्निवेश है ।

शार्ङ्गधर=एक वैद्य का नाम । इन्होंने वैद्यक की एक पुस्तक अपने नाम से बनायी है ।

शालिवाहन=वर्षप्रवर्त्तक शकजातीय राजा । इन्होंने जिस अब्द को चलाया था उसका नाम शक है । ये गज़नी के राजा महाराज गज के पुत्र थे । महाराज गज के मारे जाने पर कुमार शालिवाहन पंजाब चले आये । पंजाब पर उन्होंने अपना अधिकार कर लिया । वहाँ शालिवाहनपुर नाम का एक गाँव इन्होंने बसाया । राजा शालिवाहन ने विक्रम संवत् ७२ के भादों में शालिवाहन-पुर नामक नगर बसाया । इनके १५ पुत्र थे ।

(टाड्स राजस्थान)

शाल्मली द्वीप=प्लक्षद्वीप के अनन्तर शाल्मली द्वीप है, यहाँ के राजा वपुष्मान् थे । इस द्वीप में भी उनके सात पुत्रों के नामानुसार सात विभाग हैं । उन विभागों के नाम ये हैं—श्वेत, हारीत, जीमूत, रोहित, वैद्युत, मानस और

सुप्रभ । यह प्लक्षद्वीप से द्विगुण बड़ा है । यह द्वीप इक्षुसमुद्र और सुरासमुद्र द्वारा वेष्टित है।

शाल्व=प्रबल नरपति विशेष । काशीराज की तीन कन्याओं के हरण के समय भीष्म के साथ इनका युद्ध हुआ था । भीष्म ने इन्हें पराजित कर के तीनों कन्याओं का हरण किया । उन कन्याओं में सब से बड़ी अम्बा ने शाल्व को मन ही मन पति बनाया था । अतः भीष्म ने अम्बा को छोड़ दिया । अम्बा शाल्व के पास गयी, परन्तु शाल्व ने उसे स्वीकार नहीं किया ।

शिखण्डी=द्रुपदराज का एक नपुंसक पुत्र । इस नपुंसक शिखण्डी को आगे रख कर महाभारत के युद्ध में अर्जुन ने युद्ध के दसवें दिन भीष्म का वध किया था । भीष्म की प्रतिज्ञा थी कि वे किसी स्त्री पर बाण नहीं चलावेंगे । भीष्म का वध करने के लिये अर्जुन ने इस कूटनीति का अवलम्बन किया था । भीष्म का वध करने के लिये दूसरी कोई गति ही नहीं थी ।

शिखण्डी पूर्व जन्म में अम्बा नाम की काशीराज की बड़ी कन्या था । अम्बा ने शाल्वराज को पति बनाना चाहा था, परन्तु भीष्म के द्वारा स्वयंवर सभा से हरी जाने के कारण शाल्व ने उसे ग्रहण नहीं किया । इससे अम्बा को बड़ा कष्ट हुआ वह भीष्म से प्रतिशोध करने के लिये वन में जा कर कठोर तपस्या करने लगी । अन्त में उसे इष्ट देवता से यह वर मिला कि तुम दूसरे जन्म में भीष्म को मार सकोगी । वर प्राप्त कर उसने प्राण त्याग किया और द्रुपद के घर में शिखण्डी रूप से जन्म लिया । द्रुपदराज ने अपने इस नपुंसक पुत्र का व्याह दशार्ण देश की राजकन्या के साथ किया था । विवाह के अनन्तर शिखण्डी की नपुंसकता जब प्रकाशित हुई तब वह मारे लज्जा के वन में चला गया । वन में कुबेर के अनुचर से उसकी भेंट हुई और उसने अपना समस्त वृत्तान्त उस कुबेर के अनुचर से कहा । कुबेर के अनुचर ने जीवन पर्यन्त अपना पुरुषत्व उसे दिया और उसका स्त्रीत्व ग्रहण किया । शिखण्डी बड़ी प्रसन्नता से घर लौट आया । महाभारत युद्ध के अन्तिम दिन अश्वत्थामा ने जिस समय पाण्डवों के शिविर में प्रवेश किया था उसी समय अश्वत्थामा के हाथ शिखण्डी मारा गया था ।

शिनि=यदुवंशी प्रसिद्ध वीर । इन्होंने वसुदेव के लिये देवक की कन्या देवकी को बलपूर्वक हरण किया था इसी कारण सोमदत्त के साथ शिनि का भयङ्कर युद्ध हुआ । युद्ध में सोमदत्त हार गया । इनके पुत्र का नाम सात्यक था और पौत्र का नाम महावीर सात्यकि था ।

शिलादित्य=प्राचीन वल्लभीपुर के एक राजा का नाम । जिस समय म्लेच्छों ने वल्लभीपुर को विध्वंस किया, उस समय शिलादित्य का परिवार सौराष्ट्र में भाग आया था । अन्तिम बार शिलादित्य का परिवार सौराष्ट्र से गायनी नामक नगर को जा रहा था, उस समय म्लेच्छों ने इन पर आक्रमण किया और सब को मार डाला । कहते हैं यही शिलादित्य वर्तमान मेवाड़ के महाराणा के पूर्वपुरुष हैं ।

(टाड्स राजस्थान)

शिलूण=प्राचीन कलानिपुण एक विद्वान् का नाम । इन्होंने सङ्गीतशास्त्रसम्बन्धी एक ग्रन्थ लिखा है । उस ग्रन्थ का नाम है "राग-सर्वस्वसार" ।

शिव=पौराणिक एक देवता का नाम । इनकी स्त्री का नाम पार्वती है । कार्तिकेय और गणेश नाम के इनके दो पुत्र हैं । महादेव की लिङ्गरूप से पूजा होती है । इसका कारण पद्मपुराण के उत्तरखण्ड में इस प्रकार लिखा है ।

"देवादिदेव महादेव ने इस प्रकार निन्दित रूप क्यों धारण किया" दिलीप ने एक समय वशिष्ठ से यही पूछा था । भगवान् वशिष्ठ ने उत्तर दिया-पुरा काल में मन्दर पर्वत पर ऋषियों ने एक बड़े यज्ञ का अनुष्ठान किया । उस यज्ञ में सभी ऋषि मुनि एकत्रित हुए थे, वहाँ इस बात पर विचार होने लगा कि ब्राह्मणों को किस देवता की पूजा करनी चाहिये, परन्तु उस विचार में कुछ निश्चय नहीं होसका अतः सभी ने निश्चय किया कि ब्रह्मा विष्णु और शिव के समीप चलना चाहिये । वे ही इस संशय को निवारण करेंगे । सबसे पहले ऋषिगण

महादेव के समीप गये, द्वार पर जा कर ऋषियों ने देखा कि द्वार बन्द है और नन्दी द्वार पर बैठा है। ऋषियों ने नन्दी से कहा कि तुम शीघ्र ही महादेव के समीप जा कर हम लोगों के आने का संवाद दो, हम लोग महादेव को प्रणाम करने आये हैं। नन्दी ने कड़ाई से उत्तर दिया—यदि तुम लोगों को अपने प्राणों का भय हो तो शीघ्र ही यहाँ से चले जाओ। इस समय महादेव का दर्शन नहीं होगा, क्योंकि वे इस समय पार्वती के साथ क्रीड़ा कर रहे हैं। यह सुन कर महर्षिगण क्षुब्ध हो गये, और तेजस्वी भृगु ने कहा—महादेव ! तुमने स्त्रीसङ्गम में मुग्ध हो कर हम लोगों का अपमान किया है इस कारण योनि-लिङ्गरूप तुम्हारी मूर्त्ति होगी। तुम्हारे यहाँ ब्राह्मण उपस्थित हुए हैं यह बात तुम्हें मालूम नहीं है, अस्तु, इसी कारण तुम्हारा निवेदित अन्न जल आदि कोई नहीं ग्रहण करेगा। आज से ब्राह्मण तुम्हारी पूजा भी नहीं करेंगे, और जो कोई ब्राह्मण तुम्हारी पूजा करेगा वह अब्राह्मण तथा पाखण्डी हो जायगा। इस प्रकार महादेव को शाप देकर भृगु मुनि ऋषियों को साथ ले कर ब्रह्मलोक में ब्रह्मा के निकट चले गये।

शिव कवि=(१) ये भाषा के कवि देउतहा जिला गोंडा के निवासी थे। इनका जन्म सं० १७६६ में हुआ था। ये वन्दीजन थे। असोथर के शम्भु कवि से इन्होंने काव्य शास्त्र का अध्ययन किया था। ये जगत्सिंह बिसेन के यहाँ रहते थे। इन्होंने जगत्सिंह को काव्य में प्रवीण बनाया था। इनके बनाये तीन उत्तम ग्रन्थ भाषा साहित्य में हैं। उनके नाम ये हैं "रसिकविलास", "अलङ्कारभूषण" और "पिङ्गल"।

(२) ये भी वन्दीजन थे और बिलग्राम के रहने वाले थे। सं० १७६५ में इनका जन्म हुआ था। इन्होंने शृङ्गारविषयक "रसनिधि" नामक एक ग्रन्थ बनाया है।

शिवदीन कवि=ये कवि भिनगा जिला बहरायच के रहने वाले थे। ये कवि भिनगा के राजा कृष्णदत्तसिंह बिसेन के दरबार में रहते थे। इन्होंने भाषा में "कृष्णदत्तभूषण" नामक एक उत्तम ग्रन्थ बनाया है।

शिवनाथ कवि=ये भाषा के कवि थे और बुन्देलखण्ड के निवासी थे। छत्रशाल के पुत्र जगत्सिंह बुन्देला की सभा में ये वर्तमान थे। "रसरञ्जन" नामक एक ग्रन्थ इन्होंने बनाया है।

शिवप्रकाशसिंह=ये डुमराँव के महाराज जयप्रकाशसिंह के भाई थे। "रामतत्त्वबोधिनी" नामक विनयपत्रिका की एक सुन्दर टीका इन्होंने बनायी है।

शिवप्रसाद सितारेहिन्द=ये प्रमारवंशी क्षत्रिय थे। इनके पूर्वज दिल्ली में जौहरी का काम करते थे। जैनधर्म इनका पुरुषानुक्रम का धर्म है। नादिरशाही के समय इनके पूर्वज दिल्ली से मुरशिदाबाद भाग आये थे। नव्वाब कासिमअली खाँ के अत्याचार से पीड़ित हो कर राजा शिवप्रसाद के पितामह डालचन्द जी काशी आ बसे।

इनका जन्म माघ शुक्ल २ था सं० १८८० में हुआ था। इनके पिता का नाम बाबू गोपीचन्द था। पाँच वर्ष की अवस्था से ही इनकी शिक्षा का प्रबन्ध हो गया। पहले घर पर उर्दू और हिन्दी का अध्ययन किया तदनन्तर ये बीबीहिरिया के स्कूल में फ़ारसी पढ़ने लगे। इसके पीछे इन्होंने संस्कृत का भी अभ्यास किया। जब राजा साहब की अवस्था १३–१४ वर्ष की थी उसी समय फोर्ट विलियम कालेज के प्रोफ़ेसर तारणीचरण मित्र वास के निमित्त काशी आये। उनके पुत्रों से राजा साहब की मित्रता हो गयी। राजा साहब ने उन्हींसे अंगरेज़ी और बङ्गला भाषाएँ सीखीं और १६ वर्ष की अवस्था में संस्कृत, हिन्दी, अरबी, फ़ारसी, अंगरेज़ी और बङ्गला में अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली।

इस प्रकार शिक्षा समाप्त कर चुकने पर अपने मामा की सहायता से बाबू शिवप्रसाद भरतपुर दरबार में नौकर हुए। वहाँ जा कर इन्होंने राज्य के दीवान को ८० कायस्थों सहित जेल भिजवाया, क्योंकि वह दीवान महाराज को दबा कर राज्य में मनमानी करता था। इससे प्रसन्न हो कर भरतपुर के महाराज ने इन्हें अपना वकील बनाया।

कुछ काल के पीछे भरतपुर की नौकरी छोड़

कर ये घर चले आये और फिर भरतपुर न गये। सन् १८४५ ई०में इन्होंने अंगरेज़ सरकार की सेवा स्वीकार की। उसी समय पंजाब में सिक्ख युद्ध प्रारम्भ हुआ था । राजा साहब अंगरेज़ी सेना के साथ सरहद पर गये और वहाँ गवर्नर जनरल की आज्ञा से ये अपने साहस और वीरता पर भरोसा रख कर शत्रु-सेना में घुस गये और वहाँ की तोपें गिन आये तथा और भी उनके भेद ले आये। फिर महाराज दिलीपसिंह को बम्बई तक पहुँचा कर जहाज़ पर सवार करा आये।

सिक्खों से सन्धि हो जाने पर गवर्नर जनरल के साथ ये शिमले गये थे, वहाँ एक विशेष पद पर ये नियत किये गये। इन्होंने अंगरेज़ सरकार की बड़ी सेवा की थी।

शिमले से आ कर राजा साहब कुछ दिनों तक कमिश्नर साहब के मीर मुंशी रहे। परन्तु इनकी विद्या की अभिरुचि देख कर सरकार ने इन्हें स्कूलों के इंस्पेक्टर नियत किया। अपनी इंस्पेक्टरी के समय राजा साहब ने हिन्दी का बड़ा उपकार किया था। इन्होंने साहित्य, भूगोल, इतिहास आदि विषयों की पुस्तकें प्रायः ३५ लिखी हैं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र इन के शिष्य थे।

सन् १८७२ ई० में इन्हें सी. एस्. आई. अर्थात् सितारेहिन्द की उपाधि सरकार से मिली थी और सन् १८८७ ई० में इन्हें वंश-परम्परा के लिये राजा की उपाधि मिली। सन् १८६५ ई० में आपका शरीरान्त हो गया।

शिवसिंह=शिवसिंहसरोज के कर्ता। इन्होंने अपने सरोज में अपना परिचय इस प्रकार दिया है—अपना नाम लिखना इस ग्रन्थ में बड़े अचम्भे की बात है। कारण यह है कि हमको इस मार्ग में कुछ भी ज्ञान नहीं है सो हमारी ढिठाई को विद्वज्जन माफ़ करेंगे। हमने बृहच्छिवपुराण को भाषा और उर्दू दोनों बोलियों में उल्था करके छपाया है। हमने ब्रह्मोत्तरखण्ड का भी भाषा किया है। काव्य करने की मुझमें शक्ति नहीं। ग्रन्थों को एकत्रित करने की हमें बड़ी अभिलाषा है। अरबी, फ़ारसी, संस्कृत के सैकड़ों अद्भुत ग्रन्थ हमने संग्रह किये हैं। इन भाषाओं का थोड़ा बहुत ज्ञान भी हमको है।

शिवाजी=राजा शाहजी भोंसला के पुत्र। राजा शाहजी उस समय महाराष्ट्र देश में एक प्रधान वीर तथा उदारचित्त समझे जाते थे। उस समय दक्षिण देश में उनका सामना करने वाला कोई नहीं था। शिवाजी के जन्म के पहले राजा शाहजी अहमदनगर के सुलतान की नौकरी करते थे। उसी सुलतान की ओर से मोगलों से युद्ध करने के निमित्त जाने के समय राजा शाहजी ने अपनी गर्भवती स्त्री जीजाबाई को शिवनेरी नाम के दृढ़ दुर्ग में रख दिया। शिवनेरी पूना से ५० माइल उत्तर की ओर है। राजा शाहजी के दो स्त्रियाँ थीं, पहली का नाम जीजाबाई और दूसरी का नाम तुकाबाई था। जीजाबाई के गर्भ से शिवनेरी दुर्ग में सन् १६२७ ई० में शिवाजी का जन्म हुआ। शिवाजी के बड़े भाई का नाम शम्भुजी था। जीजाबाई ने शिवनेरी दुर्ग की अधिष्ठात्री देवी के नामानुसार अपने पुत्र का नाम शिवाजी रखा। सन् १६३७ ई० में अहमदनगर का राज्य नष्ट होने पर राजा शाहजी ने बीजापुर के सुलतान का आश्रय ग्रहण किया। सुलतान ने शाहजी की कार्यपटुता देख कर उन्हें उच्चपद पर नियत किया। थोड़े दिनों के बाद उन्हें "राजा" की उपाधि भी मिली। इसी समय जीजाबाई और शिवाजी को भी वे बीजापुर ले गये। वहाँ ही सन् १८३७ ई० में बाई नाम की एक उच्चवंशीया कन्या से शिवाजी का ब्याह हुआ। इस स्त्री के गर्भ से शिवाजी को एक पुत्र हुआ जिसका नाम शम्भुजी रखा गया। शिवाजी बाल्यावस्था से ही मुसल्मानों से घृणा करते थे। इसी कारण पिता के कहने पर भी पहले वे बीजापुर के सुलतान से भेंट करने नहीं गये। परन्तु अन्त में पिता के बहुत दिकादिकाने पर उन्हें जाना ही पड़ा। सुलतान ने अल्पवयस्क शिवाजी का साहस और तेजस्विता देख कर एक बहुमूल्य शिरोपाँवा दे कर उन्हें सम्मानित किया। मुसल्मानद्वेषी पुत्र को बीजापुर में रखना अनुचित समझ कर शाहजी ने शिवाजी को पूने भेज दिया। जीजाबाई भी

पुत्र के साथ ही पूने गयीं । राजा शाहजी ने स्त्री और पुत्र की देख रेख रखने के लिये कई कर्मचारी पूने भेज दिये। राजा शाहजी धनी थे, बीजापुर के सुलतान के यहाँ से उन्हें बहुत से गाँव जागीर में मिले थे। उनको सर्वदा बीजापुर में रहना पड़ता था इस कारण अपनी ज़मींदारी का प्रबन्ध करने के लिये दादोजी कोण्डदेव नामक एक व्यक्ति को उन्होंने नियत किया था। शिवाजी पूने जा कर दादोजी कोण्डदेव की अधीनता में रह कर व्यायाम तथा अस्त्रविद्या सीखने लगे । शिवाजी कुछ विशेष लिखे पढ़े नहीं थे। उस समय महाराष्ट्र देश में पढ़ना लिखना कुछ विशेष महत्त्व का नहीं समझा जाता था । शारीरिक शिक्षा के साथ साथ शिवाजी का मुसल्मान द्वेष और स्वतन्त्र हिन्दूराज्य स्थापन करने की इच्छा बढ़ने लगी। शिवाजी ने जो सङ्कल्प किया था उसे कार्य में परिणत करने के लिये धन की आवश्यकता थी । यद्यपि शिवाजी के पास धन बहुत था, परन्तु पिता शिवाजी के मत से सहमत नहीं थे। इस कारण शिवाजी ने एक डाकुओं का दल तैयार किया और आप उसके नेता बने । वे प्रायः मुसल्मानों का धन ही लूटा करते थे, वे गौ, ब्राह्मण, अनाथ, फकीर, कृषक और स्त्रियों पर अत्याचार नहीं करते थे । एक मुसल्मान सूबेदार सेना के साथ बीजापुर जा रहा था शिवाजी के सैनिकों ने उस पर आक्रमण किया और उसका समस्त धन लूट लिया । सूबेदार की एक सुन्दरी स्त्री भी शिवाजी के सैनिकों ने लूट ली थी, परन्तु शिवाजी ने बड़े सम्मान से उस स्त्री को बीजापुर पहुँचवा दिया। शिवाजी बीजापुर के अधिकृत देशों में उपद्रव करने लगे। कहीं शत्रुओं से घिर न जायँ इस लिये सह्यपर्वत के दुर्गम प्रदेश में, सिंहगढ़, पुरन्दर आदि दृढ़ क़िलों पर अधिकार कर लिया और वे वहीं से अपनी सेना परिचालित करने लगे। बीजापुर के सुलतान ने शिवाजी को अपने पक्ष में करने के लिये उनके पिता को क़ैद कर लिया। शिवाजी उस समय के दिल्ली के बादशाह शाहजहाँ के यहाँ गये । शाहजहाँ की आज्ञा से राजा शाहजी छोड़ दिये गये । सन् १६५९ ई० में बीजापुर के सुलतान ने शिवाजी को दमन करने के लिये अफ़ज़लख़ाँ की अध्यक्षता में एक सेना भेजी । शिवाजी ने पहले तो अफ़ज़लख़ाँ के साथ सन्धि करने का प्रस्ताव किया, परन्तु पीछे सहसा उस पर आक्रमण कर के उसे मार डाला। सेनापति के मारे जाने से उनकी सेना भी तितर बितर हो गयी। इसी समय शाहजहाँ की वृद्धावस्था के कारण उसके पुत्रों में सिंहासन के लिये बड़ा उपद्रव प्रारम्भ हुआ। इसी समय सुयोग पा कर शिवाजी अपना राज्य बढ़ाने के लिये उद्योग करने लगे । मोगल बादशाह के अनेक देशों को इन्होंने अपने अधिकार में कर लिया। शिवाजी का शासन करने के लिये दिल्ली के बादशाह औरङ्गज़ेब ने दक्षिण के सूबेदार और अपने मामा शाइस्ताख़ाँ से कहा। शिवाजी ने अकस्मात् शाइस्ताख़ाँ पर आक्रमण किया, शाइस्ताख़ाँ ने किसी प्रकार भाग कर अपने प्राणों की रक्षा की और उसकी सेना भी सेनापति के साथ ही भाग गयी । सन् १६६४ ई० में शिवाजी ने राजा की उपाधि धारण कर के अपने नाम के सिक्के चलाये। उनको दमन करने के लिये दिल्ली के बादशाह औरङ्गज़ेब ने जयपुर के राजा जयसिंह को दक्षिण देश में भेजा। जयसिंह से परास्त हो कर और उनके कहने से शिवाजी दिल्ली में औरङ्गज़ेब के पास गये। औरङ्गज़ेब ने उनकी अप्रतिष्ठा की तथा एक प्रकार से उन्हें क़ैद कर लिया। शिवाजी दिल्ली से कौशलपूर्वक निकल भागे और अपने राज्य में चले आये । राज्य में आ कर उन्होंने दिल्ली के बादशाह के अनेक नगर लूट लिये। सन् १६७४ ई० में रायगढ़ में शिवाजी ने "छत्रपति" की उपाधि धारण की। शिवाजी का राज्य बहुत विस्तृत हो गया था, उनका ख़ज़ाना भरा था । उनकी सेना सुसज्जित हो गयी थी। सन् १६८० ई० में शिवाजी की मृत्यु हुई। शिवाजी ने एक महापराक्रमी जाति की सृष्टि की थी और महाराज्य स्थापित किया था।

शिवि=राजा उशीनर के पुत्र तथा महाराज ययाति के दौहित्र। ये अपनी दयालुता के कारण पुराणों में

प्रसिद्ध हैं। पुराणों में लिखा है कि इनकी दयालुता की परीक्षा लेने के लिये इन्द्र और अग्नि दोनों यथाक्रम बाज और कबूतर बन कर इनकी सभा में आये। बाज ने कबूतर पर आक्रमण किया। कबूतर राजा शिबि की गोद में जा कर छिप गया। यह देख कर बाज ने राजा से कहा—महाराज! दीनों पर दया करना राजधर्म है। मैं भूखा हूँ, मेरे भक्ष्य को आपने छिपा लिया है, यह आपका धर्म नहीं है, आप इसे छोड़ दें। राजा ने कहा शरणागत की रक्षा करना प्रधान धर्म है। तुम इसके अतिरिक्त जो वस्तु माँगो मैं दूँगा। बाज ने कहा—इसी कबूतर के बराबर आप अपने शरीर का मांस दें। राजा ने तराजू के पलड़े पर कबूतर को रखवाया और वे अपने शरीर से मांस काट कर दूसरे पलड़े पर रखने लगे। उन्होंने अपने समस्त शरीर का मांस काट कर रख दिया तो भी उस कबूतर के बराबर मांस नहीं हुआ। यह देख राजा स्वयं पलड़े पर बैठ गये। इसी समय आकाश से पुष्पवृष्टि होने लगी। इन्द्र और अग्नि भी अपना अपना रूप धारण कर प्रकट हुए। इन्द्र और अग्नि ने कहा—महाराज! आप धन्य हैं, आपकी दयालुता की परीक्षा लेने के लिये हम लोग आये थे। आप वर माँगो। शिबि ने वर माँगा, उन लोगों ने "तथास्तु" कहा।

शिशुपाल—चेदि देश के एक राजा का नाम। ये चेदिराज दमघोष के पुत्र थे। शिशुपाल श्रीकृष्ण का मौसेरा भाई था। इसके छोटे भाई का नाम दन्तवक्त्र था। शिशुपाल की माता सुतना को मालूम हुआ था कि श्रीकृष्ण के हाथ से उसके पुत्र की मृत्यु होगी। इस कारण उन्होंने अपने पुत्र के एक सौ अपराध क्षमा करने के लिये श्रीकृष्ण से अनुरोध किया था। श्रीकृष्ण ने अपनी मौसी की बात मानने के लिये प्रतिज्ञा की थी। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में श्रीकृष्ण को बहुत गाली देने के अपराध में वह श्रीकृष्ण के हाथ ही से मारा गया था। (देखो रुक्मिणी)

शुकदेव—वेदविभागकर्ता महर्षि कृष्णद्वैपायन वेदव्यास के पुत्र। एक समय वेदव्यास हवन के निमित्त अग्नि प्रज्वलित करने की इच्छा से अरणि घर्षण कर रहे थे, उसी समय घृताची नाम की एक अप्सरा उनकी आँखों के सामने गयी। महर्षि वेदव्यास बड़ी धीरता से अपनी इन्द्रिय चपलता रोकने के लिये प्रयत्न करने लगे। परन्तु हृदय के वेग के कारण उनका चित्त स्थिर नहीं रह सका। अरणि मध्य में उनका वीर्य गिर ही गया। व्यासदेव को उस अवस्था में देख कर घृताची डर गयी, और उसने शुक पक्षिणी का रूप धारण कर के वहाँ से प्रस्थान किया। व्यासदेव पहले के समान अरणि मन्थन करने लगे। उसी यज्ञकाष्ठ से प्रज्वलित अग्नि के समान शुकदेव उत्पन्न हुए। पुत्र जन्म के समय व्यासदेव ने शुक पक्षिणी को देखा था इस कारण उन्होंने पुत्र का नाम शुकदेव रखा। शुकदेव का उपनयन संस्कार स्वयं महादेव ने किया था। देवराज इन्द्र ने उन्हें कमण्डलु और आसन दिया था। उसी स्थान पर समाधिस्थ हो कर शुकदेव रहने लगे। ब्रह्मचर्यपूर्वक शुकदेव पिता से मोक्षशास्त्र का अध्ययन करने लगे। थोड़े दिनों के बाद व्यासदेव ने कहा—यदि तुम्हें मोक्षशास्त्र विषयक किसी प्रकार का सन्देह हो तो मिथिलेश जनक के पास जा कर सन्देह दूर करो। पिता की आज्ञा से शुकदेव जनकराज के पास मिथिला गये और वहाँ उन्होंने मोक्षशास्त्र का ज्ञान प्राप्त किया। तदनन्तर वे हिमालय प्रदेश में व्यासाश्रम में उपस्थित हुए। ब्रह्मर्षि महर्षि और देवर्षियों के साथ ब्रह्मतत्त्वसम्बन्धी कथा वार्ता करते हुए शुकदेव ने बहुत समय व्यतीत किया। अनन्तर व्यासदेव ने अपने पुत्र को ब्रह्मतत्त्व का प्रचार करने के लिये आज्ञा दी। इसके बहुत दिनों के बाद त्रिगुणमय नश्वर देह का त्याग कर शुकदेव परब्रह्म में लीन हुए। महापुरुष के शरीर त्याग के समय जो प्राकृतिक उपद्रव होते हैं वे सब इनके शरीर त्याग के समय में भी हुए थे।

(महाभारत)

शुक्राचार्य—दैत्यगुरु। ये महर्षि भृगु के पुत्र थे। इनकी कन्या का नाम देवयानी था और पुत्रों का नाम षण्ड अमर्क था। देवगुरु बृहस्पति के पुत्र कच ने इनसे संजीवनी विद्या सीखी थी।

शुद्धोदन=कपिलवस्तु के राजा और जगत्प्रसिद्ध बुद्धदेव के पिता । (देखो बुद्धदेव)

शुनःशेप=महर्षि ऋचीक का मँझला बेटा । ये महाराज अम्बरीष के यज्ञ में बलि के लिये लाये गये थे । महर्षि विश्वामित्र के आश्रम में ये पहले उपस्थित हुए थे । विश्वामित्र ने दया वश हो कर इन्हें अग्नि की स्तुति बतला दी थी । इनकी स्तुति से अग्निदेव प्रसन्न हुए, और ये अक्षतशरीर अग्नि से बाहर निकल आये । तदनन्तर महर्षि विश्वामित्र ने इन्हें अपने पोष्य पुत्र की तरह रखा । (देखो विश्वामित्र)

शूद्रक=ये राजा और महाकवि स्कन्दपुराण के कुमारिकाखण्ड के अनुसार कलियुग के ३२१० में अर्थात् १११ शक में राज्यशासन करते थे । मार्सम्यान साहब के भारतवर्ष के इतिहास में लिखा है मगध राज्य के सिंहासन पर सिप्रूक नामक एक राजमन्त्री सन् १२१ ई० में बैठा था, उसने ४० वर्ष तक राज्य किया था । यह भारतवर्ष के प्रसिद्ध राजा शूद्रक के द्वारा मारा गया । इन दोनों बातों में परस्पर मेल है, क्योंकि दोनों का समय मिलता है । ये मृच्छकटिक के कर्ता बतलाये जाते हैं । परन्तु मृच्छकटिक की प्रस्तावना में जो बातें लिखी हैं उनसे उसके कर्ता शूद्रक नहीं समझे जा सकते हैं । प्रस्तावना में लिखा है—

द्विरदेन्द्रगतिश्चकोरनेत्रः परिपूर्णेन्दुमुखः सुविग्रहश्च ।
द्विजमुख्यतमः कविर्बभूव प्रथितः शूद्रक इत्यगाधसत्त्वः ॥
राजानं वीक्ष्य पुत्रं परमसमुदयेनाश्वमेधेन चेष्ट्वा
लब्ध्वा चायुः शताब्दं दशदिनसहितं शूद्रकोऽग्निं प्रविष्टः ।

अर्थात् गजेन्द्रगति, चकोरनेत्र, पूर्णचन्द्र-वदन, अगाधबुद्धिशाली शूद्रक नामक प्रसिद्ध कवि थे । अपने पुत्र को सिंहासन पर बैठा देख कर बड़े समारोह से अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान कर के और सौ वर्ष दस दिन की आयु भोग कर शूद्रक ने अग्नि में प्रवेश किया । इस प्रकार आत्मप्रशंसा तथा अग्नि प्रवेश के लिये भूत काल का प्रयोग देख कर सन्देह होता है कि मृच्छकटिक के कर्ता शूद्रक कैसे हो सकते हैं । इसका यह उत्तर हो सकता है कि प्रस्तावना पीछे से लिखी गयी, और मूल नाटक के साथ शूद्रक की मृत्यु के अनन्तर जोड़ दी गयी, यदि हमारा यह अनुमान ठीक हो, तो पूर्वोक्त प्रश्न का उत्तर हो सकता है, अन्यथा कोई गति नहीं ।

शुम्भ=दानवराज । इसके छोटे भाई का नाम निशुम्भ था । यह युद्ध में दुर्गा के हाथ से मारा गया ।

सुषेण=वानरराज । कपिपति बालि ने इनकी कन्या तारा को ब्याहा था सुषेण के परामर्श से हनुमान् विशल्यकरणी नाम की ओषधि लाये थे और इसी ओषधि के प्रयोग से लक्ष्मण जी उठे थे ।

(रामायण)

शूर=श्रीकृष्ण के पितामह और वसुदेव के पिता ।

शूरवर्मा=काश्मीर के एक राजा का नाम । यह पङ्गु के औरस और मृगावती के गर्भ से उत्पन्न हुए थे । ६म वर्ष में मन्त्रियों ने चक्रवर्मा को पदच्युत कर के शूरवर्मा को राजा बनाया । परन्तु ये बहुत दिनों तक राजा नहीं रह सके । एक वर्ष के बाद ये पदच्युत कर दिये गये ।

(राजतरङ्गिणी)

शूरसिंह=जोधपुर के एक राजा का नाम । ये महाराज उदयसिंह के पुत्र थे । उदयसिंह के मरने पर सन् १५६५ ई० में उनका पुत्र शूरसिंह मारवाड़ के सिंहासन पर विराजा । शूरसिंह बादशाह अकबर की सेना को लिये लाहौर में भारत की सीमा का रक्षक रहा था । सिन्धु के जीतने के समय से शूरसिंह वहीं थे । शूरसिंह एक पराक्रमी और रणकुशल राजा थे । पिता के जीवित समय में ही इन्होंने रणकौशल तथा वीरता का परिचय दिया था जिससे प्रसन्न हो कर बादशाह ने इन्हें एक ऊँचा पद और "सवाई राजा" की उपाधि दी ।

बादशाह अकबर शूरसिंह के गुणों से परिचित हो गया था । अतएव उसने इन्हें एक कठोर काम पूरा करने के लिये कहा । उस समय सिरोही का अधिपति राव सुरतान बड़ा गर्वित हो उठा था वह अपने दुर्भेद्य क़िले में रह कर अपने को अजेय समझे हुआ था । बादशाह ने राव सुरतान के शासन का भार शूरसिंह को

साँपा । शूरसिंह की वीरता के सामने राव सुरतान को सिर नवाना ही पड़ा था । शूरसिंह की वीरता ने राव सुरतान से बादशाह की अधीनता स्वीकार करा ली । दिल्ली से आये हुए फरमान को राव सुरतान ने स्वीकृत किया और अपनी सेना के साथ बादशाह की सेवा के लिये वह प्रस्थित हुआ । इसी समय बादशाह की आज्ञा से गुजरात के शाह मुज़फ़्फ़र के विरुद्ध शूरसिंह ने युद्धयात्रा की । राव सुरतान की भी सेना उनकी सेना में सम्मिलित हुई । दोनों ओर की सेना लड़ने लगी । परन्तु विजयी शूरसिंह ही हुए । शूरसिंह के हाथ वहाँ बहुत धन आया । इन्होंने प्रायः सभी धन दिल्ली भेज दिया, उसमें से कुछ जोधपुर भिजवा दिया । इस विजय से शूरसिंह का यश चारों ओर फैल गया । इसी समय नर्मदा के किनारे का अमरबलेचा नामक एक तेजस्वी राजपूत वास करता था । उसने अभी तक अपनी स्वाधीनता की रक्षा की थी । बादशाह की आज्ञा से शूरसिंह ने उसके विरुद्ध यात्रा की । उस युद्ध में अमर-बलेचा मारा गया । यह राज्य शूरसिंह के हाथ में आया । इस संवाद को सुन कर बादशाह बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने कई और प्रदेश मिला कर उस राज्य का अधिपति उनको बनाया । इसी समय अकबर परलोकवासी हुए। राजा शूरसिंह अपने पुत्र गजसिंह को साथ ले कर जहाँगीर के दरबार में उपस्थित हुए । जहाँगीर ने गजसिंह के हाथ में तलवार रख दी । सन् १६२० ई० में राठौर राजा शूरसिंह ने दक्षिण देश में प्राण त्याग किया ।

(टाड्स राजस्थान)

शूर्पणखा=लङ्केश्वर रावण की छोटी बहिन । यही लङ्का के युद्ध का मूलकारण है । रामचन्द्र के वनवास के समय पञ्चवटी में यह गयी थी और रामचन्द्र से अपने ब्याह का प्रस्ताव किया, परन्तु रामचन्द्र ने सीता को दिखा कर कहा कि मेरे तो स्त्री है ही, तुम मेरे छोटे भाई लक्ष्मण के पास जाओ । लक्ष्मण ने उसकी नाक काट ली ।

(रामायण)

शूलपाणि=विख्यात स्मार्त पण्डित । इन्होंने मनु-संहिता का भाष्य बनाया है और "प्रायश्चित्त-शूलपाणि" नामक एक धर्मशास्त्र का ग्रन्थ बनाया है ।

शेषाद्रि आयर=इनका पूरा नाम सर शेषाद्रि आयर के. सी. एस्. आई. था । ये मैसूर राज्य के प्रसिद्ध दीवान थे । इनका जन्म १८४५ ई० में दक्षिण के मालबार ज़िले के कुमारपुरम् नामक गाँव में हुआ था । पहले पहल कालीकट में इन्होंने पढ़ना आरम्भ किया । तदनन्तर ये मद्रास के प्रेसिडेंसी कालेज में पढ़ने के लिये भर्ती हुए । यहाँ ही से इन्होंने सन् १८६६ ई० में बी. ए. परीक्षा पास की । मद्रास के विश्वविद्यालय के ये सबसे पहले बी. ए. हुए । इसके कुछ दिनों के पश्चात् ये क़ानून की परीक्षा में पास हो कर कमिश्नर के आफ़िस में अनुवादक के काम पर नियत हुए । इस स्थान पर इन्हें बहुत दिनों तक रहना नहीं पड़ा । मद्रास में रहने के कारण रङ्गाचार्लू से इनका परिचय हो गया था । सन् १८६८ ई० में रङ्गाचार्लू मैसूर के दीवान हुए । उन्होंने ही शेषाद्रि को सरिश्तेदार बनाया । १८७१ ई० में शेषाद्रि डिपुटी कमिश्नर और मजिस्ट्रेट हुए । तदनन्तर दीवान रङ्गाचार्लू ने मैसूर राज्य के क़ानून बनाने का भार इन्हें सौंपा । इसके दो वर्ष के बाद रङ्गाचार्लू का शरीरान्त हुआ । उस समय मैसूर राज्य में शेषाद्रि के अतिरिक्त इस पद के योग्य दूसरा नहीं था । परन्तु उस समय इनकी अवस्था केवल ३८ वर्ष की थी, इस कारण बहुतों ने यह सन्देह किया कि इस बड़े काम का प्रबन्ध ये नहीं कर सकते । जो हो, सन् १८८३ में शेषाद्रि मैसूर के दीवान हुए । सन् १८७७ ई० में मैसूर राज्य में दुर्भिक्ष पड़ा था, इस कारण तीस लाख रुपये ऋण लेने पड़े थे । फिर इस प्रकार की विपद् न हो इस कारण रङ्गाचार्लू ने रेलवे बनाना प्रारम्भ किया था । रङ्गाचार्लू की मृत्यु के अनन्तर शेषाद्रि ने उनके पथ का अवलम्बन किया दो वर्ष में उन्होंने १४० माइल रेल पथ बनवाया था । इस काम के लिये बीस लाख रुपये और भी ऋण लेने पड़े थे । सन् १८९५ ई० में मैसूर राज्य में

३१५ माइल तक का रेल पथ बन गया। सन् १७०१ ई० में शेषाद्रि के कार्य त्याग करने के समय मैसूर राज्य में ४०० माइल तक रेलवे का विस्तार हो गया था। अपने शासन के १२ वर्षों में कृषि की सुविधा के लिये उन्होंने ३५५ वर्ग माइल में तालाब खुदवाया था। इस कार्य में उन्हें एक करोड़ रुपये ख़र्च करने पड़े थे परन्तु इससे राज्य की आय में ८२५००० की वृद्धि हुई। जिस समय उन्होंने इस पद को ग्रहण किया था उस समय राज्य में तीस लाख रुपये ऋण थे, उसे इन्होंने बिलकुल चुका दिया। इन्होंने एक करोड़ छिहत्तर लाख रुपये राजकोष में जमा किये थे राज्य के आय की भी उन्होंने वृद्धि की। प्रजा की सुख शान्ति के लिये उन्होंने राज्य में अनेक विभाग स्थापित किये थे। पहले इन्हें सरकार से सी. एस्. आई. की उपाधि मिली, तदनन्तर के. सी. एस्. आई. की उपाधि मिली। वे मद्रास विश्वविद्यालय के फेलो भी नियत हुए थे। उन्होंने ३२ वर्ष राज्य कार्य कर के सन् १६०१ ई० में कार्य त्याग किया। इसमें १७ वर्ष तक उन्होंने दीवानी की। इसी वर्ष उनका शरीरान्त भी हुआ।

शैव्या=महाराज हरिश्चन्द्र की महारानी। महर्षि विश्वामित्र ने महाराज हरिश्चन्द्र की धर्म-बुद्धि आत्मत्याग और कष्टसहिष्णुता आदि की परीक्षा के लिये उन्हें अनेक कष्ट दिये थे। महारानी शैव्या एक ब्राह्मण के निकट बिकी थी। उसी समय उनका पुत्र रोहिताश्व मर गया। पुत्र का मृत शरीर श्मशान में ले जा कर शैव्या विलाप करने लगी। इसी श्मशान में महाराज हरिश्चन्द्र डोम का काम करते थे। शीघ्र ही पति पत्नी में मिलन हुआ। विश्वामित्र इनके प्रति सन्तुष्ट हुए। रोहिताश्व पुनः जी उठा। इन्हें पुनः राज्य प्राप्त हुआ।

शौनक=एक तपस्वी ऋषि। इन्होंने द्वादशवर्ष-व्यापी एक यज्ञ का अनुष्ठान किया था।

श्यामविहारी मिश्र=इनका जन्म भाद्रकृष्ण ४र्थी सं० १६३० को लखनऊ के समीप इटौंजे नामक गाँव में हुआ। सात वर्ष की अवस्था में इन्हें पढ़ना आरम्भ कराया गया। पहले इन्हें उर्दू की शिक्षा दी गयी। इन्होंने नियमित रूप से हिन्दी कभी नहीं पढ़ी। साथियों के देखा देखी तथा वंशपरम्परा के अनुसार हिन्दी इन्हें आप ही आप आ गयी। हिन्दी में इनकी विशेष रुचि थी, इस कारण इन्होंने इसमें कुछ कुछ योग्यता प्राप्त कर ली। १५-१६ वर्ष की अवस्था में इन्हें हिन्दी की कविता करनी आ गयी थी। १२ वर्ष की अवस्था में इन्होंने अंग्रेज़ी पढ़ना आरम्भ किया। पहले ये बड़े चाव से पढ़ने लगे। परन्तु पीछे से इनको चौसर का व्यसन पड़ गया। इस व्यसन से इनके पढ़ने में बाधा पड़ने लगी और इनके सहपाठी आगे निकल गये। इससे इन्हें ग्लानि आयी और चौसर का व्यसन छोड़ कर ये मन से पढ़ने लगे। सन् १८६१ ई० में इन्होंने एन्ट्रेंस परीक्षा पास की तदनन्तर क्रमशः एफ. ए. और बी. ए. परीक्षा में ये उत्तीर्ण हुए। बी. ए. की परीक्षा में अवध में इनका पहला नंबर था और अंग्रेज़ी में "आनर्स" हुए। यह प्रतिष्ठा इसके पहले कैनिंग कालेज के किसी विद्यार्थी को नहीं प्राप्त हुई थी। इसके उपलक्ष में इन्हें दो सुवर्ण-पदक प्राप्त हुए थे। सन् १८६६ ई० में इन्होंने एम्. ए. की परीक्षा पास की। इस बार भी अपने कालेज में इनका नंबर पहला था और यूनीवर्सिटी में चौथा।

विद्याध्ययन समाप्त कर के सन् १८६७ ई० में ये डिपुटी कलक्टर नियत हुए और सन् १६०६ ई० में डिपुटी सुपरिंटेंडेंट ऑफ पुलीस हुए। इस पद पर रह कर इन्होंने सुपरिंटेंडेंट का काम भी बड़ी योग्यता से सम्पादित किया। तदनन्तर आप स्पेशल ड्यूटी पर नियत हुए। फिर आप छत्रपुर के दीवान हुए। सरकारी सेवा में इन्होंने बड़ी प्रतिष्ठा पायी है। एक बार इटावे के कई दुष्टों ने इन्हें सरकारविद्वेषी प्रमाणित करना चाहा था, परन्तु उनकी पोल खुल गयी और ये निष्कलङ्क प्रमाणित हुए।

इनका व्याह ११ वर्ष की अवस्था में हुआ था। इनकी स्त्री के पहले एक कन्या हुई थी जो दूसरे दिन मर गयी। तदनन्तर पाँच कन्याएँ और दो पुत्र हुए। ज्येष्ठ पुत्र का भी परलोक वास

हुआ । इन्होंने हिन्दी के १२ ग्रन्थ लिखे और सम्पादित किये । ये दो तीन भाई मिल कर लिखा करते हैं । हिन्दी समाज में ये "मिश्र-बन्धु" के नाम से प्रसिद्ध हैं ।

श्रवण मुनि=वैश्य तपस्वी अन्ध मुनि के पुत्र का नाम । (देखो अन्ध)

श्रावस्ती=प्राचीन एक नगरी । पुराने समय में इस नगरी में उत्तरकोशल की राजधानी थी । विष्णुपुराण में लिखा है कि युवनाश्व के पुत्र श्रावस्त ने श्रावस्ती नाम की नगरी बसायी थी । इससे मालूम पड़ता है कि रामचन्द्र के राज्य काल के बहुत पहले श्रावस्ती नगरी विद्यमान थी । श्रावस्ती के विषय में पुराणों में अनेक प्रकार के मत देखे जाते हैं । रामायण और वायुपुराण में लिखा है कि श्रावस्ती उत्तर-कोशल की राजधानी थी । परन्तु मत्स्यपुराण में श्रावस्ती नगरी का पता बतलाया गया है । गौड देश में श्रावस्त ने श्रावस्ती नगरी बसायी थी । लिङ्गपुराण और कूर्मपुराण में भी इसी प्रकार लिखा है । इससे परवर्ती समय में श्रावस्ती के अवस्थान के विषय में बड़ा गोलमाल उपस्थित हुआ । जो हो, इन समस्त मतों की आलोचना करने पर यह बात प्रतिपन्न होती है कि सरयू नदी के उत्तर पार का प्रदेश उत्तर कोशल है तथा उसके बीच की नगरी ही श्रावस्ती नगरी है । कार्निंहम कहते हैं कि सरयू नदी ने अयोध्या राज्य को दो भागों में बाँट दिया है । सरयू के उत्तर प्रदेश का नाम उत्तर कोशल और दक्षिण प्रदेश का नाम दक्षिण कोशल है । इनमें भी छोटे छोटे दो भाग हैं । दक्षिण कोशल के दो भागों के नाम ये हैं प्राच्य-राट् और पूर्वराट् । उत्तर कोशल में भी कोशल और गौड दो भाग हैं । राप्ती नदी का दक्षिण प्रदेश गौड देश और उसके उत्तर का प्रदेश कोशल कहा जाता है । गौडदेश के मध्य में श्रावस्ती और कोशल के मध्य में अयोध्या नगरी विद्यमान है । उसी गौड प्रदेश में आज भी श्रावस्ती नगरी का ध्वंसावशेष पाया जाता है । वही गौड प्रदेश आज गोंडा के नाम से प्रसिद्ध है । बौद्धधर्म के प्रादुर्भाव के समय श्रावस्ती नगरी में बौद्धधर्म का प्रभाव विस्तृत हुआ था ।

(भारतवर्षीय इतिहास)

श्रीधर कवि=इनका नाम था राजा सुब्बासिंह चौहान । ये ओयेल ज़िला खीरी के रहने वाले थे । सन् १८७४ में इनका जन्म हुआ था । इन्होंने भाषा में विद्वन्मोदतरङ्गिणी नाम की एक पुस्तक बनायी है । इस ग्रन्थ में इन्होंने अन्य सत्कवियों के बनाये कितने ही अच्छे अच्छे उदाहरण दिये हैं ।

(शिवसिंहसरोज)

श्रीधर पाठक=आप सारस्वत ब्राह्मण हैं । इनके पूर्वपुरुष हज़ार वर्ष से भी ऊपर हुए जब पंजाब छोड़ कर ज़िला आगरे परगना फ़िरोज़ाबाद के जोंधरी नामक गाँव में आ बसे थे । पाठक जी के पिता का नाम लीलाधर पाठक था । आप एक सामान्य पण्डित थे । परन्तु सच्चरित्रता पवित्रता और भगवद्भक्ति में आप अद्वितीय थे ।

पाठक जी का जन्म सं० १६१६ की माघ कृष्ण चतुर्दशी को हुआ । प्रारम्भ में इन्होंने संस्कृत पढ़ना आरम्भ किया था और उसमें इन्होंने अच्छी योग्यता भी प्राप्त कर ली । परन्तु कई कारणों से इन्हें संस्कृत पढ़ना छोड़ना पड़ा । १२ वर्ष की अवस्था में इनका संस्कृत पढ़ना छूट गया ।

अब पाठक जी की रुचि चित्र तथा मिट्टी की सुन्दर मूर्तियाँ बनाने की ओर गयी । १४ वर्ष की अवस्था से इनका फिर पढ़ना आरम्भ हुआ । पहले फ़ारसी पढ़ कर आप तहसीली स्कूल से हिन्दी की प्रवेशिका परीक्षा में उत्तीर्ण हुए । इस परीक्षा में आप प्रान्त भर में पहले रहे । सन् १८८० ई० में इन्होंने प्रथम श्रेणि में एन्ट्रेंस परीक्षा पास की ।

परीक्षा पास करने के छः महीने के बाद आप कलकत्ते गये और ६०) मासिक वेतन पर सेंसस कमिश्नर के स्थायी दफ्तर में नौकर हुए । इसी पद पर से आप शिमला गये और हिमालय की उदग्र मूर्ति का आपने दर्शन किया । वहाँ से लौटने पर कुछ दिनों के बाद प्रयाग में लाट साहब के दफ्तर में ३०) मासिक पर नियत हुए । इस दफ्तर के साथ पाठक जी को

कई बार नैनीताल जाने का अवसर प्राप्त हुआ। सन् १८६८ ई० में जब इनका वेतन २००) था आगरे इनकी बदली हुई और वहाँ से सन् १६०१ में ३००) मासिक पर ये इरीगेशन कमीशन के सुपरिंटेंडेंट नियत हुए। कमीशन के अन्त तक आप उसी पद पर रहे। तदनन्तर आप भारत गवर्नमेंट के दफ्तर में सुपरिंटेंडेंट के पद पर रहे। एक वर्ष के बाद आपने तीन महीने की छुट्टी ली और काश्मीर गये, वहाँ से लौटने पर "काश्मीरसुषमा" नाम का एक उत्तम काव्य आपने रचा। पाठक जी ने सरकारी काम बड़ी योग्यता से किया और आप अंग्रेज़ी लिखने के लिये भी प्रसिद्ध हैं। सन् १८६८-६६ की प्रान्तीय इरीगेशन रिपोर्ट में आपकी प्रशंसा छपी है। इस समय ये युक्त प्रदेश के लाट साहब के दफ्तर में ३००) मासिक की सुपरिंटेंडेंटी के पद से पेंशन ले कर लूकरगंज में रहते हैं।

पण्डित श्रीधर पाठक इस समय हिन्दी भाषा के एक प्रसिद्ध कवि समझे जाते हैं। खड़ी बोली और ब्रजभाषा के आप समान कवि हैं। परन्तु खड़ी बोली की कविता के आप आचार्य माने जाते हैं।

इन्होंने स्कूल में पढ़ते समय सबसे पहले अपने ग्राम जोंधरी की प्रशंसा में कविता रची थी। परन्तु वह कविता प्रकाशित नहीं हुई। आपकी फुटकल कविताओं का संग्रह "मनोविनोद" नामक पुस्तक में प्रकाशित किया गया है। गोल्डस्मिथ के तीन ग्रन्थों का आपने पद्यानुवाद किया है। वे "एकान्तवासी योगी" "ऊजड़ग्राम" और "श्रान्तपथिक" के नाम से प्रकाशित हुए हैं। आप प्राकृतिक दृश्यों का चित्र उत्तमता से खींचते हैं।

प्रयाग में "पद्मकुटीर" नामक एक निवास स्थान बनाया है और वहीं आप रहते हैं।

श्रीनगर=काश्मीर की राजधानी का नाम। यह राजधानी बहुत प्राचीन है। इस नगरी को मौनर्यवंशी राजा अशोक ने स्थापित किया था। और कल्हण पण्डित की गणना के अनुसार इसका समय ई० के १४६४ वर्ष पूर्व निश्चित होता है। कनिंहम ने अशोक का राज्यकाल २६३ ई० के पूर्व बतलाया है।

(भारतवर्षीय इतिहास)

श्रीनिवासदास=ये जाति के वैश्य थे। इनके पिता का नाम मंगीलाल जी था और वे मथुरा के सेठ लक्ष्मीचन्द जी के प्रधान मुनीम थे। वे दिल्ली की कोठी में रहते थे।

लाला श्रीनिवासदास का जन्म सन् १६०८ में हुआ था। ये बाल्यावस्था से ही सदाचारी और चतुर थे। इन्होंने हिन्दी उर्दू अंग्रेज़ी फारसी आदि भाषाओं का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था।

लाला श्रीनिवासदास छोटी अवस्था ही में बड़े योग्य हो गये थे। महाजनी कारोबार में ये इतने दक्ष हो गये थे कि १८ वर्ष की अवस्था में इन्होंने दिल्ली की कोठी का काम संभाल लिया। ये अपनी योग्यता के कारण म्युनिसिपल कमिश्नर और आनरेरी मजिस्ट्रेट हुए थे। राजा और प्रजा दोनों में इनका बड़ा आदर था।

लाला श्रीनिवासदास को दिल्ली की कोठी का भी काम संभालना पड़ता था और साथ ही अन्य नगरों की कोठियों की भी देख भाल करनी पड़ती थी, अतः इनको अपनी बुद्धि को परिमार्जित करने का अच्छा अवसर हाथ लगा था। मातृभाषा हिन्दी से इनका स्वाभाविक प्रेम था। आप जहाँ कहीं बाहर जाते वहाँ के हिन्दीरसिकों अथवा लेखकों से अवश्य ही मिलते थे, अपने यहाँ आये हुए हिन्दीप्रेमी का ये सब काम छोड़ कर आदर सत्कार करते थे।

इन्होंने हिन्दी के चार ग्रन्थ लिखे हैं। "तप्तसंवरण," "संयोगितास्वयंवर," "रणधीर-प्रेममोहिनी" और "परीक्षागुरु"। परीक्षागुरु में इन्होंने एक साहूकार के पुत्र के जीवन का दृश्य चित्रित किया है। उसे देखने से इनके सांसारिक ज्ञान का अच्छा परिचय मिलता है।

इन्हें बड़ी आयु नहीं मिली थी, केवल ३६ वर्ष की अवस्था में इन्हें अपनी जीवनलीला संवरण करनी पड़ी।

श्रीपति कवि=पयागपुर ज़िला बहरायच के ये रहने वाले थे। सं० १७०० में इनका जन्म हुआ था।

ये भाषा साहित्य के आचार्यों में गिने जाते हैं। काव्यकल्पद्रुम, काव्यसरोज और श्रीपतिसरोज नामक तीन ग्रन्थ इन्होंने भाषासाहित्य के बनाये थे। इनके जन्मस्थान का ठीक पता नहीं बताया जा सकता। (शिवसिंहसरोज)

श्रीहर्ष=(१) सरस्वती नदी के किनारे कुरुक्षेत्र प्रदेश में स्थानेश्वर नामक प्रसिद्ध नगर है। वहाँ पुष्पभूति नामक एक परमशैव राजा राज्य करते थे। दक्षिणदेशनिवासी भैरवाचार्य के वे शिष्य थे। भैरवाचार्य तान्त्रिक थे, उन्होंने राजा को भी तान्त्रिक बनाया। एक समय विद्याधर बनने की कामना से राजगुरु, मन्त्रसाधन में प्रवृत्त हुए। उन्होंने राजा पुष्पभूति को अपनी रखवाली के लिये खड़ा किया। एक तो महाश्मशान का भयानक स्थान, दूसरे कृष्णपक्ष की चतुर्दशी की अन्धेरी रात और फिर मन्त्रसिद्धि का भयङ्कर समय, एक से एक भयानक था। तथापि गुरुरक्षा में राजा निर्भय खड़े रहे।

अचानक एक भयङ्कर शब्द के साथ पृथ्वी फटी। चकित हो कर राजा ने देखा कि पृथ्वी से डरावनी सूरत का एक मनुष्य निकल कर लपका चला आ रहा है। उसने अपना नाम श्रीकण्ठ नाग बतलाया और जब देखा कि उसकी पूजा अर्चा का कुछ भी प्रबन्ध नहीं है, तब क्रोध में भर उसने राजा और भैरवाचार्य का प्राण लेना चाहा। उसने देर तक राजा से बाहुयुद्ध किया, अन्त में श्रीकण्ठ नाग पराजित हुआ। श्रीकण्ठ की हार से प्रसन्न हो कर लक्ष्मी जी ने भैरवाचार्य को विद्याधर बनाया और राजा को वरदान दिया—तुम्हारे कुल में श्रीहर्ष नामक महापराक्रमी और चक्रवर्ती राजा होगा। काल क्रम से उसके वंश में प्रभाकरवर्द्धन का जन्म हुआ। यह सूर्यनारायण का भक्त था। प्रभाकर ने निज बाहुबल से "हूण" जाति को परास्त किया और बात की बात में गान्धार सिन्धु लाट और मालवे को अपने अधीन कर लिया। राजमहिषी यशोमती के गर्भ से राजा के दो पुत्र हुए और एक कन्या। बड़े पुत्र का नाम राज्यवर्द्धन, छोटे का श्रीहर्षवर्द्धन और कन्या का नाम राज्यश्री हुआ।

मौखरीवंश के कान्यकुब्जपति अवन्ती वर्मा के पुत्र ग्रहवर्मा के साथ राजकुमारी राज्यश्री का व्याह हुआ। उसी समय उत्तर देश में हूण जाति ने फिर सिर उठाया और उपद्रव किया। उनके शासनार्थ राज्यवर्द्धन सेना सहित उत्तर दिशा में भेजे गये। छोटा भाई श्रीहर्षवर्द्धन बड़े भाई को पहुँचाने हिमालय तक गया। उनके साथ घुड़सवार सेना भी थी। बड़े भाई को बिदा कर कुछ दिनों तक श्रीहर्षवर्द्धन वहीं शिकार खेलते रहे। एक दिन राजधानी स्थानेश्वर से कुरङ्गक नामक दूत ने आ कर संवाद दिया कि महाराज प्रबल दाह ज्वर से पीड़ित हैं। इस दुःखदायी संवाद से व्याकुल हो श्रीहर्ष राजधानी की ओर चले और अपने बड़े भाई के पास यह दुःसंवाद पहुँचाया। राजधानी में उनके आगमन के बाद ही उनके पिता महाराज प्रभाकरवर्द्धन का स्वर्गवास हुआ। माता यशोमती पतिवियोग से प्रथम ही अग्नि में प्रवेश कर के इनको मातृहीन कर गयी थी। प्रभाकरवर्द्धन के लोकान्तरित होने का संवाद सुन, दुर्वृत्त मालवराज ने कान्यकुब्जपति ग्रहवर्मा का प्राण संहार कर दिया और उसकी पत्नी राज्यश्री को बन्दी बना, वह बलपूर्वक स्वयं कान्यकुब्जपति बन बैठा।

शोकसन्तप्त राज्यवर्द्धन ने शीघ्र ही ससैन्य मालवराज पर चढ़ाई की और श्रीहर्षवर्द्धन अकेले राजधानी में रहे। मालवराज राज्यवर्द्धन से युद्ध में पराजित हो मारा गया। परन्तु उसके मित्र गौड़ेश्वर शशाङ्कदेव गुप्त ने डेरे में आ और विश्वासघात कर राज्यवर्द्धन को मार अपने मित्र की मृत्यु का बदला ले लिया। इस संवाद को सुन श्रीहर्षवर्द्धन घबराये नहीं, प्रत्युत तत्क्षण उन्होंने कान्यकुब्ज देश की यात्रा की। मार्ग में उनके साथ राज्यवर्द्धन का सहचर भाण्डी भी ससैन्य आ मिला। यहाँ भाण्डी के मुख से इसने सुना कि भगिनी राज्यश्री कारागार से निकल कर विन्ध्यारण्य में भाग गयी। तब उसने भाण्डी को सेना सहित कान्यकुब्ज की ओर बढ़ने को कहा और आप बहिन की खोज में विन्ध्यारण्य में गया। भाण्डी ने सेना सहित अग्रसर हो

कर श्रीहर्षवर्द्धन की आज्ञानुसार गङ्गा के किनारे अपना शिबिर स्थापित किया । विन्ध्यारण्य के बौद्धपति " दिवाकरमित्र " के साथ श्रीहर्षवर्द्धन का परिचय हुआ बौद्ध यतिवर के आश्रम में उसने सुना कि " एक रूपवती स्त्री चितानल में प्रवेश किया चाहती है " । वहाँ पहुँच कर उसने भगिनी राज्यश्री का उद्धार किया । उसे ज्ञात हुआ कि अब राज्यश्री बौद्ध तपस्वी के आश्रम में शेष जीवन बितावेगी । यह दिवाकरमित्र राज्यश्री के पति का परम बन्धु था । सुतरां राज्यश्री इसके आश्रम में तपस्विनी और ब्रह्मचारिणी हो कर रहे—यह जब स्थिर हो गया, तब श्रीहर्षवर्द्धन गङ्गा तीर पर अपनी सेना से जा मिला । (श्रीहर्षचरित)

(२) ये श्रीहर्ष संस्कृत के पण्डित और कवि थे । इन्होंने नागानन्द, प्रियदर्शिका और रत्नावली नाम की तीन नाटिकाएँ लिखी हैं । इन नाटिकाओं की प्रस्तावना में उदार कवि श्रीहर्ष ने अपने " श्रीहर्ष " नाममात्र का परिचय दिया है अपने हाथ से अपने जीवनचरित को लिख उन्होंने नाटिका के साथ जोड़ना उचित नहीं समझा । पर अब देखा जाता है कि श्रेष्ठ कवि की इस उदारता का फल विपरीत हुआ । अब ऐसे भी लोग उत्पन्न हुए हैं जो श्रीहर्ष की कविता को धावक की ठहराते हैं । अभागे भारतवर्ष में उदारता का मूल्य चिरकाल से नहीं है । पर दुःख यह है कि विलायती पण्डितों ने भी—जो भारत के मृत कवियों की कीर्ति को खण्डहरों से निकाल रहे हैं—श्रीहर्ष के साथ अन्याय किया है । खेद है कि हिन्दी के सत्कवि विचारशील बाबू हरिश्चन्द्र ने भी " काश्मीर-कुसुम " में उसी अन्याय पथ का अनुसरण किया है । वे लिखते हैं—संवत् ६०० के लग भग जो श्रीहर्ष नामक कान्यकुब्ज का राजा था, उसी के हेतु रत्नावली आदि ग्रन्थ बने हैं । अब देखना चाहिये कि इस अनर्थ भरे विचार की उत्पत्ति कहाँ से हुई ।

विचार करने पर साहित्य के प्रसिद्ध कवि मम्मट भट्ट का " काव्यप्रकाश " ही इस अनर्थ की जड़ ठहरता है । पर सच पूछिये तो काव्यप्रकाश का उतना दोष नहीं है, जितना उसके निरङ्कुश टीकाकारों का । काव्यप्रकाश की दूसरी कारिका " काव्यं यशसेऽर्थकृते " पर मम्मट भट्ट ने केवल यही व्याख्या की है कि " काव्य कालिदास के समान यश को करता है और श्रीहर्षादि से धावक आदि के तुल्य धन भी दिलाता है " । मम्मट के इस कथन का तात्पर्य केवल इतना ही है धावक के काव्य पर प्रसन्न हो कर श्रीहर्ष ने उसको धन दिया था, वह काव्य रत्नावली था कि क्या था इस विषय में मम्मट चुप हैं । सम्भव है कि कोई काव्य धावक ने श्रीहर्ष को दिखाया हो और सत्कवि श्रीहर्ष ने उनकी कविता का आदर किया हो तथा धावक का वह काव्य संस्कृत साहित्य के असंख्य ग्रन्थों के समान लुप्त हो गया हो । यह सब हो सकता है परन्तु धावक की रत्नावली नहीं हो सकती । यदि धावक आदि किसी अन्य कवि की बनायी हुई " रत्नावली " होती, तो उसकी प्रस्तावना में श्रीहर्ष की बड़ाई और जीवन की कोई विशेष घटना अवश्य मिलती, क्योंकि कवि जितनी प्रशंसा करता है उतना ही उसे द्रव्य मिलता है । कवि राजा के नाम से ग्रन्थ बना सकता है सही, पर मूर्ख राजा ग्रन्थ का कवि नहीं बनता । यदि ऐसा होता तो श्रीहर्ष का " निपुण कवि " के नाम से साभिमान प्रसिद्ध होना लज्जाजनक और मरण से बढ़ कर गर्हित होता । ऐसा अनुचित कार्य कर, कोई भी समझदार अपनी हँसी नहीं करा सकता ।

" काव्यप्रकाश " के टीकाकार महेश्वर, नागेश भट्ट, वैद्यनाथ और जयराम प्रभृति पण्डितों ने मम्मट की पूर्वोक्त कथन की निःसङ्कोच हो यही व्याख्या की है कि रत्नावली नाटिका श्रीहर्ष को समर्पण कर धावक कवि ने बहुत धन पाया था । इस प्रकार इस भ्रान्त मत ने संसार में प्रचलित हो कर श्रीहर्ष के निष्कलङ्क चरित में कलङ्क लगाया । श्रीहर्ष के समय जब धावक कवि था ही नहीं तब रत्नावली को समर्पण कर श्रीहर्ष से उसने पारितोषिक कैसे पाया ? देखते हैं इस प्रश्न पर पूर्ववर्ती लेखकों में से किसीने भी विचार नहीं किया है । अपनी कूटकल्पना

चरितार्थ करने के लिये पूर्वापर के कवियों को इन लोगों ने श्रीहर्ष के पास ही ला पटका है। सुबन्धुकृत वासवदत्ता के ढङ्ग पर बाण भट्ट ने "कादम्बरी" और श्रीहर्षचरित नामक दो गद्य काव्य बनाये हैं। सुबन्धु ईसा की छठी सदी के अन्त भाग में वर्तमान था। और बाण ईसा की सप्तम शताब्दी के प्रारम्भ में। बाण ने श्रीहर्ष के आरम्भ में अपनी अपेक्षा कालिदास को प्राचीन कहा है कालिदास का ठीक समय आज भी एक प्रकार से अनिश्चित है। सप्तम शताब्दी के बाण भट्ट ने उनका नाम श्रीहर्षचरित में लिखा है। इससे कालिदास का होना छठी शताब्दी के आदि में निश्चित होता है। बहुत से संस्कृत भाषा के इतिहासवेत्ता कालिदास को छठी शताब्दी का ग्रन्थकार मानते हैं। "मालविकाग्निमित्र" नाटक की प्रस्तावना में कालिदास ने अपने से प्राचीन कवि शूद्रक धावक भासकराभिल और सौमिल आदि का स्मरण किया है। श्रीहर्षचरित में बाण भट्ट ने "भास" नामधारी कवि को कालिदास से प्राचीन लिखा है। इस भास कवि का समसामयिक धावक कवि (अङ्गरेज़ों ही के मत से) कम से कम ईसा की पाँचवीं शताब्दी में रहा होगा। वह ईसा की सातवीं शताब्दी में कन्नौज के महाराज श्रीहर्ष की सभा में कैसे आ सक्ता है। इस लिये काव्यप्रकाश के टीकाकार तथा उनके अनुयायी विलायती विद्वानों का मत नितान्त निर्मूल है। महाराज श्रीहर्ष सुकवि थे। मधुवन के ताम्रशासन में उनके बनाये हुए श्लोक भी उनकी कवित्वशक्ति के द्योतक हैं। हमारे विचार में बिना किसीकी सहायता के स्वयं महाराज श्रीहर्षदेव ने रत्नावली नाटिका नागानन्द और प्रियदर्शिका नाटिका की रचना की है।

काव्यप्रकाश के निदर्शन टीका में धावक के स्थान में बाण का नाम मिलता है। हाल साहब ने इसीको मूल बना कर अपनी छपाई वासवदत्ता की अंग्रेज़ी-भूमिका में कई युक्तियों को दिखा कर यह निश्चय किया है कि "रत्नावली" बाण भट्ट ने बनायी है। वस्तुतः हाल साहब की युक्तियाँ सन्देह उत्पन्न कर सकती हैं निर्णय नहीं। उनकी सबसे बड़ी युक्ति यह है कि रत्नावली का एक श्लोक श्रीहर्षचरित में भी मिलता है। यदि एक कवि का एक श्लोक किसी ग्रन्थ में मिलने से वह ग्रन्थ ही दूसरे कवि का हो जाय तब तो साहित्य शास्त्र ही चौपट हो सकता है। मनुस्मृति के ज्यों के त्यों श्लोक जिन स्मृतियों में मिलते हैं वे मनुजी की मानी जायँगी और राजतरङ्गिणी भी एक दो श्लोकों के कारण कल्हण के अधिकार से निकल जायगी और शिवपुराण का एक श्लोक अविकल उद्धृत करने से कविवर कालिदास का कुमारसम्भव व्यास जी का काव्य समझा जायगा इस विषय में हम अनेक उदाहरण दे सकते हैं कि एक कवि दूसरे कवि के श्लोक को कभी कभी अपने ग्रन्थ में भी संग्रह कर लिया करते हैं। इस लिये दोनों ग्रन्थों का निर्माता एक ही समझ लेना कुछ बुद्धिमत्ता का प्रकाशक नहीं है। फिर न जाने क्या समझ कर, डाक्टर ब्यूलर और बम्बई के सुयोग्य माननीय काशीनाथ त्र्यम्बक तैलङ्ग अपने लेख में हाल साहब के भ्रान्त मत का आग्रह कर रहे हैं। यदि काव्यप्रकाश के मूल में धावक के स्थान में बाण ही का नाम हो तो भी इस से इतना ही सिद्ध होगा कि बाण के काव्य से सन्तुष्ट हो, श्रीहर्ष ने उन्हें बहुत सा धन दिया था और हमारी समझ में (यदि उक्त पाठ ठीक हो) यह आता है कि श्रीहर्षचरित ही बाण का वह काव्य है जिसके स्थान में हाल साहब आदि बड़े बड़े विद्वान् छानबीन करने वाले विज्ञ पुरुष भ्रान्तिवश रत्नावली को समझ रहे हैं। यह तो पहले ही कह चुके हैं कि धावक बाण से बहुत पुराना कवि है। श्रीहर्ष की सभा में इस नाम का कोई कवि ही न था। बाण भट्ट मयूर भट्ट और जैन पण्डित मानतुङ्ग सूरि के समान यदि धावक भी श्रीहर्ष का सभासद् होता, तो अवश्य तद्रचित कोई न कोई ग्रन्थ मिलता। काव्यप्रकाश की टीकाओं को छोड़ कर अन्यत्र कहीं भी श्रीहर्ष के सभासद् धावक का उल्लेख नहीं है। विलसन साहब ने कल्हणकृत

राजतरङ्गिणी में महाराज हर्षदेव का इतना वर्णन देखने से कि वह सब भाषाओं का पण्डित एवं सत्कवि और सब विद्याओं की खानि था । जिसने देश देशान्तरों में भी प्रसिद्धि लाभ की थी—

" सोऽशेषदेशभाषाज्ञः सर्वभाषासु सत्कविः ।
कृत्स्नविद्यानिधिः प्राप ख्यातिं देशान्तरेष्वपि ॥ "

यह मान लिया है कि रत्नावली कश्मीराधिपति हर्षदेव की रचना है और यह निर्णय भी कर डाला कि काश्मीर का इतिहास देखने से सन् १११३ ई० में काश्मीर के राजसिंहासन पर हर्षदेव बैठे थे । परन्तु रत्नावली काश्मीर के राजा हर्षदेव के बहुत पहले की है यह हम अभी दिखलावेंगे । फिर वे इसके कर्ता कैसे हो सकते हैं । मालवदेश के प्रसिद्ध महाराजा भोजदेव ने साहित्य के प्रसिद्ध ग्रन्थ " सरस्वती कण्ठाभरण " में रत्नावली के कई जगह उदाहरण दिये हैं । भोज ने ५५-वर्ष ७ मास और ३ दिन तक राज्य शासन किया । जब हर्ष के पितामह अनन्तदेव काश्मीर का राज्य करते थे उसी समय मालवे में भोजदेव थे । अनन्तदेव ईसा के १०६५ के आस पास हो चुके हैं, यही समय भोजदेव का समझना चाहिये । विलायत के सभी पण्डितों ने इस काल के आस पास ही भोजदेव का समय ठहराया है । "दशकुमार चरित" के विज्ञापन में स्वयं विलसन साहब ने भी सन् १००० ई० से प्रथम ही भोज का राज्यकाल ठहरा कर दण्डी का समय निर्णय किया है । अब विलसन साहब सोचें कि हर्षदेव के राज्यकाल से जिसको उन्होंने स्वयं सन् १११३ ई० ठहराया है, रत्नावली प्राचीन है कि नहीं ?

एक बात और भी ध्यान देने योग्य है । धनञ्जय कवि ने-जिसका दूसरा नाम धनिक भी था-अपने दशरूपक ग्रन्थ में रत्नावली के उदाहरण बहुत जगह दिये हैं । धनञ्जय महाराज मुञ्ज का सभासद् था । और मुञ्ज भोजदेव से पहले मालवे के राजसिंहासन पर विराजमान थे, इसी लिये इतिहासविज्ञों ने सन् १०२० ई० से पहले ही मुञ्ज का राज्यकाल निर्णय किया है । अब विचार कर देखिये कि महाराज मुञ्ज के राज्यकाल में काश्मीर के महाराज हर्षदेव का जन्म भी नहीं हुआ था । किन्तु उनकी बनायी नाटिका विद्यमान थी यह आश्चर्य की बात है कि नहीं ?

यदि " श्रीहर्षादेर्धावकादीनामिव धनम् " ऐसा ही काव्यप्रकाश में पाठ हो और उसका " श्रीहर्षाख्यस्य राज्ञो नाम्ना रत्नावलीं कृत्वा धावकाख्यकविर्बहुधनं लेभे " ऐसा ही अर्थ हो और कालिदास के " मालविकाग्निमित्र " नाटक की प्रस्तावना में " प्रथितयशसां धावकसौमिल्लकविपुत्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य वर्तमानकवेःकालिदासस्य कृतौ किङ्कृतो बहुमानः" ऐसा ही पाठ हो और पूर्वोक्त धावक ही रत्नावली का बनाने वाला भी हो तो हर्षदेव की बात दूर रहे कालिदास विक्रमादित्यादि से भी रत्नावली पहले की है-यह बात हम निःसङ्कोच हो कर कह सकते हैं विलसन साहब ने काश्मीर का इतिहास देख कर, जो यह निर्णय कर लिया है कि सन् १११३ ई० में हर्षदेव काश्मीर के राज्यसिंहासन पर बैठे सो भी भ्रान्ति से खाली नहीं है ।

एक बात और है । यदि कालिदास और मम्मट भट्ट की दृष्टि में सचमुच कोई धावक पुरुष रहा होता तो उसके समान वास्तव में प्रथितयशा कोई दूसरा कवि न होता । संसार भर जिस कालिदास की कविता पर मोहित हो रहा है, वह स्वयं जिसको "प्रथितयशा" कह कर आदर दे, उसके समान और कौन यशस्वी हो सकता है ? पर दुःख की बात है परीक्षा के स्थान में धावक इस यश का पात्र नहीं ठहरता । यदि धावक के अस्तित्व का ठौर ठिकाना किसी तीसरी जगह मिल जाय तो यह सारी यशोराशि उसीके भाग की है । नहीं तो धावक का होना वैसा ही है जैसा बालकों का "हाऊ" जानवर ।

कलकत्ते के प्रसिद्ध पण्डित महेशचन्द्र न्यायरत्न काव्यप्रकाश विवरण के विज्ञापन में लिखते हैं कि हमने कई पुरानी पुस्तकों में धावक के स्थान में भास वा भासक का नाम देखा । उनके इस लेख से कई प्रतिभाशाली लेखकों ने यह

निगमन निकाला कि वास्तव में धावक नाम का कोई कवि ही नहीं हुआ । "भासक" अपने समय में एक विख्यात कवि हो चुका है, जिसके यश का कीर्तन कितने ही प्राचीन कवि कर रहे हैं। लिपि प्रमाद से भासक के स्थान में धावक की धूम मच गयी। असल में धावक कोई वस्तु नहीं है । जब हमने स्वयं दो चार पुरानी पुस्तकों में धावक का नाम नहीं पाया तब इस पूर्व समय के सन्देहास्पद विषय को सन्देहरहित समझ लिया । केवल इसी बात से नहीं, कि कालिदास के मालविकाग्निमित्र में धावक का नाम भ्रम से सन्निविष्ट हो गया, प्रत्युत यह देख कर कि काव्यप्रकाश में भी धावक का नाम उसी प्रकार भ्रम से लिखा गया है ।

कश्मीर नरेश. हर्षदेवकृत रत्नावली नहीं है यह तो हम ऊपर सिद्ध कर ही चुके, परन्तु यहाँ यह कह देना भी आवश्यक है कि "रत्नावली" नाटिका प्रसिद्ध नैषधकार श्रीहर्षकृत भी नहीं है। डाक्टर व्यूलर आदि विद्वानों के अनुमान में दार्शनिक कवि नैषधकार का स्थितिकाल ईसा की १२ वीं शताब्दी है।

अतएव जिन युक्तियों से "रत्नावली" कश्मीर वाले हर्ष की नहीं हो सकती, उन्हीं युक्तियों से इनकी भी नहीं हो सकती ।

दूसरी बात और है। श्रीहर्षकृत "रत्नावली" आदि नाटकों की प्रस्तावना देखने से यह भली भाँति सिद्ध होता है कि वे एक प्रबल पराक्रान्त सम्राट् थे। जिनके पादपद्म का स्पर्श कर के देश देशान्तर के राजा कृतार्थ होते थे । अतएव वह कान्यकुब्ज नरेश महाराज श्रीहर्ष के सिवाय और कौन हो सकता है।

नैषध चरित का कर्ता इस बात पर फूल रहा है कि उसे कान्यकुब्ज के महाराज दो पान के बीड़े और आसन दे कर सम्मानित करते हैं। इससे सिद्ध होता है कि जिसने "नैषधचरित" और "खण्डन खण्ड खाद्य" आदि ग्रन्थ बनाये वह राजा कभी नहीं हो सकता । नैषध चरित के देखने से उसका कर्ता राजसम्मानित एक ब्राह्मण प्रतीत होता है। जिनके पिता का नाम श्रीहीर और माता का मामल्लदेवी था उन्होंने अपने बनाये ग्रन्थों का नाम नैषध चरित के अन्त में लिखा है, उसमें रत्नावली का नाम तो नाम, उसका कहीं सङ्केत तक नहीं है और न इनकी कविता के साथ रत्नावली की कविता का कुछ मेल ही है।

जो लोग रत्नावली को बाण भट्ट की बनायी कह कर डाक्टर हाल साहब के अनुचर हो रहे हैं, वे भ्रान्त हैं कि दुराग्रही इस विषय का निर्णय नहीं हो सकता । परन्तु जब देखते हैं कि वे श्रीहर्षकृत "रत्नावली" को बिना किसी प्रमाण के आधार पर बाण भट्ट की बताने में आग्रह दिखा रहे हैं तब यही निश्चय होता है कि कल्पक की पदवी पाने के लिये ही ये ऐसा कर रहे हैं। नहीं तो भला जब "रत्नावली" और "नागानन्द" में सूत्रधार के रूप से "निपुण कवि" श्रीहर्ष ही निज निपुणता का प्रबल प्रमाण दे रहे हैं तब इस विषय में अन्य प्रमाण की आवश्यकता ही क्या है? तथापि लोग इस विषय में प्रमाणान्तर माँगा करते हैं—"किमाश्चर्यमतः परम्" ।

विलायती पण्डितों के श्रद्धालु द्विवेदिकुल-नन्दन पण्डित महावीरप्रसाद ने भी नैषध चरित चर्चा में लिखा है कि रत्नावली धावक ने नहीं बनायी काश्मीर नरेश श्रीहर्ष ने नहीं बनायी, तो बनायी किसने ? यदि कान्यकुब्जा-धीश श्रीहर्षकृत मानते हैं तो उसका कवि होना कहीं नहीं लिखा है। धन्य, आप तो सब कुछ देख गये पर श्रीहर्ष का दुर्भाग्य—उसका कवि होना कहीं नहीं लिखा ।

श्रीहर्ष का केवल कवि होना ही नहीं, प्रत्युत "निपुण कवि" होना रत्नावली ही में लिखा है नागानन्द में, प्रियदर्शिका में लिखा है। तथापि आपने लिखा है कि "उसका कवि होना कहीं नहीं लिखा" जब हमारे देशी पढ़े लिखे लोगों का यह हाल है तब हाल साहब को कोई क्या कह सकता है ? हर्षचरित में महाकवि बाण भट्ट ने "रत्नावली" के रचयिता श्रीहर्ष को कवि ही नहीं, किन्तु सर्वविद्या और कलाशास्त्र में पारदर्शी बतलाया है। बाण भट्ट के लिखे हुए श्रीहर्ष के दो चार

विशेषण नीचे उद्धृत किये जाते हैं—

" सर्वविद्यासङ्गीतगृहमिव सरस्वत्याः ...... मलदर्शनमिव वैदग्धस्य ...... कन्यान्तःपुरमिव कलानाम्, ... चक्रवर्तिनं हर्षमद्राक्षीत् "।

(हर्षचरित द्वितीय उच्छ्वास)

इसके अतिरिक्त और भी इस विषय में अनेक प्रमाण हैं। वङ्गदेश के विख्यात लेखक बाबू राजकृष्णजी ने लिखा है कि " मयूरशतक " पर मधुसूदनकृत भावबोधिनी नाम्नी टीका है। उसमें उन्होंने लिखा है कि बाण भट्ट जिस श्रीहर्ष के सभापण्डित थे वही श्रीहर्ष " रत्नावली " के कर्त्ता हैं। मधुसूदन का ग्रन्थ सं० १७११ अर्थात् ईसवी सन् १६५४ में लिखा गया है। सुतरां हम लोग जिस मत को समर्थन करने के लिये प्रयत्न कर रहे हैं वह इस देश की पण्डितमण्डली में अढ़ाई सौ वर्ष से भी पहले ग्राह्य था। खृष्ट १८७८ वर्षीय प्राचीन वृत्तप्रदर्शक पुस्तक के देखने से यही सिद्ध नहीं होता कि श्रीहर्ष केवल कविता ही में निपुण थे किन्तु यह भी सिद्ध होता है कि वे महावैयाकरण भी थे और ग्रन्थरचना में सिद्धहस्त थे। उन्होंने व्याडी, शङ्कर, चन्द्र, वररुचि और पाणिनि के विचार की पर्यालोचना कर के एक बड़ा सुन्दर और सुगम " लिङ्गानुशासन " बनाया था। इसकी शबर स्वामीकृत टीका भी प्रसिद्ध है। यह शबर स्वामी प्रसिद्ध मीमांसा के भाष्यकार शबराचार्य से भिन्न हैं कि अभिन्न, यह स्वतन्त्र समालोच्य है। तथापि इतना कह देना आवश्यक है कि टीकाकार भी लिङ्गानुशासन को हर्षकृत ही नहीं—हर्षवर्द्धनकृत कह कर स्वीकार कर रहे हैं। लिङ्गानुशासन का अन्तिम श्लोक यह है —

" व्याडेः शङ्करचन्द्रयोर्वररुचेर्विद्यानिधेः पाणिनेः
सूक्तालिङ्गविधीन् विचार्य सुगमं श्रीवर्द्धनस्यात्मजः।
अल्पं व्यापि च हर्षवर्द्धन इव स्पष्टीकृतप्रत्ययम्
लिङ्गानामनुशासनं रचितवानर्थ्यर्थसंसिद्धये ॥"

इस उल्लिखित श्लोकही को देख कर विचारशील पाठक स्थाली पुलाक न्याय से श्रीहर्ष की कवितानिपुणता और विद्वत्ता का परिचय पालेंगे और जो परमतदास बन कर इस बात की शपथ ही कर बैठे हैं कि रत्नावली को श्रीहर्षकृत मानना और उनको कवि समझना महापाप है, उनकी तो बात ही निराली है। उनके लिये सचमुच " श्रीहर्ष का कवि होना कहीं नहीं लिखा "

अब हम उन कतिपय आपत्तियों पर विचार करना उचित समझते हैं जो श्रीहर्ष के विरुद्ध भिन्न भिन्न पुरुषों द्वारा उठायी गयी हैं या उठायी जा सकती हैं। बाबू राजकृष्ण ने " भावबोधिनी " कार का उल्लेख कर के भी श्रीहर्ष को " रत्नावली " का कर्त्ता नहीं स्वीकार किया है। वे कहते हैं कि श्रीहर्ष एक दिग्विजयी राजा था, वह नाटकादि लिखने बैठा हो यह सम्भव नहीं। किन्तु राज्यविस्तार द्वारा उसने जिस प्रकार यशोलाभ किया था, उसी प्रकार उसने यदि अपने नाम से ग्रन्थप्रचार द्वारा यशस्वी होने की चेष्टा की हो और उस के लिये लेखकों को प्रचुर अर्थ दे कर उन्हें संतुष्ट किया हो तो कुछ आश्चर्य नहीं। राजकृष्ण बाबू जिस कारण श्रीहर्ष को "रत्नावली" का कर्त्ता ठहराने में पश्चात्पद हो रहे हैं, वह किसी प्रकार विश्वासयोग्य और युक्तिसिद्ध नहीं हो सकता। दिग्विजयी राजा होने से श्रीहर्ष नाटकादि की रचना नहीं कर सकते इस प्रकार के अनुमान का मूल ही क्या है?

बाण भट्ट हर्षदेव के जीवनचरित को लिख कर उनके यश को बढ़ा सकते हैं। इस आशङ्का पर प्रमाण स्वरूप इसके सम्बन्ध में हर्षचरित की किसी उक्ति का उल्लेख नहीं करेंगे नहीं तो हर्षवर्द्धन सब विद्या और कलाशास्त्र में पारदर्शी थे हर्षचरित ही से इस विषय के अनेक प्रमाण दिये जा सकते हैं। हर्षवर्द्धन नितान्त धार्मिक और जितेन्द्रिय राजा थे, इनकी गुणराशि और उदारता का वर्णन न केवल बाण भट्ट ही ने किया है किन्तु प्रसिद्ध चीनी यात्री हुएनत्सङ्ग ने भी अपनी यात्रापुस्तक में इनके गुणगण का उल्लेख किया है। ऐसा गुणग्राही धर्मात्मा राजा झूठे यश की आशा में पड़ कर और के द्वारा अपने नाम का

काव्य प्रचार करा ले, यह कहाँ तक सम्भव हो सकता है इस बात का निर्णय सहृदय महानुभावों के विचाराधीन ही है। किन्तु हम जिज्ञासा करते हैं कि इतने बड़े संस्कृत साहित्य के इतिहास में हमें इस प्रकार के कोई दो चार भी पक्के प्रमाण दिखा सकता है? विक्रमादित्य, शालिवाहन, जयापीड, मुञ्ज, भोज, लक्ष्मणसेन प्रभृति विद्योत्साही नृपति, बहुत से कवि और पण्डितों का प्रतिपालन करगये हैं, किन्तु उन्हों ने अपने नाम पर और किसीसे कोई ग्रन्थ बनवाया है क्या? वस्तुतः यह विषय इतना अभूतपूर्व अस्वाभाविक तथा सच्चे गुणग्राही के अयोग्य है कि, हम सन्तोष के साथ कहते हैं कि प्राचीन संस्कृत साहित्य के इतिहास में इस प्रकार के दृष्टान्त मिलने की बात हम जानते ही नहीं।

हाल साहब के मतावलम्बियों में से कोई कोई कह सकते हैं कि ब्यूलहर साहब का आविष्कृत और विलायती पण्डितों का अनुमोदित जब "काव्यप्रकाश" का "श्रीहर्षादेर्धावकादीनामिव धनम्" यही पाठ ठीक है, तब जाना जाता है कि श्रीहर्ष आदि राजाओं से बाणप्रभृति कवियों ने धन लाभ किया था। इसके उत्तर में हम कहते हैं कि केवल "काव्यप्रकाश" के मत से क्यों, स्वयं बाण भट्ट ही ने "हर्षचरित" में सविस्तर लिखा है कि उनको हर्षवर्द्धन या श्रीहर्ष ने सादर ग्रहण कर पुरस्कृत किया, किन्तु उन्होंने "रत्नावली" की रचना की थी यह अर्थ निकलता है क्या? विद्योत्साही राजागण चिर काल से कवि और पण्डितों को आदरपूर्वक धन देते आये हैं। इस विषय में प्राचीन भारत के सैकड़ों ऐतिहासिक प्रमाण दिये जा सकते हैं।

राजतरङ्गिणी के चतुर्थ तरङ्ग में लिखा है कि जयापीड नृपति ने प्रतिदिन लक्ष दीनार (मुद्रा विशेष) वेतन दे कर पण्डित उद्भट भट्ट को सभापति किया था। उन्होंने तो राजा जयापीड के नाम से कोई ग्रन्थ बना कर प्रचलित नहीं किया। सुतरां हमारी विवेचनायें प्रमाणान्तर के विना "काव्यप्रकाश" के इस प्रकार के सन्दिग्ध पाठ से "रत्नावली" को बाण भट्ट रचित समझने में आग्रह और कुत्सित कल्पना के अतिरिक्त अन्य कोई भी प्रमाण नहीं है।

यद्यपि रत्नावली के हर पार्वती विषयक मङ्गलाचरण और हर्षचरित के देखने से उनका माहेश्वर वा हिन्दू होना ही प्रमाणित होता है, तथापि कई एक विलायती और देशी पण्डितों ने इस विचार के प्रतिकूल अपना सिद्धान्त प्रकट कर यह निश्चय किया है कि श्रीहर्ष बौद्ध-धर्मावलम्बी थे हिन्दू न थे। श्रीहर्ष चाहे हिन्दू हों, चाहे बौद्ध हों इसमें हमारी कुछ भी हानि या हमारा कुछ भी लाभ नहीं है। बौद्ध होने पर भी सरस और मनोरञ्जक रचना के कारण श्रीहर्ष हमारे श्रद्धाभाजन होसकते हैं; किन्तु किसी हिन्दू ग्रन्थकार को बलात् बौद्ध या मुसल्मान कहा जाय और मुसल्मान को किरस्तान कहा जाय तो निःसन्देह यह परिताप का विषय है।

इसलिये जो लोग हिन्दू श्रीहर्ष को बौद्ध-धर्मावलम्बी ठहरा रहे हैं उनकी युक्तियां कहाँ तक यथार्थ हैं एक बार इसकी भी परीक्षा करनी चाहिये। हमें जहां तक ज्ञात है इस विषय में उनका जो वक्तव्य है वह इस प्रकार है—

(१) बौद्ध यति दिवाकर मित्र के उपदेश से श्रीहर्ष ने बौद्ध धर्म ग्रहण कर लिया था। इसी कारण बौद्धद्वेषी ब्राह्मण बाण भट्ट ने द्वेष से श्रीहर्ष की जीवनी अधूरी छोड़दी। हर्षचरित की अपूर्णता जिस प्रकार श्रीहर्ष के बौद्ध होने में प्रमाणस्वरूप हो सकती है, उसी प्रकार बाण भट्ट के बौद्धविद्वेष को भी सिद्ध करती है। बौद्ध नरेशों का जीवन वृत्तान्त न लिखना और लिखना तो घृणा के साथ बिगाड़ कर लिखना यह ब्राह्मणों का एक कुलक्रमागत स्वभाव है। इस विषय में प्रमाण यही है कि अशोक जैसे महाप्रतापी महाराज का किसी पुराण में इतिवृत्त नहीं मिलता।

(२) "नागानन्द" के आरम्भ में श्रीहर्ष ने बुद्धदेव का मङ्गलाचरण किया है। यदि श्रीहर्ष हिन्दू होते तो बुद्धदेव के प्रति सम्मान क्यों दिखाते। इससे सिद्ध होता है कि "नागानन्द" श्रीहर्ष की पिछली रचना है।

रत्नावली उन्होंने बौद्ध धर्म ग्रहण करने के पूर्व बनायी थी अतः उसमें उन्होंने हर पार्वती का मङ्गलाचरण किया है।

ईसा की सातवीं सदी के आरम्भ में चीन देश से "हुएनत्सङ्ग" नामक जो विख्यात यात्री आया था उसने अपनी यात्रापुस्तक में महाराज श्रीहर्षवर्द्धन को बौद्ध लिखा है। उसी यात्रा-पुस्तक से जाना जाता है कि अवलोकितेश्वर बोधिसत्व को प्रत्यक्ष कर श्रीहर्ष ने राज्यभार ग्रहण किया था और वे प्रयाग के सन्तोपक्षेत्र में एक महोत्सव पर बुद्धदेव की धूमधाम से पूजा भी करते थे।

श्रीहर्ष के प्रतिकूल जितनी आपत्तियां आज-कल के समालोचकों ने उठायी हैं उनमें ये ही प्रधान हैं और सब इन्हींके अवान्तर भेद या शाखा प्रशाखामात्र हैं। ये आपत्तियां आपाततः रमणीय और विश्वासयोग्य होने पर भी विचार कर देखने से अन्तःसारशून्य प्रतीत होती हैं। अब इन आपत्तियों का क्रमशः उत्तर दिया जाता है।

हर्षचरित के अष्टम उच्छ्वास को देखने से अवश्य ही यह जाना जाता है कि हर्षदेव के राज्यकाल में दिवाकर मित्र नामक प्रसिद्ध बौद्ध संन्यासी थे, जिनसे श्रीहर्ष ने यह भी कहा था कि अपने राज्य को निष्कण्टक कर इस शान्त आश्रम में आ कर हम बौद्ध धर्म की दीक्षा या शान्ति ग्रहण करेंगे। किन्तु इस से श्रीहर्ष का बौद्ध होना सिद्ध नहीं होता। दिवाकर मित्र ने श्रीहर्ष की भगिनी राज्यश्री की रक्षा की थी। इस उपकार के बदले श्रीहर्ष ने विनयपूर्वक केवल नम्रता दिखायी है। जो भगवद्भक्त शान्त और शिष्ट हैं, वे दूसरे के धर्म और धार्मिक पुरुषों का भी सदैव सत्कार किया करते हैं और उनके उपदेश की अवज्ञा नहीं करते यह सब पर विदित है।

"हर्षचरित" अवश्य अधूरा काव्य है, पर यह पूरा बना ही नहीं या अन्यान्य पुस्तकों की तरह मिलता ही नहीं, यह कौन कह सकता है? सम्भव है बाण भट्ट ने पूरा ग्रन्थ बनाया हो और किसी कारण से वह नष्ट होगया हो।

भला यहाँ तो हमारे सत्समालोचक यही कह बैठे कि जब श्रीहर्ष ने वैदिक धर्म को परित्याग किया, तब स्वधर्मप्रिय बाण भट्ट इनको छोड़ कर चल दिये पर यों तो महा-कवि कालिदास का "रघुवंश" भी तो अधूरा है। वहां क्या कल्पना की जायगी। क्या पवित्र "रघुवंश" में भी कोई क्षत्रिय महाराज बौद्ध होगया था। फिर किस कारण महाकवि ने इन रघुवंशीय नृपों की शेष वृत्तान्त-माला प्रकाशित न की।

बौद्धद्वेषी ब्राह्मण बाण भट्ट ने द्वेष से श्रीहर्ष की जीवनी अधूरी छोड़ दी, यह धारणा भ्रान्ति-मूलक और अन्यायपरिवर्धित है। तथापि दुःख के साथ स्वीकार करना पड़ता है कि इस कुसंस्कार के पक्षपाती केवल यूरोपीय ही नहीं, एतद्देशीय अनेक कृतविद्य ब्राह्मणसन्तान भी होती चली जा रही है। और तो और, बङ्गाल के सुप्रसिद्ध सुलेखक बाबू त्रैलोक्यनाथ भट्टा-चार्य महाशय को भी क्या सूझा जो ब्राह्मण बाण भट्ट को "बौद्धद्वेषी" समझ उन्होंने उक्त भ्रान्तमत का अकुण्ठित भाव से अनु-मोदन कर दिया है। क्या "हर्षचरित" से कोई बाण भट्ट को बौद्धद्वेषी ठहरा सकता है? हर्षचरित में सहृदय बाण भट्ट ने कहीं भी बौद्ध-द्वेष का परिचय नहीं दिया है, वरञ्च अनेक स्थलों पर बौद्धों के साथ अपनी सहानुभूति और एक प्रकार का मैत्रीभाव प्रकट किया है। बाण भट्ट यदि बौद्धद्वेषी होते तो अष्टम उच्छ्वास में बौद्ध भिक्षु दिवाकर मित्र का वर्णन अपने महर्षियों के समान न करते, उनके शान्त निकेतन आश्रम की इतनी अधिक प्रशंसा नहीं लिखते। तथापि उन्नीसवीं शताब्दी के सभ्यताभिमानी और उदार समालोचक बाण भट्ट को केवल ब्राह्मण जान कर ही बौद्धद्वेषी का पद प्रदान कर रहे हैं।

भिन्नधर्मा बौद्ध नरेशों का जीवनवृत्त न लिखना, और लिखना तो घृणा के साथ बिगाड़ कर लिखना—यह ब्राह्मणों का एक कुलक्रमागत स्वभाव है इस विषय में प्रमाण यही है कि अशोक जैसे महाप्रतापी बौद्ध महाराज का

किसी पुराण में इतिवृत्त नहीं मिलता । इस आक्षेप का समाधान करने के पूर्व यह प्रकाश कर देना अनुचित न होगा कि इस शताब्दी के सभ्यलेखकों का यह कुलपरम्परागत स्वभाव अस्थिमज्जागत होगया है कि येन केन उपाय से दुर्भाग्यनिष्पीडित ब्राह्मणजाति पर कलङ्क आरोपित कर देना चाहिये । बस इसी आधार वा सिद्धान्त पर इस आक्षेप की सृष्टि हुई है। नहीं तो क्या कभी सम्भव है जो ब्राह्मण ब्रह्म-हत्यारे राक्षसों तक का चरित्र लिखने में न चूके, जिन्होंने यवनसम्राट् अकबर को "दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो वा" कह कर अपने गुणग्राही उदार स्वभाव का परिचय दिया और ब्राह्मण जो अपनी अमृतमयी लेखनी से उस अत्याचारी यवनकुल के नरेशों के भी चित्र चित्रित कर उनके नाम को अमर कर गये हैं, जो ब्रह्मवंश का सर्वनाश करने के लिये कालस्वरूप थे उन उदारचरित ब्राह्मणों पर भी भिन्नधर्मा बौद्ध लोगों के चरित्र न लिखने अथवा बिगाड़कर लिखने का अपराध लगाया जाय ? सच तो यह है कि ब्राह्मणजाति के अदृष्ट दोष अथवा कालचक्र के परिवर्तन से वर्तमान समय के लेखक इसी परमपूज्य जाति पर कुठारहस्त हो रहे हैं।

ब्राह्मण कवि कल्हणादिकृत "राजतरङ्गिणी" आदि ऐतिहासिक ग्रन्थों के अवलोकन से विचारशील पुरुष इस बात को भली भाँति जान सकते हैं कि बौद्धधर्म के साथ प्रतिद्वन्द्विता होने पर भी बौद्धों के गुणवर्णन के समय ब्राह्मण चुप नहीं रहे। केवल चुप ही नहीं रहे हों यह बात नहीं है, प्रत्युत भिन्नधर्मा बौद्ध भूपालों का ऐसा सुन्दर चरित्र लिखा है, जिसका सौभाग्य अनेक समानधर्मा हिन्दू नरेशों को भी प्राप्त नहीं हुआ। इस विषय में जिसे सन्देह हो, वह "राजतरङ्गिणी" के तृतीय सर्ग में बौद्धमहाराज "मेघवाहन" आदि के पवित्र चरित्रों को पढ़ देखें और तब बतलावें कि ब्राह्मण जाति ने बौद्धों के चरित्र कहां तक विकृत किये हैं और कहां तक वे इनके गुणवर्णन में पराङ्मुख रहे हैं। भारतवर्ष के अकृतज्ञ नवीन इतिहास लेखक या समालोचक ब्राह्मणों को हीनचरित्र लिखकर चाहे जितना अपनी लेखनी को कलङ्कित और अपवित्र करलें किन्तु जिस समय कोई इस विषय में अन्वेषण करेगा उस समय उसे ब्राह्मणों की उदारता के असंख्य प्रमाण मिलेंगे और उसे देख कर चकित होना पड़ेगा कि जगत् में ब्राह्मणजाति ही एक ऐसी जाति है, जिसने केवल उपदेश ही से नहीं वरन कार्य से भी यह सिद्ध कर दिया है कि "शत्रोरपि गुणा वाच्याः" गुण शत्रु के भी कहने चाहिये। हर्षचरित की अपूर्णता से बाण भट्ट के बौद्धद्वेष का निगमन वे ही निकाल सकते हैं, जो आँखों देखी बात को मिथ्या समझें और जिन्हें अकारण परनिन्दा में अनुराग हो।

अशोक जैसे प्रतापी बौद्ध महाराज का पुराणों में इतिहास न मिलने पर, विपक्षियों को तब कुछ कहना चाहिये था, जब पुराणों में तत्कालीन हिन्दू नरेशों का भी इतिवृत्त मिलता। जिस प्रतापी विक्रमादित्य के नाम पर आज हिन्दुओं के घरों में सङ्कल्प हो रहे हैं, जिस पुण्यश्लोक का प्रातःकाल हिन्दूलोग नाम लेते हैं, उस ब्रह्मण्य उज्जयिनीनाथ का चरित्र पुराणकर्ताओं ने कितने पुराणों में लिखा है । इतने बड़े हिन्दू धर्मरक्षक शकारि महाराज का जब कोई जीवनवृत्तान्त पुराणों में लिखा नहीं मिलता, तब किस प्रकार कहा जा सकता है कि बौद्धराज अशोक का चरित्र पुराणों में द्वेष से नहीं लिखा गया। ब्राह्मणों की लिखी पुस्तकें यदि वर्षों तक नवाबों के हम्माम गरम किये जाने के काम में न लाई गई होतीं तो आज हमें अनेक लोगों के कटाक्षों का लक्ष्य न बनना पड़ता । तथापि ब्राह्मण इस कलङ्क के पात्र नहीं हैं यह इन्हीं अल्पमात्र बची हुई पुस्तकों से अच्छी तरह सिद्ध होता है।

दूसरी आपत्ति उन लोगों की उठाई हुई प्रतीत होती है—जो या तो हिन्दू नहीं हैं, अथवा हिन्दू होने पर भी हिन्दू धर्म के मर्म से नितान्त अनभिज्ञ हैं । भगवान् बुद्धदेव का मङ्गलाचरण करना किंवा उनमें पूज्य बुद्धि रखना हिन्दूधर्म के प्रतिकूल नहीं है. यदि

"नागानन्द" में बुद्धदेव के मङ्गलाचरण से श्रीहर्ष हिन्दुओं से अलग किये जा सकते हैं तो गीतगोविन्दकार जयदेवजी को वैष्णवमण्डली में कौन रख सकता है ? जयदेवजी ने भी तो अष्टपदी में बुद्धदेव के नाम से मङ्गलाचरण किया है। इसमें और उसमें भेद है तो इतना ही है कि वहाँ विष्णु के अन्य अवतार भी साथ हैं और यहाँ अकेले बुद्धदेव। पर यह भेद कोई भेद नहीं, यह वक्ता की इच्छा पर निर्भर है। अनन्य श्रीवैष्णव का वैसा मङ्गलाचरण भी अमूल्य समझना चाहिये।

हिन्दूशास्त्रों में हिन्दुओं की दृष्टि में भगवान् बुद्धदेव भी उसी प्रकार पूजार्ह हैं जिस प्रकार जगदीश्वर के अन्य अवतार हैं। भगवान् के अवतारों का जहाँ वर्णन है वहीं बुद्धदेव का प्रसङ्ग भी अनिवार्य है। औरों से उनका भेद इतना ही है कि अन्य अवतारों का उपदेश भी मान्य है। क्योंकि वह वेदमूलक है और इनका केवल विग्रह ही पूज्य है, वाक्य नहीं, क्योंकि वह वेदविरुद्ध है। कदाचित् हमारी इस मीमांसा पर शास्त्रानभिज्ञ लोग उपहास करेंगे कि यह कैसी बात है जो परमपूज्य ईश्वरावतार बुद्धदेव को मान कर भी उनके उपदेश को नहीं ग्रहण किया जाता है। पर शास्त्र के तत्त्व जानने वाले विद्वान् अवश्य इन बातों को स्वीकार करेंगे कि हिन्दू धर्म ईश्वर पर निर्भर नहीं है केवल अपौरुषेय वेद पर निर्भर है। सनातन धर्म में ईश्वर के न मानने वाले का नाम नास्तिक नहीं है। जो वेद को न माने उसका नाम नास्तिक है "नास्तिको वेदनिन्दकः"

जब कारण का अभाव है, तब कार्य का अभाव भी अनिवार्य है। सुतरां जिस कारण "नागानन्द" श्रीहर्ष की पिछली रचना समझी जाती है उसकी असारता हम दिखा चुके हैं। इसलिये श्रीहर्ष की प्रथम रचना "रत्नावली" है कि "नागानन्द" यह एक स्वतन्त्र बात है। इससे प्राकृत विषय का सम्बन्ध नहीं है। पर हमारी समझ में "नागानन्द" प्रथम है "रत्नावली" पश्चात्। "रत्नावली" में जो मार्मिकता पायी जाती है वह "नागानन्द" में नहीं। बाल्यकाल और परिणत वय का भेद स्पष्टः दृष्टिगोचर होता है। आगे जो हो।

यह तीसरी आपत्ति ही श्रीहर्ष के हिन्दुत्व में प्रधान आपत्ति है। क्योंकि और सब आपत्तियां सुनी सुनायी बातों पर निर्भर हैं, पर इसके मूल में आँखों देखी एक घटना संयुक्त है। अतएव इस आपत्ति पर विचार करना आवश्यक है। किसी पुरुष के वचन का प्रमाण स्वीकार करने के पहले यह देख लेना चाहिये कि वह आप्त है या अनाप्त ? लिखने वाला सुनी हुई बातों को लिख रहा है अथवा आँखों देखी हुई बातों को ? वह भ्रान्त है कि अभ्रान्त ? वह किसीके प्रति निन्दा द्वेष तो नहीं रखता ? हुएनत्सङ्ग की प्रामाणिकता स्वीकार करने के प्रथम हमें उसके चरित्र की विशेष आलोचना कर लेनी चाहिये। पर दुःख की बात है—स्थानाभाव से हम उनके चरित्र की पूर्ण आलोचना करने में असमर्थ हैं। तथापि हम संक्षेप से इस विषय में दो चार बातें कहना आवश्यक समझते हैं।

हुएनत्सङ्ग के भ्रमणवृत्तान्त से भारत के इतिहास की अनेक बातें जानी जाती हैं। हुएनत्सङ्ग ने इस देश में जो बातें देखी थीं पूर्वापर वृत्तान्त के साथ उनका मिलान करने पर भारतवर्ष के इतिहास के एक लुप्त अध्याय का उद्धार हो सकता है। व्यापार श्रमसाध्य होने पर भी असाध्य नहीं है। किन्तु इसमें विशेष सावधानता की आवश्यकता है। क्योंकि हुएनत्सङ्ग की सभी बातें विश्वासयोग्य नहीं हैं। उन्हों ने आँखों ही से नहीं, किन्तु अपनी कल्पना और धर्मविश्वास से भी काम लिया है। वस्तुतः कई विषयों में उनका मिथ्या लेख पकड़ा गया है।

जो हो, हुएनत्सङ्ग ने कान्यकुब्जाधीश्वर महाराज श्रीहर्षवर्द्धन को अवश्य ही बौद्धधर्मानुयायी के नाम से प्रसिद्ध किया है, पर उन का यह कार्य भ्रममूलक हो, चाहे अपने मत की मिथ्या प्रशंसा के लिये हो—अवश्य गर्हित है—इसे हम प्रमाणित करेंगे।

हुएनत्सङ्ग में उत्तरदेशीय या महायन शाखा का बौद्ध था । साधारण रीति से कह सकते हैं कि उत्तरापथ में महायन और दक्षिणापथ में हिनायन बौद्ध धर्म की श्रीवृद्धि हुई थी । नागार्जुन ने महायन धर्म की प्रधानता स्थापित की थी । बुद्ध के जीवनकाल ही में "बौद्धसङ्घ" में मत भेद हो गया था, पर उनकी मृत्यु के पश्चात् वैशाली में जो बौद्धसङ्घ हुआ था उसमें बौद्धधर्म प्रकाश्यरीति से दो शाखाओं में बट गया था । प्रियदर्शी अशोक महाराज ने हिनायन शाखा की सहायता अवश्य की थी, किन्तु महायन शाखा की श्रीवृद्धि रोकने में वे समर्थ नहीं हुए । कश्मीरराज कनिष्क महायन शाखा के पृष्ठपोषक थे ।

महायन बौद्ध धर्म तान्त्रिक धर्म के अनुकूल है । बुद्ध ने मोक्षलाभ में ईश्वर तक की सहायता नहीं मानी थी । अन्त में उन्हींकी महायन शाखा के बौद्ध शिष्य आदि बुद्ध, बोधिसत्व, अभिनाभ प्रभृति प्रत्येक बौद्ध और अवलोकितेश्वर प्रभृति बुद्ध देवताओं की पजा करने लगे । इन्हीं लोगों ने कठिन योगाचार की उद्भावना की और शेष में ये ही लोग हिन्दूसमाज में मिल कर बौद्ध धर्म को हिन्दू धर्म का रूपान्तर कह कर भ्रान्त लोगों को ठगने लगे थे । जो ब्राह्मण पण्डित बौद्धधर्म को हिन्दूधर्म की शाखा समझे हुए हैं ज्ञात होता है उन्होंने हीनायन बौद्ध धर्म की आलोचना नहीं की । महायन बौद्धधर्म के, धर्मविश्वास और भोगपद्धति के साथ हिन्दू धर्म की किसी किसी विषय में अभिन्नता देख कर, उनकी ऐसी धारणा हुई है । अविश्वास जिस प्रकार हीनायन बौद्ध का लक्षण है, अतिविश्वास उसी प्रकार महायन बौद्धों का लक्षण है । हुएनत्सङ्ग महायन बौद्ध था । मालूम होता है उसके जन्म के पांचसौ वर्ष पहले महायन बौद्ध महर्षि पतञ्जलि के योगसूत्रों के अनुकरण पर नवीन किन्तु अनतिभिन्न योगसूत्रों की रचना कर चुके थे । हुएनत्सङ्ग ने जब इस समाचार को चीनदेश में सुना, तब योगशिक्षा प्राप्त करने के लिये उसने भारतवर्ष में आना उचित समझा । यही उसकी भारतयात्रा का मुख्य उद्देश्य था ।

कन्नौजपति श्रीहर्षवर्द्धन को बौद्ध कह कर हुएनत्सङ्ग ने अपने बौद्धधर्म के अतिविश्वास वा आग्रह का परिचय दिया है । क्योंकि ताम्रशासन के प्रबल प्रमाणों से—जिनके सामने और सब प्रमाण तुच्छ और दुर्बल हैं—यह भली भाँति सिद्ध होता है कि श्रीहर्ष बौद्ध नहीं थे शैव थे । प्रथम ताम्रशासन—जो दिल्ली के पास सुनपत के एक खेत से निकला है—खण्डित होने पर भी हमारे मत को पुष्ट करने में यथेष्ट है और दूसरा (१८१० शकाब्द में) आज़मगढ़ से २३ मील दूर मधुवन ग्राम में जो एक कृषक को खेत बोने के समय मिला था और जो अब लखनऊ की चित्रशाला में सुरक्षित है, उससे हमारा मत सर्वथा परिपुष्ट होता है । सुतरां उसके और अन्यान्य कारणों के अनुसार हमारा जो अभिप्राय उसे हम यहां प्रकाश करते हैं ।

श्रीहर्ष के पिता प्रभाकरवर्द्धन जाति के क्षत्रिय धर्म के "वर्णाश्रमव्यवस्थापनप्रवृत्त, परमादित्यभक्त" हिन्दू थे । इनके ज्येष्ठ भ्राता राज्यवर्द्धन "परहितैकरत" "परमसौगत" वा बौद्ध थे । महाराज हर्ष शैव थे । इनकी मुद्रा में नन्दी की मूर्त्ति अङ्कित है और शासन में इनको "परम माहेश्वर" वा "शैव" कहागया है । इनके पूर्व पुरुषों ने अपने को "पितृपादानुध्यात" वा "परम पितृभक्त" कह कर गौरवान्वित किया है । किन्तु श्रीहर्ष इस दृष्टान्त के रहने पर भी अपने को "भ्रातृभक्त" के नाम से प्रसिद्ध करते हैं । यह कुछ सामान्य भ्रातृभक्ति की बात नहीं है, असाधारण भ्रातृभक्ति का उदाहरण है । जो भाई अपने को "परमसौगत" बताचुका है, उस पर परम माहेश्वर श्रीहर्ष की भक्ति ज्यों की त्यों बनी हुई है । क्या इससे यह निगमन नहीं निकल सकता कि श्रीहर्ष भाई की प्रसन्नता के लिये ही बुद्ध और बौद्ध लोगों की पूजा करते थे ।

हुएनत्सङ्ग के भ्रमणवृत्तान्त से यह सिद्ध होता है कि महाराज हर्षवर्द्धन, चिरप्रसिद्ध गङ्गा यमुना सङ्गमस्थित प्रयाग क्षेत्र में एक "पञ्च-

परिषद्" और "महामोक्षपरिषद्" का अनुष्ठान करते थे, जिसमें लाखों हिन्दू बौद्ध आदि मनुष्यों का समारोह होता था। इसमें वे सब लोगों के समक्ष न केवल बुद्धदेव ही का पूजन करते थे, प्रत्युत साथ ही सूर्य और महादेव की भी भक्तिभाव से पूजा किया करते थे। बौद्धधर्म के इतिहास में इस प्रकार की घटना अति विरल और अति शिक्षाप्रद हैं। सूर्य श्रीहर्ष के कुलदेव थे और बुद्ध उनके परमोपास्य थे, यह श्रीहर्ष के ताम्रशासन से भी सिद्ध हो चुका है और अब इसी बात को प्रकारान्तर से हुएनत्सङ्ग भी कह रहा है। सुतरां ऐसे राजा को बौद्ध कहना और समझना कदापि न्यायसङ्गत नहीं है, विशेषतः इस बात से भी कि हिन्दू अपने धर्म के अनुसार बुद्धदेव की पूजा कर सकते हैं, किन्तु बौद्धलोग निज धर्मानुसार सूर्य किंवा महादेव आदि हिन्दू देवताओं की पूजा नहीं कर सकते। और एक बात है। हुएनत्सङ्ग ने श्रीहर्ष को तो बौद्ध लिख मारा, किन्तु जो राज्यवर्द्धन बौद्ध था उसका नाम तक नहीं लिया। यह नहीं हो सकता कि हुएनत्सङ्ग को राज्यवर्द्धन का बौद्ध होना विदित न हुआ हो, क्योंकि वह अनेक दिनों तक हर्षवर्द्धन की राजधानी में रहा है और महाराज का प्रिय सहचर था। सुतरां यह बात उसे ज्ञात न हुई हो यह सम्भव नहीं। मालूम होता है राज्यवर्द्धन हीनायन था। इसलिये हुएनत्सङ्ग ने उसका उल्लेख नहीं किया। उसके निकट हीनायन बौद्ध हिन्दू की अपेक्षा भी निकृष्ट समझा गया है और हर्षचरित में बाण भट्ट ने इसका उल्लेख नहीं किया इसमें कुछ विस्मय की बात नहीं है। राजा महाराजाओं के धर्मविश्वास को ले कर परस्पर के मनोमालिन्य के लिये राजकवि प्रस्तुत नहीं होते। सुतरां हमारी विवेचना में श्रीहर्षवर्द्धन एक सर्वप्रिय, महाविद्वान्, महाकवि, भ्रातृभक्त और परम माहेश्वर महाराज थे।

(नाटकीय कथा की भूमिका)

(२) यद्यपि काव्य की लघुत्रयी और "अभिज्ञानशाकुन्तल" तथा "विक्रमोर्वशी" के कर्ता महाकवि कालिदास प्रसादगुण और लोकोत्तर उपमा के लिये निःसन्देह प्रशंसनीय हैं, तो भी ओज और लालित्य के लिये श्रीहर्ष ही अद्वितीय समझे जाते हैं। कविता के जिस पथ का अनुसरण इन्होंने किया है वह भारवि और माघ कवि के ढङ्ग से बिलकुल निराला है। इनकी काव्यमयी सरस्वती का क्या निराला ढङ्ग है और इनकी लोकोत्तर प्रतिभा कहाँ तक पैनी, और कितना समावेश उसमें है, इसे वे ही पहचान सकते हैं जो काव्यवासनापूर्ण सरसहृदय हैं। इनकी रचना नैषधचरित निःसन्देह भारवि प्रभृति कई एक महाकवियों के काव्य के उपरान्त प्रकट की गई है इसलिये सम्भव है कि श्रीहर्ष ने उन कवियों की छाया का सहारा अपने काव्य में लिया हो, किन्तु कालिदास को छोड़, जो कवि सम्प्रदायमात्र के दादागुरु हैं और जिनकी कविता के भाण्डार से कुछ न कुछ चुराये बिना कोई बढ़ ही नहीं सकता, और किसी कवि का अनुहर्ष श्रीहर्ष ने नहीं किया, बल्कि कविता के अंश में जो कुछ इन्हें सूझा वह न इनके पहले के कवियों को सूझा था और न इनके उपरान्त के कवियों से बन पड़ा, अत एव नैषध जैसे संस्कृत के पट्काव्यों में अन्तिम है उसी प्रकार काव्यों की पूर्णाहुति भी इससे होती है। ऐसा जान पड़ता है कि माघ और भारवि ये दोनों कवि परस्पर श्रद्धालु थे। क्योंकि इन दोनों के काव्य की इबारत इस प्रकार मिल जाती है कि उनमें यह देख लेना कि यह किसकी कविता है असम्भव सा है या वही परख सकता है जिसने आद्योपान्त किरात और माघ कई बार पढ़ा और पढ़ाया है, पर नैषध के श्लोकों का ढङ्ग ही निराला है। पढ़ते ही मालूम हो जाता है कि यह कालिदास, भारवि और माघ तीनों से पृथक् है। यद्यपि अन्य कवियों ने चित्रकाव्य को अपने काव्यों में प्रश्रय दिया है तथापि श्रीहर्ष ने जान बूझ कर उस निकृष्ट काव्य को अपने काव्य में स्थान देना उचित नहीं समझा। अर्थगम्भीरता और पदलालित्य पर ही श्रीहर्ष का लक्ष्य था। इन्होंने अपने काव्य में श्लेषालङ्कार का आदर आदि से अन्त तक किया है।

अब यह किस समय में हुए निर्णय करने के पहले यह कहना उचित मालूम होता है कि यह श्रीहर्ष वह नहीं हैं, जिनकी चर्चा "रत्नावली" नाटिका में की गई है और न यह वही श्रीहर्ष हैं जिनके लिये वाण भट्ट ने श्रीहर्षचरित्र बनाया है। ये श्रीहर्ष भारवि और माघ कवि के बहुत दिनों बाद कन्नौज के राजा जयचन्द के समय के लगभग विक्रमाब्द की ६ वीं शताब्दी में हुए हैं। काव्यप्रकाशकार मम्मट भट्ट जिनको लोग पतञ्जलि महाभाष्य के तिलककार कैयट के भाई मानते हैं। उन्होंने अपने काव्यप्रकाश में सब कवियों के उदाहरण दिये हैं और उस समय तक भारवि आदि जो जो कवि हो चुके थे उनके गुणदोषनिरूपण द्वारा उन सबकी साधारण समालोचना की है, पर श्रीहर्ष के नैषध का एक श्लोक भी कहीं उदाहरण में नहीं दिया। इससे निश्चित होता है कि मम्मट भट्ट के उपरान्त श्रीहर्ष ने नैषधचरित्र निर्माण किया। किंवदन्ती है कि मम्मट जब "काव्यप्रकाश" बना चुके, तब श्रीहर्ष की भेंट उनसे हुई और उन्होंने "नैषधचरित्र" उन्हें दिखलाया और कहा कि हमारे काव्य की भी आप समालोचना कर दीजिये। तब मम्मट भट्ट ने नैषध के इस श्लोक की भूल दिखलायी।

"तव वर्त्मनि वर्ततां शिवं पुनरस्तु त्वरितं समागमः।
अपि साधय साधयेप्सितं स्मरणीयाः समये वयं वयः॥"

इसका अर्थ यह है, राजा नल हंस को बिदा करने के समय कहते हैं—जाओ, मार्ग में तुम्हारा शुभ हो, जल्दी फिर लौट कर आना, हमारे मनोरथ को साधो और समय पर स्मरण रखना। यहाँ "वर्त्मनि, वर्ततां" यहाँ "वर्त्मनि" सप्तमी है और "वर्ततां" क्रिया है। किन्तु वर्त्मनि का नि अलग कर वर्ततां इस क्रिया में लगादो तो "निवर्ततां" होता है, तात्पर्य यह कि तुम्हारे मार्ग में शुभ की निवृत्ति हो अर्थात् मार्ग में तुम्हारा अशुभ हो। श्रीहर्ष लज्जित हो चुप हो गये और समालोचना के लिये फिर न कहा। यह कन्नौज के राजा के सभापति पण्डित थे। नैषध के अन्त में इन्हों ने लिखा है, "ताम्बूलद्वयमासनञ्च लभते यः कान्यकुब्जेश्वरात्" अर्थात् कान्यकुब्जेश्वर से जो दो बीड़ा पान और आसन पाने का अधिकारी था। ये श्रीहीर पण्डित के पुत्र थे और मामल्लदेवी इनकी माता का नाम था। कहते हैं जब इनके पिता श्रीहीर ने वाद में परास्त होकर प्राण भी त्याग दिये, तब इनकी माता मामल्लदेवी ने इनसे शवसाधन कराया और सरस्वती के चिन्तामणि मन्त्र का मुरदे की छाती पर श्रीहर्ष को बैठा जप कराया। तब ये श्रीहर्ष केवल ५ वर्ष के थे। चिन्तामणि मन्त्र के प्रभाव से ये ऐसे उद्भट पण्डित हुए कि लड़कपन ही में इन्होंने अपने पिता को परास्त करने वाले पण्डित को वाद में जीत लिया। "खण्डन खण्ड खाद्य" आदि कई ग्रन्थ इनके बनाये हुए हैं। नैषध के प्रति सर्ग के अन्त में इन्होंने ऐसे श्लोक से सर्ग की समाप्ति की है जिससे इनके माता पिता का नाम तथा इनका सूक्ष्म वृत्तान्त और इनके बनाये ग्रन्थों के नाम प्रकट होते हैं। "अर्णववर्णन, गौडोर्वीशकुलप्रशस्ति, साहसाङ्कचरित" आदि कितने ही ग्रन्थ इन्होंने बनाये हैं।

श्रुतकीर्ति=शत्रुघ्न की स्त्री। यह साङ्कल्य के राजा कुशध्वज जनक की कन्या थी। इसके दो पुत्र थे सुबाहु और श्रुतघाती।

श्रेष्ठसेन=काश्मीर के राजा का नाम। इनके पिता का नाम मेघवाहन था। ये बड़े न्यायी तथा प्रजाप्रिय राजा थे। इन्होंने ३० वर्ष तक राज्य किया था। इनका प्रवरसेन, और तुञ्जीन नाम भी था। (राजतरङ्गिणी)

श्वेतकि=धर्मपरायण और यागशील राजा। इन्होंने सौ वर्ष में समाप्त होने वाले एक यज्ञ का अनुष्ठान किया था। इस यज्ञ में महर्षि दुर्वासा पुरोहित थे। इसी यज्ञ में अधिक हवि खा जाने के कारण अग्निदेव को रोग हो गया था।

श्वेतकेतु=महर्षि उद्दालक के पुत्र का नाम। (देखो उद्दालक)

ष

षण्ड=दैत्यगुरु शुक्राचार्य के पुत्र का नाम।

स

संज्ञा=सूर्य की पत्नी और विश्वकर्मा की कन्या। (देखो छाया)

संयुक्ता=पृथ्वीराज चौहान की महारानी और कन्नौज के राजा जयचन्द की कन्या। इसका जन्म सन् ११७० ई० में हुआ था। ११९० ई० में पृथ्वीराज ने इसे ब्याहा। ११९३ ई० में महम्मद ग़ोरी के साथ युद्ध में पृथ्वीराज पराजित हुए और संयुक्ता धधकती चिता में प्रविष्ट हुई।

सगर=सूर्यवंशी एक राजा का नाम। सगर अयोध्या के राजा थे। वे धर्मात्मा तथा प्रजा-रञ्जक राजा थे। उन्होंने विदर्भराजकन्या केशिनी को ब्याहा था। उनकी दूसरी स्त्री का नाम सुमति था। इन दोनों स्त्रियों के साथ हिमालय पर्वत पर सगर ने कठोर तपस्या की थी। सगर की तपस्या से सन्तुष्ट हो कर महर्षि भृगु ने उन्हें वर दिया-तुम्हारी स्त्री के गर्भ से वंश चलाने वाला पुत्र होगा, और दूसरी स्त्री के गर्भ से बड़े पराक्रमी साठ हज़ार पुत्र होंगे। पहिली स्त्री केशिनी की प्रार्थना से उसके गर्भ से असमञ्जस नामक एक पुत्र हुआ। यह पुत्र बड़ा उद्धत हुआ, और पुर-वासियों को पीड़ा देने लगा, अतः सगर ने उसे अपने राज्य से निकाल दिया। असमञ्जस के पुत्र का नाम अंशुमान् था। सगर की दूसरी स्त्री सुमति ने एक तुम्बे के आकार का फल प्रसव किया। वह घी के घड़े में रख दिया गया और उससे साठ हज़ार पुत्र उत्पन्न हुए।

एक बार राजा सगर एक अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान करने लगे। इन्द्र ने राक्षसमूर्त्ति धारण कर के उस यज्ञाश्व को चुरा लिया। सगर के साठ हज़ार पुत्रों ने अश्व को ढूँढ़ते ढूँढ़ते समस्त पृथिवी की परिक्रमा की, तदनन्तर वे पाताल में उपस्थित हुए। वहाँ उन लोगों ने एक तपस्वी मुनि के पास यज्ञीय अश्व को बँधा हुआ देखा। मुनि थे महर्षि कपिल, मुनि को ही घोड़े का चोर समझ कर सगर के पुत्रों ने उनका अपमान किया। मुनि क्रुद्ध हुए और उन्होंने शाप दिया तुम लोग भस्म हो जावो, और वे भस्म हो गये। राजा सगर ने पुत्रों के आने में विलम्ब देख कर अपने पौत्र अंशुमान् को उन लोगों को ढूँढ़ने के लिये भेजा। घूमते घूमते अंशुमान् पाताल पहुँचा और स्तुति के द्वारा उसने मुनि को प्रसन्न किया। मुनि ने घोड़ा ले जाने के लिये अंशुमान् को आज्ञा देदी। अंशुमान् घोड़ा ले कर अयोध्या में लौट आये। अश्वमेध यज्ञ समाप्त कर के और तीस हज़ार वर्ष राज्य कर के राजा सगर स्वर्ग गये। इसी वंश में भगीरथ ने जन्म लिया था और गङ्गा को ले आ कर उन्होंने अपने पितृ पुरुषों का उद्धार किया था।

सङ्कर वर्मा=काश्मीर के एक राजा। ये गोपाल वर्मा के भाई थे। अभिचार के द्वारा गोपाल वर्मा के परलोकवास करने पर मन्त्रियों ने सङ्कर वर्मा को राजा बनाया। परन्तु ये राज्य न कर सके राज्यारोहण के दसवें दिन इनकी मृत्यु हो गयी। (राजतरङ्गिणी)

संग्रामराज=काश्मीर के एक राजा का नाम। काश्मीर की महारानी दिद्दा की मृत्यु के अनन्तर ये वहाँ के राजा हुए। यद्यपि ये प्रजा-पीडक स्वार्थी दिद्दा के पक्षीय लोगों से असन्तुष्ट थे, तथापि अगत्या इन्हें उसी पक्ष के तुङ्ग नामक एक व्यक्ति को मन्त्री नियत करना पड़ा। राजा संग्रामराज प्रजापालन का भार मन्त्री को सौंप आप सुखभोग में मत्त हो कर आलस्य से दिन काटने लगे। ये बड़े भीरु थे। अतएव साहाय्यप्राप्ति की अभिलाषा से दिद्दामठ के अध्यक्ष की कन्या को इन्होंने ब्याहा। अनन्तर ब्राह्मण मन्त्रियों ने तुङ्ग को मन्त्रिपद से अलग करने के लिये परिहास-पुरवासी ब्राह्मणों को विद्रोह करने के लिये उत्तेजित किया। ब्राह्मणों का एक दल तैयार हुआ। उन लोगों ने राजा को भी पदच्युत करने का विचार किया था, परन्तु तुङ्ग को नाश किये बिना राजा का कुछ भी नहीं हो सकता यह विचार कर उन लोगों ने प्रथम तुङ्ग ही को विनाश करने का विचार स्थिर किया। एक बार ब्राह्मणों ने राजा के समीप किसी बात के लिये प्रार्थना की, राजा और तुङ्ग आदि ने उनकी प्रार्थना स्वीकार की।

तदनन्तर उन दुष्टों ने एक और प्रार्थना की। उन लोगों ने कहा तुङ्ग ने एक ब्राह्मण को मार डाला है, अतः हम लोग तुङ्ग के घर में उस ब्राह्मण को जलावेंगे। अनन्तर कुएँ से एक मुर्दा निकाल कर वे तुङ्ग के घर की ओर चले। ब्राह्मणों ने केश हवन कर के कृत्या की सृष्टि करनी चाही, परन्तु उनकी अपवित्रता के कारण कुछ भी नहीं हो सका। इसी समय राजपक्षियों ने उन पर आक्रमण किया और वे भाग कर अपने परामर्शदाता के घर में गये। अन्त में युद्ध हुआ। उसमें कितने मरे और सब तितर बितर हो गये।

राजा संग्रामराज ने २४ वर्ष, नौ महीना, आठ दिन काश्मीर का राज्य किया था।

(राजतरङ्गिणी)

संग्रामसिंह=(१) मेवाड़ चित्तौर के महाराणा। ये महाराणा रायमल्ल के पुत्र थे। सन् १५०६ में राणा संग्रामसिंह चित्तौर के सिंहासन पर बैठे। महाराणा संग्रामसिंह ने चित्तौर का गौरव उद्दीपित किया था। उस समय ये सम्राट् समझे जाते थे। मारवाड़ अम्बर आदि के राजाओं ने भेंट पूजा दे कर उनका मान और पद बढ़ाया था। महाराणा संग्रामसिंह को विपत्ति के समय जिन लोगों ने सहायता दी थी संग्रामसिंह इस समय उनको भूल नहीं गये थे। श्रीनगर के करमचन्द को उन्होंने अजमेर की एक राज्यवृत्ति दान में दी।

घरेलू झगड़े के समय राज्य में जो अशान्ति मची थी, वह सब संग्रामसिंह के सिंहासनारूढ़ होते ही मिट गयी। संग्रामसिंह युद्ध-निपुण महाराणा थे। उन्होंने श्रेष्ठ रणनीति के अनुसार अपनी सेना को शिक्षित किया था। इसी सेना को साथ ले कर तैमूर के खानदान वालों के साथ संग्राम करने के पहले दिल्ली और मालवा के बादशाहों से इन्होंने अट्ठारह बार लड़ाई की थी। उन सब युद्धों में ये ही जयी हुए थे। दिल्ली का इब्राहीम लोदी ही दो बार महाराणा से भिड़ गया था, परन्तु दोनों बार उसे मुँहकी खानी पड़ी थी। विशेषतः घरौली के पिछले संग्राम में यवनदल पर ऐसी मार पड़ी कि उस रण से दो एक ही योधा भाग सका था। बादशाह के किसी रिश्तेदार को भी महाराणा इस युद्ध में से पकड़ ले गये थे। इन्होंने अनेक युद्ध किये, सभी में इन्होंने जय पाया था। अन्त में पृथ्वीराज की ओर से महम्मद के साथ दूसरे युद्ध में लड़ते हुए ये मारे गये।

(टाड्स राजस्थान)

(२) मेवाड़ के एक महाराणा का नाम। महाराणा अमरसिंह दूसरे के मरने पर ये मेवाड़ के सिंहासन पर बैठे। इन्होंने अट्ठारह वर्ष तक राज्य किया था। इनके समय में मेवाड़ का सम्मान अचल रहा। और शत्रुओं ने इनके जिस देश पर अधिकार कर लिया था पीछे से इन्होंने उस पर भी अपना अधिकार जमा लिया था, विहारीदास पांचोली को दीवान बना कर महाराणा ने बड़ी दूरदर्शिता का काम किया था। राजनीतिज्ञ पांचोली विहारीदास ने जिस बुद्धिमत्ता, साहस और दूरदर्शिता का परिचय दिया है यह उस समय के राजाओं के पत्रों से भली भाँति प्रमाणित होता है महाराणा संग्रामसिंह के चरित्र के विषय में बहुत सी बातें प्रसिद्ध हैं। उनसे निश्चय होता है कि प्रजापालन, गृहपालन आदि सभी विषयों में वे निपुण थे। राणाजी विज्ञ, न्यायी, दृढ़प्रतिज्ञ राजा थे। वे जिस काम को आरम्भ करते उसको समाप्त किये विना नहीं छोड़ते थे। कहते हैं एक बार कोटरिया के चौहान सरदार ने राणाजी से यह प्रार्थना की कि आप अपने वस्त्रों को और भी मूल्यवान् बनावें। महाराणा ने उनकी प्रार्थना स्वीकृत की इससे वे बड़े प्रसन्न हुए। तदनन्तर राणाजी ने अपने दीवान को बुला कर आज्ञा दी कि कोटरिया के सरदार की जागीर से दो गाँव ज़ब्त कर लो। जब कोटरिया के सरदार ने यह संवाद सुना, तब उन्होंने महाराणा से प्रार्थना की कि, दास ने कौन ऐसा अपराध किया है जिससे यह दण्ड दिया गया है। महाराणा ने हँस कर कहा—कुछ नहीं, मुझे अपने कपड़ों को मूल्यवान् बनाने के लिये रुपयों की ज़रूरत है। क्योंकि और सब आम-

दनी का ख़र्च तो निश्चित हो चुका है। इसके लिये ख़र्च निकालना चाहिये, और इसके लिये आपने ही प्रस्ताव किया है अतः आप ही से इस ख़र्चे का लिया जाना निश्चित हुआ है। यह सुन कर सरदार साहब चुप हो गये, और अपना प्रस्ताव फेर लिया।

स्मरण न रहने के कारण अथवा भ्रान्ति से एक बार राणाजी ने स्वयं ही अपनी प्रतिष्ठित विधि का उल्लङ्घन किया भोजनभवन, तोशाख़ाना, रनिवास आदि के ख़र्च के लिये अलग अलग भूमि नियत थी। इस भूमि का नाम थुआ था। प्रत्येक थुआ एक एक कर्मचारी के अधीन था। राणाजी ने एक थुआ ज़ब्त कर लिया था। परन्तु इस बात को वे भूल गये। एक दिन राणा अपने सरदारों के साथ भोजन पर बैठे थे। क्रमानुसार परसने वाला सब पदार्थों को परसने लगा। नियमानुसार दही भी परसा गया, परन्तु बूरा नहीं आया। राणाजी के पूँछने पर उसने उत्तर दिया। अन्नदाताजी, मन्त्री साहब कहते थे कि बूरा के लिये जो गाँव नियत था उसे महाराज ने ज़ब्त कर लिया है। महाराणा ने "ठीक" कह कर भोजन कर लिया।

महाराणा ने किसी कारणवश दरियावद सरदार की जागीर ज़ब्त कर ली थी। राणाजी का यह नियम था कि दोषी के अतिरिक्त वे और किसीको दण्ड नहीं देते थे। साथ ही साथ दण्ड देने पर वे किसीको क्षमा भी नहीं करते थे। इसी कारण दरियावद सरदार के लिये कोई भी महाराणा से क्षमा प्रार्थना नहीं कर सका। दरियावद सरदार ने किसी प्रकार दो वर्ष तो बिताये, तीसरे वर्ष के आरम्भ ही में उन्हों ने बन्दरों के द्वारा राजमाता के निकट आवेदनपत्र भेजा। उसने उस आवेदनपत्र में दो लाख के तमस्सुक भी भेजे थे और दासियों को भी बहुत सा धन दिया था। राणाजी प्रतिदिन भोजन करने के पहले माता के दर्शन के लिये उनके महल में जाया करते थे। एक दिन राणाजी नियमानुसार माता के भवन में गये। उस समय माता ने उस सरदार का आवेदनपत्र दे कर विशेष अनुरोध किया कि उसकी सम्पत्ति राज्य से लौटा दी जाय। राणा ने उसी समय मन्त्री को आज्ञा दी कि उस सरदार की जागीर लौटा दी जाय। परन्तु तब से महाराणा ने माता का दर्शन करना बन्द कर दिया। इसके लिये माता ने बहुत कहलाया भी परन्तु राणाजी कह दिया करते थे कि मुझे फ़ुरसत नहीं। अन्त में इससे विशेष खिन्न हो कर राजमाता ने तीर्थयात्रा करनी निश्चित की। उस समय भी राणा माता के दर्शनों के लिये नहीं गये। राजमाता आँबेर होती हुई मथुरा गयीं। आँबेर के राजा इनके जामाता थे। राजमाता के लौटने के समय आँबेर नरेश भी साथ आये, राणाजी ने उनके आने का कारण समझ लिया, और वे माता की चरणवन्दना करने के लिये गये, तदनन्तर उन्होंने आँबेर नरेश का स्वागत किया। (टाड्स राजस्थान)

संग्रामापीड=काश्मीर के एक राजा का नाम। ललितादित्य की पद्मा नाम की स्त्री के गर्भ से यह उत्पन्न हुआ था इसने अपने बड़े भाई पृथिव्यापीड को राज्यच्युत कर के काश्मीर का सिंहासन पाया था, परन्तु अभाग्यवश वह राज्य भोग न कर सका। राज्यारोहण के सातवें दिन उसकी मृत्यु हुई।

(राजतरङ्गिणी)

सज्जनसिंह=उदयपुर के एक महाराणा का नाम। महाराणा शम्भुसिंह की मृत्यु के पीछे उनके भतीजे सज्जनसिंह १६ वर्ष की अवस्था में मेवाड़ के महाराणा हुए। उस समय इनके वयस्क न होने के कारण एक "शासकसमिति" बनी जिसने बड़ी योग्यता से राज्य प्रबन्ध किया। इन्होंने अंग्रेज़ी उर्दू आदि की शिक्षा प्राप्त की थी। लार्ड लिटन वाले दिल्ली दरबार में ये गये थे और इन्हें, जी. सी. एस. आई. की उपाधि मिली। इन्हींके समय में उदयपुर में स्कूल अस्पताल आदि बनाये गये। उदयपुर के पास ही इन्होंने सज्जनगढ़ नामक एक क़िला बनवाया था। इन्होंने अपने नाम से एक हिन्दी साप्ताहिक पत्र भी निकलवाया था।

(टाड्स राजस्थान)

सञ्जय=ये गवल्गन नामक मुनि के पुत्र थे और अन्धराज धृतराष्ट्र के परामर्शदाता थे । व्यासदेव की कृपा से दिव्यदृष्टि पा कर इन्होंने धृतराष्ट्र के सामने कुरुक्षेत्र युद्ध का वर्णन किया था । यह भारत के युद्ध के समाप्त होने पर युधिष्ठिर के राज्यकाल में हस्तिनापुर में रहते थे, तदनन्तर धृतराष्ट्र गान्धारी और कुन्ती के साथ वन को चले गये थे । वन में जाने के थोड़े दिनों के पीछे उस वन में आग लगी । धृतराष्ट्र गान्धारी और कुन्ती इन तीनों ने वहीं प्राण त्याग किये । परन्तु भाग कर सञ्जय ने अपने प्राणों की रक्षा की । अनन्तर हिमालय प्रदेश की ओर जा कर इन्होंने अपना बाक़ी जीवन बिताया ।

सत्यजित्=श्रीकृष्ण के श्वशुर और सत्यभामा के पिता का नाम । (देखो प्रसेन)

सत्यवती=महर्षि कृष्णद्वैपायन व्यास की माता और वसुराज की कन्या । (देखो शान्तनु)

सत्यवान्=शाल्व देश के राजा द्युमत्सेन का पुत्र । इनकी माता का नाम शैब्या था । अभाग्य वश द्युमत्सेन अन्धे हो गये और कूटचक्री मन्त्रियों ने षड्यन्त्र कर के उनको राज्यच्युत कर दिया । अन्ध राजा द्युमत्सेन अपनी स्त्री और पुत्र को ले कर वन में चले गये । एक बार मद्र देश के अधिपति अपनी कन्या सावित्री को ले कर उस वन में आये । रूपयौवनसम्पन्ना सावित्री ने पितृमातृभक्त सत्यवान् को पति बनाना निश्चित किया । सत्यवान् अल्पायु थे, शीघ्र ही उनकी आयु पूरी हुई । सावित्री ने अपने पातिव्रत्य के प्रभाव से यमराज को मोहित कर के कितने ही वर प्राप्त किये । उन्हीं वरों के प्रभाव से सत्यवान् पुनः जीवित हो उठे । श्वशुर द्युमत्सेन ने राज्य और आँखें पायीं । अनन्तर द्युमत्सेन सत्यवान् को राज्य दे कर स्वयं स्त्री सहित वन में चले गये ।

सरदार कवि=(१) ये वन्दीजन और भाषा के कवि थे । सं० १७३५ में इनका जन्म हुआ था । राणा राजसिंह की सभा में ये रहा करते थे । इन्होंने राणाजी का जीवनचरित्र बनाया है, जिसका नाम "राजरत्नगढ़" है । (शिवसिंहसरोज)

(२) ये वन्दीजन बनारस के रहने वाले थे । ये महाराज ईश्वरीनारायणसिंह काशीनरेश के दरबार में रहते थे । ये शिवसिंह जी के समय में जीवित थे । ये बड़े उत्तम कवि थे । इन्होंने ये ग्रन्थ बनाये हैं—(१) साहित्य-सरसी, (२) हनुमत्भूषण, (३) तुलसीभूषण, (४) मानसभूषण, (५) कविप्रिया की टीका, (६) रसिकप्रिया की टीका, (७) सतसई की टीका, (८) तीनसौ अस्सी ३८० सूरदास के कूटों की टीका । नारायण राय आदि बड़े बड़े कवि इनके शिष्य हैं । (शिवसिंहसरोज)

सनत्कुमार=ब्रह्मज्ञ महातपा ऋषि । ये ब्रह्मा के मानस पुत्र हैं ।

सनातन=ब्रह्मा के एक मानस पुत्र का नाम ।

समरसिंह=उदयपुर के महाराणा । इनका जन्म संवत् १२०६ में हुआ था । जिस समय महाराणा समरसिंह अपनी असीम वीरता से मेवाड़ की प्रजा का शासन कर रहे थे, उन्हीं दिनों दिल्लीश्वर पृथ्वीराज को अधिकारच्युत करने के लिये देशद्रोही जयचन्द उद्योग कर रहा था । जयचन्द ने पृथ्वीराज को नीचा दिखाने के लिये शाहबुद्दीन ग़ोरी से सहायता चाही, पृथ्वीराज उसकी इस सर्वनाशकारी कल्पना को सुनते ही अधीर हो गये । पृथ्वीराज ने चण्डपुण्डीर नामक अपने सामन्त को दूत बना कर समरसिंह के पास भेजा । समरसिंह ने चण्डपुण्डीर का बड़ा आदर किया ।

समरसिंह अपने मित्र पृथ्वीराज के यहाँ दल बल के सहित आ गये । दोनों में परामर्श हुआ और निश्चय हुआ कि पट्टनराज को दण्ड देना, और मुसल्मानों का सामना करना । पृथ्वीराज पट्टनराज को दण्ड देने के लिये पट्टन गये, वहाँ से विजय आनन्द से आनन्दित हो लौट आये । पुनः दोनों वीरों ने मुसल्मान सेना का सामना किया । राजपूत वीरों ने तिनके के समान मुसल्मानों को मार गिराया । शाहबुद्दीन ग़ोरी ने भाग कर अपने प्राण बचाये । परन्तु उनका एक सेनापति क़ैद कर लिया गया ।

इस घटना के कुछ दिनों के बाद पुनः शाहबुद्दीन ग़ोरी ने चढ़ाई की । पृथ्वीराज ने अपने सहायक

समरसिंह को निमन्त्रण भेजा मित्र की विपत्ति सुन कर महाराणा संग्रामसिंह कब ठहरने वाले थे, वे शीघ्र ही वहाँ से दिल्ली के लिये प्रस्थित हुए। इसी युद्ध में ये मारे गये।
(टाड्स राजस्थान)

सम्पाति=अरुण के पुत्र और जटायु के बड़े भाई का नाम। ये दोनों भाई सूर्य को जीतने की इच्छा से उन पर दौड़े थे। सूर्य के तेज से जटायु के पक्ष जलने लगे उस समय सम्पाति ने जटायु को अपने पक्षों से छिपा लिया। छोटे भाई की रक्षा करने के कारण सम्पाति स्वयं जल कर विन्ध्यपर्वत पर गिर गया। मूर्च्छा के नष्ट होने पर वे निशाकर मुनि के उपदेश से उसी पर्वत पर रहने लगे। सीता को ढूँढ़ने के समय वानरों से इनकी भेंट हुई थी।
(रामायण)

संवरण=चन्द्रवंशी प्रसिद्ध राजा। इन्होंने सूर्य की कन्या तपती को व्याहा था। तपती के गर्भ से इनके एक पुत्र हुआ था जिसका नाम पुरु था। (महाभारत)

संवर्त=महर्षि अङ्गिरा के पुत्र और देवगुरु बृहस्पति के छोटे भाई। ये महाराज मरुत के यज्ञ में पुरोहित बने थे।

सरदारसिंह=(१) मेवाड़ के एक महाराणा का नाम। ये भीमसिंह के पुत्र जवानसिंह के दत्तक पुत्र थे। ये बड़े कड़े स्वभाव के थे। अतएव सामन्तों से इनका मनमुटाव सदा ही रहा करता था। सामन्तों को शान्त करने के लिये इन्होंने गवर्नमेंट से प्रार्थना की, तदनुसार गवर्नमेंट ने सन्धि भी करा दी। परन्तु वह सन्धि कब तक स्थिर रह सकती थी। अन्त में महाराणा ने गवर्नमेंट के निकट यह प्रस्ताव उपस्थित किया कि गोरी पल्टन यहाँ कुछ दिनों तक रहे, परन्तु गवर्नमेंट ने इस प्रस्ताव को अस्वीकृत कर दिया। इनके राज्यकाल में मेवाड़ राज्य में कोई विशेष परिवर्त्तन नहीं हुआ इनका राज्यकाल इधर उधर से सहायता माँगने ही में गया। सन् १८४२ ई० में इनका मायामय शरीर से संबन्ध टूट गया।
(टाड्स राजस्थान)

(२) बीकानेर के महाराज। इनके पिता का नाम महाराज रत्नसिंहजी था। महाराज रत्नसिंहजी का परलोकवास होने पर, सन् १८५२ ई० में सरदारसिंह बीकानेर की राज्य-गद्दी पर बैठे। उस समय भारत के राजपूत गृहविवाद के कारण अपनी वीरता तथा अपना साहस आदि सभी खो चुके थे और बृटिशसिंह उस समय अपनी विशाल मूर्ति प्रकट कर रहा था। यह सब देख कर सरदारसिंह ने यही निश्चित किया कि जिस प्रकार हो बृटिश-सिंह को प्रसन्न रखने में कल्याण है। महाराज सरदारसिंह के राज्य के पाँचवें वर्ष १८५७ ई० में सिपाहीविद्रोह की अग्नि भड़क उठी। सरदारसिंह ने बड़े प्रयत्न से उस समय भीत अंग्रेज़ों को शरण दी, युद्ध में धन तथा सेना की सहायता दी। सिपाहीविद्रोह की अग्नि के बुझ जाने पर सरकार ने इन्हें ४१ गाँव उपहार में दिये जिनकी आय १५,२११ रुपये प्रति वर्ष थी। इन्होंने सामन्तों के विद्रोह को गवर्नमेंट की सहायता से दूर किया।
(टाड्स राजस्थान)

सरमा=रामायणप्रसिद्ध विभीषण की पत्नी। पति-व्रता और धार्मिका होने के कारण लोग इसे श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं। राक्षसियों से परिवृत अशोकवनस्थित सीता की हितैषिणी सरमा ही थी। यह गन्धर्वराज शैलूष की कन्या थी। रावण की मृत्यु के अनन्तर रामचन्द्र ने विभीषण को लङ्का का राजा बनाया। तब से महारानी हो कर सरमा ने अपना जीवन अति-वाहित किया था। (रामायण)

सर्वकर्मा=अयोध्याधिपति राजा सौदास के क्षेत्रज पुत्र का नाम।

सलीमसिंह=जैसलमेर के एक प्रधान मन्त्री का नाम। इसके पिता का नाम स्वरूपसिंह था। स्वरूपसिंह अपनी क्रूरता से जब मारा गया, तब उसका पुत्र सलीमसिंह ११ वर्ष का था। पुनः वयस्क होने पर यह प्रधान मन्त्री के पद पर नियुक्त हुआ। प्रधान मन्त्री का पद मिलने पर यह पितृहत्या का बदला लेने के लिये उद्यत हुआ। एक बार यह जोधपुर भेजा गया

था, उस समय निर्वासित सामन्तों ने इसे घेर कर मारना निश्चित किया । परन्तु इसके गिड़गिड़ा कर प्राणभिक्षा माँगने पर सामन्तों ने इसे छोड़ दिया । अब इसने संहारमूर्ति धारण की । पहले तो बड़े बड़े सामन्तों को इसने विष द्वारा मरवा डाला । फिर राजवंश पर भी इसने हाथ साफ़ किया था । रावलमूलराज और गजसिंह दोनों के समय में यह था । अन्त में यह मारा गया ।

(टाड्स राजस्थान)

सबलसिंह चौहान=ये चौहानवंशी क्षत्रिय हैं । महाभारत के २४ हज़ार श्लोकों का अनुवाद दोहे चौपाइयों में बहुत ही संक्षेप में किया है। कोई कोई कहते हैं कि ये कवि चन्दगढ़ के राजा थे । कोई सबलगढ़ का राजा इन्हें बतलाता है । इनके वंशवाले ज़िला हरदोई में रहते हैं। परन्तु शिवसिंह कहते हैं कि ये कवि ज़िला इटावे के किसी गाँव के ज़मीन्दार थे ।

(शिवसिंहसरोज)

सहदेव=(१) पाण्डु के क्षेत्रज पुत्र । माद्री के गर्भ और अश्विनीकुमारों के औरस से इनका जन्म हुआ था । द्रौपदी के गर्भ से इन्हें श्रुतसेन नामक एक पुत्र हुआ था, युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में दक्षिण के राजाओं से कर लेने के लिये ये भेजे गये थे । विराट्राज के भवन में ये अज्ञात वास के समय तन्त्रीपाल नाम धारण कर के गोपालक का काम करते थे । महाप्रस्थान के समय सुमेरु शिखर पर गिर कर इन्होंने प्राण त्याग किये थे ।

(२) जरासन्ध का पुत्र । महाभारत के युद्ध में इसने कौरव पक्ष की ओर से युद्ध किया था । और अभिमन्यु के हाथ से मारा गया ।

(महाभारत)

सात्यकि=यदुवंशी विख्यात वीर । इनका दूसरा नाम युयुधान भी था । इनके पिता का नाम सत्यक था । इनके पिता का नाम शिनि था और पुत्रका नाम अङ्गद था । कुरुक्षेत्र के युद्ध में इन्होंने पाण्डवों का पक्ष ग्रहण किया था । इन्होंने कौरवपक्षीय भूरिश्रवा को मारा था । श्रीकृष्ण और अर्जुन से इन्होंने अस्त्रविद्या सीखी थी । यदुकुल के नाश के समय इनका भी नाश हुआ ।

(महाभारत)

सान्दीपन=ये एक ब्राह्मण विद्वान् थे । श्रीकृष्ण और बलराम ने इन्हींसे कला और शास्त्र की शिक्षा प्राप्त की थी । श्रीकृष्ण ने इन्हें गुरुदक्षिणा दी थी ।

साम्ब=श्रीकृष्ण के एक पुत्र का नाम । ये जाम्बवती के गर्भ से उत्पन्न हुए थे । दुर्योधन की कन्या को इन्होंने बलपूर्वक हरण किया था और इसी उपलक्ष्य में कर्ण आदि महारथियों ने साम्ब को पकड़ा था । तब बलदेव गये और उन्होंने कहला भेजा कि राजा उग्रसेन की आज्ञा है कि साम्ब को लौटा दो । इससे कुरुकुल के वीर महा अप्रसन्न हुए । अन्त में बलदेव ने बलपूर्वक साम्ब को छुड़ा लिया ।

(विष्णुपुराण)

सावित्री=प्रसिद्ध सती और सत्यवान् की स्त्री । यह मद्रदेशाधिपति राजा अश्वपति की कन्या थी विवाह के योग्य अवस्था होने पर पिता ने इसे योग्य वर ढूँढ़ने के लिये आज्ञा दी । यह पिता और वृद्ध मन्त्रियों के साथ बहुत स्थानों में घूमने पर भी कोई योग्य पति नहीं पा सकी । अनन्तर जिस वन में सत्यवान् रहते थे उस वन में आ कर यह उपस्थित हुई और उनको ही पति वरण किया । नारद से सत्यवान् के अल्पायु होने की बात सुन कर राजा अश्वपति ने कन्या को दूसरा पति ढूँढ़ने के लिये आज्ञा दी । परन्तु सावित्री ने कहा—एक को मन से मैंने पति बना लिया है अब दूसरा पति ढूँढ़ने पर द्विचारिणी होना पड़ेगा । द्विचारिणी होने की अपेक्षा अकाल में विधवा होना उत्तम है—यह समझ कर सावित्री ने पिता की आज्ञा को विनय के साथ अस्वीकृत किया । सावित्री हिन्दू सती स्त्रियों में प्रधान और शिरोमणि समझी जाती है ।

(महाभारत)

सिंहिका=(१) प्रजापति ऋषि कश्यप की स्त्री और दक्ष की कन्या । इसके गर्भ से गन्धर्वगण उत्पन्न हुए थे ।

(२) राहु की माता । यह राक्षसी लङ्का के समीप समुद्र में रहा करती थी । सीता को

ढूँढ़ने जाने के समय हनुमान् ने इसका वध किया था ।

सिद्ध=काश्मीर के एक राजा का नाम । ये काश्मीरराज राजा नर के पुत्र थे । राजा नर की मृत्यु के पश्चात् काश्मीर के सिंहासन पर सिद्ध का अभिषेक हुआ । राजा नर के अत्याचार से श्मशानवत बनी हुई काश्मीर की भूमि पुनः सुख समृद्धि से पूर्ण हुई । शुद्धचित्त राजा सिद्ध संसार की अनित्यता जान कर पुण्यकार्य करने में उद्यत रहा करते थे । यौवनावस्था में भी उनका चित्त विषयवासना से कलुषित नहीं हो सका था । उन्हें नाममात्र का भी अहङ्कार नहीं था । उन्हें भूषण बिलकुल पसन्द नहीं थे । केवल शिवपूजन करना ही वे भूषण समझते थे। इन्होंने राजलक्ष्मी को धर्मके साथ मिला दिया था । राजा सिद्ध ने ६० वर्ष राज्य किया था । तदनन्तर इनका स्वर्गवास हुआ ।

(राजतरङ्गिणी)

सिन्धु=अन्ध मुनि का पुत्र । महाराज दशरथ ने इसको हाथी के धोखे में शब्दवेधी बाण से मारा था । (देखो अन्ध मुनि)

सियाजी=राठौर वीर । जिस दिन यवनवीर शाहबुद्दीन ग़ोरी के प्रचण्ड पराक्रमाग्नि में कन्नौज राज्य भस्म हुआ, जिस दिन देशद्रोही नरपिशाच जयचन्द ने अपने कर्मों का फल पाया, जिस दिन पवित्र हिन्दु स्वाधीनता के सिर पर वज्रपात हुआ और जिस दिन अभागे हिन्दुओं के भाग्य में चिरकाल के लिये दासता का विधान पत्र लिखा गया, उस दिन से अठारह वर्ष के पीछे सन् १८१२ ई० में जयचन्द के पौत्र सियाजी ने अपने साथ दो सौ वीरों को ले कर जन्मभूमि से प्रस्थान किया । इसके अनेक कारण बताये जाते हैं, कोई कहता है—सियाजी तीर्थयात्रा के लिये निकले थे । दूसरे पक्ष का सिद्धान्त है कि सियाजी अपने भाग्य की परीक्षा के लिये निकले थे । मैं इसका निर्णय करना नहीं चाहता । क्या क्षत्रिय वीर भी संसार में बिना अपनी वीरता की धाँक जमाये तीर्थयात्रा के लिये निकलते हैं ?

आज एक बड़े राज्य का उत्तराधिकारी इस प्रकार रेतीले मैदान में धर्मभाव से प्रेरित हो कर जा रहा है, क्या जले हुए क्षत्रियों के हृदय में धर्मभाव जागृत नहीं रह सकता है । क्या वन वन और तीर्थों में घूमना ही क्षत्रियों के लिये धर्म नहीं है । अपमानित पराजित क्षत्रिय का प्रधान धर्म, उच्चाकाङ्क्षा और राज्य विस्तार है, इसी धर्मभाव से प्रेरित हो कर सियाजी, प्रिय जन्मभूमि को छोड़ कर मारवाड़ के कोलूगढ़ नामक स्थान में पहुँचा । यह स्थान बीकानेर से २० मील पश्चिम की ओर है । उस समय वहाँ सोलङ्की राजा राज्य करता था । उसने सियाजी का आदर सम्मान किया ।

सोलङ्की राजा के आदर सत्कार से प्रसन्न हो कर सियाजी ने उनके उपकार का बदला देना निश्चित किया । उन दिनों लाखा फूलाणी नामक एक वीर राजपूत उन प्रदेशों में बड़ा ऊधम मचाये हुए था । इसका जन्म प्रसिद्ध जड़िचा कुल में हुआ था । सोलङ्की राजा की आज्ञा से उसके दमन का भार इन पर सौंपा गया । सियाजी ने लाखा फूलाणी के विरुद्ध शस्त्र उठाया । बड़ा विकट युद्ध हुआ, इस युद्ध में सियाजी की जीत हुई । इस जीत से सोलङ्की राजा बहुत प्रसन्न हुआ । उसने अपनी बहिन सियाजी को व्याह कर उन्हें एक दृढ़ सूत्र में बाँध लिया । वहाँ से सियाजी द्वारका की ओर बढ़ा । मार्ग में इन्हें अनहल वाडा पत्तन दीख पड़ा । मार्ग की थकावट दूर करने की इच्छा से सियाजी ने वहीं विश्राम किया । वहाँ के राजा ने इनका बड़ा आदर सत्कार किया । जिस समय सियाजी अनहल वाडा ही में थे । उसी समय संवाद आया कि लाखा फूलाणी ने उस नगर पर आक्रमण किया है । इससे वहाँ का राजा भयभीत हो गया । परन्तु सियाजी उसे धैर्य बँधा कर स्वयं युद्ध के लिये उद्यत हुए । दोनों वीरों में द्वन्द्व युद्ध होने लगा । दोनों ओर की सेना अलग खड़ी हो कर दोनों का वीर अभिनय देख रही थी । उस समय दर्शकों के हृदय का भाव देखते ही बनता था । अन्त में, लाखा फूलाणी राठौर वीर का तेज नहीं सह सका वह मारा गया । सियाजी की जयध्वनि से आकाश गूँज

उठा । अत्याचारी लाखा फूलाणी के मारे जाने से सतलज से ले कर समुद्र तट के वासियों तक के राठौर वीर को आशीर्वाद दिया । अनन्तर सियाजी की तीर्थयात्रा शेष रह गयी । परन्तु इसका पता नहीं चलता कि उन्होंने तीर्थयात्रा की अपनी इच्छा पूरी की कि नहीं । अनन्तर इन्होंने लूनी नदी के किनारे अपने राज्य की पताका फहरायी ।

(टाड्स राजस्थान)

सीता=विदेहराज सीरध्वज की कन्या और अयोध्याधिपति राम की पत्नी । सीता ने राज्य-भोग परित्याग कर पति के साथ चौदह वर्ष तक वनवास किया था । वनवास के १३ वें वर्ष लङ्काधिप रावण ने उन्हें हर लिया छः महीने के कठोर युद्ध के उपरान्त रावण को मार कर राम ने सीता का उद्धार किया । राम ने पहले सीता के चरित्र में सन्देह कर उन्हें ग्रहण करना नहीं चाहा । इससे खिन्न हो कर सीता ने धधकती चिता में प्रविष्ट हो कर देह त्यागना निश्चित किया । परन्तु अग्नि ने शुद्धचरित्रा सती सीता की शुद्धता स्वीकार की । तब राम सीता को ले कर अयोध्या आये । तदनन्तर सीता गर्भवती हुई । यद्यपि रामचन्द्र सीता के चरित्र के विषय में सन्देह-रहित हो गये थे तथापि उनकी प्रजा सीता के चरित्र के विषय में सन्दिग्ध थी । रामचन्द्र ने इस बात को जान लिया । सीता को शुद्ध जानते हुए भी राम ने प्रजारञ्जन के अर्थ सीता का त्याग किया । तमसा नदी के तीर वाल्मीकि के आश्रम के पास लक्ष्मण ने राम की आज्ञा से सीता को छोड़ दिया । सीता को रोती देख महर्षि वाल्मीकि उसे अपने आश्रम में ले गये । वहाँ सीता के दो यमज पुत्र उत्पन्न हुए । वाल्मीकि ने उनका लव और कुश नाम रखा । वाल्मीकि ने इनका संस्कार कर के अपनी बनायी रामायण इन्हें कण्ठस्थ करा दी । इसी समय राम ने एक अश्वमेध यज्ञ करना निश्चित किया । वाल्मीकि के साथ इस वन में जा कर कुश लव ने रामायण का गान किया । वाल्मीकि मुनि से कुश और लव का परिचय पा कर रामचन्द्र ने सीता को ग्रहण करने की इच्छा प्रकट की । वाल्मीकि ने शिष्य भेज कर सीता को वहाँ बुलाया, सभा के सामने आ कर सीता ने कहा—यदि हमने मन वचन कर्म से पति के अतिरिक्त अन्य किसीकी चिन्ता नहीं की हो तो, माता धरणि ! तुम अपने गर्भ में हमें स्थान दो । यह कहते कहते पृथ्वी फट गयी और सिंहासनस्थ पृथिवी निकली और सीता को ले कर अदृश्य हो गयी । सीता निर्वासन से ले कर समस्त घटनाओं का वर्णन उत्तरकाण्ड में लिपिबद्ध है ।

(रामायण)

सीताराम=इनका पूरा नाम लाला सीताराम बी. ए. है । ये श्रीवास्तव कायस्थ हैं । इनके वंश के लोग पहले जौनपुर में रहते थे । इनके पिता प्रसिद्ध बाबा रघुनाथदास के शिष्य हुए और वे जौनपुर छोड़ अयोध्या में जा बसे । यहीं २० जनवरी सन् १८५८ ई० को लाला सीताराम का जन्म हुआ । बाबा रघुनाथदास ही से इन्होंने विद्यारम्भ किया था । तदनन्तर एक मौलवी साहब इनको उर्दू और फ़ारसी पढ़ाने के लिये नियत किये गये । मौलवी साहब कुछ हिन्दी भी जानते थे, इस कारण उर्दू फ़ारसी के साथ इन्होंने कुछ हिन्दी भी पढ़ी । इनके पिता वैष्णव थे इस कारण इन्हें भाषा के धर्मग्रन्थों से बड़ा प्रेम था । अतः इन्हें हिन्दी का अच्छा ज्ञान प्राप्त हो गया ।

सन् १८७६ ई० में इन्होंने बी. ए. परीक्षा पास की । इस परीक्षा में आप सबसे पहले थे । तदनन्तर इन्होंने वकालत की भी परीक्षा पास की । पहले पहले आप अवध अख़बार के सम्पादक हुए । तदनन्तर स्कूल विभाग में गये, और वहीं असिस्टेण्ट इन्स्पेक्टर हुए । उस पर से आप डिप्टी कलक्टर हुए ।

इन्होंने हिन्दी के बहुत ग्रन्थ लिखे हैं, रघुवंश, कुमारसम्भव, उत्तररामचरित्र, मालविकाग्निमित्र, मृच्छकटिक, नागानन्द, ऋतुसंहार आदि ग्रन्थों का इन्होंने हिन्दी में अनुवाद किया है । आज कल भी आपका विद्याव्यसन जारी है । आज कल आप प्राचीन गणित का अनुशीलन करते हैं तथा उसी विषय के ग्रन्थ

भी छापते हैं । आज कल आप सरकारी काम से पेंशन ले कर प्रयाग में रहते हैं और पेंशन ले कर भी सरकार के कामों में सहायता देते हैं । आप हिन्दी और संस्कृत भाषाओं के परीक्षक भी हैं ।

सुकन्या=महाराज शर्याति की कन्या और महर्षि च्यवन की स्त्री । (देखो च्यवन)

सुकेश=राक्षस विशेष । लङ्केश्वर रावण के मातामह । सुमाली इसका पुत्र था ।

सुगन्धा=काश्मीरराज शङ्कर वर्मा की प्रधान महारानी । मृत्यु के समय अपने पुत्र गोपाल वर्मा की देख रेख का भार राजा ने सुगन्धा को सौंपा था सुगन्धा के तत्वावधान में रह कर गोपाल वर्मा काश्मीर के सिंहासन पर बैठे । राजमाता सुगन्धा यद्यपि विधवा थी, तथापि उनकी भोगलालसा शान्त नहीं हो पायी थी। अतएव प्रभाकर देव मन्त्री के साथ राजमाता ने अनुचित सम्बन्ध स्थापित किया । वह ख़ज़ाने का मालिक था । राजमाता का प्रेम पा कर वह इच्छानुसार धन लूटने लगा एक बार राजा गोपाल वर्मा ने ख़ज़ाने की जाँच करनी चाही, ऐसी स्थिति में प्रभाकर एक बार घबड़ाया और उसने कहा—इस समय ख़ज़ाने में जितने रुपये चाहियें उतने नहीं हैं, क्योंकि युद्ध में विशेष व्यय हुआ है । यद्यपि प्रभाकर ने इस समय राजा को शान्त कर दिया, तथापि भावी अनर्थ की सम्भावना देख उसने एक तान्त्रिक के द्वारा राजा गोपाल वर्मा को मरवा डाला । तदनन्तर गोपाल वर्मा के भाई सङ्कट राजा बनाये गये, परन्तु शीघ्र ही उनकी मृत्यु हो गयी । अतएव कर्मचारियों की प्रार्थना से सुगन्धा ने ही राज्यभार अपने हाथ में ले लिया । उस समय काश्मीर राज्य का कोई उत्तराधिकारी न होने के कारण सुगन्धा ने अपने किसी कुल के मनुष्य को राजा बनाने का प्रस्ताव किया इस प्रस्ताव से काश्मीर के राजनैतिकों के दो दल हो गये । प्रभाकर के अत्याचार से उत्तेजित व्यक्तियों ने सुगन्धा को राज्यच्युत कर दिया । सुगन्धा काश्मीर छोड़ कर चली गयी । तदनन्तर सुगन्धा के पक्षपातियों ने उसको पुनः काश्मीर में बुलाया । दोनों पक्ष में घोर युद्ध हुआ । इसी युद्ध में सुगन्धा क़ैद हो गयी, और वहीं उसका शरीरान्त हुआ ।

(राजतरङ्गिणी)

सुग्रीव=कपिराज । पर्वतपरिवृत्ता किष्किन्धा नगरी इनकी राजधानी थी । इनके बड़े भाई वाली ने इनको राज्य से निकाल कर राज्य तथा उनकी स्त्री को ग्रहण कर लिया था । रामचन्द्र ने वाली को मार कर इनको किष्किन्धा का राज्य दे दिया था । इनकी ही सहायता से राम ने रावण का नाश कर के सीता का उद्धार किया था । वृद्धावस्था में अपने भतीजे अङ्गद को राज्य दे कर सुग्रीव ने रामचन्द्र के साथ सरयू तीर पर शरीर त्याग किया । ये सूर्य के औरस से उत्पन्न हुए थे । (देखो वाली)

सुजानसिंह=बीकानेर के एक राजा । ये अनूपसिंह के पुत्र थे । अपने बड़े भाई स्वरूपसिंह के युद्ध में हत होने के अनन्तर ये बीकानेर की गद्दी पर बैठे । टाड साहब कहते हैं कि इनके राज्यकाल में कोई विशेष घटना नहीं हुई ।

(टाड्स राजस्थान)

सुधन्वा=कौरव पक्षी त्रिगर्त सेना का एक वीर । यह अर्जुन के हाथ मारा गया ।

(महाभारत)

सुदर्शन=एक राजपुत्र । महाभारत के युद्ध में इसने युद्ध किया था । यह दुर्योधन की ओर से लड़ता था । सात्यकि के साथ इसका घोर युद्ध हुआ था । अन्त में सात्यकि ने इसे मार डाला था । (महाभारत)

सुनाभ=अन्धराज धृतराष्ट्र के पुत्र और दुर्योधन के भाई । महाभारत के युद्ध में यह भीमसेन के हाथों मारा गया । इसने पहले तो घोर युद्ध किया परन्तु अन्त में असफल हुआ ।

(महाभारत)

सुधाकर द्विवेदी=इनका पूरा नाम "महामहोपाध्याय पण्डित सुधाकर द्विवेदी" था । बहुत दिन हुए कि चैनसुख नामक एक सरयूपारी ब्राह्मण काशी में संस्कृत पढ़ने आये । शिवपुर के पास मण्डलाई नामक गाँव में एक विद्वान् के पास वे पढ़ने लगे । उन पण्डितजी के कोई पुत्र नहीं था, इस कारण चैनसुख ही उनकी

सम्पत्ति के अधिकारी हुए । इसी वंश में कुछ दिनों के बाद शारङ्गधर और शिवराज नामक दो भाई हुए । शारङ्गधर ने खजुरी सारनाथ आदि कई गाँवों की ज़मींदारी ले कर खजुरी में अपना निवासस्थान बनाया । शिवराज उपाध्याय के तीन पुत्र थ, जिनमें रामप्रसाद सब से छोटे थे। इनके समय में केवल खजुरी की ज़मींदारी ही शेष रह गयी थी । रामप्रसाद के पाँच पुत्र हुए । जिनमें सबसे छोटे कृपालुदत्त थे। पं० कृपालुदत्त जी ज्योतिष विद्या में बड़े निपुण थे । इनके लिखे अक्षर भी अच्छे होते थे। क्वींस कालेज की भीतों पर इन्हीं के लिखे अक्षर वर्तमान हैं। इन्हीं पं० कृपालुदत्त जी के पं० सुधाकर जी पुत्र थे, पं० कृपालुदत्त भाषा काव्य के प्रेमी और स्वयं कवि भी थे।

जिस समय सुधाकरजी का जन्म हुआ उस समय इनके पिता मिर्ज़ापुर गये हुए थे और इनके चाचा दरवाज़े पर बैठे हुए थे । उसी समय "सुधाकर" नामक एक पत्र आया, अतः चाचा ने नवजात शिशु का वही नाम रख दिया। इनका जन्म सं० १६१७ की चैत्र शुक्ला चतुर्थी सोमवार को हुआ था । द्विवेदीजी की ६ महीने की अवस्था होते ही इनकी माता का स्वर्गवास हो गया । अतः इनके लालन पालन का भार इनकी दादी पर पड़ा । इनके पिता अधिकतर बाहर ही रहा करते थे और घर भर का उन पर विशेष अनुराग था । इसी कारण आठ वर्ष की अवस्था तक इनकी शिक्षा की ओर किसीने भी कुछ ध्यान नहीं दिया । तदनन्तर इनके बड़े चाचा ने इन्हें पढ़ने को बिठाया । इसका फल बड़ा अच्छा हुआ । इन्होंने थोड़े ही दिनों में बड़ी उन्नति कर ली । यज्ञोपवीत संस्कार होते ही इनकी विचित्र धारणा शक्ति का परिचय लोगों को मिलने लगा । किसी पद्य को एक ही बार देखने या सुनने से ये कण्ठस्थ कर लिया करते थे।

इनका स्वभावतः गणित ज्योतिष की ओर झुकाव था । लीलावती पढ़ने के बाद ही से ये गणित के बड़े बड़े प्रश्नों को हल कर लिया करते थे। इनकी तीव्र बुद्धि को देख कर उस समय के कालेज के प्रोफ़ेसर बापूदेव शास्त्री जी बड़े प्रसन्न रहा करते थे । उन्होंने इनकी प्रिंसिपल साहब से प्रशंसा भी की थी। परन्तु अन्त में किसी कारण से गुरु चेले में झगड़ा हो गया।

ये ज्योतिष के जैसे विद्वान् थे यह बात सभी को मालूम है । परन्तु इनका हिन्दी भाषा से प्रेम भी अनुकरणीय और प्रशंसनीय था । आपका हिन्दी के काव्यों में अच्छा प्रवेश था। ये सरल भाषा के पक्षपाती थे। आपकी भाषा भी बहुत सरल होती थी, परन्तु वह सरलता केवल काशी के प्रान्त वालों ही के लिये थी। आपने कोई १७ पुस्तकें लिखीं और सम्पादित की हैं। बाबू हरिश्चन्द्र आपके मित्र थे। आप क्वींस कालेज में गणित के प्रोफ़ेसर रहे और नागरीप्रचारिणी सभा काशी के सभापति।

सुन्द=निकुम्भ दैत्य का पुत्र । इसके छोटे भाई का नाम उपसुन्द था। (देखो उपसुन्द)

सुबलसिंह=जयसलमेर के एक राजा। इनके पिता का नाम दयादास था। इनके चचेरे पितामह मनोहरदास ने चाहा था कि अपने पुत्र रामचन्द्र को राजा बनावें, परन्तु सुबलसिंह की योग्यता तथा वीरता से वहाँ की प्रजा प्रसन्न थी इसके अतिरिक्त इनके भाग्योदय का और भी एक कारण था । सुबलसिंह महाराज आमेर के भानजे थे। वह आमेर नरेश की अधीनता में यवनों की राजधानी पेशावर के राज्य प्रबन्ध में एक ऊँचे पद पर नियुक्त थे। एक बार अफ़ग़ान लुटेरों ने यवन सम्राट् का ख़ज़ाना लूटना चाहा था, परन्तु सुबलसिंह की वीरता से वे सफल न हो सके। इस कारण बादशाह भी उन पर प्रसन्न रहते थे । सुबलसिंह ने अपनी योग्यता से सभी राजाओं में अच्छा मान पा लिया था । मनोहरदास के मरने पर यवन सम्राट् ने जोधपुर के राजा यशवन्तसिंह को आज्ञा दी कि तुम रामचन्द्र को हटा कर शीघ्र सुबलसिंह को गद्दी पर बैठा दो। यशवन्तसिंह ने नाहरख़ाँ की सेना से संयुक्त एक सेना

भेज कर सुबलसिंह को जयसलमेर की गद्दी पर बैठाया । सुबलसिंह ने वह कर्णा का प्रदेश नाहरख़ाँ को सदा के लिये दे दिया । सुबलसिंह ने जयसलमेर की गद्दी पर बैठ कर बड़ी प्रशंसा के साथ राज्य चलाया, इनकी राज्य-शासन व्यवस्था से प्रजा बहुत प्रसन्न रहती थी। राजा और प्रजा दोनों से प्रशंसा पा कर सुबलसिंह ने बहुत दिनों तक राज्य किया, तदनन्तर इनका स्वर्गवास हुआ ।

(टाड्स राजस्थान)

सुभद्रा=श्रीकृष्ण की वैमात्रेय भगिनी और अर्जुन की स्त्री । सुभद्रा वासुदेव के औरस और रोहिणी के गर्भ से उत्पन्न हुई थी। श्रीकृष्ण की इच्छा से अर्जुन इसे हर ले गये थे । अभिमन्यु इसीके पुत्र थे, और वे महाभारत के युद्ध में अन्याय युद्ध में मारे गये ।

सुमन्त्र=दशरथ राजा के एक मन्त्री का नाम ।

सुमाली=लङ्केश्वर रावण का मातामह ।

सुमित्रा=अयोध्याधिपति राजा दशरथ की स्त्री । इन्हीं के गर्भ से लक्ष्मण और शत्रुघ्न उत्पन्न हुए थे ।

सुमुख=नाग विशेष । इन्द्र के सारथि मातली ने अपनी कन्या गुणकेशी को इनके साथ ब्याहा था । गरुड़राज ने सोचा था कि सुमुख को मैं खाऊँगा, परन्तु इस ब्याह से उनका मनोरथ नष्ट भ्रष्ट हो गया । इससे अप्रसन्न हो कर गरुड़ बड़े बिगड़े और इन्द्र तथा विष्णु के समीप जा कर अपने बल की प्रशंसा करने लगे । यह सुन कर विष्णु ने अपना हाथ गरुड़ की पीठ पर रखा । उसके भार से गरुड़ दबने लगे । तभी से गरुड़ और सुमुख में मित्रता हो गयी ।

सुरजनसिंह=बूँदी के राजा अर्जुन के सबसे बड़े पुत्र । ये सन् १५५५ ई० में बूँदी की राजगद्दी पर बैठे । सुरजनसिंह के राजा होते ही बूँदी की राजनैतिक अवस्था बदल गयी । बूँदी के राजा आज तक स्वाधीन थे । केवल उदयपुर के महाराणा को स्वजातीय जान कर और अधीनता स्वीकार कर वे सम्मान दिखाते थे और महाराणा के सुख दुःख में शामिल होते थे । परन्तु सुरजन ने यवन सम्राट् की अधीनता स्वीकार कर धीरे धीरे अपने वंश की ऐश्वर्य वृद्धि कर ली ।

बूँदी-राज-वंश की छोटी शाखा में उत्पन्न सामन्तसिंह नामक एक सामन्त बूँदी राज्य में इस समय एक विख्यात पुरुष था । शेरशाह के शासन के लुप्त होने के पीछे इसने बेदला के सामन्त चौहान से मिल कर अफ़ग़ान शासनकर्ता को रणथम्भोर का क़िला छोड़ देने के लिये लिखा । अफ़ग़ान शासनकर्ता ने उक्त क़िले का भार सामन्तसिंह को सौंप दिया । सामन्तसिंह ने उक्त क़िला राव सुरजन को दे दिया । बूँदी के राजा के अधीन वैसा दुर्भेद्य क़िला दूसरा नहीं था । अतः सामन्तसिंह से उस क़िले को पा कर राव सुरजन ने उन्हें बूँदी के निकट भूवृत्ति दी ।

बेदला के जिन चौहान सामन्तों ने उक्त क़िले को लेने में विशेष सहायता दी थी, उन लोगों ने राव सुरजन के समीप यह प्रस्ताव किया कि मेवाड़ के अधीन रह कर क़िले की रक्षा करनी होगी । राव सुरजन ने इसे स्वीकृत कर लिया ।

सम्राट् अकबर भारत के सिंहासन पर विराज कर रणथम्भोर के क़िले पर अधिकार करने के लिये लालायित हुआ । उसने सेना ले कर उक्त क़िले पर आक्रमण किया । बहुत दिनों तक सम्राट् अकबर क़िले की दीवार तोड़ता रहा, परन्तु किसी प्रकार वह क़िले में घुस न सका । इसी समय आमेर के महाराज भगवान्दास तथा उनके भतीजे मानसिंह ने अकबर की अधीनता स्वीकार की थी और भगवान्दास ने तो अकबर को अपनी कन्या दे कर क्षत्रियकुल ही को नहीं, किन्तु एक प्रकार से समस्त हिन्दू जाति को कलङ्कित किया थी ।

बादशाह अकबर जब किसी प्रकार रणथम्भोर के क़िले पर अधिकार नहीं कर सका, तब मानसिंह ने दूसरे उपाय से काम लेना निश्चित किया । मानसिंह इस बात को जानते थे कि प्रत्येक राजपूत अतिथि सत्कार के लिये प्राण तक देने के लिये शीघ्र ही तैयार हो सकता है । यही सोच कर मानसिंह ने राव सुरजन से आश्रय देने की प्रार्थना की । राव सुरजन, मानसिंह को राजवंशी और क्षत्रिय जानता था;

अतः उसने उन्हें आश्रय देना स्वीकार किया । बादशाह अकबर भी कपटवेष धर कर मानसिंह का अनुचर बन कर क़िले में चला गया । राव सुरजन मानसिंह से बात चीत कर रहे थे, उस समय सुरजन के चाचा ने कपटवेषधारी अकबर को पहचान लिया, और उनके हाथ से सोटा छीन कर उन्हें सिंहासन पर बैठा दिया । उसी समय अकबर ने सुरजन को बुला कर कहा— राव सुरजन ! इस समय क्या करना उचित है । मानसिंह ने राव सुरजन से कहा—आप चित्तौड़-पति राणा की अधीनता छोड़ कर रणथम्भोर का क़िला बादशाह को अर्पित कीजिये । आपको बड़ा ऊँचा पद मिलेगा, आपको ५२ देशों के शासन करने का अधिकार मिलेगा और जो आप बादशाह से प्रार्थना करेंगे, सो भी मिलेगा । वहीं सन्धिपत्र लिख कर तैयार हुआ, बादशाह ने उस पर दस्तख़त कर दिये । इसके अतिरिक्त काशी में मकान बनाने की आज्ञा भी बादशाह ने दी । बादशाह ने उसी दिन इन्हें "रावराजा" की उपाधि दी । गोड़वाने के युद्ध में राव सुरजन ने जय प्राप्त किया था इस कारण काशी, चुनार तथा और भी पाँच देशों का शासनभार बादशाह ने इन्हें दे दिया । इनके तीन पुत्र थे । (टाड्स राजस्थान)

सुरतानसिंह=बूँदी के महाराज सूर्यमल के पुत्र । ये सन् १५३५ ई० में बूँदी की गद्दी पर बैठे । मेवाड़ के शक्तावत सम्प्रदाय के आदिपुरुष शक्तसिंह की कन्या से इनका व्याह हुआ था । इसी समय बूँदी राज्य में तान्त्रिकों का दल ज़ोर पकड़ता जाता था । बहुत से राजपूत उन तान्त्रिकों के दल में मिलते जाते थे । राजा सुरतानसिंह भी इस दल में सम्मिलित हुए । ये राजा तान्त्रिकों के साथ मिल कर नरबलि के लिए अपनी प्रजा की हत्या करने लगे । इससे वहाँ के सामन्त तथा उच्च कर्मचारी असन्तुष्ट हुए जिसका फल यह हुआ कि सुरतानसिंह गद्दी से अलग कर दिये गये । तबसे चम्बलनदी के किनारे एक छोटे से गाँव में रह कर सुरतान ने अपना जीवन बिताया ।

(टाड्स राजस्थान)

सुरभि=महर्षि काश्यप की स्त्री और दक्षप्रजापति की कन्या । गो महिष आदि इसी की सन्तान हैं।

सुवर्ण=काश्मीर के एक राजा का नाम । इनके पिता का नाम गोधा था, ये बड़े दाता थे ।

(राजतरङ्गिणी)

सुशर्मा=त्रिगर्तराज । मत्स्य देश के अधिपति विराट् ने इनके राज्य पर अधिकार कर लिया । राज्यच्युत हो कर ये राजा दुर्योधन के आश्रय में रहने लगे । इस समय कीचक विराट् राजा का सेनापति था, उसीके भय से दुर्योधन विराट् पर आक्रमण नहीं करते थे । कीचक की मृत्यु हो जाने पर दुर्योधन ने सुशर्मा को विराट् के दक्षिण गोगृह पर आक्रमण करने की आज्ञा दी । सुशर्मा ने विराट् के दक्षिण गोगृह पर आक्रमण किया तब गौओं की रक्षा के लिये विराट् युद्ध करने लगे । सुशर्मा ने विराट् को क़ैद कर लिया और वह अपने देश की ओर लौटा । पाण्डवगण इस समय विराट्भवन में अज्ञातरूप से वास करते थे । युधिष्ठिर की आज्ञा से भीम ने युद्ध में सुशर्मा को परास्त किया और विराट् का उद्धार भी किया । कुरुक्षेत्र के युद्ध में, युद्ध के १८ वें दिन यह अर्जुन के हाथ मारा गया । (महाभारत)

सुश्रुत=(देखो चरक)

सुस्मल=लाहौर का राजा । जिस समय ये लाहौर का शासन करते थे उसी समय इनका भाई उचल काश्मीर का राजा था । यद्यपि सुस्मल राजा थे, तथापि राज्य को और अधिक बढ़ाने की इनकी इच्छा सदा प्रबल रहा करती थी । इसी इच्छा से प्रेरित हो कर सुस्मल ने अपने भाई उचल के राज्य काश्मीर पर आक्रमण किया । इसकी ख़बर पाते ही उचल सामना करने के लिये राजधानी से प्रस्थित हुए । इनके सुस्मल के शिविर तक पहुँचते न पहुँचते वह सब सामान छोड़ कर भाग गया । सुस्मल वहाँ से दरद राज्य की ओर चला गया । इसके अनन्तर कुछ दिनों के बीत जाने पर सुस्मल ने पुनः काश्मीर राज्य पर चढ़ाई की, इसका संवाद पाते ही उचल ने एक सेनापति की अधीनता में एक सेना भेजी, दोनों में खूब युद्ध हुआ । अन्त में सुस्मल लौट गया ।

अनन्तर उच्चल अपनी कड़ाई के कारण मारे गये । इस घटना के दूसरे दिन सुस्मल को यह बात विदित हुई । तदनन्तर सुस्मल सेना ले कर काश्मीर की ओर चले । मार्ग में उन्हें एक दूत मिला उसने राजा सुस्मल से कहा—अब आपके जाने की आवश्यकता नहीं है, शत्रु मारे गये, और आपकी अनुपस्थिति के कारण, आपके छोटे भाई सल्हण को राज्य दे दिया गया । अपने अनुचरों को काश्मीर जाने के लिये अनिच्छुक देख कर हँसते हँसते सुस्मल ने कहा—"छोटा भाई कायम है सही, परन्तु काश्मीर राज्य तो हमारी पैतृक सम्पत्ति नहीं है । मैं और मेरे बड़े भाई—दोनों ने बाहुबल से उसे पाया है । जिस समय हम लोगों ने काश्मीर राज्य पर अधिकार किया था, उस समय किसी ने नहीं कहा था कि यह राज्य तुमको नहीं मिलेगा । वह हमारा बाहुबल आज भी वर्तमान है" यह कह कर अनुचरों को साथ ले कर सुस्मल आगे बढ़ा । सुस्मल ने अपने आने का वृत्तान्त जनाने के लिये दूतों को गर्ग के निकट भेजा । उस समय गर्गचन्द्र, सल्हण की हितचेष्टा के लिये उद्यत थे और वे हुष्कपुर में रहते थे । दोनों ओर से दूत आने जाने लगे । यद्यपि गर्गचन्द्र शान्ति के पक्षपाती थे तथापि दूतों ने सुस्मल के निकट उन्हें विपक्षी प्रमाणित कर दिया । दोनों ओर से प्रबल युद्ध होने लगा । अन्त में सुस्मल को पुनः लौट जाना पड़ा । तदनन्तर गर्गचन्द्र ने किसी कारण से सुस्मल से सन्धि कर ली, तथापि सुस्मल ने काश्मीर राज्य की आशा नहीं छोड़ी । काश्मीर राज्य को हस्तगत करने का उपयुक्त समय ढूँढ़ने के लिये उन्होंने अपने सेनापति संज्ञापाल को नियुक्त किया । सल्हण इस समय अपने राज्य में मनमाना व्यवहार करते थे । पुराने कर्मचारियों के स्थान पर नये कर्मचारी नियुक्त करते थे । इस कारण राज्य में गड़बड़ी मची हुई थी । इसी समय सल्हण ने क़िलेदार लब्धक को पदच्युत कर दिया था । गर्गचन्द्र ने पहली बात स्मरण कर के लब्धक का पीछा किया । उसी समय सुस्मल का सेनापति संज्ञापाल चला आता था । उसने लब्धक को आश्वासन दिया । लब्धक इस समय निराश्रय था वह सुस्मल की शरण गया । शत्रुसेना पर आक्रमण कर के संज्ञापाल के चले जाने पर पुरवासी और अनुचरों ने जा कर सुस्मल को उत्तेजित किया, सुस्मल ने भी काश्मीर में प्रवेश किया । सुस्मल के आने की बात सुन कर सहेल ने सल्हण से कहा कि मैं सुस्मल से आपकी सन्धि करा दूँगा । यह कह कर वह सुस्मल के समीप चला गया । उस समय समस्त पुरवासी यही चाहते थे कि सुस्मल काश्मीर का राजा हो । गर्ग की स्त्री दो कन्या ले कर सुस्मल के समीप गयी । सुस्मल ने बड़ी कन्या को स्वयं ब्याहा, और छोटी को अपने पुत्र को दिया ।

तदनन्तर संज्ञापाल ने जा कर भाई के साथ सल्हण को मिला दिया । सुस्मल राजसभा के द्वार पर आ कर खड़े हुए । उसी समय किसी ने आ कर सुस्मल के सामने एक तख़्ता फेंक दिया, परन्तु उसके दूर गिरने के कारण सुस्मल की उससे कोई हानि नहीं हुई । शत्रुसेना को सामने खड़ी देख कर भी सुस्मल की सेना ने उन पर आक्रमण नहीं किया, क्योंकि वे गर्ग के आक्रमण से डरते थे । गर्ग ने यद्यपि सुस्मल को कन्या ब्याही थी तथापि उस पर किसी का विश्वास नहीं था । उस समय सन्ध्या हो रही थी, संज्ञापाल ने देखा कि सैनिक गर्ग के भय से आक्रमण नहीं कर रहे हैं शत्रु सुरक्षित स्थान में बैठे हैं । यह सब देख कर वह द्वार तोड़ कर भीतर घुसा, और शत्रुसेना के साथ लड़ने लगा । उसके साथ एक और वीर घुसा था, उसने बड़े परिश्रम और कष्ट सह कर द्वार खोल दिया । उसी ओर से राजा सुस्मल सेना के साथ घुस गये । दोनों पक्ष में घोर युद्ध होने लगा । अन्त में काश्मीरराज सल्हण को सुस्मल ने क़ैद कर लिया ।

सुस्मल के सिंहासन पर बैठ जाने पर काश्मीर में एक प्रकार से शान्ति हो गयी । सुस्मल ने भ्रातृद्रोहियों का ढूँढ़ २ कर विनाश कर दिया । सुस्मल ने ८ वर्ष काश्मीर का राज्य किया था । (राजतरङ्गिणी)

सूरत मिश्र=ये भाषा के कवि थे और आगरे के रहने वाले थे। सं० १७६६ में ये वर्तमान थे। इन्होंने विहारीसत्सई की एक सुन्दर टीका बनवायी है। इसके अतिरिक्त (१) "सरस-रस" (२) "नखशिख" (३) "रसिकप्रिया की टीका" और (४) "अलङ्कारमाला" नाम की चार पुस्तकें और भी इन्होंने लिखी हैं।

सूरतसिंह=बीकानेर के एक राजा का नाम। ये गजसिंह के पाँचवें पुत्र थे। इन्होंने अपनी माता की सहायता से अपने बड़े भाई बीकानेर के राजा राजसिंह को मार कर बीकानेर का राज्य पाया था। इकतालीस वर्ष तक राज्य कर के गजसिंह के परलोकवास करने के उपरान्त सन् १७८७ ई० में राजसिंह बीकानेर के राजा हुए। परन्तु सूरतसिंह की माता ने अपने हाथ से विष दे कर राजसिंह को मार डाला।

महाराज राजसिंह के प्रतापसिंह और जयसिंह नामक दो पुत्र थे। यद्यपि सूरतसिंह की माता की इच्छा थी कि राजसिंह को मार कर अपने पुत्र को राजा बनाऊँगी तथापि बुद्धिमान् सूरतसिंह ने इस काम को अभी करना आपत्ति रहित नहीं समझा, अतएव बीकानेर के सामन्त तथा कर्मचारियों को अपने वश में रखने की इच्छा से सूरतसिंह ने राजसिंह के बालक पुत्र को राजा बनाया और स्वयं राजप्रतिनिधि हो कर काम करने लगे। अट्ठारह वर्ष तक इन्होंने बड़ी चतुरता और सावधानी से राज्य किया और साथ ही साथ सामन्त तथा मन्त्रियों को उपहार आदि से सन्तुष्ट कर अपनी ओर मिला लिया। इस प्रकार अपनी अभिलाषा पूर्ण होने की आशा से वे कपट जाल का विस्तार करते थे। परन्तु अट्ठारह वर्ष तक उन्होंने अपनी इच्छा प्रकाशित नहीं की। अट्ठारह वर्ष बीत जाने के अनन्तर अपने विशेष अनुगत महाजन और भादरों के दोनों सामन्तों से सूरतसिंह ने अपना अभिप्राय प्रकाशित किया। वे दोनों सामन्त सूरतसिंह के विशेष अनुगत थे इसमें सन्देह नहीं; तथापि वे इनके प्रस्ताव को सुन कर विचलित हो गये। परन्तु चतुर सूरतसिंह ने उन्हें समझा कर ठीक कर लिये। यद्यपि महाजन और राजद्रोही दोनों सामन्तों ने सूरतसिंह के अभिप्राय पूर्ण करने में सम्मति और सहायता देने की प्रतिज्ञा की, तथापि उनका वह षड्यन्त्र गुप्त नहीं रह सका। राजमन्त्री बख़्तावरसिंह को इस गुप्त षड्यन्त्र के समाचार विदित हो गये। उन्होंने राजा के प्राण बचाने के लिये सङ्कल्प किया। परन्तु सूरतसिंह के कुचक्र के दृढ़ हो जाने पर बख़्तावरसिंह को उसका संवाद मिला अतएव वे उस कुचक्री दल को छिन्न भिन्न नहीं कर सके और उनको इसका विपरीत फल भी भोगना पड़ा था। सूरतसिंह ने बख़्तावरसिंह को अपना प्रधान शत्रु समझा और उन्हें क़ैद कर लिया। तदनन्तर बटिंटा आदि देशों से उन्होंने सेना संग्रह कर ली। वे जानते थे कि बिना बल प्रयोग किये, राज्य प्राप्त करना हमारे लिये कठिन है। इस कारण वे बड़ी सावधानी और शीघ्रता से काम करते थे। उधर बालक महाराज की भी गुप्तरूप से सावधानी के साथ रक्षा होने लगी। इसी समय सूरतसिंह ने सामन्तों के नाम एक आज्ञापत्र प्रचारित किया, परन्तु भादरों के दो सामन्तों के अतिरिक्त और किसी भी सामन्त ने उस आज्ञा का पालन नहीं किया।

इस घटना से अपने अभीष्ट में हानि होने की सम्भावना देख कर सूरतसिंह ने सामन्तों को दमन करने का विचार निश्चित किया। सबसे पहले उन्होंने नौहर नामक स्थान में जा कर भूकरका देश के सामन्तों को छल बल सहित अपने सन्मुख बुलाया और उन्हें नौहर के क़िले में क़ैद कर लिया। साँखू के सामन्त दुर्जनसिंह ने पहले तो बड़ी वीरता से अपनी रक्षा की, परन्तु अन्त में अपने प्रयत्न को सफल होते न देख कर इन्होंने आत्महत्या कर ली। तदनन्तर सूरतसिंह ने दुर्जनसिंह के लड़के को हाथ पैर बाँध कर क़ैद कर लिया और वहाँ के सरदारों से दण्ड में १२ हज़ार रुपये लिये। तदनन्तर बीकानेर के प्रधान वाणिज्य स्थान चुरू पर

सूरतसिंह ने आक्रमण किया । सूरतसिंह छः महीने तक उस स्थान को घेरे रहे; परन्तु उनकी अभिलाषा पूर्ण नहीं हुई । परन्तु एक दूसरे उपाय से उनकी अभिलाषा पूर्ण हुई । बन्दी सामन्तों ने सूरतसिंह को गद्दी पर बैठाना निश्चित कर लिया, और उन लोगों ने इसका प्रस्ताव भी सूरतसिंह से किया । इस प्रस्ताव पर सूरतसिंह सहमत हो गये और उन्होंने सामन्तों को छोड़ भी दिया । तदनन्तर चुरू से दो लाख रुपये ले कर वे चले आये ।

इस प्रकार सूरतसिंह बीकानेर लौट आये । यहाँ आ कर बालक महाराज के नाश का उपाय ढूँढ़ने लगे । परन्तु इस कार्य को करने के लिये उन्हें बड़ी बाधाओं का सामना करना पड़ा । यद्यपि सूरतसिंह की बुद्धि राक्षसी थी, तथापि उसकी भगिनी राजा के प्राणों की रक्षा करने के लिये व्याकुल थी । एक क्षण भी वह बालक राजा से अलग नहीं होती थी । सूरतसिंह ने इसके लिये भी उपाय सोच लिया । उन्होंने अपनी भगिनी का शीघ्र ही विवाह कर देना निश्चित किया । तदनुसार उन्होंने नरवर के राजा के साथ अपनी बहिन का ब्याह कर ही दिया। अब सूरतसिंह अपनी अभिलाषा पूरी करने के लिये समर्थ हो गये । पहले तो उन्होंने महाजन के सामन्तों को राजहत्या रूप महापातक का काम सौंपा, परन्तु उन सामन्तों को इस काम में असमर्थ देख कर उन्होंने स्वयं ही अपने भतीजे राजा का नाश कर दिया । तदनन्तर सूरतसिंह बीकानेर के राजा हुए । परन्तु इनका राज्य निष्कण्टक नहीं हो सका । कभी भाटियों के साथ लड़ाई है तो कभी सामन्तों के साथ मनमुटाव है, इसी प्रकार लड़ते झगड़ते इनका समय बीता ।

सूरतसिंह ने मारवाड़ के महाराज मानसिंह के विरुद्ध धौंकलसिंह को युद्ध करने की सहायता दी थी, इस कारण मानसिंह ने बीकानेर पर चढ़ाई की । उस समय सूरतसिंह बहुत भयभीत हुए उन्होंने अंग्रेज़ी सरकार से सन्धि करना चाही, परन्तु सरकार ने ऐसा करना स्वीकार न किया ।

पुनः सूरतसिंह ने ख़ाली ख़ज़ाने को पूर्ण करने के लिये प्रजापीडन तथा लूट खसोट करना आरम्भ कर दिया । नये कर बैठाये जाने लगे । परन्तु कोई भी सूरतसिंह के विरुद्ध खड़ा नहीं हुआ ।

इस प्रकार सूरतसिंह का अत्याचार बढ़ता गया । सहने की भी सीमा होती है । उतना ही अत्याचार सहा जा सकता है जो सहने लायक है । सूरतसिंह के अत्याचार की मात्रा बढ़ गयी, सामन्तों ने भी उसी समय विद्रोहाचरण कर दिया ।

इसी समय अंग्रेज़ी सरकार राजपूताने के राजाओं से सन्धि कर रही थी । बीकानेर के महाराज ने भी बड़ी प्रसन्नता से सन्धि की । इस सन्धि का बीकानेर के उत्तेजित सामन्तों पर बड़ा प्रभाव पड़ा । बीकानेर में सरकार की सहायता से शान्ति स्थापित हो गयी । सन् १८२४ ई० में इनका शरीर त्याग हुआ ।

(टाड्स राजस्थान)

सूरदास=इनकी गणना अष्टछाप अर्थात् ब्रज के आठ कवियों में है । उन आठ कवियों के नाम ये थे । सूरदास, कुम्भनदास, परमानन्ददास, कृष्णदास, छीतस्वामी, गोविन्दस्वामी, चतुर्भुजदास और नन्ददास था । इनमें से प्रथम चार महाप्रभु वल्लभाचार्य जी के और अन्तिम चार श्रीस्वामी विट्ठलनाथजी के सेवक थे । ब्रज भाषा के ये आठों कवि बड़े प्रसिद्ध हो गये हैं, और इन लोगों ने श्रीकृष्णचन्द्र का यश कीर्तन किया है । सूरदास कृत "सूरसागर" नामक ग्रन्थ वेङ्कटेश्वर प्रेस बम्बई से प्रकाशित हुआ है । उसका सम्पादन बाबू राधाकृष्णदास ने किया है । उसकी भूमिका में उन्होंने सूरदास जी की जीवनी भी लिखी है । उसीकी सहायता से सूरदास की जीवन घटनाओं की कुछ पंक्तियाँ लिखी जाती हैं—सूरदासजी का जन्म अनुमान से सं० १५४० वि० सन् १४८४ ई० में हुआ था । उनकी मृत्यु सं० १६२० वि० में होना बतलाया जाता है । इनकी मृत्यु का समय केवल अनुमान ही पर निर्भर है । क्योंकि उन्होंने ६७ वर्ष की अवस्था में

"सूरसारावली" लिखी है । इससे ८० वर्ष की अवस्था तक उनके जीवित रहने का अनुमान किया जा सकता है । बाबू राधाकृष्णदास ने लिखा है—मुझे उनकी अवस्था का लग भग अस्सी वर्ष के होने का पक्का प्रमाण मिला है। परन्तु उन्होंने उस पक्के प्रमाण का उल्लेख कहीं नहीं किया। सूरदासजी के जन्म के विषय में सूरसारावली का एक पद्य दिया जा सकता है—

"गुरुप्रसाद होत यह दरशन, सरसठ वर्ष प्रवीन।
शिव विधान तप करेउ बहुत दिन, तऊ पार नहिं लीन॥"

"सूरसारावली" सूरसागर की एक प्रकार की सूची कही जा सकती है और सूरसागर के बनने के थोड़े ही दिनों के बाद वह बनी है, क्योंकि ग्रन्थ की सूची ग्रन्थ समाप्त होते ही बनायी जाती है। सूरदासजी ने "साहित्यलहरी" नाम की एक और पुस्तक लिखी है, उसमें सूरसागर के कूट पदों का संग्रह है। यह भी सूरसागर के बनने के कुछ ही दिनों बाद की बनी मालूम होती है। उसमें सूरदासजी ने संवत् यों लिखा है—

"मुनि पुनि रसन के रस लेख।
दसन गौरीनन्द को लिखी सुबल संवत पेख॥
नन्दनन्दन मास छै ते हीन तृतीया बार।
नन्दनन्दन जनम ते हैं बाण सुख आगार॥
तृतिय ऋक्ष सुकर्म योग विचारि सूर नवीन।
नन्दनन्दनदास हित साहित्यलहरी कीन॥"

इससे यह विदित होता है कि संवत् १६०७ वि० में "साहित्यलहरी" बनी। अतः इस ग्रन्थ के लिखने के समय सूरदासजी की अवस्था ६७ वर्ष की थी। परन्तु इस हिसाब में यह मान लेना पड़ेगा कि सूरसारावली और साहित्यलहरी दोनों एक ही समय में बनी हैं। परन्तु इसमें कोई दृढ़ प्रमाण नहीं है। सम्भव है ये दोनों ग्रन्थ बहुत आगे पीछे के बने हुए होंगे। परन्तु इतना निश्चय अवश्य है कि ये दोनों ग्रन्थ सूरसागर के पश्चात् बने हैं, क्योंकि एक तो उसकी सूची है और दूसरी बहुत कर के उसका संग्रह है। यह भी जान पड़ता है कि सूरदासजी ने सूरसागर बूढ़ी अवस्था में समाप्त किया होगा, क्योंकि वे एक लाख पद बना चुकने पर सूरसारावली बनाने लगे थे और वह सब पद सूरसागर ही में सन्निविष्ट थे, क्योंकि इन तीन ग्रन्थों के सिवाय इनका कोई चौथा ग्रन्थ नहीं दीख पड़ता है। तब बूढ़ी अवस्था में सूरसागर बना कर ये महाशय बहुत दिनों तक तो जीवित रहे ही न होंगे। अतः सूरसारावली और साहित्यलहरी के समयों में चाहे कितना ही अन्तर क्यों न हो, वह सम्भवतः दस वर्ष से अधिक न होगा। अतः १५४० वि० सं० दो चार वर्ष इधर उधर इनका जन्म समय अवश्य होगा।

सूरदासजी लिखते हैं कि इनके गुरु महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य थे और गोस्वामी विट्ठलनाथजी ने सूरदासजी को अष्टछाप कवियों में रखा। यथा—

"श्रीवल्लभ गुरु तत्त्व सुनायो, लीला भेद बतायो।"
"थपि गोसाईं करी मेरी आठ मध्ये छाप।"

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने लिखा है—आचार्यजी का जन्म और मरण काल सं० १५३५ और १५८७ था और गोसाईं जी का १५७२ और १६४२ है। जब सूरदासजी आचार्य के शिष्य थे तब निश्चित है कि ये अवस्था में भी उनसे छोटे होंगे, अतः सूरदासजी का जन्म १५३५ वि० सं० के पीछे का होगा। उनका मरणकाल भी १५७२ से बहुत पीछे का होगा, क्योंकि इस संवत् में जन्म ले कर गोस्वामीजी ने बहुत दिनों में प्रतिष्ठा प्राप्त की होगी और तब अपने चार शिष्यों के साथ सूरदास को अष्टछाप में छापा होगा। अतः इस हिसाब से भी सूरदासजी का जन्म मरण काल यथाक्रम सं० १५४० और १६२० के लगभग ठहरता है।

गोस्वामी विट्ठलनाथजी के पुत्र गोकुलनाथजी ने "चौरासी वैष्णवों की वार्ता" नाम की एक पुस्तक लिखी है। भक्तमाल में भी बहुत भक्तों की जीवनी लिखी गयी है। इन दोनों पुस्तकों में सूरदासजी का वृत्तान्त लिखा है, परन्तु वह कई कारणों से असम्पूर्ण है। सूरदासजी की वंश विषयक गड़बड़ी उसमें महान् दोष है। सरदार कवि कृत "सूरदास के दृष्टकूट" नामक ग्रन्थ से विदित होता है कि

इनका पूर्व पुरुष प्राथंज गोत्रीय जगात वंश वाला ब्रह्मराव नामक भद्र पुरुष था। इन्हींके वंश में पृथ्वीराज के राजकवि चन्द्र उत्पन्न हुए जिनको पृथ्वीराज ने ज्वाला देश दिया। उनके चार पुत्र हुए जिनमें प्रथम राजा हुआ। उसके द्वितीय पुत्र का नाम गुणचन्द था। उसका पुत्र शीलचन्द और शीलचन्द का पुत्र वीरचन्द हुआ। वीरचन्द रणथम्भोर के राजा हम्मीरदेव का मित्र था। उसके वंश में हरिचन्द बड़ा विख्यात हुआ। उसका पुत्र आगरे में रहा जिसके सात पुत्र हुए। उनके नाम ये थे—कृतचन्द, उदारचन्द, रूपचन्द, बुद्धिचन्द, देवचन्द, प्रबोधचन्द और सूरजचन्द। सातवाँ पुत्र सूरजचन्द ही विख्यात कवि सूरदास था। इनके सब भाई शाह से युद्ध कर के परमगति को सिधारे सूरजचन्द अन्धा था अतः वह एक कूएँ में जा पड़ा और छः दिन तक वहीं पड़ा रहा। छः दिन तक जब किसी ने पुकार नहीं सुनी तब सातवें दिन स्वयं आ कर यदुपति ने उसे बचाया।

"परो कूप पुकार काहू सुनी ना संसार।
सातवें दिन आय यदुपति कियो आपु उधार॥
दिव्य चख दै कही शिशु सुनु जोग वर जो चाइ।
हौं कही प्रभु भगति चाहत सत्रु नास स्वभाइ॥
दूसरो ना रूप देखौं देखि राधा स्याम।
सुनत करुणासिन्धु भाखी एवमस्तु सुधाम॥
प्रबल दच्छिन विप्र कुल तें शत्रु ह्वै हैं नास।
अखिल बुद्धि विचार विद्या मान मानै मास॥"

इससे सूरदासजी का भाट होना प्रमाणित होता है। क्योंकि एक तो जगात कोई ब्राह्मण नहीं हैं और भाट को "जगातिया" कहते भी हैं। दूसरे पृथ्वीराज के चन्द भाट ही थे यह बात निश्चित है, ऊपर के पद्य में शत्रु से मुसल्मानों का अभिप्राय है। क्योंकि मुसल्मानों ही से लड़ कर सूरदास के सब भाई मारे गये थे। वरदान यह हुआ कि दक्षिण के पेशवा राजा शत्रुओं का नाश करेंगे। उस समय तक मरेहटों को कुछ भी बल नहीं था, और तो और, क्षत्रिय राजा शिवाजी तक भी तब तक नहीं उत्पन्न हुए थे। अतः उस समय यह अनुमान करना कि पेशवा राजा द्वारा शत्रुओं का नाश होगा—असम्भव था। इसीसे यह भी मानना पड़ेगा कि उक्त छन्द सूरदास का नहीं है पीछे से बाला जी बाजीराव पेशवा के समय किसी भाट ने बनाया होगा। श्रीगोकुलनाथजी ने अपने "चौरासीचरित्र" में और मियाँसिंह ने भक्तविनोद में सूरदास को ब्राह्मण लिखा है। ये गोकुलनाथजी गोस्वामी विट्ठलनाथजी के पुत्र थे। और गोस्वामीजी सूरदासजी के मरने के समय ४८ वर्ष के थे। अतः समझ पड़ता है कि गोकुलनाथजी भी उस समय २०—२५ वर्ष के होंगे। फिर गोस्वामीजी और सूरदासजी में घनिष्ठ प्रेम था। अतः यह बात असम्भव है कि गोस्वामीजी अथवा उनके पुत्र सूरदासजी का कुल तक न जानते हों। पूर्वोक्त दोनों ग्रन्थों में शत्रु नाश वाले वरदान का भी कोई उल्लेख नहीं है किन्तु केवल कूएँ में गिरने का वहाँ उल्लेख है।

इससे यह सिद्ध होता है कि चौरासी वार्ता और भक्तमाल के अनुसार सूरदासजी सारस्वत ब्राह्मण थे और इनके पिता का नाम रामदास था इनका जन्म दिल्ली के पास सीही ग्राम निवासी दरिद्र माता पिता के यहाँ हुआ था। अब प्रश्न यह है कि सूरदासजी जन्मान्ध थे या नहीं। इस विषय में भक्तमाल के अतिरिक्त और कोई प्रमाण नहीं मिलता। परन्तु रीवाँ नरेश महाराज रघुराजसिंह कृत रामरसिकावली में भक्तमाल के आधार पर लिखा है— "जनम ही ते है नैनविहीना" चौरासी वार्ता में इनके जन्मान्ध होने का वर्णन नहीं है। एक किंवदन्ती है कि जब सूरदास अन्धे न थे तब वे एक युवती को देख कर उस पर आसक्त हो गये और यह दोष नेत्रों का जान सूइयों से अपनी दोनों आँखें फोड़ डालीं। यह किंवदन्ती असत्य नहीं कही जा सकती। सम्भव है कि इस किंवदन्ती के साथ स्त्री का सम्बन्ध होने के कारण यह घटना चौरासी वार्ता में न लिखी गयी हो।

भक्तमाल में लिखा है कि इनके माता पिता ने आठ वर्ष की अवस्था में इनका यज्ञोपवीत

किया था। कुछ काल में इनके माता पिता मथुरा दर्शन को गये। उस समय सूरदास भी उनके साथ थे। जब वे घर लौटने लगे तब सूरदास ने उनसे विनती की कि "अब मुझे यहीं रहने दो" इस पर इनके माता पिता रोने लगे और बोले "तुम्हें अकेले किसके सहारे छोड़ जावें" तब सूर ने कहा "क्या कृष्णचन्द्र का सहारा थोड़ा है" इस पर एक साधु ने कहा "मैं इस बालक को अपने साथ रक्खूँगा। तब सूर के माता पिता रोते कलपते घर चले गये और सूर व्रज ही में रहे। अन्ध होने के कारण सूरदास एक बार कूएँ में गिर पड़े। छः दिन तक तो इन्हें किसीने नहीं निकाला, सातवें दिन किसीने निकाला। सूर ने समझा स्वयं कृष्ण भगवान् ने निकाला है। अतः उन्होंने निकालने वाले की बाँह पकड़ ली, पर वह बाँह छुड़ा कर भाग गया। इस पर उन्होंने यह दोहा पढ़ा—

"बाँह छुड़ाये जात हो, निबल जानिकै मोहिं।
हिरदै से जब जाइ हौ, मर्द बदौंगो तोहिं॥"

इस घटना के उपरान्त गऊघाट नामक स्थान पर जो आगरा और मथुरा के बीच में है—रहते रहे। वहीं ये महाराज वल्लभाचार्य महाप्रभु के शिष्य हुए और उन्हींके साथ गोकुल में श्रीनाथजी के मन्दिर में गये तथा बहुत काल पर्यन्त वहीं रहे। इसी स्थान पर इनसे गोस्वामी विट्ठलनाथजी से बहुधा मुलाकात हुआ करती थी और गोस्वामी जी इनके पद सुना करते थे।

यहीं रहते रहते ये महाराज वृद्धावस्था को प्राप्त हुए और जब इन्होंने अपनी मृत्यु का समय निकट आया जान लिया तब ये पारासोली को चले गये। जब गोस्वामी जी को यह संवाद मिला तब ये भी पारासोली पहुँचे। उसी समय किसीने सूरदासजी से पूछा "आपने अपने गुरुजी के लिये कोई छन्द नहीं बनाया है" इस पर सूरदासजी ने कहा "मैंने सभी छन्द गुरुजी ही के लिये बनाये हैं क्योंकि श्रीकृष्णचन्द्र और गुरुजी में मैं कोई भेद नहीं देखता।" तथापि उन्होंने एक छन्द भी कहा—

"भरोसो दृढ़ इन चरनन केरो।
श्रीवल्लभ नखचन्द छटा बिनु सब जग माँझ अँधेरो॥
साधन और नहीं हो कलि में जासों होत निबेरो।
सूर कहा कहि दुविध आँधरो बिना मोल को चेरो॥"

इस प्रकार सूरदासजी ने गुरु की स्तुति कर के अन्त में एक श्रीराधाकृष्ण की स्तुति का एक छन्द और पढ़ा। तदनन्तर विट्ठलनाथजी से कुछ कथोपकथन करने के अनन्तर इन्होंने शरीर त्याग किया।

(हिन्दी नवरत्न)

सूर्य=प्रजापति ऋषि कश्यप के पुत्र। अदिति के गर्भ से इनका जन्म हुआ था। विश्वकर्मा की पुत्री संज्ञा को इन्होंने ब्याहा था। संज्ञा के गर्भ से वैवस्वत मनु और यम नामक दो पुत्र और यमुना नाम की एक कन्या उत्पन्न हुई थी। इनकी दूसरी स्त्री का नाम छाया था। छाया के गर्भ से शनि नाम का पुत्र और तपती नाम की कन्या उत्पन्न हुई थी। कपिराज सुग्रीव और वीरवर कर्ण इन्हींके औरस से उत्पन्न हुए थे। पक्षिराज गरुड़ के बड़े भाई अरुण इनके सारथि हैं।

सूर्यमल=बूँदी के राजा नारायणदास के ये पुत्र थे। नारायणदास के स्वर्गवास होने पर सन् १५३० ई० में सूर्यमल बूँदी के सिंहासन पर विराजमान हुए। सूर्यमल बलिष्ठ और असीम साहसी थे। सूर्यमल के सिंहासनारूढ़ होते ही मेवाड़ के राणा और बूँदी के राजा परस्पर वैवाहिक सम्बन्ध में बँध गये। राव सूर्यमल ने अपनी सूजाबाई नाम की बहिन को राणा से ब्याह दिया और राणा रत्नसिंह ने अपनी बहिन को सूर्यमल से ब्याह दिया। परन्तु दुःख की बात है कि इस सम्बन्ध का फल दोनों राजवंशों के लिये बड़ा भयानक हुआ। कवि लिखते हैं कि राव सूर्यमल अपने पिता नारायणदास के समान नामी अफ़ीमची थे। एक समय राव सूर्यमल चित्तौड़ में जा कर अफ़ीम की पिनक में आँख बन्द किये बैठे थे। मेवाड़ के पूर्वदेश के एक सामन्त ने सूर्यमल को सोया हुआ जान कर एक तिनके से उनके कान खोद दिये। सूर्यमल ने आँख खोलकर उस सामन्त को देखा शीघ्र ही

तलवार से उन्होंने उसके दो टुकड़े कर डाले। उस सामन्त के पुत्र के हृदय में तत्क्षण बदला लेने का भाव उठा, परन्तु वहाँ समय न रहने के कारण कुछ भी नहीं कर सका। तदनन्तर वह सामन्तपुत्र महाराणा के हृदय में सूर्यमल के प्रति विजातीय द्वेष उत्पन्न करने लगा। आगे की घटना से सामन्तपुत्र की इच्छा पूरी हुई।

सुन्दरी सूजाबाई ने अपने स्वामी और भ्राता को अपने यहाँ भोजन कराने के लिये निमन्त्रित किया। दोनों के भोजन कर लेने पर सूजाबाई ने कहा—"हमारे भाई ने तो सिंह के समान भोजन किया है, और स्वामी ने मानो बालकों के समान अन्न और व्यञ्जन से खेल किया है" इस वचन को सुनते ही राणा के क्रोध का ठिकाना नहीं रहा। उन्होंने समझा कि हमारे अपमान के लिये सूजाबाई ने ऐसा किया है। परन्तु अतिथि के प्रति राजपूतधर्म का विचार कर राणा उस समय चुप हो रहे। परन्तु इसीका फल हुआ कि पीछे राणा और सूर्यमल दोनों मारे गये।

(टाड्स राजस्थान)

सृञ्जय=महाराज श्वित्य के पुत्र का नाम। महर्षि पर्वत और देवर्षि नारद के साथ उनकी मित्रता थी एक दिन दोनों मुनि राजा सृञ्जय के यहाँ उपस्थित हुए, राजा सृञ्जय की एक अविवाहिता कन्या उनके सामने आ कर खड़ी हुई। नारद की प्रार्थना से राजा ने उस सुन्दरी कन्या को नारद को दे दिया। महर्षि पर्वत भी उस कन्या को चाहते थे। अतः पर्वत ने नारद को शाप दिया और नारद ने पर्वत को। दोनों के शाप का यह फल हुआ कि एक को छोड़ कर दूसरा स्वर्ग को नहीं जा सकता है। सृञ्जय की प्रतिज्ञा के अनुसार कन्या नारद को सौंपी गयी।

राजा सृञ्जय की रानी के बहुत दिनों तक कोई पुत्र नहीं हुआ। नारद के वर से सृञ्जय की रानी के एक सुवर्णष्ठीवी नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। यह पुत्र असाधारण तेजःसम्पन्न था। इसका मूत्र थूक आदि सभी सुवर्णमय होता था। एक बार सुवर्ण के लोभ से चोर राजभवन में घुसे, और राजकुमार सुवर्णष्ठीवी को उठा ले गये। वन में ले जा कर उन लोगों ने राजकुमार को टुकड़े टुकड़े कर डाला, परन्तु उन लोगों को लाभ कुछ भी नहीं हुआ। इससे क्रुद्ध हो कर वे आपस में मर कट कर के मर गये। देवर्षि नारद ने राजा सृञ्जय को बहुत समझाया तथापि उन्हें किसी प्रकार की शान्ति नहीं हुई। अन्त में नारद ने राजकुमार को जीवित कर दिया।

(महाभारत)

सेतराम=ये कन्नौज के अन्तिम राजा जयचन्द के पौत्र थे। और अपने भाई सियाजी के साथ भाग्य की परीक्षा करने के लिये मारवाड़ की भूमि में गये थे। वहाँ लाखा फूलाणी के साथ युद्ध में ये उसीके हाथ मारे गये।

(टाड्स राजस्थान)

सेनापति कवि=ये वृन्दावन के रहने वाले थे और इनका जन्म १६८० सं० में हुआ था। इन्होंने तीर्थ संन्यास ले कर अपनी समस्त अवस्था वहीं व्यतीत की थी। ये उस समय के महान् कवियों में से थे। काव्यकल्पद्रुम नामक ग्रन्थ इन्होंने बड़ा ही सुन्दर बनाया है। इनके बनाये कवित्त हज़ारा में पाये जाते हैं।

सेवक कवि=ये भाषा के कवि बनारस के रहने वाले थे, और ये काशी नरेश के भाई बाबू देवकीनन्दन जी के साथ रहते थे। श्रृङ्गार रस सम्बन्धी इनके काव्य बहुत सुन्दर हैं। शिवसिंह जी के समय ये कवि जी महाराज जीवित थे।

सोमदत्त=कौरवपक्षीय एक वीर योधा। भारत युद्ध के १४ वें दिन ये सात्यकि के हाथ मारे गये। देवकराज की कन्या देवकी के स्वयम्बर के समय जब यदुवंशी वीर शिनि वसुदेव के ब्याह के निमित्त देवकी का हरण किया था, उस समय सोमदत्त ने उनका विरोध किया था। सबके सामने शिनि ने सोमदत्त को लात से मारा था। दोनों में खूब युद्ध हुआ। शिनि देवकी को ले कर चले गये। इनके पुत्र का नाम भूरिश्रवा था।

सौदास=इनका दूसरा नाम कल्मषपाद था। (देखो कल्मषपाद)

सौभरि=तपोबलसम्पन्न ऋषि। संसारी होने की इनकी वासना हुई। अतः तपोबल से सुन्दर मूर्ति धारण कर के मान्धाता की कन्याओं को

ब्याह कर ये अपने तपोवन में लौट आये। उन स्त्रियों के साथ बहुत दिनों तक इन्होंने गृहस्थ धर्म का पालन किया था। उन स्त्रियों के गर्भ से सौभरि के बहुत पुत्र उत्पन्न हुए थे। तदनन्तर विषय त्यागकर मुनि पुनः तपस्या में नियुक्त हुए।

सौर=एक धार्मिक सम्प्रदाय का नाम। इस सम्प्रदाय के लोग सूर्य की उपासना करते हैं। इस भारत में सूर्य की उपासना प्रत्येक हिन्दू किसी न किसी प्रकार करते हैं अतः इस समय इस सम्प्रदाय की स्वतन्त्र सत्ता नहीं है। सूर्यदेव को जगत्पति मान कर उनकी पूजा की पद्धति भारत में बहुत दिनों से प्रचलित है। वेदों में सूर्य, आदित्य, अर्यमा, सूर आदि नामों से इनकी पूजा हुई है। शङ्कराचार्य के समय में सौर सम्प्रदाय के लोगों का (जो विभिन्न शाखाओं में विभक्त थे) उल्लेख शङ्करदिग्विजय नामक ग्रन्थ में पाया जाता है। उस समय सौर सम्प्रदाय में छः शाखाएँ वर्तमान थीं। उनमें एक सम्प्रदाय के सौर गण प्रातः सूर्य की, ब्रह्मा वा सृष्टिकर्ता के नाम से, उपासना करते थे। दूसरे सम्प्रदाय के सौर मध्याह्न सूर्य को ईश्वर कह कर (अर्थात् ध्वंसकर्ता और पुनः पुनः सृष्टिकर्ता के रूप में) उपासना करते थे। तीसरे सम्प्रदाय के सौर गण अस्तगामी सूर्य को रक्षाकर्ता के रूप में मान उनकी उपासना करते थे। चौथे सम्प्रदाय के सौर प्रातः मध्याह्न और सायं तीनों काल के सूर्य को सृष्टि स्थिति लय कर्ता समझ कर उपासना करते थे। पाँचवें सम्प्रदाय के सौर सूर्य की मूर्ति बना कर उसकी पूजा में रत रहते थे। छठवें सम्प्रदाय के सौर गण सूर्य की मानसिक मूर्ति की कल्पना कर के उसकी मानसिक पूजा करते थे। इस छठवीं शाखा के सौर अपना मस्तक, दोनों बाहु तथा वक्षस्थल पर तप्त लौहयन्त्र से गोलाकार अङ्कित कराते थे। आज षड्विध सौर सम्प्रदाय की कोई भी शाखा वर्तमान नहीं है। परन्तु इस समय जो अपने को "सौर" कह कर परिचित करते हैं वे मस्तक पर रक्त चन्दन का तिलक लगाते हैं और गले में स्फटिक की माला पहनते हैं। इनकी एक और भी विशेषता है—ये रविवार के दिन नोन नहीं खाते। ये संक्रान्ति के दिन व्रत करते हैं और दूसरे दिन सूर्य का दर्शन कर के भोजन करते हैं।

(भारतवर्षीय इतिहास)

सौवीर=प्राचीन एक राजा का नाम। ये एक बार कपिल मुनि के यहाँ ब्रह्मज्ञान का उपदेश प्राप्त करने के लिये जाते थे। मार्ग में इनका एक कहार बीमार पड़ा, अतः उसके स्थान पर सिपाहियों ने एक मोटा ताज़ा आदमी ला कर लगा दिया। वह आदमी धीरे धीरे चलने लगा, इससे राजा की पालकी बीच बीच में डोला करती थी। राजा ने कहा—"बाधति स्कन्ध एष ते" अर्थात् तुम्हारा कन्धा दर्द करता है। राजा के वाक्य में "बाधति" प्रयोग अशुद्ध है। अतः उस ब्राह्मण ने कहा—"स्कन्धो न बाधते राजन् यथा बाधति बाधते" अर्थात्, राजा! कन्धे में वैसा दर्द नहीं है, जैसा कि तुम्हारे "बाधति" ने दर्द उत्पन्न किया है। इससे राजा ने समझा कि ये कोई विद्वान् ब्राह्मण हैं। अतः राजा ने विनयपूर्वक उनका आदर किया, तथा उनसे उपदेश ले कर प्रसन्न हुए। ये ब्राह्मण और कोई नहीं थे, किन्तु प्रसिद्ध जड़भरत थे।

(विष्णुपुराण)

स्वरूपसिंह=(१) उदयपुर के महाराणा। ये महाराणा सरदारसिंह के छोटे भाई थे। महाराणा सरदारसिंह ने अपुत्रावस्था में प्राण त्याग किया, परन्तु मरने के पहले उन्होंने अपने छोटे भाई सरदारसिंह को अपना उत्तराधिकारी नियत किया। सन् १८४२ ई० में स्वरूपसिंह मेवाड़ के सिंहासन पर विराजे। उस समय राज्य में एक प्रकार की अराजकता सी फैली हुई थी, परन्तु सुशासन से उस अराजकता को निर्मूल करने के बदले नये महाराणा ने कठोर रूप धारण किया। इसका फल बड़ा अनिष्टकर हुआ। महाराणा और सामन्तों के बीच का मनोमालिन्य और भी बढ़ गया। उस समय अंग्रेज़ी सरकार के दूत ने दोनों पक्षों में सन्धि करा देना निश्चित किया। तदनुसार दोनों में एक सन्धि पत्र लिखा गया। परन्तु इस सन्धिबन्धन से राज्य की स्थिति में किसी प्रकार का

परिवर्तन नहीं हुआ। इस विशृङ्खलता के कारण राज्य की आमदनी बहुत घट गयी, अतः राणा ने गवर्नमेंट से नियत कर के घटा देने की प्रार्थना की। इस प्रार्थना से गवर्नमेंट ने तीन लाख नियत कर में से घटा कर दो लाख कर दिये।

यद्यपि मेवाड़ में शान्ति स्थापित करने के लिये अंग्रेज़ी राजदूत ने सन्धि करा दी तथापि उस सन्धि की किसी धारा का सामन्तों ने पालन नहीं किया। उनका परस्पर का मनोमालिन्य और भी बढ़ गया। यहाँ तक कि कई एक सामन्त महाराणा के विरुद्ध युद्ध करने के लिये खड़े हो गये। इस भयानक अवस्था को दूर करने के लिये अंग्रेज़ी सरकार ने एक और सन्धिपत्र लिखवाया। जिसमें महाराणा का अधिकार बिलकुल घटा दिया गया। सन् १८६१ ई० में इन नये महाराणा का स्वर्गवास हुआ। (टाड्स राजस्थान)

(२) बीकानेर के महाराज अनूपसिंह के ये पुत्र थे। अनूपसिंह का परलोक वास होने पर सन् १७०६ ई० में स्वरूपसिंह पिता के सिंहासन पर बैठे। परन्तु इन्होंने बहुत दिनों तक राज्य नहीं किया। अनूपसिंह ने अपने जीवन की शेष दशा में बादशाह की सेना से सम्बन्ध त्याग दिया था। इसी कारण बादशाह ने ओड़नी देश जो पहले अनूपसिंह को दिया था, लौटा लिया। स्वरूपसिंह ने अपनी सेना को साथ ले उस ओदनी देश पर अधिकार करने के लिये धावा किया। इसी युद्ध में ये मारे भी गये। (टाड्स राजस्थान)

स्वामीनारायण=एक वैष्णव सम्प्रदाय। इस सम्प्रदाय की उत्पत्ति उन्नीसवीं सदी में हुई है। वल्लभाचारी सम्प्रदाय का संस्कार कर के यह सम्प्रदाय उत्पन्न हुआ है। इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक ने गोस्वामियों से विरुद्धाचरण कर के अपना दल पुष्ट किया था। स्वामीनारायण सम्प्रदाय में जो शिष्य होता है उसे छः और आदमी उस सम्प्रदाय में शिष्य कराने पड़ते हैं। सुतरां इस सम्प्रदाय की दिनों दिन उन्नति हो रही है। इस समय दो लाख से भी अधिक मनुष्य इस सम्प्रदाय के अनुयायी हो गये हैं। लखनऊ से १२० माइल उत्तर पूर्व की ओर चपाई नामक गाँव में सन् १७८० ई० में स्वामीनारायण उत्पन्न हुए थे। इनका असली नाम सहजानन्द था। ये ब्राह्मण थे। रामानन्द स्वामी नामक गुरु के निकट इन्होंने जूनागढ़ में मन्त्रदीक्षा ग्रहण की थी। अहमदाबाद से १२ माइल दक्षिण की ओर बड़ताल में इनकी प्रधान गद्दी है। इस धर्म मत का प्रचार गुजरात में बहुत है। (भारतवर्षीय इतिहास)

स्वाहा=अग्निदेव की भार्या का नाम। वैदिक मन्त्रों के साथ इनका नाम उच्चारण कर के यज्ञ में किसी देवता के लिये हवि देने पर वह हवि उसी देवता को प्राप्त होता है।

ह

हंस=हिम्बक के भाई का नाम।

हनुमान्=रामचन्द्र के परमभक्त कपिवीर। पवनदेव के औरस और अञ्जना के गर्भ से ये उत्पन्न हुए थे। रामचन्द्र और सुग्रीव की मित्रता इनके ही द्वारा हुई थी। सीता का अनुसन्धान करने के लिये ये ही समुद्र पार कर सब से पहले लङ्का गये थे। सीता से इन्होंने बातें कीं और उनसे चिह्न ले कर रावण के प्रमोदवन का नाश करने लगे। इस कारण इनका राक्षसों से युद्ध हुआ। बहुत राक्षस मारे गये, अन्त में मेघनाद ने इन्हें ब्रह्मपाश में बाँध लिया। तदनन्तर लङ्का को जला कर ये राम के समीप लौट आये।

लङ्का के युद्ध में रावण ने जब लक्ष्मण को शक्ति मारी, और लक्ष्मण मूर्च्छित हो गये तब हनुमान् सजीवन बूटी लाये थे। रामचन्द्र के अयोध्या लौट आने की सूचना इन्हों ही ने भरत को दी थी। ये रामचन्द्र के बड़े भक्त थे। भीमसेन इनके छोटे भाई थे। लङ्का के युद्ध में इन्होंने बड़ी वीरता दिखलायी थी।

हरिचन्द कवि=ये बरसाने के रहनेवाले थे और भाषा के कवि थे। इन्होंने छन्दों में पिङ्गल ग्रन्थ लिखा है। परन्तु इनका समय नहीं बताया जा सकता, क्योंकि इन्होंने अपनी पुस्तक में सन् संवत् कुछ भी नहीं लिखा है।

हरिचरणदास=ये भापा के कवि थे। इन्होंने भापा साहित्य में एक सुन्दर ग्रन्थ बनाया है। उस ग्रन्थ का नाम "बृहत्कविवल्लभ" है। परन्तु इन्होंने इस ग्रन्थ में अपना कुछ भी पता नहीं बताया है। अतः इनके विषय में और कुछ नहीं लिखा जा सकता है।

हरि कवि=ये भापा के महाकवि थे। इन्होंने "भापाभूषण" की टीका "चमत्कारचन्द्रिका" और "कविप्रिया" की टीका "कविप्रियाभरण" नामक ग्रन्थ विस्तारपूर्वक बनाये हैं। इन्होंने "अमरकोप" का भापा में उलथा किया है।

हरिदास कवि=(१) ये जाति के कायस्थ और पटना के निवासी थे। इन्होंने भापा साहित्य में "रसकौमुदी" नामक बहुत उत्तम ग्रन्थ बनाया है। इसके अतिरिक्त भापा साहित्य के १२ ग्रन्थ और भी इन्होंने बनाये हैं। वे ग्रन्थ अलङ्कार छन्द आदि विषय के हैं। ये कवि एकाक्ष थे।

(२) ये बन्दीजन भापा के कवि थे और बाँदा के रहने वाले थे। इन्हींके पुत्र नोने कवि थे। इन्होंने "राधाभूषण" नामक एक शृङ्गार का सुन्दर ग्रन्थ बनाया है।

हरिदास स्वामी=ये महाराज वृन्दावन के निवासी थे और सं० १६४० में उत्पन्न हुए थे। इनका ग्रन्थ भक्तमाल ग्रन्थ में लिखा है। ये संस्कृत में जयदेव कवि के समान कविता करते थे। भापा की भी इनकी कविता सूर और तुलसी के समान होती थी "रागसागर" तथा "रागकल्पद्रुम" में इनकी कविता देखी जाती है। इन्होंने तानसेन को काव्य और सङ्गीत की शिक्षा दी थी।

हरिद्वार=(देखो मायापुर)

हरिनाथ कवि=ये कवि असनी के रहने वाले महापात्र बन्दी थे। सं० १६४४ में इनका जन्म हुआ था। इनके पिता का नाम नरहरिजू था, और ये बड़े ऐश्वर्यशाली थे। इनको अनेकों राजाओं से कई लाख रुपये मिले थे। बांधवनरेश नेजाराय की प्रशंसा में इन्होंने यह दोहा पढ़ा था—

"लङ्का लौं दिल्ली दई, साहि विभीषण काम।
भयो बघेले रामयो, राजा राजाराम॥"

इस दोहे को सुन कर बांधव नरेश बड़े प्रसन्न हुए, और कवि हरिनाथजी को इन्होंने एक लाख रुपये दे कर विदा किया। तदनन्तर ये कवि आमेर के राजा मानसिंह के यहाँ पहुँचे और उनकी प्रशंसा में दो दोहे पढ़े—

"बलि बोई कीरति लता, कर्ण करी द्वै पात।
सींची मान महीप ने, जब देखी कुँभिलात॥
जाति जाति तें गुण अधिक, सुन्यों न अबहूँ कान।
सेतु बाँधि रघुवर तरे, हेला दै नृप मान॥"

इन दोनों दोहों से महाराज मानसिंह बड़े प्रसन्न हुए और दो लाख रुपये तथा हाथी आदि दे कर विदा किया। आमेर दरबार से विदा हो कर जब कवि हरिनाथजी घर को लौटे आते थे, तब मार्ग में एक नागा पुत्र उनसे मिला, और उनकी प्रशंसा में एक दोहा उसने पढ़ा—

"दान पाय दोनों बढ़े, कै हरि कै हरिनाथ।
उन बढ़ि ऊँचो पग कियो, इन बढ़ि ऊँचो हाथ॥"

इस दोहे को सुन कर कवि हरिनाथ ने आमेर दरबार से प्राप्त धन दे दिया और आप खाली हाथ घर लौट आये।

(शिवसिंहसरोज)

हरिराज=काश्मीर के एक राजा। ये काश्मीरराज संग्रामराम के पुत्र थे। इनके राजा होने पर काश्मीर की प्रजा बहुत प्रसन्न हुई थी। यद्यपि इन्होंने थोड़े ही दिनों तक राज्य किया था। तथापि उतने ही दिनों में इन्होंने प्रजा का हृदय अपने वश में कर लिया था। यशस्वी हरिराज ने २२ दिन राज्य कर के आपाढ़ शुक्ल अष्टमी को शरीर त्याग किया। (राजतरङ्गिणी)

हरिवंश मिश्र=ये भापा के कवि थे और बिलग्राम में रहते थे। सं० १७२६ में इनका जन्म हुआ था। अमेठी के राजा हनुमन्तसिंह के यहाँ ये बहुत दिनों तक थे। इन्होंने अब्दुलजलील बिलग्रामी को भापा काव्य पढ़ाया था।

(शिवसिंहसरोज)

हरिश्चन्द्र=(१) सूर्यवंशी राजा। इनकी राजधानी अयोध्या थी। इनके पिता का नाम महाराज सत्यव्रत था। ये बड़ी सावधानी से राजकाज करते थे। इनकी अवस्था ढल गयी, तथापि इनको पुत्रमुखदर्शन का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ। इस कारण चिन्तित हो कर ये महारानी

के साथ अपने कुलगुरु वशिष्ठ के समीप गये । कुलगुरु से इन्होंने अपने हृदय की व्यथा कह सुनायी । वशिष्ठ ने इन्हें वरुणदेव की आराधना करने के लिये कहा । ये राजा वरुणदेव की उपासना करने लगे, वरुणदेव ने प्रसन्न हो कर वर माँगने के लिये कहा-राजा ने पुत्र माँगा । तब वरुणदेव बोले कि यदि तुम उस पुत्र को पशु बना कर यज्ञ करना स्वीकार करो तो अवश्य तुम्हारे पुत्र होगा । राजा हरिश्चन्द्र ने स्वीकार किया । इसके दसवें महीने राजा के एक पुत्र हुआ ।

इसी समय वरुण ने राजा को यज्ञ का स्मरण दिलाया । राजा ने कहा-"देव ! दस दिन का बालक अशुद्ध रहता है" । यह सुन वरुण चले गये और दस दिन बाद फिर आये । तब राजा ने कहा-"बिना दाँतों का पशु पवित्र नहीं होता" तब फिर वरुण चले गये, और जब उस लड़के के दाँत निकल आये तब फिर आ कर यज्ञ का स्मरण कराया । राजा ने कहा-"गर्भ के बाल अशुद्ध कहे जाते हैं" वरुण चले गये । जब उस बालक का मूँड़न होने लगा तब वरुण देवता स्वयं आ कर बैठे और बोले-"बहुत अच्छा, सब काम कीजिये" यह सुनते ही राजा अचेत हो गिर गये । पुनः वरुणदेव का पूजन कर के बोले-"महाराज ! मैं यज्ञ करने के लिये प्रस्तुत हूँ । परन्तु क्षत्रिय का जब तक उपनयन संस्कार न हो, तब तक वह शूद्र के समान है, अतः आपसे प्रार्थना है कि उपनयन तक आप ठहरें, तदनन्तर मैं यज्ञ करूँगा । वरुण चले गये ।

जब ग्यारहवें वर्ष में राजकुमार का उपनयन हो चुका और यज्ञ का कुछ ढङ्ग नहीं दीख पड़ा तब वरुण आये । राजा ने उनका स्वागत किया और कहा-"महाराज ! आपकी कृपा से राजकुमार का उपनयन संस्कार तो हो चुका, परन्तु उसीका एक अङ्ग समावर्तन अभी बाक़ी है, अतः आप कुछ दिनों के लिये और क्षमा कीजिये" । यह सुन वरुणदेवता बोले-"राजा ! तुम पुत्रस्नेह में पड़ कर बार बार हमें टाल रहे हो, परन्तु इसका फल अच्छा नहीं होगा । अच्छा, अबकी बार तो मैं लौटा जाता हूँ, समावर्तन के समय फिर आऊँगा" । जब समावर्तन का समय आया तब यज्ञ की भी तैयारी होने लगी इससे राजा हरिश्चन्द्र बड़े उदास हुए । जब राजकुमार को इसकी ख़बर लगी तब वह वन में भाग गया । इसी समय वरुणदेव भी पहुँच गये परन्तु इस घटना से अप्रसन्न हो कर उन्होंने राजा को शाप दिया कि तुम्हें जलोदर रोग होगा जलोदर रोग से पीड़ित हो कर राजा हरिश्चन्द्र ने अपने कुलगुरु वशिष्ठ से इसके प्रतीकार का उपाय पूँछा । वशिष्ठ ने कहा कि एक लड़के को ख़रीद कर यज्ञ कर डालो । उसी राजा के राज्य में अजीगर्त नामक एक महालोभी ब्राह्मण रहता था । उसके तीन लड़के थे, राजा ने उसके मँझले लड़के शुनःशेप को ख़रीद लिया, यज्ञ की तैयारी हुई । शुनःशेप वध्यस्थान में लाया गया । परन्तु शमिता जो पशु वध करता है, उसने साफ़ कह दिया कि मेरा पशु मारने का काम है, मनुष्य मारने का नहीं यह कह कर वह चला गया । अब राजा बड़ी विपद् में फँसे । उसी समय अजीगर्त दर्शकों के बीच में खड़ा हो कर बोल उठा-"मुझे यदि शमिता से दूना धन मिले तो मैं इसे मारने को तैयार हूँ" । इसी समय महर्षि विश्वामित्र राजा के समीप गये और उन्होंने राजा को बहुत समझाया कि आप इस दीन ब्राह्मण कुमार को छोड़ दें । परन्तु राजा ने विश्वामित्र का कहना नहीं सुना । तब विश्वामित्र जी वहाँ गये, जहाँ शुनःशेप बँधा पड़ा हुआ था और रो रहा था । विश्वामित्र ने कहा-"मैं तुझे एक मन्त्र बताता हूँ उसे जप" । शुनःशेप ने उस मन्त्र का जप किया । वरुणदेव प्रसन्न हो कर प्रत्यक्ष हुए । उन्होंने कहा-"राजा तुम्हारा यज्ञ पूरा हुआ" । इस ब्राह्मण कुमार को छोड़ दो । अब तुम्हारा रोग भी छूट जायगा । तदनन्तर वरुणदेव वहाँ से चले गये । शुनःशेप महर्षि विश्वामित्र का सर्व सम्मति से पुत्र निश्चित हुआ । वे उसे ले कर अपने आश्रम पर गये । यज्ञ की समाप्ति सुन कर राजकुमार भी वन से लौट आया ।

(२) हिन्दी साहित्य की चर्चा करते ही, हिन्दी गद्यपद्य को परिष्कृत रूप में परिवर्तित करने वाले "भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र" का नाम अगत्या लेना ही पड़ेगा । बाबू हरिश्चन्द्र का जन्म सन् १८५० ई० की ६वीं सितम्बर को हुआ था । आप काशी के इतिहास प्रसिद्ध प्राचीन वैश्य वंश में उत्पन्न हुए थे । बाबू साहब के पिता का नाम बाबू गोपालचन्द्र उपनाम गिरिधरदास था । आप स्वयं एक प्रसिद्ध कवि थे । आपने वाल्मीकि रामायण का छन्दोबद्ध अनुवाद १३ वर्ष की अवस्था में किया था । बाबू गोपालचन्द्र ने सब मिला कर ४० ग्रन्थ बनाए । इन ग्रन्थों में से गर्गसंहिता, दशावतार-कथामृत, नहुषनाटक, भारतीभूषण, जरासन्ध-बध महाकाव्य आदि ग्रन्थ उत्कृष्ट श्रेणी के हैं । बाबू हरिश्चन्द्र की नौ वर्ष की अवस्था में इनके पिता बाबू गोपालचन्द्रजी का २७ वर्ष की छोटी अवस्था में परलोक वास हुआ । सुयोग्य पिता के सुयोग्य सन्तान बालक हरिश्चन्द्र ने पाँच छः वर्ष की अवस्था में ही अपनी चमत्कारिणी बुद्धि से कविचूडामणि पिता को चमत्कृत कर दिया था । पिता के सामने नौ वर्ष के भीतर ही बाबू हरिश्चन्द्र ने कविता की परीक्षा में पिता के मुख से कई बार वाहवाही पायी थी। नौ वर्ष की अवस्था में पितृहीन हो कर भारतेन्दु एक प्रकार से स्वतन्त्र हो गये । अंग्रेज़ी पढ़ने के लिये आप बनारस कालेज में भरती कराये गये । कालेज तो आप प्रतिदिन जाते ही थे, परन्तु जैसा चाहिये वैसा चित्त पढ़ने में नहीं लगाते थे । परन्तु ऐसा कभी न हुआ कि ये परीक्षा में अनुत्तीर्ण हुए हों । आपने अंग्रेज़ी की शिक्षा कुछ दिनों राजा शिवप्रसाद से भी पायी थी । तीन चार वर्ष तक भारतेन्दु कालेज की पढ़ाई पढ़ते रहे पर उस समय भी उनका झुकाव कविता की ओर ही था । शोक है आपका बनाया "प्रवासनाटक" अभाग्य वश अपूर्ण और अप्रकाशित ही रह गया । आप कवि होने पर भी देशहित की ओर से निश्चिन्त नहीं थे । इनका निश्चय था कि बिना पाश्चात्य शिक्षा के प्रचार और मातृभाषा के उद्धार के इस देश का सुधार होना कठिन है । आपने फ़ीस दे कर न पढ़ सकने वाले साधारण लोगों के लड़कों को पढ़ाने के लिये अपने घर पर स्कूल खोला था । आप विद्यार्थियों को बिना मूल्य स्लेट पुस्तकें आदि देते थे । सन् १८६८ई० में आपने चौखम्भा स्कूल खोला और उसका सब भार अपने ऊपर रखा । यहाँ तक कि इस स्कूल में पढ़ने वाले अनाथ बालकों को खाना कपड़ा तक मिल जाया करता था । काशी में अंग्रेज़ी का प्रचार आप ही के इस स्कूल द्वारा हुआ । इसके अतिरिक्त क्वीन्स कालेज, जयनारायण स्कूल आदि के पारितोषिक वितरण के समय भी आप पुस्तकें घड़ी तथा नक़द रुपये दे कर बालकों का उत्साह बढ़ाते थे । सन् १८६८ ई० में आपने "कविवचनसुधा" फिर मासिक पत्र के रूप में निकाला, पीछे से यह "सुधा" क्रमशः पाक्षिक और साप्ताहिक भी कर दी गयी थी । इस पत्र में साहित्य के अतिरिक्त राज-नैतिक और सामाजिक भी आन्दोलन किये जाते थे । जिस समय "विद्यासुन्दर" नामक नाटक आपने लिखा था उस समय हिन्दी साहित्य को नये आकार प्रकार में देखने वाले इस प्रान्त में कम थे, इससे ग्राहकों की कमी से आपको इन कामों में गाँठ का बहुत सा धन लगाना पड़ा । इन्होंने लाखों ही रुपये पुस्तकों की छपाई में व्यय कर के, लाखों रुपयों के मूल्य की पुस्तकें बिना मूल्य बाँट दीं और इस प्रकार हिन्दी प्रेमियों की सृष्टि की । सन् १८७० ई० में आप बनारस के आनरेरी मजिस्ट्रेट चुने गये । महाराणी विक्टोरिया के पुत्र ड्यूक ऑफ़ एडिनबरा जब काशी देखने आये तब उनको नगर दिखाने का भार बाबू साहब ही को अर्पित किया गया था । आपने काशी के सब पण्डितों से कविता बनवा और उसे "सुमनोञ्जलि" नामक पुस्तक में छपवा कर उन्हें समर्पण की थी । इस समय ये गवर्नमेंट के भी कृपापात्र बन गये थे । "कविवचनसुधा," "हरिश्चन्द्र-चन्द्रिका" और "बालाबोधिनी" की सौ सौ प्रतियाँ शिक्षाविभाग में ली जाती थीं।

उसी समय ये पञ्जाब यूनिवर्सिटी के परीक्षक नियत हुए। सन् १८७४ ई० में आपने स्त्री-शिक्षा के निमित्त बालाबोधिनी नाम की एक मासिक पत्रिका भी निकाली थी। इसके लेख स्त्रियों के लिये उपयोगी होते थे। यही समय मानो हिन्दी की नवीन सृष्टि का था। उन्होंने अपने कालचक्र नामक ग्रन्थ में स्वयं लिखा है—हिन्दी नये साँचे में ढली—आपने काशी में "पेनी रीडिङ्ग" नामक एक समाज भी स्थापित किया था। इसमें स्थानीय विद्वान् अच्छे अच्छे लेख लिख कर लाते और स्वयं पढ़ते थे। इस समाज के प्रोत्साहन से भी बहुत से अच्छे अच्छे लेख लिखे गये। "कर्पूरमञ्जरी," "सत्यहरिश्चन्द्र" और "चन्द्रावली" सच पूछिये तो ये ग्रन्थ हिन्दी के टकसाल हैं। आपका जैसा स्नेह अपने ग्रन्थों पर था उससे कहीं बढ़ कर आपका प्रेम दूसरों के उपयुक्त ग्रन्थों पर था। इनको, उदारता साहित्य सेवा और दीन दुखियों की सहायता में धन को शतधार बहाते देख स्वयं काशीराज महाराज ईश्वरी-नारायणप्रसाद सिंह ने कहा था "बबुआ! घर को देख कर काम करना अच्छा होता है," इसके उत्तर में उन्होंने कहा—"हुजूर! इस धन ने मेरे पूर्वजों को खाया है, अब मैं इसे खाऊँगा"। इनके पास कभी कोई गुणी आता तो वह विमुख कभी नहीं फिरता था बाबू हरिश्चन्द्र में यह एक असामान्य गुण था कि वे अपनी प्रतिज्ञा पर सदा दृढ़ रहते थे। सत्यवक्ता और दृढ़प्रतिज्ञ होने से आपको कई बार आर्थिक कठिनाइयाँ झेलनी पड़ीं। सर विलीयमम्यूर की लाटगीरी के समय में हिन्दी को राजभाषा बनाने के लिये बहुत कुछ उद्योग किया गया, परन्तु सफलता न हुई। राजा शिवप्रसाद और बाबू हरिश्चन्द्र इन दोनों में भाषा सम्बन्धी मतभेद होने के कारण परस्पर मनोमालिन्य रहता था। राजा साहब खिचड़ी हिन्दी के पक्षपाती थे और बाबू साहब शुद्ध हिन्दी लिखने का मार्ग चलाते थे। राजा साहब ने कई एक कारणों से बाबू साहब को गवर्नमेंट का अप्रिय बना दिया। आपने भारतवर्ष में प्रिंस ऑफ़ वेल्स के पधारने पर भारत की यावतीय भाषाओं में कविता बनवा कर "मानसोपायन" पुस्तक भेट की। इंगलैण्ड की रानी ने जब भारत की साम्राज्ञी का पद ग्रहण किया तब इन्होंने "मनोमुकुलमाला" नाम की पुस्तक अर्पण की। काबुल विजय पर "विजयवल्लरी" बनायी। मिश्र विजय पर "विजयिनीविजयवैजयन्ती" उड्डीयमाना की। जब महारानी एक दुष्ट की गोली से बचीं तब इन्होंने महामहोत्सव मनाया—जिसकी सराहना स्वयं भारतेश्वरी ने की। प्रति वर्ष महारानी की वर्षगाँठ पर ये अपने स्कूल का वार्षिकोत्सव करते थे।

बाबू श्रीहरिश्चन्द्र वल्लभ सम्प्रदाय के पूरे अनुयायी थे। जाति भेद को मान कर अपनी वैश्य जाति पर ये पूर्ण प्रेम रखते थे। आपने सबसे पहले अपने पिता का बनाया "भारतीभूषण" नामक ग्रन्थ छपवाया। आप का सबसे पहला बनाया हुआ "विद्यासुन्दर" नाटक है। बाबू हरिश्चन्द्र एक स्वतन्त्रचेता मनुष्य थे। काशी में सबसे प्रथम होमियो पैथिक चिकित्सा का आरम्भ आप ही ने किया। सन् १८६८ ई० में आपने "होमियो पैथिक दातव्य चिकित्सालय" स्थापित किया, जिसमें आप बराबर तन मन धन से सहायता देते रहे। सं० १९२७ में "कवितावर्द्धिनी सभा" का जन्म हुआ था जिससे कितने ही गुणियों का मान बढ़ाया जाता था और कितने ही कवियों को प्रशंसापत्र दिये जाते थे। आप गुणग्राही थे और गुण ग्रहण करने में शत्रु मित्र का विचार नहीं करते थे। उर्दू कवियों के प्रोत्साहन के लिये सन् १८६६ ई० में इन्होंने मुशायरा स्थापित किया था, जिसमें उस समय के शायर एकत्रित होते और समस्यापूर्ति करते थे। काशी-राज की धर्म सभा के आप सम्पादक और कोषाध्यक्ष थे। सं० १९३० में इन्होंने "तदीय समाज" स्थापित किया था। इसी समाज के उद्योग से दिल्ली दरबार के समय गवर्नमेंट की सेवा में सारे भारतवर्ष की ओर से कई लाख हस्ताक्षर करा कर गोवध बन्द करने की अर्जी

दी गयी थी । गोरक्षा के लिये गोमहिमा आदि ग्रन्थ लिख कर खूब आन्दोलन मचाया था। इस समाज ने हज़ारों मनुष्यों से प्रतिज्ञा करा कर मद्य और मांस का व्यवहार बन्द कराया इस समाज ने यह भी प्रतिज्ञा करवायी थी कि जहाँ तक सम्भव होगा, वे देशी वस्तुओं का व्यवहार करेंगे । इस समाज से "भगवद्भक्ति-तोषिणी" मासिकपत्रिका भी निकली थी। इस समाज के अतिरिक्त "हिन्दी डिबेटिंग क्लब" "यङ्गमेन एशोसियेशन" "काशी सार्वजनिक सभा" "वैश्यहितैषिणी सभा" आदि कितनी ही सभा सुसाइटियाँ इन्होंने स्थापित की थीं। ये "बनारस इन्स्टीच्यूट" के प्रधान सभासद् थे। काशी की प्रसिद्ध "कारमाइकेल लायब्रेरी" तथा "वाङ्सरस्वतीभवन" के ये प्रधान सहायक थे और उनमें हज़ारों ही ग्रन्थ दिये थे। खानदेश के अकाल में सहायता देने के लिये इन्होंने बाज़ार में खप्पर ले कर भीख माँगी थी और हज़ारों रुपये उगाह कर भेजे थे । काशी में बहुत से सर्व साधारण सम्बन्धी उपयोगी कार्य आपने किये । देशहितकर तथा लोकहितकर प्रत्येक काम में आप सहायक होते थे। आपको अपने बनाये ग्रन्थों में "प्रेमफुलवारी," "सत्यहरिश्चन्द्र," "चन्द्रावली," "काश्मीरकुसुम," "भारत-दुर्दशा" आदि ग्रन्थ विशेष रुचते थे । शोक है कि इनके लिखे कितने ही उत्तमोत्तम ग्रन्थ अधूरे रह गये। आपने राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा साहित्य सम्बन्धी कितने ही उत्त-मोत्तम ग्रन्थ लिखे । आपके गुणों पर मोहित हो कर तथा "सार सुधानिधि" के प्रस्ताव करने पर आपको "भारतेन्दु" की पदवी देना एक स्वर से समस्त देश ने स्वीकार किया था। इनका स्वभाव अत्यन्त कोमल था । ये किसी का दुःख न देख सकते थे। सदा प्रसन्न रहा करते थे। आपका स्वभाव नम्र था, अभिमान करना आप जानते ही नहीं । शील भी इनका बहुत बढ़ा चढ़ा था । कोई चाहे कितनी ही हानि क्यों न करे, ये उसे कुछ भी नहीं कहते थे। सन् १८८५ की ६ वीं जनवरी को रात्रि के पौने दस बजे भारत का इन्दु सदा के लिये अस्त हो गया । इनकी मृत्यु से देश और विदेश में शोक छा गया। इनके मित्र अनुयायियों ने इनका स्मारक स्थापित किया । यों तो इनकी अनेक जीवनी प्रकाशित हुई हैं, परन्तु उन सब में बाबू शिवनन्दसहायजी की लिखी सर्वोत्तम है।

हर्यश्व=(१) ये अयोध्या के राजा थे। इन्होंने महा-राज ययाति की कन्या माधवी के गर्भ से वसुमान् नामक एक पुत्र उत्पन्न किया था।

(२) पाञ्चाल के अधिपति । इनके पाँच पुत्रों ने मिल कर राज्य शासित किया था इस कारण उस राज्य का नाम "पाञ्चाल" पड़ा।

हर्षवर्द्धन=काश्मीर के अधिपति। (देखो श्रीहर्ष)

हलायुध=ब्राह्मणसर्वस्व, कविरहस्य आदि ग्रन्थों के प्रणेता प्राचीन पण्डित । ये गीतगोविन्द प्रणेता जयदेव कवि के समकालीन थे । ये गौड़ेश्वर लक्ष्मणसेन के सभापण्डित थे।

हस्तिनापुर=भारत का प्राचीन नगर। यह नगर बहुत दिनों तक कौरव राजाओं की राजधानी था। कुरुपाण्डव युद्ध के पहले इस नगर की समृद्धि अनुपम थी, इसका परिचय महाभारत तथा अन्य पुराणों में पाया जाता है । कौरवों के साथ पाण्डवों का विवाद आरम्भ होने पर कौरव राज्य दो भागों में विभक्त हो गया था। कौरवों की राजधानी हस्तिनापुर में ही रही, और पाण्डवों ने खाण्डव वन को जला कर वहाँ इन्द्रप्रस्थ नगरी बसा कर अपनी राजधानी बन-वायी। महाभारत के युद्ध में इन्हीं दोनों नगरों से युद्ध की तैयारियाँ की गयी थीं । इन्द्रप्रस्थ और हस्तिनापुर के बीच में कुरुक्षेत्र नगर वर्त-मान है । हस्तिनापुर आज वर्तमान नहीं है। इन्द्रप्रस्थ के उत्तर में थानेश्वर के निकट यह नगर स्थित था—ऐसा विद्वानों का सिद्धान्त है। कुरुक्षेत्र के युद्ध में जय प्राप्त कर के भाइयों के सहित युधिष्ठिर ने हस्तिनापुर में वास किया। युद्ध में जय प्राप्त कर के पाण्डवों ने हस्तिनापुर ही को अपनी राजधानी बनाया। जिस समय युधिष्ठिर का भारत में एक छत्र आधिपत्य था, उस समय हस्तिनापुर एक समृद्धिसम्पन्न नगर था। अन्त में यह नगर गङ्गा में ढह कर गिर गया। (भारतवर्षीय इतिहास)

हारीत=विख्यात हिन्दूधर्मशास्त्रप्रणेता । इन्होंने "हारीतसंहिता" नामक एक स्मृति ग्रन्थ बनाया था।

हारीतसंहिता=प्राचीनकाल में हारीत मुनि ने इस संहिता के विषयों का वर्णन किया है। वही मार्कण्डेय ने मुनियों के निकट वर्णन किया। उन्हीं ऋषियों से राजा अम्बरीष ने सुना। पहले मुख ही मुख इस संहिता का तत्त्व प्रचारित था। पीछे से वह ग्रन्थ रूप में परिणत हुआ। बौधायन, वशिष्ठ, आपस्तम्ब आदि ग्रन्थों में महर्षि हारीत के मत सूत्र रूप में उद्धृत देखे जाते हैं। इससे मालूम होता है कि यह ग्रन्थ भी पहले सूत्र रूप में था और धीरे धीरे श्लोकों के रूप में परिणत हुआ। इसमें सात अध्याय हैं, इस समय इस संहिता में १९४ श्लोक हैं। इस संहिता के प्रथम अध्याय में सृष्टि का क्रम वर्णन है। दूसरे अध्याय में चतुर्वर्ण के कर्मों का निर्देश कर के नृसिंह की पूजा पद्धति लिखी गयी है। तीसरे अध्याय में ब्रह्मचर्य का वर्णन, चतुर्थ अध्याय में गार्हस्थ्य वर्णन और नृसिंह देवता की प्रधानता, छठवें और सातवें अध्याय में आश्रम धर्म तथा योगशास्त्र का विषय वर्णित है। इस संहिता के मत से नृसिंह देवता के प्रसाद से मनुष्य नारसिंह पद प्राप्त कर सकता है। नृसिंहपूजापद्धति पर इस संहिताकार का विशेष ध्यान था।

हृषीकेश=भगवान् विष्णु का नाम है। हरिवंश में लिखा है कि—

> हृषीकाणीन्द्रियाण्याहु-
> स्तेषामीशो यतो भवान्।
> हृषीकेशस्ततो विष्णुः
> ख्यातो देवेषु केशवः॥

अर्थात् भगवान् इन्द्रिय समूह के ईश होने के कारण, देवों में भगवान् विष्णु का नाम हृषीकेश पड़ा।

ह्रस्ववर्मन्=मिथिला नरेशों में से एक नरेश का नाम। यह सुवर्णमन राजा के पुत्र थे। इनको हर्यश्ववर्मन् भी कोई कोई कहते हैं।

हृदिक=एक यादव युवराज जो स्वयम्भोज का पुत्र और सूर का पिता था। इन्हींके वंश में भगवान् विष्णु अवतीर्ण हुए थे।

ह्री=लज्जा-धर्म की स्त्री और दक्ष की पुत्री।

ह्लाद=हिरण्यकशिपु के चार पुत्र थे। उनमें से एक का नाम ह्लाद था।

ह्लादिनी=प्रसन्न करने वाली। रामायण में सात नदियों के नाम पाये जाते हैं, उनमें से एक नदी का नाम ह्लादिनी है। आधुनिक भूगोल विद्या वालों को, इन सात नदियों में से गङ्गा और सिन्ध को छोड़, अन्य पाँच नदियों का पता नहीं लगा।

हिडम्ब=यह एक राक्षस का नाम है जो वारणावत के दक्षिण वाले वन में रहता था और उसका रूप बड़ा भयङ्कर था। यह बड़ा बलवान् था और इसके नेत्र पीले थे। इसने पाण्डवों को मार डालना चाहा था, किन्तु भीम ने इसे स्वयं मार डाला।

हिडिम्बी=यह हिडिम्ब की बहिन थी, जो बड़ी सुन्दरी थी। यह भीम के रूप और पराक्रम पर मुग्ध हो गयी थी और इसने भीम के साथ ही विवाह किया। इसीके गर्भ से घटोत्कच की उत्पत्ति हुई। इसी घटोत्कच ने महाभारत के युद्ध में पाण्डवों की ओर से कौरवों से युद्ध किया था और बड़ी वीरता से युद्ध क्षेत्र में इसने प्राण विसर्जन किये थे इसके मरने का पाण्डवों को बड़ा दुःख हुआ था।

हितनन्द=यह हिन्दी के एक सत्कवि थे। शिवसिंहसरोज में इनकी जीवनी का पता नहीं चलता। न तो ग्रियरसन साहब को इनका कुछ पता चला और न अन्य किसी को। शिवसिंहसरोज में इनकी रचना की एक बानगी दी गयी है। वह यह है:—

> दारिदकतन गजवदन रदन एक,
> सदन दहन बुधि सादन सुधा के सर।
> धूमकेतु धीर के धुरन्धर धवल धाम,
> हम के मरन सरनाम ना निधन कर॥
> लम्बोदर हेमवती हितनन्द भालचन्द्र,
> कन्द आनन्द विबुध वन्दनीय वर।
> सदा शुभदायक सकल गुणनायक,
> सुजय जय गणनायक विनायक विघनहर॥

(शि० स०)

हिन्ना=यह मेवाड़ के अन्तर्गत एक स्थान का नाम है। यहाँ के सामन्तों का कुछ हाल कर्नल टाड के राजस्थान नामक ग्रन्थ में लिखा है।

हिम्मतबहादुर (नवाब)=यह हिन्दी के एक कवि थे और सं० १७६५ में हुए थे। बलदेव कवि ने सत्कवि-गिराविलास में इनके कवित्त उद्धृत किये हैं। ग्रियर्सन साहब ने लिखा है कि इनका पूरा नाम था—"गोसाईं नवाब हिम्मतबहादुर"। ये सन् १८०० ई० में थे। इनके दरबार में कवियों को आश्रय मिलता था। इन्हीं के पास अनेक कवि रहा करते थे। ठाकुर कवि जिन्होंने एक बार इनका जीवन बचाया था—इन्हीं के पास रहते थे। उस घटना के विषय में लिखा है कि एक बार हिम्मतबहादुर को मारने के लिये बुन्देले छत्रपुर में एकत्र हुए। इसका समाचार ठाकुर कवि को मिला। उसने हिम्मतबहादुर के शत्रुओं के पास एक पद लिख कर भेजा जिसके आरम्भ का पाद यह था :—

"कहिबे सुनबे कि कछू न रहौं"।

इस पद को पाते ही बुन्देले छत्रपुर से भाग गये और हिम्मतबहादुर के प्राण बच गये।

हिम्मतबहादुर एक नागी गुसाइयों की सेना का अधिपति था और सिन्धिया की सेना में था। इसने अलीबहादुर को उसकाया था कि वह बुन्देलखण्ड को हस्तगत करे, पर अन्त में द्वितीय मरहठा युद्ध के समय हिम्मतबहादुर अंग्रेजों से मिल गया।

हिमरथ=अग्निपुराणान्तर्गत चन्द्रवंश के राजाओं में से एक राजा का नाम। यह केतुमान् का पुत्र था और दिवोदास के नाम से प्रसिद्ध था।

हिमवर्ष=यह एक प्रदेश का नाम है। विष्णुपुराण में लिखा है कि नाभि को हिमालय के दक्षिण की ओर का देश दिया गया था। इसीका नाम हिमवर्ष था।

हिमाचलराम=हिन्दी के एक कवि। यह शाकद्वीपी ब्राह्मण थे और इनका जन्म फ़ैज़ाबाद के अन्तर्गत भटौली ग्राम में संवत् १९०४ में हुआ था। इनकी कविता सीधी सादी हुआ करती थी। यथा :—

"एक समय प्रभु खेलहिं गेंद,
गिरी यमुनाजल मध्यहि माहीं।
कूद पड़ो हरि ताहीं के हेतु,
गयो धँसि पैठि पतालहि जाहीं॥
बालसखा वह रोदन के हित,
सोच बड़ो गये माहरि पाहीं।
कृष्ण तुम्हारो छुबो यमुना बिच,
ढूँढ़ि थके हम पावत नाहीं॥"

(शि० स०)

हिमावत=पर्वतराज हिमालय। पुराणों के मतानुसार यह पर्वत मेरु के दक्षिण ओर है यह पर्वतराज बनाये जाने के पूर्व महाराज पृथु की तरह इसका भी अभिषेक हुआ था। हिमावत की पत्नी का नाम मेना है। मेना की उत्पत्ति पितृ और वैरजसों के मन से बतलायी जाती है।

हिरण्मय=उस पार्वत्य प्रदेश का नाम जो सेवत और शृङ्गि पर्वत मालाओं के बीच और मेरु के उत्तर है।

हिरण्य=कश्मीर के एक राजा का नाम था। इन्होंने ३० वर्ष, दो मास राज्य कर, निःसन्तान अवस्था में मृत्यु को आलिङ्गन किया था।

(रा० त०)

हिरण्यकशिपु=यह असुर था। इसके पिता का नाम कश्यप और माता का नाम दिति था। तपोबल द्वारा वर लाभ कर यह स्वर्ग का अधीश्वर हो गया था और इसने देवताओं को निकाल बाहर किया था। त्रैलोक्यविजयी हो कर इसे बड़ा अभिमान उत्पन्न हुआ। इसीके औरस से भक्तशिरोमणि प्रह्लाद का जन्म हुआ था। प्रह्लाद भगवान् विष्णु के परम भक्त थे, पर हिरण्यकशिपु उन्हें अपना परम शत्रु समझता था। अतः पुत्र को शत्रु का अनन्य भक्त देख उससे न रह गया और उसने अपने पुत्र प्रह्लाद का वध करना चाहा। पर भक्तवत्सल भगवान् ने अपने भक्त प्रह्लाद की रक्षा की और नृसिंह रूप धर हिरण्यकशिपु का संहार किया।

हिरण्यगर्भ=भगवान् विष्णु का नाम है। हिरण्यम् नाम है परम धाम का, वहाँ जो नित्य बसे उसे हिरण्यगर्भ कहते हैं। हिरण्मय लोक है इसका प्रमाण श्रुतियों में पाया जाता है। यथा—

"हिरण्मये परे लोके विरजं ब्रह्म निष्कलम् ।
तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिस्तद्यदात्मविदो विदुः ॥
न तत्र सूर्यो भाति । इत्यादि ।"

हिरण्यनाभ=सूर्यवंशी एक राजा, जैमिनि के शिष्य और सामवेद के आचार्य । हिरण्यनाभ के बहुत से शिष्य भी थे ।

हिरण्यपर्वत=बिहार प्रान्त के इतिहास में हुएनशाङ्ग ने हिरण्यप्रभात नामक एक देश का उल्लेख किया है। उसी देश में हिरण्य नामक एक पर्वत भी आया है ।

(पृ० इ०)

हिरण्यप्रभात=देखो हिरण्यपर्वत ।

हिरण्यरोमन्=पर्जन्य और मरीचि के पुत्र । उत्तर दिशा के दिक्पाल ।

हिरण्यहस्त=अश्विनकुमारों का दिया हुआ पुत्र, जिसे उन्होंने वध्रिमती के स्तव पर प्रसन्न हो कर दिया था ।

हिरण्याक्ष=हिरण्यकशिपु का भाई । इसको मारने के लिये भगवान् ने वाराह का रूप धारण किया था । किन्तु पद्मपुराण के मतानुसार मत्स्यरूपी भगवान् ने इसका संहार किया था ।

हिरण्यरेतस्=प्रियव्रत के दस पुत्रों में से एक का नाम ।

हिरण्यस्तूप=वैदिक काल के एक ऋषि का नाम ये महर्षि अङ्गिरा के पुत्र थे । ऋग्वेदसंहिता के प्रथम मण्डल के ३२ वें सूक्त में लिखा है कि हिरण्यस्तूप ने इन्द्र से प्रार्थना की थी ।

(पृ० ई०)

हिरश्वान्=विष्णुपुराण में दी हुई स्वायम्भुव मनु के वंश की तालिका में इस नाम के एक व्यक्ति पाये जाते हैं। स्वायम्भुव मनु के दो पुत्र प्रियव्रत और उत्तानपाद थे । प्रियव्रत के ९ पुत्र हुए । इन नौ में केवल आग्नीध्र पुत्रवान् हुए और उनके भी नौ पुत्र हुए । इन नौ में हिरश्वान् छठवें हैं ।

(पृ० ई०)

हिरण्वत्=श्वेत के राजा । इन्हें इनके पिता राजर्षि अग्नीध्र से राज्य मिला था । राजर्षि अग्नीध्र इन्हींको राजपाट सौंप तप करने वन में चले गये थे ।

हीरामणि=हिन्दी के एक कवि का नाम । इनका जन्म संवत् १६८० में हुआ था । इनके कवित्त हज़ारा में पाये जाते हैं ।

(शि० स०)

हीराराम=हिन्दी के एक कवि । इनका जन्म संवत् १६८० में हुआ था । इनका नखसिख पढ़ने योग्य है । (शि० स०)

हीरालाल=इनका जन्मकाल जाति जन्मस्थानादि का कुछ भी पता नहीं चलता । पर इनके बनाये श्रृङ्गार रस के पद्य पाये जाते हैं। यह श्रृङ्गार रस के अच्छे कवि थे । (शि० स०)

हुताशन=अग्नि का नाम ।

हुलास कवि=हिन्दी के एक अज्ञात कवि । इनका कुछ भी पता नहीं चलता । पर इनके बनाये पद्य मिलते हैं ।

(शि० स०)

हुलासराम=हिन्दी के एक कवि जिन्होंने हिन्दी में "शालिहोत्र" रचा है । इनका भी परिचय उपलब्ध नहीं है । (शि० स०)

हुसेन कवि=इनका जन्म संवत् १७०८ में हुआ था और इनके पद्य हज़ारा में पाये जाते हैं ।

(शि० स०)

हेति=एक राक्षस का नाम जो चैत्र मास में सूर्य के रथ की रक्षा के लिये सात अन्य साथियों के साथ रहता है ।

हेमा=(१) उपद्रथ का पुत्र और ययाति का वंशधर ।
(२) विष्णुपुराण में एक नदी का नाम भी हेमा पाया जाता है ।

हेमकेतु=पृथिवी की सीमा का समीपवर्ती एक पर्वत जो मेरुपर्वत के दक्षिण में है ।

हेमगोपाल=हिन्दी के एक कवि का नाम जो श्रृङ्गार रस की कविता के लिये प्रसिद्ध हैं । पर इनका अधिक परिचय नहीं मिलता ।

(शि० स०)

हेमचन्द्र=(१) वैशाली के नरेन्द्र का नाम । ये राजा बौद्धधर्मानुयायी थे ।
(२) बारहवीं शताब्दी के एक जैनधर्म-प्रचारक का नाम । इसीने अभिधानचिन्तामणि नामक ग्रन्थ रचा था । महावीरचरित का लेखक भी यही व्यक्ति है ।

हैहय, हय=(१) यादवों के दो राजाओं के नाम । ये सत्राजित् के पुत्र थे ।

(२) यदु के वंशधरों का नाम । इन लोगों ने बाहु को जीत लिया था और उसके राज्य पर अपना अधिकार कर लिया था । इनके डर के मारे बाहु को अपनी रानियों के साथ वन में भाग जाना पड़ा । किन्तु सगर ने हैहय वंशीय क्षत्रियों को समूल नष्ट किया । हैहय वंशी क्षत्रियों में भी पाँच प्रकार के क्षत्रिय होते हैं, पर यदु की सन्तान होने से वे कहाते यदुवंशी ही हैं । अङ्गरेज लोगों का विश्वास है कि हैहय वंश सीदियन जाति के संमिश्रण से उत्पन्न हुए हैं ।

होलराम वन्दीजन=हिन्दी के एक कवि हैं । यह होलपुर ज़ि० बाराबङ्की के रहने वाले थे और इनका जन्म संवत् १६४० है । यह एक बड़े भारी कवि थे और राजा हरिवंशराय कायस्थ दीवान बदरकावासी के द्वारा अकबर के दरबार तक पहुँचे थे । अकबर ने इन्हें एक चक दिया, जिसमें इन्होंने होलपुर नामक एक ग्राम बसाया था । एक बार तुलसीदासजी अयोध्या से लौटते समय होलपुर ग्राम में गये । गुसाईंजी के लोटे को देख होलरामजी ने उसकी प्रशंसा में कहा:—

दोहा ।

" लोटा तुलसीदास को,
लाख टका को मोल । "

इसके उत्तर में गुसाईंजी ने कहा:—

दोहा ।

" मोल तोल कछु है नहीं,
लेहु राम कवि होल । "

होलराम ने उस लोटे को मूर्त्ति की तरह स्थापित किया और उस पर एक चबूतरा बनवा कर उसका पूजन करने लगे । उस लोटे की आज तक पूजा होती है । इस होलपुर में गिरिधर और नीलकण्ठ भी नामी कवि हो चुके हैं । यह ग्राम अब तक बन्दीजनों के अधिकार में है ।

(शि० स०)

परिशिष्ट नं० १.

सूचना—परिशिष्ट में अङ्गरेज़ और मुसलमानों के नाम अधिक हैं। अतः इसमें नामों का क्रम अङ्गरेज़ी वर्णमाला के क्रम से रखा गया है।

A.

Abu-bekr-Tughlak आबू-बक्र-तुग़लक=यह तुग़लक ख़ान्दान का था और फ़ीरोज़-उद्दीन तुग़लक का नाती था। आबू-बक्र ने केवल एक मास तक अमलदारी कर पायी थी कि इतने में वह तख़्त से उतार दिया गया।

Abdullah-kutb Shah अबदुल्ला क़ुतुब शाह=यह उस समय गोलकुण्डा का अधिपति था जिस समय शाहजहाँ ने औरङ्गज़ेब को दक्खिन का वायसराय बना कर भेजा था।

Abdullah Khan the Seiad सय्यद अबदुल्ला ख़ाँ=ये दो भाई थे और बिहार प्रान्त के प्रभावशाली व्यक्ति थे। बड़े भाई का नाम हुसेनअली था और छोटे का अबदुल्लाख़ाँ था। ये दोनों जैसे बुद्धिमान् थे, वैसे ही उद्योगी एवं उत्साही थे। नवें मुग़ल सम्राट् फ़र्रुख़सियर के पिता अज़ीमुश्शान की कृपा से इन दोनों की बड़ी उन्नति हुई थी। बढ़ते बढ़ते बड़ा भाई वज़ीर हुआ और छोटा अबदुल्लाख़ाँ मुग़ल सेना का कमाण्डर-इन-चीफ़ हुआ।

Abdul Melk अबदुलमलिक=ख़ुरासान में राज्य करने वाली तातार जाति के राजघराने में यह पाँचवाँ अधिपति था। इसीका एक गुलाम जो तुर्की जाति का था, अलप्तगीन था। यह गुलाम बढ़ते बढ़ते ख़ुरासान के राजसिंहासन पर आसीन हुआ था।

Abercrambi (Sir. R.) अबरक्राम्बी=सन् १७६० ई० में यह बम्बई के गवर्नर थे। मदरास के गवर्नर सर ए. केम्बेल के साथ मिल कर अबरक्राम्बी ने टीपू सुलतान का सामना किया था।

Abingdon (Major) अबङ्गडन मेजर=जिस समय टीपू से युद्ध चल रहा था, उस समय कालीकट पर आक्रमण कर, अबङ्गडन ने उस पर अपना अधिकार कर लिया था। यह बड़ा वीर योद्धा था।

Abul Fateh Lodi अबुलफतह लोदी=महमूदग़ज़नवी का तीसरा भारताक्रमण सन् १००५ ई० में अबुलफतह लोदी के विरुद्ध हुआ था। उस समय अबुलफतह लोदी मुलतान का प्रधानाध्यक्ष था।

Abul Fazl. अबुलफ़ज़ल=यह एक सत्कुलोद्भव विद्वान् था और परमार्थ सम्बन्धी चर्चा ही में इसका अधिक समय व्यतीत होता था। इस पर अकबर का पूर्ण अनुग्रह था। इसीसे अकबर ने अपनी सम्पूर्ण सेना पर पूर्ण प्रभुत्व इसे दे रखा था। यह अकबर का वज़ीर-आज़म भी था। इसकी मृत्यु, सन् १६०३ ई० में जब वह ४७ वर्ष का था—हुई।

आईन-अकबरी भी अबुलफ़ज़ल की बनाई हुई है। इस पुस्तक में उस समय की अमलदारी की बहुत सी बातों का उल्लेख पाया जाता है।

सलीम की साजिश से एक हत्यारे ने अबुल फ़ज़ल को ओरछे के समीप मार डाला था। अबुलफ़ज़ल संस्कृत भी जानता था और कई एक संस्कृत ग्रन्थों का उसने फ़ारसी में अनुवाद भी किया था। वह कवि भी था और पढ़ने लिखने का उसे बड़ा भारी व्यसन था। यही कारण है कि उसमें राजपुरुपोचित कूटनीति का अभाव सा था। अबुलफ़ज़ल और फ़ैज़ी ने मिल कर महाभारत का फ़ारसी में अनुवाद किया था।

Adil Shahi Kings. आदिल शाही बादशाही=बीजापुर की अमलदारी सन् १४८६ से १६८६ई० तक आदिल शाही बादशाहों के हाथ में रही। आदिल शाही ख़ान्दान के सब मिला कर ६ बादशाह बीजापुर के तख़्त पर बैठे। पहले का यूसुफ़ आदिल शाह और अन्तिम का सिकन्दर शाह

नाम था । इस ख़ान्दान का आठवाँ बादशाह अली आदिल शाह था ।

Afzal Khan अफ़ज़लख़ाँ=बीजापुर का राजप्रतिनिधि था । इसने शिवाजी को छल कर पकड़ना चाहा था । किन्तु शिवाजी पहले ही से सतर्क थे । जब इन दोनों में परस्पर भेंट हुई, और दोनों गले मिले तब शिवाजी ने बघनखे से अफ़ज़लख़ाँ का शरीर विदीर्ण कर डाला । यह घटना सन् १६५९ ई० की है ।

Ahalya Bai अहिल्याबाई=खण्डेराव इन्दौर के राजा थे । अहिल्याबाई उन्हींकी विधवा स्त्री थी, जो अपने पति के बाद वहाँ के राजसिंहासन पर बैठी और सन् १७९५ ई० तक उसने इन्दौर में राज्य किया सन् १७९५ ई० में उसकी मृत्यु हुई । इसने पेशवा की अनुमति से एक अनुभवी योद्धा को, जिसका नाम तुका जी हुल्कर था गोद लिया । इसीके वंशधर अब तक इन्दौर राज्य के अधीश्वर हैं ।

Ahmad Shah अहमद शाह=मुग़ल ख़ान्दान के बाबर से ले कर मोहम्मद बहादुर तक १७ बादशाह भारत के राजसिंहासन पर बैठें । इनमें अहमद शाह तेरहवाँ था । इसने सन् १७४८ से १७५४ ई० तक अमलदारी की । अन्त में इसकी आँखें निकाल ली गयीं और अन्धा बना कर यह तख़्त से उतार दिया गया ।

Ahmad Shah Abdali अहमद शाह अबदाली=यह एक अफ़ग़ानी था । इसने काबुल कन्धार के राज्य को अपने अधिकार में कर भारतवर्ष पर आँख डटाई । इसने ७ जनवरी सन् १७६१ ई० को पानीपत के रणक्षेत्र में मरेहटों को बुरी तरह हराया था । उसके जीवन का पिछला भाग सिक्खों के साथ युद्ध करते करते ही पूरा हुआ । मरते समय उसकी अमलदारी सरहिन्द से ले कर हिरात तक और इण्डस के मुहाने से अरब समुद्र तक थी ।

Ahmad Shah Bahmani I अहमद शाह बाहमानी=बहमनी ख़ान्दान ने दक्खिन के कुलबर्गा में सन् १३४७ से १५२६ ई० तक अमलदारी की । इस ख़ान्दान के पहले व्यक्ति का नाम अलाउद्दीन हुसेन गंगू बहमनी और अन्तिम का कलीमउल्लाह शाह बहमनी था । इस ख़ान्दान के सब मिला कर १८ मनुष्य वहाँ के तख़्त पर बैठे ।

अहमद शाह बहमनी इनमें से ९ वाँ था । इसने अहमदाबाद और बीदर रियासतों की नींव डाली । अहमद शाह बहमनी ने सन् १४२२ से सन् १४३५ ई० तक राज्य किया था ।

Ahmad Shah Bahmani II यह भी उक्त ख़ान्दान में हुआ और यह बहमनी ख़ान्दान का पन्द्रहवाँ शासक था । इसने सन् १५१८ से १५२० ई० तक अमलदारी की थी ।

Ahmad Shah of Guzrat अहमद शाह=सन् १३९१ ई० में मुज़फ़्फ़र शाह गुजरात का स्वतंत्र शासक हो गया था । इसी मुज़फ़्फ़र शाह का अहमद शाह नाती था । इसने अहमदनगर और अहमदाबाद की रियासतें बनायीं । इसे बराबर राजपूतों से युद्ध करना पड़ा ।

AKBAR SHAH. अकबर शाह

अथवा

[अबुल-मुज़फ़्फ़र जलालउद्दीन मुहम्मद अकबर शाह ।]

जिस समय हुमायूँ की मृत्यु हुई उस समय अकबर राजधानी में नहीं था। वह सिकन्दर शाह को दमन करने के लिये पञ्जाब की ओर गया था।

उस समय दिल्ली का स्थानीय शासनकर्त्ता सेनापति तारदीवेग था। उसने हुमायूँ की मृत्यु का संवाद तब तक प्रकट न होने दिया; जब तक उसने अकबर की ताजपोशी का सारा प्रबन्ध न कर लिया। जब अकबर ने यह दुःखदायी संवाद सुना; तब उसके साथ के सब सरदारों ने एकत्र हो परलोकगत सम्राट् के लिये बड़ा शोक प्रकाश किया और एक स्वर से उसे अपना अधिपति स्वीकार किया। अनन्तर बहरामख़ाँ को अप्राप्त-वयस्क सम्राट् का अभिभावक नियुक्त कर शासन सम्बन्धी समस्त अधिकार उसे सौंप दिये।

किन्तु दिल्ली के चारों ओर उस समय प्रचण्ड-विद्रोह का पवन चल रहा था। हर समय डर बना रहता था कि कहीं नवीन सम्राट् के मस्तक का मुकुट उस प्रचण्ड पवन के झोंके से उड़ न जाय। राजविप्लव के समय नियमबद्ध शासन की जड़ शिथिल होने के कारण, काबुल राज्य में विद्रोह फैल रहा था। सिकन्दर शाह हाथ से निकले हुए साम्राज्य को पुनः हस्तगत करने के लिये अकबर से लड़ रहा था। ऐसे समय में सम्राट् हुमायूँ की मृत्यु का संवाद सुन कर नवीन उत्साह के साथ सिकन्दर ने रणक्षेत्र में मुग़लों के बल की परीक्षा लेने का संकल्प किया। किन्तु इस शत्रु को निर्मूल करने के पूर्व—एक और पराक्रमी और बलवान् शत्रु मुग़ल साम्राज्य का सर्व ग्रास करने के अर्थ रङ्गभूमि में अवतीर्ण हुआ। मोहम्मद आदिल के सेनापति हैमू ने रणनिपुण तीस हज़ार सैनिकों को ले कर दिल्ली पर चढ़ाई की। मार्ग में आगरे पर अपना अधिकार जमा, वह तुरन्त राजधानी के द्वार पर जा पहुँचा। नगररक्षक तारदीवेग की अवहेला और हठ के कारण हैमू ने नगररक्षक सैन्यदल को सहज में परास्त किया और महाराजाधिराज विक्रमादित्य की उपाधि ग्रहण कर वह दिल्ली के तख़्त पर बैठ गया। जिस समय शत्रु के हाथ में दिल्ली के चले जाने का संवाद अकबर ने सुना, उस समय अधिकांश मुग़ल साम्राज्य शत्रुओं के अधिकार में चला गया था। केवल पञ्जाब का थोड़ा सा हिस्सा उस समय अकबर के हाथ में रह गया था।

हैमू की विजय का संवाद सुन कर, अकबर ने मंत्रि-सभा एकत्र की और पूँछा कि अब क्या करना चाहिये। सभा में उपस्थित लोगों ने उसे यह परामर्श दिया कि इस समय हम लोगों का काबुल को भाग जाना ही अच्छा है। उस उपस्थित मण्डली में अकेला बहरामख़ाँ था, जिसने उक्त मत का प्रतिवाद किया और कहा इस समय हम लोगों का कर्त्तव्य है कि शत्रु को युद्ध में परास्त कर के साम्राज्य को हस्तगत करें। बालक होने पर भी अकबर को बहराम का कथन युक्तियुक्त जान पड़ा। अकबर ने बहराम के कथन को इस ढङ्ग से पुष्ट किया कि उपस्थित मण्डली दङ्ग हो गयी और धन प्राण का मोह छोड़ कर युद्ध करने के लिये प्रतिज्ञा भी की। तब अकबर ने बहराम को खानबाबा की पदवी दी और समस्त प्रबन्ध का भार उसे सौंपा। इस पर बैराम ने अकबर को विश्वास दिलाने के लिये परलोकगत सम्राट् की प्रेतात्मा का नाम ले कर और अपने पुत्र का सिर स्पर्श कर के शपथ खायी कि मैं कभी धोखा न दूँगा।

इतने में एक घटना ऐसी हुई कि अकबर के साथी उमरावों को अकबर का साथ देने के अतिरिक्त और कोई उपाय अपनी रक्षा का न रह गया। वह घटना यह थी। हम ऊपर कह चुके हैं कि दिल्ली का अधःपात, वहाँ के स्थानीय शासक तारदीवेग के दुराग्रह और अवहेला ही के कारण हुआ था। बैरामख़ाँ और तारदीवेग में अनबन थी। साम्प्रदायिक भेद ही उन दोनों के मनोमालिन्य का कारण था। दिल्ली के शत्रु के हाथ में चले जाने पर तारदीवेग अकबर के पास गया।

बैरामख़ाँ उसके उक्त अपराध के लिये उसे नष्ट करने का संकल्प कर ही चुका था । एक दिन जब अकबर खेलने के लिये छावनी के बाहिर गया; तब सेनापति ने तारदीबेग का सिर काट लिया । १

हैमू ने दिल्ली को जीत कर पानीपत के सुविस्तीर्ण मैदान में अपनी सेना की छावनी डाली । कर्तव्य में शिथिलता करने का जो फल तारदीबेग को मिला—उसे देख कर, अथवा जातीय उत्साह से ही—मुग़ल सरदार हथेली पर जान रख कर युद्ध करने लगे । हैमू अपने रणनिपुण हाथी की सहायता ही से लड़ाई में जीतने का पूर्ण निश्चय कर निश्चिन्त बैठा था । किन्तु जब लड़ते लड़ते उसका हाथी—मुग़ल सेना के बीच में पहुँचा, तब चारों ओर से मुग़लों के अस्त्र शस्त्रों की मार से वह घबड़ा उठा और महावत का कहना न मान कर वह पीछे लौट पड़ा । यह देख हैमू की सेना में खलबली पड़ गई । तिस पर भी हैमू हतोत्साह न हुआ और चार हज़ार सैनिकों के साथ युद्ध करने लगा। इतने में उसकी आँख में एक तीर लगा । तीर के लगने से उसकी आँख फूट गयी । उसकी सेना ने समझा कि उस तीर के लगने से हैमू मर गया । इसका फल यह हुआ कि हैमू की सेना भयभीत हो भागने लगी । किन्तु वीर हैमू ने तीर समेत आँख को निकाल कर फेंक दिया और उस सङ्कट के समय भी वह ज़रा भी न घबड़ाया प्रत्युत असाधारण वीरता के साथ वह शत्रु सेना को नष्ट करने लगा । साथ ही वह अपनी सेना को उत्तेजित कर के स्वयं हाथ में तलवार ले शत्रु सेना को मथने लगा । इतने में कुली नामक मुग़ल सेनापति ने हैमू के महावत पर बरछा उठाया । प्राण जाने के भय से महावत ने हैमू को दिखा दिया । कुली ने झट घुड़सवारों का दल साथ ले हैमू को घेर कर बन्दी बना लिया । बस फिर क्या था । मुग़लों की जीत की दुन्दुभी बजने लगी ।

मुग़ल सेना हैमू को पकड़ कर अकबर के पास ले गयी । उस समय हैमू की दशा बहुत ही बुरी थी । उसके घावों से बराबर लोहू बह रहा था और उसके मरने में अब कुछ ही क्षणों का विलम्ब था । बहरामख़ाँ ने अकबर से बार बार कहा कि आप इस काफ़िर को अपने हाथ से मार कर ग़ाज़ी की उपाधि ग्रहण कीजिये। किन्तु अकबर हाथ में तलवार ले और हैमू की गरदन पर उसे छुला तथा आँखों में आँसू भर कर पीछे हट गया । यह देख आँखें लाल कर क्रुद्ध हो बहराम ने अकबर से कहा—"असमय में दया दिखा कर ही तुम्हारे वंश को सदा विपत्तियाँ झेलनी पड़ीं ।" यह कह कर उसने स्वयं विजितवीर हैमू का सिर काट डाला । हैमू का सिर काबुल के द्वार पर और शरीर दिल्ली के द्वार पर रखने के लिये भेजा गया ।

पानीपत के इस युद्ध के कुछ दिनों बाद ही काबुल का विद्रोह भी ठंडा पड़ गया और सिकन्दर शाह की भी सदा के लिये कमर तोड़ दी गयी । अकबर, बहराम की सहायता से पृथिवी को नररक्त से लाल कर दिल्ली के तख़्त पर बैठा ।

उस समय अकबर तेरह वर्ष चार महीने का था । इसलिये बहरामख़ाँ अकबर के नाम से समस्त शासन कार्य स्वयं करता था । उसके शासन काल की प्रणाली उसकी बुद्धि की उपज थी । उस प्रणाली से और अकबर से कुछ भी सम्बन्ध न था ।

अकबर शैशवावस्था में बहराम की स्नेह छाया में बढ़ा । बहरामख़ाँ के असीम रणनैपुण्य और अविश्रान्त उद्योग ही से अफ़ग़ानों के हाथ से दिल्ली की बादशाही मुग़ल छीन सके । इसीसे अकबर उसे खान-बाबा कह कर सम्बोधन किया करता था और हृदय से उसका कृतज्ञ था । किन्तु बहरामख़ाँ का स्नेह प्रवाह

१ इस घटना को ले कर प्राचीन इतिहास लेखकों में मतभेद है । एक दल कहता है कि तारदीबेग की हत्या में अकबर की अनुमति थी—दूसरा दल अकबर के अनजाने में तारदीबेग की हत्या का होना बतलाता और बहरामख़ाँ को इस हत्या के लिये सोलहों आने उत्तरदाता कहता है । फ़रिश्ता के लेखानुसार बहरामख़ाँ ने अकबर की आज्ञा लिये बिना ही तारदीबेग को मारा था । क्योंकि जब अकबर बाहर से लौट कर आया; तब बहरामख़ाँ ने उससे कहा था—जहाँपनाह ! मैंने आपकी आज्ञा लिये बिना ही तारदीबेग को मार डाला—क्योंकि मैं जानता था कि आप दयालु ...त के महानुभाव हैं, आप कभी इस काम के किये जाने की आज्ञा न देते । किन्तु इस सङ्कट के समय ऐसे राजद्रो- ... को कठोर दण्ड दिये बिना छोड़ देना भी राजनीति के सर्वथा विरुद्ध है ।

अकबर के प्रति बहुत दिनों तक एकसा न रहा । अबुलफ़ज़ल ने लिखा है कि पहले बहराम का चरित्र निर्मल था और सब लोग उसे चाहते थे; किन्तु पीछे सर्वांग अधिकार मिलने के साथ ही साथ, चापलूसों द्वारा घिरे रहने के कारण, उसके स्वभाव में क्रूरता और यथेच्छाचारीपन आ गया ।

एक दिन अकबर हाथियों की लड़ाई देख रहा था । इतने में हाथी बिगड़ कर बहराम के डेरे में घुस गया और वहाँ अनेक उत्पात मचाने लगा । बहरामख़ाँ उस समय अपने डेरे ही में था और कुछ ही क्षणों बाद वह सुरपुर की यात्रा करने वाला था । किन्तु उसकी आयु शेष थी अतः वह बच गया । परन्तु उसने यह घटना आकस्मिक घटना न समझी । उसने समझा कि मेरे शत्रुओं ने मेरे प्राण लेने के लिये यह षड्यंत्र रचा था । यद्यपि यह केवल उसकी कल्पनामात्र थी, तथापि इस सन्देह में पड़ उसने उस हाथी के महावत को जान से मरवा डाला । इतने पर भी बहराम को सन्तोष न हुआ । उसने अकबर पर भी अपनी अप्रसन्नता प्रकट की और कई दिन तक वह अकबर का अपमान करता रहा । इसी बीच में उसने एक अपने प्रतिद्वन्द्वी राजकर्मचारी को एक तुच्छ अपराध के लिये मरवा डाला । इसके बाद उसने अकबर के शिक्षक मीर मोहम्मद के प्राण तो न लिये पर उन्हें राजधानी से निकाल बाहर किया । संशयग्रस्त बहराम के द्वारा बादशाह के निज के नौकर भी विपत्ति में थे । उसके ऐसे ऐसे अनेक कृत्यों से राजदरबार में उसके बहुत से शत्रु उत्पन्न हो गये थे । स्वयं अकबर ही की उस पर बहुत ही कम श्रद्धा रह गयी थी । बहराम के शत्रु उसके विरुद्ध सदा अकबर को भड़काया करते थे । किन्तु बहरामख़ाँ राजनीतिविशारद एवं कार्यपटु मन्त्री था । इसीसे अकबर उसके सारे अपराधों को सुने अनसुने कर जाता था । अकबर अपनी धात्री को बहुत मानता था । उसने भी अकबर के सामने बहराम के निन्द्य कार्यों की चर्चा कर उसे उत्तेजित किया इन कारणों से अकबर के मन पर यह बात जम गयी कि जब तक बहराम के हाथ में शासन-शक्ति रहेगी; तब तक मैं निश्चिन्त नहीं हो सकता । इसीसे वह अवसर ढूँढ़ने लगा । अन्त में १५६० ई० के आरम्भ में कई एक ऐसी घटनाएँ हुईं कि अकबर से चुप न रहा गया और उसे राजाज्ञा प्रकाशित करनी पड़ी कि आज से मैंने शासन का सारा भार अपने हाथ में लिया । १

राजाज्ञा के प्रचारित होते ही बहराम की आँखें खुलीं—उसने जाना कि अकबर ने उसे अधिकार से च्युत कर दिया है और यदि वह बलपूर्वक अपने खोये हुए अधिकार को लेना चाहे; तो उसके लिये सारे द्वार पहले ही से बन्द कर दिये गये हैं । अतः उसने इस अपमान के साथ हिन्दुस्तान में रहना उचित न समझ मक्का जाने का विचार पक्का किया और तदनुसार वह चल भी दिया । किन्तु गुजरात में पहुँच कर वह रुक गया और सोचने लगा कि सम्भव है अकबर अब समझा हो, और उसे बुलाने के लिये कोई दूत आता हो । उधर अकबर ने उसे लौटाने के लिये तो नहीं, किन्तु भारतवर्ष की सीमा से तुरन्त बाहिर निकालने के अर्थ, मीर मोहम्मद को ससैन्य गुजरात भेजा । अकबर के इस शुष्क व्यवहार पर अप्रसन्न हो, बहराम ने उसके विरुद्ध शस्त्र उठाया—किन्तु फल यह हुआ कि वह कुछ ही काल बाद हारा, और पकड़ कर अकबर के सामने उपस्थित किया गया । उस समय उसके नेत्रों

१ बहराम के हाथ से राजशासन लेते समय अकबर को एक कौशल रचना पड़ा था । बहराम और अकबर दोनों राजधानी के बाहिर डेरे में थे । उस समय अकबर शिकार खेलने का बहाना कर राजधानी में आया और वहाँ से घोषणापत्र प्रचारित किया । साथ ही उसने खानबाबा को नीचे लिखे आशय का एक पत्र लिखा । यह पत्र अकबर ने दिल्ली से लिखा था किन्तु बहराम को आगरे में मिला था ।

"As I was fully assured of your honesty and fidelity, I left all important affairs of State to your charge and thought only of my pleasures. I have now determined to take the reins of the Government into my own hands, and it is desirable that you should make the pilgrimage to Mecca upon which you have been so long intent. A suitable jagir out of the parganas of Hindustan shall be assigned to your maintenance, the revenue of which shall be transmitted to you by your agent."

Tabakt-i-Akbari.

में अश्रुजल बहने लगा और वह अकबर के पैरों में सिर रख कर क्षमा माँगने लगा । तब अकबर ने उसे अपने हाथों से उठाया और अपने पास बिठाया । उस समय अकबर उसके हाल के अपराधों को तो भूल गया, किन्तु उसकी उस सेवा का उसे स्मरण हो आया, जो बहराम ने मुग़ल साम्राज्य को शत्रु के हाथ से निकालते समय की थी । अतः भरे दरबार में अकबर ने बहराम से कहा :—

अकबर—यदि खानबाबा को सामरिक जीवन भला लगता हो तो मैं उन्हें कालपी और चंदेरी के शासनकर्ता का पद दे सकता हूँ—वहाँ वे अपनी प्रतिभा का भलीभाँति परिचय दे सकेंगे। और यदि उनकी यह इच्छा हो कि वह यहाँ राजदरबार में रहें तो भी हमारे वंश के उपकारी मित्र खानबाबा राजानुग्रह से वञ्चित न होंगे। और यदि वे अब अपना जीवन ईश्वर स्मरण में व्यतीत करने के अर्थ तीर्थयात्रा करना चाहते हों, तो उनको मक्के पहुँचाने का भी प्रबन्ध करवा दिया जायगा ।

इसके उत्तर में बहराम ने कहा :—

बहरामख़ाँ—अवश्य ही बादशाह सलामत की प्रीति और विश्वास मुझ में बहुत कम हो गया है । अब मैं पूर्ववत् बादशाह सलामत की प्रीति और विश्वास सम्पादन कर न सकूँगा । ऐसी दशा में मैं जहाँपनाह के पास किस प्रकार रह सकता हूँ । बादशाह सलामत की कृपा ही मेरे लिये बहुत है और इस समय क्षमा ही मेरी पूर्व सेवाओं का यथोचित पुरस्कार है । अभागा बहरामख़ाँ अब इस संसार की ममता को छोड़ और परलोक बनाने की चिन्ता में मग्न हो कर मक्का शरीफ़ की यात्रा करेगा ।

बहराम मक्का के लिये पुनः प्रस्थानित हुआ—किन्तु बीच ही में उसे एक पठान ने मार कर अपने पिता की हत्या का उससे बदला लिया । अकबर ने तख़्त पर बैठने के पाँच वर्ष बाद राजशासन का भार अपने हाथ में लिया ।

अठारह वर्ष के एक तरुण युवक के हाथ में दिल्ली की बादशाही की रास देख कुछ दुरात्मा मुग़लों ने साम्राज्य के भिन्न भिन्न प्रान्तों में विद्रोह-पताका गाड़ दी और अकबर को विकल किया । पहले शेख़ वंश के बचे हुए नरपति आदिल के द्वितीय पुत्र शेर-शाह ने सेना एकत्र कर अकबर के विरुद्ध युद्ध घोषणा की। तब अकबर ने जमानख़ाँ सेनापति को अपनी ओर से शत्रु को ध्वंस करने के लिये भेजा । किन्तु जमानख़ाँ ने तरुणवयस्क प्रभु को तुच्छ जान, लूट के माल को अकेले ही पचा जाना और स्वयं स्वाधीन होना चाहा । यह देख अकबर ने स्वयं उस पर चढ़ाई की। तब जमानख़ाँ ने अन्य उपाय न देख अकबर की वश्यता स्वीकार की ।

उस समय मालवा पर अफ़ग़ानों का आधिपत्य था । उनके हाथ से मालवा प्रान्त निकालने के अर्थ, अकबर ने सेनापति आदमख़ाँ को भेजा । आदमख़ाँ ने भी जमानख़ाँ की तरह स्वतंत्र होना चाहा । उसको दमन करने के अर्थ भी अकबर को स्वयं मालवा जाना पड़ा । आदमख़ाँ को भी अन्त में हार कर क्षमा माँगनी पड़ी । सरल स्वभाव अकबर ने तो उसे क्षमा कर दिया, किन्तु उसके मन पर इसका जैसा प्रभाव पड़ना चाहिये था—वैसा न पड़ा । क्योंकि क्षमा किये जाने पर वह दिल्ली गया । एक बार वज़ीर बादशाह के पास ही उपासना कर रहे थे कि आदमख़ाँ ने बड़ी नृशंसता के साथ वज़ीर की हत्या की । तब अकबर ने क्रुद्ध हो उस हत्यारे को अपने भवन के शिखर से यमुना में फिकवाया मालवे का शासन भार अकबर ने अपने शिक्षक मीर मोहम्मद को सौंपा किन्तु मौलवी मीर मोहम्मद ने तो बाल्यावस्था से मकतब पढ़ाया था—वह बेचारा शासन का रहस्य क्या जानता—इसलिये उसके शासनकाल में मालवा उत्पातों की रङ्गस्थली बन गया । तब उस प्रान्त में शान्ति-स्थापन के अर्थ अकबर ने उन मौलवी साहब को पदच्युत कर दिया ।

इसके बाद गुजरात के अबदुलअली और शरफ़-उद्दीन ने राजद्रोह का झगड़ा खड़ा किया—किन्तु अकबर ने उन्हें भी परास्त किया—और वे दोनों काबुल की ओर भाग गये ।

मीर मोहम्मद को अधिकारच्युत कर के अकबर ने उजबक वंशोद्भव अबदुल्लाख़ाँ को मालवे का शासक नियुक्त किया । अबदुल्ला बड़ा क्रोधी था । वह भी मालवे में थोड़े ही दिनों रह कर अपने को स्वाधीन नवाब समझने लगा । उसको दमन करने के लिये अकबर को फिर मालवा की यात्रा करनी पड़ी । तब तो अबदुल्ला मालवा छोड़ गुजरात की ओर भाग

गया। इस घटना का परिणाम यह हुआ कि उजबक जाति के सब सैनिक बादशाह के विरुद्ध खड़े हो गये और विद्रोह चारों ओर फैल गया।

इस विद्रोह के खड़े होने के पहले अकबर आसफ़ख़ाँ को नर्मदा तीरवर्ती गढ़मण्डल राज्य की स्वाधीनता हरने के लिये भेज चुका था। उस समय गढ़मण्डल का दुर्ग, दुर्गावती के हाथ में था। वह तेजस्विनी वीर रमणी थी। जब आसफ़ख़ाँ ने गढ़मण्डल पर चढ़ाई की तब रानी बड़े विक्रम के साथ शत्रु सेना को नष्ट करने लगी। इतने में दुर्गावती की एक आँख में एक तीर लगा। तब सैन्य परियातन के कार्य में अपने को असमर्थ जान दुर्गावती ने आत्महत्या कर ली। वीर रमणी की मृत्यु होने पर आसफ़ख़ाँ ने सहज ही में गढ़मण्डल को ले लिया। कहा जाता है वहाँ उसे मोहरों से भरे सौ कलशे मिले थे। आसफ़ख़ाँ ने इन कलशों में से अनेक स्वयं हड़प जाने चाहे किन्तु यह बात अकबर से न छिप सकी इस लिये आसफ़ख़ाँ की ओर से अकबर के मन में गाँठ पड़ गयी। फल यह हुआ कि आसफ़ख़ाँ विद्रोही उजबकों से मिल गया और अकबर की नाक में दम कर दी। यहाँ तक कि अकबर का सिंहासन हिल उठा। उजबक धीरे धीरे दिल्ली के समीप पहुँच गये। तब अकबर विपुल विक्रम से इस विद्रोह को दबाने के लिये प्रवृत्त हुआ। दो वर्ष तक प्रयत्न करने पर विद्रोह प्रायः ठण्डा पड़ गया था इतने में अकबर के छोटे भाई हाकिम ने पञ्जाब पर आक्रमण किया। तब अकबर विद्रोह दमन के कार्य को परित्याग कर पञ्जाब की ओर प्रस्थानित हुआ। वहाँ हाकिम का मान मर्दन कर कुछ मास बाद जब अकबर लौट कर आया; तब देखता क्या है कि विद्रोहियों ने फिर सेना एकत्र कर प्रयाग और अयोध्या का अधिकांश भाग अपने अधिकार में कर लिया है और राजधानी पर चढ़ाई करने की वे तैयारियाँ कर रहे हैं। उस समय बरसात का मौसिम था। युद्ध के लिये बरसात उपयुक्त समय नहीं—तो भी इन अड़चनों को तुच्छ समझ, अकबर ने विद्रोहियों पर चढ़ाई की। विद्रोहियों ने भाग कर गङ्गा के उस पार दम ली। वर्षा के कारण गङ्गा ने भयानक रूप धारण किया था, इससे विद्रोहियों ने अपने को निरापद समझा। किन्तु चौमासे की गङ्गा भी अकबर की गति को न रोक सकीं। अकबर दो हज़ार से भी कम सैनिकों को साथ ले कर रात के समय तैर कर गङ्गा के पार हुआ और निश्चिन्त पड़े हुए विद्रोहियों पर आक्रमण किया। इस आकस्मिक आक्रमण से विद्रोही दल विध्वंस हो गया। सात वर्ष तक अविश्रान्त युद्ध कर के पचीस वर्ष की अवस्था में अकबर ने विद्रोहियों को समूल नष्ट कर पाया। उसने इस विद्रोह-दमन में बड़ा साहस और वीरता दिखलायी।

अकबर ने पाँच वर्ष तो बहरामख़ाँ की शागिर्दी की और सात वर्ष तक दुरात्मा राजकर्मचारियों के विद्रोह-दमन में व्यतीत कर अपने राजत्व के नाटक का प्रथम अङ्क समाप्त किया। और सन् १५६६ ई० में दूसरे अङ्क का अभिनय आरम्भ हुआ।

अकबर ने समस्त भारतवर्ष की प्रजा और राजकर्मचारियों को अपने वश में कर के एक विशाल साम्राज्य स्थापित करने का विचार किया। उसने अपनी प्रतिभा के बल से जाना कि इस सार्वभौम साम्राज्य के कर्णधार भारतीय हिन्दू नरेशों और हिन्दू प्रजा का नेता बनने ही से मेरी मनोभिलाष पूरी होगी। मुझे भारत की अस्थि मज्जा के साथ मिश्रित होकर जातीय अधिनेता के समान अपने को प्रकट करना पड़ेगा। किन्तु यह काम सहज नहीं है। गत साढ़े तीन सौ वर्षों में किसी भी मुसलमान नरपति ने इस बात पर कभी ध्यान ही नहीं दिया था। अभी तक मुसलमान राजाओं ने बाहुबल ही से भारत में राज्य किया—और उनकी बढ़ती अथवा घटती के कारण ही बारंबार राजविप्लव हुए।

अकबर ने पहली पहल खण्ड राज्यों को जीत कर उन्हें एक छत्र के नीचे करने का संकल्प किया। इस काम के लिये अकबर ने हिन्दू-बाहु-बल का आश्रय ग्रहण किया। अपने साम्राज्य की सीमा बढ़ाने के साथ ही साथ, अकबर ने प्रजा की उन्नति एवं उसके हित के कामों में भी हाथ डाला।

अकबर ने जातिय पक्षपात को तिलाञ्जलि दी और उजबक, अफ़ग़ान, हिन्दू, पारसी, ईसाई आदि भिन्न भिन्न जाति के लोगों को उनकी योग्यतानुसार सैनिक विभाग में नियुक्त कर वह कार्यक्षेत्र में अवतीर्ण हुआ। उसने अपने सब सेनापतियों को आज्ञा दी कि जिस राज्य को जीतो, उसमें बसने वाले लोगों पर न तो अत्याचार करो और न किसीको

गुलाम बना कर बेचो । उस समय बहुत काल से यात्रियों से कर लेने की प्रथा प्रचलित थी। इस प्रथा से आय भी बहुत होती थी—किन्तु इस प्रथा को बुरा समझ उसने यात्री कर उठा दिया। साथ ही हिन्दुओं की दृष्टि में घृणय और अपमानजनक ज़जिया कर भी उनके ऊपर से उठा दिया और गोहत्या को कम करने की ओर उसने दृष्टि डाली। अन्त में उसने वीर राजपूत जाति की कन्याओं के साथ विवाह कर उनको मुग़ल साम्राज्य का हितैषी बना लिया। १

सारांश यह कि अकबर ने बाहुबल और कौशल से राज्य पर राज्य हस्तगत कर भारतवर्ष के टुकड़ों को जोड़ कर एक साम्राज्य बनाया।

अकबर ने सब से प्रथम राजपूताने पर हाथ साफ़ किया। राजपूताने के पश्चिम में सिन्धुप्रदेश, पूर्व में बुन्देलखण्ड, उत्तर में जङ्गल देश नामक रेगिस्तान और दक्षिण में विन्ध्य पर्वत माला है।

सब से पहले जयपुर के बिहारीमल्ल ने अकबर के साथ मैत्री कर, उसे अपनी कन्या दी। अनन्तर उसने जोधपुर पर चढ़ाई की। वहाँ के राजा ने कुछ दिनों तक अकबर के साथ युद्ध कर के उसकी वश्यता स्वीकार की। तब अकबर ने उसकी कन्या के साथ विवाह किया। जोधपुरी बेगम की एक बहिन बीकानेर-नरेश को ब्याही थी। अतः बीकानेर-नरेश ने भी अकबर के साथ मैत्री कर ली। इस प्रकार कहीं युद्ध कर के, कहीं मित्रता कर के, अकबर ने समस्त राजपूताने पर अपना प्रभुत्व जमाया। एकमात्र मेवाड़ाधिपति राना और उनके अधीनस्थ कुछ सामन्तों ने अकबर को सिर न झुकाया। इनको वश में करने के लिये अकबर ने कोई बात उठा नहीं रखी। किन्तु लगातार दस वर्ष तक युद्ध करने पर भी जब कुछ भी फल न हुआ, तब विवश हो उसे अपना संकल्प छोड़ना पड़ा।

अकबर ने राजपूताने को जीत कर और उनके साथ उदारता और समदर्शिता पूर्वक सद्व्यवहार कर के प्रधान-प्रधान हिन्दू राज्यों को अपने हस्तगत कर

---

१ भारत में मुग़ल सम्राटों में से सब से प्रथम अकबर ही ने हिन्दू रमणियों के साथ विवाह किया था। उसकी पहली हिन्दू पत्नी जयपुर के बिहारीमल्ल की कन्या थी। उसकी दूसरी हिन्दू पत्नी जोधपुराधिपति की कन्या थी। उसका नाम जोधपुरी बेगम रखा गया था। जोधपुरी बेगम के गर्भ से उत्पन्न बालक ही का नाम जहाँगीर था। जहाँगीर ने जयपुर के बिहारीमल्ल की पौत्री के साथ विवाह किया। टाड साहब तो इस सम्बन्ध का खण्डन करते हैं, किन्तु मुसलमान इतिहास लेखक लिखते हैं कि बिहारीमल्ल ने अपनी पौत्री जहाँगीर को समर्पण की थी। सब मिला कर अकबर की आठ धर्मपत्नियाँ थीं। उनके नाम ये हैं—

१मं—सुलताना रक़िया बेगम। यह मिरज़ा हिन्दाल की कन्या थी।

२री—सुलताना सालिमा बेगम—यह कवि थी। इसका विवाह पहिले बहरामख़ाँ के साथ हुआ था, किन्तु जब वह मारा गया तब अकबर ने उसके साथ निकाह कर लिया। यह बाबर की दौहित्री थी।

३री—जयपुर के बिहारीमल्ल की कन्या।

४थी—अबदुल असीर रूपवती पत्नी।

५वीं—जोधपुर महाराज की कन्या।

६वीं—बीबी दौलतशाद।

७वीं—अबदुल्ला मुग़ल की कन्या।

८वीं—खानदेश के मुबारकशाह की कन्या।

इनके अतिरिक्त अकबर की उपपत्नियों की संख्या न थी। एक बार नौरोज़ के मेले में अकबर को विषय वासना के कारण बहुत नीचा देखना पड़ा था—यह इतिहास प्रसिद्ध घटना है।

प्रसिद्ध इतिहास लेखक ह्वीलर साहब लिखते हैं कि अकबर ने एक ईसाइन के साथ भी विवाह किया था:—

"He married a Christians wife.

Known as *Miriam* or *Mary*; and he built a palace for her at Fatehpur, which is to be seen to this day, and was characterised by refinements which in those days were only known to Europeans.—

Tales from Indian History.

लिया। फिर हिन्दुओं के द्वारा भारतवर्ष के प्रत्येक खण्ड के मुसलमानी राज्य को अपने अधिकार में किया। बादशाही सेना की फुर्ती, रणचातुर्य से गुजरात, विहार, बङ्गाल और उड़ीसा में मुग़लों की विजय पताका फहराने लगी। सन् १५७४ ई० में मुग़ल सेनापति ने उड़ीसा को जीता।

यह अकबर के प्रताप का मध्याह्न काल था। वैरामख़ाँ के पदच्युत किये जाने के समय पञ्जाब, पश्चिमोत्तर प्रदेश, अजमेर, गवालियर और अयोध्या अकबर की अमलदारी में थे। नर्मदा के तट से ले कर आक्सस नदी तक के प्रदेशों के और बङ्गाल की खाड़ी से लेकर भारतसागर तक के प्रदेशों के समस्त नर नारी अकबर को अपना सम्राट् मानते थे। क्षमता, प्रताप एवं वैभव में उस समय उसकी टक्कर लेने वाला और कोई न था। अकबर ने राजस्व मंत्री के पद पर राजनीतिविशारद टोडरमल को, प्रधान सेनापति के पद पर अब्दुर रहीम को, और प्रधान सचिव के पद पर फ़ैज़ी और अबुलफ़ज़ल को नियुक्त किया।

अकबर ने बाहुबल और सद्व्यवहार से प्रायः समस्त भारतवर्ष अपना कर लिया। किन्तु अकबर को एक सुविशाल साम्राज्य के निवासियों के प्रभु बनने ही से तृप्ति न हुई, उसने नर नारियों के मानसिक राज्य का प्रभुत्व भी अपने हस्तगत करना चाहा। अपनी इस अभिलाषा को पूर्ण करने के लिये अकबर ने अन्य पूर्ववर्त्ती मुसलमान शासकों की तरह तलवार से काम न लिया। अकबर की नीति के अनुसार, सम्प्रदाय अथवा जाति भेद उसकी प्रसन्नता अथवा अप्रसन्नता का कारण न था। वह स्वयं धर्मसम्बन्धी जो स्वतंत्रता उपभोग करता था, उसे उसने अपनी प्रजा को भी देना चाहा। उस समय मौलवियों का बहुत चलता था। यहाँ तक कि देश भर का शिक्षा विभाग उन्हींके हस्तगत था। विचारपति के पद पर भी मौलवी ही नियुक्त किये जाते थे। उनके अधिकार और चलाव की सीमा न थी। उनके मन में जो आता था वे वही करते थे। उनकी स्वेच्छाचारिता इतनी बढ़ गयी थी कि कभी कभी वे कुरान के आदेशों की भी अवहेला किया करते थे। भारतवर्ष में सुन्नी सम्प्रदाय के मुसलमानों ही की संख्या सदा से अधिक रही है। अकबर के समय में सुन्नी सम्प्रदाय के समस्त मुसलमान इन्हीं, मौलवियों के इशारे पर नाचते थे। मौलवियों के धार्मिक विचार बड़े सङ्कीर्ण थे। उदारता तो उनमें लेशमात्र भी न थी। सम्प्रदाय के पक्षपात और दुराग्रह (तास्सुब) में पड़ ये लोग हिन्दुओं पर और शिया मुसलमानों पर सदा अत्याचार किया करते थे। ये सब बातें अकबर के मन में खटकती थीं। साथ ही वह यह भी जानता था कि मौलवियों के अधिकार और उनके चलाव को संकुचित करने से मौलवी लोग बहुत बखेड़ा करेंगे। किन्तु यदि उनके बखेड़ों पर ध्यान दे कर उनकी स्वेच्छाचारिता ज्यों की त्यों बनायी रखी जाय, तो मेरी शासनप्रणाली शुद्ध और शृङ्खलाबद्ध न होगी।

मुसलमानों में एक बड़ा भारी गुण अथवा अवगुण यह है कि वे अपने धर्म के इतने कट्टर पक्षपाती होते हैं कि अन्य धर्मवालों को वे विद्वेषी समझा करते हैं। जिस समय भारतवर्ष पर उनका आधिपत्य था, उस समय उन्होंने अत्याचार और अविचार की सीमा अतिक्रम की। यदि उनमें दुराग्रह (तास्सुब) की मात्रा अधिक न होती, तो वे अन्य धर्मावलम्बियों पर इतने अत्याचार न करते। अकबर के समय तक मुसलमान तलवार के बल से धर्म प्रचार करते थे। अकबर जन्म ही से ऐसे लोगों के साथ रहा था, अथवा यों भी कह सकते हैं कि वह ऐसे ही लोगों के द्वारा पाला पोसा गया था। अतः उसके स्वभाव में उदारता होने पर भी उसका धर्म विश्वास बहुत कुछ उन्हीं लोगों जैसा था। अतः अकबर ने अपनी अमलदारी के पूर्व भाग में कुरान-अनुगत धर्म-विश्वास का परिचय दिया। वह तीर्थस्थानों और महात्माओं के दर्शन करने का बड़ा अनुरागी था। यही नहीं, इसलाम धर्म के विरुद्ध अपने उदार धर्म का प्रचार करने के तीन वर्ष पहिले, उसकी प्रबल अभिलाषा मक्का की यात्रा करने की थी, नूरुलहक़ नाम का एक इतिहास लेखक है जो अकबर के समय में विद्यमान था। उसने अपने ग्रन्थ में लिखा है कि अकबर चाहे राजधानी में रहता या दौरे में वह सदा पाँचों वक़्त की नमाज़ पढ़ता था। राज्य की ओर से कुरान का पाठ करने वाले नौकर थे, जो सदा कुरान का पाठ किया करते थे। इतना होने पर भी अब देखना यह है कि अकबर के धार्मिक विचारों के परिवर्त्तन का कारण क्या था? अकबर निस्सङ्कोच हो कर पर-

धर्मावलम्बी राजपुरुषों से अपने साम्राज्य के हितार्थ मिलता और वातचीत करता था । वार्तालाप के समय अनेक बातें इधर उधर की भी छिड़ जाया करती थीं। प्रसङ्ग वश धर्मचर्चा भी होने लगती थी। कथोपकथन में लोग अपने धर्म के उत्कृष्ट सिद्धान्तों का निष्कर्ष भी उसके सामने प्रकट कर देते थे। उनमें से अनेक धार्मिक सिद्धान्त अकबर के मन पर अपना स्थायी प्रभाव डालते थे और इससे अकबर के मन में अन्य मतावलम्बियों के धर्मशास्त्र देखने की प्रवृत्ति उत्पन्न होती थी। शेख़ नूरुलहक़ ने लिखा है:—

अकबर की राजसभा में सब सम्प्रदाय के, सब मेल के और सब देशों के और सब जाति के लोग एकत्र होते थे । खुरासान, ईराक, मारुलहर और हिन्दुस्थान के विद्वान्, शास्त्रवेत्ता, धर्मविद्, सिया सुन्नी, दर्शनशास्त्रज्ञ और ईसाई एकत्र होते थे। अकबर की कथोपकथन की स्पृहा और सौजन्य की ख्याति—तिस पर उसकी राजमर्यादा और क्षमता का हाल सुन दूर दूर के लोग उससे मिलने आते थे। अकबर, अपना बहुत सा समय इतिहास, भ्रमण वृत्तान्त, प्रत्यादेश prophecy, और धर्म विषयक आलोचनाओं के सुनने में व्यतीत करता था साधारणतः तार्किक लोग जिस सिद्धान्त के अनुयायी स्वयं होते हैं, उसीका अनुयायी दूसरों को बनाने का वे प्रयत्न भी करते हैं, अकबर अन्य जाति वालों के इतिहास, आचार, व्यवहार और धर्मसम्बन्धी विश्वासों का सुन कर विस्मित होता था । वह केवल सत्य सिद्धान्त की खोज में था, अतः जब परस्पर विरुद्ध मतों की चर्चा चलती, तब वह विशेष ध्यान दे कर उसे सुनता था और विचारपूर्वक उसमें का सार निकाल लेता था। वह राजकर्मचारी शास्त्रवेत्ता एवं शूर सामन्तों के सामने खुलंखुल्ला यह कहा करता था:—'हे ज्ञानी मुल्लाओ ! पहले सत्य धर्म को निर्णय कर के और सत्य धर्म को जान कर तब उसका प्रचार करो। मेरा उद्देश्य यह है कि मैं ईश्वरादिष्ट धर्म का मूल ढूँढ़ कर निकालूँ । अतएव मनुष्योचित दुर्बलता के वशीभूत हो कर सत्य को न तो छिपाना और न ईश्वरादेश के विरुद्ध कोई मत प्रकाश करना । यदि तुम ऐसा करोगे, तो अधर्माचरण के लिये तुम्हें ईश्वर के सामने उत्तर देना पड़ेगा ।' अकबर ने जब तक अपना यह मत प्रकाश नहीं किया था; तब तक मौलाना अबदुल सुलतान सूर और शेख़ अबदुल नबी सदा राजसभा में उपस्थित रहते थे और उन पर अकबर विशेष कृपा भी किया करता था । ये दोनों व्यक्ति इसलाम धर्म और शास्त्र सम्बन्धी श्रेष्ठ मत देने वालों में गिने जाते थे। इन दोनों का अधिक समय परस्पर विरुद्ध मत का पोषण करने और अपने अपने वक्तव्य को उत्तेजनापूर्वक कहने और दूसरों की निन्दा करने ही में व्यतीत होता था। धीरे धीरे ज्यों ज्यों अकबर को अन्य धर्मों की गुणावली अवगत होती गयी, त्यों ही त्यों इन दोनों मौलवियों की प्रतिपत्ति और प्रतिष्ठा, अकबर की दृष्टि में कम होती गयी। यही नहीं, किन्तु जिस धर्म का वे प्रचार करते थे—उसकी ओर से अकबर उदासीन भाव धारण करने लगा ।

इस प्रकार जिस समय अकबर का इसलामी धर्म विश्वास शिथिल होने लगा था, उसी समय उसने साम्राज्य की रक्षा के लिये शासन का संस्कार किया और अनेक नये विधान बनाये। शासन संस्कार के काम में सङ्कीर्ण धर्ममतावलम्बी राजकर्मचारी जब पद पद पर बाधा उपस्थित करने लगे, तब अकबर ने अपना धर्ममत बदल दिया और उदार धर्मावलम्बी बन कर उसने सर्व साधारण में उसी नवीन धर्म के प्रचार करने का सङ्कल्प किया। अबुलफ़ज़ल ने (जो सचमुच एक नामी विद्वान् था) इस काम में अकबर का हाथ बटाया ।

अकबर की अमलदारी के इक्कीसवें वर्ष (सन् १५७६ ई०) में एक बड़ा भारी उलट फेर हुआ। अकबर ने राजमुद्रा से प्रचलित कलमे को निकाल कर निज नाम-संवलित वचन अङ्कित करने की आज्ञा दी। साथ ही उसने लोगों से सम्मति माँगी कि मुद्रा पर "अल्लाहो अकबर"[१] खुदवाया जा सकता है कि नहीं? अधिक लोगों ने अकबर के मत का अनुमोदन किया। किन्तु हाजी इब्राहीम ने अकबर के मत का प्रतिवाद करते हुए कहा—" इस वाक्य के अर्थ में धोखा होता है, अतः "अल्लाहो अकबर" के पहले कुरान के अनुसार एक शब्द अर्थात् "नाज़िकर अल्लाहो अकबर"[२] और जोड़ दिया जाय ।" इब्राहीम की सम्मति अकबर को ठीक न जान पड़ी । उसने कहा—

१ "अल्लाहो अकबर" के दो अर्थ ये हो सकते हैं—(१) "महान् ईश्वर" (२) "अकबर ईश्वर"।
२ ईश्वर में सदा मन लगाना सब कामों से बढ़ कर है ।

"अल्लाहो अकबर" के अङ्कित किये जाने में किसी को किसी प्रकार का भ्रम नहीं हो सकता। क्योंकि मनुष्य में इतनी सामर्थ्य नहीं है कि वह ईश्वरत्व का दावा कर सके। अतएव "अल्लाहो अकबर" वचन ही मुद्रा पर अङ्कित किया जाय।"

ब्लाकमैन का मत है कि "अल्लाहो अकबर" के दो अर्थ हो सकते थे—इसीसे अकबर ने उसे राजमुद्रा पर खुदवाया। "अकबर ईश्वर" यह अर्थबोधक मुद्रालिपि जब मुसलमान-समाज में चल निकली, तब अकबर, अबुलफ़ज़ल की सहायता से धर्मसम्बन्धी परिवर्त्तन करने में प्रवृत्त हुआ।

अबुलफ़ज़ल ने प्रस्ताव किया कि राजा पारमार्थिक विषयों में भी प्रजा का अधिनेता है। कुरान का अनुशासन है कि मानव समाज की व्यवस्था नियमित नहीं हो सकती—यही इसलाम धर्म का मूल मत है। अबुलफ़ज़ल का प्रस्ताव इसका मूलोच्छेदक था। मुसलमान शास्त्रवेत्ता विषम समस्या में पड़े। वे सोचने लगे कि यदि अबुलफ़ज़ल का मत ग्रहण नहीं करते तो बादशाह समझेगा कि उसका अपमान किया और वह बुरा मानेगा अथवा यदि उसे माने लेते हैं तो इसलाम धर्म की दीवाल खिसकी पड़ती है। अन्त में उन्हें अकबर ही की बात मान लेनी पड़ी। मकदूमुल् मुल्क, शेख़ अबुलनबी, क़ाज़ी जलालउद्दीन मुलतानी, शेख़ मुबारक-उनाज़ीग़ाँ बदक्शी को न्यायपरायण राजा ही को पारमार्थिक विषय में भी अधिनेता मान कर, अपने अपने स्वाक्षर कर घोषणापत्र प्रचारित करना पड़ा। वह घोषणापत्र इस आशय का था:—

"हम लोग एक मतावलम्बी हो कर, मीमांसा करते हैं कि ईश्वर की दृष्टि से मुज़ताहिदों के पद की अपेक्षा सुलतान आदिल ही का पद श्रेष्ठ है। हम और भी घोषणा करते हैं कि इसलाम सुलतान, मनुष्य जाति का आश्रय-स्थल, विश्वासियों का नेता और पृथिवी पर ईश्वर की प्रतिच्छाया अबुलफते जलालउद्दीन मोहम्मद अकबर बादशाह ग़ाज़ी (ईश्वर उसका राज्य चिरस्थायी करे) एक बड़ा न्यायपरायण, ज्ञानी और ईश्वर से डरने वाला राजा है। अतएव मुज़ताहिदों में किसी प्रकार का यदि कोई मत भेद उपस्थित हो, तो बादशाह अपनी तीक्ष्ण धारणा और अभ्रान्त विचार से कोई एक पथ अवलम्बन करें, और मानव जाति के मङ्गल के लिये और पृथिवी के उपयुक्त शासन के निमित्त अपनी जो मीमांसा प्रकाश करें—वही मीमांसा समस्त जाति के लिये और हमारे लिये मान्य होगी। हम यह और भी घोषणा करते हैं कि बादशाह यदि अपने अभ्रान्त विचार से कुरान के अविरोधी और जाति के लिये कोई मङ्गल विधायक आदेश प्रचार करें, तो हरेक को उचित है कि वह उसे अवश्य माने और उसका पालन करे। जो इस आदेश के विरुद्ध चलेगा वह दूसरी दुनिया में अनन्त नरकों में गिराया जायगा और इस लोक में वह धर्म और उन्नति का क्षतिकारक होगा। ईश्वर के गौरव और इसलाम धर्म के विस्तार के लिये साधु उद्देश्य से यह घोषणापत्र लिखा जाता है और हिजरी ६८३ रजब मास में प्रधान प्रधान उलमा और शास्त्रज्ञों के स्वाक्षर हुए।"

इस घोषणापत्र के प्रचार से अकबर के धर्म संस्कार का पथ साफ़ हो गया और उसकी दी हुई मीमांसा ही ठीक समझी जाने लगी। इसी समय से अकबर ने अपने नवीन धर्म के प्रचार करने का संकल्प किया।

सन् १५८० ई० में जमालउल मास की पहली तारीख़ को अकबर ने फ़तहपुर की जुमा मसजिद में खुलंखुल्ला अपने नवीन धर्म विधान का प्रचार किया। अकबर ने पहले फ़ैज़ी की रची नीचे लिखित कविता पढ़ी। फिर वह अपने रचे मूल-सूत्रों की व्याख्या करने लगा।

The Lord to me the Kingdom gave,
He made me wise, and strong and brave.
He guideth me in right and wrong.
Filling my mind with love of truth.
No praise man can sum his state
Allahu Akbar!—God is great."

अकबर ने अपने नवीन धर्म का नाम "तोहीद-ए-इलाही" रखा।

अब हम इस नवीन धर्म के सूत्रों के विषय में कुछ लिखते हैं।

इसलाम धर्म का कट्टर पक्षपाती और अकबर विद्वेषी बदायूनि ने इस नवीन धर्म की निन्दा करते हुए लिखा है कि "तोहिद-ए-इलाही" अकबर के हृदय-रूपी दर्पण का प्रतिबिम्ब है।" प्रत्येक धर्म का सारांश निकाल कर इसकी रचना की गयी थी। तोहीद-ए-

इलाही की रचना में उसे हिन्दू और ईसाई मतों से अधिक सहायता मिली। बीरबल ने सूर्य्य की महिमा अकबर के मन में पैठा दी थी, अग्नि उपासकों (पारसियों) ने गुजरात से दिल्ली में जा कर अपने धर्म को सत्यमूलक प्रमाणित किया था।[१] सचमुच अकबर का प्रवर्त्तित धर्म पृथिवीमण्डल के समस्त प्रचलित धर्मों की सामग्री से रचा गया था।

इस नवीन धर्म का प्रथम सूत्र यह था "ईश्वर[२] एक और अद्वितीय है और अकबर उसका प्रतिनिधि है"। निराकार ईश्वर को जाग्रत् अथवा स्वप्न दशा में भी कोई नहीं दर्शन कर पाता। किन्तु ईश्वर का जो स्वरूप उपासक के विवेक-समुज्ज्वल-हृदय में प्रकटित होता है—वही स्वरूप ध्येय है। जिनके हृदय सब विषयों से विरक्त हो चुके हैं—वे अनुपम ईश्वर प्रेम के मार्ग पर चल रहे हैं। दुष्प्रवित्तियों को दमन करना और लोकहितकर कार्य्यों में प्रवृत्त होना—परलोक बनाने का सब से उत्तम उपाय है।

अकबर का यह भी कहना था कि धर्मोपदेष्टाओं के मतानुसार अन्ध भाव से कोई काम करना अथवा किसी प्रथा का अनुसरण करना—निषिद्ध है। क्योंकि मनुष्य स्वभाव ही से भूलता और पाप की ओर प्रवृत्त होता है। अकबर ने अपने धर्मविधान में पुरोहिताई की प्रथा को रखा ही न था। इतने ही से वह सन्तुष्ट नहीं हुआ था; किन्तु उसने मनुष्यों को शास्त्र के अनुशासनों से भी मुक्त कर दिया था। उसका सिद्धान्त था कि मनुष्य ज्ञान और विवेक का अधिकारी है। अकबर ने कर्मकाण्ड, जो बन्धन का कारण है छोड़ रखा था।

दुर्बल चित्त के उपासकों की चित्तवृत्ति को स्थिर करने के लिये उसने अग्नि अथवा सूर्य के रूप की आराधना का नियम रखा था। अकबर ईश्वर को ज्योतिःस्वरूप मानता था।

परलोक और मुक्ति सम्बन्धी अकबर का विश्वास बहुत कुछ बौद्ध शास्त्रों से मिलता है। उसका विश्वास था कि मृत्यु के अनन्तर जीवात्मा नाना योनियों में भ्रमण करता है और इस समय के शुभाशुभ कर्मों के अनुरूप उसे योनि प्राप्त होती है। इस प्रकार अनेक योनियों में भ्रमण करते करते अन्त में जीवात्मा पूर्ण शुद्ध होता है और ईश्वर में विलीन हो जाता है। इसी का नाम स्वर्ग सुख भोग है। इसको छोड़ कर परलोक में पुण्य का दूसरा कोई पुरस्कार नहीं है।

इसलाम धर्म की उपासना प्रणाली को सङ्कीर्ण बतला कर उसने नयी प्रणाली चलायी। प्रार्थनांश तो पारसियों के धर्म का अनुकरण कर रचा गया और अनुष्ठानांश हिन्दू धर्मानुसार रचा गया—किन्तु सामाजिक उपासना का कोई विधान न था। अकबर रात को विचित्र दीपावली जला कर एकान्त में ईश्वरोपासना किया करता था।

अधिक पाठ पूजा, और उपवास एवं दान दक्षिणा से बहुधा दम्भ की बढ़ती होती है, इसीसे अकबर ने अपने नवीन धर्म में इनके विधान न रख कर लोगों को उस ओर से निवृत्त किया। अकबर के मतानुसार, उदासीन व्यक्तियों के मन को खींचने के लिये ही बाहिरी दिखावटी उपासना की आवश्यकता थी—किन्तु वह मानसिक उपासना ही को यथार्थ उपासना समझता था।

इस नवीन धर्म में खानी अनखानी वस्तुओं के विषय में कुछ भी विचार न था। किन्तु निवृत्ति मार्ग का अनुसरण ही चित्त की शुद्धि का एक उपाय बतलाया गया था। अकबर को मांस स्वयं नहीं रुचता था इसीसे अकबर महीनों तक मांस नहीं खाता था। वह फल मूल खा कर ही तृप्त हो जाता था। वह कहता था कि फल सृष्टिकर्त्ता का सब से बढ़ कर दान है।

यह नवीन धर्म सब सम्प्रदाय के लोगों के लिये हितकर हो और किसी को कष्टकर न हो—इसी उद्देश्य से अकबर ने सब धर्म्मों का सारांश ले लिया था।

---

१ प्रोफ़ेसर मैक्समूलर ने अकबर के विषय में लिखा है—Akbar the first student of comparative religion.

२ अकबर की ईश्वर सम्बन्धी धारणा कैसी थी—इसको हम एक घटना का उल्लेख कर के समझाना चाहते हैं।

एक बार अकबर के राजत्व काल में बहुत दिनों तक वृष्टि न होने के कारण प्रजा विकल हुई। अबुलफ़ज़ल ने अकबर से वृष्टि की कामना के अर्थ ईश्वरोपासना करने की प्रार्थना की। तब अकबर ने कहा:—

अकबर—ईश्वर सर्वज्ञ है और हम सब लोगों से भी अधिक वह हमारा हितैषी है—हमें अपने मङ्गल के लिये उसे जगाने की आवश्यकता नहीं है।

अकबर ने सती होने की प्रथा को रोकने का भी यत्न किया था। पास के नातेदारी में विवाह न कर, दूर के नातेदारों के साथ विवाह करने की प्रथा भी उसने चलायी, विधवा विवाह भी उसने चलाया, बाल विवाह के विरुद्ध उसने आज्ञा प्रचारित की, बहुविवाह के विरुद्ध भी उसने अपना मत प्रकट किया और धर्मार्थ पशुहत्या (कुरबानी) के दोष दिखलाये। अकबर ने नवीन धर्म विधान प्रचलित तो किया—किन्तु इस विधान के अनुसार सब प्रजा के लोग चलें हीं उसने इसका प्रयत्न बलपूर्वक कभी नहीं किया।

अकबर ने कट्टर विचारकों को पदच्युत किया—क्योंकि उसका सिद्धान्त था कि विचारक (न्यायकर्त्ता) का किसी भी धर्म से सम्पर्क रहने से न्याय नहीं हो सकता। उसने हिन्दुओं के दाय विभाग सम्बन्धी तर्कों की मीमांसा के लिये हिन्दू पण्डित नियुक्त किये।

साम्य मंत्र का उपासक अकबर उदार धर्म को प्रवर्तन कर एवं सामाजिक सुव्यवस्था का प्रणयन कर के ही शान्त हो गया हो, सो बात नहीं—उसने मुसलमानों में संस्कृत भाषा का भी प्रचार किया। अकबर के समय में मुसलमान पण्डित मण्डली में संस्कृत की चर्चा बहुत फैल गयी थी।

उस समय के संस्कृतज्ञ मुसलमान पण्डितों में फ़ैज़ी, नकीबख़ाँ, मुल्ला मोहम्मद, मुल्ला साबरी, सुलतान हाजी, हाजी इब्राहीम और बदायूनि—प्रधान थे। इन्हीं पण्डितों के परिश्रम से अनेक संस्कृत के ग्रन्थों के अनुवाद किये गये। उस समय किसी किसी पुस्तक का हिन्दी में भी अनुवाद हुआ था—किन्तु उस समय के मुसलमान पण्डितों ने किस अर्थ में हिन्दी शब्द की वर्षा है—यह जानना कठिन है।

अकबर के कहने पर बदायूनि ने पहले सिंहासनबत्तीसी का अनुवाद किया और उसका नाम "खिरद-अफ़ज़ा" रखा। इस अनुवाद की अकबर ने प्रशंसा की और उसे अपने पुस्तकालय में रखा। अनन्तर अकबर ने बदायूनि को रामायण का अनुवाद करने की आज्ञा दी। बदायूनि के मतानुसार रामायण, काव्य की दृष्टि से महाभारत की अपेक्षा उत्कृष्ट है और इसमें पचीस हज़ार श्लोक और प्रत्येक श्लोक में ६९ अक्षर हैं। अयोध्याधिपति रामचन्द्र इस काव्य के नायक हैं। हिन्दू लोग रामचन्द्र को देवता जान कर पूजते हैं। चार वर्ष में बदायूनि ने रामायण का अनुवाद समाप्त किया और ले जा कर अकबर को दिया। अकबर ने उसकी बड़ी प्रशंसा की।

अकबर ने महाभारत का फ़ारसी में अनुवाद करवाया। इस ग्रन्थ के अनुवाद में अनेक पण्डितों की सहायता अपेक्षित हुई। बदायूनि ने लिखा है कि ९९० हिजरी में अकबर ने कतिपय हिन्दू पण्डितों को महाभारत की व्याख्या लिखने की आज्ञा दी। अनन्तर अकबर ने स्वयं नकीबख़ाँ को कई एक रातों तक उसका तात्पर्य बतलाया। क्योंकि नकीबख़ाँ को महाभारत के संक्षिप्त करने की आज्ञा दी जा चुकी थी। नकीबख़ाँ के कार्य्य को सरल करने के लिये ही अकबर ने स्वयं महाभारत का तात्पर्य नकीबख़ाँ को समझाया था। तीसरे दिन रात्रि के समय अकबर ने बदायूनि को बुला कर कहा कि तुम नकीबख़ाँ की सहायता से महाभारत का अनुवाद करो। महाभारत में अठारह पर्व हैं। उन्होंने चार मास में दो पर्वों का अनुवाद पूरा किया। महाभारत में खाद्याखाद्य का उल्लेख करते हुए प्याज़ खाने की मनाही की गयी है। ऐसे ग्रन्थ का अनुवाद करने के लिये नियुक्त किये जाने पर, इसलाम धर्म के कट्टर अनुयायी बदायूनि ने अपने भाग्य की बड़ी निन्दा की। इसके बाद मोलाशी और नकीबख़ाँ ने मिल कर महाभारत के कुछ अंश का अनुवाद किया। अनन्तर सुलतान हाजी थानेश्वरी ने अकेले एक पर्व का अनुवाद किया। तब फ़ैज़ी को पहले के अनुवादों को क्रमशः गद्य पद्य युक्त बनाने की आज्ञा दी गयी। किन्तु दो पर्व से अधिक फ़ैज़ी उसे न कर सके। फ़ैज़ी के बाद सुलतान हाजी ने पहले अनुवाद की भूलों को सुधार कर फिर से अनुवाद किया। किन्तु उनका आरम्भ किया हुआ कार्य पूरा भी नहीं हो पाया था कि उन्हें इस संसार से छुट्टी मिल गयी। बदायूनि ने महाभारत के अनुवाद के विषय में एक जगह लिखा है—"जिन पण्डितों की सहायता से यह अनुवाद तैयार किया गया है, उनमें से बहुत से इस समय कौरव पाण्डवों के सहवासी हैं। इस समय जो जीवित हैं उनको भगवान् बचावें और उनका अनुताप स्वीकृत हो। महाभारत के अनुवाद का नाम "राजनामा" है। अनुवाद ग्रन्थ में चित्र लगाये जाने पर, प्रत्येक अमीर को ग्रन्थ की एक एक प्रति मोल लेने की अकबर आज्ञा दे चुका है। हमारे धर्म के विद्वेषी अबुलफ़ज़ल ने दो पर्वों में भूमिका

लिख दी है । ईश्वर ! हम लोगों को नास्तिकता और अवान्तरता के हाथ से बचाओ।" बदायूनि ने एक जगह यह भी लिखा है कि अकबर ने उसे अथर्ववेद का फ़ारसी में अनुवाद करने की आज्ञा दी थी। किन्तु जब अथर्ववेद की भाषा उसे कठिन जान पड़ी और उसका अर्थ उसकी समझ में न आया, तब उसे उसका अनुवाद छोड़ देना पड़ा। तब हाजी इब्राहीम सिरहिन्दी ने उसका अनुवाद किया। कहने का तात्पर्य यह है कि अकबर की अमलदारी में मुसलमान पण्डित समाज में संस्कृत की विशेष चर्चा चल पड़ी थी और बदायूनि को छोड़ कर, अन्य मुसलमान संस्कृतज्ञ पण्डितों को संस्कृत के ग्रन्थ पढ़ने में आनन्द प्राप्त होता था।

अकबर ने धर्म, समाज और शासन सम्बन्धी अनेक उपयोगी संस्कार किये—उसके आदेश और उत्साह से अनेक संस्कृत ग्रन्थों के अनुवाद किये गये—किन्तु राजस्व सम्बन्धी संस्कार ही के लिये अकबर की विशेष प्रशंसा की जाती है। राजनीतिविशारद शेरशाह ने राजस्वनीति की जो रेखा अङ्कित की थी—अकबर ने उसीको अधिक स्पष्ट बना दिया। अकबर ने सब से पहले भूमि की नाप जोख (पैमाइश) करवायी। नाप जोख के लिये उसने एक गज़ बनाया जो सर्वत्र काम में लाया जाता था। फिर जब भूमि का परिमाण और उसमें उत्पन्न होने वाले अनाज की तौल का निश्चय कर लिया जाता; तब उस पर लगान बैठाया जाता था। अकबर ने यद्यपि नये कई कर लगाये, तथापि उन करों के बोझ से प्रजा दबी नहीं। हंटर साहब अकबर की वार्षिक आय तीस करोड़ रुपये बतलाते हैं।

अकबर ने शासन के सौकर्य के लिये समस्त साम्राज्य को पन्द्रह सूबों में बाँट रखा था। प्रत्येक सूबे का एक प्रधान कर्मचारी शासक था, जो सूबेदार अथवा नाज़िम कहलाता था। वह बादशाह के आदेशानुसार शासन करता था और उस विभाग की सेना भी उसी के अधीन रहती थी। प्रत्येक सूबे का राजस्व एकत्र कराने के लिये एक एक दीवान रहता था। दीवान को स्वयं बादशाह मनोनीत करता था। प्रत्येक सूबे में कई एक सरकार और प्रत्येक सरकार में कई एक परगने और प्रत्येक परगने में कई एक दफ़्तर होते थे। इन विभागों पर अलग अलग कर्मचारी काम करते थे। प्रत्येक सरकार में एक एक फ़ौजदार था जो अपने अपने विभाग की सेना की देख रेख किया करता था। सरकार की शान्ति रक्षा और सुशासन का दायित्व उसीके ऊपर था। विचारालयों में क़ाज़ी और मुफ़्ती बैठते थे। बड़े बड़े नगरों की रक्षा कुतवालों को सौंपी गयी थी छोटे छोटे नगरों की रक्षा—राजस्व उगाहने वाले कर्मचारियों ही को सौंप दी गयी थी। छोटे छोटे ग्रामों के बसने वालों के झगड़े निबटाने के लिये पञ्चायतें नियत थीं। विलसन साहब ने लिखा है कि जब वादी और प्रतिवादी दोनों हिन्दू होते थे, तब उनका अभियोग ब्राह्मण निपटाते थे।

अकबर इन कर्मचारियों के पास समय समय पर आदेशपत्र भेजता था। उन्हें देखने से अकबर की प्रजाहितैषिता और न्यायपरायणता स्पष्ट प्रतीत होने लगती है। अकबर ने गुजरात प्रान्त के एक शासक के नाम एक आदेशपत्र में लिखा था कि प्राणदण्ड, बेतदण्ड और लोहदण्ड को छोड़ और किसी प्रकार का दण्ड न दिया जाय; साथ ही प्राणदण्ड केवल उसीको दिया जाय जिसका राजद्रोही होना सिद्ध हो जाय। अन्य किसी प्रकार के अपराध के लिये प्राणदण्ड न दिया जाय। जिसको प्राणदण्ड देने की आवश्यकता होती थी उसके अभियोग के सारे काग़ज़ पत्र अकबर के पास भेजे जाते थे और जब अकबर की उस पर अनुमति होती तब प्राणदण्ड दिया जाता था। प्राणदण्ड के समय अपराधी का कोई अङ्ग काटने अथवा उसके साथ अन्य किसी प्रकार का निठुर व्यवहार करने की मनाई थी।

उस समय भारतवर्ष के सेनाध्यक्षों को नक़द मासिक वेतन नहीं मिलता था—किन्तु उनको जागीरें दे दी जाती थीं। इस प्रथा के प्रचलित होने से जागीरदार अपनी रैयत से मनमाना लगान वसूल करते समय उन पर अत्याचार करते थे सेना-संग्रह करने की प्रणाली भी दूषित थी। जागीर की आय के अनुसार सेनाध्यक्षों को जितने सैनिक रखने चाहिये थे, उतने वे लोग नहीं रखते थे। और जब उनको अपनी सेना सहित उपस्थित होने की आज्ञा मिलती; तब वे जिसको चाहते उसे पकड़ कर फ़ौजी वरदी पहना और भाड़े के टट्टुओं पर चढ़ा कर अपनी निर्दिष्ट संख्या पूरी कर दिया करते थे। इन सब बुराइयों को देख कर अकबर ने जागीर देने की प्रथा बन्द कर दी—और मासिक वेतन नियत कर रोकड़ी देने की आज्ञा दी। साथ ही

यह भी आज्ञा दी गयी कि जब वेतन बाँटा जाय, सब वेतन पाने वाला स्वयं उपस्थित हो । उसने प्रत्येक सैनिक की हुलिया लिखी जाने की तथा घोड़े के चिह्न लगाने की प्रथा प्रचलित की । अकबर ने सेनाध्यक्षों का मनसबदार नाम रखा और उनकी योग्यतानुसार उनको दस सहस्र, सप्त सहस्र, पञ्च सहस्र या इससे कम सैनिकों की देख रेख सौंपी । सेना का वेतन राजकोष से दिया जाता था । सेनाध्यक्ष अपने सैनिकों की संख्या के अनुसार कोई दस हज़ारी और कोई पञ्च-हज़ारी कहलाता था । पञ्चहज़ारी सेनाध्यक्ष को १०,६३७) रु० से ३०,०००) रु० तक मासिक वेतन दिया जाता था । इसीमें से उन्हें, हाथी घोड़े ऊँट और अस्त्र आदि का व्यय उठाना पड़ता था ।

अकबर ने अपनी अमलदारी के सैंतीसवें वर्ष (सन् १५६२ ई०) में अपनी सब अभिलाषाएँ पूर्ण कीं । उस समय मुग़ल साम्राज्य के शासन की बड़ाई चारों ओर होने लगी । इसी वर्ष में टोडरमल का देहान्त हुआ । राजस्व सम्बन्धी सारे प्रबन्ध अकबर ने टोडर-मल के परामर्श ही से किये थे । टोडरमल ने बहुत वर्षों तक राजसेवा की थी—मरते समय वे हरिद्वार पहुँच गये थे । अकबर की, टोडरमल की मौत से केवल हानि ही नहीं हुई, किन्तु उसे अपार शोक भी हुआ । सन् १५६२ ई० में अबुलफ़ज़ल दो हज़ारी मनसबदार बना कर, उमरावों की श्रेणी में नियुक्त किये गये । इसी वर्ष में फ़ैज़ी राजदूत बन कर दक्षिण गये । इसके दो वर्ष बाद फ़ैज़ी की मृत्यु हुई । फ़ैज़ी के वियोग से अक-बर के मन में भारी चोट लगी । अगले वर्ष अकबर ने दक्षिण-विजय करने का सङ्कल्प किया । उस समय दक्षिण-प्रान्त अनेक छोटे छोटे राज्यों में विभक्त था । सब से पहले सन् १५६७-६८ ई० में अबुलफ़ज़ल ने दक्षिण पर चढ़ाई की । इस साहित्यरथी ने युद्धक्षेत्र में भी आशातीत वीरता एवं पराक्रम दिखला कर लोगों को विस्मित किया । साथ ही फ़ैज़ी ने निःस्वार्थपरता और राजभक्ति का भी यथेष्ट परिचय दिया । फ़ैज़ी का बहनोई खानदेश का अधिपति था । जब उसने फ़ैज़ी को बहुत मूल्यवान् पदार्थों की भेंट से लुभा कर अपने में मिलाना चाहा, तब फ़ैज़ी ने उससे कहा—"बादशाह के अनुग्रह से मेरे यहाँ किसी वस्तु की कमी नहीं है ।" अगले वर्ष फ़ैज़ी ने असिर के दुर्ग पर अधिकार किया। सन् १६०२ ई० में बादशाह की सेना ने खानदेश को जीत लिया । इसी वर्ष में जब फ़ैज़ी अकबर की आज्ञानुसार दक्षिण से प्रस्थानित हो राजधानी की ओर जा रहे थे; तब रास्ते में वे शाहज़ादा सलीम के षड्यंत्र में पड़ मारे गये ।

अकबर ने अपने पुराने साथी की मौत का संवाद सुन दो दिन तक अन्न जल न छुआ ।

अकबर ने खानदेश का नाम बदल कर अपने पुत्र दानियाल के नाम पर दान्देश रखा और फ़तहपुर के राजप्रासाद के सिंह द्वार पर खान्देश-विजय की स्मृति लिपि अङ्कित करवायी । इस स्मारक लिपि में अकबर की बहुतसी प्रशंसा के बाद यह लिखा है :—

Said Jesus, (on whom be peace !) The world is a bridge, pass over it, but build no house there. He who hopes for an hour hopes for an eternity; The world is but an hour, spend it in devotion, the rest is unseen."

खान्देश-विजय के चार वर्ष बाद शाहज़ादा दानि-याल अकस्मात् मर गया । प्यारे पुत्र की अकाल मौत से अकबर की मानसिक दशा बहुत बिगड़ गयी । बुढ़ापे में इस असह्य वेदना को न सह कर वह भी शय्याशायी हुआ । सितम्बर सन् १६०५ ई० में उस की बीमारी ने ज़ोर पकड़ा । उस समय भिषक्श्रेष्ठ हाकिम अली शाही हकीम थे । उन्होंने रोगी के रोग की परीक्षा कर के औषध तो न दी और इस आशा [illegible] कि रोगी के शारीरिक तेज ही से रोग छूट [illegible] आठ दिन तक वे रोगी के अपने आप आराम होने [illegible] प्रतीक्षा करते रहे, नवें दिन जब अकबर के शरीर [illegible] दुर्बलता बढ़ी और बीमारी ने घर बना लिया; [illegible] हकीम साहब ने चिकित्सा शास्त्र की शरण ली । [illegible] अब क्या हो सकता था ? रोगी का पेट फूल [illegible] और सब अङ्ग शिथिल पड़ गये । यह देख रोगी अच्छे होने की आशा किसीको न रही ।

अकबर के ज्येष्ठ पुत्र सलीम ने इसके कुछ [illegible] पूर्व अपने बुरे आचरणों से पिता को असन्तुष्ट [illegible] दिया था । बीमारी के दिनों में साम्राज्य का [illegible] काम काज प्रधान सचिव ख़ान-इ-अजमेर देखते थे । राजा मानसिंह अकबर के प्रधान सेनापति थे । [illegible] दरबार में उनका बड़ा चलाव था । सलीम का [illegible] ख़ुसरो मानसिंह का भाञ्जा और ख़ान-इ-[illegible]

जामाता था । अकबर का जीवनरूपी दीपक जब बुझने को हुआ, तब ये दोनों सलीम के बदले ख़ुसरो को तख़्त पर बिठाने का प्रयत्न करने लगे ।

जब यह बात अकबर ने सुनी तब उसने अन्तिम मुहूर्त्त में दरबार के सब अमीर उमरावों को पलङ्ग के पास बुलाने का सलीम को इशारा दिया । जब सब आये तब अकबर ने कहा—" हमारे पुत्र और हमारे सुख दुःख के साथी राजपुरुषों के मनों में यदि मन मुराव हुआ—तो यह हमसे न सहा जायगा ।" इसके बाद अकबर ने उन दरबारियों को समयोपयोगी वचनों से सन्तुष्ट कर विदा माँगी और साग्रह उन सबकी ओर देख कर कहा—" यदि मुझसे कोई ऐसा काम बन पड़ा हो, जिससे आपमें से किसी का मन दुःखी हो—तो मैं उसके लिये क्षमा चाहता हूँ । " इसके बाद सलीम अकबर के पैरों पर गिर अश्रुजल से पिता के चरण धोने लगा । तब अकबर ने सलीम को अपनी तलवार दी । अनन्तर सलीम ने राजपरिवार एवं पिता के पुराने कृपापात्रों के प्रतिपालन की प्रतिज्ञा की । इस प्रकार अकबर ने सलीम को अपना उत्तराधिकारी बना कर, सदैव के लिये धीरे धीरे अपने नेत्र बन्द कर लिये । ६३ वर्ष की अवस्था में अकबर परलोक सिधारा । " ईश्वर ने उसको यहाँ भेजा था—ईश्वर के पास ही वह फिर लौट गया । " आगरे से चार मील चल कर सिकन्दरे में अकबर का समाधि-भवन है ।

अकबर के जीवन का उद्देश्य अबुलबाकी नामक उसके एक सभासद् ने यह बतलाया है—

His object being to unite all men in a common bond of peace.

अर्थात् सब मनुष्यों को एक कर के शान्ति के पाश में जकड़ देना । उसके जीवन का यह उद्देश पूरा हुआ । जिस देश में साढ़े तीन सौ वर्ष तक मुसलमानी शासन होने पर भी, मुसलमान अपनी जड़ नहीं जमा पाये थे अकबर ने उसी देश में मुग़लों के सिंहासन को दृढ़रूप से प्रतिष्ठित किया ।

अकबर की मृत्यु के उपरान्त अहमद अमीन ने लिखा है—" अकबर अपने इतने बड़े साम्राज्य के प्रत्येक कोने का शासन दृढ़ता के साथ और न्यायपूर्वक करता था । उसके दरबार में सब श्रेणी के लोग आ जा सकते थे और सब श्रेणियों के लोगों में अनन्त शान्ति विराजमान थी तथा प्रत्येक सम्प्रदाय के लोग, अकबर की छत्र छाया में निर्भय हो वास करते थे ।

साल में अकबर तीन मास तक मांस नहीं खाता था । दिन रात में वह तीन घंटे से अधिक नहीं सोता था । वह एक साथ बीस कोस तक पैदल चल सकता था । अकबर की अमलदारी में मुसलमानों के "सलाम" की प्रथा बदल गयी थी । " सलाम आलेकुम " के बदले लोग " अल्लाहो अकबर " कहते थे । इसके उत्तर में दूसरा कहता था—"जल्ला जलालहू" । अकबर के सामने जाने पर सबको साष्टाङ्ग करनी पड़ती थी । उसने राजधानी के बाहिर दो अन्नसत्र बनवाये थे । एक का नाम धर्मपुर था दूसरे का ख़ैरातपुर । धर्मपुर में हिन्दू साधु सन्तों को भोजन दिया जाता था और ख़ैरातपुर में मुसलमान फ़क़ीर फ़ुक़रों को । अकबर की जन्म तिथि को बड़ी धूम धाम होती थी । अकबर सुवर्ण की तुला पर चढ़ता था और क्रमशः रत्न, सुवर्ण और चाँदी से तौला जाता था । तुला में रखे हुए, रत्न सुवर्ण और चाँदी उसी समय बाँट दी जाती थी । अकबर स्वयं अपने हाथ से उस दिन बहुत कुछ दान पुण्य करता था और दरबार में सोने चाँदी के बादाम बरसाये जाते थे । अकबर के हाथीख़ाने में ५००० हाथी और बारह हज़ार घोड़े उसकी निज की सवारी के थे ।

बाबा तुलसीदास अकबर के राजत्व काल में विद्यमान थे । मेलिसन ने अकबर के विषय में जो लिखा है वह अक्षर अक्षर ठीक है । मेलिसन ने लिखा है :—

" We are bound to recognise in Akbar one of those illustrious men whom Providence sends in the hour of a nations troubles to re-conduct it into those paths of peace and toleration which alone can assure the happiness of millions."

Akbar II. द्वितीय अकबर=शाह आलम का दूसरा बेटा था और मुग़ल ख़ान्दान का १६ वाँ मुग़ल सम्राट् था ।

Akbar Prince. अकबर=यह औरङ्गज़ेब का पुत्र था । और अपने पिता का बड़ा प्यारा था । दुर्गादास के भरें में आ कर वह अपने पिता

औरङ्गज़ेब के विरुद्ध खड़ा हुआ। दुर्गादास ने उसे राजपूत वीरों की सहायता भी दी। उस समय अकबर की उम्र २३ वर्ष की थी। किन्तु औरङ्गज़ेब की चालाकी से अकबर को हारना पड़ा। भाग कर शाहज़ादा अकबर कोनकन देश की ओर चला गया और मरहटों से जा मिला—किन्तु सम्भाजी से जैसे व्यवहार की वह आशा कर के गया था वैसा व्यवहार उसके साथ न किया गया। अतः वह हतोत्साह एवं उदास हो कर तुरन्त परशिया को भाग गया और वहीं सन् १७०६ ई० में वह मर भी गया। (देखो औरङ्गज़ेब)

Akbar Khan. अकबरखाँ=यह काबुल के दोस्त मोहम्मद का पुत्र था। इसने काबुल स्थित अङ्गरेज़ों के साथ प्रवञ्चना युक्त व्यवहार किया और उनकी रक्षा करने का वचन दे सब को क़ैद कर लिया। सर मैकनाटन का प्राणघातक भी यही बतलाया जाता है। इसने अनेक अङ्गरेज़ों के रक्त से अपने हाथ रङ्गे थे।

Alamgir I. आलमगीर

औरङ्गज़ेब

[मुहीउद्दीन मोहम्मद औरङ्गज़ेब आलमगीर[1] ।]

औरङ्गज़ेब ने बूढ़े बाप को कारागार में डाल और अपने भाइयों के रक्त से स्नान कर, सन् १६५६ ई० में दिल्ली के मयूरसिंहासन पर पैर रखा। जिस साम्राज्य को प्राप्त करने के लिये उसने अपने भाई भतीजों की हत्या का पाप ओढ़ा, जिस साम्राज्य का गौरव बढ़ाने और उसे स्थायी करने के लिये आजन्म अश्रान्त परिश्रम किया। उसी साम्राज्य की, उसकी आँखों के सामने ही अवनति हुई।

अकबर की उदारता से सब लोग चाहने लगे थे कि मुग़ल साम्राज्य भारत में सदा बना रहे, क्योंकि उसने हिन्दुओं को मिला कर, मुग़ल साम्राज्य की नींव को दृढ़ किया था। किन्तु औरङ्गज़ेब ने, अपने पूर्व पुरुषों द्वारा अनुष्ठित उदार नीति को परित्याग कर, सङ्कीर्ण नीति का अनुसरण किया। इसका फल यह हुआ कि अकबर की दृढ़ की हुई नींव हिल गयी और मुग़ल साम्राज्यरूपी दीवाल खिसक पड़ी।

यद्यपि औरङ्गज़ेब ने अकबर की उदार नीति को परित्याग कर दिया था, तथापि उस नीति की समीचीनता के विषय में उसे तिल भर भी सन्देह न था। क्योंकि औरङ्गज़ेब ने तख़्त पर बैठते ही कारारुद्ध अपने वृद्ध पिता को जो पत्र भेजा था, उसमें उसने यह भी लिखा था—" × × × श्रेष्ठतम विजेता ही पृथिवी का श्रेष्ठतम नरपति नहीं है। पृथिवी की बहुत सी जातियों को अनेक बार असभ्य बर्बर जातियों से पराजित होना पड़ा है और उनके स्थापित किये हुए राज्य के कुछ ही वर्षों में सैकड़ों टुकड़े हो गये हैं। किन्तु जिसने पक्षपात छोड़ कर, प्रजा का पालन ही अपने जीवन का व्रत समझा है, वही यथार्थ श्रेष्ठ नरपति है।" औरङ्गज़ेब के ऐसे विचार होने पर भी, वह क्यों अकबर की उदार नीति पर पदाघात कर, विपक्षावलम्बी हुआ—और क्यों उसने साम्राज्य की जड़ पर कुठाराघात किया—इसे हम अब संक्षेप से लिखते हैं।

सुप्रसिद्ध यात्री बर्नियर साहब ने लिखा है कि बाल्यावस्था में मुग़ल राजकुमारों की शिक्षा दीक्षा का प्रबन्ध अत्यन्त दूषित था। खोजा आदि निकृष्ट श्रेणी के जीवों के हाथ में उनके लालन पालन का भार अर्पित किया जाता था। औरङ्गज़ेब का शैशव काल भी इन्हीं सब जीवों के कुसंसर्ग में व्यतीत हुआ।

औरङ्गज़ेब का जन्म सन् १६१८ ई० में हुआ था। उसके जन्म के दो वर्ष बाद नूरजहाँ की कुमंत्रणा से

[1] औरङ्गज़ेब ने सिंहासनारूढ़ होने पर अपनी "आलमगीर" उपाधि रखी थी। आलमगीर शब्द का अर्थ है जगत्‌जयी। किन्तु इतिहास में यह औरङ्गज़ेब ही के नाम से प्रसिद्ध है।

जहाँगीर और शाहजहाँ में परस्पर कलह उपस्थित हुआ। शाहजहाँ ने पिता के विरुद्ध अस्त्र उठाया किन्तु पराजित हो कर उसे अनेक स्थानों में घूमना पड़ा। इस प्रकार वह चार वर्ष तक मारा मारा घूमता रहा। अन्त में उसने पिता से क्षमा माँग कर पिता का क्रोध ठण्डा किया और दक्षिण में रहने की आज्ञा ली। इसी समय शाहजहाँ ने पिता को अपने सद्व्यवहारपूर्वक भविष्य में बर्ताव करने का विश्वास कराने के लिये अपनी दो पुत्र ज़मानत के रूप में राजधानी में रख दिये। उस समय शाहजहाँ के परिवार में औरङ्गज़ेब भी था। अतः बाल्यावस्था ही से औरङ्गज़ेब के हृदय में माता पिता की भक्ति का अंकुर सूख गया था। बालक औरङ्गज़ेब को पितामही से कैसी शिक्षा मिली—यह जानने का कोई साधन नहीं है। सम्भव है औरङ्गज़ेब का बाल्य जीवन, नूरजहाँ के विद्वेष कलुषित तत्त्वावधान ही में व्यतीत हुआ हो।

जिस समय औरङ्गज़ेब की लगभग ६ वर्ष की अवस्था थी, उसी समय जहाँगीर की मृत्यु हुई और शाहजहाँ तख़्त पर बैठा। तब उसने औरङ्गज़ेब को शिक्षा देने के लिये एक मनुष्य को उसका शिक्षक नियुक्त किया। औरङ्गज़ेब के शिक्षक में समुचित शिक्षा द्वारा बालक के चित्त और चरित्र को बनाने की क्षमता न थी। उसने औरङ्गज़ेब को कुछ वर्षों तक अरबी का व्याकरण अर्थात् निरर्थक शब्द तत्त्व और नीरस दर्शन शास्त्रों को पढ़ा कर, उसकी स्मृति को निर्बल कर डाला। उसने राजकुमारोचित शिक्षा का बिन्दु विसर्ग भी अपने शिष्य को न बतलाया। पृथ्वी पर बसने वाली भिन्न जातियों के उत्थान और पतन का इतिहास, समाजनीति, शासननीति, धर्मनीति, समरनीति, विग्रहनीति आदि नीतियों की शिक्षा, जो राजकुमारों को मिलनी चाहिये वह औरङ्गज़ेब के भाग्य में न थी। राजा और प्रजा का क्या सम्बन्ध है और इस सम्बन्ध की पवित्रता किस प्रकार ज्यों की त्यों बनी रह सकती है—इस प्रकार की उपयोगी बातें औरङ्गज़ेब के मन में बैठायी ही नहीं गयीं।

सारांश यह कि क्या शैशव, क्या कैशोर, क्या बाल्य सभी अवस्थाओं में औरङ्गज़ेब को सुशिक्षा दी ही नहीं गयी। यह बात औरङ्गज़ेब स्वयं जानता था। क्योंकि जिस समय औरङ्गज़ेब सिंहासन पर बैठा, उस समय उसका बाल्यावस्था का शिक्षागुरु पुरस्कार पाने की आशा से दरबार में उपस्थित हुआ। उस समय औरङ्गज़ेब ने उसकी शिक्षाप्रदान-प्रणाली की त्रुटियाँ दिखाते हुए कहा था-" अय मुल्ला जी! आप अपने ग्राम को लौट जाइये, जिससे लोग यह न जान पावें कि आप कौन हैं और आपने क्या किया है।"

मुल्ला जी की शिक्षा से औरङ्गज़ेब का हृदय और मन शुष्क हो गया था। औरङ्गज़ेब की यह शुष्कता आजन्म दूर न हो सकी। बड़े होने पर यह और हुआ कि औरङ्गज़ेब न तो किसीके साथ प्रीति करता और न किसी पर विश्वास करता था।

औरङ्गज़ेब जिस समय सत्रह वर्ष का युवक था, उस समय उसके पिता ने उसे दक्षिण प्रदेश का शासक नियुक्त कर उस प्रान्त में भेजा। किन्तु वह शासन कार्य में मन न लगा कर सदा धर्मालोचना में मग्न रहता था और आभूषण आदि न पहन कर, वह सदा सफ़ेद कपड़े पहनता था। चाहे भीतरी मन से हो चाहे कोरा दिखावा हो और चाहे दूसरों को धोखा देने के अभिप्राय से ही हो-औरङ्गज़ेब ने पचीस वर्ष की अवस्था में संसाराश्रम परित्याग कर फ़क़ीरी लेने की वासना प्रकट की। इसके बाद वह पश्चिम घाट की पर्वतमाला के निर्जन प्रदेश में कुटी बनवा कर, संसार त्यागी फ़क़ीर की तरह समय बिताने लगा। यह समाचार सुन शाहजहाँ, औरङ्गज़ेब पर इतना अप्रसन्न हुआ कि उसने उसे पदच्युत कर के, उसकी वृत्ति बन्द कर दी और उसकी जागीर भी छीन ली।

औरङ्गज़ेब ने सांसारिक सुख को परित्याग कर, वैराग्य ग्रहण किया था। किन्तु वैराग्य में भी एक प्रकार का मोहन रूप देख कर वह उद्भ्रान्त हो गया। अनासक्त त्यागी फ़क़ीर की तरह जीवन बिताते बिताते वैराग्य की शान्ति और उसका माधुर्य विलुप्त हो गया। औरङ्गज़ेब एक वर्ष तक निर्जन कुटी में रह कर फिर से संसारी हुआ। इसका वैराग्य-स्वप्न भङ्ग हो गया। संन्यासी युवक ने राजनीति क्षेत्र में पुनः अवतीर्ण हो कर, सैन्यपरिचालन का भार ग्रहण किया। विलास-विरक्त, धर्मनिष्ठ पुत्र को फिर से संसारी होते देख, प्रसन्न हो औरङ्गज़ेब को बलख का शासनकर्ता बना कर भेजा। बलख में औरङ्गज़ेब असाधारण मनस्विता, अतुल कार्य कौशल और असम साहसिकता का परिचय दे कर, सर्व साधारण द्वारा प्रशंसित हुआ। इसी समय से औरङ्गज़ेब दुस्साध्य कार्यों को एक

करने के लिये भेजा जाने लगा । शासन क्षमता को पा कर, औरङ्गज़ेब क्षमता लोलुप हो गया । उसके मन में दिल्ली के ऐश्वर्य्य को देख कर दुराकाङ्क्षा उत्पन्न हो गयी ।

अन्त में औरङ्गज़ेब का धर्म विश्वास उसकी अभीष्ट-सिद्धि का कारण हुआ । जिस समय औरङ्गज़ेब का चरित्र इस प्रकार एक साँचे में ढल रहा था, उस समय शाहजहाँ ने उसे फिर दक्षिण का शासनकर्त्ता बना कर, वहाँ भेजा । अब औरङ्गज़ेब की गणना कूटराजनीतिविशारदों में थी । धर्म की चादर से अपने को छिपा कर, वह चुपचाप पितृसिंहासन को हस्तगत करने के अभिप्राय से षड्यंत्र में लिप्त हुआ । अब वह हरेक असद् अनुष्ठान को छिपाने के लिये धर्म विश्वास का पर्दा डालने लगा । शाहजहाँ के रोगशय्या पर शायित होने का संवाद सुन और राजधानी की ओर यात्रा करते समय उसने एकत्र सैनिकों को सम्बोधन कर कहा था—"ईश्वर साक्षी है, मैं धर्मरक्षा करने के लिये ही, इस युद्ध में प्रवृत्त होता हूँ ।" औरङ्गज़ेब ने सिंहासन पर बैठ और निष्कण्टक होने के लिये जिस समय भाइयों के रक्त से अपने हाथ रँगे, उस समय भी उसने धर्मध्वजी होने का दम्भ नहीं छोड़ा । ज्येष्ठ भ्राता की हत्या करके औरङ्गज़ेब ने उसकी विधवा स्त्री के रूप लावण्य पर मुग्ध हो कर और कुरान का वचन (आयत) उद्धृत कर के यह प्रमाणित किया कि ज्येष्ठ भ्राता की विधवा स्त्री के साथ विवाह न करने से छोटे भाई को पाप का भागी होना पड़ता है । इसी प्रकार औरङ्गज़ेब प्रत्येक पापकर्म करने के लिये धर्म विश्वास को अपने आगे कर लिया करता था ।

औरङ्गज़ेब ने तख्त ताऊस पर बैठने के लिये, कोई बात उठा नहीं रखी । इसलिये जो विचारशील और सच्चे मुसलमान थे, उनके निकट औरङ्गज़ेब की महिमा फीकी पड़ गयी । तब औरङ्गज़ेब ने उस मुसलमान समाज को प्रसन्न करने का संकल्प किया और पर धर्म वालों के ऊपर अत्याचार कर के मुसलमान समाज में प्रतिष्ठित होने का उपाय निर्द्धारित किया। भारतवर्ष में अधिक संख्या सुन्नी मुसलमानों की थी । सुन्नी सम्प्रदाय के मुसलमान, हिन्दू और मोहम्मद भक्त शिया—दोनों को समान भाव से अपना शत्रु समझते हैं । अतः औरङ्गज़ेब सुन्नी समाज का प्रीतिपात्र बनने के अभिप्राय से शिया और हिन्दुओं पर अत्याचार करने लगा । वह परधर्मियों पर अत्याचार राजनैतिक उद्देश्य से करता था ।

मुग़ल साम्राज्य के अधिकांश राजकर्मचारी मुसलमान शिया सम्प्रदाय के थे । ये कर्मचारी मुग़ल साम्राज्य के मङ्गल के सामने अपने प्राणों को तुच्छ समझते थे और मुग़ल साम्राज्य की उन्नति ही से अपनी उन्नति समझते थे । किन्तु साम्राज्य के ऐसे शुभचिन्तक कार्यकर्त्ताओं पर औरङ्गज़ेब का विश्वास न था । बल्कि वह उन्हें सन्देह की दृष्टि से देख कर उनसे घृणा करता था । उसके ऐसे व्यवहार से साम्राज्य के वे शुभचिन्तक कार्यकर्त्ता भी असन्तुष्ट हो गये थे । किन्तु औरङ्गज़ेब की असामान्य क्षमता और प्रताप से सभी डरा करते थे । इसीसे कोई भी राजकर्मचारी उसके विरुद्ध खड़ा नहीं होता था । इसीसे उसके मन का भाव, शाहजहाँ के जीते जी प्रकट नहीं हो पाया था । किन्तु इसका परिणाम यह हुआ कि मुग़ल साम्राज्य निर्बल पड़ गया ।[१]

यद्यपि औरङ्गज़ेब ने अकबर के प्रवर्तित मार्ग का अनुसरण किया; तथापि परधर्मविद्वेष वश उसने शासन में बड़ा भारी उलट फेर कर डाला । औरङ्गज़ेब के सिंहासन पर बैठने के पूर्व हिन्दू सेनापति सैन्य परिचालन करते थे; हिन्दू शासनकर्त्ता, प्रदेशों के शासक थे; यहाँ तक कि जिन कामों में बुद्धि और प्रतिभा की आवश्यकता थी उन सब कामों को हिन्दू ही किया करते थे । उस समय राजपूत सेना ही मुग़ल वाहिनी का प्राण थी । किन्तु परधर्म विद्वेष के वशवर्ती हो कर, औरङ्गज़ेब ने हिन्दुओं को सब पदों से

१ Aurangzeb was the Emperor who struck the first formidable blow at the prosperity of the Moghul power. Though he had shamelessly used religion as a cloak of hypocrisy, yet he seems to have been sincere, and even bigoted, in his attachment to Mohammedanism, and he had the folly to adopt the persecuting tenets of that faith.—*Rev. Robert Hunter.*

च्युत कर दिया ।[1] पदच्युत हिन्दुओं के बदले अर्द्ध शिक्षित निकृष्ट श्रेणी के मुसलमानों को ऊँचे ऊँचे पद मिलने लगे । इसका फल भी विषमय हुआ। औरङ्गज़ेब स्वयं इसलाम धर्म के अनुशासनों के अनुसार न्याय विचार और प्रजापालन किया करता था; किन्तु ये नये अकर्मण्य और अशिक्षित मुसलमान कर्मचारियों की इस ओर दृष्टि ही न थी। इसका फल यह हुआ कि इन लोगों के अत्याचार से भारतवर्ष के प्रत्येक प्रदेश में हाहाकार मच गया।

यहीं पर अत्याचारों की समाप्ति नहीं हुई। औरङ्गज़ेब हिन्दुओं को सताने के लिये नित्य नये उपाय सोच कर निकाला करता था[2] उसने मुसलमानों पर कर उठा कर हिन्दुओं पर कर लगा दिया था । इससे मुसलमान उस पर प्रसन्न हुए किन्तु इससे राजस्व की आमदनी बहुत घट गयी । तब विज्ञ और बहुदर्शी कर्मचारियों के परामर्श से औरङ्गज़ेब ने हिन्दुओं से पाँच रुपये सैकड़ा और मुसलमानों से हिन्दुओं का आधा अढ़ाई रुपये सैकड़ा कर उगाहना आरम्भ किया।

औरङ्गज़ेब ने हिन्दुओं पर जज़िया कर फिर से लगा कर, हिन्दू प्रजा में असन्तोष फैलाया । जज़िया कर की सृष्टि धर्मविद्वेष (मज़हबी तास्सुब) के कारण हुई थी। जज़िया कर लगाने की आज्ञा दे, एक दिन औरङ्गज़ेब हाथी की पीठ पर सवार हो कर नमाज़ पढ़ने मसजिद की ओर जा रहा था । उस समय पचास हज़ार हिन्दुओं ने अश्रुपात करते हुए कातर-कण्ठ से जज़िया कर उठाने की प्रार्थना की। किन्तु औरङ्गज़ेब ने उनकी प्रार्थना पर कुछ भी ध्यान न दिया। उसके हाथी और साथ के घुड़सवारों के घोड़ों की टापों से कुचल कर अनेक हिन्दुओं को अपने प्राण खोने पड़े । यहीं पर समाप्ति न थी—उसने असंख्य हिन्दू-देवालयों को तुड़वा कर मसजिदें बनवायीं। देव-देवियों की मूर्त्तियों को तोड़ कर, उनके टूटे अङ्ग, प्रत्यंङ्ग, मसजिदों की सीढ़ियों में जड़वाये, जिससे वे मसजिद में आने जाने वाले मुसलमानों के पैरों से पददलित हों। काशी के विश्वेश्वर का मन्दिर गिरा कर, वहाँ मसजिद खड़ी करवायी।[3] मुसलमान मौलवी हिन्दुओं को मुसलमान बनाते समय, एक हाथ में कुरान और दूसरे हाथ में तलवार ले कर, हिन्दुओं के रक्त से पृथिवी को लाल करने लगे।

कुछ लोगों ने तो बादशाह के कृपाभाजन बनने के लिये, अपने पितृ-पितामहादिकों के प्राचीन धर्म को छोड़, इसलाम धर्म की दीक्षा ग्रहण की, किन्तु अधिकांश हिन्दुओं ने अपने धर्म को छोड़ना स्वीकार न किया । वे लोग इसलाम धर्मरूपी विभीषिका से परित्राण पानेके लिये, धर्मप्रचारकों ही को मारने लगे। धर्म के लिये प्राण दे कर, इस लोक में प्रतिष्ठा और परलोक में स्वर्ग पाने के लिये, सर्व साधारण जनों के हृदय में बलवती कामना उत्पन्न हो गयी। यहीं नहीं, एक वृद्धा रमणी के नेतृत्व में बहुत से हिन्दू शस्त्र ले कर आगरे से दिल्ली की ओर प्रस्थित हुए । इनको दमन करने के लिये स्वयं औरङ्गज़ेब को रणक्षेत्र में

१ The Hindu writers have been entirely excluded from holding public offices.
Mir-at-i-Alam

२ औरङ्गज़ेब में हिन्दूविद्वेष कैसा भयङ्कर था, इसे समझाने के लिये हम उसकी और एक आज्ञा का उल्लेख करते हैं । सुविख्यात इतिहासवेत्ता काफ़ीख़ाँ ने लिखा है कि औरङ्गज़ेब की आज्ञा से कोई भी हिन्दू न तो डोली में बैठ कर निकल पाता था और न कोई अरबी घोड़े पर सवार हो सकता था।

३ "All the worshipping places of the infidels and the great temples of these infamous people have been thrown down and destroyed in a manner which excites astonishment at the successful completion of so difficult a task. His Majesty personally teaches the sacred Kalmá to many infidels with success and invests him with Khelats and other favours."
Mir-at-i-Alam

ह्वीलर साहब ने लिखा है कि जो हिन्दू बलपूर्वक अथवा फुसला कर मुसलमान बना लिये जाते थे, वे ही अपने हिन्दू भाइयों पर बड़े अत्याचार करते थे देखो—

"At the same time those Hindus who abandoned their national faith, and accepted the creed of Islam, were often the most active in persecuting their fellow countrymen, and in filling their private coffers with the spoils of idolatry."

अवतीर्ण होना पड़ा था। हिन्दुओं को बलपूर्वक मुसलमान बनानेके लिये हिन्दुओं पर बड़े बड़े अत्याचार किये जाते थे। इन अत्याचारों की चक्की में पड़ कर बहुत से किसान अपने हरे भरे खेतों को छोड़ कर भाग गये, और बहुत से कारीगर अपना अपना काम छोड़ बैठे। इससे प्रादेशिक सरकारी आमदनी बहुत घट गयी।

अत्याचारों की मात्रा बढ़ने का एक और भी कारण था। हम लिख चुके हैं कि औरङ्गज़ेब किसी पर भी विश्वास नहीं करता था। इसलिये वह एक कर्मचारी को कोई काम नहीं सौंपता था, संशयग्रस्त औरङ्गज़ेब जब किसी राजपुरुष को किसी कार्य के लिये नियुक्त करता–तब साथ ही साथ सहकारी स्वरूप दूसरे मनुष्य को भी नियुक्त कर दिया करता था। ऐसा करने से उस राजपुरुष का दायित्व घट जाता था। प्रधान अपने सहकारी के भरोसे काम छोड़ता और सहकारी अपने प्रधान पर। फल यह होता कि दो में से एक भी उस काम को न करता था और इससे वह काम चौपट हो जाता था। यही कारण था कि औरङ्गज़ेब के राजत्वकाल में शासनसम्बन्धी अनेक प्रकार की त्रुटियाँ थीं। एक जगह बहुत दिनों तक रहने से कर्मचारी कहीं प्रभावशाली न हो जायँ, इसलिये औरङ्गज़ेब कर्मचारियों की थोड़े थोड़े दिनों बाद ही बदली किया करता था। इस प्रथा में लाभ की अपेक्षा हानि अधिक थी। ज्यों ही कोई कर्मचारी लोगों के साथ हेल-मेल बढ़ा कर उस स्थान की परिस्थिति जान पाता, त्यों ही वह झट वहाँ से बदल दिया जाता था। इसलिये कर्मचारी जहाँ जाते वहाँ प्रवासी की तरह रहते थे। और अपने अधीन प्रान्त की भलाई की ओर ध्यान न दे कर चलतू काम किया करते थे। इसके अतिरिक्त निज शासनाधीन प्रदेश परित्याग करने के पहले उनका लक्ष्य उस प्रान्त से धन बटोरने की ओर विशेष रूप से रहता था। धनसञ्चय करते समय वे लोग प्रजा पर बड़े बड़े अत्याचार किया करते थे। जब कभी कोई मनुष्य प्रादेशिक शासनकर्त्ताओं पर अभियोग चलाता, तब औरङ्गज़ेब स्वयं उसका विचार करता था। किन्तु हरेक कोई बादशाह के दरबार तक नहीं पहुँच सकता था। प्रादेशिक शासनकर्त्ता भी इस बात का पूरा पूरा प्रबन्ध रखते थे कि उनके अत्याचारों की कहानी बादशाह के कान तक न पहुँच पावे। इससे अन्याय और अत्याचारों का कुछ ठिकाना ही नहीं था। अकबर के राजत्वकाल में प्रजा के लोग मुग़ल साम्राज्य के मङ्गल के लिये ईश्वर से प्रार्थना करते थे, और औरङ्गज़ेब की अमलदारी में वे मुग़ल साम्राज्य को अकोसते और उसके शीघ्र नष्ट होने के लिये ईश्वर से प्रार्थना करते थे।[1]

औरङ्गज़ेब ने सिंहासन पर बैठ कर देखा कि दक्षिण के पार्वत्य प्रदेश के अधीश्वर महाराष्ट्र-तिलक शिवाजी शक्ति सञ्चय कर के धीरे २ हिन्दू राज्य प्रतिष्ठित करना चाहते हैं। औरङ्गज़ेब ने पहले शिवाजी को "पहाड़ी चूहा" कह कर उनका उपहास भी किया। किन्तु जिस समय शिवाजी ने क्रमशः मुग़ल साम्राज्य का कुछ हिस्सा दबा लिया; तब तो औरङ्गज़ेब ने शिवाजी को समूल नष्ट करने का सङ्कल्प किया। सन् १६६२ ई० में उसने शाइस्ताख़ाँ को शिवाजी के विरुद्ध भेज महाराष्ट्र युद्ध का सूत्रपात किया।

शिवाजी ने चाहा कि शाइस्ताख़ाँ पर अचानक आक्रमण कर उसे परास्त करें। अतः उन्होंने एक दिन अँधेरी रात में बरात निकाली और अपने चुने हुए पचीस वीरों के सहित वे शाइस्ताख़ाँ के भवन के पास पहुँचे। पीछे उनके मावली जाति के वीर सैनिक थे। वे कौशलपूर्वक शाइस्ताख़ाँ के भवन में घुस गये और शत्रु पर टूट पड़े। शत्रु की तलवार से शाइस्ताख़ाँ के हाथ की दो उङ्गली भी कट गयीं। भवन में बड़ी गड़बड़ मची। भवन के रक्षक जिधर सके उधर भागने लगे। शाइस्ताख़ाँ ने भी औरङ्गाबाद की ओर भाग कर

१ एक राजा ने औरङ्गज़ेब को पत्र में लिखा था :—

"Mark the state of the country under Akbar, Jahangir and Shahjahan, and look what it is now. Men of all classes and religions are discontented; the revenue falls off daily, the people are oppressed, and treasury grows empty; the police is neglected and towns are insecure. In such a case how long can the Empire last?"

अपने प्राण बचाये । जब यह समाचार औरङ्गज़ेब ने सुना; तब उसने महाबलपराक्रान्त अम्बराधिपति जयसिंह को दिलावरख़ाँ के साथ शिवाजी पर चढ़ाई करने के लिये भेजा । जयसिंह के साथ युद्ध न कर के शिवाजी ने सन्धि कर ली । इसके कुछ दिनों बाद जयसिंह के परामर्श से शिवाजी ने औरङ्गज़ेब से मिलने के लिये दिल्ली की यात्रा की । सम्राट् यदि परिणामदर्शी होता और नीति का मर्म जानता तो शिवाजी के साथ सद्व्यवहार कर उन्हें सदा के लिये अपना अनुगत बना लेता; किन्तु क्रूरता और धूर्त्तबुद्धि के वशीभूत हो उसने पहिली भेंट में, अवमानना कर शिवाजी को अप्रसन्न कर दिया और उन्हें यावज्जीवन दिल्ली में बन्दी बना कर रखने का प्रयत्न किया । किन्तु शिवाजी कौशलपूर्वक औरङ्गज़ेब के फन्दे से निकल कर स्वदेश पहुँच गये ।[1] महाराष्ट्र युद्ध फिर से आरम्भ हुआ । कभी तो युद्ध में शिवाजी की जीत होती और कभी मुग़लों की । किन्तु औरङ्गज़ेब, शिवाजी को दमन न कर सका । इसी प्रकार सन् १६७१ ई० तक युद्ध चलता रहा । इस वर्ष औरङ्गज़ेब ने महाबतख़ाँ को चालीस हज़ार मुग़ल सैनिकों के साथ शिवाजी के विरुद्ध भेजा । इसके पहले शिवाजी ने कभी सामने युद्ध नहीं किया था । इस बार उन्होंने भी रणक्षेत्र में अवतीर्ण हो कर आत्मबल की परीक्षा लेने का संकल्प किया । मुग़लों के साथ शिवाजी ने घोर युद्ध किया । मुग़ल सेना बड़ी बुरी तरह हारी । इस लड़ाई में मुग़ल सेना के अनेक सैनिक और बाईस सेनापति मारे गये ।

इतने में अफ़ग़ान राज्य में अचानक विद्रोहाग्नि भड़का । निरुपाय हो औरङ्गज़ेब को शिवाजी के साथ युद्ध बन्द करना पड़ा । यूसुफ़ज़ाई जाति ने विद्रोह का झण्डा खड़ा कर के मुग़ल सेनापति को पराजित किया और पहाड़ पर रहने वाली मुग़ल-सेना को मार डाला । दो वर्ष बराबर युद्ध करने पर, यूसुफ़ज़ई कुछ ढीले पड़े और मुग़लों की आंशिक वश्यता स्वीकार की । औरङ्गज़ेब ने प्रसन्न हो कर सन्धि कर ली ।

अफ़ग़ानिस्तान का झगड़ा ठंडा नहीं हो पाया था कि एक और बखेड़ा खड़ा हो गया । उस समय नारनौल नामक जनपद में सत्यनामी नामक एक अस्त्रधारी हिन्दू सम्प्रदाय वाले रहते थे । नारनौल के शासनकर्त्ता के अत्याचारों से दब कर—इस सम्प्रदाय के लोग उठ खड़े हुए । आस पास के असन्तुष्ट ज़मींदारों ने उनका साथ दिया । फल यह हुआ कि आगरा और अजमेर के प्रदेशों में अशान्ति की सीमा न रही । किन्तु बादशाह ने अनायास इस विद्रोह को दमन कर, राज्य में शान्ति स्थापित की ।[2]

औरङ्गज़ेब बहुत दिनों तक, शान्ति न रख सका उसके अत्याचारों से प्रत्येक प्रदेश में अशान्ति का बीज अंकुरित हो गया । किन्तु यह साहस किसी भी प्रदेश वालों को न हुआ कि वह औरङ्गज़ेब के विरुद्ध प्रकाश्य भाव से खड़ा हो । सत्यनामी विद्रोह के बाद, औरङ्गज़ेब के असह्य अत्याचारों से राजपूताना ने सिर ऊँचा करने का साहस किया ।

औरङ्गज़ेब की अमलदारी के जयसिंह और यशवन्तसिंह खम्भे थे । वे दोनों औरङ्गज़ेब पर इसलिये असन्तुष्ट थे कि वह हिन्दुओं पर अत्याचार करने लगा था । औरङ्गज़ेब को यह बात विदित भी हो गयी थी । किन्तु ऐसे क्षमताशाली सेनापतियों से बिगाड़ करना औरङ्गज़ेब ने नीतिविरुद्ध समझा । किन्तु वह इन दोनों की घात में रहा । समय पा कर औरङ्गज़ेब ने

१ शिवाजी ने जब देखा कि बलपूर्वक यहाँ से छुटकारा नहीं हो सकता; तब उन्होंने एक चाल सोची । उन्होंने औरङ्गज़ेब से कहलाया कि दिल्ली के जल वायु से उनके साथी बीमार पड़ गये हैं, अतः उन्हें स्वदेश भेज दीजिये । औरङ्गज़ेब ने वैसा ही किया । अनन्तर शिवाजी की ओर से प्रकाश किया गया कि वे बहुत बीमार हैं । फिर कुछ दिनों बाद यह संवाद फैल गया कि शिवाजी चङ्गे हो गये । इसके आनन्द में शिवाजी टोकरों में मिठाई भर कर साधु महात्माओं को भेजने लगे । कई दिनों तक मिठाई के टोकरे भेजे गये । जब देखा कि उनके कारागाररक्षक टोकरों की देखा भाली अब नहीं करते; तब एक दिन संध्या समय शिवाजी पुत्रसहित एक टोकरे में बैठ कर दिल्ली से निकल गये ।

२ सन् १६७६ ई० में सत्यनामी सम्प्रदाय के विरोध का झगडा खड़ा हुआ । औरङ्गज़ेब तो पहले ही से हिन्दुओं पर अत्याचार करता था किन्तु सत्यनामियों के विद्रोह के समय से उसने अत्याचारों को सीमा के बाहिर पहुँचा दिया । इस घटना के पूर्व जयसिंह और यशवन्तसिंह मर चुके थे । औरङ्गज़ेब को इनके जीते जिस बात का भय था, वह भी अब नहीं रहा था । अतः वह हिन्दुओं पर मनमाने अत्याचार करने लगा ।

जयसिंह पर हाथ साफ़ किया।[१] तब यशवन्तसिंह को छोड़ हिन्दुओं का कोई धनी धोरी नहीं रहा। पर औरङ्गज़ेब इनकी ओर से बे खटके नहीं था। अवसर देख उसने यशवन्तसिंह को किसी सरकारी काम से काबुल भेजा। काबुल से यशवन्तसिंह न लौट पाये और वहीं उनकी मानवी लीला की इति श्री हो गयी।

काबुल में यशवन्तसिंह की मृत्यु होने पर, कौशलपूर्वक उनकी विधवा पत्नी और दो पुत्र जोधपुर की ओर प्रस्थानित हुए। किन्तु दिल्ली की सीमा के भीतर ही औरङ्गज़ेब ने उनको घिरवा लिया। यशवन्तसिंह के प्रभुभक्त दुर्गादास नामक एक नौकर की वीरता से यशवन्तसिंह की विधवा रानी और दोनों लड़के औरङ्गज़ेब के पंजे से निकल गये।

उस समय राजपूताना बहुत से छोटे छोटे राज्यों में विभक्त था। उन सब में सम्मान और वीरत्व में मेवाड़ और मारवाड़ ही अग्रगण्य थे। मारवाड़ के अधिपति ने स्वाधीनता को जलाञ्जलि दे कर मुसलमान बादशाह का दासत्व स्वीकार कर लिया था, किन्तु मेवाड़ के अधिपति ने ऐसा कभी नहीं किया और न कभी किसी बादशाह को मस्तक झुकाया। उस समय उनका पदगौरव ज्यों का त्यों बना हुआ था।[२] मेवाड़ के अधिपति की राणा उपाधि थी। औरङ्गज़ेब की अमलदारी में राणा राजसिंह मेवाड़ के अधिपति थे। औरङ्गज़ेब ने उनके पास जज़िया कर भेजने को एक आज्ञापत्र भेजा। उस आज्ञापत्र में यह भी लिखा था कि यदि तुम मुग़लों के नाम की राजमुद्रा अपने राज्य में प्रचलित कर दो, यदि राज्य में गोहत्या की आज्ञा दे दो, यदि हिन्दू देवालयों को तोड़ कर, उनकी जगह मसजिदें बनवा दो, यदि मुसलमानी आईन को अपने राज्य में वर्तो; तो तुम पर जज़िया-कर न लगाया जायगा। राणा राजसिंह, औरङ्गज़ेब के इस प्रस्ताव को पढ़ कर, मर्माहत हुए और निर्भय हो उसके विरुद्ध खड़े हो गये। फिर समस्त हिन्दुओं की ओर से उन्होंने बादशाह को ऐसे अपकर्मों से निवृत्त करने के लिये ओजस्विनी भाषा में एक पत्र लिखा। साथ ही राणा ने अपनी सेना को युद्ध के लिये तैयार किया। उनको यह बात विदित थी कि औरङ्गज़ेब दुराग्रही और हठी है। इतने में यशवन्त की विधवा रानी ने राणा के पास जा कर औरङ्गज़ेब के दुर्व्यवहार की फ़रियाद की। राजसिंह ने अग्रसर हो कर रानी और दोनों राजकुमारों का पक्ष लिया।

राणा ने जज़िया देना स्वीकार करने के बदले अनुचित (गुस्ताख़ाना) उत्तर दिया है और यशवन्तसिंह की भागी हुई विधवा स्त्री को आश्रय दिया है—यह सुनते ही औरङ्गज़ेब आगबबूला हो गया और समस्त राजपूताने को विध्वंस करने का सङ्कल्प किया। इसी उद्देश्य से उसने दक्षिण प्रदेश, बंगाल, और काबुल से शहज़ादों को बुलाया। उनके राजधानी में आने के पहले ही वह मेवाड़ की ओर चल दिया। उसके आगमन की सूचना पा कर राजसिंह ने हिन्दू राजाओं को स्वदेश और स्वधर्म के गौरव की रक्षा के लिये अपने झण्डे के नीचे एकत्र कर लिया।

औरङ्गज़ेब ने राजस्थान पर आक्रमण किया। शाही-सेना के राजपूताने में पदार्पण करते ही, युद्ध-नीतिविशारद राजसिंह ने मैदान से हट कर पर्वतों का आश्रय लिया। मुग़लों की सेना अमानुषिक परिश्रम कर के आगे बढ़ने लगी। किन्तु उसे राजपूताने की रास्ता और सड़कों का कुछ भी हाल नहीं मालूम था। रास्ता भूल कर, औरङ्गज़ेब ससैन्य एक पहाड़ी घाटी में घुस गया। राजपूतों को जब इसका समाचार मिला; तब उन्होंने वृक्षों से घाटी का मुहाना

---

१ "Jay Singh died at Brampore * * and seems to have been poisoned by the procurement of Aurangzeb."

Ormes' Historical Fragments.

* " "The Raja of Jeypore is said to have been poisoned."

२ "The Moghul had often endeavoured to subject them to amenable vesselage, but had never been able to obtain their acquiescence to more than ceremonious acknowledgment, and rated subsidies of troops."

Ormes' Historical Fragments.

बन्द कर दिया । रास्ता साफ़ करने का उनका सारा परिश्रम राजपूतों के कौशल से व्यर्थ हुआ।

औरङ्गज़ेब की उदिपुरी नाम्नी ईसाइन एक प्रियतमा पत्नी इस चढ़ाई में उसके साथ थी । वह राजपूतों के हाथ पड़ी और राजसिंह के सामने उपस्थित की गयी। राणा ने उसे आदरपूर्वक अपने यहाँ रखा। औरङ्गज़ेब ने उस घाटी में दो दिन तक घोर कष्ट भोगा । यह देख राणा को दया आयी और उन्होंने उस दल को वहाँ से हटा लिया, जो मुग़लों के निकल भागने के प्रयत्नों को विफल करने के लिये नियुक्त किया गया था । तब औरङ्गज़ेब के प्राण बचे और वह ससैन्य उस घाटी से बाहिर हुआ । राजसिंह ने अपने सैनिकों के साथ औरङ्गज़ेब की पत्नी को उसके पास भेज दिया।

निष्ठुर हृदय औरङ्गज़ेब को यह विश्वास न था कि मनुष्य का कोमल हृदय भी हो सकता है। उसकी धारणा थी कि प्रत्येक मनुष्य बिना स्वार्थ के कोई काम ही नहीं करता । इसलिये उसने अपने मन में विचारा कि राजसिंह ने उसके प्राण की रक्षा एवं उसकी ईसाइन पत्नी के प्रति जो सद्व्यवहार किया है, वह दया के कारण नहीं; किन्तु मेरे क्रोधानल के भय से । इस विचार के दृढ़ होते ही औरङ्गज़ेब ने युद्ध परित्याग न कर, और भी अधिक धूम धाम से युद्ध करना आरम्भ किया। किन्तु राजपूतों के अतुल वीरत्व और कौशल से वह फिर एक पहाड़ी घाटी में घिर गया। इतने में उसके दोनों पुत्र अज़ीम और अकबर ससैन्य वहाँ पहुँच गये । तब मेवाड़-विजय का भार अपने दोनों पुत्रों को सौंप, औरङ्गज़ेब दिल्ली को लौट गया । किन्तु मुग़ल सेना बहुत दिनों तक राजपूतों का कुछ भी न कर सकी । राजसिंह के वीरत्व और स्वदेशहितैषिता पर सब लोग मुग्ध थे। उसके वीरत्व और कौशल से मुग़ल सेना पद पद पर पराजित होती थी । कई एक वर्ष तक युद्ध कर के भी जब मुग़ल सेना से सिवाय हारने के कुछ भी न हुआ, तब विवश हो औरङ्गज़ेब ने राजसिंह के कथनानुसार सन्धि कर ली।

इसके बाद ही मुग़ल सम्राटों की चिर प्रचलित प्रथा के अनुसार राजकुमार अकबर ने पिता के विरुद्ध विद्रोह का झण्डा खड़ा किया और पिता के सिर से राजमुकुट उतार कर अपने सिर पर रखना चाहा। उसने राजपूतों को मिला कर और सत्तर हज़ार सैनिकों को साथ ले कर औरङ्गज़ेब पर चढ़ाई की । उस समय औरङ्गज़ेब थोड़ी सी सेना लिये शिविर में वास करता था। अकबर की चढ़ाई का समाचार सुन वह बहुत डरा। अपने पिता शाहजहाँ का शोच्य परिणाम उसके नेत्रों के सामने नाचने लगा । अकबर मेरे साथ कहीं वैसा ही व्यवहार न करे, जैसा मैंने अपने पिता के साथ किया था—यह विचार कर औरङ्गज़ेब बहुत विकल हुआ। किन्तु साहसी और धीर गम्भीर औरङ्गज़ेब ने अकबर की कमर तोड़ने के लिये एक नया उपाय सोचा। उसने अपने पुत्र को एक पत्र भेजा, जिसमें लिखा था—" मैं तुम्हारी कार्यकुशलता से तुम पर बहुत प्रसन्न हूँ; तुमने राजपूतों को लोभ में फँसा कर उनके नाश का जो उपाय निकाला है—वह बहुत ही अच्छा है।" फिर उसने ऐसा कौशल रचा कि अपना यह पत्र, अकबर के पास न भेज कर, राजपूत सामन्त के हाथ में पहुँचाया । इस उपाय से औरङ्गज़ेब का अभीष्ट सिद्ध हुआ । राजपूतों को अकबर पर सन्देह उत्पन्न हुआ और वे उसका साथ छोड़ चल दिये। तब अकबर ने अन्य उपाय न देख पाँच छः सौ सैनिकों सहित मरहटों की शरण ली । वहाँ से वह फारस की ओर गया । वहीं उसके जीवन का अवशिष्ट भाग व्यतीत हुआ।

यद्यपि उदयपुर के राणा के साथ सन्धि हो चुकी थी, तथापि राजपूत-युद्ध का अन्त नहीं हुआ था । क्योंकि पाश्चात्य प्रदेश में राजपूतों ने अब तक अस्त्र नहीं रखे थे । बादशाह ने बड़े कष्ट से उन्हें दबाया। बहुत दिनों तक बराबर लड़ते लड़ते औरङ्गज़ेब ने राजपूताने में शान्ति स्थापित की। किन्तु बहुत दिनों तक राजपूताना शान्त न रह सका । वीर राजपूत मुग़ल साम्राज्य से पृथक् हो गये । राजपूत सेनापति एक शताब्दी तक मुग़ल साम्राज्य के प्रधान सहायक रहे। किन्तु औरङ्गज़ेब की सङ्कीर्ण नीति के फल से राजपूतों ने मुग़लों से कुछ भी सम्पर्क न रखा।

जिस समय औरङ्गज़ेब अफ़ग़ानिस्तान का विद्रोह दबाने और राजपूताने की आग ठंडी करने में लगा हुआ था। उस समय शिवाजी ने दक्षिण में हिन्दूराज्य का सङ्गठन कार्य समाप्त कर लिया। जीवन के उद्देश्य को पूरा कर के शिवाजी ने सन् १६८० ई० में अमरलोक की यात्रा की। शिवाजी के परलोक-गमन के पीछे

उनके पुत्र शम्भाजी सिंहासन पर बैठे। इतने में महाराष्ट्र राज्य में नाशकारी घरेलू झगड़ा उठ खड़ा हुआ। फल यह हुआ कि कुछ काल के लिये महाराष्ट्रशक्ति निस्तेज और हीनबल हो गयी।[1]

गोलकुण्डा और बीजापुर के नरेशों ने शाहजहाँ के समय में दिल्ली के सिंहासन की आंशिक वश्यता स्वीकार कर ली थी; किन्तु औरङ्गज़ेब को इससे सन्तोष न था। उसने इन दोनों राज्यों को लोप करने के लिये कई बार सेना भेजी। किन्तु राजपूतों और महाराष्ट्रों के साथ युद्ध में फँसे रहने के कारण वह अपने इस उद्देश्य को पूरा न कर पाया। जब शिवाजी का शरीरान्त हुआ, महाराष्ट्रों की शक्ति घटी, और राजपूताने का समरानल बुझ गया तब निश्चिन्त हो कर औरङ्ग़ज़ेब ने अपनी सारी शक्ति गोलकुण्डा और बीजापुर के विध्वंस करने में लगायी।

सन् १६८३ ई० में स्वयं औरङ्गज़ेब दक्षिण गया। युद्ध की ऐसी तैयारियाँ पहले कभी नहीं देखी गयी थीं। भारतवर्ष भर के उत्तम घुड़सवार सैनिक एकत्र किये गये। इनकी सहायता के लिये सुशिक्षित पैदल सैनिक सजाये गये। बहुत से धनुष बनाने और तोपखाने तैयार करने का प्रबन्ध यूरोपियनों को सौंपा गया। बादशाह ने औरङ्गाबाद में पहुँच कर छावनी डाली।

यहाँ से पहले तो महाराष्ट्र राज्य जीतने के लिये औरङ्गज़ेब ने चालीस हज़ार घुड़सवार भेजे। किन्तु महाराष्ट्र कभी सामने नहीं लड़ते थे। मुग़ल सेना के महाराष्ट्र राज्य में प्रवेश करते ही—वे सब लोग पहाड़ों पर चढ़ गये और चारों ओर के रास्ते बन्द कर दिये। खाद्य पदार्थों के अभाव से मुग़ल सैनिक विकल हुए। तब मुग़ल सेनापति कुछ सवारों को साथ ले भागा और औरङ्गज़ेब के पास पहुँचा।

औरङ्गज़ेब औरङ्गाबाद से शोलापुर गया। वहां छावनी डाल कर, उसने अपने पुत्र अज़ीम को बीजापुर विजय के लिये भेजा। बीजापुर के अधिपति ने शत्रु की सेना को विध्वस्त करने के लिये एक बड़ी भारी सेना एकत्र की। मुग़ल सेना बीजापुरी सेना के कौशल से सङ्कट में पड़ी। यह सुयोग देख शम्भाजी ने मुग़ल साम्राज्य के अन्तर्गत गुजरात प्रदेश को लूटा। मुग़ल सेनापतियों को, बीजापुराधिपति को परास्त किये बिना ही लौट आना पड़ा। औरङ्गज़ेब ने बीजापुर राज्य को छोड़ कर सारी सेना सहित गोलकुण्डा पर चढ़ाई की। बादशाह ने शम्भाजी की ओर इस बेर कुछ ध्यान ही नहीं दिया। उस समय मदनपन्थ नामक एक ब्राह्मण गोलकुण्डा राज्य का मंत्री था। उसने मुग़लों का सामना करने के लिये बड़ी तैयारियाँ की थीं। किन्तु गोलकुण्डा की सेना के सेनापति इब्राहीमख़ाँ और मदनपन्थ में परस्पर कुछ बिगाड़ था। ईर्ष्या के वशीभूत हो, इब्राहीम ने विश्वासघात किया और वह जा कर मुग़ल सेना से मिल गया। तब अन्य उपाय न देख, गोलकुण्डा के अधिपति ने क्षतिपूर्तिस्वरूप औरङ्गज़ेब को दो करोड़ रुपये दे कर, सन्धि कर ली।

इसके बाद औरङ्गज़ेब ने बीजापुर पर आक्रमण किया। बीजापुर की राजधानी घेर ली गयी। इस बार बीजापुर राज्य विलुप्त हो गया।

बीजापुर को ध्वस्त कर के बादशाह ने फिर गोलकुण्डा पर दृष्टि डाली। यद्यपि औरङ्गज़ेब गोलकुण्डा नरेश से दो करोड़ रुपये ले कर सन्धि कर चुका था, तथापि वह गोलकुण्डा पर आक्रमण करने में ज़रा भी कुण्ठित न हुआ। गोलकुण्डा नरेश आबूहसन ने औरङ्गज़ेब को शान्त करने के लिये अपनी बेगमों के

---

१ शिवाजी के शरीरत्याग कर चुकने पर औरङ्गज़ेब ने लिखा था—"शिवाजी एक विचक्षण सेनापति था। मैं जिस समय भारत के प्राचीन राज्यों को ध्वंस करने की चेष्टा करता था; उस समय केवल शिवाजी एक नये हिन्दू राज्य को स्थापित करने के उद्योग में निरत था। मैंने उसके विरुद्ध उन्नीस वर्ष तक बराबर सेना भेजी, तो भी उसके राज्य की सीमा बढ़ती ही गयी। जिस इतिहासवेत्ता काफ़ीख़ाँ ने शिवाजी को "नारकीय कुत्ता" बतलाया है; वही काफ़ीख़ाँ यदि शिवाजी की प्रशंसा करे तो वह अक्षरशः सत्य माननी ही पड़ेगी। उसने लिखा है :—

"Shivajee had always striven to maintain the honour of the people in his territories. He preserved in a course of rebellion, in plundering carayans and troubling mankind, but he entirely abstained other disgraceful acts, and was careful to maintain the honour of women, and children of Mohammedans when they fell into his hands."

गहने तक उतार कर दे दिये थे । किन्तु निर्मम औरङ्गज़ेब, इससे भी विचलित न हुआ । मुसलमान हो कर भी आबूहसन ने मंत्रिपद पर एक ब्राह्मण को नियुक्त किया था, और विधर्मी महाराष्ट्रों से उसने सन्धि कर ली थी । ये ही दोष लगा कर औरङ्गज़ेब ने आबूहसन के राज्य पर चढ़ाई की। आबूहसन ने बड़े विक्रम के साथ युद्ध किया; किन्तु स्वराज्य की वह रक्षा न कर सका ।

बहुत दिनों बाद बादशाह के मन की बात पूरी हुई । सन् १६८१ ई० में उसका चिरकाल का सङ्कल्प पूरा हुआ । किन्तु इन दो राज्यों को हस्तगत करने में, मुग़ल-साम्राज्य की सारी शक्ति खप गयी । गोलकुण्डा राज्य के विनष्ट होते ही मुग़ल-साम्राज्य दुर्दशाग्रस्त हो गया । बीजापुर और गोलकुण्डा राज्यों के सुशासन से दक्षिण में शान्ति थी । किन्तु इन दोनों राज्यों के विलीन होते ही वह सुशासनपद्धति भी लुप्त हो गयी । इसके अतिरिक्त औरङ्गज़ेब ने वहाँ कोई नयी सुशासनप्रणाली भी न प्रचलित की । सन्दिग्धचित्त बादशाह ने सेना सहित किसी भी सेनापति को उस प्रान्त के शासन के लिये नियुक्त न किया । शान्तिरक्षा के लिये बीजापुर और गोलकुण्डा के नरेश, दो लाख सैनिक तैयार रखते थे । किन्तु औरङ्गज़ेब ने उस प्रान्त में अपना अधिकार ज्यों का त्यों बनाये रखने के लिये केवल ३४ हज़ार सैनिक रखे । पदच्युत सैनिक असन्तुष्ट सेनानायकों के अधीन दलबन्दी करने लगे । बहुत से महाराष्ट्र नायकों से जा मिले । छोटे छोटे सामन्त स्वतंत्र हो गये । औरङ्गज़ेब सदा युद्ध ही में व्याप्त रहता था और इसीसे वह बराबर कुछ काल तक एक स्थान पर नहीं रह पाता था । अतः सारे दक्षिण प्रान्त में अराजकता फैल गयी । सारे दक्षिण में विद्रोहवह्नि भभक उठा । औरङ्गज़ेब इस अग्नि को न बुझा सका और इस अग्नि से उसकी सारी क्षमता दग्ध हो गयी ।

जो शक्ति बची थी वह मरेहठों को दमन करने में लगी । बीस वर्ष तक औरङ्गज़ेब ने महाराष्ट्रों के साथ युद्ध किया और वृद्धावस्था में भी कष्टसहिष्णुता और रणकौशल को परा काष्ठा पर पहुँचा दिया।

महाराष्ट्र देश दुरतिक्रम नदियों और दुरारोह पहाड़ों से घिरा हुआ है । प्रसिद्ध इतिहास-लेखक ग्रायटडफ ने लिखा है कि महाराष्ट्र देश की तरह सुरक्षित और सुदृढ़ देश सम्भवतः पृथिवीतल पर दूसरा नहीं है ।[१] ऐसे दुर्लङ्घ्य देश में यात्रा करते समय औरङ्गज़ेब को बारंबार विपत्तियों का सामना करना पड़ा । कभी कभी उसे ऐसे स्थानों में पड़ाव डालना पड़ा जहाँ खाने की कोई वस्तु मिलती ही न थी और इसलिये सबको निराहार रहना पड़ता था । महाराष्ट्र देश में ग्रीष्मऋतु में गरमी बहुत अधिक पड़ती है । इसलिये मुग़ल सेना को जल के अभाव से बड़ा कष्ट उठाना पड़ा । तिस पर सेना में महामारी के फैलने और दुर्भिक्ष पड़ने से मुग़ल सेना की बड़ी दुर्दशा हुई । इधर यह दैवी मार और उधर महाराष्ट्रों का गुप्त रूप से समय समय पर अचानक आक्रमण । इससे मुग़ल सेना बड़ी हैरान थी । इतनी विपत्तियों के उपस्थित होने पर भी औरङ्गज़ेब टस से मस नहीं करता था । किन्तु दीर्घ काल तक युद्ध में प्रवृत्त रहने से, मुग़ल साम्राज्य की समस्तशक्ति और बल निःशेषित हो गया । मुग़लसाम्राज्य को इस प्रकार विपन्न कर के भी, औरङ्गज़ेब महाराष्ट्रों का कुछ भी न बिगाड़ सका । अनेक दुर्दशा भोग कर, ठंडी उसाँसें लेता हुआ औरङ्गज़ेब, महाराष्ट्र प्रान्त से विदा हुआ ।

अवसन्नचित्त औरङ्गज़ेब ने देखा कि जिस साम्राज्य के लिये पिता को बन्दी बनाया, भाइयों के रक्त से अपने हाथ कलङ्कित किये उसी साम्राज्य की अब बड़ी दुर्दशा है । लगातार बहुत दिनों तक राजधानी से बहुत दूर रहने के कारण, साम्राज्य का उत्तर भाग, औरङ्गज़ेब के पञ्जे से निकल सा गया है । वहाँ के निवासी स्वेच्छाचारी हो गये हैं । यद्यपि शासन सम्बन्धी कार्यों को औरङ्गज़ेब स्वयं देखता भालता था, तथापि अनेक स्थानों में बड़ी गड़बड़ी मची हुई थी । राजपूतों ने आपस में परामर्श कर के मुग़ल साम्राज्य को विध्वस्त करने का संकल्प कर लिया था । पंजाब में सिक्ख जाति का अभ्युत्थान हो रहा था । उस समय मुलतान में सिक्खों का बड़ा प्राबल्य था । दक्षिण

[१] In a military point of view, there is probably no stronger country in the world.

Grant Duff.

प्रदेश में निरन्तर अनेक वर्षों तक रणक्षेत्र बनने के कारण उजाड़ पड़ा था । मरेहठे, बादशाही नगरों में सदा लूट पाट मचा और उन्हें फूँक कर, तथा हरे भरे खेतों को कचर कर उजाड़ दिया करते थे । दुर्बल[1] और उच्छृङ्खल मुग़ल सेना चारों ओर से अपने वेतन के लिये तङ्ग कर रही थी । राजकोष खाली था, आमदनी के मार्ग बन्द थे—अतः सैनिकों का वेतन चुकाने का कोई उपाय ही न था ।[2]

औरङ्गज़ेब ने देखा एक ओर तो विशाल मुग़ल-साम्राज्य विश्रृङ्खल हो रहा है, और दूसरी ओर मृत्यु उसे ग्रास करने के लिये उद्यत हो रही है । मृत्यु का भय मन में उत्पन्न होते ही औरङ्गज़ेब की विकलता बढ़ती थी, उस विकलता में उसने अपने सब से अधिक प्रिय पुत्र कामबख्श को लिखा था—" प्राणाधिक ! अब मैं सदैव के लिये विदा हुआ चाहता हूँ, मेरे साथ कोई नहीं जायगा । तुम मुझसे छूटोगे—यह विचार कर मेरा हृदय शोकपूरित हो रहा है । किन्तु इससे क्या हो सकता है ? मैंने जितना लोगों को सताया है, जितने पाप किये हैं, जितने बुरे काम किये हैं, उन हरेक का फल मुझे भोगना पड़ेगा । मैं कुछ भी ले कर पृथिवी पर नहीं आया था; किन्तु अब पाप की गठरी सिर पर रख कर जा रहा हूँ । मैं जिधर दृष्टि डालता हूँ, उधर ही अब मुझे ईश्वर दिखलायी पड़ते हैं । मैं बड़ा पापी हूँ, नहीं कह सकता, परलोक में मुझे कैसी कैसी यंत्रणाएँ भोगनी पड़ें । मुसलमानों का वध मत करना, नहीं तो इस कलङ्क का भार मेरे सिर पर पड़ेगा । मैं तुझे और तेरे पुत्रों को, ईश्वर को सौंपता हूँ । जाते समय तुझको आशीर्वाद देता हूँ । मैं इस समय भी बहुत पीड़ित हूँ । तेरी पीड़िता माता उदिपुरी बेगम सहर्ष, मेरे साथ मौत के गले लगेगी । आमीन

१ औरङ्गज़ेब की सेना का वर्णन करते हुए, राजा शिवप्रसाद ने जो लिखा है, वह पढ़ने योग्य है । उसे हम नीचे उद्धृत करते हैं—

" It would be well now to take a glance at Aurangzeb's army. Look at his chi-fs' horses—their tails and manes are dyed ; they are loaded with gold and silver trappings from head to foot, they have long plumes on their crests and gingling bells on their feet ; they are so fat as almost to be as broad as they are long ; their housings are heavy with velvet and brocade, and yaks-tail chauris depend on each side ! The riders are even a stranger sight than the steeds, some of them are dressed in quilted coats or in chain armour heavier than themselves; others in flowing robes, and with shawls wrapped about them. But their faces are sickly, like men who have been awake all night, or intoxicated, or who have taken medicine ; they cannot go ten steps but their horses are all of a sweat, and they themselves knocked up ; if they were to go further both would fall down as dead. As the chiefs are, so are their men, horse and foot. For ten soldiers in camp there are a hundred baniyas, pedlars, buffoons, dancers, harlots, servants, waiters and *khansamans*. Their is no arrangement for supplies. The tents and other luxurious appurtenances are so numerous that it is impossible to arrange for their carriage. Little matter if the sword be left behind—the guitar must go. The enemy's attack is of no consequence, so long as the chilam keeps alight."

२ एक फरासीसी ने औरङ्गज़ेब की सेना के विषय में लिखा है—

" The pay is good, the duties light ; no one thinks of keeping guard, or skirmishing with the enemy ; and the greatest punishment inflicted is the fine of a day's pay."

शान्ति औरङ्गज़ेब को बहुत दिनों तक यह मानसिक अशान्ति न भोगनी पड़ी। सन् १७०७ ई० में दक्षिण प्रान्त के अन्तर्गत अहमदनगर में मुग़ल बादशाह औरङ्गज़ेब ने प्राण परित्याग किया।

औरङ्गज़ेब एक जगत्प्रथित सम्राट् था। वह बुद्धिमान्, कार्यपटु और परिश्रमी था।[1] जैमिली केरेरी (Gemelli Carreri) नामक एक यात्री था। वह औरङ्गज़ेब के दरबार में भी उपस्थित हुआ था। उस समय औरङ्गज़ेब की अवस्था अस्सी वर्ष की थी। उस यात्री के लिखे वर्णन से विदित होता है कि इतनी अधिक अवस्था ढल जाने पर वह सफेद कपड़े पहन और अमीर उमरावों के साथ बैठ, राज काज की देखभाल किया करता था। पीठ पीछे तकिया लगा और बिना चश्मा के वह प्रार्थनापत्र पढ़ता था। और अपने हाथ से आवश्यक आज्ञा लिखता था। उसके मुख पर आनन्द के चिह्न देख जान पड़ता था कि वह चाव के साथ अपना कर्तव्य पालन कर रहा है, औरङ्गज़ेब नव्वे वर्ष की अवस्था में मरा था। इतिहास-लेखक काफ़ीख़ाँ ने लिखा है कि उस अवस्था में भी उसकी पाँचों इन्द्रियाँ सतेज थीं—केवल वह कुछ कुछ ऊँचा सुनने लगा था; किन्तु बाहिरी लोग यह भी नहीं जान सकते थे।

मुग़ल बादशाह थोड़े बहुत विलासपटु, मदिरासक्त और बाह्य आडम्बर-प्रिय हुआ ही करते थे। अकबर के दो पुत्रों को छोड़ और सब मदिरा पान से मरे। जहाँगीर प्रसिद्ध मद्यप था ही। उसका पुत्र शाहजहाँ बड़ा प्रसिद्ध विलासी था। वृद्धावस्था में कारागार में रहने पर भी भोगविलास में वह निरत रहता था। सुन्दरी रमणियों का नाच और सीराज़ी मदिरा का सेवन कारागार में भी नित्य हुआ ही करता था। सम्राटों को मद्यप और भोग विलास परायण देख, उनके समय के अमीर उमराव भी उनका अनुसरण करते थे। जिन मुग़लों ने भारतवर्ष में मुग़ल साम्राज्य की नींव डाली—वे बड़े कष्टसहिष्णु और पराक्रमी थे। किन्तु जिस समय औरङ्गज़ेब ने पितृसिंहासन पर अधिकार जमाया। उस समय के दरबारी तक विषयासक्त थे। बाबर को यात्रा करते समय, रास्ते में जो नदी मिलती थी, उसे वह तैर कर पार करता था। किन्तु शाहजहाँ के दरबारी बहुमूल्य मख़मली गद्दों को बिछवा और पीनसों (शिबिका) में बैठ, रणक्षेत्र में जाते थे।[2]

राजपरिवार में विलासता की मात्रा बढ़ने पर भी, औरङ्गज़ेब भोग लालसा को बहुत रोकता था। उसने कभी मदिरा नहीं छुई। उसने तख़्त पर बैठ कर, मुग़ल दरबार के विलास-स्रोत को बन्द किया। उसके इस कृत्य से अनेक अमीर उमराव उस पर अप्रसन्न भी हो

१ औरङ्गज़ेब राजकार्य देखने भालने में बड़ा भारी परिश्रम किया करता था। उसके परिश्रम को देख लोगों को इस बात की आशङ्का उत्पन्न हो गयी थी कि कहीं वह बीमार न पड़ जाय। एक बार एक विशिष्ट उमराव ने औरङ्गज़ेब से परिश्रम करने में कमी करने का प्रार्थनापूर्वक अनुरोध किया था। उसके उत्तर में उसने कहा था—"प्रजा पर विपत्ति पड़ने पर, राजा का कर्तव्य है कि अपने प्राण तक गँवा दे।" हमारे यहाँ के श्रेष्ठ कवि सादी का कहना है—"या तो राजत्व छोड़ दो, या यह समझ रखो कि सिवाय तुम्हारे दूसरा कोई राज्यशासन कर ही नहीं सकता।" यदि तुम मेरे कृपापात्र बनना चाहते हो तो तुमको अपना कर्तव्य कर्म उत्तम रीति से करना पड़ेगा। मैं तो स्वयं आराम-प्रिय हूँ, मुझे इस प्रकार के परामर्शदाता की आवश्यकता नहीं है। विश्राम करने और पुष्पों से आच्छादित विलास-मार्ग पर भ्रमण करने का अनुरोध करने वाली मेरी बेगमें ही कौन कम हैं।

२ तैमूरलङ्ग ने स्वरचित जीवनी में लिखा है कि जिस समय उसने भारतवर्ष पर चढ़ाई करने का विचार प्रकट किया उस समय उसके दरबारियों में से किसी किसी ने आपत्ति उपस्थित करते हुए कहा था:—

"By the favour of Almighty God we may conquer India, but if we establish ourselves permanently therein, our race will degenerate, and our children will become like the nation of those regions and in a few generations their strength and valour will diminish.

तैमूर के सभासदों की यह भविष्य वाणी ठीक निकली।

गये थे। तिस पर भी उसने विलास तरङ्गों को बहुत कुछ रोक रखा था।[1]

औरङ्गज़ेब का व्यवहार और विचार इसलाम धर्म के अनुसार होता था। इसलाम धर्म के कट्टर अनुयायी को जो करना चाहिये, औरङ्गज़ेब वही करता था। इसलाम धर्मानुसार वह प्रतिवर्ष लगभग डेढ़ लाख रुपये धर्मार्थ दीन दरिद्रों में बाँट दिया करता था। प्रत्येक शुक्रवार तथा अन्यान्य पवित्र दिनों में एवं रमज़ान में वह उपवास करता था। रमज़ान के महीने में वह कुरान पढ़ता था और आधी रात तक साधु पुरुषों के साथ बैठता था। उसने मक्का के यात्रियों के सुबीते के लिये अनेक प्रबन्ध कर दिये थे। वह निषिद्ध मांस कभी नहीं खाता था। वह गाने बजाने का विरोधी था। यदि कोई गवैया, नचैया अपने इस व्यवसाय को छोड़ देता, तो वह उसकी आजीविका का दूसरा प्रबन्ध कर दिया करता था। वह निर्दिष्ट समय नमाज़ पढ़ता था—इसमें कभी किसी प्रकार की बाधा नहीं पड़ने पाती थी। युद्धक्षेत्र में भी प्राण का भय छोड़ वह समय उपस्थित होने पर, प्रशान्त मन से नमाज़ पढ़ता था। मोहम्मद के आदेशानुसार किसी प्रकार का वाणिज्य करने के अभिप्राय से वह टोपियाँ बना कर बेचा करता था। कहा जाता है—औरङ्गज़ेब ने टोपियों को बेच कर जो धन एकत्र किया था, उनमें से केवल ४॥रुपये लगा कर अन्त्येष्टिक्रिया किये जाने को कह गया था।[2] उसने आठसौ पाँच रुपये कुरान की नक़ल कर के जमा किये थे। इन रुपयों को फ़क़ीरों में बाँट देने का उसने मरने के पूर्व आदेश दिया था।

औरङ्गज़ेब विद्रोही सेनापति और पुत्रों को दमन करने में सिद्धहस्त था। वह अनेक प्रकार के कौशल रच कर विद्रोही को शान्त कर दिया करता था।

औरङ्गज़ेब में बहुत से राजोचित गुण थे। किन्तु उसने जिस विशाल साम्राज्य को अधिकृत किया, वह उसीके राजत्व काल में गड़बड़ा गया। इसका कारण यह था कि औरङ्गज़ेब स्वार्थी, परधर्मपीड़क और कपटी शासनकर्त्ता था। किन्तु काफ़ीख़ाँ ने औरङ्गज़ेब की विफलता का कुछ और ही कारण लिखा है। काफ़ीख़ाँ के उस लेख को उद्धृत कर हम इस जीवनी को समाप्त करते हैं। काफ़ीख़ाँ ने लिखा है—"तैमूर-वंश के नरेशों ही में नहीं किन्तु दिल्ली के समस्त सुलतानों में, एकमात्र सिकन्दर लोदी को छोड़ कर, ईश्वरनिष्ठा, विलासविमुखता और न्यायपरायणता में, औरङ्गज़ेब के समान दूसरा कोई नहीं हुआ। साहस, कष्टसहिष्णुता और विज्ञता में कोई भी नरपति उसकी बराबरी नहीं कर सकता। किन्तु उसमें शास्त्र के अनुशासन के पालन का प्रबल अनुराग होने के कारण, औरङ्गज़ेब अपराध करने पर भी अपने सहधर्मी अधिकारियों को दण्ड नहीं दिया करता था। विना दण्ड दिये राज्यशासन हो ही नहीं सकता।

१ औरङ्गज़ेब ने नाचना गाना धर्मविरुद्ध बतला कर बन्द कर दिया था। इससे गवैये और नाचने वालियों ने उसकी इस आज्ञा का जिस ढङ्ग से प्रतिवाद किया—वह बड़ा कौतुकावह है। औरङ्गज़ेब नित्य सवेरे झरोखे में बैठ कर प्रजा को दर्शन देता था। एक दिन औरङ्गज़ेब ने देखा कि बहुत से लोग बड़ी धूम धाम के साथ क़बरस्तान की ओर जा रहे हैं। यह किसका मुर्दा इतनी धूम से जा रहा है, यह जानने के लिये औरङ्गज़ेब ने दूत भेजा। प्रेरित दूत ने लौट कर निवेदन किया कि सङ्गीत की मृत्यु हो गयी है और उसे दफ़नाने के लिये उसके नौकर चाकर उसे क़बरस्तान में लिये जा रहे हैं। इसको सुन बादशाह ने कहा—"यह अवश्य करना ही चाहिये। किन्तु उन लोगों से जा कर मेरी ओर से कह दो कि सङ्गीत की लाश को वे जमीन में इतनी गहरी गाड़ें जिससे वह फिर न निकल सके।"

२ राजा शिवप्रसाद ने लिखा है :—

What a strange mind has God bestowed upon men! Aurangzeb thought it no crime to gain the throne by imprisoning his father and murdering his brothers, yet at the time of death he writes. "The four and a half rupees which remain from the sale of the caps I made are to be spent on my burial, and the eight hundred and five rupees which I made by copying the Quran are to be distributed to *faquirs* as if by such an act he could get up any claims to holiness."

ईर्ष्यावश अमीर उमरावों में परस्पर वाद विवाद हुआ करता था । इसी कारण से उसके विचारे कार्यों में सफलता नहीं होती थी । उसके अनुष्ठित प्रत्येक कार्य के पूरे होने में बहुत विलम्ब होता था और अनुष्ठित कार्य का उद्देश्य विफल होता था ।

Alamgir II द्वितीय आलमगीर=यह १३ वाँ मुग़ल सम्राट् था। इसने सन् १७५४–१७५६ ई० तक राज्य किया और अन्त में सन् १७५६ ई० के नवम्बर मास में चतुर्थ गाज़िउद्दीन की आज्ञा से मार डाला गया ।

Alphonso Albuquerque अलफ़न्सो अलबरका=यह एक पोर्चगीज़ जातीय राजप्रतिनिधि था जो भारतवर्ष में सन् १५०४ई० में आया था । किन्तु वह क्लाइव की तरह सफलमनोरथ न हो पाया । वह पोर्चगीज़ इण्डिया का दूसरा गवर्नर जनरल था । इसमें सन्देह नहीं कि उसने अपने राजा का प्रताप यहाँ बढ़ाने की चेष्टा में कोई बात उठा नहीं रखी थी। यहाँ तक कि कालीकट पर आक्रमण करते समय वह मरते मरते बच गया । गोया को इसीने अपने अधिकार में किया था । यह यहाँ की देशी रियासतों से अधिक हेल मेल रखता था और जाति पाँति का विचार परित्याग कर परस्पर विवाह करने की पद्धति का पक्षपाती था। उसने अपने अधीनस्थ सैनिकों का और हिन्दुस्थानी उच्च कुलों के लोगों में परस्पर उद्वाह सम्बन्ध स्थापित किया था । मलाकाद्वीप पर भी इसने अपना अधिकार सन् १५११ में कर लिया था । पर इतना करने पर भी उसके मालिक ने उसे नौकरी से बरखास्त कर दिया। इस चोट को वह न सह सका और गोया के पास जहाज़ ही में वह मर गया । समुद्र तट पर वह दफनाया गया । उसकी मृत्यु सन् १५१५ ई० में हुई थी ।

Alexander the Great सिकन्दर=दि ग्रेट इसकी उपाधि थी । मेसीडोनिया के अधिपति फिलिप का यह पुत्र था । इसका जन्म उसी प्रसिद्ध वर्ष में हुआ था । जिसमें डायना देवी का यूफेसियस वाला प्राचीन मन्दिर ध्वस्त किया गया था । इसके शिक्षक का नाम लैसीमेकस है । इसने वहाँ के प्रसिद्ध दार्शनिक एरिस टाटिल से भी कुछ दिनों शिक्षा प्राप्त की थी । बाल्यावस्था ही से यह होनहार होने के लक्षण दिखलाने लगा था । जिस समय फिलिप किसी देश या जाति को जीतता और उसका समाचार एलेक्ज़ेण्डर सुनता, उस समय वह कहता था–" पिताजी, मेरे लिये कोई भी काम न छोड़ेंगे।" छोटी ही उम्र में इसने अपने नटखट घोड़े को अपने वश में कर लिया था । इसके पूर्व उसे कोई भी अपने हाथ में नहीं कर पाया था । जैसे नैपोलियन को मैकफरसन का " ओसियान " प्रिय पाठ्य ग्रन्थ था । उसी प्रकार युवक एलेक्ज़ेण्डर को होमर रचित इलियड पर प्रगाढ़ अनुराग था । उसने वीरत्व में एचाइलस् को अपना आदर्श मनोनीत किया था ।

३३६ बी. सी. में फिलिप का वध हुआ । तब एलेक्ज़ेण्डर सिंहासन पर बैठा । उसे तख्त बीस वर्ष की अवस्था में मिला था । फिलिप ने जीवित काल में ग्रीस देश के अनेक छोटे छोटे राजाओं को परास्त कर अपने अधीन किया था । सो फिलिप के मारे जाते ही वे सब सिर उठाने लगे । किन्तु इस वीर युवक ने पूर्ववत् उन रियासतों पर मैसीडोनिया का अधिकार जमाये रखा। ग्रीस की समस्त सेनाओं को उसने अपने हाथ में कर लिया । इससे उत्साहित हो उसने अन्य देशों पर आक्रमण किया और सबको परास्त किया । धीरे धीरे चालीस हज़ार योद्धाओं के साथ परशिया पर उसने आक्रमण किया । परशियनों को उससे हार माननी पड़ी और अनेक स्थान उसके अधिकार में आ गये ।

जब वह सिलसिया में था, तब एक दिन उसने कड़ी धूप की परवाह न कर नदी में बहुत देर तक स्नान किया । इससे उसे बड़े ज़ोर से बुख़ार चढ़ आया । उस बुख़ार की हालत में उसे परमिनो का एक पत्र मिला जिसमें लिखा था कि डाक्टर फिलिप से, जो उसका चिकित्सक था–सावधान रहना । क्योंकि परमिनो को उस चिकित्सक पर सन्देह हो गया था कि वह घूँस ले कर एलेक्ज़ेण्डर को विष देगा

चाहता है। इतने में कड़ुई दवा लिये चिकित्सक फ़िलिप उसके पास गया। एलेक्ज़ेण्डर ने उस दवा को पीते हुए, चिकित्सक को परमिनो का पत्र भी पढ़ा दिया। जब वह अच्छा हो गया। तब चिकित्सक को उसने बहुत सा पुरस्कार दिया। इसके कुछ ही दिनों बाद उस ने दारा को परास्त किया। इस युद्ध में एलेक्ज़ेण्डर के हाथ बहुत से क़ैदी पड़े। इन क़ैदियों में परशिया के बादशाह दारा की माता, स्त्री और लड़के लड़कियाँ भी थीं। पर इन अभागे राजघराने के लोगों के साथ उदारचेता वीर एलेक्ज़ेण्डर ने बड़ा अच्छा व्यवहार किया। इसके बाद उसने फोनीशिया, डेमसकस आदि स्थानों को जीता। किन्तु टाइर को हस्तगत करने में उसे सात महीने तक घोर परिश्रम करना पड़ा। इससे खिसियाकर उसने उस स्थानवासियों पर, बड़े बड़े अत्याचार किये। वहाँ से वह, जैरुसलम गया। वहाँ उससे वहाँ के धर्माचार्य से भेंट हुई। एलेक्ज़ेण्डर ने झुक कर उन्हें प्रणाम किया। यह देख उसके साथी परनियो को बड़ा आश्चर्य हुआ। तब एलेक्ज़ेण्डर ने कहा कि इन्हीं महात्मा ने मुझे मैसीडोनिया में स्वप्न में दर्शन दिये थे और "विजयी भव" का आशीर्वाद दिया था। तब धर्माचार्य ने उस वीर को डेनिमल की भविष्यद्वाणी दिखलाई जिसमें लिखा था कि ग्रीस देश का एक राजा परशियन साम्राज्य को ध्वस्त करेगा। इसके बदले में विजयी एलेक्ज़ेण्डर ने बहुमूल्य रत्नादि धर्माचार्य को भेंट किये। वहाँ से यह वीर मिश्र (Egypt.) में गया और मिश्र को अपने भी हस्तगत किया। यहाँ पर उसने अपने नाम का Alexandria. नामक एक नगर बसाया।

इस बीच में दारा ने फिर एक बड़ी सेना एकत्र कर अपने खोये हुए मान की मरम्मत करनी चाही पर उसे फिर नीचा देखना पड़ा। इसके बाद एलेक्ज़ेण्डर ने सुसा और परसीपोलिस नगरों पर अपना अधिकार जमाया और परसीपोलिस को जला कर राख कर डाला। एलेक्ज़ेण्डर दारा का पीछा किये चला जा रहा था कि इतने में उसने सुना कि दारा को उसके एक साथी ने मार डाला। यह सुन एलेक्ज़ेण्डर को बड़ा दुःख हुआ और उसने उस विश्वासघातक को स्वयं मरवा डाला और दारा को उस के पूर्वपुरुषों की क़ब्र के पास परसीपोलिस में शयन करवाया। कहा जाता है कि जब एलेक्ज़ेण्डर ने दारा की लोथ को ज़मीन में लोटते देखा तब उससे उसे न देखा गया और अपना लबादा उतार कर उससे उसकी लोथ को उसने ढक दिया। दिग्विजय करने की लालसा इस वीर के मन में उत्तरोत्तर बढ़ती जाती थी। उसने परशिया पर अपना पूर्ण प्रभुत्व स्थापित कर भारतवर्ष पर आक्रमण किया। बी. सी. ३२६ में उसने सिन्धु नदी को पार किया और अटक के पास की भारतभूमि पर पदार्पण किया। अनन्तर वह पञ्जाब में घुसा। झेलम के तट पर पोरस और एलेक्ज़ेण्डर में परस्पर घोर युद्ध हुआ। पर इस समय एलेक्ज़ेण्डर का भाग्य तारा ऊँचा था—सो पोरस उसे न हरा सका और स्वयं हार गया। पर वीर गुणग्राही एलेक्ज़ेण्डर पोरस की वीरता पर इतना प्रसन्न हुआ कि उसका जीता हुआ राज्य उसने उसीको फिर दे दिया। इसके बाद इसी प्रकार उसने पञ्जाब के अन्य अधिपतियों को भी युद्ध में हराया। वह गर्रा नदी तक भारतवर्ष में घूमा फिरा और वहाँ से वह फिर लौट गया। यहीं पर उसने अपनी इस विजय यात्रा के स्मारक-स्वरूप बारह स्तम्भ खड़े किये थे। किन्तु भारतवर्ष में जितनी भूमि उसने अपने अधिकार में की थी, उसका पूर्ण अधिकार उसने पोरस को दे कर उसे बड़ा शक्तिशाली बना दिया। इण्डस के तट पर पहुँच कर उसने एक जहाज़ी बेड़ा तयार कराया और उसमें बैठ कर वह भारतवर्ष से रवाना हुआ। नियरकस में पहुँच कर उसने जहाज़ों को तो छोड़ दिया और स्वयं परशिया हो कर बेबिलन में पहुँचा। यहीं पर वह तेतीस वर्ष की अवस्था में ३२३ बी. सी. में मर गया। इसका जन्म बी. सी. ३५५ में पेल्ला में हुआ था। यद्यपि विजयलक्ष्मी एलेक्ज़ेण्डर की अङ्कशायिनी थी, तथापि उसमें अभिमान की मात्रा बढ़ने से वह दुर्व्यसन का दास हो गया था। वह बहुत ही बहुत शराब पीने लगा

था। एक दिन नशे की झोंक में उसने अपने एक मित्र के पेट में छुरी भोंक दी थी। उसने अत्याचार भी बड़े बड़े किये थे। तथापि उसने अपने क्षुद्र जीवन में अनेक ऐसे उत्तम भी कार्य किये थे जिससे उसके स्वभाव की मृदुता का परिचय मिलता है। उसे विद्या का भी व्यसन था और चित्रकारी आदि मनोहर कलाओं का भी वह बड़ा प्रेमी था। वह अपने साथ सदा बड़े बड़े विद्वान्, प्रसिद्ध शिल्पवेत्ता और कारीगरों को भी रखता था।

Ali Gohar अलीगोहर=दूसरे आलमगीर का नाम अलीगोहर था। (दूसरे आलमगीर को देखो)

Allard Colonel अलार्ड कर्नल=यह रणजीतसिंह के जनरलों में से एक थे।

Alla-ud-din II and III. दूसरा और तीसरा अलाउद्दीन=ये दोनों दक्खिन कुलबर्गा के रईस थे। द्वितीय ने १४३५ से १४५७ तक और तीसरे ने जो मार डाला गया था—सन् १५२० से १५२२ई० तक राज्य किया था। बहमनी ख़ान्दान के ये क्रमागत दसवें और सोलहवें बादशाह थे।

Alla-ud-din Ghori "The Burner of the world" अलाउद्दीन ग़ोरी (जहाँसोज़)=कन्धार से सात आठ मञ्ज़िल के फासले पर ग़ोर नाम का एक स्थान है। बहुत दिनों तक यह स्थान स्वतंत्र शासकों के अधीन था। किन्तु महमूद ने उसे भी अपने हस्तगत कर लिया था।

महमूद के उत्तराधिकारियों में से बहराम भी एक था। उसने अपनी लड़की को ग़ोर के कुतुबुद्दीन महमूद को ब्याह दिया था। किन्तु ससुर और दामाद में परस्पर ऐसा विषम कलह हुआ कि बहराम ने अपने दामाद को क़त्ल करवा डाला और कुतुबुद्दीन महमूद के दूसरे भाई सैफउद्दीन को अपमानपूर्वक मरवा डाला। पहले तो बहराम ने उस अभागे का मुँह काला करवा कर सारे शहर में चक्कर लगवाया। पीछे उसका सिर कटवा लिया।

बहराम से अपने दोनों भाइयों की हत्या का बदला लेने के लिये अलाउद्दीन ग़ोरी ने ग़ज़नी पर चढ़ाई की। सात दिन तक ग़ज़नी नगरी लूटी गयी और वहाँ के निवासियों पर अत्याचार किये गये। ग़ज़नी धूल में मिल गयी जो ग़ज़नी वासी अलाउद्दीन के सैनिकों की तलवार से बच गये—उन्हें पकड़ कर वह ग़ोर को ले गया और उन सबको ज़िबह करा कर उनके ख़ून का गारा बनवाया और उस गारे से महल चुनवाया।

Alla-ud din Hussain Gangu Bahmini. अलाउद्दीन हुसेन गंगू बहमनी=असल में इसका नाम था ज़फरख़ाँ और यह अफ़ग़ानी था। जिस समय दक्खिन के अमीर मोहम्मदख़ाँ के कोपभाजन बने, उस समय मोहम्मदख़ाँ के विरुद्ध बलवा हुआ और लोगों ने ज़फरख़ाँ को अपना मुखिया मान लिया। असल में ज़फरख़ाँ गंगू नामक एक ब्राह्मण का ग़ुलाम था। गंगू ने पहले ही से उससे कह दिया था कि तेरा भाग्योदय होगा और गंगू को स्वयं अपनी भविष्यद्वाणी पर विश्वास था। इसीसे वह ज़फर के साथ ग़ुलामोचित व्यवहार न कर उसके साथ अच्छी तरह पेश आता था।

सन् १३४७ ई० में ज़फर ने अपना नाम सुलतान अलाउद्दीन हुसेन गंगू बहमनी रखा और वह वहाँ का सुलतान हुआ ज़फर ने अपने नाम के पीछे गंगू बहमनी की उपाधि धारण कर के अपने मालिक के प्रति कृतज्ञता प्रकाश की थी।

यह कुलबर्गे के बहमनी ख़ान्दान का प्रथम सुलतान है।

Alla-ud-din Khilji अलाउद्दीन ख़िलजी=अलाउद्दीन ख़िलजी ही था जिसने सबसे पहले नर्बदा को पार कर दीन इस्लाम का झण्डा दक्खिन में फहराया। उस समय इसके साथ आठ हज़ार घुड़सवार सैनिक थे। इसने अचानक जा कर देवगढ़ के राजा रामदेव को जा घेरा। जब उसने अलाउद्दीन को बहुत सा द्रव्य दिया। तब उसे छोड़ा।

बादशाही पाने के लालच में पड़ इसने बड़े बड़े पाप कर डाले। यहाँ तक कि अपने बूढ़े चाचा को अपनी आँखों के सामने ज़िबह करा डाला।

तख़्त पर बैठते ही अलाउद्दीन का पहला काम यह हुआ कि उसने अपने दो चचेरे भाइयों को मरवा डाला।

जब उसने गुजरात को जीत कर अपनी अमलदारी में मिला लिया; और सैनिकों से लूट पाट का धन माँगा, तब सेना बिगड़ गयी। पर इनमें से बहुत से सैनिक और उन सैनिकों के परिवार के लोग जो भाग गये थे, पकड़ पकड़ कर ज़िबह करवा डाले। यहाँ तक निष्ठुरता की कि छोटे छोटे दूध पीने वाले बच्चों को उनकी माताओं के सिर से पटक पटक कर मरवा डाला।

अलाउद्दीन की अमलदारी में मुग़लों ने कई बार भारतवर्ष पर आक्रमण किया—किन्तु अन्त में उन्हें हार कर लौट जाना पड़ा। जो मुग़ल न भाग सकते और पकड़ जाते थे वे क़ैद कर लिये जाते थे। पीछे से या तो वे क़ैदी हाथियों से कुचलवा कर या जल्लाद की तलवार से मरवा डाले जाते थे। एक बार ९००० मुग़ल इसी प्रकार मारे गये थे। यहाँ तक कि उनके बाल बच्चे और स्त्रियाँ तक नहीं छोड़ी गयीं।

रणथम्भौर का दुर्ग एक वर्ष तक अलाउद्दीन से लड़ा, अन्त में उसका पतन हुआ। वहाँ का राजा हम्मीर बड़ी वीरता के साथ लड़ा। उसकी मृत्यु के बाद उसकी सारी रानियाँ अग्नि में जल कर भस्म हो गयीं। दुर्ग में क्या स्त्री, क्या लड़के और क्या पुरुष—जो कोई मिले वे मार डाले गये। कहा जाता है कि मोहम्मद शाह नामक एक विद्रोही हमीर की शरण में आया। उसे अलाउद्दीन ने उससे माँगा इस पर हमीर ने कहला भेजा था कि सूर्य भले ही दक्षिण में उदय हों, पर मैं शरण आये को कभी उन्हें नहीं दे सकता दुर्ग में प्रवेश करने पर अलाउद्दीन को मीर मोहम्मद शाह आहत दशा में भूमि पर पड़ा हुआ दीख पड़ा। उस समय अलाउद्दीन ने इससे पूछा—" अच्छा ! यदि मैं तेरी उचित चिकित्सा करा कर आरोग्य करवाऊँ तो तू क्या करे ? " इसके उत्तर में मीर मोहम्मद ने कहा—" मैं तुझे मार डालूँ और हमीर के पुत्र को राजसिंहासन पर बिठाऊँ। " यह उत्तर सुन अलाउद्दीन मारे क्रोध के लाल ताता हो गया और उसी क्षण उसे हाथी के पैर से कुचलवा कर मरवा डाला।

इस घटना के तीन वर्ष बाद सन् १३०३ ई० में मेवाड़ के प्रसिद्ध दुर्ग चित्तौरगढ़ का पतन हुआ। और राजा रतनसेन मारा गया। उसकी अद्वितीया रूप लावण्यवती रानी पद्मिनी ने अग्नि में जल कर अपना शरीर नष्ट किया। इसीके रूप की महिमा सुन अलाउद्दीन ने चित्तौर पर चढ़ाई की थी।

इसने दक्षिण में सेतुबन्ध रामेश्वर तक देश को विध्वंस किया और वहाँ एक मसजिद खड़ी की।

सन् १३११ ई० में अलाउद्दीन ने मुग़लों को अपनी सेना से बरखास्त किया और जब उनमें उसने अशान्ति के लक्षण देखे तब उन सबको जो संख्या में १५ हज़ार थे—मरवा डाला।—फिर उनके जोड़ू बच्चों को ग़ुलाम बना कर बेच डाला।

अलाउद्दीन पढ़ा लिखा कुछ भी न था। जब वह बादशाह हुआ तब उसने कुछ कुछ पढ़ना सीख लिया था। तिस पर भी वह अभिमानी इतना था कि अपने समान किसीको भी बुद्धिमान् नहीं समझता था। उसे उत्तर देने का साहस किसीको नहीं होता था। कभी वह कोई नया दीन निकालता और कभी अपनी अमलदारी में नये नये मुल्क जोड़ने को उत्सुक होता था। उसकी अमलदारी में बड़े बड़े अमीर उमरावों की भी यह मजाल न थी कि बिना उसकी परवानगी वे अपने बेटे बेटियों की शादी कर सकें या अपने कुछ दोस्त एहबाबों को अपने घर पर बुला कर उन्हें खिला पिला सकें। निर्दिष्ट संख्या से अधिक न तो कोई गोरू रख सकता था और न कोई निर्दिष्ट माप से अधिक भूमि रख पाता था।

उसे जब फ़ौजी ख़र्च कम करना होता; तब वह बाज़ार की दर मुक़र्रर करके सैनिकों को प्रसन्न कर दिया करता था। इसका नतीजा यह होता था कि जो वस्तु पहले १) रु० में आती वह ॥) में मिलती थी। फ़रिश्ता ने देहली के उस

समय के बाज़ार का निर्ख़ यह बतलाया है :—

गेहूँ एक रुपये के २ मन
जौ „ „ पौने चार मन
चीनी „ „ साढ़े सात सेर
घी „ „ १० सेर
मामूली कपड़ा एक रुपये का ४० गज़
गुलाम ५) से २००) रु० तक ।

उसके पास चार लाख पचहत्तर हज़ार घुड़सवार सैनिक थे । एक बार उसने मुग़लों का सामना तीन लाख घुड़सवार सैनिकों और दो हज़ार सात सौ हाथियों के साथ किया था। यह अपने को दूसरा अलक्ज़ेण्डर (सिकन्दर) कहा ही नहीं करता था किन्तु अपने सिक्के पर भी यह अलकाब खुदवा लिया था ।

उसने सारे वसीक़े ज़ब्त कर लिये थे । कहा जाता है उसकी रय्यत रोटी के लिये मोहताज हो गयी थी—पर कोई चूँ तक नहीं करता था। उसने इतने जासूस रख छोड़े थे कि उनके भय के मारे लोग आपस में बात चीत भी खुल कर नहीं कर पाते थे।

अलाउद्दीन ने बीस वर्ष से अधिक राज्य किया। उसीके सामने राजा रामदेव के दामाद हरपाल ने मुसलमानों को दक्खिन से निकाल बाहर किया और गुजरात में अलाउद्दीन के विरुद्ध विप्लव हुआ।

Alla-ud-din (Seid) सय्यद अलाउद्दीन= सन् १४१४ से १४५० तक देहली का अधिकार चार सैयदों के हस्तगत रहा । ये चारों अपने को देहली के तख़्त का प्रतिनिधि बतलाते थे। उनमें से एक सय्यद अलाउद्दीन भी था, जिसने सन् १४४४–१४५० ई० तक हुकूमत की थी।

Ali Mardan Khan अलीमरदानख़ाँ= यह कन्धार का गवर्नर था और परशिया के शाह का प्रतिनिधि था । इसने अपने स्वामी के अत्याचारों से विरुद्ध हो कन्धार का प्रान्त शाहजहाँ को दे दिया और स्वयं शाहजहाँ का सैनिक हो गया । यह शिल्पविद्या में भी बड़ा चतुर था और उसकी चातुरी का नमूना देहली की नहर है जिसकी मरम्मत सन् १८८२ ई० में लार्ड हार्डिंग्ज़ ने करवायी थी। यह नहर उसी के नाम से प्रसिद्ध भी है ।

Ali Mohammed. अलीमोहम्मद=यह रुहेलखण्ड का अधीश्वर हो गया था । यह दाऊदख़ाँ अफगानी का दत्तक पुत्र था। यह उसे वांकोली ग्राम में मिला था ।

Ali Vardi Khan. अलीवर्दीख़ाँ=बङ्गाल विहार और उड़ीसा का सूबेदार । इसमें और राघोजी भौंसले में बहुत दिनों तक युद्ध हुआ, अन्त में उड़ीसा राघोजी के हाथ में पड़ा और साथ ही अलीवर्दी का एक सैनिक जनरल हबीबख़ाँ भी मरहट्टों के हाथ बन्दी हुआ। भास्कर पण्डित ने इसे पकड़ा था और उन्हींके समझाने बुझाने पर हबीब ख़ाँ ने मरहट्टों की नौकरी की, फिर इसने लगातार कई बार बङ्गाल पर मरहट्टों की ओर से आक्रमण किया। फल यह हुआ कि मरहट्टों के आक्रमण से बचने के लिये मरहट्टा खाई नामक एक खाई खोदी गयी। अलीवर्दी ने मरहट्टों को चौथ देना स्वीकार किया । अलीवर्दीख़ाँ एक बड़ा बुद्धिमान् और समझदार शासक था । यह न्यायपूर्वक राज्य करता था। इसीसे इसने अपनी अधीनस्थ प्रजा को अपने हाथ में रखा था ।

Almeyda Francisco अलमीडिया फ्रांसिसको=यह पोर्चगीज़ों का प्रथम भारतीय वाइसराय था और सन् १५०१ ई० में यहाँ आया था। इसे मिश्र के सुलतान का सामना करना पड़ा था। इसी युद्ध में इसका बेटा भी मारा गया था। यद्यपि शत्रु का समुद्री बल बहुत था तथापि यह युद्ध करता रहा । यहाँ तक कि जब इसकी जाँघ में गोली लगी, तब इसने आज्ञा दी कि मुझे मस्तूल पर रस्सी से बाँध दो । यह वहाँ मस्तूल पर बैठ कर अपने सैनिकों को उत्साहित करता रहा । अन्त में छाती में एक गोली के लगने से वह मारा गया ।

इसीने सन् १५०७ ई० में सीलोन का पता लगाया था ।

Almeyda Lorenzo. अलमीडिया लोरेंज़ो=यह अलमीडिया फ्रांसिसको का वीर पुत्र था जो मुसलमानों के साथ युद्ध करता हुआ मारा गया था ।

Alompora. अलोमपोरा=बरमा के राजघराने

के मूल पुरुष का नाम ।

Altamish. अलतमश=कुतुब का एक गुलाम, जिसने उसे अपनी कन्या विवाह में दी थी। इसने सन् १२११ से १२३६ ई० तक राज्य किया था। अलतमश का अर्थ है साठ । यह साठ तुमाम (Tomams एक प्रकार का मुद्रा) में ख़रीदा गया था। इससे इसका नाम अलतमश पड़ा।

Alptegin. अलपतगीन=यह अबदुल मलिक का गुलाम था और पीछे से खुरासान का शासक बना। जब इसके स्वामी की मृत्यु हुई और रियासत में गड़बड़ मची, तब यह भाग कर ग़ज़नी में चला आया और यहाँ स्वतंत्र हो गया।

Altunia. अलतूनिया=यह एक तुर्की सरदार था, जिसने रज़िया बेगम से युद्ध कर उसे हराया और क़ैद किया था । अन्त में अलतूनिया के साथ रज़िया ने शादी कर ली थी, पर रज़िया की यह करतूत उसकी अमलदारी में बसने वाले अमीर उमरावों को अच्छी न लगी, इससे उन लोगों ने मिल कर उपद्रव किया, जिसका फल यह हुआ कि रज़िया मय अपने शौहर के मारी गई।

Ambar Rai. अम्बरराय=यह उड़ीसा के शासक थे और इसे द्वितीय मोहम्मद ने हराया था और उड़ीसा को कानकन में जोड़ दिया था। यह सन् १५२६ ई० की घटना है।

Amherst, Earl एमरेहस्ट=जब मारक्विस आफ़ हेसटिंग्ज़ यहाँ से गये; तब उनकी जगह मिस्टर कैनिङ्ग नियुक्त किये गये, किन्तु जब विलायत ही में उन्हें फारेन सेक्रेटरी (परराष्ट्र-सचिव) का पद मिल गया; तब वे यहाँ न आये और उनकी जगह लार्ड एमरेहस्ट भेजे गये। क्योंकि चीन में इङ्गलेण्ड के राजदूत बन कर ये अपनी योग्यता का परिचय दे चुके थे । इन्होंने १ अगस्त सन् १८२३ ई० को सर्व प्रथम कलकत्ते में पदार्पण किया।

इन्होंने हैदराबाद के निज़ाम के ऋण की एक बड़ी रक़म पामरएण्ड कम्पनी को चुका कर, निज़ाम को बड़ी विपत्ति से बचाया। साथ ही निज़ाम को बरजा कि वे फिर कभी इस कम्पनी से लेन देन का व्यवहार न करें। यह कम्पनी तो बैठ गयी, पर हैदराबाद की रियासत बच गयी।

लार्ड एमरेहस्ट के समय में ही बर्मा की प्रथम लड़ाई छिड़ी। अन्त में बड़े परिश्रम से कम्पनी की जीत हुई। लार्ड एमरेहस्ट सन् १८२८ ई० के मार्च मास में पेंशन लेकर घर चले गये।

Amir Khusro अमीर खुसरो=गुलाम ख़ान्दान के बलबन बादशाह का शाहज़ादा मोहम्मद, साहित्यानुरागी था। उसके पास अच्छे अच्छे विद्वान् रहते थे । उनमें अमीर खुसरो भी एक था। इसकी बनायी मुकरी अब तक बहुत प्रसिद्ध है।

Amrit Rao अमृतराव=रघूबा का यह दत्तक पुत्र था।

Anang Pal अनङ्गपाल=यह लाहौर के राजा जयपाल का पुत्र था। इसने राजपूतों की एक बड़ी सेना ले कर महमूद ग़ज़नवी की चौथी चढ़ाई को रोका था। महमूद जीता तो, पर उसे हानि भी बहुत ही अधिक सहनी पड़ी। यह युद्ध सन् १००८ ई० में हुआ था।

Anandi Bai आनन्दी बाई=यह रघूबा की पत्नी थी। यह बड़ी दुष्टा थी–इसने षड्यंत्र रच कर अपने भतीजे नारायणराव की हत्या का कलङ्क अपने माथे पर लिया था। जिस समय हत्यारे ने नारायणराव के सोने के कमरे में घुस कर उसका वध करना चाहा, उस समय वह अपने चाचा रघूबा के पास दौड़ा गया और प्राणरक्षा के लिये बहुत गिड़गिड़ाया, पर फल कुछ भी न हुआ। वह बेचारा मारा गया।

Anand Rao Puar. आनन्दराव पुआर=ये सन् १७४१ ई० में धार के राजा थे।

Anderson, Lieutenant. लफटंएट अण्डरसन=लाहौर जाते समय ये सिक्खों द्वारा मारे गये। मरते समय अण्डरसन ने कहा था—

"You can kill me if you like, but others will avenge my death"

अर्थात् मुझे तुम मार भले ही डालो, पर दूसरे

तुमसे इसका बदला लिये विना नहीं रहेंगे।

Anwar-ud-din. अनवारउद्दीन=करनाटक का नवाब था। इससे और डूपले में पहले बड़ा मेल था, पर पीछे से इन दोनों में परस्पर झगड़ा हो गया था।

Appa Saheb. अप्पा साहब=असल में परसजी नागपुर के अधिपति थे, किन्तु वे मूर्ख थे, अतः सारा काम काज उसका चाचा अप्पा साहब ही किया करता था और असल में नागपुर राज्य का अधिपति वही था। यह भीतर भीतर पेशवा में मिला था और दिखाने को अङ्गरेज़ों के साथ हेल मेल रखता था।

Aram. अरम=गुलाम ख़ान्दान के पहले बादशाह कुतुबुद्दीन एलक का अरम ज्येष्ठ पुत्र था। उसने केवल एक वर्ष (सन् १२१० ई० में) दिल्ली के तख़्त पर बादशाही कर पायी। अलतमश ने, जो कुतुब का गुलाम था, उसे तख़्त से उतार कर स्वयं बादशाही की।

Assad Khan. असदख़ाँ=यह औरङ्गज़ेब के प्रधान सेनानायकों में से एक था।

Asoka (Piyadasi) अशोक=चन्द्रगुप्त के बाद तीसरा बौद्ध धर्म का प्रतिपालक अशोक था, जिसने अपनी उपाधि "पियादसी" अर्थात् "देवानां प्रिय" रखी थी। इसके समय के पाली भाषा खुदे हुए स्तूप गुजरात, कटक और प्रयाग में हैं। बी. सी. २७२—२३१ तक।

Auckland, Lord. आकलेण्ड=भारतवर्ष के दसवें गवर्नर जनरल जो यहाँ सन् १८३६ से १८४२ ई० तक रहे। इनके समय की भारतीय मुख्य घटनायें ये हैं:—

(१) अवध की गद्दी का झगड़ा।

(२) सतारा के राजा का दमन (१८३९)

(३) अफग़ानिस्तानी झगड़ा (१८३९–४२ ई०)

(४) करनूल पर अधिकार (१८४१)

(५) प्रथम चीनी युद्ध (१८४०)

इनको अर्ल की उच्च पदवी मिली थी। ये भारतवर्ष से १२ वीं मार्च सन् १८४२ ई० को प्रस्थानित हुए थे।

Auchmuty, Sir, L. अचम्यूटी=इन्होंने अपरेल सन् १८१२ ई० में जावा आदि द्वीपों को अपने हस्तगत किया।

Aurungzeb. औरङ्गज़ेब=देखो आलमगीर प्रथम।

Avitabile, General अवीटाई जनरल=ये रणजीतसिंह के जनरलों में से एक थे।

Azam, Prince अज़म=औरङ्गज़ेब का चौथा पुत्र। इसमें और इसके भाई मोअज़्ज़म में तख़्त के लिये परस्पर युद्ध हुआ और यह जून सन् १७०७ ई० में पुत्रों सहित मारा गया।

Azim-ullah Khan. अज़ीम-उल्ला=यह विठूर के धौंधू पन्थ का दहिना हाथ था। यह अपने स्वामी की ओर से वकील हो कर विलायत गया था। वहाँ इसका मान भी हुआ, पर यह उसके योग्य न था, इससे उसका दिमाग़ आसमान पर चढ़ गया। जब वह यहाँ लौट कर आया तब उसने अपने मालिक को अङ्गरेज़ों के विरुद्ध भड़काया और देश भर में घूम फिर कर षड्यंत्र रचा। इसी की प्रेरणा से अङ्गरेज़ों पर कानपुर में बड़ा अत्याचार हुआ था। यह बड़ा दुष्ट था।

Azim-u-Shan अज़ीमुश्शान=यह प्रथम शाहआलम का दूसरा पुत्र था।

Babar.

बाबर।

[ज़हीर-उद्दीन मोहम्मद बाबर]

कहा जा चुका है कि उमरशेख़ मिरज़ा तैमूर-लङ्ग के बाद पाँचवीं पीढ़ी में हुआ था और वह एक छोटी सी रियासत का जिसका नाम फरगना था—अधीश्वर था। फरगना रियासत की भूमि चारों ओर से ऊँचे ऊँचे पहाड़ों से घिरी हुई थी और इन पहाड़ों की चोटियाँ क्या गरमी क्या सरदी सभी ऋतुओं में बर्फ़ से ढकी रहती थीं। यहाँ की भूमि भी उपजाऊ थी और सदा हरी भरी और फल फूल युक्त बनी रहती थी। ऊँचे ऊँचे पहाड़ों से घिरी रहने के कारण इस रियासत को शत्रुओं का भी भय नहीं था।

उमर के राजत्व काल में मुग़ल समाज की ज्ञानसम्बन्धिनी उन्नति धीरे धीरे हो रही थी। यद्यपि उस समय की शिक्षा दीक्षा कुसंस्कार युक्त थी, तथापि उससे उनकी बुद्धि सुधर चली थी। विद्वत्समाज में कुरान, विज्ञान, व्याकरण, न्याय और काव्य की चर्चा हुआ करती थी। सुशिक्षितों को ज्योतिष, इतिहास और चिकित्सा विद्या का अनुशीलन करने से असीम आनन्द प्राप्त होता था। यद्यपि उस समय के मुग़ल समाज में सब प्रकार के विद्यासम्बन्धी विषयों को लोग पढ़ते पढ़ाते थे, तथापि साधारणरीत्या काव्य के पढ़ने पढ़ाने की चाल विशेषरूप से चल पड़ी थी। सादी की काव्य का बहुत प्रचार था। यहाँ तक कि सुशिक्षितों की साधारण बातचीत में भी उसके प्रमाण लोकोक्तियों की तरह कहे जाते थे। इतना ही नहीं बल्कि सरकारी काग़ज़ातों में भी उसके वाक्य उद्धृत किये जाते थे।

अनेक श्रेणियों के साधुओं का देश भर में आदर था। वे साधुगण भी बड़े ईश्वरभक्त और अलौकिक क्षमता सम्पन्न होते थे-इसीसे लोग उनको भक्ति की दृष्टि से देखते थे और उनसे डरते भी थे। इन साधुओं द्वारा समाज की भलाई भी होती थी। इनके भक्तों से सारा देश भरा था। इसीसे उस देश में उन साधुओं का चलता भी बहुत था। वे जब देखते कि कोई बलवान् किसी निर्बल पर अत्याचार कर रहा है, तब वे तुरन्त बलवान् के अन्याय युक्त कार्य में बाधा डालते और ऐसा करने से उसे रोक देते थे। लोग इस साधु सम्प्रदाय को अलौकिक क्षमता सम्पन्न समझते थे। इसका फल यह होता था कि यदि कोई अत्याचारी राजा अथवा सेनापति अशान्ति फैलाता; तो वे उस उत्पातकारी की सहज ही में उचित चिकित्सा कर दिया करते थे। यहाँ तक कि कभी कभी उनकी उङ्गली के उठाते ही अत्याचार का स्रोत बन्द हो जाता था। उस समय केवल उच्चश्रेणी के लोगों ही को विद्या पढ़ने की सुविधा थी। साधारण जनों की शिक्षा का कोई प्रबन्ध न था। इसीसे अशिक्षितों की संख्या भी अधिक थी। इस समय की शासन प्रणाली भी मनमानी थी—और राजदर्बारों में दुष्ट प्रकृति लालची लोगों की भरमार थी। बराबर मार काट लूट पाट और लड़ाई झगड़ों के मारे वाणिज्य और शिल्प की उन्नति ही नहीं हो पाती थी।

फरगन राज्य के चारों ओर बहुत से तैमूर वंशियों ने छोटे छोटे राज्य स्थापित कर लिये थे। इन्हीं लोगों की आपस की लड़ाई के मारे देश चौपट हुआ जाता था। सन् १४६४ ई० में उमरशेख़ के बड़े भाई सुल्तान अहमद मिरज़ा और उसके साले मोहम्मद ख़ाँ ने, मिल कर फरगन राज्य को धूलि में मिलाने का सङ्कल्प किया था और बड़ी बड़ी सेना ले कर दोनों ने दो ओर से उस पर चढ़ाई भी की थी।

इतने ही में उमरशेख़ चल बसे और उनका ग्यारह वर्ष का पुत्र बाबर ऐसे दुस्समय में गद्दी

पर बैठा। इस बालक को बाल्यावस्था ही से उत्तम शिक्षा देने का प्रबन्ध किया गया था। उसकी प्रवृत्ति भी विद्योपार्जन की ओर थी, किन्तु बेचारा क्या करता–जब से उसे कुछ ज्ञान हुआ, तभी से उसे हाथ में तलवार ले कर इधर उधर घूमना फिरना पड़ा। उसे विद्योपार्जन का अवसर ही न मिला। यदि बाल्यावस्था में उसे अच्छी शिक्षा न मिली होती, तो बड़े होने पर वह अपने पाण्डित्य का परिचय क्यों कर दे सकता? तब हाँ, यह बात माननी ही पड़ेगी कि उसकी शिक्षा का कारण अन्तःपुरवासिनी राजमहिलाएँ थीं। यद्यपि धन सम्पत्ति होने के कारण मुग़ल और उनकी स्त्रियों में विलासिता दिनों दिन बढ़ रही थी, तथापि स्त्रियों ने कुलीन नारियों के सद्गुणों को विसर्जन नहीं किया था। वे सरलहृदया वीर रमणी थीं।

बाबर की सहायस्वरूपा राजमहिलाओं में उसकी मातामही इसानदौलत बेगम सर्वश्रेष्ठा थी। बाबर ने स्वरचित अपनी जीवनी में एक जगह लिखा है कि इस रमणी की बहुदर्शिता और अभिज्ञता देख कर लोग विस्मित होते थे और उसके प्रस्तावानुसार ही अनेक कार्य्यों का सूत्रपात हुआ था। एक बार वह अपने पति के सहित विजयी शत्रु के हाथ में पड़ गयी थी। उस समय उसने जो काम किया था वह वीर रमणी ही के योग्य था। यद्यपि उस समय उसका स्वामी जीवित था–तथापि विजयी राजा ने उसे एक अपने वज़ीर को दे डाला। उस समय उसने चुपचाप इस अपमान को सह लिया। जब मंत्री उसके कमरे में गया, तब उसने उस कमरे के द्वार को बन्द कर के मंत्री को मार डाला और नौकरों से उसकी लाश को सड़क पर फिकवा दिया। जब राजदूत ने इस हत्या का कारण बेगम से पूछा; तब उसने बड़े दर्प के साथ कहा—

बेगम–मैं मूनिसख़ाँ की बेगम हूँ–शेख़ जमाल ने शास्त्रविरुद्ध पथ अवलम्बन कर के मुझे परपुरुष को सौंप दिया–इसीसे मैंने उसको मार डाला। शेख़ की इच्छा हो तो वे मुझे मरवा डालें।

जमाल बेगम के सतीत्व पर मुग्ध हो गया और उसने बड़े आदर के साथ उसे मूनिसख़ाँ के पास भेज दिया। तब वह एक वर्ष तक अपने पति के साथ कारागार में रही। इसी वीर रमणी ने बाबर को सिखाया पढ़ाया और अपनी देख रेख में रख कर इतना बड़ा किया था।

बाबर के सिंहासन पर बैठते ही शत्रुओं ने दो ओर से उसके राज्य पर आक्रमण किया। सुलतान अहमद मिरज़ा और मोहम्मदख़ाँ के साथ बाबर का निकटस्थ सम्बन्ध था। बाबर ने शत्रु की गति को रोकना अपनी सामर्थ्य के बाहर जान उसने उनके पास सन्धि के लिये एक दूत भेजा और कहला भेजा कि यह मेरा पैतृक राज्य होने पर भी आप समझिये कि मैं आपका प्रतिनिधि बन कर इस राज्य का शासन करता हूँ। किन्तु उन दोनों ने उसकी इस प्रार्थना पर कुछ भी ध्यान न दिया और वे दोनों धीरे २ आगे बढ़ने लगे बाबर के सौभाग्य वश अहमद मिरज़ा के मार्ग में एक वेगवती नदी पड़ी। उस नदी पर एक छोटा सा पुल भी था। उस पर चढ़ कर ज्यों ही अहमद की सेना पार उतरने लगी त्यों ही बहुत से लोग नदी में गिर कर बह गये। इसके पहले भी एक बार ऐसी ही घटना हो चुकी थी। उसका स्मरण कर और इसे अपशकुन समझ बची हुई अहमद की सेना डर गयी। वह यहाँ तक डरी कि अनेक प्रकार के प्रलोभन दिखाने पर भी सैनिकों ने आगे एक पग भी न रखा। इतने में छावनी में मरी फैल गयी आराम-प्रिय अहमद मिरज़ा में इन कठिनाइयों का सामना करने की क्षमता नहीं थी। उसने अभी तक जितने नगर जीते थे, उन्हें ही अपने अधिकार में रख, बाबर के साथ सन्धि कर ली और अपनी राजधानी को वह लौट गया। इस प्रकार एक ओर के शत्रु का विपदन्त टूट गया।

दूसरी ओर से मोहम्मदख़ाँ ने कासान नगर को जीत कर, फरगन राज्य की राजधानी आरवार्स पर घेरा डाला। नगर के भीतर की

सेना, बड़ी वीरता के साथ नगर की रक्षा करने लगी। जब बहुत दिन तक घेरा डाले रहने पर भी नगर हाथ में न आया, तब हार कर मोहम्मदख़ाँ भी वहाँ से लौट गया।

इस प्रकार बाबर की विपत्ति दूर हुई। बाबर का राज्य अब चालीस कोस के भीतर रह गया था। क्योंकि राज्य की बहुत सी भूमि शत्रुओं के हाथ में चली गयी थी। अब उन बलवान् शत्रुओं से उस भूमि को लौटा लेने का, युद्ध को छोड़, अन्य कोई भी उपाय न था। हाथ से निकले हुए राज्य को फिर से अपने अधिकार में कर लेने के लिये, बाबर को कई वर्षों तक बराबर शत्रुओं के साथ लड़ने में फँसा रहना पड़ा। बाबर ने अपने मन में यह सङ्कल्प कर लिया था कि यदि शरीर में प्राण रहेंगे; तो एक बार में तैमूर की राजधानी समरक़न्द में अपने पूर्वपुरुषों की गद्दी पर अवश्य बैठूँगा।

इस सङ्कल्पानुसार बाबर ने पन्द्रह वर्ष की अवस्था में समरक़न्द को अपने हाथ में किया। बाबर साहसी वीर तो था ही किन्तु उसके पास उसकी आवश्यकतानुसार लड़ाई का सामान नहीं था। इसीसे वह एक साथ समरक़न्द और फरगन राज्यों की रक्षा न कर सका। समरक़न्द को हाथ में करने का समाचार सुन बाबर के एक सेनापति ने जिसका नाम तबल था, फरगन पर अपना अधिकार जमा लिया। जब इसका समाचार बाबर को मिला; तब उसने तुरन्त फरकन्द की यात्रा की। किन्तु बाबर तबल से पार न पा सका और उसे अपने उस राज्य से हाथ धोना पड़ा। क्योंकि इधर ज्यों ही बाबर समरक़न्द से रवाना हुआ, त्यों ही समरक़न्द के निवासियों ने बाबर के शत्रु के हाथ में वह नगर सौंप दिया। बाबर के हाथ से इस प्रकार दोनों ही राज्य निकल गये। ऐसी दशा में उसके मन की जो अवस्था रही होगी उसका अनुमान पाठक स्वयं कर लें। उसने अपनी लिखित जीवनी में लिखा है—"इस समय मेरी बड़ी दुर्दशा हुई और मैं बहुत रोया।" अन्त में उसने फरगन राज्य के पास ही एक नया राज्य स्थापित किया और समरक़न्द पर हाथ पसारा।

उस समय समरक़न्द उजबक जाति के हाथ में चला गया था। प्रजा उनसे प्रसन्न न थी। यह जान कर बाबर ने अनुमान किया, कि किसी कौशल से एक बार यदि मैं समरक़न्द में पहुँच जाऊँ तो समरक़न्द के बहुत से निवासी मेरे झण्डे के नीचे आ जायँगे। अपने इस अनुमान पर विश्वास कर बाबर एक दिन आधी रात के समय अस्सी सैनिकों को साथ लिये हुए, नगर कोट की दीवाल फाँद कर समरक़न्द में घुस गया। उस समय नगर में सन्नाटा था। कुछ दूकानदारों को छोड़ और सब लोग सो रहे थे। उन लोगों ने यह घटना देख परमात्मा को अनेक धन्यवाद दिये बाबर की बुद्धिमानी से अढ़ाई सौ सैनिकों की सहायता से समरक़न्द पर उसकी विजय पताका फहराने लगी। किन्तु थोड़े ही दिनों बाद उसके भाग्य ने फिर पलटा खाया। उजबकों के राजा सैबानी ने सेना एकत्र कर समरक़न्द पर फिर चढ़ाई की और बाबर को वहाँ से निकाल बाहर किया। साथ ही पैतृक राज्य फरगन भी शत्रु के हाथ में चला गया।

तब बाबर पर्वत पर बसने वाले गड़रियों के साथ जा कर रहने लगा। रहने ही नहीं लगा, किन्तु नंगे पैर पहाड़ों की पथरीली पगडंडियों पर घूमता फिरता भेड़ बकरी चराने लगा। एक दिन एक बूढ़ी गड़रिन ने उसे एक कहानी सुनायी, जिससे वह बहुत प्रसन्न हुआ। उस बुढ़िया को तैमूरलङ्ग की भारत-यात्रा की अनेक कहानियाँ याद थीं और वह बाबर का मन बहलाने के लिये उसे वे कहानियाँ सुनाया करती थी। जान पड़ता है इन्हीं कहानियों को सुनते सुनते बाबर के हृदय में भारतविजय की लालसा उत्पन्न हुई थी।

जो हो, इतना कष्ट सह कर भी उसका उत्साह भङ्ग न हुआ। उसने अपने मामा की सहायता से फरगन राज्य को पुनः अपनी मुट्ठी में किया किन्तु उजबकों का प्रधान सैबानी, बाबर की उन्नति न देख सका और

बहुत सा नर रक्त बहा कर, उसने फरगन को बाबर से छीन लिया । बाबर को जब कोई भी उपाय न सूझा; तब वह मुग़लस्तान को भाग गया ।

एक वर्ष से अधिक बाबर वहाँ रहा । फिर वह वहाँ से चल दिया और बलख के पास तरमेज में पहुँचा । वहाँ के अधिपति का नाम बारबर था और वह उजबकों की बढ़ती देख मन ही मन कुढ़ा करता था । वह चाहता था कि उजबकों की बढ़ती न हो । इस लिये उसने उजबकों के नाश के लिये बाबर से मित्रता की और उसका धूमधाम से सम्मान किया । तब बाबर ने उस से कहाः—

बाबर-मेरा भाग्य गेंद की तरह लुढ़कता है, कभी ऊपर जाता हूँ, कभी गढ़े में नीचे गिर पड़ता हूँ । अभी तक मैंने मन माना काम किया, किन्तु एक बार भी मेरा किया काम स्थायी न हो सका । इस लिये यदि आप मेरे सलाहकार हों, तो बहुत अच्छा हो ।

बारबर-सैबानी ने इस समय तुम्हारा सारा राज्य छीन लिया है । और अन्य राज्यों पर भी उसने अपना अधिकार जमा लिया है । इसीसे वह बड़ा बलवान् हो गया है इस लिये तुम कहीं अन्यत्र अपने भाग्य की परीक्षा करो, सम्भव है तुम वहाँ कृतकार्य्य हो । इस समय काबुल में अराजकता फैली हुई है । वहाँ तुम्हारी सब कामनाएँ पूरी हो सकती हैं ।

उस समय उस देश में उजबकों की सब जगह तूती बोल रही थी । तैमूर वंश के लोग निकम्मे और तेजहीन हो गये थे । मरूजहार भी उन लोगों के हाथ से निकल गया था । उजबक लोग हिसार और कुन्देज़ पर चढ़ाई करने की तैयारियाँ कर रहे थे । इस समय उत्तर फ़ारस अर्थात् खुरासान मात्र तैमूर के वंशधरों के हाथ में बच रहा था । किन्तु वहाँ के सुलतान हुसेन ने बाबर की प्रार्थना पर कभी भी ध्यान नहीं दिया । सन् १५०१ ई० में काबुल के शासक और बाबर के चचा उलगूबेग की मृत्यु हुई । उसका पुत्र जिसका नाम अब्दुर्रज़ाक़ था । अभी बहुत छोटा था । वही अपने पिता की गद्दी पर बैठा । एक बालक को गद्दी पर बैठा देख कर काबुली बिगड़ खड़े हुए और मुक़ीमबेग नामक एक मुग़ल बलपूर्वक काबुल का अधिपति बन गया । काबुल का यह सारा हाल सुन बाबर ने बारबर के परामर्श के अनुसार काबुल जा कर अपने भाग्य की परीक्षा करना, निश्चित किया ।

सन् १५०४ ई० के जून मास में बाबर काबुल की ओर रवाना हुआ । काबुल की यात्रा में बाबर को बड़ी बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा । उसने उन कठिनाइयों का उल्लेख कर के स्वयं लिखा हैः—"उस समय मैंने इक्कीसवें वर्ष में पैर रखा था । अभी तक मेरे अनुचरों ने मेरा साथ नहीं छोड़ा था । मेरे साथियों की संख्या दो सौ के ऊपर थी ।" बाबर चलते चलते कुन्देज़ के अधिपति खुसरूखाँ की राजधानी में पहुँचा । खुसरू ने बाबर का अच्छा धागत स्वागत किया । किन्तु बड़े दुःख की बात है कि बाबर ने इस स्वागत के बदले में खुसरू को बदनाम कर दिया । वहाँ से उसने सात हज़ार सैनिकों को अपने साथ लिया और वह काबुल के समीप पहुँचा । उसकी गति रोकने के लिये मुक़ीमबेग ससैन्य आगे बढ़ा । किन्तु थोड़े ही दिनों बाद बाबर के कथनानुसार मुक़ीमबेग, धन रत्न ले कर अपने भाई शाहबेग के पास कन्धार चला गया ।

सन् १५०६ ई० में उजबकों के अभिनेता सैबानी ने एक बड़ी सेना ले कर खुरासान पर चढ़ाई करने की तैयारियाँ कीं । खुरासान के तैमूरलङ्ग के वंशधर, बूढ़े सुलतानहुसेन मिरज़ा ने, युवकों जैसे उत्साह के साथ, शत्रु का सामना करने के लिये कमर कसी और तैमूरवंश के शत्रु के विषदन्त तोड़ने के लिये तैमूरवंश मात्र को बुलाया ।

तदनुसार सन् १५०६ ई० के मई मास में बाबर खुरासान गया । खुरासान में बाबर पहुँच भी न पाया था कि इतने में हुसेन मिरज़ा मर गया और उसके दो बेटे, मिल कर, मुरगाब नदी के तट पर बसी हुई राजधानी में गद्दी पर बैठ गये । इतिहास में यह भी एक अपूर्व घटना है । राजगद्दी पर सदा एक ही अधिपति बैठा है ।

किन्तु इन दो का एक साथ गद्दी पर बैठना अपूर्व घटना के साथ ही साथ बड़ी भूल का काम है । इसका परिणाम कभी शुभ नहीं हो सकता।

बाबर मुरगाव नदी-तटवर्त्ती राजधानी में पहुँचा, इन दोनों ने उससे कहा तुम हिरात चले जाओ । उस समय हिरात नगर समस्त पश्चिमी देशों में शिक्षा और विलासिता का मुख्य स्थान था। हिरात की ऊँची ऊँची सुन्दर बेलबूटों युक्त अटारियाँ, मसजिदें जगत् भर में प्रसिद्ध थीं। वहाँ अनेक मकतब और बड़े बड़े भारी विद्वान् रहा करते थे। ख़ान हमीर ने लिखा है-" हिरात नगर चिराग़ है-यह दूसरे शहरों को उजियाला अता करता है । हिरात पृथिवी की आन है । लोग ख़ुरासान को इस ज़मीन का कलेजा बतलाते हैं-अगर उनका यह कहना सच है तो हिरात उस कलेजे में रहनेवाला दिल है। " बाबर हिरात में पहुँचा। दोनों राजाओं ने उसकी वहाँ अभ्यर्थना की।

बाबर अधिक शराब पीने के कारण ही मरा था, किन्तु हिरात में आने के पहले वह शराब छूता तक न था। हिरात ही में बाबर ने शराब पीना आरम्भ किया । बाबर ने अपनी जीवनी में लिखा है कि शराब पीने के पहले मुझे अपने मन के साथ घोर युद्ध करना पड़ा-किन्तु चारों ओर के प्रलोभनों के मारे मैं अपने मन को दमन न कर सका। अपने हाथ से बाबर ने जो विषवृक्ष लगाया था, अन्त में उसी ने उसके जीवन का सारा रस खींच कर, उसे अकाल ही में सुला दिया।

हिरात में जा कर बाबर ने अपनी मृत्यु का बीज स्वयं ही बोया। साथ ही वह वहाँ जिस काम को गया था वह भी सिद्ध न हुआ। उसने अपनी जीवनी में एक जगह स्वयं लिखा है-" सुलतान हुसेनमिरज़ा के दोनों पुत्रों की भड़कीली पोशाकें, मूल्यवान् क़ालीन, पलंग, पलंगपोश और सोने चाँदी के गङ्गा जमनी काम के पान-पात्र (शराब पीने के बरतन) देशरक्षा के कार्य्य में सहायता का कारण न थे, बल्कि ये शत्रु की लालसारूपी अग्नि के लिये ईंधन-स्वरूप थे । दोनों मिरज़ा आमोद प्रमोद के कार्य्यों में बड़े समझदार थे और सामाजिक व्यवहार में तथा बातचीत करने में वे बड़े बुद्धिमान् थे । किन्तु युद्ध-परिचालन-विद्या में वे निरे कोरे थे। " विलासपटु दोनों नरपतियों से उपस्थित युद्ध में, कुछ सहायता मिलेगी इसकी आशा बाबर को छोड़ देनी पड़ी और वह हिरात से काबुल लौट आया।

इतने में सर्दी का मौसम आरम्भ हो गया था । बराबर बरफ़ की वर्षा हुआ करती थी-कहीं कहीं पर दो दो हाथ बरफ़ जम जाती थी । बरफ़ जम जाने के कारण बाबर रास्ता भूल गया । पथप्रदर्शकों को बहुत ढूँढ़ने पर भी ठीक रास्ता न मिला। चारों ओर सुनसान वन था। कहीं ठहर जाने का भी उपयुक्त स्थान न था । इसलिये बाबर और उसके साथियों को इस यात्रा में बड़ा कष्ट मिला।

हिरात से चले दो तीन दिन ही चुके थे कि एक दिन सन्ध्या होते होते बाबर और उसके साथी पहाड़ के नीचे एक गुफा के पास पहुँचे। उस समय पानी बरस रहा था । साथियों ने देखा कि गुफा को छोड़ और कोई स्थान ऐसा नहीं है जहाँ रात कट सके। इसलिये वे लोग वहीं उतर पड़े। किन्तु बाहर से देखने पर उस गुफा में इतनी जगह नहीं जान पड़ती थी कि उसमें सब लोग आराम कर सकें । इस लिये बाबर के साथियों ने उससे कहा कि आप भीतर जाकर आराम कीजिये, हम लोग घोड़ों की पीठ पर रात काट लेंगे । इस पर बाबर ने कहा-" तुम लोग मुसीबत झेलो और मैं आराम करूँ-ऐसा कभी न होगा। तुम लोगों की मुसीबत को बटाना मेरा फ़र्ज़ है । फ़ारसी की कहावत है कि 'भाईबन्दों के साथ मरना-एक प्रकार की ज़ियाफ़त (भोज) है' ।" यह कह कर बाबर खुले मैदान में बैठ गया । उसके कान, मस्तक और होठों पर चार चार दफ़ा बरफ़ जम गयी। इतने में जो लोग उस गुफा के भीतर घुसे थे, उन्होंने आ कर कहा कि गुफा इतनी लम्बी है कि इसमें हम सब लोग सुख-पूर्वक रात बिता सकते हैं । तब बाबर प्रसन्न

हुआ और अपने साथियों-समेत उस गुफा में घुसा। बाबर अपने सैनिकों के सुख दुःख का ध्यान सदा रखता था, इसी से वे लोग भी उसे इतना चाहते थे कि समय आने पर उसके लिये वे अपने प्राण तक दे डालते थे।

बाबर बड़े कष्ट झेलता हुआ काबुल पहुँचा। वहाँ पहुँच कर उसने देखा कि उसका चचेरा भाई ख़ानमिरज़ा काबुल के तख़्त का मालिक बन कर बैठा हुआ है और उसने बहुत से मुग़लों को अपनी ओर मिला रखा है। किन्तु बाबर के आने का संवाद फैलते ही उसके विपक्षी, डर कर इधर उधर छिपने लगे। काबुल में पहुँचते ही बाबर सीधा अपनी मातामही शाहबेगम के पास गया और ज़मीन पर घुटने टेक कर कहने लगा—"अगर माता अपने एक पुत्र पर बहुत लाड़ प्यार करे और दूसरे की ओर ध्यान न दे तो दूसरा पुत्र क्यों दुःखी न होगा? माता का स्नेह तो असीम होता है। मैं बहुत दिनों से चारपाई पर नहीं सोया और रास्ते में बड़े २ कष्ट झेलने पड़े।"

यह कह कर बाबर मातामही की गोद में सिर रख कर सो गया। बाबर के आने का समाचार सुन कर शाहबेगम घबड़ायी थी—इसीसे बाबर ने उसे शान्त करने के लिये उसके साथ ऐसा व्यवहार किया था। बाबर भली भाँति सोने नहीं पाया था कि इतने में उस कमरे में मिहरनिगार खानम (बाबर की मौसी) पहुँची। बाबर झटपट उठ खड़ा हुआ और मिहरनिगार को उसने प्रणाम किया। इसके बाद मिहरनिगार जा कर ख़ानमिरज़ा को लिवा लायी और बोली:—

मिहरनिगार—हे माता के नेत्रों के तारे बाबर! मैं तेरे ख़तावार भाई को ले आयी हूँ। अब तेरी क्या ख़्वाहिश है?

बाबर ने उसे अपने गले लगाया और बड़ी प्रीति के साथ उससे बातचीत की। यह स्नेहमय व्यवहार देख कर ख़ानमिरज़ा लज्जित हुआ और काबुल छोड़ कर कन्धार चला गया।

इस प्रकार बाबर अपने शत्रु को सहज में अपने वश में कर के राज्य करने लगा और अपने को बादशाह बतला कर अपने चक्रवर्ती होने की चारों ओर घोषणा करवा दी। किन्तु बाबर एक क्षण भी शान्तिपूर्वक न रह पाया। उसे सदा युद्धों ही में फँसा रहना पड़ा।

इसके चार वर्ष बाद बाबर ने समरक़न्द को उजबकों के हाथ से निकाल लिया। उनके अत्याचारों से देश धूल में मिल गया था। इस लिये सब लोगों ने बाबर का आदर किया। अब क्या था, अब तो बाबर का राज्य बड़ा लम्बा चौड़ा हो गया। तातार देश की सीमा से ले कर तासक़न्द तक और सैरास से काबुल और ग़ज़नी तक, तथा समरक़न्द, हिसार, कुन्देज़ और फ़रगना में बाबर की अमलदारी हो गयी।

बाबर के भाग्य ने इस बार फिर गढ़े की ओर पलटा खाया। तारीख़-ए-रसीदी और बाबर के सिक्के को देखने से विदित होता है कि बाबर, फ़ारस के शाह का अधीनस्थ राजा हो कर, समरक़न्द के सिंहासन पर बैठा था। फ़ारस का सुलतान शिया सम्प्रदाय का था। इसलिये विवश हो कर बाबर को भी शिया धर्म ही अङ्गीकार करना पड़ा। बाबर का यह कार्य सुन्नी जमात के मुसलमानों को बहुत खटका। उन लोगों ने बाबर का साथ छोड़ दिया। समरक़न्दवासियों की मानसिक स्थिति जान कर उजबकों का एक सेनापति फिर बाबर के विरुद्ध रणक्षेत्र में अवतीर्ण हुआ। युद्ध में अनेक बार परास्त हो कर बाबर ससैन्य वहाँ से भागा। इस हार से बाबर का बड़ा लम्बा चौड़ा राज्य छिन्न भिन्न हो गया। अन्य कहीं ठहरने का ठिकाना न देख अपने साथ थोड़े सैनिकों को लिये हुए बाबर काबुल पहुँचा और वहाँ राज्य करने लगा।

बाबर ने तीन बार अपने समरक़न्द के पैतृक सिंहासन को अधिकृत करने का उद्योग किया और वह कृतकार्य भी हुआ, पर उसकी तीनों बार की सफलता—चिरस्थायी न हो पायी। उसे हार कर समरक़न्द से हाथ धोना पड़ा और अन्त में उसने समरक़न्द के सविस्तीर्ण

राज्य के पाने की आशा छोड़ दी और भारतवर्ष में स्वतंत्र साम्राज्य प्रतिष्ठित करने का संकल्प किया।

बाबर ने अपनी जीवनी में स्वयं लिखा है—"९१० हिजरी (सन् १५०४-५ ई०) काबुल को हस्तगत करने के समय से, मैं सदा हिन्दुस्थान को अपनी मुट्ठी में करने का अभिलाषी था, किन्तु अनेक झंझटों में फँसे रहने के कारण मैं ससैन्य भारत पर चढ़ाई न कर सका—इसीसे वहाँ का राजघराना शत्रु के आक्रमण से बचा रहा। धीरे धीरे मेरी सारी बाधाएँ दूर हुईं। ऐसे दुरूह कार्य में हाथ न डालने की सलाह देने का साहस छोटे बड़े किसी भी मेरे सरदार को न हुआ। ९२५ हिजरी में मैंने सेना इकट्ठी की और दो ही तीन घंटे में दुर्ग पर अपना अधिकार कर, वहाँ की सेना को काट डाला। वहाँ से आगे बढ़ कर मैं बादवा पहुँचा। यहाँ लूटपाट मचा कर यहाँ के रहनेवालों से बलपूर्वक धन लिया। इसी समय (९२५) से ९३२ हिजरी (सन् १५२६ ई०) तक हिन्दुस्थान के कार्यों में फँसा रहा और सात आठ वर्ष के भीतर पाँच बार मैंने भारतवर्ष पर चढ़ाई की। पाँचवीं बार महान् परमेश्वर की दया और अनुग्रह से मैंने सुलतान इब्राहीम लोदी जैसे प्रबल शत्रु को हराया और मैं वहाँ का अधीश्वर हुआ।"

बाबर की चौथी चढ़ाई के समय, सुलतान इब्राहीम भारत के राजसिंहासन पर था। इब्राहीम कमज़ोर दिल का शासक था। इसीसे उसकी शक्ति निस्तेज और हीन हो गयी थी। उसका भाई उसके विरुद्ध हो गया और कुछ अमीरों को मिला कर इब्राहीम से लड़ाई छेड़ दी। इब्राहीम ने भाई को लड़ाई में हराया और जिन अमीरों ने उसके भाई का साथ दिया था, उनके साथ उसने बड़ा निठुर व्यवहार किया। इब्राहीम के इस कार्य से उसकी प्रजा उसके विरुद्ध हो गयी। यह सुअवसर देख पंजाब का क्षमताशाली शासनकर्त्ता दौलतख़ाँ स्वतंत्र हो गया और उसने अपने नाम का ख़ुतबा पढ़वाया और अपने ही नाम के सिक्के प्रचलित किये।

हिन्दुस्थान की इस सङ्कटापन्न दशा के समय, दिल्ली के राजघराने का अलाउद्दीन उपनाम आलमख़ाँ[1] भाग कर बाबर के पास काबुल में पहुँचा और दिल्ली का तख़्त दिला देने के लिये बाबर से प्रार्थना की। उधर पंजाब के शासनकर्त्ता ने सहायता देने के लिये उसे बुलाया। दिल्ली के बादशाही तख़्त पर अधिकार करने का इससे बढ़ कर और दूसरा अवसर कब हाथ आने लगा। यह विचार बाबर धूमधाम से चढ़ाई की तैयारियाँ करने लगा। उधर इब्राहीम के कठोर व्यवहार से उसकी प्रजा उससे असन्तुष्ट थी ही, इधर घरेलू झगड़ों से राजशक्ति और भी निर्बल पड़ गयी थी।

बाबर ने पंजाब में पहुँच कर सारा पंजाब देश अपने अधिकार में कर लिया। फिर आलमख़ाँ को दिबलपुर में उस प्रान्त का शासनकर्त्ता नियत किया। बाबर को दौलतख़ाँ पर सन्देह था। इसीसे उसके साथ वह अच्छी तरह न बर्ता। अतः दौलतख़ाँ बाबर से अप्रसन्न हो बदला लेने की घात ढूँढ़ने लगा।

इतने में बाबर को किसी कार्य विशेष से काबुल लौट जाना पड़ा। किन्तु जाते समय वह कुछ थोड़े से विश्वासपात्र सैनिक आलमख़ाँ की अधीनता में पंजाब की रक्षा के लिये छोड़ता गया। अवसर देख दौलतख़ाँ ने आलमख़ाँ पर चढ़ाई की और उन्हें दिबलपुर से मार कर भगा दिया। आलमख़ाँ काबुल में जा पहुँचा। सन् १५२५ ई० के अन्तिम भाग में आलमख़ाँ को साथ ले कर वह फिर पंजाब में आया। इस बार उसके साथ बारह हज़ार चुने चुने सैनिक थे। दौलतख़ाँ ने चालीस हज़ार सैनिक ले कर बाबर का सामना किया; किन्तु मुग़लों की मार के सामने उसके

[1] यह इब्राहीम लोदी का चचा था।

सैनिक न ठहर सके और भाग गये । वहाँ से बाबर धीरे धीरे आगे बढ़ा और पानीपत के मैदान में पहुँच कर उसने अपना डेरा डाला।

बाबर की अवाई सुन कर इब्राहीम ससैन्य पानीपत पहुँचा। अब हम बाबर की लिखी जीवनी का कुछ अंश यहाँ उद्धृत करते हैं—"अनुमान से मेरे शत्रु की सेना के सैनिकों की संख्या एक लाख थी। इब्राहीम की सेना के सेनापतियों और हाथियों की संख्या एक हज़ार थी। इब्राहीम अपने पिता और पितामह के जोड़े बटोरे धनरत्नों का मालिक था। यह धनराशि प्रचलित मुद्रा में वर्त्तमान थी—इसलिये वह अनायास उस धन को काम में ला सकता था। शत्रु की इस समय जैसी अवस्था थी—उसमें युद्धव्यवसायी वेतन ले कर काम करते हैं। अब उन लोगों को एकत्र करने के लिये बहुत धन ख़र्च करना पड़ता है। और ऐसे समय धन को पानी की तरह बहाने की रीति भारतवर्ष में है। इस सेना को 'बधिन दि' (Badhin di अर्थात् बन्धानी) कहते हैं। इस प्रथानुसार इब्राहीम यदि चाहे तो एक लाख क्या वह अढ़ाई लाख सैनिक रणक्षेत्र में उपस्थित कर सकता है। किन्तु सर्वशक्तिमान् के सब काम भले ही के लिये होते हैं। अस्तु इब्राहीम में इतनी शक्ति न थी कि वह अपने सैनिकों को राज़ी रख सके। उसे अपनी गाँठ से पैसे ख़र्च करना बहुत बुरा मालूम पड़ता था। वह कम उम्र और अनुभवशून्य था और फ़ौजी कामों में उसका मन कम लगता था। साथ ही वह आगा पीछा सोचे बिना ही युद्ध करने लगता था। जिस समय मेरे सैनिक पानीपत में और पास के स्थान में परिखा खोद कर अपने मोरचों को मज़बूत कर रहे थे, उस समय दरवेश मोहम्मद सखान ने मुझ से कहा—आपने तो अपने मोरचे ऐसे मज़बूत कर लिये हैं कि शत्रु यहाँ पर भी नहीं मार सकता।"

दोनों ओर की सेनाओं का आमना सामना हुआ। दोनों कई दिनों तक चुपचाप रहीं। किसी ने आगे बढ़ कर धावा न मारा। इस प्रकार एक सप्ताह निकल गया। तब २० वीं अप्रेल को रात के समय अचानक आक्रमण कर शत्रु के मोरचे को ले लेने की बाबर ने चेष्टा की। किन्तु अन्धकार होने के कारण वह सफल न हुआ। इब्राहीम ने सोचा मेरी एक लाख सेना के आगे शत्रु के बारह हज़ार सैनिक कर ही क्या सकते हैं। इससे वह अपने मन में अपने विजय का पूरा विश्वास कर चुका था। इसी से अगले दिन उसने अपने मोरचों को छोड़ बाबर की सेना का खुले मैदान में सामना किया। सूर्योदय के साथ ही साथ दोनों ओर की सेनाओं में घोर युद्ध होने लगा। दो पहर तक युद्ध होता रहा। अन्त में विजय-श्री ने बाबर के गले में जयमाल डाली। अफ़ग़ानी सेना छिन्न भिन्न हो गयी। और जिधर जो भाग सका, उधर वह भाग गया। लगभग पन्द्रह हज़ार अफ़ग़ानी सैनिकों ने अपने स्वामी के लिये प्राण दिये। इस युद्ध में स्वयं इब्राहीम शत्रु के हाथ से मारा गया। मुग़ल सैनिकों ने बड़े गौरव के साथ इब्राहीम का सिर काट कर बाबर के सामने ला कर रखा। पानीपत में विजय प्राप्त कर बाबर ने अपनी सेना के दो भाग किये। एक दल को आगरा और दूसरे को देहली पर साथ ही साथ अधिकार जमाने को भेजा। अगले दिन बाबर स्वयं आगरे की ओर गया। २७ वीं अप्रेल शुक्रवार को राजधानी की प्रत्येक मस-जिद में नये सम्राट् के नाम से ख़ुतबा पढ़ा गया। दिल्ली और आगरे के राजकोष में बाबर को इतना अधिक धन मिला, जितना उसने कभी स्वप्न में भी नहीं देखा था। किन्तु उसने पहले उस सारे धन को अपने सैनिकों में बाँट दिया। ऐसा करने से उसकी उदारता और दान-शीलता की चारों ओर धूम मच गयी। राज-कुमार हुमायूँ ने रण में असाधारण वीरता दिखलायी थी, अतः बाबर ने उसे सत्तरलाख दाम[1]

१ आज कल के तीन लाख रुपये।

उपहार में दिये। साधारण सिपाही से ले कर छावनी के दूकानदार तक को पुरस्कार बाँटा गया। बेगमों को भी उनके पदानुसार छः से ले कर दस लाख दाम तक दिये गये। बाबर के जो नातेदार युद्ध में उपस्थित न थे उनको भी इसमें से हिस्सा मिला। मनों जवाहिरात और सहस्रों भारतीय गुलाम समरक़न्द, ख़ुरासान-वासी रिश्तेदारों को और मक्का मदीना के दरवेशों को भेजे गये। अन्त में स्त्री पुरुष, बूढ़े लड़के जितने काबुली थे, उन सबको एक एक चाँदी का रुपया दिया। इसके बाद जो धन बचा, वह शाही ख़ज़ाने में राज्य-सम्बन्धी काम के लिये जमा किया गया। बाबर ने स्वयं उस धन में से एक कौड़ी भी नहीं ली। बाबर धन का लालची न था। वह धन की सार्थकता इसी में समझता था कि वह बाँटा जाय। उसे धन के बाँटने ही से बड़ी प्रसन्नता प्राप्त होती थी।

बाबर विश्वविश्रुत दिल्ली के सिंहासन पर बैठा; किन्तु भारत के अनेक स्वाधीन अधिपति उसे भारतवर्ष से निकालने के लिये उद्यत हुए। दिल्ली के आस पास के स्वाधीन अधिपति भी उसके अधीन न हुए। उस समय दिल्ली का राज्य पंजाब से ले कर गङ्गा के इस तट के देशों तक, और हिमालय की तराई से ग्वालियर तक फैला हुआ था। आगरे के चारों ओर विद्रोह की आँच सुलग रही थी। उस समय की अवस्था का बाबर ने स्वयं यों उल्लेख किया है:—

"मेरे आगरे में पहुँचने के समय गर्मी की ऋतु आरम्भ हो गयी थी। डर के मारे सारे नगर-निवासी भाग गये थे। मेरे खाने की वस्तु और घोड़ों को घास एवं दाना तक कठिनता से मिलता था। गाँवों के बसनेवाले हम लोगों से घृणा करते थे और मौक़ा मिलने पर चोरी करते अथवा डाँका डाला करते थे। राजकोष के धन को बाँट चुकने पर भिन्न भिन्न परगने और महकमों का अधिकार लेने के लिये उपयुक्त मनुष्य भेजने का मुझे अवसर ही न मिला। इस वर्ष गर्मी इतनी अधिक पड़ी कि अनेक लोग लपट से मर गये।"

"इन्हीं सब कारणों से मेरे अनेक चुने हुए योद्धा उत्साहहीन हो कर हिन्दुस्थान में रहने के लिये राज़ी न हुए; और लौट जाने की तैयारियाँ करने लगे।"[1] तब बाबर ने समस्त सेनानायकों को दरबार में बुला कर समझाया बुझाया। तब सब लोग शान्त हुए।

कुछ दिनों तक बाबर का समय बड़ी चिन्ता में बीता। किन्तु यह चिन्ता बहुत दिनों तक न रही। धीरे धीरे बाबर की गुणगरिमा से प्रजा परिचित हुई और बहुत दिनों से अत्याचारों से पीड़ित प्रजा, बाबर के सिंहासन की शान्त छाया के तले अपने आप आने लगी। सुविख्यात मेलिसन ने लिखा है:—

"The difficulty of Babar in conquering India arose from independent Musalman Kings and Hindoos who considered Babar as an intruder of oppressor of their rights and an discontented army."

बाबर ने अच्छे बर्ताव से हिन्दुओं को प्रसन्न किया, स्वाधीन राजाओं को रणक्षेत्र में परास्त कर अपने वश में किया और सैनिकों को कौशल से अपनी मुट्ठी में किया। इस प्रकार उसने अपनी विपत्तियों को हटा दिया। फिर भारतवर्ष में उसने ऐसे साम्राज्य की नींव डाली जो इतिहास में चिरकाल तक प्रसिद्ध रहेगा।

बाबर के समय के जो राजा लोग बाबर को समूल नष्ट करना चाहते थे वे पानी के बबूले के समान स्वयं ही न जाने कहाँ विलीन हो गये। बाबर ने ठीक ही कहा था—"यदि मुझे नष्ट करने का ईश्वर का सङ्कल्प नहीं है, तो पृथिवी के सारे अधिपति मेरे विरुद्ध भले ही शस्त्र

[1] एक मुसलमान ने बाबर से कहा था—"If safe and sound I pass the Sind,
Damned if I ever wish for Hind."

धारण करें, पर वे मेरी एक नस भी नहीं काट सकते।[1]

बाबर निष्कण्टक होकर शासनकार्य में लगा। समृद्धशाली भारतवर्ष का आधिपत्य पा कर भी वह समरक़न्द का नाम न भूल सका। इसी से अवसर पाने पर उसने अपने पुत्र हुमायूँ को समरक़न्द की ओर ससैन्य भेज दिया।

बाबर को भारत में आये पाँच वर्ष हो गये और सन् १५३० ई० का वर्ष आरम्भ हुआ। उधर हुमायूँ जिस काम के लिये गया था वह पूरा न हो पाया। वह अपने माता पिता को देखने को उत्सुक हुआ और आने का संवाद दिये बिना ही एक दिन अचानक आगरे में आ गया। उसे देख कर बाबर को बड़ी प्रसन्नता हुई और शाहज़ादे के सकुशल लौट आने के उपलक्ष में एक भोज किया।

बाबर अपने पुत्र हुमायूँ को प्राणों से अधिक चाहता था। सन् १५३० ई० के अन्त में हुमायूँ को बड़े ज़ोर से ज्वर आया। शाही हकीम इलाज करके थक गये, पर ज्वर न उतरा। किसी किसी ने कहा कि बिना बलि दिये हुमायूँ अच्छा न होगा। यह बात जब बाबर ने सुनी, तब वह स्वयं अपने शरीर की बलि देने को उद्यत हुआ। मौलवियों ने बहुत समझाया और यह भी कहा कि शाहज़ादे की जान के सदक़े में शाही ख़ज़ाना लुटाइये, पर अपनी जान न दीजिये। पर बाबर ने उनकी बातों पर ध्यान न दिया और कहा—"मेरे बेटे की तुलना क्या किसी रत्न से हो सकती है?" वह अपने बेटे के कमरे में गया और उसके सिराहने कुछ देर खड़ा रहा, फिर उसने उसके पलंग की तीन बार परिक्रमा की। तदनन्तर वह कहने लगा—"इसकी सारी व्याधि मेरे शरीर में आ जाय।" इसके बाद ही हुमायूँ अच्छा हो गया।

किन्तु बाबर धीरे धीरे बीमार हुआ। अन्त में वह इतना बीमार हुआ कि उसने खाट पकड़ी। अपनी बीमारी को असाध्य समझ और उसने अपने राज्य के प्रधान लोगों को बुला कर हुमायूँ को अपना उत्तराधिकारी बनाया। और २६ वीं दिसम्बर को वह इस संसार से कूच कर गया। उसका मृत शरीर बड़ी धूम धाम के साथ काबुल के पास की पर्वतमाला की तलहटी में एक रमणीक उद्यान में गाड़ा गया। बाबर उस स्थान की रमणीयता पर मोहित हो कर पहले ही अपनी इच्छा प्रकट कर चुका था कि मरने पर मेरे शरीर को इसी जगह रखना। वास्तव में वह स्थान बड़ा रमणीक है। उसके चारों ओर सुगन्धित पुष्पों के वृक्ष हैं और सामने निर्मल-सलिला स्रोतस्विनी कलकल नाद करती प्रवाहित होती है। बाबर उस स्थान पर जा कर घंटों प्रकृति के सौन्दर्य को देख कर मन ही मन आनन्दित हुआ था। अब भी बहुत से लोग उसकी संगमरमर की क़ब्र पर जा कर उसकी रूह के लिये प्रार्थना करते हैं। यद्यपि बाबर अब इस धराधाम पर नहीं है, तथापि उसकी कीर्ति का गान अब भी लोग करते हैं। किसी अँगरेज़ कवि ने कहा है:—

"Death makes no conquest
of this conqueror.
For now he lives in Fame."

बाबर के सर्वप्रिय होने के दो कारण बतलाये जाते हैं। प्रथम तो यह है कि भारतवर्ष में उसने मुग़ल-साम्राज्य की नींव डाली—दूसरा यह कि उसने अपने जीवन का वृत्तान्त स्वयं लिखा। यह जीवनी एक आदर्श जीवनी है[2]। इसी जीवनी के आधार पर हम बाबर के अन्य गुणों का यहाँ उल्लेख करते हैं।

बाबर साहसी, तेजस्वी और प्रतिभाशाली

१ "Brandish the sword of the world as you may
It can cut no vein if God says, 'nay'."

२ His autobiography is one of those treasures which are for all time and is fit to rank with the confessions of St. Augustine and Rousseau and the memoirs of Gibbon and Newton. In Asia it stands almost alone." —H. Beveridge.

नरेश था। उसकी प्रतिभा "साधारण मनुष्यों के मनों पर बड़ा प्रभाव डालती थी" और हरेक काम में साधारण मनुष्य भी बेउज्र उसका कहना मानते थे। बाबर के जीवन का अधिक भाग अनेक विपत्तियों और कष्टों के झेलने ही में व्यतीत हुआ था। किन्तु घोर विपत्तियों में पड़ कर भी उसके चित्त की प्रफुल्लता एक दिन के लिये भी नष्ट नहीं हुई थी। दुस्सह क्लेश भोगने के समय अथवा प्रौढ़ावस्था में-वह सदैव युवक की तरह प्रफुल्लचित्त और उद्यमशील बना रहता था। बाबर की सामाजिक जीवनी भी सराहने योग्य है। वह अपने स्वजनों से प्रीति करता था और धनी निर्धन, बालक बूढ़े, स्त्री पुरुष कहाँ तक गिनावें-मनुष्य मात्र पर उसको स्नेह था और सबके दुःख में दुःखी और सुख में सुखी होता था। मुसलमान नरेश प्रायः बड़े आडम्बरी और आरामतलब हुआ करते थे-किन्तु बाबर का हृदय सरल था और वह बन्धुवत्सल था। बड़ा होने पर, जब वह अपने किसी बालसखा के मरने का संवाद सुनता, तब वह छोटे छोटे बालकों की तरह रोया करता था। उसने अपनी लिखी जीवनी में कोई बात छिपाई नहीं। उसने अपनी पुस्तक में अनेक स्थलों पर माता और अन्य अन्तःपुर की महिलाओं के प्रति ऐसा प्रगाढ़ अनुराग प्रकाश किया है कि उसे पढ़ने से यह जान पड़ता है कि बाबर उनकी गोद छोड़ कर कभी बाहिर नहीं जायगा। भाई बन्दों के कार्यों का चित्र भी उसने आत्मजीवन में वैसा ही चित्रित किया है जैसा अपने कार्यों का। बाबर के समय का इतिहासवेत्ता हैदरअली लिखता है—"बाबर बड़ा गुणी और प्रसिद्ध पुरुष था; उसकी गुणावली में उसकी सज्जनता और दानशीलता ही सर्वाग्रगण्य थी।" उसने असंख्य मनुष्यों की हत्या से अपने पूर्व पुरुषों की तरह अपने हाथ कलङ्कित नहीं किये। जहाँ कहीं थोड़े आदमी मारने की उसे आज्ञा देनी पड़ी वह उस समय की रीति नीति के अनुरोध से। उसका सगा भाई हो अथवा अन्य कोई, यदि वह बाबर के प्राण लेने तक का षड्यंत्र रच कर पीछे अपने किये की, पश्चात्ताप पूर्वक क्षमा माँगता; और उसकी वश्यता स्वीकार करता तो बाबर-क्या भारत क्या पारस, क्या अरब-कहीं की भी राजनीति पर ध्यान न दे कर, झट उसके अपराधों को क्षमा कर देता था और उसकी ओर से अपने मन में गाँठ नहीं रखता था। बाबर में केवल स्वाभाविक सद्गुण ही न थे, किन्तु वह अनेक प्रकार की सूक्ष्म विद्याओं में भी निपुण था। सङ्गीतशास्त्र का वह बड़ा पण्डित था। उसने फ़ारसी और तुर्की भाषा में अनेक कविताएँ रची हैं। उसकी रचनाएँ, भाषा के माधुर्य्य और भावों के प्राचुर्य्य के लिये अति प्रसिद्ध थीं। इमारत और कृषि के कार्य्यों में भी उसकी बुद्धि खूब दौड़ती थी। उद्यान वाटिका अथवा भवन बनवाने के सारे कार्य की देखरेख वह स्वयं करता था। बाबर को कैशोर अवस्था से ले कर अन्त समय तक हाथ में तलवार ले कर समय बिताना पड़ा—उसके भाग्य में विश्राम-सुख नहीं लिखा था। इस अवस्था में रह कर भी उसका, अनेक प्रकार की विद्याओं में प्रवीणता प्राप्त करना-उसकी असाधारण मेधा और प्रबल ज्ञानलिप्सा का परिचायक है। बाबर के शरीर में असामान्य बल था। उसने स्वयं लिखा है—"मैं आमोद के लिये तैर कर गङ्गा पार चला जाता था। यात्रा के समय रास्ते में जो नदियाँ पड़तीं, गङ्गा को छोड़, मैं उन सबको तैर कर पार होता था।" वह एक साथ अस्सी मील घोड़े की पीठ पर जाता था, उसकी तेज़ रफ़्तार विस्मय उत्पन्न करती थी।

बाबर ने इन गुणों के कारण ही ऐसे समय में नाम किया जब उसके भाई बंद जल के बबूलों के समान न जाने कहाँ विलीन होते चले जाते थे। ग्यारह वर्ष का बाबर जिस समय फ़रग़न की गद्दी पर बैठा—उस समय फ़रग़न के आस पास तैमूरवंशी राजा लोग राज्य करते थे। किन्तु बाबर युवक भी नहीं

होने पाया था कि वे सब लोग विलुप्त हो गये। ये लोग या तो विदेशियों के आक्रमण से अथवा अपने ही नौकर चाकरों के विश्वास-घात से, तृण के समान जल के प्रवाह में डूब गये। बाबर ने भी उस प्रबल प्रवाह में ग़ोते खाये—किन्तु उस प्रवाह ने बाबर को दूर जा कर किनारे पर फेंक दिया। अथवा तैरने में पटु बाबर अपने उद्यम से, कुल को डुबोने-वाली तरङ्गों से बच कर किनारे जा लगा। यदि वह भी अन्य तैमूरवंशी राजाओं की तरह उस प्रवाह में डूब जाता तो उस विशाल वंश का नाम ही लुप्त हो जाता। किन्तु बाबर ने आत्मरक्षा कर, मरने के पहले आमू नदी से ले कर बिहार तक, विस्तृत सुविशाल मुग़ल-साम्राज्य की नींव डाली।

बाबर का सारा जीवन युद्ध-विग्रह ही में बीता—इसी से उसे अपने साम्राज्य की उन्नति करने का अवसर न मिला। किन्तु यदि उसे कहीं अवकाश मिलता तो वह अवश्य राज्य-शासन को शृङ्खलाबद्ध करने और प्रजा की उन्नति के साधन प्रस्तुत करने में कोई बात उठा न रखता। बाबर के हाथ में भारतवर्ष के शासन की रास उसके जीवन के सन्ध्याकाल में आयी। उसने केवल पाँच ही वर्ष यहाँ शासन कर पाया। किन्तु इन पाँच वर्षों में भी उसका बहुत सा समय लड़ाई झगड़ों ही में बीता। इसी से वह शासन की सुव्यवस्था न कर सका।

बाबर सुविस्तीर्ण भूखण्ड का अधीश्वर था। इतने बड़े साम्राज्य के शासन का एवं संरक्षण का कोई निर्दिष्ट नियम न था। नरेशों को अप्रतिहत क्षमता प्राप्त थी। प्रत्येक देश, प्रत्येक नगर, प्रत्येक परगना—यहाँ तक कि प्रत्येक गाँव तक में शासन-सम्बन्धी विषयों में स्थानीय आचार व्यवहार की मर्यादा की रक्षा करनी पड़ती थी। देश भर में कहीं कोई भी नियमबद्ध विचारालय न था। हिन्दुओं में किसी प्रकार का झगड़ा होने पर ग्राम्य अथवा विभागीय राजकर्मचारी उसका निपटारा करता था; कहीं कहीं ऐसे झगड़ों का निर्णय करने के लिये पञ्चायत की प्रथा प्रचलित थी। इनके निर्णय के विरुद्ध प्रादेशिक शासनकर्ता के पास अभियोग चल सकता था। किन्तु इस विषय की कोई नियमबद्ध प्रणाली न थी। मुसलमानों के झगड़े क़ाज़ी निपटाया करते थे किन्तु माल-सम्बन्धी झगड़े निपटाने का उन्हें भी अधिकार न था। वे लोग विवाह अथवा धर्म-सम्बन्धी झगड़ों की मीमांसा करते थे। भूमि-सम्बन्धी झगड़े गाँव का कर्मचारी यदि न निपटा सकता, तो विभागीय कर्मचारी, ज़मींदार अथवा जागीरदार उसमें हस्तक्षेप कर सकते थे। प्रधान प्रधान राज्यकर्मचारी दीवानी और फौजदारी (चाहे कैसे ही बड़े अभियोग क्यों न हों) अभियोगों की मीमांसा करते थे।

बाबर अड़तालीस वर्ष की उम्र में परलोक सिधारा। अपरमित सुरापान ही उसकी अकाल-मृत्यु का कारण बतलाया जाता है। बाबर बाइस वर्ष की अवस्था तक कभी मद्य को हाथ से भी नहीं छूता था; किन्तु उसी समय से वह सुरापान का आदी हो गया। वह अपने स्वजनों के साथ किस प्रकार सुरापान में मग्न होता था—इसका वर्णन उसने निज-रचित जीवनी में स्वयं लिखा है। उसे पढ़ने से जान पड़ता है कि जैसा आनन्द उसे युद्ध का वर्णन लिखने से होता था, वैसा ही आनन्द उसे सुरा-गोष्ठी का वर्णन करने में प्राप्त होता था। यह होने पर भी काम काज के समय वह अपने को बहुत सम्हालता था। उसने मदिरा पी कर कभी कोई पशुवत् कार्य नहीं किया। उसने जिस प्रकार बहुत पुराने अभ्यास को परित्याग किया—वह भी उसके मानसिक बल का परिचायक है।

सन् १५२७ ई० में बाबर ने राना संग्रामसिंह पर चढ़ाई की। संग्रामसिंह के समान पराक्रमी शत्रु बाबर को दूसरा कोई भी नहीं मिला था। सुरापान इसलाम धर्म के विरुद्ध है—यह बात उसके मन में इस युद्ध के पूर्व उत्पन्न हुई। वह मन ही मन कहने लगा कि इसलाम धर्म का अनुयायी कहला कर जो इसलाम धर्म के विरुद्ध चलता है, उस पर रणदेवता कभी प्रसन्न नहीं हो सकता। रणदेवता को प्रसन्न

करने के लिये बाबर ने उसी क्षण से मद्य पीना त्याग दिया और सोने चाँदी के मदिरा पीने के बरतन तोड़ फोड़ कर दीनों को दे डाले । जिन बरतनों में मद्य थी उनकी मदिरा फेंक दी गयी । बाबर ने इस घटना को स्मरणीय बनाने के लिये प्रजा पर से तमग़ा कर (Stamp tax) उठा लिया । बाबर ने लिखा है कि— "मैंने अपना मन पवित्र करने के लिये ही सुरा का पीना छोड़ा है ।"

Baghra (or Bakarra) Khan बगराख़ाँ=यह बलवन का पुत्र था और बङ्गाल का सूबेदार था । इसे उस प्रान्त में स्वतंत्र अधिकार प्राप्त थे । कैकोबाह इसीका पुत्र था जिसे उमरावों ने तख़्त पर बिठा दिया था ।

Bahmini King. बहमानी बादशाह=इस ख़ान्दान के अठारह बादशाह कुलबर्ग के तख़्त पर बैठे और सन् १३४७ से १५२६ तक इन लोगों ने राज्य किया ।

इनका प्रथम बादशाह अलाउद्दीन हुसेन गंगू बहमनी था और इस ख़ान्दान का अन्तिम बादशाह कलीमउल्लाहशाह था जो अवसर प्राप्त कर के अहमदनगर में मर गया । इस ख़ान्दान का बहमनी नाम इस लिये पड़ा कि अलाउद्दीन हुसेन गंगू नामक एक ब्राह्मण का ग़ुलाम था । गंगू ने ही अलाउद्दीन के भाग्योदय की भविष्यद्वाणी की थी । इसीसे जब अलाउद्दीन तख़्त पर बैठा; तब कृतज्ञतावश अपने पुराने स्वामी गंगू को न भूला और उदारता का परिचय देते हुए अपने ख़ान्दान का नाम बहमनी रखा ।

Bahadur Shah of Gujarat. गुजरात का बहादुरशाह=यह गुजरात का बादशाह था और इसने सन् १५२६ से १५३७ तक वहाँ राज्य किया था । यह बड़ा बलवान् था और इसने दक्षिण में अपनी पूरी धाक बिठा रखी थी । यहाँ तक कि मालवा प्रान्त को भी इसने अपनी रियासत में मिला लिया था । हुमायूँ ने इसके साथ युद्ध किया और इसकी बहुत सी रियासत छीन कर उस पर अपना अधिकार कर लिया । बहादुरशाह का पावनगढ़ नामक एक दुर्ग था, जिसमें अटूट धन था । हुमायूँ तीन सौ योद्धाओं के साथ सीढ़ी लगा कर, दुर्ग में घुसा और वहाँ से बहुत सा धन ले गया । यह घटना सन् १५३५ ई० की है ।

Bahadur Nizam Shah. बहादुर निज़ामशाह=यह चान्द बीबी का चचेरा पौत्र था ।

Bahadur Shah. बहादुरशाह=सातवाँ मुग़ल बादशाह । इसका दूसरा नाम प्रथम शाहआलम भी है । इसने १७०७ से १७१२ ई० तक बादशाही की ।

बहादुरशाह ।

सन् १७०७ ई० की २१ वीं फ़रवरी को वृद्ध औरङ्गज़ेब मरा । मरने के पूर्व वह अपना कोई उत्तराधिकारी स्पष्टरूप से नियुक्त नहीं कर सका । औरङ्गज़ेब के पाँच पुत्र थे । ज्येष्ठ पुत्र मुहम्मद, उसके सामने ही परलोकवासी हो चुका था । दूसरा मुअज़्ज़म पिता की मृत्यु के समय काबुल के शासनकर्त्ता के पद पर नियुक्त था । तीसरा पुत्र अज़ीम

---

१ किन्तु हण्टर साहब ने लिखा है :—

"Before his departure he made a will dividing his Sovereignty among his Sons, to prevent them fighting with each other for it; but the remembrance of his early conduct was enough to outweigh the force of his dying exhortations and the Sons following their fathers' example rather than his precepts, fought till only one remained alive."

शाहज़ादा, मुअज़्ज़म का सहोदर भाई था और औरङ्ज़ेब जिस समय मरा, उस समय वह दक्षिण में, राजशिबिर में उपस्थित था। चौथे पुत्र अकबर ने पिता के विरुद्ध विद्रोह का झंडा खड़ा कर के राजपूतों को मिलाया; किन्तु अभीष्टसिद्ध न होने पर वह भाग कर मक्का चला गया। तब से वह फिर यहाँ लौटकर नहीं आया। पाँचवाँ बेटा कामबख़्श औरङ्ज़ेब को सबसे अधिक प्रिय था और वह पिता की मृत्यु के समय बीजापुर का शासक था।

औरङ्ज़ेब के मरते ही शाहज़ादे अज़ीम ने अपने को भारत का सम्राट् बतला कर घोषणा प्रचारित करवा दी और ससैन्य वह आगरे की ओर प्रस्थानित हुआ। इधर शाहज़ादा मुअज़्ज़म भी पिता की मृत्यु का संवाद सुन चुपचाप न बैठा। उसने भी काबुल से ससैन्य लाहौर की ओर यात्रा की और वहाँ पहुँच कर वह अपने विश्वस्त प्रतिनिधि मूनिसख़ाँ से मिला। इसके बाद उसने अपने पुत्र को तो आगरे का दुर्ग हस्तगत करने के लिये ससैन्य भेजा और स्वयं एक बड़ी भारी सेना और गोलन्दाज़ों को साथ ले वह दिल्ली की ओर रवाना हुआ। दिल्ली के निवासियों ने उसका बड़ी धूम धाम से स्वागत किया। राजकोष के सारे बहुमूल्य रत्न उसीके हाथ लगे। प्रजा उसके सद्व्यवहार पर मोहित हो, उसके झंडे के नीचे एकत्र होने लगी। उधर अज़ीम की धनलिप्सा और उसके पुत्र एवं सेनापति की प्रतिद्वन्द्वता के कारण, लोग उससे अप्रसन्न होने लगे। मुअज़्ज़म, दिल्ली छोड़ कर मथुरा में पहुँचा। वहाँ उसने अज़ीम को आधा राज्य देने का वचन दे, सन्धि करनी चाही। शान्तिप्रिय और मृदुस्वभाव मुअज़्ज़म के प्रस्ताव को सुन, उसके भाई का अहङ्कार बढ़ा। उसने अवज्ञापूर्वक सन्धि के प्रस्ताव को लौटा दिया और भाई का रक्त बहाने के लिये वह ससैन्य उस पर चढ़ दौड़ा। धौलपुर और आगरे के बीच में दोनों भाइयों में युद्ध हुआ। अज़ीम युद्ध में शत्रु के हाथ से मारा गया। मुअज़्ज़म का सेनापति पुरस्कार पाने की कामना से अज़ीम का सिर काट कर, मुअज़्ज़म के सामने ले गया। मुअज़्ज़म भाई का कटा सिर देख कर आँसू बहाने लगा और भ्रातृहन्ता का तिरस्कार कर, मृत शरीर को राजसी ठाठ बाठ के साथ समाधिस्थ करने का उसने आदेश दिया।

इसके बाद शाहज़ादा मुअज़्ज़मशाह ने बहादुरशाह की उपाधि धारण कर पितृ-सिंहासन पर पैर रखा। उसने सबसे प्रथम विश्वस्त मूनिसख़ाँ को खानखाना की उपाधि से विभूषित कर प्रधान मंत्री बनाया। नूतन सम्राट् इस सङ्कट-काल में भी सदाशय, दयार्द्रचित्त, अमायिक और गुणग्राही था। उसने सिंहासन पर बैठते ही शत्रुपक्षीय विशिष्ट कर्मचारियों को उपयुक्त पदों पर नियुक्त किया। उसने अज़ीम के परिवार के साथ भी बड़ी ही भलमनसाहत का बर्ताव बर्ता। बेगम ख़ुदिसा-ज़ेब-उन्निसा को बादशाह बेगम की उपाधि दे, उसकी वृत्ति दूनी कर दी।

राजनीतिविशारद मूनिसख़ाँ ने शासन-प्रणाली के सुधार में हाथ लगाया। बहादुरशाह अपने पितामह शाहजहाँ की तरह धूम धाम से दरबार करने लगा। उसके सिंहासन के चारों ओर उसके पुत्र और भतीजे—सब मिला कर सत्रह जन बैठते थे। इन लोगों से कुछ दूर हट कर विजित राजकुमार गण खड़े होते थे। सभाभवन सदा विचित्र सजावट से सजा हुआ रहता और अमीर उमरावों से भरा रहता था। बादशाह समय समय पर उनको पुरस्कार दे कर अपने वैभव और दानशीलता का परिचय देता था।

बहादुरशाह में अनेक अच्छे गुण थे। यदि समग्र हिन्दू जाति औरङ्ज़ेब के पक्षपातपूर्ण बर्ताव और अत्याचारों से मुग़ल-साम्राज्य से विरक्त न हो गयी होती तो बहादुरशाह के अमायिक बर्ताव से हिन्दू वीरगण, उसके परम शुभचिन्तक और सहायक बन जाते। पर उठी पैठ देर में लगती है। यद्यपि उसके शासन-काल में औरङ्ज़ेब के कुव्यवहार से उत्पन्न विद्रोहाग्नि प्रकट नहीं हुई थी; तथापि लोगों के भीतर ही भीतर वह धधक रही थी। अतः औरङ्ज़ेब के मरते ही वह अग्नि प्रचण्ड रूप

धारण कर दहकने लगी। औरङ्गज़ेब के सामने ही राजपूत और जाट जातियाँ उसके विरुद्ध खड़ी हो चुकी थीं। अब उसके बाद पंजाब के सिक्ख भी खुलंखुल्ला दिल्ली के सिंहासन के विरुद्ध आचरण करने लगे।

बहादुरशाह को इन शत्रुओं से आरम्भ में कष्ट न उठाना पड़ा। पहले तो उसे घर ही के शत्रुओं ने तङ्ग कर डाला। उसके राजसिंहासन पर बैठते समय औरङ्गज़ेब का सबसे छोटा पुत्र कामबख़्श बीजापुर में शासक के पद पर नियुक्त था।

उससे अपने बड़े भाई की बढ़ती न देखी गई। उसके हृदय में ईर्ष्यानल दहकने लगा। वह कभी कभी भाई पर ससैन्य चढ़ाई करने के लिये यात्रा करता, किन्तु बीच ही में से लौट लौट जाता था। बहादुरशाह के पक्षपाती होने का जिन लोगों पर उसे सन्देह होता, उन्हें वह दण्ड देता था और भाई को बड़ी उदारता से पत्र लिख कर, अवसर की प्रतीक्षा किया करता था। इस प्रकार लगभग एक वर्ष बीता होगा कि बादशाह ने समझ लिया कि कामबख़्श बातों से शान्त होने वाला मनुष्य नहीं है। अतः सन् १७०८ ई० में उसने (बादशाह ने) उस पर स्वयं चढ़ाई की। किन्तु दक्षिण में पहुँच कर उसने मूनिसख़ाँ को आज्ञा दी कि रक्त बहाये बिना ही उसे किसी प्रकार पकड़ लाओ। उधर कामबख़्श बादशाही सेना का सामना करने की पूरी पूरी तैयारी कर चुका था। उस समय दक्षिण के अन्य प्रदेश, औरङ्गज़ेब के प्रधान सेनापति ज़ुलफिकारख़ाँ के शासनाधीन थे। कामबख़्श की ज़ुलफिकारख़ाँ के साथ भी नहीं पटती थी और दोनों में परस्पर वैमनस्य था। वह भी यह सुअवसर पा कर कामबख़्श पर ससैन्य आक्रमण करने को कटिबद्ध हुआ। किन्तु मूनिसख़ाँ ने उसे ऐसा करने से रोका और वह बादशाह के आदेश की प्रतीक्षा करने लगा। उस समय बहादुरशाह आहार कर के सो रहा था। इससे बादशाह का आदेश आने में विलम्ब हुआ। ज़ुलफिकारख़ाँ ने बादशाह की आज्ञा लिये बिना ही ससैन्य कामबख़्श पर आक्रमण किया। तब विवश हो मूनिसख़ाँ को भी उसका साथ देना पड़ा। राजकुमार कामबख़्श ने बड़ी वीरता से शत्रु-सेनाओं का सामना किया, किन्तु अस्त्रों के आघातों से उसका सारा शरीर चलनी की तरह बिध गया। शरीर से अधिक रक्त निकल जाने के कारण थोड़ी ही देर बाद राजकुमार अवसन्न हो कर गिर पड़ा। तब उसी अवस्था में वह बन्दी बना कर बादशाही ख़ीमे में ले जाया गया और एक सुविज्ञ यूरोपियन चिकित्सक उसकी मरहम पट्टी करने के लिये नियुक्त किया गया। किन्तु अभिमानी कामबख़्श ने न तो किसी से चिकित्सा (इलाज) करायी और न पथ्य ही ग्रहण किया। सन्ध्या समय बहादुरशाह स्वयं उसे देखने गया और उसकी शय्या के पास जा खड़ा हुआ। उसकी दशा देख बादशाह से न रहा गया और अपना कुर्ता उतार कर उसे पहना दिया। इसके बाद स्नेहशील बहादुरशाह ने कहा—"मुझे यह आशा न थी कि मैं अपने भाई को इस दुरवस्था में देखूँगा।" इसके उत्तर में कामबख़्श ने अप्रसन्न हो कर कहा—"तैमूरवंशीय राजकुमार कापुरुषता और भीरुता का कलङ्क अपने सिर पर ओढ़ कर शत्रु के हाथ में बन्दी होगा—यह आशा मुझे भी न थी।" इसके बाद बादशाह ने उसे अपने हाथ से थोड़ा सा शुरुआ (मांस का जूस) पिलाया और वहाँ से चला आया।

अनन्तर ज़ुलफिकारख़ाँ को दक्षिण प्रान्त का सूबेदार बना कर, बहादुरशाह अपनी राजधानी को लौट गया। ज़ुलफिकार महाराष्ट्रों को मुग़लों के अनुकूल करने का यत्न करने लगा। इस उद्देश्य से ज़ुलफिकार ने मिनहाज सिन्धिया को राजसम्मान से इस लिये भूषित किया कि सिन्धिया, बादशाह की ओर से कामबख़्श के साथ लड़ा था। इस घटना के बाद ही महाराष्ट्रों की सेना में परस्पर मतभेद उत्पन्न हुआ। उनके दो दल हो गये। एक दल का पक्षपाती मूनिसख़ाँ बना और दूसरे का ज़ुलफिकारख़ाँ। किन्तु शान्तिशीलवान् होने के कारण बहादुरशाह इन दोनों में से किसी की भी बात नहीं

टालता था । इस ईंचातानी में सामन्तों की बन आयी और उन्होंने दक्षिण प्रान्त में लूट मार मचानी आरम्भ कर दी । दूसरी ओर राजपूत बादशाही शासन में अनेक प्रकार की बाधाएँ डालने लगे। सिक्खों ने पञ्जाब में मुग़ल साम्राज्य की नींव को हिला दिया ।

बादशाह ने राजपूत और सिक्खों के साथ, एक ही समय में लड़ना ठीक न समझा और राजपूतों के साथ किसी प्रकार सन्धि कर, सिक्खों को ध्वंस करने का विचार पक्का किया। इस उद्देश्य से उसने अपने पुत्र को, अम्बराधिपति और जोधपुर नरेश को लिवा लाने के लिये भेजा । दोनों नरेश दरबार में उपस्थित हुए । तब बादशाह ने राजपूतों के असन्तोष के सब कारणों को दूर कर, उनको अपना मित्र बना लिया । किन्तु इन दोनों नरेशों ने स्वदेश में जा कर उदयपुर के राना के साथ सन्धि की । टाड साहब ने लिखा है कि इन्हीं तीनों के मिलने से बाबर का सिंहासन धूल में मिल गया। उधर महाराष्ट्रों ने दलबन्दी कर के भी अपना काम बनाया और बादशाही साम्राज्य का बहुत सा भाग अपने अधिकार में कर लिया ।

जो हो, राजपूतों के साथ सन्धि कर के बहादुरशाह ने सिक्खों को ध्वस्त करने में अपनी सारी शक्ति लगायी । प्रधान मंत्री मूनिसख़ाँ, सिक्खों को मज़ा चखाने के लिये बड़ी भारी सेना सहित रवाना हुए । घोर युद्ध होने के बाद सिक्ख जाति समूल विनष्ट हुई और उस जाति के मुखिया ने भाग कर अपने प्राण बचाये । मूनिसख़ाँ विजय पताका उड़ाता लौट आया ।

इसके थोड़े दिनों के बाद ही मूनिसख़ाँ का देहान्त हुआ । उसकी मृत्यु के बाद, प्रधान मंत्री की नियुक्ति करते समय, बड़ा भारी बखेड़ा उठ खड़ा हुआ । शाहज़ादा अज़ीम-उश्शान परलोकगत वज़ीर को बहुत ही अधिक चाहता था । अतः उसने प्रस्ताव किया कि ज़ुलफ़िकारख़ाँ तो प्रधान मंत्री बनाया जाय और मूनिसख़ाँ के दो बेटों में से एक प्रधान सेनापति और दूसरा दक्षिण प्रान्त का सूबेदार नियुक्त किया जाय । ज़ुलफ़िकारख़ाँ दक्षिण का स्वतंत्र शासक बना हुआ था, अतः उसने वज़ीर बन कर सदा बादशाह की अधीनता में रहना अस्वीकार किया । तब अज़ीम-उश्शान, किसी दूसरे को प्रधान मंत्री न बना कर, स्वयं सारा काम देखने भालने लगा । किन्तु राजकुमार बहुदर्शी और कार्यपटु न था । इससे शासन सम्बन्धी कार्यों में अनेक प्रकार की गड़बड़ी हुई । उदाहरणस्वरूप हम यहाँ एक घटना का उल्लेख करते हैं । मूनिसख़ाँ की मृत्यु के बाद, बादशाह ने ख़ुतबा में "अली" के पीछे "वयासी" शब्द जोड़ने की आज्ञा दी । "वयासी" शब्द का अर्थ है उत्तराधिकारी । बादशाह ने शिया सम्प्रदाय वालों को प्रसन्न करने के लिये ही वयासी शब्द जोड़ने की आज्ञा दी थी । इसका अर्थ यही था कि महात्मा अली, पैग़म्बर मुहम्मद के उत्तराधिकारी थे । इस राजाज्ञा से समस्त सुन्नी सम्प्रदाय वाले अप्रसन्न हुए और अनेक स्थानों में उत्पात का सूत्रपात भी किया । अहमदाबाद में ख़ुतबा पढ़ने वाला बड़ी नृशंसता के साथ वध किया गया । राजकुमार अज़ीम-उश्शान छिप कर इन विद्रोहियों के साथ मिला हुआ था । लाहौर में सुन्नियों ने अधिक उपद्रव किये । इस लिये बहादुरशाह ने हाजीयार मुहम्मद आदि कई एक प्रधान सुन्नी नेताओं को बुला भेजा । तदनुसार वे लोग आये और शास्त्रार्थ करने लगे ।

---

१ मूनिसख़ाँ सूफ़ी मतानुयायी और दीन दरिद्रों का मित्र था । उसने उम्र भर कभी किसीके मन को कष्ट नहीं पहुँचाया था । उसने अपने नाम को चिरस्थायी करने के अभिप्राय से प्रत्येक नगर में एक मसजिद और एक सराय बनाने का सङ्कल्प किया था । इस काम में उसका बहुत सा धन लग गया । किन्तु जिन लोगों के ऊपर इस काम के करने का भार उसने रखा था, वे बड़े दुष्ट थे । उनकी दुष्टता के कारण ही, मसजिद और सराय के बनवाने को भूमि लेते समय लोगों पर बड़े बड़े अत्याचार किये गये । अच्छे कामों में भी लोगों को कष्ट सहने पड़ते हैं, इसे प्रमाणित करने के लिये ही काफ़ीख़ाँ ने इस बात को लिखा है ।

हाजीयार मुहम्मद दरबारी नियमों को भङ्ग करके तर्क करने लगा। इस पर बादशाह ने क्रुद्ध हो कर पूँछा- "तुम इस प्रकार बातचीत करते हुए डरते नहीं ?" इसके उत्तर में उसने कहा— "मैंने सृष्टिकर्त्ता से चार बातों के लिये प्रार्थना की है-(१) ज्ञानार्जन (२) ईश्वर की आज्ञा का प्रतिपालन (३) तीर्थपर्यटन और (४) धर्म की रक्षा के लिये प्राणविसर्जन। ईश्वर को धन्यवाद देता हूँ कि उनके अनुग्रह से मेरी तीन प्रार्थना तो स्वीकृत हुईं। न्यायपरायण राजा के अनुग्रह से चौथी प्रार्थना भी स्वीकृत होनी ही चाहती है। बहुत से वादानुवाद से कुछ भी फल न होगा। अब सुन्नी जमात के लोग बलवान् होते जाते हैं जबसे अमीम-उद्दौला वज़ीर हुआ; तबसे उसके भाईबन्द शाह के मारे, जले भुने जा रहे हैं। महाराष्ट्र, राजपूत, सिक्ख-सभी दिल्ली की बादशाही पर आक्रमण कर कर उसे नष्ट करने को उद्यत हैं।" बहादुरशाह को चारों ओर से इस प्रकार जब लोगों ने तङ्ग किया; तब उसने सुन्नी सम्प्रदाय वालों को चुप करने की निज आज्ञा लौटा ली।

सुन्नी सम्प्रदाय का यह झगड़ा निपटने भी न पाया था कि बहादुरशाह बीमार पड़ा और राजकुमारों ने चारों ओर से उसे घेर लिया। साथ ही हर एक राजकुमार मयूरसिंहासन को निज हस्तगत करने की चेष्टा करने लगा। राजपुरुष गण अपने अपने पृष्ठपोषकों का साथ देने लगे। इसका फल यह हुआ कि सब कामों में गड़बड़ी होने लगी। इस प्रकार सङ्कट में पड़, मृदुस्वभाव आडम्बरप्रिय बहादुरशाह फ़रवरी सन् १७१२ ई० में परलोकगामी हुए। इनके शासन-काल में सरकारी आय घटी और आमदनी के अन्य मार्ग बन्द हुए। किन्तु तिस पर भी बादशाह दान देने में आनाकानी नहीं करता था। इससे राजकोष रीता हो गया था। बादशाह शीलवश न तो किसीकी बात टालता और न त्रुटियाँ सुधारने के लिये किसीको दण्ड आदि देता था-इसका फल यह हुआ कि राजगौरव भी प्रभाहीन हो गया।[1]

बहादुरशाह के परलोकगत होने पर अराजकता की अमलदारी आरम्भ हुई। बहुत से लोग मारे डर के नगर छोड़ कर सपरिवार भाग खड़े हुए। राजपथ पर आने जाने वालों की इतनी भीड़ अधिक हुई कि रास्ता निकलना कठिन हो गया। सैनिक लोग पिछले वेतन के लिये हाय हाय करने लगे। सब लोगों को अपने अपने जान माल की चिन्ता उत्पन्न हो गयी। कोई किसीको सहायता नहीं देता था। गुंडे बदमाशों की बन आई। वे जो चाहते वही कर डालते थे।

Baillie, Colonel. कर्नल बेली=यह सन् १७८० ई० की १०वीं सितम्बर को ईस्ट इण्डिया कम्पनी की ओर से हैदरअली द्वारा युद्ध में हार कर मय अपने २०० साथियों के पकड़े गये थे। हैदर की सेना में एक फरासीसी अफसर था, जिसके बीच में पड़ने से इनका वध नहीं हुआ।

Baird (General) जनरल बेयरड=सन् १७९० ई० की ४थी मई को कम्पनी की जिस सेना ने श्रीरङ्गपट्टम का दुर्ग हस्तगत किया उसमें यह भी एक थे।

[1] काफ़ीख़ाँ ने उसका चरित्र वर्णन करते हुए लिखा है:—

For generosity, munificence, boundless good nature, extenuation of fault and forgiveness of offences very few monarchs have been found equal to Bahadur Shah, in the history of the past times, and specially in the race of Timur. But though he had no vice in his character, such complacency and such negligence were exhibited in the protection of the state and in the Government and in the management of the country, that worthy sarcastic people found the date of his accession in the words Shah-i-be Khabr," "Heedless King."

Balaji Vishwanath. बालाजी विश्वनाथ=ये पहले पेशवा अथवा साहू के प्रधान सचिव या वज़ीरआज़म थे। इन्हींके समय से पेशवाओं का महत्त्व बढ़ा और शिवाजी के वंशधर पेशवाओं के हाथ की कठपुतली बने। यद्यपि इनके पूर्व चार पेशवा और भी हो चुके थे, तथापि वे नौकर थे और अपने स्वामी की आज्ञा में चलते थे। किन्तु विश्वनाथ नौकर हो कर भी स्वामी थे और इनकी शक्ति असीम थी। इसी से यह प्रथम पेशवा कहे जाते हैं।

Balaji Baji Rao. बालाजी बाजीराव=यह तीसरे पेशवा थे। यह सन् १७४० से १७६१ तक पेशवा रहे। अहमदशाह अब्दाली के साथ सन् १७६१ ई० में पानीपत में मरहटों का युद्ध हुआ था। उसमें मरहटों की शक्ति प्रायः समूल नष्ट हुई थी। उस युद्ध में पराजित होने के समाचार सुन बालाजी बाजीराव पेशवा अपने को नहीं सम्हाल सके और उनके मन पर इसका ऐसा धक्का लगा कि जून सन् १७६१ में वे मर गये। तीसरे पेशवा चतुर, व्यसनी, उदार और कृपालु थे। उस देश वाले अब तक उन्हें स्मरण करते हैं।

Balaji Janardan. बालाजी जनार्दन=यह नाना फरनवीस का नाम है। देखो फरनवीस।

Balban (Balin). बलबन या बालिन=यह असल में गुलाम था और अल्तमश के राजत्व काल में चालीस और गुलामों के साथ भर्ती हुआ था। इनमें से बहुत से ऊँचे पदों पर पहुँच गये थे। बलबन तो सन् १२६६ ई० में देहली के तख़्त पर बैठा और सन् १२८६ ई० तक इसने अमलदारी की। तख़्त पर बैठते ही इसने अपने साथी उन गुलामों को जो इसके साथ भर्ती हुए थे और ऊँचे पदों पर पहुँच गये थे, मरवा डाला। इसने ऊँचे पदों पर गुलाम और रज़ीलों को हटा कर ख़ान्दानी लोगों को नियुक्त किया। इस एक काम को छोड़ कर इसके अन्य प्रत्येक काम में स्वार्थ और संकीर्णता की गन्ध पायी जाती थी। मुग़लों के भगाये अनेक बादशाहों को इसके समय में देहली ही में शरण मिली थी। शाहज़ादा मुहम्मद इसीका पुत्र था जो साहित्य का परम अनुरागी था। इसने मेवाड़ का उपद्रव शान्त करने के लिये एक लक्ष राजपूतों का वध करवाया था और उस प्रान्त के अनेक जङ्गल कटवाये थे।

इसको पुत्रशोक की बड़ी भारी चोट सहनी पड़ी थी, अस्सी वर्ष की अवस्था में इसने पुत्रवियोग के शोक में अपने प्राण गँवाये थे।

Baji Rao I प्रथम बाजीराव=यह दूसरे पेशवा थे। यह बालाजी के ज्येष्ठ पुत्र थे और इन्हें सन् १७२० ई० में पेशवाई मिली थी और सन् १७४० की २८वीं अप्रेल तक अर्थात् मरते समय तक ये पेशवा रहे।

Baji Rao II द्वितीय बाजीराव=ये अन्तिम पेशवा थे। इनकी योग्यता की इतिहासलेखकों ने प्रशंसा नहीं की, किन्तु निन्दा की है। लिखा है ये निकम्मे तथा अदूरदर्शी थे और जिस रियासत का भार इनको सौंपा गया था, उसे इन्हों ने चौपट कर दिया। इनका प्रयत्न था कि नाना फड़नवीस और दौलत सिंधिया को अधिकारच्युत कर दें। नाना पूना में रहता था और युवक पेशवा का हुक्म नहीं चलने देता था। इसीसे युवक पेशवा ने उसे पकड़ कर क़ैद करना चाहा। सिंधिया की सहायता से नाना को पकड़ना निश्चित किया गया। २४ घंटे तक पूने में रक्त की धार बही और हल चल मची रही। नाना पकड़ कर अहमदनगर भेज दिया गया। शिरजी राव घटके नाना की जगह दीवान बनाये गये। ये सिंधिया के ससुर थे। इन्होंने पूनानिवासियों को ख़ूब सताया और उन पर बड़े बड़े अत्याचार किये।

पूना बड़े बड़े बीभत्स दृश्यों की रङ्गस्थली बन गया। सिंधिया ने चाहा कि मैं मध्य भारत में लौट जाऊँ, पर सेना का व्यय झेलने की उसमें शक्ति न थी। इससे कई बार घरेलू झगड़े टंटे हुए। फल यह हुआ कि नाना क़ैद से छोड़ा गया और बाजीराव के बहुत गिड़गिड़ाने पर नाना ने फिर मंत्रित्व पद को स्वीकार किया। कहा जाता है बाजीराव ने भेष बदल कर नाना से रात के समय भेंट की थी

और उसके पैरों पर गिर कर इस बात का उसे विश्वास दिलाया था कि नाना के पकड़ने की साज़िश में उसका हाथ न था ।

धीरे धीरे दक्षिण प्रान्त अङ्गरेज़ों के हस्तगत हुआ । बाजीराव का साथ देने वाला मरेहटे सरदारों में कोई न निकला । अन्त में अनेक प्रकार के कष्ट और यातना सह कर बाजीराव ने अङ्गरेज़ों के साथ सन्धि कर ली । अङ्गरेज़ों ने उन्हें बिठूर में रखा । यहाँ वे सन् १८५३ ई० के जनवरी मास में मर गये ।

Bakhtiar Khilji बखतियारखिलजी=यह क़ुतुबुद्दीन का एक गुलाम था और बङ्गाल बिहार का सूबेदार था । इसने बङ्गाल की राजधानी नदिया से हटा कर गौर में क़ायम की थी ।

Banda बन्दा=जहाँदार शाह आठवाँ मुग़ल सम्राट था । उसीका समकालीन सिक्खों का अगुआ बन्दा था । मुसलमानों के अत्याचारों से पंजाब के सिक्खों की नाक में दम हो गयी थी और उनके मन में मुसलमानों के प्रति घृणा उत्पन्न हो गयी थी । उनके अत्याचारों को न सह कर सिक्खों को मुसलमानों के विरुद्ध हथियार उठाने पड़े । बहादुरशाह ने पाँच वर्ष तक बन्दा और उसके साथियों का पीछा किया था । किन्तु वह बन्दा को न पकड़ सका और मर गया । सन् १७१६ ई० में बन्दा मय अपने ७४० अनुयायियों के पकड़ा गया और दिल्ली में बुरी तरह उसका और उसके साथियों का वध किया गया ।

Bappu Gokla. बापू गोखले=यह पेशवा बाजीराव का प्रधान मंत्री और प्रधान सेनापति था । सन् १८१७ के किरकी के युद्ध में यह था

Barnard, Sir H. बरनार्ड=सन् १८५७ के ग़दर में इन्होंने दिल्ली पर अङ्गरेज़ी विजय पताका फहरायी थी ।

Barwell, Mr. बारवेल=यह वारिन हेसटिङ्गज़ की काउंसिल के एक सदस्य थे ।

Basalat Jung. बसालत जङ्ग=हैदराबाद के निज़ाम, निज़ामुल मुल्क के छठवें पुत्र का नाम । यह सन् १८२८ ई० में मरा ।

Basara. बसारा=यह जङ्गम या वीरशैवी सम्प्रदाय का स्थापक बेलगाँव के पास सन् ११३० ई० में उत्पन्न हुआ था ।

Behlul Lodi बेहलोल लोदी=यह लोदी ख़ान्दान का स्थापक था । इसने सरहिन्द और पंजाब पर अधिकार जमा कर, सय्यद अलाउद्दीन को दिल्ली से मार भगाया था । पीछे इसने जौनपुर को जीता ।

इसने सन् १४५० से १४८८ ई० तक राज्य किया था ।

Beiram. गज़नी का बैराम=यह दूसरे मासूद का पुत्र था और लाहौर की गद्दी पर सन् १११८ ई० में बैठा था । इसने बहुत दिनों तक राज्य किया था और यह विचारसिक था । पर यह स्वयं अपने एक दुष्कृत्य के कारण निज वंश का नाशक हुआ । ग़ोर के शाहज़ादे क़ुतुबुद्दीन सूर ने बैराम की कन्या के साथ विवाह किया था । ससुर दामाद में परस्पर कुछ झगड़ा हुआ और ससुर ने दामाद को मार डाला । फल यह हुआ कि उसके दामाद के भाई ने बैराम पर चढ़ाई कर समूल बैराम को नष्ट कर डाला ।

इसने सन् १११८ ई० से ११५२ ई० तक राज्य किया था ।

Beiram. बैराम=यह एक गुलाम था और रज़िया बेगम का भाई था जो उसके बाद तख़्त पर बैठा और दो वर्ष दो मास तक राज्य कर के, निज सैनिकों द्वारा मार डाला गया । यह निर्बल एवं निठुर मनुष्य था । सन् १२३९ से १२४१ तक इसने राज्य किया था ।

Beiram Khan. बैरामख़ाँ=यह अकबर का अभिभावक था और कुछ दिनों तक इसीकी तूती बोली थी ।

Bentinck, Lord W. बेनटिङ्क=यह भारतवर्ष के नवें गवर्नर जनरल थे । इन्हींके समय में १४ वीं दिसम्बर सन् १८२९ ई० को हिन्दुओं की सती-प्रथा बन्द की गयी थी । इन्होंने प्रेस को स्वतंत्रता भी दी थी । सन् १८३५ ई० में ये इङ्गलेण्ड लौट कर चले गये थे ।

Bhaskar, Pandit. भास्कर परिडत=राघोजी के सेनापति थे और इन्होंने अलीवर्दीखाँ को हराया था।

Boughton, Mr. बाउटन=यह एक अङ्गरेज़ जर्राह था, जिसने शाहजहाँ की लड़की को अच्छा कर पुरस्कार में अपने देशवासियों के लिये अनेक अधिकार सम्राट् से पाये थे।

Boyle, Mr. बाली=सन् १८५७ ई० के बलवे में इसने आरा में कुछ सिक्खों की सहायता से एक सप्ताह तक ३००० बलवाइयों का सामना किया था। सो भी एक मामूली बङ्गले में रह कर। कुँअरसेन भी इस वीर का कुछ न बिगाड़ सका था।

Braithwaite, Col. ब्रेथवेट=यह अङ्गरेज़ी सेना के एक कर्नल थे और टीपू ने इन्हें हराया था।

Brydon, Dr. ब्राइडन=सन् १८४१ ई० में अफगानिस्तान में मेकनाटन की हत्या के बखेड़े में जो बहुत से अङ्गरेज़ बेईमानी से शत्रुद्वारा मारे गये-उनमें एक डा० ब्राइडन थे जो जीते जागते बचे थे और जिन्होंने जलालाबाद में पहुँच कर दुःख-कहानी कही थी।

Burke, Edmond. बर्क=यह इङ्गलेण्ड का एक प्रसिद्ध वक्ता था। भारत के प्रसिद्ध प्रथम गवर्नर जनरल वारिन हेसटिङ्गज़ को अभियुक्त बनाते समय हाउस आफ़ कामन्स में इसने जो वक्तृता दी थी-वह बड़े मार्के की है।

Burnes, Alexander. बरनस=ये भी काबुल में एक मुसलमान हत्यारे के हाथ से मारे गये थे।

Bussy, M. बिसी=जैसे अङ्गरेज़ों में राबर्ट क्लाइव ने भारतवर्ष में अपनी जाति की उन्नति की उसी प्रकार तत्कालीन फरासीसियों में बिसी ने भारतवर्ष में अपनी जाति का हितसाधन किया था। इसीसे इसे "the Trench Clive" भी कहते हैं।

C.

Canning, Lord. कैनिङ्ग=ये भारतवर्ष के चौदहवें गवर्नर जनरल थे। सन् १८५६ से सन् १८६१ ई० तक थे भारतवर्ष में रहे। ये २६ फ़रवरी सन् १८५६ ई० को यहाँ की गवर्नर जनरली के पद पर आरूढ हुए थे। ये बड़े विद्वान्, अनुभवी राजनीतिविशारद और बड़े धैर्यवान् और दृढ़ थे। इनके समय में सन् १८५७ ई० का बलवा आरम्भ हुआ और इन्हींके समय में वह समाप्त भी हुआ।

Catherine of Braganza. कैथराइन आफ़ ब्रेगेंज़ा=इन्हींके विवाह में इङ्गलेंड के किंग द्वितीय चार्ल्स को बम्बई का टापू दहेज़ में मिला था। जिसे ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कर्मचारियों ने भारतवर्ष में अपना प्रधान-स्थान बनाया और वहाँ पर एक दुर्ग भी निर्माण किया। यहीं से अङ्गरेज़ों का भाग्योदय हुआ था।

(Colonel) Champion. चेम्पियन=अवध के वज़ीर से चालीस लाख रुपये ले कर हेसटिङ्गज़ साहब ने जो अङ्गरेज़ी फ़ौज भाड़े पर रुहेलों का नाश करने को भेजी थी, उसके प्रधान कर्नल चेम्पियन थे। हाफ़िज़ रहमतख़ाँ को जो उस समय रुहेलों का सर्दार था, जिसके पास चालीस हज़ार सैनिक थे, कर्नल चेम्पियन ही ने सन् १७७४ ई० के अप्रेल मास में हराया था। कर्नल चेम्पियन नौकर थे इसलिये गवर्नर जनरल की आज्ञा को टाल न सके। पर पीछे से इन्होंने हेसटिङ्गज़ के इस कृत्य की निन्दा लेखों द्वारा ख़ासी की।

Chanda Sahib चन्दा साहिब=सन् १७४० ई० में दोस्तअली को मरेहटों ने लड़ाई में मारा। क्योंकि मरेहटे दोस्तअली के उत्तराधिकारी सफ़दरअली की ओर से लड़ने गये थे। इन्हीं मरेहटों ने त्रिचनापली में जा कर चन्दा साहब को अधिकारच्युत किया और उसे पकड़ कर वे सतारा ले गये और वहाँ उसे सात वर्ष तक जेलख़ाने में रखा। असल में चन्दा साहब ने विश्वासघात कर के त्रिचनापली पर अधिकार किया था। क्योंकि त्रिचनापली में पहले एक हिन्दू राजा था। जब उसकी मृत्यु हुई; तब वहाँ की गद्दी के लिये कुछ लोगों में झगड़ा हुआ। यह देख मृत राजा की विधवा रानी मीनाक्षा अम्माल ने आरकट के नवाब दोस्तअली से सहायता माँगी। दोस्तअली ने विधवा

रानी की सहायता के लिये चन्दा साहब को भेजा । चन्दा साहब ने रानी का पक्ष लेने के लिये शपथ खायी और नगर में प्रवेश कर रानी के साथ विश्वासघात किया । वह रानी को क़ैद कर स्वयं गद्दी पर बैठ गया । इस घटना के सोलह वर्ष बाद चन्दा साहब ठीक उसी स्थान पर मरेहटों द्वारा पकड़ा गया, जहाँ उसने झूठी शपथ खायी थी । मुज़फ़्फ़र के कहने से डूपले ने सात लाख रुपये दे कर चन्दा साहब को छुड़ाया था । फिर फ़रासीसियों ने मिल कर चन्दा साहब को आरकट के तख़्त पर अनवारउद्दीन की जगह बिठाना चाहा और वे सफल भी हुए । उसका सहायक मुज़फ़्फ़र जङ्ग तो दखिन का बादशाह बना और चन्दा साहब आरकट का नवाब ।

अनवारउद्दीन का छोटा पुत्र मुहम्मदअली मरेहटों और अङ्गरेज़ों से मिला और आरकट की गद्दी पर स्वयं अधिकार करना चाहा । दोनों ने मिल कर उसे सहायता दी । मुहम्मदअली की जीत हुई । चन्दा साहब पाँडीचरी में भाग गया ।

सन् १७५२ ई० की ११ वीं जून को तंजोर के सेनापति मानिक जी के हाथ में चन्दा ने आत्मसमर्पण किया । मानिक जी ने उसकी छाती में छुरी भोंक दी और उसका सिर काट कर उसके प्रतिद्वन्द्वी के चरणों में जा रखा । पीछे से वह कटा हुआ सिर मैसूर के सेनापति नन्दराज को दिया गया, जिसने उसे श्रीरङ्गपट्टम में भेज दिया वहाँ वह तीन दिन तक फाटक पर टँगा रहा ।

Chand Bibi चान्द बीबी=यह अहमदनगर के सुलतान हुसेन निज़ाम शाह की बेटी और बीजापुर के अली आदिलशाह की विधवा स्त्री थी । यह दुनिया भर की स्त्रियों में वीर रमणी कह कर प्रसिद्ध है । जिस समय सन् १५९५ ई० में मुराद ने अहमदनगर पर चढ़ाई की उस समय चान्द बीबी ने जो वीरत्व प्रदर्शित किया था वह अद्भुत है । उसने बीजापुर के शाह से सुलह की और अबीसीनियन उमरावों के साथ मैत्री कर इन दोनों को मिला लिया था । शहरपनाह की दीवाल में मुराद के सैनिकों ने जब सेंध मार कर नगर के भीतर आने जाने का मार्ग बनाया, तब चान्द बीबी कवच पहन चेहरे पर नक़ाब डाल और हाथ में नङ्गी तलवार ले कर उस सेंध के मुँह पर जा खड़ी हुई । उसे रणक्षेत्र में खड़ी देख उसकी सेना ने बड़ी वीरता और उत्साह से शत्रुओं के साथ युद्ध किया और फल यह हुआ कि दिन डूबते ही मुराद की सेना को पीछे हट जाना पड़ा । शत्रु सेना के पीछे हटते ही उसी समय दीवाल की मरम्मत का काम आरम्भ किया गया और सबेरा होते ही वह दीवाल ज्यों की त्यों बनवा कर तैयार कर दी गयी । मुराद उस वीर रमणी की वीरता देख मुग्ध हुआ और उसने चान्द बीबी के साथ सुलह कर ली ।

Chand Kuar, चान्दकुअर=ये लाहोर के दलीपसिंह की राजमाता थीं । इन्होंने पंजाब की स्वाधीनता की रक्षा के लिये अङ्गरेज़ी फ़ौजों के साथ दिल खोल कर युद्ध किया था । इन पर यह अभिशाप लगाया गया था कि इन्होंने लाहोर में पकड़े हुए अङ्गरेज़ क़ैदियों का वध करने का षड्यंत्र रचा था । इस अपराध के लिये ये लाहोर से हटा कर बनारस में रखी गयीं ।

इसमें सन्देह नहीं कि राजमाता चान्दकुअर ने जैसी वीरता से शत्रुसेना का सामना किया था, उसी प्रकार उसकी अधीनस्थ सेना के सरदार और सेनापति भी युद्धक्षेत्र में प्राण पण से युद्ध करते तो पंजाब सिक्खों की स्वाधीनता अक्षुण्ण बनी रहती और आज लाहोर भी काबुल की तरह एक स्वतंत्र राज्य समझा जाता । पर गृहकलह के कारण ऐसा न हो सका । जिन वीरों पर चान्दकुअर को पूरा विश्वास था वे लोभवश अथवा ईर्ष्यावश गुप्त रूप से शत्रुसेना के सहायक बने और समय पर उन लोगों ने उस व्यक्ति के साथ विश्वासघात किया । जिसके श्रम से उनके शरीर पले थे ।

Changez Khan (१) चंगेज़ख़ाँ ।

यूरोपियन इतिहासलेखकों ने एशिया के सुविशाल उत्तर-पश्चिम भूखण्ड में बसने वाले असंख्य अधिवासियों का नाम तुर्क तातार और मुग़ल बतलाया है । किन्तु इस भूखण्ड में रहने वाली इन तीन ज़ातियों की भी धर्म, भाषा और आचार व्यवहार के विचार से अनेक शाखा-प्रशाखाएँ हैं । यद्यपि स्मरणातीत समय से ये जातियाँ दक्षिण एशिया के विपुल धनशाली नगरों को लूट कर, उनको विध्वंस करती चली आती हैं अथवा किसी किसी विजित नगरों में इन जातियों के लोगों ने अपने आवास-स्थान भी बना लिये हैं; तथापि ईसा की दसवीं शताब्दी के पूर्व इन जातियों में से किसी भी जाति का स्थायी अभ्युदय एवं उनके प्रबल प्रताप का प्रादुर्भाव नहीं हो पाया था । ईसा की दसवीं शताब्दी में उत्तर-पश्चिम एशिया में बसने वाली जातियों के कुछ लोगों ने "ख़लीफ़ा-साम्राज्य" में प्रवेश किया । तभी से इनका अभ्युदय हुआ और ये सभ्य जातियों की गणना में गिने जाने लगे । तिस पर भी इस सुविस्तीर्ण भूखण्ड के अधिकांश अधिवासी अनुन्नत दशा ही में पड़े हुए थे । इस अभ्युदय काल से डेढ़ सौ वर्ष बाद मुग़ल जाति के बरलस वंश में चङ्गेज़ख़ाँ नामक एक व्यक्ति का जन्म हुआ । उसने एशिया के सुविस्तृत अंश को मथ कर, समस्त एशिया और योरुप को कम्पायमान कर दिया । इसके बाद उसके पौत्र हलाकू ने ख़लीफ़ा-साम्राज्य को सम्पूर्ण रूप से ध्वस्त कर डाला ।*

हम चङ्गेज़ख़ाँ का वृत्तान्त अपने पाठकों को अवगत कराना चाहते हैं—किन्तु उसका सुश्रृङ्खलाबद्ध इतिहास तब तक असम्पूर्ण ही रहेगा, जब तक हम उसके पूर्वपुरुषों का कुछ परिचय न दे लें ।

मुसलमान इतिहासलेखकों ने लिखा है कि पैग़म्बर नोहा सुविस्तीर्ण भूभाग के अधीश्वर थे । उनके तीन पुत्र थे । महात्मा नोहा ने, इतने बड़े राज्य का सुशासन करने के लिये, उसके तीन भाग कर तीनों पुत्रों को उनका शासक बना दिया था ।

तदनुसार उनके तृतीय पुत्र इयफस आधुनिक चीन, तुर्किस्तान और आक्सस नदी के तीरवर्ती प्रदेशों के शासक हुए और उन्होंने वल्गा नदी के तट पर अपनी राजधानी बनायी । इन्हीं इयफस को तुर्क लोग अपना आदिपुरुष बतलाते हैं ।

इयफस के आठ[१] पुत्र थे । इयफस के ज्येष्ठ पुत्र का नाम तुर्क था । तुर्क ने पितृराज्य का कुछ अंश अपने हाथ में कर मलुक नामक सुशोभित स्थान पर अपनी राजधानी बनवायी । तुर्क के अधिकृत भूखण्ड का नाम तुर्किस्तान पड़ा और उस देश के रहने वाले तुर्की कहलाये । तुर्क के बाद उनकी पाँचवीं पीढ़ी में अलिंजाख़ाँ उत्पन्न हुए । पहले उनके कोई लड़का न हुआ, किन्तु वृद्धावस्था में उनके दो यमज पुत्र हुए और उनका घर बसा । अलिंजाख़ाँ ने उन दोनों लड़कों का नाम क्रमशः तातारख़ाँ और मुग़लख़ाँ रखा । जब दोनों पुत्र बड़े हुए, तब अलिंजाख़ाँ ने अपने विशाल राज्य को दो भागों में बाँटा और उन दोनों को अपने दोनों बेटों को सौंप दिया । अनन्तर स्वयं वे अपने जीवन काल की सन्ध्या को ईश्वर स्मरण में प्रशान्त चित्त से व्यतीत करने लगे । आरम्भ में दोनों भाई मिल कर शासन करते थे, किन्तु पीछे से उन दोनों में परस्पर कुछ झगड़ा हुआ, अतः उन दोनों ने अपने अपने राज्य का स्वयं स्वतंत्र शासन करना आरम्भ किया । एक ने अपने राज्य का नाम "तातार-आइ-माक" और दूसरे ने "मुग़ल-आइ-माक" रख कर, दो नये वंशों की सृष्टि की ।

मुग़लख़ाँ के बाद नवीं पीढ़ी में इल्लाख़ाँ हुए । उनके समय में तूर नामक एक मनुष्य बड़ा प्रतापी राजा राज्य करता था । पर राज्यलोलुप

---

* मुहम्मद ने धर्म-प्रचार के साथ ही साथ अरब देश को अपने शासनाधीन कर लिया था । उनके मरने के बाद उनके उत्तराधिकारी ख़लीफ़ा नाम से प्रसिद्ध हुए । उन्होंने अपने राज्य की सीमा को बहुत बढ़ा लिया था । आरम्भ में ख़लीफ़ा की मदीना राजधानी थी—पीछे से क्रमशः दमस्कस और बग़दाद नगर उनकी राजधानी बने ।

१ किसी किसी ने ग्यारह पुत्र बतलाये हैं ।

तूर ने इलख़ाँ को हरा कर उनसे उनके राज्य को छीन लिया। तातार और मुग़लख़ाँ में परस्पर झगड़ा हो जाने के कारण वंशपरम्परागत परस्पर वैमनस्य चला आता था। तूर ने जब इलख़ाँ पर चढ़ाई की, तब तातारवंशीय अधिपति सूजाख़ाँ ने उसकी सहायता की। मुग़लख़ाँ का एक पुत्र था, उसके एक पुत्र इतुर ने एक स्वतंत्र वंश की नींव डाली। इंगुर जाति भी ज्ञातिशत्रु के विनाशनार्थ तूर के दल में जा मिली। तूर ने एक बड़ी सेना ले कर इलख़ाँ के विरुद्ध यात्रा की। मुग़ल जाति इलख़ाँ की सर्वथा अनुरक्त थी, इससे इलख़ाँ के शत्रु की गति रोकने के लिये, मुग़लों ने इलख़ाँ के साथ युद्ध किया। रणक्षेत्र में बहुत से तातार और इंगु के योद्धा शत्रु के द्वारा मारे गये। राजा तूर ससैन्य रणक्षेत्र से भागा। मुग़लों की सेना ने उसका पीछा किया इसीसे मुग़लों का सत्यानाश हुआ। राजा तूर मुग़लों को धोका देने के लिये रणक्षेत्र से भागा था। मुग़लों ने शत्रु का पीछा करने के लिये अपनी सुदृढ़ अवस्थान-भूमि छोड़ दी और इस प्रकार उनका व्यूह भङ्ग हो गया। यह सुयोग पा कर शत्रु-सेना ने रात्रि के समय मुग़ल सेना को असावधान पा कर आक्रमण किया। मुग़ल सेना से कुछ भी करते धरते न बना और देखते देखते उसका समूल नाश हो गया। केवल इलख़ाँ का बेटा कारआनख़ाँ और उसके साले का पुत्र नगुज़ख़ाँ सस्त्रीक दूसरी जगह होने के कारण बच गये। मुग़लख़ाँ के बाद तीसरी पीढ़ी में आगुज़ था। जब वह अपने चचा द्वारा बहुत सताया गया, तब वह भाग कर चीन राज्य में रहने लगा। तूर द्वारा सारा मुग़लवंश नष्ट कर दिया गया था, सुतरां आधुनिक मुग़ल जाति के लोग आगुज़ के चचा कारआनख़ाँ और नगुज़ ही के वंशधर समझने चाहिये।

अस्तु, रात होने पर ये चार जन अर्थात् कारआनख़ाँ और उसकी स्त्री, तथा नगुज़ और उसकी स्त्री, धन रत्न, गौ, भेड़ आदि ले कर पास के पर्व्वत पर भाग गये। ये लोग उस दुरारोह पंथ से निरापद् स्थान में जा पहुँचे। फिर इधर उधर घूमते फिरते व एक शस्यराजि सुशोभित उपत्यका[1] में पहुँचे। वहाँ की प्राकृतिक शोभा देख वे मुग्ध हो गये और वहाँ ही रहने के लिये उन्होंने मकान बनाये। इसी स्थान में कारआन और नगुज़ख़ाँ का वंश धीरे धीरे बढ़ कर अनेक शाखा प्रशाखाओं में बँट गया। यहाँ तक कि स्थानाभाव से उस जगह उन सबका रहना कठिन हुआ। अब्दुलफ़ज़ल के मतानुसार दो हज़ार वर्ष और अब्दुलग़ाज़ी के मतानुसार चार सौ वर्ष तक मुग़ल इस स्थान में रहे। इनमें से कौन सा मत ठीक है, इसका निर्णय करना कठिन है।

अस्तु, मुग़ल जाति ने इरगानकुन उपत्यका को छोड़ा और फिर पैतृक राज्य के उद्धार का संकल्प किया। जिस मार्ग से उनके पूर्व्वपुरुष उस उपत्यका में पहुँचे थे, वह मार्ग भूकम्पों के कारण बन्द हो गया था। अतः इन लोगों को पैतृक राज्य में पहुँचने के लिये बड़े परिश्रम से नया मार्ग खोजना पड़ा। नये मार्ग से कुछ दूर आगे बढ़ कर उन लोगों को लोहे की एक खान दिखलायी पड़ी जिससे आगे का मार्ग रुका हुआ था। तब उन लोगों ने अग्नि द्वारा लोहे को टिघला कर तथा ठोंक पीट कर रास्ता निकाला। उस समय मुग़लों की भूमि तातार-आड़-माक जाति के अधिकार में थी। इन नये मुग़लों ने लड़ाई में उनको परास्त कर फिर से मुग़ल भूमि पर अपना अधिकार जमाया। आगुज़ के चचा के वंश वाले चीन राज्य से मुग़ल भूमि में आ पहुँचे और नये मुग़लों से मिल गये। मुग़लों के पैतृक राज्य में लौट कर आने के समय मुग़लों के इयलदाज़ख़ाँ मुखिया थे।

अब्दुलफ़ज़ल के मतानुसार इयलदाज़ख़ाँ ने फारिस के सुविख्यात न्यायपरायण अधिपति

---

[1] यह उस उपत्यका का नाम है जहाँ नगुज़ख़ाँ और कारआनख़ाँ ने जा कर अपने रहने के लिये भवन निर्माण किये थे।

Major H. S. Raverty ने लिखा है।

The mountains referred to are evidently those mighty ranges towards the sources of *Salinga* and its upper tributaries.

नौशेरवाँ के राजत्व काल में अपनी पैतृक भूमि पर फिर से मुग़लों का अधिकार जमाया था। नौशेरवाँ ने सन् ५३१ ई० से ५७१ ई० तक राज्य किया। नौशेरवाँ के राजत्व काल में सन् ५७८ ई० में पैग़म्बर मुहम्मद का जन्म हुआ। मुहम्मद ने ऐसे न्यायपरायण राजा के राजत्वकाल में जन्म लेने पर अपने को सौभाग्यशाली समझा था।

इस समय मुग़ल जाति अनेक शाखाओं में विभक्त हो चुकी थी। प्रत्येक शाखा का पृथक् पृथक् मुखिया था और एक दूसरे का आधिपत्य स्वीकार नहीं करता था। पशुओं का शिकार कर के जो मांस मिलता और अनायास जो मछलियाँ हाथ लगतीं उन्हींसे ये लोग अपना पेट भरते थे। पालतू और बनैले पशुओं के चमड़े और उनके रुओं के द्वारा ये अपने शरीर को ढकते थे। अर्थात् उस समय मुग़ल जाति अज्ञानरूपी अन्धकार से ढकी हुई थी।

इयलदाज़ख़ाँ की मृत्यु के बाद उसका पुत्र जुइना बहादुर पितृसिंहासन पर बैठा। जुइना के अलान कोडज्या नाम्नी एक सर्वगुणसम्पन्ना एवं रूपलावण्यवती कन्या थी। उसके चचेरे भाई दूवन ने उसके साथ विवाह कर लिया। पिता के सामने ही दूवन के दो पुत्र हुए। अनन्तर वह मर गया और जुइना की लड़की विधवा हो गयी। जुइना बहादुर के मरने पर उसकी लड़की के दोनों पुत्र उसके राज्य के उत्तराधिकारी हुए। पर उस समय उनकी उम्र बहुत कम थी अतः उनकी माँ राज्य का सारा काम काज देखने भालने लगी।

अलान कोडज्या ने दूसरा विवाह नहीं किया था। एक दिन रात्रि में वह पड़ी सो रही थी। इतने में उसे जान पड़ा कि एक अपूर्व प्रकाश उसके शरीर में प्रवेश कर रहा है। इसका फल यह हुआ कि उसके गर्भ रह गया। इस बात के प्रकाश होते ही उसकी जाति बिरादरी वालों ने उसकी बात पर विश्वास न कर के, उसकी चारों ओर निन्दा करनी आरम्भ की। धीरे धीरे जब प्रसव का समय आया, तब उसने एक साथ तीन पुत्र जने। इन तीनों में सबसे छोटे का नाम बूजअरख़ाँ पड़ा और जब वह बड़ा हुआ तब मुग़लस्थान के एक भाग का वह अधिपति हुआ।[1]

बूजअरख़ाँ के बाद की छठवीं पीढ़ी में तमनाईख़ाँ हुआ। उसके दो पत्नी थीं। पहली स्त्री के गर्भ से उसके सात पुत्र हुए। दूसरी से दो यमज पुत्र हुए। एक का नाम कबाल और दूसरे का कजुली था।

एक दिन रात में कजुली ने एक अपूर्व स्वप्न देखा। अर्थात् उसने देखा कि कबालख़ाँ के शरीर से तीन चमकते हुए नक्षत्र निकले हैं और उन्होंने अपने प्रकाश से समस्त संसार को प्रकाशमय कर

१ इस असम्भव दन्तकथा के प्रचलित होने के विषय में मेजर रेवरटी ने लिखा है कि प्रत्येक इतिहासलेखक ने इस घटना को भिन्न भिन्न रूप से लिखा है। बूजअरख़ाँ के वंश ही में चङ्गेज़ख़ाँ ने जन्म लिया था। उसकी जीवनी की पर्यालोचना करने पर देखा जाता है कि वह अपने को सदा देवबलशाली कह कर प्रसिद्ध करने का यत्न किया करता था। पीछे से जब चङ्गेज़ख़ाँ उन्नति की पराकाष्ठा पर पहुँचा-तब उसने यह बात प्रमाणित करने के लिये कि उसका जन्म देवाश्रित वंश में हुआ है, यह असम्भव दन्तकथा गढ़ डाली। यह दन्तकथा भी स्वार्थ से रहित नहीं है। सुप्रसिद्ध रासकाइन साहब बाबर और हुमायूँ नामक ग्रन्थ में लिखते हैं कि चङ्गेज़ख़ाँ के वंशधरों द्वारा शासित राज्य में तैमूरलङ्ग हुआ। तैमूरलङ्ग को तृष्णा उत्पन्न हुई कि वह भी किसी प्रकार राज्यशासन का अधिकारी हो। साथ ही उसने यह भी सोचा कि यदि मैं अपने को चङ्गेज़ख़ाँ का वंशोद्भव बतलाऊँ तो सहज ही में मेरा अभीष्ट सिद्ध हो। तैमूरलङ्ग का जन्म, चङ्गेज़ख़ाँ की मृत्यु के लगभग सौ वर्ष पीछे हुआ था। यद्यपि इस बीच में चङ्गेज़ख़ाँ के वंश वाले संख्या में अधिक होने के कारण अनेक स्थानों में बँट गये थे, तथापि एक ऐसे व्यक्ति का, जिससे उस वंश से कुछ भी सम्पर्क न था, अपने को उस वंश का बतलाना सहज न था। किन्तु पुरुषानुक्रम से चङ्गेज़ के वंश के साथ सम्पर्क बतला कर उनके दल में मिलने से लोग सहज ही में उसकी बात पर विश्वास कर सकते थे। यह सोच कर ही तैमूरलङ्ग ने यह दन्तकथा प्रचारित की थी। कबालख़ाँ के वक्षःस्थल से निकला हुआ चतुर्थ नक्षत्र चङ्गेज़ख़ाँ था और कजुलीख़ाँ के वक्षःस्थल से निकला हुआ आठवाँ नक्षत्र तैमूरलङ्ग था।

दिया है। उनमें इतना अधिक प्रकाश था कि अन्य तारे भी उनके प्रकाश से चमकने लगे। अनन्तर उनके अस्त होने पर भी बहुत काल तक पृथिवी पर प्रकाश छाया रहा। इसके बाद कजुली की आँख खुल गयी। इसके थोड़ी ही देर बाद उसकी फिर आँख लगी। आँख लगते ही उसने फिर एक स्वप्न देखा। इस बार उसने देखा कि उसकी छाती से सात नक्षत्र क्रमशः निकले और निकल कर अस्त हो गये। आठवीं बार एक बड़े आकार का नक्षत्र निकला, जिसके प्रकाश से सारा पृथिवीमण्डल प्रकाशमय हो गया। अनन्तर उस नक्षत्र से छोटे छोटे कई तारागण निकले जो आकाशमण्डल में छिटक गये। उस बड़े नक्षत्र के अस्त होने पर भी उन छोटे तारों के प्रकाश से पृथिवी पूर्ववत् प्रकाश युक्त रही। जब सवेरा हुआ, तब कजुलीख़ाँ ने इस स्वप्न का हाल जा कर अपने पिता से कहा। उनके पिता ने कहा—"कवालख़ाँ, तुम्हारे वंश के तीन राजा क्रमान्वित राज्य करेंगे। उनके बाद जो जन्म लेगा वह पृथिवी के अधिकांश भाग का अधिपति होगा और उसके प्रत्येक वंशधर पृथक् पृथक् भूखण्ड के अधिपति होंगे। कजुली बहादुर! तुम्हारे वंश के सात जन राज्य करेंगे, अनन्तर जो आठवाँ होगा वह समग्र मनुष्य जाति पर प्रभुत्व करेगा और उसके बाद उसके वंशधर भी पृथिवी के एक एक भाग में नये नये राज्य स्थापन करने में समर्थ होंगे।"

इस व्याख्या के समाप्त होते ही कवालख़ाँ और कजुली बहादुर ने प्रतिज्ञा की कि कवाल और उसके वंशधर पीढ़ी दर पीढ़ी राजा होंगे और कजुली बहादुर उसके वंशधर पीढ़ी दर पीढ़ी प्रधान मंत्री और सेनापति के पद पर नियुक्त होंगे। तदनुसार तमराईख़ाँ की मृत्यु के बाद कवालख़ाँ राजा और कजुलीख़ाँ मंत्री हुए।

कवालख़ाँ बड़े प्रतापी राजा हुए। इससे मुग़ल वंश की अनेक शाखाओं के लोग उनसे आ कर मिल गये। उस समय मुग़लों के अधिकृत राज्य की पूर्व दिशा में खिता राज्य विद्यमान था। वहाँ के अधिपति अलतानख़ाँ ने कवालख़ाँ के साथ मैत्री करने के अर्थ, उन्हें अपनी राजधानी में बुलाया। जब कवालख़ाँ खिता राज्य की राजधानी में पहुँचा; तब अलतानख़ाँ ने उसका बड़ी धूमधाम से स्वागत किया। किन्तु एक बार कवालख़ाँ को मत्तावस्था में दुष्कर्म करते देख, अलतानख़ाँ विरक्त हुआ और कवालख़ाँ को केवल पगड़ी और कमरबन्द दे कर विदा कर दिया कवालख़ाँ अपनी राजधानी की ओर प्रस्थानित हुआ। इस प्रकार सहज में कवालख़ाँ को छोड़ देने के लिये, अलतानख़ाँ के मुसाहिब लोग उसकी निन्दा करने लगे। अतः अलतानख़ाँ ने कवाल को पुनः अपनी राजधानी में बुलाने के लिये दूत भेजा। कवालख़ाँ ने पुनः वहाँ जाना अस्वीकार किया। तब अलतानख़ाँ ने उसे बलपूर्वक लाने के लिये सेना भेजी। उस समय कवालख़ाँ सनजूति नामक एक बन्धु के शिविर में विश्राम कर रहा था। ऐसे समय में अलतानख़ाँ की भेजी हुई सेना वहाँ पहुँची। कवालख़ाँ उस सेना के साथ जाने के लिये प्रस्तुत हुआ। किन्तु सनजूति ने रोका और निज राजधानी में शीघ्र लौट जाने के लिये उसे एक तेज़ घोड़ा दिया। कवालख़ाँ इस प्रकार अपने एक बन्धु की सहायता से अलतानख़ाँ के चुंगल से निकल गया। अलतानख़ाँ की सेना उसके पीछे दौड़ती हुई मुग़लस्तान में पहुँची और कवालख़ाँ की आज्ञा से काट डाली गयी।

इसी समय कवालख़ाँ का ज्येष्ठ पुत्र डकिनबरकाक देश में भ्रमण कर रहा था। वह दुर्भाग्यवश मुग़ल जाति के पुराने शत्रु तातारियों के हाथ पड़ा। उन लोगों ने उसे पकड़ कर, अलतानख़ाँ के पास भेज दिया। अलतानख़ाँ ने बड़ी निर्दयता से उस निर्दोष राजकुमार की हत्या कर कवालख़ाँ के दुर्व्यवहार का बदला लिया।

इस घटना के कुछ ही दिनों बाद कवालख़ाँ की मृत्यु हुई। उसका छोटा बेटा कवालख़ाँ बाप के सिंहासन पर बैठा और भ्रातृहन्ता अलतानख़ाँ से भाई की हत्या का बदला लेने के लिये उसने ससैन्य खिता राज्य पर चढ़ाई की। कवालख़ाँ ने घोर संग्राम कर, शत्रु की सेना को परास्त किया और वहाँ लूट मार मचा बहुत सा धन ले, वह अपनी राजधानी को लौट आया।

कवालख़ाँ की मृत्यु के बाद उसका छोटा भाई बरतन बहादुर[1] राजसिंहासन का अधिकारी हुआ।

---

१ इसने अपने पूर्वपुरुषों की उपाधि "ख़ाँ" का परित्याग कर "बहादुर" धारण की थी।

वरतन बहादुर के तख़्त पर बैठने के कुछ ही दिनों बाद कजुलीख़ाँ की मृत्यु हुई। पूर्व नियमानुसार उस का पुत्र इरदम मंत्री बनाया गया। मंत्री होने के बाद इरदम ने "वरलस" की उपाधि ग्रहण कर के मुग़ल वंश की एक नयी शाखा की नींव डाली।

वरतनबहादुर के मरने पर उसका पुत्र अयसूक बहादुर पितृसिंहासन का अधिकारी हुआ। इस घटना के थोड़े ही दिनों बाद इरदम-सि-वरलस ने प्राण त्याग किये और उसका पुत्र शगुजीजान मंत्री के पद पर नियुक्त हुआ। यमसूक बहादुर ने अपने मंत्री शगुजीजान की सहायता से एक बड़ी भारी सेना एकत्र की और अपने वंश के पुराने शत्रु तातारियों पर आक्रमण कर उनको सम्पूर्ण रूप से विध्वस्त किया। अनन्तर दिलोनबूल दागे में लौट यमसूक बहादुर अधिकतर इसी स्थान पर रहा करता था। वहाँ उसकी बेगम ने सन् ११५५ ई० में एक पुत्र जना। इस बालक का नाम रखा गया—तमूरचि। किन्तु पीछे से यह बालक चंगेज़ख़ाँ के नाम से जगद्विख्यात हुआ। शगुजीजान ने नवजात शिशु के अङ्गों में अनेक शुभ लक्षणों को देख कर कहा था कि कवालख़ाँ के वक्षःस्थल से जो चमकता हुआ नक्षत्र निकला था वह यही है।

सन् ११६७ ई० में यमसूक बहादुर की मृत्यु होने पर उसका बारह वर्ष का पुत्र तमूरचि पितृसिंहासन पर बैठा।

तमूरचि के तख़्त पर बैठने के समय तक भी सभ्यता की विमल ज्योति ने मुग़लस्तान में प्रवेश कर, अज्ञानान्धकार को दूर नहीं कर पाया था। उस समय भी वे लोग पशुपालक थे। प्रत्येक सम्प्रदाय के लिये मुग़लस्तान में एक एक अंश निर्दिष्ट था। वे लोग सरदी गर्मी के कारण अथवा पालतू पशुओं के लिये चारे की कमी देख कर ही, एक स्थान को छोड़ दूसरे स्थान में सकुटुम्ब जा बसते थे। इसके लिये उन्हें या तो कपड़े के डेरे खड़े करने पड़ते थे अथवा छप्पर डाल कर कुटी बनानी पड़ती थी। इन्हींमें वे रहते थे। घोड़े, भेड़ें ही उनकी एकमात्र सम्पत्ति थी। दूध और पालतू पशुओं का मांस ही उनका आहार था। किन्तु मुग़ल जाति के लोग पालतू पशुओं को सहसा नहीं मारते थे। वे खेती बारी के अनुरागी न थे। किन्तु ऐसा कर के स्थायी रूप से जो लोग कहीं बस जाते थे, वे उनकी अवज्ञा करते थे। सन्तान पालन, भोजन की सामग्री का बनाना और अन्य घर के काम स्त्रियाँ किया करती थीं। खुले हुए मैदानों में रहने से, घोड़ों की पीठ पर रह कर अधिक समय बिताने से, भूख प्यास को सहने से, और शत्रु के अचानक आक्रमण के भय से सदा शस्त्र धारण करने के कारण वे कष्टसहिष्णु और वीर्यवान् हो गये थे। उनकी राज्यशासनप्रणाली Patnarchal थी। अर्थात् समग्र सम्प्रदाय या जाति अपने को एक मूल पुरुष की सन्तान समझ कर सानन्द किसी निर्दिष्ट परिवार के एक सर्व प्रधान व्यक्ति की, वंशानुक्रम से अधीनता स्वीकार कर लिया करती थी। कोई कोई इनके मुखिया स्वेच्छाचारी भी हुआ करते थे। किन्तु साधारणतः मुखिया गण अपनी अपनी सम्प्रदाय के विशिष्ट परिवारों के प्रधानों का परामर्श ले कर शासन करते थे। आपस में झगड़ा होने पर अकसकलास[2] लोग प्राचीन प्रथानुसार विचार करते थे।

इस समय मुग़ल और तातार जाति अनेक शाखाओं में बँट चुकी थी। तुर्क जाति से मुग़लों और तातारों को छोड़ कर, असंख्य वंशों की उत्पत्ति हो गयी थी। फिर इन वंशों की भी असंख्य शाखाएँ फैल गयी थीं। मुग़ल, तातार और तुर्क जाति तथा अन्यवंशों पर एक ही अधिनेता शासन करता था। इसीसे अरसूक की मृत्यु होने पर उसका पुत्र तमूरचि नेता बनाया गया।

अनन्तर विज्ञ और बहुदर्शी मंत्री शगजीजान की मृत्यु हुई और उसका किशोरवयस्क पुत्र कारसार नोयान मंत्रिपद पर नियुक्त हुआ। नायरुन जाति के मुग़ल दो किशोरवयस्कों के हाथ में अपना शासन भार अर्पित देख, विद्रोही हुए और तानजित नामक मुग़लों के साथ मिल गये। उस समय नायरुन जाति के मुग़लों के परिवारों की संख्या चालीस हज़ार

१ इसकी सीमा पर उत्तर मङ्गोलिया की उनन नदी के तीर पर अवस्थित।

२. The Turks and Afghans call the leading men who form a sort of councillors in the tribe *Ak saklas*—white (grey) beards.

थी । इनमें से बहुत से अपरिणतवयस्क तमूरचि को छोड़ कर शत्रुदल में जा मिले थे और केवल तेरह हज़ार परिवार अब भी उसकी अधीनता में बने हुए थे । तमूरचि को चारों ओर से विपत्ति ने घेर लिया था । इस प्रकार सत्तरह वर्ष बीतने पर—भाग्यलक्ष्मी उस पर बहुत प्रसन्न हुई । जो नायमन जाति के मुग़ल परिवार उसे छोड़ शत्रुदल में जा मिले थे—वे फिर उसकी अधीनता में आ गये । उनके मिलने से उसका दल बहुत पुष्ट हो गया । इसके बाद वह और भी कई एक मुग़ल जाति की शाखाओं में अपना आधिपत्य जमाने में समर्थ हुआ ।

किन्तु तमूरचि पर भाग्यलक्ष्मी की कृपा बहुत दिनों तक न रही । नायमन मुग़लों के पुनः उसके साथ मिल जाने पर भी तानजित जाति के मुग़लों का नेता तरकुत, तमूरचि के नाश के लिये कटिबद्ध हुआ। तमूरचि शत्रु के हाथ में पड़ बन्दी हुआ । तीन वर्ष तक बन्दी रह और सुयोग पा कर वह भाग गया । और शत्रुओं के रहने के स्थान से अतिसमीप एक सरोवर में अपने सारे शरीर को पानी में डुबो कर छिप रहा । केवल उसकी नाक जल के बाहर थी । उसके भाग जाने का समाचार सुन कर तरकुत ने उसे पकड़ने के लिये एक सैन्यदल भेजा । सुरगानसिराह एक मनुष्य ने तानजित मुग़ल तमूरचि को इस प्रकार विपद दशा में देख और दयापरवश हो, रात होने पर उसे सरोवर से निकाला । वहाँ से निकाल उसने उसे भेड़ों के ऊन से भरी एक गाड़ी में छिपा दिया । उधर सैन्यदल ने सन्देह होने पर सुरगानसिराह के घर पर जा कर उसे बहुत ढूँढा, पर सौभाग्य से वह उनके हाथ न पड़ा । तब वे हताश हो वहाँ से लौट आये । शत्रुदल के लौट जाने पर तमूरचि निर्भयतापूर्वक सुरगानसिराह के दिये हुए सुर्खा घोड़े पर चढ़ कर, अपने घर की ओर चल दिया । यह घटना ११८१ ई० की है ।[१]

तमूरचि ने अपने देश में लौट कर अपने आधिपत्य का विस्तार करने की इच्छा से फिर लड़ाई भिड़ाई की ओर ध्यान दिया । अनन्तर दो वर्ष बाद सन् ११८३ ई० में अनेक शत्रुओं ने मिल कर तमूरचि को विनष्ट करने का प्रयत्न किया । शत्रुओं की संख्या अधिक देख कर और उनकी अपेक्षा अपने को निर्बल जान, तमूरचि ने अपने पिता के बन्धु औरङ्गख़ाँ की शरण में जाना निश्चय किया । उसका मंत्री कारसार नोयान तमूरचि का बड़ा अनुरागी था । वह भी उनके साथ औरङ्गख़ाँ के राज्य में गया । औरङ्गख़ाँ मुग़ल जाति की कराजमात शाखा का अधिपति था और खिता के अधिपति का मित्र था । तमूरचि और कारसार जब उसके यहाँ पहुँचे, तब उसने उनका भली भाँति स्वागत किया ।

यहाँ पर तमूरचि की अवस्था धीरे धीरे श्रीसम्पन्न होने लगी । औरङ्गख़ाँ, हरएक बात में उससे परामर्श लेने लगा । तमूरचि उसका इतना प्रीतिभाजन हो गया कि वह उसे अपना पुत्र कह कर सम्बोधन करता था और उसे एक ऊँचे पद पर नियुक्त भी कर दिया था । तमूरचि आठ वर्ष तक औरङ्गख़ाँ के यहाँ रहा । इस बीच में उसने अपने स्वामी के अनेक काम किये और उसकी ओर से बहुत से युद्धों में शत्रु को पराजित भी किया ।

इस प्रकार आठ वर्ष बीतने पर और तमूरचि की उन्नति को न देख सकने के कारण औरङ्गख़ाँ के मंत्री तथा अन्य जातिवाले तमूरचि के साथ डाह करने लगे । वे तमूरचि का नाश करने के लिये उपाय विचारने लगे । अन्त में वे सब मिल कर तमूरचि के विरुद्ध औरङ्गख़ाँ को भड़काने लगे । किन्तु तमूरचि उसका प्रियपात्र था । अतः उनके भड़काने का औरङ्गख़ाँ पर कुछ भी असर न हुआ । इससे तमूरचि के शत्रु औरङ्गख़ाँ पर इतने बिगड़े कि वे उससे लड़ने के लिये तैयार हो गये यहाँ तक नौबत पहुँचने पर भी औरंगख़ाँ ने तमूरचि को अलग न किया । इससे औरंगख़ाँ का पुत्र भी अपने पिता के विरुद्ध हो गया । पुत्र के बार बार कहने से औरंगख़ाँ ने तमूरचि के बन्दी किये जाने की अनुमति दी । इसका समाचार तमूरचि को मिल गया । अतः उसने अपने मंत्री कारसार नोयान के साथ परामर्श करके वहाँ से भाग जाने का विचार स्थिर किया । तदनुसार उसने अपने परिवार के लोगों को तो बानजोनाहत्रोनक नामक

---

१ इस घटना के कारण ही उस समय से मुग़लों में सुर्खी रङ्ग का घोड़ा पूजने योग्य समझा जाता है । तमूरचि का, जब उसकी उन्नति हुई, तब उसने अपने प्राणदाता सुरगानसिरोह के वंशधरों को उच्चपदों पर नियुक्त किया ।

निरापद स्थान में भेज दिया और रात होने पर वह स्वयं अपने नौकरों के साथ वहाँ से भाग खड़ा हुआ। इस घटना के कुछ ही समय पीछे औरंगख़ाँ आदि उसे पकड़ने उसके घर पर गये । किन्तु घर को सूना देख कर उनको बड़ा आश्चर्य हुआ । औरंगख़ाँ ने उसका पीछा किया और कुछ दूर आगे जा कर उसे देख भी लिया । दोनों दलों में घोर युद्ध हुआ । अन्त में पीछा करने वाले औरंगख़ाँ के दल को हार कर भाग आना पड़ा ।

अनन्तर तमूरचि अपने देश में पहुँचा । इस समय उसकी उम्र उनचास वर्ष की थी । जब तमूरचि, अपनी जान ले कर औरंगख़ाँ के आश्रय में चला गया, तब नायरुन जाति के मुग़ल अनेक स्थानों को चले गये । जब उन्होंने अपने अधिपति के लौट आने का समाचार सुना; तब वे भी फिर लौट आये । तमूरचि के पुनः राज्य प्रतिष्ठित करने पर और भी अनेक मुग़लों ने उसकी अधीनता स्वीकार की ।

धीरे धीरे जब तमूरचि ने बहुत सी सेना एकत्र कर ली, तब उसने औरंगख़ाँ के विरुद्ध युद्धघोषणा प्रचारित की । दोनों दलों में घोर युद्ध हुआ । युद्ध समाप्त होने के समय कारसार नोयान ने एक तीर से औरंगख़ाँ के घोड़े को घायल किया और घोड़ा अचेत हो भूमि पर गिर पड़ा । तब औरंगख़ाँ डर कर अपनी स्त्री, कन्या एवं पुत्र को साथ ले कर राज्य छोड़ भाग गया । इस प्रकार औरंगख़ाँ को विध्वस्त कर के तमूरचि अपने घर लौट गया ।

औरंगख़ाँ जैसे पराक्रमी को परास्त करने से तमूरचि का यश चारों ओर फैल गया । इसका फल यह हुआ कि मुग़ल वंश की अनेक शाखाओं के लोगों ने आ कर तमूरचि की वश्यता स्वीकार कर ली ।

इसके बाद तमूरचि ने आस पास के मुग़ल, तातार एवं तुर्क जाति वालों के अधिकृत स्थानों को अपने अधिकृत राज्य में मिलाने के लिये प्रयत्न किया । लगभग चार ही वर्ष के भीतर उसने बहुत से अधिपतियों को परास्त किया और वह एक पराक्रमी अधिपति समझा जाने लगा । उत्तरोत्तर सफलता और यश प्राप्त होने पर उसका उत्साह भी बढ़ता ही गया ।

सन् १२०६ ई० में उसने उन सब मुग़लों को एकत्र किया, जिन्होंने उसकी वश्यता स्वीकार कर ली थी । उनके एकत्र हो जाने पर, उसने अपने को भविष्यदर्शी प्रकट कर के, कहा—"मुझे कभी कभी स्वर्ग में भी जाना पड़ता है ।" सरल विश्वासी मुग़लों को उसकी इस बात पर विश्वास हो गया । जब तमूरचि का वक्तव्य पूरा हुआ; तब कूकजू नामक उसके एक अन्तरङ्ग मनुष्य ने खड़े हो कर कहा—"कल रात को मैंने एक अद्भुत स्वप्न देखा है । एक लाल रंग का मनुष्य धुँमले रंग के घोड़े पर सवार हो कर मेरे पास आया और मुझसे कहा कि तुम एसालूक बहादुर के पुत्र से कह दो कि और कोई उसे तमूरचि कह कर न पुकारे । आज से सब लोग उसे चंगेज़ख़ाँ कहा करें । तुम चंगेज़ख़ाँ से यह भी कह देना कि ईश्वर ने उसे और उसके वंश वालों को पृथिवी का एक बड़ा भाग प्रसाद स्वरूप दिया है । उपस्थित लोग स्वप्न का हाल सुनकर चंगेज़ख़ाँ का जयजयकार मनाने लगे ।

चंगेज़ख़ाँ ने जिस अभिप्राय से यह दरबार किया था, उसका वह अभिप्राय कूकजू द्वारा पूरा हुआ । जब इस स्वप्न का वृत्तान्त सर्व साधारण में प्रचारित हुआ; तब सरल विश्वासी लोगों को विश्वास हो गया कि समस्त पृथिवी पर राज्य करने के लिये ही सर्व शक्तिमान् परमात्मा ने चंगेज़ख़ाँ को पृथिवी पर भेजा है । इसका परिणाम यह हुआ कि चंगेज़ख़ाँ को ईश्वर बल से युक्त समझ लोग उससे डरने लगे, तथा उसकी सेना अपने को अजेय समझने लगी इससे अनायास ही उसके राज्य की सीमा बढ़ने लगी । उसने पश्चिम में ग़ोरख़ाँ के अधिकृत राज्य के सीमान्त प्रदेश से लगा कर, पूर्व में खिता अथवा उत्तर चीन के प्रान्त के देश तक समस्त देश पर अधिकार जमा लिया ।

जब अधिकांश मुग़लों ने उसकी वश्यता स्वीकार कर ली; तब उसको अन्य राष्ट्रों को अपने राज्य में मिलाने का अवसर प्राप्त हुआ । सबसे पहले उसकी दृष्टि खिता राज्य पर पड़ी । चंगेज़ख़ाँ का अभ्युदय होने के बहुत पहले उस समय के खिता के राजा ने चंगेज़ख़ाँ के चचेरे पितामह को बड़ी निठुरता से मारा था । चंगेज़ख़ाँ ने अपने पूर्वपुरुष की हत्या का बदला लेने के लिये खिताराज के विरुद्ध मुग़लों को उत्तेजित

१ चंगेज़ख़ाँ शब्द का अर्थ सम्राट् है ।

किया। इसके बाद उसने खिताराज के पास दूत भेज कर कहलाया कि तुम मेरी वश्यता स्वीकार करो। खिताराज ने चंगेज़ख़ाँ के दूत को दरबार से निकलवा दिया। दूत के लौटने पर चंगेज़ख़ाँ ने खिता राज्य को ध्वस्त करने के अर्थ बड़ी धूमधाम से चढ़ाई की। अलतानख़ाँ[1] ने जब यह हाल सुना, तब उसने शत्रु के आने का मार्ग रोकने के लिये तीस हज़ार घुड़सवार भेजे। चंगेज़ ने जब देखा कि उसके जाने के मार्ग को अलतानख़ाँ ने पहले ही से रोक दिया है; तब वह खिता राज्य में प्रवेश करने का गुप्त मार्ग खोजने लगा। जब मार्ग मिल गया, तब उसने मुग़ल परिवार को पास वाले पर्वत की तलहटी में एकत्र किया। इसी जगह उसके आदेश से माता पुत्र से और स्त्री पुरुष से अलग हुए। तीन दिन तक किसीने भी अन्न जल ग्रहण नहीं किया और स्त्री पुरुष सब खुले मुँह बैठे रहे। स्वयं चंगेज़ख़ाँ अपने तम्बू में गले में रस्सी बाँध कर तीन दिन तक बैठा रहा और बाहर न निकला। ये लोग मिल कर तीन दिन तक ईश्वर का नाम लेते रहे। चौथे दिन सबेरे चंगेज़ख़ाँ तम्बू के बाहर निकल कर कहने लगा—"ईश्वर ने मुझे विजयमाल से भूषित किया है। अब मैं अलतानख़ाँ को दण्ड देने के लिये यात्रा करूँगा।" इसके बाद तीन दिन तक वे लोग भोजादि उत्सव में मत्त रहे।

इन तीन दिन के बीतते ही चंगेज़ख़ाँ ने सेना सहित गुप्त मार्ग से खिता राज्य में घुस कर, तमगज़ नामक प्रदेश पर आक्रमण किया। चंगेज़ख़ाँ के आने का समाचार सुन, अलतानख़ाँ बहुत डरा। उसके डरने का कारण यह था कि उसने समझा था कि तीस हज़ार घुड़सवार जो शत्रु का मार्ग रोकने को भेजे गये थे—सब मारे गये। उधर अलतानख़ाँ के घुड़सवारों ने जब यह सुना कि चंगेज़ख़ाँ ने तमगज़ का तहस नहस कर डाला; तब वे भी अपने अपने प्राण ले कर इधर उधर भाग गये। जो न भाग पाये—वे या तो शत्रु के हाथ से मारे गये, या क़ैद कर लिये गये।

चंगेज़, तमगज़ और लंगेत प्रदेशों को अपने अधिकार में कर, खिता राज्य की राजधानी तमगज़ नगर के द्वार पर पहुँचा। नगर पर घेरा डाले जाने पर, अलतानख़ाँ ने आत्मरक्षा की बड़ी धूमधाम से तैयारी की। मनुष्य नगर की रक्षा के लिये जितने उपाय सोच सकता है, अलतान ने उन सब उपायों से काम लिया किन्तु उसके सारे उपाय विफल हुए और उस नगर की रक्षा न हो सकी। चार वर्ष के बाद तमगज़ नगर शत्रु के हाथ में चला गया।

चंगेज़ख़ाँ की इस जीत का हाल देश विदेश में फैल गया। ख़ारिजमाधिपति सुलतान मुहम्मद ने उक्त संवाद की सत्यासत्य मीमांसा के लिये अपना एक दूत भेजा। जब सुलतान का दूत अलतानख़ाँ की राजधानी के पास पहुँचा, तब उसे एक सफ़ेद ऊँचा खम्भा दिखलायी पड़ा। उस दूत ने उसे बर्फ़ानी पहाड़ का शिखर समझा, किन्तु अपने पथप्रदर्शक से पूँछने पर उसे विदित हुआ कि मुग़लों के साथ युद्ध करते समय जो सैनिक मारे गये थे, उनकी हड्डियों का इतना ऊँचा ढेर बन गया है। वहाँ से कुछ दूर आगे बढ़ कर दूत ने देखा कि सड़क दूर तक मुर्दों की चरबी से सनी हुई है। इस चार वर्ष व्यापी युद्ध में असंख्य सैनिक मारे गये थे। एक इतिहासवेत्ता ने लिखा है कि मांसाहारी पशु पक्षियों ने एक वर्ष तक युद्ध में मरे हुए लोगों के मांस से अपना पेट भरा था। राजदूत ने राजधानी के प्रवेशद्वार के पास पहुँच कर देखा कि दुर्ग के नीचे मरे मनुष्यों की कंकालों (ठठरी) के ढेर लगे हैं। राजदूत के पूँछने पर उसे विदित हुआ कि मुग़लों के अत्याचारों से बचने के लिये तमगज़ वासिनी साठ हज़ार बालिका और कुमारी कन्याओं ने आत्महत्या की थी—यह ढेर उन्हींकी हड्डियों का था।

राजदूत चंगेज़ख़ाँ के दरबार में उपस्थित हुआ। वहाँ उसका उचित आदर किया गया। चंगेज़ख़ाँ ने सुलतान की भेंट के लिये राजदूत को अनेक प्रकार के बहुमूल्य रत्न एवं आभूषण दिये और सुलतान के साथ मैत्री करने की प्रार्थना की। इसके बाद चंगेज़ ने अपने दूत के साथ सुवर्ण, चाँदी, रेशम और अन्य अनेक बहुमूल्य पदार्थों से पाँच सौ ऊँट लदवा कर व्यवसाय के लिये ख़ारिजम राज्य में भेजे। ख़ारिजम के

---

१ चंगेज़ख़ाँ के चचेरे बाबा को खिता के जिस राजा ने मारा था, उसका नाम अलतानख़ाँ था और चंगेज़ख़ाँ ने जिस खिताराज से युद्ध किया, उसका नाम भी अलतानख़ाँ था। इससे जान पड़ता है कि खिता के राजाओं की यह उपाधि थी।

अधिपति सुलतान ने लालच में पड़ उन बनजारे व्यापारियों को समूल नष्ट कर डाला। केवल एक ऊँट हाँकने वाला–दैवसंयोग से बच रहा, जिसने खिता राज्य में लौट कर सुलतान के इस दुष्कर्म का सारा वृत्तान्त प्रकाशित किया।

इस शोचनीय संवाद को सुन कर चंगेज़ख़ाँ का क्रोधानल भड़क उठा। चंगेज़ख़ाँ सुलतान को दण्ड देने के लिये सेना सजाने लगा। उसने चीन, तुर्कस्थान और तमगज़ से असंख्य सैनिक एकत्र कर ख़ारिजम साम्राज्य को धूल में मिलाने के लिये यात्रा की।[1]

चंगेज़ख़ाँ ने सबसे पहले सुप्रसिद्ध नगर उत्रार पर आँख डटाई और वह उसीकी ओर बढ़ा। मुग़ल-सेना को अनेक वनों में हो कर जाने के कारण मार्ग में बड़े बड़े कष्ट सहने पड़े; किन्तु उन कष्टों को कुछ भी न समझ मुग़ल-सेना आगे ही बढ़ती चली गयी और तीन मास बाद मुग़ल-राज्य की सीमा को लाँघ कर उसने शत्रु-राज्य की सीमा में प्रवेश किया। मुग़ल-सेना के पहुँचते ही शत्रु-राज्य के सब निवासी त्रस्त हो उठे और स्वदेश की रक्षा के लिये प्राणपण से सचेष्ट हुए। धर्म-विश्वासी अधिवासी गण ईश्वर का अनुग्रह प्राप्त करने के लिये विविध अनुष्ठान कर के आत्म-विसर्जन करने लगे।[2]

वीर्यशाली सैनिक मार्ग-श्रम से कुछ भी क्लान्त न हुए और अमित पराक्रम से शत्रु-हनन-कार्य में प्रवृत्त हुए। ख़ारिजम के चारों ओर एक बार आग जलने लगी, इससे असंख्य नर नारियों की सुख शान्ति चिर काल के लिये भस्मीभूत हो गयी। स्वदेश-रक्षा के लिये मुसलमान रणक्षेत्र में असीम कष्ट-सहिष्णुता और वीरता दिखलाने लगे[3] किन्तु इतना

---

१. Chengiz Khan issued commands so that the forces of Turkistan, Chin and Tamghaz assembled. Six hundred banners were brought out, and under each banner were one thousand horsemen, and six hundred thousand horses were assigned to the Bahadur, they call a warrior, a Bahadur. To every ten horsemen three heads of Tukli sheep were given with orders to dry them and they took along with them, an iron cauldron, and a skin of water, and the host proceeded on its way."

२ ख़ारिजम राज्य के निवासियों ने नासिर दुर्ग के अधिकृत किये जाने के समय जैसा ईश्वर विश्वास-सम्बन्धी परिचय दिया था–उसको हम इस प्रसङ्ग में नीचे उद्धृत करते हैं :—

Three months prior to the occurrence of the capture of fortress and their attainment of the glory of matyrdom, the whole of them by mutual consent donned deep blue (mourning) garments, and used to repair daily to the great Masjid of the fortress and would repeat the whole *Quran*, and condole and mourn with each other; and, after doing all this, they used to pronounce benediction on and farewell to each other and assume their arms, and engage in holy warfare with the infidels."

३ मुगलों ने जब अशिया नामक दुर्ग को घेर लिया; तब दुर्ग वालों ने डेढ़ वर्ष तक उनको दुर्ग के भीतर फटकने नहीं दिया। वे शत्रु के साथ बराबर युद्ध करते रहे। इतने में दुर्ग के भीतर खाद्य पदार्थों की कमी हुई। तिस पर भी दुर्गवासियों ने शत्रु के हाथ पड़ कर मारे जाने की अपेक्षा दुर्ग की रक्षा में प्राण-विसर्जन करना अच्छा समझा। धीरे धीरे उनकी अवस्था यहाँ तक शोचनीय हुई कि उनको मरे हुए मनुष्यों का मांस खा कर रहना पड़ा। ..स समय उस दुर्ग में एक मनुष्य अपनी स्त्रियों समेत रह गया था। उसकी माता और एक क्रीतदासी वहाँ रहती थीं। ..के मरने पर उक्त स्त्रियों ने उसके मांस को बेचने के लिये सुखाया। यह सूखा मांस अढ़ाई सौ मोहरों पर बिका। लड़ते लड़ते डेढ़ वर्ष से अधिक बीत गया और दुर्ग में केवल तीस मनुष्य रह गये, तब उस दुर्ग का पतन हुआ।

होने पर भी वे मुग़लों के ग्रास से न बच सके। मुग़लों के अदृष्टपूर्व अत्याचारों और उत्पीड़न से सौष्ठवशाली अमित धन धान्य से पूर्ण ख़ारिजम साम्राज्य की मरुभूमि जैसी दशा हो गयी।

मुग़लों ने किस प्रकार उक्त साम्राज्य के नगरों को नष्ट किया—इसका वर्णन करना निष्प्रयोजन है। मुग़ल जहाँ पहुँचते वहाँ के आबाल वृद्ध नर नारियों को काट डालते और हरे भरे धान के खेतों तथा समृद्धिशाली नगरों के सुन्दर भवनों में आग लगा कर उनको फूँक देते थे। जितने पुरुष स्त्रियों को चाहते वे पकड़ कर बेचने के लिये गुलाम बना लेते थे।[1] कहा जाता है कि मुग़लों ने असंख्य नर नारियों को ग़ुलाम बनाया था। यहाँ तक कि उन लोगों ने अकेले चंगेज़ख़ाँ के लिये ही बारह हज़ार क्वारी कन्याएँ पकड़ी थीं जो उसकी सेना के पीछे पैदल खदेरी जाती थीं।

सन् १२१८ ई० में चंगेज़ख़ाँ ने ख़ारिजम के सुलतान से उसके दुर्व्यवहार के लिये उसे दण्ड देने के अर्थ मोराउबाद नामक प्रदेश में पदार्पण किया। वहाँ के निवासियों को समूल नष्ट कर के उसने आमू नदी को पार किया। फिर उसने बलख़ पर आक्रमण किया। उसका पुत्र तूलीख़ाँ एक बड़ी सेना के साथ ख़ुरासान भेजा गया और ईरान एवं तूरान को जीतने पर मुग़ल-सेना बलख़ हो कर तलिकन (यह ख़ारिजम के एक नगर का नाम है) में पहुँची। यहाँ से चंगेज़ख़ाँ ख़ारिजम के शाहज़ादे जलालुद्दीन सङ्कवारि को समूल ध्वंस करने के अर्थ, उसके पीछे दौड़ा और मार्ग के दोनों ओर के देश को नष्ट करता हुआ वह सन् १२२७ ई० में सिंधनदवर्ती देश में पहुँचा।

वहाँ पहुँच कर चंगेज़ख़ाँ ने सङ्कल्प किया कि ख़ारिजम-साम्राज्य को नष्ट कर के मैं भारतवर्ष में घुसूँगा। लक्ष्मणावती और कामरूप के मार्ग से चीन जाने के लिये ही उसे भारतवर्ष पर आक्रमण करने का सङ्कल्प करना पड़ा था। चंगेज़ख़ाँ किसी बड़े काम का भार उठाने के पूर्व ईश्वर के प्रत्यादेश की प्रतीक्षा किया करता था। इस बार भी वह ईश्वर की सम्मतिसूचक लक्षणों की प्रतीक्षा करता था—किन्तु उसे ऐसे किसी लक्षण की सूचना न मिली जिससे उसे विश्वास हो जाता कि वह भारतवर्ष पर आक्रमण कर विजयी होगा, अतः उसे अपना सङ्कल्प छोड़ना पड़ा। इसीसे चंगेज़ भारत की सीमा पर पड़ा विलम्ब कर रहा था। इतने में उसे समाचार मिला कि मुग़ल-साम्राज्य को नष्ट करने के अर्थ चीन ने बीड़ा उठाया है। यह समाचार सुनते ही चंगेज़ख़ाँ भारत पर आक्रमण करने का सङ्कल्प परित्याग कर, चिन्ताकुल चित्त से तिब्बत के मार्ग को धर, वहाँ से लौट आया। इस बार उसके अत्याचारों से भारतवर्ष ने छुटकारा पाया।

चंगेज़ख़ाँ १२ वर्ष तक ख़ारिजम-साम्राज्य को विध्वस्त करने में लगा रहा। बारह वर्ष बाद वह स्वदेश की ओर लौटा। जिस समय वह राजधानी से प्रस्थानित हुआ था उस समय वह ५७ वर्ष का हो चुका था। तिस पर भी उसके शरीर की गठन उस समय ऐसी थी कि वह युवा सा जान पड़ता था। किन्तु बहुवर्षव्यापी युद्ध में निरन्तर लगे रहने से और अत्याचारपीड़ित असहाय अनाथों के शाप से उसका तेज नष्ट हो गया था और उसके शरीर में वृद्धावस्था के चिह्न दिखलायी पड़ने लगे थे। अपने देश में पहुँचने की आशा सहित चंगेज़ख़ाँ हाथ में तलवार ले कर धीरे

---

१ चंगेज़ख़ाँ के अत्याचारों से वह सुविशाल भूखण्ड विजन अरण्य हो गया था। हम इस प्रसङ्ग में एक दन्तकथा लिखते हैं। यह दन्तकथा इतिहासवेत्ता मिनहाजउद्दीन ने काज़ी वाहिदउद्दीन से सुनी थी। वाहिदउद्दीन चंगेज़ का कृपापात्र था और उसका इस दन्तकथा से सम्बन्ध भी था।

"When he (Chengiz Khan) enquired of me, will not a mighty name remain behind me (in the world through taking vengeance upon Sultan Muhamad, Kharwarazm Shah), I bowed my face to the ground and said: 'If the Khan will promise the safety of my life I will make a remark." He replied I have promised thee its safety. I said: 'A name continues to endure where there are people, but how will a name endure when the Khan's servants martyr all the people and massacre them, for who will remain to tell the tale."

धीरे आगे बढ़ने लगा—किन्तु विधाता ने उसके विरुद्ध विधान रच रखा था। राजधानी में वह पहुँचने भी नहीं पाया था कि अधपर मार्ग में वह बीमार पड़ा।

चंगेज़ख़ाँ ने स्वप्न में अपनी मृत्यु को निकट देखा और भय से विकल हो उसने अपने तीन[1] पुत्रों को बुला भेजा। जब वे पिता के सामने पहुँचे, तब चंगेज़ अपने पुत्रों को सम्बोधन कर कहने लगा:—

चंगेज़ख़ाँ—प्राणाधिकप्रिय पुत्रगण! अब मेरी महायात्रा का समय आ पहुँचा। ईश्वर के अनुग्रह से मैंने तुम्हारे लिये सुविशाल साम्राज्य स्थापित कर, उसको सुदृढ़ भित्ति से सुरक्षित बना दिया है। मेरा यह साम्राज्य इतना बड़ा है कि यदि कोई इसके एक छोर से दूसरे छोर तक जाना चाहे तो उसे १ वर्ष लग जाय। तुम अपने में से किसको इस सुविशाल साम्राज्य का उपयुक्त उत्तराधिकारी समझते हो?

उन तीनों ने घुटने ज़मीन पर टेक कर उत्तर दिया:—

पुत्रगण—हमारे पिता साम्राज्येश्वर हैं, हम लोग उनके दास हैं, उनकी आज्ञा हमें शिरोधार्य है।

चंगेज़ख़ाँ—मंत्री कारसार बहुदर्शी और राजनीतिविशारद है, उस पर मेरा पूर्ण विश्वास है। मैं उससे परामर्श करता हूँ। उसके परामर्शानुसार ही मैं उत्तराधिकारी नियुक्त करूँगा।

इसके बाद उसने अपने मंत्री से सम्मति ली। फिर कवालख़ाँ ने आ कजुली बहादुर का इक़रारनामा मँगवाया। उस इक़रारनामे को पढ़ कर चंगेज़ख़ाँ ने कहा:—

चंगेज़ख़ाँ—मैंने उकताईख़ाँ को राजगद्दी दी। तुम लोग तीनों मिल कर काम करना। उकताईख़ाँ की आज्ञा में तुम रहोगे—इस बात का इक़रारनामा लिख कर अपने स्वाक्षर करो। मैं चगाती, तूली और जूजीख़ाँ को अलग अलग राज्य दिये देता हूँ।

इसके बाद चंगेज़ख़ाँ के आदेशानुसार कारसार और चगाती ने पिता पुत्र रूप से और एक इक़रारनामा लिख कर उस पर अपने स्वाक्षर किये। जब यह काम पूरा हो गया तब चंगेज़ख़ाँ ने कहा:—

चंगेज़ख़ाँ—मेरे मरने पर तुम लोग कोई भी शोकाकुल हो कर विलाप मत करना। जब तक राजसिंहासन का कार्य पूरा न हो जाय; तब तक मेरे मरने का समाचार प्रकाशित मत करना।

इस घटना का उल्लेख करते हुए मेजर रेवरटी ने लिखा है:—"The ruling passion of treachery was strong seven in death." अर्थात् मरते समय तक चंगेज़ख़ाँ के हृदय में विश्वासघात की वासना सबसे अधिक प्रबल थी।

अन्तिम वाक्य समाप्त होते ही चंगेज़ख़ाँ का प्राणवायु शरीर त्याग कर निकल गया। चंगेज़ख़ाँ के पुत्र अपने पिता के मृत शरीर को ले कर आगे बढ़े और रास्ते में उन्हें जो मिलता उसे वे यमपुरी को भेज देते थे। इस प्रकार अपने निर्दिष्ट स्थान पर पहुँच चुकने के बाद उन लोगों ने चंगेज़ख़ाँ की मृत्यु का संवाद प्रकाशित किया। अनन्तर उसका मृत शरीर एक वृक्ष के नीचे गाड़ दिया गया। चंगेज़ख़ाँ एक बार शिकार से लौट कर उस वृक्ष के नीचे ठहरा था और उसने अपनी अभिलाषा प्रकट की थी कि मरने के बाद मेरी क़ब्र इसी वृक्ष के नीचे बनायी जाय। सन् १२२७ ई० में चंगेज़ख़ाँ मरा।

चंगेज़ख़ाँ के जीवन की घटनाओं पर विचार करने से विदित होगा कि उस जैसे मनुष्य पृथिवीतल पर विरले ही होते हैं। चंगेज़ख़ाँ अध्यवसाय का जीता जागता दृष्टान्त था। उसके जीवन का प्रातःकाल घनघोर घटा से आच्छन्न था, किन्तु उसका मध्याह्नकाल स्वच्छ और प्रकाशमय रहा। उसने बड़े विक्रम के साथ हाथ में तलवार ले कर, सारी विपत्तियों को जड़ से काट डाला और वह सर्वोच्च उन्नत पद पर पहुँचा। किशोरवयस्क चंगेज़ख़ाँ एक दुर्धर्ष सम्प्रदाय का नेता बना था। किन्तु उस दुर्धर्ष सम्प्रदाय के लोगों ने एक किशोरवयस्क नेता की अधीनता में रहना अच्छा न समझा। वे थोड़े ही दिनों बाद स्वाधीन हो गये। नवीन अधिपति विपद्सागर में डूबने उछलने लगा। साधारण जन जिस वय में गेंद बल्ला ले कर सन्तुष्ट होते हैं, उस वय में चंगेज़ रणभूमि में अवतीर्ण हुआ और विपत्तियों के पहाड़ों को हटाता मुट्ठी से निकले हुए सम्प्रदाय के लोगों को पुनः अपने अधीन करने में समर्थ हुआ। चंगेज़ ने तरुण अवस्था में अपने भावी अत्युज्ज्वल जीवन का पूर्वाभास प्रदान किया।

अनन्तर सुनिपुण शिल्पी की तरह, चंगेज़ ने आजीवनव्यापी अध्यवसाय और अविश्रान्त परिश्रम

[1] चंगेज़ख़ाँ के चार पुत्र थे, किन्तु इनमें से एक उसके सामने ही मर गया था।

कर राज्य पर राज्य जमा कर के एक सुविशाल साम्राज्य की स्थापना की।[१]

यद्यपि चंगेज़ख़ाँ ने बड़ा ही शौर्य वीर्य प्रदर्शित किया, तथापि लोग चंगेज़ख़ाँ को एक नृशंस, अत्याचारी शासक ही बतलाते हैं । सारांश यह कि उसके समान निठुर मनुष्य दूसरा आज तक जन्मा है कि नहीं इसमें सन्देह है । चंगेज़ख़ाँ ने प्रत्येक युद्ध में बड़ी ही क्रूरता के साथ काम लिया । उसके प्रत्येक कार्य में मनुष्यजीवन के प्रति कठोर अवज्ञा और उनकी हृदयविदारक यंत्रणा की उपेक्षा ही दिखलायी पड़ती है । पृथिवी के समस्त इतिहासों में चंगेज़ख़ाँ के समान निठुर मनुष्य का मिलना असम्भव है। उसके निठुर एवं अमानुषिक कार्यों का उल्लेख कर हम पाप के भागी बनना नहीं चाहते । पीछे जितना हम लिख चुके उतने ही से पाठक चंगेज़ख़ाँ के कठोरातिकठोर हृदय का परिचय भली भाँति पा सकते हैं ।

इस समय मुग़लस्थान अज्ञानान्धकार से छाया हुआ था और उनका धर्मज्ञान भी बहुत ही धुँधला था। इसीसे वे जीते हुए देशों में किसी प्रकार का नया धर्ममत वा ज्ञान का प्रकाश न फैला सके। अविश्रान्त नरहत्या कर उनके रक्त से पृथिवी को तर करना एवं शस्यश्यामल उर्वरा पृथिवी और हरे भरे नगरों को नष्ट भ्रष्ट करने ही में उन्होंने अपनी सारी शक्ति का प्रयोग किया । जीते हुए देशों में एकमात्र श्मशानदृश्य ही मुग़लों के विजय का परिचय देते थे ।

चंगेज़ख़ाँ ने मृत्यु के पूर्व ही अपना सुविशाल राज्य अपने चार बेटों में बाँट दिया था। तदनुसार ज्येष्ठ पुत्र जूजी को किपचाक की समतल भूमि मिली । किन्तु जूजी तो अपने पिता के सामने ही मर गया था, इस लिये उसका पुत्र बटू उसका उत्तराधिकारी बनाया गया। दूसरे पुत्र चगाती के हिस्से में एक बड़ा भारी भूखण्ड आया। तीसरे पुत्र उकताई को आदिम मुग़लभूमि और उसके आस पास की भूमि का शासनभार मिला । चौथे पुत्र तूली के हिस्से में चीन का राज्य आया।

चंगेज़ख़ाँ ने जैसे प्रत्येक पुत्र के लिये राज्य का बँटवारा किया, वैसे ही उसकी रक्षा के लिये, सेना का भी बँटवारा वह स्वयं ही कर गया था ।

प्रथम तो चंगेज़ख़ाँ के वंशधरों ने उकताई को अधिनेता बतला कर उसकी अधीनता स्वीकार की । किन्तु जब वह मर गया, तब उसकी विधवा स्त्री तुरखिना मुग़लसाम्राज्य की अधिनेत्री बनी । जब उससे ठीक ठीक प्रबन्ध न हो सका, तब उसे पदच्युत कर के, चगाती के सिर पर मुखिया की पगड़ी बाँधी गयी। उसकी मृत्यु के बाद मुखिया बनने के लिये घर में परस्पर विवाद खड़ा हुआ और थोड़े ही वर्षों के भीतर मुग़ल जाति के लोग स्वतंत्र हो गये। फ़ारिस राज्य के अधिपति अरगनख़ाँ ने सन् १२८१ ई० में राजमुद्रा में अधिनेता के नाम के सामने अपना नाम अङ्कित कराया। इसके बाद चंगेज़-वंश के अधिपति अपने अपने राज्य में सम्राट् बन गये।

इस घरेलू झगड़े का परिणाम क्या हो सकता है— यह बतलाने की आवश्यकता नहीं । चारों राज्यों के अधिपतियों ने जब तक एक दूसरे के प्रति सहानुभूति रख कर काम किया, तब तक उन सबकी उन्नति होती गयी। चंगेज़ख़ाँ के प्रतिष्ठित साम्राज्य का प्रताप और प्रतिपत्ति ज्यों की त्यों बनी रही और आस पास के राजा लोग सदा उनसे डरते रहे । उन्होंने दक्षिण चीन को जीता और ख़लीफ़ा की राजधानी बग़दाद नगर को ध्वस्त कर के, पीछे से ख़लीफ़ा के आधिपत्य पर भी हाथ साफ़ किया। दूसरी ओर उन लोगों ने उन नदी को पार कर बलगेरिया और पोल राज्य में मुग़ल-पताका गाड़ी । अनन्तर वे लोग हंगरी बोसानिया, डालमेसिया और माइनेसिया पर आक्र-

---

१. He acquired sway over all Cathay Khotan, Northern and Sounthern China the desert of Qilbeaq, Sagsin (either a place near *Caspian* or a country of Turkistan), Bulgaria, as (Crimea or its neighbourhood) Russia, Alan (the country between the Caspian and the Black Sea), etc. When he had finished the affairs of Transoxiana, he * * turned his world opening reins towards Bulkh. He despatched * * * a large army to Khurasan and conquering Iran and Turan he came from Balkh to Taliqan a (town in Khurasan) *Akbarnama.*

मण कर वायना को जीतने के उद्योग में लगे। उनके भय से सारे ईसाई देशों में हलचल मच गयी । इस प्रकार सत्तर वर्ष तक उनकी उत्तरोत्तर वृद्धि हुई। अनन्तर घरेलू झगड़े के कारण उनकी अवनति का श्रीगणेश हुआ । इसका फल यह हुआ कि योरुप के जीते हुए देश उनके हाथ से निकल गये । एकमात्र रशिया देश में उनका आधिपत्य बच गया । कोरिया सागर से ले कर आड्रियारिक सागर पर्यन्त—विस्तृत सुवृहत् साम्राज्य के चंगेज़ख़ाँ ने चार भाग किये थे। इन चार भागों के अब सैकड़ों टुकड़े हो गये । मुग़ल-साम्राज्य की यह हीन दशा डेढ़ शताब्दी तक रही। अनन्तर तैमूरलङ्ग का आविर्भाव हुआ और उसकी प्रदीप्त प्रभा से दक्षिण एशिया में चंगेज़ख़ाँ के वंशधरों का आधिपत्य अस्त हुआ ।

अब हम चंगेज़ख़ाँ के वंशधरों में से केवल चगाती वंश का विवरण यहाँ देते हैं। चंगेज़ द्वारा बाँटा हुआ राज्य जो चगाती के बाँट में आया था वह बहुत बड़ा था और तीन भागों में विभक्त था। (१)—सिर और काशग़र के उत्तरांश में स्थित देश। यह प्रदेश बहुत लम्बा चौड़ा था, पर था रेगिस्तान। यद्यपि इस सुवृहत् रेगिस्तान में भी कहीं कहीं नदी, ह्रद, विस्तीर्ण पर्वतमाला और श्यामल समभूमि दिखलायी पड़ती थी, तथापि सर्दी अधिक पड़ने के कारण वहाँ के रहने वाले अपने अपने घर छोड़ दक्षिण की ओर चले गये थे। (२)—दक्षिण में हरा भरा और समृद्धिशाली प्रदेश और उत्तर में मरुभूमि। इनके बीचमें काशग़र और इयारखण्ड प्रदेश था । यद्यपि यह देश वनसंकुल था। तथापि बहुजनपूर्ण काशग़र, इयारखण्ड, खातून, अकसू और तरफ़न आदि नगर इसी देश की शोभा बढ़ाते थे। (३)—जक्सरटिस नदी के उत्तरी तट से ले कर दक्षिण में हिन्दूकुश और हजरा पर्वतमाला, तासकन्द, समरकन्द, बुख़ारा और बलख़ पर्यन्त फैला हुआ था। यह प्रदेश बड़ा शोभाशाली और योजनव्यापी शस्यक्षेत्रों से सज्जित था।

सुविस्तीर्ण चगाती-राज्य के अधिवासी परस्पर विरोधी अनेक सम्प्रदायों में विभक्त थे । यहाँ की मुख्य जाति यायावर थी। इस जाति में इतना प्रबल स्वदेशानुराग था कि ये अपने देश को नन्दनकानन तुल्य समझते थे। और आस पास के नगरों में रहने वालों एवं कृषकों को ये लोग तिरस्कार की दृष्टि से देखते थे । ये अपनी उच्छृङ्खल और निरावलम्ब जीवन-यापन-प्रणाली ही को उन्नत स्वाधीन जाति के लिये अनुकरणीय बतलाते थे। दूसरे प्रान्त के लोगों में एक सम्प्रदाय के लोग थे जो अपनी सुविधा के अनुसार स्थानान्तरों में रहना पसन्द करते थे। इन्हीं लोगों में एक ऐसी भी जाति थी जो अपने घर से एक पग भी आगे बढ़ना पाप समझती थी। चगाती-राज्य में बसने वाले अधिकांश लोग मुग़ल जाति के थे। चगाती-राज्य में दक्षिण पूर्व की ओर कलिमक नामक एक पराक्रमी जाति की बस्ती थी।

ऐसी परस्पर विरुद्ध जातियों से पूर्ण विस्तृत राज्य बिना किसी प्रतापशाली प्रतिभावान् शासनकर्त्ता के किस प्रकार दब सकता है। मुग़लों में यह कुल-परम्परागत नियम था कि वे एक से अधिक पुत्र होने पर अपनी सारी सम्पत्ति लड़कों में बराबर बराबर बाँट दिया करते थे। यह प्रथा भी आपस के झगड़े के अनुकूल थी। किन्तु चंगेज़ख़ाँ ऐसा प्रतापी था कि उसकी मृत्यु के बहुत दिनों बाद तक उसके वंशधरों का प्रताप ज्यों का त्यों बना रहा ।

चगाती की राजधानी मरुभूमि के बीच बिसबालिन नामक नगर में थी और वह इसीमें प्रायः रहा करता था। चगाती के उत्तराधिकारी भी इसी राजधानी में रहते थे, किन्तु परस्पर विरोध के वे भी लक्ष्य बन गये थे। चगाती की मृत्यु के एक सौ वर्ष के भीतर ही वे सिर और आमू नदी की तटवर्त्ती घनी बस्ती में रहने लगे। धीरे धीरे वे इतने तेजहीन और निकम्मे हो गये कि वे अपने मंत्रियों के हाथ के खिलौने बन गये।

यद्यपि चगाती के वंशधरों में परस्पर विवाद उठ खड़ा हुआ था और इसमें भी सन्देह नहीं कि वे निर्बल हो गये थे तथापि पहले ईसनबुग़ाख़ाँ की अमलदारी के पहले, चगाती के वंशधरों के राज्य की सीमा संकुचित हुई हो, इसका प्रमाण नहीं मिलता। ईसनबुग़ाख़ाँ के राजत्वकाल ही में चगाती वंश के दो टुकड़े हुए और दो स्वतंत्र राज्य स्थापित हुए । इन दो में एक तो मुग़ल-भूमि और काशग़र को जोड़ कर बना, दूसरा मरोअहर देश में स्थापित हुआ ।

अनन्तर चंगेज़ख़ाँ के वंशधरों में प्रायः सभी विलासी हुए और नाममात्र को वे राज्य करते थे। उनका सारा समय खेल कूद ही में व्यतीत होता था।

दुराकांक्षी मंत्रिमण्डल के प्रस्तावों के अनुमोदन ही में वे अपने राजधर्म की इतिश्री समझते थे। मोरशहर देश में अराजकता फैली हुई थी, आपस के झगड़ों ही से सारा राज्य नष्ट हो रहा था । तिस पर उत्तर से तातारियों ने प्रबल जङ्गलियों की तरह आक्रमण किया। ऐसे सङ्कट के समय में असाधारण तैमूरलङ्ग अपने प्रतिपक्षियों को परास्त करने के लिये एशिया के भाग्याकाश में नवोदित सूर्य्य की तरह उदय हुआ। उसकी चमकती हुई किरणों से सारा अन्धकार विलीन हो गया और मुग़ल जाति का फिर अभ्युदय हुआ।

चंगेज़ख़ाँ के समय में मुग़ल जाति अज्ञता और धर्म-हीनतारूपी घोर अन्धकार में पड़ी थी किन्तु उस समय तिब्बत और चीन में बौद्धधर्म फैला हुआ था। उनके संसर्ग से मुग़लों ने थोड़े से उनके आचार व्यवहार के नियमों का अनुकरण करना सीख लिया था। किन्तु इतने से मुग़ल जाति का अज्ञानान्धकार दूर नहीं हो सकता था।

चंगेज़ख़ाँ की मृत्यु के बाद मुग़ल जाति में इसलाम धर्म का प्रकाश फैला । जूजीख़ाँ के पौत्र उजबल ने इसलाम धर्म को अङ्गीकार कर उस धर्म के फैलाने का बीड़ा उठाया। किपचक देश में उजबकख़ाँ की अमलदारी थी। उसके अविश्रान्त परिश्रम से समग्र किपचक देश के निवासी इसलाम धर्म के अनुयायी बने।

इसके बाद चगाती वंश का, तुग़लक तैमूरख़ाँ अधिनेता बना और उसने इसलाम धर्म अङ्गीकार किया। अनन्तर उसने अपनी कुछ प्रजा को भी इसलाम धर्म का अनुयायी बनाया । धीरे धीरे सारी मुग़ल जाति इसलाम धर्म की अनुयायिनी हो गयी और तैमूरलंग के समय में इसलाम धर्म की नींव उस प्रदेश में दृढ़ हुई।

Cheytesingh चेतसिंह=यह काशीनरेश महाराज बलवन्तसिंह के औरस और एक दासी के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। यह उस समय काशीनरेश थे, जिस समय बंगाल में अङ्गरेज़ों का और पश्चिम में अवध के नवाब का पूरा पूरा दबदबा बना हुआ था। नवाब इनको हड़प जाना चाहते थे, पर अङ्गरेज़ी और नवाबी सीमा के ऊपर रहने के कारण अङ्गरेज़ इनके रक्षक बने हुए थे । जब भारत में वारिनहेस्टिंग्ज़ ने पदार्पण किया और इनके साथ काम पड़ा; तब इन बेचारे को बड़ी कठिनाई में पड़ना पड़ा। वारिनहेस्टिंग्ज़ ने इनसे सालाना ख़िराज के अलावा बहुत सा रुपया माँगा था । इसे यह न दे सके। इस अपराध में वारिनहेस्टिंग्ज़ ने इन्हें नज़रबन्द किया। राजा के नज़रबन्द होने का समाचार प्रकाशित होते ही काशी में बखेड़ा हुआ। और वहाँ के गुंडों ने सिर उठाया। अङ्गरेज़ी सेना मारी गयी और जो बची वह भाग गयी । चेतसिंह एक नौकर की सहायता से एक नाव में बैठ कर गङ्गा पार अपने रामनगर के दुर्ग में पहुँचे और वारिनहेस्टिंग्ज़ साहब चुनारगढ़ के दुर्ग में। अन्त में अधिक अङ्गरेज़ी सेना ने आ कर बनारस पर अपना अधिकार जमाया और चेतसिंह भाग कर ग्वालियर चले गये। इस बखेड़े को ले कर वारिनहेस्टिंग्ज़ पर विलायत की पार्लिमेंट में अभियोग चलाया गया था।

Chimanji Appa चिम्मन जी अप्पा=यह बाजीराव के पुत्र थे।

Chitu चीतू=यह एक पिंडारी सरदार था । इसने अङ्गरेज़ी सेना को बहुत तंग किया था। इसके और साथी तो पकड़ लिये गये थे; किन्तु यह अङ्गरेज़ों के हाथ न पड़ा । कहा जाता है, इसे असीरगढ़ के पास एक चीते ने खा लिया।

General Clavering जनरल क्लैवरिङ्ग=इङ्गलैंड के शाह की ओर से रेग्यूलेटिंग ऐक्ट के अनुसार भारतीय शासन के लिये गवर्नर जनरल की अध्यक्षता में जो प्रथम कौंसिल बनायी गयी थी और जिसका पहला प्रेसीडेंट वारिनहेस्टिंग्ज़ था, उसी कौंसिल के जनरल क्लैवरिङ्ग एक सदस्य थे।

Clive Robert. क्लाइव=ईस्ट इण्डिया कम्पनी की ओर से यह ४०) रु० मासिक पर क्लार्क हो कर भारतवर्ष में आया था । किन्तु धीरे धीरे इसने इतनी उन्नति की कि वह केपटिन क्लाइव हुआ—फिर लार्ड क्लाइव तक हो गया। इसने आरकट अवरोध और प्लासी के रणक्षेत्र में अपनी वीरता का परिचय दे कर, अङ्गरेज़ राज्य की भारतवर्ष में नींव डाली। (इसकी पूरी जीवनी हमारी बनायी मँगा कर पढ़िये)।

Coote, Sir Eyre कूट (आइर)=यह एक अङ्ग-

रेज़ी सेनापति थे। इन्होंने भारतवर्ष में अनेक बार अपने अदम्य उत्साह और वीरत्व का परिचय दिया था। हैदरअली को २७ सितम्बर सन् १७८१ ई० को इन्होंने सोलिनगढ़ में बड़ी बुरी तरह हराया था।

Combermere, Lord. काम्बरमियर=सन् १८२५ ई० में यह भारतवर्ष के सर्व प्रधान सेनापति थे और भरतपुर के दुर्भेद्य दुर्ग का पतन इनकी स्थायी कीर्त्ति है। इन्होंने दुर्जनसाल को दमन कर बलवन्तसिंह को भरतपुर की गद्दी पर बिठाया था। क़िले का मिट्टी का धुस्स जब तोपों की मार से न टूटा, तब काम्बरमियर ने एक सुरंग खुदवायी थी और उसमें दस हज़ार पाउण्ड बारूद भरवा कर उड़वायी थी। तब उस धुस्स में घुसने का मार्ग हो पाया था।

Cornwallis, Marquis. कार्नवालिस=ये भारत के दूसरे गवर्नर-जनरल थे और सन् १७८६ ई० में ये यहाँ आये। सन् १८८६ में ये उस युद्ध में स्वयं प्रधान सेनापति बन कर रणक्षेत्र में अवतीर्ण हुए थे; जिसमें टीपू के साथ अङ्गरेज़ों का युद्ध हुआ था। इनकी रणचातुरी से टीपू को परास्त होना पड़ा। अन्त में जब अङ्गरेज़ी सेना टीपू की राजधानी श्रीरङ्गपट्टन में जा पहुँची; तब टीपू की बुद्धि ठिकाने हुई और उसने सुलह का पैग़ाम भेजा। साथ ही अपनी नेकनीयती का विश्वास दिलाने के लिये उसने अपने दो पुत्र कार्नवालिस के पास भेज दिये। अन्त में टीपू को तीन करोड़ तीस लाख रु० और अपनी आधी रियासत अङ्गरेज़ों को दे कर सुलह करनी पड़ी। इस युद्ध में कार्नवालिस ने कम्पनी के राज्य में मालाबार, कुर्ग, डिंडीगल और बड़ा महल के प्रान्त मिलाये।

मारक्विस कार्नवालिस ने बङ्गाल और बनारस में "परमेनेण्ट सेटेलमेण्ट" कर उन प्रान्तों के निवासियों का आशीर्वाद प्राप्त किया और भारत में अपनी अक्षय्य कीर्त्ति स्थापित की। सन् १७९३ ई० में ये इङ्गलैण्ड लौट गये।

Curzon. कर्ज़न=सन् १८९९ से १९०५ तक यहाँ के गवर्नर-जनरल रहे। इनके समय में निमक का कर घटा और इन्कमटैक्स भी कम किया गया। इन्हींके शासन-काल में महारानी विक्टोरिया की मृत्यु हुई और बड़े शान से एडवर्ड के राज्याभिषेक के उपलक्ष में दिल्ली में दरबार हुआ। इन्होंने बङ्गाल का विभाग कर बङ्गालियों को असन्तुष्ट किया और यहाँ पर राजविद्रोह का बीज पड़ा। ये स्वतंत्र प्रकृति के मनुष्य थे और अपने विचारों के दास थे। इसीसे इनसे और स्टेट सेक्रेटरी से न पटी और इन्हें इस्तीफ़ा देना पड़ा।

D.

Dadaji Konedeo. दादाजी कोनदेव=क्षत्रपति शिवाजी के यह अभिभावक थे और जाति के ब्राह्मण थे। ये ही उनकी जागीर का, जिसमें २२ गाँव थे, प्रबन्ध किया करते थे।

Dalhousie, Marquis. डैलहाउसी=यह भारतवर्ष के तेरहवें गवर्नर-जनरल थे। सन् १८४८ ई० में यह भारतवर्ष में आये और सन् १८५६ ई० में लौट गये। घर जा कर यह बहुत दिनों नहीं जिये। यह ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अन्तिम-गवर्नर जनरल थे। इनके शासन-काल में प्रधान प्रधान घटनाएँ ये हुईं:—

(१) द्वितीय सिक्ख युद्ध।
(२) भारतवर्ष में रेल और तार का प्रसार।
(३) द्वितीय वर्म्मा युद्ध।
(४) दोस्त मुहम्मद के साथ सुलह।
(५) अवध का कम्पनी के राज्य में मिलाया जाना।
(६) टञ्जौर और नागपुर की राजगद्दियों का कोई उत्तराधिकारी न रहने के कारण ये कम्पनी के राज्य के अन्तर्गत कर लिये गये।

Daniyal. दनियाल=यह शाह अकबर का तीसरा पुत्र था और सन् १५७२ ई० में उत्पन्न हुआ और बदपरहेज़ी के कारण सन् १६०४ ई० में मर गया। इसने बीजापुर के शाह इब्राहीम आदिल द्वितीय की कन्या के साथ विवाह किया था।

Dara Shako. दारा शिकोह=यह शाहजहाँ का ज्येष्ठ पुत्र था। यह बड़ा उदार, स्वतंत्रचेता, स्पष्टवक्ता होने के कारण कट्टर मुसलमानों का

घृणापात्र था। इसमें इसके पितामह अकबर के अनेक गुण विद्यमान थे। इसे दीनी पुस्तकें पढ़ने का बड़ा शौक़ था। इसने स्वयं संस्कृत पढ़ी थी और उपनिषदों का फ़ारसी में अनुवाद किया था। शाहजहाँ ने अपने अन्य लड़कों को भारतवर्ष के भिन्न भिन्न प्रान्तों के सूबेदार बना कर अपने पास से हटा दिया था, पर दाराशिकोह को उसने अपने पास रखा था। इसका छोटा भाई औरंगज़ेब इसीसे इससे बहुत जला करता था और उसने अपने दूसरे भाइयों से मिल कर इसका सर्वनाश किया। (देखो औरंगज़ेब)।

Daud Khan दाऊदख़ाँ=यह अफ़ग़ानी था और उसने बिहार, बङ्गाल और उड़ीसा पर अपना अधिकार जमा लिया था। सन् १५७६ ई० में अकबर की सेना से वह हारा और युद्ध में मारा गया।

Deo Raj (Dodda) देवराज=ये मैसूर के राजा थे। सलावत् जंग ने इन पर ५६ लाख सालाना का ख़िराज मुक़र्रर किया था। गृह-विच्छेद के कारण यह निर्बल रहे। इन्होंने सन् १६५६ से १६७२ ई० तक राज्य किया।

Deo Raj (Chick) देवराज=यह भी मैसूर का राजा था और इसने सन् १६७२ ई० से १७०४ तक राज्य किया।

Deo Raj देवराज=यह सन् १७३१ ई० में मैसूर का एक प्रधान मंत्री था।

Dhulip Singh दलीपसिंह=ये महाराज रणजीतसिंह के पुत्र थे और सन् १८३८ में उत्पन्न हुए थे। जब ये छोटे ही थे तभी से इनको अङ्गरेज़ी ढंग की शिक्षा दी गयी थी। इससे इनके विचार स्वधर्म और स्वदेश की ओर से बहुत फिर गये थे। यह इसी का फल था कि (डाक्टर पोप के कथनानुसार) वे ईसाई हो गये थे और उन्होंने एक मुसलमानी के साथ विवाह कर लिया था। सरकार ने उनको सदा के लिये इङ्गलेंड भेज दिया था।

Dhundu Pant धुन्धू पन्थ=यह बाजीराव पेशवा का दत्तक पुत्र था और इसका नाम श्रीधुन्धू पन्थ था; किन्तु इतिहास में यह नाना साहब के नाम से प्रसिद्ध है। सन् १८५७ ई० के सिपाही-विद्रोह में, इसने अज़ीमउल्ला की कुमंत्रणा में पड़ कानपुर में एक नाव में अङ्गरेज़ों को बीच गङ्गा में डुबवा दिया था। इस नाव में अङ्गरेज़ बच्चे और निरपराधिनी स्त्रियाँ थीं। यह कलङ्क उसके माथे पर यावत् इतिहास रहेगा, तावत् रहेगा। कहा जाता है, यह नैपाल के जङ्गल में जा कर नष्ट हो गया और इसके साथ ही पेशवा का वंश नष्ट हो गया।

Dilawar Khan Ghori दिलावरख़ाँ ग़ोरी=यह मालवा का प्रथम स्वतंत्र शाह था और सन् १४०१ ई० में विद्यमान था।

Dost Ali दोस्तअली=सन् १७४० ई० में यह आरकट का नवाब था। उस समय मरेहटों ने इस पर आक्रमण किया और युद्ध में इसे मार डाला।

Doulat Khan Lodi I. प्रथम दौलतख़ाँ लोदी=महमूद की मृत्यु के बाद पन्द्रह मास तक यह दिल्ली का अधिपति रहा था; किन्तु सन् १४१४ ई० में ख़िज़रख़ाँ ने, जो पंजाब का सूबेदार था, इसे निकाल दिया था।

Doulat Khan Lodi II. दूसरा दौलतख़ाँ लोदी=सन् १५१८ और १५२६ के भीतर पंजाब का सूबेदार था। इब्राहीम लोदी के व्यवहार से असन्तुष्ट हो कर, इसीने काबुल से बाबर को बुलाया था, जिसने लाहौर को फूँका और जो १२ हज़ार सैनिक ले कर दिल्ली की ओर बढ़ा। पानीपत में इब्राहीम ने बाबर का सामना किया और वहीं वह मारा गया और इसके मारे जाते ही भारतवर्ष से लोदी ख़ान्दान की बादशाहत विदा हुई।

Dumas (M.) ड्यूमस=पाण्डीचरी का एक फ्रेंच गवर्नर।

Damaji Gaekwar दामाजी गायकवार=ये सन् १७४१ ई० में गुजरात के स्वतंत्र अधिपति थे।

Dundas डण्डस=ये पार्लिमेण्ट के सदस्य थे और इन्होंने कम्पनी के भारतवर्षीय अधिकारियों की प्रथम मरेहटा युद्ध और हैदरअली एवं टीपू के प्रति व्यवहार को ले कर निन्दा की थी और हेस्टिंग्ज़ को कलकते से, हारनबी को बम्बई से

और एमवोलड़ को मदरास से हटाने को कहा था ।

Dundia Wag डण्डियावाघ=यह एक लुटेरा था जो कोल्हापुर राज्य में नौकर था। पीछे वहाँ से छोड़ कर उसने सेना एकत्र की और करनाटक को लूटना चाहा । पर मेजर जनरल आरथर वेलसी ने इसका पीछा किया और उसे मार डाला ।

Dupleix, M. डूपले=सन् १७३१ ई० में यह चन्दन नगर का डाइरेक्टर हो कर आया था । और इसने चन्दन नगर की बहुत उन्नति की । इसने निज के व्यापार में बड़ा धन कमाया और फिर कम्पनी के अन्य कर्मचारियों को भी बहुत सा धन पैदा कराया । यहाँ यह सन् १७४१ ई० तक रहा । इसने भी हिन्दुस्थानी तत्कालीन राजा और नवाबों को परस्पर लड़ा कर खूब धन पैदा किया और फ्रांस का राज्य यहाँ स्थापित करना चाहा था ।

Durga Das दुर्गादास=यह एक राजपूत था जिसने औरङ्गज़ेब के लड़के अकबर को उसके पिता के विरुद्ध उभाड़ा था ।

Durjan Sal दुर्जनसाल=यह बलदेवसिंह भरतपुर वाले का चचेरा छोटा भाई था और इसने बलदेवसिंह के मरते ही भरतपुर के दुर्ग पर अपना अधिकार कर लिया था । इसीके कारण अङ्गरेज़ों को भरतपुर का दुर्ग ध्वस्त करना पड़ा था ।

E.

Elgin, Lord. इलगिन=ये भारतवर्ष के पन्द्रहवें गवर्नर-जनरल थे । सन् १८६२ ई० से १८६३ ई० तक ये यहाँ रहे । ये सन् १८६३ ई० में मरे । इनके शासनकाल में दो उल्लेख योग्य कार्य हुए । पेशावर के पास सीमाप्रान्तवासियों के उपद्रव शान्त करने के लिये चढ़ाई की गयी, जिसका यह फल हुआ कि वे लोग भाग गये और दूसरी चढ़ाई भूतान पर की गयी । क्योंकि भूतानी अङ्गरेज़ी अमलदारी में छापा डालते थे और अङ्गरेज़ी प्रजा को गुलाम बना कर ले जाते थे । इस चढ़ाई का फल यह हुआ कि जिन लोगों को उन्होंने गुलाम बना रखा था—उन्हें छोड़ दिया और आगे फिर ऐसा न करने की प्रतिज्ञा की ।

Elgin II. दूसरे इलगिन=इनका शासन-काल सन् १८९४ से १८९९ तक । भारतवर्ष में सर्व प्रथम इन्हीं के समय में प्लेग आया, क़हत पड़ा और भूचाल आया जिससे हिमालय प्रान्त में बड़ा नुक़सान हुआ । इनके समय में भारतवर्ष की आर्थिक दशा भी अच्छी नहीं थी ।

Ellis, Mr. इलिस=ये पटना में मीर क़ासिम द्वारा मारे गये थे ।

Elphistone (M.) इलफस्टन=ये एक प्रसिद्ध राजनैतिक विद्वान् थे । सन् १८०३ ई० में ये नागपुर के प्रथम रेज़ीडेण्ट हुए । इन्होंने दो बार गवर्नर-जनरली के लिये इंकार किया । इनका बनाया भारत-इतिहास प्रसिद्ध है ।

Elphinstone, Lord. लार्ड इलफस्टन=ये सन् १८५७ ई० में बम्बई के गवर्नर थे और सिपाही-विद्रोह के समय इन्होंने बड़ी योग्यता और बुद्धिमानी से काम किया था ।

Elphinstone, General. इलफस्टन जनरल=ये सन् १८४१ में काबुल में अङ्गरेज़ी सेना के जनरल थे । इतिहासलेखकों ने इन्हें उस समय वृद्ध और अयोग्य ठहराया है । ये अकबरख़ाँ के हाथ में पड़ कर मारे गये थे ।

Ellenborough, Earl of. अर्ल इलनबरा=ये भारतवर्ष के ग्यारहवें गवर्नर-जनरल थे और सन् १८४२ ई० में यहाँ आये तथा सन् १८४४ में यहाँ से गये । जब से रणजीतसिंह मरे, तब से लाहौर में वहाँ की गद्दी पर जल्दी जल्दी लोग बैठते और मरते थे । इसलिये वहाँ बड़ा उपद्रव था । सबके बाद बालक दलीपसिंह अपनी माता के अभिभावकत्व में लाहौर की गद्दी पर बैठे । खालसा सेना में असन्तोष फैला और उनका ध्यान बटाने के लिये उनको सतलज पार कर हिन्दुस्थान लूटने की परवानगी दी गई । इस सेना में साठ हज़ार मनुष्य और १५० तोपें थीं । लार्ड इलनबरा ने इनको रोका था ।

F.

Farukshir. फ़र्रुख़सियर=यह शाहआलम का पौत्र और अज़ीमुश्शान का पुत्र था । यह नवाँ मुग़ल सम्राट् था । इसने रणक्षेत्र में विजयी हो कर दिल्ली का राजसिंहासन पाया था । (देखो

अन्तिम भाग बहादुरशाह का) इसके शासन-काल का इतिहास यों है—

फ़र्रुख़सियर की आज्ञानुसार जहान्दरशाह, ज़ुलफ़िक़ारख़ाँ और उसका पिता आसदख़ाँ—तीनों बड़ी नृशंसता के साथ मार डाले गये। औरङ्गज़ेब की स्वार्थपरता एवं परधर्मविद्वेष के कारण विशाल मुग़ल साम्राज्य के अधःपात की सूचना मिली, बहादुरशाह की दुर्बलता और जहान्दरशाह के व्यभिचार से अधःपतन का मार्ग उन्मुक्त हुआ। अनन्तर फ़र्रुख़सियर के सिंहासन पर पैर रखते ही तैमूर वंश के विनाश की घड़ी उपस्थित हुई।

तख़्त पर बैठते ही नये सम्राट् ने हुसेनअलीख़ाँ को मीर बख़्शी के पद पर और अब्दुल्लाख़ाँ को वज़ीर के पद पर नियुक्त किया। उन दोनों सैयदों ही के परिश्रम और सहायता से फ़र्रुख़सियर को दिल्ली का तख़्त मिला था। इसी से वे दोनों फ़र्रुख़सियर को नाममात्र का सम्राट् बना कर स्वयं शासन-सम्बन्धी सारा काम काज करने लगे।

नया सम्राट् कमउम्र, अनभिज्ञ, डरपोक और दुर्बल चित्त का मनुष्य था। वह अपनी सम्मति सबसे पीछे देता था। और प्रायः उन दोनों सैयदों की हाँ में हाँ मिला दिया करता था। उसकी इस दुर्बलता का फल यह हुआ कि दोनों सैयद सोलहो आने राज्य के मालिक बन बैठे। फ़र्रुख़सियर ने पहले इस पर कुछ भी ध्यान न दिया। उस समय मुलतान में मीर ज़ुम्ला क़ाज़ी थे। फ़र्रुख़सियर का इस पर पूर्ण विश्वास जम गया था।

फ़र्रुख़सियर को सिंहासन पर बैठे दो वर्ष हुए थे कि हुसेनअलीख़ाँ अजीतसिंह के विरुद्ध जोधपुर पर चढ़ाई करने के लिये भेजे गये। टाड साहब ने लिखा है कि जब मुग़ल सेना को अजीतसिंह ने हरा दिया; तब हुसेनअलीख़ाँ ने अपने प्राण बचाने के लिये अजीतसिंह से सन्धि कर ली। किन्तु मुसलमान इतिहास-लेखक काफ़ीख़ाँ ने लिखा है कि मीरजुम्ला आरम्भ ही से सैयदों की बढ़ती देख कर मन ही मन कुढ़ा करते थे और उनको नीचा दिखाने का अवसर ढूँढ़ रहे थे। इसीसे उन्होंने फ़र्रुख़सियर के कान भर, हुसेनअलीख़ाँ के अधीन सेना जोधपुर भिजवायी थी। मुग़ल सेना की अवाई सुन अजीतसिंह डरा और स्वयं उसने सन्धि कर लेने की प्रार्थना की। बादशाह को मीरजुम्ला पर पूरा भरोसा था। वह खुल्लंखुल्ला कहा करता था कि मीरजुम्ला के वाक्य और स्वाक्षर, मेरे ही वाक्य और स्वाक्षर हैं। मीरजुम्ला एक न्यायवान् पुरुष था। वह बादशाह की आज्ञा का अक्षरशः पालन किया करता था। उसीके हाथ में लोगों को नियुक्त करने का काम था। यह व्यवस्था वज़ीर अब्दुल्लाख़ाँ के स्वार्थ में बाधा डालती थी। अतः वह सदैव मीरजुम्ला के विरुद्ध रहा करता था। किन्तु बहुत से अमीर उमराव बादशाह और उसके विश्वस्त मंत्री के पक्षपाती थे। अब्दुल्लाख़ाँ ने दरबार का रङ्ग ढङ्ग देख कर यह बात जान ली कि हुसेनअलीख़ाँ का राजधानी में शीघ्र लौट कर आना असम्भव है और अब मेरा भी पतन अवश्य ही होगा। अतः उसने हुसेनअलीख़ाँ को राजधानी में शीघ्र आने के लिये एक पत्र भेजा। वह पत्र हुसेनअलीख़ाँ को उस समय मिला, जब अजीतसिंह की ओर से सन्धि का प्रस्ताव किया गया था। इसीसे उसने झटपट सन्धि कर ली। और अजीतसिंह ने अपनी कन्या को, मुग़ल सम्राट् के साथ व्याहने के लिये, मुग़ल सेनापति के साथ दिल्ली भेजा।

राजपूताने से हुसेनअलीख़ाँ के लौटने पर क्षमतालाभप्रयासी दोनों दलों में बड़ा झगड़ा हुआ। इससे बादशाह को बड़ा दुःख हुआ। उसने इस झगड़े को मेटने के लिये दोनों दलों के नेता—हुसेअलीख़ाँ और मीरजुम्ला को दरबार से पृथक् करने का प्रस्ताव उठाया। तदनुसार हुसेनअलीख़ाँ दक्षिण और मीरजुम्ला विहार के शासक बनाये गये। हुसेनअलीख़ाँ ने जाते समय बादशाह से कहा :—

हुसेनअलीख़ाँ—"मेरी अनुपस्थिति में न तो मीरजुम्ला बुलाया जाय और न मेरे भाई के साथ बुरा बर्ताव किया जाय। यदि ऐसा हुआ तो मैं तीन सप्ताह के भीतर ही

ससैन्य यहाँ आ जाऊँगा ।"

ज़ुलफ़िक़ार के मारे जाने पर उसका प्रतिनिधि दाऊदख़ाँ दक्षिण प्रान्त के शासक पद पर काम करता था । जब हुसेनअलीख़ाँ ने उससे काम लेना चाहा, तब वह बादशाह के सङ्केत से हुसेनअलीख़ाँ के विरुद्ध खड़ा हो गया । घोर युद्ध के बाद दाऊदख़ाँ मारा गया । और हुसेनअलीख़ाँ वहाँ का शासक हुआ । जब यह समाचार दिल्ली पहुँचा, उस समय बादशाह ने उदास हो कर कहा—"ऐसे सुविख्यात प्रशस्तमना वीर की मृत्यु दुःखदायी है।" इसके उत्तर में अब्दुल्लाख़ाँ ने कहा—"यदि उस अफ़ग़ानी के हाथ से मेरा भाई मारा जाता, तो जहाँपनाह सुखी होते !"[१]

इतने में सिक्ख जाति ने फिर सिर उठाया और लाहौर से ले कर अम्बाले तक के विस्तृत प्रदेश पर उन लोगों ने अपना अधिकार जमा लिया । सम्राट् ने सिक्खों को समूल नष्ट करने के लिये एक बड़ी भारी सेना भेजी । सिक्खों ने मुग़ल सेना को कई बार मार भगाया । किन्तु उनके पास आहार की सामग्री न रही; तब उन्होंने शत्रु के हाथ आत्मसमर्पण किया । क्रूरप्रकृति मुग़ल सेनापति ने नृशंसता की इति श्री कर, दो हज़ार सिक्खों के सिर कटवा और कटे हुए सिर गाड़ियों में लदवा बादशाह के पास भेजे । साथ ही सिक्खों के गुरु बन्दू को एक हज़ार से अधिक अनुचरों सहित हाथों पैरों में बेड़ी हथकड़ी डाल कर दिल्ली को भेज दिया । बन्दी सिक्ख वीर एक एक कर के घातक की तलवार से प्राण विसर्जन कर के मुग़ल साम्राज्य को शाप दे गये । बन्दू ने आदेशानुसार अपने हाथ से अपने पुत्र का सीस चुपचाप एवं अविचलित चित्त से काटा । इसके बाद वे भी मार डाले गये ।[३]

इस घटना के दूसरे वर्ष मीरजुम्ला पटना का शासनकार्य परित्याग कर, दिल्ली लौट आया । राजदरबार से दूर रहने के कारण अब उसकी

१ सचमुच दाऊदख़ाँ प्रशस्तमना था । एक बार अहमदाबाद में कुछ मुसलमानों ने मिल कर एक हिन्दू के घर के पास गौ मारी । इससे हिन्दुओं ने उत्तेजित हो कर एक मुसलमान के बालक को मार डाला । इसका फल यह हुआ कि दोनों दलों में झगड़ा होने लगा । तब दाऊदख़ाँ ने हिन्दुओं ही का पक्ष ग्रहण किया था ।

२ राजा शिवप्रसाद ने लिखा है :—(बादशाही सेना ने) "उनके सर्दार बन्दू गुरु को ७४० आदमियों के साथ पकड़ कर दिल्ली भेज दिया । और तो सब भेड़ की खाल पहना कर ऊँटों पर सारे शहर में घुमाये गये और फिर सात दिन तक क़तल होते रहे; लेकिन बन्दू को नाश का जामा पहना कर लोहे के पिंजरे में बन्द किया । उसके गिर्द भालों पर उसके साथियों के सिर थे । एक बिल्ली उसने पाली थी उसे भी मार कर एक भाले से लटका दिया । जल्लाद नङ्गी तलवार लिये सामने खड़ा था । उसके बालक लड़के को उसे दे कर कहा कि तू ही अपने हाथ से मार डाल और जब उसने इन्कार किया तब जल्लाद ने उसीके सामने उस बेचारे बेगुनाह बच्चे को ज़िबह कर के उसका कलेजा उसके बाप के ऊपर फेंका और फिर गर्म चिमटों से नोच नोच कर उसे भी टुकड़ा टुकड़ा कर डाला । ये सब सिक्ख बड़ी जवाँमर्दी से मरे । और अपने मज़हब से ज़रा न डिगे ।"

३ His son was placed upon his knees—a knife was put into his hands, and he was required to take the life of his child. He did so silent and unmoved; his own flesh was then torn with red hot pincers, and amid those tornments he expired, his dark soul, say the Mahometans, winging its way to the regions of the damned.

Cunninghanm's History of the Sikhs.

प्रतिपत्ति कम हो गयी थी। इसके अतिरिक्त हुसेनअलीख़ाँ ने दक्षिण जाते समय बादशाह को जो धमकी दी थी—वह भी उसे याद बनी थी। इसी से इस बार मीरजुम्ला का दरबार में पहले जैसा मान न हुआ। राजदरबार से दूर रखने के लिये बादशाह ने इस बार उसे लाहौर का शासनकर्त्ता बना कर भेजा।

एक ओर तो सम्राट् विलास-स्रोत में मग्न हो कर रमणियों के विलोल कटाक्षों एवं चित्तोन्मादकर मृगया को अपने जीवन का सार समझ, राजोचित कर्त्तव्य से विमुख होता जाता था, दूसरी ओर मुग़ल सैयद बन्धुओं का प्रभुत्व धीरे धीरे बढ़ता जाता था। क्योंकि बादशाह तो राजकाज को बेगार समझ उससे सदा कोसों दूर रहता था। यहाँ तक कि जिन काग़ज़ पत्रों पर सम्राट् को स्वाक्षर करना परमावश्यक था; प्रधान सचिव को उन पर उसके स्वाक्षर कराने में भी बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था। धनाभाव से फिर जज़िया कर लगाया गया। हिन्दू राजकर्मचारी पदच्युत किये गये और भय दिखला कर उनके ज़िम्मे हिसाब में बाक़ी रक़म निकाली गयी। उधर दक्षिण में धीरे धीरे मरेहटों की प्रधानता बढ़ी और उनकी युद्ध-प्रणाली दिनों दिन नियमबद्ध होती गयी। बादशाह ने सैयदों के चंगुल से निकलने का दृढ़ संकल्प किया। किन्तु उनके सामने उसके मुँह से बोल तक नहीं निकलता था। अतः बादशाह ने हुसेनअली के विनाशार्थ चुपके चुपके मरेहटों को उत्साहित किया। ऐसी करतूत का जो परिणाम हो सकता है—सो सब लोग स्वयं ही समझ सकते हैं। भारतवर्ष भर में हिन्दुओं की शक्ति बढ़ गयी और मुग़लों का गौरव नष्ट हो गया। उधर हुसेनअली ने जब देखा कि महाराष्ट्र मेरे दाबे नहीं दबते; तब उसने महाराष्ट्रों के साथ मुग़ल-गौरव-नाशकारी सन्धि करने का विचार किया। किन्तु बादशाह ने ऐसी अकीर्तिकर सन्धि के प्रस्ताव को अस्वीकृत किया और राजा अजीतसिंह एवं अन्य कई एक अमीर उमरावों को मिला कर वह सैयद बन्धुओं की जड़ उखाड़ने का प्रयत्न करने लगा। किन्तु बादशाह की डाँवाडोल मति और भीरु प्रकृति के कारण, उसका यह प्रयत्न विफल हुआ। अब्दुल्लाख़ाँ आत्मरक्षार्थ सेना संग्रह करने लगा और हुसेनअलीख़ाँ को राजधानी में उपस्थित होने के लिये पत्र लिख भेजा। तदनुसार हुसेनअलीख़ाँ दस सहस्र महाराष्ट्र सैनिक ले कर दिल्ली में आ पहुँचा। दोनों भाइयों ने अनायास ही अरक्षित राजपुरी पर अपना अधिकार कर लिया। अनन्तर उनके अनुचर राजप्रासाद में घुस बादशाह को ढूँढ़ने लगे। बहुत ढूँढ़ने पर बादशाह छत की चाँदनी के एक कोने में छिपा हुआ मिला। उन दुष्टों ने बादशाह का बड़ा अपमान किया और पकड़ कर उसे बाहर निकाल ले गये। उस समय रनवास की स्त्रियों का करुण-क्रन्दन सुन हृदय दहला जाता था। वे उन दुष्टों के बार बार पैरों पड़ कर क्षमा माँगती थीं। किन्तु उन दुष्टों पर इसका कुछ भी प्रभाव न पड़ा। वे फ़र्रुख़सियर को रनवास के बाहर ले आये और उसकी दोनों आँखें फोड़ कर उसे कारागार में डाल दिया। काफ़ीख़ाँ ने लिखा है कि यह कारागार असल में कारागार न था, बल्कि जिस फ़र्रुख़सियर के लिये (क़ब्र) (hnirs sunlr) थी उस कारागार में उसे जो कष्ट मिले वे विस्तार से लिखने योग्य नहीं हैं। उसने वहाँ से निकलने के लिये कारागार के पहरेवालों को मिलाया। जब यह समाचार सैयदों को मिला; तब उन दोनों ने भोजन की सामग्री में विष मिला कर उसे मार डाला।

फ़र्रुख़सियर हुमायूँ की क़ब्र के पास दफ़नाया गया। यद्यपि फ़र्रुख़सियर में अनेक दोष थे, तथापि वह दीन दुखियों का प्रतिपालक था। उसके जनाज़े के पीछे दो तीन हज़ार दीन दुखी और साधु सन्त मक़बरे तक रोते धोते गये थे। मार्ग में चलते चलते वे सैयदों को कोसते और धूल उड़ाते जाते थे। वह दृश्य बड़ा विकट था। मक़बरे में सैयद बन्धु भी बहुत से धनी मानी लोगों को साथ ले कर गये थे। उनको देखते ही लोगों ने उन पर पत्थर फेंके थे। सैयद बन्धुओं की ओर से परलोकगत बादशाह की सद्गति के लिये चाँवल और पैसे बाँटने

का प्रबन्ध किया गया था; पर उन चाँवलों और पैसों को किसी ने छुआ तक नहीं। तीसरे दिन अन्य लोगों ने मिल कर मक़बरे में, बहुत सा अन्न और भोजन दीन दुखियों को दिया और सारी रात वहीं सब लोग रहे।

Ferdousi, the Persian Homer. फ़रदौसी=यह महमूद ग़ज़नी का दरबारी कवि था। इसने अपने मालिक की बड़ी प्रशंसा शाहनामे में की है। इसकी कविता की बड़ी प्रशंसा है। इसने अपने इस काव्य को इस आशा से बनाया था कि महमूद इस अपने आत्म-प्रशंसक काव्य को देख कर उस पर प्रसन्न होगा और काव्यकार को विपुल धनराशि से पुरस्कृत करेगा, पर ऐसा न हुआ और उसकी आशा भङ्ग हुई, जिसकी चोट से वह मर गया।

Ferishta. फ़रिश्ता=यह फ़ारसी का एक प्रसिद्ध इतिहास-लेखक है और इसके इतिहास का बड़ा आदर है। यह इब्राहीम आदिलशाह द्वितीय का दरबारी था और सन् १५८६ से १६१२ तक वहाँ रहा।

Feroz Shah Khilji. फ़ीरोज़शाह या जलालुद्दीन ख़िलजी=यह सन् १२८८ ई० में तख़्त पर बैठा था। कैकोबाद के बालक पुत्र की हत्या का कलङ्क इसके मत्थे मढ़ा जाता है। इसके राजत्वकाल में इसके भतीजे अलाउद्दीन ख़िलजी ने दक्खिन पर चढ़ाई की थी। नर्मदा पार कर इसने देवगढ़ के रामदेव राय यादव को परास्त किया और वहाँ बहुत सा माल टाल भी हाथ लगा। फिर इसने इलिचपुर पर भी चढ़ाई की।

एक मास बाद जब वह दक्खिन की यात्रा से लौटा तब उसने अपने चचा से एकान्त में मिलना चाहा। जब बूढ़ा फ़ीरोज़शाह स्नेह के वशीभूत हो अपने भतीजे के गालों पर थपकी लगा रहा था, इतने में अलाउद्दीन ने घातकों को इशारा किया, बात की बात में उन दुष्टों ने बूढ़े फ़ीरोज़ की छाती में छुरी भोंक दी, धड़ से सिर अलग कर दिया और कटे सिर को बाँस पर रख छावनी में निकाला।

मारे जाने के समय फ़ीरोज़शाह सत्तर वर्ष का था और इसने केवल सात वर्ष राज्य कर पाया था। अलाउद्दीन करा का गवर्नर था।

Feroz-ud-din Tuglak. फ़ीरोज़उद्दीन तुग़लक़=यह जूनाख़ाँ उर्फ़ तीसरे मुहम्मद का भतीजा था और अपने चचा की मृत्यु के बाद सन् १३५१ ई० में तख़्त पर बैठा और सन् १३८८ तक राज्य किया। मरते समय इसकी उम्र नब्बे वर्ष की थी।

इसके राजत्वकाल में प्रजा सुखी रही और इसने बड़े ढंग से राज्य किया। इसीने हिसार तक जमना की नहर खुदवाई थी और सतलज के तट पर फ़ीरोज़पुर नगर की नींव रखी थी।

Francis Philip, (Sir), फ़्रांसिस फिलिप=ये वारिन हेस्टिंग्ज़ की कौंसिल के एक सदस्य थे। इनसे और हेस्टिंग्ज़ से कभी नहीं पटी। यहाँ तक कि एक बार इन दोनों में परस्पर द्वन्द्वयुद्ध हुआ और फ्रांसिस, हेस्टिंग्ज़ की गोली से घायल हुआ, पर मरा नहीं।

G.

Gaikwar. गायकवाड़ दामाजी=सन् १७६१ ई० में पानीपत में मरेहटों का अहमदशाह के साथ जो युद्ध हुआ था उसमें ये भी शरीक हुए थे और जब मरेहटों की हार हुई तब ये भाग कर बच गये थे।

Gaikwar Govind Rao गोविन्दराव } ये दोनों
Gaikwar Fateh Singh. फ़तहसिंह } दामाजी के पुत्र थे और पिता की मृत्यु के बाद, इन दोनों में गद्दी पर बैठने के लिये सन् १७७४ ई० में झगड़ा हुआ था।

Gama Vascodei. गामा वेसकोडी=यह एक पुर्त्तगाली यात्री था जिसने पूर्वी द्वीपों का समुद्री मार्ग खोज कर निकाला। सन् १४६७ ई० में पुर्त्तगालाधीश्वर इमेनुयल ने नये देशों की खोज के लिये इसे भेजा था। उसका जहाज़ कालीकट में सन् १४६८ ई० के मई महीने में लगा था और कालीकट के राजा ने उसका बड़ा आगत स्वागत किया था। इसकी मृत्यु सन् १५२५ ई० में कोचीन में हुई थी। यह पुर्त्तगाली, भारतवर्ष का गवर्नर भी बनाया गया था, पर बहुत दिनों तक यह पद उसके पास न रहा और मर गया।

Ghazi-ud-din I. प्रथम ग़ाज़ीउद्दीन=यह निज़ामुलमुल्क का पिता था और इसीने बीजापुर की शक्ति को ध्वस्त किया था। यह सन् १६८६ ई० की घटना है।

Ghazi-ud-din II. द्वितीय ग़ाज़ीउद्दीन उर्फ़ निज़ामुलमुल्क=यह प्रथम ग़ाज़ीउद्दीन का पुत्र था। इसका जन्म सन् १६४४ में हुआ और मृत्यु सन् १७४८ ई० में। यह बड़ा चालाक आदमी था। इसीके वंश में हैदराबाद की नवाबी अब तक चली आती है।

Ghazi-ud-din III. तृतीय ग़ाज़ीउद्दीन=सलावतजंग इसका छोटा भाई था। किसी की सहायता से सलावत गद्दी पर बैठा, पर पिता की जायदाद को खुल्लंखुल्ला लड़ाई झगड़ों में पड़ कर नष्ट करना ग़ाज़ीउद्दीन ने उचित न समझा। पीछे मरेहटों की सहायता से उसने राज्य लेना चाहा, पर निज़ामअली की माँ ने उसे ज़हर दे कर सन् १७५२ ई० में मार डाला।

Ghazi-ud-din IV चतुर्थ ग़ाज़ीउद्दीन उर्फ़ मीर शहाबुद्दीन=यह फ़ीरोज़जंग का पुत्र और तीसरे ग़ाज़ीउद्दीन का भतीजा था। जिस समय इसके चचा को ज़हर दिया गया, उस समय इसकी अवस्था केवल सोलह वर्ष की थी और यह बड़ा दुस्साहसी था। इसने बड़े होने पर बड़े बड़े बुरे कर्म किये। इसी की साज़िश से सन् १७५४ ई० में अहमदशाह अन्धा बना कर क़ैद किया गया और जेल ही में मरा। इसी की आज्ञा से दूसरा आलमगीर भी मारा गया। यह अहमदशाह अबदाली के हाथ में पड़ गया था, पर बच गया। इसने बड़े बड़े अत्याचार किये थे।

Gheiaz-ud-din ग़ियाज़ुद्दीन=यह बङ्गाल का स्वतंत्र शासक था और सन् १२२६ ई० में अल्तमश ने इसे अपने वश में कर लिया था।

Gheiaz-ud-din Balban ग़ियाज़ुद्दीन बलबन=यह अल्तमश का एक तुर्की गुलाम था। और इसने उसकी चाची के साथ विवाह किया था और इसकी लड़की के साथ महमूद ने विवाह किया था। नसीरुद्दीन महमूद तो दरवेश था, किन्तु रियासत का सारा कामकाज ग़ाज़ीउद्दीन करता था।

Gheiaz-ud-din Tuglak I प्रथम ग़ियाज़ुद्दीन तुग़लक=इसीने खुसरो को मारा था। इसने सन् १३२१ से १३२५ तक राज्य किया। यह एक सीढ़ी से गिर कर मरा था।

Gheiaz-ud-din Tuglak II. दूसरा ग़ियाज़ुद्दीन तुग़लक=यह फ़ीरोज़शाह तुग़लक का पौत्र था। इसने अपने भाई आबूबेक्र के साथ पाँच मास तक राज्य किया था और यह सन् १३८६ ई० में मार डाला गया था।

Gillespic, Colonel गिलिपसी=इसने सन् १८०५ ई० में आरकट में और नैपाल में बड़ी वीरता दिखलायी थी।

Goddard, Colonel गाडर्ड=सन् १७७६ ई० में पहली मरेहटों की लड़ाई में बड़ी वीरता दिखलायी थी। यह अङ्गरेज़ी सेना के कर्नल थे।

Godwin, General. गुडविन=सन् १८५२ ई० की दूसरी बर्मा की लड़ाई में यह स्थल-सेना के प्रधान सेनापति हो कर गये थे।

Golab Singh. गुलाबसिंह=सन् १८४६ ई० में एक लाख स्टरलिङ्ग दे कर काश्मीर के राजा बने थे। लालसिंह ने इनके विरुद्ध विद्रोह भी करना चाहा था, पर वह पकड़ कर आगरे भेज दिया गया।

Gough Hugh, Sir गफ़=यह अङ्गरेज़ी सेना के एक सेनापति थे, और इन्होंने सन् १८४५ और १८४८ ई० के प्रथम और द्वितीय सिक्ख-युद्धों में बड़ी वीरता दिखलायी थी।

Grant, J. P. Sir ग्रेण्ट=सन् १८५७ ई० के सिपाही-विद्रोह में ये मदरास से बुलाये गये थे और बनारस से आगे के विद्रोह को इन्होंने शमन किया था।

Grant, H. Sir ग्राण्ट=इन्होंने दिल्ली में, सिपाही-विद्रोह के समय बड़ी वीरता दिखलायी थी।

Grant, Charles. ग्राण्ट चार्ल्स=इन्होंने पार्लिमेंट में स्थायी प्रबन्ध Permnaent Settlement का पक्ष ग्रहण किया था।

Griffni, Admiral. ग्रिफ़िन्=ये समुद्री अङ्गरेज़ी सेना के प्रधान थे और इन्होंने सन् १७४६ ई०

में पांडिचेरी पर आक्रमण कर अङ्गरेज़ों को विपद् से बचाया था।

Gubbins, Frederic. गबनस=सन् १८५७ के सिपाही-विद्रोह के समय, बनारस में ये सेशंसे जज थे और इन्होंने वहाँ के उपद्रव को बहुत कुछ दबाया था।

Hafiz हाफ़िज़=यह एक H. प्रसिद्ध फ़ारसी भाषा का कवि हो गया है। असल में यह इसका नाम नहीं है, किन्तु उपाधि है। इसका असली नाम था, ख़्वाजा हाफ़िज़ शमसुद्दीन मुहम्मद। बग़दाद के सुलतान अहमद इसे स्वयं सीराज से अपनी राजधानी बग़दाद में लाया था। हाफ़िज़, सीराज में उत्पन्न हुआ था और यहीं उसकी मृत्यु हुई थी। ७६४ हिजरी में इसकी मृत्यु हुई। सुलतान बाबर ने इसकी क़ब्र बनवायी थी। इस विख्यात कवि के सुप्रसिद्ध ग्रन्थ का नाम "दीवान हाफ़िज़" है। सन् १३७८ से १४२२ ई० के भीतर हाफ़िज़ ने कुलबर्ग जाना चाहा था; पर वहाँ के झगड़ों के मारे उसे अपना इरादा बदल देना पड़ा था।

Hafiz Rahmat. हाफ़िज़ रहमत=यह एक रुहेला सरदार था। इसके अधीन चालीस हज़ार सेना थी। अवध के नवाब ने अङ्गरेज़ी सेना भाड़े पर ले कर सन् १७७४ ई० में रुहेलों को नष्ट करवाया था।

Hamida हमीदा बीबी=यह सुप्रसिद्ध मुग़ल सम्राट् अकबर की जननी थी।

Hardinge, Sir H हार्डिंग्ज़=भारतवर्ष के १२ वें गवर्नर जनरल। सन् १८४४ से १८४८ ई० तक ये यहाँ रहे। इनके समय में प्रथम सिक्ख युद्ध हुआ था।

Hardinge, Lord हार्डिंग्ज़=भारतवर्ष के वर्त्तमान गवर्नर जनरल और १२ वें गवर्नर जनरल के पौत्र। ये यहाँ पर सन् १६१० ई० में आये। इनका शासन-काल भारत के इतिहास में सुवर्णाक्षरों में लिखा जायगा। इन्हीं के समय में भारत के वर्त्तमान सम्राट् पञ्चम जार्ज ने दिल्ली में राज्याभिषेक का स्वयं उत्सव किया। कलकत्ता से हटा कर दिल्ली में राजधानी स्थापित की गयी। कर्ज़न के किये बङ्गाल के दोनों टुकड़े जोड़े गये। बिहार और उड़ीसा का एक नया प्रान्त बनाया गया। कर्ज़न और मिण्टो के समय में जो अशान्ति यहाँ फैली थी वह इनकी बुद्धिमानी से बहुत घट गयी। दिल्ली में दुष्ट आततायी के फेंके बम्ब से बुरी तरह आहत हो कर भी आप अपनी नीति और सिद्धान्तों पर अटल रहे। आपका शासनकाल शान्तिमय और चिरस्मरणीय रहेगा।

Hari Pant Pharka. हरीपन्त फरके=पूना के मरेहटी सरकार के एक बड़े ही सुयोग्य प्रधान सेनापति (जनरल) थे। लार्ड कार्नवालिस ने जिस समय टीपू की राजधानी श्रीरङ्गपट्टम पर सन् १७६२ ई० में चढ़ाई की, उस समय हरीपन्त अपने अधीनस्थ सेना सहित लार्ड कार्नवालिस की सहायता के लिये गये थे।

Harpal हरपाल=मैसूर के राजा रामदेव का दामाद, जिसे सन् १३१८ ई० में मुबारक खिलजी ने जीवित जलाया था।

Harris General, Lord हैरिस=अङ्गरेज़ी सेना के एक जनरल थे और सन् १७६८ ई० में जो सेना टीपू के विरुद्ध भेजी गयी थी और जिस में निज़ाम की भी सेना शामिल थी—सर्व प्रधान सेनापति कमाण्डर-इन-चीफ़ थे। इन्होंने बड़ी बुद्धिमानी से टीपू का दुर्ग हस्तगत किया था।

Hastings, Marquis मारक्विस हेस्टिंग्ज़=ये भारतवर्ष के गवर्नर जनरल थे और सन् १८१३ से १८२३ ई० तक यहाँ रहे। अमेरिकन युद्ध में ये लड़े थे, तभी से इनकी ख्याति बढ़ी थी। ५६ वर्ष की अवस्था में ये भारत के गवर्नर-जनरल हो कर आये थे। इनके समय में नेपाल पर चढ़ाई की गयी, पिंडारी दमन किये गये, राजपूताने के नरेशों से मैत्री स्थापित हुई, मरेहटों के साथ तीसरी बार युद्ध हुआ।

Hastings, Warren वारिन हेस्टिंग्ज़=यह भारतवर्ष का प्रथम गवर्नर जनरल था। यह यहाँ का सन् १७७४ से १७८५ तक गवर्नर-जनरल रहा। यह भारत में अङ्गरेज़ी अमलदारी

की नींव को पुष्ट करने वाला बतलाया जाता है। इसीके समय में अङ्गरेज़ी सेना भाड़े पर दी गयी, जिसने रुहेलों को सदा के लिये निर्वीज कर डाला; इसीके समय में निरपराध महाराज नन्दकुमार फाँसी पर चढ़ाये गये। इसी के समय में बनारस के राजा चेतसिंह का सर्वनाश हुआ। इसीके समय में अवध की बेगमों पर अमानुषिक अत्याचार हुए और उनका धन लूटा गया। इसने दक्षिण में अङ्गरेज़ी दबदबा बिठाया था। पर जब यह घर लौट कर गया तब इस पर सात वर्ष तक बराबर मुक़द्दमा चलाया गया। मुक़द्दमे की पैरवी में इसने जितना धन भारतवर्ष में कमाया था, वह सब व्यय हो गया और कौड़ी कौड़ी को यह मोहताज हुआ; तब कम्पनी के डाइरेक्टरों ने इस पर दया कर, पेंशन की व्यवस्था की।

Havelock, Sir Henry हैनरी हैवलाक=सन् १८५७ ई० के सिपाही-विद्रोह में इन्होंने बड़ी वीरता और बुद्धिमानी से काम किया था। कानपुर में दुष्टों को दमन कर और उन्हें दण्ड देने के लिये नील को छोड़ आप लखनऊ गये और वहाँ दूसरी जुलाई को एक गोले के फट जाने से मर गये।

Havelock, Colonel हैवलाक कर्नल=यह सन् १८४६ ई० के सिक्ख युद्ध में रिसाले के कर्नल थे चिनाव के पार सिक्खों को भगाने के लिये शत्रु पर हमला करते समय ये मारे गये थे।

Hawkins, Capt. कप्तान हाकिन्स=सन् १६०८ ई० में कप्तान हाकिन्स, इङ्गलेण्डेश्वर प्रथम जेम्स और ईस्ट इण्डिया कम्पनी की चिट्ठियाँ ले कर सूरत में जहाँगीर से मिले थे।

Hemu हैमू=मुहम्मद आदिलशाह का वज़ीर जो सन् १५५५ ई० में विद्यमान था। जाति का यह बनिया था, पर था बड़ा बुद्धिमान् और बहादुर।

Hindal हिंदल=यह बाबर का तीसरा पुत्र था। जब इसका सबसे बड़ा भाई सन् १५३० ई० में तख़्त पर बैठा; तब उसने हिंदल को दिल्ली के पूर्व सम्बल का इलाक़ा सौंपा था।

Hodson, Captain कप्तान हडसन=यह अङ्गरेज़ी सेना का कप्तान था और सन् १८५७ ई० के सिपाही-विद्रोह में दिल्ली पर अङ्गरेज़ी अधिकार जमाते समय इसने बड़ी बहादुरी दिखलायी थी।

Holkar, Mulharji मल्हार जी हुल्कर=सन् १७२४ ई० के लग भग कई एक मरेहटे प्रधान स्वतंत्र हुए थे और उन्होंने अपनी अपनी स्वतंत्र रियासतें स्थापित कीं। उनमें से एक मल्हारराव हुल्कर थे। ये जाति के शूद्र थे और पेशवाओं की सेना में घुड़सवार थे। इन्हें सन् १७३३ ई० में इन्दौर की रियासत मिली थी और ये उसीके अधिपति हो गये। सन् १७६६ ई० में इनकी मृत्यु हुई। मरेहटों में ४२ वर्ष तक इनके कारण बड़ी उत्तेजना रही थी। इनके एक पुत्र था, जिसका नाम खण्डेराव था और जो सन् १७५५ ई० में मरा।

Holkar Jaswanth Singh हुल्कर जसवन्तसिंह=ये तुकाजी हुल्कर के दासीपुत्र थे। ये सन् १७६५ ई० में तुकाजी हुल्कर की मृत्यु के अनन्तर गद्दी पर बैठे। ये सिंधिया के प्रतिद्वन्द्वी थे। इनकी सेना में भील, पिण्डारी, मरेहटे, अफ़ग़ान आदि बहुत से सैनिक शामिल हो गये थे और सब मिला कर इनके पास सत्तर हज़ार सैनिक थे।

Hoshang Ghori हुशङ्गग़ोरी=यह मालवा का स्वतंत्र अधिपति था और दिलावरख़ाँ के बाद सन् १४०५ ई० में यही वहाँ की गद्दी पर बैठा था। इसने माण्डूगढ़ बनवाया था जिसका भग्नावशेष अब तक विद्यमान है। इसीने मालवा की राजधानी धार से हटा कर माण्डूगढ़ में स्थापित की थी।

Houtman, हौटमैन=यह एक डच था और इसे पूर्वी देशों का कुछ ज्ञान भी प्राप्त था, इसीसे इसे डच के अधीश्वर ने चार जहाज़ दे कर भारतवर्ष की ओर व्यवसाय के लिये सन् १५६४ ई० में भेजा था।

Hubib Khan हबीबख़ाँ=यह बङ्गाल के नवाब अलीवर्दीख़ाँ का एक सैनिक जनरल था और इसे मरेहटों की सेना के सेनापति भास्कर पण्डित ने सन् १७४१ में युद्ध के समय क़ैद कर लिया था। पीछे से हबीबख़ाँ ने मरेहटों की नौकरी की और फिर इसने अलीवर्दीख़ाँ

पर बार बार चढ़ाई कर उनकी नाक में दम कर दी थी।

Huges, Admiral. हुगज़=ये अङ्गरेज़ी जलसेना के अधिपति थे और इन्होंने सन् १७८२ ई० में फरासीसियों को हराया था।

Hulaku Khan हलाकूख़ाँ=यह चङ्गेज़ख़ाँ का पौत्र था और बग़दाद के ख़लीफ़ों की शक्ति को ध्वंस करनेवाला था। सन् १२६६ ई० में हलाकू ने भारतीय सम्राट् महमूद के दरबार में अपना एक एलची भेजा था, जिसकी सम्मानपूर्वक अभ्यर्थना की गयी थी।

Humayun Tuglak हुमायूँ तुग़लक=यह फ़ीरोज़ का पुत्र था। फ़ीरोज़ नसीरउद्दीन तुग़लक का पुत्र था और पिता के जीवित काल में रियासती काम काज में अपने पिता को सहायता दिया करता था। किन्तु इसका प्रबन्ध ठीक न था और इसीसे प्रबन्ध में बड़ी गड़बड़ी होने के कारण यह निकाल दिया गया था। पीछे से इसने अपने भतीजों को निकाल कर तख़्त पर अधिकार किया। इसकी मृत्यु के बाद इसका पुत्र हुमायूँ तख़्त पर बैठा, पर तख़्त पर बैठने के ४५ दिन बाद मर गया।

Humayun. हुमायूँ।

यह दूसरा मुग़ल सम्राट् था और बाबर का पुत्र था। मुग़ल-कुल-तिलक बाबर के परलोकवास होने पर उसका ज्येष्ठ पुत्र नसीरउद्दीन मुहम्मद हुमायूँ राजसिंहासन पर बैठा। ज्योतिष शास्त्र में हुमायूँ बड़ा पण्डित था। फलित ज्योतिष की चर्चा में उसको बड़ा आनन्द प्राप्त होता था। उसने आये हुए मनुष्यों से मुलाक़ात करने के लिये सात कमरे सजा रखे थे और सात ग्रहों के नामानुसार उन कमरों के नाम भी रखे थे। उन घरों के सजाने की सामग्री चित्र तथा भृत्यों के वेष आदि भी ग्रहों की वेषभूषा के अनुसार ही थे। जिस दिन जिस ग्रह का प्रभाव रहता था उस दिन उसी ग्रह के नाम के कमरे में हुमायूँ दरबार करता था। उनसे मिलने वाले मनुष्यों में जिस ग्रह के गुणों की अधिकता रहती, उससे हुमायूँ उसी ग्रह के कमरे में भेंट करता था। कवि, परिव्राजक और विदेशी राजदूत सोमकक्ष में, विचारक, शास्त्रवेत्ता और कार्याध्यक्ष बुधकक्ष में और सैनिक तथा सेनाध्यक्ष बृहस्पतिकक्ष में राजदर्शन करते थे।

हुमायूँ ने राज्यकार्य चलाने के लिये चार भूतों के नामानुसार चार विभाग बनाये थे। आतशी (आग्नेय) हवाई (वायवीय) आबी (आप्य) और ख़ाकी (पार्थिव) ये उन विभागों के नाम थे। इन विभागों के कार्य करने के लिये चार मन्त्री नियुक्त किये थे। जिन पदार्थों के बनाने में अग्नि की आवश्यकता होती है उनका निर्माण आतशी (आग्नेय) विभाग में किया जाता था। वस्त्र भूषण का घर, पाकशाला और अस्तबल आदि के कार्य हवाई (वायव्य) विभाग के अधीन थे। शरबतख़ाना (रसागार) आटा और नहर आदि के कार्य आबी (आप्य) विभाग के द्वारा होते थे। कृषि कूप तालाब आदि का खुदवाना तथा घर आदि बनाने के लिये ख़ाकी (पार्थिव) विभाग की सृष्टि हुई थी।

जिस समय देश में चारों ओर शान्ति विराजमान थी; तभी तक हुमायूँ इस निर्दोष आमोद का उपभोग कर सका। किन्तु उसका शान्तिमय जीवन का प्रवाह बहुत दिनों तक एक सा न रहा। अनेक प्रकार के राजकार्यों की चिन्ता में पड़ने से उसे ज्योतिष सम्बन्धी उक्त विचारों को परित्याग करना पड़ा।

बाबर के तीन पुत्र और थे। कामरान, हिन्दल और मिरज़ा अस्करी। बाबर मरने के पूर्व अकेले हुमायूँ ही को दिल्ली के साम्राज्य का भार दे गया था। सुतरां अन्य राजकुमारों का दिल्ली के तख़्त पर कुछ भी दावा न था। किन्तु कामरान राज्य पाने की लालसा को न दबा सका और पंजाब पर उसने सतृष्ण दृष्टि डाली। उस समय वह वीर भूमि अफ़ग़ानस्तान का शासक था। सेना एकत्र करने में कामरान को हुमायूँ की अपेक्षा अधिक सुविधा थी। क्योंकि हुमायूँ थोड़े ही दिनों से अधिकार में आयी हुई रियासत का मालिक था और कामरान ऐसी रियासत का शासक था, जिस पर उसके अनेक पूर्वपुरुषों ने शासन किया था। यह बात

विचार हुमायूँ ने कामरान को पंजाब प्रदेश दे डाला। काबुल को भारतवर्ष से अलग करना अच्छा न हुआ। क्योंकि अनुरक्त काबुलियों की सहायता बिना नव विजित देश की रक्षा करना बड़ा कठिन काम था। हुमायूँ के राजत्व काल के आरम्भ में हिन्दुस्थान में मुग़लों की सेना में काबुली ही थे। किन्तु भारतवर्ष से काबुल के अलग होते ही धीरे धीरे काबुली वीर हुमायूँ की सेना छोड़ खसकने लगे। उनके जाने पर हुमायूँ को दूसरे वैसे अनुरक्त वीरों का मिलना कठिन हो गया। घरेलू झगड़े मिटाने के लिये कामरान को पंजाब, हिंगल को सम्भल और मिरज़ा अस्करी को मेवात के शासक पद पर नियुक्त कर हुमायूँ ने अपने को निश्चिन्त समझा।

किन्तु घरेलू झगड़ों को मिटाने के लिये हुमायूँ के इतना करने पर भी वे शान्त न हुए। हुमायूँ के तख़्त पर बैठने के कुछ ही दिनों बाद उसके एक अन्तरङ्ग मनुष्य ने बादशाह को विष दे कर मार डालने का षड्यंत्र रचा। किन्तु वह षड्यंत्र प्रकाशित हो गया और वह मनुष्य भाग कर गुजरात के अधिपति बहादुरशाह की छत्र छाया में चला गया। हुमायूँ ने उस मनुष्य को पकड़ कर दिल्ली भेज देने का बहादुरशाह से अनुरोध किया; किन्तु बहादुरशाह ने आश्रित मनुष्य को शत्रु के हाथ में देना स्वीकार न किया। इस घटना से दोनों के मन एक दूसरे की ओर से मैले पड़ गये।

इस घटना के कुछ ही दिनों बाद दिल्ली के अन्तिम लोदी वंश के नरपति इब्राहीम के चचा अलाउद्दीन ने भी जा कर बहादुरशाह का पल्ला पकड़ा। बहादुरशाह के पूर्वपुरुषों ने लोदी वंश की अमलदारी ही में गुजरात का राज्य पाया था। इसीसे अलाउद्दीन की उत्तेजना से वह उसे (अलाउद्दीन को) हुमायूँ के विरुद्ध युद्ध करने के अर्थ धन की सहायता देने को उद्यत हुआ। अलाउद्दीन ने उसके धन की सहायता से एक बड़ी भारी सेना एकत्र की और अपने पुत्र तातारख़ाँ को उसका सेनापति बना कर हुमायूँ से लड़ने के लिये भेजा। हुमायूँ ने उस सेना को अनायास परास्त किया और तातारख़ाँ भी इस लड़ाई में शत्रु के हाथ से मारा गया।

इसके बाद बहादुरशाह से इसका बदला लेने के लिये हुमायूँ ने गुजरात पर चढ़ाई की।[1] बहादुरशाह ने मन्दसौर के पास अपनी छावनी डाली और वहीं मोरचे बनवाये। हुमायूँ छः महीने तक उसकी छावनी को घेरे पड़े रहे। अन्त में हुमायूँ ने शत्रु की रसद के जाने का मार्ग बन्द कर दिया। ऐसा करने से थोड़े ही दिनों बाद बहादुरशाह की छावनी में खाद्य पदार्थों का अभाव हो गया। बहादुरशाह ने वीर पुरुषों की तरह आत्मरक्षा न की, किन्तु वह डर गया और उसकी सारी आशाएँ धूलि में मिल गयीं। उसकी दशा दिनों दिन यहाँ तक बिगड़ी कि वह एक दिन रात के समय अपने पाँच विश्वस्त मित्रों के साथ वहाँ से भाग खड़ा हुआ। बहादुरशाह के भागने की बात प्रकाशित होते ही एक साधारण नौकर से ले कर बड़े उच्च पदाधिकारी तक छावनी छोड़ कर भाग खड़े हुए।

अगले दिन सबेरे हुमायूँ ने जब बहादुरशाह के भाग जाने का संवाद सुना; तब उसने (हुमायूँ ने) बहादुरशाह का पीछा किया। किन्तु वह उसे पकड़ न सका। तब हुमायूँ ने गुजरात में जा कर गुजरात को अपने अधिकार में कर लेना चाहा। समतल भूमि को अधिकार में कर हुमायूँ ने पहाड़ी देश को अधिकृत करने की ओर ध्यान दिया और उसकी दृष्टि सब से प्रथम चम्पानेर के दुर्ग पर पड़ी। उसने एक बार रात के समय दुर्ग द्वार पर आक्रमण करने के लिये कुछ सैनिक भेजे। इधर द्वाररक्षकों के साथ इनसे युद्ध छिड़ा–उधर बादशाह तीन सौ सैनिकों सहित, क़िले की दीवार में कीले गाड़ और उनके सहारे क़िले की दीवार पर चढ़ कर, क़िले में घुस गया। इस कौशल से भी हुमायूँ उस दुर्ग पर सहज रीति से अपना अधिकार न कर सका। दुर्गरक्षक शत्रु को विध्वस्त करने के अर्थ प्राणपण से युद्ध करने लगे। यहाँ तक कि आत्मसमर्पण करने के पूर्व उन्होंने अपने विपक्षी से सुविधाजनक शर्तें करा लीं। अन्त में बड़ी भारी लड़ाई के बाद वह क़िला हुमायूँ ने फ़तह किया।

---

[1] गुजरात यात्रा के पूर्व हुमायूँ ने जौनपुर के सुलतान महमूद और चुनारगढ़ के अधिपति शेरख़ाँ को जिस प्रकार अपने अधीन किया उसका विवरण आगे दिया जायगा।

चम्पानेर दुर्ग की अभेद्य बनावट और शत्रु की अधिक संख्यक सेना को परास्त कर के दुर्ग पर अधिकार करने से हुमायूँ की उस प्रान्त में धाक बँध गयी।

उस दुर्ग में बहुत सा धन था। किन्तु वह धन रखा कहाँ है, इस बात को बहादुरशाह के एक कर्मचारी को छोड़ दूसरा कोई नहीं जानता था। मुग़ल राजपुरुषों ने उस मनुष्य को पीड़ा पहुँचा कर उससे धन का पता पूँछने का प्रस्ताव किया। किन्तु हुमायूँ ने उनके प्रस्ताव को अस्वीकृत कर सद्व्यवहार से उसे वशीभूत करने की आज्ञा दी। इस उपाय से मुग़लों के ऊपर वह मनुष्य बहुत प्रसन्न हुआ और एक दिन मदिरा पी कर एवं उन्मत्त दशा को प्राप्त हो कर उसने उस धन का पता बतला दिया। हुमायूँ को वहाँ असंख्य धन रत्न मिले। हुमायूँ ने प्रत्येक सैनिक को एक एक ढाल भर कर सोने और चाँदी की मुद्रा दे कर पुरस्कृत किया।

गुजरात को अपने अधिकार में कर हुमायूँ बहुत दिनों तक वहाँ न रहने पाया। राजधानी में गड़बड़ के समाचार सुन हुमायूँ ने गुजरात के शासन का भार मिरज़ा अस्करी को सौंपा और वह राजधानी में लौट आया। हुमायूँ के गुजरात परित्याग करते ही मुग़लों में घरेलू झगड़ा आरम्भ हुआ और वे एक दूसरे को नीचा दिखाने के लिये षड्यंत्र रचने लगे। इससे वे इतने निस्तेज और हीनबल पड़ गये कि बहादुरशाह ने थोड़े ही दिनों बाद, लड़े बिना ही फिर गुजरात पर अपना अधिकार जमा लिया।

हुमायूँ ने राजधानी में लौट कर देखा—बिहार का शासनकर्त्ता अफ़ग़ानी शेरख़ाँ मुग़ल साम्राज्य पर टकटकी बाँधे बैठा है।

शेरख़ाँ बड़ा परिश्रमी था। उसका असली नाम फ़रीद था। उसने एक व्याघ्र को हाथोंहाथ मार कर शेर की उपाधि पायी थी। शेर के पूर्वपुरुष अफ़ग़ानस्तान के अन्तर्गत रो नामक पहाड़ी प्रदेश के रहने वाले थे। वह अपनी वीरता के कारण बहुत प्रसिद्ध हो गया था। शेर के पितामह स्वदेश छोड़ कर अपने भाग्य की परीक्षा लेने को दिल्ली में आये थे। शेरख़ाँ के पिता हुसेन को निज पुरुषार्थ द्वारा सहसराम और टाँडा की जागीर मिली थी।

वीर शिशु ने जन्मग्रहण करते ही सिंहशावक के साथ कुश्ती लड़ी। तभी से शेर की चारों ओर बड़ाई होने लगी। एक बार शेरख़ाँ ने अपने पिता से कहा कि आप अपने स्वामी से कह कर मुझे कहीं किसी काम पर रखवा दें। हुसेन ने शेरख़ाँ से कहा—अभी तुम्हारी उम्र बहुत कम है, तुम अभी कोई काम न कर सकोगे। कुछ बड़े और हो, तब मैं तुम्हें किसी अच्छे पद पर नौकर करवा दूँगा। शेरख़ाँ पिता की बातें सुन क्षुब्ध हुआ और उसने अपने मन की अभिलाषा माता के सामने प्रकट की। तब अपनी पत्नी के कहने से हुसेन, शेरख़ाँ को अपने मालिक के पास ले गया। हुसेन के मालिक शेरख़ाँ की बहादुरी का हाल सुन प्रसन्न हुए और शेरख़ाँ को एक गाँव पुरस्कार में दे कर प्रतिज्ञा की कि बड़े होने पर हम शेरख़ाँ की अभिलाषा पूरी करेंगे। इससे शेरख़ाँ के आनन्द की सीमा न रही।

हुसेन के कई एक स्त्रियाँ थीं। इस लिये शेरख़ाँ की माता से उसकी कम पटती थी। इस लिये हुसेन उसकी गर्भजात सन्तान का अच्छी तरह लालन पालन नहीं करता था। पितृस्नेह से वञ्चित हो और अभिमान में भर शेरख़ाँ सहसराम छोड़ कर जौनपुर गया। हुसेन ने जौनपुर के शासनकर्त्ता को पत्र लिखा कि आप शेरख़ाँ को यहाँ भेज दीजिये। इस पर जौनपुर के शासनकर्त्ता ने शेरख़ाँ को बुलाया और घर लौट जाने को कहा। तब शेरख़ाँ कहने लगा :—

शेरख़ाँ—अगर हमारी ज्ञानतृष्णा को मटियामेट करने के लिये ही बाप ने बुलाया है, तो मैं यहीं पढ़ूँ लिखूँगा क्योंकि जौनपुर में अनेक विद्वान् हैं।

इस समय जौनपुर के शासन का भार जमालख़ाँ के हाथ में था। जमालख़ाँ उदारहृदय और बड़ा विद्याप्रेमी था। शेरख़ाँ ने थोड़े ही दिनों में जमालख़ाँ को प्रसन्न कर लिया। जमालख़ाँ ने उसे सेना में भर्ती किया। जौनपुर में रह कर शेरख़ाँ ने थोड़े ही दिनों में काव्य व्याकरण आदि में अच्छी योग्यता सम्पादन कर ली। दानी जमालख़ाँ से आर्थिक सहायता प्राप्त कर शेरख़ाँ का अधिक समय काव्य, इतिहास और बड़े लोगों के जीवनचरित पढ़ने ही में बीतता था।

इस प्रकार कुछ दिन बीतने पर शेरख़ाँ की यशःप्रभा चारों ओर फैल गयी। जौनपुर से लौट कर आये हुए लोगों के मुख से पुत्र की बड़ाई सुन हुसेन निज

पुत्र को अपने घर लाने को उत्सुक हुआ। तीन वर्ष बाद पिता पुत्र मिले।

शेरख़ाँ के घर लौटने पर हुसेन ने जागीर सम्बन्धी सारा काम काज उसे सौंप दिया। जागीर का काम मिलने पर—

शेरख़ाँ ने कहा—"न्याय ही राज्य रक्षा का सब से बढ़ कर उपाय है। निर्दोष और दुर्बल पर अत्याचार कर मैं कभी न्यायपथ से भ्रष्ट न होऊँगा।"

उसके इन्हीं वाक्यों से उसकी असाधारण शासन शक्ति और कार्यतत्परता का परिचय मिल जाता है। शेरख़ाँ ने पैतृक जागीर का नये सिरे से प्रबन्ध किया। उसका यह प्रबन्ध ही पीछे अकबर की राजस्वनीति का आदर्श हुआ। शेरख़ाँ ने तहसीलदार, पटवारी और क़ानूनगो आदि को बुला कर कहा तुम लोग भूमि को नाप कर लगान लगाओ और जो लोग नक़द रुपये दें उनसे नक़द और जो अन्न दें उनसे अन्न लिया करो। उसने यह भी कहा—"मैं लगान लगाते समय प्रजा के हित की ओर दृष्टि रखूँगा, किन्तु वसूल करते समय कठोरता से काम लूँगा। यदि तुम लोग यथानियम लगान अदा करते रहोगे, तो मैं तुम्हारी नालिश फ़रियाद सब कुछ सुनूँगा—कोई तुम्हारा बाल भी बाँका न कर पावेगा।" सचमुच शेरख़ाँ ने बड़ी योग्यता और न्यायपूर्वक काम किया। उसके शासन काल में अत्याचारी ज़मींदारों के विष-दन्त भग्न हो गये बेचारे दुर्बल किसान निरुपद्रव अपना काम करने लगे। शेरख़ाँ समय पर लगान वसूल करता और किसानों की उचित सहायता कर खेती बारी के काम को बढ़ाता था। वह जिस काम में हाथ डालता उसीको बड़ी बुद्धिमानी के साथ पूरा करता था। थोड़े ही दिनों में उसकी कीर्ति चारों ओर फैल गयी। किन्तु शेरख़ाँ की सौतेली माँ उसकी उन्नति देख देख कर मारे डाह के जली जाती थी। वह अपने बेटों के हाथ में शासन भार दिलाने के अर्थ हुसेनख़ाँ को बारम्बार उत्तेजित करती थी। अन्त में हुसेनख़ाँ जब उसके कठोर वचन सुनते सुनते हैरान हो गया; तब उसने शेरख़ाँ के हाथ से शासन कार्य निकालने का सङ्कल्प किया। शेरख़ाँ को जब पिता के सङ्कल्प का हाल विदित हुआ; तब उसने बिना किसी प्रकार का हीला हवाला किये—शासन भार स्वयं छोड़ दिया और वह आगरे चला गया।

शेरख़ाँ के आगरे जाने के कुछ ही दिनों बाद हुसेनख़ाँ की मृत्यु हुई। तब शेरख़ाँ ने सम्राट् से अपनी पैतृक जागीर का परवाना लिया और उसे ले कर वह सहसराम लौट गया। वहाँ पहुँचते ही उसमें और उसके सौतेले भाइयों में झगड़ा आरम्भ हुआ।

यह झगड़ा मिटने भी नहीं पाया था कि सारे हिन्दुस्थान में राजविप्लव की आग फैल गयी। मुग़ल-कुल-तिलक बाबर ससैन्य भारतवर्ष में आया। सुलतान इब्राहीम लोदी रणक्षेत्र में मारा गया। और दिल्ली के दुर्ग पर मुग़लों की राजपताका फहराने लगी। उसी गड़बड़ी में शेरख़ाँ ने अपने भाग्य की परीक्षा लेने का सङ्कल्प किया और विहार के अधिपति की नौकरी कर ली। उस समय सुलतान महमूद विहार का स्वतंत्र भाव से शासन करते थे। असाधारण कार्यपटुता और प्रतिभा के कारण शेरख़ाँ बहुत ही थोड़े दिनों के भीतर सुलतान का कृपापात्र बन गया। यहाँ तक कि मुहम्मद ने अपने पुत्र जलाल को शिक्षा देने के लिये शेरख़ाँ को नियुक्त किया। किन्तु सुलतान की कृपादृष्टि बहुत दिनों तक उस पर एक सी न रही। सुलतान ने किसी कारण वश अप्रसन्न हो कर, शेरख़ाँ को पदच्युत कर दिया।

विपद् कभी अकेली नहीं आती। इसी समय शेरख़ाँ के घरेलू झगड़े ने भी ज़ोर पकड़ा। उसके शत्रु मुहम्मद ने उसके भाइयों का पक्ष लिया और शेरख़ाँ को उसकी पैतृक सम्पत्ति से एकदम अलग कर देने की चेष्टा की। किन्तु शेरख़ाँ ने बाहुबल से घर के झगड़े को शान्त कर पैतृक सम्पत्ति पर अपना अधिकार जमाया। घर का झगड़ा ठंडा कर के, शेरख़ाँ अपनी उन्नति करने के लिये आगरे गया और वहाँ थोड़े ही दिनों में उसने बाबर को अपने ऊपर प्रसन्न कर लिया।

इसके थोड़े ही दिनों बाद बाबर को युद्धयात्रा करनी पड़ी। शेरख़ाँ भी उनके साथ हो लिया। इसी सुअवसर में शेरख़ाँ को साम्राज्य के संरक्षण सम्बन्धी सारे रहस्य अवगत हो गये और उसके हृदय में राज्य करने की लालसा भी जागी। एक दिन उसने अपने एक अन्तरङ्ग मित्र से कहा:—"मुग़लों को गला पकड़ कर भारतवर्ष से निकाल देना कठिन

काम नहीं है। इसमें सन्देह नहीं बाबर स्वयं एक विचक्षण राजनीतिविशारद शासनकर्त्ता है, किन्तु वह हाल ही में यहाँ आया है और यहाँ की रीति नीति को नहीं जानता। असल में प्रधानमंत्री ही सारा काम करता है और वह अपने स्वार्थ के सामने राज्य की भलाई को कुछ भी नहीं गिनता। अतः यदि हम सब आपस के वैरभाव को भूल कर एक होजायँ, तो राजलक्ष्मी मुग़लों का साथ छोड़ कर अफ़ग़ानों की अङ्कशायिनी हो। यद्यपि यह कार्य इस समय स्वप्नवत् दिखलायी पड़ता है; तथापि यदि भाग्यलक्ष्मी अनुकूल हुई, तो मैं अवश्य कृतकार्य होऊँगा।

घटनासूत्र से शेरख़ाँ की इस अभिलाष को बाबर जान गया।[1] जानते ही बाबर ने शेरख़ाँ को अपने पास से भगा दिया। शेरख़ाँ अपनी पैतृक जागीर में पहुँच काम करने लगा।

शेरख़ाँ मुग़ल छावनी को छोड़ फिर विहार में पहुँचा। वहाँ सुलतान महमूद ने उसका फिर बड़ा आदर किया। इसके थोड़े ही दिनों बाद मुहम्मद की मृत्यु हुई और उसका अप्राप्तवयस्क (नाबालिग़) पुत्र जलालख़ाँ विहार की राजगद्दी पर बैठा। राजमाता सुलताना दादू पुत्र की ओर से राजकाज देखने भालने लगी और शेरख़ाँ को बहुत से काम सौंप दिये। इसके कुछ ही दिनों बाद सुलताना भी मर गयी और तब शेरख़ाँ विहार का सोलहों आना कर्त्ता धर्त्ता हो गया।

उस समय बङ्गाल के सिंहासन पर सुलतान मुहम्मद आसीन थे। बङ्गाल के अन्तर्गत हाजीपुर के शासनकर्त्ता मकदूमआलम ने सुलतान मुहम्मद के विरुद्ध विद्रोह का झंडा खड़ा किया और शेरख़ाँ से मित्रता की। मकदूम को नाश करने और विहार को जय करने के लिये सुलतान मुहम्मद ने अपने सेनापति कुतुक को नियुक्त किया। बङ्गसेना के सामने हमारी सेना बिल्कुल थोड़ी नहीं है यह कह कर शेरख़ाँ ने मकदूम के साथ सन्धि करवानी चाही; किन्तु इसमें वह कृतकार्य न हुआ। तब शेरख़ाँ ने अपनी छोटी सी सेना के सहित शत्रु की बड़ी सी सेना के साथ युद्ध करने की प्रतिज्ञा की। समरक्षेत्र में उसके अपूर्व वीरत्व और रणकौशल से उसका श्रम सफल हुआ। शेरख़ाँ की जीत हुई। किन्तु सेनापति कुतुब शत्रु के हाथ से मारा गया। लोहानी वंश के कई एक सेनानायकों ने शेरख़ाँ का समरक्षेत्र में साथ दिया था। किन्तु शेरख़ाँ ने लूट के माल में से उनको एक छदाम भी न दी और सारा माल वह अकेले ही पचा गया।

शेरख़ाँ को देख कर जलालख़ाँ के लुहानी स्वजन पहिले ही से जला करते थे। तिस पर लूट के माल में से कुछ भी हिस्सा न पा कर उनके डाह की आग और भी अधिक भड़क उठी। अब वे उसको हानि पहुँचाने का अवसर ढूँढ़ने लगे। पहले तो उन लोगों ने शेरख़ाँ के प्राण लेने के लिये षड्यंत्र रचा। किन्तु उनका षड्यंत्र खुल गया। तब शेरख़ाँ ने विचार किया कि अपनी क्षमता को बचाये विना इन दुष्टों की दुष्टता से बचना कठिन है। अतः उसने मनमानी कार्रवाई कर के विपक्षियों की कमर तोड़ दी। जलालख़ाँ पहले ही से गुपचुप शेरख़ाँ के विपक्षियों से मिले हुए थे। अन्त में जब शेरख़ाँ ने ज़ोर पकड़ा; तब उसे अपने राज्य से निकलवाने के लिये जलालख़ाँ स्वजनों सहित बङ्गाल के सुलतान मुहम्मद की शरण में गये। शेरख़ाँ को अनायास विहार का राज्य मिल गया।

जलालख़ाँ का पक्ष ले कर सुलतान मुहम्मद ने शेरख़ाँ के विरुद्ध एक बड़ी भारी सेना भेजी। तब शेरख़ाँ दुर्ग में घुसा। शत्रु सेना ने जब दुर्ग को घेर लिया; तब भी शेरख़ाँ ने हिम्मत न छोड़ी। शेरख़ाँ के कौशल और वीरता से बङ्ग सेना को हार कर पीठ

१ जिस घटना से शेरखाँ को यह बात विदित हुई कि बाबर को मेरे हृदयस्थ विचार अवगत हो गये, वह घटना बड़ी कौतुकावह है। एक बार शेरखाँ बादशाह के साथ बैठा खाना खा रहा था। उस दिन के खाने में कठिन मांस भी परोसा गया। किन्तु मांस के टुकड़े करने के लिये छुरी न दी गयी। शेरखाँ ने नौकर से छुरी माँगी—किन्तु बाबर ने छुरी न देने का नौकर को इशारा कर दिया। छुरी न मिलने पर शेरखाँ उदास न हुआ। उसने अपने पास का छुरा निकाल मांस को काटा। पास के लोग शेरखाँ का यह व्यवहार देख विस्मित हुए। किन्तु शेरखाँ ने उनकी ओर आँख उठा कर भी न देखा। जब वे सब खाना खा चुके तब बाबर ने कहा—"यह युवक कभी लक्ष्यभ्रष्ट न होगा, और समय पा कर यह एक बड़ा आदमी होगा।

दिखानी पड़ी । इसके बाद शेरख़ाँ ने चुनार के सुदृढ़ दुर्ग पर अधिकार कर अपनी शक्ति और भी बढ़ा ली । इससे सारा विहार उसके हस्तगत हो गया ।

इतने में जौनपुर का अधिपति सुलतान महमूद हुमायूँ द्वारा पराजित और राज्यच्युत हो कर, अनेक स्थानों में घूमता फिरता, एक बड़ी सेना सहित विहार में पहुँचा । जौनपुरी सेना को रोकने की शक्ति शेरख़ाँ में न थी । सुतरां अन्य उपाय न देख, शेरख़ाँ ससैन्य उसके साथ मिल गया । सुलतान महमूद शेरख़ाँ के सद् व्यवहार से प्रसन्न हुआ और प्रतिज्ञा की कि जब मेरा जौनपुर पर फिर अधिकार होजायगा; तब मैं विहार को छोड़ दूँगा और इस राज्य का परवाना तुम्हें दे दूँगा । सुलतान महमूद के ससैन्य जौनपुर पहुँचते ही मुग़ल सेना वहाँ से भागी । सेना के भागते ही उसने मुग़लों की लखनऊ तक की अमलदारी विध्वस्त कर के वहाँ तक की भूमि जौनपुर राज्य में मिला ली । यह समाचार सुनते ही हुमायूँ ने उसके ऊपर चढ़ाई की । शेरख़ाँ के विश्वासघात से महमूद की हार हुई ।

इसके बाद शेरख़ाँ ने विहार पर अपना फिर अधिकार किया । हुमायूँ चुनार दुर्ग को अपने अधिकार में लेने के लिये विहार में गया । शेरख़ाँ ने हुमायूँ की अधीनता में चुनारगढ़ का शासन करना स्वीकार कर लिया उधर हुमायूँ को गुजरात के युद्ध में समस्त शक्ति लगाने की आवश्यकता थी—इससे हुमायूँ ने चुनार को छोड़ दिया । हुमायूँ तो गुजरात की लड़ाई में फँसा, इधर शेरख़ाँ ने सेना एकत्र करनी आरम्भ की । मुग़लों के शासन में अनेक अफ़ग़ान वीर फ़क़ीर बन कर इधर उधर घूमा करते थे । शेरख़ाँ ने उन सबको एकत्र किया । शेरख़ाँ ने यह घोषणा प्रचारित की कि जो अफ़ग़ान हमारी सेना में आ कर भर्ती न होगा वह जान से मार डाला जायगा । अफ़ग़ान वीरों का व्यर्थ नाश न हो । शेरख़ाँ की इस ओर पूरी निगाह थी । इस प्रकार अनेक उपायों से उसने बिखरी हुई अफ़ग़ान शक्ति को एकत्र किया । वह अफ़ग़ान सेना की सहायता करने में तिल भर भी लोभ नहीं करता था । यह संवाद प्रचारित होते ही दूर दूर से अफ़ग़ान वीरों के दल आ कर शेरख़ाँ के झंडे के नीचे एकत्र होने लगे । जब शेरख़ाँ ने देखा कि मेरे पास पर्याप्त सेना है; तब उसने बङ्गाल पर अपना अधिकार जमाने का सङ्कल्प किया ।

उधर हुमायूँ जब गुजरात से लौटा तब उसने सुना कि शेरख़ाँ राज्यलोलुप हो शक्ति सञ्चित कर रहा है । शक्तिशाली होने के पूर्व ही उसकी कमर तोड़ देनी चाहिये । यह विचार कर हुमायूँ ने बड़ी धूमधाम से शेरख़ाँ पर चढ़ाई की । जब शेरख़ाँ ने हुमायूँ की चढ़ाई का संवाद सुना; तब वह भी सतर्क हुआ और हुमायूँ को परास्त करने का उपाय सोचने लगा । उसने सोचा यदि मैं बङ्गाल को जीत लूँ तो मेरा सैनिक बल सौगुना बढ़ जायगा । तब मैं अनायास ही मुग़ल सेना को हरा सकूँगा । बङ्गाल की चढ़ाई के समय, मुग़लों को अटकाये रखने के लिये उसने अफ़ग़ान वीरों की चुनी हुई एक सेना को चुनारगढ़ में रखा ।

इसके बाद शेरख़ाँ ने बङ्गाल पर चढ़ाई की । सुलतान मुहम्मदशाह ने बड़ी वीरतापूर्वक शत्रु का सामना किया । किन्तु उनसे शत्रु की गति न रुक सकी । तब अन्य उपाय न देख सुलतान ने दुर्ग का आश्रय लिया । यह देख शेरख़ाँ ने गौड़ नगर को घेर लिया । किन्तु गौड़ नगर को अधिकृत करने के पूर्व उसने सुना कि विहार के एक ज़मींदार ने सिर उठाया है । यह सुन शेरख़ाँ ने अपने पुत्र जलालख़ाँ को तो बङ्गाल में छोड़ा और स्वयं वह विहार में लौट आया । मुहम्मदशाह जलालख़ाँ द्वारा वारम्वार परास्त हो कर क़िला छोड़ कर भागने के लिये वाध्य हुआ । इतने में विहार का मामला ठंडा कर के शेरख़ाँ बङ्गाल में फिर पहुँच गया और बड़ी सुगमता से उसने वहाँ के राजसिंहासन को अपने अधिकार में कर लिया ।

शेरख़ाँ विहार का उपद्रव शान्त करने और बङ्गाल को जीतने में लगा हुआ था । इतने में हुमायूँ ने विहार के पास पहुँच कर चुनार दुर्ग पर आक्रमण किया । दुर्गरक्षक रूमी ने बड़े विक्रम से दुर्ग की रक्षा की । छः मास तक दुर्ग घिरा रहने के बाद रूमीख़ाँ ने आत्मसमर्पण किया । हुमायूँ चुनारगढ़ को हस्तगत कर आगे बङ्गाल की ओर बढ़ने लगा । बङ्गाल-राज मुहम्मदशाह ने शेरख़ाँ से परास्त हो कर, पटना के पास किसी जगह सम्राट् हुमायूँ से भेंट की और अपनी दुर्दशा का सारा हाल कह सुनाया । बादशाह उस करुण वृत्तान्त को सुन कर बड़े दुःखी हुए और सन् १५३९ ई० में बङ्ग देश पर चढ़ाई की । शेरख़ाँ ने जब यह संवाद सुना; तब मुग़ल सेना का सामना करने के लिये उसने जलालख़ाँ को भेजा । किन्तु जलाल उस सेना

का सामना न करसका और सेना सहित भागा । हुमायूँ धीरे धीरे आगे बढ़ता चला जाता था । मुहम्मदशाह भी सेना के साथ ही था । मुग़ल सेना चलती चलती कहल नामक गाँव में पहुँची । यहीं मुहम्मदशाह ने अपने दो पुत्रों के मारे जाने का दुःखदायी समाचार सुना गोड़ दुर्ग के घेरे के समय जलालख़ाँ ने इन दोनों पुत्रों को पकड़ लिया था । मुहम्मदशाह पुत्रशोक से जर्जरित हो मर गया ।

शेरख़ाँ ने जब अपनी सेना के हार जाने का संवाद सुना; तब वह गोड़ दुर्ग में मुहम्मदशाह का सञ्चित धन ले कर अपनी पैतृक जागीर सहसराम में भाग आया । हुमायूँ का अनायास गोड़ नगर पर अधिकार हो गया । वहाँ उसके नाम का ख़ुतबा पढ़ा गया और उसीकी छाप का सिक्का जारी किया गया ।

हुमायूँ बङ्गाल का तख़्त पा कर विलास में डूब गया । उधर शेरख़ाँ अपने घर पर बैठ कर हुमायूँ के नाश का उपाय सोचने लगा । उसने रोहतास का दुर्ग अधिकृत कर के उस निरापद स्थान में अपने परिवार को पहुँचा आने का विचार पक्का किया । उस समय रोहतास का गढ़, राजा वीरकेश के हाथ में था । शेरख़ाँ की वीरकेश के साथ मैत्री थी । शेरख़ाँ ने उससे कहला भेजा—"मैं बङ्ग देश को अधिकृत करने के लिये फिर जाता हूँ । अपने परिवार को धन सहित आपके दुर्भेद्य दुर्ग में पहुँचा कर, मैं निश्चिन्त हो कर युद्ध की तैयारी करूँगा ।" मित्र की अगाध सम्पत्ति को हस्तगत करने के अभिप्राय से हो अथवा मित्रभाव से हो वीरकेश ने शेरख़ाँ का प्रस्ताव स्वीकृत किया । डोलियों[1] में स्त्रियों और धन होने का बहाना कर वह उनमें अपने चुने चुने योद्धा बिठा कर दुर्ग में घुस गया । घुसते ही उसने अपना वास्तविक उद्देश्य प्रकट किया । शत्रु के आक्रमण से दुर्गवासी घबड़ा कर जिधर भाग सके भाग गये । इस प्रकार पृथिवी का एक दुर्भेद्य दुर्ग शेरख़ाँ के हाथ लगा । उस दुर्ग में बहुत दिनों का धन इकट्ठा था । वह सब शेरख़ाँ के पल्ले पड़ा । अब उसे अपने परिवार को निरापद स्थान में पहुँचाने की आवश्यकता न हुई । क्योंकि इस घटना का हाल सुन शेरख़ाँ के भाईबन्द उत्साहित हुए और उसकी सहायता के लिये कमर कस कर खड़े हो गये । इस प्रकार शेरख़ाँ फिर से सामरिक बल एकत्र कर, हुमायूँ पर आक्रमण करने का अवसर ढूँढ़ने लगा ।

वर्षाकाल के आरम्भ होते ही बङ्गाल की आब हवा विषैली हुई । विषैली आब हवा में रहने से अनभ्यस्त मुग़ल सैनिकों को बीमारी ने आ घेरा । इसके अतिरिक्त बहुत से घोड़े और ऊँट मर गये । इस दुर्दशा के समय हुमायूँ को विदित हुआ कि शाहज़ादा हिन्दाल, कलहप्रिय मंत्रियों की बातों में आ कर विद्रोही हो गया है और जो प्रभुभक्त राजपुरुष थे उन्हें उसने मार डाला है । इतना ही नहीं बल्कि उसने अपने नाम का ख़ुतबा भी पढ़वाया है और कामरान ससैन्य आगरे की ओर चढ़ा चला आ रहा है ।

शेरख़ाँ ने देखा कि मुग़ल सेना बीमारी के कारण बड़ी दुर्बल हो रही है । और स्वयं बादशाह हिन्दाल को दमन करने के अर्थ राजधानी में पहुँचने के लिये व्यग्र हैं । इससे बढ़ कर और सुयोग कब मिलेगा ? इस प्रकार निश्चय कर शेरख़ाँ रोहतास के दुर्ग से बाहर निकला और हुमायूँ की गति रोकने के लिये ससैन्य आगे बढ़ा ।

चौसा में पहुँच कर शेरख़ाँ और हुमायूँ की सेना का आमना सामना हुआ । यहाँ शेरख़ाँ को तीन मास तक मुग़ल सेना की प्रतीक्षा करनी पड़ी । अन्त में शेरख़ाँ ने सन्धि का प्रस्ताव किया । हुमायूँ आगरे पहुँचने के लिये व्यग्र हो रहा था—इससे उसने सन्धि को स्वीकार कर लिया । शेरख़ाँ ने क़ुरान छू कर कहा कि मैं बङ्गाल विहार में सम्राट् के नाम का ख़ुतबा और सिक्का जारी रख कर, शासन करूँगा । मुग़लों के किसी स्थान को अपनी अमलदारी में न मिलाऊँगा । इस पर मुग़ल सेना को शेरख़ाँ की बातों पर विश्वास हो गया । इस विश्वास के भरोसे जब मुग़ल सेना

[1] तारीख़-शेरशाही में शेरख़ाँ के इस विश्वासघात का तो उल्लेख है, किन्तु डोलियों की बात को झूठ ठहरा कर उनके होने का प्रतिवाद किया गया है तारीख़-इ-ख़ानजहान, अकबरनामा और फ़रिश्ता में डोलियों का साथ में होना लिखा है । तारीख़ शेरशाही के लेखक ने शेरख़ाँ की भीरुता छिपाने के लिये सम्भव है डोलियों की बात को काटा हो । किन्तु हम अकबरनामा और फ़रिश्ता को प्रामाणिक समझ कर डोलियों का होना शेरख़ाँ की चालबाज़ी और भीरुता का नमूना समझते हैं ।

युद्ध की सारी आशा विसर्जन कर के निश्चिन्त भाव से पड़ी थी, तब शेरख़ाँ ने उस पर आक्रमण किया। उसको युद्ध के लिये तैयार होने तक का समय न मिला। हुमायूँ ने गङ्गा उतरने के लिये जो नौका एकत्र करवायी थीं, उनमें से बहुत सी नावें अफ़ग़ानों के हाथ पड़ीं। बादशाह मंत्री सहित बड़े सङ्कट में पड़ा। बीस हज़ार सेना गङ्गा के गर्भ में डूब गयी। हुमायूँ स्वयं जब डूबने लगा, तब निज़ाम नामक एक भिश्ती [1] ने अपनी मशक के सहारे बादशाह के प्राण बचाये और पार किया। इसके बाद हुमायूँ बची हुई सेना सहित आगरे की ओर बढ़ा। [2]

शेरशाह मुग़ल सेना को परास्त कर के बङ्गाल की ओर गया। उसने वहाँ पहुँच कर जहाँगीर कुलीबेग को अपनी छावनी में बुलाया और मंत्री सहित उसको मरवा डाला। अनन्तर उसने अपने नाम का ख़ुतबा पढ़वाया और अपने ही नाम का सिक्का चलाया। फिर वह बङ्गाल और विहार का शासन करने लगा।

शाहज़ादे कामरान ने मुग़ल सेना के पराजय का हाल सुना और अलवर हो कर वह सीधा आगरे पहुँचा। उसने देखा कि अफ़ग़ान धीरे धीरे अपनी शक्ति बढ़ा कर मुग़ल साम्राज्य को हस्तगत करते चले जा रहे हैं। हुमायूँ के साथ अफ़ग़ानों ने जैसा दुर्व्यवहार किया था—उसका हाल सुन कर कामरान के ख़ून ने जोश मारा और उसने अफ़ग़ान शक्ति को ध्वंस करने का सङ्कल्प किया। उधर मुग़लों को जब अपनी सेना के अफ़ग़ानों द्वारा पराजित होने का संवाद मिला, तब मुग़ल साम्राज्य की रक्षा के लिये जो मुग़ल जहाँ था, वहाँ से तुरन्त चल दिया और वे सब आगरे में एकत्र होने लगे। तीनों भाई मिल कर नित्य अफ़ग़ानों के नाश के लिये आपस में सलाह किया करते थे। किन्तु परस्पर मिलने का कामरान को वैसा आग्रह न था इससे कुछ विशेष लाभ भी न हुआ। इस प्रकार कुछ समय व्यतीत होने पर कामरान ने लाहौर लौट जाने की इच्छा प्रकाश की। व्यर्थ की कहा सुनी में छः मास खो कर कामरान बीमार पड़ा। उसने अपनी बीमारी का कारण यह बतलाया कि हुमायूँ ने मुझे विष दिलवा दिया है। इसके बाद उसने अपने अभागे भाई की सहायता के लिये एक हज़ार सैनिक आगरे में छोड़े और वह स्वयं लाहौर चला गया। इस घटना का फल यह हुआ कि नगरनिवासियों ने समझ लिया कि लड़ाई का परिणाम हुमायूँ के पक्ष में विपरीत होगा। इससे वे हतोत्साह हो गये और कामरान की बनावटी मीठी मीठी बातों में आ कर उसके पीछे लग लिये।

हुमायूँ शत्रु के नाश में भाइयों के साथ कहा सुनी कर के व्यर्थ समय खो रहा था। उधर शेरशाह बङ्गाल का भीतरी शासन नियमबद्ध कर मुग़ल-साम्राज्य को भारत से समूल नष्ट करने का प्रबन्ध कर रहा था। सन् १५४० ई० में बड़ी भारी सेना सहित शेरख़ाँ आगरे की ओर बढ़ा और गङ्गा के तटवर्ती देशों पर अपना अधिकार कर लिया। यह समाचार सुन हुमायूँ ने शत्रु की सेना को रोकने के लिये अपने सेनापति हुसेन को ससैन्य रवाना किया। कालपी के पास दोनों सेनाओं की मुठभेड़ हुई। इस युद्ध में अफ़ग़ान सेना का एक भाग नष्ट हुआ और शेरशाह का पुत्र क़ुतुब मारा गया। मुग़ल सेना ने अफ़ग़ानों की सेना की कमर तोड़ कर स्वयं गौरवभाजन बनने के लिये हुमायूँ को रणक्षेत्र में बुलाया।

तदनुसार हुमायूँ एक लाख अश्वारोही सेना ले कर आगरे से रवाना हुआ और क़न्नौज के पास गङ्गा

---

१ जब यह भिश्ती इनाम माँगने दिल्ली गया, तब हुमायूँ ने उसे बारह घंटे (कोई कोई केवल दो घंटे ही बतलाते हैं) के लिये तख़्त पर बिठा कर उसे पुरस्कृत किया। निज़ाम बारह घंटे के लिये भारत का हर्त्ता कर्त्ता बन गया और उसने जन्म भर के लिये अपने और अपने परिवार के भरण पोषण का प्रबन्ध कर लिया। इसी भिश्ती ने चमड़े का सिक्का चलाया था।

२ सेना के भागने की गड़बड़ी में हुमायूँ की बेगमें पीछे रह गयीं और शेरख़ाँ के हाथ पड़ीं। शेरख़ाँ (जिसने अब अपना नाम शेरशाह रख लिया था) ने यह बड़ी भलमनसाहत का काम किया कि प्रधान महिषी को छोड़ अन्य सबको अपने व्यय से आगरे पहुँचा दिया और उनके खाने पीने का भी उचित प्रबन्ध कर दिया। प्रधान महिषी को उसने रोहतासगढ़ में भेज दिया। ऐसा उसने क्यों किया—इसका कारण कहीं लिखा हुआ नहीं मिलता।

पार कर शत्रु की सेना के पास पहुँचा। किन्तु पहले दोनों ओर की सेना में से किसी की भी हिम्मत न पड़ी कि आगे बढ़ कर दूसरी सेना पर आक्रमण करें। दोनों ओर की सेनाएँ एक मास तक टाला-टूली करती रहीं इस बीच में हुमायूँ का सेनापति सुलतान मुहम्मद मिरज़ा कृतघ्नता और विश्वासघात-पूर्वक ससैन्य शत्रु से मिल गया। उसके साथ और भी बहुत से लोग चले गये। तब तो हुमायूँ बड़े सङ्कट में पड़ा। यहीं पर दुर्दशा का अन्त हो गया हो, सो बात नहीं। इतने में वर्षाकाल उपस्थित हुआ। इतना पानी बरसा कि उसकी छावनी पानी में डूब गयी। इन्हीं सब कारणों से हुमायूँ ने अधिक विलम्ब न कर के शेरशाह पर आक्रमण किया। मुग़ल सेना को हार कर पीछे लौटना पड़ा। युद्ध में हुमायूँ का घोड़ा घायल हुआ—यदि सौभाग्यवश हुमायूँ हाथी पर सवार न हो जाता; तो वह अवश्य शत्रुओं के हाथ पड़ जाता। जैसे तैसे बादशाह गङ्गा के पार हुआ और सङ्कट से बचा।

इतने में हिन्दाल और मिरज़ा अस्करी बादशाह से मिले। हुमायूँ, पूर्ववर्त्ती मुसलमान बादशाहों के पथ का अनुसरण कर शासन करता था। उसने किसी नयी शासनपद्धति का आविष्कार कर, प्रजा के चित्त को अपनी ओर नहीं खींच पाया था। वह स्वयं तो कोमलहृदय प्रजाहितैषी शासनकर्त्ता था; किन्तु उसकी शासनपद्धति अच्छी न थी, इसीसे प्रजा उसको मन से नहीं चाहती थी। यही कारण था कि उसे यहाँ वालों से जैसी सहायता मिलनी चाहिये थी वैसी न मिल सकी। अफ़ग़ानिस्तान हिन्दुस्तान से अलग हो गया था, वहाँ से सैन्य संग्रह करने की सुविधा भी अब जाती रही थी। अतः हुमायूँ शेरशाह की गति रोकने का कोई उपाय न विचार सका। उसने अन्य उपाय न देख कर, आगरा परित्याग किया। इस समय कामरान ने अपनी चालबाज़ी का फल देखा। बड़े भाई की बढ़ती देख उसके मन में जो डाहरूपी आग धधका करती थी—उसीसे मुग़ल-राज्य आज भस्मीभूत हो गया। सर्वनाश उपस्थित होने पर पण्डित आधा छोड़ देते हैं। इसी नीति को अवलम्बन कर कामरान ने काबुल एवं कन्धार बचाने के लिये पंजाब शेरशाह को दे डाला और उससे सन्धि कर ली। भारतवर्ष में फिर अफ़ग़ान साम्राज्य प्रतिष्ठित हुआ।

जब शेरशाह को नष्ट करने के लिये वह उपयुक्त बल एकत्र न कर सका, तब हुमायूँ ने आगरा परित्याग किया था। आगरा छोड़ने पर हुमायूँ अनेक स्थानों में मारा मारा घूमने लगा। इस समय हुमायूँ की दुर्दशा का क्या पूछना था? उस करुणा भरी कहानी को कहने सुनने से नेत्रों में आँसू भर आते हैं। घटना चक्र में पड़ पृथिवी के अनेक नृपति रास्ते के भिखारी बने हैं, किन्तु ऐसा मर्मभेदी वृत्तान्त किसी भी इतिहास में न मिलेगा। जिनके साथ हुमायूँ ने पहले सद् व्यवहार कर कृतज्ञपाश में बाँधा था वे भी ऐसे समय में हुमायूँ का अनादर करते थे। भाग्य के फेर से वह जिन छोटे छोटे राजाओं की शरण में जाता, वे उसको अपमानित करने में तिल भर भी कुण्ठित नहीं होते थे। इने गिने नौकरों को छोड़ सभी ने उसके साथ बुरा बर्ताव बर्ता।

हुमायूँ इस समय अथाह समुद्र में पड़ा हुआ था। ऐसे समय में ज़ोधपुर के राना मालदेव ने उसे बुलाया। तदनुसार हुमायूँ ने उसकी राजधानी के समीप पहुँच कर अपने आने का संवाद पहुँचाने को एक दूत भेजा। विपद्ग्रस्त नरपति का उद्धार करना बहुत थोड़े लोगों ने अङ्गीकार कर, अपने महत्त्व का परिचय दिया है। मालदेव ने सोचा कि यदि मैं हुमायूँ को आश्रय देता हूँ तो इनके हाथ से मेरी क्या भलाई हो सकती है। यदि इन्हें लौटा कर इनका अपमान भी करूँ, तो यह मेरा कुछ बिगाड़ भी नहीं सकते। इससे इन्हें पकड़ कर यदि मैं शेरशाह के पास भेज दूँ तो राजदरबार में मुझे बड़ी प्रतिष्ठा मिलेगी। इस प्रकार सोच कर मालदेव ने हुमायूँ को क़ैद करने का विचार पक्का किया। दैवसंयोग से हुमायूँ को मालदेव की बदनीयती का हाल विदित हो गया। इस लिये वह आधीरात को वहाँ से भाग कर अमरकोट पहुँचा।

रास्ते में हुमायूँ को बड़े कष्ट भोगने पड़े। रास्ते में उसका घोड़ा थकाई के कारण मर गया; तब उसने तारदीबेग नामक एक सरदार से एक घोड़ा माँगा। तारदीबेग स्वयं बड़ी ही ओछी प्रकृति का मनुष्य था—तिस पर हुमायूँ इस समय राज्यच्युत और विपद्ग्रस्त था। इसलिये उसने हुमायूँ की प्रार्थना को सुन अनसुनी कर उसकी उपेक्षा की। अन्य उपाय न देख हुमायूँ ऊँट पर सवार हो कर आगे बढ़ा। अन्त में एक मनुष्य ने अपनी माता को घोड़े से उतार कर

घोड़ा हुमायूँ को दिया।

हुमायूँ नौकरों सहित रेगिस्तान पार कर रहा था। वहाँ उसे जलकष्ट भोगना पड़ा। कोई तो मारे प्यास के पागल हो गया और कोई मारे प्यास के यमपुर सिधारा। प्यासे लोगों की चीत्कार और कातरोक्तियों से दिशा विदिशा प्रतिध्वनित होने लगीं। इसी समय शत्रु के आने का संवाद सुनायी पड़ा। उस समय हुमायूँ का सारा ज्ञान नष्ट हो गया। ऐसे समय में क्या करना चाहिये हतबुद्धि हुमायूँ कुछ भी निश्चित न कर सका। किन्तु शत्रु की सेना वहाँ से दूर थी—इससे मुग़लों की रक्षा हुई। अन्त में बादशाह एक कूप के पास पहुँचा। कुआँ देखते ही उसका हृदय आनन्द के मारे उछलने लगा। उसने ज़मीन पर घुटने टेक कर भगवान् को धन्यवाद दिया। फिर साथ में जितनी चमड़े की मशकें और डोल थे उन सब में जल भर कर, पीछे आनेवाले साथियों के लिये जल भेजा[1]।

दूसरे दिन उस स्थान को छोड़ मुग़ल आगे बढ़े। आगे फिर जलकष्ट भोगना पड़ा। इस बार उनको पहले से भी अधिक कष्ट उठाना पड़ा। दो दिन तक किसी के मुख में जल की एक बूँद भी न पड़ी[2]। चौथे दिन वे लोग एक जलपूर्ण कूप के पास पहुँचे। वह कुआँ बहुत गहरा था और कूप में से जल निकालने का उनके पास एक ही पात्र था। इससे जल भरने में बड़ी देर होती थी। सब लोग पहले जल पीने को व्यग्र होते थे। इससे कुएँ पर बड़ा हुल्लड़ मचता था। इसे रोकने के लिये हुमायूँ ने आज्ञा दी कि सब लोग कुएँ से दूर रहें। जब जल भर लिया जायगा, तब बाजा बजाया जायगा, उसे सुन बारी बारी से लोग आ कर जल पीवेंगे। किन्तु मारे प्यास के लोग बड़े व्याकुल थे। उनसे न रहा गया और दस बारह मनुष्य कूप के पास जा पानी खींचने के बरतन के लिये आपस में झगड़ने लगे। इस खिंचाखिंची का फल यह हुआ कि वह बरतन कुएँ में गिर गया। साथ ही कई प्यासे आदमी भी कुएँ में गिर गये। इस दुर्घटना से मुग़लों के समूह में हाहाकार मच गया। बहुत से लोग जीभ निकाल गरम बालू पर पड़े पड़े तड़पने लगे। जो कुएँ में गिर पड़े थे—वे सारी यंत्रणाओं से छुटकारा पा कर यमराज का आतिथ्य ग्रहण करने के लिये चल दिये। अभागा हुमायूँ अपने विश्वस्त अनुचरों को इस प्रकार मरते देख बहुत विकल हुआ। अगले दिन वे एक छोटी नदी के तट पर पहुँचे, किन्तु यहाँ भी उन लोगों की दुर्दशा की सीमा न रही। बोझा ढोने वाले ऊँट लगातार कई दिन से जल न मिलने के कारण बहुत प्यासे थे। एकसाथ बहुत सा जल पी लेने से बहुत से ऊँट मर गये। मुग़लों के भी पेट में पानी पीते ही पीड़ा उत्पन्न हो गयी और आध घंटे के भीतर ही उनमें से बहुत से मर गये। अब बादशाह के साथ में केवल सात नौकर रह गये। उन्हीं के साथ वह अमरकोट पहुँचा।

अमरकोट के सहृदय राजा ने आदरपूर्वक हुमायूँ को ठहराया और उसकी दुःखभरी कहानी सुन वह दुःखी हुआ और उसके सारे अभाव दूर करने का यत्न करने लगा। अमरकोटनरेश के सहृदय और उदार व्यवहार से हुमायूँ का चित्त शान्त हुआ। राजा ने हुमायूँ को दो हज़ार सैनिकों की सहायता दे कर राज-उद्धार का वचन दिया। हुमायूँ अमरकोट में डेढ़ वर्ष तक रहा।

---

१ हुमायूँ के अनुचरों में एक धनाढ्य बनिया भी था। प्यास के मारे, उसकी बहुत बुरी दशा हो गयी थी। वह ज़मीन में पड़ा तड़फ रहा था और उसका पुत्र पिता के बचने की आशा छोड़ कर उसके पास खड़ा था। बनिया इतना अशक्त हो गया था कि उसमें चलने की बिल्कुल शक्ति नहीं रह गयी थी। हुमायूँ जब जल पी कर अपने साथियों के लिये जल साथ लिवा कर पीछे लौटा; तब उसने उस बनिये को भूमि पर लोटते देखा। हुमायूँ ने उससे बहुत सा धन उधार लिया था। उस ऋण से मुक्त होने का यह सुयोग देख हुमायूँ ने उससे कहा—"यदि तुम मुझे ऋणमुक्त कर दो तो मैं तुम्हें जितना जल माँगो दूँ।" यह सुन बनिये ने कहा—"इस समय एक ग्लास जल, पृथिवी के समस्त धन की अपेक्षा अधिक मूल्यवान् है। अतएव मैं जहाँपनाह के प्रस्ताव को स्वीकार करता हूँ।"

२ यहीं पर एक और घटना हुई। हुमायूँ के साथी सङ्गी सब भूख प्यास और थकावट से अचेत हो जब सो गये, तब एक चोर ने तम्बू में घुस कर प्रभुभक्त शेरअली को हुमायूँ के पास से तलवार उठाकर मारना चाहा। पर म्यान से आधी तलवार खींचने पर न जाने उस चोर के मन में क्या डर उत्पन्न हुआ और वह शेरअली को सोता छोड़ चला गया।

फिर अपने परिवार को वहीं छोड़ वह स्वयं अमरकोट की सेना सहित सिन्धु प्रदेश को अधिकृत करने के लिये प्रस्थानित हुआ। उस समय उसकी महिषी हमीदा बेगम गर्भवती थी। यात्रा के दूसरे दिन जब हुमायूँ एक सरोवर के तट पर डेरा डाले पड़ा था, उस समय उसने अकबर के जन्म का सुखदायी संवाद सुना। इस आनन्दप्रद संवाद के फैलते ही अमीर उमरा, हुमायूँ को बधाई देने के लिये एकत्र हुए। उस समय हुमायूँ ने अपने नौकर ज़ूहर से कहा कि मेरे पास जो कुछ धन हो सो ले आओ। ज़ूहर ने दो सौ रुपये, एक चाँदी का गहना और कस्तूरीमृग की एक नाभि सामने ला कर रख दी। हुमायूँ ने रुपये और गहना तो ज़ूहर को वापिस कर दिये किन्तु कस्तूरीमृग की नाभि को चीर कर उसमें से कस्तूरी निकाल थोड़ी थोड़ी सब उपस्थित अमीरों को दी। अनन्तर हुमायूँ ने उन सब का सम्बोधन कर के कहा:—

हुमायूँ—पुत्र के जन्म का हर्षप्रद समाचार सुन, इस आनन्द के समय आप लोगों की अभ्यर्थना करने के लिये मेरे पास अब यह कस्तूरी ही बच रही है। इस कस्तूरी की सुगन्ध से सब ओर सुगन्ध फैल गयी है। मैं आशा करता हूँ मेरे पुत्र के यश-सौरभ से एक दिन सारी पृथिवी पुलकित होगी।

हुमायूँ, पुत्रजन्म का शुभ संवाद सुन बहुत प्रसन्न हुआ किन्तु अभी उसकी दुरवस्था का अन्त नहीं हुआ था। इसके थोड़े ही दिनों बाद उसकी सेना में द्रोह फैला और बहुत से सैनिक रास्ते ही से लौट आये—यही नहीं अनेक मुग़ल उमराव की छावनी छोड़ कर चल दिये। शत्रु के साथ लड़ाई होने पर हुमायूँ की हार हुई और उसका बड़ा विश्वस्त नौकर अली रणक्षेत्र में मारा गया। उपायान्तर न देख, हुमायूँ क़न्धार की ओर भागा। रास्ते में वीरश्रेष्ठ बैरामख़ाँ हुमायूँ से आ कर मिल गया। उस समय क़न्धार का शासन मिरज़ा अस्करी के हाथ में था। वह कामरान की ओर से उस देश का शासन करता था।

हुमायूँ इस आशा से क़न्धार गया था कि उसका भाई अस्करी इस विपद् में उसकी कुछ सहायता करेगा और उसे आश्रय देगा, किन्तु जब हुमायूँ क़न्धार से लगभग १३० मील के अन्तर पर मार्ग में था; तब कन्धार से एक सवार दौड़ता हुआ आया और हुमायूँ को समाचार दिया कि मिरज़ा अस्करी फ़ौज फाँटा लिये उसे गिरफ़्तार करने के लिये आ रहा है।

हुमायूँ को इतना समय न मिला कि वह अकबर को अपने साथ ले लेता। अतः अकबर को जहाँ का तहाँ छोड़ और हमीदा को साथ ले वह गरमसर और सिसतान हो कर ईरान में गया। रास्ते में जो जो राज्य पड़ते वहाँ के अधीश्वर उसका बड़ा सम्मान करते थे। जब वह क़िजवीं नामक स्थान में पहुँचा तब वहाँ से उसने बैरामख़ाँ को फारसराज के दरबार में भेजा और स्वयं उसके लौटने की प्रतीक्षा करने लगा। इसके बाद हुमायूँ फारसराज के दरबार में पहुँचा। वहाँ फारसराज ने यथोचित सम्मानपूर्वक उसका स्वागत किया और हुमायूँ वहीं रहने लगा। इस बीच में जब अस्करी ने हुमायूँ को न पाया, तब वह अकबर को उठा कर ले गया। अस्करी ने उस समय अकबर के साथ बड़ी दयायुक्त व्यवहार किया। अब देखना यह है कि आगे चल कर अस्करी की दया का स्रोत अकबर के प्रति ऐसा ही प्रवाहित होता है या वह विपरीत पथ का अनुसरण करता है। जो होगा वह पाठकों को आगे चल कर स्वयं विदित हो जायगा। अब हम हुमायूँ को निरापद स्थान में पहुँचा कर शेरशाह का वृत्तान्त लिखते हैं।

शेरशाह ने हुमायूँ के हाथ से मुग़ल-राज-दण्ड तो छीन ही लिया था—अब वह जहाँ जहाँ मुग़लों की अमलदारी थी वहाँ वहाँ अपनी अमलदारी बैठाने लगा। शेरशाह जब हुमायूँ के साथ लड़ने बङ्गाल से आया था, तब ख़िज़िरख़ाँ नामक एक सेनापति को बङ्गाल का शासन सौंप आया था। जब शेरशाह दिल्ली के तख़्त पर बैठ गया; तब उसने सुना कि ख़िज़िरख़ाँ ने बङ्गाल के पहले सुलतान मुहम्मदशाह की लड़की के साथ विवाह कर लिया है और अब वह स्वतंत्र होना चाहता है। यह सुनते ही वह स्वयं बङ्गाल में पहुँचा।

१ हमीदा हिंदाल के शिक्षक की बेटी थी। यह शिक्षक सय्यद था। हुमायूँ उसे देखते ही उसकी सुन्दरता पर ऐसा मोहित हुआ कि उसके साथ उसी क्षण विवाह कर लिया।

शेरशाह के गौड़ नगर में पहुँचते ही, ख़िज़िरख़ाँ उसकी अभ्यर्थना के लिये उसके शिविर में पहुँचा। शेरशाह ने तुरन्त उसे पकड़ कर बन्द कर दिया। अनन्तर उसने बङ्गाल को अनेक भागों में विभक्त किया और प्रत्येक विभाग का शासनभार अलग अलग लोगों को सौंपा। इन सब की देख रेख के लिये उसने फ़ज़लत नामक एक साधु पुरुष को नियुक्त किया।

बङ्गाल का प्रबन्ध कर शेरशाह दिल्ली लौट आया। कुछ दिन वहाँ रह कर उसने मालवे पर चढ़ाई की और उस देश को अपने अधिकार में किया। मालवा-विजय के समय रैसिन दुर्ग पर एक हिन्दू सामन्त का अधिकार था। शेरशाह ने इस दुर्ग को घेरा। तब दुर्गवासियों ने कहला भेजा कि यदि आप हमारे जान और माल की रक्षा करने का वचन दें तो हम आत्मसमर्पण कर दें। शेरशाह ने इस बात को मान लिया। किन्तु जब उन लोगों ने आत्मसमर्पण किया, तब अपनी प्रतिज्ञा के विरुद्ध शेरशाह ने उस दुर्ग में रहने वाले सब हिन्दुओं को बड़ी नृशंसता के साथ मार डाला।

इसके बाद शेरशाह ने मारवाड़ पर चढ़ाई की। पर शेरशाह यह जानता था कि रणकुशल मारवाड़ी वीरों को युद्धक्षेत्र में सामने सामने लड़ कर हराना सहज काम नहीं है। इस लिये उसने उन वीरों में परस्पर मनोमालिन्य उत्पन्न करने का उपाय सोचा। उसकी चतुरता से कुछ बनावटी पत्र मारवाड़ाधीश के हाथ में पहुँचे। जिन्हें पढ़ कर मारवाड़ाधीश को अपने सब सामन्तों के ऊपर सन्देह उत्पन्न हो गया। उन सामन्तों में कुम्भाजी भी थे। उन्होंने अपनी निर्दोषता प्रमाणित करने के लिये अपने दस हज़ार वीरों सहित शेरशाह पर आक्रमण किया। शेरशाह की सेना, मारवाड़ी वीरों का प्रबल पराक्रम न सह सकी। कुम्भाजी ने उसे विध्वस्त कर डाला। किन्तु पीछे बड़ी बड़ी कठिनाइयों से शेरशाह कुम्भाजी को जीतने में समर्थ हुआ। शत्रुसैन्य को परास्त कर शेरशाह ने पश्चात्तापपूर्वक कहा—"मैं मुट्ठी भर दानों के लिये भारत का साम्राज्य क्यों खोऊँ?" इसके बाद वह मारवाड़ राज्य को अधिकृत करने का उद्योग त्याग कर दिल्ली लौट आया।

अगले वर्ष अर्थात् सन् १५४५ ई० में शेरशाह ने बुन्देलखण्ड के क़ालिञ्जर दुर्ग पर चढ़ाई की। जिस समय वह उक्त दुर्ग पर घेरा डाले पड़ा था, उस समय शत्रु की गोली से उसके बारूदख़ाने में आग लगी और शेरशाह बहुत जल गया। किन्तु जब तक दुर्ग उसके अधिकार में न आ गया, तब तक वह मरा नहीं। दुर्ग पर अपना अधिकार जमने का समाचार सुन कर उसने कहा—"ईश्वर को धन्यवाद" और इतना कहते ही उसका प्राण निकल गया।

शेरशाह ने पाँच वर्ष तक दिल्ली में राज्य किया। एक दिन उसके एक सहचर ने उससे कहा था—"महाराज! अब आपके बाल सफ़ेद हो चले।" इस पर उसने कहा—"हाँ बुढ़ापे में मुझे साम्राज्य मिला है।" उसकी अनेक अभिलाषाएँ समय के अभाव से मन की मन ही में रह गयीं। उसकी चार अभिलाषाएँ सर्वोपरि थीं—किन्तु उनमें से एक भी पूरी न हो पायी। इसीसे मरते समय उसके मन में बड़ा क्षोभ उत्पन्न हुआ था। उसकी चारों अभिलाषाएँ ये थीं:—

(१)—अपनी पितृभूमि को जनशून्य कर के—वहाँ के रहने वालों को लाहौर और सिवालिक पर्वत के बीच की भूमि पर बसाना। यह इस लिये कि जिससे मुग़लों के भारतागमन का मार्ग बन्द हो और पहाड़ी ज़मींदार वश में रहें।

(२)—लाहौर नगर को समूल नष्ट करना। यह कार्य वह इस लिये करना चाहता था कि विदेशियों का लाहौर पर अधिकार होते ही उन्हें रसद आदि की पूरी सहायता मिलती है और आगे का मार्ग सुगम हो जाता है।

(३)—मक्का के यात्रियों की सुविधा के लिये पचास बड़े बड़े जहाज़ों का निर्माण।

(४)—पानीपत में इब्राहीम लोदी के विशाल समाधि-भवन का निर्माण और शेरशाह के हाथ से जो जो नामी मुग़ल सरदार मारे गये थे—इब्राहीम के समाधि-भवन के सामने उनके लिये भी एक समाधि-भवन का निर्माण।

इनमें से एक भी अभिलाषा के पूर्ण न होने पर भी शेरशाह ने प्रजा के हितार्थ कई काम किये। उसने बङ्गाल से ले कर पंजाब तक एक सड़क निकलवायी। उस सड़क के हर एक पड़ाव पर एक एक सराय बनवायी और हर एक कोस पर एक एक कुआँ खुदवाया। सड़क के दोनों ओर वृक्ष लगवाये थे। सरायों में दीनों को

भोजन धर्मार्थ बाँटा जाता था और हिन्दू यात्रियों के सुभीते के लिये हिन्दू नौकर भी रखे जाते थे। राज-कार्य और वाणिज्य के सुभीते के लिये उसने घोड़ों की डाक बैठाई थी। उसकी अमलदारी में डाकुओं और चोरों का भय बिल्कुल मिट गया था। शेरशाह ने पाँच वर्ष के भीतर ही अपनी शासनसम्बन्धी योग्यता का पूर्ण परिचय दिया।

शेरशाह के चरित्र का एक भाग उज्ज्वल और दूसरा कलङ्ककालिमा से अन्धकारमय है। उसकी अमलदारी में अपराधियों का विचार पक्षपात छोड़ कर किया जाता था। अन्यायी अथवा अत्याचारी विना दण्ड पाये बच नहीं पाते थे। किन्तु शेरशाह स्वयं पाप करने में तिल भर भी नहीं हिचकता था। विश्वासघात तो उसने अपने जीवन में अनेक वार किया। उसके कार्यों से ऐसा जान पड़ता है कि उसने विश्वासघात करने का केवल राजाओं ही को अधिकारी समझ रखा था। क्योंकि यदि प्रजा में से कोई किसीके साथ विश्वासघात करता तो उसे वह बड़ा कठोर दण्ड देता था। उसकी प्रवृत्ति पाप की ओर न थी, किन्तु राज्यप्राप्ति के लोभ में फँस कर ही उसे ऐसे पापाचरण करने पड़ते थे। शेरशाह की असाधारण प्रतिभा ही ने उसे राज्यलोलुप बना दिया। उसने जिस प्रकार दिल्ली का तख़्त पाया, उस प्रकार के औचित्य अनौचित्य पर विचार करने का उसे अवकाश न मिला।

अब देखना यह है कि शेरशाह एक साधारण जागीरदार के पद से किस मूलमंत्र के आधार पर बादशाह हुआ? ऐक्य नीति ही उसके प्रत्येक कार्य की नियामक थी। उसने समझ रखा था कि यदि अफ़ग़ानों में फूट न होती तो उनकी यह दुर्दशा कभी न होती। अतः उसने अफ़ग़ान शक्ति को केन्द्रीभूत कर के अपनी उन्नति की दीवार बनायी। आत्मकलह ही अफ़ग़ान शक्ति के दौर्बल्य का कारण था। शेरशाह ने उसे मेट कर साम्राज्य स्थापित करने के अर्थ उपयोगी बल सञ्चित किया और इसीसे वह कृतकार्य भी हुआ। इसलाम धर्म पर उसका पूर्ण विश्वास था किन्तु इसके लिये उसने हिन्दुओं पर कभी अत्याचार नहीं किये। यदि उसके नौकरों में कभी परस्पर झगड़ा उठ खड़ा होता तो वह सब काम छोड़ कर पहले उसे मेटने का प्रयत्न करता था। शासन सम्बन्धी सब काम काज क्रमानुसार वह स्वयं देखता था। आलस्य उसे छू तक नहीं गया था। वह किसी भी काम को तुच्छ समझ कर उसकी उपेक्षा नहीं करता था और न किसी अधिकारी को श्वेत कृष्ण करने का सारा अधिकार देता था। वह यह कहा करता था कि "मेरे प्रतिद्वन्द्वियों के वज़ीरों की पापवासना ही मेरे राज्यलाभ का कारण है।" शेरशाह ने अपने समय को चार भागों में बाँट रखा था। उन चार भागों को वह क्रमशः विचारकार्य, सैन्यसम्बन्धी कार्य, ईश्वरोपासना और विश्राम में लगाता था।

शेरशाह ने अपने साम्राज्य को ११६००० परगनों में बाँट रखा था। प्रत्येक परगने में पाँच कर्मचारी थे। इनमें कम से कम एक विचारक और एक पटवारी हिन्दू होते थे। राजकर्मचारी और प्रजा में किसी बात पर झगड़ा होने पर विचारक उसकी मीमांसा करते थे। इसलाम शास्त्र के आदेशानुसार फ़ौजदारी और दीवानी आईन प्रचलित थी। जुती हुई भूमि और अनाज की पैदावार के हिसाब से एक वर्ष के लिये लगान लगाने की प्रथा प्रचलित थी। कोई भी राजकर्मचारी दो वर्ष से अधिक एक जगह नहीं रहने पाता था। उसकी अमलदारी में बसने वाली प्रजा को किसी प्रकार का त्रास न था।

शेरशाह ने जीवित दशा ही में सहसराम में एक सुन्दर समाधि-गृह बनवा लिया था। उसकी शोभा बढ़ाने के लिये उस गृह के चारों ओर झील खोदी गयी थी। उसी समाधि-भवन में उसने चिरकाल के लिये विश्राम किया। डाउज़ साहब ने भारतीय इतिहास नामक निज रचित ग्रन्थ में लिखा है कि यह समाधि अब तक विद्यमान है और वह बनावटी झील एक मील के भीतर है।

शेरशाह के बाद उसका पुत्र जलालख़ाँ तख़्त पर बैठा। जलालख़ाँ को साधारण लोग सलीमशाह सूर[१] के नाम से पहचानते थे। उसके रूखे बर्ताव से उसके राजभक्त उमराव उससे अप्रसन्न रहने लगे। वह किसी भी उमराव पर विश्वास नहीं करता था। शेरशाह की अमलदारी में कर्मचारी और प्रजा के बीच

१ किन्तु राजमुद्रा में उसका नाम इसलामशाह खोदा जाता था।

जो सद्भाव स्थापित था वह जलाल की अमलदारी में नष्ट हुआ। सलीमशाह स्वयं तो प्रतिभाशाली था नहीं और अपनी कीर्ति बढ़ाने के लिये उसने अपने पिता की स्थापित शासनप्रणाली में उलट फेर किया। उलट फेर करते समय उसने यह न सोचा कि उसकी नवीन प्रणाली से प्रजा का हित होगा कि अनहित। किसी न किसी प्रकार सलीमशाह ने नौ वर्ष राज्य कर के महायात्रा की। उसके बाद उसका बारह वर्ष का पुत्र फ़ीरोज़ तख़्त पर बैठा। मुहम्मद नाम का शेरशाह का एक भतीजा था। सलीम ने मुहम्मद की बहिन के साथ विवाह किया था। फ़ीरोज़ मुहम्मद का भानजा भी था। इसी फ़ीरोज़ को उसके पिता सलीम की मृत्यु के बाद, तीसरे दिन मुहम्मद ने मार डाला और वह स्वयं तख़्त पर बैठा। सलीम जब जीवित था; तभी उसे यह बात विदित हो गयी थी कि मुहम्मद की दृष्टि दिल्ली के तख़्त पर डटी है। इसी से सलीम ने मुहम्मद को मार कर फ़ीरोज़ का मार्ग निष्कण्टक करने का संकल्प किया था, किन्तु राजमहिषी के बारंबार भाई की प्राणरक्षा के लिये अनुनय विनय करने पर सलीम अपने सङ्कल्प को पूरा न कर पाया।

मुहम्मद जिस समय फ़ीरोज़ की हत्या करने को उद्यत हुआ, उस समय बालक फ़ीरोज़ डर के मारे दौड़ कर माता के गले से लिपट गया था, किन्तु इस से भी मुहम्मद का कलेजा न दहला। मुहम्मद ने तख़्त पर बैठ कर आदिल[1] (न्यायपरायण) की उपाधि धारण की, किन्तु उसमें इतने बड़े साम्राज्य का भार उठाने की योग्यता न थी. इससे लोग उसे आनरेली (अन्धेरी) कहने लगे थे।

आदिल बड़ा क्रूरस्वभाव और लम्पट था। वह राजकाज के बारे में तिल भर भी विचार नहीं करता था। उसने सारा काम हेमू[2] नामक एक बनिये वज़ीर को सौंप दिया था। आदिल को तख़्त पर बैठे बहुत दिन नहीं हो पाये थे कि उसके अपव्यय के कारण राजकोष ख़ाली हो गया। उसके प्रीतिपात्र सहचरों के हाथ साफ़ करने को अब कुछ भी न बचा। तब वह अमीर उमरावों की जागीरें ज़ब्त कर के उन लोगों को देने लगा। उसके दुर्व्यवहार से सारे देश में विद्रोह की आग भड़क उठी। पहले चुनार में ग़दर हुआ, आदिल और हेमू ने स्वयं चुनार में पहुँच कर उसे दबाया।

मुहम्मद चुनार से लौटने भी नहीं पाया था कि उसके बहनोई इब्राहीम सूर ने दिल्ली और आगरे पर अपना अधिकार कर लिया। यह इब्राहीम पंजाब का शासनकर्त्ता था। आदिल यह समाचार पाते ही इब्राहीम को मार डालने के लिये दौड़ा। रास्ता में आदिल को इब्राहीम का भेजा दूत मिला। उसने कहा—"जहाँपनाह! आप इब्राहीम को क्षमा करने का वचन दे कर, उसके पास हुसेन आदि उमरावों को भेजिये। वह स्वयं पानी पानी हो जायगा और आपके पैरों में आ कर पड़ जायगा।" आदिल बड़ा दुर्बलचित्त का मनुष्य था। उसने दूत के कथनानुसार अपने उमरावों को इब्राहीम के पास भेजा। वे लोग इब्राहीम के भलेमानसों जैसे व्यवहार एवं प्रलोभन वाक्यों पर मुग्ध हो गये और उन्होंने उसका पक्ष ग्रहण किया। इससे इब्राहीम इतना बलशाली हो गया कि आदिल का हियाव न पड़ा कि इब्राहीम पर आक्रमण करे। अतः वह निरुपाय हो चुनार लौट गया। वहाँ पहुँच कर साम्राज्य के पश्चिमांश को हाथ से खो कर वह पूर्वांश का शासन करने लगा। इब्राहीम ने भी सुलतान की उपाधि धारण की और पश्चिमांश के शासनकार्य में लगा।

किन्तु शान्तिपूर्वक इब्राहीम बहुत दिनों तक राज्य न कर पाया। इब्राहीम को तख़्त पर बैठे बहुत दिन

१ जो प्राकृत पापी होते हैं, वे सदा अपने को पुण्यात्मा बतलाते और दिखावटी कर्मों का अनुष्ठान कर अपने को पुण्यात्मा सिद्ध करने की चेष्टा भी करते हैं। मुहम्मद ने अपने भानजे को मार कर पहिले ही बड़े अन्याय का काम किया था। इसी अन्याय के कलङ्क को मेटने के लिये जान पड़ता है कि उसने अपनी उपाधि "आदिल" रखी थी।

२ हेमू का पूरा नाम हेमचन्द्र था और उसकी जन्मभूमि राजपूताने में थी। सूरत शकल उसकी बड़ी बेढंगी थी। आरम्भ में वह दूकानदारी कर के अपना पेट पालता था। उस पर किसी कारण वश मुहम्मद आदिल की दृष्टि पड़ी और वह उसका प्रियपात्र हो गया। मुहम्मद आदिल जब तख़्त पर बैठा तब उसने हेमू को अपना प्रधान मंत्री बनाया।

नहीं हो पाये थे कि आदिल का बहनोई सिकन्दर पंजाब का स्वतंत्र अधिपति बन बैठा। इस पर इब्राहीम ने उस पर बड़ी धूम धाम से चढ़ाई की। किन्तु युद्ध आरम्भ होने पर इब्राहीम को हार मान कर भागना पड़ा। दिल्ली और आगरा भी सिकन्दर के हाथ में चले गये। इब्राहीम की बहुत सी सेना सिकन्दर की सेना में जा मिली। आदिल अभी तक पूर्वांश का शासक बना था। इब्राहीम मारा मारा फिरता था। इस समय अफ़ग़ानों का भाग्य पलटा खा रहा था। इसीसे उनके अधिकृत साम्राज्य में जहाँ देखो वहाँ कलह और विप्लव हो रहा था। उधर सिकन्दर तख़्त पर बैठा। उसे तख़्त पर बैठे दो दिन भी नहीं हुए थे कि हुमायूँ को समाचार मिले कि भारतीय अफ़ग़ान साम्राज्य में असन्तोष फैला हुआ है। यह सुनते ही वह फिर भारतवर्ष में आया। सिकन्दर उसके साथ लड़ने के लिये अस्सी हज़ार सैनिक ले कर आगे बढ़ा।

१ हम यह कह आये हैं कि हुमायूँ भाग कर फ़ारस में पहुँचा था। मैलकम साहब लिखते हैं कि उस समय के फ़ारस के शाह तमशेद ने हुमायूँ का आदर और सम्मान किया था—किन्तु बादशाह हुमायूँ के अनुचर जोहरा के लिखे इतिहास में लिखा है कि हुमायूँ को फ़ारस में भी अनादर सहन करना पड़ा। हुमायूँ और तमशेद का सम्प्रदाय भेद ही इसका कारण बतलाया जाता है। इन दोनों में एक शिया और दूसरा सुन्नी था। जब शाह के अनुरोध करने में हुमायूँ ने अपना सम्प्रदाय न बदला, तब शाह ने उसके साथ असद्व्यवहार किया। इतना होने पर भी शाह ने हुमायूँ की सहायता और काबुल क़न्धार के उद्धारार्थ इस शर्त पर अपने पुत्र मुराद मिरज़ा के अधीन चौदह सौ अश्वारोही सैनिक हुमायूँ को दिये कि वह इस सहायता के बदले क़न्धार का राज्य फ़ारस शाह को दे दे। क़न्धार में इस समय भी मिरज़ा अस्करी, कामरान की ओर से शासन करता था। हुमायूँ ने क़न्धार को घेर लिया और पाँच महीने तक वह उसे घेरे पड़ा रहा। तब अस्करी ने आत्मसमर्पण किया। पहले तो अस्करी के साथ हुमायूँ ने दयापूर्ण बरताव किया, किन्तु पीछे से उसके किसी पुराने अपराध के लिये उसे बन्दी बनाया। उसने क़न्धार का क़िला और वहाँ का ख़ज़ाना ईरानियों को सौंप दिया। किन्तु जब बहुत से ईरानी, ईरान लौट गये और मुराद मिरज़ा मर गया; तब हुमायूँ धोखा दे कर एक दिन क़िले में घुस गया और क़िले में जितने ईरानी थे। उनमें से बहुतों को मार और बचे हुओं को भगा कर स्वयं उसका अधिपति बन गया। क़न्धार को अपने अधिकार में कर हुमायूँ ने काबुल पर चढ़ाई की। वहाँ जाते समय रास्ते में हिंदाल उससे जा मिला। क़ामरान सिन्ध की ओर भाग गया। इस बार हुमायूँ ने अकबर को दो अढ़ाई वर्ष की उम्र का पाया। किन्तु हुमायूँ जब बदख़शाँ पर अधिकार करने गया; तब कामरान ने लौट कर काबुल पर अपना अधिकार कर लिया और अकबर फिर उसके हाथ लगा। कहते हैं जब हुमायूँ लौटा और उसने काबुल पर तोपों की बाढ़ दागनी आरम्भ की तब कामरान ने अकबर को एक भाले की नोक में बाँध परकोटे की दीवार पर रख दिया—किन्तु भक्षक से रक्षक प्रबल होता है, इससे अकबर साफ़ बच गया। उसके शरीर में एक खरौंचा तक न लगा। जो ही काबुल फिर हुमायूँ के हाथ में आया और कामरान भी पकड़ा गया। हुमायूँ ने उसके दोनों नेत्र निकलवा कर उसे जन्म भर के लिये निकम्मा कर दिया। कहा जाता है कि आँख निकालने के बाद जब कामरान की फूटी आँखों पर निमक और नींबू मला गया, तब उसने चिल्ला कर कहा था—"हे ईश्वर! मुझे अपने किये का पूरा दण्ड मिल गया। आक़बत में मुझे माफ़ करना।" इसके बाद वह मक्का चला गया। अब हुमायूँ काबुल में निष्कण्टक राज्य करने लगा और अपने पुराने भारतीय साम्राज्य के उद्धार का उपाय सोचने लगा। उसे इस ओर विचारपरायण देख, उसके उन अमीर उमरावों ने जो भारत साम्राज्य को अफ़ग़ानों के हाथ से लेना चाहते थे—हुमायूँ को उत्साहित किया और सगुन लेने के लिये अनुरोध किया। उस समय की प्रथानुसार सगुन लेने के लिये एक मनुष्य आगे भेजा गया और उससे कह दिया गया कि मार्ग में तुझे पहले जो मनुष्य मिलें उनमें से पहले तीन का नाम लिख लाना। उसने वैसा ही किया। उसे जो सबसे पहले तीन आदमी मिले थे—उनमें से पहले का नाम था दौलत (सौभाग्य), दूसरे का मुराद (अभिलाषा) और तीसरे का सादित (सुख) सगुन अच्छा निकला। इससे सब लोग प्रसन्न हुए और दिल्ली में घरेलू झगड़ों का समाचार पा कर हुमायूँ ने भारतीय अफ़ग़ानों पर चढ़ाई की।

सिकन्दर जब हुमायूँ से युद्ध करने के लिये राजधानी छोड़ कर पंजाब की ओर गया; तब इब्राहीम ने अपने भाग्य की परीक्षा लेने के अर्थ कुछ सेना ले कर कालपी में डेरा डाला। आदिल भी शत्रु के हाथ से अपने आधे साम्राज्य को निकालने के लिये अग्रसर हुआ। उसने हेमू को सेनापति बना कर आगे भेजा। वह इब्राहीम को नष्ट करने के लिये पहले कालपी गया। वहाँ घोर युद्ध हुआ। इब्राहीम हारा। उसकी सारी सेना तितर बितर हो गयी। कुछ दिनों के लिये वह सिर उठाने योग्य न रह गया।

उधर बङ्गाल का शासनकर्त्ता मुहम्मद सूर स्वतंत्र हो दिल्ली के तख़्त पर बैठने की लालसा से ससैन्य चढ़ दौड़ा। अब दिल्ली के तख़्त पर अधिकार करने वाले पाँच मनुष्य थे। अर्थात् १ आदिल, २ इब्राहीम, ३ सिकन्दर, ४ हुमायूँ, ५ मुहम्मद सूर। इब्राहीम की कमर तो पहले ही तोड़ दी गयी। इस लिये मुहम्मद सूर को परास्त करने के लिये आदिल ने हेमू को चुनार में बुलाया। तदनुसार हेमू ज्यों ही चुनार में पहुँचा; त्यों ही उसने सुना कि हुमायूँ ने सिकन्दर को परास्त कर आगरा और दिल्ली को अपने अधिकार में कर लिया। यह सुन आदिल और हुमायूँ ने मुहम्मद सूर को सम्पूर्णतया दमन करना परमावश्यक समझा। अतः सूर के साथ युद्ध हुआ, सूर लड़ाई में मारा गया। इब्राहीम पहले ही बलहीन हो चुका था, सूर युद्ध में मारा गया, सिकन्दर हुमायूँ के हाथ से हार चुका था। अब रणभूमि में दो ही प्रतिद्वन्द्वी रह गये थे—हुमायूँ और आदिल। सो आदिल हुमायूँ को नीचा दिखाने के लिये तैयारियाँ करने लगे।

हुमायूँ ने विजय प्राप्त कर अबुलमलिक को पंजाब का शासनकर्त्ता नियुक्त कर आज्ञा दी कि तुम हीनबल सिकन्दर को समूल नष्ट करो। अनन्तर हुमायूँ बड़ी धूमधाम से दिल्ली में प्रवेश कर दूसरी बार तख़्त पर बैठा। हुमायूँ का सेनापति बैरामख़ाँ था, उसीकी वीरता के फल से हुमायूँ को फिर से दिल्ली के तख़्त पर बैठने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था, अतः हुमायूँ ने उसे अपना प्रधान मंत्री बनाया। तारदीबेग को दिल्ली के शासनकर्त्ता का पद मिला। अबुलमलिक की अधीनस्थ मुग़ल सेना में परस्पर झगड़ा उठ खड़ा हुआ। इससे अवकाश पा कर सिकन्दर ने बल सञ्चय कर लिया जब यह हाल हुमायूँ ने सुना; तब सिकन्दर का नाश करने के लिये, राजकुमार अकबर बैरामख़ाँ के साथ पंजाब भेजे गये।

इसके बाद ही हुमायूँ की अचानक मृत्यु हो गयी। एक दिन सन्ध्या को छत से नीचे आते समय सीढ़ी पर से उसका पैर फिसला और वह ज़ोर से गिरा। हुमायूँ की मृत्यु का यही कारण है। उसका मृत शरीर यमुना के तट पर गाड़ा गया। अकबर ने वहाँ एक बहुत सुन्दर भवन खड़ा करवा दिया।

हुमायूँ ५१ वर्ष की अवस्था में मरा। उसने पचीस वर्ष दिल्ली और काबुल में राज्य किया। हुमायूँ की जीवनी उपन्यास से भी बढ़ कर रहस्यमयी है। कभी तो उस पर भाग्यलक्ष्मी प्रसन्न होती और कभी उस पर अप्रसन्न हो उसे रास्ते का भिखारी बना देती थी। उसके जीवन का प्रथम भाग आनन्द में बीता किन्तु तख़्त पर बैठते ही अशान्ति ने उसे चारों ओर से घेर लिया था। राज्यच्युत होकर उसे जैसे कष्ट भोगने पड़े वैसे कदाचित् ही पृथिवी के किसी अन्य नरेश ने भोगे हों। हुमायूँ भाइयों को बहुत चाहता था और उसके कृतघ्न भाई ही उसकी आपत्तियों के कारण थे। वह उन पर जितनी कृपा करता वे उसका उतना ही बुरा चाहते थे। जिस समय कामरान पकड़ कर हुमायूँ के सामने लाया गया, फ़रिश्ता में लिखा है—उस समय हुमायूँ के दरबारियों ने एक स्वर से कामरान को प्राणदण्ड देने की सम्मति प्रकट की। यद्यपि कामरान ने हुमायूँ के साथ बुराई करने में कोई बात उठा नहीं रखी थी और ऐसे को प्राणदण्ड देना अनुचित भी न था, तथापि हुमायूँ ने भाई के रक्त से अपने हाथ कलङ्कित करना बुरा समझा। उसके इस कोमल व्यवहार से उसकी सेना में असन्तोष भी फैल गया। हर एक सैनिक कहने लगा कि हुमायूँ की उदारता ही से मुग़लों को बारंबार दुर्दशा भोगनी पड़ती है। अन्त में हुमायूँ को विवश हो अपनी इच्छा के विरुद्ध कामरान को अन्धा करने की आज्ञा देनी पड़ी। अन्धे होने के कई दिन बाद हुमायूँ ने एक दिन उसे देखा। कामरान को जब हुमायूँ के आने का समाचार मिला तब वह उठ खड़ा हुआ और पास जा कर बोला—"इस अभागे के पास आने से कहीं आपके राजसम्मान में हलकापन न आवे।" यह सुन हुमायूँ के नेत्रों से आँसू बहने लगे और उसे बड़ा दुःख हुआ।

हुमायूँ मृदुस्वभाव और परोपकारी था । इसके लिये उसे अनेक बार स्वयं विपद्ग्रस्त होना पड़ा था। वह अनेक विद्या पढ़ा था और काव्य पढ़ने का उसे व्यसन था। वह बुद्धिमान् और रसज्ञ था । सचमुच यदि वह वैसा धर्मभीरु और कोमल न होता तो वह अच्छा शासन करता और उसकी ख्याति चारों ओर फैलती।

Humberstone, Colonel कर्नल हमबरस्टन=यह सन् १७८३ ई० के उस युद्ध में थे, जिसमें अङ्गरेज़ और टीपू सुलतान से मुठभेड़ पुनामी में हुई थी।

Husain Nizam Shah हुसेन निज़ामशाह=यह अहमदनगर की प्रसिद्ध चाँदबीबी का पिता था। यह अहमदनगर का शाह था और सन् १५५३ से १५६५ ई० तक इसने राज्य किया था। तालीकोटा के युद्ध में यही था।

Hyder Ali हैदरअली=यह एक मुसलमान था और इसका पिता एक रिसाले का अफ़सर था। मैसूर के हिन्दू राजा ने इसे नौकर रखा था, किन्तु हैदर ने कुछ काल बाद अपने अन्नदाता को निकाल बाहर किया और वह स्वयं गद्दी पर बैठ गया। उसने कई बार मरेहटों से भी युद्ध किया था और अङ्गरेज़ों से भी लड़ाई छेड़ी थी। यद्यपि अङ्गरेज़ों को आरम्भ में इससे हारना पड़ा था, तथापि सन् १७८१ ई० में पोर्टोनोवो के युद्ध में उसे हारना पड़ा था।

I.

Ibrahim Khan Gardi इब्राहीमख़ाँ गर्दी=यह पेशवा का सेनापति था और उदगिरि के युद्ध में इसने सलावतजंग और निज़ामअली को हराया था।

Ibrahim Lodi इब्राहीम लोदी=इसने सन् १५१८ से १५२६ ई० तक राज्य किया। यह बड़ा क्रोधी और निठुर था। इसकी इस प्रकार की प्रकृति के कारण इसके सब सरदार इससे अप्रसन्न थे। पंजाब के गवर्नर दौलतख़ाँ लोदी ने बाबर को काबुल से बुला कर दिल्ली पर हमला करवाया। पानीपत में दोनों की मुठभेड़ हुई और इब्राहीम युद्ध में मारा गया। इसके मरते ही लोदी ख़ान्दान की बादशाहत भी समाप्त हुई।

Ibrahim Sur इब्राहीम सूर=मुहम्मद आदिलशाह के शासन काल में बड़ी गड़बड़ी मची और सारी सल्तनत पाँच भागों में बँट गयी। इन पाँचों भागों में शाही अफ़ग़ानी ख़ान्दान के सरदार अधिपति हुए। एक भाग देहली था। जिस पर इब्राहीम सूर की हुकूमत थी। यह सन् १५५५ ई० की घटना है।

Impey, Sir Elijah इम्पे=कम्पनी की अमलदारी में जिस समय वारिन हेस्टिंग्ज़ यहाँ के गवर्नर जनरल थे; उस समय इङ्गलेण्ड के बादशाह की ओर से भारतवासियों के प्रति न्याय की सुव्यवस्था करने के लिये एक सुपरीम कोर्ट स्थापित हुआ था। उसके प्रथम चीफ़ जस्टिस ये ही इम्पे थे। ये वारिन हेस्टिंग्ज़ के सहचर और सहपाठी थे। इन्होंने अपने सहपाठी मित्र की प्रतिष्ठा के लिये झूठी गवाही को सच मान कर एक बूढ़े निर्दोष ब्राह्मण नन्दकुमार को फाँसी पर लटकवाया था। लार्ड मैकाले ने इनके न्याय की बड़ी निन्दा की है।

Ismail Khan इसमाइलख़ाँ=जब जूना उर्फ़ सुलतान मुहम्मद तुग़लक़ ने दक्खिन को ध्वस्त किया और वह वहाँ से चला आया तब वहाँ का विद्रोह फिर भड़का और विद्रोहियों ने इसमाइलख़ाँ को अपना सरदार माना था। यह सन् १३४७ ई० की घटना है।

J.

Jacob, Colonel Le Grand जैकब=इन्होंने कोल्हापुर में सन् १८५७ ई० के सिपाही विद्रोह के समय बड़ा काम किया था और वहाँ का उभड़ता हुआ राजविद्रोह दबा दिया था।

Jankoje Bhonsla जनकोजी भोंसले=यह नागपुर के दूसरे राजा थे और सन् १७५५ ई० में गद्दी पर बैठे थे। इनकी इच्छा थी कि महाराष्ट्र प्रान्त को अपने अधिकार में कर लें।

Jankoje Sindhia जनकोजी सिंधिया=इन्होंने सन् १७५२ ई० में परशियनों के विरुद्ध मुग़लों की सहायता की थी।

Jehandar Shah जहाँदारशाह=यह आठवाँ मुग़ल सम्राट् था। इसने सन् १७१२ से १७१३ तक राज्य किया। यह बहादुरशाह का लड़का था।

एक वर्ष ही इसकी अमलदारी रहने पायी थी कि वह मार डाला गया। इसने एक रखैली डाल रखी थी जिसका इसने बेहद सम्मान किया। इससे उसके उमराव बहुत अप्रसन्न हो गये थे। जिस समय उसके भतीजे फ़र्रुख़सियर ने उसे आगरे के पास हराया, उस समय वह भाग कर दिल्ली चला गया। दिल्ली में उसे उसके वज़ीर ने गिरफ़्तार कर लिया और उसके भतीजे फ़र्रुख़सियर के हवाले कर दिया। निठुर फ़र्रुख़सियर ने अपने चचा जहाँदारशाह और उसके निमकहराम वज़ीर—दोनों को मार डाला और स्वयं दिल्ली के मयूरसिंहासन पर आसीन हुआ।

Jehangir जहाँगीर

उर्फ़

[नूर-उद्-दीन मुहम्मद जहाँगीर]

मुग़ल-कुल-रवि अकबर के अस्त होने पर सन् १६०५ ई० में उसका पुत्र सलीम, जहाँगीर (जग-ग्राही) की उपाधि धारण कर राजसिंहासन पर बैठा। भारतवर्ष के मुसलमान बादशाहों में अकबर को कर्त्तव्य ज्ञान सबसे अधिक था। उसके राजत्व काल में राजपूतों के साथ सौहार्द स्थापित हुआ, अबाध्य भूस्वामिगण वशीभूत हुए, प्रजाहितैषितासम्बन्धी अनेक कार्य किये गये और राजा प्रजा का परस्पर अविश्वास दूर हुआ। अकबर का विश्वास था कि मैंने जो राज धारण किया है, वह प्रजाहितार्थ है और उसके प्रतिपालन के लिये मैं ईश्वर के निकट दायी हूँ। इसीलिए वह शासनसम्बन्धी छोटे से छोटे कार्य तक स्वयं देखता भालता था। उसका विश्वास था—"Every minute spent in comprehending small things is a minute spent in the Service of God." किन्तु उसके पुत्र जहाँगीर की चाल ढाल पिता से ठीक विपरीत थी। उसका निज का लिखा जीवनवृत्त पढ़ने से यह धारणा उत्पन्न होती है कि वह छोटी बातों पर ध्यान देना, राजोचित गौरव और सम्मान को लाघवजनक समझता था। अकबर जैसे कर्त्तव्यनिष्ठ व्यक्ति के पुत्र की ऐसी कर्त्तव्यपराङ्मुखता असम्भव जान पड़ती है इसमें सन्देह नहीं। यह बात नहीं कि अकबर ने जहाँगीर को पढ़ाने लिखाने एवं उसका चरित्र बनाने में कोई बात उठा रखी थी।

जहाँगीर का जन्मविवरण अलौकिक है। राजमहिषी (अम्बराधिपति की दुहिता) बन्ध्या थी। राजसिंहासन पर बैठने के चौदहवें वर्ष अकबर तीर्थ करने अजमेर गया और राजमहिषी को रास्ते में फ़तहपुर के सलीम नामक एक साधु के पास छोड़ गया। कहा जाता है इसी साधु के आशीर्वाद से राजमहिषी को पुत्रमुख देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। राजकुमार का उसके धर्मपिता के नामानुसार सलीम नाम रखा गया और अकबर ने उस साधु का आदर कर सेलूबाबा नाम रखा। इस प्रकार जन्म धारण कर राजकुमार की यदि अस्थिर मति हो, यदि वह स्वेच्छाचारी, कुसंस्कारसम्पन्न और संसार के ज्ञान से अनभिज्ञ हो तो आश्चर्य की कोई बात नहीं है।

जहाँगीर के राजत्वकाल में प्रथम घटना ख़ुसरो का विद्रोह है। इस विद्रोह को दमन करने के लिये उसने जिन उपायों से काम लिया—उन्हीं से उसकी स्नेहशीलता अथवा नृशंसता का पूरा पूरा पता लग जाता है। जहाँगीर ने स्वयं अपनी जीवनी में लिखा है—"मेरे पिता की बीमारी के समय कई एक अपरिणामदर्शी लोगों ने × × × उसको (ख़ुसरो को) सिंहासन पर बिठाने और राजभार उसके हाथ में सौंपने का विचार किया था। × × × ख़ुसरो और उसके निर्बोध अनुचरों का दुःस्वप्न उनकी लाञ्छना और अवमानना ही का कारण हुआ। मैंने राजभार पाते ही उसको क़ैद कर लिया। × × × तथापि उसकी दशा को विचार कर मैं उस पर दया करना चाहता था, किन्तु मेरी चाहना विफल हुई। अन्त में ख़ुसरो ने अपने साथियों के साथ परामर्श कर के मुझे २० वीं तारीख़ को ज़िलहज्ज मास की सूचना दी कि वह मेरे पिता का समाधिमन्दिर देखने

जाता है । × × × इसके कुछ ही क्षणों बाद मुझे संवाद मिला कि खुसरो भाग गया । × × यह सुन मैंने कहा—"अब क्या करना चाहिये ? मैं स्वयं घोड़े पर सवार हो कर उसका पीछा करूँ अथवा खुर्रम को भेजूँ ?" अमीर-उल्-उमरा ने कहा कि यदि मैं उसे अनुमति दूँ, तो वह जावे । इस पर मैंने कहा—"अच्छा।" × × × मैंने उसीको भेजा । इसके बाद मुझे स्मरण आया कि खुसरो ने मेरी अवज्ञा की है और यह भी (अमीर-उल्-उमरा) मुझसे डाह करता है । × × × डाह के कारण सम्भव है, अमीर-उल्-उमरा उसे मार डाले । इस विचार के उत्पन्न होते ही मैंने उसे लौटा लाने के लिये सवार भेजा । × × × संवाद मिला कि खुसरो पंजाब की ओर जा रहा है । दूसरे दिन सबेरे ही मैंने ईश्वर का नाम ले और घोड़े पर सवार हो कर, यात्रा की और किसी भी बाधा विघ्न पर ध्यान न दिया । खुसरो लाहौर पर आक्रमण करने का उद्योग कर रहा है—यह भी समाचार मुझे मिला । मुझे सावधान करने के लिये दिलावरख़ाँ ने मेरे पास एक दूत भेजा । (दिलावरख़ाँ उस समय लाहौर की रखवाली करने के लिये नियुक्त किया गया था) × × (इसके) दो दिन बाद × × खुसरो ने लाहौर को घेर कर लड़ाई आरम्भ की । लाहौर पर घेरा डालने के नवें दिन खुसरो को जहाँगीर और उसके अनुचरों के लाहौर आने का समाचार मिला । अन्य उपाय न देख कर, खुसरो ने राजसैन्य का सामना करने का विचार पक्का किया । × × × राजसैन्य और विद्रोही दल में प्रबल युद्ध आरम्भ हुआ । × × × ईश्वर के अनुग्रह के ऊपर निर्भर हो कर मैंने दुविधा-शून्य चित्त से यात्रा की । × × × पुल से पार होते ही मुझे अपने विजय का समाचार मिला । × × × खुसरो के पकड़े जाने का संवाद पाते ही मैंने उसे अपने सामने लाये जाने की आज्ञा दे कर, एक हरकारा उसी क्षण भेजा । × × × मिरज़ा कामरान के प्रयत्न ही से खुसरो के हाथ पैर ज़ंजीर से जकड़े गये और वह मेरे सामने लाया गया । मेरे नौकरों के बीच में खड़ा खुसरो काँप रहा था और आँसू बहा रहा था।" इसी समय जहाँगीर ने खुसरो से उसके नौकरों के नाम पूँछे । इस पर खुसरो ने कहा—"मेरा अपराध अमार्जनीय है, मैं इसके लिये अपने प्राण देने को प्रस्तुत हूँ, अतः मैं अपने संगी साथियों के नाम बतला कर अपने सम्मान का लाघव करना नहीं चाहता।" इसके बाद बादशाह ने उससे कुछ और पूँछा और उसे बन्दी बना कर रखने की आज्ञा दी । हसनबेग और अबदुलरहीम खुसरो के प्रधान परामर्शदाता थे । जहाँगीर के आदेश से हसनबेग को बैल के चर्म में और अबदुलरहीम को गधे की खाल में सी कर और गधे पर सवार करा कर, नगर में घुमाया । साँस घुटने से हसनबेग तो मर गया, किन्तु अबदुलरहीम ईश्वर के अनुग्रह और मित्रों की सहायता से बच गये । इसके बाद राजपथ के दोनों ओर त्रिशूल खड़े कर के उन पर खुसरो के तीन सौ साथी बैठा कर बड़ी निठुरता के साथ मार डाले गये । नौकरों की इस प्रकार हत्या किये जाने का दृश्य दिखा कर खुसरो को डराने और शोकाकुल करने के लिये, पिता की आज्ञा से वह नित्य वध्यभूमि पर टहलाया जाता था । ऐसा कठोर और निर्दय व्यवहार करने पर भी, इस घटना के कुछ दिनों बाद, जहाँगीर ने स्नेह के वशीभूत हो कर अपने विद्रोही पुत्र को आंशिक स्वाधीनता प्रदान की । किन्तु इस पर भी जब खुसरो बारंबार पिता के विरुद्ध षड्यंत्रों में लिप्त हुआ ; तब जहाँगीर ने उसके नेत्र निकालने की आज्ञा दी । आज्ञा प्रतिपालित हुई । किन्तु आँख निकालते समय डलका, पीड़ा के कारण चीखना चिल्लाना सुन—जहाँगीर को दया आयी और उसने उसके नेत्रों की चिकित्सा किये जाने की

१. In the excess of his impudence, he drew a dog's skin over his face (*i. e* he acted like a dog,) and as he was led through the streets and bazars, he ate cucumbers and anything else containing moisture that fell in his hands. He survived the day and night. Next day order was given for taking him out of the skin. There were many maggots in the skin, but he survived it all.

Ikbal-nama.

आज्ञा दी। चिकित्सा होने पर राजकुमार को कुछ कुछ दीखने लगा। तब चिकित्सक पर प्रसन्न हो कर जहाँगीर ने उसे यथोपयुक्त पुरस्कार दिया।

राजकुमार खुसरो का विद्रोह दमन हो चुकने पर, वर्द्धवान के जागीरदार शेर अफ़ग़ान के हाथ से बङ्गाल का सूबेदार क़ुतुबुद्दीन और क़ुतुबुद्दीन के नौकरों के हाथ से शेर अफ़ग़ान मारा गया। जहाँगीर के राजत्वकाल में एवं उसके जीवन में यह एक विशेष महत्त्व की घटना थी। रियाज़ के लेखक गुलामहुसेन ने लिखा है कि शेर अफ़ग़ान ने जब सिर उठाया, तब उसे दमन करने के लिये सम्राट् की आज्ञा से क़ुतुब वर्द्धवान गया था। शेर को क़ुतुब के ऊपर सन्देह हुआ, इससे उसने क़ुतुब को मार डाला। तब क़ुतुब के साथियों ने अपने प्रभु का बदला लेने के लिये शेर को मारा। अनन्तर शेर की विधवा पत्नी मेहर-उल्-नसा के साथ जहाँगीर ने विवाह कर लिया। मेहर-उल्-

१ इलियट, ह्वीलर, शिवप्रसाद ने शेर अफ़ग़ान की हत्या का कारण नूरजहाँ या मेहर-उल्-नसा ही को बतलाया है। नूरजहाँ का पितामह ईरान का एक रईस था। किन्तु नूरजहाँ का पिता ऐसा दरिद्र हो गया कि आजीविका के लिये उसे हिन्दुस्तान आना पड़ा। रास्ते में कन्धार में नूरजहाँ का जन्म हुआ। किन्तु निर्दयहृदय पिता ने हाल की उत्पन्न लड़की को मार्ग में एक ओर रख अपनी राह ली। किन्तु काफ़िला के किसी आदमी को उस लड़की पर दया आयी और उसने उसे उठा लिया और नूरजहाँ की माँ को दूध पिलाने के लिये नौकर रख लिया। नूरजहाँ के पिता को भी उसी काफ़िले में नौकरी मिल गयी और समय पा कर वह सम्राट् अकबर के निज के नौकरों में भर्ती कर लिया गया। एक दिन जहाँगीर ने नूरजहाँ को अपनी माँ के कमरे में देखा और देखते ही वह उस पर मुग्ध हो गया। जब यह बात अकबर को मालूम पड़ी तब उसने झटपट नूरजहाँ का विवाह इस शेर अफ़ग़ान के साथ करवा दिया। जब जहाँगीर तख़्त पर बैठा, तब भी उसे नूरजहाँ की याद बनी रही। शेर अफ़ग़ानख़ाँ को बङ्गाल में अकबर ने एक जागीर दे रखी थी और वह वहीं रहा करता था। जहाँगीर ने बङ्गाल के सूबेदार क़ुतुब को लिखा कि नूरजहाँ को शेर अफ़ग़ान से जैसे हो वैसे ले कर मेरे पास भेज दो। पहले तो सूबेदार ने शेर अफ़ग़ान को सैन से अपना अभिप्राय समझाया। किन्तु जब उसने उस पर कुछ भी ध्यान न दिया; तब सूबेदार ने उसे ज्यों ही धमकाया, त्यों ही शेर अफ़ग़ान ने सूबेदार साहब का वहीं काम तमाम कर दिया। (१) जहाँगीर ने अबुलफ़ज़ल के हत्या वाले षड्यंत्र के इतिवृत्त विषयक स्वरचित ग्रन्थ में अपना यह अपराध स्वीकार किया है। किन्तु शेर अफ़ग़ान की हत्या उसकी अनुमति से की गयी—यह उसने कहीं नहीं लिखा। (२) जहाँगीर के समय के इतिहास लेखक मुहम्मद हादीख़ाँ और "इक़बालनामा" के लेखक ने भी शेर की हत्या का कारण उसकी दुष्कृति ही बतलायी है। (३) इसके अतिरिक्त जब नूरजहाँ राजधानी में लायी गयी, तब जहाँगीर ने चार वर्ष तक उसका मुख नहीं देखा और उसके भरण पोषण को सामान्य वृत्ति दी—इन तीन कारणों को दिखला कर कीन साहब ने जहाँगीर को शेर अफ़ग़ान की हत्या से बरी कर दिया है। किन्तु कीन साहब की तीनों युक्तियाँ अकाट्य और अभ्रान्त नहीं कही जा सकतीं। क्योंकि (१) अबुलफ़ज़ल ने इसलाम धर्म के विरुद्ध खुल्लमखुल्ला युद्धघोषणा कर दी थी। इस लिये सारा मुसलमान समाज अबुलफ़ज़ल को हेय समझता था। इसके अतिरिक्त अबुलफ़ज़ल जहाँगीर की उन्नति के पथ में काँटों के समान था। मुसलमान बादशाह राजनैतिक उन्नति के पथ के काँटों को हाथ में तलवार ले कर उखाड़ते थे। मुसलमान समाज में ऐसे काम निन्द्य नहीं समझे जाते थे। अतः अबुलफ़ज़ल की हत्या के लिये, जहाँगीर को अपनी निन्दा का भय नहीं था, प्रत्युत एक काफ़िर की हत्या करने के लिये कट्टर मुसलमानों की दृष्टि में उसका यह काम प्रशंसा योग्य था। किन्तु मुसलमान समाज में स्त्रीलाभ के लिये किसीको मारना सदा से गर्हित कार्य समझा जाता है। अतः जहाँगीर ने लोकापवाद के भय से शेर की हत्या का सच्चा वृत्तान्त छिपाया हो तो यह अनुमान असङ्गत नहीं कहा जा सकता। (२) इक़बालनामा जहाँगीर की आज्ञा से बनाया गया था और उसका लेखक दरबार में एक उच्च श्रेणी का पदाधिकारी था। प्रभु जिस बात को छिपाना चाहता हो उसे भला उसका नौकर क्यों कर प्रकाश कर सकता है? अब रहे मुहम्मद हादी—सो इन्होंने जहाँगीर की मृत्यु के सौ वर्ष बाद अपना ग्रन्थ लिखा और ग्रन्थ लिखते समय इक़बालनामा को अपने लेख का आधार मान कर अविकल उसका अनुकरण किया। इस लिये ये भी इस विषय में प्रमाणस्वरूप ग्रहण नहीं

नसा को रनवास में रहते जब चार वर्ष बीत गये, तब जहाँगीर ने उसके साथ बड़ी धूमधाम के साथ विवाह किया। विवाह होने के बाद ही मेहर-उल्-नसा ने जहाँगीर पर अपना पूरा प्रभाव डाला। बादशाह सोलहों आने उसके वस में हो गया, यहाँ तक कि उससे पूछे विना वह कोई भी कार्य नहीं करता था। इसके पूर्व कभी किसी स्त्री का किसी मुसलमान सम्राट् पर ऐसा प्रभाव पड़ा हो—इसमें सन्देह है। हादीख़ाँ ने लिखा है—" वह (मेहर-उल्-नसा) अति शीघ्र बादशाह की प्रियतमा महिषी हो गयी। पहले जहाँगीर ने उसका नाम नूरमहल (The light of the palace) और पीछे कुछ दिनों के भीतर ही उसका नाम नूरजहाँ (The light of the world) रखा। नूरजहाँ के भाईबन्दों को बड़े ऊँचे ऊँचे पद मिले। × × × बादशाह और उसके आत्मीय वर्ग—सब के सब क्षमताच्युत हो गये, और एतमाद-उ-दौला (नूरजहाँ के पिता ग़ियासबेग) के सारे नौकर और खोजा-ख़ाँ एवं तूरख़ाँ की पदवी से विभूषित हो गये। दिलरानी नाम की एक दासी ने नूरजहाँ को पाला था। वह हाजी कोका को हटा कर, रनवास की दासियों की अधिनेत्री बन गयी और विना उसकी मोहर लगी हुई आज्ञा के सद्र-उस्-सदूर किसी को वेतन ही नहीं देता था। नूरजहाँ राज्य सम्बन्धी सारे काम करती थी। सब प्रकार के सम्मानों के वितरण करने का भार उसीको सौंपा गया था। नूरजहाँ को एक स्वाधीन नरपति के समान अधिकार प्राप्त थे। कसर थी तो यही कि उसके नाम का खुतबा नहीं पढ़ा गया था।

कुछ समय तक वह झरोखे (Balcony) में बैठती थी और अमीर उमरा उसको अभिवादन करते थे और उसकी आज्ञा से आने पाते थे। राजमुद्रा में उसका नाम भी सम्मिलित कर दिया गया था। यही नहीं किन्तु सनदों की राजकीय मोहर पर भी उसके स्वाक्षर सुशोभित होते थे। कहाँ तक कहें, सच तो यह है कि जहाँगीर केवल नाममात्र का सम्राट् था, किन्तु मुग़ल-साम्राज्य का बनाना बिगाड़ना सोलहों आने नूरजहाँ के हाथ में था। जहाँगीर तो नूरजहाँ के हाथ का कठपुतला था। वह जिधर उसकी कील दबाती उधर ही वह नाचने लगता था। जहाँगीर कहा करता था कि राजकार्य देखने भालने के लिये तो बेगम साहिबा हैं। मुझे सन्तुष्ट करने के लिये एक बोतल शराब और एक टुकड़ा गोश्त का यथेष्ट है।

नूरजहाँ सर्वलोकप्रिय थी। जो कोई उस तक पहुँच कर किसी प्रकार की सहायता माँगता—उसकी वह सब प्रकार से सहायता करती थी। वह निपीड़ितों की आश्रयस्थल थी और अनेक अनाथा और उपायहीना बालिकाओं के उसने निज धन से विवाह करवाये थे। कहा जाता है उसने अपने जीवनकाल में लगभग पाँच सौ बालिकाओं के विवाह कराये थे और हज़ारों मनुष्य उसके उपकारों के बोझ से दबे हुए थे।

जहाँगीर के राजत्वकाल में शासनसम्बन्धी नीति वही थी, जिसे अकबर ने संस्कारित किया था और

किये जा सकते। (३) मुहम्मद हादी ने लिखा है कि जहाँगीर ने कुतुब के शोक में मेहर-उल्-नसा के साथ अत्याचारपूर्ण व्यवहार किया। अकबर बहुत दिनों तक अपुत्रक था। पीछे से शेख़ सलीम के अनुग्रह से उनके पुत्र हुआ। इसी पुत्र का नाम जहाँगीर था। कुतुब, शेख़ सलीम का दामाद और जहाँगीर की धाय (धात्री) का पुत्र था। वे दोनों एक संग खेलते कूदते और रहते बसते थे। ऐसे अन्तरङ्ग मित्र की मृत्यु के शोक से अधीर होना अनहोनी बात नहीं। किन्तु यदि मेहर-उल्-नसा की अतुल रूपराशि मुख्य अथवा गौण भाव से कुतुब के विनाश का कारण न भी मानी जाय तो भी शेर अफ़गान की निरपराधा विधवा को रनवास में बन्दिनी बना कर रखना अवश्य ही सन्देहजनक घटना है। मेहर-उल्-नसा तेजस्विनी वीर रमणी थी। शोक के आवेश में उसने अपने पति के हत्यारे के साथ विवाह करना पहले अस्वीकार किया हो तो आश्चर्य नहीं।

१ राजमुद्रा पर जहाँगीर के नाम के पास ही नूरजहाँ का नाम भी खोदा जाता था। जिस मनोरम वाक्य के साथ नूरजहाँ का नाम अङ्कित किया जाता था—उसे हम नीचे उद्धृत करते हैं :—

"By order of the Emperor Jahangir gold acquired a hundred times additional value in the name of the Empress Noor-Jahan."

साम्राज्य के प्रधान राजपुरुष निःस्वार्थभाव से अपने कर्तव्यों का पालन करते थे। यद्यपि जहाँगीर स्वयं आलसी, विलास-प्रिय और नृशंस था, तथापि उक्त दो कारणों ही से भारतवर्ष की उसके राजत्वकाल में समृद्धि बढ़ी, अन्तर्वाणिज्य और कृषि की उन्नति हुई, और सर्वत्र शान्ति रही। यथार्थ में चार ही प्रधान जन थे, जिनके अविश्रान्त परिश्रम से साम्राज्य का चक्र अपनी कीली पर घूम रहा था। अर्थात् वज़ीर ग़ियास-बेग, मंत्री आसफ़ख़ाँ, सेनापति महाबतख़ाँ और राजकुमार खुर्रम। ये ही चार व्यक्ति जहाँगीर की अमलदारी में, मुग़ल-साम्राज्य की प्रतिपत्ति, वैभव और शृङ्खला के मूलाधार थे।

ग़ियासबेग नूरजहाँ का पिता—नूरजहाँ ही के प्राधान्य से वज़ीर के पद पर नियुक्त किया गया था और वह सब प्रकार से इस पद के योग्य भी था। उसके चरित्र में ग़ायुता और कार्य में पटुता का परिचय मिलता है। वह बड़ा विचक्षण शासनकर्ता और न्यायपरायण राजपुरुष था। उसके गुणों पर गुणग्राही लोग मोहित हो कर उसके पक्षपाती हो गये थे और उसका नाम सुनते ही उनके हृदय में उसके प्रति प्रीति और कृतज्ञता के भाव उदय होते थे।

आसफ़ख़ाँ नूरजहाँ का बड़ा भाई था। इसकी उन्नति का मूल भी नूरजहाँ का प्राधान्य था आसफ़ख़ाँ अपने पिता की तरह राजनीतिविशारद और सुदक्ष राजकर्मचारी था। आसफ़ख़ाँ ने प्रजा को प्रसन्न रखना ही मूलमंत्र समझ रखा था। वह सदा दुष्टों को दबाने और शिष्टों का पालन करने में लगा रहता था।

महाबतख़ाँ जाति का पठान था और नूरजहाँ का आश्रित था। नूरजहाँ के अनुग्रह ही से महाबतख़ाँ की इतनी उन्नति हुई थी। किन्तु महाबतख़ाँ नूरजहाँ के अनुग्रह का उपयुक्त पात्र भी था। उस समय के राजपुरुषों में महाबतख़ाँ ही सबसे अधिक प्रतिभा-वान् था। उसकी कार्यदक्षता, तेजस्विता और साहस मुग़ल-इतिहास में स्वर्णाक्षरों से लिखा है। जहाँगीर की महाबतख़ाँ पर बड़ी कृपा थी।

राजकुमार खुर्रम जहाँगीर का तीसरा पुत्र एक बड़ा तेजस्वी वीर पुरुष था। अकबर ने मेवाड़ को छोड़ समस्त साम्राज्य को वशीभूत कर लिया था। मेवाड़ाधिपति स्वदेश-प्राण प्रतापसिंह के अलौकिक वीरत्व के सामने अकबर को हार सी मान लेनी पड़ी थी। जहाँगीर ने मेवाड़ को वशीभूत कर के सारे राज-स्थान को वशीभूत करने का सङ्कल्प किया। और इसी उद्देश्य से उसने राजकुमार खुर्रम को एक बड़ी सेना सहित राजस्थान में भेजा। प्रतापपुत्र अमरसिंह पितृ-गौरव को ज्यों का त्यों बनाये रखने के अर्थ मुग़ल सेना के विरुद्ध प्रचण्ड पराक्रम से खड़े हुए, किन्तु पराक्रमी शत्रु से पार न पा कर जब बार बार पराजित हुए; तब अन्य उपाय न देख अन्त में उन्हें शत्रु की वश्यता स्वीकार करनी पड़ी। मेवाड़-विजय ही खुर्रम के भाग्योदय की सूचना समझनी चाहिये। बादशाह ने खुर्रम के कार्य पर प्रसन्न हो कर उसे एक राजप्रासाद पुरस्कार में दिया। सन् १६१४ ई० में मेवाड़ वशीभूत हुआ।

अकबर ने दक्षिण प्रदेश के स्वाधीन मुसलमानी राज्यों को अपने अधिकार में करने के लिये सबसे पहले अहमदनगर पर चढ़ाई की थी। इस राज्य का कुछ भाग मुग़लों के हस्तगत हो जाने पर भी अकबर ने सन्धि कर ली थी। अकबर की मृत्यु के बाद मलिक अम्बर नाम के एक सेनापति ने मुग़लों के विरुद्ध युद्धघोषणा कर दी। जहाँगीर ने लुप्त गौरव के पुनरुद्धार के लिये सन् १६१२ ई० में दक्षिण की ओर सेना भेजी। किन्तु मलिक अम्बर ने मुग़ल सेना को हरा दिया। शत्रु द्वारा मुग़ल सेना के विध्वस्त होने का संवाद सुन जहाँगीर मरे के समान हो गया। वह शत्रु को नष्ट करने का उपाय विचार रहा था, इतने में शाहज़ादा खुर्रम, मेवाड़ विजय कर नवोदित सूर्य्य के समान राजधानी में पहुँचा। जहाँगीर ने दक्षिण-विजय का कार्य भी खुर्रम ही को सौंपा। इस बार भी विजय उसीकी हुई और मलिक अम्बर ने जीती हुई सारी भूमि खुर्रम को लौटा दी। जब खुर्रम दक्षिण विजय कर लौट कर पिता के पास गया, तब जहाँगीर अपने प्रिय पुत्र को बारम्बार गले से लगा कर भी सन्तुष्ट न हुआ। मेवाड़ विजय करने पर खुर्रम बीस हज़ार पैदल और पाँच सहस्र अश्वारोही सैनिकों के अधिनायक बनाये गये थे। इसके बाद दक्षिण-विजय के लिये भेजते समय, बादशाह ने उसे शाह की उपाधि दी और जब दक्षिण विजय कर के वह लौटा; तब उसे राज-प्रसाद स्वरूप तीस हज़ार पैदल और बीस हज़ार अश्वारोही सैनिकों का अधि-नायकत्व मिला और वह शाहजहाँ (The Lord of

the World) की सुपाधि से सुशोभित किया गया। इस पर भी जब जहाँगीर को तृप्ति न हुई; तब उसने दरबार में अपने सिंहासन के समीप खुरम को पृथक् आसन दिया । यह राजसम्मान बिल्कुल नया था । इसके पूर्व कभी किसी तैमूरवंशीय राजकुमार को सिंहासन के पास पृथक् आसन नहीं मिला था। राजकुमार शाहजहाँ पर जहाँगीर का कितना प्रेम था यह बतलाने के लिये हम एक घटना का उल्लेख करते हैं। एक बार शाहजहाँ का एक पुत्र बहुत बीमार हुआ । उसकी बीमारी इतनी बढ़ी कि उसके जीवन की आशा तक न रही। उस समय अपने पौत्र की मङ्गल कामना के उद्देश्य से जहाँगीर ने भगवान् से प्रार्थना की और भविष्य में मृगया (शिकार) न खेलने की शपथ खायी । और पाँच वर्ष तक इस शपथ का पालन भी किया ।

जिन चार राजपुरुषों के प्रयत्न से जहाँगीर के शासन काल में मुग़ल साम्राज्य का गौरव और वैभव बढ़ा, उनमें ग़ियासबेग और आसफ़ख़ाँ तो बादशाह के नातेदार ही थे, महावतख़ाँ के साथ जहाँगीर का कोई सम्पर्क न होने पर भी वह बादशाह का कृपापात्र था । चौथा शाहजहाँ था, जो उसका प्रिय पुत्र ही था । फलतः ये चारों राजपुरुष मुग़ल साम्राज्य के स्वरूप थे—सो नहीं; किन्तु ये चारों बादशाह के साथ अच्छेद्य बन्धनों में भी बँधे हुए थे। किन्तु नूरजहाँ ने जहाँगीर को यहाँ तक अपनी मुट्ठी में कर रखा था कि बादशाह ने उसकी बनावटी बातों के धोखे में आ कर शाहजहाँ जैसे वीर प्राणाधिक पुत्र एवं महावत ख़ाँ जैसे प्रीतिपात्र और रणक्षेत्र में प्रधान सहायक सेनापति को अपने मन से उतार दिया । अब हम वही विचित्र कहानी लिखते हैं ।

हम पहले ही लिख चुके हैं कि जब अहमदनगर के मलिक अम्बर ने युद्धघोषणा की तब उसका दमन करने के अर्थ जहाँगीर ने सेना भेजी और प्रथम मुग़ल सेना की हार हुई; तब पीछे से शाहजहाँ ने जा कर मुग़लों के लुप्तगौरव का उद्धार किया तथा वहाँ से लौट कर पिता के दर्शन किये । यह घटना जहाँगीर के राजत्व काल के बारहवें वर्ष सन् १६१७ ई० की है ।

इस घटना के कई वर्षों बाद, सन् १६२१ ई० में मलिक अम्बर ने फिर सिर उठाया । दूसरी बार भी शाहजहाँ को दक्षिण का उपद्रव शान्त करने की आज्ञा दी गयी । इस बार भी शाहज़ादे की जीत हुई और उसने मलिक अम्बर को अनेक प्रकार के त्रास दे विकल कर डाला । किन्तु दक्षिण का उपद्रव भली भाँति शान्त भी नहीं होने पाया था कि नूरजहाँ की प्रतारणा से शाहज़ादा शाहजहाँ पितृस्नेह से वञ्चित हुआ ।

जहाँगीर के बाद मुग़ल साम्राज्य को करतलगत करने की उच्च कांक्षा शाहजहाँ के हृदय में उत्पन्न हो गयी थी—यह बात तीक्ष्णदर्शिनी नूरजहाँ से न छिप सकी । जहाँगीर का ज्येष्ठ पुत्र ख़ुसरो नज़रबन्द था । दक्षिण पर तीसरी चढ़ाई के समय वह मर गया । दूसरे पुत्र परवेज़ पर जहाँगीर की कम कृपा थी। क्योंकि परवेज़ उच्च आशाविहीन निरीह प्रकृति का व्यक्ति था । सुतराम् तीसरे पुत्र शाहजहाँ के साम्राज्य पाने की आशा के फलवती होने की सम्भावना थी। शाहजहाँ बेगम नूरजहाँ का अनुगत न था । शेर अफ़ग़ान के औरस से नूरजहाँ के एक बेटी थी। बादशाह की आज्ञा से उसके चतुर्थ पुत्र शहरयार ने नूरजहाँ की बेटी के साथ विवाह कर लिया था। शहरयार नूरजहाँ का दामाद था और सोलहों आने उसके कहे में था । यदि शाहजहाँ को सिंहासन मिला तो नूरजहाँ के प्राधान्य और क्षमता के विलुप्त होने की पूरी सम्भावना थी; प्रत्युत लोगों को पूरा भरोसा था कि शहरयार को यदि गद्दी मिली तो वह सदा नूरजहाँ के कहे में रहेगा । यह विचार नूरजहाँ ने शहरयार को साम्राज्येश्वर बनाने और अपने प्राधान्य एवं क्षमता को अक्षुण्ण बनाये रखने का सङ्कल्प किया। किन्तु शाहजहाँ उसकी आशा का काँटा था । वह जानती थी कि यदि शाहजहाँ बादशाह के समीप रहा तो उसका सङ्कल्प कभी पूरा न हो सकेगा । जिस समय दक्षिण में दूसरी बार गड़बड़ी मची और शाहजहाँ वहाँ युद्ध में लगा हुआ था, उस समय पारस्याधिपति ने मुग़लों के हाथ से क़न्धार निकाल लिया। शाहजहाँ को बादशाह के पास से दूर करने का नूरजहाँ ने यह अच्छा सुयोग समझा और उसने प्रस्ताव किया कि शाहजहाँ क़न्धार के उद्धार के लिये भेजा जाय। जहाँगीर ने उस प्रस्ताव को स्वीकृत कर शाहजहाँ को क़न्धार जाने की आज्ञा दी । शाहजहाँ से नूरजहाँ की यह चाल छिप न सकी । इस आज्ञा

के मिलते ही शाहजहाँ समझ गया कि मेरे सिंहासनारोहण के मार्ग में काँटे बोने के अभिप्राय ही से नूरजहाँ ने यह षड्यंत्र रचा है और वह मुझे राजधानी से सुदूर भिजवा रही है। अतः शाहज़ादे ने पिता की आज्ञा-पालन करने में जान बूझ कर विलम्ब किया। बेगम ने शाहज़ादे की इस बात को ले कर उसकी ओर से जहाँगीर का मन खट्टा कर दिया। इसका फल यह हुआ कि बादशाह ने शाहजहाँ की सब जागीर अपहृत (ज़ब्त) किये जाने की आज्ञा दी।

इसके बाद शाहजहाँ ने विद्रोह का झंडा खड़ा किया और अपने को सम्राट् बतला कर उसने घोषणा की और दिल्ली पर धावा मारा। मार्ग में बादशाही सेना और उसमें युद्ध हुआ। शाहजहाँ को बादशाही सेना के हाथ से हार कर दक्षिण की ओर भाग जाना पड़ा। शाहज़ादा परवेज़ और सेनापति महाबतख़ाँ ने बादशाह की आज्ञानुसार उसका पीछा किया। दक्षिण के किसी नरपति ने जब शाहजहाँ का पक्ष लेना स्वीकार न किया, तब वह दक्षिण छोड़ उड़ीसा होता हुआ, बङ्गाल में पहुँचा। उस समय नूरजहाँ का एक दूसरा भाई इब्राहीम फ़तहजंग बङ्गाल का सूबेदार था। वह शाहजहाँ का सामना करने के अर्थ बड़ी धूम धाम से खड़ा हुआ, किन्तु शत्रु के हाथ से वह तुरन्त ही मारा गया। बङ्गाल शाहजहाँ के हाथ लगा। बङ्गाल में अपना प्रतिनिधि रख शाहजहाँ विहार की ओर बढ़ा। वहाँ के राजपुरुष शाहज़ादे की चढ़ाई और बङ्गाल के विजय का वृत्तान्त सुन, डर के मारे भाग खड़े हुए। विहार का सुप्रबन्ध कर शाहज़ादा राजधानी की ओर अग्रसर हुआ। इलाहाबाद के पास झूसी में शाहजहाँ और परवेज़ एवं महाबतख़ाँ का सामना हुआ। इस कठिन संग्राम में शाहजहाँ बुरी तरह हारा और उस की सारी सेना मारी गयी। तब शाहजहाँ भाग कर फिर दक्षिण गया और वहाँ मुग़लों के पुराने शत्रु मलिकअम्बर से मिल गया। जहाँगीर ने शाहजहाँ के पराजित किये जाने का संवाद सुन एवं प्रसन्न हो कर महाबतख़ाँ को बङ्गाल की सूबेदारी दी। किन्तु शाहजहाँ का उत्साह अभी भङ्ग नहीं हुआ था और वह पिता के विरुद्ध अब तक विद्रोह में लिप्त था। अतः महाबतख़ाँ भी अभी युद्ध से निश्चिन्त न था। यह देख महाबतख़ाँ के पुत्र ख़ानज़ादख़ाँ को प्रतिनिधि रूप में बङ्गाल का शासन करने का आदेश मिला।

किन्तु इसके बाद ही महाबतख़ाँ की दुर्दशा का सूत्रपात हुआ। जहाँगीर की मृत्यु के बाद शहरयार गद्दी पर बैठे—यह बात महाबतख़ाँ के मत के विरुद्ध थी। वह यह नहीं चाहता था कि शहरयार सम्राट् बनाया जाय। उसका यह मत सम्राज्ञी नूरजहाँ के मत से सर्वथा विरुद्ध था। इसके अतिरिक्त महाबत की आसफ़ख़ाँ के साथ शत्रुता सी हो गयी थी। अतः नूरजहाँ और आसफ़ख़ाँ मिल कर, महाबतख़ाँ को नीचा दिखाने का अवसर ढूँढ़ने लगे। शाहजहाँ के साथ युद्ध करते समय बहुत से हाथी महाबतख़ाँ के हाथ लगे। वह उन हाथियों को यथासमय बादशाह के पास न भेज सका। इसको ले कर नूरजहाँ और आसफ़ख़ाँ ने महाबतख़ाँ पर राजविद्रोह और राजस्व आत्मसात् करने का अभियोग लगा कर उसे बदनाम किया। इस पर जहाँगीर ने उसे आज्ञा भेजी कि तुम तुरन्त युद्धक्षेत्र परित्याग कर दरबार में उपस्थित हो इस राजाज्ञा को देखते ही महाबतख़ाँ ने जान लिया कि शत्रुओं ने बादशाह के कान भर कर उसे मेरे ऊपर क्रुद्ध कर दिया है। यह विचार उसने दरबार में अकेला जाना उचित न समझा। उसने ऐसे पाँच सौ राजपूत वीर जो समय पड़ने पर महाबतख़ाँ के लिये अपने प्राण तक दे डालें—साथ ले कर राजदर्शन के लिये प्रस्थान किया। उसी समय जहाँगीर काबुल जा रहा था। रास्ते में झेलम के तट पर महाबतख़ाँ ने बादशाह के शिविर में प्रवेश किया; किन्तु आसफ़ख़ाँ की चालाकी से उसे राजदर्शन न हो पाये। महाबतख़ाँ ने बादशाह की अनुमति के बिना ही अपनी बेटी का विवाह कर दिया था। इस लिये बादशाह ने उसके जमाई के बेत लगवाये और उसे कारागार में बन्द करवा दिया। इन घटनाओं का पूर्वापर विचार कर महाबतख़ाँ ने अपने मन में निश्चित कर लिया कि जहाँगीर को अपने ऊपर प्रसन्न करना असम्भव है। और उसने यह सङ्कल्प किया कि बलपूर्वक मैं बादशाह को अपनी मुट्ठी में करूँगा। उसी समय जहाँगीर ने वहाँ से कूच किया। बादशाह के शिविर के सामने ही झेलम बह रही थी। झेलम पार करते ही काबुल जाने का मार्ग मिलता था। पहले सेना और पीछे बादशाह के पार उतरने का प्रबन्ध किया गया था। तदनुसार बड़े तड़के सैनिक लोग, बादशाह और उसके अनुचरों को शिविर में छोड़ नाव के पुल पर हो कर झेलम के

पार हुए। राजसैन्य के उस पार होते ही महावतख़ाँ ने अपने साथी राजपूत वीरों की सहायता से नाव का पुल जला डाला और बादशाह को घेर लिया। उस समय नूरजहाँ भी जहाँगीर के साथ ही थी। किन्तु उस समय महावतख़ाँ का ध्यान बादशाह को अवरुद्ध करने में लगा था। इस लिये अवसर पा, नूरजहाँ झेलम को पार कर राजसैन्य से जा मिली।

उस पार पहुँच कर, बेगम ने उमरावों को एकत्र किया और बादशाह को पीछे छोड़ कर स्वयं आगे बढ़ जाने के लिये उसने उन सबको बहुत धिक्कारा। साथ ही अगले दिन महाबतख़ाँ पर आक्रमण कर के बादशाह को छुड़ाने के लिये तैयार रहने की आज्ञा दी। तदनुसार अगले दिन प्रभात होते ही दोनों सेनाओं में घोर युद्ध हुआ। नूरजहाँ इस युद्ध में हाथी पर सवार हो कर अपनी ओर की सेना का उत्साह बढ़ा रही थी। वह केवल सेना को उत्साहित कर के ही निश्चिन्त न हुई, किन्तु स्वयं भी शत्रु सेना पर तीरों की वर्षा कर रही थी। धीरे धीरे उसके एक एक कर के तीन महावत शत्रु के फेंके तीरों से घायल हुए। तिस पर भी बेगम का तेज मन्द न पड़ा। वह धीरे धीरे आगे ही बढ़ती जाती थी। तेजस्विनी वीर रमणी नूरजहाँ ने अपने पति के उद्धार के लिये इस युद्ध में शौर्य वीर्य्य को पराकाष्ठा पर पहुँचा दिया, किन्तु तिस पर भी वह अपने इस उद्योग में कृतकार्य न हुई। राजपूत सैनिकों के प्रबल आक्रमण से बादशाही सेना नष्ट हुई। तब हार कर नूरजहाँ को रणक्षेत्र छोड़ना पड़ा। महावतख़ाँ बड़े दर्प के साथ, जहाँगीर को बन्दी बना कर काबुल की ओर प्रस्थानित हुआ। यद्यपि जहाँगीर बन्दी था, तथापि उसके राजोचित सम्मान, और मर्यादा में तिल भर भी त्रुटि नहीं की जाती थी। आरामप्रिय जहाँगीर इसीको बहुत कुछ समझता था। जहाँगीर ने महाबतख़ाँ के सद्व्यवहार का वर्णन कर के और उसके हाथ से अपने को किसी प्रकार छुटाने का उद्योग न करने की बात लिख एक पत्र नूरजहाँ के पास भेज दिया साथ ही इस पत्र में यह भी लिखा कि तुम मुझसे आ कर मिलो।

लाहौर में पहुँचने के कई दिन बाद बादशाह का पत्र नूरजहाँ को मिला और बादशाह की आज्ञा को शिरोधार्य कर वह उनसे मिलने के लिये लाहौर से चल दी। नूरजहाँ काबुल के मार्ग में महावतख़ाँ के शिविर में पहुँची, किन्तु महावतख़ाँ ने नूरजहाँ को जहाँगीर से न मिलने दिया। उसने नूरजहाँ पर राजविद्रोह का अभियोग लगाया[१]। महावतख़ाँ ने जहाँगीर को सम्बोधन कर के कहा:—

महावतख़ाँ—जहाँपनाह मुग़ल साम्राज्य के अधीश्वर हैं। मैं आपको लोकातीतक्षमतासम्पन्न समझता हूँ। ईश्वर का अनुकरण कर के आप को राजकार्य करना चाहिये। आपको व्यक्ति विशेष की सम्मानरक्षा करना उचित नहीं है।

बादशाह नूरजहाँ की जिस मोहिनी शक्ति से अपने आपको भूल जाते थे—वह शक्ति नूरजहाँ को न देखने से विलीन हो जाती थी। नूरजहाँ की अनुपस्थिति में जहाँगीर बिल्कुल महावतख़ाँ के वश में था। इसीसे उसने महाबतख़ाँ के लगाये नूरजहाँ के दोषों को सुन कर उसके (नूरजहाँ के) प्राणदण्ड की आज्ञा वाले पत्र पर अपने स्वाक्षर कर दिये। यह भीषण संवाद सुन कर नूरजहाँ ने अविचलित चित्त से कहा:—"बन्दी नरपति को प्राणदण्ड देने की क्षमता ही नहीं है। एक बार मुझे सम्राट् से मिल भर लेने दो—फिर देखना उस आज्ञा पर किये हुए उनके स्वाक्षर उन्हींके अश्रुजल से मिटते हैं कि नहीं।" महावत की उपस्थिति में नूरजहाँ बादशाह के सामने लायी गयी। मानसिक यंत्रणा से उसका सौन्दर्य रूप चौगुना बढ़ गया था। उसके मुख से एक भी शब्द न निकला।

१. That she had conspired against the Emperor by estranging the hearts of his subjects: that most cruel and unwarrantable actions had been done, by her caprcious orders in every corner of the Empire, that her haughtiness was the source of public calamities, her malignity the ruin of many individuals; that she had even extended her veins to the Empire by favouring the succession of Shahariar to the throne, under whose feeble administration she hoped to govern India at pleasure.

तब आँखों में आँसू भर कर जहाँगीर ने कहा—"महावत ! क्या तू इस रमणी की प्राणरक्षा न करेगा ? देख, नूरजहाँ किस प्रकार रो रही है ?" इसके उत्तर में महावतख़ाँ ने कहा—"मोगलाधिपति की याचना कभी विफल नहीं हो सकती।" इसके बाद नूरजहाँ के प्राणदण्ड का आज्ञापत्र फाड़ फूड़ डाला गया और नूरजहाँ के प्राण बचे ।

इसके बाद जहाँगीर काबुल पहुँचा छः मास काबुल में रह कर, वह लाहौर लौट आया । जहाँगीर क्षमाशील और सीधी प्रकृति का मनुष्य था । इसीसे महावतख़ाँ के साथ उसकी पट जाती थी । महावत पर वे प्रसन्न थे । महावतख़ाँ, बादशाह की अपने ऊपर कृपा देख, अपने को निरापद समझने लगा । यदि नूरजहाँ अकेले में महावतख़ाँ के विरुद्ध कुछ कहती तो वह (जहाँगीर) उससे (महावतख़ाँ से) कह दिया करते थे । इन्हीं सब कारणों से महावतख़ाँ निःशङ्क और सन्देह रहित हो असावधान रहने लगा । और जहाँगीर को अपने हाथ का गुड्डा बनाये रखने के अभिप्राय से जिन राजपूत वीरों को वह रखे हुए था उनकी संख्या अब उसने घटा दी थी । उधर नूरजहाँ महावतख़ाँ के पंजे से जहाँगीर को निकाल ले जाने के लिये रात दिन सचेष्ट रहती थी । एक दिन महावतख़ाँ को असावधान पा कर नूरजहाँ जहाँगीर को निकाल ले गयी । जब महावतख़ाँ प्राण जाने के भय से अधीर हो कर अनेक स्थानों में मारा मारा फिरने लगा, तब आसफ़ख़ाँ को उसकी दुर्दशा देख उस पर दया आयी और जहाँगीर से कह सुन कर उसे बादशाह से फिर मिला दिया ।

उधर दक्षिण में पितृद्रोही शाहजहाँ अनेक प्रकार के उपद्रव मचा रहा था । उसको दमन करने के लिये महावतख़ाँ और शाहज़ादा परवेज़ फिर दक्षिण भेजे गये । किन्तु निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचने के पहले ही शाहज़ादा परवेज़ अधिक मद्य पीने के कारण रास्ते ही में मर गया । तब शाहजहाँ ने पिता के सामने अपनी भूल स्वीकार कर अपने किये पर पश्चात्ताप प्रकाशित किया और क्षमा माँगी । महावतख़ाँ और शाहजहाँ दोनों ही पहले राजविद्रोही थे । किन्तु महावतख़ाँ को पहले और शाहजहाँ को अब जहाँगीर ने क्षमा कर दिया । किन्तु इन दोनों की अब पहले जैसी मान मर्यादा नहीं रही । दोनों की समान अवस्था होने से उन दोनों में बड़ा मेल हो गया और वे दोनों मिल कर दक्षिण में असह्य दुःखों को सहते हुए घूमने लगे ।

महावतख़ाँ और शाहजहाँ का मेल होने के कुछ ही दिनों बाद जहाँगीर की मृत्यु हुई । जहाँगीर को राज्य करते जब सोलह वर्ष बीते तब उसे श्वास के रोग ने आ दबाया । इस व्याधि की दारुण यंत्रणा को रोकने के लिये, उसने मदिरा की मात्रा बहुत बढ़ा दी । किन्तु नूरजहाँ उसकी सेवा शुश्रूषा और उपयुक्त चिकित्सा कराने में सदा व्यग्र रहती थी । जहाँगीर ने स्वयं लिखा है कि नूरजहाँ बुद्धिमत्ता और दूरदर्शिता में चिकित्सक की अपेक्षा श्रेष्ठ थी । वह सप्रेम सेवा करती थी और मन बहला कर सुरापान की मात्रा

१ नूरजहाँ ने जिस उपाय से जहाँगीर को महावतख़ाँ के पंजे से निकाला था, उसका वर्णन राजा शिवप्रसाद ने यों किया है :—

"At Nurjahan's instigation, the Emperor talked over Mahabat Khan and issued an order for all Jagirdars to muster their followers for inspection. Nurjahan, herself a Jagirdar, began to get ready her contingent and increased her number so cleverly that no one was aware of its strength till the day for muster. Mahabat Khan was uneasy at the proceednigs of the Empress, but Jahangir removed his misgivings by telling him that he himself would inspect her contingent, and that Mahabat Khan need not come. When, however, Jahangir accompanied by Nurjahan went to the inspection the muster of men was so large that they easily surrounded the Imperial elephants and cut off the escort sent by *Mahabat Khan.*"

घटाती जाती थी। साथ ही रोग को रोकने के लिये उपयुक्त औषधि भी खिलाती थी। राजमहिषी की अविश्रान्त सेवा शुश्रूषा से जहाँगीर की पीड़ा कम तो हुई थी; किन्तु रोग दूर न हो पाया।

सन् १६२७ ई० में छः वर्ष बाद वही रोग फिर उभड़ा। इसी वर्ष की ११वीं मार्च को जहाँगीर ने अपने राजत्व काल का बाईसवाँ वर्ष पूरा होने का उत्सव काश्मीर जाते समय मार्ग में चनाब के तट पर मनाया। किन्तु बादशाह के मन पर वह धूम धाम चढ़ी नहीं। उस उत्सव के समय महफ़िल की सजावट और कोकिल कण्ठ वाली नाचने गाने वालियों का नाचना गाना, बादशाह को आनन्ददायी न हुआ। रोग यहाँ तक बढ़ा कि अब अफ़ीम भी उसके दौरे को न रोक सकी। यह देख जहाँगीर काश्मीर के स्वास्थ्यकर जल वायु सेवन की आशा से उस ओर शीघ्रतापूर्वक प्रस्थानित हुआ। किन्तु पहाड़ी जल वायु भी उसकी गिरती हुई दशा को न सुधार सका। जाड़े की ऋतु आरम्भ होते ही जहाँगीर लाहौर की ओर लौट पड़ा। बैराम क़िला नामक स्थान में पहुँच कर मृगया के लिये काले हिरन को घेर कर लाने की उसने आज्ञा दी और वह स्वयं हाथ में बन्दूक़ ले कर एक ऊँचे पहाड़ की तलहटी में बैठ गया। हिरन घेरने वालों में से एक मनुष्य का पैर फिसला और वह पहाड़ की चोटी से नीचे आ गिरा। इस गिरे हुए मनुष्य के प्राण बादशाह के सामने निकले। दुर्बल देह जहाँगीर वह भीषण दृश्य न देख सका। वह उसी क्षण शिविर में लौट आया और उस मरे हुए मनुष्य की माता को धन दे कर उसके शोकदग्ध और अपने अनुतापदग्ध हृदय को शान्त करने की चेष्टा करने लगा। किन्तु बादशाह अपने मन की विकलता को दूर न कर सका। उस मरे हुए मनुष्य का विकट दृश्य उसके नेत्रों के सामने सदा नाचता रहता था। इससे उसका स्वास्थ्य और भी शीघ्र विनष्ट होता गया। उसने बैराम क़िला परित्याग कर राजोर की ओर प्रस्थान किया। रास्ते में सुरापान के लिये अधीर हो कर, उसने पानपात्र को हाथ में उठा लिया, किन्तु वह मुँह तक पहुँचने भी न पाया था कि उसे उससे अरुचि हुई और उस पात्र की सुरा उसने फेंक दी। इसके अगले ही दिन, उनसठवीं वर्ष में विलासी बादशाह जहाँगीर काल के मुख में पतित हुआ।

जहाँगीर के सामने सुरापात्र स्थापित किये बिना उसका चित्र अधूरा रह जाता है। उसने निज रचित जीवनचरित में लिखा है—"मैंने चौदह वर्ष की अवस्था में एक दो बार छोड़—कभी मद्य छुई भी न थी। एक दो बार भी मैंने स्वयं नहीं पी थी, किन्तु रोग दूर करने के अर्थ मेरी माता अथवा दाई ने मुझे पिलायी थी। एक बार मेरे पिता ने भी मुझे थोड़ा सा अरक़ (Spirit) गुलाबजल में मिला कर श्वास रोकने के लिये पिलाया था। ××× एक दिन मृगया के लिये मैं बाहर गया; मृगयाक्षेत्र (शिकारगाह) में अनेक दुर्घटनाएँ हुईं; और मैं बिलकुल थक गया था। इतने में मेरे साथ के एक नौकर ने कहा कि एक प्याला सुरा पीने से सारी थकावट और क्लेश दूर हो जायँगे। उस समय मैं नवीन युवक था और मेरा मन विलास की ओर झुका हुआ था अतः थकावट दूर करने वाली औषध लाने के लिये मैंने एक नौकर को हाकिमअली के घर भेजा। मेरा नौकर एक बोतल में डेढ़ पियाले के अन्दाज़ पीले रङ्ग की सुस्वादु सुरा ले कर लौट आया। मैं उसे पी गया। उससे मुझे बड़ा आनन्द मिला। तभी से मुझे सुरापान की टेव पड़ गयी। धीरे धीरे मात्रा भी बढ़ती गयी। अन्त में अंगूरी मदिरा मुझे उन्मत्त न कर सकी। तब मैंने अरक़ (Spirit) पीना आरम्भ किया। धीरे धीरे मात्रा बढ़ाते बढ़ाते, नौ वर्ष के भीतर दो बार में चुआये हुए अरक़ के बीस प्याले नित्य उड़ाने लगा। इनमें से चौदह दिन में और छः रात को पीता था। इन बीस प्यालों में छः सेर सुरा आती थी। ×××× इस समय मेरा आहार एक मुर्ग़ी और कुछ चपातियाँ भर रह गया था। मुझसे वादानुवाद करने का किसीको साहस नहीं होता था। अन्त में मेरी यह दशा हुई कि हाथ के काँपने से मैं सुरापात्र थाम तक न सका। तब दूसरा आदमी प्याला थामता था और मैं चुसक चुसक पीता था। अन्त में मैंने हाकिम हुमाम को बुला कर अपना सब हाल कहा। उसने मेरे ऊपर दया कर, कोई बात मुझसे न छिपायी और साफ़ साफ़ कह दिया कि "यदि आप इसी प्रकार छः मास तक और सुरापान करते रहे, तो आपकी दशा साध्यातीत हो जायगी।" उसका यह परामर्श उत्तम था। जीवन बहुमूल्य है। उसकी बातों से मुझे बड़ा लाभ हुआ। उसी दिन से मैंने सुरा की मात्रा घटानी

आरम्भ की । साथ ही मैं भाँग पीने लगा । उधर मैं सुरा की मात्रा घटाता और इधर भाँग की मात्रा बढ़ाता जाता था । एक भाग अरक़ (Spirit) में दो भाग अंगूरी मदिरा मिला कर मेरे पीने के लिये तैयार की जाती थी । नित्य मात्रा घटाते घटाते छः वर्ष में मैं दिन रात में छः पियाले पर आ गया । "

जहाँगीर में वैसे चाहे अनेक दोष ही रहे हों—किन्तु उसका स्वभाव मधुर और अमायिक था और उसका हृदय स्नेहपूर्ण और सरल था । हम यहाँ उसके स्नेहशील हृदय का एक उदाहरण देते हैं । शाहज़ादा खुसरो की माता जहाँगीर की प्रधान-राजमहिषी थी । जब खुसरो ने विद्रोह का झंडा खड़ा किया; तब उसकी माता के मन में इतना कष्ट हुआ कि उसने आत्महत्या कर ली । इसी घटना का उल्लेख कर के जहाँगीर ने निज रचित जीवनचरित में लिखा है—" मैं किस प्रकार उसकी गुणावली और अमायिक स्वभाव का वर्णन करूँ ? उसकी बुद्धि बड़ी तीक्ष्ण थी और मुझ पर उसकी इतनी प्रीति थी कि वह मेरे एक बाल की रक्षा के निमित्त अपने हज़ार पुत्रों अथवा भाइयों को न्योछावर कर डालती । × × वह मेरी सब से पहिली महिषी थी । मैं उसके साथ बाल्यावस्था ही से परिचय सूत्र में बँध गया था । खुसरो का जन्म होने पर मैंने उसे शाहबेगम की उपाधि दी थी । उसकी मृत्यु से मेरे मन में इतना शोक उत्पन्न हुआ है कि मुझे जीवन भार जान पड़ता है और आमोद प्रमोद अच्छा नहीं लगता । मैं इस शोक में पड़ लगातार चार दिन रात तक खाना पीना भी भूल गया । "

जहाँगीर के राजत्व काल ही में ईस्ट इण्डिया कम्पनी की ओर से अङ्गरेज़ों ने भारतवर्ष में वाणिज्य करना आरम्भ किया । उस समय के इङ्गलैंड के अधिपति ने इन वणिकों को इस देश में कुछ स्वत्व दिलाने के अभिप्राय से जहाँगीर के पास अपनी ओर से एक दूत भेजा । इस दूत का नाम सर टामस रो था । सर टामस रो ने अपने दौत्य का जो विवरण लिखा है उससे हमें जहाँगीर की प्रकृतिसम्बन्धी अनेक बातें अवगत होतीं हैं ।

सर टामस रो ने लिखा है—" सिंहद्वार के पास एक झरोखा है, सवेरा होते ही बादशाह नित्य वहाँ आकर बैठता है और साधारण जनों को वहीं से उसके दर्शन होते हैं । उसके नीचे चबूतरे पर प्रसिद्ध प्रसिद्ध लोगों के बैठने का स्थान है । × × × × वह सन्ध्या के समय जलपान कर के, रात के आठ बजे तक गुशल-ख़ाने में संगमरमर के सिंहासन पर बैठता है, वहाँ पर सिवाय गुणी पुरुषों के और कोई नहीं जाने पाता और गुणी पुरुष भी विना आज्ञा लिये वहाँ नहीं जाने पाते । इसी स्थान पर वह सब विषयों पर बात चीत करता है । शरीर में कहीं पीड़ा होने पर अथवा मदिरा पान की आवश्यकता हुए विना यह नियम भङ्ग नहीं होता था । बादशाह के गुशलख़ाने में उपस्थित होने में किसी प्रकार का प्रतिबन्धक उपस्थित होने पर अवश्य ही उसकी सूचना सर्व साधारण को दी जाती थी । क्योंकि समस्त प्रजा उसकी क्रीत दास के समान है । इस लिये वह भी उनके निकट पारस्परिक भाव से एक प्रकार के दासत्व में आबद्ध है । यदि बादशाह ऐसा न करे, और प्रजा के लोग एक दिन भी उसे न देखें, तो विद्रोह खड़े हो जाने का भय है । मङ्गलवार के दिन बादशाह की कचहरी लगती है और वह विचार करता है । दीन से दीन फ़रियादी क्यों न हो, बादशाह सबकी फ़रियादों को सुनता है और विचार करते समय दोनों पक्ष वालों की बातें धैर्य के साथ सुनता है ।"

सर टामस रो जहाँगीर से ज्यों ही मिले और अपनी यात्रा का अभिप्राय कहा; त्यों ही बादशाह ने उनकी प्रार्थना के अनुसार वणिकों को स्वत्व देने का वचन दे दिया था; किन्तु राजमहिषी नूरजहाँ, मंत्री आसफ़ख़ाँ और शाहज़ादा परवेज़ के विरोध करने पर, सर टामस रो को तीन वर्ष तक दरबारदारी करनी पड़ी थी । सर टामस के साथ दरबार में किस प्रकार का बरताव बरता जाता था, इसका एक दिन का विवरण भी हम संक्षेप से यहाँ देना आवश्यक समझते हैं । रो फ़रियाद कर रहे हैं; और आसफ़ख़ाँ द्विभापिया को हटाना चाहता है । किन्तु द्विभापिया रो साहब से दबा हुआ था, इस लिये आसफ़ख़ाँ के इशारे सब व्यर्थ होते थे । जहाँगीर को ज्यों ही यह बात विदित हुई; त्यों ही वह एक साथ क्रोध में भर कर अंग्रेज़ दूत के साथ कौन अन्याय कर रहा है—यह जानने को व्यग्र हुआ । जहाँगीर ने अपने पुत्र का नाम सुन अनुमान किया कि रो साहब उसीको दोषी ठहरा रहे हैं । उस समय आसफ़ख़ाँ काँप रहा था एवं उसकी बुद्धि उस समय ठिकाने न थी । बादशाह ने राजकुमार को बहुत धिक्कारा और स्वयं उसका दोष

स्वीकार किया इस कहा सुनी के बाद बादशाह उठ खड़ा हुआ और रो से अपने पास खड़े होने को कहा।

एक दिन सर टामस सो रहे थे, उसी समय बादशाह ने उन्हें बुला भेजा। टामस रो के पास एक चित्र था, जिसे उसने बादशाह को नहीं दिखाया था। जब यह हाल बादशाह को विदित हुआ; तब उसने हठात् रो को बुला भेजा। यह चित्र रो की परलोकगत प्रणयिनी का था; उस चित्र को ले, वह तुरन्त बादशाह के पास गया। जिस समय रो साहब जहाँगीर के पास पहुँचे; उस समय बादशाह अपने साथी संगियों के साथ एक क़ालीन पर बैठा सुरापान कर रहा था। चित्र देख कर बादशाह ने उसे लेना चाहा। तब रो ने पहिले तो उस बात को टालना चाहा; किन्तु पीछे से उस चित्र को रो ने भेंट कर दिया। तब बादशाह ने उस चित्रवाली सुन्दरी की प्रशंसा करते हुए रो से पूँछा—"क्या यह किसी लोकललामभूता जीवित सुन्दरी का चित्र है?" रो ने उत्तर में कहाः—

रो—जी हाँ, किन्तु इस चित्र में उस महीयसी महिला का सम्पूर्ण सौन्दर्य नहीं आ सका।

बादशाह—तुमने यह चित्र मुझे अकुण्ठित चित्त से दिया है, मैं अब पुराङ्गनाओं के द्वारा इसकी प्रतिकृति प्रस्तुत कराऊँगा। अनन्तर तुम्हारे पास असल और नक़ल दोनों भेजूँगा, उन दोनों में से यदि तुम असल को पहिचान सके तो मैं उसको तुम्हें लौटा दूँगा।

रो—सचमुच मैंने आपको यह चित्र अकुण्ठित चित्त से दिया है और मैं आशा करता हूँ कि श्रीमान् अब उसे न लौटावेंगे।

इङ्गलेंड के अधिपति ने जहाँगीर को सौगात में एक विलायती शकट (गाड़ी) भी भेजा था। उस नयी वस्तु को देख बादशाह बहुत प्रसन्न हुए और प्रत्येक उमराव को आज्ञा दी कि तुम लोग अपने अपने लिये एक एक ऐसी ही गाड़ी बनवाओ। उस गाड़ी को चार घोड़े खींचते थे। उन चारों घोड़ों का साज सोने के काम का था। उस गाड़ी पर जहाँगीर बड़ी भड़कीली पोशाक पहन कर सवार होता था।

जहाँगीर ईसाई, मूर, यहूदी—किसीके भी धर्म में हस्ताक्षेप नहीं करता था। वह दूसरों के अत्याचारों से उन्हें बचाने के लिये सर्वदा यत्नवान् रहता था। सुरापान कर के जब वह प्रमत्त होता तब उसे अनेक शत्रु अपने वश में कर लिया करते थे। और उस दशा में वह दो पहर रात तक रहता था। किन्तु सबेरा होने के पहले ही वह सचेत हो जाता था और उसकी वह उन्मत्त दशा जाती रहती थी। सबेरा होते ही उसका स्वाभाविक ज्ञान लौट आता था और उसका मन फिर उसके वश में हो जाता था।

जहाँगीर ने मुग़ल साम्राज्य का सुप्रबन्ध करने के लिये कुछ नियम बनाये थे। वे ये हैंः—

(१) जकात (चुङ्गी) तमग़ा (मुहराना) मीरबहरी (नदी या समुद्र का कर—Custom duty) कितने ही कष्टदायक कर जो हर एक सूबे और सरकार के जागीरदारों ने अपने लाभ के लिये लगा रखे थे सब दूर किये।

यही आज्ञा बाबर और अकबर ने अपने राजत्व काल में दी थी। बादशाहों के बारबार इस आज्ञा को दुहराने से यह अनुमान करना असङ्गत न होगा कि या तो उस समय के बादशाह आज्ञा देना जानते थे और उनकी उस आज्ञानुसार व्यवहार होता है कि नहीं—इस पर वे ध्यान नहीं देते थे, या पूर्ववर्त्ती बादशाह के यशःप्रभा को फीकी कर के वे आत्मगौरव बढ़ाने का यत्न करते थे। यदि हमारा प्रथम अनुमान सत्य है, तो जब बाबर एवं अकबर जैसे प्रतापी बादशाहों के चलाये नियम न चले—तो दुर्बलचित्त जहाँगीर के चलाये नियम चले हों—इसमें हमें पूर्ण सन्देह है।

(२) जिन रास्तों में चोरी लूट मार होती हो और जो बस्ती से कुछ दूर हों, वहाँ के जागीरदार सराय, मसजिद बनावें, कुएँ खुदावें, जिससे सराय में लोगों के रहने से बस्ती हो जाय। यदि वह जगह बादशाही ख़ालिसे के पास हो तो वहाँ का कर्मचारी वहाँ का काम करावे। व्योपारियों का माल रास्ते में बिना उनकी मरज़ी और आज्ञा के न खोला जावे।

जहाँगीर के राजत्व काल में चोर डाँकुओं का बड़ा उपद्रव था। उस समय के भ्रमण वृत्तान्तों में लिखा है कि डाँकुओं के भय से कोई बिना रक्षकों को साथ लिये बाहर नहीं निकलता था। सर टामस रो ने अपनी यात्रा-पुस्तक में लिखा है कि निरापद भ्रमण करने का प्रबन्ध कराने के लिये उसे जगह जगह पर रुक जाना पड़ता था। बम्बई से सूरत तीस कोस है और यह सड़क चलती भी बहुत है; किन्तु इस सड़क

पर चोर लुटेरों का उपद्रव घना ही रहता है। यही नहीं आगरा और लाहौर वाली प्रसिद्ध सड़क पर भी चोर डाँकू लगा करते थे। जान ब्रोथा और रिचार्ड स्टील नामक यात्रियों ने लिखा है कि रात के समय इस सड़क पर चोरी व डाँके पड़ा करते थे, पर दिन में कोई उपद्रव नहीं होता था। उस समय राजपथ के किनारे सराय न होने से वाणिज्य अथवा भ्रमण हो ही न पाता था। टेरी नामक एक विदेशी यात्री ने लिखा है कि जहाँगीर की अमलदारी में यात्रियों के ठहरने की सरायों की कमी थी। किन्तु बड़े बड़े नगरों में बड़ी बड़ी सुन्दर सरायें थीं। धनशाली हिन्दू अपने धन से राजपथ के अगल बगल सराय बनवा और कुएँ खुदवाकर पुण्य सञ्चय करते थे। अतएव यात्रियों के ठहरने के लिये जो सरायें बनी थीं-उनमें कितनी सरकारी धन से बनायी गयी थीं—इसका पता लगना सहज काम नहीं है।

(३) बादशाही अमलदारी में जो हिन्दू या मुसलमान मरे उसका सब माल असबाब उसके वारिसों को दे दिया जाय। कोई उसमें से कुछ नहीं ले और यदि उसके कोई वारिस न हो, तो उसके माल की सम्हाल के वास्ते पृथक् भण्डारी और कर्मचारी नियत कर दे। ऐसा धन धर्म के कामों में, अर्थात् मसजिदों, सरायों, कुओं और तालाबों के बनाने तथा टूटे हुए पुलों की मरम्मत में लगाया जाय।

उत्तराधिकारियों के अभाव में मृत पुरुष की सम्पत्ति को लेने की यह आज्ञा तैमूरलङ्ग की आज्ञा की पुनरुक्ति मात्र है। अकबर ने इस विषय का इससे अच्छा नियम बनाया था।

Let him look after the effects of deceased persons, and give them up to the relations or heirs or such, but if there be none to claim the property, let him place it in security sending at the same time an account of such to court, so that when the true heir appears he may obtain the same. In fine, let him act conscientiously and virtuously in this matter, lest it should be the same here as in the kingdom of Constantinople."—*Gladwins, Ain Akbari.*

किन्तु जब कोई अमीर मर जाता था; तब उसकी परित्यक्त सम्पत्ति राजकोष में जमा कर लेना-यह मुग़ल बादशाहों का साधारण नियम था। उस मरे हुए के सन्तानों को बादशाह की इच्छानुसार कुछ धन पैतृक धन में से मिलता था। सर टामस रो ने लिखा है—भूमि किसी को पुश्त दरपुश्त के लिये नहीं मिलती थी। बादशाह की इच्छा ही पर सारा दारमदार था। इसी से बड़े राजपुरुष जितना कमाते उतना ही व्यय कर डालते थे। बनिये अपना धन छिपा कर रखते थे। बादशाह विशिष्ट जनों के बाल बच्चों के भरण पोषण का सामान्य प्रबन्ध कर दिया करता था। राजानुग्रह न होने पर उनकी दशा नहीं सुधरती। समुद्र के बन्दरों पर पूरा पूरा अन्धेर था। यद्यपि सर टामस रो का बड़ी धूमधाम से स्वागत किया गया था तथापि बन्दर रक्षकों ने बलपूर्वक उनके सारे बक्स खोल खोल कर देखे और उनमें से अनेक वस्तुएँ उन लोगों ने उड़ा लीं।

(४) शराब और दूसरी मादक चीज़ें न कोई बनावे और न बेचे।

जहाँगीर स्वयं आकण्ठ मदिरा पीता था और भरे दरबार में भी मद्यपान करने में कुण्ठित नहीं होता था। कहते हैं जहाँगीर, ईसाई धर्म का पक्षपाती इस लिये हो गया था कि उस धर्म में मदिरा पीना और चाहे जिस पशु का मांस खाना धर्मविरुद्ध नहीं माना जाता। जहाँगीर कभी कभी मदिरा के अड्डों में भी जाता था और इतर जाति के लोगों के साथ आमोद प्रमोद में मस्त हो जाता था। सर टामस रो ने लिखा है कि भेंट की समस्त मणि मुक्ता से बनी वस्तुओं की अपेक्षा जहाँगीर ने मद्य के बक्स को जिसमें लाल रङ्ग की मदिरा की बोतलें थीं—सब से अधिक मूल्यवान् भेंट मानी थी। जब अनुशासन-कर्त्ता स्वयं ही नियम भङ्ग करने में अग्रगण्य थे, तब प्रजा उसके बनाये नियमों का पालन करती होगी-यह कभी सम्भव नहीं।

(५) किसीके घर को सरकारी न बनावें, अर्थात् राजकर्मचारी प्रजा के घर द्वार को सरकारी काम में इस्तेमाल कर उसे सरकारी न बना डालें।

यह भी नियम जहाँगीर का स्वयं निकाला हुआ न था। इसके पूर्व अकबरशाह ने यही नियम बनाया था।

जिस समय महाबतख़ाँ युद्ध में फँसा था, उसी समय जहाँगीर ने शाहज़ादे परवेज़ के लिये, महाबत

के परिवार को अन्य घर में भेज कर उसके भवन को ख़ाली करवा लिया था । फलतः जहाँगीर ने स्वयं ही अपने बनाये इस नियम को भङ्ग किया था सर टामस रो ने लिखा है कि एक बार जहाँगीर ने अजमेर में समस्त लश्कर (छावनी) में आग लगवा दी और वहाँ अपने रहने को भवन बनवाया। सारी छावनी भस्म हो गयी और इससे बहुत से निरपराध दरिद्र लोग गृहहीन हो गये । एक बार जहाँगीर ने किसी कारणवश राजकीय घोषणा द्वारा मान्दू नगर के अनेक निवासियों को अपने अपने घर परित्याग करने का आदेश दिया था ।

(६) "किसी पुरुष के नाक कान किसी अपराध में न काटे जावें और मैं भी परमेश्वर से प्रार्थना कर चुका हूँ कि इस दण्ड से किसी को दूषित न करूँगा।"

यद्यपि जहाँगीर ने किसी के भी नाक कान नहीं कटवाये, तथापि इस दण्ड से कहीं अधिक कठोर दण्ड दे कर उसने अपनी क्रूरता का परिचय दिया था । सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ इलियट साहब ने उसकी क्रूरता के अनेक दृष्टान्त दिखलाये हैं। स्थानाभाव से हम उन सब को यहाँ उद्धृत नहीं कर सकते । किसी को तो वह सूली पर चढ़वा कर मरवाता था; किसी को साँप से कटवा कर मरवाता था; किसी को जीवित ही ज़मीन में गड़वा देता था । उसने अपराधी को प्राणदण्ड देने के अनेक निष्ठुर उपाय निकाले थे । अधिक अपराधी तो हाथी के पैर तले कुचलवा कर मार डाले जाते थे। जहाँगीर ने स्वरचित जीवनवृत्त में लिखा है कि मैं खान-इ-दौरन के पुत्र के असम्मानसूचक वाक्य न सह सका-इस लिये उसकी जीते जी ही खाल खिंचवा ली और नगरनिवासियों को शिक्षा देने के अर्थ उसके मृतशरीर को नगर भर में घुमवाया। हसनबेग और अबदुलरहीम, जैसी दुर्दशा से मारे गये थे वह हाल हम लिख ही चुके हैं ।

(७) ख़ालिसे के और जागीरदारों के कर्मचारी प्रजा की भूमि अन्याय से न लें और आप उसको बोवें।

(८) ख़ालिसे के और जागीरदारों के कर्मचारी जिस परगने में हों वहाँ के लोगों में विना आज्ञा वैवाहिक सम्बन्ध न करें।

(९) बड़े बड़े नगरों में औषधालय खोल कर रोगियों के लिये वैद्यों को नियत करें और इस काम में जो ख़र्च पड़े वह सरकारी ख़ालिसे से दिया करें।

(१०) रबीउलअव्वल महीने की १८ तारीख़ से जो मेरी जन्मतिथि है, मेरे पिता की प्रथा के अनुसार प्रति वर्ष एक दिन जीवहिंसा न करें । प्रत्येक सप्ताह में भी दो दिन हिंसा न हो । एक तो बृहस्पतिवार को जो मेरे राज्याभिषेक का दिन है और दूसरे रविवार को जो मेरे पिता का जन्मदिवस है। वे इस दिन को शुभ समझ कर बहुत माना करते थे । क्यों कि उनके जन्मदिन होने के अतिरिक्त सूर्य भगवान् का भी यही दिन है और यह जगत् की उत्पत्ति का पहिला दिन है।

जहाँगीर का इसलाम धर्म पर विश्वास न था। रमज़ान मास में मुसलमान उपवास (रोज़ा) करते हैं, किन्तु जहाँगीर इस मास में बे रोक टोक मांस खाता और मदिरा पीता था । धर्मशास्त्रवेत्ता भक्ष्याभक्ष्य पदार्थों के विषय में सदा उपदेश दिया करते थे । उनके उपदेशों को सुनते सुनते एक दिन उसने विरक्त हो कर उनसे पूँछा था कि वह कौन सा धर्म है जिसमें मद्य का पीना और मांस का खाना शास्त्रविरुद्ध नहीं समझा जाता? इस प्रश्न के उत्तर में जब उसे यह मालूम हुआ कि ईसाई धर्म में इन बातों की मनाई नहीं है; तब वह कहने लगा-"तब तो मैं ईसाई धर्म का पक्षपाती हूँ। दर्ज़ी को बुला कर मेरी अचकन कटवा कर मेरे लिये कोट सिलवाओ और पगड़ी के बदले टोपी।" यह सुन मुसलमान जान गये कि इसलाम धर्म के भाग्य में क्या है और सब उपस्थित लोग एक स्वर से कहने लगे-" बादशाह कुरान के अनुशासन से कभी बँधा नहीं है।" जहाँगीर यथेच्छ भाव से मदिरा पीता और विना विचार के मांस खाता था।

(११) "यह स्पष्ट आज्ञा है कि मेरे पिता के सेवकों के मनसब और जागीरें ज्यों की त्यों बनी रहें । यही नहीं बल्कि हर एक का यथायोग्य पद बढ़ाया जाय । और सब मुल्कों के माफ़ीदारों की माफ़ियाँ बिल्कुल उन पट्टों के अनुसार, जिन पर वे हों, स्थिर रहें और मीरान सदरजहाँ (धर्माधिकारी) पालन करने योग्य लोगों को मेरे सामने लाया करे ।"

जहाँगीर ने सिंहासन पर बैठते ही बहुत से सूबेदारों को एक स्थान से दूसरे स्थान को बदल दिया था । अपने कृपापात्रों को जगह देने के लिये अनेक लोग पदच्युत भी किये गये थे । जो पदच्युत किये गये थे-वे राजधानी में पहुँच कर और रिशवत दे कर फिर

बहाल हुए और जो सफल न हुए वे राजविद्रोही हो गये ।

(१२) सब अपराधी जो वर्षों से क़िलों और कारागृहों में क़ैद हैं छोड़ दिये जावें ।"

Jeipal, Raja I प्रथम जैपाल=यह लाहौर का राजा था । सन् ९९९ और १००१ के भीतर सुबुक्तगीन पर, जैपाल ने पेशावर के आगे एक घाटी पर चढ़ाई की, किन्तु उसे रणक्षेत्र छोड़ कर भाग जाना पड़ा । सुबुक्तगीन ने उसका पीछा किया तब जैपाल ने दिल्ली, कन्नौज और अजमेर के राजाओं की सम्मिलित सेना से उनका सामना किया, किन्तु तिस पर भी जीत मुसलमानों ही की हुई ।

Jelal-u-d-din of Kharim जलालुद्दीन ख़रम शाह=ख़ारिज़्म के सुलतान मुहम्मद का पुत्र था । इसने चंगेज़ख़ाँ से घोर युद्ध किया था पर चंगेज़ख़ाँ इसे दबाता ही चला आया । यहाँ तक कि जलालुद्दीन को सिन्ध तक ले आया सिन्ध के तट पर घोर युद्ध हुआ । जलालुद्दीन हारा और भाग कर हिन्दुस्थान में तत्कालीन बादशाह अलतमश की शरण में आया; किन्तु अलतमश ने उसे अपने पास रखने से साफ़ इन्कार किया क्योंकि उसे इसका भय था कि इसे रखने से कहीं चंगेज़ख़ाँ हिन्दुस्थान पर चढ़ाई न करे । यह सन् १२१७ ई० की घटना है ।

Jelal-ud-din Khilji जलालुद्दीन ख़िलजी उर्फ़ फ़ीरोज़शाह=(देखो फ़ीरोज़शाह) ।

Jeswant Singh जसवन्तसिंह=ये मुराद के पक्ष में थे तथा जोधपुर के अधीश्वर हो कर भी शाही सेना के जनरल थे । इन पर शिवाजी से घूस खाने का अभियोग लगाया गया था ।

Jey Singh I जयसिंह=ये जयपुर के अधीश्वर थे और औरङ्गज़ेब की तरफ़ से शिवाजी को दण्ड देने के लिये सन् १६६२ ई० में भेजे गये थे ।

Jey Singh II दूसरे जयसिंह=ये भी जयपुर के अधीश्वर थे और सन् १७०७ ई० में इन्होंने कई अन्य राजपूत राजाओं को मिला कर मुसलमानी शक्ति नष्ट करने की प्रतिज्ञा की थी । ये स्वयं बड़े गणितज्ञ और ज्योतिर्विद् थे ।

Jiji Bai जीजीबाई=ये छत्रपति महाराज शिवाजी जैसे प्रतापी बालक की गर्भधारिणी प्रातःस्मरणीया जननी थीं । इनको देवी का इष्ट था । देवी से प्रार्थना कर के ही इन्होंने शिवाजी जैसा गुण वाला बालक पाया था । यह हिन्दू रमणी उस समय की देश दशा पर भी बहुत विचार किया करती थी ।

Juna Khan Tuglak. जूनाख़ाँ तुग़लक उर्फ़ द्वितीय सुलतान मुहम्मद=यह अपने ढंग का निराला ही पुरुष था । यह बड़ा विद्वान् था । अरबी, फ़ारसी, ग्रीक, दर्शन आदि का पण्डित, गणित, चिकित्सा शास्त्र का ज्ञाता, पक्का मुसलमान सच्चरित्र, वीर और उत्साही था । किन्तु इतना होने पर भी इसके सिर पर कभी कभी सनक सवार होजाती थी—इसीसे लोग उसे सनकी कहा करते थे । उसने सब से प्रथम कार्य यह किया कि जो मुग़ल पञ्जाब पर आक्रमण किया करते थे, उन्हें घूँस दे कर उसने मिला लिया था । फिर उसने दक्खिन पर चढ़ाई की और वहाँ के सरदारों को सर किया । इसके बाद उसने परशिया पर चढ़ाई की किन्तु उसकी बड़ी भारी सेना, कोष में धन की कमी के कारण तितर बितर हो गयी । फिर उसने चीन पर धावा बोला और एक लाख सैनिक साथ ले उसने हिमालय को पार किया । पर इस लम्बी यात्रा के कारण उसके सैनिक थके थे और क़हत पड़ने से निर्बल हो गये थे, अतः चीनियों की मार के सामने उन एक लाख में से कठिनता से एक दो सिपाही बचे हों तो बचे हों—नहीं तो प्रायः सभी मारे गये । वहाँ से लौट कर उसने ताँबे का एक सिक्का नोटों के ढंग का चलाना चाहा, पर उसका कोष रीता था, इससे वह चल न पाया । उसके ऐसे कृत्यों से प्रजा हताश हुई और जंगलों में भाग गयी । तब जो लोग बचे थे उन पर उसने अपने सैनिक छोड़े । सैनिकों के भय से बड़े बड़े प्रायः सभी नगर जनशून्य हो गये ।

इसके बाद बङ्गाल, दक्खिन विद्रोह खड़े हुए । दक्खिन का विद्रोह दमन करने को जूनाख़ाँ स्वयं वहाँ गया । गुजरात के बाग़ियों को सिन्ध देश तक खदेड़ते समय सन् १३५१ ई० में वह

वहीं मर गया । इसने २७ वर्ष राज्य किया । और इङ्गलेंड के राजा प्रथम हैनरी की तरह यह भी अधिक मछलियाँ खा जाने के कारण मरा ।

Jung Bahadur, Sir ज़ंगबहादुर=यह नैपाली थे और सन् १८५७ ई० के सिपाहीविद्रोह में इनकी गोरखा सेना ने अङ्गरेज़ सरकार को बड़ी सहायता दी थी ।

K

Kam Baksh कामबख्श=औरङ्गज़ेब का पाँचवाँ और सब से छोटा बेटा था । जिस समय औरङ्गज़ेब ने दक्खिन पर सन् १६८३ ई० में चढ़ाई की थी उस समय शहज़ादा कामबख्श भी सेना ले कर गया था । फिर जब औरङ्गज़ेब मरने को हुआ; तब उसने अपनी सारी सल्तनत को अपने बेटों में बाँटा था । उस समय गोलकुण्डा और बीजापुर की रियासतें कामबख्श के बाँट में आयी थीं । कामबख्श ने जब अपने बड़े भाई मुअज़्ज़म की हुकूमत न मानी तब हैदराबाद के पास दोनों भाइयों में युद्ध हुआ और कामबख्श मारा गया । इसकी मृत्यु सन् १७०८ ई० के फ़रवरी मास में हुई थी ।

Kamran कामरान=यह बाबर का दूसरा पुत्र था । इसका बड़ा भाई हुमायूँ था और उसने इसे काबुल, क़न्धार और पञ्जाब का प्रान्त शासन के लिये दिया था ।

Kamr-ud-din कमरउद्दीन=१२ वें मुग़ल सम्राट् मुहम्मदशाह का यह वज़ीर था और सन् १७४८ ई० में सर हिन्द की लड़ाई में यह उस समय गोली के लगने से मरा, जिस समय वह अपने ख़ीमे में नमाज़ पढ़ रहा था । यह मुहम्मदशाह का बड़ा सच्चा और हितैषी सेवक था । इसके मरते ही मुहम्मदशाह भी बहुत दिनों न जी पाया ।

Keane, Sir John सर जान कीन=सन् १८३९ ई० के अफ़ग़ान युद्ध में यह आरमी आफ़ दी इण्डस Army of the endus के कमाण्डर थे ।

Keating, Colonel कर्नल कीटिङ्ग=सन् १७७५ ई० में बाम्बे गवर्नमेंट की ओर से १५०० सैनिकों के अधिपति बना कर यह रघोबा को पूना पहुँचाने को भेजे गये थे ।

Kei Khusru कै ख़ुसरो=ग़ुलाम ख़ान्दान के शाहज़ादे मुहम्मद का पुत्र और उत्तराधिकारी सन् १२६६ ई० में विद्यमान था । इसका एक मार कर कैकोबाद तख़्त पर बिठाया गया था और कै ख़ुसरो अपने पिता की सल्तनत मुल्तान का मालिक हुआ था ।

Kei Kobad कैकोबाद=यह भी ग़ुलाम ख़ान्दान के बलबन का पौत्र और बघराख़ाँ का पुत्र था। इसने सन् १२८६ से १२८८ तक राज्य किया और जिस समय यह तख़्त पर बैठा उस समय इसकी अठारह वर्ष की उम्र थी । यह बिल्कुल अपने वज़ीर निज़ामुद्दीन के हाथ का खिलौना था । वज़ीर ने इसे दुर्व्यसनों में लिप्त कर दिया था । जब इसके बाप ने अपने बेटे के चाल चलन के बारे में बुरी बुरी बातें सुनीं तब वह बङ्गाल से दिल्ली अपने बेटे से मिलने आया । यह समाचार सुन दुष्ट वज़ीर ने उसे ऐसा भरा कि वह अपने बाप का सामना करने को उद्यत हुआ । पर जब पिता ने अपने पुत्र से मिलने का अनुरोध किया; तब उस दुष्ट ने ऐसे रसूम अदा करवाने चाहे, जिनको सुन बघराख़ाँ की आँखों से आँसू निकल पड़े। यह देख कैकोबाद से न रहा गया और वह तख़्त से कूद पड़ा और दौड़ कर अपने पिता को लिपट गया । पिता पुत्र में राज़ीनामा हो जाने पर भी दुष्ट निज़ामुद्दीन ने उस युवक को ऐसी पट्टी पढ़ाई कि उसका असर दूर होना असम्भव था। तब हार कर बघराख़ाँ अपने सूबे बङ्गाल को लौट गया । कैकोबाद की ऐयाशी हद दर्जे को पहुँच चुकी थी और इसका फल यह हुआ कि उसे लकवे ने मारा । अब कैकोबाद की आँखें खुलीं और उसने वज़ीर को ज़हर दिलवा दिया, पर कैकोबाद स्वयं ख़िलजी ख़ान्दान के मुखिया जलालुद्दीन द्वारा सन् १२८८ ई० में मारा गया और ग़ुलाम ख़ान्दान की हुकूमत समाप्त हुई ।

Kharim Khan. करीमख़ाँ=यह एक पिण्डारी सरदार था और रुहेला जाति का मुसलमान

था। इसे सिन्धिया ने ग्वालियर में क़ैद कर रखा था और सन् १८१० ई० तक यह वहीं रहा। जब मरेहटे शान्त हुए; तब इन लोगों ने बदमाशों को एकत्र कर एक गिरोह बाँधा। सन् १८१२ ई० में इनकी संख्या लगभग साठ हज़ार तक पहुँच गयी थी। बरसात समाप्त होते ही ये लोग छापे डाला करते थे। लूटना, फूँकना और स्त्रियों की इज़्ज़त आबरू मिट्टी में मिलाना इनका काम था। इनकी चढ़ाई सुन स्त्रियाँ कुओं में कूद कूद कर और अपने प्राण गँवा कर इनके अत्याचारों से बचती थीं। ये लोग जिस गाँव पर छापा डालते उसे चारों ओर से घेर लेते और कुछ लोग गाँव में घुस कर लूट पाट मचाते। जब कुछ हाथ न लगता तब उस गाँव को फूँक देते और किसी भी गाँव वाले को भागने न देते। बेचारे सब गाँव वाले जल कर भस्म हो जाते थे। उनके इन अत्याचारों की कथा सुन कर मारक्विस आफ़ हेस्टिंग्ज़ ने इन नरपिशाचों को समूल नष्ट करने की प्रतिज्ञा की। और स्वयं पिण्डारी दमन दल में शरीक हुए। चारों ओर से पिंडारी जब घिर गये; तब उनके सरदार करीमख़ाँ ने आत्मसमर्पण किया।

Khaja Jehan. ख़्वाजा जहाँ=यह मुहम्मद तुग़लक़ का वज़ीर था। इसीने जौनपुर राज्य को स्वतंत्र किया था। जो सन् १३९४ ई० से १४७६ तक स्वतंत्र रहा था।

Khaji Jehan Gawan. काजी जहानगवन=यह द्वितीय मुहम्मद का वज़ीर था और यह बड़ा योग्य था। सन् १४२६ ई० में यह था।

Khafi Khan. काफ़ीख़ाँ=यह एक प्रसिद्ध इतिहास-लेखक है यह सप्तम मुग़ल सम्राट् प्रथम शाह-आलम के दरबार में था। सम्राट् ने इतिहास लिखने की सख़्त मनाई कर दी थी, पर इसने उस समय का इतिहास छिप कर लिखा और उसे छिपा कर रखा। इसीसे इसका असली नाम मीर मुहम्मद हुसेन होने पर भी काफ़ी (छिपा हुआ) ख़ाँ नाम पड़ा।

Khan Jehan ख़ाँजहाँ=यह औरङ्गज़ेब का एक जन-रल था। यह मरेहटों को सर करने के लिये भेजा गया था, पर इसके किये कुछ भी न हो सका।

Khan Jehan Lodi. ख़ाँजहाँ लोदी=पाँचवें मुग़ल सम्राट् शाहजहाँ के शासनकाल में इसने दक्खिन में बड़े बड़े उपद्रव किये थे। यह वहाँ का वाइसराय था। प्रथम इसने चाहा कि मैं दक्खिन का स्वतंत्र अधिपति बन जाऊँ, पर पीछे से इसने सम्राट् की अधीनता स्वीकार की और यह दक्खिन से हटा कर मालवा भेज दिया गया।

Khizr Khan. ख़िज़्रख़ाँ=यह अलाउद्दीन ख़िलजी का बेटा था।

Khizr Khan, Seiad. सय्यद ख़िज़्रख़ाँ=भारत-वर्ष में जिन मुसलमानी ख़ान्दानों की हुकूमत रही उनमें छठवाँ ख़ान्दान चार सय्यदों का था। इसमें सब से बड़े भाई का नाम सय्यद ख़िज़्रख़ाँ था, जिसने सन् १४१४ ई० से ले कर सन् १४२१ ई० तक हुकूमत की। यह बड़ा न्यायी और उदार था और जब यह मरा तब तीन दिन तक दिल्ली के सभी रहने वालों ने शोक मनाया।

Khusru. ख़ुसरो=यह जहाँगीर का सब से बड़ा बेटा था। यह एक राजपूतनी के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। यह अपने पिता से इस लिये शत्रुता रखता था कि उसकी माता को जहाँगीर के कुव्यव-हार के कारण प्राण गँवाने पड़े थे। जब उसका पिता तख़्त पर बैठा; तब ख़ुसरो ने अपने को सुरक्षित न समझ पंजाब की राह पकड़ी और वहाँ एक बड़ी सेना एकत्र की। पिता पुत्र में युद्ध हुआ। पिता की जीत हुई। ख़ुसरो काबुल की ओर भागा, पर भागते समय झेलम नदी के तट पर वह पकड़ लिया गया। लाहौर में ख़ुसरो के ७०० साथी क़त्ल किये गये और उनके कटे सिर नेज़ों पर क़तार में खड़े किये गये। पीछे ख़ुसरो उस राह से निकाला गया। अपने साथियों की यह दुर्दशा देख उसे बड़ा दुःख हुआ। ख़ुसरो मरते दम तक क़ैद रखा गया। सन् १६२१ ई० में उसकी मृत्यु हुई।

Khusru. ख़ुसरो=यह बैराम का बेटा था और इसने सन् ११८६ ई० तक लाहौर में राज्य किया था।

Khusru Malik. ख़ुसरो मलिक=यह ख़ुसरो का पुत्र और बैरामख़ाँ का पौत्र था और इसने भी लाहौर में राज्य किया था। इसे शाहबुद्दीन मुह-म्मद ग़ोरी ने मारा था। यह सन् ११८६ ई० में

मारा गया था।

Khusru Khan. खुसरो ख़ाँ=यह मुबारक ख़िलजी का वज़ीर था। असल में यह परिवार से मुसलमान गुलाम बना था और गुजरात में रहा करता था। इसके हाथ में रियासत का सारा कारोबार था और इसने मालावार प्रान्त पर चढ़ाई कर बहुत सा धन दिल्ली भेजा था। पीछे से इसने अपने अन्नदाता को सपरिवार नष्ट कर डाला और वह स्वयं दिल्ली के तख़्त पर बैठा। इसे भी इसके कुकृत्य का तुरन्त फल मिला और गियासुद्दीन तुग़लक ने इसे भी मार डाला। यह सन् १३२१ ई० में मारा गया था।

Krisna Rao. कृष्णराव=ये हैदर के समय में मैसूर राज्य के मंत्री थे। हैदर की मृत्यु का संवाद इन्होंने तब तक छिपा रखा था। जब तक टीपू नहीं आ गया।

Kumar Pal. कुमारपाल=महमूद गज़नवी ने जब सोमनाथ पट्टन का प्रसिद्ध शिवमन्दिर ध्वस्त कर दिया, तब उसके १०० वर्ष बाद कुमारपाल ने सन् ११६६ ई० में उसे फिर बनवाया।

Koer Singh. कुवरसिंह=सन् १८५७ ई० के सिपाही विद्रोह में आरा में कुवरसिंह ने बड़ा उपद्रव मचाया था। पीछे अङ्गरेज़ी सेना से हार कर वह जङ्गल में भाग गया था।

Kulusha. कुलश=यह शम्भाजी का मंत्री था और जाति का ब्राह्मण। यह था तो चतुर, पर एक बड़ी रियासत का उचित रीति से शासन करने की योग्यता इसमें न थी। सङ्गमेश्वर में शम्भा जी जब शराब के नशे में चूर पकड़े गये, तब कुलश भी उनके साथ था। मुसलमानों ने बड़ी निष्ठुरता से सन् १६८६ ई० में शम्भाजी के साथ उनके मंत्री कुलश को भी मार डाला था।

Kutubuddin Aibak. कुतुबुद्दीन ख़िलजी या एबक=यह जब बालक था; तब गुलामी के लिये ख़रीदा गया था। इसके मालिक ने इसे फ़ारसी और अरबी पढ़ायी। मालिक के मरने पर (जो खुरासान के अन्तर्गत निशापुर का एक सज्जन था) कुतुबुद्दीन एक सौदागर के हाथ में गया। सौदागर ने ले जा कर उसे शाहबुद्दीन को सौंपा शाहबुद्दीन ने उस पर ऐसी कृपा की कि वह काल पा कर भारत सम्राट् हुआ। यह सन् १२०६ ई० की घटना है। भारत का प्रथम मुसलमान सम्राट् यही है।

Kutub-ud-din Sur कुतुबुद्दीन सूर=यह बैराम ख़ाँ का दामाद था। ससुर दामाद में तकरार हुई और ससुर ने दामाद को मार डाला। यह ११५२ ई० की घटना है।

Kutub Shah. कुतुबशाह=यह गोलकुण्डा के शाह थे। सन् १६७६ ई० में शिवाजी के साथ इनकी सुलह हुई थी।

L.

Lake (Lord) लार्ड लेक=इनका जन्म सन् १७४४ ई० में हुआ था। ये यार्क टाउन, फ्रांस आदि की लड़ाई और चढ़ाव में शरीक थे। सन् १८०० ई० में ये भारतवर्ष के गवर्नर जनरल हो कर यहाँ आये। यहाँ इन्होंने अनेक युद्धों में बड़ी वीरता दिखलायी थी। भरतपुर पर सन् १८०४ ई० को इन्होंने विजय प्राप्त की थी। सन् १८०७ ई० में ये इङ्गलैंड लौट गये। और वहाँ पहुँच कर दो वर्ष बाद अर्थात् सन् १८०६ ई० में ये परलोक सिधारे।

Lake, Lieutenant लेफ्टिनेंट लेक=अङ्गरेज़ी सेना के एक छोटे कप्तान। इन्होंने सन् १८४८ ई० में मूलराज को क़िले में घेरा था।

Lally, Cowet. काउट लाली=यह एक प्रसिद्ध फ़रासीसी है जिसने फ्रांस के लिये भारतवर्ष में बड़ा परिश्रम किया। योरप में फ्रांस और इङ्गलैंड की मुठभेड़ होती थी और यहाँ लाली, आइरकूट, क्लाइव आदि से युद्ध होता था। ये झगड़े सन् १७५७ से १७६१ तक हुए थे।

Lambert Commodore लेम्बर्ट कमोडर=सन् १८५२ ई० के द्वितीय बरमीज़ युद्ध में इन्होंने जलमार्ग से चढ़ाई की थी।

Lawrence, Major मेजर लारेंस=ये क्लाइव के मित्र थे। इन दोनों ने मिल कर यहाँ कितने ही युद्धों में विजय प्राप्त की थी।

Lawrence, John Sir जान लारेंस=ये भारतवर्ष के सोलहवें गवर्नर जनरल सन् १८६४ ई० से

१८६९ तक यहाँ रहे थे । इनके शासन काल में भुतान-युद्ध और उड़ीसा में घोर दुर्भिक्ष पड़ा था ।

Lawrence, Henry Sir लारेंस=ये एक अङ्गरेज़ी अफ़सर थे जो सन् १८४२ ई० की अफ़ग़ानस्तान की लड़ाई में सम्मिलित थे । पहले ये लाहौर के रज़ीडेंट नियुक्त किये गये थे, पर पीछे से ये Board of the Government of Punjab के Resident हुए । सन् १८५७ ई० के सिपाही विद्रोह में इन्होंने बड़ी बहादुरी के साथ विद्रोहियों से लखनऊ को बचाया था । पर एक गोले के फटने से ये मारे गये ।

Lawrence, George General जार्ज लारेंस=सन् १८४८ ई० में पंजाब में जो उपद्रव हुआ था, उसमें ये अङ्गरेज़ों की ओर से पेशावर में पकड़ कर क़ैदी बनाये गये थे ।

Leslie, Colonel कर्नेल लेसली=वारिन हेस्टिंग्ज़ ने इन्हें मरेहटों के साथ युद्ध करने के लिये बारगाँव की ओर सन् १७७८ ई० में भेजा था, पर इन्होंने मार्ग ही में विलम्ब किया । अतः यह वापिस बुला लिये गये । ये सन् १७७८ ई० के अक्टूबर मास में मरे थे ।

Little, Captain कप्तान लिटिल=ये मैसूर के सन् १७६० ई० के युद्ध में थे और सिनोगा पर इन्हीं ने अङ्गरेज़ी अधिकार जमाया था ।

Lodi. लोदी=यह एक अफ़ग़ानी ख़ान्दान का था और बहलोलख़ाँ इस ख़ान्दान की नींव रखने वाला था । इस ख़ान्दान की हुकूमत सन् १४५१-१५२६ ई० तक रही । इस ख़ान्दान के तीन बादशाह हुए अर्थात्—

१. बहलोल लोदी सन् १४५०-१४८१ ।
२. सिकन्दर लोदी सन् १४८१-१५१७ ।
३. इब्राहीम लोदी सन् १५१७-१५२६ ।

M.

Macauly, T. B. (Lord). लार्ड मैकाले=ये सुपरीम कौंसिल के सर्व प्रथम आईन-सदस्य थे । ये कलकत्ते में सन् १८३५ ई० से १८४० ई० तक रहे । इन्होंने हिन्दुस्थानियों की अङ्गरेज़ी शिक्षा का प्रबन्ध किया था । इन्होंने अङ्गरेज़ी शिक्षा हिन्दुस्थानियों को इस ढङ्ग की दिलाने की व्यवस्था की थी कि अङ्गरेज़ी पढ़े लिखे हिन्दू-हिन्दुत्व को छोड़ ईसाई हो जायँ और हिन्दुस्थानियों में विलायती वस्तुओं का अनुराग बढ़े । यह विद्वान् भी थे और इनके लिखे Criticul and Historical Essays बड़े रोचक और गवेषणापूर्ण हैं ।

Mackeson, Colonel. कर्नेल मैकेसन=१८५३ ई० में ये पेशावर के कमिश्नर थे और इसी वर्ष में एक अफ़ग़ान आततायी ने इनके कलेजे में छुरी भोंक कर इन्हें मार डाला था ।

Macleod, Colonel. कर्नेल मैकलियड=ये सन् १७८३ ई० में मैसूर के युद्ध में शरीक हुए थे ।

M'Dowell, Colonel. कर्नेल मैकडोवल=सन् १८१८ ई० में मरेहटों के प्रदेश को जीतने के लिये जो अङ्गरेज़ी सेना भेजी गयी थी उसमें ये भी थे और इन्होंने पूना से अहमदनगर तक के दुर्गों पर अङ्गरेज़ी अधिकार जमाया था ।

Macnaghton, Sir W. H. मैकनाटन=ये सन् १८३९ ई० में शाहशुजा के दरबार में अफ़ग़ानस्तान में अङ्गरेज़ों की ओर से एलची नियत किये गये थे । ये पूर्वी भाषाओं के अच्छे ज्ञाता थे और इसके पूर्व सुपरीम गवर्नमेंट के सेक्रेटरी थे । पीछे से ये मदरास के गवर्नर हुए । इन्हींके हाथ सन् १८४० ई० की १ ली नवम्बर को घोरबन्दघाटी के समीप दोस्तमुहम्मद ने आत्मसमर्पण किया था । दूसरी बार जब फिर काबुल में विद्रोह हुआ, तब अकबरख़ाँ ने सन् १८४१ ई० में इन्हें गोली से मार डाला था ।

Macpherson. मैकफरसन=फ़रवरी सन् १७८५ ई० से सितम्बर सन् १७८६ ई० तक ये भारतवर्ष के अस्थायी गवर्नर जनरल रहे थे ।

Madhava Rao. माधवराव=ये चौथे पेशवा थे । सन् १७६१ ई० में सत्रह वर्ष की उम्र में ये अधिकारी हुए और सन् १७७२ ई० में केवल २८ वर्ष की उम्र में मर गये । यद्यपि ये थे बहुत ही कम उम्र के पर इन्होंने हैदरअली जैसे विक्रमशाली वीर को सन् १७६५ ई० में उचित दण्ड दिया । दण्डस्वरूप उससे ३२ लाख रुपये लिये और उसने उस समय जितने नये स्थान

अपने अधिकार में किये थे, वे सब उससे छीन लिये।

Madhava Rao Narayana. माधवराव नारायण=ये पाँचवें पेशवा थे।

Maha Singh. महासिंह=पंजाब के सिक्खों की सुकरचकिया मिसिल के और रणजीतसिंह के पिता थे। इनको झींद के राजा की एक कन्या ब्याही थी।

Maha Bandula. महाबंडूला=यह एक बर्मी सरदार था जो प्रथम बर्मीज़-वार में सन् १८२४ ई० में मारा गया था।

Mahmud Tughlak. महमूद तुग़लक=इसने सन् १३९४–१४१२ ई० तक राज्य किया था। इसी के राजत्वकाल में तिमरलङ्ग ने भारत पर आक्रमण किया और अपने को भारत सम्राट् कह कर घोषणा की।

Mahmud Ghazni. महमूद गज़नवी=यह सुबक्तगीन का पुत्र था। सन् ९९९ ई० में यह गज़नी की गद्दी पर बैठा और सन् १०३० ई० तक इसने राज्य किया। कहा जाता है, इसने प्रतिज्ञा की थी कि प्रति वर्ष मैं काफ़िरों पर हमला करूँगा और तदनुसार उसने सन् १००९ में पंजाब पर हमला किया। उस समय लाहौर में आनन्दपाल राज्य करता था, उसने अन्य हिन्दू राजाओं की सेना मँगा कर उसका सामना किया। पहले तो जान पड़ा कि हिन्दुओं की जीत होती है, किन्तु आनन्दपाल का हाथी बिगड़ा और वह रणक्षेत्र से भाग गया। हिन्दू सैनिकों ने अपने राजा को रणक्षेत्र में न देख, समझा कि हमारी हार हुई और यह समझ वे भाग गये। उनके भागते ही महमूद के हाथ काँगड़ा और नगरकोट के दुर्ग लगे, जिनमें उसे बहुत सा धन मिला।

फिर क्रमशः उसने थानेश्वर, क़न्नौज, मथुरा, कालिंजर पर आक्रमण किया और मनमानी लूटपाट मचा, सब देव-प्रतिमाओं को उसने चूर चूर कर डाला। प्रत्येक धावे में वह बहुत धन और बहुत से क़ैदी गुलाम बना गज़नी ले गया।

उसने भारतवर्ष पर सत्रह बार चढ़ाई की थी। उसकी अन्तिम चढ़ाई सोमनाथ पट्टम पर थी। सन् १०२५ ई० में महमूद ने ३० हज़ार घुड़सवार सेना ले कर आक्रमण किया। हिन्दू नरेशों ने उसका सामना किया, पर कुछ फल न हुआ। उसने मन्दिर में घुस कर सोमनाथ के लिङ्ग के टुकड़े टुकड़े कर डाले। फिर उसने नगर को लूटने और नगरनिवासियों के आम क़त्ल की आज्ञा दी। वह मन्दिर का सुन्दर द्वार और मूर्त्ति के टुकड़े गज़नी ले गया। मूर्त्ति के टुकड़ों को उसने गज़नी की मसजिद की सीढ़ी में जड़वाया।

महमूद केवल एक साहसी लुटेरा ही न था किन्तु वह एक बड़ा कड़ा शासक और फ़ारसी साहित्य का संरक्षक था। उसकी राजधानी उस समय मुसलमान संसार में सब से अधिक प्रसिद्ध थी। उसमें सुन्दर सुन्दर मसजिदें, महल और बाग़ बग़ीचे थे। महमूद के दरबार में कितने ही आलिम फ़ाज़िल रहा करते थे। इनमें ज्योतिषी बैरूनी, और प्रसिद्ध इतिहास ग्रन्थ शाहनामा का लेखक फरदोसी विशेष उल्लेख योग्य हैं। सोमनाथ का देवालय भग्न कर फिर वह हिन्दुस्थान में न आ सका। क्योंकि उसे ईरान और तूरान के झगड़ों में फँस जाना पड़ा। सन् १०३० ई० में वह बीमार पड़ा और मर गया।

कहा जाता है मरने के पहले उसने अपने ख़ज़ाने से सोने चाँदी का सारा द्रव्य मँगवा कर अपने सामने रखवाया और उसको कुछ देर तक देख कर रोने लगा। चाहे तो वह इस लिये रोया हो कि मैंने इसे बड़ी निष्ठुरता से एकत्र किया है या उसे उस सबको यहीं छोड़ जाने के कारण रोना पड़ा हो। पर उस दौलत को देख मरते समय उसे दुःख अवश्य हुआ था।

Malik Ambar मलिक अम्बर=यह एक एबिसीनियन था और अहमदनगर की राज्य का असली हर्त्ता कर्त्ता यही था। सन् १६३७ ई० में शाहजहाँ ने इसको ध्वस्त किया था।

Malik Ahmed मलिक अहमद=निज़ाम शाही राजवंश का यह प्रतिष्ठा-कारक था और निज़ामुलमुल्क बिहारी का यह पुत्र था।

Malcolm, Sir John मैलकम सर जान=ये सिन्धिया के दरबार में अङ्गरेज़ों की ओर से प्रथम रेज़ीडेंट सन् १८०३ ई० में नियत किये गये थे। सन् १७६८ ई० के उस युद्ध में जिस में अङ्गरेज़ और टीपू से मुठभेड़ हुई थी—ये भी शामिल थे।

Maloji मालोजी=ये महाराज छत्रपति शिवाजी के पितामह और शाहजी के पिता थे। ये मुरतज़ा निज़ाम शाह की घुड़सवार सेना के प्रधान नायक थे। किंवदन्ती है कि भवानी ने इन्हें वरदान दिया था कि इनके वंश में से एक पुरुष नरपति होगा।

Manaji Angria मानाजी आँगरिया=यह एक समुद्री लुटेरे का नाम है जो सन् १७५६ के लग भग पश्चिमी घाट के आस पास बड़ा उपद्रव मचाया करता था।

Manaji Rao मानाजी राव=गायकवाड़ फतहसिंह का यह भाई था और सन् १७९३ ई० में मरा था।

Mangal Pande मङ्गल पांडे=यह चौंतीसवीं पलटन का एक सिपाही था। सन् १८५७ ई० के सिपाही विद्रोह में भाँग के नशे में चूर हो कर इसने अपने साथियों को बहुत भड़काया था। इसने पहले सारजंट मेजर पर गोली चलायी—पर लगी नहीं। इसके बाद उसने एड्जुटेंट पर गोली चलायी। फिर अन्त में उसने जनरल हियरसे को मारना चाहा। पर अपने आप इस विचार को बदल, अपने गोली मारी और घायल हुआ। इस घटना के दस दिन बाद यह घायल फाँसी पर लटका दिया गया।

Man Singh मानसिंह=यह एक पुरबिया सैनिक था और सन् १८५७ ई० के सिपाही विद्रोह में था और इसने नागपुर सतारा के राज्यच्युत वंशधरों को उभाड़ा था।

Man Vikram मान विक्रम=कालीकट में जो राजवंश, सन् १४९७ ई० में (जब वेस्को डिगामा यहाँ आया था) राज्य करता था और जिस का नाम ज़ेमोरिन था उसी वंश के पूर्व पुरुषों में से मानविक्रम एक थे।

Martin, F. मारटिन एफ़=भारतीय फरासीसी—इतिहास में यह एक प्रतिष्ठित व्यक्ति हो गया है और इसीने पांडीचरी नगर की नींव डाली थी। यह सन् १७०६ ई० में मरा।

Masud I. मासूद प्रथम=महमूद गज़नवी के मासूद और मुहम्मद नामक दो यमज पुत्र थे, पिता की मृत्यु के बाद राज्य पाने के लिये इन दोनों में परस्पर युद्ध हुआ था। मासूद ने पहले तो मुहम्मद को तख़्त पर बिठाया, पर शीघ्र ही उसे तख़्त से केवल उतार ही नहीं दिया—किन्तु उसे अन्धा भी कर डाला। जब सेलजूक ने गज़नी पर सन् १०३९ ई० में चढ़ाई की, तब मासूद हिन्दुस्थान में भाग आया था।

Mosud II. द्वितीय मासूद=इसका पूरा नाम अलाउद्दीन मासूद था और गुलाम ख़ान्दान के रुक्मुद्दीन का बेटा था। सन् १२४१ ई० से सन् १२४४ ई० तक, चार वर्षों लों इसने राज्य किया और अन्त में तख़्त से उतार दिया गया। यह बड़ा निष्ठुर और लम्पट था।

Mathews, General मैथ्यूज़ जनरल=सन् १७८३ ई० में टीपू के साथ जो युद्ध हुआ था, उसमें ये शरीक थे। पहले तो इनकी बड़ी जीत हुई, पर पीछे से ये पकड़े गये थे।

Maudud मौदूद=यह महमूद गज़नवी का पौत्र और मासूद का पुत्र था। अपने पिता का बदला इसने अपने चचा मुहम्मद से लिया था और यह स्वयं तख़्त पर बैठा था।

Medni Rai मेदनीराय=सन् १५२६ ई० में ये चन्देरी और उसके आस पास के नगरों के अधिपति थे।

Megasthenese. मेगास्थिनीज़=पाली बोथरा के दरबार में ये ग्रीसाधिपति की ओर से एलची बन कर यहाँ आये थे। इन्होंने अपने समय के भारतवर्ष का बहुत सा वृत्तान्त लिखा है, किन्तु चन्द्रगुप्त के दरबार आदि का जो वर्णन है, उसको बहुत से लोग ठीक नहीं समझते।

Mir Jaffar. मीर जाफ़र=बङ्गाल के नवाब अलीवर्दीख़ाँ का यह दामाद था और सिराजुद्दौला का प्रधान सेनानायक था। सिराजुद्दौला के अत्याचारों से तङ्ग आ कर, जब उसकी प्रजा और उसके कर्मचारियों ने उसको पदच्युत करने के लिये जो षड्यंत्र रचा, उसमें मीर

जाफ़र भी था। इसी षड्यंत्र के अनुसार, मीर जाफ़र ने अङ्गरेज़ों से नवाबी पाने का वचन पा कर, प्लासी के प्रसिद्ध युद्ध में अपने प्रभु के साथ विश्वासघात किया था। पीछे यह नवाब भी बनाया गया, पर रहा यह अङ्गरेज़ों के हाथ का कठपुतला। यह दो बार नवाब बनाया गया था।

Mir Kasim. मीर क़ासिम=यह बङ्गाल के नवाब मीर जाफ़र का दामाद था और अपने ससुर की ओर से इसे एक बार कलकत्ते जाना पड़ा। वहाँ कम्पनी के सूत्रधारों से इसने अपनी झड़ बैठा ली और उनके द्वारा यह अपने ससुर को नवाबी के मसनद से उतरवा कर, स्वयं उस पर बैठा। कुछ दिनों तक तो अङ्गरेज़ों और मीर क़ासिम में खूब पटी, पर जब मीर क़ासिम ने देखा कि कम्पनी के नौकर बङ्गाल की प्रजा को नष्ट कर अपना पेट भरना चाहते हैं; तब वह उनके विरुद्ध हो गया। फल यह हुआ कि दोनों में युद्ध हुआ। मीर क़ासिम भाग कर पटने में आया और वहाँ जो अङ्गरेज़ क़ैद थे उनको मरवा डाला। अन्त में जब अङ्गरेज़ों ने उस पर चढ़ाई की, तब वह भाग कर लखनऊ के नवाब की शरण में गया। लखनऊ के नवाब ने उसकी सहायता की और उसकी ओर से वे अङ्गरेज़ों से लड़ने के लिये बङ्गाल की ओर रवाने हुए। बक्सर के पास दोनों दलों में मुठभेड़ हुई। नवाब हारे और मीर क़ासिम भी भागे। पीछे अवध के नवाब और मीर क़ासिम में परस्पर कुछ झगड़ा हुआ और मीर क़ासिम तब से न जाने कहाँ भाग गये।

Mir Munnu. मीर मन्नू=तेरहवें मुग़ल सम्राट् अहमदशाह का एक प्रसिद्ध दरबारी, जो लाहौर का वाइसराय था और इसीने अहमदशाह अब्दाली को भड़का कर दिल्ली पर चढ़ाई करवायी थी।

Mir Jumla. मीर जुमला=यह फ़र्रुख़सियर का मुँहलगा वज़ीर था और कुछ समय तक विहार का गवर्नर भी रह चुका था। यह मुलतान का रहने वाला था और अन्त में वहीं भेज दिया गया था। इसने सैयद भाइयों का विरोध किया; पर फल कुछ भी न निकला।

Mir Shahab-ud-din. मीर शाहबुद्दीन=(देखो ग़ाज़िउद्दीन ४था)।

Mirza Askari. मिर्ज़ा असकरी=यह बाबर का चौथा पुत्र था और मेवात का शासक हुमायूँ द्वारा बनाया गया था।

Moazzim Sultan. सुलतान मुअज़्ज़म=यह औरङ्गज़ेब का द्वितीय पुत्र था और सन्देह उत्पन्न होने पर औरङ्गज़ेब ने छः वर्ष तक (सन् १६८७-१६९४) इसे क़ैद में रखा फिर काबुल का शासक बना कर वहाँ भेज दिया।

Monson, Colonel. कर्नल मानसून=ये तीसरी मरेहटों की लड़ाई में थे और मुकन्दरा घाटी से भाग कर दिल्ली पहुँचे थे। इस भगोड़ में उनको अपनी कई तोपें और बहुत सा सामान गँवाना पड़ा था। ये हेस्टिंग्ज़ की कौंसिल के मेम्बर भी थे।

Morari Rao. मुरारीराव=सन् १७४० ई० में मरेहटों ने करनाटक के नवाब चन्दा साहब पर चढ़ाई की और उन्हें जब वे बन्दी बना कर ले गये; तब मुरारीराव करनाटक के शासक बना कर वहाँ छोड़ दिये गये थे। सन् १७७६ में हैदर ने इनको क़ैद किया और यह क़ैद ही में मरे।

Moraha Farnavis मुराबा फ़रनवीस=यह नाना फ़रनवीस का चाचा था और इसने षड्यंत्र रच कर रघोबा को गद्दी पर बिठाना चाहा था।

Morad मुराद=यह अकबर का पुत्र था। इसकी मृत्यु बहुत ही थोड़ी उम्र में सन् १५९९ ई० में हो गयी थी। (देखो अकबर)

Morad मुराद=यह शाहजहाँ का सबसे छोटा पुत्र था। यह वीर था, उदार था किन्तु इसकी बुद्धि मोटी और भद्दी थी, तथा दुराग्रही एवं पहले दर्जे का लम्पट था। इसे औरङ्गज़ेब ने मार डाला था। (देखो औरङ्गज़ेब)

Mubarik Khilji मुबारक ख़िलजी=यह अफ़ग़ानी ख़िलजी ख़ान्दान का तीसरा बादशाह था। इसने सन् १३१७ से १३२१ ई० तक हुकूमत की थी। काफ़ूर ने इसे मार डालने के लिये वधिक भेजे थे, किन्तु मुबारक ने उन्हें अपने

वश में कर लिया और काफ़ूर को मार डाला। इसका सबसे पहला काम यह था कि इसने अपने छोटे भाई के दो छोटे छोटे बच्चों की आँखें निकलवा लीं और जिन लोगों ने उसकी सहायता की थी, उनको उसने मार डाला। अनन्तर इसने खुसरो ख़ाँ को अपना वज़ीर बनाया। खुसरोख़ाँ गुजरात का रहने वाला परवार जाति का हिन्दू था और यह मुसलमान हो गया था। तख़्त पर बैठते ही इसने अपने बाप के समय के सत्रह हज़ार क़ैदियों को रिहा किया और ऐसे काम किये जिन से लोग उसके अत्याचारों को भूल जायँ।

पीछे उसने दक्खिन पर चढ़ाई की और रामदेव के विद्रोही दामाद हरपाल को ज़िन्दा जलवा दिया। किसी किसी इतिहास-लेखक का मत है कि जीते हुए हरपाल की खाल खिंचवा कर भूसा-भरवा दिया। जब मुल्क में उसका दबदबा जमा तब वह पूरी तरह लम्पटता में डूब गया। वह रात दिन नशे में चूर रहता और ज़नानी पोशाक पहन कर अमीरों के घर नाचने को जाता। जिन अवगुणों को लोग छिपाते हैं, उन्हें यह प्रकट करता था। रंडियों को बुलवा कर, दरबार में अपने बड़े बड़े अमीरों के बराबर बिठाता। कभी कभी यह निरा नङ्गा बाहर निकल आता था। निदान यह ऐसा बदनाम हुआ कि अन्त में यह अपने वज़ीर खुसरोख़ाँ के हाथ से मारा गया। खुसरो ने अलाउद्दीन की औलाद में से किसीको जीता न छोड़ा और अलाउद्दीन की बेगम को अपने ज़नानख़ाने में डाला और सल्तनत का ताज अपने सिर पर रक्खा। एक इतिहास लेखक के मतानुसार, इसीकी अमलदारी में हिन्दुओं ने मुसलमानियाँ रखीं और कुरान की चौकी और सीढ़ी बना कर, मसजिदों में मूर्तियों का पूजन किया। अन्त में पंजाब के सूबेदार ग़ाज़ीख़ाँ तुग़लक के हाथ से यह मारा गया। यह सन् १३२१ की घटना है।

Mubarik Syed. मुबारक सैयद=यह छठवें सैयद ख़ान्दान का दूसरा शासक था। यह बड़ा परोपकारी और मिलनसार था। इसने सन् १४२१ से १४३५ तक शासन किया।

Muhammad Ali. मुहम्मदअली=यह अनवरउद्दीन का सब से छोटा लड़का था जो आरकट की नवाबी पाने का प्रयासी था और अङ्गरेज़ों ने इसका पक्ष ले कर इसे वहाँ की नवाबी दिलवायी थी।

Muhammad Prince. शहज़ादा मुहम्मद=यह बलबन का सब से बड़ा लड़का था और बड़ा साहित्यानुरागी था। फ़ारसी भाषा का प्रसिद्ध कवि अमीर खुसरो इसका दरबारी था और शेख़शादी ने अपनी पुस्तकों की एक एक प्रति इसके पास भेजी थी। यह पंजाब का सूबेदार और बलबन के बाद गद्दी का मालिक था। पर सन् १२६६ ई० में यह मुग़लों के साथ युद्ध करता हुआ मारा गया।

Muhammad Tuglak. मुहम्मद तुग़लक=तुग़लक ख़ान्दान का यह दूसरा बादशाह था और इसने सन् १३२५ से १३५१ ई० तक हुकूमत की। इसने इनाम इकराम में बहुत सा धन लुटाया। हज़ार खम्भों का एक महल बनवाया। यह खूब पढ़ा लिखा था और बड़ा उत्साही था। यह शराब नहीं पीता था और अपने धर्म का पक्का मानने वाला था। आरम्भ में इसने राज्य का प्रबन्ध भी अच्छा किया था। इसने दक्षिण आदि के सुदूरवर्त्ती प्रान्तों को अपने हाथ में कर लिया था; किन्तु पीछे इसने ऐसे बेढंगे काम किये कि लोग इसे झकी और पागल समझने लगे। पहले तो इसने ईरान पर चढ़ाई करने का विचार किया और तीस लाख सत्तर हज़ार सवारों की सेना इकट्ठी की। किन्तु जब व्यय अधिक होने से धनागार रीता हो गया तब एक लाख सवारों को नैपाल की राह से चीन लेने के लिये भेजा। इसने ताँबे का रुपया चलाया और प्रजा पर अधाधुन्ध कर लगाया। फल यह हुआ कि उन एक लाख सवारों में से एक भी जीता लौट कर न आया। सब पहाड़ और जङ्गलों में मर गये। व्यापार बिल्कुल बन्द हो गया था और प्रजा ने सिर उठाया तथा कई एक सूबे इसके हाथ से निकल गये। खेत ऊसर पड़े रहे और लोग मरी और अकाल से मरने लगे। तब इसने अपनी फ़ौज

को आज्ञा दी कि प्रजा का शिकार करे। जिस प्रकार शिकारी शेर को घेर कर मारते हैं, वैसे ही प्रजा को घेर घेर कर लोग मारने लगे। मारे हुए लोगों के सिर काट काट कर क़िले के कंगूरों पर लटकाये जाने लगे। यह स्वयं भी नर-आखेट में सम्मिलित था और इसने सहस्रों के सिर कटवाये। इन सब से बढ़ कर सिड़ीपन यह था कि इसने दिल्ली को उजाड़ कर देवगढ़ को दौलताबाद से अपनी राजधानी बनायी। दिल्ली उजाड़ने और दौलताबाद बसाने के लिये इसने आज्ञा निकाली कि जो फ़ौरन् दिल्ली छोड़ कर दौलताबाद न चला जायगा, वह बाल बच्चों समेत मार डाला जायगा। इस आज्ञा से दौलताबाद तो न बसा, पर दिल्ली उजड़ गयी। २७ वर्ष तक राज्य कर यह ठट्टे के पास बीमार पड़ कर मरा और प्रजा उसके अत्याचारों से मुक्त हुई।

Muhammad Syed. मुहम्मद सैयद=सैयद ख़ान्दान का तीसरा शासक जिसने सन् १४३९ से १४४४ ई० तक शासन किया। यह बड़ा दुर्बल विचार का मनुष्य था।

Muhammad Adil Sur. मुहम्मद आदिल सूर=सलीमशाह के मरने पर उसका चचेरा भाई मुबारकख़ाँ उसके लड़के को, जो केवल बारह वर्ष का था, मार कर और मुहम्मदशाह आदिल की उपाधि धारण कर गद्दी पर बैठा। यह बड़ा मूर्ख और पापी था। इसने सारी अमलदारी का काम हेमू नामक एक बनिये को सौंप दिया था। इसका धनागार जब रीता हो गया; तब यह सरदारों की जागीरें ज़ब्त करने लगा। इस कारण लोग इससे बहुत अप्रसन्न और हताश हुए। राज्य भर में विद्रोह की आग भड़क उठी। अन्त में हुमायूँ ने इससे राज्य छीन लिया। इसने १५५२-१५५६ तक राज्य किया।

Muhammad Shah. मुहम्मदशाह=यह बारहवाँ मुग़ल सम्राट् था और इसने सन् १७१९ से १७४८ ई० तक राज्य किया। इसका असली नाम रोशनअख़्तर था, पर तख़्त पर बैठते ही इसने अपना नाम बदल लिया था और मुहम्मदशाह रखा था। यह सैयदों से बहुत नाराज़ था और कौशल से इसने उनको समाप्त किया। पर यह लम्पटता में बहुत चढ़ बढ़ कर था। यहाँ तक कि इसकी मोहर तो ज़नानख़ाने में रहती थी और कम उम्र छोकड़े इसके मुसाहिब थे। रात दिन यह लम्पटता में बिताता था। असल में राज्य का काम धन्धा उसकी माता की बुद्धि से होता था। इसकी अमलदारी में राजपूत, मरेहटे तथा रुहेलों ने बड़ा सिर उठाया और अन्त में नादिरशाह का आक्रमण हुआ। आक्रमण के कुछ ही दिनों बाद मुहम्मदशाह की मृत्यु हुई।

Muhammad Kasim. मुहम्मद क़ासिम=यह सब से पहला मुसलमान सरदार था जिसने पहले पहल भारतवर्ष पर आक्रमण किया था। यह बसरा के सूबेदार ख़लीफ़ा बाहिद का भतीजा था और सन् ७११ ई० में इसने कराची के पास देवल नामक नगर पर आक्रमण किया था। पीछे से इसने बड़ी विकट लड़ाई लड़ कर समूचे सिन्ध प्रदेश पर अपना अधिकार जमा लिया था। इसका विचार तो समूचे भारतवर्ष को अपनी मुट्ठी में करने का था पर बप्पा रावल ने इसे बुरी तरह हराया। इस हार से उसके सारे मनसूबे मिट्टी में मिल गये।

Muhammad. मुहम्मद=यह महमूद ग़ज़नवी का पुत्र था। (देखो महमूद)

Muhammad Ghori. मुहम्मद ग़ोरी=इसका पूरा नाम था शाहबुद्दीन मुहम्मद ग़ोरी। क़न्धार से सात आठ मंज़िल के फ़ासले पर ग़ोर एक जगह है, जो बहुत दिनों तक स्वतंत्र था, किन्तु महमूद ग़ज़नवी ने अपने दस्तगत कर लिया था। इसके उत्तराधिकारियों में से बहराम ने अपनी लड़की का ब्याह भी यहाँ के शासक कुतुबुद्दीन मुहम्मद के साथ कर दिया था। किन्तु पीछे से इन दोनों में परस्पर ऐसा कलह बढ़ा कि बहराम ने अपने दामाद की जान ही ले डाली और उसके भाई सैफुद्दीन की भी बुरी नौबत की। उसका मुँह काला कर और बैल पर बिठा कर, उसे सारे नगर में घुमाया। पीछे से उसका सिर कटवा कर, कटे हुए सिर को ईरान

के बादशाह के पास भेज दिया ।

इन अपने दोनों भाइयों का बदला लेने के लिये अलाउद्दीन ग़ोरी ने (जिसे इतिहास लेखकों ने "जगत्-दाहक" की उपाधि दी है) ग़ज़नी पर चढ़ाई की । सात दिन की लूट मार में शहर तो फूँक फाँक कर नष्ट कर डाला और उन शहर वालों को जो उसकी तलवार से बचे, पकड़ कर ग़ोर ले गया और वहाँ उनके लोहू से अपने मकान के लिये गारा सनवाया ।

हिन्दुस्थान में मुसलमानी राज्य की जड़ जमाने वाला यही शाहबुद्दीन मुहम्मद ग़ोरी था । इसने सिन्ध जीत कर सन् ११९१ ई० में दिल्ली पर चढ़ाई की ।

पहली लड़ाई थानेश्वर और करनाल के बीच तलावड़ी के मैदान में हुई । इस लड़ाई में पृथिवीराज ने इसे हराया । पर सन् ११९३ ई० में यह बड़ी भारी फ़ौज ले कर आया और इस बार पृथिवीराज हारे और ग़ोरी ने दिल्ली के तख़्त पर अधिकार जमाया ।

Muhammad Dost. दोस्तमुहम्मद=यह अहमदशाह दुर्रानी का पौत्र था । इसका दूसरा भाई शाहशुजा था; जो अफ़ग़ानस्तान का बादशाह था । इसका एक भाई था महमूद, जिसने शुजा को निकाल दिया था । शाहशुजा तो अङ्गरेज़ी अमलदारी में चला आया । उधर उसने अपने वज़ीर फ़तहख़ाँ को अन्धा कर मार डाला । तब फ़तहख़ाँ के बेटे दोस्तमुहम्मद ने महमूद को उतार कर, तख़्त पर अपना अधिकार जमा लिया । क़न्धार दोस्तमुहम्मद के भाइयों के अधिकार में था । महमूद हिरात को चला गया और उसके बाद उसका बेटा कामराँख़ाँ वहाँ का बादशाह हुआ । काबुल में यह गड़बड़ी देख रूस के ईरानी एलची ने ईरान के शाह को भड़काया और ईरानी सेना को हिरात की सीमा पर भेज दिया । ख़र्च के लिये कुछ रुपये भी अपनी सरकार से दिलवाये ।

इसका कुछ भी विचार न कर अङ्गरेज़ों ने काबुल में फ़ौज भेज कर शाहशुजा को तख़्त पर बैठाना चाहा । साथ में रणजीतसिंह को भी ले लिया । निदान ७५०० सरकारी फ़ौज और ११० तोपें सर जान कीन की अधीनता में क़न्धार पहुँचीं । वहाँ पहुँच कर, बड़ी धूमधाम के साथ शाहशुजा तख़्त पर बिठाया गया । सर विलियम मैकनाटन शुजा के साथ सरकार की ओर से एलची थे । इनको आशा थी कि वहाँ की प्रजा शुजा के पक्ष में होगी, पर यह बात न थी । सरकारी सेना ने बारूद से फाटक उड़ा कर ग़ज़नी का गढ़ जीता और काबुल में प्रवेश किया । दोस्तमुहम्मद तुर्किस्तान की ओर भाग गया । रणजीतसिंह ने शुजा के बेटे तैमूर के साथ अपने पाँच हज़ार सिक्ख वीर भेजे थे—वे भी अलीमसजिद में लड़ते और जलालाबाद का क़िला लेते, काबुल जा पहुँचे । सरकार ने वहाँ का मामला ठीक समझ कुछ थोड़ी सेना वहाँ छोड़—बाक़ी सब हिन्दोस्थान में लौटा लीं ।

मैकनाटक साहब वहीं रहे । एक दिन शाम को एक सवार ने मैकनाटन साहब को इत्तिला दी कि दोस्तमुहम्मद हाज़िर है । इतने में दोस्त मुहम्मद ने बढ़ कर मैकनाटक साहब को तलवार नज़र की । तब मैकनाटन ने उसकी बड़ी ख़ातिरदारी की और नज़रबन्द रहने के लिये उसे हिन्दोस्थान में भेज दिया ।

Muhabat Khan. मुहब्बतख़ाँ=यह जहाँगीर का एक जनरल था और दक्षिण में इसने कई युद्धों में विजय प्राप्त किया था ।

Mulhar Rao Holkar. मल्हारराव हुल्कर=यह जाति का शूद्र था, पर पेशवाओं के रिसाले में एक सवार था । इसकी वीरता पर प्रसन्न हो कर इसे सन् १७३३ ई० में इन्दौर का राज्य मिला था । ४२ वर्ष तक इसने बड़ी २ बहादुरी के काम किये और सन् १७६६ ई० में यह मरा ।

Mumtaz Mahal मुमताज़महल=यह शाहजहाँ की प्रधान बेगम थी और इसकी यादगार में आगरे का ताजमहल अब तक संसार के उत्तम भवनों में से एक समझा जाता है । (देखो शाहजहाँ)

Munro, Sir Hector हैक्टर मनरो=यह अङ्गरेज़ी सेना का एक जनरल था, जिसने बङ्गाल और मदरास के युद्धों में कई बार बड़ी वीरता दिखलायी थी ।

N.

Nadir Shah. नादिरशाह=यह ईरान का बादशाह था। इसने सन् १७३८ ई० में दिल्ली पर चढ़ाई की। उस समय मुहम्मदशाह दिल्ली के तख़्त पर था। करनाल के पास मुहम्मदशाह और नादिरशाह से मुठभेड़ हुई। मुहम्मदशाह हारा। अन्त में अपने सरदारों के साथ वह नादिरशाह के पास गया। नादिरशाह ने उसका अच्छे प्रकार आगत स्वागत किया। दोनों बादशाह प्रसन्नचित्त दिल्ली के क़िले में गये और वहाँ एक साथ रहने लगे। पर दूसरे ही दिन दिल्ली के कुछ गुंडों ने अफ़वाह उड़ा दी कि नादिरशाह मर गया। फिर क्या था, गुंडे नादिरशाह के साथियों को क़त्ल करने लगे। पहले तो नादिरशाह ने बहुत चाहा कि उपद्रव शान्त हो और इसी अभिप्राय से वह दूसरे दिन सवेरे घोड़े पर स्वयं सवार हो कर, शहर में हो कर निकला और लोगों को समझाने लगा। किन्तु जब उसने नगर के हर एक कूचे व गली में अपने सिपाहियों की लाशें पड़ी हुईं देखीं और हर तरफ़ से उसके ऊपर पत्थर और ढेले गिरने लगे, तब तो उसका क्रोध भड़का। घोड़े से उतर कर रौशनुद्दौला वाली सुनहली मसजिद में वह जा बैठा और "क़त्ल आम" का हुक्म दिया। दो पहर से ऊपर तक दिल्ली वाले काटे गये और लाख से ऊपर आदमी मारे गये। कई जगह आग भी लगायी गयी अन्त में मुहम्मदशाह अपने वज़ीरों समेत सामने आ कर खड़ा हुआ और नादिरशाह ने जब बोलने की इजाज़त दी, तब मुहम्मदशाह रो पड़ा। नादिरशाह ने उसी क्षण क़त्ल बन्द करने की आज्ञा दी। अमान के हुक्म की मुनादी कान में पहुँचते ही क़त्ल बन्द किया गया। नादिरशाह यहाँ हुकूमत करने नहीं आया था बल्कि धन सम्पत्ति का लोभ उसे यहाँ लाया था। कहा जाता है, वह यहाँ से सत्तर करोड़ का तो अकेला तख़्त ताऊस (मयूर-सिंहासन) ही ले गया और दौलत का कहना ही क्या था। उसने लोगों से रुपये लेने में बड़े अत्याचार किये। बड़े बड़े प्रतिष्ठितों को कोड़ों से पिटवाया। बहुतों ने तो मार के भय से विष खा लिया।

भारतवर्ष की चढ़ाई के कुछ दिनों बाद, ईरान लौटने पर वह बलवाइयों के हाथ से मारा गया।

Nana Farnavis. नाना फ़रनवीस=यह नारायणराव के पुत्र माधोराव का अभिभावक था। इसने रघोबा के विपक्ष में माधोराव का पक्ष लिया था। जब नाज़िमअली ने कर न दिया तब इसने उसके राज्य पर चढ़ाई की और कुरडला में उसे हराया। यह बड़ा प्रसिद्ध राजनैतिक था। इसकी मृत्यु से मरेहटों के राज्य को बड़ा धक्का लगा था।

Nana Sahab. नाना साहब=द्वितीय बाजीराव का दत्तक पुत्र था और सन् १८५७ ई० के सिपाही विद्रोह में इसने विद्रोहियों का साथ दिया था। कानपुर में कितने ही निरपराध अङ्गरेज़ बालक, युवक और युवतियों को इसने मारा था। इसका दूसरा नाम धाधूपन्थ भी था।

Nand Kumar. नन्दकुमार=नवाबी के समय हुगली के ये सूबेदार थे और यदि ये चाहते तो क्लाइव की सेना को, प्लासी क्षेत्र में पहुँचने के पहले ही तहस नहस कर देते; पर इन्होंने अङ्गरेज़ों का पक्ष लिया और ऐसा न किया। पीछे से जब हेस्टिंग्ज़ को बङ्गाल की गवर्नरी का और भारतवर्ष की गवर्नर जनरली का चार्ज मिला, तब आरम्भ में ये उसके विश्वास-पात्रों में से एक रहे—किन्तु जब उसकी घूँस लेने की आदत दिनों दिन बढ़ती गयी; तब कौंसिल के मेम्बर फ़्रांसिस की मदद में आ कर ये गवर्नर-जनरल के विरुद्ध खड़े हुए। इन्होंने चाहा था कि घूँस सम्बन्धी हेस्टिंग्ज़ के हाथ की रसीदें तथा अन्य काग़ज़ात पेश करें; पर ये ऐसा न कर पाये। क्योंकि हेस्टिंग्ज़ साहब के अनुचरों की करतूत से उन पर एक झूँठा जाल का अभियोग लगाया गया और उस समय की आईन के सर्वथा प्रतिकूल, पुष्ट प्रमाणों के न रहते हुए भी गवर्नर जनरल के सहपाठी और मित्र सर इलिजा इम्पे ने नन्दकुमार को फाँसी की टिकठी पर चढ़वा दिया।

नन्दकुमार ब्राह्मण थे और सच्चे देशभक्त थे। कम्पनी के राज्य में यह पहला ही अवसर था कि कलकत्ते में एक ब्राह्मण को फाँसी दी गयी थी। इस लिये जिस दिन उन्हें फाँसी दी गयी, उस दिन ब्राह्मणहत्या से कलकत्ता नगरी को अपवित्र समझ अनेक लोग भाग गये।

Napier, Sir C. नैपियर=सन् १८४२ ई० में अङ्गरेज़-सरकार की ओर से ये सिन्ध-देश को जय करने के लिये, एक बड़ी सेना के प्रधान-सेना-नायक बना कर भेजे गये थे और इन्होंने बड़ी वीरता से अपना काम पूरा किया। सिन्ध के अमीर पकड़ कर पेंशन पर बनारस भेज दिये गये।

Nasir-ud-din. नसीर-उद्दीन=सन् १२०६ ई० में नसीर-उद्दीन सिन्ध का सूबेदार था। असल में यह गुलाम था और इसने गुलाम ख़ान्दान के पहले बादशाह कुतुबुद्दीन की एक बहिन के साथ शादी की थी।

Nasir-ud-din Mohammad (II) नसीरउद्दीन=इसका दूसरा नाम द्वितीय महमूद था और अलतमश का पौत्र था। इसने अलतमश के एक तुर्की गुलाम गाज़ीउद्दीन-बलबन की लड़की के साथ शादी की थी और बादशाहत का सारा काम काज इसीके हाथ में छोड़ दिया था। यह नाम का बादशाह था, क्योंकि यह स्वयं दरवेशों जैसा जीवन व्यतीत करता था और अपने ख़र्च के लिये शाही धनागार से एक कौड़ी भी नहीं लेता था। पुस्तकों की नक़ल करने पर जो मज़दूरी मिलती, उसीसे अपना निर्वाह करता था। इसने अपने काम के लिये एक भी ख़िदमतगार नहीं रखा था। घर का सारा काम काज इसकी मलिका स्वयं करती थी। इसके समय में अनेक बार मुग़लों ने चढ़ाई की, पर वे बराबर हार हार कर लौट गये। इसीके समय में चंगेज़ख़ाँ के पौत्र हलाकूख़ाँ ने इसके पास अपना एलची भेजा था, जिसकी इसने बड़ी ख़ातिरदारी की थी। बीस वर्ष तक अच्छे प्रकार राज्य कर यह सन् १२६६ ई० में मर गया।

Nasir-ud-din Tughlak. नसीरउद्दीन तुग़लक़=यह फ़ीरोज़ का सब से बड़ा लड़का था। अपने बाप के समय में इसने राज्य का काम काज किया था, पर कुप्रबन्ध के कारण यह निकाल दिया गया था। किन्तु पीछे यह फिर आया और अपने भतीजे को तख़्त से उतार स्वयं बादशाह बन गया था। इसने सन् १३१० से १३१४ ई० तक राज्य किया था।

Nearchus. नियरकस=सिकन्दरशाह के एक जनरल का नाम।

Nizam-ud-din. निज़ामउद्दीन=यह कैकोबाद का बड़ा दुष्ट वज़ीर था। इसने अपने मालिक कैकोबाद को जो इसके हाथ का कठपुतला बना हुआ था, और उसके बाप को आपस में लड़ा दिया था। यह अपने कम उम्र मालिक कैकोबाद को दुष्कर्मों की ओर प्रवृत्त करता था। (देखो कैकोबाद)

Nizam-ul-mulk. निज़ाम-उल-मुल्क=हैदराबाद के स्वतंत्र राज्य की नींव डालने वाले ये ही थे और प्रथम ग़ाज़ीउद्दीन के पुत्र थे।

Nizam Ali. निज़ामअली=यह निज़ाम-उल-मुल्क का पुत्र था। यह सन् १८०३ ई० में मरा था।

Norris, Sir W. नारिस=यह अङ्गरेज़ों का एक एलची था, जो औरंगज़ेब से दौरे में जा कर सन् १७६१ ई० में मिला था।

Nott, General. जनरल नाट=प्रथम काबुल युद्ध में इन्होंने क़न्धार का उद्धार किया था।

Nur Jehan. नूरजहाँ=यह जहाँगीर की प्रिय पत्नी थी। अकबर की इच्छा न थी कि जहाँगीर उसके साथ विवाह करे, इस लिये उसने शेर अफ़ग़ान के साथ उसका विवाह करवा दिया था। किन्तु जब जहाँगीर तख़्त पर बैठा तब शेर अफ़ग़ान को क़त्ल करवा कर नूरजहाँ के साथ उसने विवाह किया। (देखो अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ)

O.

Omar Khilji. उमर खिलजी=यह अल्ला का पुत्र था और मलिक काफ़ूर ने बड़ी छोटी अवस्था में इसे तख़्त पर बिठा दिया था। यह केवल तख़्त पर आ बैठता था, पर असल में रियासत की लगाम उस मलिक काफ़ूर के हाथ में थी—

जिसे अलाउद्दीन ने खोजे और गुलाम से पहले दर्जे का अमीर बना दिया था। अलाउद्दीन के मरने पर मलिक काफ़ूर ने स्वयं तख़्त और ताज लेना चाहा और इसीसे उसने अपने मालिक अलाउद्दीन के दो बड़े लड़कों की आँखें निकलवा लीं। पीछे जब उसने अलाउद्दीन के तीसरे पुत्र मुबारकख़ाँ की जान लेनी चाही तब शाही सिपाहियों ने काफ़ूर ही को मार डाला। तब मुबारक तख़्त पर बैठा और सिर पर ताज रखते ही उसने अपने छोटे भाई शाहबुद्दीन उमर (जो निरा बच्चा था) की आँखें फुड़वा डालीं और उसे अन्धा कर दिया।

Outram, Sir James. औउटरेम=पहले ये अङ्गरेज़ी सेना में एक साधारण जनरल थे; किन्तु पीछे से राजपूताना में रेज़ीडेण्ट बना कर भेजे गये। इन्होंने सन् १८५७ ई० के सिपाही-विद्रोह में बड़ी बहादुरी दिखलायी और लखनऊ में अपना दबदबा जमाया था।

P.

Pareshram Bhao. परेशराम भाऊ=ये मरेहटों की सेना के एक सेनापति थे। सन् १७९२ ई० में इन्होंने टीपू पर चढ़ाई की थी।

Parviz. परवेज़=यह जहाँगीर का दूसरा पुत्र था और दक्खिन का सूबेदार था। यह बुरहानपुर में रहता था और सन् १६२६ ई० में मरते समय तक वहीं रहा। (देखो जहाँगीर)

Pearce, Colonel. कर्नल पियरस=द्वितीय मैसूर युद्ध में कूट के साथ सन् १७८१ ई० में गया था। उड़ीसा पहुँचते पहुँचते इनकी अधीनस्थ सेना में बड़े ज़ोर से हैज़ा फैल गयाथा और बहुत से सैनिक मर गये थे, तौ भी जुलाई में ये पालीकट पहुँचे।

Perron, M. पैरन=यह हुल्कर का जनरल था। सन् १७९२ ई० में हुल्कर और सिन्धिया में जो बड़ा भयानक युद्ध हुआ था, उसमें यह हुल्कर की ओर से था और दूसरी ओर लकवादादा तथा गोपालराव थे। दोनों ओर की सेनाओं की अजमेर के पास लकैरी में मुठभेड़ हुई। हुल्कर की सेना भाग गयी और मालवा में जा कर ठहरी। सिन्धिया ने उज्जैन पर अपना अधिकार कर लिया और उज्जैन को फूँका।

Pollack, General. जनरल पालक=सन् १८३९ ई० में ये अङ्गरेज़ी सेना ले कर अफ़ग़ानस्तान पर चढ़े थे और बड़ी वीरता से इन्होंने अफ़ग़ानों को सर किया था।

Porus. पोरस=ख़ीष्टाब्द पूर्व ३२० में जिस समय सिकन्दर ने भारतवर्ष पर चढ़ाई की थी, उस समय पोरस ने झेलम नदी के तट पर सिकन्दर का सामना किया था।

Popham, Captain. कपतान पोपहम=इन्होंने ग्वालियर के दुर्ग को जीता था।

R.

Rafi-ud-darajat रफ़ीउद्दराजात=जब सैयद हुसेनअली ने फ़र्रुख़सियर को मार डाला; तब उसने रफ़ीउद्दराजात नामक एक युवक को तख़्त पर सन् १७१९ ई० में बिठाया था जो केवल तीन मास तक तख़्त पर बैठ सका और पीछे से क्षय की बीमारी से मर गया। यह दसवाँ मुग़ल सम्राट् था।

Rafi-ud-dowla रफ़ीउद्दौला=रफ़ीउद्दराजात के बाद इसे तख़्त दिया गया, पर कुछ मास के बाद यह भी मर गया यह ग्यारहवाँ मुग़ल सम्राट् था, किन्तु उक्त दोनों के नाम मुग़ल सम्राटों की सूची में नहीं पाये जाते।

Raghoji Bhusle राघोजी भौंसले=सन् १७४१ ई० में यह बरार का राजा था। इसने उस समय कटक का समूचा प्रान्त अपने हस्तगत कर लिया था और हैदराबाद के वे ज़िले जो बानगंगा और गोदावरी के बीच में हैं, हैदराबाद वालों से छीन लिये थे। सन् १७५५ ई० में इसकी मृत्यु हुई और इसके बाद इसका सब से बड़ा पुत्र जनोजी गद्दी पर बैठा।

Raghoji Bhosla II द्वितीय राघोजी भौंसले=यह मुदाजी का पुत्र था, पर जनोजी का यह दत्तक पुत्र था। जब जनोजी मरा, तब इसके चचा और जनक पिता, सबाजी तथा मुदाजी इसके विरुद्ध खड़े हुए और युद्ध किया। सबाजी तो सन् १७७४ ई० में मारा गया, पर मुदाजी बच रहा और सन् १७८८ ई० में जब यह भी

मर गया; तब राघोजी गद्दी पर बैठ पाया । इस की उपाधि थी सेना साहिब सूबा । यह सन् १८१६ ई० में मर गया ।

Ragboba. रघूबा=इसका पूरा नाम रघुनाथ राव था और बाला जी का यह पुत्र था । इसी के कारण प्रथम मरेहटा युद्ध अङ्गरेज़ों के साथ हुआ था । इसने जो काम हाथ में उठाया वह बिगाड़ दिया । इसीसे माधोराव नारायण के अभिभावक नाना फ़रनवीस ने उसे अधिकारच्युत कर दिया । तब रघूबा अङ्गरेज़ों की शरण में गया और अङ्गरेज़ों ने नाना फ़रनवीस आदि के साथ युद्ध छेड़ा । परिणाम यह हुआ कि इसे कुछ पेंशन मिल गयी ।

Raja Man Singh. राजा मानसिंह=जयपुर के राजा थे और मुग़ल सम्राट् अकबर के बड़े मुँह-लगे कृपापात्र तथा प्रधान-सेनानायक थे । कहा जाता है रिश्ते में यह ख़ुसरो की माँ के भाई भी थे । (देखो अकबर)

Raja Todarmal. राजा टोडरमल=सम्राट् अकबर के शासन काल में ये अर्थसचिव एवं युद्ध विभाग के प्रधानाध्यक्ष थे । इन्होंने राजस्व विभाग में बड़े बड़े संस्कार किये थे । इतिहास लेखकों ने इन्हें ईमानदार और कट्टर हिन्दू लिखा है । सन् १५८० ई० से १५८२ ई० तक ये बङ्गाल सूबे के सूबेदार थे और बड़ी बुद्धिमानी से इन्होंने वहाँ का एक विद्रोह शान्त किया था । अफ़ग़ान-युद्ध में भी इनकी वीरता की प्रशंसा रही । राजा भगवानदास और राजा टोडरमल दोनों ही सन् १५८६ ई० में मरे ।

Raja Ram. राजाराम=यह शिवाजी का छोटा पुत्र और सम्भाजी का छोटा भाई था । गद्दी पर बैठने के लिये राजाराम भी लालायित था, इस लिये सम्भाजी को इसे ठीक करना पड़ा था । सम्भाजी ने इसकी माता सुवर्णबाई को मरवा डाला ।

Ram Raja. रामराजा=विजयनगर राज्य के हिन्दू नरपतियों में सातवाँ राजा था और उस प्रान्त की भाषा के सुप्रसिद्ध लेखक कृष्णराय का दामाद था । इसीके राज्य काल में अली आदिलशाह, हुसेन निज़ामशाह, इब्राहीम कुतुबशाह और अलीबारिद ने चढ़ाई की थी । तालीकोट के पास युद्ध हुआ था । आक्रमणकारियों ने विजय प्राप्त कर चुकने के अनन्तर बड़े बड़े अत्याचार किये थे । रामराजा का सिर काट कर, विजयनगर में रखा गया और सौ वर्ष तक मसाला लगा कर लोगों को दिखलाया गया ।

Ram Raja Marhatta. रामराजा मरेहटा=यह द्वितीय शिवाजी का पुत्र था और साहू की मृत्यु के बाद सन् १७४८ ई० में गद्दी पर बैठा था ।

Rezia Begam. रज़िया बेगम=यह बेगम बड़ी होशियार थी, सो भी कुरान अच्छी तरह पढ़ती थी । बादशाहों की तरह क़बा और ताज पहन कर तख़्त पर बैठती थी और दरबार करती थी । नक़ाब मुँह पर कभी नहीं डालती थी और बड़े न्याय के साथ फ़रियादियों की फ़रियादों पर विचार कर हुक्म देती थी । पर उस से एक ऐसी भूल बन पड़ी जिसके कारण उसे अपनी जान गँवानी पड़ी । उसके अस्तबल का दरोग़ा एक हब्शी ग़ुलाम था । वही उसको बग़ल में हाथ दे कर घोड़े पर सवार कराता था । वह उस पर ऐसी मेहरबान हुई कि उसे उसने अमीरुलउमरा का ख़िताब दिया । इस कारण उससे सब लोगों का दिल फिर गया और बड़ा दंगा फ़िसाद हुआ । फल इसका यह हुआ कि रज़िया और हब्शी मारे गये । रज़िया मरदानी पोशाक पहन कर भागी थी । जब वह चलते चलते थक कर रास्ते में सो गयी तब एक किसान ने उसकी पोशाक के नीचे ज़री और मोती टकी अँगिया देख ली । उसने रज़िया को मार उसके कपड़े उतार लिये और लाश ज़मीन में गाड़ दी ।

रज़िया ने सन् १२३६ ई० से १२३९ ई० तक हिन्दुस्थान की सल्तनत की । यह रुक्नुद्दीन की बहिन और शमसुद्दीन अलतमश की लड़की थी ।

Robertson, Captain. कप्तान राबर्ट्सन्=सन् १८१६ ई० में महाराष्ट्र प्रान्त का सुप्रबन्ध अङ्गरेज़ सरकार की ओर से जिन अफ़सरों ने किया था उनमें से यह भी एक है ।

Roe, Sir T. सर टी. रो=यह इङ्गलैंड के राजा प्रथम जेम्स की ओर से सन् १६१५ ई० में जहाँगीर के पास एलची बन कर आया था। यह जहाँगीर से मिलने के लिये अनेक स्थानों में घूमा फिरा। अन्त में गुजरात में उससे भेंट हुई। जहाँगीर के शासन काल की अनेक बातों का उल्लेख इसने किया है।

Roshan-ara. रोशन आरा=यह शाहजहाँ की लड़की थी और षड्यंत्र में इसने औरङ्गज़ेब को बहुत कुछ सहायता दी थी।

Rukn-ud-din. रुक्नुद्दीन=यह शमसुद्दीन अलतमश का पुत्र था और सन् १२३६ ई० में तख़्त पर बैठा था और सात ही महीने अमलदारी कर पाया था कि उसकी बहिन रज़िया ने इसे तख़्त से उतार दिया। यह गुलाम ख़ान्दान का चौथा बादशाह था। यह रात दिन भाँड और रंडियों के साथ रहता था। नशा और तमाशबीनी ही इसका आठों पहर का काम था। सल्तनत इसने अपनी माँ के भरोसे छोड़ दी थी। इसकी माँ भी बड़ी ज़ालिम थी। रुक्नुद्दीन ने बहुत सा रुपया फ़िज़ूल फेंक दिया था।

S.

Saad-ulla Khan. सआदउल्लाख़ाँ=यह शाहजहाँ का प्रसिद्ध सचिव था जो सन् १६५५ ई० में मरा।

Subuktegin. सुबक्तगीन=यह ख़ुरासान के सूबेदार अलपतगीन का गुलाम था और इसने अपने मालिक की बेटी के साथ विवाह किया था। जब अलपतगीन मरा; तब यही उसका उत्तराधिकारी हुआ। इसने सन् ६७० ई० में हिन्दुस्थान पर चढ़ाई की थी और पंजाब की सरहद के कई एक दुर्ग हस्तगत कर लिये। यह समाचार सुन राजा जयपाल ऐसा बिगड़ा कि अपनी फ़ौज सिन्ध पार ले जा कर ख़ुरासान पर चढ़ दौड़ा वहाँ यह अनोखी घटना हुई कि जयपाल हारा और सुबक्तगीन को कर देना स्वीकार किया; पर जब वह लाहौर में सही सलामत पहुँच गया; तब उसने ख़िराज न भेजा। इस लिये सुबक्तगीन ने फिर पंजाब पर चढ़ाई की। तब राजा जयपाल ने भी दिल्ली, अजमेर, कालिञ्जर के राजाओं की कुमक ले कर उसका सामना किया। सिन्ध पार लमगान के पास दोनों दलों में युद्ध हुआ। पर इस बार भी जयपाल हारा।

Saadat Khan. सआदतख़ाँ=यह ख़ुरासान का रहने वाला एक सौदागर था। यह मुग़ल सम्राट् मुहम्मदशाह के पास किसी नीच कर्म पर नौकर रखा गया था। यह काम काज करने में बड़ा चतुर था। इसके कार्य-कौशल पर प्रसन्न हो कर मुहम्मदशाह ने इसे अवध की सूबेदारी का सूबेदार बनाया। किन्तु स्वतंत्र कार्य मिलने पर यह अपने मालिक को प्रसन्न न रख सका और मुहम्मदशाह उस पर अप्रसन्न हुआ। सआदत ने अपने मालिक को प्रसन्न तो न किया, बल्कि इसने उनसे बदला लेने की ठानी। इतिहास प्रसिद्ध नादिरशाह उस समय पंजाब में था सआदत ने मुहम्मदशाह के साथ साज़िश की इसी साज़िश का परिणाम नादिरशाह का सन् १७३८ ई० का आक्रमण है जिसमें भारत की प्रजा का बचा बचाया धन अपहृत किया गया था। देहली का सर्वनाश कर चुकने पर नादिर ने सआदत से दो करोड़ रुपये माँगे। इस पर अपने जीवन की आशा से हाथ धो, सआदत ने आत्मघात कर लिया। इस दग़ाबाज़ी पर भी ध्यान न दे कर मुहम्मदशाह ने इसके भतीजे सफ़दरजंग को अवध की सूबेदारी दी।

Saadat Ali. सादतअली=यह अवध के नवाब आसफ़उद्दौला का भाई था और सर जान शोर ने इसे गद्दी पर बिठाया था।

Safdar Jung. सफ़दरजङ्ग=यह सआदत का पुत्र और अवध का नवाब था; तथा मुहम्मदशाह का दरबारी था।

Sahu साहू=यह शिवाजी का पौत्र और सम्भाजी का पुत्र था। जिस समय इसके पिता मरे, उस समय इसकी उम्र केवल छः वर्ष की थी। कुछ ही दिनों बाद यह और इसकी माँ क़ैद कर लिये गये और औरङ्गज़ेब की मृत्यु तक यह क़ैद रहा। इसका असली नाम शिवाजी था, पर शाऊ (जिसका अर्थ चोर है) नाम औरङ्गज़ेब ने रखा था। यह सन् १७४८ ई० में मरा।

Roe, Sir T. सर टी. रो=यह इङ्गलैंड के राजा प्रथम जेम्स की ओर से सन् १६१५ ई० में जहाँगीर के पास एलची बन कर आया था। यह जहाँगीर से मिलने के लिये अनेक स्थानों में घूमा फिरा। अन्त में गुजरात में उससे भेंट हुई। जहाँगीर के शासन काल की अनेक बातों का उल्लेख इसने किया है।

Roshan-ara. रोशन आरा=यह शाहजहाँ की लड़की थी और षड्यंत्र में इसने औरङ्गज़ेब को बहुत कुछ सहायता दी थी।

Rukn-ud-din. रुक्नुद्दीन=यह शम्सुद्दीन अलतमश का पुत्र था और सन् १२३६ ई० में तख़्त पर बैठा था और सात ही महीने अमलदारी कर पाया था कि उसकी बहिन रज़िया ने इसे तख़्त से उतार दिया। यह गुलाम ख़ान्दान का चौथा बादशाह था। यह रात दिन भाँड और रंडियों के साथ रहता था। नशा और तमाशबीनी ही इसका आठों पहर का काम था। सल्तनत इसने अपनी माँ के भरोसे छोड़ दी थी। इसकी माँ भी बड़ी ज़ालिम थी। रुक्नुद्दीन ने बहुत सा रुपया फ़िजूल फेंक दिया था।

S.

Saad-ulla Khan. सआदउल्लाख़ाँ=यह शाहजहाँ का प्रसिद्ध सचिव था जो सन् १६५५ ई० में मरा।

Subuktegin. सुबक्तगीन=यह ख़ुरासान के सूबेदार अलपतगीन का गुलाम था और इसने अपने मालिक की बेटी के साथ विवाह किया था। जब अलपतगीन मरा; तब यही उसका उत्तराधिकारी हुआ। इसने सन् ९७० ई० में हिन्दुस्थान पर चढ़ाई की थी और पंजाब की सरहद के कई एक दुर्ग हस्तगत कर लिये। यह समाचार सुन राजा जयपाल ऐसा बिगड़ा कि अपनी फ़ौज सिन्ध पार ले जा कर ख़ुरासान पर चढ़ दौड़ा वहाँ यह अनोखी घटना हुई कि जयपाल हारा और सुबक्तगीन को कर देना स्वीकार किया; पर जब वह लाहौर में सही सलामत पहुँच गया; तब उसने ख़िराज न भेजा। इस लिये सुबक्तगीन ने फिर पंजाब पर चढ़ाई की। तब राजा जयपाल ने भी दिल्ली, अजमेर, कालिञ्जर के राजाओं की कुमक ले कर उसका सामना किया। सिन्ध पार लमगान के पास दोनों दलों में युद्ध हुआ। पर इस बार भी जयपाल हारा।

Saadat Khan. सआदतख़ाँ=यह ख़ुरासान का रहने वाला एक सौदागर था। यह मुग़ल सम्राट् मुहम्मदशाह के पास किसी नीच कर्म पर नौकर रखा गया था। यह काम काज करने में बड़ा चतुर था। इसके कार्य-कौशल पर प्रसन्न हो कर मुहम्मदशाह ने इसे अवध की सूबेदारी का सूबेदार बनाया। किन्तु स्वतंत्र कार्य मिलने पर यह अपने मालिक को प्रसन्न न रख सका और मुहम्मदशाह उस पर अप्रसन्न हुआ। सआदत ने अपने मालिक को प्रसन्न तो न किया, बल्कि इसने उनसे बदला लेने की ठानी। इतिहास प्रसिद्ध नादिरशाह उस समय पंजाब में था सआदत ने मुहम्मदशाह के साथ साज़िश की इसी साज़िश का परिणाम नादिरशाह का सन् १७३८ ई०. का आक्रमण है जिसमें भारत की प्रजा का बचा बचाया धन अपहृत किया गया था। देहली का सर्वनाश कर चुकने पर नादिर ने सआदत से दो करोड़ रुपये माँगे। इस पर अपने जीवन की आशा से हाथ धो, सआदत ने आत्मघात कर लिया। इस दग़ाबाज़ी पर भी ध्यान न दे कर मुहम्मदशाह ने इसके भतीजे सफ़दरजंग को अवध की सूबेदारी दी।

Saadat Ali. सादतअली=यह अवध के नवाब आसफ़उद्दौला का भाई था और सर जान शोर ने इसे गद्दी पर बिठाया था।

Safdar Jung. सफ़दरजङ्ग=यह सआदत का पुत्र और अवध का नवाब था; तथा मुहम्मदशाह का दरबारी था।

Sahu साहू=यह शिवाजी का पौत्र और सम्भाजी का पुत्र था। जिस समय इसके पिता मरे, उस समय इसकी उम्र केवल छः वर्ष की थी। कुछ ही दिनों बाद यह और इसकी माँ क़ैद कर लिये गये और औरङ्गज़ेब की मृत्यु तक यह क़ैद रहा। इसका असली नाम शिवाजी था, पर शाऊ (जिसका अर्थ चोर है) नाम औरङ्गज़ेब ने रखा था। यह सन् १७४८ ई० में मरा।

Shahjehan. शाहजहाँ शाहब-उद्-दीन मुहम्मद शाहजहाँ साहिब-इ-क़िरन सानी ।

जहाँगीर की मृत्यु होने के पहिले शाहजहाँ दक्षिण में था और राजमहिषी नूरजहाँ, शाहजहाँ के बदले अपने हाथ के कठपुतले शहरयार को सिंहासन पर बिठाने का उद्योग कर रही थी । किन्तु उसके समस्त उद्योग, शारदीय-प्रभात के मेघ गर्जन की भाँति निष्फल हुए । उसका भाई आसफ़ख़ाँ जहाँगीर की जीवित दशा में, उत्तराधिकारी निर्वाचन में उसका प्रधान अवलम्बन था । किन्तु बादशाह की मृत्यु के बाद उसने नूरजहाँ को परित्याग कर; शाहजहाँ को राज्यभार ग्रहण करने के लिये बुलाया । शाहजहाँ के दक्षिण से राजधानी में आने में कई सप्ताह लगेंगे—इतने समय तक राज-सिंहासन के सूने रहने से कहीं कोई बखेड़ा खड़ा न हो जाय, इस लिये आसफ़ख़ाँ ने ख़ुसरो के पुत्र दुआरबख़्श को सम्राट् बना कर घोषणा कर दी । इसके बाद जब शाहजहाँ आगरे के समीप आया, तब वह बख़्श को मार कर तख़्त पर बैठा । पर ह्वीलर साहब ने लिखा है बुलाक़ी[2] (दुआरबख़्श) को धोखा दिया गया और वह मारा नहीं गया किन्तु

१. शाहजहाँ के सिंहासनारूढ़ होने के पूर्व ही नूरजहाँ को आसफ़ख़ाँ ने नज़रबन्द कर लिया था । उसके बाद नूरजहाँ के दिन कैसे कटे—इसका संक्षिप्त विवरण हम नीचे लिखते हैं । सन् १६४५ ई० में नूरजहाँ परलोकवासिनी हुई । नूरजहाँ जब तक जीवित थी, तब तक शाहजहाँ उसके भरण पोषण के लिये पचीस लाख रुपये वार्षिक देता था । जहाँगीर की मृत्यु के साथ ही साथ नूरजहाँ के सारे अधिकार और उसकी क्षमता विलुप्त हो गयी थी । नूरजहाँ बड़ी तेजस्विनी और अभिमानिनी स्त्री थी—इससे वह अब राजनैतिक विषयों की चर्चा तक नहीं करती थी । उसका सारा समय पढ़ने, अकेली बैठने और आराम करने ही में व्यतीत होता था । अकेली रहने पर भी उसका चरित्र निर्मल था । इस समय धर्म-बल ही उसका एकमात्र सहारा था । विधवा होने पर हिन्दू विधवाओं की तरह उसने रङ्गीन कपड़ों का अथवा आभूषणों का पहनना छोड़ दिया था और वह सफ़ेद वस्त्र पहनती थी । मांस मदिरा का सेवन भी उसने छोड़ दिया था । उसकी आज्ञानुसार उसका मृत शरीर जहाँगीर की क़ब्र के पास ही गाड़ा गया ।

२. "He (Asaf Khan) adviced Bulaki to send a trustee grandee to the Dekhan to call upon Shahjehan to make his submission. The grandee found Shahjehan at Burhanpur, vomiting blood in large quantities, and evidently on the point of death, and he at once set off a courier to report the matter to the new Padishah. Shortly afterwards he was told that Shahjehan was dead, and requested to ask the Padishah to permit the remains to be buried in the tomb of Akbar. Bulaki joyfully consented. He was only too glad to hear of his uncle's death to raise any difficulty as regards the burial.

All this while Shahjehan was alive and well at Burhanpur. He had filled a bason with the blood of a goat, and taken some into his mouth, in order to deceive the emissary from Bulaki. Asaf Khan was weeping sham tears over the death of his son-in-law, and advicing Bulakhi to go to Agra and attend his uncle's funeral. An empty bier was conducted in sad procession to Agra, accompanied by Shahjehan and a large army. Bulaki appeared with a small escort, but was thunderstruck at seeing the plains covered with horsemen, and at once suspected treachery, and galloped off to Lahore. He was only just in time. He heard the noise of the trumpets and kettle-drums proclaiming the accession of Shahjehan as Padishah of Hindustan; and presently a roar of acclamation announced that Shahjehan had entered the fortress of Agra, and ascended the throne of the Great Moghul." —*J. T. Wheeler's Tales from —Indian History.*

लाहौर की ओर भाग गया। फिर वह जिया या मर गया कोई कह नहीं सका।

शाहजहाँ ने आसफ़ख़ाँ की परम लावण्यवती कन्या के साथ विवाह किया था। इस कन्या का नाम आरज़मन्दबानू था। इन दोनों की परिणय-कहानी विचित्र रस और प्रेम सौरभ से परिपूर्ण है। शाहजहाँ के साथ विवाह होने के पूर्व आरज़मन्दबानू एक प्रसिद्ध रईस की धर्मपत्नी थी। मुग़ल अमलदारी में नौरोज़ के उपलक्ष में, राजधानी में सौन्दर्य-लीलामयी ललनाओं का बाज़ार लगता था। इसका नाम "ख़ुशरोज़" अर्थात् आनन्द का दिन था। एक दिन इसी रूप की हाट में रूप की खान राशि आरज़मन्दबानू भी दूकान लगा कर बैठी थी। शाहजहाँ ने पहले पहल आरज़मन्दबानू को यहीं देखा। उस समय वह रूप का बाज़ार उठ सा चुका था। रूपमुग्ध शाहजहाँ वस्तु मोल लेने के छल से, बानू की दूकान पर पहुँचा। बानू की दूकान पर एक कूज़ा मिश्री छोड़ और कुछ भी नहीं बचा था। राजकुमार ने उस मिश्री के कूज़े का यथाधुन्ध मूल्य दे कर उसे मोल ले लिया। साथ ही साथ धन से भी कहीं बढ़ कर मूल्यवान् अपना हृदय राजकुमार ने उस अनिन्द्य-कान्ति-कामिनी के चरणों में समर्पण कर दिया। इसके बाद शाहजहाँ की अगाध प्रेम कहानी प्रकाशित हो गयी। बानू के प्रथम पति ने राजकुमार की अभीष्ट सिद्धि के पथ में प्रतिबन्धक न हो कर अपनी पत्नी को त्याग दिया। इसके बाद शाहजहाँ ने बानू को अपनी धर्मपत्नी बनाया। बानू बेगम शाहजहाँ की केवल प्रेम सम्पदा मात्र ही न थी किन्तु उसीके द्वारा शाहजहाँ के ललाट पर राजतिलक सुशोभित हुआ। सिंहासन पर बैठते ही शाहजहाँ ने आरज़मन्दबानू को मुमताज़ ज़मानी अर्थात् "उस समय का गौरव" की उपाधि से सुशोभित किया। किन्तु उसके भाग्य में राजभोग नहीं लिखा था, शाहजहाँ के सिंहासना-रोहण के दूसरे वर्ष बानू परलोक सिधारी।

प्रियतमा महिषी की मृत्यु से शाहजहाँ को बड़ा भारी शोक हुआ और जब तक वह जिया तब तक बानू को न भूला। किन्तु इस भारी शोक में पड़ वह अपने कर्तव्य कर्म में कभी उदासीन नहीं होता था।

मुग़ल बादशाहों का राज्याभिषेकोत्सव बड़ी धूम-धाम से हुआ करता था। वे लोग इस उत्सव की धूमधाम में बहुत सा धन व्यय कर दिया करते थे। उत्सव के समय बादशाह तुला पर चढ़ते थे और बहुमूल्य रत्न आदि पदार्थों से तौले जाते थे। फिर वह सारे पदार्थ धर्मार्थ दीन दरिद्रों को बाँट दिये जाते थे। शाहजहाँ ने अपने राज्याभिषेक उत्सव को पहले बादशाहों के उत्सवों से चढ़ बढ़ कर सजाने के लिये, कई नई रीतियाँ निकाली थीं। पहले तो वह पुरानी प्रथा के अनुसार तुला पर बैठा, अनन्तर प्यालों में मणि मुक्ता भर कर उसने अपने ऊपर निछावर करा कर उपस्थित लोगों को बँटे। इतिहास-वेत्ता काफ़ीख़ाँ ने लिखा है कि इस उत्सव के उपलक्ष में अश्व, हाथी, अस्त्र, वस्त्र आदि मोल लेने में एक करोड़ साठ लाख रुपये व्यय किये गये थे।

शाहजहाँ का शासन काल केवल बाह्य आडम्बर पूर्ण ही न था, किन्तु उसके समय में मुग़ल साम्राज्य उन्नति की चरम सीमा पर पहुँच गया था। अकबर ने प्रायः समस्त भारतवर्ष को अधिकृत कर के साम्राज्य-शासन की सुव्यवस्था की थी—उसने राजस्व संग्रह की सुव्यवस्था और प्रजा के हितकर नियमों की रचना कर सुशासन का सूत्रपात किया था। शाहजहाँ के अध्यवसाय से अकबर की चलायी व्यवस्था पूर्णता को प्राप्त हुई। शाहजहाँ के राजत्वकाल में अन्तर्विग्रहों का अभाव था। सारे साम्राज्य में अखण्ड शान्ति विराजमान थी। इससे कृषि और वाणिज्य की पूर्ण उन्नति हुई और देश की समृद्धि बढ़ी।

यद्यपि शाहजहाँ विलास-पटु और आराम-प्रिय था, तथापि वह किसी भी राजकार्य की पर्यालोचना करने में औदासीन्य भाव धारण नहीं करता था—शासन सम्बन्धी कार्यों को देखने भालने में उसका मन बहुत लगता था। वह सदा ऐसे ही प्रतिष्ठित मनुष्यों को राजकार्य में नियोजित करता था, जो चतुर और कार्यदक्ष होते थे। इसीसे उसकी अमलदारी में कभी कोई बखेड़ा न होने पाया। किन्तु उसके यत्न से शासन सम्बन्धी नये और उपयोगी नियम बनते थे। काफ़ीख़ाँ ने लिखा है कि अकबर देशविजय और सुप्रबन्ध करने में सिद्धहस्त था, किन्तु शासन कार्य को नियमित रूप से चलाने में आय व्यय को एक सा करने में और राजकार्य को सुचारु रूप से परिचालन करने में शाहजहाँ के जोड़ का भारतवर्ष में दूसरा कोई नरेश नहीं जन्मा।

फ़रासीसी व्यवसायी ट्रेवरनियर ने अपनी यात्रा पुस्तक में लिखा है कि शाहजहाँ प्रजा का शासन नहीं करता था किन्तु प्रजावर्ग को निज सन्तान समझ कर पालता था,[1] शाहजहाँ के सुशासन का प्रमाण यह है कि यद्यपि वह व्यय करने में बड़ा उदार और मुक्तहस्त था; तथापि जब वह मरा; तब राजकोष में चौबीस करोड़ रुपये नक़द–सोने चाँदी के बने सामान, रत्न आदि बहुमूल्य आभूषणों को छोड़ कर निकले थे। शाहजहाँ ने इतना धन प्रजा पर नये कर लगा कर उपार्जन नहीं किया था। काफ़ीख़ाँ के लेखानुसार शाहजहाँ की वार्षिक आय तेईस करोड़ थी; किन्तु ट्रेवरनियर का अनुमान है कि उसकी वार्षिक आय बत्तीस करोड़ थी। तिस पर भी शाहजहाँ की अमलदारी में प्रजा को कोई कष्ट न था और प्रजा की आर्थिक स्थिति अच्छी थी।

शाहजहाँ के सुशासन में चारों ओर सुख चैन से लोग रहते थे। उसके शासन के प्रथम भाग में दक्षिण में युद्ध हुआ। शाहजहाँ भारत के सीमान्त प्रदेशों के युद्ध में भी लिप्त रहा। आडम्बर-प्रिय शाहजहाँ के राजत्वकाल में बादशाह राजधानी की शोभा बढ़ाने एवं शिल्पविद्या की उन्नति करने में अनुरक्त था। उस ने तीन मसजिदें और अनेक भवन निर्माण करवाये। वह धन को पानी की तरह बहाता था।

शाहजहाँ के राजत्वकाल में दक्षिण प्रदेश तीन सुप्रतिष्ठित राज्यों में बँटा था। १ अहमदनगर; २ बीजापुर और ३ गोलकुण्डा। अकबर ने अहमदनगर राज्य का चिह्न मिटा कर, उसे अपने राज्य में मिलाना चाहा था, किन्तु अहमदनगर की अधीश्वरी चाँद सुलताना के लोकातीत शौर्य वीर्य से मुग़ल सेना को परास्त होना पड़ा था और अहमदनगर का कुछ भाग अपने अधिकार में कर, उसे सुलताना के साथ सन्धि कर लेनी पड़ी थी। अकबर के बाद जहाँगीर ने भी दक्षिण पर चढ़ाई की। किन्तु शत्रुसेनापति मलिक अम्बर के प्रतिकूलाचरण से जहाँगीर सफलमनोरथ न हुए। शाहजहाँ के गद्दी पर बैठते ही मलिक अम्बर की मृत्यु हुई। उसकी मृत्यु के समय राजकोष परिपूर्ण था और दो लाख पराक्रमी वीर उसकी सेना की शोभा बढ़ाते थे। बीजापुर में इब्राहीम आदिलशाह प्रबल प्रताप के साथ शासन कर रहा था। उसने सुदृश्य प्रासादावली बना कर राजधानी को सजाया था। इब्राहीम आदिलशाह अच्छे अच्छे राजप्रासाद बनवाने के लिये भारतवर्ष में प्रसिद्ध है। दक्षिण के तीसरे मुसलमानी राज्य गोलकुण्डा की उन्नति का यह समय मध्याह्न काल था। गोलकुण्डाधिपति राज्य की भीतरी बलवृद्धि और प्रजा की अमित समृद्धि ही से सन्तुष्ट न था; किन्तु वह अपने राज्य के आसपास की भूमि को हस्तगत करना चाहता था।

युद्धानुरागी शाहजहाँ ने गद्दी पर बैठते ही इन तीनों समृद्धिशाली दक्षिण के राज्यों को जय करने के उद्देश्य से रणयात्रा की तैयारी की। इतने में उसका एक सेनापति, जिसका नाम ख़ाँजहाँ लोदी था–शाहजहाँ के विरुद्ध हो, अहमदनगर के अधिपति से जा कर मिल गया। बस इसी कारण को आगे कर, मुग़ल सेना ने अहमदनगर पर चढ़ाई कर दी। सेना के परिचालन का भार ले, शाहजहाँ स्वयं दक्षिण गया। आठ वर्ष तक अहमदनगर पर मुग़ल सेना घेरा डाले पड़ी रही। अन्त में अहमदनगर का पतन हुआ और यह राज्य मुग़ल साम्राज्य में मिला लिया गया। अहमदनगर के विध्वस्त किये जाने का समाचार सुन, बीजापुर और गोलकुण्डा के अधीश्वरों ने डर कर, शाहजहाँ की वश्यता स्वीकार की और राज कर देना अङ्गीकार किया। दक्षिण के इन बचे हुए दोनों राज्यों के वशीभूत होते ही मुग़लों का भारतविजय सम्बन्धी सङ्कल्प पूर्ण हुआ। काबुल से उड़ीसा और हिमालय से बरार और अहमदनगर पर्य्यन्त, समस्त भारतभूमि, मुग़ल सिंहासन के नीचे लोटने लगी।

दक्षिण विजय के पश्चात् सीमान्त प्रदेशों में समरानल प्रज्वलित हुआ। काबुल बाबर की अमलदारी में था। बाबर के पीछे भी काबुल उसके उत्तराधिकारियों की अमलदारी में मुग़ल साम्राज्य का एक अङ्ग बना हुआ था। किन्तु काबुल के उत्तर बलख़, बदख़्शाँ एवं पश्चिम में क़न्धार दिल्लीश्वरों के हाथ से निकल गये थे। विशेष कर बलख़ तो बहुत दिनों से मुग़लों के हाथ में न था। शाहजहाँ ने बलख़ को जीतने के लिये राजपूत-राज जगतसिंह को भेजा। राजपूत सेना हिन्दूकुश पर्वत को पार कर, हिमपूर्ण

१. "Shahjehan did not rule over his subjects, but cherished them like children."

वेश में अमित विक्रम से युद्ध करने लगीं । जगतसिंह अपनी अधीनस्थ सेना को उत्साहित करने के लिये, अपने हाथ से कुदाली लेकर मट्टी खोदने में कुण्ठित नहीं होते थे । अन्त में सम्राट् शाहजहाँ स्वयं काबुल में पहुँचा और उसके पुत्र मुराद ने बलख़ को जीता। किन्तु थोड़े ही दिनों बाद उज़बकों ने मुग़लों से बलख़ को फिर छीन लिया । तब शाहजहाँ ने उज़बकों के साथ सन्धि कर ली। बलख़ और बदख़्शाँ को भारतीय मुग़ल सेना न जीत सकी ।

इस दीर्घकालव्यापी युद्ध में मुग़लराज का बहुत सा धन व्यय हुआ । किन्तु इस धनव्यय से कहीं अधिक धनव्यय-विचित्र राजप्रासाद बनवाने और किसानों की सुविधा के लिये नहर खुदवाने आदि कार्यों में हुआ । शाहजहाँ की प्रियतमा महिषी की मृत्यु हुई । उसकी स्मृति को स्थायी बनाने के लिये, आगरे का ताजमहल बनवाया गया । शाहजहाँ ने अपनी प्रियतमा महिषी के स्मरण-चिह्न को जगत् भर में अतुल्य शिल्पसौन्दर्यमय बनाने में कोई बात उठा नहीं रखी । वस्तुतः ताजमहल बनवाते समय शाहजहाँ की दृष्टि में स्वर्ण और धूलि में कुछ भी अन्तर न रह गया । ताजमहल को रत्नादि से विभूषित करने के लिये उसने बहुत सा धन व्यय करके; बुग़दाद, अरब, मिश्र प्रभृति दूर देशों से बहुमूल्य पत्थर मँगवाये । ताजमहल के बनाने में नित्य बाइस हज़ार कारीगर और मज़दूर लगते थे और दस वर्ष में ताजमहल बन कर तैयार हुआ था । शाहजहाँ ने अपनी प्रियतमा महिषी के अपूर्व समाधि मन्दिर को बनवाने में चार करोड़ रुपये लगाये ।[१] एक बार स्लीमन साहब सपत्नीक ताजमहल देखने गये थे । वहाँ से लौटने पर मार्ग में उन्होंने अपनी पत्नी से पूँछा कि ताजमहल कैसा बना है ? इसके उत्तर में उनकी पत्नी ने कहा था— "ताज के सौन्दर्य का वर्णन करना असम्भव है । यदि कोई मनुष्य ताज सरीखा दूसरा भवन बनाने को तैयार हो तो मैं अभी मरने को तैयार हूँ ।"

अकबर ने आगरे में दुर्ग और राजधानी बनायी थी । पर शाहजहाँ को आगरा बहुत गरम जान पड़ा, इस लिये उसने अपनी राजधानी दिल्ली में बनायी और राजधानी के योग्य नया दुर्ग और राजप्रासाद बनवाये । इसके पूर्व मुग़ल सम्राट् जब कभी दिल्ली जाते, तब वहाँ के "दीनपाल" नामक राजप्रासाद में ठहरते थे । किन्तु इस प्रासाद की साधारण सजावट शाहजहाँ जैसे सजावट-प्रिय सम्राट् को क्यों भली जान पड़ने लगी ? सन् १६३८ ई० में नये प्रासाद की नींव डाली गयी और इसके दश वर्ष बाद इस नये राजप्रासाद के प्रसिद्ध दीवान ख़ास में प्रथम बार दरबार लगा । यह नूतन प्रासाद शोभा और सम्पद् का यदि आधार और हिन्दुस्थानी भवन-निर्माण-सम्बन्धी कारीगरी का नमूना कहा जाय तो ऐसा कहना अनुचित न होगा । इस भवन के बनवाने में साठ लाख रुपये व्यय हुए थे ।

सौन्दर्य-प्रिय शाहजहाँ ने आगरा और दिल्ली की शोभा बढ़ाने के लिये तीन मसजिदें बनवायीं । आगरे की जुमा मसजिद का काम सन् १६५० ई० में आरम्भ हुआ । इसके बाद आगरे की मोती मसजिद बनवायी गयी । इन दोनों मसजिदों की बनावट और उसके भीतर की कारीगरी देखते ही बन आती है । इन दोनों मसजिदों के बनवाने में राजकोष से बहुत सा धन व्यय किया गया । इनके अतिरिक्त दिल्ली में भी एक जुमा मसजिद बनवायी गयी ।

शाहजहाँ प्रजाहितैषी नरपति था । उसने प्रजाहितैषी अनेक काम किये थे । कृषिकार्य की उन्नति के लिये और दिल्ली निवासियों को शुद्ध निर्मल जल पिलाने के अर्थ उसने नहर खुदवायी । रावी नदी से एक बड़ी नहर खोदी गयी । बादशाह नामक ऐतिहासिक ग्रन्थ में लिखा है कि इस कार्य की देख रेख के लिये शाहजहाँ स्वयं लाहौर गया था । शाहजहाँ के यत्न और परिश्रम से हिमालय की तलहटी से दुआब के बीच की विस्तृत सारी भूमि सजला हो गयी ।

१ इस धन-व्यय के विषय में प्रसिद्ध इतिहास लेखक हंटर साहब लिखते हैं:— not a healthy state of

Splendid as this erection is, one feels that it was to devote to his wife's tomb. One things, when a ruler had so much money on his own family, and in the with so responsible a trust should expend little edifices on erects, consult the advantage of the people at large."

इससे बड़ा लाभ हुआ और जो भूमि पहले सूखी पड़ी थी वह अब हरी भरी दिखलायी देने लगी और अकाल पड़ने पर जो हज़ारों स्त्री पुरुष काल के गाल में पड़ते थे; उनकी अकालमृत्यु से रक्षा हुई ।

भारतीय मुसलमान नरेशों में शाहजहाँ से बढ़ कर ऐश्वर्यशाली दूसरा नरेश नहीं हुआ । उसके नौकर चाकरों, राजकर्मचारियों एवं दरबार का व्यय बहुत ही अधिक था । उसने अपने दरबार-भवन को सजाने के लिये मयूर-सिंहासन (तख़्त-इ-ताऊस)[1] बनवाया था । यह मयूर-सिंहासन कितनी लागत का था—यह केवल अनुमानगम्य है ।

जो हो, इतना अपरिमित धन व्यय करने पर भी शाहजहाँ ने धन के लिये न तो कभी प्रजा को सताया था, और न कभी उसके राजकोष में धन की कमी हुई । इसीसे लोग बादशाह के कार्य्यों का समर्थन करते थे । शाहजहाँ इतने बड़े बड़े धन साध्य कार्य्य ऐसी अच्छी रीति से करवाता था कि इतना धन ख़र्च कर के भी मरते समय वह राजकोष भरा ही छोड़ गया । मुग़ल बादशाह धन एकत्र करने के लिये जिन उपायों को काम में लाते थे वे न्यायानुमोदित थे अथवा नहीं यह बतलाने की आवश्यकता नहीं है । उन लोगों ने एक यह भी उपाय निकाला था कि जब कोई अमीर उमराव धन छोड़ कर मरता, तब उस मरे हुए का सारा धन राजकोष में जमा कर लिया जाता था । यह प्रथा अकबर के समय में भी प्रचलित थी । शाहजहाँ की अमलदारी में लायकनासख़ाँ नामक एक बड़ा धनी अमीर था । वह जब मरने लगा; तब उसने विचारा कि सारा धन मेरे बाद राजकोष में तो चला ही जायगा, अतः मैं इसे धर्मार्थ वितरण कर पुण्य सञ्चय क्यों न करूँ । यह सोच उसने सारा धन दीन दरिद्रों को बाँट दिया और सन्दूक़ में फटे जूते और झंगड़ खंगड़ भर कर उनमें ताले बन्द कर दिये । उसके मरने के बाद जब वे सन्दूक़ खोले गये; तब शाहजहाँ उनके भीतर वाली चीज़ों को देख बड़ा लज्जित हुआ । इसी ढंग की एक और भी घटना हुई । एक बड़ा धनी बनिया बहुत सा धन छोड़ कर मरा । उसका पुत्र विलासी था—सो वह पिता का बहुत सा धन लम्पटता में फूँके डालता था । यह देख और बचे हुए धन की रक्षा के लिये उसकी माँ ने शाहजहाँ के दरबार में फ़रियाद की । शाहजहाँ ने कहा—अच्छा जो धन बचा है उसका आधा राजकोष में जमा करो । इस पर उस बनिनी ने कहा—"मेरा पुत्र अपने पिता के धन का अधिकारी है । पर जहाँपनाह यह तो बतलावें कि मेरे स्वामी के साथ आपका क्या सम्बन्ध था

१. The length of this throne was six feet, and the breadth four. It was studded with 108 rubies, weighing from 125 to 250 ratties each, and with 160 emeralds weighing from 36 to 72 ratties. Its canopy was set entirely with diamonds and pearls and was ornamented with a fringe of pearls.

A golden peacock, with its tail spread and studded with jewels, was placed on the upper part of the throne. The tail was composed entirely of sapphires and a large ruby was set into the breast. A pearl of 63 ratties was suspended on the neck, and there was a prudent diamond of 117 ratties. The twelve supports to the canopy were studded with round lustrous pearls of from 9 to 12 ratties in weight, and the staves of the two umbrellas placed on either side of the throne were 8 feet long and as it were, immersed in diamonds."

—*Raja Shiva Prasad.*

१. शाहजहाँ के समसामयिक इतिहास लेखक अब्दुलहामीद ने लिखा है कि राजकोष में बहुत दिनों के सञ्चित सब बहुमूल्य रत्न और अड़सठ हज़ार रुपयों के रत्न आदि ख़रीद कर तथा चौदह लाख रुपये के मूल्य से एक लाख तोले विशुद्ध सोना ख़रीद कर सुनारी विभाग के अध्यक्ष बिबादलख़ाँ को सौंपा गया था । यह मयूर-सिंहासन सात वर्ष में बन कर तैयार हुआ था और उसकी बनवाई (मजदूरी) में एक करोड़ रुपये लगे थे ।

जिससे आप उसकी कमाई में से आधा धन माँगते हैं?" यह सुन बादशाह बहुत हँसा और उससे आधा धन लेने की आज्ञा लौटा ली।

भरा पूरा राजकोष, शान्तिपूर्ण देश और समृद्धिशाली प्रजा के होते हुए भी पूर्णरूप से सुख शान्ति शाहजहाँ न भोग सका। उसके पुत्रों में परस्पर असद्भाव उत्पन्न हो गया था। शाहजहाँ के चार पुत्र और दो कन्याएँ थीं। पुत्र—दारा, शुजा, औरंगज़ेब और मुराद। कन्या—जहाँआरा और रोशनआरा। सन् १६३३ ई० में सब से प्रथम राजकुमार राजनैतिक क्षेत्र में अवतीर्ण हुए।

किशोरवयस्क औरंगज़ेब[1] अपनी अवस्था से अधिक प्रखर बुद्धिमत्ता और असामान्य साहस का परिचय दे कर, बादशाह का प्रियपात्र बन गया। स्नेहशील बादशाह कभी किसी राजकुमार की उपेक्षा नहीं करता था। तिस पर भी और तीनों राजकुमार औरंगज़ेब पर बादशाह की विशेष कृपा देख ईर्ष्या वश जलते थे। विशेषतः मदगर्वित उच्छृङ्खल शुजा को अपने पिता का यह पक्षपात असह्य था। अतः उसने राज दरबार से दूर रहने की अभिलाषा प्रकट की।

तदनुसार बादशाह ने उसे पाँच हज़ारी मनसबदार बना कर बङ्गाल को भेज दिया। द्वितीय राजकुमार शुजा का इस प्रकार मान होते देख, ज्येष्ठ पुत्र दारा[2] ने इस से अपना घोर अपमान समझा। दारा को क्षुब्धचित्त देख शाहजहाँ ने उसे शान्त करने के अभिप्राय से उससे कहा—"दारा! सब राजकुमारों में तुम्हीं सबसे बढ़ कर

---

१ औरंगज़ेब के विषय में भिन्न भिन्न इतिहास लेखकों का मत नीचे उद्धृत करना आवश्यक प्रतीत होता है:—

"Aurangzeb was the cleverest and craftiest of all the four sons of Shahjehan and has often been compared with his famous English contemporary, Oliver, Cromwell. He professed to be a strict Mahomedan, zealous for God and the Prophet, and he sought the support of the old Mahomedan party, who had been out of court favour ever since Akbar had over-ridden Ulama. * * * He was often to be seen carrying a Koran under his arm, and praying aloud in the streets of Aurangabad like the Pharisees of old." —*J. T. Wheeler.*

"The youngest of all Aurangzeb was reserved in manner, and so assiduous in business, that had people not been assured to the contrary, they might have supposed him not averse to engage in public affairs. But if Aurangzeb himself could be believed, this was wholly a mistake, his thoughts were not on this world. Unlike Baber and his successors who seem to have been indifferent to all religion. Aurangzeb gave out that he was a devoted Mahomedan."

—*Rev. Robert Hunter.*

"Aurangzeb was very far-sighted crafty, and selfish and a bigotted Musalman. —*Raja Shiva Prasad.*

२ दारा के विषय में इतिहास लेखकों का मतः—

Dara, the eldest, though somewhat rash and impetuous, had still many good points about him, and was a lover of literature."

—*Rev. Robert Hunter.*

"Dara was the first born * * but he was the most unpopular of the four. He offended Mahomedans by despising the Koran. He offended Hindus by insulting the Rajas. —*J. T. Wheeler.*

"Dara Shikoh was liberal minded he concerted with devotees of every creed; his form of belief was that of the Vidant and by his order the *Upanishads* were translated into Persian." —*Raja Shiva Prasad.*

मुझे प्रिय हो, इससे तुम्हें मैं अपने पास ही रखूँगा। किन्तु दारा का मन जब इन बातों से शान्त न हुआ; तब बादशाह ने उसे छः हज़ारी मनसबदारी प्रदान की । तैमूरवंशीय राजकुमारों में भ्रातृ-स्नेह बहुत दिनों पहले ही से नष्ट हो चुका था। शाहजहाँ के पुत्र भी एक दूसरे से घृणा करते थे। इस आपस की फूट से कहीं कोई बखेड़ा न उठ खड़ा हो—इस अभिप्राय से उनको एक दूसरे से पृथक् रखना ही बादशाह को उचित जान पड़ा । अतः उसने शुजा को बङ्गाल का, औरंगज़ेब को दक्षिण का और मुराद को गुजरात का शासनकर्त्ता बना कर भिन्न भिन्न प्रान्तों में भेज दिया । दारा ज्येष्ठ होने के कारण बादशाह का उत्तराधिकारी बनाया गया और अपने बाप के पास ही राजधानी में रहा ।

किन्तु इस व्यवस्था से कुछ भी फल न हुआ। चारों राजकुमार वयस्क और कार्यपटु थे। वे जन धन शाली प्रदेशों के शासनकर्त्ता हो कर, अपना अपना बल बढ़ाने लगे और पिता की मृत्यु के बाद चारों भाइयों में से प्रत्येक जन स्वयं गद्दी पर बैठने का और अपने भाइयों को नीचा दिखाने का उपाय सोच रहा था। उन लोगों के षड्यंत्र से शाहजहाँ के जीवन काल ही में राजपुरुष अपने सुबीते के अनुसार एक न एक राजकुमार के पक्षपाती हो गये थे। शाहजहाँ को यह बात बहुत दिन पहले ही विदित हो गयी थी और उसे निश्चय हो गया था कि राजसिंहासन के लिये राजकुमारों में अवश्य विवाद होगा । इससे शाहजहाँ सदा चिन्तित रहता था ।

इस प्रकार मानसिक चिन्ता से जर्जरित हो शाहजहाँ सन् १६५७ ई० में बीमार पड़ा । उसकी बीमारी इतनी बढ़ी कि उसके जीवन की आशा न रही । बुढ़ापे के कारण राज्य का सारा काम काज दारा ही किया करता था। अब बादशाह के बीमार होने पर वह बादशाह का प्रतिनिधि बन कर, राज्यशासन सम्बन्धी सब काम काज करने लगा । जब शाहजहाँ के जीवन की आशा न रही; तब इस समाचार को छिपाने के लिये दारा बहुत उत्सुक हुआ और उसने डाँक का जाना और यात्रियों की यात्रा बन्द कर दी, किन्तु उसने यह न विचारा कि भारतवर्ष जैसे देश में ऐसी ख़बरें कभी गुप्त नहीं रखी जा सकतीं । उक्त समाचार को छिपाने का प्रयत्न करने पर भी, बादशाह की असाध्य बीमारी का समाचार सारे मुग़ल साम्राज्य में प्रचारित हो गया । यही नहीं किन्तु बादशाह की मृत्यु का संवाद भी चारों ओर फैल गया ।

पिता की मृत्यु का संवाद सुन तीनों राजकुमार अपने अपने सूबों को परित्याग कर, शोणितलोलुप क्षुधित व्याघ्र की तरह राजधानी की ओर दौड़े । शुजा ने बङ्गाल में यह किंवदन्ती फैला दी कि दारा ने बादशाह को विष खिला कर मार डाला है और वह पिता की हत्या का भाई से बदला लेने को जाता है ।

१ शुजा और मुराद के विषय में राजा शिवप्रसाद लिखते हैं:—

"Shuja was a drunkard and a sensualist, and Murad was considered somewhat weak minded."

—*Raja Shiva Prasad.*

"Shuja the second, was a pleasure lover but still distinguished for courage. Morad the third, was bold and delighted in war.

—*Rev. Robert Hunter.*

किसी किसी इतिहास लेखक ने औरंगज़ेब को शाहजहाँ के चार पुत्रों में सब से छोटा पुत्र और किसी ने औरंगज़ेब को तृतीय और मुराद को चतुर्थ पुत्र बतलाया है । पर हम मुराद ही को शाहजहाँ का चतुर्थ पुत्र मानते हैं ।

२ शाहजहाँ ने सिंहासन पाने के लिये पिता के विरुद्ध शस्त्र उठाया था । उसका बदला मिलने का अब समय उपस्थित हुआ था । यह संसार " इस हाथ दे उस हाथ ले " का बाज़ार है । पादड़ी हंटर ने लिखा है:—

"Had God forgotten the early crimes through which Shahjehan had reached the throne in sending him such prosperity? Ah, no! God never forgets, and the proud ruler of Delhi was now about to reap as he had sown."

औरंगज़ेब बड़ा चतुर था, उसने भेद नीति से काम निकालने का निश्चय कर एक पत्र मुराद को लिखा। उस पत्र में लिखा था—"भाई मुराद! दारा काफ़िर है, शुजा गुमराह हो गया है और मैं स्वयं फ़क़ीर हूँ। यदि मैं तुझे तख़्त पर बिठा कर हिन्दुस्थान का बादशाह बना सका, तो मैं वैराग्य ले कर, अपने जीवन के शेष दिन परमात्मा की आराधना में, पैग़म्बर की क़ब्र के पास बैठ कर बिता दूँगा।" इस पत्र को पढ़ सरलस्वभाव मुराद के मन में औरंगज़ेब की ओर से पूरा विश्वास और अन्य दोनों भाइयों की ओर से घृणा उत्पन्न हो गयी।

तीनों राजकुमारों में शुजा ही सब से पहले दलबल ले कर राजधानी की ओर बढ़ा। यह समाचार सुन कर दारा ने उसका सामना करने के लिये सेना भेजी। दोनों ओर की सेनाओं का आमना सामना बनारस के पास हुआ। शुजा शाही सेना का आक्रमण न सह कर भागा।

इतने में मुराद और औरंगज़ेब के ससैन्य आने का संवाद सुन दारा मुसलमानी और राजपूत सेना को साथ ले उन दोनों को रोकने के लिये आगे बढ़ा।

दारा की सेना और मुराद एवं औरंगज़ेब की सेनाओं का आमना सामना जून सन् १६५८ ई० में चम्बल नदी के तट पर सामगढ़ में हुआ। टॉडर साहब ने लिखा है कि दारा की सेना के मुसलमान सेनापति गुप्तरीत्या औरंगज़ेब से मिले हुए थे। अतः जिस समय युद्ध हुआ, उस समय वे न तो स्वयं लड़े और न अपनी सेना को लड़ने की आज्ञा दी। बेचारे राजपूत वीर जीजान लड़ा कर लड़े और शत्रु द्वारा टुकड़े टुकड़े कर डाले गये। किन्तु राजपूतों ने बड़ी वीरता से युद्ध किया। राजपूत सेना के अधिपति राजा रामसिंह मारे गये, तब राजपूत सेना के पैर उखड़े। यह देख औरंगज़ेब ने अपनी सेना का उत्साह बढ़ाने के लिये अपने सैनिकों से कहा—"ईश्वर तुम्हारे साथ है। (अल्लाहुमाऊम)" देखते देखते दारा की सेना कट गयी और दारा अपने प्राण ले कर पंजाब की ओर भाग गया। औरंगज़ेब ने राजधानी में प्रवेश कर, दुर्ग पर अपना अधिकार कर लिया और पिता को नज़रबन्द कर लिया।

अनन्तर औरंगज़ेब और मुराद, दारा का पीछा करते करते मथुरा पहुँचे। सरलहृदय मुराद शौर्य वीर्य से अलंकृत था। उसको स्वप्न में भी यह आशा न थी कि औरंगज़ेब उसके साथ विश्वासघात कर के उसे सुरपुर भेज देगा। पर मथुरा में पहुँचते ही मुराद को अपनी भूल का फल हाथों हाथ मिल गया। औरंगज़ेब ने प्रीतिभोज में मुराद को अधाधुन्ध मदिरा पिला कर अचेत अवस्था में बन्दी बना लिया और स्वयं राजमुकुट धारण कर वह बादशाह बन गया। राजकुमार मुराद के पैरों में चाँदी की बेड़ियाँ डाल दी गयीं। फिर उसे हाथी पर सवार करा औरंगज़ेब ने उसे ग्वालियर के दुर्ग में बन्द रखने के लिये भेजा।

इस घटना के थोड़े ही दिनों बाद शुजा ने सेना एकत्र कर चढ़ाई की। शुजा को भगाने के लिये औरंगज़ेब स्वयं सेना ले रणक्षेत्र में अवतीर्ण हुआ। दोनों ओर की सेनाओं की मुठभेड़ होते ही घोर युद्ध आरम्भ हुआ। बहुत देर तक युद्ध होने पर शुजा का भाग्य जागा और उसकी जीत हुई। तब औरंगज़ेब ने अन्य उपाय न देख शुजा को धोखा दे कर जीतना चाहा। औरंगज़ेब की चाल में आ कर, शुजा के दक्षिण बाहुस्वरूप अलीवर्दीख़ाँ ने शुजा से कहा कि आप हाथी से उतर कर घोड़े पर सवार हो जाइये। शुजा ने वैसा ही किया। यह देख औरंगज़ेब ने विजय का डंका बजाने की आज्ञा दी। शुजा की सेना ने शत्रु के विजय का डङ्का सुन और शुजा को हाथी की पीठ पर न देख अपने मन में समझा कि शुजा मारा गया और औरंगज़ेब की जीत हुई। यह समझ शुजा की सेना में गड़बड़ी मची और सैनिक भाग खड़े हुए। इस हार से शुजा की क्षमता सदा के लिये विलुप्त हुई।[1] तभी से यह कहावत प्रसिद्ध हुई कि शुजा अपने हाथ से जीती बाज़ी हारा।

शुजा सपरिवार नष्ट हुआ, दारा पंजाब की ओर भाग गया, मुराद ग्वालियर की अन्धेरी कालकोठरी में बन्द है, तो भी औरंगज़ेब अपने को निरापद नहीं समझता

१ शुजा ने बङ्गाल में जा कर फिर सेना एकत्र कर के औरंगज़ेब पर चढ़ाई करने की चेष्टा की थी; किन्तु जब उसके सारे प्रयत्न विफल हुए; तब वह सपरिवार अराकान राज्य में चला गया। पर वहाँ के निष्ठुरहृदय राजा ने उसे सपरिवार बड़ी नृशंसता से मार डाला।

और दारा का पीछा करने के लिये आगे बढ़ रहा है। दारा भी निश्चिन्त नहीं है। उसने फिर सेना एकत्र कर औरंगज़ेब का सामना किया। किन्तु दारा इस बार भी पराजित हुआ और बेगम, शाहज़ादी और कतिपय अनुचरों के साथ अहमदाबाद की ओर भाग गया।

इस समय दारा के कष्टों का पूँछना ही क्या है? रास्ते में कृतघ्न अनुचरों ही ने उसकी सारी सम्पत्ति लूट ली-यहाँ तक कि औरतों के शरीर से आभूषण तक उतार लिये। किसी प्रकार मरता गिरता दारा, अहमदाबाद पहुँचा। किन्तु वहाँ के मुसलमान शासन कर्त्ता ने औरंगज़ेब से डर कर दारा को वहाँ न ठहरने दिया। जब यह संवाद दारा ने सुना; तब उसके साथ की स्त्रियों के आर्त्तनाद को सुन, उस समय पत्थर भी पसीजने लगा। दारा बहुत घबड़ाया। वह प्राण रक्षा के लिये एक सामान्य से सामान्य सिपाही तक से परामर्श करने लगा। किन्तु कोई भी उसे ऐसा उपाय न बता सका, जिससे उसकी सपरिवार रक्षा हो सकती। दारा निरुपाय हो, उस देश के डाँकुओं में मिल गया। डाँकुओं की सहायता से वह गुजरात पार कर कच्छ देश में पहुँचा। दारा ने कच्छ के ज़मींदारों का आश्रय ग्रहण किया। किन्तु कच्छ के ज़मींदार दारा के पहले उपकारों को भूल कर, उसे हताश करने में तिल भर भी कुण्ठित न हुए। तब दारा आँखों में आँसू भर कर वहाँ से भी बिदा हुआ। इसके बाद वह अनेक स्थानों में घूमने लगा; किन्तु किसीने उसे न ठहरने दिया। अन्त में वह धान्देर के मुसलमान अधिपति मलिक ज़ियान के पास पहुँचा। मलिक ज़ियान ने उसे सम्मानपूर्वक अपने यहाँ ठहराया; किन्तु गुप्त रीति से वह औरंगज़ेब को प्रसन्न करने के लिये दारा को पकड़ कर उसके पास भेजने के प्रयत्न में लगा था। मलिक का आश्रय ग्रहण करने के कई एक दिन बाद दारा की महिषी अनाहार और मार्ग के कष्टों के कारण मर गयी। तब उसकी मृत देह को लाहौर में दफ़नाने के लिये अपने बहुत से नौकरों के साथ उसे लाहौर भेजा और स्वयं मलिक के घर रहने लगा।

जब दारा के बहुत से नौकर चले गये; तब अवसर पा कर मलिक ने दारा को उसके शत्रु औरंगज़ेब को देना चाहा। दारा सो रहा था। उस समय मलिक नौकरों को साथ लिये हुए उसकी कोठरी में घुसा। दारा के पास ही उसका पुत्र भी सो रहा था; जब उन लोगों ने उसे पकड़ना चाहा; तब उसने बड़े साहस से अपने को बचाया और धनुष, बाण उठा कर मलिक के तीन नौकरों का काम तमाम किया। दारा का पुत्र अकेला और शत्रु संख्या बहुत थी अतः थोड़ी ही देर में वह थक गया। तब मलिक ने उसके दोनों हाथ पीठ पर बाँध दिये। इस हाथापाही की धप धप और कोलाहल सुन दारा भी जाग गया। उसने देखा जो मेरा रक्षक था वही अब भक्षक बना सामने खड़ा है। उसने मर्मान्तक क्षोभ और दुःख में भर कर कहा—"कृतघ्न! तू शीघ्र अपना काम पूरा कर। मैं औरंगज़ेब की अनुचित अभिलाषा पूरी करने के लिये प्राण देने को तैयार हूँ। क्या तू भूल गया कि मैंने एक बार तेरे प्राण बचाये थे।[1]" मलिक ने दारा के वाक्य सुन उसके पुत्र के बन्धन खोल दिये और उन दोनों के ऊपर पहरा नियुक्त कर दिया। अनन्तर उनका सारा माल असबाब छीन कर मलिक ने उन दोनों को औरंगज़ेब के हवाले किया।

मुग़ल साम्राज्य का भावी उत्तराधिकारी बन्दी के वेश में दिल्ली में लाया गया। औरंगज़ेब ने उसे फटे कपड़े पहना कर सारे नगर में फिराया। नगरवासी दारा की दुर्दशा देख उत्तेजित हुए। क्या स्त्री क्या पुरुष सब बड़े दुःखी थे। औरंगज़ेब का इशारा पा कर मौलवियों ने गुप्त सभा की और दारा को विधर्म्मी बतला कर उसे प्राणदण्ड देने की व्यवस्था दी।

दारा, पुत्र सहित कारागार में था। दारा की प्राणदण्ड की आज्ञा के प्रचारित होते ही औरंगज़ेब के नौकर दारा के पुत्र को बलपूर्वक कारागार से पकड़ कर ले गये। इस घटना से दारा ने समझ लिया कि अब मेरी मृत्यु समीप है। पादड़ी लोग दारा को ईसाई बनाने का यत्न करते ही थे। मरने के पहिले दारा को ईसाई धर्म में अनुराग उत्पन्न हुआ। उसने एक पादड़ी को कारागार की कोठरी में बुलाने की

१ एक बार शाहजहाँ ने मलिक को किसी गुरुतर अपराध के लिये प्राणदण्ड की आज्ञा दी थी, किन्तु दारा के अनुरोध करने पर मलिक के प्राण बचे थे।

अनुमति माँगी। किन्तु अनुमति नहीं मिली। तब दारा ईश्वर से दया भिक्षा माँगने का प्रयासी हुआ। दारा ने कई बार कहा—"मुहम्मद ने मेरा विनाश किया—ईश्वर मेरी रक्षा करेंगे।" इतने में नाज़िर नामक एक दुरात्मा दारा को मार डालने के लिये कारागार में घुसा। एक क्षण भर में दारा का काम तमाम हुआ। दारा का कटा हुआ सिर औरंगज़ेब के सामने रखा गया। यह सिर असल में दारा का है कि नहीं—इस बात की भली भाँति परीक्षा कर, औरंगज़ेब ने उस कटे हुए सिर को अपने पिता शाहजहाँ के पास सौग़ात में भेजा।[1]

औरंगज़ेब के भाइयों में अब अकेला मुराद रह गया था। वह भी ग्वालियर में बन्दी था। वहाँ पर सरसुनबाई नाम की प्रियतमा पत्नी उसकी एकमात्र सङ्गिनी थी। ये दोनों रो रो कर समय व्यतीत कर रहे थे। कुछ अनुरक्त भृत्यों के उद्योग से मुराद ने रस्सी द्वारा क़िले से उतर कर भाग जाने का प्रबन्ध किया। किन्तु उसकी पत्नी उस कारागार में अकेली रहना स्वीकृत न कर चिल्ला चिल्ला कर रोने लगी। उसके रोने धोने से पहरे वाले जाग उठे। मुराद न भाग सका। जब औरंगज़ेब ने यह समाचार सुना; तब उसने मुराद को भी इस पृथ्वीतल से विदा करने का सङ्कल्प किया। राजविप्लव का जिस समय सूत्रपात हुआ था उस समय मुराद गुजरात का शासनकर्त्ता था। उस समय उसने एक राजपुरुष का वध किया था। औरंगज़ेब की प्रसन्नता के लिये एक आदमी ने मुराद पर उस राजपुरुष के मारने का अभियोग लगाया। विचार के खिलवाड़ के बाद, मुराद का अपराध प्रमाणित हुआ और उसे औरंगज़ेब ने प्राणदण्ड दिया।

शाहजहाँ बन्दी बन कर सात वर्ष जीवित रहा। उसी समय फरासीसी यात्री बर्नियर दिल्ली में गया था। यह औरंगज़ेब का पक्षपाती नहीं था। उसने भी लिखा है कि औरंगज़ेब, क़ैदी बाप की परिचर्या में रहता था। वह हर एक बात में पिता की अनुमति लेता था। स्वाधीनता को छोड़ कर, औरंगज़ेब सब वस्तु पिता को देने के लिये सदा प्रस्तुत रहता था। इस बन्दी दशा में भी शाहजहाँ की भोग लालसा नहीं घटी थी। वह सदैव भोग विलास में डूबा रहता था। किन्तु जब कभी उसे धर्म-कर्म की याद आती तब वह मुल्लाओं से क़ुरान पाठ सुनता था।

शाहजहाँ की इस दशा में, उसकी कन्या जहानआरा अपने पिता की सेवा शुश्रूषा मन लगा कर करती थी। शाहजहाँ ने प्रसन्न हो कर उसे "बादशाह बेगम" की उपाधि दी थी। क्या घर का प्रबन्ध, क्या राजनैतिक मंत्रणा-सभी बातों में शाहजहाँ, बादशाह बेगम की सहायता लिया करता था। जहानआरा भी पिता का सदा मङ्गल चाहती थी। औरंगज़ेब की चाल से जब शाहजहाँ बन्दी किया गया, उस समय जहानआरा स्वयं कारावासिनी बन गयी थी। उसकी भक्तियुक्त सेवा शुश्रूषा से शाहजहाँ का कारागार सम्बन्धी क्लेश बहुत कुछ घट गया था।

Shah Shuja. शाहशुजा=यह काबुल का अमीर था और अहमदशाह अब्दाली का वंशधर था। सन् १८३९ ई० में जिस समय आकलेण्ड भारतवर्ष के गवर्नर जनरल थे, उस समय दोस्त मुहम्मद ने इसे तख़्त से उतार दिया था। तब यह अंगरेज़ों के शरण में आया और अंगरेज़ों ने तलवार के बल फिर इसे वहाँ के तख़्त पर बिठाया। (देखो दोस्तमुहम्मद)

Shahji. शाहजी= ये छत्रपति शिवाजी के पिता थे और अहमदनगर के निज़ामशाही राजवंश के दसवें बादशाह बहादुरशाह की मृत्यु के अनन्तर, उसके नाबालिग़ बेटों के वज़ीर हो गये थे। पर लखजी को उनके वज़ीर होने का डाह हुआ और उन्होंने शाहजहाँ से चुपचाप मिल कर, अहमदनगर पर चढ़ाई करवा दी। अहमदनगर की छोटी पूरी सेना दिल्ली के सम्राट् की सेना से हार कर भागी। तब शाहजी, मावली के दुर्ग में जा कर युद्ध की तैयारियाँ करने लगे

---

१ बर्नियर ने लिखा है कि दारा के कटे सिर की परीक्षा कर के औरंगज़ेब ने कहा था:— "Ah (Ai) Badbakht! A wretched one! let this shocking sight no more offend my eyes, but take away the head and let it be buried in Humayon's tomb." हमने यह हाल बर्नियर के आधार पर लिखा है।

उन्होंने छः मास तक क़िले की रक्षा की। किन्तु अन्त में जब उन्हें मालूम हुआ कि यह सारा बखेड़ा लूखजी का किया हुआ है और इसका कारण मेरा वज़ीर होना है, तब उन्होंने राज्य के मङ्गल के लिये नौकरी छोड़ दी और बीजापुर राज्य में नौकरी करनी चाही। वहाँ के दीवान मुरार जगदेव ने उनका बड़ा सत्कार किया।

Shamsher Bahadur. शमशेरबहादुर=यह पेशवा बाजीराव का शास्त्र-विरुद्ध पुत्र था। इसीके पुत्र अलीबहादुर के वंशधर बाँदा के नवाब थे।

Sher Singh. शेरसिंह=लाहौर का एक सिक्ख सरदार था, जिसने अपने भाई खड्गसिंह के पुत्र निहालसिंह के मरने पर राज्य-शासन अपने हाथ में लिया था। सन् १८४३ ई० में ध्यानसिंह के षड्यंत्र से शेरसिंह पुत्र सहित मार डाला गया था।

Shore, Sir John. सरजानशोर=यह लार्ड कार्नवालिस की कौंसिल का प्रथम सदस्य था और सन् १७९३ ई० में कार्नवालिस के विलायत जाने पर यहाँ का गवर्नर हुआ। इसके शासन काल की मुख्य नीति थी "किसी के बीच में न पड़ना"।

Non-intervention Policy.

इसीके शासन-काल में सन् १७९७ ई० में नवाब वज़ीर आसिफुद्दौला मरा। वज़ीरअली उसकी जगह बैठा। लेकिन पीछे से सरकार को मालूम हुआ कि वज़ीरअली मृत नवाब का असली पुत्र नहीं है। तब वह नवाबी के मसनद से उतारा गया और मृत नवाब का भाई सआदत अली ख़ाँ बिठाया गया। सआदत ने, अवध में दस हज़ार फ़ौज रखने के लिये अङ्गरेज़ों के साथ छिहत्तर लाख रुपये साल देने की लिखा पढ़ी की और इलाहाबाद का क़िला भी उनको सौंप दिया। सन् १७९८ ई० में सरजानशोर ने इङ्गलेण्ड लौट कर लार्ड टैनमौथ का ख़िताब पाया था।

Shuja. शुजा=यह शाहजहाँ का दूसरा बेटा था और बड़ा लम्पट तथा निकम्मा था। यह बङ्गाल का सूबेदार बना दिया गया था और राजमहल में रहा करता था। (देखो औरङ्गज़ेब)

Shuja-ud-dowla. शुजाउद्दौला=यह अवध का नवाब था और बङ्गाल के नवाब मीरक़ासिम का पक्ष ले कर अङ्गरेज़ों से लड़ा था, पर बक्सर के पास यह बुरी तरह हारा।

Sikandar Sur. सिकन्दर सूर=यह सूर ख़ान्दान का पाँचवाँ बादशाह था। इसने सन् १५५६ ई० में पंजाब में अपनी जीत का डंका बजाया था।

Sikandar Lodi. सिकन्दर लोदी=इसका असली नाम निज़ामख़ाँ था और एक सुनार से पैदा हुआ था। इसने अपने बाप बहलोल की सल्तनत बढ़ायी और बिहार को जीता। यह पढ़े लिखों का सम्मान करता था; पर हिन्दुओं पर यह बड़े अत्याचार किया करता था। इसने हिन्दुओं की तीर्थयात्रा बन्द कर दी—उनके मन्दिर और मूर्तियाँ तोड़ फोड़ डालीं। एक ब्राह्मण ने केवल यही कहा था कि हिन्दू मुसलमान—दोनों का मज़हब सच्चा है बस इतने पर ही वह मार डाला गया। मथुरा में इसने हिन्दुओं की हजामत तक बन्द कर दी थी, तो भी यह अच्छे बादशाहों की गणना में गिना जाता था। कबीर इसीके समय में हुआ था और फिरंगियों का पहला जहाज़ भारतवर्ष में इसीके समय में आया था। यह छत्तीस वर्ष राज्य कर के मरा। (सन् १४८१ से १५१७ तक)

Sikandar Jah, Mirza. सिकन्दर जाह मिर्ज़ा=निज़ाम हैदराबाद के ख़ान्दान का एक पुरुष। यह निज़ामुलमुल्क का पौत्र और निज़ामअली का पुत्र था। यह सन् १८२८ ई० में मरा।

Sivaji 1. छत्रपति शिवाजी।

सन् १६२७ ई० के मई महीने में पूने से पचास मील उत्तर शिवनेरीगढ़ में शिवाजी का जन्म हुआ था। इनके पिता शाहजी का स्नेह शिवाजी के बड़े भाई शम्भूजी ही पर विशेष था। इस लिये शम्भूजी को तो वे सदा अपने साथ रखते थे और शिवाजी अपनी माता के साथ रहा करते थे।

शिवाजी के जन्म के तीन वर्ष बाद शाहजी ने एक मराठिन स्त्री से विवाह किया। उसका नाम था तुकाबाई। दूसरा विवाह करने के कारण शिवाजी की माता जीजाबाई से उनका मन मुटाव हो गया। उस समय शाहजी करनाटक में रहा करते थे। शाहजी ने जीजीबाई को और निज पुत्र शिवाजी को अपनी पूना वाली जागीर में भेज दिया और दादाजी कोंड-देव वा कर्णदेव नामी एक सुचतुर मनुष्य को उनकी रखवाली और जागीर की देख रेख के लिये उनके साथ कर दिया।

दादाजी कर्णदेव ने पूना में पहुँच कर, शिवाजी और उनकी माता के रहने के लिये एक अच्छा महल बनवा दिया। इसीमें शिवाजी का बचपन व्यतीत हुआ। दादाजी ने शिवाजी को उच्चशिक्षा देने का बहुत यत्न किया, पर शिवाजी की इस ओर रुचि बहुत कम थी। इनके मन का झुकाव सिपाहगरी की ओर था। इस लिये दादाजी ने शिवाजी को सिपाह-गरी की शिक्षा दिलायी। पढ़ने लिखने में तो नहीं, पर युद्धविद्या में वे थोड़े ही परिश्रम से बड़े निपुण हो गये। शिवाजी का मन धर्म की ओर आरम्भ ही से था और रामायण महाभारत की वे कथाएँ उन्हें बड़ी रुचिकर होती थीं जिनमें आर्य वीरों की वीरता का वर्णन रहता था। शिवाजी की लड़कपनाही से यह दृढ़ प्रतिज्ञा थी कि हिन्दु-धर्म-द्वेषियों को नाश कर, सारे भारत में सनातन धर्म का प्रचार करूँगा। यह टेक उन्होंने अपने जीवन के अन्त दिन तक निभाई।

मावली जाति के लोगों पर शिवाजी का बड़ा विश्वास था और उन लोगों पर इनका स्नेह भी अधिक था। इसका कारण यह था कि ये लोग बड़े उद्योगी, काम काजी, साहसी और वीर थे। इसी जाति के युवकों को साथ ले कर शिवाजी वन पर्वतों में घूम कर शिकार किया करते थे। इस प्रकार घूमने फिरने से शिवाजी वन पहाड़ों के मार्गों से भली भाँति परिचित हो गये थे। धीरे धीरे शिवाजी ने मावली जाति के बहुत से नवयुवकों को अपनी टोली में मिला कर एक छोटी सी पलटन बना ली।

सन् १६४६ ई० में उन्नीस वर्ष की अवस्था में शिवाजी ने मोर प्रदेशस्थ तोरन का दुर्ग हस्तगत कर लिया। यह दुर्ग एक ऐसे विकट पर्वत पर बना हुआ था कि उस पर पहुँचना बहुत कठिन था। इस दुर्ग की मरम्मत कराते समय गड़ा हुआ बहुत सा धन उनके हाथ लगा।

सन् १६४८ ई० में शिवाजी ने रामगढ़ नामक एक नया क़िला बनवाया। शिवाजी ने धीरे धीरे बीजापुर राज्य के कई एक स्थानों को निज अधिकार भुक्त कर लिया। तब बीजापुर सरकार ने शिवाजी के पिता को एक पत्र लिख कर धमकाया और लिखा कि या तो अपने लड़के को हटको नहीं तो तुम्हारे लिये अच्छा न होगा। उस पत्र के उत्तर में शाहजी ने लिख भेजा कि मैं इसमें निर्दोष हूँ और मेरी कुछ भी चल नहीं सकती। क्योंकि शिवाजी से मैं कुछ भी सम्बन्ध नहीं रखता। साथ ही शाहजी ने दादाजी को भी एक पत्र लिखा जिसमें उन्होंने लिखा कि शिवाजी को ऐसे उद्दण्ड कामों में हाथ डालने से रोको।

जब शाहजी की आज्ञानुसार दादाजी ने शिवाजी को रोका; तब शिवाजी ने बड़ी नम्रता से यह उत्तर दिया:—

"मैं तो गौ, ब्राह्मण तथा दीनों की रक्षा करता हूँ—कोई कुकर्म तो करता नहीं।"

इस घटना के कुछ दिनों बाद सन् १६४७ ई० में दादाजी को रोग ने आ घेरा और उन्हें अपने जीने की आशा न रही। उस समय उनकी उम्र ७० वर्ष की थी। एक दिन उन्होंने शिवाजी को अपने पास बुला कर कहा—

दादाजी—"अब मैं बहुत थोड़े दिनों का महमान हूँ। मैंने अपने जीवन में जो कुछ अनुभव प्राप्त किया है, उसको मैं तुम्हें बतलाना चाहता हूँ। यदि तुम मेरे कहने पर चले तो तुम्हें इस लोक में कीर्ति और परलोक में सुख मिलेगा।"

यह कह कर शिवाजी को दादाजी ने बहुत से अच्छे अच्छे उपदेश दिये।

सन् १६४६ ई० में दादाजी के मरने पर शिवाजी ने अपनी पैतृक जागीर की देख रेख का काम अपने हाथ में लिया और दो ही वर्ष के भीतर अपना अधिकार तीस मील के फैलावे में जमा लिया। ख़ज़ाने के तीन लाख रुपये बीजापुर को जा रहे थे। इन रुपयों को राह में शिवाजी ने लूट लिया और पहाड़ी एक गुप्त स्थान में इन्हें जा छिपाया। इसी बीच में शिवाजी ने बीजापुर सरकार से कल्याण की सूबेदारी छीन ली। तब तो बीजापुर की सरकार ने शिवाजी के पिता शाह जी को करनाटक में क़ैद कर लिया और कहा कि जब तक तुम्हारा पुत्र ऐसे उपद्रव करता रहेगा—तब तक तुम्हें क़ैदख़ाने में रहना पड़ेगा। और अत्यन्त निष्ठुरता से तुम्हारे प्राण लिये जायँगे। शाहजी ने बहुत कुछ कहा पर उनकी एक बात न सुनी गयी।

एक महाराष्ट्र ने धोखा दे कर शाहजी को पकड़वा दिया था। उस महाराष्ट्र का नाम बाजेघुरपुर था। उस समय शिवाजी की बाइस वर्ष की उम्र थी। शिवाजी ने विचारा कि जब तक पिता क़ैद में हैं तब तक चुपचाप रहना ही ठीक है। जब उनके पिता छोड़ दिये गये; तब पुनः उन्होंने लूट पाट मचाना आरम्भ किया और जाँवली के स्वामी को मार कर वहाँ का राज्य अपने अधिकार में कर लिया।

सन् १६५७ ई० में शिवाजी की वीरपत्नी सइबाई के गर्भ से राजगढ़ में एक पुत्र हुआ। उसका नाम सम्भाजी रखा गया। शिवाजी ने पुत्रोत्सव के अवसर पर ख़ूब ही मन खोल कर दान पुण्य किया।

सन् १६५७ में औरंगज़ेब ने बीजापुर पर चढ़ाई की। उस समय औरंगज़ेब को शिवाजी ने लिख भेजा कि मैं बीजापुर के विरुद्ध आपकी ओर से युद्ध करने को तैयार हूँ। शिवाजी की बातों में औरंगज़ेब आ गया और बीजापुर का जीता हुआ भाग औरंगज़ेब ने शिवाजी को दे डाला। परन्तु बीजापुर से औरंगज़ेब की फ़ौज के लौटते ही शिवाजी ने मुग़लों के अधिकृत स्थानों पर भी चढ़ाई करनी और उन पर अपना अधिकार जमाना आरम्भ किया।

शिवाजी जुनेरी की रियासत से तीन लाख रुपये लूट लाये। जब उनको अधिक सेना रखने की आवश्यकता हुई, तब उन्होंने उसकी संख्या बढ़ाई। उसी समय सात सौ पठानों को बीजापुर की सरकार ने अन्यायपूर्वक छुड़ा दिया था। शिवाजी ने उन पठानों को अपनी सेना में भर्ती कर लिया और उन्हें राघोबल्लाल नामक मराठे सरदार के अधीन कर दिया।

शिवाजी ने विचारा कि प्रबल औरंगज़ेब से बिना मिले पूर न पड़ेगी। इस लिये दूत द्वारा औरंगज़ेब के पास यह सन्देशा भेजा कि मैं अपनी पिछली करतूतों पर बहुत लज्जित और दुःखी हूँ। परन्तु अब मेरा यह निवेदन है कि यदि कोंकन की जागीर मुझे मिल जाय; तो मैं सदा बादशाही अमलदारियों की रखवाली करता रहूँ। उधर औरंगज़ेब भी दक्खिन के झगड़ों से तंग आ गया था। अतः शिवाजी को एक प्रबल प्रतापी सरदार समझ औरंगज़ेब ने उसे अपने में मिलाना अच्छा समझा। अतः औरंगज़ेब ने आज्ञा दे दी और आज्ञा पाते ही शिवाजी ने कोंकन पर चढ़ाई की, परन्तु दैवयोग से शिवाजी की बहुत सी सेना मारी गयी और शिवाजी हारे। शिवाजी की यह पहली ही हार थी।

अपनी अमलदारी का अधिक हिस्सा शिवाजी द्वारा अधिकृत होते देख बीजापुर के अधिपति अली आदिलशाह ने शिवाजी को दमन करने के लिये अपने प्रधान सरदार अफ़ज़लख़ाँ को भेजा। अफ़ज़ल के साथ १२ हज़ार सवार और पैदल तथा पहाड़ी तोपख़ाने भेजे। उस समय शिवाजी प्रतापगढ़ में थे। शिवाजी राजनीति में बड़े निपुण थे। उन्होंने अफ़ज़ल से कहला भेजा कि मेरी क्या ताब है जो आप जैसे वीर पुरुष से लड़ूँ। इस लिये मेरी आपसे यह प्रार्थना है कि यदि मेरे किये हुए कामों को आप भूल जायँ तो आज तक मैंने आपके जितने क़िलों पर अधिकार जमा लिया है, वे सब आपको दे डालूँ।

अफ़ज़ल शिवाजी की बातों में आ गया और विचारा कि विकट पहाड़ों पर सेना ले जा कर शिवाजी से लड़ना कठिन है। फिर न मालूम किसकी हार जीत हो। इस लिये जब शिवाजी स्वयं हमसे क्षमा माँगता है और क़िलों पर से अपना अधिकार भी हटा लिया चाहता है तो इससे बढ़ कर और क्या चाहिये। यह विचार अफ़ज़ल ने गोपीनाथ नामक एक महाराष्ट्र ब्राह्मण को शिवाजी के पास भेजा। गोपीनाथ और

शिवाजी की क़िले के बाहर भेंट हुई। गोपीनाथ ने शिवाजी से अफ़ज़लख़ाँ का सन्देशा कहा। शिवाजी ने अफ़ज़ल का प्ररोचना भरा सन्देशा सुन बड़ी शिष्टता और नम्रतापूर्वक उत्तर दिया। फिर गोपीनाथ को शिवाजी ने अपने में मिला लिया। गोपीनाथ शिवाजी के बिल्कुल बस में हो गये और उनका साथ देने की उन्होंने प्रतिज्ञा की।

फिर गोपीनाथ के कहने से अफ़ज़ल ने शिवाजी से भेंट करना स्वीकार किया। भेंट करने के लिये यह शर्त हुई कि क़िले के नीचे एक डेरे के भीतर शिवाजी और अफ़ज़ल की भेंट हो। साथ ही अफ़ज़ल के साथ केवल उनका एक अर्दली आवे और इसी प्रकार शिवाजी भी अकेले आवें। अफ़ज़ल ने इस शर्त को मान लिया।

प्रतापगढ़ और अफ़ज़ल के शिविर के बीच में बड़ी ही सघन झाड़ी थी। शिवाजी ने उस झाड़ी के बीच में हो कर रामगढ़ से अफ़ज़ल के डेरे तक बड़े घुम घुमाव का एक रास्ता तैयार करवा दिया। पर रास्ते के दोनों ओर सघन झाड़ियाँ ज्यों की त्यों खड़ी रहीं। निर्दिष्ट समय प्रतिज्ञानुसार पालकी पर सवार हो अफ़ज़लख़ाँ शिवाजी के बतलाये हुए डेरे पर पहुँचे और मिलने के लिये शिवाजी को बुला भेजा। इस पर शिवाजी ने उनसे कहला भेजा कि आज आप बहुत थके माँदे आये हैं आज की रात आप डेरे में आराम करें। कल मैं अवश्य आपसे मिलूँगा।

ज्यों त्यों कर अफ़ज़लख़ाँ ने वह रात बितायी। दूसरे दिन शिवाजी ने अपने सब सरदारों को भली भाँति समझा बुझा कर सब प्रकार सावधान कर दिया और भोजन के उपरान्त माता पिता के चरणों को तथा अपनी कुलदेवी को स्मरण कर, एड़ी से गरदन तक लोहे का कवच पहना। उसके ऊपर मामूली कपड़े पहन लिये जिससे भीतर का कवच बिल्कुल ढक गया। इसी प्रकार मस्तक पर भी फौलादी टोप पहना और कमर में भवानी नाम की तलवार लटकायी। और आस्तीन के भीतर बघनखा लगा, दो आदमियों को अपने साथ ले कर वे अफ़ज़ल से मिलने गये।

शिवाजी को दूर से आते देख अफ़ज़ल ने अपने पास खड़े आदमी से पूछा कि उनमें शिवाजी कौन सा है? उसने शिवाजी को बतलाया। शिवाजी का छोटा आकार देख अफ़ज़ल मन ही मन बहुत प्रसन्न हुआ।

शिवाजी अकेले अफ़ज़ल से मिलने ख़ीमे के भीतर गये। ज्यों ही अफ़ज़ल उनको छाती से लगा कर मिलने के लिये आगे बढ़ा और शिवाजी से मिला; त्यों ही उसने उनकी गरदन अपनी बाँहों से जकड़ ली और बड़ी फुर्ती से उन पर तलवार का वार किया। पर शिवाजी तो फौलादी कवच पहने हुए थे। इससे अफ़ज़ल का वार ख़ाली गया। पर उधर शिवाजी ने दहिने हाथ के बघनखे से अफ़ज़ल का पेट चीर डाला अफ़ज़ल की चिल्लाहट को सुन एक मुसलमान और एक ब्राह्मण कर्मचारी अफ़ज़ल की मदद को ख़ीमे के भीतर दौड़ कर गये। उधर शिवाजी के दोनों सिपाही भी शिवाजी की सहायता को पहुँच गये। मुसलमान ने शिवाजी पर आक्रमण करना चाहा, पर पीछे से शिवाजी के सिपाही ने एक ही हाथ में उसका काम पूरा कर डाला। तब उस अफ़ज़ल के ब्राह्मण नौकर ने तलवार निकाल आगे बढ़ना चाहा। इस पर शिवाजी ने कहा—"अरे तू ब्राह्मण है, इस लिये तू अवध्य है। अच्छा हो कि अपने प्राण ले कर चुपचाप यहाँ से भाग जाय।" इतने में शिवाजी के दूसरे साथी ने एक ही झटके में उससे तलवार छीन ली और उसे छोड़ दिया। अफ़ज़ल के मूड़ को काट कर शिवाजी ले आये। यह घटना सन् १६५६ ई० की है।

मार्ग के दोनों ओर की झाड़ियों में शिवाजी के सैनिक छिपे थे, जो सङ्केत पाते ही तुरन्त निकल कर अफ़ज़ल की सेना पर टूट पड़े। कुछ क्षणों तक घोर संग्राम हुआ। पर शिवाजी के वीरों के सामने वे लोग न टिक सके और भाग गये।

इस युद्ध में शिवाजी के हाथ इतनी सामग्री लगी:—

६५ हाथी।

४० घोड़े।

१२००० ऊँट।

२०० गाड़ियाँ कपड़े भरीं।

७ लाख की लागत का सोने चाँदी का असबाब।

इन वस्तुओं के अतिरिक्त बहुत कुछ गोला गोली बारूद और तोपें बन्दूकें भी थीं।

पनैला दुर्ग को भी शिवाजी ने बड़े कौशल से हस्तगत किया। पहले उन्होंने अपने कुछ सैनिकों को बनावटी लड़ाई झगड़ा कर, नौकरी से निकाल दिया।

वे जा कर पनैलागढ़ के क़िलेदार से जा मिले और वहाँ नौकर हो गये। इसके बाद शिवाजी ने गढ़ पर चढ़ाई की। गढ़ के एक ओर ऊँचे ऊँचे वृक्ष थे। उन पर शिवाजी के सैनिक पहले ही जा छिपे थे। रात के समय, शिवाजी के छूटे हुए सिपाहियों का सङ्केत पा कर वृक्ष पर चढ़े सैनिक क़िले में कूद पड़े और बड़ी वीरता से लड़ भिड़ कर उन्होंने दुर्ग का द्वार खोल दिया। कुछ क्षणों के घोर युद्ध के उपरान्त शिवाजी ने वह गढ़ भी जीत लिया। इन विजयों के समाचार प्रचारित होते ही दूर दूर से हिन्दू वीर आ आ कर शिवाजी का दल पुष्ट करने लगे। तब तो शिवाजी का रिसाला बहुत दूर दूर तक का धावा लगाने लगा और मुसलमानी रियासतों को लूटने लगा। शिवाजी का आतङ्क दूर दूर तक फैल गया।

तब बीजापुर के बादशाह ने एक बड़ी भारी सेना ले कर स्वयं शिवाजी पर चढ़ाई की। यह युद्ध दो वर्ष तक चला। इस युद्ध में शिवाजी के हाथ से बहुत सी भूमि तो निकल गयी, पर युद्ध का अन्तिम परिणाम शिवाजी के अनुकूल ही हुआ।

जिस समय शिवाजी बीजापुर के बादशाह से लड़ रहे थे, उस समय उन्हें एक ऐसा अवसर मिला जिससे वे अपने पिता के विश्वासघाती शत्रु से बदला लेने में समर्थ हुए। इसीने उनके पिता को बीजापुर के बादशाह के हाथ पकड़वा दिया था। इसका नाम घोरपुरा था। शिवाजी ने घोरपुरे को मार डाला, उसके ग्राम में आग लगा दी और उसका नामो-निशान मेट दिया।

जब यह संवाद उनके पिता शाहजी ने सुना; तब वे अपने पुत्र से मिलने के लिये उत्सुक हुए। शाहजी के आने का संवाद सुन, शिवाजी बारह मील तक नङ्गे पैर, बड़े उत्साह से पिता की अगवानी के लिये गये। पिता को देखते ही शिवाजी ने ज़मीन पर पड़ कर साष्टाङ्ग दण्डवत् की। स्नेहाश्रु से परिपूर्ण नेत्रों से शाहजी ने अपने प्रिय सुपुत्र को गले लगाया। शिवाजी ने बड़े आदर से अपने पिता को ले जा कर गद्दी पर बिठाया और स्वयं वे पिता की जूतियाँ हाथ में ले कर खड़े रहे। धन्य पितृभक्त वीर शिवाजी !

इसके बाद बीजापुर की ओर से एक एबिसीनिया वासी सेनानायक ने बड़े दलबल से शिवाजी पर चढ़ाई की। इस बहादुर ने शिवाजी को पनैला दुर्ग में घेर लिया और वह खूब लड़ा। अन्त में शिवाजी ने उसे भी हराया। वह हार कर लौट गया। बीजापुर का बादशाह उस एबिसीनिया वाले की इस हार पर ऐसा क्रुद्ध हुआ कि उसने उसे प्राणदण्ड दिया। इस युद्ध के उपरान्त बीजापुर वालों और शिवाजी में परस्पर सन्धि हो गयी और शिवाजी ने बीजापुर की अमल-दारी में लूटना पाटना बन्द कर दिया।

जिस समय औरङ्गज़ेब अपने पिता को पदच्युत करने आगरे गया, उस समय उसने अपने कई एक सरदारों को शिवाजी के पास भेजा और इस कार्य में उनसे सहायता माँगी। परन्तु शिवाजी ने इस अन्याय युक्त कार्य में योग देना तो एक ओर रहा, प्रत्युत औरंगज़ेब को बहुत धिक्कारा और उसके पत्र को कुत्ते की पूँछ के साथ बँधवा दिया। यह संवाद सुन कर औरंगज़ेब बहुत क्रुद्ध हुआ और इसी समय से उसके मन में शिवाजी की ओर से द्वेष का अंकुर उत्पन्न हुआ। वह द्वेषवश शिवाजी को "पहाड़ी चूहा" कहने लगा।

उधर तो औरंगज़ेब अपने पिता को उतार स्वयं तख़्त पर बैठा और इधर शिवाजी ने बीजापुर वालों से सन्धि कर मुग़लों के अधिकृत स्थानों पर हाथ डालना आरम्भ किया। शिवाजी ने औरंगाबाद तक अपना अधिकार कर लिया। उस समय दक्षिण प्रान्त में मरेहटों को दमन करने के लिये औरंगज़ेब ने शाइ-स्ताख़ाँ को भेजा था। उसने बड़ी तैयारी के साथ शिवाजी पर चढ़ाई की। उस समय शिवाजी रामगढ़ में थे। इस चढ़ाई का समाचार पाते ही वे सिंहगढ़ में चले गये। शाइस्ताख़ाँ ने पूने पर अधिकार जमा लिया और वहाँ वह उसी भवन में रहने लगा, जिसे दादाजी ने शिवाजी की माता और उनके रहने के लिये बनाया था। शाइस्ताख़ाँ वहाँ बड़ी सावधानी से रहने लगा। उसने वहाँ यह भी घोषणा प्रचारित कर दी थी कि नगर में हथियारबन्द कोई भी मरेहठा विना आज्ञा न आने पावे।

पर इस सावधानी का फल कुछ भी न हुआ। एक दिन बड़ी अँधियारी रात में किसीकी बारात पूना में जा रही थी यह सुअवसर देख शिवाजी केवल पचीस वीर सैनिकों को साथ ले बराती बने और हँसते बोलते पूना में जा पहुँचे। नगर में पहुँचते ही वे अपने मकान की ओर चले। यह घर उन्हींका था

और उन्हें उस घर के सभी रास्ते मालूम थे। सो वे सीधे उसी जगह गये जहाँ बेगमों सहित शाइस्ताख़ाँ सो रहा था।

वहाँ पहुँचते ही शिवाजी ने शाइस्ताख़ाँ को ऐसा ललकारा कि वह अपनी सारी बहादुरी भूल गया और उस समय उससे कुछ भी करते धरते न बन पड़ा। शिवाजी के प्रताप से घबड़ा कर, शाइस्ताख़ाँ एक खिड़की से कूद कर भाग गया। भागते समय उसके हाथ की उङ्गली कट गयी। पर वीर शिवाजी ने उसके पुत्र और रक्षकों को वहीं समाप्त किया। फिर बहुत सी मशालें जला कर प्रसन्नचित्त शिवाजी शिवगढ़ को लौट आये।

प्रातःकाल होते ही मुग़ल सवारों ने शिवगढ़ पर चढ़ाई की। परन्तु उस समय शिवाजी ने उनका सामना न किया। वे आगे पीछे का विचार न कर आगे बढ़ते ही चले गये और दुर्ग के द्वार पर जा पहुँचे। द्वार पर पहुँचते ही दुर्ग के ऊपर से तोपों की भयङ्कर बाढ़ दागी गयी। इसका फल यह हुआ कि इन मुग़ल सवारों में से बहुत से तो वहीं मर कर गिर गये, जो बच गये थे वे प्राण ले कर वहाँ से भागे।

मरेहटों की मुग़लों पर यह प्रथम ही जीत थी। इससे शिवाजी की उस प्रान्त में बड़ी ख्याति हुई। इसके बाद शिवाजी अपनी घुड़सवार सेना को साथ ले मुग़लों के अधिकृत स्थानों पर अधिकार जमाने लगे।

उस समय सूरत दक्षिण प्रान्त का बड़ा प्रसिद्ध नगर था। शिवाजी ने इसी नगर पर चढ़ाई की और गुप्तभाव से वेष बदल कर सूरत नगर में घुसे। घुस कर चार पाँच दिन तक नगर में घूम फिर कर सारा नगर भँभा डाला। फिर नगर के बाहर स्थित अपने चार हज़ार वीरों के सहित नगर में घुस नगर को भली भाँति लूटा।

सूरत विजय कर के शिवाजी रामगढ़ के क़िले में आये और बहुत सा धन अपने साथ लाये। वहाँ पहुँचते ही उन्होंने सुना कि सत्तर वर्ष की अवस्था में उनके पिता का देहान्त हो गया।

सिंहगढ़ में जा कर शिवाजी ने बड़ी धूमधाम से पिताजी का श्राद्ध किया और श्राद्ध कर के वे रामगढ़ लौट गये। मरते समय शाहजी के अधिकार में बङ्गलौर के चारो ओर बहुत सी जागीर थी। इसके अतिरिक्त अरनी, तञ्जौर, पोर्टोनोवो भी इन्हीं के अधिकार में था।

शिवाजी ने जल स्थल दोनों पर अपना समान अधिकार रखा और उनके पास अनेक रणनौकाएँ भी थीं। इन नौकाओं में बैठकर मरेहटे बड़ी दूर दूर तक धावा मारते और मक्का जाने वाले मुसलमान यात्रियों को लूटते, जिससे बहुत सा धन उनके हाथ लगता था।

शिवाजी ने सन् १६६२ ई० में जलपथ द्वारा युद्ध की तैयारी की। उस समय ८८ जहाज़ उनके अधीन थे। इनमें तीन जहाज़ बहुत बड़े थे और तीन मस्तूल के थे। इन जहाज़ों पर चार हज़ार सैनिक थे। यह बरसिलौर की चढ़ाई का हाल है। यह स्थान गोवा से १३० मील दक्षिण की ओर था। अब उस स्थान का भारत के मानचित्र पर नाम तक भी नहीं है।

समुद्री आब हवा उनके स्वास्थ्य के अनुकूल न होने से उनका स्वास्थ्य बहुत बिगड़ गया और उन्हें वायु की प्रतिकूलता के कारण अनेक कष्ट सहने पड़े। परन्तु केवल निज साहस के बल से वे अपने इस उद्योग में कृतकार्य हुए। इस चढ़ाई में बहुत सा धन उनके हाथ लगा। वे सकुशल अपनी राजधानी में लौट आये। यह उनकी प्रथम और अन्तिम जलमार्ग की चढ़ाई थी।

मक्के के यात्रियों को लूटने के कारण औरंगज़ेब ने अम्बर के राजा जयसिंह और दिलेरख़ाँ को बड़ी सेना दे कर शिवाजी के ऊपर आक्रमण करने को भेजा वे शिवाजी की अमलदारी तक पहुँच गये।

इस पर शिवाजी ने अपने मंत्रियों से परामर्श कर यह निश्चित किया कि इस बार मुग़ल सेना से युद्ध न कर के सन्धि कर लेनी चाहिये। अतः न्यायशास्त्री रघुनाथ पन्त को सन्धि का प्रस्ताव ले कर जयसिंह के पास भेजा। दूत की और जयसिंह की बहुत कुछ बातचीत हुई और दूत के लौटने पर शिवाजी कतिपय साथियों सहित जयसिंह से मिलने गये। जयसिंह ने भी उनका बड़ा आदर सत्कार किया और उनको अपनी दहिनी ओर एक गद्दी पर बिठाया।

फिर सन्धि की बातचीत आरम्भ हुई। शिवाजी ने अपने बत्तीस क़िलों में से बीस क़िले मुग़ल सम्राट् को लौटा देना चाहा और १२ अपने अधीन रखने चाहे। एक लाख पैगोडा (एक प्रकार का रुपया) ख़िराज में देने कहा। साथ ही यह भी कहा कि बीजापुर के इलाक़े पर चौथ लगाई जाय उसकी उगाही शिवाजी के ज़िम्मे की जाय। इसके अतिरिक्त उन्होंने क़िस्तबन्दी

कर के दस लाख रुपये नज़र में देना स्वीकार किया। पर औरंगज़ेब ने शिवाजी की और सब शर्तें तो मंज़ूर कीं पर चौथ के बारे में कुछ भी उत्तर न दिया। "मौनं सम्मतिलक्षणम्" न्याय से शिवाजी ने समझ लिया कि यह भी बादशाह को स्वीकृत है। तदनुसार चौथ जारी की। चौथ की प्रथा का यही श्रीगणेश था।

इसके बाद शिवाजी ने विनकाज़ी के अधीन दो हज़ार घुड़सवार और आठ हज़ार पैदल मरेहटे सैनिक भेजे। इन बहादुरों ने बीजापुर के रणाङ्गन में बड़ी वीरता का परिचय दिया।

सन् १६६६ ई० में औरंगज़ेब ने शिवाजी को बुलाने के लिये निमंत्रण पत्र भेजा इस निमंत्रण पत्र को पा कर शिवाजी अपने पुत्र शम्भूजी और पाँच सौ सवार तथा एक हज़ार मावली सैनिकों को ले कर दिल्ली चले। उस समय भूषण कवि भी इनके साथ थे। शिवाजी के दिल्ली में पहुँचते ही धूमधाम मच गयी। नित्य सैकड़ों हज़ारों मनुष्य शिवाजी को देखने जाने लगे।

बादशाह ने शिवाजी को दरबार में बुलाया, पर उस समय वह शिवाजी की पद मर्य्यादा को भूल गया। उसने शिवाजी को तीसरी श्रेणी के कर्मचारियों के आसन पर बिठाना चाहा। यह बात शिवाजी को मालूम होते ही क्रोध में भरे शिवाजी बादशाह को मुजरा किये बिना ही लौट आये।

डेरे पर लौट कर शिवाजी ने घर लौट जाने की बादशाह को सूचना दी पर औरंगज़ेब ने उनसे कहला भेजा कि अभी कुछ दिनों ठहरिये।

यह कह कर औरंगज़ेब ने शिवाजी के ऊपर पहरा चौकी बैठा दिया जिससे वे निकल कर भागने न पावें।

कुछ दिनों के बाद शिवाजी ने कहला भेजा कि हमारे साथियों को यहाँ का जल वायु अनुकूल नहीं है। इस लिये मैं चाहता हूँ कि मैं अपनी सेना को दक्षिण को लौटा दूँ। बादशाह ने शिवाजी की इस प्रार्थना को स्वीकार कर लिया।

सेना लौटा दी गयी। इसके कुछ दिनों बाद नगर में यह अफ़वाह फैल गयी कि शिवाजी बहुत बीमार हैं यहाँ तक कि वे उठ बैठ नहीं सकते। शिवाजी बड़े बड़े टोकरों में मिठाई भर भर कर नगर और आस पास के ब्राह्मण और भिक्षुकों को बँटाने लगे कई दिनों तक नित्य यों ही मिठाई बँटती रही और पहरे वालों को निश्चय हो गया कि मिठाई के टोकरे नगर में बँटने के लिये जाया करते हैं। तब एक दिवस गोधूली के समय एक टोकरे में आप और दूसरे में अपने पुत्र शम्भूजी को बैठा वे बेधड़क नगर के बाहर निकल आये। यहाँ पहले ही से कसे कसाये दो उत्तम घोड़े खड़े थे। उन पर शिवाजी और शम्भूजी बैठ लिये और वहाँ से चल कर वे दूसरे दिन मथुरा पहुँचे। वहाँ अपने एक मित्र के घर शम्भूजी को पहुँचा, स्वयं वे साधू का वेष बना अपनी राजधानी की ओर चल निकले। इनके जाने के बाद इनके मित्र ने शम्भूजी को भी इनके मकान पर पहुँचा दिया।

सन् १६६६ ई० के दिसम्बर मास में शिवाजी भी अपने दुर्ग में पहुँच गये। जयसिंह उस समय बादशाह की आज्ञानुसार बीजापुर वालों से लड़ रहे थे। जयसिंह को उस समय अधिक सेना की आवश्यकता पड़ी। धूर्त्त औरंगज़ेब का किसी पर भी विश्वास न था। कर्मचारियों में जो अधिक प्रबल हो जाता था, वह भले ही विश्वासी क्यों न हो, उसे वह मटियामेट करने में सदा तत्पर रहता था। इसीलिये उसने जयसिंह को नीचा दिखाने के लिये मदद न भेजी। अन्त में विवश हो जयसिंह बीजापुर से लौटे और रास्ते ही में वे मर गये।

उसी अवसर में शिवाजी ने धीरे धीरे अपने सब दुर्गों पर पुनः अपना अधिकार जमा लिया उधर औरंगज़ेब ने सोचा कि कहीं शिवाजी बीजापुर से मिल न जाय, इसलिये उन्हें उसने एक जागीर दी और राजा का ख़िताब दिया।

सन् १६६७ ई० में बीजापुर के सुलतान की मृत्यु हुई। सुलतान के उत्तराधिकारी से शिवाजी ने तीन लाख का वार्षिक और गोलकुंडे के सुलतान से पाँच लाख सालाना ठहरा लिया और स्वान देश वाले से ये चौथ लेने लगे। इस समय शिवाजी ने अपने राज्य का प्रसार बहुत बढ़ा लिया था। अर्थात्

उत्तर में—नर्मदा नदी के अपर पार में मुग़लों की अमलदारी थी। शिवाजी ने उसे भी अपने अधिकार में कर लिया।

दक्षिण में—मैसूर तक का प्रदेश उनके अधीन था।

इस समय औरंगज़ेब अफ़ग़ानस्तान की लड़ाई में प्रवृत्त था इस सुयोग को पा कर शिवाजी ने कोंकन और दोनों घाटों पर भी अपना अधिकार जमा लिया।

शिवाजी की प्रजापालन-नीति और प्रबन्ध।

शिवाजी ने लड़ाई झगड़ा छोड़ अब निज राज्य के प्रबन्ध में मन लगाया। उन्होंने अपने राज्य के बड़े बड़े पदों के अधिकारों पर ब्राह्मणों ही को नियुक्त किया था। किसानों को किसी प्रकार का कष्ट न हो, किसी पर कोई अन्याय न करे, निर्बल को सबल न सतावें इत्यादि बातों पर शिवाजी की सदा तीव्रदृष्टि रहा करती थी। भूमि की. उपज का यह नियम था कि पाँच भाग में तीन भाग किसान के होते और दो सरकार में जमा होते थे। मालगुज़ारी की उगाही का यह नियम था कि दो दो तीन तीन गाँवों पर एक एक कारकुन, प्रत्येक छोटे ज़िले पर एक तरफ़दार; कई तरफ़दारों पर एक सूबेदार था। जमादार देशमुखिया देशपाण्डे कहलाते थे। शिवाजी किसानों पर जो कर लगा देते उसीके अनुसार वे लेते थे। फ़ौज वालों को मासिक वेतन दिया जाता था। इनकी फ़ौज में मावली जाति के सैनिक ही अधिक थे। तलवार, ढाल, भाला, बर्छा और बन्दूक़ ही इन लोगों के प्रधान हथियार थे। पैदल सिपाहियों को, ३) से ले कर १०) रुपये तक मासिक वेतन दिया जाता था। रिसाले में दो भेद थे। एक बर्गी और दूसरे सिल्लीदार कहलाते थे। बर्गी वे थे जो सरकारी घोड़ों से काम देते थे। उन्हें ६) से ले कर २०) रुपये तक मासिक वेतन दिया जाता था। सिल्लीदार निज के घोड़े रखते थे। इनको १५) से ले कर ४०) रुपये तक मासिक वेतन मिला करता था। लूट में जो माल हाथ लगता, वह सरकारी ख़ज़ाने में दाख़िल कर दिया जाता था। पर इसमें से लूटने वालों को यथायोग्य पुरस्कार दिया जाता था।

सेना का यह प्रबन्ध था कि दस सिपाहियों पर एक नायब, पचास सिपाहियों पर एक हवलदार और १००-सिपाहियों पर एक जुमलेदार होता था। एक हज़ार सिपाहियों का अफ़सर एक हज़ारी और पाँच हज़ार के ऊपर सरनौबत अर्थात् सेनाध्यक्ष कहा जाता था। यही ढङ्ग रिसाले का था। अर्थात् २५ सवारों पर १ हवलदार और १२५ पर एक जुमलेदार और ६२५ पर एक सूबेदार था। ६२५० सवार जिसके अधीन हों, वह पाँच हज़ारी कहलाता था। इन सवारों के घोड़े बहुत बड़े नहीं होते थे, प्रत्युत टाँगन होते थे। ये जंगलों और पहाड़ों पर बड़ी तेज़ी और सुगमता से जाते थे। ये घोड़े ऐसे सिखाये हुए होते थे कि ये शत्रुओं के दल में घुस जाते और जहाँ शत्रुओं की रसोई होती थी वहाँ पहुँच कर ये उसे नष्ट भ्रष्ट कर आते थे।

क्वार मास के नवरात्र में शिवाजी महिषमर्दिनी दुर्गा की पूजा बड़ी धूमधाम से करते थे। वे विजयदशमी के दिन फ़ौज की हाज़िरी लेते थे। यदि किसी पर चढ़ाई करनी होती, तो इसी दिन शिवाजी चढ़ाई करते थे।

अफ़ग़ानस्तान की चढ़ाई से लौट कर औरंगज़ेब ने चापलूसी कर के पुनः शिवाजी को अपने दरबार में बुलाना चाहा था, परन्तु उसका यह प्रयत्न सफल न हुआ। शिवाजी औरंगज़ेब के कपट जाल में न आये, परन्तु दक्षिणी देशों पर अपना अधिकार फैलाते ही चले गये। शिवाजी का यह प्रभाव दिन रात औरंगज़ेब के दिल में खटकता था।

अन्त में औरंगज़ेब से न रहा गया और उसने बड़ी धूमधाम से शिवाजी पर चढ़ाई करनी चाही। यह संवाद सुन शिवाजी तिल भर भी विचलित न हुए और बड़े उत्साह से बादशाही फ़ौज का सामना करने के लिये तैयारी कर अपने वीर हृदय का परिचय दिया। साथ ही मुग़लों के कई एक दुर्गों पर अपना अधिकार जमा कर उन्होंने अपनी विजय-पताका फहरायी। सिंहगढ़ लेते समय शिवाजी की वीरता देखते ही बन आती थी। सिंहगढ़ बड़ा विकट दुर्ग था, परन्तु शिवाजी के एक वीरवर सैनिक ने मावली सिपाहियों की सहायता से उस पर शिवाजी का अधिकार जमा दिया।

इस विजय से शिवाजी ऐसे प्रसन्न हुए कि अपने वीर सैनिकों को उन्होंने अपने हाथ से कपड़े पहनाये और बहुत सराहा। इसी प्रकार पुरन्दर के दुर्ग को भी इन्होंने जीत कर अपने अधिकार में किया। फिर चौदह हज़ार सैनिक ले कर शिवाजी दुबारा सूरत पर चढ़े और तीन दिन तक मनमाना उस नगर को लूटा। वहाँ से लौटते समय उन्होंने जंगली नामक नगर को लूटा। यहाँ बहुत सा माल और धन उनके हाथ लगा। उधर शिवाजी के प्रतापराय नामक सेनानायक ने खान देश पर चढ़ाई की और जीत कर

उस पर चौथ लगाई । मुग़लों के अधिकार में चौथ लगाने का शिवाजी का यह प्रथम ही अवसर था ।

सूरत से लौटते समय दाऊदख़ाँ नामक एक सेनापति ने (जिसके पास पाँच हज़ार घुड़सवार थे शिवाजी का मार्ग रोका, पर शिवाजी के सामने वह न रुक सका । जब इस हार का समाचार औरंगज़ेब ने सुना तब वह बहुत विगड़ा और उसने मुहब्बत ख़ाँ को चालीस हज़ार सैनिक दे कर शिवाजी पर चढ़ाई करने को भेजा । शिवाजी ने मुग़ल सम्राट् के भेजे सेनापति का स्वयं सामना न कर, उससे लड़ने के लिये अपने सेनापति मोरो पन्त और प्रतापराव को भेजा । इन दोनों सेनानायकों ने ससैन्य मुहब्बत ख़ाँ को परास्त किया । परास्त ही नहीं किया; वल्कि मुग़लों की बहुत सी सेना मारी और जो बची वह भाग गयी । इस युद्ध में मुग़लों के बारह प्रसिद्ध वीर योद्धा मारे गये और कई एक मरेहटों के हाथ लगे । इन क़ैदी वीरों के साथ शिवाजी ने बड़ा अच्छा व्यवहार किया और अन्त में उन्हें छोड़ दिया । आज तक मरेहटों और मुग़लों में जो युद्ध हुए थे—इन सब में यह युद्ध बड़े मार्के का था । इस युद्ध के कारण मुग़लों का हौसला पस्त पड़ गया और मरेहटों की बड़ी कीर्त्ति फैली ।

शिवाजी शाके १५९६ के ज्येष्ठ मास की शुक्ला त्रयोदशी वृहस्पतिवार को रामगढ़ में शास्त्र की विधि के अनुसार सैंतालीस वर्ष की अवस्था में राजगद्दी पर बैठे । राजगद्दी पर बैठने पर इन्होंने अपना नाम "छत्रपति महाराज शिवाजी भौंसला" रखा ।

इस राज्याभिषेकोत्सव के समय शिवाजी ने अनेक राजों और देशी तथा विदेशी राजदूतों को निमंत्रण दिया था । जो इस अवसर पर आये उनको विदा करते समय शिवाजी ने उनका भली भाँति सम्मान भी किया था ।

राज्याभिषेक के बाद शिवाजी ने तुलादान किया । तुला में सोना और रत्न थे । चौंसठ हज़ार रुपयों का तो अकेला सोना ही था । अनन्तर शिवाजी ने रामगढ़ में नारायण का एक बड़ा विशाल मन्दिर बनवाया और उसकी प्रतिष्ठा भी बड़े समारोह के साथ की ।

इस प्रकार पुत्र पौत्रों से हरा भरा घर छोड़ शिवाजी की माता जीजाबाई ने परलोकयात्रा की । माता की अन्त्येष्टि-क्रिया भी शिवाजी ने बड़ी धूमधाम से की और बहुत सा दान दिया ।

माता की मृत्यु को बहुत दिन नहीं बीत पाये थे कि शिवाजी की धर्मपत्नी सइवाई भी चल बसीं । माता और धर्मपत्नी की मृत्यु से शिवाजी बहुत दुःखी हुए ।

सिंहासन पर बैठने पर शिवाजी ने देखा कि महाराष्ट्र भाषा में यावनी भाषा के शब्द अपना अधिकार जमाते चले जाते हैं । यह उनसे न देखा गया । उन्होंने उन शब्दों के बदले नये देशी शब्दों का प्रयोग किया । उदाहरण के लिये कुछ शब्द नीचे दिये जाते हैं—

पुराने व्यवहृत शब्द ।	नवीन शब्द ।
पेशवा	मुख्य प्रधान
मजुमदार	पन्त अमात्य
सूरनीस	पन्थ सचिव
सरनौबत	सेनापति
चारमुलकी	सुमन्त
अदालत	न्यायालय
दबीर	न्यायशास्त्री
वयाकनीस	मंत्री ।

सन् १६७५ ई० में शिवाजी ने सेना भेज कर नर्मदा के उस पार गुजरात प्रदेश को जीता ।

सन् १६७६ ई० में इन्होंने अपने सौतेले भाई विवाजी द्वारा अपने पिता की जागीर बढ़वायी और बीजापुर का इलाक़ा लूट कर करनाटक को अपने हाथ में किया । उस समय इनके साथ चार हज़ार पैदल और तीस हज़ार अश्वारोही सैनिक थे । प्रतापराव गूजर इनके प्रधान सेनापति थे । प्रताप के मरने पर, हम्मीरराव प्रधान सेनापति बनाये गये ।

सन् १६७९ ई० में औरंगज़ेब ने दिलेरख़ाँ को बड़े फ़ौज फाँटे के साथ बीजापुर-विजय के लिये भेजा । उस समय बीजापुर वालों ने शिवाजी से सहायता माँगी । शिवाजी ने उन्हें सहायता दी और दिलेरख़ाँ को बुरी तरह हराया । दिलेरख़ाँ को भाग कर दिल्ली जाना पड़ा । इसके बदले में शिवाजी ने तुङ्गभद्रा और कृष्णा के बीच की भूमि (रायचूर दुआवा) पायी । इसके अतिरिक्त शिवाजी ने अपने पिता की जागीर भी पायी । बीजापुर की ओर से इन्होंने सहज ही में बीमा के मध्यवर्त्ती स्थानों को जीत लिया । फिर औरंगज़ेब के बसाये औरंगाबाद को तीन दिन तक शिवाजी ने मनमाना लूटा । इस यात्रा से लौट कर शिवाजी ने सत्ताईस क़िले और जीते ।

सन् १६८० ई० में शिवाजी के घुटनों में दर्द उठा और वे सूज गये। साथ ही उन्हें ज्वर ने भी आ दवाया। बीमारी की दशा में वे रामगढ़ में थे। यह साधारण ज्वर न था, बल्कि कालज्वर था। धर्मधुरीण महाराज छत्रपति शिवाजी सन् १६८० ई० की पाँचवीं अप्रेल को इस असार संसार को छोड़ परलोकवासी हुए। मरते समय छत्रपति ५३ वर्ष के थे।

यद्यपि औरंगज़ेब शिवाजी का कट्टर शत्रु था, तथापि शिवाजी की मृत्यु का दुस्संवाद सुन उसने कहा था—"सचमुच शिवाजी बड़ा बहादुर था, जिसने मेरे मुक़ाबले अपनी भी सल्तनत जमायी। मेरे सिपाही उन्नीस वर्ष तक लगातार उससे लड़े और मैंने चाहा कि उसको तहस नहस करूँ, पर शावाश शिवाजी! जिसने मरते दम तक अपनी टेक निवाही।"

शिवाजी दुर्गा के बड़े भक्त थे और उन्होंने अपने खड्ग का नाम भवानी रख छोड़ा था।

Skylax स्काइलक्ष=परशिया के अधीश्वर डेरियस की जलसेना का सेनापति था। इसने सिन्ध नदी में हो कर भारतीय महासागर तक यात्रा की थी। यह घटना खीष्टाब्द के पूर्व ५१८ की है।

Sleeman, Sir William. सर विलियम स्लीमन=ये कम्पनी की सेना में मेजर थे। पर पीछे से जब इन्होंने मध्यभारत के ठगों को समूल नष्ट कर, उस प्रान्त की अशान्ति दूर की तब यह सर की उपाधि से विभूषित किये गये।

Smith, General. जनरल स्मिथ=सन् १८१७ ई० के मरेहटे युद्ध में ये कम्पनी की ओर से लड़े थे। इनके सामने से बाजीराव भाग कर पांढरपुर गये थे।

Smith, Colonel. कर्नल स्मिथ=सन् १७६६-६६ ई० के प्रथम मैसूर युद्ध में कर्नल स्मिथ कम्पनी की ओर से हैदरअली से लड़ने गये थे और हैदर को चंगामा में हराया था।

Spencer, Mrs. मि० स्पेंसर=यह वेनसीटार्ट के उत्तराधिकारी थे और सन् १७६५ ई० में कलकत्ते की कौंसिल के सभापति थे। अपने कुकृत्यों से ये बड़े बदनाम हो चुके थे।

Staunton, Captain Francis. कप्तान फ्रांसिस स्टानटन्=मरेहटों के सन् १८१७ ई० के युद्ध में इन्होंने कोरीगाँव पर तीन सौ सवारों के साथ भीमा नदी के उस पार पचीस हज़ार मरेहटे घुड़सवारों का सामना किया। उन मरेहटे सवारों के साथ पेशवा के ५ हज़ार पैदल सैनिक मिल गये और कप्तान स्टानटन् पर आक्रमण किया। एक तो कम्पनी के सवार भूखे प्यासे और थके थे, दूसरे ऊपर से सूर्य का आताप। ऐसी दुर्दशा में भी कप्तान स्टानटन् ने शत्रु का सामना किया था। यह युद्ध सारे दिन होता रहा। रात होने पर पेशवा की सेना हटी। जहाँ लड़ाई हो रही थी, वहाँ से दो मील के फ़ासले पर एक टीले पर चढ़ कर, स्वयं पेशवा इस युद्ध को देख रहे थे। कप्तान स्टानटन् की ओर के १७५ मरे और घायल हुए, किन्तु मरेहटों की ओर के ६०० आदमी मारे गये। इस युद्ध में कप्तान की बड़ी प्रशंसा हुई।

Stevenson, General जनरल स्टीविन्सन्=द्वितीय मरेहटा युद्ध में जो सन् १८०३ ई० में हुआ था, जनरल स्टीवन् ने हैदराबाद की सहायक फ़ौज के अध्यक्ष बन कर पुरिन्दा में डेरा डाला था।

Stewart, Captain. कप्तान स्टीवर्ट=सन् १७७६ ई० के प्रथम मरेहटा युद्ध में स्टीवर्ट ने बड़ी शूरता दिखलायी थी और वे कारली के पास मारे गये थे।

Stewart, General. स्टीवर्ट जनरल=लार्ड वेल्सी के अधीनस्थ ये सेना ले कर कृष्णा और तुङ्गभद्रा के बीच का मार्ग रोक कर ठहरे हुए थे।

Sufferin, Admiral. सफ़रिन एडमिरल=ये फरासीसियों की जलसेना के सेनाध्यक्ष थे और अङ्गरेज़ी जलसेना के अध्यक्ष ह्यूज से इनकी मुठभेड़ सन् १७८२ ई० में पालीकट में हुई थी। सफ़रिन को हार जाना पड़ा था।

Soleiman, Prince. सुलेमान शाहज़ादा=सन् १२६६ ई० में इसने अपने चचा अल्ला को वध करने का प्रयत्न किया था। मरा समझ कर सुलेमान अल्ला को छोड़ कर चला गया था। पर

असल में वह मरा न था । वह सचेत होने पर अपने शिविर में गया और वहाँ जा कर सुलेमान को मरवा डाला ।

Soleiman,सुलेमान=यह शाहज़ादे दारा का पुत्र था और दारा के घर वालों के साथ यह भी ग्वालियर के दुर्ग में औरंगज़ेब की आज्ञानुसार नज़रबन्द रखा गया था । वहाँ यह कुछ दिनों बाद मर गया ।

Sultan Mahmud Ghaznavi. महमूद ग़ज़नवी ।

यह सुबकतगीन का पुत्र था और जब वह मरा तब महमूद की उम्र तीस वर्ष की थी । बाप को मरे सात महीने भी नहीं हो पाये थे कि इसने अपने बड़े भाई इसमाइल को जो तख़्त पर बैठा था, क़ैद कर लिया और स्वयं सुलतान की उपाधि धारण कर तख़्त पर बैठ गया ।

उस समय क्या परशिया क्या अन्य मुसलमानी रियासतें सब इतनी निर्बल हो गयी थीं कि यदि कहीं महमूद उस ओर अपना ध्यान देता तो उधर उसे कोई रोकने वाला न था । किन्तु हिन्दुस्थान की समृद्धि और उर्वरा भूमि की ख्याति को सुन कर तथा यहाँ के हिन्दुओं को तलवार के बल से मुसलमान बनाने का लालच इतना प्रबल था कि लालची महमूद ने सब ओर से अपने मन को हटा कर हिन्दुस्थान की ओर ही ल या ।

सन् १००१ ई० में दस हज़ार चुने हुए सवारों को ले कर वह ग़ज़नी से हिन्दुस्थान की ओर रवाना हुआ । उसको सब से पहले अपने पिता के शत्रु, तत्कालीन लाहौर के राजा जयपाल का पेंशावर के पास सामना करना पड़ा । इस युद्ध में महमूद जीता और जयपाल पकड़ गया। अनन्तर महमूद ने सतलज पार करके भटिंडा के दुर्ग पर आक्रमण किया। उस समय भटिंडा एक हरा भरा स्थान था और लाहौर के राजा के रहने का प्रिय स्थान था । महमूद ने ग़ज़नी में पहुँच कर जयपाल से सन्धि की और उसे छोड़ दिया । किन्तु जयपाल के मन में बन्दी होने के कारण इतनी घृणा उत्पन्न हुई कि उसने क़ैद से छूटते ही सारा राज पाट अपने पुत्र अनङ्ग को सौंप दिया और स्वयं वह तुषानल में भस्म हो गया ।

अनङ्ग या आनन्दपाल ने बाप की सन्धि का सम्मान कर, नियमित कर महमूद को दिया, किन्तु उसके एक साथी भटनेर के राजा ने अपने हिस्से का रुपया न दिया । तब महमूद ने उस पर चढ़ाई की । राजा सिन्ध नद के तटवर्त्ती वन में हताश हो भाग गया और आत्महत्या कर डाली ।

महमूद का तीसरा आक्रमण अबुलफ़तह लोदी (जो मुलतान का सूबेदार था और जो अनङ्गपाल से मिल गया था) को दमन करने के लिये हुआ । आनन्दपाल महमूद से हार कर कश्मीर भाग गया । इधर अबुलफ़तह ने महमूद को राज़ी कर लिया । तब वह ग़ज़नी की ओर भागा क्योंकि उसे तातार के बादशाह इलिकख़ाँ द्वारा ग़ज़नी पर आक्रमण का संवाद मिला था ।

महमूद के पास पाँच सौ सैनिक हाथी थे । उस समय तक बारूद और तोपों की लड़ाई आरम्भ नहीं हुई थी । उन हाथियों के सामने तातारी सवारों के पैर उखड़ गये । बलख़ के पास दोनों दलों में युद्ध हुआ, जिसमें महमूद की जय हुई ।

महमूद सिन्धु किनारे के ज़िलों को सुखपाल को सौंप गया था । यह सुखपाल हिन्दू से मुसलमान बना था; लेकिन जब महमूद बलख़ की ओर गया; तब इसने फिर हिन्दू हो कर उसके विरुद्ध सिर उठाया और आनन्दपाल को दण्ड देने के अभिप्राय से सेना इकट्ठी की ।

आनन्दपाल भी बेसुध न था । देश देश के राजाओं से अपने दूतों द्वारा कहला भेजा कि महमूद का इस ओर बढ़ना हम सब के लिये दुःखदायी है । इसके हाथ से किसी का भी धर्म धन एवं धरती नहीं बचेगी । यदि कुछ भी साहस और उत्साह हो तो आ कर युद्ध में मेरा साथ दो । क्योंकि अब तक भी कुछ नहीं बिगड़ा है । निदान उज्जैन, ग्वालियर, कालिञ्जर, क़न्नौज, अजमेर और दिल्ली के राजा लोग अपनी अपनी सेना सजा कर आनन्दपाल का साथ देने को पंजाब की ओर सिधारे । पेशावर के पास ही

लड़ाई हुई । दैवात् आनन्दपाल का हाथी भड़का और पीछे को भागा । उधर उसकी सेना वालों ने अपने सेनापति को भागा समझ, स्वयं भी रण से मुँह मोड़ा । तब महमूद ने पंजाब तक उनका पीछा किया । आनन्दपाल और उसके सहायक राजा तो तीन तेरह हो गये, पर महमूद ने आगे बढ़ कर कोट-काँगड़ा जा लूटा । सात सौ मन सोने चाँदी का असबाब, दो सौ मन विशुद्ध सोना, दो हज़ार मन चाँदी और बीस मन रत्नादि लूट में महमूद के हाथ लगे ।

सन् १०१० ई० में महमूद मुलतान से अबुलफ़तह लोदी को क़ैद कर के ले गया और फिर अगले साल आ कर थानेश्वर लूटा । जहाँ तक हिन्दू उसके हाथ लगे, उन सबको वह लौंडी गुलाम बनाने को ग़ज़नी ले गया । कहते हैं कि वहाँ एक माणिक साठ तोले का मिला । इसके बाद उसने दो बार कश्मीर पर हम्ला किया ।

नवीं चढ़ाई उसकी हिन्दुस्थान पर बड़ी तैयारी के साथ हुई । तवारीख़ फ़रिश्ता में उसके लश्कर की तादाद एक लाख सवार और बीस हज़ार पैदल लिखी है । वह अपने लश्कर को इस ढब से अचानक क़न्नौज के सामने ले गया कि वहाँ के उस समय के राजा कुअरराय से कुछ भी करते धरते न बन पड़ा । गले में दुपट्टा डाल कर, बाल बच्चों समेत वह महमूद के पास चला गया । महमूद ने अपने जीवन में यदि प्रशंसा योग्य कोई काम किया तो यही था कि उसने कुअरसेन के साथ बड़े सत्कार के साथ बर्ताव किया और हर प्रकार से उसे ढाढस बँधाया । महमूद तीन दिन तक क़न्नौजाधिपति का मेहमान रहा और चौथे दिन ग़ज़नी को लौट गया।[१]

पुस्तकों में उस समय के क़न्नौज नगर की बड़ी प्रशंसा लिखी है । किसी किसी ने तो लिखा है कि उस समय क़न्नौज का नगरपरकोटा पन्द्रह कोस के घेरे में था, कोई उसमें तीस हज़ार तम्बोलियों की दूकानें बतलाता है । कोई वहाँ के राजा की अधीनता में पाँच लाख प्यादे गिनाता है और कोई उनमें तीस हज़ार सवार और अस्सी हज़ार ज़िरहपोश और बढ़ाता है । पर वर्त्तमान क़न्नौज की दशा देख कर ऊपर लिखी बातों पर विश्वास करने को भी मन नहीं चलता । अब तो क़न्नौज एक छोटा सा ग्राम रह गया है । पर हाँ, उसके आस पास दूर दूर तक टूटे फूटे खंडहर अब तक विद्यमान हैं ।

क़न्नौज से ग़ज़नी लौटते समय महमूद ने मथरा को नष्ट भ्रष्ट किया बीस दिन तक मथुरा लूटी गयी । उसने मन्दिरों की मूर्त्तियों को तुड़वा कर, मन्दिरों में बुरे बुरे काम किये । चाँदी की टूटी हुई मूर्त्तियों से १०० ऊँटनी भर वह ग़ज़नी ले गया । इन मूर्त्तियों में पाँच सोने की थीं । इनमें से एक की तौल चार मन से ऊपर थी । महावन के लोगों को क़त्ल किया । राजा अपने बाल बच्चों को मार कर आप भी मर रहा । इस बार महमूद यहाँ से पाँच हज़ार तीन सौ आदमियों को पकड़ कर ग़ज़नी ले गया ।

दसवीं बार महमूद को क़न्नौज के राजा की मदद के लिये यहाँ आना पड़ा । पर कालिञ्जर के राजा ने क़न्नौज के राजा को महमूद के आने के पहले ही काट डाला था । इसीसे ग्यारहवीं बार वह कालिञ्जर के राजा से लड़ने के लिये भारतवर्ष में आया । लाहौर के राजा आनन्दपाल के बेटे ने क़न्नौज आते समय महमूद का सामना किया था । इस लिये महमूद ने उसका राज्य छीन कर ग़ज़नी में मिला लिया ।

बारहवाँ हम्ला महमूद का पत्तन सोमनाथ पर हुआ । अब तो यहाँ वाले उसका नाम तक भूल गये, पर उस समय वह यहाँ के बड़े तीर्थों में गिना जाता था । गुजरात प्रायद्वीप के दक्षिण समुद्र के तट पर सोमनाथ महादेव का नामी मन्दिर बना था । छप्पन खम्भे उसमें जवाहिर जड़े हुए खड़े थे और दो सौ मन भारी सोने की ज़ंजीर में एक बड़ा भारी घंटा लटकता था । दो हज़ार गाँव उसके ख़र्च के लिये लगे थे और दो हज़ार पंडे वहाँ के पुजारी गिने जाते

---

१ परन्तु तारीख़ यमीनी में लिखा है कि राजा कुअरसेन गङ्गा पार भाग गया । महमूद ने उसके सातों क़िलों को जो अलग अलग गङ्गा के तट पर बने हुए थे, जीत लिया । वहां लगभग दस हज़ार के मन्दिर थे । बादशाह ने अपने सिपाहियों को लूटने और बँदी पकड़ने की आज्ञा दी । लोग मारे डर के जिधर राह पायी भाग निकले । सब लोग विधवा और अनाथों की तरह विकल हुए । जो वहाँ से न भाग पाये, वे मार डाले गये ।

थे। तीर्थस्थान समझ आस पास के बहुत से राज़-पूत नरेश उसकी रक्षा के लिये एकत्र हो गये, पर महमूद कब छोड़ता था। तीन दिन तक लड़ाई होती रही। पाँच हज़ार से ऊपर रजपूत खेत रहे। बाक़ी नावों पर सवार हो कर निकल गये।

महमूद जब मन्दिर में गया; तब ब्राह्मण बहुत गिड़गिड़ाये और अनुनय विनय करते हुए उन लोगों ने कहा—"आप मूर्त्ति को न छुएँ, आप जितना रुपया कहें हम दण्ड भरें।" बादशाह ने कहा—"मैं बुतशिकन हूँ बुतफ़रोश नहीं बना चाहता।" अर्थात् मैं मूर्त्तियों का तोड़ने वाला हूँ, उनका बेचने वालों नहीं बनना चाहता। यह कह कर उसने महादेव की पँचगज़ी मूर्त्ति पर एक गदा इतने ज़ोर से मारी कि मूर्त्ति के टुकड़े टुकड़े हो गये उस मूर्त्ति के भीतर से इतने रत्न निकले कि जिनका मूल्य उस दण्ड से जो ब्राह्मण दिया चाहते थे, कहीं चढ़ बढ़ कर था। महमूद ने उस मूर्त्ति के दो टुकड़े तो मक्का मदीना भिजवा दिये और दो टुकड़े ग़ज़नी में अपनी कचहरी और मसजिद की सीढ़ियों में जड़वा दिये। कहा जाता है, इस हम्ले में दस करोड़ का माल महमूद के हाथ लगा।

ग़ज़नी पहुँच कर तुरन्त ही महमूद को एक बार मुल्तान तक फिर आना पड़ा। सोमनाथ से लौटते समय जिन जाटों ने उसके सिपाहियों के साथ छेड़ छाड़ की थी—उनको दण्ड देना आवश्यक था। इसके बाद महमूद ने फिर हिन्दुस्थान पर चढ़ाई नहीं की। वह ईरान तूरान की लड़ाइयों ही में फँसा रहा। यहाँ तक कि सन् १०३० में बीमार हो कर वह इस संसार से चल दिया।

मरने से कुछ काल पूर्व उसने अपने सामने सोने चाँदी और रत्नादि का ढेर लगवाया और उन ढेरों को देख कर वह देर तक रोया। यह नहीं कहा जा सकता कि उसका यह रोना अपने अत्याचारों का परिताप था अथवा उस धन को अपने साथ न ले जाने के कारण पश्चात्ताप था।

Sultan Muhammed. सुलतान मुहम्मद=यह औरंगज़ेब का ज्येष्ठ पुत्र था इसने अपने बाप के विरुद्ध सिर उठाया और ग्वालियर के क़िले में सात वर्ष तक क़ैद रह कर मर गया।

Surajmal Jat. सूरजमल जाट=यह चूरामन जाट की औलाद में से था इसने सन् १७६१ ई० में अहमद शाह दुर्रानी के भारताक्रमण के समय मरेहटों के साथ छल किया था। यह था बड़ा वीर।

Nanaji Malsuria. नानाजी मलसुरिया=यह शिवाजी का एक प्रसिद्ध योद्धा था और रामगढ़ दुर्ग पर अधिकार करते समय यह मारा गया था।

Tantia Topi. ताँतिया टोपी=यह नाना का सम्बन्धी था और सन् १८५७ ई० के सिपाही विद्रोह में अङ्गरेज़ों के साथ लड़ा था। यह वीर था किन्तु निठुर था। अन्त में यह पकड़ा गया। इसके अभियोग की जाँच हुई और अपरेल सन् १८५६ ई० में इसे फाँसी दी गयी थी।

Tara Bai. तारा बाई=राजाराम की धर्मपत्नी थी। राजाराम के मारे जाने पर मरेहटों की सल्तनत का भार इसीके ऊपर था। यह औरंगज़ेब की मृत्यु तक बराबर उसके साथ लड़ती झगड़ती रही।

---

१ चन्दन के वे किवाड़ जो अङ्गरेजी फ़ौज सन् १८४२ ई० में ग़ज़नी से उखाड़ लायी थी और जो अब आगरे के क़िले में हैं—इसी सोमनाथ के मन्दिर के बतलाये जाते हैं।

Teimur Lang. तैमूरलङ्ग अमीर तैमूर या तिमिरलङ्ग साहिबे-क़िरन।

चंगेज़ख़ाँ की जीवनी से विदित होगा कि चंगेज़ख़ाँ मरने के पूर्व अपने दूसरे पुत्र चंगाती को अपने सुविशाल राज्य का एक भाग दे गया था और मंत्रिप्रवर कारसार नोयान की मंत्रणानुसार कार्य निर्वाह करने का आदेश भी दे गया था। चंगाती ने अपने पिता के निर्देशानुसार कारसार को अपना मंत्री बना कर निर्विवाद राज्य किया। तब से बराबर कारसार के उत्तराधिकारी गण, वंशानुक्रम से चंगाती वंश के प्रधान मंत्रणादाता के पद को ग्रहण करते रहे।

चंगाती की मृत्यु के बाद उसके वंशधर परस्पर के कलह से धीरे धीरे दुर्बल और निस्तेज होते चले गये और इसी लिये उनका सुविस्तीर्ण राज्य संकुचित होता चला गया। इस प्रकार कितने ही वर्ष जब व्यतीत हो गये तब इसान लुगाख़ाँ की अमलदारी में चंगाती का राज्य दो भागों में बँट गया। मुग़लभूमि और काशग़र को मिला कर एक राज्य बना और मारउन्नाहर प्रदेश को ले कर दूसरा राज्य बना। एक राज्य में मुग़ल जाति की एक शाखा और दूसरे में दूसरी शाखा के प्रधान अधिपति बने।[1]

इस प्रकार से चंगाती के राज्य के दो टुकड़े हो गये। कारसार के वंशधर, मारउन्नाहर के राज्य में मंत्रि पद पर नियुक्त हुए।

कारसार नोयान एक प्रतिभाशाली राजनीतिविशारद एवं विचक्षण शासनकर्त्ता था। चंगाती ने सारा राज-कार्य कारसार को सौंप दिया था और वह स्वयं अपने छोटे भाई उकताई के साथ समय व्यतीत किया करता था। यद्यपि उकताई उम्र में चंगाती से छोटा था; तथापि वह (चंगाती) उस (उकताई) को पितृनिर्देशानुसार, अधिनेता समझ कर उसका सम्मान करने में कुण्ठित नहीं होता था।

कारसार, चंगाती के राज्य में हर्त्ता कर्त्ता हो गया; और चंगाती की मृत्यु के बाद उसने अपनी इच्छानुसार, चंगाती के वंशधरों को, राजच्युत अथवा सिंहासनाभिषिक्त किया, इस समय वह पद गौरव में और क्षमता में—सारे राज्य में अद्वितीय पुरुष समझा जाता था और उसका यश चारों ओर फैल गया था।

कारसार के पुत्रों में एज़ल नोयान ज्ञान और धर्म में अपने भाइयों में सब से बढ़ कर था। अतः उसीको उसके पिता का पद दिया गया। उसके वीरत्व और शासननैपुण्य से राज्य की बहुत उन्नति हुई। किन्तु चंगातियों के वंश वालों में प्रबल आत्मकलह उठ खड़े होने के कारण—एज़ल ने अपना पद त्याग दिया और वह काश नामक नगर में, अपने पैतृक वासभवन में जा कर रहने लगा।

एज़ल के बाद उसका पुत्र अमीर आइलनगर मंत्री हुआ। उसने इसलाम धर्म में दीक्षित हो कर उपयुक्त दक्षता और तेजस्विता के साथ अपना कर्त्तव्य पालन किया। अमीर आइलनगर के परलोक सिधारने पर, उसका पुत्र अमीर बकरलख़ाँ गद्दी पर बैठा। किन्तु वह रात दिन धर्म साधन में लगा रहता था और अन्य कोई भी काम करने का अवकाश नहीं पाता था। इससे उसने अपने पर का सारा काम काज अपने भाइयों को सौंप दिया और वह स्वयं काश में जा कर, स्वाधीन भाव से रहने लगा। वह अपना निर्वाह सामान्य आमदनी ही से कर लेता था और धनाभाव के कारण उत्पन्न सारे कष्ट चुपचाप सह लिया करता था। वह बड़ा गुणी था और बड़ा धर्मपरायण था।

अमीर बकरल की मृत्यु के बाद उसका पुत्र अमीर तरघाई अपने पिता के पद पर नियुक्त हुआ। वह भी अपने धर्मपरायण पिता की उपयुक्त सन्तान था और सारा समय साधुसङ्ग में व्यतीत करता था। इसीके घर में इतिहासप्रसिद्ध तैमूरलङ्ग ने जन्म ग्रहण किया। तैमूरलङ्ग से पूर्व आठवीं पीढ़ी में कजलीबहादुर ने स्वप्न में जिस चमकते हुए अष्टम महत् नक्षत्र को देखा था—वह यही तैमूरलङ्ग था।

तैमूरलङ्ग के अभ्युदय काल के पूर्व मुग़लसाम्राज्य की क्या दशा थी? दिल्ली दरबार के राजकवि ख़ुसरो

---

[1] चंगेज़ख़ाँ की मृत्यु के समय उसके तीसरे पुत्र उकताई को पिता की आज्ञानुसार मुग़लभूमि का अधिकार मिला था। पीछे यह देश किस प्रकार चंगाती वंश के हस्तगत हुआ इसका पता नहीं चलता।

इसके एक शताब्दी पहले पकड़ कर मुग़लभूमि में लाये गये थे । उस समय के मुग़लों का आचार व्यवहार खुसरो ने पशुओं जैसा बतलाया है ।[१] खुसरो का वर्णन अतिरञ्जित है, इसमें सन्देह नहीं। किन्तु उसके पढ़ने से यह बात अवश्य जान पड़ती है कि उस समय मुग़ल सभ्यता के मन्दिर की प्रथम सीढ़ी पर भी नहीं चढ़ पाये थे। चंगेज़ख़ाँ की मृत्यु के बाद इसलाम धर्म की ज्योति का प्रकाश फैला और तब से सौ वर्ष के भीतर ही मुग़ल जाति बहुत कुछ सुधर गयी। तैमूरलङ्ग के समय में समरक़न्द, बुखारा, शिल्प और शिक्षा के केन्द्र समझे जाते थे। चंगेज़ख़ाँ के समय से मुग़ल अनेक देश और राज्य जीतते रहे थे । वे जिस देश को जीतते थे, उसके राजा की विधवा रानी अथवा कन्या के साथ विवाह कर लिया करते थे। इस प्रथा से भी उनके आचार, व्यवहार में बहुत कुछ उलट फेर हो गया था। वे लोग अब कुछ कुछ विलास-प्रिय और विश्राम-प्रिय (आरामतलब) भी हो गये थे । इनकी देखा देखी सर्व साधारण मुग़ल जाति के लोग भी सुकुमार और विलास-प्रिय होते जाते थे । इसमें सन्देह नहीं कि वे युद्ध-क्षेत्र में अब भी वीर्यता दिखलाते थे, किन्तु यह सामयिक उत्तेजना का फल था। उनकी सारी शक्ति और बुद्धि झूठ बोलने धोखा देने और षड्यंत्र रचना ही में काम आती थी।

ये लोग स्वभाव ही से बाग़ आडम्बरप्रिय और अमितव्ययी थे। राजघराने के लोगों ने पशुपालकों जैसा जीवन-सुलभ चाञ्चल्य परित्याग कर दिया था और उन्होंने सभ्योचित आचार व्यवहार का अनुकरण करना आरम्भ कर दिया था । यद्यपि उन लोगों ने डेरे तम्बुओं में रहना छोड़ दिया था, तथापि नागरिक लोगों के आवश्यक अध्यवसाय और नियमों के पालन करने का अभ्यास अभी तक उनमें नहीं उत्पन्न हुआ था। साथ ही साथ उन्होंने अनेक राज्य जीते थे, किन्तु सभ्य शासकों जैसा शासन करना उन्होंने अभी तक नहीं सीख पाया था। सभ्यता के अवगुणों के अनेक अंशों में ये लोग पात्र बन गये थे, किन्तु उनकी स्त्रियाँ अभी तक इन दोषों से दूर थीं। वे पूर्ववत् पशुपालकों के सद्गुणों से शोभित थीं। वे बड़ी साहसिनी पति की अनुगामिनी और सरल हृदय वाली थीं।

जिस समय मुग़ल जाति की सामाजिक अवस्था इस प्रकार की थी, उसी समय सन् १३३६ ई० में काशनगर में तैमूर का जन्म हुआ। तैमूर ने अपनी बाल्यावस्था और किशोरावस्था—शिकार खेलने और घोड़े पर सवार होने में बितायी । जब वह पचीस वर्ष का हुआ, तब मारउन्नहर का राज्य आन्तकलह से

१ "There were more than thousand Tatars (*i. e.*, Mughals) infidels and warriors of other tribes, riding on camels great commanders in battle, all with steel-like bodies clothed in cotton, with faces like fire, with caps of sheep. Their eyes were so narrow and piercing that they might have bored a hole in a brazen vessel. Their stink was more horrible than their colour. Their faces were set on their bodies as if they had no neck. Their cheeks resembled soft leathern bottles full of wrinkles and knots. Their noses extended from cheek to cheek-bone. Their nostrils resembled rotten graves, and from the hair descended as far as the lips. Their moustaches were of extravagant length. They had but scanty beards about their chins.. Their chests, of a colour half black and half white were so covered with ice that they looked like sesame growing on a bad soil. Their whole body, indeed was covered with these insects, and their skin as rough pained as chapeen leather fit only to be converted into shoes. They devoured dogs and pigs with their nasty teeth."

Kirasm-ssadain of Amir Khusroo.

कारण नष्ट भ्रष्ट हो रहा था। उस समय चंगाती वंश का तरमाशिरिनख़ाँ राज्य करता था। यह किसी भी काम का न था। अमीर उमराव स्वतंत्र से हो गये थे। वे जो चाहते वही कर डाला करते थे। इन कारणों से जिस समय देश में अराजकता फैली हुई थी उस समय काशगर के ख़ाँ जहील ने कलमाक्स जाति के बहुत से सैनिकों के साथ मारउनाहर राज्य पर आक्रमण किया। तब पिता की आज्ञा से इक्कीस वर्ष के तैमूर ने स्वदेश के उद्धार के लिये कमर कसी।

ऐसी दुर्दशा के समय सब देशवासी गण भय के मारे चुपचाप दुबके हुए थे—कोई भी तैमूर की सहायता के लिये आगे न बढ़ा। तैमूर ने स्वदेशवासियों की सहायता की एक सप्ताह तक प्रतीक्षा की। इस बीच में उसका साथ देने को केवल ६० घुड़सवार आये। अन्त में इनको साथ ले तैमूर मरुदेश की ओर भाग खड़ा हुआ। शत्रुदल के एक सहस्र सैनिकों ने उसका पीछा किया और उसे जा दबाया। तैमूर ने उस समय असाधारण वीरता दिखलायी। उसके हाथ से बहुत से शत्रु मारे गये और अन्त में बचे हुए शत्रुदल के सैनिकों को अपने प्राण ले कर भागना पड़ा। साथ ही शत्रुदल के सैनिक, तैमूर के असामान्य साहस और पराक्रम का परिचय पा कर विस्मित हुए और उन लोगों ने तैमूर को अपने मन में दैवी बल से बलवान् मान लिया। किन्तु इस लड़ाई में तैमूर के भी अनेक साथी संगी सैनिक मारे गये उसके केवल दस मनुष्य बच रहे। तैमूर सात नौकर, स्त्री और चार घोड़ों के साथ इधर से उधर हुए, वृक्ष पत्र की तरह इधर उधर मरुभूमि में मारा मारा फिरने लगा। इस समय उसकी गणना राजद्रोहियों में थी। प्रतिकूल अवस्था में पड़ने पर भी उसका यश चारों ओर फैल गया और उसको मनुष्यों के बर्ताव का बहुत कुछ अनुभव हो गया।

तैमूर जब लौट कर स्वदेश में गया, तब अनेक मुग़लों ने उसके पास जा कर उसकी अधीनता स्वीकार की। अनेक अमीर जो बहुत दिनों से स्वतंत्र थे, तैमूर को श्रद्धा की दृष्टि से देखने लगे और उसके दुःख को दुःख और उसके सुख को सुख समझने लगे। अमीर गण तैमूर के कहाँ तक पक्षपाती हो गये थे, इसका उदाहरण हम एक घटना का उल्लेख कर के नीचे देते हैं। तैमूर ने लिखा है—"जिस समय उनकी (तीन अमीरों की) दृष्टि मेरे ऊपर पड़ी, उस समय वे आनन्द से अधीर हो गये। उन्होंने मुझे घोड़े से अपने आप नीचे उतारा और रकाबों को चुम्बन कर वे मेरे पास बैठ गये। मैंने भी घोड़े से उतर कर हर एक को गले से लगाया। प्रथम अमीर के सिर पर मैंने अपनी पगड़ी बाँधी और दूसरे अमीर को मणि मुक्ता से खचित सोने का अपना कमरबन्द दिया और तीसरे को मैंने अपना अंगरखा पहना दिया। वे आँसू बहाने लगे—तब मेरी आँखें भी डबडबा आयीं। नमाज़ का समय उपस्थित होने पर मैंने नमाज़ पढ़ी—इसके बाद मैं घोड़े पर सवार हो कर अपने घर गया। घर पहुँच कर मैंने स्वजनों को आमंत्रित किया और उन्हें एक भोज दिया।"

तैमूरलङ्ग की विश्वस्त सेना में राज्य के सब से प्रसिद्ध वीर आ आ कर सम्मिलित हो गये। तब उसने शत्रु के विरुद्ध यात्रा की और रणक्षेत्र में कुछ दिनों की हार जीत के बाद, तैमूर ने शत्रु को स्वदेश के बाहर निकाल दिया। तैमूर ने पचीस वर्ष की अवस्था में स्वदेश का उद्धार किया, जिससे उसका सब लोग आदर करने लगे।

यद्यपि तैमूर ने अपनी प्रतिपत्ति बढ़ाने की यथेष्ट चेष्टा की—तथापि वह राज्य का हर्त्ता कर्त्ता न हो सका। जो हो थोड़े ही दिनों में उसने अपने प्रतिद्वन्द्वियों को अपने वश में कर लिया और एशिया के भाग्याकाश में वह नवोदित सूर्य्य के समान चमकने लगा। चौंतीस वर्ष की अवस्था में तैमूर की शक्ति और प्रतिपत्ति राज्य भर में अद्वितीय समझी जाने लगी और उसने सारी राजकीय समता अपने हाथ में कर ली।

तैमूरलङ्ग के पूर्व पुरुष वंश परम्परा से मारउन्नाहर राज्य के मंत्री होते चले आते थे—किन्तु तैमूर को स्वयं उस राज्य का अधिष्ठाता बनते देख, मुग़ल उसे विश्वासघाती बतलाने लगे। मंत्री कारसार ने चंगाती के वंश की एक कन्या से विवाह किया था—अतः तैमूर के शरीर में भी राजरक्त बहता था। यद्यपि तैमूर ने सारा राज काज अपनी मुट्ठी में कर लिया था, तथापि वह राजकीय कोई भी काम अपने नाम से नहीं करता था। तैमूर, सयरगाटमिसख़ाँ को राजसिंहासन पर बिठा कर उसीके नाम से राजसम्बन्धी सारा काम काज किया करता था। किन्तु यह ख़ाँ कोरे नाम के ख़ाँ थे—इनमें शक्ति तिल भर सी न थी। पर तैमूर ने कभी राजा की उपाधि ग्रहण नहीं की। मंत्री उपाधि

उसके घराने में पुराने समय से लगती चली आती थी—सो तैमूर ने भी इसी उपाधि को ग्रहण किया।

अनन्तर तैमूरलङ्ग ने शत्रुओं का नाश कर के और अपने राज्य को सुनियमित प्रणाली के अनुसार उस की उचित व्यवस्था कर, अन्य राज्यों को हरने की ओर ध्यान दिया। सबसे पहले तो उसने काशग़ार के ख़ाँ से बदला लेने के अर्थ, उसके राज्य पर चढ़ाई की। ख़ाँ साहब की सेना तैमूरलङ्ग की सेना की मार को न सह सकी वह भागी और तैमूर ने सिहुन नदी पार कर काशग़ार राज्य (तुर्किस्थान). पर अपना अधिकार जमाया। कहते हैं तैमूर ने सात बार इस राज्य को मथा था। इस युद्ध में उसे तेरह वर्ष तक फँसा रहना पड़ा।

काशग़ार का युद्ध समाप्त भी होने नहीं पाया था कि तैमूर ने फ़ारिस राज्य के विरुद्ध शस्त्र उठाया। इस देश के अधिपति अबू सैयद की मृत्यु के बाद सारे राज्य में अराजकता फैल गयी और शान्ति एवं न्याय बिदा हुए। राज्य के सामन्तों ने स्वतंत्र हो कर, अनेक छोटे छोटे राज्य स्थापित कर डाले। फ़ारिस राज्य पर आक्रमण करने का यह सुयोग समझ कर उसने फ़ारिस पर चढ़ाई की। वे छोटी छोटी रियासतों के अधिपति अलग अलग उसका सामना करने को तैयार हुए— किन्तु पीछे से हर एक को उसके सामने सिर झुकाना पड़ा। सबसे पहले वनियार के अधिपति, इब्राहीम ने अधीनता स्वीकार की और अनेक प्रकार के बहुमूल्य भेंट के पदार्थ ले कर वह तैमूर के शिविर में गया। प्रचलित प्रथानुसार उसकी लायी हुई प्रत्येक वस्तु नौ नौ होनी चाहिये थी। किन्तु एक दर्शक ने कहा— "गुलाम तो आठ ही दिखलायी पड़ते हैं।" इब्राहीम तो इसका उत्तर पहले ही से सोच कर आया था— उसने कहा—"नवाँ गुलाम यह हाज़िर है।" उस के ऐसे सन्तोषजनक उत्तर को सुन कर तैमूर मुसक्याना और उसके मुसक्याने ही से इब्राहीम ने अपने भाग्य सराहे एवं अपने को कृतार्थ माना। अनन्तर तैमूर ने, सिराज, अरसाज़, बुग़दाद, एदिसा आदि अनेक स्थानों पर आक्रमण कर सारा फ़ारिस अपनी मुट्ठी में कर लिया। उसने सारे फ़ारिस देश को तेरह वर्ष में अपने हाथ में किया।

फ़ारिस को जीत चुकने के तीन वर्ष बाद तैमूर ने सन् १३९० ई० में किपचाक राज्य पर आक्रमण किया। तत्तमिस नामक यहाँ का एक राजकुमार स्वदेश से निकाल दिया गया था, उसने तैमूर का आश्रय ग्रहण किया और पीछे से वह तैमूर की सेना की सहायता से किपचाक के राजसिंहासन पर बैठा। किन्तु दस वर्ष राज्य करने के बाद, तत्तमिस ने पहले के उपकारों को भूल कर नब्बे हज़ार घुड़सवारों को ले कर और सिहुन नदी पार कर तैमूर के भवनों को जला डाला।

तत्तमिस के प्रबल आक्रमण को देख वह समरक़न्द और अपने जीवन की रक्षा के लिये युद्धक्षेत्र में अवतीर्ण हुआ और सामान्य युद्ध करने के बाद ही. वह ज़ख़मी हुआ।

अब तैमूरलङ्ग के बदला लेने की पारी आयी। उसने पूर्व और पश्चिम—दोनों दिशाओं से क्रमशः दो बार किपचाक पर आक्रमण किया। उसकी सेना इतनी अधिक थी कि उसे एकत्र करने के लिये डेढ़ योजन भूमि आवश्यक होती थी। तैमूर की सेना के आने का संवाद सुन किपचाक के निवासी अपने अपने घर छोड़ कर भागे जा रहे थे। तैमूर की सेना ने पाँच मास तक शत्रु को ढूँढ़ा, पर तो भी वह न दिखलायी पड़ा और इस पाँच मास की खोज में सेना को शिकार में मारे हुए पशुओं के मांस ही से अपना पेट भरना पड़ा। अन्त में दोनों की सेनाओं की आपस में मुठभेड़ हुई। घोर युद्ध हुआ। शत्रुपक्ष के पताकाधारी की विश्वासघातकता से तैमूर की जीत हुई और उसके अत्याचारों से सारा किपचाक राज्य धूलि में मिल गया। तत्तमिस मारे डर के जगह जगह मारा मारा फिरने लगा और तैमूर उसका पीछा करता हुआ रशिया के करद राज्य में पहुँचा। शत्रु के आगमन का संवाद सुन, मास्को नगर काँप उठा। किन्तु तैमूर ने रशिया की राजधानी पर आक्रमण न किया और वह दक्षिण की ओर चल दिया। यहाँ से तैमूर वल्गा नदी के तट पर पहुँचा और वहाँ के समृद्धिशाली अजय नगर में घुसा। अजय नगर के प्रतिष्ठित बनियों ने उसकी अधीनता स्वीकार की। किन्तु वह धन रत्न के लोभ को न जीत सका और उसने सुन्दर अटारियोंदार भवनों को फूँक कर भस्म कर डाला। इसके बाद उसने सराई और आष्ट्राकान दो नगरों को फूँका। अनन्तर सगौरव वह समरक़न्द को लौट गया।

इसी बार तैमूर ने भारतवर्ष पर सतृष्ण दृष्टिपात किया। मूर्त्तिपूजकों को क़ुरानोक्त धर्म में दीक्षित करने

और जो दीक्षित न हों उनका नाश करने के लिये युद्धाग्नि प्रज्वलित करना—इसलाम धर्म के अनुशासनानुसार मुसलमानों का अवश्य अनुष्ठेय कर्त्तव्य कर्म है। जो ऐसे धर्मयुद्धों में मूर्त्तिपूजकों का नाश कर डालने में कृतकार्य होते हैं, वे "ग़ाज़ी" की उपाधि से भूषित हो कर, मुसलमान समाज में सम्मानित किये जाते हैं। तैमूर का मुसलमानी धर्मशास्त्र पर प्रगाढ़ विश्वास था—अतः उसने धर्मयुद्ध में मूर्त्तिपूजकों का विनाश कर गौरवजनक ग़ाज़ी की उपाधि प्राप्त करने का मन ही मन सङ्कल्प किया। उस समय भी चीन और भारतवर्ष मूर्त्तिपूजकों के रहने के स्थान थे। इन दोनों राज्यों में से किस पर आक्रमण किया जाय—यह निश्चय करने के लिये तैमूर विचारसागर में निमग्न हुआ। भारतभूमि रत्नप्रसविनी कहला कर ही सदा से दुर्भाग्यवती होती चली आई है। भारतवर्ष के अतुल ऐश्वर्य की जनश्रुति ही ने तैमूर के मन को अपनी ओर खींचा। उसने हिन्दू जाति के विरुद्ध धर्मयुद्ध (जहाद) की घोषणा की।[१] तैमूर ने स्वरचित जीवनवृत्त में एक जगह लिखा है—"बड़ा भारी कष्ट और परिश्रम सह कर भी मैंने दो कारणों से भारतवर्ष में आना स्वीकार किया है। प्रथम तो इसलाम धर्म के शत्रु मूर्त्तिपूजकों के विरुद्ध धर्मयुद्ध कर के परलोक में पुरस्कार पाने के उद्देश्य से दूसरे इसलामी सेना को मूर्त्तिपूजकों का धन रत्न लूटने का अवसर दिलाने के उद्देश्य से जो मुसलमान धर्मार्थ युद्ध करें; उनके लिये मूर्त्तिपूजकों को लूटना—माता का दूध पीने के समान शास्त्रसङ्गत है।" तैमूर जान बूझ कर यह बात भूल गया था कि उस समय भारतवर्ष में मुसलमान सम्राट् था—और भारत में बसने वाले उस समय के मुसलमानों की संख्या भी थोड़ी न थी।

सन् १३९८ ई० के मार्च मास में तैमूर ने वृक्ष के पत्तों के समान असंख्य सेना एकत्र कर, भारत को जीतने के उद्देश्य से यात्रा की। रास्ते में इन्दरा नामक स्थान के बसने वाले मुसलमानों ने कटहार जाति के विरुद्ध तैमूर के पास फ़रियाद की।

काश्मीर राज्य की सीमा से ले कर, काबुल के पास की पर्वतमाला तक कटहार जाति का राज्य था। कटहार जाति अभी तक मुसलमान नहीं हुई थी। अतः फ़रियादी मुसलमानों की रक्षा के लिये तैमूर पहले कटहार जाति को दमन करने के लिये उस ओर मुड़ गया। कटहार देश प्रकृति का दुर्भेद्य स्थान था। मुग़ल सेना को उस स्थान में पहुँचने के पहले अनेक बर्फ़ीले पहाड़, सङ्कीर्ण घाटियाँ और दुरारोह पर्वतशृङ्गों पर चढ़ना उतरना पड़ा। किन्तु उन लोगों ने इन कष्टों को कुछ भी न गिना और बराबर वे बढ़ते ही चले गये, वहाँ सारे कटहार देश को उन लोगों ने मथ डाला। मारे हुए कटहारों की हड्डियों से उनका स्मृतिस्तम्भ स्थापित कर के मुग़ल सेना फिर अपने गन्तव्य पथ पर अग्रसर हुई।

सन् १३९८ ई० के सितम्बर मास में सिन्धु नदी को पार कर वह भारतवर्ष के अटक नगर में घुसा। भारत में उसके पदार्पण करते ही सब लोग काँपने लगे। उस समय दिल्ली की राजशक्ति घरेलू झगड़ों से सम्पूर्ण रीत्या निर्बल और निस्तेज हो गयी थी। उस समय के दिल्ली के सम्राट् की इतनी शक्ति न थी कि वह ऐसे प्रबल शत्रु का सामना कर सके। अतः तैमूरलङ्ग बिना रोक टोक नगरों को लूटता और नरहत्या करता हुआ दिल्ली की ओर बढ़ता गया। तब और उपाय न देख प्रत्येक प्रान्त के शासनकर्त्ता सिर झुका कर उसकी कृपा के प्रार्थी हुए और रक्षक-हीन प्रजा अपने प्राण ले इधर उधर भागने लगी। तैमूरलङ्ग जिधर हो कर निकलता उधर ही हरी भरी बस्तियों को जला कर वन बना देता था। पञ्चनद से ले कर यमुना तक सारा देश मुग़लों ने छार खार कर डाला।

---

१ तैमूर का पौत्र मीर मुहम्मद जहाँगीर काबुल का शासनकर्त्ता था। उसने मुलतान पर आक्रमण किया—किन्तु जब वह हारा तब उसने अपने पितामह को सहायता देने को लिखा। तैमूर पहले ही से भारत पर आक्रमण करने की कल्पना किये बैठा था—इसी समय पौत्र का आवेदन पत्र उसके हाथ में पहुँचा। यह संवाद पाते ही वह अपने सङ्कल्प को कार्यरूप में परिणत करने को तैयार हुआ और अपने पौत्र की सहायता करने के लिये वह बड़ी शीघ्रता से भारतवर्ष की ओर प्रस्थानित हुआ। किन्तु उसके मुलतान पहुँचने के पूर्व ही डेढ़ वर्ष के घिराव के अनन्तर मीर मुहम्मद ने मुलतान को हस्तगत कर लिया था। डेढ़ वर्ष तक घिरे रहने से मुलतान के दुर्ग वालों के पास आहार का सामान चुक गया यहाँ तक कि दुर्ग में बिल्ली चूहे तक न बचे।

मुग़ल सैनिकों ने हज़ारों घर जलाये, असंख्य मन चाँवल आदि अन्न उदर भरने के लिये लूटे औ कामानल में अनेक हिन्दू रमणियों के सतीत्व की आहुति दे कर असंख्य हिन्दुओं के रक्त से अपने हा रँगे। उन लोगों के हाथ से बचना बड़ा कठिन था जो उनकी तलवार के सामने न पड़ा वह गुलाम बना लिया जाता था। इस प्रकार एक लक्ष गुलामों को साथ लिये हुए तैमूर दिसम्बर मास के आरम्भ में दिल्ली के द्वार पर पहुँचा।

तैमूरलङ्ग ने दिल्ली के बाहर डेरा डाला—क्योंकि दिल्ली के अधिवासियों ने सेना संग्रह कर उसका सामना करने का प्रबन्ध किया था। तैमूर ने अपने मन में विचारा कि यदि कहीं युद्ध हुआ, तो सम्भव है ये गुलाम कुछ पीछे से उपद्रव मचावें। अतः उसने एक लाख नर नारियों को पशुओं की तरह काटे जाने की आज्ञा दी। उसकी आज्ञा का पालन किया गया।[1] इस अमानुषिक नरहत्या की आज्ञा सुन कर बहुत से मुग़लों का कलेजा भी दहल गया था किन्तु कठोर राजाज्ञा का पालन किये विना, उनका छुटकारा न था। पुरुष स्त्री सब मारे गये, किन्तु गुलामी के लिये पन्द्रह वर्ष तक के बालिका और बालक बचा लिये गये। उस समय मुग़ल-छावनी में एक कोमलहृदय धर्मात्मा मनुष्य था जिसका नाम मौलाना नासिरुद्दीन उमर था। यद्यपि उसने आज तक कभी एक बकरी का बच्चा भी नहीं मारा था तथापि उसे आज्ञा दी गयी कि तुम अपने हाथ से पन्द्रह मनुष्यों को क़त्ल करो।

इससे प्रत्यक्ष सिद्ध है कि ऐसा अमानुषिक हत्या-काण्ड जगत् में आज तक किसी ने नहीं किया।[2]

१७ वीं दिसम्बर को दिल्ली का सुलतान महमूद बारह हज़ार सवार चालीस हज़ार पैदल और सौ से अधिक रणनिपुण हाथी ले कर शत्रु का सामना करने को रणक्षेत्र में पहुँचा। इसके पहले मुग़ल सेना ने अनेक युद्ध जीते, किन्तु आज तक उनको रणकुशल हाथियों का कभी सामना नहीं करना पड़ा था। उनको देख कर वे लोग इतने डरे कि जब राजपुरुषों के ठहरने का स्थान निश्चित करने को तैमूरलङ्ग ने उनसे पूँछा तब उन लोगों ने उत्तर में कहा कि "हम महिलाओं के साथ जा कर बैठे रहेंगे।"

तैमूर ने अपनी सेना को भीत देख कर, सैनिकों का उत्साह बढ़ाने के लिये अपनी सेना के सामने नोकदार लकड़ियों का कटहरा खड़ा करवा दिया और उसके नीचे खाई खुदवा दी। फिर उनके पास बड़े बड़े भैंसे, गले में मज़बूत रस्से डाल कर बँधवा दिये।

शत्रु की सेना के सामने आने पर तैमूरलङ्ग घोड़े पर सवार हुआ और आकाश की ओर देख कर प्रार्थना की। प्रार्थना पूरी होने पर शत्रु सैन्य पर आक्रमण करने की उसने आज्ञा दी। मुग़ल सेना कालान्तक यम की तरह शत्रु पर टूट पड़ी। दिल्ली के सम्राट् की सेना इस आक्रमण के वेग को न सह कर रणक्षेत्र में इधर उधर मारी मारी फिरने लगी। अन्त में तैमूर विजयी हुआ।

सुलतान महमूद हार कर दिल्ली में लौट गया। स्वराज्य रक्षा के लिये मैं तैमूर के विरुद्ध खड़ा हुआ—वह अब इसीका सोच और पश्चात्ताप करने लगा। अन्त में अपने प्राण बचाने के लिये महमूद गुजरात की ओर भाग खड़ा हुआ।

तैमूर ने दिल्ली में प्रवेश कर अपने को भारतवर्ष का सम्राट् बतलाया। उसके आदेश से दिल्ली की मसजिद में उसके नाम का ख़ुतबा पढ़ा गया। तैमूर बड़ी धूमधाम से तख़्त पर बैठा। निर्दिष्ट दिन दिल्ली के मुख्य मुख्य सामन्त और राजपुरुष दरबार में गये। तैमूर उस दिन तख़्त पर बैठा। नाच गान की खूब धूम रही। अनन्तर आये हुए सामन्त और राज-

१. राजा शिवप्रसाद ने इस घटना के सम्बन्ध में इतिहास तिमिरनाशक में लिखा है :—
"Here the inhuman monster butchered 100,000 prisoners, taking on his march, having reserved all below the age of fifteen years for slavery."

२. I think such beasts of prey as Changez Khan and Taimurlang should be called the enemies of mankind. He has Timirnashak.

इस घटना के साढ़े तीन सौ वर्ष बाद नादिरशाह के समय में भी दिल्ली में क़त्ल आम बोला गया था किन्तु भयानकता में यह काण्ड, उससे कहीं घटकर था।

पुरुषों ने एक एक कर के उसकी वश्यता स्वीकार की। नवाभिषिक्त सम्राट् ने उनको अनेक प्रकार के बहुमूल्य पदार्थ उपहार स्वरूप दे कर अपनी प्रीति जनायी। सब से अन्त में शरबत और सुरा बाँटी गयी।

इस घटना के एक सप्ताह बाद दिल्ली में भयङ्कर लूट पाट और हत्याकाण्ड आरम्भ हुआ। अभी तक मुग़ल सेना दिल्ली के बाहर ठहरी हुई थी। तैमूर के साथ केवल पन्द्रह सौ सैनिक आवश्यक काम काज के लिये दिल्ली में आये थे। इन लोगों से न रहा गया। इन्होंने जब लूट पाट और मार काट आरम्भ की तब दिल्ली के बाहर पड़ी हुई सेना भी इनमें आ मिली और स्थिति और भी अधिक भयङ्कर हो गयी। सहस्रों हिन्दू स्त्री पुरुष मुग़लों के हाथ से अपनी मानमर्य्यादा की रक्षा करने के लिये अपने घर में आग लगा कर जल कर मर गये। शोभा और सम्पद् की आधार स्वरूप दिल्ली को मुग़लों ने पाँच दिन तक खूब लूटा। और असंख्य नगरवासियों को पकड़ कर बन्दी बनाया। प्रत्येक सेनानी ने बीस बीस ग़ुलाम पकड़े—किसी किसी ने बीस से भी अधिक ग़ुलाम पकड़े। मुरदों के मारे गली और रास्ते पर चलना कठिन हो गया।

राजा शिवप्रसाद ने लिखा है कि जब लूटने को कुछ भी न बचा और जब वे मनुष्यों के गले घास की तरह काटते काटते थक गये और जब उनके पास ग़ुलामों की संख्या बहुत अधिक हो गयी—तब उन लोगों ने दिल्ली से पयान किया।[1]

तैमूर ने स्वरचित जीवन वृत्तान्त में लिखा है—"मैंने दिल्ली विजय करने पर आमोद प्रमोद में पन्द्रह दिन व्यतीत किये। मैं विधर्मियों का नाश करने के निमित्त ही भारतवर्ष में गया था। मैंने वहाँ शत्रुओं को परास्त किया और लाखों मूर्त्तिपूजकों को यमपुरी भेजा और मेरी तलवार विधर्मियों के रक्त से अनु-

---

१. "When there was nothing left to plunder, and they were tired of cutting man's throat like so much grass, and had more slaves in their possession than they knew what to do, with Taimurlang—who may well, be called the scourge of God—left Delhi."

दिल्ली के इस हत्याकाण्ड को ले कर तवारीख़ फ़रिश्ता में लिखा है:—

"Then followed a scene of horror much easier to be imagined than described. * * * * This massacre in the history of Nizam, otherwise related. The collectors of the ransom, says he, upon the part of Timur, having used great violence, by torture and other means, to extort money, the citizens fell upon them and killed some of the Moguls. The circumstances being reported to the Mogul King he ordered a general pillage and, upon resistance, a massacre to commence. This account carries greater appearance of truth along it, both from Timur's general character of cruelty, and the improbability of his being five days close to the city without having intelligence of what passed within the walls. But the imperial race of Timur, take to this day, great pains to invalidate this opinion, nor they want arguments on their side. The principal one is this: that in consequence of a general plunder the king would have been deprived of the ransom, which must have been exceedingly great, and for which he only received elephants and regalia. Neither have we any account of his taking any part of the plunder from his army afterwards though it must have been very immense."

Dowe's History of India, Vol. II.

रक्षित हुई। अतएव इस समय आमोद प्रमोद में समय न बिता कर विधर्मियों के विरुद्ध धर्मयुद्ध में लगना मेरा कर्त्तव्य है।" तदनुसार तैमूर दिल्ली त्याग कर मेरठ की ओर बढ़ा। तैमूरलङ्ग के दिल्ली छोड़ने पर दो मास तक दिल्ली जनशून्य पड़ी रही।

मेरठ में पहुँच और वहाँ की भूमि को नररक्त से प्लावित कर तैमूर ने वहाँ अपनी विजयपताका गाड़ी। इसके बाद तैमूर ने अपने सेनापति अमीर जहानशाह को यमुनातीरवर्त्ती प्रदेशों को श्मशान बनाने के लिये भेजा और स्वयं गङ्गा किनारे के नगरों को विनष्ट करने के लिये वह वहाँ से आगे बढ़ा। वह घरों खेतों को जलाता, माल असबाब लूटता और मनुष्यों को काटता हुआ आगे बढ़ा किन्तु इस बार उसकी गति पहले जैसी सहज न हो सकी। उस देशवासियों ने पद पद पर बाधा और विघ्न उपस्थित किये। अन्त में तैमूर हरिद्वार पहुँचा। वहाँ के हिन्दुओं ने उसे बहुत तङ्ग किया। वहीं से उसने स्वदेश लौट जाने का सङ्कल्प किया। वहाँ से वह सिवालिक नामक पहाड़ी प्रदेश में पहुँचा। इसी स्थान पर उसका सेनापति अमीर जहानशाह, तैमूर से जा कर मिला था।

इसके बाद तैमूरलङ्ग ने समस्त सिवालिक प्रदेश, नगरकोट और जम्बू नगर को ध्वंस कर के, काश्मीर यात्रा की। वहाँ के राजा ने दूत भेज कर उससे कृपा की भिक्षा माँगी। तैमूर ने उसके व्यवहार से प्रसन्न हो कर उसके दूत को ख़िलत दी। वहाँ से तैमूर युद्ध करता हुआ—सिन्धु नद की ओर बढ़ा। कुछ दूर आगे जा कर उससे उसका वह सैन्यदल जा मिला—जो लाहौर ध्वंस के लिये भेजा गया था। अनन्तर तैमूर ने चनाब नदी पार कर अपने देश में अपने विजय का संवाद भेजा और वहाँ दरबार कर विजयी राजपुरुषों को यथायोग्य पुरस्कार दिया। इस प्रकार तैमूर ने भारतवर्ष को जीता जिस मार्ग से वह, वहाँ से भारतवर्ष में आया था, उसीसे वह स्वदेश लौट गया।[1]

जिस समय तैमूर भारतवर्ष से लौट कर अपने देश में पहुँचा उस समय उसकी उम्र त्रेसठ वर्ष की थी किन्तु उसका मानसिक बल और शारीरिक तेज तिल भर भी मन्द नहीं पड़ा था। भारत की यात्रा में दारुण कष्ट सह कर भी वह थका नहीं। यहाँ से लौट कर वह कुछ ही मास समरकन्द के भवनों में रहा होगा कि उसने एशिया के पश्चिमी देशों के विरुद्ध युद्ध घोषणा प्रचारित कर दी। भारत विजय कर के जो सेना उसके साथ गयी थी उसे उसने आज्ञा दी कि जो चाहे वह मेरे साथ चले और जो न चलना चाहे वह यहीं रह जाय।

उस समय एशिया के पश्चिम भाग में आटोमेन साम्राज्य प्रतिष्ठित था।[2] यूफ्रेटीज़ नदी के तीर पर आटोमेन और तैमूर के साम्राज्यों की सीमा मिलती थी। इससे दोनों साम्राज्यों में सीमा को ले कर सदा झगड़ा बना रहता था। इस समय सुलतान बाजिद आटोमेन साम्राज्य का अधिपति था। जब यह झगड़ा बढ़ा, तब तैमूर ने सुलतान को एक पत्र लिखा—

"क्या आप नहीं जानते कि पृथिवी का अधिक भाग मेरे अधिकृत हो रहा है? मेरी अजेय सेना—समुद्र तट की बालुका के कणों की तरह असंख्य है। पृथिवी के राजा गण मेरी ड्योढ़ी पर हाथ बाँधे खड़े रहते हैं। मैंने सौभाग्य देवी को अपने साम्राज्य की अधिष्ठात्री बनने के लिये बाध्य किया है। ये सारी बातें क्या आप नहीं जानते? तब आपकी इस निर्बुद्धिता और दाम्भिकता का कारण क्या है? आप ने एंटोलिया के वनों में एक दो युद्धों में विजय प्राप्त कर ली है सो वह तुच्छातितुच्छ है। आपने योरप के ईसाइयों को कई बार पराजित किया है, आपकी तलवार को पैग़म्बर मुहम्मद का आशीर्वाद है। आप क़ुरान के आदेशानुसार विधर्मियों से लड़ चुके हैं; मैं इसी एक मात्र कारण वश, मुसलमानी जगत् का

१ देश विजय कर के उत्कट आनन्द की प्राप्ति और विधर्मियों की हत्या करके पुण्य सञ्चय करना ही तैमूर की भारत यात्रा का उद्देश्य था। इसीसे उसने भारतवर्ष से जाते समय, विजित देश की रक्षा के लिये न तो सेना नियत की और न अपनी ओर से किसीको शासक बनाया। भारतवर्ष के भिन्न भिन्न प्रदेशों के उन शासनकर्त्ताओं को, जिन्होंने उसकी वश्यता स्वीकार कर ली थी—अपने अपने पदों पर उसने बहाल रखा।

२ इस नयी रियासत की नींव आर्तूगल नामक एक मुसलमान सेनापति ने डाली थी। धीरे धीरे यह साम्राज्य बना और इसकी सीमा योरुप तक फैली। आर्तूगल के पुत्र उसमान के समय में इसकी बहुत उन्नति हुई।

द्वार स्वरूप आपका राज्य धूलि में मिलाना नहीं चाहता। समय रहते अब भी आप समझ जाओ—अपने किये पर अब भी पश्चात्ताप करो और मस्तक पर घहराते हुए वज्र से अपनी रक्षा करो। जब तुम चींटी से अधिक बलशाली नहीं हो; तब हाथी को क्यों छेड़ते हो? देखो—कहीं हाथी के पैर तले कुचल मत जाना।" सुलतान बाजिद, तैमूर के इस पत्र को पढ़ कर मारे क्रोध के उन्मत्त हो गया और तैमूर का तिरस्कार करते हुए उसने कहला भेजा—"यदि मैं तुम्हारे अश्व के सामने से भाग जाऊँ तो मानों मेरी बेगमें तीन बार परित्यक्त हुईं और यदि तुम मुझसे युद्ध करने का साहस न करो तो मानों तुमने अपनी बेगमों के तीन बार परपुरुष से सहवास करवाने पर भी उनको अपने घर में डाल रखा।"[1]

मुसलमान समाज में स्त्रियों के प्रति कटुवचनों का प्रयोग करना अमार्जनीय अपराध है। सुलतान बाजिद की नासमझी के कारण राजनैतिक विवाद ने व्यक्तिगत रूप धारण किया। तैमूर ने ससैन्य सुलतान के विरुद्ध यात्रा की।

तैमूर ने आटोमेन साम्राज्य में पहुँच कर एंटोलिया के पास का सुदृढ़ सिवेष्टिनगर पर घेरा डाला। प्रभुभक्त चार हज़ार आर्मिनियन सैनिकों ने प्राण-पण से नगर की रक्षा की। तैमूर ने उनको मार कर सुलतान बाजिद को उसकी करतूत का फल दिया। उस समय सुलतान बाजिद कुस्तुनतुनिया के ईसाई राज्य को नष्ट कर के वहाँ इसलाम धर्म की पताका गाड़ना चाहते थे। योरप की समस्त ईसाई शक्तियाँ, उसके विरुद्ध धर्मयुद्ध की घोषणा कर के मुसलमानी सेना को रोकने के लिये अग्रसर हो रही थीं। तैमूरलङ्ग मुसलमानी धर्म का स्तम्भ था और वह समझता था कि विधर्मियों को मारना पुण्य का बटोरना है। इस लिये उसने विचारा कि बाजिद इस समय धर्मकार्य में लिप्त हैं और इसी समय समस्त आटोमेन साम्राज्य को उलट देने से धर्मकार्य में बाधा पड़ेगी। सुतरां तैमूर ने केवल सिवेष्टिनगर का ध्वंस किया और सीरिया और मिसर देश को जीतने का विचार पक्का किया। सन् १४०० ई० में तैमूर ने सीरिया राज्य पर आक्रमण किया—समस्त राज्य को उलट कर उसने एलिपो नगर पर घेरा डाला। उसने उस नगर को जीत कर नररक्त से पृथिवी को रङ्ग दिया और असंख्य नर नारियों को पकड़ कर गुलामी कराने के लिये ले गया।

तैमूर इन क़ैदियों में कुछ शास्त्रवेत्ता मुसलमानों को देख कर, उनके साथ बात चीत करने लगा। वे मुसलमानी धर्म के स्तम्भ थे। पारसियों की शिक्षा की तरह वे केवल अली और हसनहुसेन की भक्ति करते थे। पैग़म्बर की कन्या और दौहित्र को विरुद्धवादी बतला कर वे सीरिया के निवासियों के विरोधी थे। उसने उनका छल जानने के लिये उनसे पूँछा—"यथार्थ धर्म के लिये किसने प्राण विसर्जन किये? हमारे सैनिकों ने अथवा तुम्हारे पक्ष के सैनिकों ने?" उनमें से एक क़ाज़ी ने कहा—"उद्देश्य देख कर ही इस प्रश्न पर विचार होना चाहिये—केवल साम्प्रदायिक ध्वजा देख कर ही किसने धर्मार्थ प्राण विसर्जन किये इसका निर्णय नहीं होसकता।" क़ाज़ी के इस उत्तर से तैमूर सन्तुष्ट हुआ और फिर उससे कुछ न कहा। इसके बाद उसने फिर एक क़ाज़ी से पूँछा—"तुम्हारी कितनी उम्र है?" क़ाज़ी ने कहा—"पचास वर्ष।" इस पर तैमूर ने कहा—"मेरे ज्येष्ठ पुत्र की भी इतनी ही उम्र है। तुम अभी से असमर्थ और कुबड़े हो रहे हो—किन्तु ईश्वर ने मुझे ईरान तूरान और भारतवर्ष का अधिपति कर दिया है। मैं रक्त का प्यासा नहीं हूँ। मैं पहले किसी पर आक्रमण नहीं करता। मेरे शत्रु अपने आप अपनी विपत्ति बुला लिया करते हैं।" जिस समय तैमूर इस प्रकार शान्तिपूर्वक वार्त्तालाप कर रहा था, उस समय सड़कों पर रक्त का स्रोत बह रहा था और नगर भर में हाहाकार मचा हुआ था। उस की लालची सेना के सैनिक, नगरनिवासियों का धन रत्न लूट रहे थे। विजय उत्सव के लिये उपयुक्त संख्यक नर मुण्डों को संग्रह करने के अर्थ ही तैमूर की आज्ञानुसार उन लोगों ने नगर में हत्याकाण्ड रच रखा था।

इसके बाद तैमूर ने डमस्कस नगर जा घेरा।

---

1. *According* to the Koran a Musalman who had thrice divorced a woman (who had thrice repeated the words of a divorce) could not take her again till after she had been married to and repudiated by another husband.

दमस्कस के पहले निवासी मुहम्मद के दौहित्र के पक्षावलम्वी नहीं थे। मुहम्मद के वंश के भक्त तैमूर-लङ्ग ने, उनसे उनके इस अपराध का बदला लेने के लिये अपने सैनिकों को आज्ञा दी कि वहाँ के पूर्व निवासियों के वंशधरों के आवाल वृद्ध वनिता—सभी को मार डालो। एक भी जीता जागता न रहने पावे। एक मनुष्य ने आदरपूर्वक मुहम्मद के दौहित्र हुसेन के कटे सिर की क़ब्र बनवायी थी। दमस्कस के निवासियों में से केवल उसीके वंश वाले छोड़ दिये गये और सब मार डाले गये। तैमूर दमस्कस से एक शिल्पी को समरक़न्द ले गया था—उसके परिवार के आदमियों की भी जानें न ली गयीं। इनको छोड़ समस्त नगरवासी मार डाले गये और सात सौ वर्ष का समृद्धिशाली नगर श्मशान भूमि में परिणत कर दिया गया।

इन युद्धों से तैमूर की सेना थक गयी थी, अतः उसे मिसर और पैलेस्टाइन को ध्वस्त करने का विचार छोड़ना पड़ा और वह अपनी राजधानी को लौट गया। मार्ग में तैमूर ने एलिपो नगर को भस्मीभूत कर डाला और बुग़दाद नगर के टूटे खण्ड पर नब्बे हज़ार नरमुण्डों का एक स्तूप खड़ा किया, इसके बाद वह जार्जिया में पहुँचा और आटोमेन राज्य के विरुद्ध युद्ध आरम्भ किया। उसने चार लाख सैनिकों के साथ आटोमेन साम्राज्य को उलटने के लिये कमर कसी। सुलतान वाजिद ने भी बहुत सी सेना एकत्र कर रखी थी सो वह भी चार लाख सेना ले कर मुग़ल सेना की गति को रोकने के लिये रणक्षेत्र में अवतीर्ण हुआ। अङ्गोरा नामक स्थान में घोर युद्ध हुआ। सुलतान मुग़ल सेना का प्रचण्ड वेग न सह कर हारा और बन्दी हुआ।

बन्दी रूप में वाजिद जब तैमूर के डेरे के पास पहुँचाया गया; तब तैमूर ने उठ कर उसकी अगवानी की और उसे अपने पास बिठा कर, तिरस्कारमिश्रित वाक्यों से उसे ढाँढस बँधाया। सुलतान वाजिद ने शत्रु के इस सद्व्यवहार पर मुग्ध हो कर, पश्चात्ताप के लक्षण प्रकाश किये। वह नीची गरदन कर चुपचाप बैठ रहा। उसी समय उसका पुत्र मूसा युद्धक्षेत्र से वहाँ उसके पास लाया गया उसको (पुत्र को) उसने (वाजिद ने) नेत्रों में आँसू भर कर गले लगाया। विजयोत्सव के उपलक्ष में एक भोजसभा हुई। उसमें तैमूर ने सुलतान को भी आमंत्रित किया और उसके मस्तक पर राजमुकुट रख एवं हाथ में राजदण्ड दे कर उसे उसका पैतृक राज्य देना तैमूर ने स्वीकार किया। किन्तु छीने हुए राज्य को मिलने के पहले ही, सुलतान वाजिद आठ मास बन्दी रह कर लोकान्तरित हो गया।[1]

अब तैमूर की विजयपताका इरटिस से ले कर बल्गा तक और फ़ारस से ले कर गङ्गा के किनारे तक फहराने लगी। उसकी सेना अजेय थी, उसकी दुराकांक्षा की सीमा ही नहीं थी। वह एंटोलिया से अपनी राजधानी को न गया और उसने योरुप विजय का सङ्कल्प किया। यद्यपि तैमूर के पास स्थल

१ तैमूर के स्वरचित वृत्तान्त के आधार पर उक्त घटना का उल्लेख ऊपर किया गया है। फ़ारसी इतिहास लेखकों ने भी इसी वृत्तान्त को दुहराया है। किन्तु फरासी, ग्रीक, इटालियन, अरब और तुर्की इतिहास लेखकों ने लिखा है कि तैमूर ने सुलतान वाजिद को लोहे की जंजीरों से जकड़ कर रखा था। मुहम्मद इब्न अरबशाह नामक एक इतिहास लेखक ने लिखा है कि सुलतान वाजिद ने तैमूरलङ्ग की रमणियों को लक्ष्य कर के कटु वचन कहे थे—अतः उसने (तैमूर ने) इसका बदला लेने के लिये विजयोत्सव की भोजसभा में सुलतान के अन्तःपुर की रमणियों को बिना पर्दा के बुला कर मद्य से मत्त अतिथियों द्वारा "बे आबरू" कराया था। इन दो विरुद्ध मतों में ठीक कौन है? गिबन साहब का मत है कि प्रथम तो तैमूर ने विजय के आनन्द में उदार बन कर शत्रु का समादर किया—किन्तु एंटोलिया के राज्यच्युत राजकुमार ने जब सुलतान के विरुद्ध तैमूर के कान भरे; तब तैमूर का मन सुलतान की ओर से ख़राब हो गया और वह सुलतान को सगौरव समरक़न्द ले जाने को उद्यत हुआ। इतने में सुलतान वाजिद ने अपने रहने के तम्बू में सुरङ्ग खोद कर भागने का उद्योग किया। इस बात के प्रकट होते ही तैमूर ने उसके हाथों में हथकड़ी और पैरों में बेड़ियाँ डलवा दीं। इसी अवस्था में सुलतान वाजिद की मृत्यु हुई। तब तैमूर ने सुलतान के पुत्र मूसा को एंटोलिया का कुछ हिस्सा दे कर बचा हुआ भाग वहाँ के प्राचीन अधिपति के वंशधरों को दे कर उनको पुनः वहाँ का अधिपति बनाया।

पर लड़ने वाली बड़ी भारी सेना थी—तथापि जहाज़ी सेना का उसके पास एक दम अभाव था। वह एशिया और योरुप के बीच का जलमार्ग तय करने के लिये उपाय सोचने लगा। दिग्विजयी तैमूर के नाम से सारा योरुप काँप उठा। जब योरुप के अधिपतियों को यह बात विदित हुई कि तैमूर ने योरुप-विजय का सङ्कल्प किया है; तब उन लोगों ने बहुमूल्य पदार्थों की भेंटें दे कर अपने दूत उसके पास भेजे और उसकी वश्यता स्वीकार कर, उसकी विजय लालसा को शान्त करने का प्रयत्न किया।

इस उद्योग में योरुप के राजागण सफल हुए। तैमूर ने योरुप विजय का सङ्कल्प परित्याग किया। किन्तु इसके थोड़े ही दिनों बाद लोगों ने यह ख़बर उड़ायी कि तैमूर अफ्रिका देश को जीत कर और अटलाण्टिक महासागर के किनारे किनारे जा कर जिबराल्टर मुहाने से पार होगा और योरुप के राजाओं को अधीनता के पाश में बाँध कर रशिया और तातार की मरुभूमि के मार्ग से स्वदेश को लौट जायगा। मिसर के सुलतान ने पहले ही से समय रहते वश्यता स्वीकार कर के भी काल्पनिक भय के कारण अपनी राजधानी त्याग दी और वह वहाँ से कहीं दूर भाग गया।

उस समय चीन राज्य में बौद्धधर्म का प्रचार था। तैमूर ने असंख्य मुसलमानों का ख़ून बहाया था। उसने सोचा कि यदि उतने ही मूर्त्तिपूजकों का ख़ून मैं बहाऊँ तो मेरे पाप का प्रायश्चित्त हो जायगा। इस विश्वास के वशवर्त्ती हो कर और जीवन का सन्ध्याकाल उपस्थित होने पर तैमूर ने चीन-विजय का सङ्कल्प किया। इस सङ्कल्प की सिद्धि के लिये तैयारी करने के अभिप्राय से वह एंटोलिया से समरक़न्द में लौट आया।

चीन विजय की तैयारी करने में दो मास बीते। इन्हीं दो मासों में उसने समरक़न्द में रह कर शान्ति सुख भोगा और इसी थोड़े काल में उसने अपनी असाधारण शक्ति और ऐश्वर्य का परिचय दिया। वह अपराधी को दण्ड देता था और गुणी को पुरस्कृत करता था। उसने संगृहीत धन को बड़े २ भवन और मसजिदों के बनवाने में लगाया।[१] और मिसर, अरब, भारतवर्ष, तातार, रूसिया और स्पेन के राजदूतों को दर्शन दिये।

इसी समय तैमूर ने स्नेह वश और धर्मानुरोध से अपने छः पुत्रों का विवाह किया। इन विवाहों में प्राचीन ख़लीफ़ा के समय जैसी धूमधाम का पुनः अभिनय हुआ। असंख्य क़नात तम्बुओं से शोभित कालिफ़ोल के उद्यान में विवाहक्रिया सम्पादित की गयी। बावरचीख़ाने में ईंधन जलाने के लिये समूचे एक वन के वृक्ष काट डाले गये थे। मिठाई के असंख्य मटके और मदिरा के कुण्डों को ख़ाली करने के लिये सहस्रों लोग सादर बुलाये गये। भोजसभा में उसके साम्राज्य के विभिन्न २ श्रेणी के सामन्त और पृथिवी की प्रत्येक जाति के प्रतिनिधि एकत्र हुए थे। इनमें योरुप की शक्तियों के राजदूत भी थे। कबिन नामक क़ाज़ी ने निकाह पढ़ाया था। वर कन्या दोनों वासगृह में गये। प्रचलित प्रथानुसार नौ बार उन्होंने नये कपड़े बदले। जब जब वे नये कपड़े पहनते और पुराने उतारते थे, तब तब उनके मस्तक पर मणि मुक्ता की वर्षा की जाती थी। इनको पास खड़े नौकर उठा लिया करते थे और ये सारे उन्हीं की सम्पत्ति हो जाते थे। इस समय तैमूर नितान्त सीधा बन गया था। उसने लोगों को हर प्रकार से आनन्द मनाने की आज्ञा दे रखी थी। सर्व साधारण जन स्वाधीन हो गये थे। तैमूर का आतङ्क लोगों के हृदय से दूर हो गया था। इतिहास लेखकों ने लिखा है कि तैमूर का आधा जीवन युद्ध में बीता किन्तु इन दो महीनों में उसने कड़ाई नहीं दिखलायी—इसीसे उसके सारे जीवन में यह समय अत्यन्त सुख शान्ति का था।

१. "Timur had enriched Samarkand with the spoils of his universal conquests, he had brought skilled craftsmen and artists from the utmost parts of Asia to build him 'stately pleasure domes' and splendid mosques; and his capital became one of the most beautiful as it had been one of the most cultivated cities of the east."

Stanley Lane—Poole.

तैमूर ने बहुत दिनों तक यह आनन्द न लूटा । उस ने दो लाख सैनिकों को साथ ले कर चीन यात्रा की । इस समय उसकी ७० वर्ष की उम्र थी और जाड़े की ऋतु आरम्भ हो गयी थी । बुढ़ापा अथवा शीत कोई भी उसे दमन नहीं कर सका । वह दूसरों के राज्यों को छीनने की लालसा के वशीभूत हो कर आगे बढ़ता ही चला गया । किन्तु समरक़न्द से तीन सौ मील चीन की ओर जा कर संसार को डराने वाला तैमूर बीमार पड़ा और मर गया ।

तैमूर ने एशिया के सुविशाल देश में अपनी विजय-पताका उड़ायी । उसने एक देश को जय करते ही दूसरे पर आक्रमण किया । इसीसे उसका कार्य अधूरा रह जाता था और वह जीते हुए राज्यों के शासन की सुव्यवस्था नहीं कर पाता था । इसीसे उसके जीते हुए देशों में उसका स्थायी प्रभुत्व न जम पाया । तैमूर जब किसी देश को जीतता था, तब उस के आनन्द की सीमा नहीं रहती थी । यही अपार आनन्द प्राप्त करने के लिये उसने अनेक देश जीते । देश जीत कर उनमें अपनी अमलदारी बिठाने की उसकी इच्छा न थी—इसीसे वह जिस देश को जीतता, उसको श्मशानवत् नष्ट कर देता था । वह जहाँ जाता, वहाँ की घास तक जला डालता था । तैमूर की चढ़ाई के समय जो राजा भाग जाते थे, वे उसके वहाँ से जाते ही पुनः अपने देश पर राज्य करने लगते थे । पारस और मारोन्नहार देश उसके अधिकार में थे ।

तैमूर विकलाङ्ग था; किन्तु उसके शरीर की गठन बड़ी सुदृढ़ थी । उसका सुविशाल शरीर उसकी समग्र पृथिवीव्यापिनी प्रतिष्ठा के तुल्य था । उसका स्वास्थ्य बहुत अच्छा था । इसीसे वह युद्ध करते २ कभी थकता न था । उसकी बोल चाल भी शिष्टतापूर्ण और गम्भीर भाव युक्त थी । विज्ञानी और इतिहास जानने वालों के साथ बात चीत करने में उसे बड़ा आनन्द प्राप्त होता था ।

तैमूर राज्यशासन में स्वेच्छाचारी था । जिस बात की वह टेक पकड़ लेता—मंत्रियों के लाख समझाने पर भी वह उसे नहीं छोड़ता था । इसलाम धर्म पर उसका पूर्ण विश्वास था । उसने सारे अत्याचार धर्म के नाम पर ही किये थे । तैमूर के जीवन के आरम्भ काल में एशिया के प्रायः सभी राज्यों में अराजकता फैली हुई थी; किन्तु उसके राजत्व काल में सारे देश शान्ति पूर्ण थे । एक नन्हा सा बालक भी हाथ में सोने की थाली ले कर निर्विघ्न यात्रा कर सकता था । उसने काल्पनिक अथवा अयथार्थ कारण दिखा कर ही नरहत्या और लूट मार का समर्थन किया था ।

इसमें भी सन्देह नहीं कि तैमूर के अत्याचारों से छोटे छोटे राजाओं को बड़ा कष्ट हुआ—हरे भरे नगर श्मशान बन गये । उसकी आज्ञा से उसकी सेना ने अष्टांकन, खारिजम्, दिल्ली, इस्पहान, बुग़दाद, एलिपो और डमस्कस आदि हरे भरे नगर धूलि में मिला दिये । विजित देशों के सुशासन की सुव्यवस्था उसने न की, इसीसे उसके मरते ही उसका साम्राज्य भी अस्त हो गया । तैमूर के मरते ही फिर पूर्ववत् अराजकता फैल गयी ।

तैमूर की मृत्यु के बाद उसके सुविशाल साम्राज्य के टुकड़े टुकड़े कर डाले गये । तैमूर का ज्येष्ठ पुत्र गयासउद्दीन जहाँगीर मिरज़ा अपने पिता के सामने ही चल बसा था । उसका पुत्र मीर मुहम्मद ग़ज़नी का शासक था । तैमूर ने मीर मुहम्मद ही को अपना उत्तराधिकारी मनोनीत किया था । उसका दूसरा बेटा मिरज़ा उमरशाह फ़ारस का शासनकर्त्ता था । वह भी अपने पिता के सामने ही मर चुका था । तीसरे पुत्र का नाम था, मीरनशाह मिरज़ा; अजरबिजन, सीरिया और ईराक का शासन भार इसके हाथ में था । चौथा पुत्र मिरज़ा शाहरुक खुरासान का शासक था । तैमूर के मर चुकने पर उसके जीवित दोनों पुत्र और मृत दो पुत्रों के वंशधर उसकी स्थायी और अस्थायी सम्पत्ति के अधिकारी हुए ।

पिता की मृत्यु के बाद तैमूर के तीसरे पुत्र मीरनशाह ने निज शासित देश में अपने नाम का ख़ुतबा पढ़वाया और अपने ही नाम का सिक्का प्रचलित किया । वह अधिकतर तब्रेज नगर में रहा करता था । पर थोड़े ही दिनों बाद यूसुफ़ नामक एक तुर्की सरदार के द्वारा वह युद्ध में मारा गया ।

मीरनशाह के मरने पर उसका बेटा सुलतान मुहम्मद मिरज़ा गद्दी पर बैठा।[1] मुहम्मद के बाद उसका पुत्र मिरज़ा आबू सैयद गद्दी पर बैठा । उसने

१ अबुलफ़ज़ल को छोड़ अन्य किसी इतिहासवेत्ता ने मुहम्मद मिरज़ा का नाम नहीं लिखा ।

बड़ी धूमधाम से राज्य किया और उसने मारोन्नहार को भी अपने राज्य में मिला लिया। इतने ही से उसकी उच्च आशा पूरी न हुई—उसने खुरासान और भारतवर्ष की सीमा तक अपने राज्य की सीमा बढ़ाई। उस समय मिरज़ा जहानशाह अजरविजन का राजा था। जानहुसेन नामक एक सरदार ने अजरविजन को अपने अधिकार में करना चाहा और युद्ध आरम्भ किया। आबू सैयद ने मिरज़ा जहानशाह का पक्ष ले कर, उसकी सहायता की। किन्तु अरदिविरल के पास एक छोटी घाटी में शत्रु द्वारा घिर जाने पर सेना सहित वह मारा गया। अबुलफ़ज़ल ने आबू को धर्मपरायण बतला कर उसकी प्रशंसा की है।

क्षमताशाली अधिपति की मृत्यु के बाद उसके विस्तीर्ण राज्य के अनेक टुकड़े हुए। कोई कोई भाग उसके पुत्रों के हाथ में भी रहे। आबू सैयद के पुत्रों में चार ने स्वतंत्र राज्यों की प्रतिष्ठा की। ज्येष्ठ पुत्र सुलतान अहमद मिरज़ा समरक़न्द और बुखारा का राजा हुआ। तृतीय पुत्र सुलतान मुहम्मद मिरज़ा ने बदकशां और खातूम आदि प्रदेशों पर अपना आधिपत्य जमाया। चतुर्थ पुत्र उमर शेख़ मिरज़ा अपने पिता के सामने ही जेक्सरटिस नदी के दोनों तट वाले क्षुद्र फरगन देश का अधिकारी बन गया था। उमरशेख़ विजयलिप्सु कर्मण्य नृपति था। वह अपने बड़े भाई का समरक़न्द का राज्य हथियाने के लिये बारंबार चेष्टा करने लगा। इस ढिठाई का बदला लेने के लिये उसका बड़ा भाई भी उसके राज्य पर बार बार चढ़ाई करने लगा। दोनों भाइयों ने मुग़लस्तान के अधिपति चंगाती वंशजात यूनिसख़ाँ की कन्याओं के साथ निकाह किया था। किन्तु उमर शेख़ को यूनिसख़ाँ बहुत चाहता था—इसीसे वह उमर की सहायता के लिये कई बार लड़ाई के मैदान में भी गया था। जो हो अन्त में यूनिसख़ाँ के प्रयत्न से दोनों भाइयों में सन्धि हो गयी। किन्तु खलों की प्रीति का भी क्या ठिकाना? थोड़े ही दिनों बाद दोनों भाइयों में फिर झगड़ा उठ खड़ा हुआ। इस समय यूनिसख़ाँ मर चुका था और उसका पुत्र मुहम्मदख़ाँ उसके पद पर अभिषिक्त था। उसने सुलतान अहमद मिरज़ा से मिल कर, उमर को पदच्युत करने की मन में ठान ली, और इस मेल को सुदृढ़ करने के लिये उसने मिरज़ा की कन्या के साथ विवाह कर लिया। फरगन राज्य पर एक ही समय में दो ओर से आक्रमण किया गया। इतने में मिरज़ा उमर चल बसे।

सन् १४०६ ई० में तैमूर मरा; उसके लगभग एक सौ वर्ष बाद सन् १४६४ ई० में उसकी पिछली चौथी पीढ़ी में उमर शेख़ मिरज़ा था। वह भी मर गया। इतने ही दिनों में तैमूरलङ्ग के विशाल साम्राज्य के सैकड़ों टुकड़े हो गये और छोटे छोटे राजाओं में परस्पर झगड़ा उत्पन्न हो गया। उजबकों ने उत्तर की ओर से मारोन्नहार और पारस पर भीषण आक्रमण कर तैमूर के वंशधरों को नष्ट कर डाला। यदि उमर का पुत्र बाबर नये राज्य का सूत्रपात न करता तो तैमूर के घराने का दीपक बुझ ही चुका था।

Teimur Shah. तैमूरशाह=यह अहमदशाह दुर्रानी का पुत्र था। सन् १७५७ में अहमदशाह को जब काबुल लौट कर जाना पड़ा; तब वह अपने पुत्र तैमूर को पञ्जाब का सूबेदार बना कर लाहौर में छोड़ गया था।

Thackwell, Sir J. थैकवेल=सन् १८४६ ई० के द्वितिय पञ्जाब युद्ध में इन्होंने अङ्गरेज़ी सेना के दहिने भाग का नेतृत्व ग्रहण किया था।

Thomason, Mr. टामसन=सन् १८४६ ई० में आगरे के छोटे लाट के पद से मदरास के गवर्नर नियुक्त हुए थे। पर इस पद पर वे बहुत दिनों न रहने पाये और पचास वर्ष की अवस्था में मर गये।

Thompson, Major. मेजर टामसन=ये अङ्गरेज़ी फ़ौज में बङ्गाल एन्जीनियरस के मेजर थे और सन् १८३६ ई० में अफ़ग़ानस्तान की चढ़ाई के समय ग़ज़नी को इन्होंने हस्तगत किया था।

Timmuji: तिम्मूजी=यह एक समुद्री लुटेरा था और सन् १५०६ ई० में इसने पुर्तगाली

वाइसराय को गोया लेने के लिये उत्तेजित किया था।

Tippu, Sultan. टीपू सुलतान=मैसूर की भाषा में टीपू का अर्थ चीता है । यह मैसूर के प्रसिद्ध हैदर का पुत्र था और इसने पिता की मृत्यु के बाद कितने ही दिनों तक अङ्गरेज़ों के साथ युद्ध किया था। यह थोड़े से योद्धाओं को साथ ले कर अङ्गरेज़ों की अमलदारी में लूट पाट मचाया करता था । जिस समय हैदर मरा उस समय टीपू को मैसूर के कोषागार में तीन करोड़ रुपये और बहुत से बहुमूल्य रत्न मिले । उस समय मैसूर सरकार की अधीनता में १ लाख मनुष्य थे । इसने गद्दी पर बैठ कर पहले कनारा और कुर्ग पर चढ़ाई की थी । इन स्थानों से इसने एक लाख से अधिक हिन्दुओं को पकड़ कर ज़बरदस्ती मुसलमान बनाया था । इसके बाद उसने अपने को बादशाह की उपाधि से भूषित किया। तब नाना फड़नवीस और हैदराबाद के निज़ाम ने मिल कर उस पर चढ़ाई की । इसका परिणाम यह हुआ कि टीपू ने पिछला ख़िराज देना अङ्गीकार किया और दोनों ने लड़ाई बन्द की । इस युद्ध से टीपू को तुङ्गभद्रा के उस पार का स्वतंत्र अधिकार मिला। इससे टीपू को बड़ा अभिमान हुआ और उसने मालावार पर चढ़ाई की और वहाँ नैय्यरों से कहा कि या तो अपने प्राण गँवाओ या मुसलमान हो । इस प्रकार उसने वहाँ के बहुत से निवासियों को मुसलमान बनाया और बहुत से वहाँ से भाग गये । उसीके कथनानुसार उसने वहाँ आठ सौ मन्दिर नष्ट भ्रष्ट किये। उसका उद्देश्य यह था कि लोग उसे पैग़म्बर मानने लगें । अङ्गरेज़ उसकी यह कृत्य दूर से देखते थे । पर पुरानी सन्धि के अनुसार उसके इन कुकृत्यों में बाधा नहीं डाल सकते थे । साथ ही वे प्रतीक्षा में थे कि पुरानी सन्धि टीपू ही की ओर से भङ्ग हो । अन्त में हुआ भी ऐसा ही ट्रावनकोर का राजा अङ्गरेज़ों का मित्र था । टीपू ने उसी पर चढ़ाई की चढ़ाई करने का मुख्य कारण उसने यह बतलाया कि उसकी प्रजा के अनेक नैय्यर ट्रावनकोर भाग गये। सन् १७८६ ई० के दिसम्बर मास में टीपू ने ट्रावनकोर पर आक्रमण किया; किन्तु इस आक्रमण में उसकी सम्पूर्ण सेना मारी गयी और वह अकेला किसी प्रकार बच गया। उसकी पालकी, मोहर, छल्ले आदि सब वस्तुएँ शत्रु के हाथ लगीं।

इस हार से टीपू बहुत क्रुद्ध हुआ और प्रतिज्ञा की कि जब तक शत्रु को परास्त कर इस हार का बदला न ले लूँगा; तब तक न मानूँगा । तीन मास तक उसने अङ्गरेज़ों से छिपा कर युद्ध की तैयारियाँ कीं।

जब यह बात अङ्गरेज़ों को मालूम हुई; तब लार्ड कार्नवालिस से न रहा गया और उन्होंने निज़ाम हैदराबाद से सन्धि कर टीपू का सामना करना निश्चित किया । इस सन्धि में मरेहटे भी शामिल किये गये और अङ्गरेज़, निज़ाम तथा मरेहटों ने टीपू पर चढ़ाई करने का निश्चय किया।

अनन्तर कार्नवालिस ने टीपू को सूचना दी कि तुमने अङ्गरेज़ों के मित्र ट्रावनकोर के राजा पर चढ़ाई कर, अङ्गरेज़ों को अपना शत्रु बनाया है । पहले जनरल मीडो को अङ्गरेज़ी फ़ौज के सञ्चालन का भार सौंपा गया था, पर उन्होंने उचित योग्यता का परिचय न दिया, इससे लार्ड कार्नवालिस को स्वयं कलकत्ते से मदरास जाना पड़ा और उन्होंने स्वयं सैन्य परिचालन का भार अपने ऊपर लिया । फिर चुपके से अङ्गरेज़ी सेना मुग़लीपमी से टीपू को धोखा दे मैसूर की ओर बढ़ी। उस समय टीपू फरासीसियों से सन्धि करने के लिये पांडीचरी में पड़ा हुआ था।

अङ्गरेज़ी सेना ने २१ मार्च सन् १७९० ई० को बङ्गलोर पर अधिकार जमा लिया। फिर टीपू की राजधानी श्रीरङ्गपट्टम से कुछ दूर अरिकेरा नामक स्थान पर १३ मई को अङ्गरेज़ी सेना का अधिकार हो गया। अधिकार करते समय टीपू से युद्ध हुआ और इस युद्ध

में टीपू बुरी तरह हारा। तब उसने फ़रासीसियों से सहायता माँगने के लिये अपना प्रतिनिधि भेजा, पर उसे सहायता न मिली।

अङ्गरेज़ों ने श्रीरङ्गपट्टम भी ले लिया होता, पर न तो अङ्गरेज़ी सेना के पास और न निज़ाम की फ़ौज के पास रसद क्या, किसी भी आवश्यक वस्तु का पूरा पूरा प्रबन्ध न रह गया था। अतः लार्ड कार्नवालिस को मदरास लौट जाना पड़ा। मदरास लौटने के एक दिन पहले मरेहटों की सेना पहुँची। मरेहटों की उस ढील ही के कारण आगे की चढ़ाई का काम रोकना पड़ा था। मरेहटों के सेनापति हरीपन्त की अभिलाषा केवल लूट मार करने की थी।

अन्त में सन् १७९२ ई० के जनवरी मास में अङ्गरेज़ी फ़ौज ने अपनी पूरी पूरी तैयारी कर, टीपू के विरुद्ध रण-क्षेत्र में फिर पदार्पण किया। इस बार मरेहटों ने और निज़ाम के पुत्र ने अपनी सेना सहित अङ्गरेज़ी फ़ौज का साथ दिया। टीपू ने भी शत्रुओं का सामना करने का पूरा प्रबन्ध कर लिया था। उसने बचाव के लिये तीन पंक्तियों में तीन सौ तोपें रखवायी थीं और मिट्टी की दीवार खड़ी कर बड़े सघन काँटे लगवा दिये थे। किन्तु इन तैयारियों ने अङ्गरेज़ी फ़ौज की गति को न रोक पाया। ६वीं जनवरी की रात्रि को अङ्गरेज़ों ने अपने ५३० वीरों को कटा और घायल करवा कर, टीपू की इन तैयारियों को मिट्टी में मिलवा दिया। इस दिन के युद्ध में टीपू के २० हज़ार आदमी घायल हुए मरे और भाग गये।

अङ्गरेज़ी सेना आगे बढ़ती ही चली गयी। अन्त में मंत्रियों के परामर्श से टीपू ने कार्नवालिस के साथ सन्धि कर ली। कार्नवालिस ने जो कुछ कहा टीपू ने उसे मान लिया।

छः वर्ष तक टीपू चुप चाप रहा और चुपके चुपके तैयारियाँ करता रहा। इस बार उसने अपनी सेना में फ़रासीसी अफ़सरों को भर्ती किया और उन्हींके द्वारा अपनी सेना को लड़ाई की शिक्षा दिलायी।

इतने में टीपू का एक प्रतिनिधि मारीशस द्वीप में पहुँचा और उसने वहाँ के गवर्नर से सेना की सहायता इस लिये माँगी कि भारतवर्ष से अङ्गरेज़ों को निकाल दें।

उधर बङ्गलोर में एक फ़रासीसी जहाज़ ने सौ फ़रासीसी अफ़सर ला उतारे। इन लोगों ने श्रीरङ्गपट्टम में पहुँच कर "जेको बियन क्लब" नामक, टीपू की अध्यक्षता में एक समिति स्थापित की। साथ ही स्वतंत्रता का वृक्ष (True of Liberty) लगाया जिसके ऊपर समानता का ताज (Cap of Equality) रखा। फिर वहाँ पर फ़रासीसी प्रजासत्ताक शासन (French Republic) की घोषणा की।

उस समय भारत में लार्ड वेलिसली आ गये थे। उन्होंने टीपू से कहा कि तुम मारीशस से अपने प्रतिनिधि को बुला लो। साथ ही उन्होंने निज़ाम और मरेहटों से भी युद्ध की तैयारी करने के लिये पत्रव्यवहार किया।

वेलिसली के भेजे हुए प्रतिनिधि मेजर डोवेटन का टीपू ने अपमान किया। सदासिर में दोनों दलों में लड़ाई हुई। इस युद्ध में टीपू स्वयं शामिल था और दो हज़ार सैनिकों को खो कर वह रणक्षेत्र छोड़ कर भागा। दूसरा युद्ध दोनों दलों में श्रीरङ्गपट्टम से बीस मील के फ़ासले पर मेलेविली में हुआ। यहाँ भी टीपू के एक हज़ार आदमी काम आये पर अङ्गरेज़ों के केवल उनहत्तर मारे गये।

उधर जनरल हैरिस ने अचानक कावेरी को पार कर श्रीरङ्गपट्टम के दक्षिण में डेरा जा जमाया। इस सेना के पहुँचते ही टीपू के होश हवास जाते रहे।

१५ अपरेल को अङ्गरेज़ों की पूरी सेना श्रीरङ्गपट्टम के सामने जा खड़ी हुई। तब तो टीपू बहुत हताश हुआ। उसने अपने ज्योतिषियों से प्रश्न पूँछे और अपने विजय के लिये मसजिदों में प्रार्थना करवायी। शत्रु के पास अपने वकीलों को भेज कर, सन्धि के प्रस्ताव भी करवाये। किन्तु क्रोध में भर और खिजला कर लार्ड हैरिस ने जो शर्तें कहीं उनको टीपू ने स्वीकार न किया।

श्रीरङ्गपट्टम के क़िले के दक्षिण-पश्चिम

भाग में एक दरार थी, अङ्गरेज़ी सेना के अध्यक्ष को ख़बर मिली कि उस दरार में हो कर उसकी सेना दुर्ग के अन्दर जा सकती है। यह ख़बर तीसरी मई की शाम को मिली थी। चौथी मई को सूर्य्योदय के पहले जनरल बेयर्ड अपनी सेना ले कर आगे बढ़े। जनरल बेयर्ड यहाँ चार वर्ष तक टीपू की क़ैद में रह चुके थे। जनरल बेयर्ड दिन के लगभग एक बजे क़िले की दीवार पर पहुँच गये और उनकी सेना ने म्यान से तलवारें निकाल और शत्रु के घर में घुस शत्रु पर आक्रमण किया। सात मिनिट के भीतर अङ्गरेज़ों का झंडा क़िले पर फहराने लगा। सेना के दोनों दलों ने भी लड़ते झगड़ते पूर्व के फाटक पर अपना अधिकार जमा लिय और वे नगर में घुस पड़े।

टीपू एक पालकी में मुर्दों के बीच मरा हुआ पाया गया। अगले दिन लालबाग़ में बड़ी प्रतिष्ठा के साथ सैनिकों ने उसे ज़मीन में गाड़ा। पीछे से यह भी मालूम हुआ कि जो अङ्गरेज़ क़ैदी टीपू के हाथ लगे थे, उन सबको उसने मरवा डाला था। टीपू को चीतों का बड़ा शौक़ था और उसके दुर्ग में अनेक चीते बँधे रहते थे।

Trimbuck Rao Mamâ. त्रिम्बकराव मामा=सन् १७६१ ई० में पूना की मरेहटी सल्तनत में ये सबसे बढ़ कर वीर और चतुर प्रधान सेनापति समझे जाते थे।

Tukaji Holkar. I. तुकाजी होल्कर=यह एक अनुभवी सिपाही था और इसे खण्डेराव की विधवा महारानी अहिल्याबाई ने गोद लिया था। इसीके वंशधर अब इन्दौर के अधीश्वर हैं।

Tulaji Angria. तुलाजी अग्रिया=यह एक समुद्री डाँकू था और यह विजय दुर्ग अथवा घिरिया में रहा करता था। क्लाइव और वाट्सन ने मिल कर सन् १७५६ ई० में इन समुद्री लुटेरों को ध्वस्त किया था।

Tulsi Bai. तुलसीबाई=जसवन्तराव होल्कर ने अनेक अशिष्ट कार्य किये और वे सन् १८०८ में उन्मत्त हो, सन् १८११ ई० में मर गये; तब उनकी रियासत में बड़ी गड़बड़ी मची। उस समय तुलसीबाई के हाथ में उस रियासत की शासन-डोर थी। यह तुलसीबाई जसवन्तराव की रखी हुई एक असद्चरित्रा स्त्री थी और वह मल्हारराव जो अपने पिता के यथार्थ और सपुत्र न थे—के नाम से शासन करती थी। सन् १८१७ ई० में यह अपनी सेना के हाथ से मारी गयी थी। क्योंकि सेना को सन्देह हो गया था कि तुलसीबाई अङ्गरेज़ों से मिली हुई है।

U

Upton, Colonel. कर्नल उपटन=इनको वारिन हेस्टिंग्ज़ ने सन् १७७६ ई० में नयी सन्धि का प्रस्ताव दे कर पूना भेजा था। कर्नल उपटन ने १ मार्च सन् १७७६ ई० को पूना के समीप पुरन्दर में सखाराम बापू और नाना फड़नवीस के हस्ताक्षरों सहित सन्धिपत्र तैयार करवाया था। पुरन्दर की सन्धि के कारण कर्नल उपटन की बड़ी वाहवाही हुई।

V

Vajid Ali Shah. वाजिदअली शाह=लखनऊ के अन्तिम नवाब। सन् १८०१ ई० की सन्धि के अनुसार अवध अङ्गरेजों की सुरक्षा में था। किन्तु वहाँ के नवाबों की विषयलम्पटता के कारण अवध का शासन बड़ी बुरी दशा में था। मनुष्यत्व के विचार से वहाँ के शासन में हस्तक्षेप करने की आवश्यकता थी। कर्नल स्लीमन के अनुरोध से और लार्ड डैलहाउसी के परामर्शानुसार सरकार ने अवध को अङ्गरेज़ी शासनाधीन कर लिया। वाजिदअली की नवाबी का अन्त हुआ। जिस समय यह संवाद वाजिदअली को सुनाया गया, उस समय वाजिदअली बच्चों की तरह रोये और अपने सिर की पगड़ी उतार कर स्लीमन साहब के हाथ में रख दी, पर सन्धिपत्र पर हस्ताक्षर न किये। अन्त में वाजिदअली नवाबी के मसनद से उतार दिये गये। उन्हें १२०,००० स्टरलिङ्ग की वार्षिक पेंशन दे कर सरकार ने कलकत्ते के मटियाबुर्ज में ले जा कर रखा। वहीं इनकी मृत्यु हुई।

Vansitart. वेंसीटर्ट=सन् १७६१ ई० में ये बङ्गाल की कौंसिल के प्रधान थे। ये जिस पद पर

थे उसके ये सर्वथा अयोग्य थे। इनके समय में शासन की बड़ी दुर्व्यवस्था थी। इनमें और इनकी कौंसिल के सदस्यों में सदा अनबन रहती थी। कारण इसका यही था कि ये उस पद के सर्वथा अयोग्य थे।

Verelst, Mr. मि० वरलस्ट=सन् १७६७ से १७७२ ई० तक ये बङ्गाल के गवर्नर थे। इनके समय म मुख्य घटना मरेहटों और मैसूर वालों के साथ अङ्गरेज़ों का विवाद था।

Vira Rajendra Udeviyar. वीर राजेन्द्र=कुर्ग के नरेश का नाम। फ़रिश्ता ने लिखा है कि वीर राजा वंश के राजाओंका राज्य सन् १५८३ ई० में वहाँ था। सन् १८३२ ई० म हैदर ने कुर्ग राज्य को हराया और सन् १७७६ ई० में वीर राजेन्द्र को कुर्ग के राजसिंहासन से च्युत किया और उसे क़ैद किया। टीपू ने ज़बरदस्ती उसे मुसलमान बना लिया था। किन्तु वह टीपू से छुटकारा पा कर उससे बड़ी बहादुरी से लड़ा और सन् १७८७ ई० में वह फिर कुर्ग के राजसिंहासन पर बैठा। उसका भतीजा वीर राजेन्द्र उदयार सन् १८३२ ई० में वहाँ का राजा हुआ। वह पागल था। उसने लगातार अनेक ख़ून किये। राजवंश में तो उसने एक भा पुरुष को जीता न छोड़ा। अन्त में जब उसने अङ्गरेज़ों से भी छेड़ छाड़ की, तब अङ्गरेज़ों ने उसे पकड़ कर, बनारस में जन्म भर के लिये क़ैद करके रखा। उसने राजवंश में कोई पुरुष छोड़ा ही न था इस लिये कुर्ग का राज्य अङ्गरेज़ों ने अपनी अमलदारी में मिला लिया।

W

Wasil Muhammed. वासिल मुहम्मद=पिण्डारियों का एक प्रधान। इसने अङ्गरेज़ों द्वारा दबाये जाने पर सिन्धिया की शरण ग्रहण की थी और पीछे से स्वयं विष खा कर आत्म-हत्या कर ली थी।

Watson Admiral. वाट्सन=अङ्गरेज़ी समुद्री सेना का प्रधान सेनापति। इसने और क्लाइव ने मिल कर घिरिया के समुद्री डाँकुओं को ध्वस्त किया था।

Wellisly Marquis. वेलिसली=यह भारतवर्ष के चौथे गवर्नर जनरल थे और सन् १७९८ से १८०५ ई० तक यहाँ रहे। इनके समय की मुख्य घटनाएँ ये हैं:—

(१) तीसरी मैसूर की लड़ाई।
(२) करनाटक और उत्तर-पश्चिम प्रान्त का सरकार की अमलदारी में मिलाया जाना।
(३) दूसरा मरेहटा युद्ध।
(४) तीसरा मरेहटा युद्ध।

Wellisly Colonel. कर्नल वेलिसली=यह लार्ड वेलिसली के भाई थे और श्रीरङ्गपट्टम दुर्ग के पतन के समय यह भी अङ्गरेज़ों की सेना के प्रधान सेनापति हो कर गये थे।

Wellisly Henry. हैनरी वेलिसली=कम्पनी के एक कर्मचारी। जब टीपू मारा गया; तब कम्पनी ने मैसूर के प्राचीन हिन्दू राजवंश का पता लगा कर पाँच वर्ष के एक बालक को, जिसका नाम कृष्णराज उदयार बहादुर था, मैसूर के सिंहासन पर बिठाया। साथ ही उस राज्य का यथोचित प्रबन्ध करवाया। यह प्रबन्ध कराने के लिये कम्पनी की ओर से जो लोग गये थे उनमें मि० हैनरी वेलिसली भी एक थे।

Whish General. विश जनरल=ये अङ्गरेज़ों की कम्पनी के प्रधान सेनापति थे और सन् १८४८ ई० में इन्होंने मुलतान पर घेरा डाला था।

Willoughby. विलोगबी लफ़टण्ट=जब मेरठ में सिपाही विद्रोह हुआ और इसके समाचार दिल्ली स्थित अङ्गरेज़ अफ़सरों को मिले; तब नौ अङ्गरेज़ अफ़सरों ने वहाँ के गोले बारूद के गोदाम को अपने हाथ में कर लिया। उन नौ में एक विलोगबी भी था। यह विद्रोहियों की मार से घायल हो मेरठ में मरा था।

Whitlock General. जनरल विटलाक=ये मदरास प्रान्त की अङ्गरेज़ी सेना के अध्यक्ष थे और सन् १८५७ ई० के सिपाही विद्रोह में इन्होंने बुन्देलखण्ड में बाँदा के राजा की फ़ौज को नष्ट किया था।

Y

Yusuf-adil Shah. यूसुफ़ आदिलशाह=बीजापुर की आदिलशाही का जन्मदाता यूसुफ़ आदिलशाह कुस्तुनतुनिया के आग़ा मुराद के वंश में से था । यह कुलबर्ग के द्वितिय मुहम्मद शाह का एक बड़ा उमरा था ।

Z

Zabita Khan. ज़ाब्ताख़ाँ=यह शाहआलम का वज़ीर नजीबुद्दौला का बेटा था । जब नजीबुद्दौला सन् १७७० ई० के अन्त में मरा तब यह उसकी जगह विजारत पर बैठा । पर थोड़े ही दिनों बाद मरेहटों ने इसे दिल्ली से मार कर भगा दिया ।

Zafur Khan. ज़फ़रख़ाँ=यह अलाउद्दीन की सेना का प्रधान सेनापति था और सन् १२९८ ई० में जब मुग़लों ने दिल्ली पर आक्रमण किया था, तब ज़फ़रख़ाँ ने उन्हें बुरी तरह हराया था । अलाउद्दीन अपने प्रधान सेनापति के इस विजय गौरव को न सह सका इस लिये जब ज़फ़र ने भागते हुए मुग़लों का पीछा किया; तब उसने ज़फ़र की सहायता न की और वह बड़ी वीरता से लड़ता हुआ शत्रुओं के हाथ से मारा गया ।

Zeman Shah. ज़मनशाह=यह अहमदशाह अबदाली का पौत्र था और सन् १७९९ ई० में इसने भारत पर आक्रमण करने का विचार किया था ।

Zafer Khan. ज़फ़रख़ाँ=यह एक अफ़ग़ान था जो गंगू नामक ब्राह्मण का ग़ुलाम था । ब्राह्मण ने पहले ही इसके अभ्युदय की भविष्यवाणी कह रखी थी और पीछे से इसने कुलबर्ग की बहमनी रियासत को स्थापित किया । बहमनी ख़ान्दान का यह पहला शाह था और इसने अपना नाम रखा था अलाउद्दीन हुसेन गंगू बहमनी ।

परिशिष्ट २

महाभारत में व्यवहृत अप्रचलित भौगोलिक नामों की व्याख्यासहित सूची।

अ

अगस्त्याश्रमः= इगतपुरी। नासिक के आगे बंबई के समीप जी. आई. पी. रेलवे का एक स्टेशन। Igitpuri—24 miles south-east of Nasik.

अङ्गाः= सरयू और गंगा के बीच का देश। भागलपुर ज़िला। The country of Bhagalpur.

अधिराजः= दतिया—यहां के राजा दन्तवक्र को दिग्विजययात्रा के समय सहदेव ने मारा था। Datia near Gwalior.

अपरान्ताः= कोंकन और मालाबार देश। Konkan and Malabar.

अवन्ती= उज्जैन का नाम है। किसी समय अवन्ती नाम का राज्य था जिसकी राजधानी उज्जैन थी। अब अवन्ती से केवल उज्जैन नगरी ही का बोध होता है। The country of which Ujjain was the capital.

अश्वतीर्थ= कान्यकुब्ज देश के समीप का एक तीर्थ विशेष। यहाँ पर ऋचीक नाम के ऋषि ने एक सहस्र श्यामकर्ण घोड़े वरुण से पाये थे। The confluence of the Ganges and the Kalinadi in the District of Kannouj.

असिक्नी नदी= चन्द्रभागा अथवा चनाब नदी जो पंजाब में है। The river Chenab in the Punjab.

अहिच्छत्र= अहिछत्र, उत्तर पाञ्चाल देश जिसे द्रोणाचार्य ने पाण्डवों की सहायता से द्रुपद से छीना था। इसकी राजधानी रामनगर (रुहेलखण्ड) थी। Ramnagar in Rohilkhand. It was the capital of North Panchal in Rohilkhand.

इ

इक्षुमती= संयुक्त प्रान्त के उत्तरीय भाग में बहनेवाली काली नदी का नाम। The river Kalinadi in the *United Provinces.*

उ

उज्जयन्तः= सौराष्ट्र काठियावाड़ के जूनागढ़ के समीप के गिरनार पर्वत का दूसरा नाम। Mount Girnar close to *Junagarh* in *Kathiawar.*

उद्दालकः= काश्मीर के पश्चिम सिन्धु नदी के तट का एक पवित्र क्षेत्र विशेष। A sacred place on the river Indus *due west* of Kashmere.

उत्कलाः= कलिङ्ग देश के उत्तर का देश जो आजकल उड़ीसा देश के नाम से प्रसिद्ध है। Orissa.

उरगापुरी= दक्षिण भारत के समुद्रतटवर्ती एक बंदर का नाम जो आजकल तंजोर ज़िले में नीगापट्टम के नाम से प्रसिद्ध है। यह स्थान किसी समय पाण्ड्य देश की राजधानी था। Negapatam a seaport *town* in the district of Tanjore. It was once the capital of *Pandya-Raj.*

ऋ

ऋक्षवान्= विन्ध्य पर्वतमाला का पूर्वीय भाग। The eastern part of the Vindhya Range.

ऋष्यमूकः= मदरास हाते के अनागुंडी स्थान से आठ मील दूरी पर और तुंगभद्रा नदी के तट पर

कुरुक्षेत्रं= पंजाब के करनाल ज़िले का एक क़सबा। 100 miles north of Delhi in the district of Karnal.

कुरुजाङ्गला:= कुरुदेश के पश्चिम में जो बड़ा भारी जंगल था उसको कुरुजाङ्गल कहते थे। यह कौरवों की राजधानी हस्तिनापुर से उत्तर पश्चिम की ओर तथा दिल्ली से उत्तर पूर्व की ओर अवस्थित था। अब इसका नाम निशान तक नहीं है। गंगा द्वारा यह बहा दिया गया। A forest country situated in the north-west of Hastinapur—the capital of the Kurus, north-east of Delhi, now entirely diluviated by the river Ganges.

कुलिन्दा:= कुरुक्षेत्र के उत्तरवाला देश जहाँ अब सहारनपुर ज़िला है। The district of Saharanpur, in the United Provinces.

कुशस्थली= द्वारका जो काठियावाड़ में है। Dwarka the capital of Raja Ugrasen's kingdom in Kathiawar.

कृष्णवेणा
कृष्णवेणी
कृष्णा } =कृष्णा नदी के नाम हैं। The river Krishna.

केकया:= पंजाब प्रान्त के उस भूखण्ड का नाम जो वहां की व्यास और सतलज नदियों के बीच में है। भरत की माता कैकेयी यहीं की थी। The country between the Beas and the Sutlej. It was the kingdom of the father of Kaikeyi one of the Ranees of Dasarath.

कोटितीर्थ= इस नाम के तीर्थ ज़िला बांदा में कालिंजर में, गोकर्ण में और मथुरा में हैं। A tank situated in Kalingar in Banda district. (2) A *sacred tank in Gokaran* 3. In Muttra also.

कोलाहल:= मालवा और बुन्देलखण्ड को अलग करनेवाली एक पर्वतमाला का नाम जो चन्देरी के पास है। The range of hills near Chanderi which separates Malwa from Bundelkhand.

कोसला= अयोध्या। यह राज्य दो भागों में विभक्त था। दोनों के बीच में सरयू है। एक का नाम उत्तर कोशल दूसरे का दक्षिण कोसल। Ajodhia in Oudh. It was divided into two provinces by the river Sarju, Uttara and Dakshina Kosala.

कौशकी= यह गंगा की सहायक नदियों में से बहुत बड़ी सहायक नदी है और इसका गंगा के साथ संगम बंगाल में हुआ है और वह स्थान कौशिकी तीर्थ के नाम से अब तक प्रसिद्ध है। यह विश्वामित्र की भगिन नदी होकर बही है। The river Kusi is a large tributary of the Ganges from the north. Its confluence with the Ganges in Bengal is called Kaushiki Tirtha.

क्रथकैशिका:= किसी समय यह विदर्भ देश की राजधानी था। यह बरार में है। In Berar—it was once the capital of Vidarbha.

ग

गन्धमादन= रुद्र हिमालय का अंश विशेष जो बदरिकाश्रम से उत्तर पूर्व की ओर कुछही हटकर आरम्भ होता है। A part of the Rudra—Himalaya which commences at a short distance to the north-east of Badrikashram.

गान्धाराः= यह देश काबुल नदी के किनारे किनारे कुनार और सिन्धु के बीच में है। इसकी राजधानी का नाम पुरुषपुर (जिसे अब पेशावर कहते हैं) था। The country of Gandhara lies along the Kabul river, between the Kunar and the Indus. Its capital was Purushapura now Peshawar.

गिरिव्रजः= मगध देश की राजधानी। यह बिहार में राजगिर के नाम से अब प्रसिद्ध है। Rajgir in Behar—the ancient capital of Magadha.

गोकर्ण= एक क्षेत्र है जो गोआ से ३० मील उत्तरी कनारा में है। A town in the province of North-Kanara, thirty miles from Goa.

गोप्रतारं= अयोध्या में गुप्तारघाट नाम से प्रसिद्ध है। A place of pilgrimage on the bank of the Sarju at Ajodhya.

गोमन्त= द्वारका के समीप वाले एक पहाड़ का नाम। An isolated mountain near Dwarka.

च

चेद्यः= यह राज्य शिशुपाल के अधीनस्थ था। और इसमें बुंदेलखण्ड का दक्षिणी भाग और जबलपुर का उत्तरी भाग था। The country comprising the southern portion of Bundelkhand and the northern portion of Jubbalpur.

ज

जनस्थान= जहां अब औरङ्गाबाद (दक्षिण हैदराबाद के अन्तर्गत) है वहाँ किसी समय विकट वन था और यहाँ राक्षसों की चौकी थी। Aurangabad. This was formerly a jungle inhabited by Rakshas.

त

तक्षशिला= झेलम नदी के तट का एक नगर जो अटक और रावलपिंडी के बीच में बसा था। It is on the bank of the Vitasta, (Jhelum) between Attock and Rawalpindi.

तमसा= टोंस नदी जो संयुक्त प्रान्त में है और गंगा में गिरती है। The river Tonse which falls into the Ganges in the United Provinces.

ताम्रपर्णी= मदरास हाते का टिनेवली नगर इसी नदी के तट पर बसा हुआ है। The river Tamraparni in Tinnevelly. (South India).

त्रिगर्ताः= पंजाब का जालन्धर ज़िला। Jallandhar in the Punjab.

द

दरदाः= दर्दस्तान जो काश्मीर से उत्तर सिन्धु के चढ़ाव की ओर है। Dardistan, north of Kashmir on the Upper bank of the Indus.

दर्दुरः= पूर्वीघाट की पर्वतमाला के दक्षिणी भाग का नाम। The southern portion of the Eastern Ghats.

दृषद्वती= कग्गर नदी का नाम जो अम्बाला और सरहिन्द होकर बहती है और राजपूताने के रेगिस्तान में विलीन हो जाती है। The river Caggar which flowed through Ambala and Sirhind, now lost in the sands of Rajputana.

द्रमिडाः(द्रविडाः)= दक्षिण भारत का वह भूभाग जो मदरास से श्रीरंगपट्टं और कन्याकुमारी तक है। इसकी राजधानी काञ्चीपुर में (जो अब कांजीवरम कहाता है) थी। Part of the Deccan from Madras to Seringapatam and Cape Comorin. Its

capital was at Kanchipuram now known as Conjeeverum in the Chingleput district.

ध

धर्मारण्य= गया के समीप का देश । Four miles from Budha-Gaya in the Gaya district.

न

नैमिषारण्य= गोमती नदी के वाम तट पर सीतापुर से लगभग बीस मील के फ़ासले पर है । इसे अब नीमसार मिसरिक कहते हैं । Nimsar, on the left bank of the river Goomti and twenty miles from Sitapur in Oudh.

प

पाञ्चालाः= जो अब रुहेलखण्ड है, वही पाञ्चाल देश था । इसके दो विभाग थे । एक उत्तर पाञ्चाल और दूसरा दक्षिण पाञ्चाल । उत्तर पाञ्चाल की राजधानी रामनगर (रुहेलखण्ड) थी । दूसरे विभाग की राजधानी कम्पिला थी । Rohilkhand.

पम्पा= यह तुंगभद्रा की एक शाखा का नाम है । यह ऋष्यमूक पर्वत से निकलती है जो अनगंडी पहाड़ी से आठ मील दूर (मदरास हाते में) है । A branch of the river Tungabhadra which rises in the Rishyamuka mountain. Eight miles from the Anagandi hills in the Madras Presidency.

पयोष्णी= तापती नदी की एक शाखा जो बरार प्रान्त में है । इसको वहां पूर्णा कहते हैं । The river Purna—one of the branches of the Tapti in Berar.

पर्णाशा= यह राजपूताने में है और इसका प्रचलित नाम बनास है । यह चंबल में गिरती है । The river Banas in Rajputana a tributary of the Chambal.

पाटलावती= काली-सिन्द नदी जो चंबल की एक शाखा है । The Kali-Sind a branch of the Chambal.

पाण्डुराष्ट्रा= दक्षिण के तिनवली और मदूरा के ज़िले जहाँ हैं—वहाँ पाण्डुराष्ट्र था । इसकी राजधानी उरगपुर में थी । उरगपुर का वर्त्तमान नाम नीगापट्टम और मदूरा है । Pandya—the modern districts of Tinnevelly and Madura in South Indus. Its capital at different periods were Uragpur now called Negapatam and Madura.

पारियात्र= विन्ध्या पर्वत की पश्चिमी पर्वतमाला जिसमें अरावली शामिल है और जो नर्मदा के मुहाने से खंबात की खाड़ी तक फैली हुई है । The western part of Vindhya range extending from the source of the Nerbada to the Gulf of Cambay. It includes the Aravali mountains.

पावनी= वर्मा की इरावदी नदी का नाम । The Iravadi in Burma.

पुलिन्द= इस राज्य में वर्त्तमान बुन्देलखण्ड का पश्चिमी भाग और समूचा सागर ज़िला सम्मिलित था । It included the western portion of Bundelkhand and the district of Sagar.

पृथूदक= पीहो, जहाँ पर सुप्रसिद्ध ब्रह्मयोनि तीर्थ है । यह स्थान थानेश्वर से चौदह मील पश्चिम की ओर है । Pehoa where the celebrated Brahmayoni tirtha is situated. It is fourteen miles to the west of Thaneswara.

प्रभास= काठियावाड़ का सोमनाथ पट्टन स्थान। Somnath in Kathiawar.

प्राग्ज्योतिषं= आसाम का कामरूप देश। Kamrup in Assam.

ब

बाहुदा= धवला नदी जिसे अब बूढ़ा राप्ती नदी कहते हैं और जो अवध की राप्ती नदी की एक सहायक नदी है। लिखित ऋषि के इसी नदी में स्नान करने से नयी बाहें निकल आयी थीं तभी से इसका नाम "बाहुदा" पड़ा है। The Dhumela or Burha—Rapti—a feeder of the Rapti in Oudh.

वाल्हीकाः= केकय देश के उत्तर पूर्व का वह देश जो व्यास और सतलज नदी के बीच में है। A country between the Beas and the Sutlej—north east of Kakaya.

विन्दुसरः= गंगोत्री से दो मील हटकर रुद्र हिमालय में एक पवित्र कुण्ड है। यहीं भगीरथ ने गंगा को पृथ्वी पर बुलाने के लिये तप किया था। A sacred pool two miles of Gangotri in the Rudra-Himalaya.

भ

भृगुकच्छः= भड़ौच नगर। यहीं पर नर्वदा समुद्र में गिरती है और यहीं पर महर्षि भृगु का आश्रम था। Broach, on the river Narbada. This was the hermitage of the Rishi Bhrigu.

भोजकटं= पूर्णानदी पर बसा हुआ इलिचपुर जो बरार में है। यहां रुक्मिणी का भाई रुक्मिण रहता था। Ellichipur on the river Purna in Berar.

म

मगधाः= विहार प्रान्त। उस समय मगध देश की पश्चिमी सीमा सोन नद था। The Province of Behar.

मत्स्याः= जैपुर के पास का प्रदेश जिसमें अलवर भी शरीक है। The country around Jeypore including Alwar.

मद्राः= रावी और चनाव के बीच का प्रदेश जो पंजाब में है। A country in the Punjab, between the Ravi and the Chenab.

मलजाः (मलदाः)= करूप देश के समीप का देश जिसे मालदा कहते हैं और जो शाहाबाद-आरा का पश्चिमी भाग है। Malada—The western portion of the district of Shahabad.

मल्लाः= इस नाम के दो देश हैं। पश्चिम में मुलतान और पूर्व में हज़ारी बाग का वह भाग जिसमें पारसनाथ पर्वत है और मानभूमि ज़िले का भी कुछ भाग शामिल है। There are two Malla desa, one is in the west, the Multan. The other is in the east—the country in which the Parasnath hills are situated and portions of the districts of Hazaribag and Manbhum.

महेन्द्रः= महेन्द्रमाली पर्वत जो गंजाम में है। Mahendra Mali. A hill in Ganjam District.

मार्कण्डेयाश्रमः=गोमती और सरयू नदियों के संगम पर यह आश्रम है। At the confluence of the Sarju and the Gomati rivers.

मालिनी= नदी जो सरजू में अयोध्या से ६० मील की दूरी पर चढ़ाव की ओर मिलती है। यहीं पर

पुस्तकों की नामावली।

जिन पुस्तकों की सहायता से यह चरिताम्बुधि सङ्कलन किया गया है, उनकी नामावली नीचे प्रकाशित की जाती है:—

१—*श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण
२—महाभारत
३—श्रीमद्भागवत
४—हरिवंश
५—विष्णुपुराण
६—लिङ्गपुराण
७—मार्कण्डेय पुराण
८—ब्रह्मवैवर्तपुराण
६—नारदपुराण
१०—कल्किपुराण
११—स्कन्दपुराण
१२—वायुपुराण
१३—पद्मपुराण
१४—भविष्यपुराण
१५—गरुड़पुराण
१६—देवीभागवत
१७—वामनपुराण
१८—ऐतरेयब्राह्मण
१६—शतपथब्राह्मण
२०—मनुस्मृति
२१—रघुवंश
२२—कुमारसम्भव
२३—राजतरङ्गिणी
२४—टाड्स राजस्थान
२५—भारतवर्षीय इतिहास
२६—भारतवर्षीय कविदिगेर समय निरूपण
२७—बुद्धचरित
२८—आदर्श महात्मागण
२६—शिवसिंहसरोज
३०—हिन्दी कोविदरत्नमाला
३१—हिन्दी नवरत्न
३२—Grierson's The modern Vernacular Literature of Hindustan.
३३—मुगलवंश
३४—इतिहास तिमिरनाशक
३५—Maleson's French in India.
३६—Text Book of Indian History by Dr. G. U. Pope.
३७— Ormies Indosthan.
३८—History of Indian People by W. W. Hunter.
३६—Beaton's Dictionary of Universal Information.
४०—Garret's Classical Dictionary of India (1871)
४१—महाभारतस्थानां मुख्यनाम्नां वर्णानुक्रमणिका by T. R. Krishna charya.
४२—A history of the Classical Sanscrit Literature, by M. Krishnamacharya.

* पृष्ठ १६६ में, जहाँ रामायण से तुलसीकृत रामायण से अभिप्राय है, छोड़कर; अन्यत्र सर्वत्र रामायण से श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण ही समझना चाहिये।